DAMAGE BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186337

UNIVERSAL
LIBRARY


Vishal Bharal
Vol 62
No 8 6
July '58
चित्रा
सम्पादक :—श्रीराम शर्मा



क्राफ्ट

एम० जी० पेपर

Checked 1963

३९ ग्राम और ज़्यादा वजन के
प्रामाणिक साइज़ों और रीलों में प्राप्य

वर्तमान उत्पादन :

बोर्ड : डूप्लेक्स, सफेद और रंगीन, एयरफ़िनिशड् आर्ट ; एनामैल, ब्रिस्टल ; प्रेस पान, गिल ;

कागज : सफेद पोस्टर, डीलुक्स पोस्टर, सल्फाइट, रिल्ड, सफेद और रंगीन, टी यल्लो ; एम० जी० टी यल्लो ; एम० जी० ब्लू कैन्टल, एम० जी० मनिल्ला, व्हाइट प्रिंटिंग, हार्ड साईज्ड, उत्तम क्वालिटी, क्रीम लेड, उत्तम क्वालिटी, सफेद बक और बोंड, आफसेट प्रिंटिंग, एकाउंट बुक।

साहू जैन
इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

सेलिंग एजेन्ट

मेसर्स अशोका मार्केटिंग लि०

११, क्लाइव रो, कलकत्ता

विशाल भारत का आगामी विशेषांक

शहीद-अंक

शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

विस्तृत विवरण अगले मामके अङ्क में देखिये।

मैनेजर—विशाल भारत कार्यालय, १२०।२, अपरसरकूलर रोड, कलकत्ता

मस्तिष्क शीतल
रखने में अद्वितीय



बंगाल केमिकल का
गोल्डेन आमला
हेयर आयल

केशरक्षा और केशवृद्धि का श्रेष्ठ उपकरण
रूप, गंध और गुण में अतुलनीय।



आज से ही व्यवहार कीजिये
सभी सम्भ्रान्त दुकानों में मिलता है

बंगाल केमिकल
कलकत्ता·बम्बई·कानपुर

विषय-सूची जुलाई १९५८

१ सम्पादकीय विचार १
२ मिर्ज़ा ग़ालिब (कविता)—हरीशंकर शर्मा १६
३ क्रान्तिकारी लाला हरदयाल (संस्मरण)—
बनारसीदास चतुर्वेदी १७
४ आतिथ्य-अवतार पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी (संस्मरण)
श्रीराम शर्मा २०
५ अद्वितीया (कहानी)—"वनफूल" २५
६ गांधीजीका सेवाग्राम—सिथिमा बाउल्स २७
७ अन्तरपट खोलो ! (गद्यगीत)—किशन सिंह ३३
८ घन-सावनकी रंग-लहरमें (कविता)—
राम इकबाल सिंह 'राकेश' ३४
९ धार्मिक प्रतीकोंका विकास—वीरेन्द्र सिंह एम०ए० ३५
१० संस्कृतका प्रश्न—भगवती प्रसाद चन्दोला ३८
११ आल्हा-खण्डका नामकरण—सुबोधचन्द्र ४०
१२ साहित्य और विज्ञान—गोपालजी 'स्वर्णकिरण' ४२
१३ योगीश्वरके दर्शन—रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी ४६

डिस्पोजल
- का -
और नया सामान

सिरिस कागज, मोजे, थैले, ऊनी और सूती ब्रीचेज, तश्तरियाँ, घुड़सवारी का सामान, साइकिल का सामान, फोल्डिंग चारपाइयाँ कुर्सी, मेज इत्यादि, तम्बू, तिरपाल वगैरः सुविधा-पूर्वक प्राप्त करें।

आरमी सरप्लस स्टोर्स
१।१, गैलिफ स्ट्रीट,
कलकत्ता-३
टेलीफ़ोन ५५-३८८८


The Ideal Food, Drink & Diet
FOR YOUR CHILDREN
LILY BRAND BARLEY
TRADE MARK
REGISTERED DESIGN & BRAND
FOR INFANTS & INVALIDS
LILY BARLEY MILLS LTD
MUNARIPUKUR ROAD
ULTADANGA : CALCUTTA
LILY Brand BARLEY
Absolutely Fresh & Pure
Always prepared under Hygienic Condition
• LILY BARLEY MILLS PRIVATE LTD. CALCUTTA-4 •

हिन्दीके बहुत बड़े अभावकी पूर्ति

एकमात्र नवीन एवं विश्वसनीय संदर्भ कोष

नालन्दा विशाल शब्द सागर सजिल्द १५)

डेढ़ लाख शब्दोंका विशाल शब्द-चयन

साइज़ १०×७॥, पृष्ठ संख्या १५५२

नालन्दा अद्यतम कोष सजिल्द ६)

साठ हजार शब्दोंका सुलभ प्रामाणिक संग्रह

Nalanda Current Dictionary १५)
(Nehru-charchil era version)
2,00000 Words With Eng, Hindi Meaning

मिलनेका पता:—

विशाल भारत बुक डिपो

१६५।१ महात्मा गान्धी रोड कलकत्ता-७

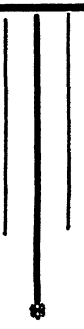
विषय-सूची जुलाई १९५८

१४ स्वर्गीय मौलाना आजाद—जैसा मैंने उन्हें जाना के० जी० सैयदेन ४७
१५ गन्दी औरतें ! (कहानी)—राजेन्द्र कुशवाहा ५०
१६ सुभाषित—अनन्त रामैय्या ५३
१७ स्वर्गीय पं० देवोसहाय शर्मा (संस्मरण)— रामदेव चोखानी ५४
१८ तामिल पाठ—रवीन्द्रनाथ ५४
१९ गीत—गोपालजी 'स्वर्णकिरण' ५६
२० भासका प्रश्न—आर० श्री निवासाचार्य ५७
२१ तृतीय एशियाई खेलोंका विहंगावलोकन— रामकृष्ण शर्मा ६०
२२ तार्किक और तेली—अनन्त रमैय्या ६२
२३ काजी और जाट—मुरलीधर दिनोदिया ६३
२४ चिट्ठी-पत्री— ६
२५ चयन— ६७
५६ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार— ७६



विशाल भारत का आगामी विशेषांक

= शहीद - अंक =



शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

विस्तृत विवरण अगले मासके अंक में देखिये।

मैनेजर—विशाल भारत कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता

बीमारी के बाद स्वस्थता के लिये
एवं
थकान दूर करनेके लिये

एनरगन

(ENERGON)



शक्तिदायक टानिक

यह टानिक ग्लिसरोफास्फेट्स, स्ट्रिकनीन, बिटामिन 'बी' कम्प्लेक्स, एवं लेसिथिन के सम्मिश्रण के बना है।

थकान दूर करता है

*

पाचन शक्ति बढ़ाता है

*

स्वास्थ्य ठीक रखता है

बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड

कलकत्ता :: बम्बई :: कानपुर

विषय-सूची अगस्त १९५८

१	सम्पादकीय विचार	८१
२	व्रज-संस्कृतिकी विशेषताएँ—श्रीराम शर्मा	९७
३	राष्ट्रिय जीवनमें विष-बीज—तारकनाथ बाली	९९
४	महान जीवन—डा० इन्द्रसेन	१०२
५	ताजमहल (कहानी)—बनफूल	१०३
६	सुखमें, दुखमें (कविता)—हरिशरण 'मराल'	१०४
७	बंगाल और राष्ट्रभाषा—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	१०५
८	नार्मदीय लोक-संस्कृति (विवाह-गीत)—प्रो० रामाधार शर्मा	१०७
९	रुबाइयाँ—नीलम	११७
१०	धूर्त धर्मध्वज (कहानी)—बालकृष्ण पोद्दार	११८
११	भारतीय संस्कृति—केशवदेव चतुर्वेदी	१२१
१२	शहीद नारायणदास खरे—भगवानदास माहौर	१२३
१३	गौरव अनुभव—किशन सिंह	१२७

कुसुम
वनस्पति
सब तरह के
अच्छे
भोजन के
लिये


डाबर की
आयुर्वेदीय दवाएं
व्यवहार करें —

हिन्दीके बहुत बड़े अभावकी पूर्ति

एकमात्र नवीन एवं विश्वसनीय संदर्भ कोष

नालन्दा विशाल शब्द सागर सजिल्द १५)

डेढ़ लाख शब्दोंका विशाल शब्द-चयन

साइज़ १०×७॥, पृष्ठ संख्या १५५२

नालन्दा अद्यतम कोष सजिल्द ६)

साठ हजार शब्दोंका सुलभ प्रामाणिक संग्रह

Nalanda Current Dictionary १५)
(Nehru-Churchileera version)
200,000 Words With Eng-Hindi Meaning.

मिलनेका पता:—

विशाल भारत बुक डिपो

१६५।१ महात्मा गान्धी रोड कलकत्ता-७

विषय-सूची अगस्त १९५८

१४ कविकी प्रिया (कविता)—
भगवतीप्रसाद चन्दोला १२८

१५ पश्चिम बंगालमें जेल-सुधार १२९

१६ लीला अपरम्पार तुम्हारी (कविता)—
गोपालजी 'स्वर्णकिरण' १३१

१७ लेबनानका युद्ध—विष्णु दुग्गल १३२

१८ प्रेमचन्द और उनका समकालीन जीवन—
सुन्दर लोहिया १३४

१९ तमिल-पाठ—रवीन्द्रनाथ १३६

२० मौलवी और जाटनी (कहानी)—
श्रीराम शर्मा १३८

२१ चिट्ठी-पत्री १३९

२२ चयन १४२

२३ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार १४६





आरोग्य प्रकाश

नीरोग रहने के नियम, रोगों के निदान तथा चिकित्सा की सर्वोत्तम पुस्तक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री द्वारा लिखित।

सर्वसाधारण तथा चिकित्सकों के लिये अत्यन्त उपयोगी। शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि विस्तारपूर्वक लिखे गये हैं। दवाओं के नुस्खे तथा औषधि तैयार करने के विधान तो इस पुस्तक में बहुत ही श्रेष्ठ है।

पृष्ठ-५०० कीमत २।) मात्र।
डाक खर्च अलग।

हमारे विक्री केन्द्रों मे प्राप्य या नीचे पते से मंगायें।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

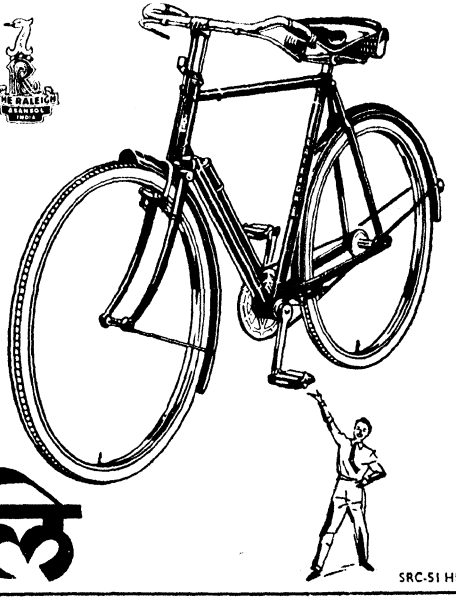
कलकत्ता · पटना · झांसी · नागपुर

सचमुच

गर्व करने

योग्य

सायकिल



रैले

SRC-51 HIN

मस्तिष्क शीतल
रखने मे अद्वितीय



बंगाल केमिकल का

गोल्डेन आमला

हेयर आयल

केशवर्धी और केशवर्धनी का श्रेष्ठ उपकरण
रूप, गंध और गुण में अतुलनीय।



आज से ही व्यवहार कीजिये
सभी सम्भ्रान्त दुकानों में मिलता है

बंगाल केमिकल
कलकत्ता·बम्बई·कानपुर

विषय-सूची : सितम्बर १९५८

१	सम्पादकीय विचार	१६३
२	ठाकुर झूंझुसिंह — श्रीराम शर्मा	१६९
३	सावन-गीत (कविता)—रंजन सूरिदेव	१७२
४	गुजराती संत कवयित्री गवरी बाईकी हिन्दी कविता — विनयमोहन शर्मा	१७३
५	फरियाद (कविता)—सीताराम 'प्रभात'	१७६
६	वैदिक कालीन संस्कृति—गोविन्दजी	१७७
७	भगवती मीराकी अनन्य भक्ति— चन्द्रकला मित्तल	१७९
८	केरल महाकवि उल्लूर और उनकी रचनाएं — का० ल० मोदी	१८४
९	अखबारका टुकड़ा—जयशंकर पंड्या	१८६
१०	विद्वत्प्रवर डा० अग्रवाल भा— रामइकबाल सिंह 'राकेश'	१९१
११	साहित्यका अनुभूत सत्य—परमानन्द दीक्षी	१९४
१२	भास-नाटकोंमें चित्रकला और संगीत— आर० श्रीनिवासाचार्य	१९५
१३	टाइन (कहानी)—मनमोहन गुप्त	२०१
१४	सेक्स बनाम सुन्दरता—डी० एच० लारेन्स	२०४
१५	सोशियस और स्वतन्त्रता-आन्दोलन— विष्णु दुग्गड़	२०८
१६	मुतलक खिचड़ी (कहानी)—श्रीराम शर्मा	२१०
१७	चिट्ठी-पत्री	२१२
१८	चयन	२१५
१९	समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार	२१९

'विशाल भारत' का अगला अंक

दीपावली विशेषांक

होगा।

जिसमें उच्चकोटिके तथा प्राणस्पर्शी लेख, मनोहर कहानियाँ,
रोमांचकारी संस्मरण और आकर्षक कविताएँ होंगी।

◆

कुछ लेखोंकी सूची निम्नांकित है:—

१—अमरशहीद अशफाकउल्ला	...	सुशीलकुमार
२—आचार्य तुलसीका दैनन्दिन जीवन-प्रसंग	...	मुनि सुखलालजी
३—पुर्तगाली युद्धपोत (एक विचित्र समुद्री जीव)	...	एक प्रकृति प्रेमी
४—विष्णुप्रियाका तुलनात्मक चरित्र-चित्रण	...	व्रजगोपालदास
५—कालिदासका नारी-वर्णन	...	आर० श्रीनिवासाचार्य
६—कड़क धाँय करि धड़ाम (शिकारकी सच्ची कथा)	...	श्रीराम शर्मा
७—डाकू मानसिंहका गिरोह	...	श्रीराम शर्मा
८—मरहूमकी यादमें (हास्यरसकी कहानी)	...	पतरस
९—चाय-चक्रम ...	...	डा० लप्पड़ झप्पड़

इनके अतिरिक्त आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० हरिशंकर शर्मा, श्री विनयमोहन शर्मा आदि प्रसिद्ध साहित्यकारोंके लेख होंगे।

एक अंकका मूल्य १)

स्थायी ग्राहकोंसे अधिक मूल्य नहीं लिया जायगा।

मैनेजर, 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

मस्तिष्क शीतल
रखने मे अद्वितीय



बंगाल केमिकल का
गोल्डेन आमला
हेयर आयल

केशवर्द्धी और केशवर्द्धी का श्रेष्ठ उपकरण
रूप, गंध और गुण मे अतुलनीय।



आज से ही व्यवहार कीजिये
सभी सम्भ्रान्त दुकानों में मिलता है

बंगाल केमिकल
कलकत्ता·बम्बई·कानपुर

विषय-सूची : अक्टूबर १९५८

१ सम्पादकीय विचार २३३
२ गौतमचन्द्रिकामें गो० तुलसीदास—
डा० रामदत्त भारद्वाज २४९
३ सड़क बन रही है (कविता)—
'सलाम' मछलीशहरी २५४
४ यदि कुदऊँ उस्ताद होते—
रामचरण हयारण 'मित्र' २५५
५ मिर्च का अचार—कुमारी उषा माथुर २५६
६ स्वर्गीय श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय—वनफूल २५७
७ मोंगोल देशकी यात्राके संस्मरण (संस्मरण)—
डा० शारदानी; एम० ए०, डी० लिट्० २५९
८ ब्राह्मण कालीन संस्कृति—गोविन्दजी, एम० ए० २६६
९ मणीपुरके सांस्कृतिक नृत्य—माधुरी निगम २६८
१० स्व० पारसनाथ सिंह—कविके रूपमें—
राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह २७३
११ भारतीय चित्रकलाको बंगालको देन—
गौरीशंकर ओझा २७५
१२ भारतको ऋतु-विभाग—अनन्त रामय्या २७८
१३ मुझे अपने बालकोंसे बात करने दीजिये—
नारायणप्रसाद 'भूषण' २७९
१४ तफतीश और रिपोर्ट (कहानी)—
राजेन्द्र कुशवाहा २८२
१५ कलाकार (एकांकी नाटक)—महेशचन्द्र 'सरल' २८६
१६ साथ क्या जाता है—श्रीराम शर्मा २९१
१७ चिट्ठी-पत्री २९२
१८ चयन २९६
१९ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ३०१

"DONT WORRY ABOUT CAREER"

Read a book, 'Guide To Career'
(Hindi and English Combined).
Price 3.75

Write to :—
SAHYOG BOOK DEPT., JWALAPUR
(Hardwar)

दीपावली पर

डाबर की शुभ कामनायें

आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट दवाएं
तथा प्रसाधन वस्तुओं के
निर्माता।

डाबर
(डा० एस० के० बर्मन) प्राइवेट लि०
कलकत्ता



मस्तिष्क शीतल
रखने मे अद्वितीय



बंगाल केमिकल का
गोल्डेन आमला
हेयर आयल

केशवर्द्धनी और केशवर्द्धनी का श्रेष्ठ उपकरण
रूप, गंध और गुण मे अतुलनीय।



आज से ही व्यवहार कीजिये
सभी सम्मान्य दुकानो में मिलता है

बंगाल केमिकल
कलकत्ता·बम्बई·कानपुर

विषय-सूची : नवम्बर १९५८

१	सम्पादकीय विचार	३०५
२	ज्योतिर्धारिणि ! (कविता)— गोपालजी 'स्वर्णकिरण'	३०९
३	'दीपाली' या 'दिवाली'—तपस्या-त्रिवेणी— पं० हरिशंकर शर्मा	३१०
४	दीप-प्रभा (कविता)—परमेश्वर द्विरेफ	३११
५	दीवाली (कविता)— गुलाब रब्बानी 'ताबां'	३१२
६	गृहलक्ष्मीकी पूजा कीजिए— रामानन्द तिवारी शास्त्री	३१३
७	दीपावलीका आध्यात्मिक महत्त्व— गोपालजी 'स्वर्णकिरण'	३१५
८	चाय-चक्रम—डा० लप्पड़ झप्पड़	३१७
९	अमर शहीद अशफ़ाकउल्लाको श्रद्धाञ्जलियाँ— सुशीलकुमार	३२१
१०	अशफ़ाक—रामप्रसाद 'बिस्मिल'	३२७
११	दीपदान दो ! (कविता)— घनश्याम अस्थाना	३२८
१२	पुर्तगाली युद्धपोत—एक प्रकृति प्रेमी	३२९
१३	तमसो मा ज्योतिर्गमय— रामवीर शास्त्री 'अरुणेश'	३३२
१४	मानसिंहका डाकूदल (संस्मरण)—श्रीराम शर्मा	३३५
१५	मरहूमकी यादमें (हास्यरसकी कहानी)—'पनरस'	३४५
१६	खुली पुस्तक—किशन सिंह	३५२
१७	आचार्य श्री तुलसीका दैनन्दिन जीवन-प्रसंग— मुनि श्री सुखलालजी	३५३
१८	पश्चिम बंगालमें सड़क-विकाश-योजनाओंकी प्रगति	३५५
१९	पद्माकरका रूप-वैभव—गोपालजी 'स्वर्णकिरण'	३५७
२०	ऐंग्ल साहित्यके इतिहासकी विविध धारायें— कृष्णानन्द	३६९
२१	गीत—शिवेन्द्रकुमार 'परिवर्तन'	३७३
२२	मलायाका उग्र राष्ट्रिय आन्दोलन— हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी	३७४
२३	भौतिकता और आध्यात्मिकता (कविता)— परमेश्वर द्विरेफ	३८०
२४	रीतिकालीन कवि आचार्य सुखदेव मिश्र— फूलचन्द मिश्र	३८१
२५	कड़क धाँय करि धड़ाम (शिकारकी कहानी)— श्रीराम शर्मा	३८५



क्राफ्ट एम० जी० पेपर

३९ ग्राम और ज़्यादा वज़न के
प्रामाणिक साइज़ों और रीलों में प्राप्य

वर्तमान उत्पादन :

बोर्ड : डूप्लेक्स, सफेद और रंगीन; एयरफ़िनिशड् आर्ट; एनामैल; ब्रिस्टल; प्रेस पान; मिल;
कागज़ : सफेद पोस्टर; डीलुक्स पोस्टर; सल्फाइट, रिन्ड, सफेद और रंगीन; टी यल्लो; एम० जी० टी यल्लो; एम० जी० ब्लू कैन्डल; एम० जी० मनिल्ला; व्हाइट प्रिंटिंग, हार्ड साईज्ड, उत्तम क्वालिटी; क्रीम लेड, उत्तम क्वालिटी; सफेद बैंक और बौंड; आफसेट प्रिंटिंग; एकाउंट बुक।

साहू जैन
इंडस्ट्रीज़

रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

सेलिंग एजेन्ट

मेसर्स अशोका मार्केटिंग लि०

११, क्लाइव रो, कलकत्ता

विषय-सूची : नवम्बर १९५८

२६ संस्कृत कवियोंका हिन्दी-काव्यपर प्रभाव—
श्यामनन्दन शास्त्री ३९३
२७ जीवन-दीप (कविता)—
अजितनारायण सिंह 'तोमर' ४००
२८ पुत्र-जन्मोत्सवके राजस्थानी लोकगीत—
जुगमन्दिर तायल ४०१
२९ शब्द, प्रतीक और भाषा--वीरेन्द्र सिंह ४०३
३० व्रज चौरासी कोसमें परमदराका स्थान—
रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी ४०६
३१ स्वर्गीय प्रा० आर० डी० रानडेजीके संस्मरण—
प० कृ० गोडे ४०९
३२ हिन्दी भाषा और विदेशी ध्वनि—
कैलाशचन्द्र भाटिया ४१४
३३ कामनाके रूपका पूजा-दिवस है (कविता)-'शलभ' ४१९
३४ कालिदासका नारी-वर्णन—आर० श्रीनिवासाचार्य ४२१
३५ दर्पका सर्प : करुणाकी बाँबी (व्यंग-कथा)—
आचार्य सर्वे ४३४
३६ कुलीन मिसरानी |--श्रीराम शर्मा ४३५
३७ चयन ४३६
३८ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ४४१

शुद्ध दूध से बना हुआ

हिमालय घी

शुद्धता, स्वाद एवं पोषण शक्ति में बेजोड़

एक मात्र विक्रेता

हिमालय घी कारपोरेशन

नं० ९१, बड़तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता-७,
फोन नं० ३३-६४६४

आपके आँगन की शोभा के लिए

इण्डिया लिनोलियम (मोमजामा)

और

बिड़ला जूट कारपेट (पाट के गलीचे)

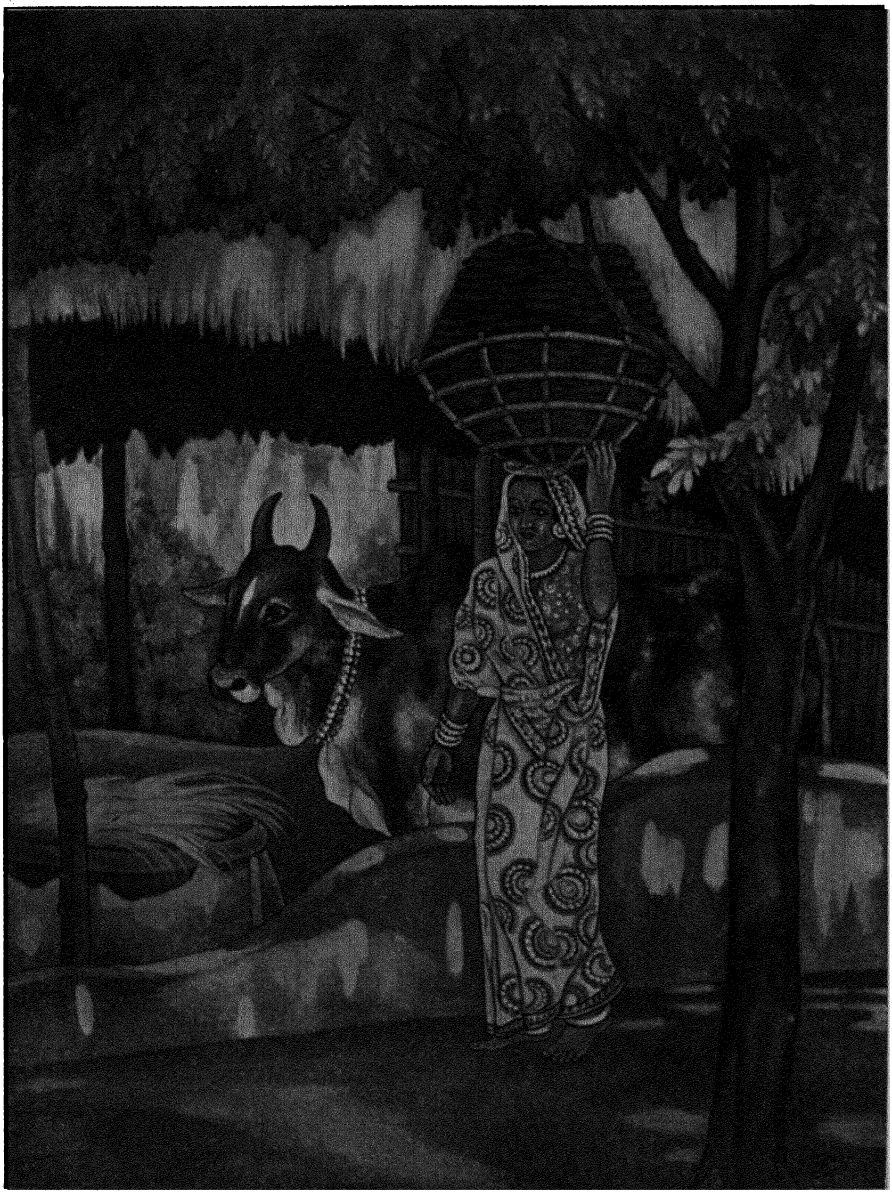
एकमात्र सुन्दर सस्ता बिछावन

रकम-रकम के रंग साइज और क्वालिटी

बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा, नेपाल और बर्माके एकमात्र डिस्ट्रीब्यूटर

इण्डियन मिल्स एजेन्सी

१६०, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता। फोन :—३३-६०२४



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] **गोइँठावाली** [श्री वीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती



भाग ६२, अंक १] कलकत्ता, जुलाई १९५८ [पूर्णांक ३६७

सम्पादकीय विचार

लोक सभाके लिए गुडगाँवका उपचुनाव

केरलकी विधान-सभाका एक उपचुनाव, मौधाका उपचुनाव उत्तर-प्रदेशके लिए और भारतीय लोक-सभाके लिए गुडगाँवका एक उपचुनाव भारतीय कांग्रेसके लिए बड़ा महत्त्व रखते थे। ये उपचुनाव राजनैतिक दलोंके केन्द्रबिन्दु बन गये, क्योंकि इन उपचुनावोंमें कांग्रेसी उच्च सत्ताका प्रश्न निहित था। इन तीनों उपचुनावोंमें कांग्रेसी उम्मीदवारकी हार हुई! बड़े आश्चर्यकी बात है कि इन तीनों स्थानोंके विषयमें कांग्रेस कार्यकर्ताओंको विश्वास था कि कांग्रेसकी जीत अवश्य होगी। हमें यहाँ केरल और मौधाके विषयमें कुछ नहीं लिखना। यहाँपर हमें लोक-सभाके गुडगाँवके उपचुनावके विषयमें कुछ लिखना है। इसी क्षेत्रसे स्व० मौलाना आज़ाद लोक-सभाके लिए चुने गये थे और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी जनसंघी उम्मीदवारको ९६ हजार वोटोंसे हराया था। मौलानाके निधनके बाद भारतीय लोक-सभाके लिए गुड़गाँव-निर्वाचन-क्षेत्रसे उपचुनाव हुआ। कांग्रेस उच्च सत्ताने कांग्रेस टिकट दो श्री मौलिचन्द्र शर्माको और उनके मुकाबले में खड़े थे श्री प्रकाशवीर। गुडगाँव-निर्वाचन-क्षेत्रमें सत्तर हजार मुसलमान वोटर हैं और सत्तर हजार हरिजन वोटर। शेष वोटरोंमें ब्राह्मण, अहीर आदि हैं। विचारणीय बात यह है कि कांग्रेस उम्मीदवार श्री मौलिचन्द्र शर्माकी हार क्यों हुई? वह हार देश और कांग्रेस लिए ठीक है या नहीं? मौलानाके चुनावके उपरान्त ही गुड़गाँव-निर्वाचन-क्षेत्रमें ऐसी कौन-सी क्रान्तिकारी बात हो गई, जिससे कांग्रेस उम्मीदवार को मुँहकी खानी पड़ी? हम अपना व्यक्तिगत मत स्पष्ट कर दें। कांग्रेसके साधारण सदस्य न होते हुए भी हम कांग्रेसकी शक्तिको दृढ़ देखना चाहते हैं, क्योंकि उसकी बुनियादमें एक विचार-धारा है। देशमें अन्य कोई राजनीतिक दल न तो इतना संगठित है और न उसके पीछे सेवाकी भावना है, पर काँग्रेसमें जो स्वार्थी लोग घुस गये हैं और कांग्रेसके उच्च सत्ताधारियोंके दिमागमें मनमानी करनेकी जो प्रवृत्ति आ गई है, उसके हम विरोधी हैं। हमें आशंका है कि कांग्रेसका ढेर ठीक उसी भाँति कांग्रेसियों द्वारा ही होगा, जिस भाँति द्वापरमें यादवोंका नाश स्वयं यादवोंके पारस्परिक विरोध और लोलुपताके कारण हुआ। इस दृष्टिसे और कांग्रेसकी वास्तविक प्रतिष्ठाकी खातिर हम श्री मौलिचन्द्र शर्माकी हार का स्वागत करते हैं। जानते हम श्री प्रकाशवीरको भी हैं। हम न जनसंघी हैं और न किसी और दलके सदस्य, पर हम जानते हैं कि श्री प्रकाशवीर आर्यसमाजकी ओरसे उम्मीदवार न थे। हाँ, आर्यसमाजियों और जनसंघियोंका समर्थन उन्हें प्राप्त था। श्री मौलिचन्द्रजीको कांग्रेस टिकट देकर कांग्रेस उच्च सत्ताने गुड़गाँवका उपचुनाव मूल नक्षत्रमें लड़ा। श्री मौलिचन्द्र शर्मा झज्झर जिला रोहतकके निवासी हैं। व्याख्यानवाचस्पति स्व० पं० दीनदयालु शर्माके वे द्वितीय पुत्र हैं। यदि उनके पुराने इतिहासको देखा जाय, तो उच्च सत्तावालोंको उन्हें कांग्रेस टिकट कभी न देना चाहिए। वे अंग्रेजी शासनके घोर भक्त रहे, धौलपुर-नरेशके यहाँ नौकरी की और चेम्बर आफ प्रिन्सेज़में भी नौकरी की

और टिहरी-गढ़वालमें भी रहे। कहींपर भी नौकरी करना किसी व्यक्तिका दोष नहीं है, पर वे नौकरियाँ श्री मौलिचन्द्र शर्माको अपनी सत्यनिष्ठा और कार्यक्षमताके कारण नहीं मिली थीं। टिहरी-गढ़वालवाले मौलिचन्द्रजीसे इसलिए नाराज हैं कि उन्होंकी होम-मेम्बरीके दिनोंमें श्री देवसुमनका निधन जेलमें हुआ। गुड़गाँव चुनावसे पूर्व श्री व्यासने इस बातका खण्डन किया कि श्री देवसुमनकी मौतमें श्री मौलिचन्द्र शर्माका कोई हाथ न था। हम उस बयानको मान लेते हैं, पर इस विषयमें संस्कृतका एक सुभाषित हमें याद आता है—'अतत्थो तत्थो वा हरति महिमानं जनरवा'—क्या कांग्रेस उच्च सत्ताके पास श्री मौलिचन्द्र शर्मासे अच्छा कोई उम्मीदवार न था? एक ओर तो कांग्रेस जनसम्पर्ककी बात कहती है और दूसरी ओर गुड़गाँव क्षेत्रका हर व्यक्ति जानता है कि श्री मौलिचन्द्र शर्मा अवसरवादी हैं। कहीं नेतागीरी न चली, तो हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें घुस गये, जनसंघी रहे, गांधीजीको जब तबीयत आई बुरा-भला कहा और मौका मिलते ही कांग्रेसमें आ गये। इस विषयमें हमने 'आर्यमित्र' में बहुत पहले पढा था। हम यहाँ यह नहीं कह रहे कि श्री प्रकाशवीर लोक-सभाके कोई आदर्श सदस्य हैं, पर सवाल श्री मौलिचन्द्र शर्मा और श्री प्रकाशवीरका है और तुलनात्मक दृष्टिसे हम श्री प्रकाशवीरको श्री मौलिचन्द्र शर्मासे अच्छा समझते हैं। हम लोक-सभाके गुड़गाँव-निर्वाचन-क्षेत्र के सब कांग्रेसी कार्यकर्ताओंको बधाई देते हैं, जिन्होंने श्री मौलिचन्द्र शर्माके लिए कोई काम नहीं किया। हमने यह अखबारमें पढा था कि चुनावके समय अनेक कांग्रेस कार्यकर्ता अन्यमनस्क थे और उन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवारके लिए भरसक प्रयत्न नहीं किया। पंजाब राज्य कांग्रेसके उच्च कार्यकर्ता कैरोंके झगड़ेमें व्यस्त थे, इसलिए वे भी न आ सके। इसलिए गुड़गाँव-निर्वाचन-क्षेत्रसे श्री मौलिचन्द्र शर्माकी हार कांग्रेस की हार नहीं है, वरन श्री मौलिचन्द्र शर्माके व्यक्तित्व और कांग्रेसी उच्च सत्ताकी सूझ-समझकी हार है। यदि कांग्रेसको जीवित रहना है, तो इन सब बातोंका खयाल टिकट देते समय करना चाहिए। कांग्रेसकी उच्च सत्ताको अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठाको छोड़ निर्वाचन-क्षेत्रकी प्रतिष्ठाको बढ़ानेकी खातिर उचित व्यक्तिको ही टिकट देनी चाहिए। ऐसा न करनेपर कांग्रेसकी हार-पर-हार होगी।

कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंके विषयमें

बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवर कांग्रेस संगठनको सजीव और कारगर बनानेके लिए प्राणपन से प्रयत्नशील हैं। अगर वे और उनके साथी सफल हो सके तो देशका बड़ा कल्याण होगा पर हमें आशंका इस बातकी है कि इस महान कार्यमें वे आसानीसे सफल न होंगे, क्योंकि कांग्रेसमें बिरादरीबाजी और पदलोलुपताका रूप इतना उग्र हो गया है कि उसको खतम करनेके लिए कोई कठोर कदम उठाना श्री नेहरूजी और श्री देवरके लिए सम्भव नहीं है। इस कामको दैवी व्यक्ति ही कर सकते हैं। हाँ, लोगोंकी बुद्धि ही ठीक हो जाय, तो दूसरी बात है। उदाहरणार्थ गृह-मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्तने कहा था कि योग्यताका स्तर कम करके भी वे हरिजनोंको नौकरी देंगे। योग्यताका स्तर कम करके किसीको नौकरी देना देश-द्रोह है। इस प्रकार नौकरी देने और गलत तरीके से कांग्रेस-शक्तिको दृढ करनेकी प्रवृत्तिसे देशमें एक ऐसी बिरादरी पैदा हो रही है, जिसके सामने स्वार्थसिद्धि और अवसरवादके अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। यह देशके लिए अभिशाप है। समय आनेपर यही स्वार्थियों और अवसरवादियोंका दल देशके साथ गद्दारी करेगा। अंग्रेजोंके स्वार्थके कारण मुस्लिम लीगको प्रोत्साहन मिला था और देशके टुकड़े हो गए। जब वर्गहीन समाजकी स्थापना करनी है, शासनको ईमानदारीसे चलाना है, तब फिर योग्यताका स्तर कम करके लोगोंको सरकारी नौकरीमें भरना एक भारी जुर्म है। कांग्रेसके प्रति भारी असन्तोष है। कांग्रेसकी कमजोरीका दूसरा कारण यह है कि कांग्रेसियोंका रचनात्मक कार्यकी ओर ध्यान कम है। देहातमें अनेक कांग्रेस कार्यकर्त्ता ऐसे हैं, जो जीविकाकी खातिर ही काम करते हैं। अनेक ऐसे हैं, जो पुलिसकी दलाली, नियोजन विभागकी दलाली तथा कांग्रेसकी प्रतिष्ठाके नामपर अपना काम करते हैं। व्यक्तिगत जीवनका उनका खर्चा देखकर आश्चर्य होता है। विधान सभाओं और लोक-सभाओंमें जानेके लिए अनेक निकम्मे लोगोंने ऐसे स्थान बना रखे हैं, जिन्हें हटाना मुश्किल है। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके पूरे दोषोंका हम यहाँ उल्लेख नहीं कर हैं। हम रचनात्मक कार्योंमें विश्वास करते हैं और कांग्रेसका सदस्य न होते हुए भी अपने को इन अर्थोंमें कांग्रेसी मानते हैं कि हमारी खातिर हमारी सरकार विदेशोंसे खाद्यान्न नहीं मँगाती। राज्य कांग्रेसके प्रधानों, सचिवों तथा उच्च कांग्रेस-सत्ताके कार्यकर्त्ताओंसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे मंडलों और जिलोंके कांग्रेस

कार्यकर्त्ताओंकी जाँच करें और भ्रष्ट लोगोंको कांग्रेससे अलग कर दें या कम-से-कम कोई पद न दें और पदाधिकारियोंको रचनात्मक काम सुपुर्द करें तो कांग्रेस शक्तिशाली हो सकती है। देशकी हीन भावना और असन्तोष दूर हो सकता है। कांग्रेसकी शुद्धिके लिए अभी समय है—'अबई' तो बेटी बापकी है', पर दस-पांच बरसों तक यही बेहदगी रही, तो सत्ता कांग्रेसके हाथसे निकल जायगी। वह दिन कांग्रेसके लिए बहुत बुरा होगा, जब देशके दुश्मनोंको अपनी मनमानी करनेका मौका मिलेगा।

नहरोंमें पानीकी कमी

इस वर्ष किसानोंकी आम शिकायत है कि सरकार नहरोंसे पानीको उचित रूपमें वितरित नहीं कर रही। इसके अतिरिक्त उनकी नई दिल्लीकी खबर है :—

रावी, सतलुज और व्यास नदियोंमें यदि आगामी २-३ सप्ताहोंमें पानीका स्तर नहीं बढ़ा तो भारतीय पंजाबमें खरीफ फसलकी आशायें अन्धकारमय हो जायँगी।

स्थानीय राजस्व अधिकारियों और इंजीनियरोंकी रिपोर्टसे पता चला है कि खरीफकी फसलोंकी, जिनमें कपास, चावल, ज्वार और बाजरा मुख्य हैं, बुवाई नहरोंमें पानी कम होनेसे काफी विलम्बित हो गई है।

सारे मई मासमें भाखड़ा नहरें या तो बन्द रहीं या उनमें नाममात्रकी सप्लाई रही। रावी, सतलुज और व्यास को अन्य नहरोंमें भी पानी जरूरतसे बहुत कम है। मईमें इन तीन नदियोंमें पानी गत २५ वर्षकी औसत सप्लाईका ७० प्रतिशत या उससे भी कम रहा।

आजकलके मौसममें इन नदियोंमें सारा पानी बर्फके पिघलनेसे आता है। किन्तु अभी तक इनके उद्गमस्थलोंमें तापमान बहुत कम रहा है। अगर अगले कुछ दिनोंमें इन स्थानोंपर गर्मी ज्यादा नहीं पड़ती, तो खरीफकी बुवाईका समय जाता रहेगा।

इस वर्ष नहरी पानीके बारेमें पाकिस्तान भारतकी अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली है, क्योंकि चनाब, सिन्ध और जेहलम से पानीकी सप्लाई अच्छी है। अपनी इन नदियोंके अलावा पाकिस्तानको पूर्वी नदियोंसे भी पानी मिल रहा है। अपनी कठिनाइयोंके बावजूद भारत इन नदियोंसे पाकिस्तानको पानी दे रहा है।

उपर्युक्त समाचारसे पाठकोंको पता चलेगा कि पंजाब ही नहीं, वरन हिमालयसे पोषित सब नदियोंकी नहरोंमें पानी कम है। अपने भागका पानी पाकिस्तानको देकर भी भारत पाकिस्तानको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। जो हिमालय तथा हिमालयकी नदियोंसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि हिमालय से निकलनेवाली नदियोंका जल-स्तर कई फुट ऊँचा हो जाता है। बरफ गलते ही अप्रैलके अन्तसे नदियोंमें पानी बढ़ता है। ग्लेशियर के निकट तो छोटे-छोटे नालोंमें प्रातःकाल पानी बहुत कम होता है। दोपहरको पानी इतना बढ़ जाता है कि पार करना कठिन होता है। गंगोत्रीके निकट भैरों घाटीसे निब्बनके मार्गमें हम प्रातःकाल कई नाले पार गये, पर दोपहरके बाद बरफ गलनेसे उनमें इतना पानी आ गया कि हमें गुफामें ही रात काटनी पड़ी। इस वर्ष बदरीनाथके निकट गत २७ मईको बरफ पड़ी। स्पष्ट है कि मईके अन्त तक हिमालयमें इतनी गरमी नहीं थी, जो बरफको गला सके। फलस्वरूप उत्तर-भारतकी नहरोंमें जलराशि कम रही और सिचाईके लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध न हो सका। नतीजा यह हुआ कि कपास और मक्का इत्यादि खरीफकी फसलें समयपर नहीं बोई जा सकीं। जब नदियोंमें पानी है ही नहीं, तो सरकार किसानोंको कहाँसे दे। प्रकृतिका कोप अभी शान्त नहीं हुआ है।

लू, सूखा और महामारी

हिमालयमें तो एक प्रकारसे गरमीके अभावमें बरफ नहीं गली, पर मैदानी इलाकोंमें गरमीका इतना प्रकोप हुआ, जितना शायद बिहार, बंगाल और उड़ीसामें पिछले पचास वर्षोंमें न हुआ हो। पश्चिमी उत्तर-प्रदेशके इलाके ११६° से ११८° तापमानके अभ्यस्त हैं, पर इतने तापमानमें कमजोर और बूढ़े पशु-पक्षी तथा मनुष्य लूके शिकार हो जाते हैं। बिहार और बंगालमें तो लूका प्रकोप होता ही न था। मुजफ्फरपुर और चम्पारनमें लीची बड़े ठाटसे होती थी। लू और देरसे बारिशमें लीची सम्भव नहीं, पर इस वर्ष गया जिलेका १२०·५° और मुंगेरका १२०° तापमान पहुंचा। पश्चिमी बंगालका भी यही हाल रहा। उड़ीसा और आन्ध्र राज्यमें भी गरमीका दौर रहा। सैकड़ों आदमी लूसे मर गये, कुएँ, तालाब सूख गये। जंगली पशु प्याससे पीड़ित मारे-मारे फिरने लगे। उत्तर-प्रदेशके बाँदा जिलेमें सरकारको पीनेके पानीका भी प्रबन्ध करना पड़ा। बिहारके लिए यह और भी खतरनाक है। मकई नहीं बोई गई, आमोंके फल सूख गये। बाढ़, सूखा और महामारीसे देश भर पीड़ित है। इस वर्ष चेचक और खसरेसे जितने व्यक्ति

पीड़ित हुए, उतने पहले कभी नहीं हुए। सरकारी रिपोर्ट तो शहरोंकी ही है, पर गाँवोंमें पता नहीं, कितने आदमी मरे। देशके लिए यह स्थिति गम्भीर है। भुखमरीसे अधिक भयंकर अणु आयुधका आतंक भी नहीं है। हम इस बातपर गर्व नहीं कर सकते कि अमेरिका हमें दान दे देगा। हमें तो सोचना यह है कि लोगोंका साधारण जीवन कैसे चले। अपने निजी अनुभव और विचारसे हम यह बात स्पष्ट कर दें कि इस कृषि-प्रधान देशमें सिंचाईकी छोटी योजनाओंसे उन्नति अधिक सम्भव है। नहरों और ट्यूब वैलोंकी अपेक्षा पक्के कुएँ बनाने चाहिए। भारतमें खाते छोटे हैं और कुओंकी सिंचाईसे भारतको अधिक लाभ हो सकता है; पर हमारा शासन तो रूस और अमेरिकाकी पद्धति अपनानेमें जुटा है।

नलकूप और वर्तमान कृषि-पद्धति

हमसे कई उच्च सरकारी अफसरोंने कहा कि अनेक स्थानों में नलकूप (ट्यूबवैल) बनाये गये हैं। किसान वहाँके पानी का उपयोग नहीं कर रहे। हमें इससे आश्चर्य नहीं हुआ, वरन इस बातका भान हुआ कि हमारे कृषि-अधिकारी वर्तमान कृषि-व्यवस्थाको समझते ही नहीं। केवल गेहूं या रबीकी किसी अन्य फसलके करनेसे ही नलकूपोंका सद् उपयोग नहीं हो सकता। मान लीजिये, किसी क्षेत्रमें पाँच हजार बीघे जमीन हैं, अगर उस पाँच हजार बीघे जमीनमें रबीकी कोई और फसल या गेहूँ कर दिये जायँ, तो पानीका उपयोग नवम्बरसे मार्च तक ही हो सकेगा। उसके बाद किसान पानीका उपयोग ईख या खरीफकी किसी फसलमें करे, अन्यथा नलकूपोंका पानी काममें न लाया जा सकेगा। चाहिए तो यह कि फसलोंको फेर-बदल किया जाय और साथ-साथ फल, तरकारी और चारेकी योजना भी चले। चारे और साग-सब्जियोंमें ही पानीका सद् उपयोग हो सकता है, पर हमारे यहाँ तो दलबन्दीके बलपर चलता-पुर्जा आदमी तो आसानीसे मन्त्री तक बन सकता है। उसके लिए यह आवश्यक भी नहीं कि वह खेती जानता हो हो। दूसरे हर चीज हममें से अधिकांश अमेरिका, आस्ट्रेलिया और रूसी दृष्टिकोणसे देखते हैं। रूस, अमेरिका, आस्ट्रेलियामें जमीन अधिक और आदमी कम हैं। चावलकी पैदावार प्रति एकड़ चीन और जापानमें हमारे यहाँसे काफी अधिक है। हमारी बागवानीका तरीका भी मुगलोंके तरीकेसे कुछ ही अच्छा है। फूल और बाग लगानेका तरीका भी हमारा भौड़ा है। खुशी है कि प्रधान मंत्री नेहरूजीने जापानसे कुछ विशेषज्ञ बुलाकर एक नई दिशा दिखाई है। उत्तर-प्रदेशके अनेक जिलोंमें नलकूपोंका जाल सा-बिछा है। पाठकोंको हम बता दें कि उत्तर-प्रदेशको राज्य-सरकारको प्रति वर्ष उनमें लाखोंका घाटा उठाना पड़ता है। हम ट्यूबवैलोंके विरोधी नहीं हैं, पर लोग यह न समझें कि नलकूप बन जानेसे ही गरीबीका त्राण हो जायगा। एक तो नलकूपोंका जीवन ही थोड़ा है और अभी यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनसे समस्या हल हो जायगी। नलकूपोंके साथ-साथ पक्के कुएँ भी बनने चाहिए, ताकि छोटे खातेवालोंका काम चल सके।

कृषि संबंधी कानून

उन पाठकोंसे हमारा आग्रह है, जो भारतमें कृषिको यहाँ को आर्थिक व्यवस्थाका मेरुदंड मानते हैं कि वे भारत-सरकार द्वारा भारतके विभिन्न राज्योंमें कृषि संबंधी बनाये गये कानूनपर प्रकाशित की गई पुस्तिका पढ़ें :—

देशमें खेती और पशु-पालनकी उन्नतिमें सबसे बड़ी बाधा है छोटे खेत और उनका जहाँ-तहाँ बिखरा होना। यह बात केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालयके अर्थ तथा अंक विभाग की चकबन्दीके बारेमें हालकी एक पुस्तिकामें कही गई है। इस पुस्तिकामें बताया गया है कि विभिन्न राज्य-सरकारोंने भूमि-सुधारके बारेमें कानून बनाये हैं।

यह पुस्तिका 'भारतमें कृषि सम्बन्धी कानून' नामक पुस्तकमालाके अन्तर्गत प्रकाशित की गई है और इसमें विभिन्न राज्योंमें खेती-बाड़ीके बारेमें जो कानून बने हैं, उनका उल्लेख है।

इस पुस्तकका पहला संस्करण १९५०में प्रकाशित हुआ था, लेकिन इस बीच उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और दिल्लीमें पुराने कानूनोंकी जगह नये और अधिक कारगर कानून बनाये हैं तथा बंबई, पंजाबके कानूनोंमें काफी संशोधन हुआ है। इसके अलावा बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद, राजस्थान और हिमाचल प्रदेशमें नए कानून भी बनाए गए हैं।

संशोधित संस्करणमें इन सब परिवर्तनोंको स्थान दिया गया है। इसके अलावा इसमें यह भी बताया गया है कि पहली पंचवर्षीय योजनाकी अवधिमें चकबन्दीके काममें क्या प्रगति हुई।

अनाजके मूल्यमें वृद्धि—सरकार और व्यापारी

गत ११ जून उत्तर प्रदेश सरकारका प्रेस नोट निम्नांकित है :—

राज्य सरकार द्वारा जारी किये गये एक प्रेस नोटमें कल बताया गया कि राज्यमें खाद्यान्नोंकी कीमतें चढ़नेसे यह भय फैल गया है कि अनाजकी कमी हो गई है।

राज्य सरकारके पास ४६ हजार टन मोटा अनाज तथा लगभग ३० हजार टन गेहूं भण्डारमें सुरक्षित है। इसके अलावा केन्द्रीय सरकारने ३०हजार टन गेहूं उत्तर-प्रदेशको और देना निश्चय किया है। इनके अतिरिक्त लगभग एक लाख टन अनाज इस समय राज्यमें स्थित केन्द्रीय गोदामोंमें उपलब्ध है।

स्थानीय कमीको दूर करनेके लिये जिला फतेहगढमें २१ उचित मूल्यकी दूकानें खोली जा रही हैं। जिला बाँदामें ४० और दूकानें खोली जायँगी। इलाहाबादमें ऐसी २५ दूकानें पहले ही काम कर रही हैं। अधिकारियोंको निर्देश दिया गया है कि जहाँ जैसी जरूरत पड़े, वे और भी दूकानें खोल सकते हैं।

बताया जाता है कि खाद्यान्नोंके मूल्योंमें वृद्धि गत १०-११ दिनसे ही दृष्टिगोचर हुई है, और वह राज्यके पश्चिमी और केन्द्रीय जिलों तक ही सीमित है।

एक सरकारी प्रवक्ताने बताया कि इस समय व्यापारी और किसान दोनों ही अनाज जमा करनेमें लगे हैं। सरकार स्थितिका एक या दो सप्ताह तक अध्ययन करेगी, और यदि यह और बिगड़ती गई, तो आवश्यक कदम उठाये जायेंगे, जिसमें स्टाकपर कब्जा करना भी शामिल है।

उपर्युक्त प्रेस नोट एक प्रकारसे भारतके सब ही राज्यों के लिए लागू है। हमें इस बातका दुःख है कि बढ़ी हुई कीमतोंकी जिम्मेदारी आंशिक रूपसे भारत-सरकारके खाद्य-मन्त्री श्री अजितप्रसाद जैनके उस बयानसे बताई गई है, जिसका उल्लेख उपर्युक्त बयानमें है। हमको टालमटूलकी नीति पसन्द नहीं। यदि अनाजका भाव श्री अजितप्रसाद जैनके उस बयानसे हुआ है, तो राज्योंकी सरकारोंको चाहिए थी कि वे श्री अजितप्रसाद जैनको लिखते कि वे अपनी बातका खंडन करके वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालें कि राज्य सरकारोंके अन्न भंडार अन्नपूर्णाके अक्षय भंडार हैं। हम यह मान भी लें कि उस बयानके कारण आतंकका वातावरण पैदा हो गया और व्यापारियोंने माल रोक लिया और राज्य सरकारें किसीको भूखा नहीं मरने देंगी। पर हम पूछते हैं कि विदेशोंसे खाद्यान्नकी इतनी अधिक राशि मँगानेसे आर्थिक व्यवस्था कैसे चलेगी? कितने खाद्य-मन्त्री ऐसे हैं, जो इस समस्याको समझते हैं? नैनीताल, शिमला, उटकमंड और दार्जिलिंगसे वक्तव्य निकाल देना बहुत आसान है। विभिन्न राज्योंकी सरकारोंको हम क्षमा नहीं कर सकते। मूल समस्याको हल करनेकी अपेक्षा कागजी योजना बनाने, कोरी आलोचना करने से ही खाद्यान्नकी समस्या हल न होगी।

गेहूंकी महँगाई

सरकारी आँकड़ोंसे पता चलता है कि इस वर्ष गेहूंकी पैदावार १३ प्रतिशत कम हुई। हमारे अनुमानसे वह कमी २५ से ३० प्रतिशत तक है। कारण यह है कि गेहूं यदि स्वाति नक्षत्रमें बो दिया जाय, यानी २४ अक्टूबरसे ५-६ नवम्बर तक, तो उसकी फसल अन्य बातोंके ठीक रहनेसे बढ़िया होती है। सबसे अच्छा तो यह है कि २० अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक गेहूं बो देना चाहिए। पर गेहूंकी पिछली बुवाई बाढ़ तथा पिछली बारिशके कारण २०-२५ नवम्बर तक हुई। कहीं-कहीं तो पानी इतना भरा रहा कि बढ़िया खेत बोए ही नहीं जा सके। पंजाब, उत्तर-प्रदेश और बिहारके अधिकांश क्षेत्रोंकी यही हालत थी। देरमें बोनेसे गल्ला और भूसा दोनों ही कम हुए। फिर जनवरीमें बारिश भी नहीं हुई, फलस्वरूप जौ, चना, तिलहन भी बहुत कम पैदा हुआ। इसीलिए हम पैदावारको २५ से ३० प्रतिशत तक बताते हैं। पर यदि गेहूंकी पैदावारको १३ प्रतिशत कम ही मान लिया जाय, तो भी इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि गेहूँकी खपत बहुत बढ़ गई है। शहरी आबादी तेजीसे बढ़ रही है और वहाँ गेहूंकी मांग बहुत है। कुछ वर्ष पूर्व मोटे अन्नका बहुत प्रचलन था। खुशीकी बात है अब साधारण व्यक्ति भी गेहूं खाता है। गेहूंकी मांग बढ़ती ही जायगी और हमें अपने ही देशसे वह पूरी करनी है। चावलके लिए भी यही बात लागू है। इसलिए महँगाईका कारण किसी विशेष व्यक्तिके बयानपर थोप देना, थोपनेवाले मन्त्रियोंके दिमागी खोखलेपनका प्रमाण है। कोरे भाषणोंसे पेटका भरण-पोषण नहीं होता।

एक सुझाव

दलबन्दीके दलदलसे दूर रहनेके कारण और रचनात्मक कार्यमें सरकारका ईमानदारीसे सहयोग देनेके कारण हम महसूस करते हैं कि सरकारकी शक्तियाँ अधिकतर क्षीण और नष्ट हो रही हैं। शक्ति और धन सीमित होते हैं। सरकारने इतने काम उठा रखे हैं कि कोई काम सुचारु रूपसे

नहीं हो पाता। नियोजन (अब जिला-परिषदों) के कार्यालयोंमें जाइए और दफ्तरोंके बोर्डोंपर नजर डालिये। तिलक-छाप लगाये दीवारें ऐसी खड़ी हैं, मानो वैष्णव धर्म मूर्त्तिमान हो गया हो। कहीं समाज-सेवा कार्यालयका बोर्ड लगा है, तो कहीं हरिजन कल्याणका दफ्तर दिखाई पड़ेगा, कहीं इन्स्पेक्टरोंकी पटरियाँ मिलेंगी, तो कहीं कम्यूनिटी प्रोजेक्टका तमाशा चल रहा होगा। अच्छा तो यह रहे कि आगामी ५-६ वर्षों तक आवश्यक कार्योंको लेते हुए कृषि की उन्नतिपर पूरा ध्यान दिया जाय, ताकि गल्लेकी पैदावार बढ़े और बाहरसे गल्ला मोल न लेना पड़े। यदि इस प्रकार गल्ला बाहरसे आता रहा, तो न पंचवर्षीय योजना चलेगी और न योजनासे सम्बन्धित लोगोंका ठाठ-बाट। कमजोर गायके जैसे कलीली (Ticks) लग जाती हैं, उसी भाँति भारत वसुन्धराको इस समय अनेक फज़लके विभाग लग गये हैं, जो उसके आर्थिक खूनको चूस रहे हैं। यदि देशकी वास्तविक उन्नति करनी है, तो खाद्यान्न समस्याके हलको प्राथमिकता देनी है। आशा है अधिकारीगण हमारे स्पष्ट वक्तव्यका बुरा न मानेंगे और हमारे सुझावपर विचार करेंगे। हम स्वयं अपने विचारोंपर आचरण करते हैं।

पाकिस्तानी खतरेकी शव-परीक्षा

भारत और पाकिस्तानके सम्बन्ध इतने बिगड़ते जा रहे हैं कि उनका विश्लेषण करनेसे हमें इसी नतीजेपर आना पड़ता है कि या तो पाकिस्तानकी आन्तरिक स्थितिमें विस्फोट होनेवाला है, जिससे वहाँके वर्त्तमान सत्ताधारी पदच्युत हो जायँगे या फिर वहाँके सत्ताधारी एक ऐसी स्थिति पैदा करें, जिसके कारण भारत और पाकिस्तानमें युद्ध शुरू हो जाय और पाकिस्तानके सत्ताधारी इसी बातपर पाकिस्तानमें एकता रखनेका स्वाँग कर सकें। भारतमे युद्ध मोल लेनेसे ही उनकी आन्तरिक प्रतिष्ठा कायम रह सकती है। हम इस बातको मानते हैं कि भारत और पाकिस्तानमें आधुनिक युद्ध लड़नेकी क्षमता १०-१५ दिनसे अधिककी नहीं है और उस सीधी लड़ाईमें भारत पाकिस्तानको नष्ट कर सकता है। भारत युद्ध नहीं चाहता, वह तो अपनी आर्थिक व्यवस्था ठीक करनेमें लगा है; पर पाकिस्तानकी ओरसे मामूली छेड़खानियाँ नहीं हो रही हैं। कश्मीरको हथियानेके लिए पाकिस्तान जो अनर्गल बातें कह रहा है और छेड़खानीके लिए जो शीतयुद्ध चला रहा है, वह भविष्य की एक कल्पना कराता है, जो उसी प्रकारकी स्थिति बने रहनेसे पैदा हो जायगी। भारत और पाकिस्तानकी सीमाओंपर जो घटनायें घटीं, वह एक प्रमाण हैं। सीमा समझौता होनेपर भी असम और पूर्वी पाकिस्तानकी सीमा पर जो घटना हुई और सैकड़ों भारतीयोंके मकानोंकी जो क्षति हुई, उनसे आतंक फैल गया। यह ठीक है कि भारतके कड़े रुखसे वह गोलाबारी बन्द हुई, पर पाकिस्तानी गुण्डागीरीका बोलबाला रहा और असमकी जनतापर यही प्रभाव पड़ा कि पाकिस्तानी गोलियां चला सकते हैं, व्यक्ति भगा ले जा सकते हैं और उनका कोई कुछ नहीं कर सकता। गुण्डागीरीका जवाब गुण्डागीरी नहीं, पर सौजन्यके मानी कमजोरी भी नहीं होते। भारतीय पंजाब और पाकिस्तानी पंजाबकी सीमापर फजलिकाके निकट पाकिस्तानी सीमा पुलिसने भारतीय पुलिसके सात जवानोंको गोलीसे उड़ा दिया। इस दुर्घटनासे प्रधान मन्त्री विह्वल हो गए और रक्षा-मन्त्री श्री मेननने तो यहाँ तक कहा कि जो राष्ट्र अपनी सीमाकी रक्षा नहीं कर सकता, वह राष्ट्र राष्ट्र कहलानेके योग्य नहीं है। हमें रक्षा-मन्त्रीके मूल शब्द याद नहीं हैं, केवल भाष्य दे रहे हैं। फजलिका गोलीकांडसे व्यथित होकर नेहरूजीने यहाँ तक कहा कि पाकिस्तानमें तो कोई बातचीत करने योग्य व्यक्ति भी नहीं है। पर इससे क्या काम चलेगा। पाकिस्तानने तो गुण्डागीरी फैला ही दी है। भारतने खबर दी कि पाकिस्तान क्षमा-याचनाके साथ क्षतिपूर्त्ति भी करे; पर पाकिस्तान कुछ भी करनेको तैयार नहीं। पाकिस्तानके कुछ भूतपूर्व मन्त्री यहाँ तक स्पष्ट शब्दोंमें कहने हैं कि भारतसे बिना युद्ध किये काम नहीं चलेगा। साथ ही कश्मीरके मामलेमें गुलाम अब्बासने घोषणा की है कि २७ जूनको वे कश्मीरमें दलबल सहित प्रवेश करेंगे। यह नोट हम २१ जूनको लिख रहे हैं और हमारे अनुमानसे यह कोरी बन्दरघुड़की है; पर अगर मियाँ अब्बास और उनके साथी कश्मीरमें प्रवेश करते हैं, तो हम उसे भारतपर आक्रमण ही समझेंगे, ठीक उस प्रकार, जिस प्रकार गोआके सत्याग्रहको हमने भारत द्वारा गोआपर आक्रमण माना था। अन्तर्राष्ट्रिय जगतमें सत्याग्रहका प्रयोग सत्याग्रहके जनक महात्मा गांधीने भी नहीं किया था। विदेशपर आक्रमण तो आक्रमण ही है, चाहे वह निहत्थोंका हो, चाहे सशस्त्रोंका और आक्रमणकारियोंको ऐसी दशामें गोलीसे उड़ा देना चाहिए। यदि भारत-सरकारने इसमें कमजोरी दिखाई, तो लोग आत्म-रक्षाकी भावना खो बैठेंगे, हमारे वीर सैनिक

हतोत्साहित हो जायँगे और पाकिस्तानको चढ़ बनेगी। पाकिस्तानका नैतिक मेरुदण्ड खतम हो चुका है और वह गुण्डागीरीसे ही अपनी आन्तरिक व्यवस्था कायम रखना चाहता है—भारतको शत्रु मानकर और उसपर हमला करके।

लाहौरमें डा० खान साहबकी हत्याका जो मामला चल रहा है, उसमें एक गवाहने कहा है कि अल्लामा मशरिकीने पाकिस्तानके शत्रुओंका जो वर्गीकरण किया है, उसमें डा० खान साहबका नाम पाकिस्तानके आन्तरिक शत्रु नंबर एकके वर्गमें है और भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूका नाम पाकिस्तानके बाह्य शत्रुओंमें नंबर एककी श्रेणीमें है। डा० खान साहबको तो हत्या करा दी गई और पाकिस्तानके मशरिकी षड्यंत्रकारी सब-कुछ करा सकते हैं। अतः सीमाकी घटनाओंको साधारण नहीं मानना चाहिए। भारत-विरोधी तत्त्वोंसे पाकिस्तानकी साँठ-गाँठ है और अपनी गुण्डागीरीको चरम सीमापर पहुंचानेके लिए वे ऐसी परिस्थिति पैदा कर सकते हैं कि सैनिक मुठभेड़ें भारत और पाकिस्तानकी सीमापर हो जायँ और संयुक्त राष्ट्र समाकी ओरसे यहाँ सेनाएँ स्थित कर दी जायँ। इस स्थितिका कई विदेशी राष्ट्र स्वागत करेंगे। यह ठीक है कि स्वयं मुस्लिम राष्ट्रोंमें पाकिस्तानकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, पर पाकिस्तानको अपनी या किसी दूसरेकी प्रतिष्ठाका कुछ भी खयाल नहीं है। इस्लामकी वह दुहाई देता है और अरब राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका वह विरोध करता है। एशिया, अफ्रीका और यूरोपमें उसकी गणना एक सन्दिग्ध राष्ट्रमें है। रूस और अमेरिकाके पारस्परिक विरोधके कारण अमेरिकाने पाकिस्तानकी पीठ ठोंक रखी है, पर अमेरिका भारत-विरोधी नहीं है, इसलिए हमारे देशको पाकिस्तानकी ओरसे काफ़ी जागरूक रहना चाहिए। सीमाकी हरकतोंकी रोक-थाम होनी चाहिए, ताकि पाकिस्तानी गुण्डोंको पता चले कि गुण्डागीरी करनेसे उनकी दुर्गति हो सकती है। स्थिति वह होनी चाहिए, जिससे पाकिस्तानियोंका गुण्डागीरीका साहस खतम हो जाय। ऐसा न होनेपर पाकिस्तानी गुण्डागीरीको प्रोत्साहन मिलेगा और पाकिस्तानकी ओरसे उग्र सैनिक झड़पें हो सकती हैं, जिसका नतीजा अच्छा न होगा। अतः भारत और पाकिस्तानकी सीमाका प्रश्न एक प्राथमिक समस्याके रूपमें रखना चाहिए।

जापानी चुनावोंमें सत्तारूढ़ दलकी जीत

तोकियोका समाचार है कि जापानका सत्तारूढ़ लिबरल डेमोक्रेट दल देशके ७ वें युद्धोत्तर आम चुनावमें कल पुनः भारी बहुमतसे विजयी रहा। यह चुनाव मुख्यतः विदेश-नीतिके आधारपर लड़ा गया, जिसमें वर्तमान पश्चिमपक्षीय सरकार साम्यवादी चीनको मान्यता देनेके वामपक्षके दबावका प्रतिरोध करती रही है।

देशके ५२८००००० मतदाताओंमें से ७६ प्रतिशतसे अधिकने मतदान किया। चुनावमें सत्तारूढ़ दलको २८७ स्थान मिले—पहलेसे ३ कम तथा समाजवादियोंको १६६ स्थान—पहलेसे ८ स्थान अधिक मिले। एक साम्यवादी चुना गया है, जब कि पहले २ साम्यवादी थे। सदनमें कुल ४६७ स्थान हैं। स्वतन्त्रोंको १२ स्थान मिले। विधि-मन्त्री श्री तोशीकी करासवाके सिवा अन्य सभी पूर्व मन्त्रिगण व प्रधान मन्त्री नोबुसुके किशी चुने गये हैं।

जापानके इस चुनावमें एक प्रकारसे विदेश-नीति ही कसौटीपर थी। जापानके प्रधान मन्त्री किशीको अमरीकी पिछलग्गूके नामसे सम्बोधित किया गया, पर किशी अमरीका के पिछलग्गू नहीं हैं और रूस तथा चीनके पिछलग्गू वे हो नहीं सकते। जापानके दैनिक जीवनमें क्यूराइलके आसपासके टापुओंका बड़ा महत्त्व है। वे अब रूसके पास चले गये हैं, इसलिए जापानके सामने अपनी आर्थिक व्यवस्था और उद्योगीकरणका प्रश्न है। श्री किशीने जापानकी मर्यादाको ऊपर ही उठाया है। अतः जापानकी प्रजाने उन्हें फिर प्रधान मन्त्री बनाया है। जापानकी यह प्रवृत्ति इस बातकी द्योतक है कि जापानमें कम्युनिस्ट प्रभाव अभी कारगर नहीं है।

उड़ीसामें पुनः कांग्रेसी शासन

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गत २४ मईको डा० हरेकृष्ण महताबने अपने मन्त्रिमण्डलका वह इस्तीफा वापस ले लिया, जो उन्होंने ९ मईको राज्यपालको दिया था। उड़ीसा-विधान-सभाके विरोधी नेता श्री आर० एन० सिंह देवने जो यह दावा किया था कि विधान-सभामें उन्हें बहुमत प्राप्त है, वह विश्वसनीय नहीं ठहराया गया। हमें आशा है कि डा० हरेकृष्ण महताबके नेतृत्वमें उड़ीसा उन्नति करेगा और कांग्रेसकी पारस्परिक फूटको वे दूर कर सकेंगे, ताकि सुशासनमें उन्हें सहायता मिले और उड़ीसाका वास्तविक हित हो।

एशियाई खेलोंमें भारतकी स्थिति

'विशाल भारत' के इस मासके अंकमें श्री रामकृष्ण शर्मा का 'एशियाई खेलोंका विहंगावलोकन' है। पाठक उसे ध्यानसे

पड़ें। हाकीमें भारत विश्व-विजयी था, पर आज उस खेलमें भी पाकिस्तानने अधिक गोल करके हरा दिया। एशियाई खेलोंमें भारतका सातवाँ स्थान रहा और पाकिस्तानका पाँचवाँ। शक्ति और खेलोंमें भारतका स्थान विश्वमें ऊँचा होना चाहिए। क्रिकेटमें भी पाकिस्तान भारतसे अच्छा है। इंग्लैण्ड, अमेरिका, जापान और रूस खेलोंमें अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। राजनीतिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका चरित्र-निर्माण वहाँ खेलों द्वारा होता है। यदि खेलोंमें कुनबापरस्ती, बिरादरीबाजी आदिका बोलबाला है, जिसकी पुष्टि रामकृष्णजीके लेख और श्री ध्यानचंदजीके बयानसे होती है, तो ऐसे प्रबन्धकोंको खेलोंमें न रखना चाहिए। राष्ट्रिय प्रतिष्ठाके सामने किसी कप्तानगीरी आदिका मोह नहीं होना चाहिए। हमें पता नहीं कि बाबू (श्री दिग्विजय सिंह) ने ऐसा किया। वे शायद अपनी माँकी बीमारीके कारण खेलोंमें शामिल न हो सके। हमारा खयाल है कि खेलोंपर उचित ध्यान दिया जायगा और भविष्यमें ऐसी बेहूदगी न होगी।

हंगरीके भूतपूर्व मन्त्रीको फाँसी

गत १७ जूनका मास्कोका समाचार है कि सोवियत संवाद-समिति 'तास'ने ऐलान किया है कि हंगरीके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री इमरे नागी तथा अन्य कई नेताओंको फाँसी दे दी गई। उन्हें हंगरी सुप्रीम कोर्टके लोक-न्यायालयसे प्राण-दण्डकी सजा मिली थी।

'तास'के अनुसार हंगरीके भूतपूर्व रक्षा-मंत्री पालामाल्टेमर को, जो हंगेरियन विद्रोहके एक नेता थे, फाँसी दे दी गई है। उनके अलावा कम्युनिस्ट पार्टीके दैनिक पत्र 'सेवादनेम' के सम्पादक निक्लोज साइन्सको भी प्राण-दण्ड दिया गया है। वे पहले उस पत्रके पेरिस-स्थित संवाददाता थे और विद्रोहके समय बारसाके राजनैतिक सलाहकार थे। 'तास' के अनुसार एक अन्य पत्रकार जेसफज्लिडाको भी फाँसी दी गई है। कई अन्य व्यक्तियोंको लम्बी कैदकी सजाएँ भी दी गईं।

हंगरीके न्याय-मंत्रालयकी विज्ञप्तिको बिना किसी टीका-टिप्पणीके पूरे-का-पूरा रूसी कम्युनिस्ट पत्रोंने प्रकाशित किया है। विज्ञप्तिमें यह नहीं बताया गया है कि नागी और उसके साथियोंपर कब तो मुकदमा चला, कब सजा हुई और कब फाँसी!

श्री इमरे नागीकी आयु ६३ वर्षकी थी। सन् ५३ में श्री नागी श्री माट्यासरा कोसीके स्थानपर हंगरीके प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए थे। इसी वर्ष दक्षिणपन्थी करार देकर उन्हें सभी पदोंसे पदच्युत कर दिया गया था। अक्टूबर ५६ के प्रदर्शनोंने नागीको पुनः सत्तारूढ़ बना दिया। २५ अक्टूबर को उन्होंने एक मिली-जुली सरकार कायम की, जिसका दस दिन बाद ही सोवियत सैनिकोंके हस्तक्षेपके बाद पतन हो गया। तब श्री नागीने बुडापेस्ट-स्थित युगोस्लाव दूतावासमें शरण ली। २३ नवम्बरको वे रहस्यमय परिस्थितियोंमें अपने घर वापस लौट आये, जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

बोल्टन विल्डी, जिन्हें श्री नागीके साथ फाँसी दी गई है, भूतपूर्व अध्यक्ष और छोटे किसानोंकी पार्टीके भूतपूर्व नेता थे। उन्होंने सन् ५६ में श्री नागीका समर्थन करनेके लिए बहुत दिनोंके बाद अपना राजनैतिक मौन भंग किया था।

नागीको मिली-जुली सरकारमें उन्होंने उस भूतपूर्व पीजेन्ट पार्टीका प्रतिनिधित्व किया था, जिसने गत स्वतन्त्र चुनावमें आधे मत प्राप्त किये थे।

मृत्यु-दण्ड प्राप्त एक अन्य व्यक्ति फ्रेङ्क जेनोसी पोपुलर फ्रन्टके भूतपूर्व जनरल सेक्रेटरी और श्री नागीके दामाद थे।

एक अन्य दण्डित व्यक्ति सेण्डोरक यावन्ती बुडापेस्टके पुलिसके अध्यक्ष थे और उनपर यह अभियोग लगाया गया कि सोवियत सेनाके साथ बाग़ियोंके विरुद्ध संघर्ष करनेसे उन्होंने अपनी पुलिसको रोका।

श्री डलेसने हंगरीके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री नागीकी फाँसीपर बड़ा दुःख प्रकट किया है। जिस समय उनको प्राण-दण्डकी सूचना मिली, उस समय वे एक थियेटरमें रूसी नाटक देख रहे थे।

मानवीय अधिकारोंकी अन्तर्राष्ट्रिय संस्थाने आज एक विज्ञप्ति जारी करके हंगरीके प्रधान मन्त्री श्री इमरे नागी तथा अन्य सर्वश्री माल्टेर तथा जोसेफ विलादीको फाँसी दिये जानेपर शोक प्रकट किया है और इस प्रकारके गुप्त मुकदमा-पद्धतिकी निन्दा की है।

श्री नागीको फाँसीपर लटकाया जाना कम्युनिस्ट शासन-प्रणालीका कोई नया उदाहरण नहीं है। सोवियत शासनके कर्णधार यह भले ही समझें कि श्री नागीको फाँसी देकर उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। हमारे मतसे सह-अस्तित्वके युगमें यह कम्युनिस्ट शासन-प्रणालीके कफनके लिए एक कील होगी। इसकी प्रतिक्रिया युगोस्लेवियामें तो बड़ी तेज है ही। हमारा अनुमान है, शासनाध्यक्ष सम्मेलन होनेमें नागी की यह हत्या ही है। हम इसे हत्या ही कहेंगे।

विदेशी मुद्राकी कमी

गत ४ जूनको अपराह्नमें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलकी बैठकमें विदेशी मुद्राकी कमीसे उत्पन्न संकटको टालनेके उपायोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। बताया जाता है, चाय, कपड़ा, अबरक, मैंगनीज़, तिलहन आदि भारतीय चीज़ोंके निर्यातमें काफ़ी मन्दी आ गई है। इस स्थितिके कारण भारत-सरकार काफी चिन्तित है।

विदेशी मुद्राकी कमीके कारण योजना-लक्ष्यकी पूर्तिमें सन्देह व्यक्त किया जा रहा है। सम्बन्धित सूत्रोंका कहना है कि इस वर्षके अन्त तक चालीस करोड़ रुपयेसे लेकर साठ करोड़ रुपयोंकी कमीका अनुमान लगाया जा रहा है।

विदेशी मुद्राके संकटको टालनेके लिए भारत-सरकार सचेष्ट है। आज भी बैठकमें इस बातपर विचार-विमर्श हुआ कि विदेशी सहायताके अलावा निर्यातपर अधिक जोर दिया जाय और आयात कम किया जाय।

सरकारी सूत्रोंका अनुमान है कि पूर्वी यूरोपीय देशोंके साथ भारतीय निर्यात बढ़ेंगे और कुछ सीमा तक विदेशी मुद्राका लाभ हो सकेगा। यूरोपके इन पूर्वी देशोंके साथ वनस्पति तेल, सीमेंट तथा चाय आदिकी चीजोंका निर्यात बढ़ाये जानेकी सम्भावना है। चीनीके निर्यातपर भी आज विचार किया गया।

विश्वसनीय सूत्रसे पता चला है कि विदेशी मुद्राके लिए आर्थिक मामलोंके सचिव जी० वी० के० नेहरू लन्दनमें राष्ट्रियमंडलीय आर्थिक सम्मेलनमें भाग लेनेके बाद अब निश्चित रूपसे अमेरिका जायँगे। केन्द्रीय वित्तमन्त्री श्री मुरारजी देसाईके भी अगस्तके अन्तिम सप्ताहमें या सितम्बर के पहले हफ्तेमें अमेरिका जानेकी सम्भावना है। श्री देसाई १५ सितम्बरसे मांट्रियल कनाडामें होनेवाले राष्ट्रमंडल व्यापार सम्मेलनमें भाग लेंगे। पाठक यह जानते हैं कि भारतको यदि जर्मनी और अमेरिकासे ऋण न मिला होता, तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना ठप हो गई होती। खाद्यान्नकी कमीके कारण हमारी विदेशी मुद्राकी बड़ी खराब हालत है। हम बार-बार लिखते हैं कि खाद्यान्नमें स्वावलम्बन प्राप्त करनेके लिए हमें प्राणपणसे कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए प्रत्येक राज्यके मन्त्रिमण्डलको भी कसना पड़ेगा। कांग्रेस दलबन्दीमें जो लोगोंका समय जाता है, उसे भी कसना पड़ेगा। मनुष्यकी शक्ति दलबन्दी और स्थिति मजबूत करनेमें ही लगी रहे, तो वास्तविक कार्य न होगा। संचित पूँजी और निरन्तर कर्जपर स्थायी वास्तविक शासन आधारित नहीं हो सकता। दूसरा कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार और राज्योंकी सरकारोंमें अन्धाधुन्ध रुपया ऐसे कामोंमें फुँक रहा है, जिसको बचाकर खाद्यान्नको बढ़ानेमें लगाया जा सकता है। आगामी दस वर्षों तक समाज-कल्याण और समाज-सेवा-मन्त्रालयको फ़िजूलका प्रकाशन इत्यादि काम बन्द कर देने चाहिए। कोरी लफ्फाजी और योजनाओंके कंकाल ही दिखाई पड़ते हैं। भाषणोंके मारे तो देश परेशान है। इस मामलेमें सबसे अधिक दोषी हैं हमारे प्रधान मन्त्री। ऊपरसे नीचे तक वास्तविक कार्यकी अपेक्षा भाषण अधिक होते हैं और काम कम होता है। एम० एल० ए० और एम० पी० चाटुकारी या अज्ञानवश नेताओंके भाषणकी नक़ल करते हैं। देशकी आर्थिक स्थिति बिगड़ती जाती है और ऋणका भार गुरुतर होता जाता है। जो पढ़ता है, वह चाकरीके लिए भागता फिरता है। अच्छा हो, देशके नेता और शेष हम सब स्थितिको समझकर काम करें और अपना निर्यात बढ़ायें।

कहवेका उत्पादन

एक सरकारी समाचार है कि इस समय भारतमें २,५४,००० एकड़में कहवेकी खेती हो रही है। देशमें कहवे की पैदावार लगातार बढ़ती जा रही है। १९५६-५७ में देशमें ३३,७५५ टन कहवा पैदा हुआ, जो १९५०-५१ की पैदावारसे ६५ प्रतिशत अधिक था। १९५७-५८ में कहवे की पैदावार ३७,००० टन तक पहुंच जानेकी आशा है। १९५६-५७ की फसलमें से १५,००० टन कहवेका निर्यात हुआ। इसी साल ७२५ टन कहवा रूसको और ८०० टन पूर्वी जर्मनीको राज्य-व्यापार-निगमके हाथों बेचा गया।

सेवा और सत्ताकी मनोवृत्ति

पाठक देखते हैं कि देशमें पदलोलुपताकी खातिर जन-सेवाके नामपर ऊधम-सा मचा हुआ है। इस विषयमें आचार्य सन्त विनोबाने अपने विचार स्पष्ट किये हैं। 'जीवन-साहित्य' में उसका विवरण है, जिसे हम 'कर्मवीर'से उद्धृत कर रहे हैं—

हमारे देशमें राजनैतिक दलोंमें झगड़े सतत चलते रहते हैं, क्योंकि सभी समझते हैं कि सेवा सत्ता द्वारा ही हो सकती है। इसलिए सत्तारूढ़ दल और गैर-सत्तारूढ़ दलमें भी झगड़े होते हैं। परिणाम-स्वरूप सार्वजनिक कार्य ठीकसे हो ही नहीं पाता। विरोधी पक्ष कहता है कि आजकी सरकारसे

काम ठीक नहीं होता। लेकिन दूसरे दलके शासनारूढ़ होनेपर उससे ठीक ही काम होगा, इसका क्या भरोसा है? इसपर वे कहते हैं कि पाँच सालके लिए हमें सत्ता सौंपकर तो देखिये। बानी पाँच साल तक फिर जनताके भाग्यसे खेल खेला जाय।

अतः इसके लिए तो राजनीतिकी पद्धति ही बदलनी होगी एवं लोक-शक्तिसे ही काम करना होगा। क्रान्ति-कार्य लोक-शक्ति ही कर सकती है, सरकार नहीं। क्रान्तिके बाद जो सरकार आती है, वह तब क्रान्तिके अनुसार काम कर पाती है। चीनमें सरकारने क्रान्ति नहीं की, क्रान्तिके बाद सरकार आई। अतः यदि सत्ता द्वारा क्रान्तिकी आशा करेंगे, तो क्रान्ति-शक्ति ही कुण्ठित हो जायगी। इसीलिए कोई भी काम स्वतन्त्र होना चाहिए। सरकार उस कार्यकी अनुयायी होगी। वह नेतृत्व नहीं ले सकती। अतः यदि समाज-परिवर्तन करना हो, तो स्वतन्त्र जन-शक्ति निर्माण करनी चाहिए और वही कार्य ग्रामदान द्वारा हो रहा है।

हिन्दुस्तानमें वेदांतकी कमी नहीं। लेकिन जो वेदांत की पोथियाँ पढ़ते हैं, वे ही बाजारमें पहुँचनेपर चोर-बाजारी करते हैं! चर्चा करनी हो, तो वे विशिष्ट अद्वैतकी लम्बी-चौड़ी चर्चा करेंगे। लेकिन जीवनमें घूसखोरी, चोर-बाजारी वगैरह भी चलती रहेगी! याने वेदान्तका परिणाम उसके जीवनको नहीं छू पाता, तत्त्वज्ञानका जीवनसे कतई सम्बन्ध नहीं रहता। फलतः तत्त्वज्ञान निर्वीर्य हो जाता है। एक दाँतवाला हाथी आ रहा था। उसे देख अद्वैतवादी भाग निकले। पूछा गया कि हाथीको देखकर अद्वैतवादी क्यों भागे, जबकि उनकी दृष्टिसे हाथी मिथ्या है, तो वे उत्तर देते हैं, "हाथी मिथ्या, तो हमारा भागना भी मिथ्या!" खैरियत इतनी ही है कि इसके बाद वह तीसरा वाक्य नहीं कह गया कि "हमारा अद्वैत भी मिथ्या!" ऐसा बेवकूफीका तत्त्वज्ञान व्यर्थ ही ठहरता है।

सारांश यह कि सारी बातें सरकारको सौंपना ठीक नहीं, क्योंकि जब देशपर बड़ा संकट आयेगा, तो अनाजके भाव बढ़ेंगे, भुखमरी फैलेगी और उस समय सरकारी योजना देशको बचा नहीं सकेगी। इसीलिए पण्डित नेहरूने भी एक जगहपर कहा है, "बिस्तार-योजना, कम्युनिटी प्रोजेक्ट, राज्य-सरकार या केन्द्र-सरकार, ये कोई भी गाँवको बचा नहीं सकते। गाँवको खुद अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिये।" कल अगर महायुद्ध छिड़ जाय, तो उसका परिणाम हम लोगोंके सारे व्यापार पर पड़ेगा। स्वेज नहरका उदाहरण हमारे सामने ही है। अतः वैसी स्थितिमें पंच-वर्षीय योजना ताशके महलकी तरह ढह जायगी और तब राजनैतिक दल एक होंगे। लेकिन क्या फिर देश बच पायेगा? पहले बंगालमें ३० लाख व्यक्ति भुखमरीसे मर गये। उन दिनों हम लोग जेलमें तीन बार खाते रहे और बुराईका घड़ा अंग्रेजोंके सिरपर फोड़ते रहे। लेकिन अब वह बुराई हमपर ही मढ़ी जायगी। स्वराज्यमें लोग भूखों मरेंगे, तो हमारे मुँहमें कौर नहीं जा सकता। इसलिये हमें अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिये।

लोग मुझसे कहते हैं कि आप-जैसे व्यक्ति डर क्यों दिखलाते हैं? लेकिन जो गीता निर्भयता सिखलाती है, वही यह भी कहती है कि जिस बातके लिये डरना योग्य हो, उससे डरना ही चाहिये। नहीं तो यह न पहचाननेवाली बुद्धि तामसिक ही होगी। मेरा भय काल्पनिक नहीं है। बिहारमें जब जल-प्रलय हुआ था, उन दिनों मेरी वहाँ यात्रा चल रही थी, कमर भर पानीमें उन दिनों चलना पड़ता था। लेकिन वहाँके सीतामढ़ी नामक एक शहरमें मैंने देखा कि सिनेमा चल रहा है। उस शहरसे ४०-५० मील पर बाढ़से हाहाकार मचा है, फिर भी उस शहरका भोग-विलास समाप्त नहीं हुआ है। मुझे बुद्ध भगवानका एक वाक्य याद आ गया, "चारों ओर आग लगनेपर तू कैसे आनन्द मनाता है? कैसे भोग भोगता है?" लेकिन जनता इतनी जड़ हो गई थी कि उसे किसी बातका भान ही नहीं था। वह सोचती थी कि बाढ़-ग्रस्त लोगोंकी मदद सरकार करेगी याने उसमें कर्त्तव्य-भावना भी नहीं रही! क्या यह स्वतन्त्रताका लक्षण है?

पहले हर जगह काफी चेतना थी और लोक-सेवक राष्ट्रिय शिक्षण और ग्रामोद्योग आदि काम करते थे। उस समय सरकारसे अलग स्वयं काम करनेकी वृत्ति चालू थी, किन्तु आज सरकार जो करेगी, उसे हम न करेंगे, ऐसी ही भावना है, इसलिये आप इस जल-प्रलयसे मुल्कको बचाइये। इसमें ग्राम-दानसे मदद मिलेगी और उसीसे स्वतन्त्र होनेका सन्तोष भी प्राप्त होगा।

पंजाब कांग्रेस और कैरों विरोधी गुट

विधान-सभा, पंजाब कांग्रेस और पंजाब मन्त्रिमण्डलकी कठिनाइयाँ और पारस्परिक फूटके कारण पंजाबके शासनमें काफी ढिलाई आ गई है। वहाँके मुख्य मन्त्रीका समय

राज्यकी भलाईकी अपेक्षा इस बातमें अधिक जाता है कि उनका पद प्रतिष्ठाके साथ कैसे सुरक्षित रह सके। स्वार्थपरता और पद-लोलुपताके कारण उनके ही कांग्रेस-विरोधी साथी, सरदार प्रतापसिंह कैरोंको हटाकर मुख्य मन्त्री पदपर आना चाहते हैं। इस प्रक्रियामें सरदार प्रतापसिंहपर घृणित आरोप लगाये गये। कांग्रेस उच्च सत्ताने उनकी तहक़ीकात की और जाँचमें वे ग़लत पाये गये और उनसे कहा गया कि वे विधान-सभाई कांग्रेस सदस्योंका विश्वास प्राप्त करें। इस अवसरका उनके विरोधियोंने लाभ उठाया और जो धमाचौकड़ी मची, उससे ऐसा लगा कि सरदार कैरों साहबको उखाड़ फेंका जायगा। पर कनवेसिंग और जोड़-तोड़से गत ५ जून को सरदार कैरोंको विश्वास-मत प्राप्त हो गया। यह भी पता चला है कि सरदार कैरों और उनके साथी इस्तीफा देनेको तैयार थे। पर श्री जवाहरलाल नेहरूके आग्रहसे उन्होंने इस्तीफा नहीं दिया और पंजाबका वह संकट दूर हो गया। खबर है कि मुख्य मन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरोंने द्वेषहीनता की नीतिको अपनाकर काम करनेका वचन दिया है। उनके रूठे साथी फिर उनके साथ हो गये हैं। हमारे खयालसे देश-हितैषियोंको इस झगड़ेका अन्त पसन्द आयेगा।

विदेशी मुद्राकी अधिक गंभीर स्थिति

विदेशी मुद्राके विषयमें हमने ऊपर एक नोट लिखा है, पर उस विषयमें भारत-सरकारके मंत्री श्री गोपाल रेड्डीने गत ६ जूनको पूनामें एक भाषण दिया, जिससे स्थितिको और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है। श्री रेड्डीने अपने भाषामें कहा :—

"भारतको विदेशी मुद्राकी जो कमाई हो रही है, उसमें से वह पिछले कुछ महीनोंमें प्रति सप्ताह ७ करोड़ रु०की विदेशी मुद्रा निकाल रहा है। इसका परिणाम यह है कि वर्षके प्रारम्भमें इस सम्बन्धमें जो स्थिति थी, उसकी अपेक्षा आज की स्थिति अधिक गम्भीर है।

आगामी वर्षोंमें भारत अधिक विदेशी सहायता लेकर अपनी विदेशी मुद्राकी स्थिति सुधार सकेगा। इस बीच जनताको 'और अधिक कुर्बानी'के लिये तैयार हो जाना चाहिए। देशके हर नागरिकका कर्त्तव्य है कि वह पंचवर्षीय योजनाको सफल बनानेमें अपना योग दे। प्रथम पंचवर्षीय योजनामें लघु उद्योगोंके लिए सिर्फ ५० करोड़ रु० रखा गया था, किन्तु दूसरी पंचवर्षीय योजनामें २ अरब रु० रखा गया है, जिसमें से ९० लाख रु० प्रथम दो वर्षोंमें व्यय भी किया जा चुका है। द्वितीय योजना कालके अवशिष्ट तीन वर्षोंमें भी लघु उद्योगोंपर खर्च की जानेवाली राशिमें कोई बड़ी कटौती की जानेकी सम्भावना नहीं। उद्योगोंको धनकी सहायता देने के लिए एक पुनर्वित्त निगमकी स्थापना की जा रही है।"

भारतको अमरीकी सहायता

पाठक जानते हैं कि भारतको विदेशोंसे—विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिकासे दान और ऋणमें इतनी सहायता मिली है कि उसके अभावमें यहाँके इस्पात, बिजली, बाँध आदि द्वितीय योजना सम्बन्धी सब काम ठप हो जाते। हमने प्रारम्भसे ही लिखा है कि भारतको अमरीकासे ही वास्तविक सहायता मिलेगी। सहायता न मिलनेका एक कारण यह भी था कि अमरीकाको भ्रम था कि भारत रूसके गुटमें है। जाँच-पड़तालसे अमरीकाको पता चल गया है कि भारत किसी गुटके साथ नहीं है, इसलिए जब गत ७ जूनको भारतको और अधिक दीर्घकालीन आर्थिक सहायता देनेका प्रश्न अमरीकी सीनेटमें आया, तब अमरीकाके भारतस्थित भूतपूर्व दूत श्री कूपरने स्पष्ट शब्दोंमें कहा, "नेहरू कम्युनिस्ट नहीं है।" इस आशयका एक प्रस्ताव सीनेटमें पास कर लिया गया कि भारतको और अधिक दीर्घकालीन ऋण दिया जाय। भारतको सहायता देनेके प्रस्तावके पक्षमें ४७ और विपक्षमें ३५ मत आए। प्रस्ताव पर बहसके समय भारतमें भूतपूर्व अमरीकी राजदूत एवं केंटकीसे निर्वाचित रिपब्लिकन सदस्य श्री कूपरने सीनेटर जार्ज मेलोनकी इस आलोचनाका उत्तर दिया कि "नेहरू कम्युनिस्ट है, लेकिन वह स्वयं यह जानते तक नहीं।"

जोन शर्मन कूपरने कहा, "यदि मैं कोई बात जानता हूं तो सिर्फ यह जानता हूं कि नेहरू कम्युनिस्ट नहीं है। मैं इस धारणा पर अपने निर्णय और विश्वासको बाजीपर लगानेका खतरा लेनेको तैयार हूं।"

सीनेटने वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, जिसमें राष्ट्रपति आइसनहोवरने यह अधिकार माँगा था कि वह अमरीकी विदेश सहायता कोषमें से कम्युनिस्ट देशोंको सहायता दे सकें, जिससे उन देशोंको अपने ऊपरसे मास्कोका नियंत्रण ढीला करनेमें मदद मिल सके। प्रस्तावके पक्षमें ४२ और विपक्षमें ४३ मत आए।

सीनेटके रिपब्लिकन सदस्योंने कहा कि कम्युनिस्ट देशोंको सहायता देनेसे उनकी सरकारोंका नियन्त्रण बढ़ेगा

और उसमें अन्ततः करोड़ों डालर खर्च होंगे। सीनेटने इस विधेयकमें यह समाविष्ट करना भी स्वीकार नहीं किया कि पोलैण्ड और यूगोस्लाविया को भविष्यमें आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया जाए। इस प्रस्ताव पर निश्चयके बाद विदेशी सहायता प्रस्तावपर विचारका मार्ग साफ हो गया है।

सीनेटकी इसी बैठकमें कुल सहायतामें १०·४ करोड़ डालरकी कटौती करनेका एक प्रयत्न किया गया, लेकिन तत्संबंधी प्रस्ताव ५३ के विरुद्ध ३१ मतोंसे गिर गया।

गोदी कर्मचारियोंकी हड़ताल

इन पंक्तियोंके लिखते समय तक (२३-६-५८) कलकत्ता, विशाखापट्टन और बम्बईके गोदी हड़तालियोंकी हड़ताल बाकी है। कोचीन बन्दरगाहके हड़तालियोंने हड़ताल खतम कर दी और कामपर आ गए। फलस्वरूप कोचीन बन्दरका काम स्वतन्त्र रूपसे चलने लगा। विशाखापट्टमकी हड़ताल आंशिक रूपसे थी। हमें दुःख है कि बन्दरगाहोंके कर्मचारियोंको हड़ताल करनेपर बाध्य होना पड़ा और हम सरकारको भी बधाई देते हैं कि उसने इस असामयिक हड़ताल का मुकाबला करनेके लिए राष्ट्रिय वालंटियर्स और सेनासे काम लिया। हमें हड़तालके औचित्य और अनौचित्य पर यहाँ चर्चा नहीं करनी। हमें तो इतना ही कहना है कि देशमें एक प्रकारसे आतंककी स्थिति है। बन्दरगाहोंमें गल्लेके जहाज लदे खड़े हैं और अगर वह नहीं उतारा जाता, तो देशकी खाद्यान्न स्थिति और बिगड़ जायगी। यदि हड़तालो खाद्यान्न और योजना सम्बन्धी मशीनोंको सहर्ष उतारते, ताकि राष्ट्रकी उन्नतिमें बाधा न पड़े, तो सारा देश उनसे सहानुभूति रखता; पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। खाद्यान से त्रस्त प्रदेश हड़तालियोंके प्रति सहानुभूति नहीं रख सकते। उन्होंने तो स्थिति बिगाड़नेमें सहायता दी। हमारी सरकारने समझदारीसे काम लिया और कोचीन बन्दरके हड़ताली तथा केरल सरकार बधाईके पात्र हैं, जिन्होंने हड़तालको फौरन खतम कर दिया। सरकारके कड़े रुखके हम कायल हैं कि यदि हड़ताली कामपर नहीं आए, तो रिक्त स्थान नई युक्तियोंसे भर दिए जायेंगे। गोदी हड़तालियों के नेताओंने प्रधान मन्त्रीको तार दिया कि वे बीचमें पड़कर हड़ताल समाप्त करा दें। हमें इस बातसे ब्रजकी एक कहावत याद आ जाती है, जिसे खड़ी बोलीमें यों कह सकते हैं, 'कोई स्त्री रुआसी बैठी थी कि उसका भाई आ गया', तब वह खूब रोई। हमारे खयालसे गोदी हड़तालियोंमें हड़ताल चलानेकी क्षमता न थी। अतः वे पं० जवाहरलाल नेहरूके हस्तक्षेपकी बात कह उठे। वर्त्तमान युगमें नाखो-नखरोंसे काम होता रहे, तो वह भी बुरा नहीं है। हमारा अनुमान है, बन्दर गोदियोंके कर्मचारियोंकी हड़ताल शीघ्र खतम हो जायगी और काम चलने लगेगा। प्रधान मन्त्रीने हड़ताल समाप्ति की दुबारा अपील की है।

पूर्वी पाकिस्तानकी स्थिति

पाकिस्तानमें एक प्रकारसे अराजकताकी स्थिति है। ऐसा मालूम होता है, वहाँके शासन-सूत्रके लिए कोई धनी-धोरी नहीं है। लोकतन्त्रीय शासनका निर्जीव ढाँचा-सा वहाँ पड़ा है। पदलोलुपताकी इतनी होड़ लगी है कि कोई यह नहीं कह सकता कि कौन कब तक किस पदपर रहे। पूर्व पाकिस्तानमें कुछ दिन पूर्व श्री अताउर्रहमानको गवर्नरने हटा दिया और अबू हसन सरकारको मुख्य मन्त्री बना दिया; पर कुछ ही घण्टों बाद करांचीके आदेशसे फिर अताउर्रहमान को मुख्य मन्त्री बनाया गया और गवर्नर साहबको हटा दिया गया। अभी ६-७ दिन पूर्व मुख्य मन्त्री अताउर्रहमान के विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव पास किया गया और अबू हसन सरकारको मुख्य मन्त्री बनाया गया। पर अबू हसन सरकारका तीन दिनका मन्त्रिमंडल भी गत २३ जूनको समाप्त हो गया। अविश्वासका प्रस्ताव संयुक्त अवामी दलकी ओर से रखा गया। भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री अताउर्रहमान ने कहा है कि विधान-सभाका बहुमत उनके साथ है। अब प्रश्न यह है कि या तो अताउर्रहमानको मुख्य मन्त्री बनाकर मन्त्रिमंडल कायम करनेका मौका दिया जायगा या गवर्नरी शासन लागू होगा। पूर्वी पाकिस्तानमें मन्त्रिमंडल बच्चोंका-सा खेल है और जब वहाँ शासनमें स्थायित्व ही नहीं है, तो वहाँ गवर्नरी शासन लागू होगा।

पश्चिमी पाकिस्तान

पश्चिमी पाकिस्तानकी स्थिति भी कोई अच्छी नहीं है। भारतसे तनातनी बढ़ रही है। फजलिका-कांडमें, जिसमें सात भारतीय मारे गए थे, अभी कुछ नहीं हुआ। पाकिस्तानकी ओरसे खामखा यह साबित करनेकी कोशिश की जा रही है कि पहली गोली भारतकी ओरसे चली; भारतसे वह माफी नहीं माँग रहा है। ब्यास और सतलज नदियोंके पानीका झगड़ा भी तय नहीं हुआ है। इसके विषय में लाहौरमें मीटिंग हो रही है, पर सबसे चिन्ताकी बात यह

है कि मियाँ अब्बास कश्मीरी सीमामें जबरदस्ती प्रवेश करना चाहते हैं। अब तक तो पश्चिमी पाकिस्तान और पाकिस्तान की सरकार इस विषयमें चुप थी, पर अब मियाँ नून टें-टें करने लगे कि मियाँ अब्बासको कश्मीर-प्रवेश नहीं करना चाहिए। पर हमारे खयालसे पाकिस्तानके कर्त्ता-धर्त्ताओंका इतना नैतिक पतन हो गया है, जिसका ठिकाना नहीं। कौन जाने, मियाँ नूनने ही मियाँ अब्बासको भड़काया हो। हमें आशा है, भारत-सरकार मियाँ अब्बास और उनके साथियोंके साथ कठोर बर्ताव करेगी। सवाल अब्बास जैसे आक्रमण-कारियोंको पकड़कर जेलमें रखनेका नहीं है, वरन गोलीसे उड़ा देनेका है। आक्रमणकारियोंके साथ ऐसा व्यवहार करना स्वतन्त्र राष्ट्रोंका काम है। हमें दुःख है कि डा० खाँ साहबका मुकदमा ठीक ढंगसे इन मानियोंमें नहीं चल रहा कि पुलिस के कई गवाह बिगड़ गये, पर जो-कुछ बयान अदालतमें हुए हैं, उनसे पता चलता है कि डा० खाँ साहबकी हत्याका मूल कारण उनके विरुद्ध अल्लामा मशरिकीकी दुश्मनी है।

विदेशी मुद्रा-कोश

हम विदेशी मुद्रा-कोशके विषयमें ऊपर दो नोट लिख चुके हैं। इस विषयमें जो सरकारी रिपोर्ट गत २२ जून तक प्राप्त हुई है, उसके अनुसार भारत-सरकार द्वारा विदेशी मुद्राके खर्चेमें निरन्तर कटौती किये जानेपर भी वह अपना संचित कोष कम होनेसे नहीं रोक सकी है। अनुमानोंके अनुसार नयी वित्तीय वर्षके शुरू होनेपर देशको स्टर्लिंग निधि २४० करोड़से घटकर १२० करोड़ तक रह जायगी।

भारत-सरकार आयात-नीतिमें कुछ परिवर्तन करके आयातको काफी कम कर रही है। भारतको यद्यपि २० देश आर्थिक सहायता व कर्ज दे चुके हैं, परन्तु फिर भी उसका विदेशी मुद्रा-कोष नहीं भर रहा। अब अमरीकासे एक और कर्ज लेनेकी वार्ता चल रही है। इसके अलावा आयात-निर्यात बैंकसे भी कर्जके लिए वार्ता चल रही है।

लेबनानकी स्थिति

गत मासेसे अब तक लेबनानकी आन्तरिक स्थितिमें कोई सुधार नहीं हुआ है। लेबनानकी समस्याको पूरी तौरसे समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि लेबनानकी आबादी ईसाई और मुसलमानोंमें विभाजित है। ईसाइयोंके वहाँ दस फ़िरके हैं और मुसलमानोंके तीन। कुल जनसंख्या पन्द्रह लाख है और शासन-सूत्रके अध्यक्ष हैं एक ईसाई श्री शमून और उनके विरोधी हैं मुसलमान महाशय श्री सलम। लेबनान छोटा तो देश है, पर वह समृद्धशाली है। त्रिपोली और बेरूत उसके प्रसिद्ध नगर हैं। इराकी तेलके पाइप इन दो प्रसिद्ध नगरों तक जाते हैं। झगड़ेका मूल कारण तो अरबोंकी राजनीतिक जाग्रति है, पर लेबनान में विस्फोटक कार्य हुआ राष्ट्रपति नासिरके एक प्रतिपक्षी पत्रकारके मारे जानेसे। बस, युद्ध-स्फुलिंग चारों ओर फैल गये और सीमावर्ती आधा इलाका विद्रोहियोंके हाथमें है। लेबनानने अपना मामला सुरक्षा-परिषदमें भेजा। साथ ही लेबनानने यह भी मांग की कि वह अपनी आन्तरिक सुरक्षाके लिए अमरीका और इंग्लैण्डसे अमरीकी और ब्रिटिश फ़ौजें बुलानेको तैयार है। संयुक्तराष्ट्र-परिषद्ने अपने सेक्रेटरी जनरल श्री हैमरशोल्डको लेबनानकी स्थिति समझने और बीच-बचाव करनेके लिए लेबनान भेजा और साथ ही कई राष्ट्रोंके पर्यवेक्षक (उनमें एक भारत भी है) भेजे। श्री हैमरशोल्डका मत है कि बाहरी सहायता नहीं चाहिए और लेबनानकी स्थितिको संयुक्तराष्ट्र-परिषद्के पर्यवेक्षक ठीक कर सकेंगे। लेबनानका आरोप है कि अरब गणतन्त्रकी ओरसे लेबनानमें अरब सैनिक आ रहे हैं और वे ही स्थिति खराब कर रहे हैं। राष्ट्रपति नासिरने स्पष्ट रूपसे घोषणा की है कि अरब गणतन्त्र लेबनानके आन्तरिक मामलेमें तनिक भी हस्तक्षेप नहीं कर रहा। पर वह विदेशी हस्तक्षेपको सह न सकेगा। इस प्रकार स्थिति बड़ी गम्भीर है। अमरीकाका छठा जहाजी बेड़ा भूमध्यसागरमें तैयार खड़ा है, ताकि आवश्यकता पड़नेपर लेबनानमें सेना उतारी जा सके। उधर साइप्रसमें तीस हजार ब्रिटिश सैनिक डटे हुए हैं कि आवश्यकता पड़नेपर वे लेबनानमें काम कर सकें। आशंका इस बातकी है कि यदि लेबनानकी स्थिति बिगड़ी और अमरीकी तथा ब्रिटिश सैनाएँ आईं, तो कहीं वालंटियर्सके रूपमें रूसी सैनिक भी वहाँ न पहुंच जायँ। यदि ऐसा हुआ, तो लेबनानकी हालत कोरिया जैसी हो जायगी और पास-पड़ोसके देश यानी सीरिया और मिस्र भी युद्धकी चपेटसे बच नहीं सकते। अणु-आयुधोंके प्रयोगसे मध्यपूर्वकी हालत और भी खराब हो जायगी। हमारा अनुमान है कि लेबनान को लेकर कोई महायुद्ध नहीं छिड़ेगा। पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थिति गम्भीर है, क्योंकि भूमध्य-सागरके तटीय देशोंमें एक प्रकारसे आग-सी लगी है। अल्जी-रियासे लगाकर मिस्र तक और फ्रांससे लगाकर साइप्रस तक एक प्रकारसे रोजनैतिक और सैनिक आग-सी लगी हुई है।

साइप्रस

साइप्रसके लिए इंग्लैंडकी ओरसे साइप्रसके नवीन गवर्नर श्री फुटने एक नई शासन-योजना रखी है, जिसके अनुसार साइप्रसके तुर्क और यूनानियोंको शासन-सूत्रमें पूरा योग देनेकी सुविधा रहेगी। मज़हबी मामलोंमें वे स्वतन्त्र रहेंगे, पर सुरक्षा अंग्रेजोंके हाथमें ही रहेगी। तुर्कोंकी ओरसे साइप्रसके विभाजनकी बात कही गई है और यूनानी साइप्रस को यूनानमें मिलानेकी बात कहते हैं। स्मरण रहे, साइप्रस में तुर्क अल्पमतमें हैं और भूमध्यसागरमें स्थित साइप्रस रूसके विरुद्ध एक जबरदस्त स्थान है, इसलिए अंग्रेज फिलहाल साइप्रसको छोड़ेंगे नहीं। हमारा अनुमान यह है कि शायद साइप्रसके तुर्क और यूनानियोंकी बातको वे मान लें। इस प्रकार माननेमें भला ही है।

जनरल डी गौल, फ्रांस और अल्जीरिया

सन् १८७० से चौथी फ्रेंच रिपब्लिकका विधान इतना दूषित है कि वहाँपर एकदलीय सरकारका बनना कठिन है। फ्रांसीसी विधानके इस दोषके कारण फ्रांसमें कोई स्थायी सरकार नहीं बन सकती। फलस्वरूप आये दिन वहाँ मन्त्रिमण्डलोंका उलट-फेर हुआ करता है। फ्रांसके अधिकांश उपनिवेश उसके हाथसे निकल गये और उसकी इस आन्तरिक कमज़ोरीके कारण रहे-सहे विदेशोंके फ्रांसीसी क्षेत्र निकल रहे हैं। फ्रांसके मन्त्रिमण्डल और सेनामें इतना तनाव बढ़ गया कि अल्जीरिया-स्थित फ्रांसकी सेनाने स्पष्ट घोषणा कर दी कि यदि जनरल डी गौलको प्रधान मन्त्री नहीं बनाया गया, तो सैनिक कोरे फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंकी बात नहीं मानेंगे। एक विद्रोही सैनिकने तो कोर्सिका टापूपर अपना अधिकार भी जमा लिया। फ्रांसके सामने दो ही मार्ग थे, एक तो गृह-युद्धका और दूसरा डी गौलके हाथों शासन सुपुर्द करनेका। फ्रांसके राष्ट्रपति श्री कोटीने बड़े सोच-विचार और परामर्शके बाद जनरल डी गौलको प्रधान मन्त्री बनाने को आमन्त्रित किया और अगले छः महीने तकके लिए उन्हें पूरे अधिकार दे दिये। उसके बाद शासन-विधानमें ऐसे आमूल परिवर्त्तनकी भी आज्ञा दे दी, जिससे फ्रांसमें एकदलीय मन्त्रिमण्डल बन सके। डी गौलके सत्तारूढ़ होनेका कम्यूनिस्टोंने विरोध किया, थोड़े प्रदर्शन भी हुए, पर जनरल डी गौलके प्रधान मन्त्री होनेसे फ्रांसकी संकटापन्न स्थिति सुधर गई।

अल्जीरियामें नब्बे लाख मुसलमान हैं और पन्द्रह लाख फ्रांसीसी नागरिक। अल्जीरियामें कट्टरपन्थी फ्रांसीसियोंकी एक सुरक्षा संस्था है, जो फ्रांसके नामपर मनमाना काम करती थी। डी गौलने उस संस्थापर अंकुश लगा दिया और अल्जीरियाके फ्रांसीसी कमांडर-इन-चीफ श्री सालांको अपना प्रतिनिधि बना दिया और घोषणा की कि सब अल्जीरियन फ्रांसीसी नागरिक हैं। इधर डी गौलने यह भी घोषणा की है कि डेजर्ट बन्दरको छोड़कर ट्यूनिशियाके सब स्थानोंसे फ्रांसीसी सेनाएँ हट जायँगी। मूल अल्जीरियन निवासी डी गौलके घोषणासे सन्तुष्ट नहीं हैं ओर वे अल्जीरियाको एक स्वतन्त्र राष्ट्र देखना चाहते हैं। जनरल डी गौलको अभी अल्जीरिया फिर जाना है, पर डी गौलके सत्तारूढ़ होनेका स्वागत अमरीका और इंग्लैंडने किया है। इसमें सन्देह नहीं कि ६७ वर्षीय जनरल डी गौलका फ्रांसका प्रधान मन्त्री बनना फ्रांसके इतिहासमें एक नया मोड़ है।

इमरे नाज़की फाँसीकी प्रतिक्रिया

हंगरीके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री इमरे नाज़ और उनके साथियोंके प्राण-दण्डकी सज़ासे विश्व-भरमें कम्युनिस्टों और रूसके विरुद्ध एक घृणाकी लहर दौड़ गई है। वर्त्तमान रूसी शासन-प्रणालीके विरुद्ध यह धारणा बन गई है कि वहाँ स्टालिन-युगकी बर्बरता पुनः स्थापित हो गई। हंगरीने नाज़ और उनके साथियोंके विषयमें एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके यूगोस्लेवियापर आरोप लगाया कि हंगरी-स्थित यूगोस्लेवियाके दूतावाससे नाज़ और उनके साथी हंगरीके विरुद्ध षड्यन्त्र करते थे। यूगोस्लेवियाने इसका घोर विरोध किया है और रूससे भी यूगोस्लेवियाकी तनातनी बढ़ गई है। पोलैंडकी अन्तरिम सभाने नाज़की फांसीको अनुचित ठहराया है। अमरीका और इंग्लैंडपर इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ा है कि अमरीकनोंकी यह धारणा हो गई है कि शासनाध्यक्ष शिखर सम्मेलन होनेमें उन्हें अब काफी सन्देह है। स्थानाभावके कारण हम इमरे नाज़ सम्बन्धी सब घटनाओंका यहाँ विश्लेषण नहीं कर सकते, पर हमें इमरे नाज़ और उनके साथियोंकी हत्यासे बड़ा दुःख है। हम किसी गुटके नहीं हैं, पर मानवताके गुटके अवश्य हैं। पशु-बलसे संसारमें सुख और शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। श्री इमरे नाज और उनके साथियोंके घरवालोंके प्रति हमारी सहानुभूति है। हम जानते हैं कि उनके पास हमारी बात नहीं पहुंच सकती। हम ऐसी फाँसियोंके विरोधी

है और हमारा विश्वास है कि ऐसी फाँसियोंसे लोग कम्युनिस्टके विरोधी बनेंगे।

रेल-दुर्घटनायें और रेल-मन्त्री

आजकल रेल यात्रा करते समय यही ध्यान आता है कि परमात्माकी कृपा और अपने स्नेही मित्रों तथा बच्चोंकी खातिर हम सुरक्षित घर लौट आयें। कोई रेल-मंत्री श्री जगजीवन रामसे प्रश्न क्यों नहीं करता। हमें लगता है कि रेलवे कर्मचारियोंकी अयोग्यता और असावधानीसे ही ऐसा नहीं होता है। यदि ऐसा है तो उनके साथ कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की जाती? नैतिक जिम्मेदारी रेल-मंत्रीकी तो है ही।

साढ़ू और ठरगजा

यों तो अंग्रेजी भाषा बड़ी ही सम्पन्न और शब्द-भण्डार से पूरित है, पर कौटुम्बिक जीवनके रिश्तोंके लिए भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीकी अपेक्षा वह बड़ी कंगाल है। हम संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके पाक्षिक पत्र 'रिपोर्टर'के ग्राहक हैं। 'रिपोर्टर' ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके राष्ट्रपतिके साढ़ूके लिए जिस शब्दका उपयोग किया है, उसका हिन्दी-अनुवाद है 'राष्ट्रपतिकी पत्नीकी बहनके पति'। हमारे खयालसे भारतकी सभी भाषाओंमें साढ़ूके लिए कोई-न-कोई शब्द है। यह हम मानते हैं कि भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी शब्दावलीके बाहुल्यका कारण है कि भारतमें संयुक्त कुटुम्बकी प्रथा है। ब्रजभाषामें बहनोईकी बहनके लिए ठरगजी और उसके पति को ठरगजा कहेंगे। अंग्रेजीमें तो बहनोईकी बहनके लिए 'ब्रदर-इन-लौज सिस्टर' कहेंगे। अकेले 'ब्रदर-इन-लौ' के मानी सालेके भी हो सकते हैं और बहनोईके भी। पर गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवनके लिए जितने शब्द भारतीय भाषाओं में है, उतने अंग्रेजीमें नहीं। पर राजनीति, विज्ञान और अर्थशास्त्रकी शब्दावलीकी दृष्टिसे भारतीय भाषाएँ बड़ी कंगाल हैं।

स्व० पं० रूपनारायण पाण्डेय

गत १२ जून को लखनऊमें लू लगनेके कारण ७५ वर्ष की आयुमें हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार पं० रूपनारायणजी पांडेयका देहान्त हो गया। स्व० पांडेयजी संस्कृत और हिन्दीके अच्छे पंडित थे। वैसे वे बँगला, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और उर्दू भाषाओंमें पारंगत थे। सम्पादककी हैसियतसे उन्होंने हिन्दीकी २४ वर्ष तक सेवा की। इस कालमें आपने 'हिन्दी-प्रचारक', 'निगमागम चन्द्रिका', 'इन्दु', 'कान्यकुब्ज' तथा 'माधुरी' आदि पत्रोंका सम्पादन किया।

स्व० पांडेयजीकी मौलिक एवं अनुवादित पुस्तकोंकी संख्या सौ से अधिक है और इसलिए उन्होंने हिन्दीका भंडार भरनेमें हिन्दी-साहित्यकी बड़ी सेवा की। स्व० पांडेय जी के उठ जाने से हिन्दी-साहित्यकी बड़ी क्षति हुई। हम अपनी तथा 'विशाल भारत'की ओरसे स्व० पांडेयजीको श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

स्व० शेषजी

हमें यह जानकार बहुत दुःख हुआ कि गत २३ मई १९५८ की रातको जलन्धर (पञ्जाब) में अपने निवासस्थान पर सुकवि शम्भूनाथ शेषजीका देहान्त हो गया। शेषजी हृदय-रोगसे पीड़ित थे और दिमागकी नस फट जानेसे उनका शरीरान्त हो गया। शेषजीकी आयु अभी चौवालीस वर्षकी थी। अपने पीछे वे विधवा पत्नी और पाँच बच्चे छोड़ गये हैं। शेषजीके उठ जानेसे हिन्दी और पंजाबके साहित्यकारोंमें से एक विशेष स्थान रिक्त हो गया और हिन्दी-जगतका एक उदीयमान तथा होनहार साहित्य-सेवी चल बसा। हम 'विशाल भारत' की ओरसे समवेदना प्रकट करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा उनके परिवारवालोंको इस दारुण दुःखको सहनेकी शक्ति दे।

क्रिकेट खिलाड़ी जार्डिन

इन पंक्तियोंके लिखने (२३-६-५८) से तीन-चार दिन पूर्व हमने समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि इंग्लैण्डके प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी और एन० सी० सी० के प्रसिद्ध कप्तान डगलस जार्डिनका देहान्त हो गया। क्रिकेट-जगतमें जार्डिनके निधनसे एक शोकका वातावरण छा गया। इंग्लैण्डकी राष्ट्रसभाका झण्डा भी आधा झुका दिया गया। अपने समयके जार्डिन एक विख्यात कप्तान और खिलाड़ी थे। हमें याद है, सन् १९३० और ३५ के बीच उनको और उनके प्रसिद्ध बॉलर वुडको लेकर क्रिकेट-जगतमें एक विवाद खड़ा हो गया था और बॉलार वुडकी बौडी लाइन बोलिंगके कारण इंग्लैण्ड और आस्ट्रेलियाके बीच एक मनमुटाव भी पैदा हो गया था। जार्डिनका विश्वास तेज़ बोलिंगमें बहुत था और उसीके बूते उन्होंने जितने भी टेस्ट मैच खेले, उनमें से अधिकांशमें उनकी विजय हुई। स्व० जार्डिनका निधन क्रिकट-जगतके लिए एक भारी क्षति है।

स्व० डा० हिगन बौटम

हमें यह जानकर बड़ा क्षोभ हुआ कि डा० हिगन बौटम का देहान्त संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें गत मास हो गया। भारतीय समाचारपत्रोंमें हमें यह खबर पढ़नेको नहीं मिली। इलाहाबादकी प्रसिद्ध कृषि-संस्था नैनी भारतकी एक प्रमुख

संस्था है। अमेरिकन मिशन उसे चलाता है। स्व० डा० हिगन बौटम इस संस्थाके प्रवर्तक और प्रिन्सिपल थे। इस संस्थाकी स्थापना करके डा० हिगन बौटमने कृषि-विद्याका प्रचार भारतमें बहुत किया। पशु-पालन, बागवानी आदिमें कार्य करके डा० हिगन बौटमने बड़ी सेवा की। हम उनसे प्रायः मिला करते थे। चारे, ईंधन और बागवानीपर प्रायः बातें होतीं। अबसे लगभग ३३ वर्ष पूर्व डा० हिगन बौटम के सम्पर्कसे नैपियर, गिनी और रोड्स घासोंके महत्त्वको समझ सके थे। डा० हिगन बौटमने शिक्षा तो इंग्लैण्डमें पाई थी, पर उत्तर-भारतके कृषि-कार्यको बढ़ानेमें उनका विशेष हाथ था। नैनी इन्स्टीट्यूटमें अब भी पशु-पालन और कृषिकी शिक्षा होती है और भारतीय अमीरोंको उससे शिक्षा लेनी चाहिए कि क्रियात्मक कल्पना-शक्ति और परिश्रमसे इस देशकी खराब भूमि भी अच्छी बनाई जा सकती है। हम डा० हिगन बौटमके निधनपर नैनी इन्स्टीट्यूटके संचालकोंके प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं।

मिर्ज़ा ग़ालिब

श्री हरिशङ्कर शर्मा

आगरा, पहले तुझे 'मीर' ने अपनाया था,
फिर तेरी गोदमें प्यारा 'नज़ीर' आया था;
पीछे 'ग़ालिब' ने तेरी शान दुबाला[1] कर दी,
आला इदराको[2] ख़यालातकी ख़ूबी भर दी;
मिलके तीनोंने ही, इन्सानियतको पनपाया—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

जाके दहली में सकूनत की अकबराबादी,
तुमसे रौशन है—रहेगी अदब[3]की आबादी;
जिस्म दुनियामें नहीं, पर, कलाम[4] बाक़ी है,
कैसे मुर्दा कहें हम, जिस्का नाम बाक़ी है;
गुत्थियों-मसलोंको संजीदगी[5] से सुलझाया—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

मिल्लतो मुल्ककी अज़मत[6]को बढ़ानेवाला,
फ़िल्सुफ़ए उन्स[7]-ओ-अख़लाक़[8] बतानेवाला;
मुर्दा ज़िस्मोंमें नयी ज़िन्दगी लानेवाला,
नग़्मा[9] रूहानियत का शौक़ से गानेवाला;
फ़ारसी-उर्दू ज़बाँको वो बना सरमाया[10]—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

हिन्दू-मुसलिमके लिए नूर[11] था—मह-पारा[12] था,
साहिबे दिल था, वो औसाफ़[13] का गहवारा[14] था;
ऐशो इशरत भी रहे, दुख भी सामने आये,
गुलशने ज़िन्दगीमें, गुल भी, ख़ार भी पाये;
'शम्स'[15] उल्मामें वो शोअरामें 'मेहर'[16] कहलाया—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

सल्तनत शाहसे बढ़कर अदीब[17] होता है,
जागता है, वो जब जाहिल जहान सोता है;
जिनके हालात तवारीख़में पढ़ पाते हैं,
उनको शायर-अदीब ही ज़ुबाँमें लाते हैं;
दुनियादारोंको रास्तीका रमूज़[18] समझाया—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

ख़ुदा करे कि हौसला वो हममें आ जाये,
ऐसे कामिलकी कोई यादगार बन जाये;
इतना कर फ़ौक़ियत[19]-फ़ख़्रोग़[20] कुछ न पाएँगे,
क्यों कि सूरजको चिराग़ ही तो हम दिखाएँगे,
हैफ़, अब तक न कोई कार ऐसा भर आया—
मिर्ज़ा ग़ालिबको बड़ी शानका शायर पाया।

१. दूनी, २. बुद्धिमत्ता, ३. साहित्य, ४. कविता, ५. गंभीरता, ६. महत्त्व, ७. स्नेह, ८. नैतिकता, ९. गीत, १०. पूँजी, ११. ज्योति, १२. चाँदका टुकड़ा, १३. गुण-पुंज, १४. हिंडोला, १५-१६. सूर्य, १७. साहित्यकार, १८. रहस्य, १९-२०. विशेषता।

[फ़ारसी-उर्दूके मशहूर शायर मिर्ज़ा ग़ालिबका जन्म १७९७ ई० की २७ दिसम्बरको आगरा शहरमें हुआ था। कुछ लोगोंका कहना है कि वे पीपलमण्डी (आगरा) में बने 'कालामहल' में पैदा हुए थे। गत २७ दिसम्बर की रातको इस 'कालामहल' में ही मिर्ज़ा ग़ालिबका जन्म-दिन मनाया गया। हिन्दी और उर्दूके प्रायः सभी साहित्यकार तथा अदीब उसमें सम्मिलित थे। साहित्य-प्रेमी श्रोताओंकी संख्या भी बड़ी थी। अनेक भाषण हुए। उर्दू तथा हिन्दीके कवियोंने कवितामें श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। इस मजलिसके सद्र यानी समारोहके अध्यक्ष श्री हरिशङ्कर शर्मा थे। आपने उस समय अपनी उपर्युक्त कविता पढ़कर सुनाई। —सम्पादक]

क्रान्तिकारी लाला हरदयाल

बनारसीदास चतुर्वेदी

"लाला हरदयाल भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ सपूतोंमें से थे, उनको बौद्धिक शक्ति अद्भुत तथा विलक्षण थी और अगर शान्तिमय मौका उन्हें मिल जाता, तो अपनी बुद्धि द्वारा वे आश्चर्यजनक काम कर सकते थे। क्योंकि जितने महानसे महान् मस्तिष्क मेरे देखनेमें आये हैं, उनमें लाला हरदयाल का दिमाग भी एक ही था और उनका चरित्र भी सत्यपूर्ण तथा पवित्र।"* —सी० एफ० ऐण्ड्रूज़

अपने अन्तिम दिनोंमें जब दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ बीमार पड़े हुए थे, मैंने एक धृष्टता की। उन्हें लाला हरदयालकी याद दिला दी और साथ ही यह प्रार्थना भी कर दी कि स्वस्थ होनेपर वे लालाजी के विषयमें कुछ लिख भेजें। दीनबन्धुने तुरन्त ही उस बीमारीकी हालतमें भी अपनी श्रद्धांजलि एक लेखके रूपमें अर्पित कर दी। उसीमें से यह वाक्य लिया गया है।

मैं खुद लालाजीका बहुत वर्षोंसे भक्त रहा हूं, और उनकी पुस्तक 'Hints for Self-Culture' (आत्म-संस्कृतिके उपाय) को प्रायः प्रातःकालमें पढ़ता रहा हूं। वह मेरा स्वाध्याय ग्रन्थ है। जिन दिनों सन् १९१०-११-१२ लाला हरदयालजीके लेख 'माडर्न रिव्यू' में निकल रहे थे, उनकी धूम मच गई थी। उनका हिन्दी-अनुवाद श्री नारायणप्रसादजी अरोड़ाने किया था और हिन्दी-जगत् में भी उनके बहुत-से प्रशंसक बन गये थे। 'माडर्न रिव्यू'को पुरानी फाइलोंमें आज भी वे लेख पढ़े जा सकते हैं। उनमें ताज़गी ज्यों-की-त्यों मौजूद है। क्या भाषा और क्या भाव, दोनों दृष्टियोंसे वे अपना सानी नहीं रखते और उनके प्रवाहका क्या कहना! उनके एक लेख 'कार्ल मार्क्स—ऋषि' को अनुवाद स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्माने 'विशाल भारत' के लिये किया था और वह पुस्तकाकारमें भी प्रकाशित हुआ था।

अभी उस दिन हम लालाजीके पुराने सहपाठी और अनन्य मित्र वयोवृद्ध लाला हनुमन्त सहायजीसे बातचीत कर रहे थे।* उन्होंने लालाजीके विद्यार्थी-जीवनके अनेक



क्रांतिकारी लाला हरदयालजी

संस्मरण सुनाये। लालाजीकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी और प्रत्येक परीक्षामें वे केवल सर्वप्रथम ही उत्तीर्ण नहीं हुए थे,

* Lala Hardayal was one of India's noblest children and in happier times would have done wonders with his gigantic intellectual power. For his mind was one of the greatest I have ever known and his character also was true and pure.

—C. F. Andrews

* लाला हनुमन्त सहायजी स्वयं पुराने क्रान्तिकारी हैं—उस बीते युगकी यादगार हैं—और वे हरदयालजीका जीवन-चरित लिख रहे हैं। यदि किसीके पास लालाजी-विषयक कुछ मसाला हो, तो वे उसे लाला हनुमन्त सहाय, चैलपुरी किनारी बाजार, दिल्लीके पतेसे रजिस्ट्री द्वारा भेज सकते हैं।

बल्कि उन्होंने इतने अच्छे नम्बर पाये थे कि आज तक कोई दूसरा उनसे आगे नहीं बढ़ सका।

अपनी आश्चर्यजनक स्मरणशक्तिके चमत्कार उन्होंने एक दिन लाहौरके विद्यार्थी-समाजके सम्मुख कर दिखाये और उनके दर्शकोंमें थे पंडित सुन्दरलालजी, जो उन दिनों लाहौरमें ही पढ़ रहे थे। दो दिन पूर्व एक महाराष्ट्र सज्जन श्री सहस्रबुद्धेने उन चमत्कारोंका प्रदर्शन किया था, इसपर लालाजीने कहा—"इसमें क्या है ? ये तो मैं भी कर सकता हूं।" और विद्यार्थियोंकी चुनौती दिये जानेपर उसके दूसरे-तीसरे दिन ही हरदयालजी उनसे बढ़कर करिश्मे कर दिखाये। लाला हरदयालजी सरकारी वजीफा लेकर आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें पढ़नेके लिये विलायत गये। कहा जाता है कि वहाँ वे बिल्कुल तपस्वियों जैसा जीवन व्यतीत करते थे और विलायतमें तीस-चालीस रुपये महीनेमें अपनी गुज़र कर लेते थे। उन दिनों दीनबन्धु एण्ड्रूज आक्सफोर्डमें उनसे मिले थे और उन्होंने लिखा है :—

"लाला हरदयालने अपनी आवश्यकताओंको कमसे कम कर लिया था और वे एक बहुत छोटे-से कमरेमें, जिसमें सजावटका कोई नामोनिशान न था, रह रहे थे। वे स्वभाव से ही तपस्वी थे।"

उनकी इस तपस्यापूर्ण साधनाका उल्लेख एक अमरीकन लेखक वान विक ब्रुक्सने भी अपनी 'Scenes and Portraits' में किया है। दरअसल मि० ब्रुक्सने जैसा रेखाचित्र लालाजीका खींचा है, वैसा किसी भारतीयसे नहीं बन पड़ा। लालाजी उन दिनों कैलीफोर्नियामें सिर्फ रूखी रोटी और दूधपर ही रहते थे। वे जमीनपर सोते थे और सिरहानेके लिए तकिया वगैरह कुछ भी नहीं रखते थे। उन्होंने अपने एक पत्रमें मि० ब्रुक्सको लिखा था—

"I am a revolutionist first and everything else afterwards."

—"मैं सर्वप्रथम क्रान्तिकारी हूं, उसके बाद और कुछ।"

उन्होंने रूसके प्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिनके नामपर 'बाकूनिन इन्स्टीट्यूट' कायम की थी और उसका मुख्य कार्य था क्रान्तिकारियोंको तैयार करना। उन्होंने खास तौरपर प्रिन्स क्रोपाटकिन और लुई माइकेल नामक अराजकवादियों तथा कार्ल मार्क्सके जीवन-चरित पढ़नेकी सिफारिश अपने ग्रन्थमें की थी। जब वे विलायतमें रह रहे थे, मैंने उनकी सेवामें दो पत्र भेजे थे, जिनका उन्होंने तुरन्त ही उत्तर दिया था। अपने १२ जुलाई सन् १९३६ के पत्रमें उन्होंने ऐजबेयर इंग्लैण्डसे लिखा था—

"यहाँ स्वीडन देशके पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखने में मेरा बहुत-सा समय चला जाता है। मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। सो 'विशाल भारत'की सेवा करनेके लिए समय निकालना कठिन ही होगा। क्षमा करें।

"Louise Michel का जीवन-चरित अंग्रेजीमें नहीं लिखा गया है। फ्रांसीसी भाषामें पुस्तकें हैं। आदर्श महिला थीं।

"यदि आप कभी लन्दन आयें, तो ज़रूर दर्शन दें। कृपा होगी।

सेवक—
हरदयाल।"

उनका एक अन्य पत्र भी, जो उन्होंने स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहजी शर्माको लिखा था, यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"मान्यवर श्रीमान् पण्डितजीके चरणकमलोंमें नमस्कार स्वीकार हो। मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ और अनुगृहीत हूं कि आपने 'बिहारी सतसई' मेरे पास भेजी है। यह आपने बड़ी कृपा की है। मैंने पहले यह कविता पढ़ी है, जब मैं जर्मनीमें था, परन्तु टीका न होनेसे भलीभाँति समझमें नहीं आई थी। अब आपकी टीकाकी सहायतासे खूब समझमें आ जायगी। आपकी तुलनात्मक समालोचना सर्वथा प्रशंसनीय है। हिन्दी-साहित्यमें अब इसकी बहुत आवश्यकता है। आपकी पुस्तकसे मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है और होता रहेगा। मैं काव्यका बहुत प्रेमी हूं।

"यदि मैं यूरोपमें आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं, तो लिखियेगा। मैं कुशलसे हूं।

पता—Appelviken
(Sweden)
८-४-२५

सेवक—
हरदयाल।"

जीवनकी कुछ घटनाएँ

लालाजीका जन्म दिल्लीके एक कायस्थ परिवारमें सन् १८८५ में हुआ था। बी० ए० तक वे दिल्लीमें ही पढ़े। वे सेण्ट स्टीफन्स कालेजके विद्यार्थी थे। एम० ए० की परीक्षा उन्होंने फोरमेन क्रिश्चियन कालेज लाहौरसे पास की थी और १९०६ में उन्हें पंजाब-सरकारसे २०० पौण्ड प्रतिवर्षकी छात्रवृत्ति आक्सफोर्ड जानेके लिए मिली थी। वे वहाँ सेण्ट जान्स कालेजमें भर्ती हो गये। विलायतमें वे सुप्रसिद्ध

क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्माके सम्पर्कमें आये और उनकी विचारधारामें पूर्ण परिवर्तन हो गया। सालभर बाद उन्होंने छात्रवृत्तिको ठुकरा दिया और भारतको लौट आये। यहाँ पहुंचकर वे साधु-वेशमें रहने लगे और उन्होंने लाहौरमें एक आश्रम स्थापित किया, जहाँ वे राजनैतिक संन्यासी बनानेके लिए विद्यार्थियोंको शिक्षित करते थे। उस वक्तके उनके साथियोंमें से दो अब भी विद्यमान हैं—एक श्री जे० चटर्जी देहरादूनवाले और दूसरे डाक्टर ताराचन्दजी। उन्होंने पर्याप्त राजनैतिक कार्य भी किया। परिणाम यह हुआ कि वे भारत-सरकारकी आँखोंमें काँटेकी तरह चुभने लगे। इस बातकी पूरी-पूरी आशंका थी कि वे गिरफ्तार कर लिये जायँ, इसलिए वे देश छोड़कर फ्रांसके लिए रवाना हो गये। यह बात शायद सन् १९०८ की है और उसके बाद फिर उन्हें मातृभूमि भारतके दर्शन नसीब नहीं हुए।

अनुसन्धानकी आवश्यकता

लालाजीका ३०-३१ वर्ष प्रवासी जीवन भारतीय इतिहासका एक ऐसा अध्याय है कि जिसके अनुसन्धानके लिए कई सुयोग्य इतिहासज्ञोंकी आवश्यकता है।

लालाजीने रूसी, मिस्री तथा आयरिश क्रान्तिकारियोंसे किस प्रकार परिचय प्राप्त किया, अमेरिकाकी गदर पार्टीमें कितना हिस्सा लिया, प्रथम युद्धके ज़मानेमें उनके द्वारा क्या-क्या कार्रवाइयाँ हुईं, अमेरिकासे उन्हें किस तरह निर्वासित होना पड़ा, स्वीडनमें वे कैसे रहे इत्यादि प्रश्नोंपर प्रकाश डालनेके लिए काफी खोजबीन करनी पड़ेगी। हमने उस दिन सुना कि एक विद्यार्थीने अपने अनुसन्धानके लिए 'विपिनचन्द्र पाल और उनका युग' विषय चुना है। क्या दिल्ली-विश्वविद्यालय का कोई तेजस्वी विद्यार्थी 'लाला हरदयाल तथा उनका युग' अपने अन्वेषणका विषय नहीं बना सकता?

विदेशोंमें लालाजीने जिस तपस्यापूर्ण ढंगपर अपना जीवन व्यतीत किया और जो-जो कष्ट उन्हें सहने पड़े, उनका वृत्तान्त पढ़कर आश्चर्य तथा खेद होता है। भारतवर्षसे उन्हें बहुत ही कम सहायता मिली। कुछ रकम समय-समयपर उन्हें उनके दिल्ली-निवासी मित्र लाला हनुमन्त सहायजीने भी भिजवाई थी। चूँकि लालाजीने पन्द्रह वर्ष स्वीडेनमें बिताये थे, सो वहाँके कुछ मित्र पुस्तकों द्वारा उनकी मदद कर देते थे। लालाजी कई विदेशी भाषाओंमें भाषण दे सकते थे और विभिन्न देशोंके विश्वविद्यालय उन्हें तदर्थ निमन्त्रण भेज देते थे।

उन्होंने स्वामी सत्यदेवजीको कई पत्र इस विषयमें लिखे थे, जिन्हें स्वामीजीने अपनी पुस्तक 'जर्मन-यात्रा' में छापा भी था। लालाजीने स्वामीजीको लिखा था—

"भारतीय 'देशभक्तों'के पास रुपयेकी कमी नहीं, परन्तु मैंने विदेशी मित्रों और परिचितोंकी दानशीलतापर अपना निर्वाह किया है। यह स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं। मेरे त्याग और व्यक्तित्वकी तारीफ तो बहुतसे लोग करते थे, परन्तु रुपये-पैसे से परदेशोंमें मेरे काममें या मेरी निजी सहायता किसीने नहीं की।"

लालाजी हिन्दी-उर्दू में यूरोप और अमरीकाके प्रजातंत्रीय आन्दोलनोंके विषयमें तथा वहाँके बड़े-बड़े नेताओंके जीवन-चरितों पर ग्रन्थ लिखना चाहते थे और राजनीति तथा समाजशास्त्रकी प्रसिद्ध यूरोपियन किताबोंका अनुवाद भी करना चाहते थे। अर्थाभावके कारण यह सम्भव न हुआ!

लालाजीकी विद्वत्ताका कुछ अनुमान उनके उन ग्रन्थोंसे, जो उन्होंने विलायतमें प्रकाशित किये, लगाया जा सकता है। हमें इस बातमें शक है कि "Hints for Self-Culture" जैसा ग्रन्थ भारतका कोई अन्य विद्वान इतनी सफलतापूर्वक लिख सकता। बोधिसत्व सिद्धान्त पर अपना अन्वेषण-ग्रन्थ लिखकर उन्होंने लन्दन-विश्वविद्यालयसे डाक्टरेटकी उपाधि ली थी। उनका एक ग्रन्थ था "Twelve Religions and Modern Life" (बारह धर्म और वर्त्तमान जीवन)।

भाई परमानन्द, कर्नल वैजवुड, दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज, मि० ब्रेल्स फोर्ड और डाक्टर सप्रू इत्यादिने लालाजी को भारत आनेकी अनुमति दिलानेके लिये बहुत प्रयत्न किया और उन्हें नवम्बर १९३८में अनुमति मिल भी गई। तत्पश्चात् वे अमरीका गये और कुछ महीने वहाँ रहकर वे भारत आना चाहते थे। उनके मित्र मि० ब्रुक्सने लिखा है—

'लाला हरदयालने इंग्लैंडमें Modern Culture Institute—सांस्कृतिक विद्यापीठकी स्थापना की थी और जूलोजी, बोटैनी तथा फिजिक्स, जीवशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भौतिक शास्त्र इत्यादि वैज्ञानिक विषयोंका वे अध्ययन कर रहे थे। वे अमरीका इसलिये पधारे थे कि यहाँपर उन्हें कुछ भाषण देने थे। एक दिन वे मेरे घर भी आये और मेरी पत्नी के लिये लाल गुलाबके फूल लाये थे। उन्हें भारत जानेकी अनुमति मिल चुकी थी, पर उन्हें पूरा-पूरा यकीन नहीं हो

[शेषांश पृष्ठ २५ पर]

संस्मरण

आतिथ्य-अवतार पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी

श्रीराम शर्मा

मनुष्य अपने संकीर्ण मापदंडसे ही औरोंको प्रायः नापा करता है। अनुभव, विवेक, सत्संग और परिपक्व अवस्थासे मानवीय मापदंड विशुद्ध और उचित बनता है। बाल्यावस्था और चढ़ती जवानीमें नव कल्पनाके पंखोंपर युवक बिना किसी सहारेके ऊँची उड़ाने भरते हैं, तब उन्हें अपने संकीर्ण अथवा अपरिपक्व दृष्टिकोणसे ही दुनिया देखने का अवसर मिलता है। इन पंक्तियोंका लेखक बालपनसे ही विदेशी शासनके विरुद्ध हो गया था और क्रांतिकारी आन्दोलनसे उसका निकटतम सम्बन्ध कालेजमें दाखिल होते ही और भी दृढ़ हो गया। क्रांतिकारी कवितायें, गीताका दूसरा अध्याय उसे कंठस्थ हो गये थे। चढ़ती उमर, स्वस्थ शरीर, उच्च भावनाओं और कुछ काम करनेकी प्रवृत्तिने इस लेखककी एक ऐसी मनोवृत्ति बना दी कि वह अंग्रेजों और अंग्रेजी शासनको एक कटमुल्लेकी भाँति देखता। लोकमान्य तिलक या मालवीयजीकी यात्राओंके समाचार पाते ही स्टेशनों पर पहुंच उन्हें देवताओंकी भाँति पूजता। यह बात सन् १९१५ की है, जब इस लेखकने आगरा कालेजमें दाखिला करा लिया था। सन् १९१६ के प्रारम्भमें समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि कांग्रेसका उस वर्षका अधिवेशन लखनऊ में होगा। बस कांग्रेस-अधिवेशन देखनेको जी तड़पने लगा। आर्थिक स्थिति अपनी अच्छी नहीं थी। ट्यूशनों और परिश्रमके बूतेपर ही अपनी पढ़ाई चलती थी। उन दिनों पूरी फीस देकर न्यूनतम खर्चा इंटरमीजिएटकी पढ़ाई का सत्ताईस रुपये छः आने था। पास-पल्ले कुछ था नहीं, पर दिमाग आसमान पर था। स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि कभी-कभी किसी अंग्रेजको पकड़ कर पीटनेमें सफलता भी रहती। प्रतिदिन १०-१२ मीलकी दौड़ लगती। पुट्ठे देखकर तबियत बाग-बाग हो जाती। पर इस पूँजीसे लखनऊ कैसे जाते! वहाँ जाकर दस-बारह दिन भोजनका भी प्रबन्ध करना था। अपना इतना परिचय भी नहीं था कि कोई यात्रा-व्ययका जिम्मा उठा लेता। अपने एक साथी थे अलीगढ़के पं० भूदेव शर्मा—बड़े ही नेक और भावुक। इस लखनऊ-रूपी तीर्थ-यात्राके साथी बननेमें उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी।

धीरे-धीरे दिसम्बर करीब आने लगा और हमारी उत्सुकता बढ़ने लगी। सोचा था कि लखनऊ तकका विद्यार्थियोंका कन्सेशन टिकट ले लेंगे, इससे किरायेमें बड़ी कमी हो सकेगी। पर हमारे प्रिंसिपल श्री टी० सी० जोन्स ने रेलवे अधिकारियोंको लिख दिया था कि आगरा कालेजके विद्यार्थियोंको बड़े दिनका कन्सेशन टिकट न दिया जाय। स्व० जोन्स बड़े ही उत्तम अध्यापक थे। लड़ाईके दिन थे और वे अंग्रेज वालंटियर्सको सैनिक शिक्षा भी देते थे। प्रति दिन थर्ड ईयर, फोर्थ ईयर, फिफ्थ ईयरको पढ़ाते, कालेजके सेक्रेटरीशिपका काम करते, शामको गोल्फ खेलते, रातको किताबें लिखते। इन अद्भुत गुणोंसे सम्पन्न श्री जोन्समें एक ही दोष था कि वे भारतीय स्वतन्त्रताके घोर विरोधी और पक्के नौकरशाह थे। जोन्स साहबके दो रूपोंमें से हमें एक बड़ा ही आकर्षक और प्रिय था, दूसरा बड़ा ही कटु। यदि वे इतने अच्छे अध्यापक न होते और केवल दोष ही होता, तो आगरा कालेजके क्रान्तिकारी विद्यार्थी उनका न-जाने क्या करते। पर जोन्स साहबकी बुद्धिका हमने काट किया कि कन्सेशन टिकट कानपुर तकका ही लिया जाय और वहाँसे या तो पैदल लखनऊ या फिर मौकेपर जो समझमें आये। कन्सेशन टिकटके लिए कम-से-कम चार विद्यार्थियोंका होना आवश्यक था। अतः हम चार व्यक्ति चले—श्री भूदेव शर्मा, श्री भगवतीसहाय वैश्य, इन पंक्तियोंका लेखक और चौथे विद्यार्थीका नाम इस समय याद नहीं है। मार्ग-व्ययके अतिरिक्त लखनऊमें रहने, भोजन आदिके लिए महीनों पहले बचा-बचाकर हम केवल इतना ही कर पाये कि दोनों ओरके मार्ग-व्ययके बाद एक-एक रुपया ही हमारे पास बचा।

बहुत प्रयत्न करनेपर भी और अधिक धन नहीं जुटा सके, पर उतनी ही पूँजीसे हम कांग्रेस-अधिवेशन देखनेको उतावले थे। दस-बारह दिन काटने थे, न कहीं रहनेका

ठिकाना, न भोजनका प्रबन्ध। बस, एक रुपयेके बूतेपर ही सब-कुछ करनेको तैयार थे। तय किया था कि रात किसी फुटपाथपर या शहरसे दूर कहीं भी पेड़के नीचे काट ली जायगी। हमारे लिए २०-२६ मील दौड़कर जाना कोई नई बात न थी; पर इतनी दौड़के बाद जठराग्निको तो शान्त करना ही था। वह तो और भी तेज हो जायगी। कम-से-कम सात-आठ रुपये तो चाहिए ही थे। एक तरकीब सोची। घरसे चावलके लड्डू और सत्तू तैयार कराये गये। पर माँने केवल ३-४ दिनके लिए ही सामान दिया, क्योंकि बासी भोजनके वे पक्षमें न थीं। थोड़ी भोजनकी समस्या तो हल हुई, रात काटनेकी चिन्ता न थी। कण्डे बीनकर आगके सहारे रात तो काट सकते थे। हम बिल्कुल देहाती धुर्रा थे। अण्डीका तेल लगे चमरौधा जूता, नंगा सिर और सोटा देखकर ही पहचाने जा सकते थे। सिरमें तेल तो हम अब तक कभी नहीं लगाते। नियमित व्यायाम करते थे, सो वह प्रतिदिन अधिवेशन-सम्बन्धी दौड़-धूपमें पूरा हो हो जायगा।

सन् १९१६ का दिसम्बर आया। हमारी खुशीका ठिकाना न रहा। स्वप्नमें ही हमें कांग्रेसके सभापति श्री अम्बिकाचरण मजूमदार, महामना मालवीय, लोकमान्य तिलक आदि नेताओंके दर्शन हो जाते। अनन्य भक्ति और अनुराग से जैसे यात्री गया और काशी जाते हैं, वैसे ही हम चले। माँका बनाया पाथेय साथ था। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि बचपनसे ही संघर्षवृत्तिके कारण प्रत्येक कार्यमें असाधारण तत्परता निभानेकी आदत पड़ गई थी। इसीलिए एक पत्र हमने अपने मित्र डा० रतनलाल खनीजेको लखनऊ मेडिकल कालेज डाल दिया था। डा० रतनलाल आजकल बुलन्दशहर (उत्तर-प्रदेश) के प्रसिद्ध डाक्टर हैं और खुर्जेमें वे हमारे साथ एक ही कमरेमें रहा करते थे और दो वर्ष सीनियर थे। अतः जब हम आगरा कालेजमें दाखिल हुए, तो वे लखनऊमें पढ़ रहे थे। उनका उत्तर आ गया था कि वे तो छुट्टियोंमें लखनऊ नहीं रहेंगे, पर हमारे ठहरनेका प्रबन्ध कर जायँगे। हमने समझा कि उनका उत्तर औपचारिक है। सोचा कि उनके यहाँ हाजिरी अवश्य दे आयेंगे, ताकि कभी वे हमारे काम लखनऊमें आ सकें।

आगरेसे दोपहरकी गाड़ीसे चलकर सायंकालको दिन छिपे कानपुर स्टेशन पहुंचे। उन दिनों कानपुरसे रातको लखनऊके लिए कोई गाड़ी न थी। सोचा, स्टेशनके वेटिंग रूममें पड़े रहेंगे, पर भगवती बाबूने कहा कि उनकी जान-पहचानके एक आढ़तिया कानपुरमें रहते हैं और रात वहीं काटना ठीक रहेगा। आढ़तिया कोई बड़े आदमी प्रतीत हुए और उन्होंने अपने हींगके गोदाममें हमें टिकाया। कपड़े तो हमारे पास नाममात्रको थे, अतः हम गद्दियोंपर लेट गये। सारा वातावरण हींगमय था। पानी और लोटा हींगका बना लगा। तकिये और चादरें तक भी हींगके पानीमें धोई गई प्रतीत होती थीं। भोजन तो वहाँ बढ़िया मिला—पूड़ी, साग, अचार, चटनी आदि। भूदेव शर्मा और मैं तो ठीक थे, हाँ, भगवती बाबू ही कुछ शहरी थे। डटकर खा-पीकर हम सो गये।

अगले दिन प्रातःकाल लखनऊके लिए रेलसे रवाना हुए। रेलके डब्बेमें जैसे ही पहुंचे, वैसे ही वहाँ बैठे यात्रियोंकी आँखें और नाकें चढ़ गईं। दो चार यात्री चिल्लाये, "अरे साहब! इतनी खुली हींग क्यों ले जा रहे हो?" हमने बताया, "हमारे किसीके भी पास हींग नहीं है।" जहाँ हम बैठते, लोग खसककर दूर हो जाते और कहते, "ये लड़के हींगके ही बने हैं क्या!" हमारी किसी भी बातसे उन्हें सन्तोष न होता और केवल यही समझते कि मैं और भूदेव शर्मा हींग उठानेवाले पल्लेदार हैं।

आगरेसे हम चार विद्यार्थी कानपुरको चले थे। कानपुर पहुंचकर हम तीन रह गये और कांग्रेस-अधिवेशनके लिए लखनऊको तो हम दो हो गये—मैं और भूदेव शर्मा। लखनऊ पहुंचकर हमने कांग्रेस-अधिवेशनके पण्डालको विस्फारित नेत्रोंसे देखा। उर्दू मिडिल पास किया था, इसलिए उर्दूके प्रमुख कवियोंके विषयमें थोड़ा ज्ञान था। 'अनीस' और 'दबीर' के मर्सिये याद थे। उस छोटी उमरमें उस्ताद 'नासिख़' के विषयमें भी काफ़ी जानकारी थी। आधुनिक कवि 'चकबस्त' की तो कई राष्ट्रिय कविताएँ कंठस्थ थीं, पर लखनऊका हमारा मुख्य आकर्षण तो कांग्रेस-अधिवेशन था। स्टेशनसे उतरकर हम लोग लखनऊके डालीगंज मुहल्ले होते हुए मेडिकल कालेज पहुंचे और श्री रतनलालजी के कमरेमें जाकर देखा, तो मालूम हुआ कि वे तो अपने गाँव (बुलन्दशहर जिला, उत्तर-प्रदेश) चले गये और हमारी व्यवस्था अपने एक साथी श्री हरिशंकर चतुर्वेदीके सुपुर्द कर गये। श्री हरिशंकर चतुर्वेदीने अपनी नैसर्गिक सरलतासे हम लोगोंसे कहा, "आप लोगोंके रहनेका प्रबन्ध गणेशगंजमें पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदीके यहाँ कर दिया गया है। आप

कुछ भी चिन्ता न करें, मेरा पत्र लेते जायँ और दिखा दें। वहाँसे कांग्रेस पण्डाल बहुत निकट है।" स्मरण रहे, कांग्रेस का सन् १९१६ का वार्षिक अधिवेशन वर्त्तमान चारबाग स्टेशनके स्थानपर हुआ था, उस समय वहाँ स्टेशन न था। मैंने झेंपते हुए दबी जुबानसे पूछा, "पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी कौन हैं, कहाँके हैं?" श्री हरिशंकर चतुर्वेदीने जवाब दिया, "पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी मेरे ही गाँव चन्द्रपुर, जिला आगरा के रहनेवाले हैं।" कुछ अधिक न जानकर हम लोग अन्यमनस्क गणेशगंज आ गये। श्री हरिशंकर चतुर्वेदीका पत्र पाकर एक शान्त, सरल तथा विनयी महानुभावने हमारा ऐसा स्वागत किया, मानो उनसे हमारा वर्षोंका घनिष्ट परिचय हो। नौकरको बुलाकर एक भीतरी बरामदा हमें दिया, जिसमें १०-१२ चारपाइयाँ पड़ी थीं। हमारा स्वागत करनेवाले स्वयं पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदीजी ही थे। नौकरों को मीठी, पर अधिकारपूर्ण वाणीमें उन्होंने आज्ञा दी कि हम लोगोंको कोई तकलीफ न होने पावे। हमको भी आदेश दिया कि किसी बातका संकोच न करें। अपरिचितोंसे इतनी उदारता कभी नहीं पायी थी, अतः हमें सन्देह हुआ कि इस सौजन्यके पीछे कहीं कोई दुकानदारी तो नहीं है। हमारी सादगी पर कालेजके सहपाठी हँसते थे। बस पढ़ाई-लिखाईमें अत्यधिक अच्छे होने और शारीरिक बलके बूतेपर ही हम उन्हें चिढ़ा सकते थे। कालेजके बाबू विद्यार्थी अन्यथा हमें भगा ही देते। सौभाग्यसे हमें सत्संग मिला था, अतः शिष्टाचारका अभाव हममें न था। हम वहीं ठहर गए। पर उस मकानमें हमने देखा कि पचास-साठ और व्यक्ति भी टिके हैं। फीरोजाबाद (आगरा) के कई चौबे हमें मिले। प्रसिद्ध इतिहासकार पं० ईश्वरीप्रसाद उपाध्याय भी वहीं टिके थे। हमें देखकर वे चौंके और बोले, "तुम लोग यहाँ कैसे?"

दोपहरका खाना जो आया, तो देखकर ही हम लोग दंग रह गए। शुद्ध घीकी बढ़िया कचौड़ियाँ, पूरियाँ, कई प्रकारकी मिठाइयाँ, अचार, चटनियाँ, रायते इत्यादि की भरमार थी। एक तो उन दिनों हाजमा हो पत्थर-हजम था, तिसपर हम लोग खूब चलते-फिरते रहते थे, अतः डटकर खाया। खाना खानेके बाद श्री भूदेव शर्मा और मैं घूमने निकले। हमारी मुखाकृति पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। हम तो केवल रात बितानेके लिए कोई स्थान चाहते थे। स्थान तो हमें मिला, बहुत बढ़िया स्थान, पर साथमें आवभगत और दावतोंके-से भोजनकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। विचार-विनिमयके बाद अपने संकीर्ण मापदण्डसे हम इसी नतीजे पर आए कि पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदीने कांग्रेस अधिवेशनसे अवसर पर एक होटल-सा खोल दिया है, अतः हमें खूब कसकर दाम देने होंगे। यह लेखक निष्पक्ष और संतुलित बातका तो अब कायल है, पर उस गधा-पचीसीसे भी कम उमरमें हम इसी नतीजेपर आए कि पं० मुक्ताप्रसादजीके होटलमें बुरे फँसे। वहाँसे भाग जानेमें रतनलालजीकी बात जाती। बस, हमने फैसला किया कि खाना खूब कस कर खाया जाय, ताकि पूरे दाम वसूल कर लिये जायँ। दैनिक भोजनकी रूप-रेखा इस प्रकार थी कि प्रातः लगभग सौ आदमियोंके लिए बढ़िया-से-बढ़िया हलुआ बनता। हलुएके साथ एक गिलास बढ़िया दूध या चाय मिलती और एक प्लेट नमकीनका होता। पर हलुएका लेना सीमित न था, अगर कोई चाहे तो पेट भरकर अथवा कई बार ले सकता था। दूध और चायकी भी कमी न थी। दोपहर को पूरी, कचौरी, मिठाइयाँ, रायते रहते। शामको चार बजे चाय और दूधके साथ फलोंका दौर रहता और रातको दोपहरवाली प्रक्रिया दुहराई जाती। चौबोंकी खुराक वैसे भी कुछ अधिक होती है, पर भूदेव शर्मा और मैंने तो वहाँ चौबोंको कई बार हराया था। कारण यह था कि हम केवल भोजन ही नहीं करते थे, वरन् अपनी कल्पना द्वारा प्रस्तावित अदायगीके बदलेमें बढ़िया भोजनकी ठुसाई करते थे। हमारी खुराक देखकर चतुर्वेदीजीके नौकर अपनी नज़रोंसे हार्दिक घृणा प्रगट करते थे। उनकी समझमें ही न आता था कि एक भले आदमीके यहाँ अन्य भले आदमियोंके साथ दो गँवार भुक्खड़ कैसे आ मरे! जब-जब हम बढ़िया भोजन मँगाते, उतनी ही बार वे बड़े आदरसे लाकर देते। पर हम ताड़ जाते कि परोसते समय उनकी निगाहोंमें उनके आंतरिक क्लेश और क्रोधका प्रदर्शन होता। नौकरोंका क्रोध युक्तियुक्त था। प्रातःकाल वहाँ टिके लोग एक बारके परसे हलुएमें से कुछ छोड़ देते, पर हम लोग तीन-तीन और कभी-कभी चार-चार बार हलुआ मँगाकर अपनी रकम वसूल करनेमें जूटे रहते।

दस या बारह दिनों तक अपने कल्पित होटलमें हम लोग ठाटसे टिके रहे। तिजुना-चौगुना भोजन करते। कांग्रेस अधिवेशनमें होनेवाली सभी सभाएँ हमने देखीं। थियोसौफीसे लगाकर सामाजिक कांफ्रेंसों तक तथा अन्य

छोटी-मोटी सभाओंसे लगाकर मुस्लिम लीग तकको हमने नहीं छोड़ा। रातमें कोई कांफ्रेंस होती, तो अपने कथित होटलसे डटकर पेटपूजा करके कांफ्रेंसमें जा डटते। पं० मुक्ताप्रसादजीके स्थानपर सोनेके लिए आने-जानेमें कोई पाबन्दी न थी। लंगर-सा पड़ा रहता और वहाँ टिकने-वाले व्यक्ति अपनी ही सुविधासे आते-जाते। जीवनमें उस प्रकार की सुविधा फिर कभी नहीं मिली।

कांग्रेस-अधिवेशन तथा सभा-सोसाइटियोंके काम बन्द होने आए और अधिवेशनके दो दिन बाद तक पं० मुक्ता-प्रसादजीका प्रबन्ध चलेगा, यह बात सबको मालूम हो गई। पर हमको अब यहाँ केवल दो ही दिन रहना है, यह जानकर बड़ी चिन्ता हुई। चिन्ता दावत बन्द होनेकी नहीं थी, वरन् उस सस्ते समयमें भी प्रति व्यक्ति बीस-पच्चीस रुपयेसे कम खर्चा नहीं बैठा होगा। घरसे मँगानेका सवाल ही नहीं था और पासमें एक-एक रुपया था। तय यह किया गया था कि अधिवेशनके बाद छुट्टियाँ खतम होते ही श्री रतनलालजी लखनऊ आ जायेंगे, तब उनसे कर्जा लेकर अदायगी की जायगी। आगरे पहुंचकर सुविधानुसार रुपये चुकाये जायेंगे। लज्जा और संकोचसे दबे हम लोग रतनलालजीके कमरेपर पहुंचे। सौभाग्यसे रतनलालजी मिल गये। कमरेसे बाहर बुलाकर मैंने दुखी मुद्रामें कहा, "हम लोगोंको अपने लखनऊ-प्रवासके समय ठहरने और भोजनका खर्चा पं० मुक्ताप्रसादजीके होटलमें कर देना होगा? आप कृपया हिसाब कर दें और हम आगरे जाकर धीरे-धीरे भेज देंगे।" रतनलालजी मुस्करा गये, बोले, "कैसी मूर्खोंकी-सी बातें करते हो! वहाँपर टिके किसी भी व्यक्तिको कुछ भी नहीं देना। बेचारे पं० मुक्ताप्रसादजीने तो आतिथ्य-सत्कार की खातिर सब किया था। मेरे मित्र हरिशंकरने उसीमें आप दोनोंको भी टिका दिया।" बात सुनते ही दिलको धक्का-सा लगा। दस-बारह दिनों तक हम लोग शाही ठाट से रहे और उस महामानवको हम अपने संकीर्ण मापदण्डसे नापकर यही कहते रहे कि उन्होंने होटल खोल रखा है! हम समझ ही नहीं सकते थे कि कोई व्यक्ति इतना दयालु और निष्कामसेवी हो सकता है। इस अल्हड़ उमरमें हमारी संकीर्ण भावना कोई बेजा भी न थी। पं० मुक्ताप्रसादजीके यहाँ साठसे सौ व्यक्तियों तकका भोजन रोज बनता था। हम समझ ही नहीं सकते थे कि कोई व्यक्ति शुद्ध आतिथ्य भावसे इतने व्यक्तियोंको शुद्ध भोजन दे सकता है। उन दिनों कांग्रेस-अधिवेशनोंमें शामिल होनेवालोंसे अप्रत्यक्ष रूपसे भी किसी लाभकी कोई आशा न थी।

नैतिक हारकी छाप लगाये और अपनी कुभावनाओंपर पश्चात्ताप करते, पराजित सैनिकोंकी भाँति हम पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदीके घर आये। अभी एक दिन और रहना था, पर जानेमें कोई रुकावट नहीं थी। उस दिन हमने भले आद-मियोंकी भाँति अपनी भूखके अनुसार ही भोजन किया और प्रथम बार ही भोजनभट्ट नहीं बने। नौकरोंको कुछ आश्चर्य हुआ कि उनके यहाँ टिके दो गँवारोंमें परिवर्तन कैसे आ गया।

भोजनके बाद हमने निश्चय किया कि लखनऊ भी खूब देखा, अधिवेशन भी खूब देखा, सैर-सपाटा भी किया और अपनी मनोवृत्तिपर लज्जित होते हुए लौट चलें। चलते समय हमने एक-एक रुपया नौकरोंको दे दिया। जैसे पं० मुक्ता-प्रसादजी हमारे लिए रहस्यमय व्यक्ति थे, वैसे ही नौकरोंके लिए हम थे। रुपये पाकर उनकी भावभंगी ऐसी बदली, जैसी किसी भले आदमीको देखकर बदल जाती है।

लखनऊसे चलकर कानपुर आये और वहाँसे कन्सेशन टिकट कटवाकर आगरे पहुंचे। सन् १९१६ की कांग्रेसपर यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक होगा, वह तो अलग एक लेख का विषय हो सकता है। हाँ, हमारे मनमें सन् १९१६ से यह भावना जोर पकड़ती गई कि हम किसी दिन पं० मुक्ता-प्रसादजीके घर जाकर क्षमा-याचना करें। एक दिन सन् १९३८ में जब इन पंक्तियोंका लेखक उत्तर-प्रदेश सेक्रेटरियेट में बैठा ग्राम-सुधार अफसरकी हैसियतसे फाइलमें कुछ देख रहा था, तो अर्दलीने एक चिट लाकर दी। लिखा था—मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी। फौरन ही तो उनको बुला लानेकी आज्ञा दे दी गई। पं० मुक्ताप्रसादजी आये, तो मैंने खड़े होकर प्रणाम किया। बैठते ही वे बोले, "मुझे कुछ काम नहीं है। मैं केवल दर्शन करने चला आया हूं। मैंने सुना है, आप उधरके ही हैं, मैं भी बाह तहसीलका रहनेवाला हूं।" मैंने कहा, "आप मुझे नहीं जानते होंगे, पर मैं आपको सन् १९१६ से ही जानता हूं। मुझे आपके घर आकर माफी माँगनी है। आशा है, आप क्षमा कर देंगे।" मेरी रहस्यमय बात सुनकर वे घबरा-से गये और बोले, "मुझसे ही कोई भूल हो गई होगी, आपसे क्या होगी।" मैंने उत्तर दिया, "कभी आधे घण्टे बैठकर बात करूँगा, तब आपको मालूम होगा कि मैंने अनजानेमें आपका अपमान किया था।"

पं० मुक्ताप्रसादजी मेरे दफ्तरसे थोड़ी देर बाद चले गये।

जीवन-सरिता दाव-पेंच खाती टेढ़े-मेढ़े मार्गसे बहने लगी। दसों बार लखनऊ जाना हुआ, पर पं० मुक्ताप्रसादजी के यहाँ जानेका साहस नहीं हुआ। पर एक दिन उनके सुपुत्र पं० निर्मलकुमार चतुर्वेदीसे मैंने सब बातें कह दीं कि वे सब बातें अपने पूज्य पिताजीसे कह दें। पं० निर्मलकुमारजीने आग्रह किया कि जब कभी मैं लखनऊ आया करूँ, तो उन्हींके घर ठहरा करूँ। मैं समझ गया कि पं० निर्मलकुमारजी भी अपने पिताके ही पदानुरागी हैं। पर मैं कभी भी वहाँ जा न सका। गत २४ मई १९५८ को मैं 'सरस्वती' के सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदीके साथ पं० निर्मलकुमारजीके मकानपर गया। वहाँ खाना खाया। बाह्य रूपसे तो मैं पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी और पं० निर्मलकुमार चतुर्वेदीके साथ था, पर आत्मा स्व० पं० मुक्ताप्रसादजीकी खोजमें थी। खाना खाने और मकानसे बाहर आने तक ऐसा ही लगता कि कहीं वह आत्मा साकार हो जाय, तो पुराना माफीनामा पेश कर दूँ, पर विधिकी गति बड़ी विकट है! लोग बढ़िया भोजन कराते हैं, दावतें भी देते हैं और मन्त्रियोंकी मनौती मनाते हैं, पर सबके पीछे कुछ स्वार्थ, कुछ कार्यकी भावना होती है। पं० मुक्ताप्रसादजी जैसे महाप्राण देशसे सर्वदाके लिए विसर्जित हो रहे हैं। वह टाइप अब मिट ही रहा है। आतिथ्य-सत्कार करके पं० मुक्ताप्रसादजी जैसे व्यक्तियोंको अपनी आत्मा बलिष्ठ ही करती थी। कुटुम्ब, मानव, लोकके प्रति यह भावना आज कितनोंमें है? हमने जब यह बात भाई पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीके पिता स्व० कक्कासे कही, तो सजल नेत्रोंसे वे बोले, "मुक्ताप्रसाद तो मेरा शिष्य है।" स्व० कक्का एक संस्था थे और पं० मुक्ताप्रसादजी भी एक संस्था थे। स्व० मुक्ताप्रसादजीके आतिथ्यसे मैंने एक सबक सीखा और उसे निभानेकी भी कोशिश की कि किसीके भी बारेमें मैं जल्दी ही कोई गलत धारणा नहीं बनाता। स्व० मुक्ताप्रसादजीका स्मरण होते ही कविवर असगरकी यह बात मुँहसे निकल जाती है—

'तुमने जहाँ बदल दिया आकर मेरी निगाहमें।'

[पं० मुक्ताप्रसाद चतुर्वेदी स्मृति-ग्रन्थके लिए लिखित]

—*—

[पृष्ठ १९ का शेषांश]

रहा था। वे बोले, "The road to India is op n"—भारतके लिये रास्ता साफ है। इस कथनके दस दिन बाद ही फिलैडिलफियामें हृदयकी गति रुक जानेसे उनका स्वर्ग-वास हो गया। उस समय वे ५४ वर्षके थे।"

४ मार्च १९३९ को लालाजी परलोक पधारे पर राय-टरने भारतवर्षको यह समाचार तारसे भेजना जरूरी न समझा! यहाँ यह खबर महीने भर बाद मिली! लाला लाजपत रायने एक जगह लिखा था—"लाला हरदयाल लाखों भारतीयोंके आँखोंके तारे हैं और उनका व्यक्तित्व अनुपम है।"

जब श्रीमान पंडित जवाहरलाल नेहरू अमरीका गये थे, तो मि० ब्रुक्सने उनसे पूछा था—"क्या आपको लाला हरदयालकी याद है?" तो उन्होंने उत्तर दिया—"We all remember Hardayal." अर्थात् लाला हरदयालको हम सभी याद करते हैं।

ब्रुक्स लिखते हैं—"लाला हरदयालको किस तरह याद किया जाता है, यह मैंने जानबूझ कर नहीं पूछा।"

पुरानी दिल्लीमें एक गली है, जहाँ लाला हरदयालका जन्म हुआ था। दिल्ली-निवासियोंने उस गलीका नाम, बिना एक धेला खर्च किये, 'हरदयाल गली' रख दिया है। यही गली उस महान क्रान्तिकारीकी एकमात्र यादगार है!

अद्वितीया

"वनफूल'

बेफिक्र ज़िन्दगी बिता रहा था।

दफ्तरमें बड़े साहब और घरमें छठी भाईकी असीम कृपा मुझपर थी। साहबके कारण मेरी तनख्वाह और छठी भाईके कारण मेरे परिवारकी संख्या बढ़ती जा रही थी। मेरे पुरखोंमें से कोई जीवित न था। उत्तराधिकारीके रूपमें कुछ रुपये भी मिल गये थे। ऐशो-आरामसे दिन बीत रहे थे।

सालमें औसत ढेढ़ सन्तानोंको जन्म देकर प्रभावती (मेरी पत्नी) ने मुझे चार सालोंमें ही छै औलादोंका बाप बना दिया था—हां, बीचमें दो बार मुझे जुड़वाँ बच्चे मिलनेका सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था।

मगर परिवारकी संख्या अनवरत बढ़ जानेपर भी मुझे कोई खास कठिनाई प्रतीत नहीं हुई।

इस साल मेरी पत्नीके पाँचवाँ बच्चा हुआ। विषय स्वाभाविक होनेपर भी इस बार मामला कुछ टेढ़ा-सा मालूम हुआ। क्योंकि इस बार मेरी पत्नी चल बसी। वह अपने मायके शान्तिपुर गई हुई थी। मेरे सास-ससुर तो बहुत दिन हुए स्वर्ग सिधार गये थे, फिर भी मेरे साले विनोदके डाक्टर होनेके नाते प्रभा हर साल हो अपने भाईके यहाँ चली जाया करती थी। विनोदने लिखा—

"अचानक बहन 'एक्लेम्पसिया' से तीन-चार घण्टोंमें ही चल बसीं। आपको खबर देनेका समय भी नहीं मिला। 'किडनी' कुछ ठीक नहीं थी। मझली बहन बच्चोंको लेकर सम्बलपुर रवाना हो गई हैं। शायद उनकी चिट्ठी आपको मिली होगी।"

बहनका भी पत्र मिला। लिखा था—"क्या तसल्ली दूँ भाई! नसीबमें जो लिखा है, उसे कौन टाल सकता है! तुम्हारे बच्चे अब कुछ दिनों तक मेरे पास ही रहेंगे। मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। मेरे तो कोई बाल-बच्चा नहीं है। तुम्हारे बच्चे बिलकुल ठीक हैं। कोई चिन्ता न करना। इति....."

मजबूर होकर छुट्टीका दरख्वास्त पेश कर दिया। बदकिस्मतीसे उस समय बड़े साहबकी दूसरी जगह बदली हो गई थी। अतः छुट्टी मंजूर नहीं हुई।

दो महीनोंके बाद।

सम्बलपुरमें जो साली रहती थीं, उनसे एक पत्र मिला। और बातोंकी पूछताछ करनेके बाद वे लिखती हैं—"प्रभा सचमुच सती लक्ष्मी भाग्यवती थी। वह चली गई है, बड़े ठाटसे इस प्रकाशमान संसारमें अपने स्वामी-पुत्र सब-कुछ छोड़ चली गई है। लेकिन इससे तुम्हारे लिए अब घर-बार, जिन्दगी बरबाद कर देना ठीक नहीं है। इस प्रकार अपना सत्यानाश करना बिलकुल ठीक नहीं। मेरी बात मान जाओ। फिर तुम शादी कर लो। यहाँपर एक जवान-स्यानी लड़की है, अगर तुम चाहो, तो इस मामलेमें मैं आगे बढ़ूँ। मुझे तो लड़की बहुत पसन्द है। तुम्हें भी ज़रूर पसन्द आयेगी।" आदि बहुत-सी बातें उन्होंने लिखीं।

सात दिन सिर मारता रहा— एक टिन चाय और पाँच टिन सिगरेट खतम कर डाले। आखिर इस समस्याके जिस हलपर मैं पहुंचा, वह बिलकुल ही स्वाभाविक था। जीजीको जो चिट्ठी भेजी, उसका कुछ अंश इस प्रकारका था—

"शादी करनेको जी नहीं चाहता। प्रभाकी याद हमेशा आ जाती है। लेकिन जीजी, मेरे चाहने-न-चाहनेपर तो संसार नहीं टिका हुआ है। वह तो अपनी मर्ज़ीसे चलता है और चलेगा भी। इसलिए इस हालतमें भावनाओंका अरमान लेकर बैठे रहनेमें दुनियाकी वाहवाही मिलनेपर भी कोई अक्लमन्दीका काम नहीं है—और यह सही बात है। फिर सोचो, हम लोग 'मा फलेषु कदाचन' वाले देशमें पैदा हुए हैं। इसके उपरान्त तुम लोगोंकी भी वही इच्छा है, इसीलिए फिरसे नया संसार बसानेकी चेष्टा करना ही उचित होगा।...दुबारा शादी करनेमें पसन्दगी न-पसन्दगीका क्या सवाल है? तुम्हें तो पसन्द आई न?..."

धीरे-धीरे शादीका दिन ठीक हो गया। सम्बलपुरमें शादीका सारा इन्तजाम किया जायगा। सचमुच जीजीकी बुद्धि है। लिखा है—"बच्चोंको लाहौरमें बड़ी बहनके पास

भेजे दे रही हूँ। बापकी शादी नहीं देखनी चाहिए।" समस्या हल हुई सोचकर ज़रा आराम मिला।

नियत समयपर साहबके पास अर्ज़ी पेश की और एक हफ्तेकी छुट्टी ले सीधा सम्बलपुरकी ओर चल पड़ा। हाँ, अकेला ही रवाना हुआ। ऐसी शादीके विषयमें औरोंसे कैसे कहूँ? न-जाने क्या सोचकर मूँछोंको बिलकुल साफ कर दिया। यों तो काला-कलूटा चेहरा, फिर कच्ची-पक्की मूँछोंसे भरा हुआ मुँह लेकर शादी करनेको जाना ठीक नहीं महसूस हुआ।

शादीका बासर।

घूँघट डाले हुए, चोली पहने हुए जो लड़की खड़ी है, वह मेरे जीवनकी साथिन बनने चली है। इसी तरह प्रभा भी मेरे जीवनमें एक दिन आई थी। आज फिर कोई नई आ रही है। कौन जाने इसकी 'किडनी' कैसी है। कितनी अंटसंट बातें मनमें झूमने लगीं। प्रभाका चेहरा बारबार याद आने लगा। क्या मालूम बच्चे सब अब क्या कर रहे हैं?……मरनेके बाद सचमुच क्या आत्माकी हस्ती रहती है?……यह लड़की तो कुछ स्यानी ही नज़र आ रही है। मगर बहुत सहमी हुई बैठी है—सर एकदम नीचा करके बैठी है। अच्छा, अगर प्रभाकी आत्माका……गृहणामि…… गृहणामि···

कलोंकी भाँति शादीका उत्सव मनाया जाने लगा। शुभदृष्टिके समय लड़कीने किसी तरह घूँघटपट नहीं खोला। जीजीने कहा—'लड़की बड़ी शर्मीली है।' बासर-घरमें भी सुना—'लड़की बड़ी शर्मीली है।'·· सरसे पैर तक ढककर सो गई। मैं भी सोया। जीजीने किसीको छेड़छाड़ करने का मौक़ा नहीं दिया। हाँ, बात भी सही थी। दूसरे पक्षकी शादी—हुज्जत करना शोभा नहीं देगा। लड़कीका अपना कोई नहीं था। दूसरोंके घर यानी मामाने पाल-पोसकर बड़ा किया है। जीजीके घरमें शादी हो रही है—असलमें दुलहनकी तरफसे जीजीने सारा लेन-देन किया। इसी कारण शादीका कोई खास उत्सव नहीं हुआ।

× × ×

लेकिन सुहाग-रातमें करवट बदल गई। जब हृदयमें पूर्ण आशा व भय लिये कमरेमें घुसा, तो देखा, छै औलादों तथा एक नवजात शिशुको लेकर प्रभा स्वयं चारपाईपर बैठी हुई है। एक बार सोचा कि ऐं, कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं?—फिर प्रभाका स्वर सुनाई दिया—छिः छिः छिः।

आखिर, जीजीकी ही जीत हुई।

क्या मतलब?

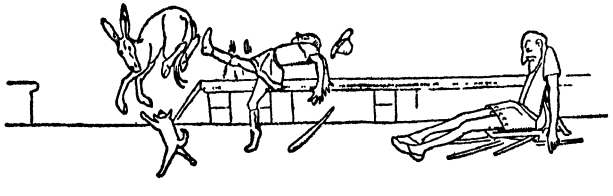
मतलब कुछ नहीं। इस बार प्रसवके समय बड़ी तकलीफ हुई। मेरा केवल यही कसूर था कि मैंने जीजीसे कहा था कि मेरे मर जानेसे तुम्हें बड़ा कष्ट होगा। इसके उत्तरमें जीजी बोली—'कुछ भी नहीं होगा। तीन महीने न बीतेंगे कि तुम्हारा शौहर फिर शादी कर लेगा।' मैं बोली, हरगिज़ नहीं। इसके बाद जीजी और विनोदने मिलकर बाज़ी लगाई और इस सारे नाटककी रचना की। मैं शान्तिपुरमें ही थी। आज ही शामको उनके बुलानेपर आई हूं। आकर देखा कि जीजीकी ही जीत हुई है। मुहल्लेका लड़का मानके को दुलहिन सजाकर बाज़ी जीत ली है। लो, अब सौ रुपये निकालो! छिः, छिः, तुम पुरुष कैसे होते हो! अच्छा, वैसी बहारनेवाली मूँछोंको किसलिए बना लिया?

उस वक्त मेरी क्या हालत थी, वह कहना ही बेकार है।

× × ×

दूसरे दिन सबेरे ही जीजीका पावना चुका दिया। अब जितना जल्द मूँछ उग जाय, उतना ही अच्छा है।

अनु०—अमल सरकार



गांधीजीका सेवाग्राम

सिंथिमा बाउल्स

भारतवर्षके मध्यप्रदेशमें, मानो उसके हृदयमें, एक छोटा, किन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण गाँव है, जिसका नाम है—सेवाग्राम। उस छोटे-से गाँवका यह 'सेवाग्राम' नाम और उसका महत्त्व नया ही है। वैसे तो गाँव पुराना है और १९३५ के वसन्त तक किसी भी भारतीय गाँव-जैसा ही एक था। तभी सारे राष्ट्रमें सम्मानित महात्मा गांधी वहाँ रहनेके लिए गये।

गाँवके किनारे गांधीजीने एक आश्रमकी ऐसी जगह स्थापना की, जहाँ वे तथा दूसरे लोग गांधीजीके सिद्धान्तोंके अनुसार रह सकें। सेवाग्राममें इस प्रकारके आश्रमकी सृष्टि उन्होंने मुख्यतया यह सिद्ध करनेके लिए की कि भारतके पिछड़ेसे पिछड़े गाँवमें भी एक शिष्ट समाजका विकास किया जा सकता है। इस लक्ष्यकी पूर्तिकी दिशामें गांधीजी और उनके दो शिष्यों—आर्यनायकम् और उनकी पत्नी आशा देवी—ने जो मुख्य कदम उठाया, वह था 'नई तालीम' नामक नई शिक्षा-पद्धतिका निर्माण, जिसे सेवाग्रामकी पाठशालाओंमें कार्यरूपमें परिणत किया गया। गांधीजीका विश्वास था कि "जीवनमें कोई छोटी-से-छोटी चीज भी ऐसी नहीं, जिसका शिक्षासे सम्बन्ध न हो।" इसीलिए वे अपनी इस नई शिक्षा-पद्धतिको "जीवनके लिए शिक्षा" कहते थे।

शिक्षा और जन-स्वास्थ्यके प्रति स्टेवको विशेष रुचि है; अतएव सेवाग्राम जानेकी उनकी बड़ी इच्छा थी। इसलिए सन् १९५२ की जनवरीके मध्यमें एक संध्याको वह, सैली, सैम और मैं दिल्ली रेलवे स्टेशनसे दक्षिणकी ओर जानेवाली गाड़ीपर सवार हुए और दूसरे दर्जेके एक छोटे-से डिब्बेमें आरामसे बैठ गये। जल्दी ही हमारी गाड़ी धीमी चालसे स्टेशनके पार हुई। फिर उसने रफ्तार पकड़ी। शहर पीछे रह गया और रेल अँधेरेको चीरती हुई आगे बढ़ने लगी। हम दूसरे दिन रातको वर्धा पहुंचनेवाले थे, जो सेवाग्रामसे पाँच मीलकी दूरीपर एक छोटा-सा स्टेशन है।

हमारे डिब्बेमें चमड़ेके गद्दोंवाली दो सीटें नीचे थीं। दीवारसे लगी हुई दो सीटें ऊपर भी थीं। इस प्रकार चार व्यक्तियोंके सोनेकी व्यवस्था थी। सभी भारतीय रेलोंके डिब्बोंकी तरह यह डिब्बा भी लम्बा था। दोनों तरफ एक-एक दरवाज़ा था और लोहेकी छड़ोंवाली दो-दो खिड़कियाँ थीं, जो खुल सकती थीं। छतमें एक बिजलीकी बत्ती और पंखा लगा हुआ था। आगे-पीछेके डिब्बेसे उसका कोई सम्बन्ध न था। इसलिए जब तक गाड़ी किसी स्टेशनपर न रुके, तब तक उसमें से कहीं आना-जाना नहीं हो सकता था।

उस रातको केवल हम लोग ही उस डिब्बेमें थे और रेलके पहियोंकी आवाज़की थपकियोंके बीच हम खूब आरामसे सोये। फिर भी स्टेशनपर रुकनेके समय खोमचेवालोंकी चीख-पुकारसे हमारी नींद बीच-बीचमें उचट जाती थी। रातके वक्त रह-रहकर "नारंगी, नारंगी; अच्छी-अच्छी नारंगी"; "गरम दूध, गरम दूध"; "दाल-सेव, दाल-सेववाला"; "चाय, चाय, गरम चाय" की आवाजें रह-रहकर गूँज उठती थीं। मेरे भारतसे रवाना होने तक ये आवाजें मेरी रेल-यात्राके समयकी नींद और सपनोंकी मनोरंजक पृष्ठभूमि बन चुकी थीं; किन्तु उस रातकी आवाजें अपरिचित और नई थीं, जिनसे हम जाग जाते थे।

कभी-कभी खोमचेवालेकी आवाज़के साथ कोई भिखारी अपनी आवाज़ मिला देता था। एक जगह एक चंचलसे लड़केने खिड़कीमें सिर डालकर झाँका और गिड़गिड़ाकर बोला—"दो पैसा दो मेम साहब, मा नहीं है मेम साहब, भूखा हूं।" किन्तु वह खूब अघाया हुआ और तगड़ा दीखता था। इसलिए हमने सोनेका बहाना कर लिया; किन्तु दूसरे विकृत अंगवाले अपाहिज और मरियल भिखारियोंसे पीठ मोड़ लेना इतना आसान न था।

अगले रोज दिनमें गाड़ी जहाँ भी रुकती—कई घण्टे-घण्टे भर बाद वह रुकती थी—हम बार-बार पानी पीने, कुछ फल खरीदने या सिर्फ अपने पैर सीधे करनेके लिए डिब्बेसे उतर जाते थे। हम एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चक्कर लगाकर पहले, ज्योढ़े और तीसरे दर्जेका निरीक्षण करते थे।

पहले दर्जेका डिब्बा दूसरे डिब्बेके दर्जेसे भिन्न नहीं लगता था, सिवा इसके कि उसमें हम लोगोंके बैठनेका प्रबन्ध था और शायद उसकी गद्दियाँ ज़रा ज्यादा नर्म थी। पहले दर्जेके टिकटका मूल्य दूसरे दर्जेके टिकटसे लगभग दूना था और वास्तवमें बहुत कम लोग इतना ज्यादा खर्च उठा सकते थे। मेरी समझमें नहीं आता कि आखिर लोग पहले दर्जेमें यात्रा क्यों करते हैं, सिवा इसके कि वे इसीमें अपनी प्रतिष्ठा मानते हैं।

ब्योढ़े दर्जेके डिब्बे दूसरे दर्जेके डिब्बेसे जरा बड़े थे, लेकिन उनमें ज्यादा लोग बैठे थे। उनमें बैठनेकी बन्चों-जैसी सीटें कम चौड़ी थीं और उनपर चमड़ेके पतले गद्दे लगे हुए थे। तीसरे दर्जेके डिब्बेमें हमेशा ही बुरी तरह भीड़भाड़ रहती है और उनकी कम चौड़ी सीटोंपर गद्दे नहीं होते। दिल्लीसे वर्धा तकके दूसरे दर्जेके प्रत्येक टिकटके लिए हमें लगभग ६० रुपये अथवा करीब-करीब १२ डालर देने पड़े थे। तीसरे दर्जेके टिकटके शायद २० रुपये या ४ डालरसे अधिक नहीं लगते।

बादमें मैंने जब कभी अकेले यात्रा की, मैं हमेशा तीसरे दर्जेमें ही बैठती। वहीं मैं सभी प्रकारके भारतीयोंसे मिली। मुझे उनसे बात करने, उनके साथ भोजन करने और उनके बच्चोंके साथ खेलनेका मौका मिला। ये तीसरे दर्जेकी यात्राएँ और दूसरे दर्जेमें सेवाग्रामकी यात्रा भी बढ़िया दो डिब्बोंमें नेपाल जानेके लिए की थी और मुझे कैसी अनुभूति हुई थी। इस नेपाल-यात्राकी धूमधाम मुझे नहीं सुहाई और मैंने चाहा कि काश! इस प्रकारकी धूमधाम और सम्पन्नताका परम्परानुसार कूटनीतिज्ञों और सरकारी अधिकारियोंसे अटूट सम्बन्ध न होगा।

मुझे विश्वास है कि रास्तेके स्टेशनोंपर जो लोग हमें कौतूहलसे देखते थे—वे उन लोगोंके साथ, जिन्हें वे अपनेसे ऊँचा समझते थे, वैसा आचरण नहीं करते, जैसा वे अपने मित्रों और बराबरवालोंके साथ करते हैं। इसीलिए मैं चाहती थी कि मेरे माता-पिता तथा दूतावासके दूसरे लोग जो हमारे साथ थे—किसी प्रकार अपनी हैसियतको छिपाकर उन लोगोंके साथ बराबरीकी हैसियतसे मिलने-जुलनेमें समर्थ होते।

हम उन लोगोंका सही अध्ययन कर सकते हैं। हम एक-दूसरेका अभिवादन कर सकते हैं और साथ-साथ मुस्करा सकते हैं। हमारा इस प्रकारका मिलन मैत्रीपूर्ण होते हुए भी मर्यादित होता है। मेरा विश्वास है कि इस आधारपर कोई किसी व्यक्ति, उसके परिवार या उसके गाँवके लोगोंसे वास्तविक, अनौपचारिक घनिष्टता स्थापित नहीं कर सकता।

मुझे यह आवश्यक लगता है कि वे लोग तुम्हें अपनायें—या तो तुम्हारी असलियतके आधारपर—जिसमें दुर्भाग्यसे काफी समय लगता है, या उन लोगोंके व्यवहार, बोलचाल और वेश-भूषासे तुम्हारे समन्वयके आधारपर। मेरी कामना है कि दुनियाके लोगोंको शीघ्र ही ऐसा अवसर और ऐसी इच्छा प्राप्त हो, ताकि वे दूसरोंको उनकी असलियतके आधार पर अपनानेके उद्देश्यसे एक-दूसरेको जानें। हरएक व्यक्ति महसूस करे कि वह वास्तवमें दूसरोंसे भिन्न नहीं है और जो भिन्नताएँ विद्यमान हैं, वे मैत्रीके मार्गमें बाधक नहीं होनी चाहिए।

पहले दर्जेकी भव्य नेपाल-यात्राका एक और पहलू था, जिसने मेरे विचारोंको झकझोरा, उसी तरह, जिस तरह औरोंके विचारोंको झकझोरा था। गांधीजीने एक बार कहा था कि "जब तक एक भी स्वस्थ औरत या मर्द बेकार या भूखा रहता, तब तक हमें आराम करने या भरपेट भोजन करनेमें शर्म आनी चाहिए।" इसीलिए गांधीजी कम-से-कम भोजन करते थे और उतना ही आराम करते थे, जितना कि अनिवार्य था। बाकी समय वे इस चिन्तामें लगाते थे कि भारतके प्रत्येक नर-नारीको काम और भोजन मिले।

मैं इसमें विश्वास नहीं करती, जैसा गांधीजी करते थे, चूँकि और लोग भूखे या बेकार हैं, इसलिए हमें भोजन और आराम करनेमें लज्जा आनी चाहिए; किन्तु मैं यह अवश्य मानती हूं कि जरूरतसे ज्यादा भोजन, जरूरतसे ज्यादा आराम और धनका बहुत अधिक दिखावा जैसी चीजें भी होती हैं। एक ऐसी सीमा है, जहाँ व्यक्ति महसूस कर सकता है कि वह मजेमें है। प्रत्येक व्यक्ति रोजी, चिन्ता-रहित और भरेपूरे घर, अच्छे भोजन और इच्छा अथवा ग्रहण-शक्तिके अनुसार अधिक-से-अधिक शिक्षाके रूपमें उस सीमाको प्राप्त करनेका अधिकारी है। इस सीमाके पार बाहुल्य प्राप्त करना मेरे ख्यालसे अनावश्यक और अनुचित है।

इसलिए मुझे खेद था कि हमारी नेपाल-यात्रा इतनी धूमधामकी थी, किन्तु शिष्टाचारके अनुसार ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसरपर इस प्रकारकी धूमधाम हमारे लिए आवश्यक थी। इसकी तुलनामें हमारी सेवाग्रामकी यात्रा शारीरिक रूपसे न सही, मानसिक रूपसे कितनी आरामदेह थी। गाड़ियोंकी

तरह स्टेशनोंपर भी भीड़भाड़ थी। कुली सिरपर ट्रङ्क या बड़े सन्दूक या पिटारियाँ उठाये प्लेटफार्मपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दौड़ लगाकर खाली जगहके लिए रेलकी खिड़कियोंमेंसे झाँकते थे। परिवारके परिवार उनके पीछे चले जाते थे। प्लेटफार्मपर खोमचेवाले अपने छोटे-छोटे ठेले ढकेलते हुए या अपनी डलियोंको बड़ी सावधानीसे उठाये हुए भीड़में धक्कमधक्का करते हुए चले जाते थे। एक व्यक्ति खिड़की-खिड़की जाकर यात्रियोंके पीतलके लोटे या मिट्टीके बर्त्तनोंको पीने योग्य पानीसे भरता था। डिब्बोंमें तो पानीकी व्यवस्था थी नहीं।

गाड़ी काफी देर तक ठहरती थी और यात्रियोंके परिवार प्लेटफार्मके किनारे बैठकर भोजन या आराम करते थे। लोग अपने पीतलके लोटे भर-भरकर अपने ऊपर उड़ेलकर नहाते थे। वे बड़ी होशियारीसे साफ धोतियाँ बदलकर उस धोतीको, जिसे अब तक पहने हुए थे, धोकर धूपमें सूखनेके लिए फैला देते थे।

धूल-धूसरित, किन्तु आरामदायक यात्राके बाद हम वर्धा पहुंचे। एक लम्बा व्यक्ति, जो घरसे कते हुए सूतकी सफेद धोती पहने हुए था, तुरन्त हमारे पास आया। उसने हमारा अभिवादन किया और आर्यनायकम्‌के नामसे अपना परिचय दिया। हम जानते थे कि आर्यनायकम् अपनी पत्नी आशा देवीके साथ—दोनों बादमें मेरे माता-पिताके घनिष्ट मित्र हो गये सेवाग्रामकी बुनियादी पाठशालाका संचालन करते थे और गांधीजीके निकटतम सहयोगियोंमें से थे।

जब हम एक पुरानी मोटरमें बैठकर कच्ची सड़कसे आश्रम जा रहे थे, तब (मुझे लगा कि अच्छा होता, यदि मैं पैदल चलती) हमारे मेजबानने दुग्धशाला, अस्पताल और पुस्तकालयकी ओर संकेत किया, जिन्हें हम दूसरे दिन सुबह देखनेवाले थे। हम आश्रम ठीक ऐसे वक्त पहुंचे कि संध्याकी प्रार्थनामें अन्य लोगोंके साथ शामिल हो सके।

तारों-भरे धुँधले आसमानके नीचे हम चुपचाप जमीनपर सभामें एक किनारे बैठ गये। प्रार्थनाएँ मराठी और हिन्दुस्तानीमें गाई गईं। इसलिए हम उन्हें समझ न सके; किन्तु एक वाक्य-रचनासे मुझे लगा कि वह 'लार्ड्स प्रेअर' (बाइबिलमें उल्लिखित एक प्रार्थना) होगी। बादमें हमें पता चला कि उस रातको हमने जिन प्रार्थनाओंको सुना था, वे प्रार्थनाएँ सभी धर्मोंकी थीं और लार्ड्स प्रेअर भी उनमें थी। सवर्ण और हरिजन हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभीने एकत्र होकर कुरान, बाइबिल और भगवद्‌गीताके पाठसे ईश्वरकी स्तुति की थी। वहाँ शान्ति थी—नीरव और आनन्ददायक।

प्रार्थना-सभाके बाद हमारे मेजबान श्री आर्यनायकम् और उनकी पुत्री मीट्टु, जो मेरी ही उम्रकी थी, हमें वह छोटी-सी मिट्टीकी पावन कुटिया दिखाने ले गई, जिसमें गांधीजी जब कभी जेलसे फुर्सत मिलती थी, आकर रहा करते थे। उनकी बहुत थोड़ी-सी और सादी चीजें वैसी ही रखी थीं, जैसी वे उन्हें छोड़ गये थे।

भारतीयोंके लिए कुटिया पावनतम स्थान है और उस छोटे-से कमरेमें खड़े होकर कोई भी व्यक्ति आवाज करके नहीं बोला। वास्तवमें मेरी भी इच्छा बोलनेकी नहीं हुई।

गांधीजीकी कुटियासे कुछ सौ गजकी दूरीपर मिट्टी और बाँसकी सादी-सी अतिथिशाला थी, जहाँ हमें ठहरना था। हमने वहाँ पहुंचकर भारतीय भोजन किया, जो लगभग आश्रमके बगीचेमें उगी हुई चीजोंसे ही तैयार किया गया था। भोजन बिलकुल सादा और बहुत कम मसालेका था; लेकिन था बड़ा अच्छा—भात, चपाती, भाजी, दाल और एक मिठाई।

गांधीजीके स्वप्नोंमें एक स्वप्न यह भी था कि एक दिन भारतका प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर हो जाय। उन्होंने एक बार कहा था—"ग्राम-स्वराज्यसे मेरा यह आशय है कि हर गाँव पूर्ण गणराज्य हो, अपनी आवश्यकताओंके लिए पड़ोसियोंपर किंचित्‌मात्र भी निर्भर न हो।" परन्तु उन बातोंमें, जिनमें एक-दूसरेपर निर्भर रहना आवश्यक है, वे एक-दूसरेपर निर्भर हों। इस प्रकार प्रत्येक गाँवका सर्वप्रथम काम होगा कि वह अपने खाने-पहननेके लिए अन्न और कपास उत्पन्न करे। पशुओंके लिए चारागाह हो; प्रौढ़ों और बच्चोंके लिए मनोरंजन तथा खेलके मैदानोंकी व्यवस्था हो; गाँवका अपना नाट्यगृह, पाठशाला और सभा-भवन हो। बुनियादी पाठ्यक्रम तक एक शिक्षा अनिवार्य हो। जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक कार्य सहकारिताके आधारपर किया जाय।" सेवाग्राम यह सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा था कि एक सारे भारतमें इस लक्ष्यकी पूर्ति हो सकती है।

सेवाग्राममें नौकर थे ही नहीं। आर्यनायकम्‌की पुत्री मीट्टु और उसकी सहेलियोंने हमारे लिए भोजन तैयार किया था। सोनेसे पहले मीट्टुसे मेरी बातें हुईं। उसने सेवाग्राम महाविद्यालयमें शिक्षा पाई थी। अपनी अधिकांश सहेलियों

के विपरीत वह अंग्रेजी जानती थी। उसने बताया कि आश्रमके प्रत्येक व्यक्तिको इस बातसे आश्चर्य हुआ कि वह अपने साथ कोई नौकर नहीं लाये। और हममें से प्रत्येकके पास केवल एक-एक झोला था, जिसमें हमारे पहननेके कपड़े थे। हमें वहाँ सिर्फ दो दिन ठहरना था। मुझे उनके आश्चर्यपर विस्मय हुआ। मैंने उसे बताया कि अमरीकामें बहुत ही कम लोगोंके पास नौकर हैं और चूँकि हमारे पास नौकर नहीं हैं, इसलिए हम सिर्फ जरूरी सामान लेकर यात्रा करते हैं। हम अमरीकी हैं और मैं नहीं समझती कि यह बात या कोई अन्य बात हमें यह अधिकार प्रदान करती है कि हम दिखावा करें। मैंने कहा कि अमरीकी होनेके नाते हमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि अमरीकी अपने देशमें करते हैं; तब तक जब तक कि हमारे इस व्यवहार और भारतीय रिवाजमें किसी तरहका संघर्ष न पैदा होता हो।

मीटूने स्वीकार किया कि हमारे लिए नौकरोंका साथमें लाना अस्वाभाविक होता। उसने मुझे बताया कि प्रायः जब विशिष्ट व्यक्ति वहाँ आते हैं, तो उनके साथ नौकर-चाकर तथा बहुत-सा सामान होता है। मैं सोचने लगी कि मीटू तथा आश्रमके अन्य लोगोंको भी ऐसे लोगोंके परावलम्बी और उलझन-भरे रहन-सहनके प्रति वैसा ही खेद होता था या नहीं, जैसा कि मुझे हुआ। हम जरा नीचे तख्तनुमा, मच्छरदानी लगे हुए और रजाईसे ढके हुए बिछौनेपर सोये। रात बड़ी सुहावनी थी।

सेवाग्रामको गांधीजीके आश्रमके लिए उनके इस निश्चित आदेशोंके अनुसार चुना गया था कि भारतके निर्धनतम भागमें निर्धनतम गाँव होना चाहिए। उनकी एक शर्त्त यह थी कि वहाँ तक बिजली नहीं होनी चाहिए, जब तक कि वह इतनी सस्ती न हो जाय कि निर्धनतम ग्रामीण भी उसे पा सके। जो लोग जा रहे थे, वे मिट्टीके तेलकी लालटेनोंकी मन्द रोशनीमें अपना काम कर रहे थे।

सुबहके पहले प्रकाशमें हमें किसीने धीमेसे जगाया। हम कपड़े पहनकर ६॥ बजे आश्रमके भोजन-गृहमें नाश्ता करनेके लिए तैयार हो गये, किन्तु हम अपेक्षाकृत अधिक सोनेवाले थे। बहुत जल्दी सोकर उठनेवालोंमें से कुछ लोग ४॥ बजेकी प्रार्थना-सभामें हो आये थे। सारा आश्रम ५॥ बजे तक जगकर सबेरेके कामोंमें, खास तौरसे नाश्तेकी तैयारी में, लग चुका था।

भोजनकक्ष स्कूल और कालेजके विद्यार्थियों और उनके अध्यापकोंसे भर गया था, जिसमें सभी जाति और धर्मके लोग थे—जो कच्चे फर्शपर पंक्तिमें बैठे हुए थे। हम भी बैठ गये और हमें तांबेका एक-एक खाली ग्लास दिया गया। तभी विद्यार्थियोंके दलने प्रवेश किया, जिनमें हाथोंमें दलिया से भरी एक बड़ी बाल्टी और गर्म दूधके बर्तन थे। जब सबको नाश्ता परोसा जा चुका, तब छोटी-सी प्रार्थना और स्तुति-गान हुआ।

जैसे ही किसीका खाना समाप्त होता, वैसे ही वह अपना ग्लास और कटोरी लेकर बाहर चला जाता और राख से माँज-धोकर उन्हें साफ कर देता। फिर आश्रमके विद्यार्थी पूर्व निर्धारित दलोंमें बँटकर रसोईके बर्तनोंको साफ करने, फ़र्श बुहारने, कुएँसे पानी लाने-जैसे छोटे-छोटे कामोंमें लग गये।

विद्यार्थियोंका बाकी समय अपनी कक्षामें कृषि-कार्यपर बीतता था (प्रत्येक विद्यार्थी औसतन प्रतिदिन दो घण्टे कृषि-कार्य करते थे)। फुर्सतके समय वे इच्छानुसार पढ़ना, कपड़े धोना, कातना आदि कोई भी काम कर सकते थे। कताईका काम सबसे ज्यादा लोकप्रिय था। यह काम लाभदायक होनेके साथ-साथ आरामदेह भी था और चिन्तन तथा एकाग्रचित्तताके लिए अवसर देता था।

नाश्तेके पश्चात्, जब धरतीपर ओस अभी मौजूद ही थे, हम खेतोंमें गये और हमने तरकारियाँ, बाजरा, मक्का और कपासकी उत्तम फसलें तथा केले, सन्तरे और पपीतेके कुंज देखे। इनमें से अधिकांश फ़सलें इससे पूर्व इस क्षेत्रमें गाँववालोंने कभी पैदा नहीं की थीं। जब गांधीजी इस गाँवमें पहले-पहल आये, तब इस क्षेत्रमें कपास और अरण्डीके अतिरिक्त शायद ही किसी चीजकी खेती होती थी।

हमने कालेजके एक विद्यार्थीको एक कुएँके चारों ओर खूब तगड़े बैलोंकी गाड़ी हाँकते हुए देखा। इस प्रकार वह रहटकी बाल्टियोंकी मालासे साफ पानी निकाल रहा था। पानी निरन्तर छोटी-छोटी नालियोंमें होकर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से बगीचोंमें पहुंच रहा था, जहाँ अन्य विद्यार्थी काम कर रहे थे। कालेजके लड़के धूपमें कृषिका काम करके अपने हाथ गन्दे कर रहे थे। यह भारतमें नई बात है। किन्तु यह काम सेवाग्रामके विद्यार्थीकी शिक्षाका बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है।

हम खेतोंसे लौटकर मुर्गीखाना और दुग्धालय देखने

गये। ये दोनों गाँवके साधारण-से-साधारण मुर्गीखाने और गोशालेसे जरा ही बढ़कर थे। लेकिन थे साफ-सुथरे और हवादार। हर चीज बिलकुल सादी और ऐसी थी कि औसत गाँववाला उसे समझ सके। चूँकि मुर्गियाँ और मवेशी स्वस्थ थे और अच्छी खुराक पाते थे, इसलिए यहाँकी मुर्गियाँ उतने अण्डे और गायें उतना दूध देती थीं, जितना कि गाँववाले पहले असंभव मानते थे। छोटे-छोटे परिवर्त्तनोंने महान सुधार कर दिये थे।

वहाँसे हम आश्रमके छोटे पुस्तकालयमें गये। वहाँका पुस्तकाध्यक्ष दक्षिण अफ्रीकासे आया हुआ एक वृद्ध जर्मन था। पुस्तकालयमें शायद कुछ सौ ही किताबें थीं, लेकिन वे कई भाषाओं और विषयोंकी थीं।

फिर हम पूर्व बुनियादी शालामें गये, जो सात सालके बच्चोंके लिए थी। एक नौजवान शिक्षकने उस छोटे-से स्कूल को हमें दिखाया। अधिकांश बच्चे उस रूईको, जिसे उन्होंने उगाया और हालमें तोड़ा था, साफ करने, धुनने और कातनेमें लगे हुए थे। कुछ बच्चे गा-गाकर काम कर रहे थे। सभी प्रसन्न, समझदार और साफ-सुथरे नजर आते थे।

शिक्षकने बताया कि अधिकांश बच्चे दिनके समय सेवाग्रामके गाँवसे आते हैं। कपास उगाना सिर्फ हाथका काम नहीं है। कपास उगाकर और चुनकर छोटे बच्चे सामान्य विज्ञान भी सीख जाते हैं और उन्होंने कितना उगाया और कितना काम किया, इससे उन्हें गणितका भी बोध हो जाता है। विश्वमें जिन स्थानोंपर कपास पैदा होती है और उनकी अपनी उगाई हुई कपास कहाँ तक पहुंच सकती है, इस विषयपर वे चर्चा करके भूगोल सीख जाते हैं और उन देशोंकी शासन-व्यवस्था तथा वहाँके लोगोंके बारेमें जो बात होती है, उससे उन्हें सामाजिक ज्ञान हो जाता है।

यह है गांधीजीकी बुनियादी शिक्षाका व्यावहारिक रूप, जो किसी कदर अमरीकाके उन सार्वजनिक स्कूलोंमें व्यवहृत 'काम द्वारा शिक्षा' शिक्षा-पद्धतिसे मिलता-जुलता है, जहाँ मैं पढ़ी थी। भारतमें जो स्कूल बन रहे हैं, उनमें से अधिकांश इस बुनियादी शिक्षाके पाठ्यक्रमको अपना रहे हैं।

बादमें तीसरे पहर हमने उस क्षेत्रमें अस्पतालका निरीक्षण किया, जो आश्रमसे मील-दो-मीलकी दूरीपर है। यह अस्पताल आश्रमके आसपासके लगभग ७५ गाँवोंकी सेवा करता है। ग्रामीण चिकित्साका अनुसंधान-केन्द्र होनेके अलावा यहाँ बुनियादी शिक्षा-विभागके विद्यार्थी-अध्यापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाता है; ताकि उन गाँवोंमें, जिनमें किसी प्रकारकी चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता उपलब्ध नहीं है, वे स्कूलके चिकित्सालय चला सकें।

सेवाग्रामसे हम मोटर द्वारा वर्धाके अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघको देखने गये। इसे भी गांधीजीने शुरू किया था। यहाँ भारतके अनेक भागोंके कारीगरोंको कागज बनाने, मिट्टीके बर्तन तैयार करने, साबुन बनाने, तेल निकालने और मधुमक्खी पालनेकी शिक्षा दी जाती है। ये सब काम पेचीदी मशीनोंके बिना होते हैं।

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघका भवन दर्शनार्थियोंके लिए इसलिए खुला रहता है कि ऐसे उद्योगोंमें रुचि बढ़े। इस संगठनको चलानेवाले लोगोंका गांधीजीकी तरह ही विश्वास है कि यदि ग्रामीणजन सामान्य ग्रामोद्योगका विकास करें, तो जो वनस्पति सामग्री इस समय बर्बाद हो जाती है, उसे उपयोगमें लाया जा सकता है, और जो किसान खेतोंपर काम न होनेके समय बेकार रहते हैं, उन्हें पूरे वर्ष काम और कमाईका एक नया जरिया मिल सकता है।

उस रातकी प्रार्थना-सभाके कुछ देर बाद सोनेसे पहले मैंने पहलेसे भी अधिक प्रबलताके साथ अपने चारों ओर शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव किया। मैंने सोचा कि सेवाग्रामका यह सामुदायिक रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा और खेल-कूद कितना शान्तिपूर्ण क्रान्तिका है। तब मेरी समझमें आया कि क्यों बहुतोंके लिए सेवाग्राम भारतकी भावी आशा का प्रतिनिधि और देशकी महान सामाजिक क्रान्तिका अगुआ है। अब मैं सेवाग्रामकी सेवाके गाँवसे अधिक मानने लगी थी। वह शान्ति और आशाका गाँव है।

गांधीजीने एक बार कहा था—"जब हमारे गाँवोंका पूरी तरहसे विकास हो जायगा, तब उनमें ऊँचे दर्जेकी बौद्धिक और कलात्मक प्रतिभावाले लोगोंकी कमी नहीं रहेगी। गाँवके कवि होंगे, गाँवके कलाकार होंगे, गाँवके भवन-निर्माण-विशारद होंगे। भाषा-शास्त्री होंगे और अनुसंधान-कार्य करनेवाले होंगे। संक्षेपमें जीवनकी कोई भी वांछनीय चीज बाकी नहीं रहेगी, जो गाँवोंमें नहीं होगी। आज भारतके गाँव गोबरके ढेर हैं। कल वे छोटे-छोटे नन्दन-वन बनेंगे, जिनके निवासी प्रतिभावान होंगे, जिन्हें न कोई धोखा दे सकेगा, न जिनका कोई शोषण कर सकेगा।"

गांधीजी आशावादी थे, किन्तु बहुत ही व्यावहारिक भी। यदि छोटे नन्दन-वनोंवाले भारतका कभी उद्भव हुआ, तो सेवाग्रामके सामुदायिक जीवन और विकासका उदाहरण तथा वह नई शिक्षा-पद्धति, जो सेवाग्रामके स्कूलोंमें चरितार्थ हो रही है, उसके निर्माणकी दिशामें वे एक महत्त्व-पूर्ण कदम माने जायँगे।

अगले दिन सुबह नाश्ता करनेके बाद ही हमने अपने मित्रोंसे और सेवाग्रामसे विदा ली। हमें आर्यनायकमूसे बिछुड़नेका विशेष रूपसे दुःख हो रहा था। हम महसूस कर रहे थे कि भारतके विकासके आगामी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्षोंमें मार्गदर्शनके लिए वैसा ही विश्वास चाहिए, जैसा आर्यनायकमूका था।

हम सेवाग्रामसे नागपुरके लिए रवाना हुए, जहाँ हमें नयी दिल्लीके वायुयान पकड़ना था। रातमें हम विनोबा भावेके छोटे-से स्थानपर ठहरे। आश्रम तो अत्यधिक प्रभावशाली नहीं था, किन्तु विनोबाजीका बहुत नाम था। उन्होंने स्वाधीनता-संग्राममें गाँधीजीके साथ काम किया था और प्रधान मन्त्री नेहरूको छोड़कर भारतीय जनता उन्हें ही शायद सबसे अधिक जानती है।

सन् १९५१ में विनोबाजीने भूदान-यज्ञके नामसे एक आन्दोलन शुरू किया। विनोबाजीका विश्वास है, जैसा औरोंका भी है, कि भूमि-सुधार और भूमिका पुनर्वितरण नये राष्ट्रके रूपमें भारतकी उन्नतिका बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। वे यह भी महसूस करते हैं कि चूंकि धारासभाओंमें भूमिस्वामियों का प्रभाव है, इस वजहसे इस मामलेमें सरकार बहुत धीमी गतिसे काम कर रही है।

अतएव एक गाँवसे दूसरे गाँव, देशके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तकी पैदल यात्रा करके विनोबाजी उन लोगोंसे—जिनके पास भूमि है, यह माँग करते हैं कि वे अपनी कुछ भूमि उन्हें दें, जो भूमिहीन हैं। जमींदारोंसे विनोबाजी कहते हैं, "मैं तुम्हें प्यारसे लूटने आया हूं। भारतके बहुत-से लोग भूमिहीन हैं। यदि तुममेंसे किसीके पास पाँच पुत्र मौजूद हों तथा बादमें छठा पुत्र और हो जाय, तब तुम अपनी सम्पत्ति को पांचके बजाय छः भागोंमें बाँटोगे। मैं भूमि-हीनोंकी ओरसे तुमसे छठा भाग माँग रहा हूं, मुझे अपना छठा पुत्र समझो।"

इस सीधे-साधे अनुरोधका उल्लेखनीय परिणाम निकला है। आन्दोलन शुरू करनेके बादसे अब तक विनोबाजीको ४० लाख एकड़से अधिक भूमि प्राप्त हो चुकी है। जिसे जल्दीसे जल्दी भूमिहीन किसानोंमें बाँटा जा रहा है।

दूसरे दिन स्कूलमें मैंने सोचा कि सुमन और दिल्ली पब्लिक स्कूलके मेरे अन्य मित्र यदि देशके इस विकास-कालमें उसकी अधिक-से-अधिक सेवा करना चाहते थे, तो रेखागणित और अंगरेजी साहित्यका अध्ययन उनके किस कामका था। जिस प्रकारकी शिक्षा उन्हें मिल रही थी, उसे पूरी करके ग्रेजुएट हो जानेपर वे या तो किसी आफिस में सफेदपोशोंवाली नौकरी कर लेंगे या ऐसी नौकरियोंकी तलाशमें मारे-मारे फिरनेवाले बेकारोंमें शामिल हो जायंगे।

सेवाग्राममें मुझे एहसास हुआ कि भारतके नौजवान स्त्री-पुरुषोंकी वास्तविक आवश्यकता गाँवोंमें है। दिल्ली पब्लिक स्कूलकी शिक्षासे हल चलाने, जन-स्वास्थ्यका काम करने या गाँवमें साक्षरताके प्रचारकी योग्यता प्रदान करनेकी कोई व्यवस्था नहीं है। मेरे शान-शौकतवाले शहरी मित्र बुनियादी तालीमके द्वारा कुछ-के-कुछ हो जाते हैं।

जब मैंने ये अपने विचार सुमनको बताये तो उसने मुझे थोड़ा झिड़का। उसने कहा, "तुम समझती नहीं हो। यदि मैं चाहूं भी और एक-दो बार मैंने चाहा भी था, फिर भी सेवाग्राम जाकर उच्च बुनियादी कालेजमें शिक्षा प्राप्त करके किसी छोटे-से गाँवमें जा बसना कोई आसान बात न होगी। सोचो कि मेरे माता-पिता क्या कहेंगे? वे कभी ऐसा नहीं करने देंगे। यदि मैं उनकी आज्ञा न मान-कर भाग जाऊँ, तो उनका दिल टूट जायगा और यह सोच-कर उन्हें बड़ी पीड़ा होगी कि उनकी उस लड़कीने जिसे उन्होंने इतने लाड-प्यार और सावधानीसे पाला-पोसा, अपने माता-पिताका अनादर करके किस बुरी तरहसे उनकी आज्ञा की अवहेलना की। साथ ही मेरे लिए भी रेशमी साड़ियों, जेवरों, लिपस्टिक और सिनेमा आदि के सुखका त्याग करना कठिन होगा। ये चीजें मेरे जीवनका अंग बन चुकी हैं।"

मैंने अनुभव किया कि सुमनके उत्तरमें एक तरहका औचित्य था। जाति-बन्धन, शारीरिक श्रमके प्रति हीनताका भाव, अपनी ही जातिमें और लायक होनेसे पहले ही विवाह करनेका रिवाज आदि बातें ढहतासे उसके तथा उसके जैसे अन्य लोगोंके जीवनमें घर चुकी थी।

सुमनके साथ इस प्रश्न पर चर्चा करते समय मुझे ग्राम-कार्यकर्त्ताओंके एक प्रशिक्षण-केन्द्रका ध्यान हो आया, जिसे हमने भारत आनेके तुरन्त बाद ही देखा था। अब सारे

देशमें ऐसे चालीस से अधिक केन्द्र हैं। सेवाग्रामकी तरह इस प्रशिक्षण-केन्द्रमें कार्यकर्त्ताओंको ग्रामीणोंके जितना संभव हो सके, उतना निकट आने, अपनेको ग्रामीण हो समझने और गाँववालोंके रीति-रिवाजों, परम्पराओं और रहन-सहन को सीखने और मान देनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

मैंने सुमनको उस स्थितिमें रखकर कल्पना करनेका प्रयत्न किया। उसका काम होगा कि वह किसान पत्नीका विश्वास प्राप्त करे और इसमें सफल होनेका एकमात्र उपाय यही होगा कि वह अपने उन्नत तरीकोंका उनके सामने प्रदर्शन करे। उसे गाँवकी महिलाओंके साथ-साथ काम करना होगा।

इसका अर्थ सिर्फ अपने "साधारण गुणों" का पूर्णतया त्याग ही नहीं होगा, बल्कि उसे तपती धूपमें काम करना होगा और अपने हाथोंको गन्दा करना होगा। लेकिन सदियोंसे उसकी श्रेणीके लोग इस प्रकारके कामको निकृष्ट और अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल मानते आये हैं। नहीं, यदि सुमन चाहे भी, तो भी उसके माता-पिता उसे गाँवमें काम करनेकी आज्ञा नहीं देंगे और मैंने महसूस किया कि ऐसी ही मनोवृत्ति भारतके बहुत-से माता-पिताओं की थी—खासतौरसे उन लोगोंकी, जो शहरोंमें रहते थे। तथापि मैंने यह भी अनुभव किया कि ऐसे लोगोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जा रही थी, जो अपने पुत्र और पुत्रियोंको जाति-पाँति और रीति-रिवाजकी सीमाको तोड़नेकी अनुमति देते हैं। उनमें से बहुत-से लोग गाँधीजी और गाँधीवादी सिद्धान्तोंसे प्रभावित हुए हैं। बहुत-से लोग उन नौजवानोंकी इस बढ़ती मांग-से प्रेरित हुए हैं कि वे जाति-पाँतिके परम्परागत बन्धनों और संयुक्त परिवार की पद्धतिसे मुक्त होना चाहते हैं और भारत-सरकारने जाति-पाँतिके खिलाफ जो कठोर रुख अपनाया है और जाति-पाँतिके आधारपर नौकरियाँ देनेपर जो रोक लगायी है, निस्सन्देह उसका भी असर बहुत-से भारतीयों पर हुआ है।

तथापि बहुत-से भारतीय ग्रेजुएट अपने पूर्वजोंके पुराने भारत और पंचवर्षीय योजनाके इस नये भारतके बीच त्रिशंकु बने हुए हैं। कालेजसे ग्रेजुएट होकर निकलनेमें उनपर असुरक्षा की भावना इस खयालसे छाई रहती है कि वे न तो पुरानोंके साथ हैं, न नयोंके। ऐसे बहुत-से निराश लोगोंके लिए कम्युनिज्म का मार्ग अपनाना सरल होता है। प्रसन्नताकी बात है कि उनमें से अधिकांशकी आँखे जल्दी ही खुल जाती हैं और वे उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं।

सुमनकी नानी और माने गाँवमें काम करनेकी बात कभी सपनेमें भी न सोची होगी। सुमनने यह बात सोची, शायद उसका बच्चा गाँवोंमें काम कर सकेगा और तब अगर उसका विरोध होगा भी तो बहुत मामूली।

मेरा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं, जब ६००,००० गाँवोंको दूरवर्ती निर्धनताग्रस्त मिट्टीके घरौंदे नहीं, बल्कि शहरोंके निकटतम पड़ोसी और भारतीय जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र माना जायगा।*

---

* अमरीकाके भारतस्थित भूतपूर्व राजदूत श्री चैस्टर बाउल्स की सुपुत्री सिथिया बाउल्स की अंग्रेजी की पुस्तक 'एट होम इन इण्डिया' के हिन्दी-रूपान्तर 'भारत, मेरा घर' में 'गांधीजीका सेवाग्राम' शीर्षक लेख है। उसीसे साभार यह लिया गया है। —सम्पादक

अंतर पट खोलो !

किशन सिंह

राजनीति, तुम हमारी आराध्य देवी न बनो। जन-जनको प्रभुके मन्दिर तक पहुंचानेकी माध्यम मात्र बनी रहो। तुम वह पगडंडी हो, जो घुमा-फिराकर भी पथिकको अपने घर पहुंचाती है। यात्राको सुगम बनानेवाली तुम केवल वाहन मात्र हो।

तुम वह सती-साध्वी हो, जिसकी उपस्थिति मात्रसे उपवनमें पुष्प खिलते हैं। तुम वह वारांगना न बनो, जिसके सम्पर्कमें आकर प्राणी पतित होते हैं।

देवी, अपने अंतर पट खोलो।

घन-सावनकी रंग-लहरमें

रामइक़बालसिंह 'राकेश'

पर्वत के समान मेघोंने घेर लिया है,
ताम्रनील गैरिक दिगन्तके दुर्ग-शृङ्ग को।
तिमिर-धूम से रवि का रत्न-किरीट ढक गया!
दिवस-नाट्यशालामें जैसे छायाका आवरण पड़ गया!
पद्मराग-सा अरुण गगन का वर्णपटल है,
आच्छादित सित, कपिश, कृष्णिमन् मेघखण्डसे!
दिनमणि की निर्धूम किरण-ज्वाला से तपकर,
मेघ - कलश की जलधारा से सिंचित होकर,
त्याग रही है बाष्प धरा चिर संतप्ता - सी।
हरितवर्ण द्रुमतोरण वाले भू के वन में,
जैसे लगी हुई दारुण दावाग्नि बुझ रही!
कजल, घटादार मेघों का मर्म भेदकर
चमक रही है अरुण-शोण विद्युत् की रेखा—
कटे मांस-पिण्डों से निकली रुधिर-धार-सी!
चली सिन्धुकी ओर वेगसे नदी उमड़ कर
जल-प्रवाहका फेनिल, पंकिल चीर पहन कर!
अनजाने ही जैसे यौवन की हिलोर से
फूट पड़ा हो वक्ष धराका आत्मदानकी आकुलतामें!

प्रकृति-नटी हो उठी मुग्ध, उत्फुल्ल नहाकर
घन-सावन की नयनमनहरण रंग - लहर में!
बड़ी - बड़ी बूंदें अम्बर से लगीं टपकने
पवन - गमन के संग - संग प्यासी पृथिवीपर।
चित्र - विचित्र वनस्पतियों के बीज वर्ष-भर।
भूमण्डल के गर्भ - कोश में रक्षित रहकर।
पुनः फूट निकले नवीन उत्कण्ठा से भर।
हल्के और गुलाबी फूलों के गुच्छों से
सजी हुई कस्तूरी रस का पान कर रही—
मधुवर्षी श्रावण के अंजनवर्ण मेघ से।
हिरनखुरी के सुन्दर पर्णचीर धारण कर
निज नवीन स्वप्नों को पृथिवी रूप दे रही।
तरु-वृन्दोंने भुज - वल्लरियों को लचका कर
बाँध लिया ललिकाओंको मृदु आलिङ्गन में।

अन्तर्मन में बार - बार कम्पन - तरङ्ग भर,
आर्द्र पवन उद्दाम वेग से लहराता है।
जैसे रूपवती के अंचल की झपेट से,
सहसा अंग - अंग रोमाञ्चित हो उठता है।
चमका कर क्षण-भर निज स्वर्ण-पंख विद्युत्-खग,
अन्तरिक्ष के नील नीड़ में छिप जाते हैं।
लहरों के संगीत छन्द के फूल खिलाकर
हो जाते जैसे निमग्न हैं गहन सिन्धु में।
भू-प्राङ्गण से, विपिन - वाटिका से, दिगन्त से
सुन्दरता का रंग - चित्र नूतन इंगित में—
आकर्षित कर रहा सहज स्वच्छन्द भाव से।
विविध रूप में, छन्द - वर्ण में अन्तर्मन को।
नव जीवन की प्राणदायिनी अमृत बिन्दु से,
वन, बंजर, पर्वत, भूखण्ड, तड़ाग भर रहे।
प्रीति - नदी की नृत्य - तरंगित जलधारा में
घृणा - द्वेष के कुत्सित, मृण्मय पङ्क बह रहे।



धार्मिक प्रतीकोंका विकास

वीरेन्द्र सिंह, एम० ए०

धार्मिक प्रतीकोंका उद्गम आदिमानवीय प्रथाओं एवं अन्ध-विश्वासोंमें यदाकदा मिल जाता है; परन्तु धार्मिक-प्रतीकवादी दर्शनका आरम्भ उस समयसे मानना चाहिए, जब आदिम परम्पराओं और अन्ध-विश्वासोंमें अंध-दृष्टिकी जगह क्रमशः बुद्धि और तर्कके समन्वयसे समस्त चराचर जगत्के पीछे कार्य-कारणकी भावनाका उदय होता है, और मानव-मन प्रकृतिके परिवर्त्तनके पीछे एक नियम या अव्यक्त रहस्यकी भावनाको बल देने लगता है।

प्रतीक और विचार

धार्मिक भावनाका इतिहास इस बातका द्योतक है कि मानव-मनने विचारोंके बलपर, अनुभूति एवं संवेदनाके द्वारा 'सत्य' के समीप पहुंचनेका क्रमिक प्रयत्न किया है। रिची का मत है कि विचारोंका आवश्यक कार्य प्रतीकीकरण है।* यह तथ्य हमें बरबस इस सत्यकी ओर ले जाता है कि धार्मिक प्रतीकोंका विकास इसी धारणाकी प्रतिध्वनि है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इन प्रतीकोंका एकमात्र तथ्य विचारशीलतापर ही आधारित है, उनमें अन्ध-विश्वासों एवं आदिमानवीय प्रथाओंका योग ही नहीं है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि धार्मिक प्रतीकोंका विकास मानव-मनका वह सबल क़दम है, जहाँसे वह विकास की धाराको एक नवीन मोड़ प्रदान करता है, जो आगे चलकर अनेक दार्शनिक एवं ममोवैज्ञानिक प्रतीकोंको एक सशक्त रूप प्रदान कर सका। हर्बर्ट स्पेन्सरने एक स्थानपर कहा है कि धार्मिक विचार मानवीय अनुभवोंसे प्राप्त किये गये हैं, जो क्रमशः संगठित एवं परिष्कृत होते रहे हैं।+ अतः धार्मिक प्रतीकोंका क्षेत्र विचार एवं मनोविज्ञान, आदिमानवीय रीतियाँ और अन्ध-विश्वास और अन्वेषण तथा समन्वयकी एक जटिल मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रतिक्रियाओंका रंग-स्थल है।

व्यापक क्षेत्रका महत्त्व

प्रतीकात्मक धारणाएँ एक अन्य तथ्यको सामने रखती हैं। प्रतीकोंका आन्तरिक अर्थ इस बातपर आधारित होता है कि हम किस सीमा तक व्यक्त और सामान्य पदार्थोंसे अव्यक्त एवं वृहत् पदार्थोंकी ओर जा सके हैं। धार्मिक विचारोंके बारेमें यह कहा जा सकता है कि वे व्यक्त धरातल से अव्यक्त भूमिपर अग्रसर होते हैं, और यही कारण है कि धार्मिक प्रतीकोंका अर्थ केवल 'बाह्य-सत्य' पर ही अवलम्बित नहीं होता है; पर उन प्रतीकोंकी 'आत्मा' को हृदयंगम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी बाह्य-परिधिसे हटकर उसके व्यंजनात्मक केन्द्रकी ओर जायँ। डा० राधाकृष्णनने अपनी पुस्तक 'रिकवरी आफ फेथ' में इसी सत्यकी ओर इंगित किया है। उनका कथन है कि "यथार्थ प्रतीक कोई स्वप्न या छाया नहीं है; यह अनन्तका जीवित साक्षात्कार है। हम प्रतीकको विश्वासके द्वारा स्वीकार करते हैं, जो अनेक व्यक्तियोंके लिए 'परम सत्य' के प्राप्त करनेका माध्यम है। प्रतीक हमें आत्म-साक्षात्कारमें सहायता देता है।"*

विकास-स्थितियाँ

(१) मानवीकरण अथवा आरोप—प्रतीकीकरणकी प्रथम स्थिति पदार्थों और प्रकृति-शक्तियोंको चेतन मानवीय रूप प्रदान करनेमें था। यह धार्मिक प्रतीकोंको प्रथम स्थिति है, जब मानव-मन प्रकृतिके रहस्यके प्रति सचेत होने लगता है और अन्ध-विश्वासके ऊपर विजय प्राप्त करनेमें प्रयत्नशील होता है। संसारके सभी धर्मोंमें प्रकृति-शक्तियों—यथा, जल, पवन, अग्नि—को मानवीय रूप प्रदान किया गया। यह तथ्य हमें इस निष्कर्षकी ओर ले जाता है कि आदिमानव के मानसिक विकासका जहाँ तक सम्बन्ध है, वे सामान्यतः एक ही धरातलपर थे, तभी तो इस प्रवृत्तिके दर्शन सभी प्राचीन सभ्य जातियोंमें समान रूपमें प्राप्त होते हैं। उदाहरण-स्वरूप हम रोमन देवता 'ज्यूपीटर' को ले सकते हैं, जिसका विकास एक आश्चर्यमय तथ्य है। प्राचीन यूरोपमें

* 'The Natural History of Mind', by A. D. Ritchi, Page 21 (1912).

+ 'The First Principles', by Herbert Spencer, Page 15 (1870).

* 'Recovery of Faith', by Dr. Radhakrishnan P. 151 (1956).

'ओक' वृक्षका बहुत महत्त्व था, क्योंकि इसका प्रयोग अग्नि-उत्पत्ति अथवा अन्य प्रतिदिनके कार्योंमें बहुत होता था। अतः 'ज्यूपीटर', जो मूलतः वर्षा और गर्जनका देवता है, उसकी भावनामें 'ओक-देवता' का सम्मिश्रण इस बातका द्योतक है कि रोम और ग्रीक धर्मोंमें क्रमशः 'ज्यूपीटर' और ज़ियस् (Zeus) के प्रतीकात्मक अर्थमें वृक्षोंका कितना अधिक महत्त्व है।+ इसी प्रकार भारतीय धर्ममें 'प्रजन्या' की भावनामें भी वृक्षके महत्त्वका सम्मिश्रण है। समेटिक देवता 'रम्मन', जो वर्षा और गर्जनका देवता है, उसके प्रतीकार्थमें भी यही तथ्य सम्मिलित है। यह प्रवृत्ति स्पष्ट करती है कि प्रतीकात्मक दर्शनके अन्तरालमें, अनेक विचारों, मान्यताओं एवं तथ्योंका समन्वय होता रहा है, क्योंकि प्रतीकोंकी दार्शनिक पृष्ठभूमि यह सिद्ध करती है कि एक-एक देवताकी धारणामें अनेक शक्तियों एवं मान्यताओंका एक साथ संगुफन होता है।

(२) **पशुत्व से नर-तत्त्व तक**—प्रतीकोंके विकास-क्रममें मानसिक विकासकी भी छाया मिलती है, और जैसे-जैसे मानसिक प्रगतिकी रूप-रेखा स्पष्ट होती जाती है, प्रतीकोंकी धारणामें भी 'पशुत्व' का अंश क्रमशः लोप होने लगता है। यह प्रवृत्ति हमें हिन्दू, समेटिक और चीनी धर्मोंमें अधिक स्पष्ट रूपमें प्राप्त होती है। अधिकांश भारतीय और मिस्री देवताओं (यथा, गणेश, ब्रह्मा, दुर्गा आदि) की अभिव्यक्ति शेर या कोई अन्य जानवरके ऊपर आसीन रूपमें की गई है, जिसका प्रतीकात्मक अर्थ केवल यह है कि मानव के अन्दर 'दिव्यता' का अंश पशु-प्रवृत्तियोंपर विजय प्राप्तकर, उसे बुद्धिके द्वारा नियन्त्रित रखना चाहता है। मानसिक प्रगतिकी यह रूपरेखा मिश्रित देवताओं (hybrid gods) की अभिव्यक्तिमें स्पष्ट प्राप्त होती है।

(३) **आदर्श जगत्की धारणा : स्वर्ग**—धार्मिक प्रतीकोंके व्यापक अर्थका विकास 'आदर्श जगत्' की धारणामें दृष्टिगोचर होता है। हमें यह प्रवृत्ति सामान्य रूपसे ईसाई, हिन्दू, ग्रीक, रोमन और मुस्लिम धर्मोंमें प्राप्त होती है। ईसाई विचार-धारामें मृत्युके बाद 'जीवन' की कल्पनाने एक महत्त्वपूर्ण क़दम उठाया और मानव-मन यह प्रश्न करने लगा कि मृत्युके पश्चात् जीवनका स्वरूप क्या होगा? इस जिज्ञासाके फलस्वरूप सभी धर्मोंमें 'स्वर्ग'की कल्पनाका उदय हुआ। 'मृत्युके परे' की भावना ईसाई प्रतीकवादकी मूल आधारशिला है।* अनेक प्राचीन चित्रकलाओंमें जिनमें कमल, सुमनयुक्त उपवन आदिके चित्र अंकित हैं, वे 'स्वर्ग' के प्रतीक-रूप हैं। अच्छा चरवाहा (Good shepherd) मृतकोंका संरक्षक एवं पालनकर्त्ता है। सुरा स्वर्गिक 'भोज' की प्रतीक है और 'मछली' ईसासे एक रहस्यवादी मिलनकी प्रतीक है। भगवान ईसाकी धारणामें भी अनन्त जीवनकी कल्पना समाहित है। ईसाई धर्ममें 'स्वर्ग'की कल्पना संरक्षित 'इडन' का भी पर्याय है। इसी प्रकार, ग्रीक और हिब्रू धर्मोंमें 'स्वर्ग'की भावना संरक्षित 'इडन' से काफी मिलती है। हिन्दू धर्ममें स्वर्गकी धारणा अत्यन्त उत्कृष्ट है, जहाँपर देवताओंका वास है और 'अमरत्व'की कल्पना पुष्ट होती है। समेटिक धर्ममें भी 'स्वर्ग'की कल्पना 'परमातीत' रूपमें की गई है, जहाँपर देवताओंका निवास रहता है।

क्रास और क्राइस्ट—क्रास और क्राइस्टका अन्योन्य सम्बन्ध माना जाता है, क्योंकि ईसा मसीहके नामके साथ क्रासका सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है, जैसा कि प्रथम कहा गया कि क्राइस्ट अनन्त जीवनका प्रतीक भी है और साथ ही मानवताका पालक भी। मानवीय रूप क्राइस्ट, स्वर्ग और धरतीका मध्यस्थ है।× जहाँ तक क्राइस्टके प्रतीकात्मक अर्थ का सम्बन्ध है, इसकी तुलना ईश्वरीय रूप कृष्णसे की जा सकती है। बालक ईसा और माता मेरीके अधिकांश चित्र 'परम बाल-रूप' के ही द्योतक हैं। इसीसे वान साइबेलका मत है कि ये प्राचीन चित्र, चाहे ऐतिहासिक न भी माने जायँ, पर उनका महत्त्व सदासे प्रतीकात्मक ही रहा है और रहेगा। श्रीकृष्णका बाल-रूप भी 'परम रूप' है, जो कवियों द्वारा चित्रित हुआ है।, क्राइस्टकी आदिम भावना 'परम चरवाहे' के रूपमें प्रस्तुत की गई है, जो हमें बरबस कृष्णके व्यक्तित्व और साथ ही प्रतीकार्थकी ओर इंगित करती है। मेरा यहाँपर मन्तव्य केवल कृष्ण और क्राइस्टके प्रतीकार्थके साम्यपर ही इंगित करना है, न कि यह दिखलाना कि एक की भावना दूसरेसे ली गई है। पर संसारके अनेक प्रतीकोंमें समानता यह सिद्ध करती है कि आदिमानवके मानसिक

+ 'The Golden Bough', Part I, Vol. II—'A study in magic and religion', by Frazer, Page 372 374 (1922).

* 'Encyclopaedia of Ethics and Religion', Vol. XII. Christian Symbolism (1921).

× 'East and West', by Radhakrishnan, P. 72 (1955).

विकासका धरातल कितना अन्योन्य सम्बन्धित था या उस धरातलकी विकास-स्थिति कितनी समान थी।

सबसे प्रथम 'क्रास' का प्रयोग कांस्टेन्टीनने मैक्सियूसयस (Maxentius) के विरुद्ध युद्धके अवसरपर किया था, जब उसने क्रासको अपने सैनिकोंके कवचोंपर रखा था। यह घटना ३१२ ई० पू० की है। जॉन गेम्बेलके अनुसार 'क्रास' का आदितम रूप मृत्युका द्योतक नहीं था, वरन् मृत्युपर विजय प्राप्त करनेका प्रतीक था।* इससे स्पष्ट होता है कि क्रासका आदितम रूप अत्यन्त अस्पष्ट रहा और काफी समय बाद उसे ऐश्वर्यके रूपमें देखा गया। दूसरे शब्दोंमें क्रासकी भावनामें दुःखात्मक निराशवादका आरोप अनेक शताब्दियोंके बाद हुआ।

'क्रास' के व्यापक अर्थका प्रारम्भ उस समयसे होता है, जब उसे 'जीवन-वृक्ष' के रूपमें देखा गया।— 'क्रास' के प्रतीकार्थमें इसके पश्चात् 'उर्वरा' और 'वर्षा' की भावनाका भी योग हुआ। यह भावना हमें आदिवासी रेड-इण्डियनकी अनेक तान्त्रिक प्रथाओंमें भी मिलती है। क्रासका चिन्ह उस ऊर्ध्वगामी दशाका द्योतक है, जहाँपर समस्त पापोंका शमन हो जाता है। अतः क्रासके प्रतीकार्थमें मानवीय, भावनात्मक और विश्व-सम्बन्धी तथ्योंका एक साथ अत्यन्त सुन्दर समन्वय हुआ है, और एस० के० लैंगरके शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि क्रास सम्पूर्ण धार्मिक नाटकका परम प्रतीक रूप है—समस्त पाप, पीडा, क्लेश और उनसे 'मुक्ति' का प्रतीक है।×

(४) **अन्तर्दृष्टि और प्रतीक**—इसके अन्तर्गत हम उन प्रतीकोंको लेते हैं, जो अन्तर्दृष्टि, विचार, तर्क और भावनासे समन्वित होकर एक उच्चतम 'सत्य' की ओर इङ्गित करते हैं। यह स्थिति धार्मिक प्रतीकोंकी उच्चतम स्थिति है, जो हमें विश्व और ब्रह्माण्डके गुप्त रहस्य और 'सत्य' की ओर संकेत करती है। इन प्रतीकोंका विकास मानव-मनकी एक विशिष्ट विकासशील प्रवृत्तिका सूचक है, जहाँपर मानवीय धारणा (concept) का एक स्पष्ट रूप प्राप्त होता है। ऐसे कुछ प्रतीक हैं 'ओ३म्', त्रिमूर्ति, जिहोवह् (Jehoveh—Hebrew), ब्रह्म (ग्रीक—प्रोमीथियस) और असुर (समेटिक)।

'ओ३म'—हिन्दू मनीषीकी उच्चतम अभिव्यक्ति हमें ॐ शब्द-ध्वनिके रूपमें प्राप्त होती है। इसके उच्चारणमें 'सत्य' का ध्वनि-विषयक प्रतीकार्थ है। शब्दका स्थान, हिन्दू विचार-धारामें, 'ब्रह्म' का पर्याय है। समस्त सृष्टिमें उसकी व्याप्ति है, जो आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताके अनुसार भी सत्य है, जो शब्दको समस्त सृष्टिमें व्याप्त मानता है। वाणी के विकासमें 'शब्द' का उच्चारण ध्वनिका प्रतीकात्मक रूप ही है। 'ॐ' की धारणामें ध्वनि या शब्दका प्रतीकार्थ समाहित हैं। जैसा कहा गया कि ओ३म् ब्रह्मका पर्याय है, जो 'परम तत्त्व' के रूपमें एक है और अनादि है, अतः 'ओ३म्' भी 'परम तत्त्व' का प्रतिरूप है। हिब्रू-धर्मके 'जीहोवह्' की धारणामें कुछ इसी प्रकारकी प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, पर उतनी स्पष्ट नहीं, जितनी कि ओ३म्में।

'ओ३म्' के प्रतीकार्थमें अन्तर्दृष्टिका एक अन्य रूप भी मिलता है। वह रूप है उसकी धारणामें त्रिमूर्तिका समावेश। अतः 'ओ३म्' उस 'परम तत्त्व' का प्रतिरूप है, जो संहार, निर्माण और संरक्षणके पीछे एक 'आदिसत्य' के रूपमें वर्त्तमान है।

त्रिमूर्ति (Trinity)—त्रिमूर्तिकी धारणा मानसिक विकासकी सबसे उच्चतम परिणत है, जिसमें प्रकृति और विश्वका 'सत्य' निहित है। ईसाई और ग्रीक धर्ममें, हिन्दू धर्मकी भाँति, त्रिमूर्तिका स्वरूप अत्यन्त उत्कृष्ट एवं स्पष्ट है।

प्रकृतिकी तीन शक्तियाँ—सृजनात्मक, संरक्षणात्मक और विध्वंसात्मककी सुचारु क्रियासे ही विश्वका चक्र एक निश्चित नियमके अन्तर्गत चलता है, इस तथ्यका समाहार त्रिमूर्तिकी कल्पनामें हुआ है। प्रत्येक धर्ममें इन तीन प्रकृति-शक्तियों का मानवीकरण कर प्रतीकका रूप दिया गया है। अस्तु, हिन्दू धर्ममें सृजनात्मक शक्तिका मानवीकरण ब्रह्मामें, संरक्षणात्मक शक्तिका विष्णुमें और विध्वंसात्मक शक्तिका शिवमें प्राप्त होता है। यदि हम ग्रीक धर्मकी ओर दृष्टिपात करें, तो हमें ब्रह्माका पर्याय 'ज्यूपीटर' के रूपमें, विष्णुका नेपच्यून (Neptune) के रूपमें और शिवका प्लूटो (Pluto) के प्रतीकार्थमें प्राप्त होता है। मानव-मनके विकासकी उच्चतम स्थिति उस समय प्राप्त होती है, जब मानव प्रकृति की इन तीन शक्तियोंको 'कार्य-कारण' की शृंखलामें बाँधकर,

* 'Encyclopaedia of Ethics and Religion', Vol. XII—Christian Symbolism (1921).

– 'Psychology of the Unconscious'—Yung, Page 163 (1916).

× 'Philosophy in a new Key', by S. K. Langer, Page 232 (1949).

एक 'आदिसत्य' को व्यक्त रूप प्रदान करता है, जो त्रिमूर्तिके प्रतीकत्वमें समाहित है। ड्यूबसका मत है कि इन तीन शक्तियोंका एक व्यक्तिमें संगठित प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति इस बातका द्योतक है कि प्रकृतिके तीन तत्त्व पृथ्वी (ब्रह्मा—ज्यूपीटर), जल (विष्णु—नेपच्यून) और अग्नि (शिव—प्लूटो), जो आदिमानवकी आश्चर्य भावना एवं अन्ध-विश्वासके माध्यम थे, उनका तार्किक एवं उन्नायक रूप त्रिमूर्ति की धारणामें साकार हो उठता है।* दूसरे शब्दोंमें इन तीन शक्तियोंका क्रमशः सम्बन्ध तीन प्रधान गुणों सत्व, रजस और तमससे भी जोड़ा जा सकता है। त्रिमूर्तिकी धारणा मानव-मनकी समन्वयात्मक शक्तिकी परिचायिका है, जो रूपात्मक जगतको पृष्ठभूमिके पीछे अव्यक्त शक्तिकी ओर इङ्गित करती है।

असुर (Ashur)—समेटिक धर्ममें 'असुर' देवताका प्रतीकात्मक अर्थ एक प्राकृतिक अन्तर्दृष्टिका द्योतक है। इस देवताकी धारणामें दो तथ्योंका योग है। प्रकृति विभिन्न शक्तियोंसे शासित है, जो कि एक पूर्व-स्थापित सामरस्य (Pre-established Harmony) अथवा नियमसे नियमित है। ग्रीक धर्ममें प्रोमीथियस और हिन्दू धर्ममें 'ब्रह्मा' की धारणामें इन्हीं सत्योंका मिश्रण है। दूसरा तथ्य जो इस देवताकी कल्पनामें सन्निहित है, वह है अव्यक्त सिद्धान्त, जो समस्त चराचर विश्वको अपने अन्दर समेटे हुए है। इस तथ्यका मानवीकरण, समेटिक धर्ममें एक अन्य देवता एनू (Anu) में प्राप्त होता है। इन दो तथ्योंके समन्वयसे असुर देवताकी धारणाका उन्नायक रूप विकसित हुआ।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचनसे दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम यह कि धार्मिक प्रतीकोंका विकास अथवा उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि 'व्यक्त' अथवा भौतिक तथ्योंपर ही आधारित नहीं होती है, वरन् उनका प्रतीकात्मक विकास 'अव्यक्त' केन्द्रकी ओर अधिक उन्मुख रहता है, जो किसी मानवीय अथवा विश्वजनीन 'सत्य' की अभिव्यक्ति करता है। दूसरे, धार्मिक प्रतीक विचारात्मक प्रवृत्तिके भी द्योतक हैं। धार्मिक प्रतीकोंके विकासमें तान्त्रिक रीतियोंका योग बहुत नहीं माना जा सकता है, परन्तु दूसरी ओर पौराणिक रीतियोंका योग अधिक है। यह तन्त्र (magic) से पुराण (myth) तककी यात्रा, मानव-मनकी सबसे महत्त्वपूर्ण विचारात्मक प्रवृत्ति है, जिसने क्रमशः धार्मिक अन्तर्दृष्टिकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। अतः धार्मिक प्रतीक प्रकृति और मानव, विश्व एवं जीवन अथवा आदर्श और यथार्थके अटूट सम्बन्धके, उनके समन्वित सत्यके परिचायक हैं।

* 'Hindu Customs, Manners and Ceremonies', by Abbe, J. A. Dubois Page 547 (1906).

—❀—

संस्कृतिका प्रश्न

भगवतीप्रसाद चन्दोला

यों तो संस्कृतिका प्रश्न स्वयं ही दुरूह है और फिर जब 'इस संस्कृति' तथा 'उस संस्कृति'की चर्चाका सवाल उठता है, तो यह चर्चा एक टेढ़ी खीर-सी ही लगती है। संस्कृति क्या है? उसकी परिभाषा क्या है? ऐसे प्रश्नोंपर ही पहले तो उपयुक्त चर्चाकी गाड़ी अटक जाती है। सचमुच ही यह कहना कठिन है कि संस्कृति क्या है। संस्कृतिकी कोई सर्वमान्य और सर्वभौम परिभाषा जानना भी कठिन है। यह प्रश्न भी ठीक ऐसा ही है, जैसा यह कि सौन्दर्य क्या है? अथवा यह कि सौन्दर्यकी परिभाषा क्या है? हब्शियोंमें मोटे-मोटे होंठ सौन्दर्यके प्रतीक हैं, तो भारतीयों में पतले ओष्ठाधर सुन्दर माने जाते हैं। पश्चिमी देशोंकी रमणियोंमें कटे या अध-कटे केशोंका सौन्दर्य-सज्जाके रूपमें प्रचलन है, तो भारतवर्षमें केश-सौन्दर्यकी चर्चा करते हुए 'नागिन-सी भुइलोटी' वाली उक्तिके अनुसार काली-काली लम्बी चोटीका आदर्श उपस्थित किया जाता है। बरमामें छोटी-छोटी गोल आँखें तथा भारतवर्षमें पद्म-पलाश और मीन-लोचनोंमें सौन्दर्य देखा जाता रहा है। चीनमें पावोंको लघु आकारका ही बनाये रखनेके लिए लोहेकी जूतियोंका प्राचीनकालमें प्रचलन रहा। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य स्वयं क्या है, यह कहना कठिन है और इस कारण उसकी कोई परिभाषा बताना भी सरल काम नहीं। इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी दार्शनिकों तथा सौन्दर्य-शास्त्रियोंने, यूनानी

विचारकोंके समयसे लेकर अब तक, इस विषयपर विचार किया है और अपने-अपने ढंगसे सौन्दर्यकी व्याख्या की है। आधुनिक युगके मनोवैज्ञानिकोंने भी सौन्दर्यकी व्याख्या की है, जो बहुत रोचक है। उनका मत है कि अपने-आपमें न तो कोई पदार्थ या व्यक्ति सुन्दर है या असुन्दर। कोई व्यक्ति या पदार्थ हमें सुन्दर इसलिए लगता है, क्योंकि वह हमें प्रिय है। अतः प्रेम ही सौन्दर्यका जनक है। सौन्दर्य प्रेमका अनुगामी है, प्रेम सौन्दर्यका नहीं।

जिस प्रकार सौन्दर्यकी कोई सर्वमान्य और सार्वभौम व्याख्या नहीं की जा सकती और न उसकी कोई ऐसी परिभाषा ही बनाई जा सकती है कि जिसमें सभी बातोंका समावेश यथास्थान हो सके, ठीक उसी प्रकार संस्कृतिकी भी दो-टूक ढंगसे व्याख्या नहीं की जा सकती और उसकी कोई परिपूर्ण परिभाषा नहीं बनाई जा सकती।

देशकी वर्तमान परिस्थिति तथा मानसिक द्वन्द्व और उथल-पुथलके वातावरणमें तो संस्कृतिकी चर्चा करना और भी संकटापन्न है, क्योंकि 'संस्कृति' शब्द आजकलका एक बहुत बदनाम शब्द है। संस्कृति शब्दको कुछ लोग साम्प्रदायिकताका समानार्थी समझते हैं, तो कुछ लोग प्रान्तीयता, प्रादेशिकता तथा संकीर्ण मनोवृत्ति और कठमुल्लेपन का प्रतीक। कुछ लोग सांस्कृतिक आयोजनोंको किसी दलकी राजनीति-विशेषका अवगुण्ठन-मात्र समझते हैं। उपर्युक्त बातोंमें कुछ आंशिक सत्य भी शायद हो। जो भी हो, संस्कृतिके नामपर जो देशमें आये दिन सुनने और देखनेमें आता है, उससे किसी भी संस्कृतिके उपासकका मस्तक स्वयं ही लज्जासे झुक जाता है। दक्षिण भारतमें द्रविड़ संस्कृतिकी रक्षाके नामपर ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्न खड़ा हो गया है। अंगरेजीकी चिरौरी और हिन्दीका विरोध किस संस्कृतिके नामपर किया जा रहा है, कुछ समझमें नहीं आता। ऐसे वायुमण्डलमें सांस्कृतिक विषयोंकी चर्चा एक साहसका काम है।

संस्कृतिकी अपने व्यापक विश्वजनीन रूपमें कोई सार्वभौम तथा उसी प्रकार कोई सीमित परिभाषा बनानेकी व्यर्थ चेष्टा न करके मैं तो यही कहूंगा कि हमारी भावना ही हमारी संस्कृति है। जितनी अधिक परिष्कृत और उन्नत हमारी भावना होगी, उतनी ही परिष्कृत और उन्नत हमारी संस्कृति भी। हमारी विविध कलाएँ और अन्यान्य मानसिक उपलब्धियाँ हमारी भावनाके, और एक दूसरे प्रचलित शब्द द्वारा प्रकट करें तो, संस्कृतिके बाह्य उपकरण-मात्र हैं।

कला या सुधी-साहित्य तथा लोक-साहित्यमें जो भावना मूर्तिमान होती है, वही हमारी संस्कृतिका व्यक्त रूप है। भावना जीवनकी सृजनात्मिका शक्ति है। एक हालकी लिखी कवितामें मैंने इस तथ्यको निम्नलिखित प्रकारसे व्यक्त करने का प्रयास किया है—

भावना निर्माण करती,
जड़ जगतमें प्राण भरती,
जो नहीं जगमें उसीका
फूंकती निज मन्त्र-बलसे
जगत्के निष्प्राण उरमें।

देशकी तथा देशके किसी अंचल-विशेषकी इसी सृजनात्मक भावनाका पोषण, विकास, विस्तार और कलात्मक अभिव्यक्ति करना तथा उसमें सहायक होना, मेरी रायमें, सांस्कृतिक कार्य है। हम जितना ही इस भावनाको समझें तथा उसकी अभिव्यक्तिमें सहायक हों, उतना ही अधिक हम उसकी सेवा करेंगे। नेतागिरीकी आकांक्षासे प्रेरित होकर और गुरुडम तथा गुटबन्दीका आश्रय लेकर भले ही जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें हम सफल हो सकें, किन्तु संस्कृतिके क्षेत्रमें यह नहीं चल सकता। इसका एक कारण है। गुटबन्दीमें पड़कर व्यक्ति अपना निजका विवेक खो बैठता है और दल-विशेषकी सामूहिक इच्छाशक्ति उसके स्वतन्त्र चिन्तनपर हावी हो जाती है। और फिर मानसिक क्रिया उसीके ऐन्द्रजालिक इशारोंसे परिचालित होती रहती है। अतः संस्कृतिके क्षेत्रमें गुटबन्दी सर्वथा घातक है। यहाँ व्यक्तित्वका मूल्य है, वोटों का नहीं। ('ललकार' से)

आल्ह-खण्डका नामकरण

सुबोधचन्द्र

उत्तर-भारतमें आल्ह-खण्ड वीरगीतोंका सर्वसुलभ और बहुप्रचलित संग्रह है। इसमें बारहवीं शताब्दीके यशस्वी चन्देल शासक परमर्दिदेव उपनाम परमालके दो देश-प्रसिद्ध सेनानायकों—आल्हा और ऊदल की वीरता और बलिदान की यशगाथा वीरगीतोंके सरल एवं प्रभावोत्पादक माध्यमसे कही गई है। इन गीतोंका मूल रचयिता परमालका दरबारी भाट जगनिक माना जाता है और आल्ह-खण्डमें उसे चन्देलराजका भांजा बताया गया है। परन्तु दोनोंमें से किसी भी बातके असंदिग्ध होनेका कोई प्रमाण नहीं है। अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित ग्राम्य संरक्षकोंकी मौखिक परम्परामें रक्षित रहनेके कारण इन गीतोंका मूलरूप भी विकृत हो गया है। भाषा और भाव दोनों ही में जमीन आसमानका फर्क हो गया है और जो संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें पर्याप्त आधुनिकता पाई जाती है। यह भी कहना कठिन है कि मूलरूपमें ये गीत 'आल्ह-खण्ड' के नामसे ही प्रचलित थे अथवा किसी और नामसे।

उत्तर-प्रदेश और उसके पूर्वी-पश्चिमी भागोंमें ये गीत 'आल्ह-खण्ड' के नामसे प्रचलित हैं, लेकिन अपने उद्गम-स्थान बुन्देलखंड (हमीरपुर) में इन गीतोंकी सम्पूर्ण शृंखला 'सैरा' या 'आल्हा' के नामसे प्रसिद्ध है। वहां विच्छिन्न गीत 'पंवारा', 'समय' या 'मार' के नामसे पुकारे जाते हैं,× जब कि उत्तर-प्रदेश और उसके निकटवर्ती स्थानोंमें पृथक् गीतको 'लड़ाई'के नामसे जाना जाता है।

पूरे संग्रहके नामके विषयमें विभिन्न विद्वानोंमें भी मत-भेद है। इसके नाममें 'आल्हा'के साथ 'खण्ड' शब्दने जुड़ कर अनेक भ्रमपूर्ण कल्पनाओंको जन्म दे दिया है। 'खण्ड' नामांशसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये वीरगीत किसी विशालकाय ग्रन्थके अंशमात्र हैं। और इसी सम्भावना पर आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपना मत स्थिर किया है—"आल्हा सम्बन्धी ये वीरगीत जगनिकके रचे उस बड़े काव्य के एक खंडके अन्तर्गत थे, जो चंदेलोंकी वीरताके वर्णनमें लिखा गया होगा।"÷

इसी नामके भ्रममें पड़कर मि० वाटर फील्डने 'आल्ह-खण्ड'को पृथ्वीराजरासोका एक सर्ग मान लिया है। उनका कथन है कि वास्तविक रूपमें यह रासोका एक सम्पूर्ण खंड ही है। यह सम्भव है कि कथाके विस्तारमें समयके विकास से परिवर्तन हो गया हो, और नए शब्द और नए वर्णन समय-समय पर उसमें मिला दिए गए हों, पर कथाका रूप तो चन्दसे ही लिया जान पड़ता है।÷

उक्त दोनों विद्वानोंकी अपेक्षा सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सनका मत अधिक चिन्तनपूर्ण है। उनके अनुसार यद्यपि आल्ह-खण्ड 'रासो'के महोबा-खण्ड की कथासे साम्य रखता है, पर उसकी रचना बिल्कुल स्वतन्त्र है। चन्दकी रचना दिल्लीके ऐश्वर्य और पृथ्वीराजके गौरवके वर्णनका आदर्श रखती है, आल्ह-खण्डकी कथा कन्नौज और महोबासे सम्बद्ध है। दोनों रचनाओंमें सिरसा-युद्ध और मलखान की मृत्युका अवश्य निर्देश है, पर दोनोंकी वर्णन-शैली सर्वथा भिन्न है। रासोमें महत्त्व केवल दिल्लीके चौहान वंशको है, किन्तु प्रस्तुत रचनामें दिल्लीके चौहान, कन्नौजके राठौर और महोबाके चन्देल अपनी शक्तिका परिचय देते हैं। इसमें बनाफर वंशके आल्हा और ऊदल नामी दो वीरोंका वीरत्व बड़ी ओजस्विनी भाषामें वर्णित है। भाषामें तो महान् अन्तर है। इस प्रकार आल्ह-खण्डको एक स्वतन्त्र रचना माननी चाहिए।*

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि आल्ह-खण्डको किसी ग्रन्थ-विशेषका भाग-मात्र स्वीकार करनेके मूलमें उसके नाम का 'खण्ड' अंश ही भ्रम उत्पन्न करता रहा है। बहुत सम्भव है कि यह नाम इस काव्यको पृथ्वीराजरासोका एक खण्ड या समय समझ कर प्रचलित हुआ हो, क्योंकि एक तो इन वीर-गीतोंके आरम्भिक और अन्तिम (संयोगिता स्वयंवर और बेला सती) गीत पृथ्वीराजसे सम्बन्धित हैं। दूसरे खण्ड उपनामको लेकर पृथ्वीराजरासोके कुछ समय—

× लि० स० इ०, पि० ९, भाग १, पृ० ४९५।

÷ हिन्दी साहित्यका इतिहास।

÷ हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा।

* हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा।

महोबा-खंड और कनउज-खंड— पृथक रूपमें भी प्राप्त हुए हैं। यह भी सम्भव है कि पृथ्वीराज और चन्दवरदाईके हिमायतियोंने परमाल और जगनिकका महत्त्व कम करनेके लिए इस लोक-काव्यका नाम आल्ह-खण्ड प्रसिद्ध किया हो, और उधर इस पक्षपातकी पुष्टिके लिए पृथ्वीराजरासोके साथ महोबा-समयको जोड़ दिया हो। जो हो, आल्ह-खण्ड नाम एक स्वतन्त्र रचनाके लिए किसी भी तरह उपयुक्त नहीं है। अतः अपने जन्मस्थान बुन्देलखंड (हमीरपुर) में प्रचलित 'आल्हा' नामको ही इस वीरगीतात्मक काव्यका वास्तविक और समीचीन नाम स्वीकार करना चाहिए, जो वर्षाकालमें मेघ-गर्जनके साथ अल्हैतके ढोलकी धमकार और कड़कते हुए स्वरमें भी सुनाई पड़ता है—

आल्हा गवइया जुग-जुग जीवै
औ सुनवइया अमर होइ जाय।

अब 'आल्हा' नामकी सार्थकता भी देख लेनी चाहिए। भारतीय काव्य-शास्त्रके आचार्योंने विभिन्न काव्य-रूपोंमें से केवल महाकाव्यके नामकरणपर ही विचार किया है। चौदहवीं शतीके कविराज विश्वनाथने अपने काव्य-शास्त्र निरूपक ग्रन्थ साहित्यदर्पणमें इसका यह नियम दिया है— 'कवेवृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्या वा।' अर्थात महाकाव्यका नाम कवि, काव्यगत वृत्त, नायक अथवा किसी अन्यके आधार पर हो। यद्यपि आल्ह-खण्ड वीरगीतोंका संग्रह-मात्र है, जिसमें प्रबन्धात्मकताकी ओर कोई अनुरोध नहीं मिलता, तथापि एक सम्पूर्ण जीवन-चित्रको वर्णनात्मक रूपमें आत्मसात् करनेके कारण महाकाव्यके समान ही इसकी कथानक सम्बन्धी विशेषता स्पष्ट हो जाती है, और महाकाव्य के नियमके अनुकूल ही नायकके नामपर इस छन्दोबद्ध जीवन-कथाका नामकरण हुआ है।

एक शंका और भी की जा सकती है। इन गीतोंको देखनेसे ऊदल और मलखानका महत्त्व भी आल्हासे कम नहीं दिखाई देता। वे भी धीरोदात्त गुणोंसे संयुत सद्वंशी क्षत्रिय हैं, फिर आल्हाको ही नायक क्यों माना जाय? ऊदल या मलखानको भी तो नायक रूपमें स्वीकार किया जा सकता था, तब आल्हाको ही यह गौरव क्यों प्रदान किया गया? अथवा जब कि साहित्य-दर्पणकारके अनुसार एक वंशमें उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं, फिर इन तीनों बनाफर बंधुओंको समान रूपसे क्यों न नायक रूपमें स्वीकार किया जाय? इन शंकाओंके निवारणार्थ यह आवश्यक है कि आल्हाके नायकत्वकी सम्यक् रूपसे परीक्षा की जाए।

इस सम्बन्धमें पहली बात तो यह है कि आल्हा बनाफर बन्धुओंमें सबसे ज्येष्ठ है और दूसरे कथाकी धारामें ऊदल और मलखानकी अपेक्षा दूर तक प्रवाहित रहनेसे उसीको नायक स्वीकार किया गया है। इन वीर-गीतोंमें प्रथम दो-तीन तो आल्हाके जीवनकी भूमिकाके रूपमें आते हैं, जिनमें परमाल और दच्छराज-वच्छराज सम्बन्धी सूचना दी गई है। इसके बाद आल्हाकी जीवनधारा प्रारम्भसे लेकर अन्त तक चलती है और उसके कजरी-बन चले जानेपर कथाकी धारा भी चिरविश्रांति हो लेती है।

चरित्र-चित्रणकी प्रमुखताके कारण आल्ह-खण्डको चरित्र-प्रधान काव्य माना जा सकता है। ऐसे काव्यमें नायक पात्रकी जीवन-रेखाएँ सारे कथानकमें बिखरी रहती हैं। आल्ह-खण्डमें इस तथ्यकी स्थितिके विषयमें ऊपर संकेत किया जा चुका है। इसके साथ ही चरित्र-प्रधान काव्यमें अन्य पात्रोंका आविर्भाव नायककी जीवन-रेखाओंको उभारने के लिए होता है। इन पात्रोंमें से कुछ तो प्रधान पात्रकी पृष्ठभूमिके रूपमें आते हैं, जिनका आधार पाकर उसकी जीवन-रेखाएँ उभरती हैं। आल्ह-खण्डमें परमाल और मलना इसी श्रेणीके पात्र हैं।

कुछ पात्रोंकी सृष्टि प्रधान-पात्रके लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न करनेके लिए होती है। अपनी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों से वे समस्याओंको जन्म देते हैं, संघर्षोंको मोल लेते हैं और नायक उन समस्याओंको हल करता है, संघर्षोंसे टक्कर लेता है। इस प्रकार परिस्थिति उत्पन्न करनेवाले पात्र भी अन्ततोगत्वा नायकके महत्त्वको ही विकसित एवं परिवर्द्धित करते हैं। आल्ह-खण्डमें उदय सिंह (ऊदल) इस कोटिका प्रमुख पात्र है, जो अपनी उद्दण्डता और निर्भीकताके कारण सदैव झगड़ों-टंटों और विपदाओंकी सृष्टि करता रहता है। चुगलखोर माहिल भी इसी श्रेणीका पात्र है।

कथानक और चरित्रमें प्रधानता होनेके साथ ही एक बात और है, जो आल्हाको नायक स्वीकार करनेके लिए बाध्य करती है, और वह है उसके व्यक्तित्वकी अनेकरूपता। ऊदल और मलखान आदि वीरताके एकांतिक आदर्श हैं, जिनके जीवनमें कुछ सीमा तक उद्दण्डता एवं अधीरता तो दिखाई ही देती है, लोकरंजकताका भी उनमें नितांत अभाव है। जरा-जरा-सी बातपर वे मरने-मारनेके लिए तैयार हो

जाते हैं और खून-खराबी करनेमें उन्हें तनिक भी हिचक नहीं होती। दूसरी तरफ आल्हा प्रत्येक कामको सोच-समझ कर करता है। उसमें नायकका गांभीर्य है, पैनी दृष्टि है और है असीम धीरता। उसके चरित्रमें न जल्द-बाजी है, न उथल-पुथल और न किसी प्रकारकी हठवादिता। उसका जीवन शौर्य, दया, धर्म, धैर्य और गांभीर्यके बीच शांत और सहज रूपमें प्रवाहित होता है। उसके चरित्रमें एक लोकरंजक एवं लोकोपकारक क्षत्रियके दर्शन होते हैं, जो वास्तवमें नायकके अनुरूप है। अनेक उदात्त भावनाओं के साथ ही उसके जीवनमें मोह और अविवेक जैसी मानवीय दुर्बलताओंके संकेत भी सुलभ हैं। आल्ह-खण्डके किसी अन्य पात्रमें इस प्रकारकी चरित्रगत विविधता एवं उदात्तता लक्षित नहीं होती।

भारतीय संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनके चार फल माने गए हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हमारे ऋषियोंने उन चारों की प्राप्तिके लिए संतुलित प्रयास करते हुए आवागमन की शृंखलाओंसे मुक्त होना अथवा मोक्ष-प्राप्ति करना ही जीवन का प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किया था। आल्हाके जीवनमें इन चारों पदार्थों की प्राप्तिका प्रयास दिखाई देता है। इनमें से तीन तत्वों को तो उसने भली-भाँति प्राप्त कर लिया है, और चौथेके लिए वह साधना-पथपर अग्रसर होता है। उसकी धर्मपरायणता सिद्ध करनेके लिए प्रणेताने उसे धर्मराज युधिष्ठिरका अवतार बताया है। परमालके सेनानायक और दसहरपुरके स्वामीके रूपमें उसने अर्थकी प्राप्ति की है। कामका फल इंदल-पुत्रके रूपमें स्पष्ट है और मोक्ष-लाभके लिए वह गुरु गोरखनाथके साथ कजरी-बनका पथिक बनता हुआ दिखाई देता है। आल्ह-खण्डके किसी व्यक्तिके जीवन में इन चार फलों की संयोजना अप्राप्य है। अतः निश्चय ही वह मूल रचनाकार-कवि और जनमतका अभीप्सित नायक है और उसीके नामपर सम्पूर्ण संग्रहका नाम भी 'आल्हा' रखा गया होगा। अतएव विवेच्य ग्रन्थका उपयुक्त नाम 'आल्हा' ही जान पड़ता है।

—*—

साहित्य और विज्ञान

गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

साहित्यका सम्बन्ध मूलरूपमें जीवनसे है। जीवनसे खाद लेकर ही साहित्यका पौधा लहलहाता है। जीवनके अभावमें साहित्यकी कल्पना नहीं हो सकती। व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे तो साहित्यमें जीवनका ही सर्वस्व रहता है। साहित्य जीवनका और जीवनके लिए होता है। 'कला कलाके लिए' के समर्थक 'साहित्य साहित्यके लिए' का समर्थन कर सकते हैं, लेकिन उनके इस समर्थनका खण्डन तर्कके सहारे हो जायगा। वास्तवमें 'कला कलाके लिए' नामक सिद्धान्तमें आनन्दपर विशेष ध्यान रहता है। पर प्रश्न है कि जीवनके अभावमें आनन्दकी कल्पना ही कैसे हो सकती है? अथवा जीवनके बिना आनन्दका क्या मूल्य हो सकता है? यह तो उसी तरहकी बात हो जायगी कि जंगलका मोर अपने-आप ही नाचे, न कोई उसको देखनेवाला हो और न कोई उसकी आलोचना करनेवाला। मोरके अपने-आप नाचनेमें भी वस्तुतः मोरके अपने जीवनका अस्तित्व है। अपने जीवनके अस्तित्वके अभावमें उसके नाचका भी कुछ मोल नहीं है।

साहित्यका विशेष सम्बन्ध मानव-जीवनसे है। पशु-पक्षी अथवा राक्षस आदिसे साहित्यका विशेष सम्बन्ध नहीं है। उनसे अगर साहित्यका सम्बन्ध है भी, तो बस इतना ही कि साहित्य उनको भी अपने 'सहित' (साथ) में समेटे रहता है और उनके 'हित' पर विशेष ध्यान रखता है। नदी-निर्झर, वन-पर्वत, संध्या-उषा, दिवा-रात्रि आदिके साथ भी यही बात है। सबसे बढ़कर तो साहित्य मानव-जीवनके विविध भावभंगियोंको अपने साथमें रखता है। मनुष्यकी आशा-निराशा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आनन्द-पीड़ा आदि प्रत्येक भावना साहित्यमें तरंगित होती रहती है। साहित्यकी वास्तविक सार्थकता भी यही है। 'सहितानामभावः साहित्यं' के पीछे इसी 'सहित' का भाव जुड़ा हुआ है।

साहित्य जीवन-विश्वका मधुमय सुमन कहा गया है। इसमें साहित्यके 'हित' वाले भावपर विशेष ध्यान रखा गया है। कहनेका तात्पर्य यह कि जिस प्रकार क्लान्त, मुरझाये हुए मुखड़ेको एक खिला हुआ सुन्दर फूल क्षणभरमें हरा-भरा

कर देता है, उसी प्रकार साहित्य भी एक श्रान्त-क्लान्त मानसमें नवयौवनका संचार कर देता है। साहित्यका इसमें उपयोग अथवा उपभोगपर ध्यान अधिक है। साहित्य सबके हितपर ध्यान रखता है। वह अमीर-गरीब, सदय-निर्दय, उदार-कंजूस आदिका भेद-भाव बिल्कुल नहीं रखता। उसकी दृष्टिमें सभी समान हैं। वह एक मजदूरको उसी प्रकार हर्ष-विभोर कर सकता है, जिस प्रकार एक राजाको। वह एक चिकित्सकको उसी प्रकारका आनन्द दे सकता है, जिस प्रकारका एक रोगीको। साहित्यके आनन्दकी प्राप्तिको एक परतन्त्र मनुष्य उसी प्रकार कर सकता है, जिस प्रकार एक स्वतन्त्र मनुष्य।

साहित्यिक आनन्द-प्राप्तिमें कमी-बेशी पाठकों अथवा ग्राहकोंकी ग्रहण-शक्तिके कारण होती है। जिस प्रकार पाठक अथवा ग्राहकमें 'भावयित्री प्रतिभा' अथवा ग्राहक-शक्ति जितनी तीव्र होती है, उतने ही अधिक आनन्दकी वह प्राप्ति करता है। जिस पाठक अथवा ग्राहकमें इस प्रतिभा अथवा शक्तिका अभाव होता है, वह साहित्यके आनन्दसे वंचित रहता है। ऐसा मनुष्य जड़ अथवा पशु-तुल्य है। भर्तृहरिने साहित्य, संगीत और कलासे विहीन मनुष्यको पूँछ और विषाण से रहित साक्षात्-पशु कहकर जो पुकारा है, उसमें विशेष ध्यान कदाचित साहित्य, संगीत और कलाके आनन्दपर ही है।

साहित्य विज्ञानका विरोधी नहीं है। साहित्य-निर्माण की प्रक्रियापर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। साहित्यकार साहित्य-सर्जनके पहले लम्बी साधना करता है। वह अपने परिपार्श्वसे प्रभावित होता है। प्रकृति अथवा अनात्म जगतकी प्रत्येक वस्तुसे वह अपना परिचय स्थापित करना चाहता है। उसकी आत्मामें जो पूर्वजन्मके संस्कार निहित रहते हैं, उन्हींके कारण कदाचित् वह ऐसा करनेमें समर्थ भी होता है, फिर उन्हें वह अपने विचारोंके तापमें गलाता है, उन्हें संवेद्य बनाता है और तब शब्दोंके माध्यमसे उनको विशेष रूप देता है। कभी उसके संवेद्य भाव कविता की सुरभि प्रदान करते हैं, अथवा कविताका रूप बनकर पाठक अथवा ग्राहकको अपूर्व आनन्दकी प्राप्ति कराते हैं, कभी कहानी, उपन्यास बनकर उसे अतिशय सुख प्रदान करते हैं। कभी-कभी परिपार्श्वसे गृहीत संवेद्य भाव अथवा विचार नाटक, निबन्ध अथवा प्रबन्धका भी रूप ले लेते हैं। कभी वे किसीकी जीवनी बनकर प्रकट होते हैं। सबमें उनका लक्ष्य पाठक अथवा ग्राहकको अधिक-से-अधिक आनन्द प्राप्त करानेका ही रहता है। साहित्यकारकी लम्बी साधना एक प्रकारसे विज्ञान ही है। विज्ञानमें जो किसी विषयका विशेष, शृंखलाबद्ध, नियमानुकूल ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह ठीक ही यहाँ घटित होता है। साहित्यकार साहित्यके मूलभूत उपकरणोंका विशेष रूपसे अध्ययन करता है, उनकी छानबीन करता है, उनसे अपनी घनिष्ठता स्थापित करता है।

विशेष रूपसे विज्ञानका जो अर्थ आज लिया जाता है, वह एटमबम, अणुबम, हवाई जहाज, रेडियो, रैडार इत्यादि विविध आविष्कारोंसे युक्त किसी विषय-विशेषसे है। मेकाले ने विज्ञानको साहित्यका विरोधी बतलाया है। वास्तवमें साहित्य विज्ञानका विरोधी नहीं है। बल्कि यह कहना अधिक युक्तिसंगत है कि विज्ञानकी पहली प्रेरणा साहित्यसे ही मिली होगी। भूलोकसे आकाश और आकाशसे भूलोक तक चक्कर लगानेवाली किसी कवि की उन्मुक्त कल्पनाने ही हवाई जहाजको यह रूप दिया होगा। साहित्यकार अपने साहित्यका काम खत्म कर जहाँपर छोड़ देता है, वैज्ञानिकका काम वस्तुतः वहींसे आरम्भ होता है। साहित्यकार जहाँ किसी गुलाबके फूलका चित्र उतारकर छोड़ देता है, वैज्ञानिक वहाँ व्यावहारिक उपयोगिता ढूंढ़ना चाहता है। वह काग़जी आनन्द अथवा काल्पनिक आनन्द पर विश्वास नहीं करता, बल्कि वह तो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भेदोपभेदमें जाता है और अपने कामके लिए तथ्य निकाल लेता है। वह फूलके इत्र निकालनेमें अधिक दत्तचित्त होता है बनिस्बत इसके कि वह "Beauty is only to see not to touch' का राग अलापे।

साहित्यके मूलभूत उपकरण कहाँसे आते हैं? क्या साहित्यकारके अन्तर्जगत्से अथवा उसके वाह्य जगत्से? वाह्य जगत्में उसके आन्तरिक अस्तित्वको छोड़कर सब कुछ चला आता है। क्रोचेके अनुसार दोनों जगहसे साहित्यके मूल उपकरण आते हैं, क्योंकि उसकी दृष्टिमें ज्ञानके दो भेद—सहज प्रज्ञात्मक और तार्किक। सहज प्रज्ञात्मक ज्ञानका सम्बन्ध मनुष्यके अन्तर्जगतसे है। तार्किक ज्ञानका सम्बन्ध विशेषकर मनुष्यके वाह्य जगत्से है। यों बिना अन्तर्जगत्से सहारा लिये इसमें भी काम नहीं चलता। विज्ञानका विशेष सम्बन्ध वाह्य जगतसे होता है। साहित्य भी विज्ञानकी ही तरह वाह्य जगत्के उपकरणोंको अपना विषय बनाता है और उसका सहज

संवेद्य रूप प्रदान करता है। विज्ञानमें वैज्ञानिक जो बाह्य जगत्से विषयका परिचय करता है, वह बहुत कुछ स्थूल होता है। उसपर वैज्ञानिकके व्यक्तित्वकी छाया नाममात्रकी भी नहीं रहती। एक उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। जर्मनीके महाकवि गेटेकी आत्मा बुलबुल पक्षीके रूपमें किसी बगीचेके मालीसे कहती है, "मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूं। मुझे किसी टूटी डालपर अन्धकार बिता लेने दो। इस रजनीमें विश्रामका मूल्य अन्तिम तान सुनाकर जाऊँगी।" इसमें बुलबुल पक्षीके प्रति जो आन्तरिक करुणा फूटेगी, वह कविके बुलबुलके माध्यमसे अपने व्यक्तित्वको वाणी देनेसे ही। वैज्ञानिक बुलबुलको अधिक-से-अधिक पौंड और औंस में तौलनेकी बात करेगा। वह उसका सहज संवेद्य रूप तो देना दूर रहे, उसकी कल्पनाका क्षणभर भी आनन्द लेना नहीं चाहेगा।

साहित्य और विज्ञान दोनोंकी लक्ष्य-प्राप्तिमें अन्तर है। साहित्यकार जहाँ 'कल्पना' के माध्यमसे जीवनमें अधिक-से-अधिक आनन्द प्रदान करता है, वहाँ वैज्ञानिक कल्पनाके अभावमें ही आनन्द प्रदान करनेका बीड़ा उठाता है। विज्ञान 'विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा' के समान, बिना आश्वस्त हुए, किसीकी प्रशंसाका पुल नहीं बाँधता। वह तर्कसे अधिक काम लेता है और कार्य-कारण-सम्बन्धकी छानबीन करता है। अपने निष्कर्षको वह निराधार नहीं रख सकता। कवि और साहित्यकारके साथ बात ठीक प्रतिकूल है। वह निष्कर्षके लिए आत्माके द्वारको खट-खटाना विशेष पसन्द करेगा बनिस्बत इसके लिए वह तर्ककी शरणमें जाय। साहित्यकारकी वाणी आत्माकी वाणी होती है। अथवा यों कहना अधिक उपयुक्त है कि कवि या साहित्यकार परिपार्श्वसे प्राप्त प्रत्येक अनुभूतिको आत्माके छन्नेसे छान लेगा, तब कहीं वह शब्दोंके माध्यमसे पाठकों अथवा ग्राहकोंके सम्मुख रखेगा।

साहित्य और विज्ञान दोनोंका लक्ष्य प्रायः समान है। किन्तु मानव-जिज्ञासाकी शान्ति विज्ञान जिस तरीकेसे करता है, साहित्य नहीं करा सकता। वैज्ञानिक किसी तथ्यके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्तर पर विचार करता है और तर्ककी एक-एक सीढ़ी पारकर कुछ ऐसा निष्कर्ष रखता है कि वह सहज विश्वसनीय होता है। आनन्दकी उपलब्धि साहित्य का भी लक्ष्य है, पर साहित्यमें, काँटके सौंदर्य-क्षेत्रमें अक-स्मात फैसला देनेवाली बुद्धिसे अधिक काम लिया जाता है। साहित्यका ध्यान सम्पूर्ण मानवताके कल्याणपर रहता है। विज्ञान भी मानवताके कल्याणका समर्थक है। साहित्य जीवन, जगत् आदिसे उपकरण जीवनके उत्थानके लिए लेता है। विज्ञान भी जीवनके उत्थान और सुख-सुविधाके लिए पर्याप्त उपकरण जुटाता है। तरह-तरहकी औषधियां, रेल, तार, हवाई जहाज, रेडियो, रैडार इत्यादि जो आविष्कार विज्ञानकी देन हैं, वे मानव-जीवनके उत्थान, सुख-सुविधाके लिए बनाये गये हैं।

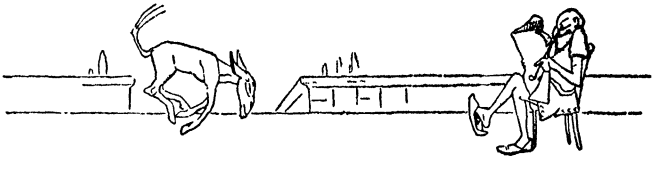
विज्ञान साहित्यका चिर ऋणी है। साहित्यमें सत्यं, शिवं, सुन्दरं पर ध्यान देकर कथाका महल खड़ा किया जाता है, सम्पूर्ण मानवताके विचार, भाव-भंगी आदि कलाके महल की ईंट बनते हैं। कलाके महलमें जो चित्रकारी होती है, जो फूल पौधे आदि लगाये अथवा बनाये जाते हैं, सबका लक्ष्य अधिक-से-अधिक सौंदर्य-सृष्टि करना होता है। इस सौंदर्यमें तर्कका स्थान प्रायः नहीं रहता है। दर्शक इसे देखकर आत्म-विभोर हो जाता है। उसके मनका बछड़ा तर्कका खूँटा तोड़ देता है और विचित्र आत्मानन्दको प्राप्ति करता है। विज्ञानकी कल्पना कलाके महल बनानेके बादमें की गई। अन्यथा एक-एक ईंटपर विशेष ध्यान देनेसे अधिक संभव था, कलाका महल शीघ्रतामें नहीं बनता और बनने पर अधिक काट-छाँट की गुंजाइश होती। वास्तवमें साहित्यके कला-भवनके निर्माणमें विज्ञानकी प्रक्रिया सदा जारी रहती है, पर साहित्यकारकी आँख (उसके मनकी आँख—प्रतिभा) उसे देख नहीं पाती। साहित्यकारकी प्रतिभा सहसा किसी साहित्य-कलाको जन्म दे देती है। आलोचनाका काम बादमें होता है, जो विज्ञानका काम है।

विज्ञान भी साहित्यका विरोधी नहीं है, बल्कि साहित्यसे प्राप्त सामग्रीका वह उपयोग करता है। साहित्य प्रदत्त सामग्रीकी छानबीन कर वह नये नियम निर्धारित करता है। साहित्यके क्रोड़में पलकर वह साहित्यके विकास के लिए मार्ग दिखलाता है। सूक्ष्म ज्ञान-विज्ञानका अन्तर स्थापित कर जब वैज्ञानिक नये निष्कर्ष रख देता है, साहित्य का आलोचक साहित्यके उत्थानके लिए नई सरणि उप-स्थित करता है। साहित्यकार अथवा कवि जब चमेली और बेलेके फूलका चित्र उपस्थित करता है और वैज्ञानिक जब उनसे प्राप्त इनकी चर्चा करने लगता है, साहित्यका आलोचक चमेली और बेलेसे प्राप्त इत्रकी व्यावहारिक उप-योगिताकी बात चलाने लगता है। कवि अथवा साहित्य-

कार इस अवसरपर इत्रपर ही कविता अथवा कोई कला-कृति प्रस्तुत कर देता है और इस प्रकार जब वैज्ञानिक इत्रसे प्राप्त आनन्दकी बात चलाने लगता है, तब साहित्यकार अथवा कवि उस अमूर्त्त आनन्दका ही मूर्त्त चित्र प्रस्तुत कर देता है।

विज्ञानकी उन्नतिने साहित्यके क्षेत्रको विस्तृत कर दिया है। विज्ञानके आविष्कारोंने साहित्यिकोंके लिए नया क्षेत्र प्रस्तुत किया है। विज्ञानमें आज जो भेदोपभेद लिये गये हैं और किये जा रहे हैं, जैसे भूत विज्ञान (Positive Science) और आदर्श-विज्ञान (Normative Science) और फिर उनके उपभेद मनोविज्ञान, यन्त्र-विज्ञान, जीव-विज्ञान, जन्तु-विज्ञान, तन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, दर्शन-शास्त्र, ज्योतिष-विज्ञान, तर्कशास्त्र, भाषा-विज्ञान, नृवंश-विज्ञान, समाज-विज्ञान इत्यादि। सबोंने साहित्य-निर्माणके लिए समुचित अवसर प्रदान किया है। कल्पनाके जगत्में अट-कनेसे विज्ञानने यथार्थ जगत्में घूमनेपर अधिक जोर दिया है। फलतः यथार्थ जीवनको अधिक महत्त्व मिला है। सामाजिक उथल-पुथल, क्रान्ति, विप्लव आदिमें विज्ञानके कारण जो भीषणता आई है, साहित्यकार उसे भी चित्रित कर सकता है और उसमें सुधार लानेके लिए भी साहित्यका सृजन कर सकता है। भारतवर्षमें 'प्रगतिवाद' का जन्म विज्ञानके सामाजिक जीवनमें प्रसारके कारण हुआ। प्रगति-वादी कवियोंने कविताके जो विषय निर्धारित किये, वे बिल्कुल साधारण थे। उस समय तक ये विषय प्रायः नगण्य थे। उनकी ओर ध्यान दिलानेका काम विज्ञानके प्रचार और प्रसारने किया। नाटक, उपन्यास अथवा काव्यके चरित-नायक अब तक सामान्य मनुष्य नहीं बनते थे। महाकाव्यमें तो चरित-नायक खासकर उच्चकुल सम्भूत मनुष्य, राजा अथवा देवता ही हुआ करते थे। विज्ञानके प्रसारने महाकाव्यका क्षेत्र विस्तीर्ण कर दिया है। फलस्वरूप रावण जैसे धीरोद्धत नायकपर भी महाकाव्यका निर्माण किया गया है। होरी जैसे तुच्छ किसानको लेकर भी 'गोदान'-जैसे विशालकाय महाकाव्यात्मक उपन्यासका सृजन किया गया है। साहित्यिक दृष्टिका विस्तार विज्ञानके कारण ही सम्भव हुआ।

साहित्य और विज्ञान दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। साहित्य सृजन-कालमें विज्ञानका सहारा लेता है, विज्ञान साहित्यके उपकरणोंपर अपनी छानबीन करता है। दोनोंका चरम लक्ष्य अतिशय आनन्दकी प्राप्ति है। पर साहित्यमें जहाँ कोई भाव नित नवीन बना रहा है, विज्ञानमें प्रायः कोई ऐसी बात नहीं होती। वैज्ञानिक आविष्कार अथवा अन्वेषण एकके बाद अनेक हो जानेपर पहलेवाले आविष्कार पुराने भी पड़ जाते हैं, पर साहित्यमें पुरानापन कभी भी नहीं फटकता। साहित्यका पौधा हमेशा फूल और सुरभिसे दिगन्तको सुरभित करता है। समयकी गतिसे वैज्ञानिक अन्वेषण मन्दसे मन्दतर होते जाते हैं, किन्तु साहित्य के साथ विस्मय और कुतूहल सदैव स्थायी रहता है। इसका कारण यह है कि साहित्यमें व्यक्तित्वकी प्रधानता रहती है और विज्ञानमें नियमकी। यही कारण है, गैलीलियोकी अपेक्षा हम शेक्सपियरको अपने जीवनके अधिक समीप पाते हैं। जगदीशचन्द्र बोस अथवा सर सी० पी० रमणकी अपेक्षा रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे जीवनमें अधिक घुले-मिले हैं। प्रकृतिके रहस्य विज्ञानसे भी स्पष्ट होते हैं। पर उनमें भावनाका कोई आकर्षण, जीवन-ज्योतिका कोई आभास नहीं रहता; किन्तु साहित्यके माध्यमसे जो प्राकृतिक रहस्य स्पष्ट होते हैं, वे नित नवीन और आकर्षक बने रहते हैं। सभ्यता, समाज और समय इन तीनोंकी अभिव्यक्ति साहित्यमें होती है और साहित्य इन तीनोंके लिए पर्याप्त उपकरण देता है। विज्ञानका भी ध्यान इन तीनोंपर रहता है और इन तीनोंको दृष्टिपथमें रखकर तरह-तरहके अन्वेषण अथवा आविष्कार करता है। रूपककी भाषामें साहित्यको हम सभ्यताके आकाशमें, समयकी प्रेरणासे, समाजकी मिट्टीपर लहलहाता हुआ वृक्ष कह सकते हैं और विज्ञानको इस वृक्षके शोर और जड़।



योगीश्वरके दर्शन

रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी

सन्त-शिरोमणि गोस्वामी श्री तुलसीदासजीने 'मानस' में लिखा है—'बिन प्रभु कृपा न भेंटहि सन्ता', जब तक प्रभुकी पूर्ण कृपा नहीं होती, तब तक सन्त पुरुषोंके दर्शन नहीं होते।

जिन योगीश्वरका यहाँ चित्र और चरित्र प्रस्तुत किया जाता है, उनके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे सन् १९३६ में



योगीश्वर भोपा बाबा

प्राप्त हुआ और तबसे बराबर उनके दर्शनोंसे लाभ उठा रहा हूं। योगीश्वरके पूर्व परिचित भक्तसे मुझे जो परिचय प्राप्त हुआ, वह संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

योगीश्वरका जन्म खुरजामें एक सेठके सम्पन्न घरमें हुआ था। यह परिवार अब तक खुरजेमें है। यह कुल धन्य है, जिसमें ऐसे परम ईश्वर-भक्तका प्रादुर्भाव हुआ। जब आपकी अवस्था केवल सात वर्षकी थी, तभी आपने अपनी बुआके लड़केका हाथ अपनी माताके हाथमें देकर कहा कि 'अब तू इसे मेरे स्थानपर अपना पुत्र समझना।' आपकी माताकी मृत्यु चार वर्ष पूर्व खुरजामें हुई। आप माताकी मृत्युसे कुछ साल पूर्व उनके पास गये थे और उन्हें सान्त्वना दी थी। आप गुरु गोरखनाथके मान्य शिष्योंमें से एक हैं।

आपका नियम है कि एक स्थानपर आप सात रातसे अधिक नहीं ठहरते। यह लेखकका सौभाग्य है कि आप कभी-कभी उसे दर्शन देकर, घर पवित्र करनेकी महान कृपा करते हैं। आप परम त्यागी, योगी, यती तथा अनासक्त योगी हैं। पहले आप अपने हाथमें फरसा रखते थे, किन्तु अब त्रिशूल रहता है। जिस रूपके दर्शन लेखकने सन् '३६ में किये थे, वही रूप अब भी है। आपका कोई एक स्थान नहीं है और न अपने साथ कोई सामान ही रखते हैं—तनपर वस्त्र, हाथमें झोला और करमें त्रिशूल। आपको परब्रह्म परमात्माका निरन्तर सान्निध्य रहता है। आप बड़े अच्छे संगीतज्ञ तथा परमोपदेशक भी हैं। आपका प्रभापूर्ण मुखमण्डल देखकर ऐसा कौन मनुष्य है, जो नतमस्तक नहीं हो जाता। आप त्रिकालज्ञ भी हैं और हैं परम दयालु, परोपकारी। आपके दर्शन जिसे एक बार हो गये हैं, वह पुनः इस बातका इच्छुक रहता है कि पुनः-पुनः दर्शन प्राप्त होते रहें। भारत-भूमि सन्त-शिरोमणि भक्तोंसे विहीन नहीं है। आप भोपा बाबाके नामसे प्रसिद्ध हैं।

स्वर्गीय मौलाना आज़ाद—जैसा मैंने उन्हें जाना

के० जी० सैयदैन

मौलाना आज़ाद, जैसा उन्हें मैंने जाना ? मैं मौलाना आज़ादके बारेमें क्या जानता हूं ? जहाज़पर खड़ा हुआ व्यक्ति उस भीमकाय 'आइस-बर्ग' के बारेमें कितना जानता है—जिसका केवल थोड़ा-सा अंश ही पानीके ऊपर दिखाई देता है ? अथवा किसी विराट पर्वतकी तलहटीमें रहनेवाला व्यक्ति उसकी हिमाच्छादित चोटियोंके बारेमें कितना जानता है, जिनपर चिर शान्तिका साम्राज्य प्रतीत होता है, उसकी चक्कर काटती हुई नदियों और घाटियोंके बारेमें, उसके शिखरपर घुमड़ते हुए तूफ़ानों और चमकती हुई बिजलियोंके बारेमें, या उसके अन्तरमें उबलते हुए लावा के बारेमें ? या उसकी वानस्पतिक सम्पत्ति और वृक्षों तथा पुष्पों एवं बहुमूल्य मणियोंके बारेमें वह कितना जानता है ? नहीं, उसकी पूरी प्रभावशीलताको हम केवल तभी समझ सकते हैं, जब हम उसे समुचित दूरीसे देखें। और हम जो इस पीढ़ीके लोग हैं, मौलाना आज़ादके एक विराट साँचेमें ढले हुए व्यक्तिको तब तक पूरी तौरसे नहीं समझ सकेंगे, जब तक काल हमें ठीक-ठीक 'दृष्टिकोण' प्रदान नहीं कर देता। उनके बारेमें विचार करते समय अथवा उनके बारेमें बोलते या लिखते समय मेरे मनमें अपनी अक्षमताका भाव आ जाता है।

मौलाना आज़ाद—जैसा मैंने उन्हें जाना ? सर्वप्रथम मैंने उन्हें अडिग ईमानदार और उच्च सिद्धान्तोंवाले व्यक्तिके रूपमें जाना। सन् १९२० में, जब मैं एक तरुण विद्यार्थी था, मैंने उनसे पत्र लिखकर पूछा था कि इस कठिन कालमें क्या करना उचित है ? शीघ्र ही कुरानकी एक आयतके रूपमें उत्तर मिला—

"जो कुछ भी अच्छा है और 'सद्' है, उससे सहयोग करो, और जो कुछ भी बुरा है और अन्यायपूर्ण है, उससे सहयोग मत करो।"

मैं सोचता हूं कि इस आयतमें ही उनकी निष्ठाकी आधारभूत घोषणा सम्पूर्ण रूपसे आ जाती है। हमारे जन-जीवनमें बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी (जैसा किसीने कहा है) कथनी और करनी, शब्द और कर्मकी खाई इतनी सूक्ष्म थी कि लगभग अदृष्ट ही थी। जिस बातको वह सही समझते थे, उससे सहयोग करनेको वे सदा तत्पर रहते थे, भले ही वह किसी भी धर्म, जाति या मतसे सम्बन्धित हो, और साथ ही जिस चीज़में अन्याय या भ्रष्टाचारकी गन्ध आती थी, उससे अपना सहयोग खींच लेनेके मामलेमें भी वह समान रूपसे दृढ़ थे, भले ही उनके निकटतम व्यक्ति उससे किसी भी प्रकार सम्बन्धित हों। उनके बारेमें जो कहा जाता है कि वे 'राष्ट्रके विवेक' थे, वह सही है।

मौलाना आज़ाद—जैसा मैंने उन्हें जाना ? मैंने उन्हें, पंडित नेहरूके शब्दोंमें, पूर्व और पश्चिमकी संस्कृतियोंके सेतु के रूपमें जाना, एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें, जिसने अपने व्यक्तित्वमें भूत और भविष्यकी खाईको पाट दिया था। प्रत्येक महान संस्कृति शताब्दियों तक प्रसव-पीड़ा सहन करने के बाद अपने स्वाभाविक मूल्य, दृष्टिकोण और आदर्शोंको विकसित करती है और अनेक महान व्यक्तियोंको जन्म देती है। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि सर्जनके आवेगमें इन मूल्योंकी कलात्मक रूपसे पूर्ण अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति-विशेषमें हो जाती है—किसी लियोनार्डो द विंचीमें या गेटे या अब्राहम लिंकन या टैगोर या गाँधी या नेहरूमें। वास्तवमें यह एक बड़ी अनहोनी और ध्यान देने योग्य घटना है कि भारतने एक पीढ़ीमें इस प्रकारकी अनेक विभूतियोंको जन्म दिया है। मौलाना आजाद भी ऐसे ही साँचेमें ढले थे। वे उस महान् 'इंडो-सैमेटिक' संस्कृतिकी महत्त्वपूर्ण कृति थे, जो पिछले एक हजार वर्षोंमें परिपक्व हुई थी। किन्तु वे भूतकालकी सर्वोत्तम निधियों, उसकी शिष्टता, शालीनता, सहनशीलता, आध्यात्मिक मूल्योंके प्रति निष्ठा, पूर्णत्वके लिए संघर्ष और मानवीय भावोंकी ग्राहकता आदिके पूर्ण संगम होनेके साथ ही कुछ और भी थे। उनके व्यक्तित्व में भविष्यत्की सृजनात्मक छलांग भी थी, क्योंकि उन्होंने उत्तराधिकारमें पाई हुई अपनी सांस्कृतिक निधिमें पश्चिमके सर्वोत्तम मूल्यों और दृष्टिकोणोंको, उसकी वस्तुपरकता, उसकी वैज्ञानिकता, उसकी बौद्धिक ईमानदारी, न्यायपरता, जन-साधारणके प्रति चिन्ताभाव आदिको भी पचाकर उसमें शामिल कर दिया था। एक सीमा तक इस पीढ़ीके हम सभी लोग इस सांस्कृतिक अन्तर-क्रियासे निर्मित हुए हैं। किन्तु मैं नहीं जानता कि यह समावेश किसी और व्यक्तिमें इतने सुन्दर ढंगसे संयोजित हुआ हो, जितने सुन्दर

ढंगसे मौलाना आजादमें हुआ था। बिना आंग्ल शिक्षाके, बिना अंग्रेजी बोले या लिखे, उनके लिये पाश्चात्य संस्कृति उतनी ही सरल और सुगम थी—जितनी कि पूर्वी या इस्लामी संस्कृति। कोई भी अच्छी चीज उनके लिए अपरिचित नहीं थी।

मौलाना आज़ाद--जैसा मैंने उन्हें जाना? मैंने उन्हें एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें जाना, जिसे प्रकृतिने इतना सम्यक बनाया था कि आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता था। उन्हें क्या नहीं मिला था? ऐसा शरीर जो भीड़में भी दूरसे पहचाना जा सके—मृत्युके बाद भी उनके मुखपर राजसी कांति थी·· मस्तिष्क जो "आभापूर्ण" था (जैसा कि पंडितजी ने अपने सही शब्द और सही भाववाली प्रकृतिके अनुसार कहा था), अर्थात ऐसा मस्तिष्क जो न केवल दूसरों को ही आलोक देता था, बल्कि जो स्वयं मानो अपनेमें ही ज्योतिके किसी अजस्र स्रोतसे आलोकित हो। किसी स्थिति को समझने, मूल तथ्योंको पहचानने और साफ फैसले तक पहुंचनेकी उनकी क्षमताके प्रति लगभग सभीने जो कुछ आदरपूर्वक कहा है, उसे मैं व्यक्तिगत अनुभवके आधार पर दुहरा सकता हूं। जिस समय हम उलझे हुए मामलोंमें लगकर मामूली-सी बातोंमें भिड़े रहते और बड़ी झिझकसे अच्छाई और बुराईको तौलते, उस समय मौलाना आज़ाद की पैनी बुद्धि समस्याके मूल तक पहुंच जाती थी। उनका हृदय आकाशकी भांति खुला हुआ और सागरकी भांति गम्भीर था। उसमें किसी भी प्रकारके संकोचके लिये स्थान नहीं था—न धार्मिक, न साम्प्रदायिक, न भाषावार और न प्रादेशिक। देशके प्रत्येक अल्पमत दलका उनमें विश्वास था। वे जानते थे कि अपनी सहनशीलता, मानवता और अभ्रष्टनीय न्यायपरताके कारण मौलाना आज़ाद उनके न्यायोचित अधिकारोंका रक्षण करेंगे। वे इस शताब्दि के, उर्दू भाषाकी लेखन और वक्तृत्व-कलाके महानतम अधिकारियोंमें से थे। जो लोग उर्दू नहीं जानते, वे उनके इन लेखोंकी शक्ति, उनके जादू और आगका अन्दाजा नहीं लगा सकते, जिन्होंने इस शताब्दीके प्रारम्भिक दशकोंसे ही उनके पाठकोंको मन्त्रमुग्ध किया और लाखों नवयुवकोंके भावों और विचारोंको एक नये सांचेमें ढाल दिया था। मेरे विचारसे एक ही उर्दू लेखक और थे, जिनका अपनी पीढ़ीके विचारों पर इतना शक्तिशाली प्रभाव पड़ा था और वे थे इक़बाल। जिन लोगोंने उन्हें इन वर्षोंमें केवल सरकारी कान्फ्रेंसोंमें ही सुना है, वे उनकी उस वक्तृत्व-शक्तिका अन्दाजा नहीं लगा सकते, जो हमारे स्वतन्त्रता-संग्रामके शानदार जमानेमें स्वयं एक प्रेरणा थी और भयकारी भी थी। मैंने प्रथम बार उनका भाषण सन् १९२० में अलीगढ़में सुना था। लगातार छह घण्टों तक, रातके दो बजे तक वे श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध किये रहे—एक भी व्यक्ति अपने स्थानसे हिला तक नहीं। अपने ज्ञानके विस्तार और स्मरणशक्तिके कारण वे वास्तवमें 'एनसाइक्लोपीडिया' ही बन गये थे। फर्क सिर्फ यह था कि 'एनसाइक्लोपीडिया' एक जड़ वस्तु होती है, जिसमें मौलिकता या नये भाष्य करनेकी दृष्टि नहीं होती, जब कि मौलाना साहबका मस्तिष्क एक प्रकाश-स्तम्भके समान था, जो जिस विषय की ओर भी घूमता था, उसे नये अर्थोंसे आलोकित कर देता था। उनमें विज्ञान और दर्शन, धर्म और राजनीतिका एक आश्चर्यजनक संश्लेषण हो गया था। उनके निकट बौद्धिक और व्यावहारिक इन सभी क्रियाओंका मूल केवल तभी होता था, जब वे एक महान् लक्ष्यके प्रति निर्देशित हों और वह महान् लक्ष्य था 'सद्-जीवन' का विकास, शरीर और आत्मा दोनोंके लिये, व्यक्ति और समाजके लिये।

मौलाना आज़ाद जैसा कि मैंने उन्हें जाना? मैंने उन्हें जाना एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें, जो विचारवान और कर्मशील दोनों ही प्रकारका जीवन समान पूर्णता और श्रेष्ठतासे बिताता हो। जब महान् राष्ट्रीय संघर्षने त्याग और बलिदान और शारीरिक साहस और दृढ़ताकी मांग की, तो वे उसमें कूद पड़े, और जब स्वतन्त्रता आई, तो उसके प्रारम्भके तूफानी, कष्टप्रद वर्षोंमें उन्होंने शान्त बुद्धिसे, नैतिक साहससे और अडिग ईमानदारीसे राष्ट्रका पथ-प्रदर्शन किया। अन्तिम वर्षोंमें अनेक कारणोंसे (जिनमें उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य भी शामिल है) उनका जीवन एकाकी गरुड़के समान हो गया था। किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसके कारण वे राष्ट्रीय जीवनकी महत्त्वपूर्ण धाराओंसे अलग नहीं हो गये, बल्कि इसके कारण वे राष्ट्रीय जीवनको बड़ी मुस्तैदी से और सम्पूर्ण रूपसे देख सके, बड़े साफ दिमाग़से इसकी कमज़ोरियोंको समझते रहे और इसके विकासका निर्देशन करते रहे। इक़बालके शब्दोंमें वे—

"मिस्ले खुर्शीद - सहर फिक्र की ताबानी में,
शमा-ए-महफिलकी तरह, सबसे जुदा, सबका रफीक़।"

थे।

मौलाना आज़ाद जैसा कि मैंने उन्हें जाना ? मैंने उन्हें एक ज़बरदस्त आत्म-विश्वास और गौरवपूर्ण व्यक्तिके रूपमें जाना, जिसने कभी भी जनताका कृपापात्र होनेकी आकांक्षा नहीं की, बल्कि जिसने अपनी ही शर्तों पर जनताके हृदयमें अपना स्थान बनाया। और यह व्यक्ति, जो आदमियोंमें बादशाह था और अपने सभी कामोंमें पूर्णत्ववादी था, एक ऐसे फकीरके समान भी था, जिसका न कहीं मकान है, न सम्पत्ति, न बैंकमें रकम और न बड़प्पनके बाहरी उपादान, यहाँ तक कि साधारण सामाजिक सम्बन्ध भी नहीं थे, जो लोगोंको कायर बना देते हैं। मैंने कोई दूसरा महान् व्यक्ति नहीं देखा, जिसे हर किस्मके आत्म-विज्ञापन और प्रोपेगेण्डा से इतनी अरुचि हो। वे अपने नामपर किसी भी संघ या संस्थाको चलानेकी अनुमति कभी नहीं देते थे। वे विश्व-विद्यालयोंसे 'आनरेरी' डिग्रियाँ लेना स्वीकार नहीं करते थे, वे अपनी जन्म-तिथि तक छिपाये रखते थे कि कहीं उनके मित्रगण और प्रशंसक किसी प्रकार उसका उत्सव न मना बैठें ! उनसे जब इस प्रकारकी याचना की जाती थी, तो कभी-कभी मैं उनसे शिकायत करता था, "मौलाना साहब, ये लोग सचमुच ऐसा चाहते हैं, ये लोग आपके प्रति अपना आदर-भाव और प्रशंसा अभिव्यक्त करनेके लिए ही आपका नाम जोड़ देना चाहते हैं।" तब उनका उत्तर होता, "हो सकता है, लेकिन मैंने उसूल बना लिया है, मैं नहीं चाहता कि जब तक मैं मिनिस्टर हूं, तबतक कोई मेरा नाम किसी चीज़के साथ जोड़े।"

मौलाना आज़ाद जैसा मैंने उन्हें जाना ? इस बड़े आदमीमें, शरीर और मस्तिष्कके इस अभिजात व्यक्तिमें, जनसाधारणके प्रति बड़ा गहरा आदर-भाव और करुणा थी। जिस सहानुभूतिसे वे इन लोगोंकी समस्याओंको सुलझाते थे, उसमें और उनकी मुसीबतोंको महसूस करनेकी क्षमतामें यह बात दिखाई देती थी। एक बार उन्होंने बड़ी दृढतापूर्वक, तमाम तरहके दबाव पड़ते हुए भी, एक धनी और प्रभावशाली व्यक्तिको कांग्रेसका टिकट देना अस्वीकार कर दिया, जिसके बारेमें यह कहा जाता था कि उसने अनाजमें चोरबाज़ारी की है। "मैं दूसरे किसी भी पाप या जुर्मको माफ कर सकता हूं, लेकिन जनसाधारणकी मुसीबतोंसे मुनाफा कमाने के कामको कभी माफ नहीं कर सकता।" ऐसी बातें कितने ही लोगोंको बहुत अच्छी तरह मालूम हैं, लेकिन इस सिलसिलेमें 'कुरानका भाष्य' नामक उनके ग्रन्थका मर्मस्पर्शी समर्पण जो उन्होंने एक अपरिचित दरिद्रके प्रति किया है, उसे पढ़ना बहुतोंके लिए नई चीज़ होगी।

"दिसम्बर, सन् १९१८ में, मैं राँचीमें नज़रबन्द था। एक दिन शामकी नमाज़के बाद जब मैं मस्जिदसे निकला, तो मुझे लगा कि कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैंने लौटकर देखा, तो कम्बल ओढ़े एक आदमी नज़र आया।

"तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो ?"

"हाँ जनाब, मैं बहुत दूरसे आया हूं।"

"कहाँसे आये हो ?"

"सरहदके पारसे।"

"तुम यहाँ कब आये ?"

"आज शामको ही। मैं ग़रीब आदमी हूं। मैं कंदहारसे क्वेटा तक पैदल आया। वहाँ मेरे देशवासी व्यापारियोंने मुझे नौकर रख लिया और आगरे तक ले आये। अब आगरे से यहाँ तक मैं पैदल आया हूं।"

"लेकिन तुमने यह सब तकलीफ क्यों उठाई ?"

"जिससे मैं कुरानका कुछ अर्थ आपसे समझ सकूँ। मैंने 'अल-हिलाल' और 'अल-बलाग' का एक-एक शब्द पढ़ लिया है।"

यह आदमी कुछ दिन ठहरकर कुरान पढ़ता रहा और फिर बिना खबर दिये ही चल दिया। चलनेके पहले वह मुझसे मिला भी नहीं कि मैं कहीं उसका लौटनेका सफर-खर्च न दे दूँ। वह मेरे ऊपर बोझ डालना नहीं चाहता था। मुझे विश्वास है कि उसने ज्यादातर सफ़र पैदल ही किया होगा।

मुझे उसका नाम याद नहीं। मुझे पता नहीं कि वह जिन्दा भी है या नहीं। यदि मैं उसका नाम भूल न गया होता, तो यह किताब मैंने उसीको समर्पित की होती।"

समर्पणके ये शब्द इस घटनाके तेरह वर्ष बाद सन् १९३१ में लिखे गये थे। अपनी सर्वोत्तम कृति कुरानशरीफके भाष्य-ग्रन्थको दूसरे देशके किसी गुमनाम दरिद्रको समर्पित कर देना अपनी तरहका एक ऐसा काम है, जिससे अधिक श्रेष्ठ काम मैं नहीं जानता।

मौलाना आज़ाद जैसा कि मैंने उन्हें जाना ? यहाँ मैं उन्हें अपने बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रेरणा-स्रोतके रूपमें नहीं वर्णित कर रहा और न अपने मन्त्रीके रूपमें वर्णित कर रहा हूं, जिनके चरणोंमें बैठकर मुझे सात वर्ष तक कार्य करनेका और कुछ ऐसी बहुमूल्य शिक्षा ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिससे जीवन सार्थक होता है और

अर्थ-संसारमें जीवनको गति मिलती है। इस कथाको अभी प्रतीक्षा करनी होगी—इसे एक छोटे-से गद्यांशमें बाँधा नहीं जा सकता। मैं यहाँ केवल यही कह सकता हूं कि उन्होंने अपने नेतृत्वके दस वर्षोंमें हमारी राष्ट्रीय शिक्षापर जो छाप लगाई, वह बहुत काल तक रहेगी और आगामी दशकोंमें गहरी होती जायगी। फिर भी यहाँ मुझे उनके उन तीन भाषणोंकी सामग्रीकी याद आती है, जो उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दो सप्ताहोंमें दिये थे। उर्दू कान्फरेन्सके अपने प्रथम भाषणमें उन्होंने बड़े भावनापूर्ण ढंगसे कहा था कि सभी भाषाओंको विकासका और सम्पन्न बनानेका अवसर मिलना चाहिए; सभीको हिन्दीके विकासमें भाग लेना चाहिए, और उन्होंने अन्य किसी राष्ट्रिय भाषाके समान ही आतुरता से उर्दूके सुरक्षित रखे जानेके अधिकारके बारेमें भी बताया था। उनका दूसरा भाषण था 'सेंट्रल ऐडवाइज़री बोर्ड आफ एजूकेशन' में। इस भाषणमें उन्होंने राष्ट्रिय जीवनमें शिक्षाको समुचित स्थान दिलानेके लिए अपने अथक प्रयासका हवाला दिया था और बताया था कि इस लक्ष्य-प्राप्तिके लिए योजना-कमीशनको कौन-कौनसे साधन उपलब्ध करने चाहिए। मैंने कभी भी इस मौनव्रतीको भावावेशमें इतना बहते या ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते नहीं देखा, जैसे कि उस दिन जनताकी अदालतमें शिक्षाकी वकालत करते समय किये थे। और 'इण्डियन काउन्सिल फ़ार कल्चरल रिलेशन्स' के समक्ष अपने तीसरे व्याख्यानमें उन्होंने भारतकी शान्तिकी आकांक्षाके बारेमें और भारतके उन अथक प्रयत्नोंके बारेमें बताया था, जो उसने प्रेम और बन्धुत्वके अपने सन्देशको दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचानेके लिए किये हैं। मुझे प्रतीत होता है कि अपने इन तीन व्याख्यानोंमें वे हमारे लिए अपनी वसीयत छोड़ रहे थे।·····इससे हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? अपने देशके सभी निवासियोंसे न्यायपूर्ण ढंगसे व्यवहार करिये, क्योंकि न्याय 'सद् जीवन' का मूल आधार है। अपने अन्तर्राष्ट्रिय सम्बन्धोंमें प्रेम और बन्धुत्व तथा समझदारीका दृष्टिकोण अपनाइये, क्योंकि आप दूसरोंमें अच्छाई केवल तभी जगा सकते हैं, जब आपका उनके प्रति अच्छा व्यवहार हो। और अपनी योजनाओंमें शिक्षाको गौरवमय पदपर प्रतिष्ठित करिये, क्योंकि सद् शिक्षाके बिना आप न व्यक्तिगत जीवनको, न राष्ट्रिय जीवनको और न अन्तर्राष्ट्रिय जीवनको ही नैतिक आधारपर बिठा सकते हैं। और जैसा कि मैं बता चुका हूं, यही उनके सब प्रयासोंका महान् लक्ष्य था, चाहे वह शिक्षाके क्षेत्रमें हो या राजनीतिके क्षेत्रमें। और यही धर्म, दर्शन, साहित्य तथा ज्ञानकी अन्य शाखाओंमें उनके युगान्तरकारीका प्रेरणा-स्रोत था।

मौलाना आज़ाद अपनी युग-यात्रा समाप्त कर चुके हैं, उनके जीवनका शानदार काफिला अपनी मंज़िलपर पहुंच चुका है। यही मंज़िल कुरानकी निम्नलिखित आयतोंमें वर्णित है, जिनपर मेरी नज़र उनकी मृत्युके प्रातः पड़ी :

"तू, जिसे अल्लाहने शान्तिका गुण प्रदान किया है,
अपने सृष्टिकर्त्ताकी गोदमें लौट जा!
वह तुझसे सन्तुष्ट है, जैसा तू उससे सन्तुष्ट है!
आ, और मेरे बन्दोंके साथ रह,
आ, और स्वर्गमें अपना स्थान ग्रहण कर।"

गन्दी औरतें!

राजेन्द्र कुशवाहा

दहलीज़पर क़दम रखते ही अविनाशने आज फिर देखा कि उसके आँगनमें लगे हुए नलपर उसके मकानके ठीक बराबरवाली कोठरीकी एक गन्दी औरत गेंदी पानी भर रही है और उसकी पत्नी रेखा उससे हँस-हँसकर बातें कर रही है। अविनाशने क्रोधसे होंठोंको दाँतोंसे दबा लिया और फिर रेखाकी ओर ऐसी निगाहसे देखा कि वह सहमी हुई हिरनीकी तरह चुपचाप अन्दर कमरेमें चली गई और गेंदी मौकेपर पकड़े गये चोरकी तरह घबराई हुई अपने अधभरे कलसेको लिये बाहर निकल गई।

गेंदीके बाहर जाते ही अविनाश रेखाको डाँटते हुए कहा—"कितनी बार समझाया कि इस तरहकी नीच और गन्दी औरतोंसे बात नहीं करनी चाहिए और खास तौरपर इन दिनोंमें। पर, तुमने तो जैसे कसम खा ली है कि मैं कहूंगा पूरब और तुम कहोगी पश्चिम। अब मैं साफ कहे देता हूं कि अगर फिर कभी मैंने इसे अन्दर देखा, तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"

रेखा अपनी बड़ी-बड़ी पानीसे भरी आँखोंको नीचे किये सुनती रही। उसके मनमें आया कि वह कहे कि "आप

तो दिनभर दफ्तरमें रहते हैं और मैं यहाँ अकेली सारा दिन कैसे काटूँ। फिर गेंदी स्वयं अपने-आप आ जाती है, तो उससे मना भी किस तरह किया जाय।"

अविनाशने न-जाने उसके मनके भावको कैसे ताड़ लिया। ज़रा स्वरको कोमल बनाते हुए बोला—"यह मैं जानता हूं कि तुम्हें दिनभर अकेली रहना पड़ता है। तब फिर सामने लाला भोलारामके घर क्यों नहीं चली जाया करतीं। कितने सुसंस्कृत और विनम्र हैं वे लोग। याद है, उस दिन जब मैं तुम्हें उनकी लड़कीकी वर्षगाँठपर ले गया था, तब बेचारोंने कितनी आवभगत की थी तुम्हारी। कितने आग्रहके साथ फिर बुलाया था तुम्हें। विनम्रताकी तो सीमा नहीं है उन लोगोंमें। जहाँ कहीं मिल जाते हैं, पहले स्वयं नमस्ते करनेका प्रयत्न करते हैं। तुमसे यह तो होता नहीं कि ऐसे बड़े लोगोंसे कुछ मेल-जोल बढ़ाओ, जो कभी काम भी आयें। इन नीच और गन्दी औरतोंकी परिछाईं तक पड़नेसे हमारे भावी बच्चेपर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।" अविनाश मुस्करा गया और रेखा लजा गई।

मजबूरी थी, इसीलिए अविनाशने लाला भोलारामके इस अहातेमें मकान किरायेपर लिया। १२५) वेतन और शहरका रहना, फिर कलके लिए चार पैसे भी बचाने थे। यही सब सोचकर वह इस मकानमें रहनेके लिए मजबूर था। वैसे मकान बुरा न था। किसी समय लाला भोलाराम स्वयं उसीमें रहा करते थे, पर उस अहातेमें उस मकानको छोड़कर चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ ही थीं, जिनमें लाला भोलारामके तेल मिलमें काम करनेवाले मज़दूर रहा करते थे, जो उसकी नज़रमें थे गन्दे, नीच जातिके और तेलमें डूबे। उसका खयाल था कि उनकी औरतें उनसे भी गन्दी और फूहड़ थीं, बेशरम, बिना पेटीकोटकी मैली चिक्कट-सी धोती और अपने आदमियोंकी छोटी कमीजको छोटा करके पहने सिर और पेटको खुजलाती, इधर-से-उधर मवादमें पड़े कीड़ोंकी तरह घूमती रहतीं। दिनभर बच्चोंको पीटतीं और आपसमें पीले-पीले दाँत निकालकर मद्दे मजाक करतीं। रातका वातावरण तो और भी असहनीय हो जाता। आधी रात तक ऊधम मचा रहता। आदमी शराबके नशेमें गंदी गालियां देते। घरसे और कभी पड़ोस से प्रत्युत्तर मिलता और फिर मार-पीट और बच्चोंकी चीख-पुकार। अविनाश रोज मकान बदलनेका विचार करता, पर और जगह भारी किरायेकी मांग सुनकर वह मजबूर हो जाता और इसी वातावरणमें रहे जा रहा था।

गेंदी उन सब गन्दी और फूहड़ औरतोंमें सबसे अधिक गन्दी और फूहड़ थी। उसे देखते ही अविनाशको मितली आने लगती। नाटी, मोटी, काली जैसे उल्टा तवा। बड़ा पेट, छोटी आंखें, फैली नाक, मोटे लटकते होंठ। मैली चिक्कट धोतीके किनारे पर रेंगते जूएँ नजर आ जाते। वह सारा दिन अपने सूखे उलझे बालोंको और भी उलझाती रहती। बेहयाईसे पेट खुजलाती रहती। अविनाश सोचता रहता कि इससे भी गन्दी, निर्लज्ज और बेशरम औरत और कोई हो सकती है क्या?

जब अविनाश देखता कि यह गन्दी औरत उसकी फूल-सी कोमल, सुन्दर, सुसंस्कृत, विदुषी और इंटर पास पत्नी रेखासे बात कर रही है, तब उसका जी जल जाता। उसकी समझमें नहीं आता कि रेखा इस घिनौनी औरतसे किस प्रकार बातें कर लेती है और फिर विशेष रूपसे इन दिनों जब कि वह कुछ महीनों बाद माँ बननेवाली है। न जाने उसके भविष्यके बच्चे पर इसका कैसा प्रभाव पड़े। यही सोचकर उसने रेखाको इतनी मरतबा मना किया।

अविनाश जब रेखाको डाँट रहा था, गेंदी बाहरके किवाड़ों पर कान लगाये सब सुन रही थी। बस तभीसे गेंदी फिर कभी रेखाके पास नहीं आई।

× × ×

आजकल रेखाके दिन पूरे थे। व्यावहारिक ज्ञानसे अनभिज्ञ अविनाशको जैसे कोई चिन्ता ही न थी। आज अविनाश रातको सिनेमाका दूसरा शो देखकर लगभग १२ बजे लौटा। रेखा दर्दसे पड़ी कराह रही थी। अविनाशने कभी इस तकलीफ की कल्पना तक न की थी। रेखाको जो इस प्रकार तड़फते देखा, तो उसके होश उड़ गए। परदेस और अकेला! पहलेसे कोई इन्तजाम किया न था। वह स्वयं घबराता हुआ रेखासे बोला—"रेखा, घबराना नहीं, मैं अभी सवारी लिये आता हूं। तुम्हें अस्पतालमें भरती करा दूंगा। सब ठीक हो जायगा।" पर रेखा संज्ञाहीन थी। वह क्या उत्तर देती?

अविनाश घबराया हुआ बाहर चौराहे पर पहुंचा। कोई सवारी नजर नहीं आयी। इधर-उधर दोनों ओर आँखें दौड़ाईं, दूर एक रिक्शा आता दिखाई दिया। आशा बँधी। पास आया तो उसमें दो सवारियाँ बैठी हुई थीं। अविनाश और घबरा उठा। वह सोचने लगा—"वह भी

पढ़ा-लिखा मूर्ख है। जब उसे पता था कि दिन पूरे हैं, तब फिर या तो किसी दाईका या फिर अस्पतालमें पहले ही से इन्तजाम करवा लेना चाहिए था। न जाने अक्ल पर कैसे पत्थर पड़ गये कि घरको चिट्ठी तक न डाली। कुछ नहीं तो बुआ तो आ ही जातीं। इस समय रेखाके मुँहमें पानी तक डालनेवाली कोई नहीं है। कहीं,·····" सोचते-सोचते अविनाश एक आशंकासे और भी घबरा उठा। कहीं कोई सवारी नजर नहीं आ रही थी। तभी उसे ध्यान आया कि लाला भोलारामके यहाँ मोटरकार और ड्राइवर दोनों हैं। कोई पचास कदम दूर लाला भोलाराम की कोठी थी। दरवाजे पर पहुंचते ही पाले हुए कुत्ते एक साथ भौंक उठे और दूसरे ही क्षण पहाड़ी चौकीदारकी तेज आवाज आई—"कौन है।"

"मैं हूं अविनाश।" उसने कुत्ताको चुमकारते हुए कहा। चौकीदार पास आ गया। दरवाजेकी रोशनीमें उसने अविनाशको घूरते हुए पूछा—"कौन अविनाश?"

अविनाश इस प्रश्नके लिए तैयार न था। उसने हकलाते हुए कहा—"मैं····· अहातेमें रहता हूं।"

"तब फिर?" चौकीदारने तीखे स्वरसे पूछा।

"मेरी पत्नीकी तबीयत खराब है। उसे अस्पताल ले जाना है, अगर सेठजी अपनी कारसे उसे अस्पताल पहुंचाने का प्रबन्ध करवा दें, तो बड़ा उपकार हो।" अविनाशने बड़े नम्र स्वरमें कहा।

"कार·····" चौकीदारने बड़े आश्चर्यसे पूछा। तभी कोठीके बरामदेसे आवाज आई—"क्या बात है चौकीदार?"

"मालकिन! यह अहातेसे आए हैं कार मांगने।" चौकीदारने दरवाजे ही से उत्तर दिया।

"कैसी कार? कौन-सा अहाता?" फिर प्रश्न हुआ। तब तक अविनाश बरामदेके पास पहुंच गया था। बरामदेमें स्वयं लाला भोलारामकी पत्नी और उनकी लड़की खड़ी थी। उनके कपड़ोंसे आती भीनी-भीनी महक चारों ओर फैल रही थी। अविनाशने बहुत झुककर नमस्ते किया, पर उन्होंने जैसे देखा ही नहीं। फिर भी, अविनाशने गिड़गिड़ाते स्वरमें कहा—"जी, मैं हूँ···अविनाश, शायद आपने पहचाना नहीं। मैं आपके अहातेके मकानमें रहता हूं। इस समय आपको मैं तकलीफ देने आया हूँ। मेरी पत्नीकी हालत एकदम सीरियस है। इतनी रात गये सवारी कहीं मिल नहीं रही है। यदि आप कृपा करके अपनी कारसे उसे अस्पताल भिजवानेका कष्ट करें, तो उसके प्राण···।"

अविनाशके उस अनुनयसे पत्थर भी पसीज सकता था, पर, उन लोगोंपर कोई असर नहीं हुआ। अभी अविनाश अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि लाला भोलाराम की लड़कीने बीच ही में फटकार-सी देते हुए कहा—"अजीब आदमी मालूम पड़ते हैं आप। इतनी भी समझ नहीं कि भले आदमीके घर किस समय जाना चाहिए। देखिये जनाब, न तो हम आपको जानते हैं, न हमारी कार कोई टैक्सी है।"

"जी मैं आपके अहातेमें···" चोटको सहते हुए अविनाशने फिर बेहयाईसे कहनेका प्रयत्न किया।

"हमारे पचीसों अहाते हैं और उनमें हजारों लोग रहते हैं, हमने उन सबको अपनी कारमें सैर करानेका ठेका थोड़े ही लिया है···।"

लाला भोलारामकी पत्नीने अपने स्वरको और कड़ा करके कहा और चौकीदारको आवाज देते हुए आज्ञा दी—"चौकीदार फाटक बन्द करो।"

इससे पूर्व कि चौकीदार आकर अविनाशको कोठीके बाहर निकालता, वह स्वयं चुपके से बाहर निकल आया। अविनाशकी आंखोंके सामने अँधेरा छा गया। सड़कके दोनों ओरकी कोठियां घूमने लगीं। रातके दो बजे होंगे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। पूरे चाँदकी चाँदनी चारों ओर फैली हुई थी। बीच-बीचमें चौकीदारों और कुत्तोंकी आवाजें सुनाई पड़ जाती थी। अविनाश दो क्षण के लिए फुटपाथ पर सिर पकड़कर बैठ गया और फिर तेज कदमोंसे अहातेकी ओर चल पड़ा। वह सोचने लगा—न जाने क्या दशा होगी बेचारीकी। कहीं···? और इस आशंकाके आते ही वह भाग उठा।

अहातेमें आकर उसने देखा कि आसपासकी कोठरियोंमें रहनेवाली तीन-चार गन्दी औरतें उसके आंगनमें बैठी हैं। गन्दी गेंदी अन्दर कमरेमें बार-बार तेजीसे आ-जा रही है। अविनाश आँगनके कोनेमें संज्ञाहीन-सा खड़ा था, जैसे उसे मरफियाका इंजेक्शन दे दिया गया हो। अन्दर कमरेसे 'हुवा-हुवा' की तेज आवाज आई। अविनाशका दिल तेजीसे धड़क उठा। एक गन्दी औरत भागकर कमरेके अन्दर गई। थोड़ी देर बाद गन्दी गेंदी एक तसलेमें गन्दगी लिये बाहर आई। अविनाशकी ओर देखकर कुछ ठिठकी और फिर अपने पीले-मैले दाँतोंको दिखाते हुए प्रसन्न मुखसे

बोली, "बाबू ! अब तो मुँह मीठा कराओ। लड़का हुआ है, ठीक आप-जैसा।"

अविनाश न-जाने किस उमंग और उत्साहसे भागकर कमरेके अन्दर जाने लगा कि कमरेके अन्दरसे दूसरी गन्दी औरत बाहर निकली और अविनाशको रोकते हुए बोली—"काहेको बाबू इतने बेसबर होते हो। जच्चा और बच्चा दोनों कुशलसे हैं। गेंदीके आगे बड़ी-बड़ी हुसियार दाइयाँ पानी भरती हैं। कोई बात हो जाय तो उसके जिम्मेदार हम।"

आँगनमें गेंदी अन्य गन्दी औरतोंसे कह रही थी—"मुँह सिये कैसी बैठी हो? मेरी कोठरीसे ढोलक उठा लाओ। अरे हाँ दुल्हो! देख, किसीके यहाँ कुछ गुड़-उड़ हो, तो जरा सबका मुँह मीठा करा दो। सबेरे तो बाबू मँगवायेंगे ही, कानी छोरी घरमें जा आई है···।" आँगनमें बैठी गन्दी औरतें सिर और पेट खुजलाते हुए जोरसे हँस दीं।

अविनाशका जी चाह रहा था कि वह गेंदीके पैर पकड़ ले और उससे कहे—"तुम मेरी माँ हो। तुमने मेरे सूने घरको एक खिलौना दिया, मेरी रेखाको जीवन दिया, मैं तुम सबका ऋणी हूं।"

अविनाशकी आँखें भर आईं।

आँगनमें ढोलक बज रही थी। गन्दी औरतें गा रही थीं—

"चलो सखी देखन जायँ,
रघुबर आज जनम लियो।"

—*—

सुभाषित

अनन्त रामेय्या

संस्कृत-साहित्यमें सुभाषितोंका महत्वपूर्ण स्थान है। भर्तृहरि इत्यादि कवियोंने सुन्दर सुभाषितोंसे संस्कृत साहित्य की शोभाको बढ़ाया है। सुभाषितका अर्थ है अच्छी बात। मानव-जातिमें रहनेवाले स्वभाव-जन्य दुर्गुणोंको दूर करके सुयोग्य बनाना ही सुभाषितका उद्देश्य है। सुभाषितोंकी विशेषता यह भी है कि, वह वेद और शास्त्रोंकी तरह आज्ञा नहीं देता, किन्तु कान्ताकी तरह मृदु-मधुर भाषामें उपदेश देता है। इसीलिये यह इतना लोकप्रिय बन गया है। उदाहरणार्थ दो-चार सुभाषित निम्नांकित हैं :—

(१) द्राक्षा म्लानमुखी जाता शर्कराचाश्मतां गता।
सुभाषित रसस्याग्रे सुधाभीता दिवं गता॥

सुभाषितका रस सबसे श्रेष्ठ है। उसके सामने दाखका रस फीका पड़ गया। शक्कर तो पत्थर बन गई। सुधा तो डरसे भागकर देवलोक चली गई। अर्थात् इन तीनों से ज्यादा मीठा है सुभाषित रस।

(२) सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः॥

सुभाषितसे, गीतोंसे और युवती स्त्रियोंकी चेष्टासे जिसका मन आकर्षित न होगा, वह यातो योगी होगा या पशु।

(३) बहूनामप्यसाराणां संयोगः कार्यसाधकः।
तृणैरारभ्यते रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते॥

बहुत-सी असार वस्तुओंको भी मिलानेसे मजबूत और उपयोगी चीज बन जाती है। रस्सा घाससे बनता है, फिर भी उससे हाथीको बाँध सकते हैं।

(४) यस्तु संचरते देशान् यश्च सेवेत पण्डितान्।
तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैल बिन्दुरिवांभसि॥

जो देश भ्रमण करता है, पण्डितोंकी सेवा और दर्शन करता है, उसकी बुद्धि पानीमें तेलकी बूँदके समान विस्तृत हो जाती है।

(५) यो न संचरते देशान् यो न सेवेत पण्डितान।
तस्य संकुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवांभसि॥

जो देश-संचार नहीं करता और जो पण्डितोंकी सेवा या संगति नहीं करता, उसकी बुद्धि पानीमें घीकी बूँदके समान ज्यों-की-त्यों रह जाती है।

(६) काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

काव्य, नाटक और शास्त्र पढ़ते हुए सज्जन तथा विद्वानों का समय बड़े आनन्दसे कटता है। मूर्खोंका समय तो, ताश, भङ्ग, शराब इत्यादि व्यसनोंसे कटता है अथवा निद्रा और कलहसे भी कटता है। समयका सदुपयोग करना चाहिये।

जिन्हें हम भूल रहे हैं

स्वर्गीय पं० देवीसहाय शर्मा

रामदेव चोखानी

अन्य देशोंमें सुसंस्कृत लोग अपने देशके स्मरणीय व्यक्तियों की स्मृति-रक्षा-सम्बन्धी कार्योंमें स्वयं भी पूरी दिलचस्पी लेते हैं और सरकारको भी उनकी स्मृति-रक्षार्थ सहायता देनेको प्रेरित करते हैं। यदि हम किसी महापुरुषकी पुण्य-स्मृतिको भूला दें या उसका पूरा अनुसन्धान न करके अवहेलना करें, तो बड़ी शोचनीय बात है।

स्वर्गीय पं० देवीसहायजी जयपुर राज्यान्तर्गत पाटणके निवासी थे। जिस समय मारवाड़ी समाजमें सार्वजनिक संस्थाओंका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, उस समय उन्होंने ऐसे-ऐसे महान् काम किये थे, जो आज इस उन्नत युगमें भी लोगों द्वारा होने दुर्लभ हो रहे हैं।

सभी समाजोंमें आपको बड़ी प्रतिष्ठा थी। 'उचितवक्ता'-सम्पादक स्वनामधन्य पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र आपके परम मित्र, भक्त और प्रशंसक थे। स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त उनको अपने गुरुजनोंमें मानते थे। व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालुजी शर्माको भी उन्हींसे प्रेरणा मिली थी। स्वर्गीय रायबहादुर सेठ सूर्यमलजी झुंझनूवाला और राजा शिवबक्शजी बागला आपका बहुत सम्मान करते थे और आपकी बातें समाजमें सदा समादृत की जाती थीं।

पण्डितजीने सबसे पहले एक सार्वजनिक संस्था 'धर्म सभा' के नामसे कलकत्तेमें स्थापित की थी। इस सभाके द्वारा आपने बड़े-बड़े काम किये थे। सन् १८८९में आपने दुराचारी मनुष्योंके विरुद्ध आन्दोलन कर उन्हें उचित दण्ड देनेमें बड़ा सहयोग दिया था। आपने सर्वप्रथम मिश्रित घीके विरुद्ध आन्दोलन किया था और फलस्वरूप अनेक व्यापारियोंको जाति-बहिष्कृत एवं अर्थ-दण्डसे दण्डित किया था।

आपने वर्षों तक 'धर्म-दिवाकर' नामक पत्रका कुशल सम्पादन किया था। आपको राजनीतिमें भी बड़ी दिलचस्पी थी और आपने ही कलकत्तेके बड़ेबाजारमें सभाएँ करके आन्दोलन करनेका श्रीगणेश किया था।

अपने समयके प्रसिद्ध पत्र 'बंगवासी' के मालिकपर जब राजद्रोहका मुकदमा चला था, तो आपने उनकी तथा श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी सहायतार्थ बड़ी चेष्टाएँ की थीं।

स्वर्गीय पंडितजीका स्मारक कलकत्ताके श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके पुस्तकालयमें स्थापित हुआ था, किन्तु अब वहाँ उसका अस्तित्व नहीं है, यह बात अत्यन्त खेदजनक है।

क्या ही अच्छा हो, यदि समाज ऐसे महाप्राण व्यक्ति की स्मृति-रक्षाका अब भी प्रयत्न करे।

तमिल पाठ

रवीन्द्रनाथ

पाँचवाँ पाठ

अम्मा=ताय=माँ ; अप्पा=तहप्पन=बाप ; अक्काक=बड़ी बहन , अण्णन्=बड़ा भाई ; तङ्गै=छोटी बहन , तम्बी=छोटा भाई ; अत्तै=सास ; मायन्=मामा या ससुर ; पाट्टी=दादी ; तात्ता=बाबा ; महन=लड़का ; महल=लड़की।

अन्द:=वह , इन्द=यह ; उंमल्=तुम्हारा, आपका ; एंगल्=हमारा।

नियम : जब इन्द या अन्दके बाद कोई ऐसा शब्द आये, जो क, च तथा प से शुरू होता हो, इन अक्षरोंकी जगह क्क, च्च, त्त और प्प हो जाता है, जैसे इन्द+पैयन्= इन्दप्पैयन् ; अन्द+काकम्=अन्दक्काकम्।

पोहिरान=(वह) जाता है ; पोहिराल (वह) जाती है।

उंगल् तात्ता एंगे इसक्किरार=तुम्हारे बाबा कहाँ हैं? एन ताय इंगे इल्ले=मेरी माँ यहाँ नहीं (हैं)। मुरुगेसन् एन तम्बी इसक्किरान्=मुरुगेसन मेरा छोटा भाई है ; अम्मा एन्न पारक्किराल्=माँ क्या देखती है। उंगल् महल अज़हान पेण=तुम्हारी बेटी सुन्दर लड़की (है); तंगैक्कु पाल केण्डुम्=छोटी बहनको दूध चाहिए। तण्णीर वेण्डाम्=पानी नहीं

चाहिए ; उन महन् एंगे पोहिरान्=तेरा लड़का कहाँ जाता है ? महल् अंगे पोहिराल्=बेटी कहाँ जाती है ?

छठा पाठ

ओण्ड्रु=ओरु=एक , इरण्डु=दो , मुण्ड्रू=तीन , नानगु=नालु=चार , ऐन्दु=पाँच ; आरु=छः , एजु=सात , एटट्टु=आठ , अंबोत्ती=नौ , पत्तु=दस ।

मीन=मछली , कोज़ी=मुर्गी , पुली=शेर , अणिल=गिलहरी , यानै=हाथी , आट्टु=बकरी ; काकम्=कौआ , तेल=बिच्छू ।

इवर=ये, अवर=वे (दोनों मानपूर्वक एकवचन) हैं ; एंगलुडैय=हमारा, उंगलुडैय=तुम्हारा ।

नियम—बहुतसे शब्दोंका बहुवचन बनानेके लिए उनके अन्तमें 'कल' लगा दिया जाता है । परन्तु 'क' का उच्चारण कहीं क, कहीं ग और कहीं ह के जैसा होता है । उदाहरण-स्वरूप यानै=हाथी इसका बहुवचन यानैहल , मीन=मछली बहुवचन मीनगल ; नाट्काली हल्=कुसियाँ , सेडीहल्=पौदे ।

ओरु मीन=एक मछली , पत्तु पुलीहल=दस शेर , इन्द पुस्तहम एन् पुस्तहम=यह पुस्तक मेरी पुस्तक (है), इन्दप्पज़म यार पजम्=यह फल किसका फल (है) , अण्णा ओरु अणिल कोण्डुवा=बड़े भाई एक गिलहरी ले आओ ; एली एनक्कु वेण्डाम्=चूहा मुझे नहीं चाहिए , अंगे एन नहापन इरुक्किरार=वहाँ मेरे बाप हैं . अक्काल इंगे इल्ले = बड़ी बहन यहाँ नहीं (है) . अवर एन्न पारकिरार=वे क्या देखते हैं ?

सातवाँ पाठ

तमिल भाषामें लिङ्गकी बहुत सुविधा है । पुरुष पुल्लिङ्ग, स्त्रियाँ स्त्रीलिङ्ग और बाकी सब चाहे नर हों या मादा—जानवर, पक्षी, कीड़े-मकोड़े या बेजान चीजें नपुसक लिङ्ग होती हैं । यह सुविधा दक्षिणकी भाषाओंमें पाई जाती है । सर्वनामोंमें भी मैं, हम, तू, तुममें तो कोई लिङ्ग-भेद नही होता । वहमें एकवचनमें कुछ भेद होते हैं । इवन=यह (पुरुष), इलल्=यह (स्त्री) , इदु=यह (पशु, पक्षी या वस्तु) और इवर मानसूचक 'ये' । परन्तु इन सबका बहुवचन इवरहल होता है ।

क्रियापदमें भी इनमें अन्तर रहता है । नीचेके उदाहरणोंको पढ़ लेनेके बाद इसे समझना ज्यादा आसान होगा—

नान् इरुक्किरेन्=मैं हूं	नाम् इरुक्किरोम्=हम हैं
नी इरुक्किराय=तू है	नींगल इरुक्किरीहल्=तुम हो या आप हैं
अवन् इरुक्किरान्=वह (पु०) है	अवरहल इरुक्किराहल=वे (सब लिङ्ग) हैं

अवर इरुक्किरार=वह (पु० मानवाचक) है

अवल् इरुक्किराल=वह (स्त्री) है

अदु इरुक्किरदु=वह (नपुंसक) है ।

इसके आधारपर पेसु=बोल, पार=देख, साप्पिडु=खा और कुडि=पी के रूप बनाइये ।

नी एन्न पारकिराय=तू क्या देखता है , नान ओरु यानै पारकिरेन=मैं एक हाथी देखता हूं । तम्बी एन्त सेयहिरान्=छोटा भाई क्या करता है , तायार पेसुहिराल्=माँ बात करती है , पुली तण्णीर कुडिकिरदु=शेर पानी पीता है । तेल् इंगे इरुक्किरदु=बिच्छू यहां है । कोजी इंगे इल्ले=मुर्गी यहां नहीं है । पुदुच्चेरी एनड्रू ओरु नहरम् इरुक्किरदु=पुदुच्चेरी (पांडीचेरी) नामक एक नगर है ।

आठवाँ पाठ

सीप्पु=कंघी , कत्ती=चाकू , विलै=दाम ; कण्णाडी=आइना, कांच , कडैक्कारन=दुकानदार , बाजप्पजम्=केला (पका हुआ) , माम् पजम्=आम ; आरंजु पजम्=नारंगी ; दिराक्षी पजम्=अंगूर । सब पके हुए फलोंके साथ 'पजम्' और कच्चे फलोंके साथ 'काइ' लगाते हैं ।

मात्तिरम्=मात्र , सिर्फ , कूड=भी ; अदिहम्=अधिक ।

नान कडैक्कु पोहिरेन्=मैं दुकान जाता हूं ; एनक्कु कण्णाडियुम् , सीप्पुम् , पैयुम् वेण्डुम्=मुझे आइना और कंघी और थैली चाहिये । (आप देख सकते हैं कि 'उम्' शब्दके अन्तमें औरके अर्थमें लगाया जाता और प्रत्येक शब्दके बाद लगाया जाता है) ।

ओरु नायक्कु एन्न विलै=एक कुत्तेका क्या दाम ; उनक्कु ओरु आट्टु वेण्डुमु=तुझे एक बकरी चाहिये । वेण्डाम् ; एनक्कु ओरु आमै वेण्डुम्=नहीं चाहिये, मुझे एक कछुआ चाहिये । तत्तावुक्कु एन्न वेण्डुम्=बाबाको क्या चाहिये ? माम पजम मात्तिरम् वेण्डुम्=सिर्फ आम चाहिये ।

तमिलमें कहिये :

मेरा बेटा यहां है, तुम्हारे बाप कहां हैं ? एक हाथी यहां नहीं है । एक कंघीका क्या दाम ? मेरी पुस्तक अच्छी पुस्तक है । मुझे बिल्ली नहीं चाहिये । पांडीचरी सुन्दर नगर है । मैं बोलता हूं । मुर्गी देखती है । बेटी पानी

पीती है। बड़ी बहन जाती है। यह मकान अच्छा मकान है। मुझे धन चाहिये; मेरी थैली कहां है? यह खराब दीवार है; एक कुर्सी ला; यह तेरा बगीचा है; एक सुन्दर फूल; दुकानदार बोलता है; दादी खाती है। आम लाओ; अंगूर भी लाओ; दूध पी; तेरा सिर कहां है; चित्र ला; सुन्दर आंखें, हां तू जा।

उत्तर: एक महन् इंगे इरूक्किरान् उंगलुडय तइप्पन् एंगे? ओरुयान इंगे इल्लै; ओरु सीप्पुक्कु एन्न विलै? एन पुस्तहम् नल्ल पुस्तहम्; एनक्कुरनै केण्डाम्; पांडीच्चेरि अजुहान् नहरम् इरुक्किरदु; नान् येसुहिरेन्; केजो पाटकिरदु; महल् तण्णीर कुडिक्किएल्; अक्काल पोहिएल; इन्दवीडुनल्ल वींडु; एनक्कुपणमू वेण्डुम्; एन पै एंगे? इदुकेट्टे सुवर; ओरु नाट्टुकाली कोण्डुका; इदु उनू तोट्टै; ओर अजहानप्पू; कडैक्कारनू पेसुहिरान्; पाट्टी साप्पिडुहिराल् मामपजम् कोण्डुवा; दिराक्षी पजम् कुड कोण्डवा; पातकुडि, उनतलै एंगे? पडम कोण्डुवा; अजहान कणडाल्, आम नी पो।

गीत

गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार।

जाग रही मधु मुकुलित आशा,
हर्षित खग-कुल स्वप्न - विभोर,
झूम रही है डाली - डाली,
कण - कण पुलक विकंप अथोर,
मादक सुरा घोलता है नभ बरसाता है हर्ष अपार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

मुक्त मीन चंचल जलमें हैं,
चंचल वारि - परी खुशहाल,
उमड़ - उमड़ चंचल लोचन से,
सागर बिछा रहा शैवाल,
धरतीके कण-कण पर उतरा सतरंगी सपना साकार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

बिछा रही मुस्कान धरित्री,
शूल फूल बन मुसकाते,
धूल - कनी मकरन्द - सुवासित,
वन - उपवन मंगल गाते,
भूले-भूले क्षण मिलते हैं गले - गले फिर बारम्बार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

पुलकित बहती हवा सुवासित,
स्निग्ध प्राण - मन अलसाते,
पलकें स्वप्निल बिछा-बिछाकर,
हृदय लुटाते मुसकाते,
मानसरोवर में लो, करते हंस और हंसिनी विहार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

बिखरे कण - कण मोतीके कण,
अंजन नूतन धूलि - पराग,
जाग रही चेतना चतुर्दिक,
सुलगी नयी फूल-सी आग,
नयी लहर ले चेतन स्वर ले पुलकित बहती सरिकी धार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

जाग रहा अँगड़ाई लेता,
क्षण-क्षण मुदित अशोक अभीत,
व्याग-सलिलमें नहा - नहाकर,
हार बन रही फिर से जीत,
गति, मति, बुद्धि विकंपित जगता सोया-खोया-सा संसार।
शून्य विजनमें निकल-निकलकर गूँज रही कोमल झंकार॥

भींग रहे हैं पुलक वारिमें,
मुग्ध विमोहित तन-मन-प्राण,
गूँज रहे हैं भौंरों के स्वर,
होता मानो स्वर्ण विहान,
पथमें सुकुलित फूल, भूल विस्मित, लखकर स्वर्णिम व्यापार।
शून्य विजनमें निकल-निकल कर गूँज रही कोमल झंकार॥

भासका प्रश्न

आर० श्रीनिवासाचार्य

सन् १९१२-१४ में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री[1]को ट्रेवनकूर राज्यमें भासके तेरह नाटक[2] प्राप्त हुए, जिनको उन्होंने अनन्तशयन ग्रन्थमालामें प्रकाशित किया। तब तक हमारा ज्ञान बाण[3], कालिदास[4] आदि[5]से की गई महाकवि भासकी प्रशंसा या महिमा जानने तक ही सीमित था।

१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २. स्वप्नवासवदत्ता, ३. अविमारक – बृहत् कथाके आधारपर रचे हुए नाटक हैं।

४. प्रतिमा नाटक, ५. अभिषेक नाटक- रामायणाश्रित हैं।

६. मध्यमव्यायोग, ७. पंचरात्र, ८. दूतवाक्य, ९. दूतघटोत्कच, १०. कर्णभार, ११. ऊरुभंग—महाभारताश्रित हैं।

१२. बालचरित—भागवताश्रित है।

१३. चारुदत्त (असमग्र)—स्वतन्त्र रचना है।

दुर्भाग्यवश, इन नाटकोंके किसी भागमें कर्ताके नामका उल्लेख नहीं। इसलिए उन्होंने

(१) ये तेरहों नाटक एक ही व्यक्तिकी रचनाएँ हैं।

(२) इन रचनाओंके कर्ता प्राचीन भास ही हैं।

—इन दोनों विषयोंपर तर्क-वितर्क करके इन्हें भासकृत माननेकी अपनी घोषणा की।

१. श्री शास्त्रीजीके 'Bhasas Plays—A Critical Study' में, उनको पहले-पहल दस रूपकोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ सन् १९१० में मिलीं और कुछ कालके बाद ऊपरांकित ४, ५, ८ रूपकोंकी प्राप्ति होना उल्लिखित है।

२. सन् १९४१ से गोंडालमें राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्रीने 'यज्ञफल' नामका सप्तांक नाटक प्रकाशित करके भूमिकामें उसे भास-रचित माना है। उसकी कथावस्तु रामायणके बालकांडकी कथा है। नाटकके किसी भागमें कर्ताका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

३. सूत्रधारकृतारंभैः नाटकैः बहुभूमिकैः।
सपताकैः यशोलेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

४. 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां.....'
—मालविकाग्निमित्र।

५. भास और उनकी कृतियोंसे सम्बन्धित उल्लेखनके लिए C.R. Devadhar का 'भासनाटकचक्र—Appendix C' देखिये।

१—ये तेरहों नाटक एक ही व्यक्तिकी रचनाएँ हैं

इन नाटकोंमें बहुत-कुछ साम्य दिखाई पड़ता है, जिसके आधारपर शास्त्रीजीने इन्हें एक ही व्यक्तिकी असंदिग्ध रचनाएँ माना है।

(अ) इन सभी नाटकोंका श्रीगणेश 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' निर्देशसे होता है। तदनन्तर सूत्रधारके मंगल-श्लोक-गानके द्वारा प्रस्तावनाका आरम्भ किया गया है। संस्कृत नाटकोंके साधारण नियमानुसार 'क्लासिकल नाटकोंमें' 'नान्दी' से आरम्भ होता है और उसके अन्तमें सूत्रधारका प्रवेश होता है।

(आ) प्रस्तावनामें नाटक, नाटककार तथा उनके आश्रय-दाताका नाम होना आवश्यक है, परन्तु इनमें किसी एकका भी उल्लेख नहीं।

(इ) 'प्रस्तावना' के बदले 'स्थापना'[6] शब्द इन सभी नाटकोंमें प्रयुक्त हुआ है।

(ई) इन नाटकोंके भरतवाक्य[7] प्रायः एक-से हैं।

६. कर्णभारमें प्रस्तावनाका ही प्रयोग हुआ है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणमें कुछ पाठ-भेद है, जिससे प्रस्तावनाके बदले 'आमुख' का प्रयोग हुआ है। बालचरितमें प्रस्तावनाका अभाव ही है, परन्तु देवधरजीने ने स्थापनाको मिला दिया है। प्रो० परंजपेके मध्यमव्यायोगमें 'स्थापना' पर टिप्पणी और गणपति शास्त्रीके 'Critical Study', पृष्ठ १० को पढ़िये।

७. इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलां। महीमेकातपत्रां कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥—स्वप्न, बालचरित, दूतवाक्य
भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु। इमामपि मही कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥—प्रतिज्ञा, अविमारक, अभिषेक
पंचरात्रमें उपर्युक्त भरतवाक्यके उत्तरार्ध मात्रकी उक्ति हुई है। इन सातों नाटकोंके भरतवाक्योंमें 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' वाक्य है। प्रतिमा एवं कर्णभारमें 'राजाभूमिं प्रशास्तु नः' वाक्य मात्र है। पंचरात्रके अलावा अन्य नाटकों के अन्तिम श्लोकके पीछे भरतवाक्यका रंगनिर्देश है। चारुदत्त, दूतघटोत्कचमें भरतवाक्य है ही नहीं। मध्यमव्यायोगमें 'उपेन्द्र' शब्दका उल्लेख है।

'राजसिंहः' किसी राजाका नाम नहीं। 'राजश्रेष्ठ' के

(उ) भाषा और शैली भी समान हैं।

(ऊ) 'पताकास्थान' तथा नान्दी श्लोकमें मुद्रालंकार[८] का इन कृतियोंमें अधिकतर प्रयोग हुआ है।

(ऋ) एक ही नामके नीच पात्र, एक ही रीतिके अपाणिनीय प्रयोग, एक ही रीतिके भाव इन नाटकोंमें पाए जाते हैं। इतना ही नहीं, एक नाटकके वाक्यों[९] या पद-समूहों तथा श्लोकों या श्लोकोंके भावोंकी अन्य नाटकोंमें पुनरुक्ति भी पायी जाती है।

(ए) इन नाटकोंमें भरतजीके नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों का पूर्णतया पालन नहीं हुआ। मरण और लड़ाई तथा अन्य निषिद्ध दृश्योंका भी रंगमंच पर अभिनय हुआ है।

(ऐ) इनमें पर्याप्त रंगनिर्देशों[१०] का सर्वथा अभाव है। शीघ्रताके सूचनार्थ इनके "निष्क्रम्य प्रविश्य" का निर्देश प्रायः विशेष रूपसे हुआ है।

(ओ) नाटकका अभिधान नाटकके समाप्ति-वाक्यमें ही हुआ है।

इस तरहके तेरहों नाटकोंमें बहुत-कुछ सादृश्य[११] उपलब्ध होनेके कारण किसी[१२]को भी इन्हें एक ही व्यक्तिकृत माननेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होती।

२—इन नाटकोंके कर्ता भास ही हैं

एक ही व्यक्तिकृत इन नाटकोंमें किसी एकको भास-प्रणीत सिद्ध करने से स्वयं सिद्ध होता है कि शेष नाटकोंके कर्त्ता वही हैं।

(अ) राजशेखरने दशम शतीके आरम्भमें 'भास' और 'स्वप्नवासवदत्ता' शब्दोंका उल्लेख अपनी 'सूक्ति-मुक्तावली' के एक श्लोकमें किया है, जो इन नाटकोंको भासकृत सिद्ध करनेमें बहुत सहायता देता है—

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥[१३]

अर्थमें उसका प्रयोग हुआ होगा। ऐसा नहीं, तो कुछ श्लोकों में 'राजसिंह' का और कुछमें 'राजा', 'नरपति'का प्रयोग नहीं हो सकता। कालिदाससे भी पूर्ववर्ती राजा 'राजसिंह' का विषय ज्ञात नहीं हुआ। परन्तु यह तत्कालीन राजाको आशीर्वादके रूपमें सामान्योक्ति रही होगी।

स्टेनकोनोकी राय है कि राजसिंह ईसाके उत्तर द्वितीय शताब्दीके अन्तमें, 'रुद्रसिंह प्रथम' नामक क्षत्रपराज रहा होगा। किन्तु राजसिंहका मतलब किसी एक राजाका निर्देश न होकर 'राजश्रेष्ठ' भी हो सकता है। इतना ही नहीं, भारतवर्षमें ऐसे बहुत राजे हुए हैं, जिनके नामका उत्तरार्ध 'सिंह' ही था। इन्हींमें से किसी एककी गणना करना प्रमाण-सिद्ध नहीं। क्षत्रप राजाओंमें ही रुद्रसिंह, सत्यसिंह, सिंहसेन नामक तीन सिंह थे। इन्होंने १८० A. D. से ३८८ तक शासन किया था। यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें राजसिंह कौन था। हीरानन्द शास्त्रीजीके मतसे राजसिंह ६०० A. D. या ७०० A. D. का कोई पल्लव राजा रहा होगा।

८. पंचरात्र, प्रतिज्ञा, स्वप्न, प्रतिमाको देखिए।

९. द्रष्टव्य—C.R. Devadhar's Plays ascribed to Bhasa their authenticity and merits."

१०. उदाहरणार्थ प्रतिज्ञायौगन्धरायण "काञ्चुकीयः प्रसीदतु प्रसीदतु महासेनः। प्रियवचननिवेदनत्वरया क्रम-विशेषो नावेक्षितः (दूसरा अंक)" में 'प्रणिपत्य'का निर्देश होना आवश्यक है, नहीं तो आगे "राजा—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, स्वैरमभिधीयताम्।" का औचित्य ही नहीं रहता।

११. कई सादृश्यों पर ध्यान दीजिए :—

(१) प्रतिज्ञा० और स्वप्न० एक ही बड़ी कथाके पूर्व और उत्तर भाग हैं। (२) पंचरात्र, मध्यमव्यायोग—इन दोनोंमें भीमको 'मध्यम' कहलवा लिया है। भीमने अपनी भुजाओं को ही अपना आयुध कहा है। (३) 'यवनिका' शब्दका 'परदा' के अर्थमें प्रतिमा नाटकके द्वितीय अंकके अन्तमें, स्वप्न० एवं ऊरुभंगके अन्तिम भागोंमें तथा अविमारकके मेघ-वर्णनमें भी प्रयोग हुआ है। (४) चारुदत्त I, अविमारक II, बालचरित—इनमें अंधकारका वर्णन एक-सा है और प्रायः इन सभी नाटकोंमें 'आकाशभाषित' विशेषकर आता है। (५) पंचरात्रमें यागका, अभिषेकमें राम-रावण-युद्धका और ऊरुभंगमें गदायुद्धका क्रमशः तीन ब्राह्मणों, तीन विद्याधरों और तीन वंदियों द्वारा वर्णन किया गया है।

१२. Prof. De और Jagirdhar इससे सहमत नहीं हैं। देखिए "Indian Historical Quarterly xvii पृष्ठ 415 एवं Jagirdhar के 'Drama in Sanskrit Literature", पृष्ठ 74.

१३. भासनाटक-चक्रकी परीक्षाके लिए जब ये नाटक अग्निमें डाल दिये गए, तो 'स्वप्नवासवदत्ता' मात्र जैसेका तैसा रह गया। इस कारण भासका नाम 'ज्वलनमित्र' रहा होगा। वाक्पतिराजने अपने प्राकृत-ग्रन्थके "गौड-

संस्कृत साहित्यमें एक ही कवि-विरचित नाटक-चक्र इन तेरहों नाटकोंके बिना कोई नहीं है। नाटक-चक्रमें स्वप्न-वासवदत्ता भी एक है। इससे स्पष्ट है कि इन नाटकोंके रचयिता भास ही हैं।

(आ) इनके अतिरिक्त महाकवि बाण भट्टने भी भासके नाटकोंके स्थूल स्वरूपोंका हर्षचरितमें वर्णन किया है—

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैः बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव ॥[१४]

इस पदमें उपयुक्त बहुवचनान्त नाटकैः पदसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सातवीं सदीमें भासकृत अनेक नाटक बहुत प्रचलित थे। श्लोकमें वर्णित तीनों गुण इन तेरहों नाटकोंमें पाए जाते हैं। इससे इन नाटकोंकी भास-प्रणीतता स्पष्टतः सिद्ध होती है।

ये भास कौन थे? क्या वे कालिदाससे प्रशंसित प्राचीन कवि थे या अर्वाचीन? आदि प्रश्न उठते हैं।

(अ) इन नाटकोंमें पाए गए कई अपाणिनीय प्रयोगों तथा भरतके नाट्यशास्त्रीय नियमोंके विरुद्ध कई विषयोंको मनन करनेसे स्वयं सिद्ध होता है कि भास[१५] पाणिनी, भरत आदिसे प्राचीन कवि हैं।

(आ) जिन आर्ष शब्दोंका प्रयोग व्यास और वाल्मीकिके ग्रन्थोंमें मिलता है, उन्हींका प्रयोग भास-नाटकोंमें अधिकतर हुआ है और चु, तु, हि आदि पादपूरणों तथा अनुष्टुप् श्लोकोंका भी। इसके अतिरिक्त कालिदासादिके काव्योंकी भाँति उपमादि अलंकारोंका विशेष रूपसे प्रयोग नहीं हुआ है।

इन आधारों पर भास व्यास और वाल्मीकिके समकालीन न होनेपर भी उनके पश्चात्वर्ती कवि हो सकते हैं।

(इ) जोनराजा (१२ शती) ने पृथ्वीराजविजय[१६]के एक श्लोक "सोऽग्निरपि भास मुनेः काव्यं···" द्वारा भासको मुनि[१७] कहा है। यह भी भासकी प्राचीनताके उपष्टंभक हो सकता है।

(ई) इन तेरहों नाटकोंमें वर्णित भावनाएँ ही कालिदास, अश्वघोष[१८], शूद्रक[१९], विशाखदत्त[२०] आदिकी कृतियों में कुछ रूपान्तरके अनन्तर आती हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भास कालिदासादिसे पूर्ववर्ती कवि थे।

शास्त्रीजीके इन्हीं प्रमाणोंके आधारपर विदेशीय तथा भारतीय विद्वानोंने बहुत-कुछ सोच-विचारकर नाटकोंके एककर्तृत्वमें अपना सहमत प्रकट किया। परन्तु इन नाटकोंको भास-प्रणीत माननेमें परस्पर विरोधी दो दलोंका आविर्भाव हुआ। एक दल उनका था, जो सर्वथा इन कृतियोंको भास-कृत मानने लगे, जैसे गणपति शास्त्री, डाक्टर कीथ आदि। दूसरा उनका, जिन्होंने इन्हें भास-प्रणीत माननेमें अपना सहयोग नहीं दिया, जैसे सिल्वाँ लेवी, विन्टर्नित्स, सुकथंकर आदि। इस बीचमें एक तीसरा वर्ग ऐसे विद्वानोंका निकल आया, जिन्होंने इन्हें आंशिक रूपमें ही भास-विरचित माना।

भास-विरचित न माननेवाले वर्गका प्रबल तर्क इस प्रकार है—

(अ) बाणके 'सूत्रकृतारम्भैः ···' श्लोकमें उक्त तीनों

वहो···" श्लोकमें भासको 'जलणमित्त' कहा है। स्वप्न-वासवदत्ताके आदिमें 'लावणकवह्नि'का एवं पंचरात्रके आदिमें 'दावाग्नि' का वर्णन है। पर यह हानिकारक अग्नि नहीं है। वैसे ही अभिषेक नाटककी सीताका तथा अग्निसारकके कथानायकका अग्नि-प्रवेश होनेमें भी अग्नि हानिकारक नहीं है। इससे यह कहा जा सकता है कि भास अग्निप्रिय या 'ज्वलनमित्र' थे।

१४. भासने सूत्रधारसे प्रारम्भ किए गए भूमिकावाले तथा पताकासे सुशोभित मन्दिरोंके समान अपने नाटकोंसे यथेष्ट यश पाया।

१५. भासको पाणिनीसे प्राचीन माननेमें गणपति शास्त्रीके पक्षसे कुछ लोग सहमत नहीं हुए।

१६. सत्काव्यसंहारविधौ खलानां दीप्तनिवह्नेरपि मानसानि। भासस्य काव्यं खलु विष्णुधर्मान् (?) सोष्मायनमात्यारतवन्मुमोच ॥

१७. गणपति शास्त्रीके 'Critical Study' एवं उनकी स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिमाकी भूमिकाओंको देखिये।

१८. प्रतिज्ञायौगन्धरायणके प्रथम अंकके २८ श्लोकका रूपांतर अश्वघोषके बुद्धचरित XII ६० में इस प्रकार है—
काष्ठं ही मथ्नान् लभते हुताशं भूमि खमन् विन्दति चापित्तोऽर्यं। निर्बान्धिनः किंचन·····

१९. Pusalkar का 'Bhasa—A Study' देखिये।

२०. भासके प्रतिज्ञायौगन्धरायण पढ़नेसे ही स्फूर्ति पाकर विशाखदत्तने मुद्राराक्षस रचा होगा। विवरणके लिए 'संस्कृत-साहित्य-सदन', मैसूर द्वारा प्रकाशित मुद्राराक्षस की भूमिका पढ़िये।

लक्षण दक्षिण देशमें विरचित अन्य कतिपय नाटकों[२१]में पाये जाते हैं, अतः यह प्रमाण उचित नहीं हो सकता।

(आ) स्वप्नवासवदत्तासे कई वाक्य रामचन्द्र-विरचित 'नाट्यदर्पण' में उद्धृत हैं। वहाँ वत्सराजसे शेफालिका मंडप के शिलातलको ध्यानमें रखकर

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासिना मां दृष्टवा सहसा गता॥[२२]

श्लोककी उक्ति की गई है। प्रकृत स्वप्नवासवदत्तामें शेफालिका मंडपका उल्लेख है, पर श्लोकका सर्वथा अभाव है। इससे यह प्रतीत होता है कि स्वप्नवासवदत्ता भास-प्रणीत नहीं। स्वप्नवासवदत्ता भास-कृत न होनेसे शेष नाटकोंको भास-कृत माननेके लिए प्रमाण नहीं है।

इस भाँति परस्पर विरोधी दलके तर्क-वितर्क एवं वाद-विवादके कारण एक तीसरे दलने अपना सिर उठा लिया। उस दलकी मान्यता है कि पूरी सामग्री तथा प्रमाणोंके अभाव में निर्णयात्मक रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि—

(अ) अमरकोषकी टीकामें वन्द्यघटीय सर्वानन्दने स्वप्नवासवदत्ताका और भरतशास्त्र-व्याख्यानमें अभिनवगुप्तने स्वप्नवासवदत्ता तथा चारुदत्तका नामोल्लेख किया है, न उनके रचयिताका।

(आ) प्रतिज्ञायौगन्धरायणसे अं० ४ श्लोक ३, चारुदत्तसे अं० २ श्लोक ३, स्वप्नवासवदत्तासे अं० ४ श्लोक ७—इन तीनोंको वामनने उद्धृत किया है, परन्तु कर्ताका नाम ही नहीं बतलाया।

(इ) दण्डि द्वारा बालचरित (अं० २ श्लोक २५) और चारुदत्त (अं० २ श्लोक १९) का 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीव अञ्जनं नभः' श्लोक उद्धृत होनेपर भी, उससे कर्ताका पता नहीं लगता।

(ई) भासने प्रतिज्ञायौगन्धरायणके वस्तुतत्त्वको न्याय-विरुद्ध कहा है, पर नाटक एवं उसके कर्ताके बारेमें कुछ भी नहीं बताया।

इस तरह तीनों दलोंके किसी एक मतपर न पहुंच सकने के कारण नाटकोंके कर्ताका निश्चय अत्यन्त जटिल समस्याके रूपमें रह गया है।

इस वाद-विवादसे हमें कई विचारोंका ज्ञान प्राप्त हुआ है। कालिदास और राजशेखरकी उक्तियोंसे सिद्ध होता है कि कालिदाससे पूर्ववर्ती कवि भास रहे थे, एवं उन्होंने स्वप्नवासवदत्ता नामक सर्वोत्तम नाटक लिखा था। हालमें ही मिले हुए तेरहों नाटकोंके एककर्तृत्व-विषय नानाविध हेतुसे अनुमित सिद्ध है, पर भास-रचितांश कल्पनाकी नींवपर ठहरा है। भास-प्रणीत विषयपर प्रस्तावनाओंमें स्पष्टोक्तिरूपी प्रमाण न मिलनेके कारण भिन्न-भिन्न अभिप्रायोंका आविर्भाव होना अवश्यंभावी है। जो हो, एककर्तृत्व-विषय, सभी रूपकोंने बड़े-छोटे विद्वानों एवं पण्डितोंकी प्रियवस्तु बनकर, संस्कृत-साहित्यमें सबसे सर्वश्रेष्ठ स्थान पाया है।

२१. शक्तिभद्रकी 'आश्चर्यचूडामणि', नीलकण्ठका 'कल्याण-सौगन्धिक', कुलशेखरवर्माका 'तपतीसंवर' और सुभद्रा धनंजयादि नाटकोंको देखिये।

२२. स्वप्नवासवदत्ताके द्वितीय संस्करणमें शार्ङ्ग जीने इस श्लोक को शेफालिका-मंडप-प्रकरणके साथ मिला दिया है। भावप्रकाशिकाकारने जिस 'चिरसुप्तः कामोऽयं' श्लोकका उद्धरण दिया है, वह अनन्तशयन ग्रन्थमालाकी स्वप्न-वासवदत्तामें ही मिलता है।

तृतीय एशियाई खेलोंका विहंगावलोकन

रामकृष्ण शर्मा

गत २४ मईको जापानके नोकियो नगरमें तृतीय एशियाई खेलोंका समारंभ हुआ। इन खेलोंमें एशियाके बीस देशोंके प्रतिनिधि खिलाड़ियोंने भाग लिया, जिनकी कुल संख्या लगभग १४८० के थी। 'एशियाद'के खेलोंमें सबसे अधिक सफलता जापानके खिलाड़ियोंको मिली। उन्होंने विविध खेलोंमें ६७ स्वर्ण-पदक (प्रथम स्थान), ४१ रजत-पदक (द्वितीय) तथा ३० काँसेके पदक (तृतीय) प्राप्त किये। अनेक जापानी खिलाड़ी पुरुषों और महिलाओंकी दौड़, वाटर पोलो, मुक्केबाजी और तैराकीमें सर्वप्रथम रहे। इस प्रकार जापान एशियाई खेलोंका चैम्पियन देश घोषित किया गया। अफगानिस्तान, कम्बोडिया, नैपाल आदि कुछ ऐसे देश भी हैं, जो एशियाई खेलोंमें एक भी पदक प्राप्त नहीं कर सके।

७८ भारतीय खिलाड़ियोंका एक दल, जिसमें हाकी, फुटबाल, बाली वाल आदि टीमोंके सदस्य थे, एशियाद खेलोंमें भाग लेने गया। लेकिन जापान, फिलिपाइन्स,

ईरान आदि देशके मुकाबलेमें भारतीय खिलाड़ियोंको आशातीत सफलता प्राप्त न हो सकी तथा अनेक ओलम्पिक मैचों की अब तककी अपराजित भारतीय हाकी टीम, जिसपर अब तक भारतको गर्व था और जिसपर संसारके देशोंकी आँखें लगी हुई थीं, अपने सर्वोत्कृष्ट स्थानको स्थिर न रख सकी तथा तृतीय एशियाई खेलोंमें पाकिस्तान द्वारा पराजित की गई। प्रथम स्थानका निर्णय अधिक संख्यामें गोल करनेके कारण पाकिस्तानकी टीमके पक्षमें किया गया। यद्यपि पाकिस्तान और हिन्दुस्तानकी हाकी टीमोंका फाइनल मैच, बिना एक दूसरे पर गोल किये, अनिर्णीत समाप्त हुआ।

भारतीय हाकी टीमकी असफलताके कई कारण हैं—उचित प्रशिक्षणका अभाव, टीमके चुनावमें मनभेद, स्वार्थ और पार्टीबाजी तथा टीमके सर्वेसर्वा और टीमके संचालकोंकी टीमके प्रति उदासीनता आदि सुना गया है। जब भारतीय हाकी टीमका फाइनल मैच था, तो टीमके अधिकारी किसी और प्रतियोगिताको देखनेमें मस्त थे। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध खिलाड़ी बाबू (कुं० दिग्विजय सिंह) का हाकी टीमके साथ न जाना, जेन्टिलको टीममें न चुनना तथा ऊधम सिंहको 'फारवर्ड' पंक्तिसे हटाकर पीछे खिलाना आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका टीमके अधिकारियोंके पास कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं है। अतः टीमके निराशाजनक खेल तथा परिणामका उत्तरदायित्व मुख्य रूपसे उन अधिकारियोंके ऊपर ही है।

कुछ ऐसे भी खिलाड़ी हैं, जिन्होंने एशियाई खेलोंमें भारतकी कीर्तिमें चार-चाँद लगा दिये हैं। उनमें-से अग्रणीय हैं मिलखा सिंह, जिन्होंने २०० मीटरकी दौड़ २१·६ सें० और ४०० मीटरकी दौड़ ४७ सें० में दौड़कर दोनोंमें प्रथम स्थान प्राप्त किया है। ये प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने एशियाई खेलोंमें दो स्वर्ण-पदक प्राप्त किये हैं। उन्होंने अपने अदम्य उत्साह और शक्तिके द्वारा भारतीय खिलाड़ियोंकी श्रेष्ठताका पूर्ण परिचय दिया। इसके अतिरिक्त प्रद्युम्न सिंहने अपने पूर्व रेकार्डसे १५·४ मीटर अधिक गोला फेंककर एशियाका एक नया रेकार्ड स्थापित किया और भारतके लिये एक और स्वर्ण-पदक जीता। बलकार सिंहने 'डिसकस' (तवा) ४७·६६ मीटर (१५६ फीट ४½ इंच) फेंककर एक और स्वर्ण-पदक जीता। मोहेन्दर सिंह 'हाप-स्टैप' की कूदमें प्रथम रहे और उन्होंने ५१ फीट २¾ इंचकी छलांग लगाकर एक और नया एशियाई रेकार्ड स्थापित किया।

महिलाओंमें स्टेफी डिसूजा और एलिज़बेथ डेवनपोर्टने भारतके लिये कई पदक प्राप्त किये, यद्यपि जापानके मुकाबले में भारतीय महिलाओंकी सफलता उल्लेखनीय नहीं है। भारतीय फुटबाल टीम फिर द्वितीय बार इन्डोनेशियासे हार गई तथा एशियाके देशोंमें भारतीय फुटबाल टीमको चौथा नम्बर मिला। इससे पूर्व ओलम्पिककी विजेता भारतीय बालीबाल टीमने एशियाई खेलोंमें तीसरा स्थान पाया तथा पदक जीता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एशियाई खेलोंमें भारतने कुल मिलाकर ५ स्वर्ण, ४ रजत तथा ४ काँसेके पदक जीते। एशियाई खेलोंमें भारतका स्थान सातवें नम्बर पर रहा, जब कि पाकिस्तानका पांचवां रहा।

उपर्युक्त सब कुछ लिखनेके बाद यदि देखा जाय, तो इस बार एशियाई खेलोंमें भारतकी कहानी असफलताकी कहानी है। भारतीय इसपर गर्व नहीं कर सकते। इसके विपरीत हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तानकी सफलताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। खेलोंके क्षेत्रमें उसने आशासे अधिक उन्नति की है और एशियाई खेलोंमें पांचवां स्थान पाकर भारतको अवश्य नीचा दिखाया है। बड़े दुःखकी बात है कि भारतके पास अधिक शक्ति, साधन आदि होते हुए भी खेलोंका भविष्य अन्धकारमय है और खेलोंका स्तर अधिक ऊँचा नहीं है। इसपर भी यदि हम आँखें मूँदे बैठे रहें, अथवा मुकाबलेके समय रेफरियोंको दोष देते रहें, तो 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' वाली कहावतको ही चरितार्थ करेंगे। हमें अपनी हारको हार मानकर तथा अपनी कमजोरियों पर विजय पाकर हारको विजयमें परिणत करनेका प्रयत्न करना चाहिये, ताकि खेलोंका भविष्य भारतमें उन्नति कर सके।

अन्तमें टीमोंके चुनाव तथा खिलाड़ियोंके प्रशिक्षणके विषयमें कुछ लिखना है। हमारे देशमें आपसी विवाद तथा झगड़ेके लिये अनेक आधार हैं—जातिवाद, प्रान्तीयता, भाषागत पक्षपात आदि। इनसे कुनबा-परस्ती और सिफारशी तिकड़मको जन्म मिलता है। अन्य देशोंमें आपसी फूटके इतने आधार नहीं हैं। यही कारण है कि हम खेलोंके मामलेमें पीछे रह जाते हैं। कभी-कभी अच्छे खिलाड़ी चुने नहीं जाते और विदेशोंमें घूमनेके लिए अपने भाई-भतीजोंको टीमोंमें घुसेड़ा जाता है। यदि खिलाड़ियोंमें गिननी नहीं हो पाती, तो उन्हें मैनेजर, डिप्टी-मैनेजर,

असिस्टेण्ट मैनेजर, डिप्टी-असिस्टेण्ट मैनेजर आदि नामोंसे विभूषित करके (सपत्नीक) टीमोंके साथ भेज दिया जाता है। हमारा नैतिक स्तर इतना नीचा है कि व्यक्तिगत लाभके आगे हम देशकी प्रतिष्ठाको भी स्थान नहीं देते। यदि ये सब बातें दूर नहीं होंगी, तो हमारा इस प्रकारके खेलोंमें भाग लेना वृथा है। वैसे भी जब तक हमारे खिलाड़ियोंका स्तर विभिन्न खेलोंमें विश्व-स्तरके निकट नहीं पहुंच जाता, तब तक कुछ लोगोंके शौकको पूरा करनेके लिये, उन्हें विदेश-यात्राके लिये नहीं भेजना चाहिये। सर्व-प्रथम हम अपनी टीमोंके खेलोंका स्तर ऊँचा उठायें। इस प्रकार हम खेलोंकी उन्नति भी कर सकेंगे और अति आवश्यक विदेशी मुद्राको भी बचा सकेंगे।

पं० नेहरूने मनालीसे लौटकर यही कहा है कि देशमें खेलोंकी अवनतिका कारण है पदाधिकारियोंके आपसी झगड़े। अतः सरकारको खेलोंके प्रबन्ध, खिलाड़ियोंके चुनाव तथा पदाधिकारियोंकी गतिविधि पर और भी कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिये। यदि यह सम्भव हो सका, तो आगामी विश्व-ओलम्पिकमें हाकी आदिकी एक आध टीमको छोड़, हमें कोई खिलाड़ी नहीं भेजना चाहिये। दरिद्र देश अपना ही पैसा खर्च करके अपनी छीछालेदर करवाये, इसमें क्या कोई आनन्द है ?

—*—

तार्किक और तेली

अनन्त रमैय्या

१ एक था तेली।

२ तेली अपनी गुजर-बसर कोल्हू चलाकर किया करता था।

३ तेलीने कोल्हूमें चलनेवाले अपने बैल के गलेमें एक घंटी बाँध दी थी।

४ कोल्हूमें तिलहन डालकर बैलको हाँक कर वह बाहर और काम करने चला जाता।

५ बैलके गलेकी घंटीसे वह जानता रहता कि बैल कोल्हू खींच रहा है और जब घंटीका बजना बंद हो जाता, तब तेली तेजीसे आकर पैना मारता और उसे गतिशील करके फिर बाहर चला जाता।

६ एक दिन एक कुतर्की तार्किक उधरसे आ निकला।

७ तेलीको एक समयमें ही दो काम करते देखकर उसने तेलीसे कहा, "तुमने बैलके घंटी इसलिए बाँध रखी है, ताकि तुम घंटीकी आवाज न होने पर समझ जाओ कि बैलने चलना बन्द कर दिया ?"

८ तेली बोला, "हाँ, यही बात है।"

९ तब तार्किकने बहसकी भावनासे कहा, "अगर बैल चलना बन्द करके अपना सिर हिलाकर घंटी बजाता रहे, तो क्या करोगे ?"

१० तेलीने हँसकर कहा, "अगर मेरा बैल तुम जैसा तार्किक होता, तो ही ऐसा काम करता और ऐसी ही मूर्खतापूर्ण बात करता। पर खुशीकी बात है कि मेरा बैल तुम जैसा नहीं है।"

११ तार्किकने अपना-सा मुँह लेकर अपना रास्ता नापा।

—*—

काजी और जाट

मुरलीधर दिनोदिया

१ एक था काज़ी।

२ उसके घरसे कुछ दूरीपर एक जाटका गन्नेका खेत था।

३ रस-भरे गन्नेको देखकर काज़ीके मुंह में पानी भर आया।

४ खेतके निकट जाकर देखा, तो जाट वहाँ मौजूद नहीं था।

५ आज्ञा लेनेका बहाना करके काज़ीने खेतसे कहा,

"खेत तू है गाज़ी
तुझसे पूछे मुल्ला काज़ी
गन्ने दो उखाड़ूं या चार?"

६ मुल्लाने फिर स्वयं ही खेतकी ओरसे उत्तर दिया,

"सुन रे मुल्ला काजी
हो गया तू हाजी
मालिक जाट है पाजी
उखाड़ ले गन्ने दस-बीस।"

७ अपने ही मुँहसे सवाल-जवाब करके काज़ीने जितने गन्ने चले उखाड़ लिये। यह क्रिया प्रतिदिन चलती रही।

८ जाटने अपने खेतको उजड़ते देखा और चोरकी तलाशकी खातिर खेतमें छिपकर बैठ गया।

९ जब काजी गन्ना चुराने आया, तो उसे पकड़ लिया।

१० जाटने बिगड़कर काज़ीसे पूछा, "अबे चोर! न तुझे बादशाहका डर है, न अपने धर्मका! बिना पूछे तूने गन्नेको क्यों तोड़े?"

११ काजीने कहा, "मैं तो खेतसे पूछकर ही गन्ने तोड़ता हूँ।"

१२ तब काज़ीने खेतसे किये गए सवाल और अपने दिए उत्तर बताकर जाटसे अपनी ईमानदारीकी वकालत की।

१३ जाटने कहा, "तेरी बात ठीक है, अब तनिक मेरी भी सुन।"

१४ दुफंकी जेरिया सँभालकर जाटने खेतसे कहा,

"मेरा बारह बीघा क्यार
तुझसे पूछे जाट गँवार
जेरी दो मारूँ कै चार?"

इसके बाद जाटने स्वयं ही उत्तर दिया,

"काजी मुल्ला है तो हाजी
पर करम करे है जाली
जेरी जाय न कोई खाली
मार इसके दस-बारह।"

१५ यह कहकर जाटने फौरन काजीको धुलाई शुरू कर दी। काजी लोहू-लुहान बेहोश जमीन पर गिर पड़ा।

१६ चारपाई पर रखकर काजीके घरवाले काजीको उठा ले गए।

१७ अच्छे होकर काजीने जाटके खिलाफ़ बादशाहके यहाँ मुकदमा दायर किया।

१८ बादशाहने दोनोंकी बातें सुनकर फैसला किया, "काजी और जाटका हिसाब-किताब बराबर है, अतः मुकदमा खारिज़ किया जाता है। यदि काजीने फिर गन्ने चुराये, तो वह जाटको हर्जाना देगा।"

चिट्ठी - पत्री

(१)

नई दिल्ली
५-६-५८

पर्ल बककी पुस्तकका उद्धरण साधारण डाकसे अलगसे बुक पोस्ट द्वारा भेज रहा हूं। कृपया स्वीकृति भेजिये। हमारे डाक तार-विभागका प्रबन्ध इतना बिगड़ गया है कि पत्रोंके उचित वितरणके विषयमें बड़ी चिन्ता रहती है। कभी हमारा डाक-तार-विभाग दुनियामें तीसरे नम्बरपर था।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

[हमें मालूम है कि अंग्रेजोंके जमानेमें और स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्व तक हमारा डाक-तार-विभाग दुनियामें तो तीसरे नम्बरपर था ही, पर कार्यक्षमता, ईमानदारी और लोकसेवामें वह भारतके सब विभागोंमें सर्वप्रथम था। आज जो उसकी दुर्दशा है, उसके हमारे मतसे अनेक कारण हैं। एक तो कार्यपटुता हमारे राष्ट्रिय चरित्रमें नहीं आ पाई है। अंग्रेजों के जमानेमें कार्यपटुता ऊपरसे नीचे तक ओतप्रोत थी। दूसरा कारण है कि हमारे अनुमानसे अयोग्य और नातजुर्बेकार व्यक्ति बहुत भर दिये गये हैं। योग्यताके स्तरका खयाल न करके एक खास बिरादरी उसमें भर ली गई है। यदि कोई लोक-सभा या राज-सभामें यह प्रश्न पूछे कि श्री जगजीवन रामके कार्य-कालके दिनोंमें डाक-तार-विभागमें उनकी बिरादरीके व्यक्तियोंका अनुपात कितना बढ़ा, तो शायद हमारा अनुमान ठीक निकलेगा। हम चार-पाँच विलायती मासिक पत्र मँगाते हैं, उनको डिलेवरीमें वह कोफ्त होती है कि तबीयत यह होती है, अब विदेशी पत्र मँगाना बन्द कर दिया जाय। देशी पत्र-पत्रिकाएँ भी कहीं-की-कहीं बाँट दी जाती हैं या कई दिन देरसे मिलती हैं। एक कर्मचारीने तो हमसे यह भी कहा कि कोई-कोई व्यक्ति तो अपने अधिकारीसे यहाँ तक कह बैठता है कि उसकी पहुंच सीधी मन्त्री तक है। पर गृहमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्तने स्वयं ही कह दिया है कि योग्यताका स्तर कम करके हरिजनोंको नौकरियाँ देनी चाहिए। हम तो सिर्फ यह कहते हैं कि नौकरी केवल योग्यताके आधारपर ही मिलनी चाहिए। हमें आशा है कि अन्य पाठक भी इस विषयपर कुछ लिखेंगे। पर डाककी गड़बड़ी और अयोग्यताकी कसौटीपर नौकरी देनेकी बातका विरोध होना चाहिए। देशके लिए मन्त्रियोंका मोह और दलबन्दीकी अपेक्षा राष्ट्रका हित अधिक आवश्यक है।

'विशाल भारत'-सम्पादक]

(२)

नई दिल्ली
७-६-५८

गामाकी बीमारीका समाचार अभी समाचारपत्रोंमें पढ़ा। चिन्ता हुई। गामाको हमें अन्तर्राष्ट्रिय व्यक्ति मानना चाहिए, सिर्फ पाकिस्तानी नहीं, और फिर वह तो ठेठ बुन्देलखण्डी है। गामाके बढ़िया संस्मरण बड़े भैया (श्री वृन्दावनलाल वर्मा) ने लिखे थे और श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी, गणेश मढ़िया (झाँसी) ने भी। गामाका चित्र तो कहींसे मिलना चाहिए। कटियारीको यात्रा भी गामाने की थी। जब वे टीकमगढ गये थे, तो अखाड़ेमें जमीनपर बैठे देख श्रीमान् ओरछेशने कहा था, 'अरे भई, रुस्तमे-हिन्दको कुर्सी दो, ज़मीनपर न बैठने दो।' पर गामाने कुर्सीपर बैठनेसे इन्कार कर दिया था। उत्तर भी बहुत अच्छा दिया था।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

[गामाको हम भी अन्तर्राष्ट्रिय व्यक्ति मानते हैं। यह दूसरी बात है कि गामा आजकल पाकिस्तानी है। पर किसी की राष्ट्रियतासे उसकी अन्तर्राष्ट्रिय ख्यातिमें अन्तर नहीं पड़ता। हमारा विश्वास है कि स्व० पटियाला-नरेश या कटियारी (हरदोई, उत्तर-प्रदेश) के स्व० राजा रुक्मांगद सिंह जीवित होते, तो गामा अथवा हमीदाको कोई आर्थिक संकट नहीं भोगना पड़ता।

गामाका कोई चित्र हमारे पास नहीं है, पर गामाका चित्र मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। इन पंक्तियोंको लिखते समय हमें निम्नांकित समाचार पढ़नेको मिला—

लाहौर, १२ जून। विश्व-विजयी गामा पहलवानको सतलज कपड़ा मिलके भारतीय मैनेजर श्री ब्रिजलाल जाजूने एक हजार रुपयेकी आर्थिक सहायता व १००) माहवार देने की घोषणा की है। गामा गरीबीकी हालतमें सख्त बीमार पड़ा हुआ है।

हमारे खयालसे भारतस्थित पाकिस्तानके हाई-कमिश्नर को गामाके स्वास्थ्यपर एक विज्ञप्ति प्रकाशित करनी चाहिए। इस विषयपर हम पाकिस्तानके हाई-कमिश्नर साहबको एक पत्र भी लिखेंगे। क्रान्ति जहाँ नवजीवनकी जननी है, वहाँ उससे अनेक ललित कलायें भी लुप्त हो जाती हैं। आज उसी प्रकार कुश्ती-कला भी भारतसे लुप्त हो रही है। पहलवानोंके आश्रयदाता उठ गये और साथ ही चली गई

भारतकी प्रसिद्ध कला। प्रथम श्रेणीके प्रसिद्ध पहलवान तो दूर, द्वितीय श्रेणीके पहलवान भी अब नहीं दिखाई देते। गामा भारतकी उस विख्यात कलाके प्रतीक हैं। स्व० राजा-बहादुर रुस्मांगद सिंहके निधनसे हमारा भारतीय मल्ल विद्यापर लिखनेका प्रयास भी समाप्त हो गया। गामा और उनके भाई इमामबख्शको साथ रखकर हमें वह किताब लिखनी थी, पर यह सब अब भाग्यकी बातें हैं। हमारी कामना है गामा अभी और जीयें। शायद कोई पाकिस्तानी भारतीय मल्ल विद्यापर लिखनेका प्रयास करे।

'विशाल भारत'-सम्पादक]

(३)

जी० एस० एन० कालेज,
अम्बाला, कैन्ट
६-६-'५८

'विशाल भारत' में 'तमिल पाठ' स्तम्भकी योजना देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह प्रयास बहुत प्रशंसनीय है। इससे अनेक उत्तर-भारतके निवासियोंको दक्षिणकी एक समृद्धतम भाषाके साहित्य-भंडारके सम्पर्कमें आनेका अवसर ही नहीं प्राप्त होगा, अपितु राष्ट्रिय एकताकी दृष्टिसे एक दूसरे को निकट सम्पर्कमें लानेमें बड़ा सहयोग प्राप्त होगा। क्या इस सम्बन्धमें आप ऐसा करना पसन्द नहीं करेंगे कि इन समस्त पाठोंको एकत्रित कर पुस्तकाकार रूपमें प्रकाशित करा दिया जाय। मेरे कुछ मित्र इस विषयमें जानना चाहते हैं।

—प्रो० देवीदत्त शर्मा

[इसके विषयमें अगले पत्रका उत्तर पढ़िये।

'विशाल भारत'-सम्पादक]

(४)

भोपाल
७-६-'५८

मैंने 'विशाल भारत' के मई-अंकमें तमिल पाठ पढ़ा। मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे अनेक भाषाएँ सीखनेका बहुत चाव है। हिन्दी, अंग्रेजीके अतिरिक्त मैं पंजाबी (गुरुमुखी) व थोड़ी-थोड़ी गुजराती भी जानता हूं। मैं एक ग्रामीण शिक्षक हूं, यहां मैं प्रशिक्षण हेतु एक वर्षको आया हूं। यहां मैंने बँगला सीखनेका विचार किया था, परन्तु अब उसकी जगह तमिल सीखूँगा और अवश्य ही सीखूँगा, क्योंकि ऐसा सुन्दर अवसर फिर कभी मिलना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। इसके सम्बन्धमें मेरा एक सुझाव है, यदि आपको पसन्द आ जाये तो, कि जब तक पत्रिकामें ये पाठ प्रकाशित हो रहे हैं, तब तक प्रतिमास इन पाठोंके रिप्रिंट्स भी अलगसे लेते रहें, जो सस्ते दामोंपर बेचे जायें, जिससे कि मुझ जैसे कम आयवाले व्यक्ति भी एक नई भाषा कम व्ययपर ही सीख सकें, भले ही उनके लिये थोड़ा-सा शुल्क अग्रिम ले लें।

—जयकृष्ण भारद्वाज

[हमें प्रसन्नता है कि 'तमिल पाठ' से 'विशाल भारत' के पाठक लाभ उठा रहे हैं। श्री देवीदत्त शर्माका यह सुझाव कि 'तमिल पाठ' लेखमालाको पुस्तकाकार छपा दिया जाय, हमें मान्य है। पर बड़ी कठिनाई यह है कि उसका प्रकाशक कौन बने। यदि दो हजार ग्राहक खरीदनेको तैयार हों, तो हम विशाल भारत बुक डिपोके संचालकसे आग्रह कर सकते हैं कि वे उसे पुस्तकाकार छपा डालें। पर जब तक यथेष्ट ग्राहक न मिलें, तब तक तमिल पाठ लेख-मालाका पुस्तकाकार छपाना सम्भव नहीं। श्री जयकृष्ण भरद्वाजके सुझावके बारेमें हमारा कहना है कि हम केवल व्यय मात्रपर रिप्रिंट्स करानेको तैयार हैं। पोस्टेज, कागज और छपाईके साधारण खर्चपर जितने कोई प्रिंट्स लेना चाहें, लिखें। हम 'विशाल भारत' के मैनेजरसे सब प्रबन्ध करवा देंगे।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]

(५)

लखनऊ
३०-५-'५८

'विशाल भारत'के सम्पादकीय नोटस सरकारी कर्मचारी और उच्च सरकारी परीक्षामें बैठनेवाले विद्यार्थी बड़े चावसे पढ़ते हैं। कई प्रतिष्ठित आई० ए० एस० सरकारी कर्मचारियों में यह चर्चा थी कि यदि आप मानसिंहपर उपन्यास लिखें, तो अच्छा रहे। वहाँ यह भी चर्चा थी कि आप अंग्रेजी भी अच्छी लिखते हैं तो क्यों न आप दोनोंमें ही लिखें।

—एक सरकारी कर्मचारी

[हम पहले ही लिख चुके हैं कि यदि प्रस्तावित मानसिंह उपन्यासके दो हजार ग्राहक हों, तो हम सामाजिक और आर्थिक दृष्टिसे उपन्यास लिखनेको तैयार हैं। अंग्रेजीमें भी हम पुस्तक लिख सकते हैं। पर हमारी कठिनाई यह है कि यदि कोई योग्य स्टेनो-टाइपिस्ट हो, तो अंग्रेजीमें भी लिखा दें। अपनी वर्तमान शारीरिक स्थितिमें हम अधिक काम स्वयं

नहीं कर सकते, नहीं तो बची-खुची आँखोंकी ज्योति भी चली जायगी। हमारे अनेक मित्रोंका आग्रह है कि हम मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और राजस्थानके डाकू दलोंके विषयमें कुछ लिखें। हम कितना लिख सकेंगे, यह तो कहना कठिन है; पर कई डाकू दलोंके विषयमें तो हम एकदम सही लिख सकते हैं। दो-चार महीनों बाद अवकाशानुसार हम पहले मानसिंह-गिरोहके विषयमें ही लिखेंगे।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]

(६)

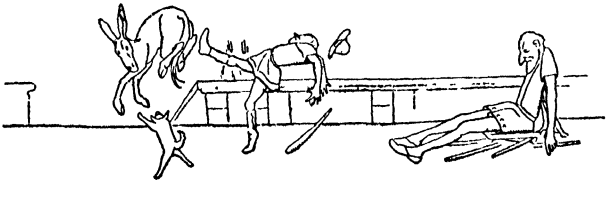
पुराना शहर, इटावा
१०-५-५८

'विशाल भारत' पत्र बराबर पढ़ता हूं। आपके संपादकीय मुझे बड़े भले लगते हैं। एक बात मेरे मनमें कई बार आई है, आज आपको लिखता हूं। परम पूज्य महात्मा गांधीकी देहलीकी समाधिपर अक्सर पुष्पमालाएँ (wreaths) चढ़ती रहती हैं। दिनभरमें सूखकर वह एक स्थानपर रख दी जाती होंगी। उनसे मालियोंको या उनके बनानेवालोंको अवश्य कुछ आर्थिक लाभ होता है। देशको मान-प्रतिष्ठा भी होती है, लेकिन इनके सिवा उनका क्या मूल्य है? क्या स्वयं महात्मा गांधी इनके इस उपहारको पसन्द करते? क्यों न उनका आदर केवल थोड़े-से साधारण पुष्पोंसे किया जाय और बड़ी-बड़ी पुष्पमालाओंका धन वहीं स्थित किसी डिब्बेमें डालकर हरिजन उद्धारके कामोंमें व्यय किया जाय? व्यवस्था बनाने में किंचित कठिनाई अवश्य है, किन्तु हो सकती है। पुष्पमालाओंका चढ़ाया जाना केवल मानका विषय है। वह भी एक प्रकारका अन्ध-विश्वास कहा जा सकता है। हरिजन-कार्यके लिए धन-संग्रह बापूजीके मनको बड़ा पवित्र लगता था। मेरा मन कई बार इसपर समाचारपत्रोंके लिए एक लेख लिखनेका भी हुआ, किन्तु राष्ट्रिय सम्मानका प्रश्न सोचकर चुप हो जाता रहा। आज मई '५८ का आपका 'विशाल भारत' पढ़कर मेरा मन आपको यह पत्र लिखनेको हुआ।

—सूर्यनारायण अग्रवाल

[श्री सूर्यनारायणजीके पत्रमें जो पुष्पमाला-सम्बन्धी बात कही गई है, उससे हम पूर्णतया सहमत हैं। पर पुष्पमालाओं-सम्बन्धी प्रश्न राष्ट्रिय ही न होकर विदेशी राष्ट्रोंमें प्रचलित शिष्टाचार और प्रथाका भी है। विदेशी आगन्तुक अपने देशोंकी मर्यादा और शिष्टाचारके नाते महात्मा गांधी की समाधिपर पुष्पमालाएँ चढ़ाते हैं। जो व्यय उनमें होता है, वह हरिजन कामके लिए उनसे कैसे लिया जाय? हम श्री अग्रवालजीसे सहमत हैं कि महात्मा गांधीकी आत्माको इस बातसे बड़ा सन्तोष होगा कि पुष्पमालाओंमें व्यय किया गया धन हरिजन-कल्याणमें व्यय किया जाय। पुष्पमाला चढ़ानेका कोई कानून तो बन नहीं सकता, पर इस विषयमें सुझाव तो आ ही सकते हैं। उदाहरणके लिए समाधि कमेटी द्वारा यह प्रकाश डाला जा सकता है कि महात्मा गांधीके सम्मानमें केवल कुछ फूल ही चढ़ाये जायँ और जो धन फूलमालाओंमें खर्च करना हो, वह धन रोगियों इत्यादिके लिए दान-स्वरूप दे दिया जाय। साथ ही हमें इस बातसे इनकार नहीं कि हम महात्मा गांधी जैसे महापुरुषोंका श्राद्ध कोरी भावनाओंकी तुष्टिके लिए करते हैं। औपचारिक रूपसे फूल चढ़ाना, प्रणाम करना तथा ऐसे ही उपचार मानसिक तोषके लिए आवश्यक हैं, पर हमें वास्तविक बात नहीं भूलनी चाहिए। हमें दुःख है कि हम इतनी जल्दी महात्मा गांधीके आदर्शोंको भुला रहे हैं, यह हमारे जीवनका अभिशाप है।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]



चयन

आत्महत्या का अधिकार

मानिक बन्द्योपाध्याय

बरसातमें बड़ी ही तकलीफ होती है।

घरका छाजन एकदम चलनी हो गया था।

अपनी इज्जत-आबरू बरकरार रखते हुए कुछ नारियल और ताड़के पत्ते बटोरे जा सके थे। छाजनके ऊपर उन्हें बिछा देनेपर भी कोई खास फायदा न हुआ। बारिश होते ही कमरेमें हर कहीं पानी टपकने लगता।

बिस्तरेको लपेट डालना पड़ता, टूटे बक्से-सन्दूकचेको इस कोनेमें खींच लाया पड़ता, कपड़े-लत्ते रस्सीपर से उतारते हुए पोटली बनाकर, कहाँ रखनेपर कम भीगेंगे, इसके बारेमें सिर खपाना पड़ता।

बड़ा लड़का कच्ची नींदसे जाग कर रोने लगा था। दुलार-पुचकारसे उसका रोना रुकता नहीं, घुड़की देनेपर और बढ़ जाता। लड़की सयानी हो गई थी, वह रोती नहीं थी पर उधरकी दीवारसे टेक लगाए बैठी इस तरह देखती कि नीलमणिके जीमें आता कि एक झापड़ मारकर उसे भी रुला दे। इतनी देर सोनेके बाद अगर घण्टा भर जाग कर बैठना ही पड़ा तो इस तरह देखनेका क्या मतलब है? आसमान फाड़कर वर्षा हो रही थी, घरके छाजनकी दस सालसे मरम्मत नहीं हुई थी। घरके अन्दर पानीका टपकना नीलमणिका कितना बड़ा कसूर था कि जिससे कारण लड़की उसे इस तरहसे खामोश फटकार देती रहेगी?

छोटे लड़केको सीनेमें छिपाए निभा कभी कमरेके इस ओर और कभी उस ओर खिसक रही थी।

अचानक बोल पड़ी, "अजी, जरा छतरी तो पकड़ना, एकदम भीगे जा रहे हैं! दुहाई तुम्हारी, एक बार छतरी तो पकड़ लो। क्या इसे भी निमोनिया होकर रहेगा?"

नीलमणिने कहा, "होगा तो होगा। सब जी जाएगा।"

निभाने कहा, "जीओ मेरे लाल, जुग-जुग जीओ!—अरी श्यामा, तू ही जरा छतरी पकड़ ले।"

श्यामाने चुपचाप आकर टूटी छतरी खोल ली और निभाके सिरपर तान दी। छतरी खोलनेकी हवामें दिये की लौ काँप गई। दियेमें तेल जल रहा था। फिजूलखर्ची! पर चारा क्या था? छप्पर फोड़कर वर्षाके पानी से जब कमरा भर रहा हो, ऐसी मुसीबतमें दियेकी रोशनी बेहद जरूरी हो जाती है। बर्तन-भाँड़े, सामान लेकर लोग कमरेके इस कोनेसे उस कोनेकी जगह कैसे बदलते रहेंगे।

"चिलम-भर तमाखू तो देना श्यामा।" नीलमणिने हुक्म दिया। श्यामाने कहा, "तो आकर छतरी पकड़ो।"

नीलमणि आकाशके वज्रकी तरह कड़क उठा, "फेंक दे छतरी, चूल्हेमें खोंस दे। मैं छतरी थामूँ, तब वह तमाखू भरेगी, हरामजादी!"

झट तमाखू मिल गई। कमरेके पश्चिमी कोनेसे बम्बे जैसी मोटी धारमें पानी गिरनेसे इसी बीच एक बाल्टी भर गई थी। उसी पानीमें हाथ धोती हुई श्यामा बोली, "तमाखू अब जरा-सी ही रह गई है बाबू।"

बुरी खबर!

इतनी बड़ी बुरी खबर देनेवालीको एक गाली देनेकी इच्छा नीलमणि बहुत मुश्किलसे ही दबा सका।

नीलमणिने सोचा: बिना तमाखूके इस गहरी रातकी लड़ाई कैसे जीतूँ? लड़केका रोना दोनों कानोंमें तीरकी तरह चुभता रहेगा, लड़कीका चेहरा और उसकी निगाह पिसे हुए मिर्चोंकी तरह उसके मुँहभरमें लगातार चिपकी रहेगी, निमोनियाके साथ निभाका उतावलीसे झगड़ना देखते हुए सिहर-सिहर कर यह लगेगा कि जीना, सिर्फ आज और कल नहीं, हर क्षण बेकार है और घरपर तमाखू सिर्फ जरा-सी है!

'तमाखू मँगाई क्यों नहीं गई', पूछनेको होकर ही नीलमणि खामोश हो गया। सवाल करना बेकार था, जवाब उसने परसोंसे ही बना रखा था—पैसा नहीं है। लड़का शामको एक पैसेका लइया नहीं खा पाया है—तमाखूका पैसा कहांसे आएगा? खुद जाता तो शायद दुकानसे उधार ला सकता था, लेकिन—

नीलमणि खुश हो गया। इतनी देरमें कोई बहाना मिल गया था।

"तमाखू नहीं है तो शामको क्यों नहीं बनाया तूने?"

"मैंने देखा नहीं था बाबू।"

"देखा नहीं बाबू! क्यों नहीं देखा बाबू? आँखें क्या जाती रहीं?"

"तुमने खुद तमाखू जो भरा था। दिन भरमें मैंने एक बार भी तमाखू नहीं भरा है बाबू।"

"वह क्यों भरेगी? बापके लिए तमाखू भरनेपर तुम्हारा सोनेका शरीर दुखेगा जो!"

नीलमणिको रुलाई आ रही थी। मुँह फेरकर उसने सहसा निकलते आँसुओंको रोक लिया। न रहे तमाखू तो न रहे। दुनियामें उसके पास है ही क्या कि तमाखू रहने पर उसके सब दुख दूर हो जाते!

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। कमरेकी हवा मानों सहारा रेगिस्तानसे आई थी कि नीलमणिका आँख-मुँह जल रहा था। थोड़ी देरसे उसके घुटनेपर पानीकी बड़ी-बड़ी बूँदें टपक रही थीं—टप्-टप्। अँजुरी फैलाकर नीलमणि गिन-गिनकर पानीकी बूंदें पकड़ने लगा। पानीमें उबाले हुए गोश्तकी तरह फीके रंगके होंठ हिलाकर उसने कुछ कहा, मगर कमरेमें कोई भी उसे सुन नहीं पाया। बच्चोंकी तरह वह पानीकी बूँदोंको इकट्ठा करनेका खेल खेल रहा था, सो भी किसीने आँख उठाकर नही देखा। लेकिन हाथमें जरा पानी जमा हो जानेके बाद जब उससे मुँह धोने जाने लगा तब नीलमणि पकड़ा गया।

निभा और श्यामा, दोनोंने विरोध किया।

श्यामाने कहा, "यह क्या कर रहे हो बाबू!"

निभाने कहा, "सड़े-गले फूसका धुला हुआ पानी है। क्यों जी, तुम्हें घिन भी नहीं लगती?"

नीलमणिने सहसा जरा हँसकर कहा, "होने दो न सड़ा-गला। फूस-धुला पानी तो है। यह भी शायद कल न नसीब हो, निभा!"

इसे सूक्ष्म मजाक सोचकर नीलमणिने मन-ही-मन जरा गर्व अनुभव किया। ऐसी हालतमें भी वह हँसी-मजाक कर सकता है! तब तो उसका मानसिक बल कुछ मामूली नहीं है। घरके चारों ओर एक बार निगाह दौड़ाकर निभा की ओर देखते ही उसकी हँसी गायब हो गई। निभाकी नजरोंकी निर्ममताने उसपर चोट की।

बिल्कुल श्यामाकी तरह देख रही थी। इतना दुःख और इतनी दुश्चिन्ता भी उसकी निगाहोंको कोमल नहीं कर पाई थी, न उसे उद्भ्रान्त ही बना पाई थी। वह रूखी फटकारों और खामोश व लाचार शिकायतोंसे भर गई थी।

नीलमणि मुरझा-सा गया।

सब कसूर उसके ही थे। उसने अपनी खुशीसे अपनी सेहत और कार्यक्षमता बरबाद की थी, खाद्यकी बहुलतासे भरी धरतीपर उसने अपने घरपर दुर्भिक्ष बुला लिया था, घरका छाजन उसीने छलनी बना दिया था और उसीकी इच्छासे आधी रातमें मूसलाधार बारिश हो रही थी। सिर्फ यही नहीं, उनकी सब तकलीफोंको दूर करनेका मन्त्र वह जानता था। यदि वह चाहे, तो मुँहसे बुदबुदाते हुए या मन-ही-मन खामोशीसे मन्त्र फूंक दे, बस उसका यह टूटा फूसका घर पलभरमें सरकारी पक्की इमारत-जैसा बन जायगा और कमरेके कोनेमें वह टूटी सन्दूकची लमहे भरमें बड़े-से लोहेके सन्दूकमें बदल जायगी और उस सन्दूकमें रुपये झनझन करने लगेंगे। रुपयोंकी झनझनाहटमें बारिशका झमझम शब्द सुननेका कोई भी उपाय न रहेगा।

लेकिन वह वह मन्त्र अपनी खुशीसे ही नही फूंक रहा था।

× × × ×

घण्टा-भर इसी तरह बीत गया।

निभाने एक बार पूछा, "हाँ जी! रात कितनी होगी?"

"होंगे, दो-तीन बज गये होंगे।"

"अरे, कुछ तो इन्तज़ाम करो! रातभर पानी न रुके, तो क्या इसी तरह बैठे-बैठे भीगूंगी?"

"बैठे-बैठे भीगनेमें तकलीफ हो तो खड़ी होकर भीगो।"

निभाने कुछ और न कहा। फटे अलवानसे गोदके बच्चे को और भी अच्छी तरहसे ढाँपकर रुखे बालोंपर गिरे हुए घूंघटको चढ़ा दिया। पतिके सामने घूँघट चढ़ानेकी आदत वह अभी तक छोड़ नहीं पाई थी।

छतरी पकड़े खड़ी न रह पानेकी वजहसे श्यामा निभाके बदनसे सटकर बैठ गई थी, इसलिए बीच-बीचमें उसका सिहर उठना निभाको मालूम पड़ रहा था।

"काँप क्यों रही है श्यामा! ठण्ड लग रही है?"

श्यामा कुछ बोली नही। सिर्फ सिर हिला दिया।

निभाने कहा, "तो जरा अच्छी तरहसे छतरी थामे रह—मुन्नाके बदनपर छींटे आ रहे हैं।"

आँचलसे उसने मुन्नाका मुँह पोंछ दिया! फुसफुसाती हुई अपने-आपसे ही बोली, "कितने जन्मोंमें पाप किया था कि यह उसकी सजा है।" नीलमणिने सुन तो लिया, मगर कुछ बोला नहीं। मन उसका जाग रहा था, निर्मम रूपसे जाग्रत था। सिर्फ पलकोंसे दानों आँखोंको उसने आधा ढक रखा था। देखनेसे लगता कि वह विकारशून्य होकर ऊँघ रहा है।

लेकिन नीलमणि सब-कुछ देख रहा था। उसकी धुँधली नज़रोंमें सरलाका चेहरा निरछा होकर टेढ़ा हो गया, दीये की लौ फूलकर काँप उठी, दीवारपर परछाइयाँ एकाएक जीवन पाकर हिंडोले लेने लगीं। मुँह न फेरकर ही नीलमणि ने देखा कि कमरेके दूसरे कोनेमें गोल किये हुए बिस्तरके ऊपर पट होकर निमू सो गया है। खिझलाहटसे मन भर गया। उसे लगा कि उसका बेटा उसपर व्यंग कर रहा है। दोनों पैर फर्शके पानीकी धारमें फैलाकर, आसमानके पिघलते बादलसे आधी देह भिगोते हुए उतने-से बच्चेके उस तरह सो जानेसे और क्या एहसास होता? इससे, अगर वह आखिर तक नकियाता हुआ रोता और घिघियाता भी रहता तो भी नीलमणिके लिए बेहतर था। यह तो सहा नहीं जाता। शामको भी उसे पेटभर खाना नहीं मिला था। भूखकी तड़पनसे माँको तंगकर पेटकी जलनमें आँसू गिराते हुए वह सो गया था। शायद उसकी लोक-कथावाली पालतू बिल्ली आज बदलीकी वजहसे राजमहलसे अच्छी-अच्छी खाने की चीजें चुराकर नहीं ला पाई थी। उसके गालपर आँसुओं के गम्बे दाग शायद सोते-सोते ही फिर आँसूसे भीग गये थे। आजकी रातमें, दुखकी इस असली बाढ़में बहते हुए वह किस हिसाबसे सो रहा था?

"निमूको जगा तो दे श्यामा।"

निभाने विरोध किया, "क्यों, जगाये क्यों? सो रहा है, सोने दो।"

"सो नहीं रहा है। मज़ाक कर रहा है। ढोंग रच रहा है"

"हाँ, मज़ाक कर रहा है! ढोंग रच रहा है! क्या निराली बातें हैं तुम्हारी? ढोंग करने लायक सुखसे ही है न वह?"

अधमुँदी आँखोंको नीलमणिने एकदम बन्द कर लिया। वे जो खुशी करें, जो खुशी बोलें। वह अब एक शब्द भी न बोलेगा।

थोड़ी देर बाद निभाने कहा, "देखो, अब तो इस तरहसे रहा नहीं जाता। सरकारके बाहरवाले कमरेमें चलकर पनाह लें सब।"

नीलमणिने आँखें बन्द किये ही कहा, "नहीं।"

निभा नाराज़ होती हुई बोली, "तुम न जाना चाहो रह जाओ, मैं इन्हें लेकर जाती हूँ।"

नीलमणिने आँखें खोल लीं।

"नहीं, नहीं जा सकती। वे ओछे लोग हैं। उस दफे उन लोगोंने क्या कहा था, याद नहीं है तुम्हें?"

"कहनेपर किया क्या है तुमने? आधी रातको तंग करनेपर सभी लोग वैसा कहते हैं।"

नीलमणिने व्यंग करते हुए कहा, "कहते हैं! आधी रातको मुसीबतका मारा आदमी आसरा लेने जाय, तो कहता है, यह क्या मुसीबत है? इतनेसे बच्चेके लिए एक टुकड़ा सूखा लत्ता माँगनेपर कह देता कि कपड़े-लत्ते सब भीगे हैं। गन्दी हो जानेके डरसे जाजिम उठाकर रख देता है और फटी दरी मेहमानके लिए बिछा देता है। नहीं जाना है, बस!"

निभाने बहुत बरदाश्त किया है। अब उसका भी दिमाग गर्म हो गया।

"लड़के-लड़की-बीवीको बारिश-बदलीमें सिर छुपानेका ठौर नहीं दे सकता, ऐसे आदमीकी इज्ज़त-बेइज्ज़तीका इतना खयाल क्यों है? आजके गुज़रनेपर कल भीख नहीं माँगनी पड़ेगी तुम्हें?"

नीलमणिने कहा, "चुप।"

एक ही धमकीमें निभा काफी ठण्डी पड़ गई।

"चुप ही तो हूँ हमेशासे। दूसरी होती तो—"

हाथके पाससे लोटा उठाते हुए नीलमणिने घुड़की दी, "चुप। एकदम चुप। और एक बात भी मुँहसे निकली कि खून कर डालूंगा।"

कोई बात नहीं कर रहा था। निभा एकदम बुझ-सी गई।

श्यामा ऊँघने लगी थी, बापके गरजनेसे चौंककर सजग हो बैठी। कान खड़ेकर उसने कहा, "अम्मा, भूल दरवाजा खरोंच रहा है।"

गरीबकी बेटी, कंगालकी बीवी होकर निभाके पास रीढ़ नामकी कोई वस्तु बाकी नहीं थी, लेकिन उसके बजाय जो-कुछ था, वह मासूम बेटीके ऊपर झल्ला उठनेके लिए काफी था।

"खरोंच रहा है तो क्या होगा? गोदमें उठाकर लाओ और नाचो!—अच्छी तरहसे छतरी थामे रह श्यामा! नहीं तो मार-मारकर पीठकी चमड़ी उधेड़ दूँगी।"

नीलमणिने कहा, "मेरी लाठी कहाँ है रे?"

श्यामाका चेहरा फक पड़ गया। उसने विनती की, "मारो तत बाबू। दरवाजा न खोलनेपर वह खुद ही चला जायगा।"

"तुझे शेखी बघारनेको कौन कह रहा है ? चुप रह।"

बायाँ पैर आंशिक रूपसे सुन्न था, हाथोंका सहारा लेकर बड़ी तकलीफसे नीलमणि उठ खड़ा हुआ। कमरेके कोनेमें उसकी मोटी लाठी रखी हुई थी, लँगड़ाते हुए जाकर लाठी उठा ली। आँगनमें रहनेवाले खौरहे, सुस्त कुत्तेके ऊपर उसे अचानक इतना गुस्सा क्यों आया, क्या मालूम! बेचारेको खाना नहीं मिलता, पर पिटन्नस अक्सर हो जाती। फिर भी वह यहीं पड़ा रहता और रातभर गीदड़ हाँकता रहता। श्यामा अगर उसे ज़रा करुणाकी निगाहसे न देखती, तो कब का वह स्वर्ग प्रयाण कर गया होता। लेकिन नीलमणिको वह कुत्ता फूटी आँखों न सुहाता था। लात-मार खाकर चौंकते हुए मौतके साथ उसकी शर्मनाक करुण लड़ाई देखकर उसे घिन लगती, तन-बदनमें जलन होती।

श्यामाने कहा, "मारो मत बाबू, मैं भगाये देती हूं।"

नीलमणिने दाँत पीसते हुए कहा, "मारूँगा ? मार खाकर ही आज उसे मुक्ति मिलेगी—क्या सोच रखा है तूने? आज उसे संसारकी तकलीफोंसे ही छुटकारा दिला दूँगा।"

बेशक उसके लिए संसारकी तकलीफें थीं। लेकिन श्यामा क्यों सुनेगी ? भूखसे अब भी उसे रोना आ रहा था, फटे कपड़ोंमें उसकी सारी देह शर्मसे सिकुड़ती जा रही थी; पर उसके हृदयमें भाषा थी, मनमें आशा थी। भय-यातना सहती हुई उसकी शक्तिमें कुछ कमी नहीं होती, कुछ फालतू शक्ति बच ही जाती। उतनी भर शक्तिसे ही वह मौजूदा ज़िन्दगीसे भी रस निचोड़ लेती थी—चाहे वह रस फीका क्यों न हो—फिर भी तुच्छ नहीं। भूलू जैसे कुत्तेकी भी मौत या उसे मारनेकी कल्पना श्यामाके मनमें विषाद भरे देती थी। वह बरदाश्त नहीं कर पाई।

छतरी फेंककर उसने उठकर नीलमणिकी लाठी पकड़ ली। रुआँसी होकर बोली, "न बाबू, उसे मत मारो बाबू, तुम्हारे पैरों पड़नी हूं, बाबू।"

नीलमणिने कड़कते हुए कहा, "लाठी छोड़ दे श्यामा! छोड़ दे, कह रहा हूं। तुझ ही को मार डालूँगा जान से।"

श्यामाने भी लाठी नहीं छोड़ी। उसका भी दिमाग कुछ ठिकाने नहीं था। लाठी पकड़े हुए ही वह बार-बार नीलमणिके पैरों पड़ने लगी।

निभाने कहा, "बड़ी जिद्दी लड़की है! छोड़ दे न लाठी।"

गुस्सेसे काँपते हुए नीलमणिने कहा, "जिद्द मैं अभी दुरुस्त करता हूं। लड़कीके हाथोंमें नीलमणिको लाठी छोड़नी ही पड़ी; लेकिन कमरेकी दीवारमें बहुत-सी बाँसकी खपच्चियाँ ढीली थीं।

× × ×

लड़कीको पीटनेके बाद नीलमणिका मन बहुत दुखी हो गया। हालाँकि न मारनेसे भी नहीं बनना था। उस तरहका गुस्सा वह कभी सँभाल नहीं पाया था और न पायेगा। मन दुखनेकी वजह शायद और ही थी। कौन कह सकता था ? लड़कीको न भी पीटता तो भी यूँ ही उसे बीच-बीचमें मर जानेकी इच्छा होने लगती थी।

जीवनमें शर्म, दुख, बीमारी, मौत और शोककी कोई कमी नहीं। दस साल बुखार भुगतनेके बाद मन जैसा दुखी हो जाता, मनके वैसा दुखी होनेके कारण जागते रहने के हर लमहेमें और सोते समय दुःस्वप्नमें मौजूद था।

चन्द मिनट पहले बारिश कुछ धीमी पड़ गई थी, फिर पहलेसे भी ज्यादा जोरसे होने लगी। नीलमणिका मान-अपमानका बोध टिक न पाया।

"लालटेनमें तेल है श्यामा ?"

श्यामाने सोचा कि चुप रहकर अपना गुस्सा और रूठना ज़ाहिर करे। पर हिम्मत नहीं पड़ी।

"ज़रा-सा है बाबू।"

"तो बालो।"

निभाने पूछा, "लालटेन क्या होगी ?"

'सरकारके मकान जाऊँगा। फिर ज़ोरसे बारिश होने लगी, देखती नहीं हो ?"

मानों सरकारके मकान जानेमें निभाने ही एतराज किया था।

श्यामाने कहा, "सलाई कहाँ रख दी अम्मा ?"

निभाने कहा, "सलाई ? क्यों, दियासे क्या लालटेन नहीं बाली जा सकती ? आँखोंके सामने दिया जल रहा है, क्या आँखें फूट गईं ?"

नीलमणिने कहा, "उसका दिमाग क्या सही है ?"

अपने मुँहकी बातें ही उसे चुभने लगीं। यह मानो तोतेकी तरह, गरीबीसे मारे हुए लोगोंके मुँहसे लगी रोजमर्रा की बोली रटना ही था। न बोलनेसे भी दरअसल कुछ फायदा नहीं।

सात सालकी पुरानी लालटेन जलाई गई।

निभाने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं जी, छतरासे बचाव नहीं होगा। एक कपड़ा और लपेट लूं। ज़रा

काई सूखा कपड़ा तो दे श्यामा। और एक काम कर—दो-तीन कपड़ोंको पोटली बना ले। वहाँ पर जाकर सभी को कपड़ा बदलना होगा। मेरी खैनीकी डिबिया भी ले लेना।"

नीलमणिने ज़रा मिठास घोलकर कहा, "मेरी नारियली ले जा पायेगी श्यामा? अच्छी बिटिया मेरी—ले जा पायेगी। पानी फेंक कर हुई ले चल, वहाँपर जाकर भर लिया जायगा। पानीकी क्या कमी है। अरे हाँ, तमाखू भूलकर मत रख जाना।"

सभी इन्तजाम हो गया। निमूके रोनेकी परवाह न कर खींच-घसीट कर खड़ा किया गया और उसकी पीठपर एक बोरा रख दिया गया।

दरवाज़ा खोलकर वे आंगनमें उतर आये। उत्तरकी ओरका कमरा पिछले साल तक दुरुस्त था—इस बारकी बैसाखी आँधीमें उसका छप्पर उड़ गया। वक्तपर अगर दो खम्भियाँ भी बदल दी जातीं तो ऐसा न हो पाता। भूख शायद उसी खण्डहरमें कहीं सिर छुपाये बैठा था, लोगों की आहट पाकर बाहर निकल आया। तब तक घरके दरवाजे पर ताला लगा दिया गया था। दरवाजा पंजोंसे खरोंचते हुए कुत्तेकी भाषामें कहने लगा, दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो।

घरके सामने घुटने भर कीचड़ और उसके बाद हो पैर रपटानेवाली पिच्छिल मिट्टी। बच्चा लिए निभा रपटते-रपटते बच गई और देवताओं को गाली देने लगी। नीलमणिको ही सबसे ज्यादा तकलीफ थी। सूखी जमीनपर ही पैरकी खराबीकी वजहसे बाएँ पैरका डग उसे झट पार कर जाना पड़ता था—और यहाँपर उसके पैर और लाठी दोनों ही कीचमें धँसते जा रहे थे।

लाठी खींचकर उठानेसे पैर धँस जाते और पैर उठानेपर लाठी फँस जाती थी। निभाको यह देखनेकी फुर्सत नहीं थी। श्यामाके कन्धेपर कपड़ोंकी पोटली, नारियली, चिलम, लालटेन और निमूका जिम्मा। फिर भी इस आफतमें श्यामा ही नीलमणिकी मदद करती रही।

घोष घरानेके पोखरका चक्कर लगानेके बाद सरकारका मकान था। पोखर भरकर किनारे तक लबालब आ गया था। पच्छिमी कोनेके विशाल इमलीके पेड़के नीचेसे तीन-चार हाथ चौड़ा एक छोटा-सा सोता बन गया था। इमलीके पेड़का विराट अस्पष्ट आकार देखनेपर दिल मुँहको आने लगता। लबालब भरे पोखरपर श्यामाके हाथकी लालटेनने जो लम्बी सुनहली चौड़ी रेखा डाली थी, प्रतिक्षण बारिशकी हज़ारों बूँदोंसे वह असंख्य टुकड़ोंमें टूटती जा रही थी।

नीलमणि ठिठककर खड़ा हो गया। कातर स्वरमें बोला, "ओ श्यामा, इसे कैसे पार करें?"

श्यामाने कहा, "पानी ज्यादा नहीं है बाबू, निमूके घुटनों तक भी नहीं है। चले आओ।"

तसल्लीकी बात यह थी कि बहावके नीचे कीच घुल गया था, सो नीलमणिका पैर या उसकी लाठी न तो उसमें फँसी और न उसकी आफत बढ़ाई। फिर भी इतनी सुविधा पानेके बावजूद नीलमणिकी आँखें सजल हो गईं। बाहर निकलते वक्त उसने जो कपड़ा ओढ रखा था, वह भीगकर बदनसे चिपक गया था। थोड़ी देरमें जो ज़ोरकी हवा चली, तो नीलमणिको ठण्ड लगने लगी। दुनियामें करोड़ों लोग जब गर्म बिस्तरपर सोते हुए चैनको साँस ले रहे हैं, उस वक्त पूरे परिवारके साथ इस पंगु शरीरको घसीटते हुए वह कहाँ जा रहा है? जिस प्रकृतिके अत्याचारसे, टूटे घरमें न ठहर पानेकी वजहसे उसे पनाह ढूँढ़नेके लिए रास्तेमें उतर आना पड़ा, उसी प्रकृतिकी दी हुई निर्ममतासे शायद सरकारके घर के लोग दरवाजा नहीं खोलेंगे, नींदका बहाना किये बिस्तरसे चिपके रहेंगे। नहीं, नीलमणिसे अब झुका नहीं जाता। उसके पास ताकत नहीं, और हमला चारों ओरसे हो रहा था। पेटकी भूख, देहकी भूख, जाड़ा, बरसात, बीमारी, विधाताका अमोघ विधान—जन्म—वह कौन-सी ओर सँभाले? सभी लोग जहाँपर जीना चाहते हों, और लाखों लोगोंकी कमाई कोई अकेला जोड़ना चाहता हो, लेकिन किसीको बचाना नहीं चाहता, वहाँपर वह किस बूतेपर जियेगा?

सोता पार करनेके बाद श्यामा लालटेन ऊँची किये दूसरी ओर खड़ी थी। बगल ही में भरा हुआ पोखर बारिश के पानीसे टगबग उबल रहा था। नीलमणि तैरना नहीं जानता था। लेकिन जानता था कि पोखरका कगार उस जगह बिल्कुल ऊँचा है। एक बार गिरते ही अथाह पानी था, उठनेका कोई भी सवाल नहीं था।

निभा जल्दी मचा रही थी। श्यामाने कहा, "बाबू, चले आओ, ठहर क्यों गये?"

नीलमणि चलने लगा; न दाहिने, न बाएँ—सावधानी से सीधे श्यामाकी ओर।

अचानक श्यामा चीख पड़ी, "हाय अम्मा, साँप!"

अगले ही क्षण खुशीसे डगमगाती हुई बोली, "साँप नहीं, साँप नहीं, बहुत बड़ी महाशेर मछली है। पकड़ लिया है बच्चूको। ओफ, कैसी फिसल रही है।"

जल्दी-जल्दी आगे बढ़नेकी कोशिश करते हुए नीलमणि ने कहा, "सख्त हाथोंसे मजबूतीसे पकड़, दोनों हाथोंसे पकड़ ले—अगर भाग गई, तो मार डालूँगा श्यामा तुझे।"

× × × ×

सरकार घरानेवालोंने तीन साल हुए मकान बनाया था। अब भी उनके घर भर मकानके बारेमें कहते अघाते नहीं। कहते, "कैसा बना है? दुमंजिलेपर दो कमरा बना लें, बस, सब काम पूरा।"

बहुत देर बुलानेके बाद सरकारके बड़े लड़केने आकर दरवाजा खोला। कहा, "क्या मामला है, डाकू हो क्या?"

नीलमणिने कहा, "नहीं भाई, हम हैं। घरपर तो टिक नहीं पाये, भाई, सब-कुछ बह गया। सोचा, तुम्हारे बैठकेमें तो कोई सोता नहीं—रात यहीं काट आयें।"

सरकारके बड़े बेटेने कहा, "शाम ही को आ जाते।"

नीलमणि बड़ी कोशिशसे हँसा, बोला, "शामको बारिश नहीं हो रही थी; बिलकुल साफ आसमान था—बादलके निशान तक न थे। आधी रातमें पानी आ धमकेगा, किसे पता था भाई।"

निभा छतरी बन्द किये घूंघट काढ़े खड़ी थी। मासिक पत्रिकाओंमें सद्यस्नाताके चित्रकी तरह बनकर श्यामा शर्मसे माँके शरीरके साथ सट गई थी। निभाको यह अच्छा नहीं लग रहा था। लेकिन सरकारके बड़े बेटेके सामने कुछ कह भी नहीं पा रही थी।

बड़े बेटेने कहा, "अच्छी बात! ठहरिये। लेकिन तख्तपोश नहीं मिलेगा—तख्तपर मेरे फूफा लेटे हुए हैं। आप लोगोंको फर्शपर ही लेटना होगा।"

"ठीक है भाई, ठीक ही है. भोगना तो नहीं पड़ेगा। कोई कम्बल-तम्बल हो—?"

"उस कोनेमें बोरा है।"

बड़ा बेटा मकानके भीतर चला गया।

नीलमणिने कड़ुई हँसी हँसते हुए कहा, "देखा? तभी कहा था कि सिर्फ जूता लगाना बाकी रखेंगे ये लोग।"

निभाने कहा, "खैरियत मनाओ कि कमरेमें रहने दिया है।"

नीलमणिने चट स्वर बदलते हुए कहा, "हाँ, यह बात सही है।"

घरका आधा हिस्सा लेकर तख्तपोश पड़ा था, जिसपर बड़े बेटेका फूफा सिरपर चदरा ओढ़े पड़ा था। श्यामाने लालटेन जमीनपर रख दी थी, इसलिए तख्तपर रोशनी नहीं पड़ रही थी, फिर भी इस घरके रिश्तेदारको भी चाँदनी हटाकर सिर्फ दरीपर लिटाया गया है, यह देखकर नीलमणि मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ। बड़े बेटेका फूफा!—अपना ही आदमी था। उसे अगर यह खातिरदारी मिले, तो उन लोगोंको लात-जूते नहीं मिले, यही अचरजकी बात है।

चारों ओर देखकर नीलमणिकी खुशी और बढ़ी। सुख का बिस्तरा न जुटे, हवा-शून्य सूखा, मनोरम आश्रय तो मिल गया था। घरके एक ओर एक ही छोटी-सी खिड़की खुली हुई थी—निभाने उसे इसी बीच अच्छी तरहसे बन्द कर दिया था। बस, बाहरके साथ अब उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। आसमान आज गलकर खत्म हो जाय, आँधी उठे, ओला पड़े, दुनिया भरमें जितने फूसके मकान हैं, सब बह जायँ—उन्हें पता भी नहीं लगेगा।

नीलमणिका मिज़ाज मानो जादूसे ठंडा हो गया था। यहाँ तक कि उसके गलेकी आवाज़ भी मुलायम लगने लगी थी।

"ओ श्यामा खड़ी रह बिटिया, बोरे सब बिछा दे चटपट। ज़रा लेटें तो। अरे, भीगा कपड़ा बदल ले पहले, इतनी भी क्या जल्दी है। इतनी देर जब कट ही गई, तो कुछ देर और सही। अजी, सुनती हो? दो न, मुन्नेको तख्तके एक किनारे लिटा दो न, लिटाकर तुम भी कपड़ा बदल लो।" आवाज़ घोमी कर फुसफुसाते हुए बोला—"यह सज्जन सो रहे हैं, इतनी शर्मकी बात क्या है, सुनूँ? शर्म लगे तो दरवाजा खोलकर बरामदेमें चली जाओ न?"

गीले कपड़े बदल डाले गये। बाहर अब पूरे जोर-शोर के साथ आँधी आ गई थी। कमरे भरमें कहीं ज़रा-सा भी छेद नहीं था—लेकिन हवाका रोना सुनाई पड़ता था। उन लोगोंको—नीलमणि और उसके परिवारको—अपने शिकंजे में न पाकर मानो प्रकृति फुफकार रही थी।

नीलमणिको लगा कि यह भी एक किस्मका धमकाना है। पंचभूतमें जिसकी भाषा है, वह क्रोधभरी साँस लेकर बोल रहा है, "आज बच गये। लेकिन कल? कल क्या करोगे? परसों? उसके अगले दिन? उससे भी अगले दिन?"

श्यामा बोरा बिछा रही थी, बोली, "बड़ी बदबू है अम्मा।"

निभाने कहा, "चल नखरा मत कर, झटपट कर।"

नीलमणिने कहा, "इन्हें झाड़-झाड़कर बिछा।"

निभाने कहा, "अरे मत झाड़, मत झाड़। धूलसे चारों ओर अँधेरा हो जायगा।"

निभा बच्चेको स्तन दे रही थी, बात खत्म करते ही एक झटकेमें तख्तकी ओर पीठ कर बैठ गई।

नीलमणिने देखा कि घरके बड़े लड़केका फूफा चदरा फेंककर उठ बैठा है। लालटेनकी धुँधली रोशनीमें फूफाका चेहरा देखकर नीलमणि सिहर उठा। एक लाश मानो जिन्दा होकर बैठ गई हो। सिरके बाल हालाँकि बिल्कुल मुँड़े हुए नहीं थे, लेकिन छोटे-छोटे कतरे हुए थे, आँखें मानों सिरके भीतर धँस गई थीं और बदनके ढीले चमड़ेके नीचे हड्डियाँ सिर ऊँचा किये हुए थीं। पसलीकी सब हड्डियाँ आँखें मूँदे गिनी जा सकती थीं। सीनेके बाएँ चमड़ेके नीचे ही दिल धुकपुका रहा था।

फूफा साँस लेनेमें हाँफ रहे थे। थोड़ी देर बाद बहुत धीमी आवाजमें उन्होंने कहा, "एक खिड़की खोल दीजिये।"

नीलमणिने डरते हुए कहा, "श्यामा, खिड़की तो खोल दे बिटिया।"

श्यामा और ज्यादा डरती हुई बोली, "आँधी चल रही है, बाबू!"

"चलने दे, खोल दे खिड़की।"

श्यामाने पच्छिमकी छोटी खिड़की खोल दी। आँधी पूरबकी ओरसे बह रही थी, बीच-बीचमें राहभूली हवा और बारिशके दो-चार छींटे आनेके अलावा खिड़की खोल देनेसे खास कोई खतरनाक नतीजा नहीं होनेवाला था। लेकिन भीरु निभाने मुन्नापर और एक पर्त्त कपड़ा लपेट दिया। फूफाने कहा, "नींदके दौरान गलतीसे चदरा ओढ़ लिया था, जरा और देरी करते कि दम घुट जाता! बाप रे।"

नीलमणिने पूछा, "क्या तबीयत कुछ खराब है?"

फूफाने भर्त्सना-भरी नजरोंसे देखकर कहा, "क्या मैं बहुत मोटा-तगड़ा लग रहा हूँ आपको? बीमारी न रहनेपर क्या किसी आदमीका चेहरा ऐसा होता है? चार सालसे लगातार भुगत रहा हूं जनाब! बिल्कुल मरा हुआ हूं। यमराज साला भी काना है, इतने लोगोंको बुलवा लेता है और मुझे नहीं देख पा रहा है! जो तकलीफ मुझे होती है, वह दुश्मनको भी···"

"बीमारी क्या है?"

फूफा बिगड़कर बोले, "मालूम नहीं पड़ती? इस तरहसे साँस ले रहा हूं—देख नहीं पाते? कैसे देख पायेंगे, आपका क्या है? जिसे होती है, वह समझता है।"

समझमें आया कि फूफाका मिजाज चिड़चिड़ा है।

नीलमणिने बहुत नर्मीसे तसल्ली देते हुए कहा, ठीक हो जायगी, ठीक हो जायगी, भलीभाँति इलाज करानेसे तबीयत ठीक हो जायगी।"

फूफाने कहा, "हाँ, ठीक होगी। आमकी लकड़ीके नीचे जानेपर ही ठीक होगी। और इलाज क्या कुछ बाकी रखा है मैंने जनाब? डाक्टर, वैद्य, झाड़-फूँक कुछ नहीं छोड़ा है। आज चार सालसे जमीनपर निकाली हुई मछलीकी तरह हिचकियाँ ले रहा हूं। कोई साला चंगा कर पाया मुझे?"

बातोंके बीच-बीचमें फूफा धौंकनीकी तरह साँस लेने लगे और बार-बार रुककर पानीसे जमीनपर निकाली हुई मछलीकी तरह आँखें ऊपरकी ओर उठाकर हिचकियाँ भी लेने लगे। नीलमणिके शरीरके रोयें खड़े हो गये। हवा! दुनियामें कितनी हवा है, फिर भी वह हवा इसका फेफड़ा नहीं भर पाती! अन्नपूर्णाके भण्डारमें वह भूखा था, पचास मील गहरे वायु-स्तरमें डूबे रहकर भी उसका दम घुटता रहता!

फूफाने कहा, "वे करते क्या हैं, जानते हैं? कहते हैं, 'डरते क्यों हो? ठीक हो जाओगे।' कहकर सभी रुपया लेते, इलाज करते और आखिरमें कह देते, 'नहीं भाई, तुम्हारी यह बीमारी ठीक नहीं होगी—यह सब बीमारी ठीक होती ही नहीं।' मैं कहता—'अबे चोर-छिछोड़ डाकुओंके गिरोह! अगर ठीक नहीं कर पाते हो तो मार डालो, मरने की दवा दो'।"

उत्तेजनासे फूफा जोर-जोरसे हाँफने लगे। नीलमणिने कुछ नहीं कहा, उसकी उनींदी लाल-लाल दोनों आँखें सिर्फ झपझपाने लगीं।

तेल कम हो जानेकी वजहसे लालटेनकी बत्ती दपदपा रही थी। बुझने ही वाली थी। मुन्नाको सीनेसे चिपटाकर हाथको तकिया बनाकर निभा बदबूदार बोरेपर करवट लिये लेट गई थी। श्यामा बैठी-बैठी ऊँघ रही थी।

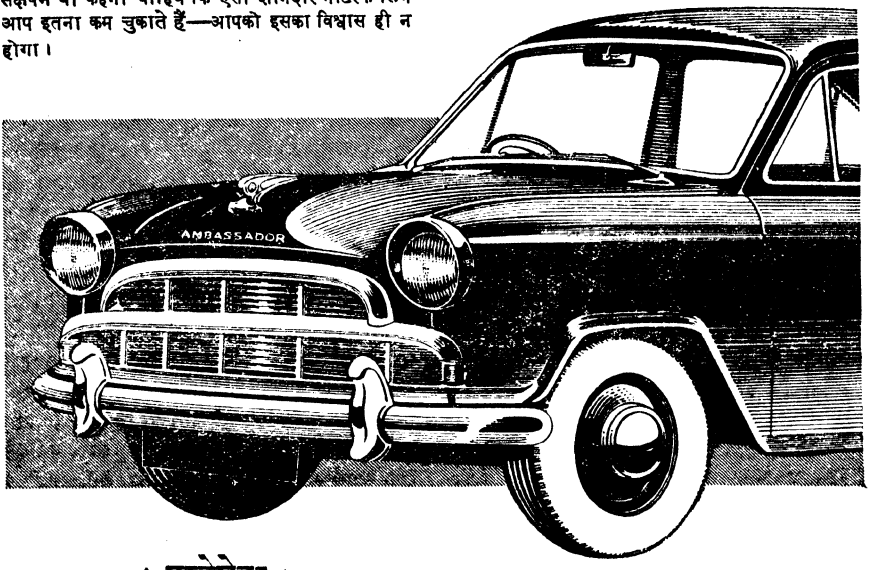
नीलमणिकी नारियली और चिलमको श्यामाने खिड़की के नीचे रख दिया था। रोशनी बुझनेसे पहले ही नीलमणिने बचा-खुचा तमाखू जला लिया। उसके बाद टेक लगाकर आरामसे फूफाके साँस लेनेकी तरह साँ-साँ शब्द करते हुए बगैर पानीको नारियलीसे तमाखू पीने लगा। ('आजकल'से)

आपको आशा से अधिक प्राप्ति—

कीमत आप छोटी गाड़ी की चुकाते हैं, किन्तु आपको मिलता है बड़ी गाड़ीका आराम और स्थान-प्राचुर्य।

आपको एक ऐसी गाड़ी प्राप्त होती है, जिसकी बनावट अति भव्य और मोहक है, इसपर सवारी करते समय आप गौरवका अनुभव करते हैं। पावर-युनिटकी बनावट किफायत और क्षमताका सुन्दर मिश्रण सम्भव बनाती है तथा मोटरको निरापद यात्राके लिये अन्यान्य अनेक विशेषताओंसे युक्त है।

संक्षेपमें यों कहना चाहिये कि ऐसी शानदार मोटरके लिये आप इतना कम चुकाते हैं—आपको इसका विश्वास ही न होगा।

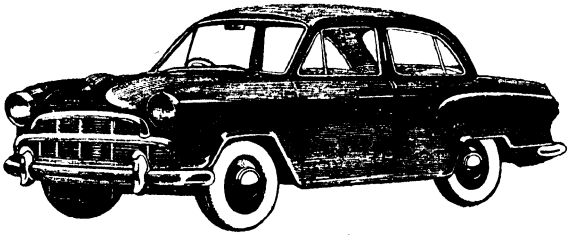


—: एम्बेसेडर :—

अपने प्रकार की एकमात्र कार है।

सुरक्षाकी विशेषताएँ—

* डीप-शंक-सेन्टर स्टियरिंग ह्वील
* फेसिया रेलपर रबर लगा हुआ
* सेफ्टी-लाक दरवाजे और चतुर्दिक सेफ्टी ग्लास।
* सड़क पर स्थिरता और विश्वासनीय ब्रेक।



हिन्दुस्तान मोटर्स लिमिटेड, कलकत्ता।

विक्रेतागण :—

इण्डिया आटोमोबाइल्स, १२, गवर्नमेण्ट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता (कलकत्ता और २४ परगनाके लिये)।
बालफोर्ड ट्रांसपोर्ट लि०, ७१, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता (पश्चिम बंगालके अन्य जिलोंके लिये)।

HM-7/58

मूंगफलीकी खेती

१. भूमि—मूंगफलीके लिए हल्की भूमि, जिसमें पानीका अच्छा निकास हो, चुनना चाहिए। मूंगफ़लीकी उन्नतिशील जाति नं० २५ ही बोई जानी चाहिए। बड़े बीजवाली अन्य देशी जातियाँ जो प्राप्त हों, बोई जा सकती हैं।

मूंगफली २० इंचसे कम वर्षावाले क्षेत्रोंमें भी सिंचाई करके पैदा की जा सकती है। यदि वर्षा पर्याप्त तथा समय पर हो, तो मूंगफलीको सिंचाईकी आवश्यकता नहीं होती, अन्यथा सिंचाई करनी पड़ती है। मूंगफलीकी अच्छी उपजके लिए पर्याप्त नमीकी आवश्यकता पड़ती है।

२. खाद—५ गाड़ी सड़ी गोबरकी खाद बोने के एक मास पहले देना चाहिए अथवा ३० सेर अमोनियम सल्फेट बोते समय तथा ३० सेर एक माह बाद फसलकी दशा देखकर देनी चाहिए।

३. खेतकी तैयारी—गर्मीमें एक जुताई मिट्टी पलटनेवाले हलसे करनी चाहिए। बोनेके पहले तीन चार जुताइयाँ देशी हलसे करके तथा पाटा लगाकर भूमिको भुरभुरी बना लेना चाहिए।

४. बुवाई—प्रायः जून-जुलाईके महीनेमें मूंगफली बोई जाती है। मूंगफलीका बीज हलके पीछे अथवा डिब्लिंग द्वारा ३ इंच गहराई पर बोना चाहिए।

५. बीज—बड़े दानेवाली मूंगफलीकी ६० पौंड गिरी प्रति एकड़ बोनी चाहिए। गिरी सावधानी से निकालनी चाहिए, जिससे गिरीको चोट न आवे तथा छिलका ठीक बना रहे। बीज १॥ फीट दूर लाइनोंमें ६ इंचकी दूरी पर बोना चाहिए।

६. निराई-गुड़ाई—फसलकी हर पन्द्रहवें दिन फल आने तक निकाई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।

७. खोदाई—कड़ी भूमिमें मूंगफलीको फावड़े से खोद लेते हैं, परन्तु हल्की भूमिमें हल या कल्टीवेटर चलाकर मूंगफली इकट्ठी कर लेते हैं।

८. कीड़ोंसे बचाव—दीमक कभी-कभी बड़ी हानि करती है। ५ प्रतिशत बी० एच० सी० (गैमेक्सीन) बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है।

९. फसल चक्र—मूंगफलीको अरहर, बाजरा, ज्वार, तिल तथा अंडीके साथ बोया जा सकता है। निम्नांकित शस्य चक्र अधिक प्रचलित हैं :—

१. मूंगफली-अरहर (६ फीट दूर)-राई टाइप ११ अरहरकी लाइनोंके बीच।
२. मूंगफली-अरहर-गन्ना-गन्ना पेड़ी-मटर टा० १६३ या चना (जायद सांवां) हरी खाद-गेहूं।
३. मूंगफली-बाजरा (३ फीट दूर लाइनोंमें)।
४. मूँगफली-ज्वार (३ फीट दूर लाइनोंमें)।
५. मूंगफली-तिल (३ फीट दूर लाइनों में)—मटर टा० १६३।

मूंगफलीके साथ बोई जानेवाली फसलें स्थान विशेषके अनुसार चुनी जा सकती हैं।

(कृषि-समाचार, उत्तर-प्रदेश)

—*—

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

राजपाल एण्ड सन्ज़ (दिल्ली) की पुस्तकें

'आजका भारतीय साहित्य' (जेकिट-युक्त जिल्द के साथ), [इसी नामकी अंग्रेजी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद], लेखक—विभिन्न भाषाओंके विभिन्न, सरकारी कृपापात्र, विद्वान, (साहित्य अकाडमीकी ओरसे प्रकाशकने छापी है), मूल्य—सात रुपये।

यह पुस्तक भारतकी विभिन्न सोलह भाषाओंके साहित्योंसे पाठकोंको परिचित करानेका दम भरती है! वास्तवमें इस पुस्तकमें विशिष्ट लेखकोंके व्यक्तिगत विचारोंका संग्रह मात्र है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत जैसे देशमें (जिसके अधिकांश अफसर तथा साहित्यिक बेईमान हैं) सरकारी छत्रछायामें साहित्यिक प्रयत्न नहीं किये जा सकते। कारण स्पष्ट है। कुनबा-परस्तीका बोलबाला होनेके कारण अपने-अपने वर्ग, दल, वाद आदिका ध्यान रखकर ही काम सौंपे जाते हैं और फिर 'जैसी तेरी कौमरी वैसेई मेरे गीत' के आधारपर कार्य पूरे किये जाते हैं। 'कंटेम्परेरी इण्डियन लिटरेचर' के प्रकाशनसे जो बदबू फैली थी, उसके ऊपर इत्र छिड़कनेका प्रयत्न उसके इस हिन्दी अनुवादमें किया गया है। इस पुस्तकमें हिन्दी-विषयक निबन्ध तो सच्चिदानन्द ही० वात्स्यायनका लिखा हुआ है तथा अन्य भाषाओंके विषयमें लिखे गये विभिन्न लेखकोंके लेखोंका, लचर-सा, अनुवाद प्रभाकर माचवेने किया है। यह तो अब सर्वविदित हो है कि स० ही० वात्स्यायनने 'अज्ञेय' की अनावश्यक प्रशंसा मूल पुस्तकमें की थी और यह भी बतानेका कष्ट नहीं किया था कि वात्स्यायन और अज्ञेयमें क्या रिश्ता है? इस हिन्दी-रूपान्तरमें फुटनोट देकर परिस्थितिको स्पष्ट करने का ढिलमिल प्रयत्न है। हमारे विचारमें तो अज्ञेयका यह लेख निकाल देना चाहिए था तथा किसी अन्य विद्वानसे (जो वास्तवमें विद्वान हो) हिन्दीका परिचय लिखवाना चाहिए था। किन्तु सरकारको हेठी कैसे की जा सकती!

इस संशोधित-परिवर्धित संस्करण (हिन्दी) में सिन्धी भाषापर एक निबन्ध (बड़ी चिल्ल-पोंके बाद) जोड़ दिया गया है। अंग्रेजीके संस्करणमें यह नहीं था।

साहित्य अकाडमीके मन्त्री महाराजने 'दो शब्द' में कहा है कि अकाडमी केवल लेखकोंके चुनावके उत्तरदायित्व को ही स्वीकार करती है, उनके विचार तथा मतकी जिम्मेदारी उसकी नहीं है! क्या खूब! जनताके खून-पसीनेके पैसेको किन्हीं दूषित मनोवृत्तिवालोंके आत्म-प्रचारका साधन बना देनेकी जिम्मेदारी किसकी है?

इस पुस्तकमें पंजाबी, मराठी, गुजराती तथा बँगला भाषाओंके साहित्योंका परिचय परम सुन्दर है। दक्षिणकी भाषाओंके विषयमें कोई भी निर्णय देनेमें हम अपनेको योग्य नहीं पाते। साहित्य अकाडमीका यह डकोसला, जनताके पैसेका अपव्यय है। प्रत्येक भाषाके प्रचलित प्रसिद्ध साहित्य-इतिहासोंमेंसे, कोई भी क्लर्क, इससे अच्छी तथा न्यायपूर्ण सामग्री उपस्थित कर सकता था। हिन्दी-विषयक निबन्ध एकदम एकांगी है।

प्रकाशकने छपाई, गेट-अप आदिका बहुत ध्यान रखा है। इस दृष्टिसे यह पुस्तक किसी भी विदेशी प्रकाशनसे टक्कर ले सकती है। छपाईकी अशुद्धियाँ लगभग नहींके बराबर हैं। मूल्य भी उचित है। प्रकाशकको बधाई है तथा अकाडमी पर हमें आक्रोश है—सर्वसाधारणको भी है ही।

आजके उर्दू शायर (जीवनी और संकलन)—(१) ग़ालिब, (२) इक़बाल, (३) जोश मलीहाबादी, (४) फैज अहमद 'फैज', (५) मजाज़, (६) साहिर लुधियानवी तथा (७) सरदार जाफरी। सम्पादक—प्रकाश पण्डित; मूल्य प्रत्येकका डेढ़ रुपया।

इन सस्ती, सुन्दर सात पुस्तकोंमें उर्दूके शायरोंकी शायरी तथा उनका जीवनवृत्त संकलित है। इस पुस्तकमाला का नाम जरा उलझनमें डाल देनेवाला है। ग़ालिब और इक़बालको 'आजका' मान लिया गया है! यदि उनकी प्रगतिशील मान्यताओंको लेकर ऐसा किया गया है, तो इस प्रकारके अन्य अनेक शायर और भी रह जाते हैं, जिनका नाम बहुतोंसे (सरदार जाफरी जैसी निकृष्ट कोटि की कविता करनेवालोंसे तो अवश्य ही) पहले आ जाना चाहिये था।

एक बात और भी है। मूल्यकी समानता रखनेके कारण प्रत्येक पुस्तकमें पृष्ठोंकी भी समानता है, इससे बड़े और अधिक लिखनेवाले शायरोंके प्रति (या कहिये पाठकों के प्रति) अन्याय हो जाता है। प्रथम तीन (या कहिये चार) दिग्गजोंके साथ सरदार जाफरी तथा साहिर जैसे (वाद-ग्रस्त) टटपूँजियोंको नत्थी करके उन्हें सम्मान देनेका प्रयत्न, सम्पादककी दोस्ती निबाहनेकी प्रवृत्तिका परिचायक-सा लगता है। इस दोस्तीका कारण 'हम-वाद' होना भी हो

सकता है। जो भी हो, हिन्दीवालोंको उर्दू कविता तथा उसके कवियोंसे परिचित करानेका यह प्रयत्न परम स्तुत्य है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। संकलन बहुत सुन्दर हैं तथा छपाई आदि उत्कृष्ट है। पण्डित महाशयने सजीव गद्यमें कवियोंका जीवनवृत्त उपस्थित किया है। उर्दू शायरी की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें कि हिन्दीवालोंको अपना लेना चाहिए। मुख्य बात यह है कि उर्दूका शायर चाहे जिस वाद अथवा दलका हो, साहित्यिक ईमानदारी उसमें हिन्दीके वाद-ग्रस्त कवियोंसे अधिक होती है। सरदार जाफरी तककी कवितामें कविताके स्वरूप ('फॉर्म') की रक्षाका प्रयत्न परिलक्षित होता है।

ग़ालिब—ये मसायले-तसव्वुफ, ये तेरा बयान ग़ालिब।
तुझे हम वली समझते जो न बादहख्वार होता॥

मिर्जा ग़ालिबके इस परिचयके साथ सम्पादकजीने मिर्जा को जो "अदबी वली" कहा है, वह ठीक ही है। प्रकाश पण्डितके लिखे जीवनवृत्त इसी प्रकारकी सुन्दर अभिव्यक्तियों और उक्तियोंसे पूर्ण हैं। मिर्जा ग़ालिबकी जीवनीसे परिचित सभी लोग जानते हैं कि मिर्जा ग़ालिबने १८५७ के गदरमें किस प्रकार अंग्रेजोंका साथ देनेका दावा करके पेन्शन प्राप्त करनेका प्रयत्न किया था। प्रकाश पण्डितने इस तथ्यको मुलायम बनाकर मिर्जाके चरित्रके सच्चे स्वरूप को छिपानेका प्रयत्न किया है। ग़ालिब वास्तवमें शायर थे और केवल शायर, देश-प्रेम आदि की भावनाओंको उनके मनमें विशेष स्थान नहीं था। कविके पूर्ण परिचयके लिये आवश्यक होता है कि उसके जीवन-सम्बन्धी सम्पूर्ण तथ्य पाठकोंके सामने उपस्थित कर दिये जायँ। हम सम्पादकजी की इस बातसे सहमत हैं कि उर्दू-साहित्यमें ही नहीं, मिर्जा ग़ालिबका स्थान संसार-साहित्यमें भी (एक अपना विशिष्ट) है। ग़ालिबके दीवानमें से जो स्वतन्त्र संकलन उनकी शायरीका, इस छोटी-सी पुस्तकमें उपस्थित किया गया है, वह उत्कृष्ट है तथा मिर्जाकी कविताका प्रतिनिधित्व करता है।

१. हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
२. इब्ने मरियम हुआ करे कोई, मेरे दुखकी दवा करे कोई।
३. दिले नादां तुझे हुआ क्या है,
आखिर उस दर्दकी दवा क्या है?

उपर्युक्त प्रसिद्ध उक्तियोंके अतिरिक्त अनेक सुन्दर कविताएँ इस सुरुचिपूर्ण संकलनमें रखी गई हैं।

इक़बाल—हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

'उर्दू और फारसीकी शायरीके चमनके दीदावर' इक़बालके जीवनको सम्पादकने बड़ा सँजो कर रखा है। उनकी आरम्भिक रचना 'मोती समझके शाने-करीमीने चुन लिये, कतरे जो थे मेरे अर्क इन्फआलके' का प्रयोग कविके मनस्तत्वका विश्लेषण करनेके लिए बड़े कौशलसे किया गया है। इक़बाल अपने चुभते व्यंग तथा अपनी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि के लिए उर्दू ही नहीं, हिन्दीके पाठकोंमें भी प्रसिद्ध हैं। वैसे उनका 'सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' भी प्रसिद्ध है। इस तरानेको 'लीग' वालोंने 'उनारा तेरे कनोर जब कारवां हमारा' के कारण मुस्लिम विजयका प्रतीक मान लिया था और इस तरानेको पाकिस्तान-प्राप्तिका साधन बनानेका प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि अपने अन्तिम दिनोंमें इक़बाल भी मुस्लिम 'लीगी' भावनाका समर्थन करने लगे थे। सम्पादकजीने उसका कहीं जिक्र नहीं किया है। खैर!

नशा पिलाके गिराना तो सबको आता है,
मज़ा तो जब है कि गिरतोंको थाम ले साक़ी।
× × ×
कटी है रात तो हंगामा-गुस्तरीमें तेरी।
सहर करीब है अल्लाहका नाम ले साक़ी॥

इन भावपूर्ण शृंगारी (उर्दूके प्रतीकोंसे बँधे तो हैं ही) चित्रोंके अतिरिक्त इक़बालके निम्न चुटीले व्यंग भी इस संकलनमें पाये जाते हैं :—

रात मच्छरने कह दिया मुझसे
माज़रा अपनी नातमानी का,
मुझको देते हैं इक बूँद लहू,
सिला शबभरकी तिश्ना कामीका,
और यह बिस्वादार बेज़हमत,
पी गया सब लहू आसामीका।
× × ×

विचारककी दृष्टिसे इक़बालमें (अन्तिम कुछ वर्षोंको छोड़ कर) क्रान्तिकारी भावनायें पाई जाती थीं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

संकलन परम सुन्दर है।

जोश—प्रकाश पंडितने जितने जीवनवृत्त इस पुस्तकमालामें लिखे हैं, उनमें से सर्वश्रेष्ठ है जोश साहबका।

समकालीन होना तथा निकटका परिचय होना इसके कारण प्रतीत होते हैं। जो भी हो, जोशके रोबीले व्यक्तित्वका बड़ा रोचक वर्णन (भावपूर्ण गद्यमें) इसमें किया गया है। जोश 'शायरे इन्कलाब थे', यह भी ठीक है, जोश नफासत पसंद थे, यह भी ठीक है और जोश आखिरकार मुसलमान थे और पाकिस्तान चले गये, यह भी ठीक ही है। जब तक पाकिस्तानी भेड़ियोंके प्रभावमें आकर वे धर्मगत कट्टताका खुला समर्थन नहीं करते, तब तक वे जोश ही रहेंगे—चाहे पाकिस्तानमें रहें, चाहे हिन्दुस्तानमें। सम्पादकजीने इस संकलनमें जोशके सुगम कलामको ही रखा है, यह भी अच्छा ही है।

'दुपट्टेको मसले बदनको चुराये' नामक कविता बड़ी भावपूर्ण है; कुछ कविताएँ 'दर्देदिल' से ओतप्रोत हैं—

खुद दर्द बन चुका है मुदावा-ए-जिन्दगी,
अब दर्दे जिन्दगीका मुदावा हुआ तो क्या?
आँखोंको जोश बन्द हुए देर हो गई,
अब बेनकाब, आरिज़े सलमा हुआ तो क्या?

निम्न उक्तियोंमें मार्मिक व्यंग दर्शनीय है—

जन्नतके मज़ों पे जान देनेवालो, गन्दे पानीमें नाव खेनेवालो,
हर खैर पे चाहते हो सत्तर हूरें, ऐ अपने खुदासे सूद लेनेवालो!

× × ×

करनों अभी टूटेंगे हजारों तारे, सरसे अभी गुजरेंगे हजारों प्यारे,
इन्सान बननेमें अभी है वक्त बहुत, अब तक तो फकत दुम झड़ी है प्यारे।

फैज

पाकिस्तानी-कम्यूनिस्ट फैज अहमद 'फैज' अपनी भावुकता तथा सारल्यके लिए आधुनिक उर्दू-कवितामें प्रसिद्ध हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि फैज साहबकी कवितापर उनकी साम्यवादी विचार-धाराका, अन्य कथित प्रगतिवादियोंकी अपेक्षा, कम बन्धन है।

फैजने अपने विचारोंके लिए, ईमानदारीसे, काफी कष्ट सहा भी है। उन्होंने 'रावलपिण्डी केस' के सम्बन्धमें पाकिस्तानी जेलोंमें कष्ट भी सहे हैं।

सम्पादकका यह निष्कर्ष उचित ही है—"'फैज'ने कैस तथा मन्सूर (सूफी) परम्पराओंका समन्वय अपनी कवितामें किया है।" यह संकलन 'फैज'की तीनों पुस्तकोंमें से किया गया है। 'फैज'की भाषा कहीं-कहीं तो अत्यन्त क्लिष्ट है और कहीं-कहीं 'राम-कहानी', 'बन्धन', 'पाप' (पृ० २७) जैसे सामान्य हिन्दीके शब्दोंका प्रयोग उनमें पाया जाता है।

मचलती हैं सीनेमें लाख आरजूएँ,
तड़पती हैं आँखोंमें लाख इल्तजाएँ।
तग़ाफुलके आग़ोशमें सो रहे हैं,
तुम्हारे सितम और मेरी वफाएँ॥
मगर फिर भी ऐ मेरे मासूम कातिल,
तुम्हें प्यार करती हैं मेरी दुआएँ॥

उर्दूके बद्ध-प्रतीकोंकी परम्पराका पालन दर्शनीय है। बाह्य बन्धनोंसे बँध जानेपर भी कवि स्वतन्त्र है, इस भावकी अभिव्यक्ति (जेलखानेमें) कविने बखूबी की है—

मताअ़-ए-लौहो-कलम छिन गई तो क्या ग़म है
कि खूने दिलमें डुबो ली हैं उँगलियाँ मैंने।
जुबाँ पे मोहर लगी है तो क्या, कि रख दी है
हरएक हल्का-ए-ज़ंजीर में जुबाँ मैंने॥

मजाज़

निराश शराबी तथा परम भावुक कवि मजाज़का जीवन बड़ा ही कारुणिक है। आधुनिक मनोविज्ञानके अनुसार 'अतृप्त वासना' तथा घुटनपूर्ण निराशा (फ्रस्ट्रेशन)का घुला देनेवाला प्रभाव मजाज़के जीवनपर पूरा-पूरा दिखाई देता है। जीवनारम्भमें 'नाज़नीनों' का हीरो मजाज़ जीवनान्त के समय किस दर्दनाक अवस्थाको प्राप्त हो गया था—यह सब कथा अपनेमें एक कविता है। पण्डित महाशयने उसे खूब चित्रित किया है।

आज भी मजाज़ अपनी 'आवारा' नामक कविताके लिए प्रसिद्ध हैं—

रातके हाथोंमें दिनकी मोहिनी तस्वीर-सी,
मेरे सीने पे मगर दहकी हुई शमसीर-सी,
ए ग़मे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ?

× × ×

फिर किसी शहनाज़े-लाला-रुखके काशानेमें चल।
ये नहीं मुमकिन तो फिर ए दोस्त वीरानेमें चल।
ए० ग़मे…

× × ×

रास्तेमें रुकके दम ले लूँ मेरी आदत नहीं,
लौटकर वापस चला जाऊँ मेरी फितरत नहीं,
और कोई हमनवाँ मिल जाये, ये किसमत नहीं।
ए ग़मे…

× × ×

इक महलकी आड़से निकला वो पीला माहताब,
जैसे मुल्लाका अमामा, जैसे बनियेकी किताब,
जैसे मुफलिसकी जवानी, जैसे बेवाका शबाब।
ए गमे···

मजाज़का यह संग्रह उसके दिलकी तस्वीर है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मजाज़ उत्कृष्ट कोटिका कवि था, जो शायरीके चमनके उन गुंचोंमें से था, जो कि बेखिले ही मुरझा जाते हैं, फिर भी माहोलको खुशबूसे सराबोर कर जाते हैं।

साहिर लुधियानवी

अत्यधिक अहं (ईगो) से युक्त, सस्ती (आजकल फिल्मोंकी) कविता करनेवाले साहिरको अपनी 'ताजमहल' नामक साम्यवादी (कथित प्रगतिशील) कवितासे प्रसिद्धि मिली थी। ताजमहलको 'सामन्तयुगीन' संस्कृतिका प्रतीक मानकर 'कामरेडों' में उसके प्रति एक विशेष 'गुबरीला दृष्टि-कोण' प्रचलित हो गया था। प्रत्येक कवि (उर्दूका हो चाहे हिन्दीका) अपनी कवितापर पार्टीकी मुहर लगवानेके लिए ताजमहलकी छीछालेदर किया करता था। देखिये—

ये मुनक्कश दरो-दीवार, ये महराबे ये ताक,
इक शहनशाहने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबोंकी मुहब्बतका उड़ाया है मजाक।

वैसे अब तो साहिर 'टूटे दिलके तराने' गाते हैं और फिल्मोंसे पैसा पैदा करते हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ द्वितीय कोटिकी हैं। कुछेक ही सुन्दर उक्तियाँ मिलती हैं।

सरदार जाफरी

कम्यूनिस्ट पार्टीके प्लेटफार्मसे लाल फौजके अनेक चारणोंने भाटवृत्ति अपनाकर अपनेको कवि बना लिया था। यह बात उस समयकी है, जब कि कामरेड 'लोकयुद्धका विरोध' करनेके कारण नेताजीको 'टोजो' का कुत्ता' कहा करते थे। 'पार्टी' के अनेक भाटोंमें से एक सरदार साहब भी हैं, जो नामके ही कवि हैं। प्रकाश पण्डितने स्वयं माना है (पृ० १७) कि 'इनका स्वर काव्यात्मक कम और भावणात्मक अधिक है।'

तू मेरी पार्टी, मेरी माँका वतन
लाल झंडेकी वो पहली अँगड़ाई है
× × ×
तुझ को लेनिनने आवाज़ दी
मास्कोने पुकारा·····

इनकी अधिकांश कविता ऐसी ही है, वाद-युक्त तथा खूँटेसे बँधी हुई, जिसमें बेमौके दुलत्तियाँ भी हैं। कहीं-कहीं इस प्रकारकी उक्तियाँ पाई जाती हैं—

मोहब्बत इक तड़प है आरजू इक कैफियत दिलकी,
तेरी आँखोंमें आकर जाविदाँ मालूम होती है!

इस रही शायरकी कृड़ाखानेकी कविता इस पुस्तकमाला के अनुरूप नहीं है।

इस पुस्तकमालाके द्वारा हिन्दीके पाठकको उर्दू कविता का परिचय मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं है। संकलनोंकी यह विशेषता है कि उनमें कवियोंके मनस्तत्वका क्रमिक निदर्शन है। यह सम्पादकका सम्पादन-कौशल है।

छपाई, गेट-अप परम सुन्दर है। मार्केकी बात यह है कि उर्दूके क्लिष्ट शब्दों (जिनका अर्थ फुटनोटोंमें दिया गया है) में भी छापेकी अशुद्धियाँ नहीं पाई जातीं। मूल्य भी कम ही है। —रमेशकुमार शर्मा

भगवान मनु तथा अन्य एकांकी—लेखक, लक्ष्मी-नारायण मिश्र, प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स; प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६; पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य दो रुपये।

लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दीके प्रथम पंक्तिके नाटककारोंमें से हैं। हिन्दी नाट्य-साहित्यके विकास और उसे प्रौढ़ता देनेमें उनका विशेष महत्त्व है। 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी' में लेखकके पाँच एकांकी संग्रहीत हैं। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृतिको पाँच उज्ज्वल रत्नों—मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य और शंकरके जीवनकी घटनाओं को अपने इन एकांकियोंका आधार बनाया है।

'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी' कहाँ तक एकांकी हैं, यह विचारणीय है। केवल 'एक अंक' की संज्ञा देनेसे ही यदि एकांकी होता है, तो ये अवश्य एकांकी हैं।

जहाँ तक इन एकांकियोंकी अभिनेयताका प्रश्न है, उनके लिए यह निश्चित कहा जा सकता है कि उनका अभिनय रंगमंचपर असम्भव है, हाँ, रेडियो और सिनेमाकी बात दूसरी है। ये एकांकी ध्वनि-प्रधान हैं, जो कि रेडियोके लिए अधिक उपयोगी हैं। कथा-तत्त्वकी शिथिल प्रगति तथा किंचित क्लिष्ट भाषा इन एकांकियोंकी रोचकताके मार्गकी बाधाएँ हैं। वैसे ये दोष मिश्रजीके 'वत्सराज', 'गरुड़ध्वज', 'सिन्दूर की होली', 'चक्रव्यूह' आदि सब नाटकोंमें पाये जाते हैं। छपाई, जिल्द तथा गेट-अप सुन्दर है। —राजेन्द्र कुशवाहा

बरफके देशमें (सजिल्द)—मूल-लेखक, निखोन सियोमुदिकन ; अनुवादक, राजकुमार मेहरा; प्रकाशक, श्री अखिलचन्द्र नन्दो, पापुलर लाइब्रेरी ; १९५।१-बी, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता-६ ; मूल्य दो रुपये (थोड़े-से सादे चित्रोंके साथ)।

हिन्दीमें साहसिक साहित्यका अभाव है, विशेषकर बच्चों के लिए सुन्दर प्रेरणादायक मौलिक साहित्य तो हिन्दीमें बहुत ही कम है। हाँ, अन्य विदेशी भाषाओंसे अनुवाद आजकल किये जा रहे हैं। यह पुस्तक भी रूसी भाषासे अनूदित है। एक बालक एक तैरती बर्फकी चट्टानपर अकेला फँस जाता है और कैसी वीरताका प्रदर्शन करता है, यह कथा इस पुस्तकमें वर्णित है। छः महीने दिन और छः महीने रातवाले ध्रुव-प्रदेशकी यह कथा और भी रोमांचकारी तथा रोचक हो जाती, यदि अनुवाद जरा और अच्छा हुआ होता। 'सोवियट लिटरेचर (अगस्त १९५६) से ली गई यह कथा बालकोंमें आत्म-विश्वासकी भावना भरनेके उद्देश्यसे उनके लिए पठनीय है ; फिर भी वाक्य-गठन तथा भाषा-प्रवाहकी दृष्टिसे अनुवाद लचर हो जानेके कारण इसका प्रभाव कुछ कम हो गया प्रतीत होता है। 'ग्रेनाइट' आदि शब्दोंका अर्थ नहीं दिया है, यह भी बुरा है। 'कानें' के स्थानपर 'कानां' (पृ० ५) का प्रयोग, अनुवादकके भाषा-परिचयके विषयमें सन्देह उत्पन्न कर देता है। सोवियट-साहित्यमें साम्यवादी प्रचारकी प्रमुखता रहती है। इस पुस्तकमें कुछेक संकेतों (पृ० ९५ तथा १०२) को छोड़कर वाद-प्रचारका विशेष प्रयत्न नहीं है, यह हर्षका विषय है। पुस्तक प्रत्येक बालकको पढ़नी चाहिए। मूल्य एक या सवा रुपया ही होना चाहिए था।

'योजनासे खुशहाली' (सुन्दर सादे चित्रोंके साथ)—प्रकाशक, पब्लिकेशन्स डिवीज़न, सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय, भारत-सरकार, नई दिल्ली : मूल्य ७५ न० पैसे।

माध्यमिक कक्षाओंमें पढ़ाये जाने तथा प्रौढ़ शिक्षाके पाठ्यक्रममें निर्धारित किये जाने योग्य यह सुन्दर, सस्ती, खूब चित्रित पुस्तक सरल पाठोंके द्वारा देशकी योजनाका परम सुन्दर विश्लेषणात्मक परिचय करानेवाली है। छोटी-छोटी कहानियोंका (पौराणिक पद्धतिपर) तथ्यको हृदयंगम करानेके लिए बड़ा मनोहर प्रयोग है। भाषा सरल है, कहीं-कहीं अनावश्यक रूपसे उर्दूके शब्दों (पृ० ७३—'तबदीली') की घुसेड़ है। छपाई, सफाई, चित्र तथा गेट-अप मूल्यको देखते हुए एकदम उत्कृष्ट कोटिके हैं। नक्शे तथा मानचित्र भी सरल और सुबोध हैं। यह पुस्तक प्रत्येक जागरूक भारतीयके पढ़ने योग्य है। सबसे बड़ी विशेषता है इस पुस्तककी मनोरम वर्णनात्मक शैली। सूचना मन्त्रालय को बधाई है।

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादके भाषण (१९५२-५६)—प्रकाशक, पब्लिकेशन्स डिवीज़न, सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय, भारत-सरकार, नई दिल्ली ; मूल्य ३·५० (उत्कृष्ट आर्ट पेपरके चित्रों सहित)।

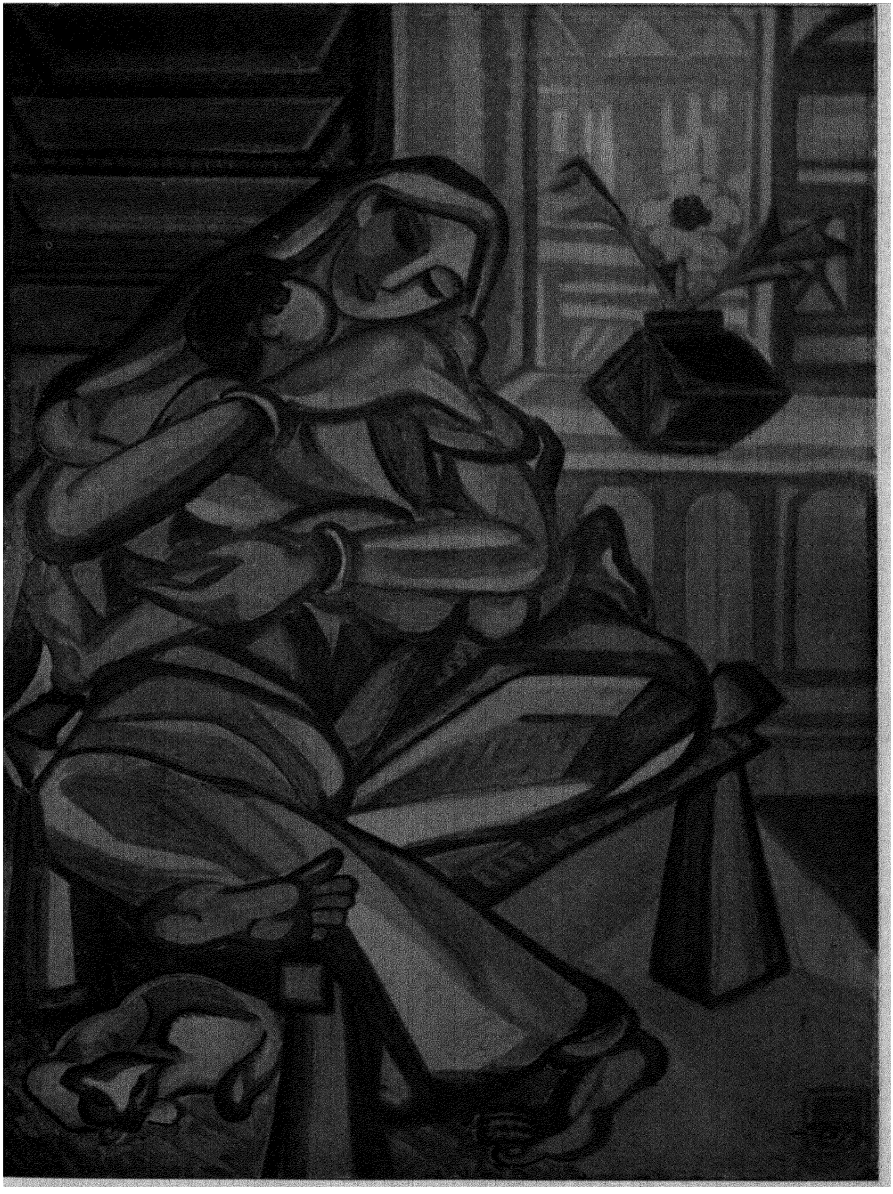
हमारे राष्ट्रपति सुन्दर तथा प्रांजल हिन्दी लिखते और बोलते हैं। विदेशोंमें (हमारे यहां भी) 'घोस्ट राइटर्स' की परिपाटी है। राष्ट्रपतियोंके भाषणोंको ये लोग ही लिखते हैं। हमारे राष्ट्रपति साहित्य-सृजनमें भी पटु हैं और उनका व्यक्तित्व उनके इन भाषणोंमें परिलक्षित होता है ; उन्हें 'घोस्ट राइटर्स'की आवश्यकता क्यों पड़ने लगी !

विभिन्न वर्षोंके 'राष्ट्रके नाम सन्देश' बड़े ही गवेषणापूर्ण हैं। इन भाषणोंमें राष्ट्रकी प्रगति, उसकी समस्याओं तथा उनके हलोंका इतिहास हमें मिलता है। यही नहीं, 'शिक्षा तथा संस्कृति' शीर्षकमें रखे गये अनेक भाषण अपना साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व भी रखते हैं। 'संगीतके बिना शिक्षा अपूर्ण' एक सुन्दर निबन्ध-सा लगता है, जो पाठ्यक्रमोंमें रखने योग्य है। 'रहीम' विषयक भाषण राष्ट्रपतिको साहित्यिक अन्तर्दृष्टिका प्रमाण है। 'भारतरत्न जवाहरलाल नेहरू' नामक भाषण भावुकतासे ओतप्रोत है।

इस पुस्तककी विशेषता है—इसके परम सुन्दर चित्र। नेहरूजीको 'भारतरत्न' पदक प्रदान किये जानेके अवसरका चित्र बड़ा ही भावपूर्ण है। अनेक 'फोटुओं' से युक्त यह संग्रह राष्ट्रकी इन चार वर्षोंकी गति-विधिका इतिहास-सा प्रतीत होता है।

छपाई, गेट-अप उत्कृष्ट कोटिका है। मूल्य भी उचित ही है।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अयोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] **माँ बच्चा** [श्री प्रभात नियोगी



भाग ६२, अंक २] कलकत्ता, अगस्त १९५८ [पूर्णांक ३६८

सम्पादकीय विचार

मँहगाई और आतंक

इन पंक्तियोंके लिखते समय (१३-७-५८) देशमें मँहगाईका दौरात्म भयंकर रूपसे फैला हुआ है। मँहगाई तथा अन्य कारणोंसे देशमें एक आतंककी लहर उठ रही है। गेहूं का भाव चौबीस रुपये मनसे छब्बीस रुपये मन तक है और चावलका भाव पैंतीससे बयालीस रुपये मन तक चढ़ गया है। केन्द्रीय सरकारके खाद्यान्न मन्त्री श्री अजितप्रसाद जैन ने कहा था कि चिन्ताकी कोई बात नहीं है और खाद्यान्नकी कमी भी नहीं है। पर दुःखकी बात है कि उनके आश्वासनके बाद भी गल्लेकी मँहगाईकी राक्षसी मुँह बाये खड़ी है। सरकारकी ओरसे सस्ते गल्लेकी दुकानें भी खुली हैं, पर इन दुकानोंसे खाद्यान्नकी समस्या हल न होगी। खाद्यान्नकी कमीके ऊपर हम प्रायः लिखा करते हैं, अतः उन्हीं बातोंको बार-बार नहीं लिखना चाहते। पर पिछले १५-२० दिनों में जो मँहगाई हुई है, उसका एक विशेष कारण यह है कि खरीफकी फसलकी स्थिति काफी खराब हो गई है। आधी जुलाई हो गई और अभी अनेक स्थानोंपर हल चलने योग्य बारिश नहीं हुई। कहीं-कहीं इतनी अधिक हो गई है कि बुवाई रुकी पड़ी है। अनावृष्टि और अतिवृष्टिके कारण आतंक छा गया है कि इस वर्षकी भी फसल गई। वर्ष शब्द वर्षासे ही है। यदि वर्षा ठीक हो गई, तो एक वर्ष पूरा हो गया। ठीक बारिश न होनेसे खरीफ ही नहीं, रबीकी फसल भी मारी ही जाती है। किसानको भय है कि उसकी दोनों फसलें मारी जायँगी। ऐसी दशामें श्री अजितप्रसाद जैनके भाषणसे किसानको सन्तोष नहीं हो सकता। आस्ट्रेलिया और अमेरिकासे गेहूं मँगानेसे समस्या हल नहीं हो सकती। वर्त्तमान संकट उससे दूर किया जा सकता है। जब तक हम घोर परिश्रम और दूनी पैदावार नहीं करेंगे, तब तक हमेशा कालके गालमें ही दिखाई पड़ेंगे। हमें सरकारसे यही कहना है कि खेती-बारीकी ओर सरकार का पूरा ध्यान नहीं है। हमारा दावा है कि खाद्यान्नकी समस्या हल न होनेसे न तो पंचवर्षीय योजना ही सफल होगी और न वर्त्तमान शासनसूत्र ही चल सकेगा।

राजनैतिक कार्यकर्त्ता और खाद्यान्नकी समस्या

यदि अपने देशके राजनैतिक कार्यकर्त्ताओंकी कार्य-प्रणाली को देखा जाय और उनके कार्योंका अध्ययन किया जाय, तो इस नतीजेपर आना पड़ता है कि हमारे कार्यकर्त्ता एम० एल० ए० और एम० पी० होते ही देहातको छोड़ देते हैं। शहरका रहना बड़ा गौरवपूर्ण माना जाता है। देशके अस्सी प्रतिशत लोगोंकी गुजर-बसर खेतीपर आधारित है और राज्योंकी विधान-सभाओं और लोक-सभा तथा राज-सभाओं में किसानोंके प्रतिनिधि अधिकांश ऐसे बाबू लोग हैं, जिनका कृषि-सम्बन्धी ज्ञान शून्यके समान है। उनमें किसान तो एक-आध फीसदी ही हैं। मजदूर-आन्दोलन और किसान-आन्दोलनका एक बड़ा अभिशाप यह है कि उनका नेतृत्व गैर-मजदूर और गैर-किसान करते हैं। फलस्वरूप किसानों के लिए जो कानून बनते हैं, उनमेंसे कई उनके हितमें नहीं पड़ते। अभी पिछले दिनों आगरे जिलेकी जिला परिषदमें

खाद्य-समस्याकी चर्चा करते हुए एक एम० एल० सी० साहब ने हमसे पूछा कि समस्याका हल क्या है ? हमने उत्तर दिया कि गाँवमें जाकर रहिये और खेती करिये। खेती करना आज अच्छा काम नहीं समझा जाता। उसका एक कारण यह है कि खेतीमें हरामखोरी नहीं चल सकती। देहातसे तनिक पढ़कर लोग शहरोंको बढ़ रहे हैं। वर्तमान स्थितिमें शहर हमारी आर्थिक व्यवस्थाके लिए कैंसरके समान है। कैंसर रोगमें जो भोजन किया जाता है, उसका रस और तत्व शरीरके अन्य अवयवोंको न मिलकर कैंसरको मिलता है। कैंसर बढ़ता है, शरीर क्षीण होता जाता है और अन्तमें अत्यन्त दुर्बलतासे रोगी मर जाता है। प्रारम्भिक अवस्थामें चीर-फाड़, दवा-दारूसे मुक्ति मिल जाती है। अभी हमारा शहररूपी कैंसर असाध्य सीमापर नहीं पहुंचा है और उसकी चीर-फाड़ तथा दवा-दारू यह है कि लोग गाँवकी ओर बढ़ें, कठोर परिश्रम करें। हम शहरोंको बड़े उद्योगोंका केन्द्र देखना चाहते हैं, पर देहातोंकी शक्ति छीनकर शहरोंको बढ़ाना विघातक है। शहर क्यों बढ़ रहे हैं और देहात क्यों क्षीण हो रहे हैं, इस विषयपर हम यहाँ कुछ भी नहीं लिख रहे।

सन्त विनोबाके गाँव और शहर-सम्बन्धी विचार

आचार्य विनोबा भावेने 'हम बलहीन कैसे हुए' विषयपर बोलते हुए गाँव और शहरकी समस्यापर बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला। गत २८ जूनके 'कर्मवीर'से हम उनके विचार उद्धृत कर रहे हैं। आचार्य भावे कहते हैं—

"इन दिनों छोटे-छोटे गाँवोंमें शहरोंका अनुकरण किया जा रहा है और शहरके अनुकरणसे छोटे गाँव बिलकुल ही शक्ति खो बैठे हैं। शहरवाले पैसेको महत्व देते हैं, तो गाँववाले भी पैसेको महत्व देने लगे। शहरमें पैसा है। गाँवमें वह कहाँ है ? पैसा कहाँ तैयार होता है ? नासिकके छापेखानेमें तैयार होता है। हमारे गाँवमें होता है ? पैसा शहरवालोंका है। तो फिर हमारे गाँवमें क्या है ? हमारे गाँवमें प्रेम, परिश्रम, खेती है। खेतीमें काम करें तो अनाज पैदा हो सकता है, तरकारी पैदा हो सकती है। गायकी सेवा करें तो दूध तैयार हो सकता है। यह सब तुम तैयार कर सकते हो। लेकिन सब-का-सब बेचोगे और पैसा हासिल करोगे। क्योंकि तुम्हें दूध-घीकी कीमत नहीं है। पैसेकी कीमत है। भाजी, तरकारी, फलकी परवाह नहीं है। वह बेचकर पैसा हासिल करते हो। पैसा शहरवालोंकी चीज है, वह हमारी चीज नहीं है। उनकी चीजको हमने महत्व दिया और अपनी चीजको हम कम महत्व देते हैं। इस तरहसे शहरके अनुकरण से छोटे-छोटे गाँव बिलकुल बलहीन हो गये हैं।

"इस तरहसे शहरकी जो शक्ति है, वह गाँवमें नहीं आ सकती। गाँवके लोग अपनी शक्तिका खयाल छोड़ देंगे और शहरकी शक्तिकी इच्छा करेंगे, तो कैसे बनेगा ? शहरमें बड़े-बड़े कारखाने होते हैं। गाँवमें कहाँसे आयेंगे ? शहरमें बड़े-बड़े कालेज, हाईस्कूल होते हैं, वह गाँवमें कहाँसे आयेंगे ? शहरमें व्यापार जोरदार चलता है, वह गाँवमें कैसे चलेगा ? शहरकी शक्ति गाँवमें नहीं आ सकती और जो गाँवकी शक्ति है, वह ही हमारे काम आ सकती है।

"गाँवकी शक्ति क्या है ? सब मिल-जुलकर काम कर सकते हैं। तुम भूमिकी सेवा कर सकते हो। सबकी भूमि बना सकते हो। अपने जीवनको स्वावलम्बी बना सकते हो। अनाज पैदा करो। दो सालका अनाज गाँवमें रखो। किसीको खानेकी कमी नहीं होगी। जमीन सबकी बनाओ। जमीनके आधारपर तो गाँव खड़ा है। जमीन एक हो जायगी तो मिल-जुलकर काम करेंगे। कपड़ा तैयार कर सकते हो। पैसेकी आवश्यकता कम-से-कम रहेगी, तब हमारा जीवन सुखी रहेगा।

"शहरवालोंका जीवन पैसोंसे सुखी होगा, क्यों ? क्योंकि शहरवाले अनाज पैदा नहीं करते। वे दूध-घी तैयार नहीं करते, तरकारी-फल तैयार नहीं करते। मनुष्योंको रोज खानेको अनाज चाहिए, तरकारी-फल चाहिए, दूध-घी चाहिए। इसके बिना एक दिन भी नहीं चलेगा। सिनेमा देखे बिना काम चल सकता है, नाटक देखे बिना काम चल सकता है, गायनके बिना काम चल सकता है, नृत्यके बिना काम चल सकता है, सिगरेटके बिना काम चल सकता है ; परन्तु अनाज, दूध, तरकारी, फलके बिना नहीं चल सकता। ये सब चीजें तुम्हारे पास हैं। उनके पास हैं नहीं। तो उन्होंने पैसोंका महत्व बढ़ा दिया, तो तुम मूर्खोंने भी पैसोंको महत्व दिया और अपनी सब-की-सब चीजोंको तुच्छ समझने लगे। क्यों ऐसा हुआ ? क्योंकि जमीनकी मालकियत बनाई। मजदूर अपना कपड़ा बुनते नहीं। सूत निकालते नहीं। मालिक मजदूरोंको पैसा देते हैं। मजदूरोंको सब-की-सब चीजें खरीदनी पड़ती हैं। पराधीन बन गये, इसलिए पैसा चाहिए। फिर आपसमें सहयोग नहीं है। एक-दूसरेकी मदद नहीं करते। शादीका समय आया तो पैसा चाहिए। क्यों पैसा चाहिए ? सब गाँवके लोग मिलकर

शादी नहीं कर सकते ? घर-घरसे थोड़ा-थोड़ा आया, बस, शादी हो गई। किसलिए पैसा चाहिए ? इसलिए कि एक-दूसरेका एक-दूसरेसे बनती नहीं, सहकार देते नहीं, इसके कारण फिर पैसोंका महत्व बढ़ता है। पैसोंका महत्व बढ़ा, तो फिर साहूकारका महत्व बढ़ता है। कइयोंकी जमीनें साहूकारके हाथमें चली गई। इस तरहसे शहरोंकी शक्ति मिलती नहीं और अपनी खो दी। कितना भी शहरका अनुकरण करो, तो भी उसके मुकाबले आपको सम्पत्ति मिलेगी, ऐसा कभी हो नहीं सकेगा। पैसोंमें तो तुम हारोगे। शहरवालोंके सामने टिकोगे नहीं। फिर तुम अपनी जो शक्ति है, उसे बढ़ाओगे, तब टिकोगे—सहयोगकी शक्ति, प्रेमकी शक्ति और परिश्रमकी शक्ति। मिल-जुलकर काम करें, सारे गाँवको एक परिवार समझें और जमीनकी मालकियत छोड़ें, इस तरह करोगे तो गाँवकी शक्ति बनेगी।

उप-चुनावमें कांग्रेसकी स्थिति और प्रभाव

गत १२ जुलाईका नई दिल्लीका समाचार है—कांग्रेस कार्य-समितिका दो दिवसीय अधिवेशन आज यहाँ आरम्भ हुआ, जिसमें संगठन-सम्बन्धी समस्याओंपर विचार करनेके साथ-साथ गत आम चुनावके बाद हुए उप-चुनावोंके परिणामोंकी भी समीक्षा की गई।

बैठकके बाद कांग्रेसके महामन्त्री आचार्य श्रीमन्नारायण ने पत्रकारोंको बताया कि उप-चुनावोंमें कांग्रेसकी स्थिति इतनी बुरी नहीं रही, जितनी कि समाचारपत्रोंमें छपी खबरोंसे प्रतीत होता है। कांग्रेस यहाँ या वहाँ उप-चुनाव हारी अवश्य है, लेकिन उत्तर-प्रदेश, मद्रास व उड़ीसामें उसे भारी सफलता भी मिली है।

बैठकमें कांग्रेस-अध्यक्ष श्री ढेबरने उत्तर-प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल आदि राज्योंके दौरेके अनुभव बताते हुए इन राज्योंमें कांग्रेस संगठनकी स्थितिपर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि अब तक देशके विभिन्न भागोंमें १३ हजार मंडल कांग्रेस कमेटियाँ गठित हो चुकी हैं। उन्होंने मंडल कांग्रेस कमेटियोंको शक्तिशाली बनानेकी आवश्यकतापर जोर दिया। देशकी आर्थिक स्थिति व अन्तर्राष्ट्रिय समस्याओंपर विचार किया गया। बैठकमें प्रधानमन्त्री श्री नेहरू व गृहमन्त्री पं० पन्त भी उपस्थित थे।

श्री श्रीमन्नारायणजीकी बातें आँकड़ोंकी दृष्टिसे ठीक हैं, पर प्रभावकी दृष्टिसे उनके बयानको हम ठीक नहीं मानते। हमें यह लिखनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि कांग्रेसका प्रभाव बड़ी तेजीसे घट रहा है और उप-चुनावमें भी जहाँ कांग्रेसकी प्रतिष्ठाका प्रश्न था, वहाँ भी कांग्रेस बुरी तरह हारी। उत्तर प्रदेशके मौधाके उप-चुनावमें कांग्रेसके उत्तर-प्रदेशके तथाकथित लौह-पुरुष बुरी तरह हारे। केरल और गुड़गाँवके निर्वाचन क्षेत्रोंमें भी कांग्रेस बुरी तरह हारी। यह हम मानते हैं कि जीत भी कांग्रेसकी हुई है, पर हम कांग्रेसके प्रभावकी ओर अधिक ध्यान देते हैं। श्री ढेबरने आँकड़ोंका सहारा लेते हुए कहा है कि देशमें १३ हजार मंडल कांग्रेस कमेटियाँ गठित हुई हैं। कमेटियाँ आप २५ हजार बना लें, पर जब तक कांग्रेसजन और कांग्रेस कमेटियाँ रचनात्मक कार्य नहीं करेंगी, तब तक ये कमेटियाँ कांग्रेसकी शक्तिको नहीं बढ़ा सकतीं। कांग्रेसके घरमें कांग्रेसके चिरायसे ही आग लग गई है। दलबन्दी इतने टुच्चे स्तरपर पहुंच गई है, जिसे देखकर लज्जाको भी लज्जा आती है। पिछले दिनों आगरा ज़िला-परिषदकी कार्यकारिणीके लिए सात सदस्योंका चुनाव होना था। कांग्रेसकी ओरसे कुछ ऐसे व्यक्तियोंका नाम पेश किया गया और वे चुन भी लिए गये, जिनके ही कारण देहातमें कांग्रेसके विरुद्ध घृणा पैदा हो गई है। एक व्यक्ति तो उनमें ऐसा है, जिसके ऊपर आगरा-टूंडला-हत्याकाण्डमें सन्देहमें पुलिसकी कड़ी नज़र थी। एक साहब ऐसे हैं, जिनकी गुज़र-बसर ही देहाती नेतागीरीसे होती है। एक ऐसे एम० एल० ए० साहब हैं, जो उत्तर-प्रदेश विधान-सभाके चुनावसे बहुत पूर्व यह कहते थे कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी चरित्रहीन हैं। हिन्दीके विख्यात लेखक पं० हरिशंकर शर्मा के सामने उन्होंने ऐसी बातें कही थीं। जब हमने बाबू रामचन्द्र गुप्तसे कहा कि हमारा मत ऐसे व्यक्तियोंके लिए नहीं हो सकता, तो उन्होंने समर्थन तो किया ; पर उनका वोट पार्टी अनुशासनकी खातिर उन्हींके लिए था! आगरा जिला कांग्रेस कमेटीका आफिस सेक्रेटरी एक ऐसा व्यक्ति है, जिससे तत्कालीन जिला नियोजन अधिकारीने ५००) वापिस कराये थे और जिसके विरुद्ध जिलाधीशके यहाँ ऐसी अर्जियाँ हैं कि वह पुलिस फ़ायरिंग तथा अन्य मामलोंका दलाल है। 'विशाल भारत' में एक ही जिलेकी बात लिखना इसलिए ठीक है कि उससे कांग्रेसका खोखलापन दिखाई पड़ता है। अधिकांश जिलोंमें ऐसी ही हालत है। कांग्रेसका भक्त होनेपर भी ऐसी स्थितिके कारण हम कांग्रेससे दूर जा रहे हैं। कांग्रेसकी सड़ाँदमें चीरा लगाना है। बिरादरीबाजी भी कम नहीं है। बाह्य आवरण तो

ठीक है। श्रीमन्नारायणजीसे हमारा आग्रह है कि हमने जो लिखा है, उसे हम बहसकी खातिर नहीं, ईमानदारीकी खातिर सिद्ध करा देंगे ; पर देहातके दौरेका उन्हें समय कहाँ ? कांग्रेसका प्रभाव घट रहा है और अनेक स्थानोंमें पुराने गुण्डे घुस गए हैं, जो पहलेकी अपेक्षा भी अब अधिक खतरनाक हैं।

ऊसर भूमिका प्रश्न

हमारे देशकी जनसंख्यामें प्रति वर्ष पचास लाखकी वृद्धि होती है। खाद्यान्नकी जो विषम स्थिति है, वह सबको ज्ञात है। पंचवर्षीय योजनाके होनेपर भी खाद्यान्नके लक्ष्य पूरे नहीं हो सके हैं। योजना-सम्बन्धी खाद्यान्नके लक्ष्योंपर तो हम अगली टिप्पणीमें लिख रहे हैं ; पर यहाँ यह बताना आवश्यक है कि यदि हम उचित ढंगसे खेती करें और परिश्रमसे काम लें, तो लगभग पाँच वर्षोंमें ही इस ग़रीब देशको यथेष्ट भोजन मिल सकता है। पर वह कोरे भाषणों और केवल चुनावकी सफलतापर ही निर्भर नहीं है। हमारे देशमें करोड़ों एकड़ ऊसर भूमि पड़ी है, जिसे खेतीके योग्य बनाया जा सकता है और उसमें आधुनिक ढंगके चरागाह बनाये जा सकते हैं तथा जलानेकी लकड़ी भी उपलब्ध की जा सकती है। उदाहरणके लिए अकेले उत्तर-प्रदेशमें तीस लाख एकड़ भूमि है। उत्तर-प्रदेशका कुल क्षेत्रफल लगभग ६ करोड़ एकड़ है। इसमें से लगभग तीन करोड़ एकड़में खेती होती है। सरकार ऊसरको उपजाऊ बनानेके लिए जो प्रयास कर रही है, वह नहींके बराबर है। हमारा दावा है कि भारतके विशाल खण्डमें फैली ऊसर भूमिको उपजाऊ बनानेकी क्षमता हमारी सरकारमें नहीं है। ऊसरको उपजाऊ बनानेका काम बड़ा कठिन है। केवल अमेरिका और रूसकी सरकारें ही इतनी क्षमता रखती हैं कि वे इस कार्यको आठ-दस वर्षोंमें कर सकें। भारत जैसे ग़रीब देशमें यह कार्य तब ही सम्भव है, जब किसानोंमें ऊसरको उपजाऊ बनानेकी रुचि पैदा कर दी जाय। किसानोंको ऊसर सुधारनेके सीधे और सरल क़ायदे बताये जाने चाहिए और दस वर्ष तक कोई लगान नहीं लेना चाहिए। हमारे मतसे कोई ज़मीन बेकार नहीं है। हाँ, जमीन-सुधारका काम कारखाना चलानेके समान नहीं है। जमीनको ठीक करनेमें प्रकृति बड़ी सहायक होती है। यदि एक प्रदेशकी भूमि ठीक कर दी जाय, तो उससे दो करोड़ जनसंख्या मजेसे पाली जा सकती है। ऊसर ठीक करनेकी विधिपर हम उत्तर-प्रदेश-सरकारको एक योजना दे रहे हैं। पाठकोंके लाभार्थ हम उसे 'विशाल भारत'के किसी आगामी अंकमें देंगे।

विकास-योजनाएँ और अन्न-उत्पादन-लक्ष्य

गत मास भारत-सरकारने एक रिपोर्ट 'राज्य विकास योजनाएँ—प्रगतिका अवलोकन' शीर्षकसे प्रकाशित की है। उस रिपोर्टसे पता चलता है कि जहाँ तक खाद्यान्नोंके उत्पादन-लक्ष्यका सम्बन्ध है, वहाँ तक हमारे देशके सब ही राज्य उसे पूरा नहीं कर सके। द्वितीय पंचवर्षीय योजना भारत-सरकारकी रीढ़के समान है। इसलिए हम आवश्यक समझते हैं कि पाठक योजनाकी प्रगतिसे अवगत रहें। योजनाके सम्बन्धमें रिपोर्टमें लिखा है—

"चालू द्वितीय वर्षकी समाप्ति तक उत्तर-प्रदेश योजनाके लिए निर्धारित २५३·१० करोड़ रुपयेकी रकममें से करीब १३३ करोड़ रुपये खर्च कर चुका होगा। राज्यमें पहले दो वर्षोंमें केवल ५·३५ लाख टन अतिरिक्त अन्न पैदा हुआ—१९५६-५७ में १·८५ लाख टन और १९५७-५८ में अनुमानित ३·५० लाख टन—जब कि योजनामें लक्ष्य २४ लाख टनका है।

अतिरिक्त सिंचाई क्षेत्र १९५६-५७ में २·४६ लाख एकड़ और १९५७-५८ में ३·६८ लाख एकड़ रहा। विद्युत्-शक्तिमें ० ६९ लाख किलोवाटकी वृद्धि हुई, जब कि योजना का लक्ष्य १·६३ लाखका है। रिहन्दसे प्राप्त होनेवाली १५ लाख किलोवाट बिजली इसके अतिरिक्त है।

पंजाबमें पहले ३ वर्षोंमें खर्च योजनाके लिए निर्धारित १६२·६८ करोड़ रुपयोंमें से करीब ९२ करोड़ रुपये होगा, अर्थात् ५६ प्रतिशतसे अधिक अतिरिक्त अन्न-उत्पादनका संशोधित लक्ष्य १४·४ लाख टनका है। इसमें से १९५६-५७ में १·३१ लाख टन अतिरिक्त अन्न पैदा हुआ, जब कि १९५७-५८ का अनुमानित अतिरिक्त उत्पादन १·५३ लाख टनका है।

छोटी-छोटी सिंचाई योजनाओंसे ५ वर्षोंमें ४·८५ लाख एकड़ अतिरिक्त जमीनकी सिंचाईका लक्ष्य रखा गया है। १९६६-५७ में ०·०४ लाख एकड़की सिंचाई हुई और १९५७-५८ में १·१९ लाख एकड़की सिंचाई होनेका अनुमान है। अन्य सिंचाई योजनाओंसे, जिनमें भाखड़ा-नंगल-योजना भी है, पहले दो वर्षोंमें करीब ४·४ लाख एकड़की सिंचाई हुई।

राजस्थानमें प्रथम ३ वर्षोंमें योजनापर ५२·१९ करोड़

रुपया खर्च होनेका अनुमान है, जब कि राज्यकी पंचवर्षीय योजनाके लिए १०५·२७ करोड़ रुपयेकी रकम निर्धारित की गई है। अतिरिक्त अन्न उत्पादनका संशोधित लक्ष्य ८·०७ लाख टनका रखा गया है। १९५६-५७ में कुल ०·४८ लाख टन अतिरिक्त अन्न पैदा हुआ और १९५७-५८ में ०·७९ लाख टन पैदा होनेका अनुमान है।

राज्यके लिए छोटी सिंचाई योजनाओंका पंचवर्षीय लक्ष्य २,०५,००० एकड़का है। इसमें से १९५६-५७ में ५८ हजार एकड़ और १९५७-५८ में ७० हजार एकड़ भूमिकी सिंचाई होनेका अनुमान है। दूसरी पंचवर्षीय योजनामें अतिरिक्त सिंचाईका लक्ष्य ९,६३,००० एकड़का है। पहले वर्षमें २२ हजार एकड़ अतिरिक्त भूमिकी सिंचाई हुई और दूसरे वर्षमें ९४ हजार एकड़ भूमिकी सिंचाई होनेकी आशा है।

मध्यप्रदेशमें १९५६-५७ और १९५८-५९ के बीच व्यय ७६·१६ करोड़ रुपयेका आँका जाता है, जब कि योजनाका लक्ष्य १९०-८९ करोड़ रुपयेका है। पहले दो वर्षोंमें १४·६१ लाख टनके लक्ष्यके मुकाबलेमें २·३० लाख टन अतिरिक्त अन्न पैदा हुआ।

द्वितीय योजनामें शामिल सिंचाई योजनाओंसे कुल १०·८४ लाख एकड़ भूमिकी सिंचाईका लक्ष्य रखा गया है। १९५७-५८ तक ०·११ लाख एकड़ भूमिको सिंचाईकी क्षमता पैदा हुई है, जब कि वास्तविक सिंचाई ०·०७ लाख एकड़की हुई है। छोटी सिंचाई योजनाओंके अन्तर्गत ७·७५ लाख एकड़की अतिरिक्त सिंचाईके लक्ष्यके मुकाबलेमें १९५६-५७ में ७·२५ लाख एकड़की सिंचाई हुई और १९५७-५८ में १·५५ लाख एकड़की सिंचाई होनेका अनुमान है।

कश्मीरमें पहले तीन वर्षोंमें १४·७९ करोड़ रुपयोंका खर्च होगा, जब कि योजनाका लक्ष्य ३३·९२ करोड़ रुपयोंका है। राज्यके लिए अतिरिक्त अन्न-उत्पादनका लक्ष्य २·०६ लाख टन निश्चित किया गया है। इसमें से ०·२४ लाख टन अतिरिक्त अन्न १९५६-५७ में पैदा हुआ और ०·०२ लाख टन १९५७-५८ में पैदा होनेकी आशा है। छोटी सिंचाई योजनाके अन्तर्गत १९५६-५७ में ५ हजार एकड़ व १९५७-५८ में एक हजार एकड़ अतिरिक्त भूमिकी सिंचाईका अनुमान है, जब कि पाँच वर्षोंका लक्ष्य १·२५ लाख एकड़का है।

रिपोर्टमें अन्य राज्योंकी प्रगतिका भी अवलोकन किया गया है।"

हमारा अनुरोध है कि भारत-सरकार द्वितीय पंचवर्षीय योजनापर गम्भीरतापूर्वक विचार करे और खाद्यान्नमें स्वावलम्बन प्राप्त करनेके प्रश्नको प्राथमिकता दे। 'कम्यूनिटी प्रोजैक्ट' से भी गाँववालोंमें कोई विशेष जाग्रति नहीं हुई। सरकारी सहायता हट जानेपर भी कोई काम चलता रहे, तब ही हम उसकी सफलता मानेंगे। हम उद्योगीकरणके विरोधी नहीं, पर इस बातके विरोधी हैं कि देश खाद्यान्नके लिए विदेशोंपर अवलम्बित रहे। क्या यह लज्जाकी बात नहीं है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके ग्यारह वर्ष समाप्त होनेपर भी हमें अरबों रुपयोंका खाद्यान्न बाहरसे मँगाना पड़ता है? विदेशी राज्यकी समाप्तिपर हमारे पास अरबों रुपया था, आज विदेशी मुद्राकी कठिनाई हो रही है और हमारे देशपर कर्ज़ों का एक भारी बोझ है और यह ऋण-भार बढ़ता ही जायगा, यदि हम खाद्यान्नमें स्वावलम्बी नहीं हुए। खाद्यान्नकी समस्या सबसे आवश्यक समस्या है। हमें लगता है, इस समस्याके हल करनेमें कांग्रेस संगठन शायद कुछ काम न कर सके। कांग्रेस कार्यकर्ता तो दलबन्दीकी उधेड़बुनमें रहते हैं। रचनात्मक कार्य और खेती-बारीसे उनका बहुत कम सम्बन्ध है। हमारा अनुरोध है कि भारत-सरकार द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें से ऊलज्लूल बातोंको हटाकर उद्योगीकरणके अतिरिक्त कृषि, पशु-पालन, साग-सब्ज़ी, ईंधन और चारेकी समस्याको प्राथमिकता दे। प्रत्येक ज़िलेमें जो नियोजन कार्य हो रहा है, उसमें भी आमूल परिवर्त्तन करना चाहिए, ताकि विभागीय कर्मचारी अपने कामको सुचारु रूपसे कर सकें और फजूलकी लिखा-पढ़ीसे बच सकें।

राजस्थानकी सम्भावनाएं

राजस्थानमें चरागाहोंके विकासके कार्यक्रमके सम्बन्धमें हमने निम्नांकित समाचार पढ़ा :—

केन्द्रीय सरकारकी चरागाहोंके विकास सम्बन्धी योजना के अन्तर्गत, चरागाहोंकी घास-उत्पादन-क्षमतामें वृद्धि करने तथा ग्रामीणोंको उनके पशुओंके लिए अधिक तथा अच्छी घास उपजानेको प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे जैसलमेर जिलेके लवाण ग्राममें एक योजनाका समारम्भ हुआ है। स्थानीय सरपंच, विकास खण्ड अधिकारी तथा मरुस्थल वन-विकास, जोधपुरके भूसंरक्षण अधिकारीने उक्त ग्राममें २०० एकड़के एक क्षेत्रके चारों ओर खुदाईका कार्य प्रारम्भ करा दिया है।

इस योजनाके अनुसार, जिसमें चरागाहोंके वैज्ञानिक प्रबन्ध पर बल दिया गया है, राजस्थानके मरुस्थल क्षेत्रोंमें

२००-२०० एकड़के प्रदर्शन-क्षेत्र बनाए जानेकी व्यवस्था है। प्रत्येक क्षेत्रमें क्रमानुसार चराईका तरीका लागू किया जायेगा और उस क्षेत्रके एक भागमें बादमें काटे जाने तथा उसे सुरक्षित रखनेके लिए घास बोई जायगी। अच्छी किस्मकी घासके बीज बोये जानेके साथ ही इन क्षेत्रोंपर रासायनिक खादोंका भी उपयोग होगा।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि राजस्थानमें विकासकी जो सम्भावनायें हैं, उतनी अपेक्षाकृत भारतके किसी अन्य क्षेत्रमें नहीं हैं। चारे और पशुपालनके लिए तो राजस्थान एशियाका सबसे बड़ा क्षेत्र बन सकता है। बरसातमें यदि मेंड़बन्दीके बाद अंजना, जाइंटस्टार घास लगा दी जाय तथा यथासम्भव बबूलके पेड़ लगा दिए जायँ और हरियाना गाय की नसल सुधार दी जाय, तो राजस्थान गोधनका सबसे बड़ा भंडार बन सकता है। सूखी घास और साइलेज भी केवल अपने लिए ही नहीं, वरन् पड़ोसी राज्योंके लिए भी वह एक विशाल भण्डारका काम कर सकता है। इसके अतिरिक्त उत्तर-प्रदेशके एटा जिलेके अलीगंज और मारहराके विख्यात बेरियोंके चश्मे राजस्थानकी बेरियोंपर चढ़ा दिए जायँ, तो खाद्यान्नकी समस्या हल करनेमें बेर बहुत सहायक होंगे। स्मरण रहे, अलीगंज और मारहराके बेर असाधाराण रूपसे स्वादिष्ट होते हैं। वे सब राजस्थानमें हो सकते हैं। सिंचाईका प्रबन्ध राजस्थानमें बढ़ रहा है और वहाँकी मरुभूमि शस्य-श्यामला हो जायगी। इस प्रकार देशके अन्य भागोंके लिए वह खाद्यान्नका भी एक भंडार हो जायगा। राजस्थान में—विशेष कर जयपुर, कोटा और अजमेरके आसपास आम भी अच्छे हो सकते हैं। राजस्थानमें इस समय टोंक और साँभरके आसपासके खरबूजे लखनऊके खरबूजोंसे भी अच्छे होते हैं। टोंकके खरबूजोंके बीजोंसे हमने आगरे जिलेमें खरबूजे किए हैं। पर राजस्थानसे राजनीतिक दलबन्दीको दूर करना होगा। सेवासे ही राजस्थानकी उन्नति सम्भव है। जो लोग यह समझते हैं कि केवल मन्त्रिपद पाकर ही वे राजस्थानकी उन्नति कर सकते हैं, उनकी यह भूल है। राजस्थानकी सम्भावनाओंपर एक विस्तृत लेख लिखा जा सकता है, पर हमने तो यहाँ केवल संकेत-मात्र ही किया है।

मरुभूमि-निवारक पंक्ति

उत्तर-प्रदेशके मथुरा, आगरा जिलेमें मरुभूमि-निवारक पंक्ति बनानेकी एक योजना प्रारम्भ हुई थी। लोगोंकी धारणा थी कि यदि मथुरा और आगरा जिलेमें नियमित रूपसे सौ दो सौ फूट चौड़ी वृक्षोंकी पंक्ति लगा दी जाय, तो उत्तर-प्रदेशकी ओरको राजस्थानसे बढ़नेवाली मरुभूमिके निवारणमें वह बड़ी सहायक होगी। इस योजनाके लिए मानचित्र बने, पर व्यावहारिक कठिनाईके कारण वह नहीं बन सकी। हमें यह लिखनेमें भी संकोच नहीं कि पंक्ति न बननेका कारण राजनीतिक अथवा सरकारी कमजोरी है। पंक्तिके लिए किसानोंसे जमीन लेनी पड़ती, उससे असंतोष बढ़ता। स्थानीय एम० एल० ए० चुनाव जीतनेके कारण ऐसे असंतोषका सामना करनेको तैयार न थे। हमारे विचारसे पंक्ति बनानेमें बड़ी दृढ़तासे काम लेना चाहिए था, ठीक उस भाँति जिस भाँति रोगीको कड़वी दवा देने या चीरा लगानेमें डाक्टर और रोगीके घरवाले हिचकते नहीं है। हमारा तो विश्वास है कि भूसंरक्षण और मरुभूमि-निवारणके लिए उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात और सौराष्ट्र क्षेत्रके लोगोंकी एक कमेटी होनी चाहिए, जिसके चेयरमैन केन्द्रीय सरकारके खाद्यमन्त्री या कृषिमन्त्री हों। और जिसमें उपर्युक्त राज्योंके एक-एक मन्त्री तथा एक-एक उच्च कर्मचारी और प्रत्येक राज्यसे दो-दो जानकार गैर-सरकारी सदस्य हों। द्वारका और मथुराको धुरी मानकर मरुभूमि-निवारण और भूमि-संरक्षणका कार्य होना चाहिए। टिड्डियोंके आक्रमणको रोकनेके लिए जिस प्रकार अरब, पाकिस्तान, ईरान और भारतके सहयोगसे कार्य किया जाता है और बिना उस सहयोगके टिड्डियोंके आक्रमणका निवारण नहीं होता, उसी भाँति भूमि-संरक्षण और मरुभूमि-निवारण के लिए उत्तर-प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और गुजरातकी एक महासमिति होनी चाहिए, जो प्रत्येक राज्यकी उस कार्यमें लगी समितिको उचित परामर्श दे सके और सहयोग प्रदान कर सके।

तमिल-पाठके विषयमें

मैसूरसे एक मित्र लिखते हैं कि 'विशाल भारत'में तमिल पाठ शीर्षकसे जो छोटा लेख निकलता है, उससे कुछ कठमुल्ले भले ही प्रसन्न हो जायँ, पर कोई वास्तविक लाभ उससे नहीं है। फिर क्या हम कन्नड़ पाठपर भी कुछ दे सकेंगे? हम न स्वयं कठमुल्ले हैं और न कठमुल्लापन पसन्द करते हैं। तमिल पाठ देनेमें हमारी ओरसे कोई पक्षपातकी भावना नहीं है। पांडुचेरीके श्री रवीन्द्रनाथजीने तमिल पाठकी उपयोगिता पर पत्र लिखा और हम राजी हो गए। यदि कोई कन्नड़, मलयालम और तेलुगुके विषयमें वैसा पत्र

लिखता, तो हम उसपर तैयार हो जाते। स्थानाभावके कारण हम एक साथ सब दक्षिणी भाषाओंपर लेख नहीं दे सकते। हाँ, हम इस बातपर तैयार हैं कि तमिलके एक दर्जन या १५-२० पाठ छापनेके बाद कन्नड़को ले लें, उसके बाद हम तेलुगु और मलयालम भी दे सकते हैं। 'विशाल भारत' किसी राज्य-विशेषका पत्र नहीं है और दक्षिणकी प्रत्येक भाषाके साथ 'विशाल भारत' का एक-सा ही सम्बन्ध है। किसी भाषा-विशेषके साथ 'विशाल भारत' का या हमारा पक्षपात नहीं है। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि हमारे दाक्षिणात्य भाई अपनी भाषाओं तथा राज्योंके विषयमें हमें नियमित रूपसे लिखा करें, ताकि 'विशाल भारत' द्वारा भारतके प्रत्येक राज्यका समन्वय हो सके।

उत्तर-भारत और दक्षिणकी भाषाएँ

हम हमेशासे इस बातपर जोर देते आए हैं कि उत्तर-भारतके लोगोंको दक्षिणकी कम-से-कम एक भाषाको अच्छी तरह सीख लेना चाहिए। दक्षिणकी एक भाषा अथवा अनेक भाषाओंकी जानकारी दाक्षिणात्य भाइयोंको खुश करनेके लिए नहीं है, वरन् स्वयं उत्तर-भारतके लोगोंके लिए आवश्यक है। भाषा ही नहीं, वरन् कर्नाटक-संगीत-पद्धतिका जानना भी भारतीय एकता और राष्ट्रियताके लिए आवश्यक है। गत २८ जूनको राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसादने हैदराबादमें भारती संघम द्वारा आयोजित मेलेका उद्घाटन करते हुए कहा—

"सम्भवतः तमिल भारतकी सबसे पुरानी भाषा है। एक समय ऐसा था, जब कि आर्य-भारतीय भाषाएँ अपने आपको विकसित करनेके लिए सन्त तुलसीदास, ज्ञानेश्वर और चैतन्य महाप्रभु आदि कवियोंकी चमत्कारिक लेखनीकी प्रतीक्षामें थी, तब भी तमिल भाषाका साहित्य गौरवमय था। अब जब कि हम स्वतन्त्र राष्ट्रके निवासी हैं और हमारे कंधोंपर उसका गौरवपूर्ण भविष्य निर्भर है, तब क्यों न हम अपने गौरवपूर्ण भूतका भी स्मरण रखें। हमें चाहिए कि हम बहुत-सी भाषाओंके पण्डित बनें। इस सबका परिणाम यह होगा कि देशके विभिन्न प्रान्तोंमें बसनेवाले लोगोंका एक दूसरेसे सम्पर्क गहरा होगा। मैं तो उस दिनकी प्रतीक्षा में हूं, जब कि सभी प्रान्तोंमें हर प्रान्तकी भाषाएँ पनप रही होंगी और सभी भारतीय विश्वविद्यालयोंमें उनका बाकायदा अध्ययन-अध्यापन हो रहा होगा। मैं यह भी जानता हूं कि देशमें भाषाके प्रश्नपर कई बार विवाद तक हुए हैं और हमारे सिरोंपर यह विषम स्थिति नंगी तलवारकी तरह नाचती रही है। परन्तु मैं इतना अवश्य कहूंगा कि भाषाको विवादका विषय बनानेका मतलब राष्ट्रिय एकताके दरार पैदा करना है और उसे टालनेके लिए हमें कार्य करना चाहिए। भारतीय जीवन और संस्कृतिकी यह विशेषता रही है कि वह हमेशा विविधताको पसन्द करती रही है। फिर चाहे जीवनका वह अंग भाषाके अन्तर्गत आता हो अथवा दर्शनके अन्तर्गत, विविधताका पोषण सदैव ही किया जाता रहा है।

"भारती संघम तमिल भाषाकी प्रगतिके लिए कार्य कर रहा है, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि वह केवल तमिल-क्षेत्रीय लोगोंके लिए ही कार्य कर रहा है, वरन् इस भाषाका अध्ययन करनेवाले सभी लोगोंके हितार्थ कार्य कर रहे हैं। मुझे इस बातकी बड़ी खुशी है कि भारती संघम द्वारा आयोजित कुछ समारोहोंमें मैं पहले भी उपस्थित हो चुका हूं। सबसे पहले कुछ वर्ष पूर्व नई दिल्लीमें संघम द्वारा प्रथम तमिल समारोह मनाया गया था, जिसमें मैं उपस्थित था और तमिल साहित्यका थोड़ा-सा रसास्वादन करनेका अवसर मुझे मिला था।"

अधिक विदेशी मुद्राके लिए आन्दोलन

भारतकी विदेशी मुद्राकी स्थिति काफी गम्भीर हो गई है और इसके लिए भारत-सरकारने अधिक विदेशी मुद्राको प्राप्त करनेके लिए एक निर्यात योजना बनाई है। दस्तकारीकी वस्तुएँ बाहर भेजनेपर भी ज़ोर दिया जा रहा है। सीमेंटको भी बाहर भेजनेकी चर्चा है और एक अध्यादेश द्वारा चीनी का निर्यात बढ़ानेके लिए एक योजना बनाई है और कहा है कि निर्यातके फलस्वरूप भी चीनी महँगी न होने पावेगी। इस सिलसिलेमें नई दिल्लीका २७ जूनका समाचार है कि—

अध्यादेशमें यह व्यवस्था की गई है कि चीनीका निर्यात केवल एक ही संस्थानकी मार्फत किया जाय, ताकि चीनीके विक्रेताओंमें अनावश्यक होड़ न चल पड़े और बाहर भेजी जानेवाली चीनीके लिए अच्छे-से-अच्छे दाम वसूल किये जा सकें। एक सरकारी विज्ञप्तिमें बताया गया है कि भारत-सरकार ने चीनीके उत्पादन, उसकी खपत और उपलब्धिकी स्थितिका अध्ययन करनेके बाद यह फैसला किया है कि मौजूदा मौसम में ५०,००० टन चीनीका निर्यात बढ़ाया जाय।

विज्ञप्तिमें यह भी बताया गया है कि देशकी तमाम चीनी मिलोंसे निवेदन किया गया है कि वे निर्यात की जानेवाली अपनी चीनीके कोटेकी सूचना इण्डियन शूगर

मिल्स एसोसिएशन कलकत्ताको दें। इसी संस्थाको निर्यातकी एजेन्सी दी जायगी। जो चीनी मिल अपने कोटेकी सूचना न देगी, उसे अपने कोटेके अनुसार १७) मनके हिसाबसे अतिरिक्त उत्पादन-कर देना पड़ेगा। उसके बाद ही उसे भारतीय बाज़ारके लिए अपनी चीनी मुक्त करनेकी छूट दी जायगी। जो चीनी मिलें अपनी चीनीका कोटा निर्यात-एजेन्सीको देंगी, उन्हें उसके लिए बाकायदा पैसा मिलेगा।

इस समय मिलोंके पास चीनीका जो स्टाक जमा है, उसमें निर्यात करनेपर ८ आना प्रति मनके हिसाबसे ज्यादा का घाटा नहीं होना चाहिए। देशमें चीनीका भाव पहले ही १) मनके हिसाबसे तेज हो चुका है, इसलिए निर्यातके फलस्वरूप भावमें और अधिक तेजी न्यायोचित न होगी। असलियत यह है कि भाव कम-से-कम स्तरपर स्थिर हो जाना चाहिए।

विज्ञप्तिमें बताया गया है कि चीनी उपलब्ध करनेकी स्थिति सन्तोषजनक है। मौसमकी शुरुआत ४३ लाख टन चीनी (गत शेष) के साथ हुई। वर्षमें चीनीका उत्पादन १९·७५ लाख टनका होगा। भावोंकी तेजी तथा खण्डसारी के उत्पादनमें हुई वृद्धिको देखते हुए यह आशा की जाती है कि यह वर्ष गत शेषकी काफी चीनीके साथ बन्द होगा। फिर भी यदि भावोंमें अवांछनीय तेजी आ गई, तो सरकार न्यायोचित भाव चालू करनेके लिए उचित कदम उठायेगी।

मंगोलियाई भाषामें बैताल पचीसी

गत २५ जुलाईको 'सोवियत भूमि'में निम्नांकित समाचार छपा है—

"प्राच्य साहित्यके मास्को प्रकाशकोंने 'तिलस्मी लाश' नामसे विख्यात मंगोलियाई-ओईरात लोक-कथाओंका रूसी संस्करण प्रकाशित किया है। ये कथाएँ 'बैताल पचीसी' से ली गयी हैं। इन कथाओंमें राजकुमार अमुगुलांग एवलेगचीके साहसपूर्ण कार्योंका वर्णन है जो अपने कन्धोंपर तिलस्मी लाश ढोकर अपने गुरु नागार्जुनके पास लाता है। ये कथाएँ अनेक देशोंमें विख्यात हैं। सोवियत विद्वानोंका विश्वास है कि ये कहानियाँ तिब्बतसे होकर मंगोलिया पहुंचीं, जहाँ सातवीं शतीमें जोरोंसे बौद्ध धर्मका प्रचार होने लगा था।

तिब्बत और मंगोलियामें इन कहानियोंमें काफी परिवर्तन हुआ। मंगोलोंने उनमें वे बातें जोड़ दीं जो उनके रीति-रिवाज और अभिरुचिको व्यक्त करती हैं। मंगोलियाई संस्करणकी भूमिका विशेष रूपमें भिन्न है जो अन्य कहानियों के लिए ढाँचा तैयार करती है।

विख्यात सोवियत विद्वान् बोरिस व्लादिमिर्त्सोवने ओईरात (कालमिक) पाण्डुलिपिसे रूसी अनुवाद किया। यह पाण्डुलिपि उन्होंने उत्तर-पश्चिमी मंगोलियामें ओईरात राजकुमारसे खरीदी थी। इसका पहला पूरा अनुवाद १९२२ में हुआ था, लेकिन तबसे इसका पुनर्मुद्रण नहीं होनेके कारण यह पुस्तक अलभ्य हो गई। सोवियत संघमें प्राच्य संस्कृतियों के प्रति दिखाई जानेवाली महती अभिरुचिके फलस्वरूप इस पुस्तकका पुनर्मुद्रण करनेका फैसला किया गया है।"

हमारे मतसे विश्वकी लोक-कथाओंका मूलाधार मनुष्य की बुनियादी समस्यायें हैं। कथासरित्सागर, हितोपदेश, पंचतन्त्र और बैताल पचीसीका अनुवाद विश्वकी लगभग सब ही भाषाओंमें है। सोवियत सरकारने तो भारतीय साहित्यकी प्रमुख कृतियोंका अनुवाद बड़े जोरोंसे शुरू कर दिया है। गत कई वर्ष पूर्व जब रूसी डेलीगेशन भारत आया तब उसके सदस्योंके हिन्दी और उर्दूके ज्ञानको जान कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हम इस बातसे सहमत हैं कि मंगोलियामें बैताल पचीसीकी पहुंच तिब्बत और चीन होकर ही हुई होगी।

दमेकी नई चिकित्सा-पद्धति

दमेकी नई चिकित्सा-पद्धतिके विषयमें गत २५ जुलाई की 'सोवियत भूमि' में निम्नांकित समाचार छपा है—

लेनिनग्राडके प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्योत्र बुलानोवने दमेकी नयी चिकित्सा-पद्धति निकाली है।

यह तो सभी जानते हैं कि दमा और हाईपरटोनियाके मरीजोंको जंगलों या पर्वतीय स्थानोंमें जानेकी सलाह दी जाती है, जहाँकी वायुमें प्रचुर परिमाणमें अयन, अर्थात विद्युत-सक्रिय कण विद्यमान होते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरी काकेशियाके किस्लोवोद्स्क नामक स्वास्थ्यशालामें इन रोगों की चिकित्सा करनेके पश्चात् बहुत ही अच्छे नतीजे हासिल हुए हैं। यहाँकी वायु किस्लोवोद्स्कके चतुर्दिक पर्वतोंकी समृद्ध प्राकृतिक तेजस्क्रियताके कारण निरन्तर अयनोंसे भरपूर रहती है।

बीस वर्षोंसे ऊपरसे, फेफड़ों, हृदय और रक्तवाहिनी सम्बन्धी रोगोंका अध्ययन करनेके बाद प्रोफेसर बुलानोवने यह स्थापित किया कि श्वास रोग और हाईपरटोनियाके रोगियोंकी चिकित्सा कृत्रिम अयनोंके द्वारा हो सकती है।

इस बातको दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने बिजलीका एक विशेष प्रकारका यन्त्र बनाया है। परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यन्त्रको सामने रखकर रोगी दस मिनट तक श्वासके साथ इतने अयनोंको अपने अन्दर खींच लेता है जितने अयन चौबीस घंटोंमें किस्लोवोद्स्कमें उसे उपलब्ध होंगे। इस नयी पद्धतिका प्रयोग मास्को, रीगा, कुईबिशेव, काशीनेव और याल्टामें शुरू हो गया है।

हमारे देशमें दमेके बारेमें यही कहा जाता है कि दमा दमके साथ ही जाता है। हमने यह भी देखा है कि दमा प्रायः विरासतमें भी मिलता है। स्व० आचार्य नरेन्द्रदेवजी कभी-कभी दमेकी बीमारीमें कुछ लाभ उठानेके लिए पहाड़के चीड़ वृक्षोंके बनोंमें चले जाया करते थे। चीड़ बनकी वायु तपेदिकके लिए भी अच्छी कही जाती है। रूसी वैज्ञानिक ने तो अपने परीक्षणसे यह तय ही कर दिया कि शरीरमें अधिक अयन पहुंचानेसे दमेका रोग दूर हो जाता है। नेत्र चिकित्सामें तो रूस सबसे आगे है ही। गत द्वितीय महा-युद्धमें रूसने आँखोंके एक ऐसे आपरेशनका आविष्कार किया जिससे युद्ध में गई आँखोंके स्थानमें दूसरे मनुष्यकी आँख 'ग्राफ्ट' करनेसे रोशनी पहले-जैसी ही हो जाती थी। रक्त-बैंकके समान अब विदेशोंमें नेत्र-बैंक भी खुलने लगे हैं। मानव-पीड़ासे विदग्ध व्यक्ति मरते समय अपनी आँखें दानमें दे देते हैं। बादमें आवश्यकता पड़नेपर वे अन्धे व्यक्तियोंको लगा दी जाती हैं। हम डाक्टर नहीं हैं, पर हमारे खयाल से ग्लोकोना (काला पानी) रोगकी आँखपर यह बात लागू नहीं है, क्योंकि इस रोगमें रेटिना खराब हो जाती है और नई आँख लग जानेपर भी इसी कारण रोशनी नहीं आती।

लेबनानमें हस्तक्षेप

लेबनानके विषयमें हम गत कई मासोंसे कुछ लिखते आ रहे हैं। 'विशाल भारत'के इस मासके अन्तमें लेबनानपर एक छोटा-सा लेख भी है, पर लेबनानकी बदलती परिस्थितिमें वह लेख पुराना-सा हो गया है। दो मासमें अधिकके गृह-युद्धके बाद लेबनानकी स्थिति बिगड़ती गई है। विद्रोहियोंकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ी है। सुरक्षा परिषद्के सेक्रेटरी-जनरल श्री हेमरशोल्ड तथा संयुक्त राष्ट्र परिषद्के कई पर्यवेक्षकोंने यह रिपोर्ट दी कि लेबनानका घरेलू मामला है और किसी बाहरी शक्तिको सैनिक सहायता पहुंचानेकी आवश्यकता नहीं। साथ ही लेबनानके विद्रोहियोंमें सीरिया आदि अरब राष्ट्रके पश्चिमी राष्ट्रोंके विरोधी वालेन्टियर्स चुपकेसे नहीं आ रहे हैं। पर हमारे अनुमानसे लेबनानसे लगे अरब राष्ट्रोंके सैनिक सीमा पार करके बहुत दिनोंसे आ रहे होंगे। लेबनानकी सरकारने अपनी रक्षाके लिए विदेशी सहायता चाही। लेबनानके राष्ट्रपति ईसाई हैं और पश्चिमी राष्ट्रोंके पक्षपाती हैं। लेबनानमें विद्रोहियोंकी जीत, पश्चिमी राष्ट्रोंकी हार होती और उधर लेबनानके राष्ट्रपतिने अमरीका और ब्रिटेनसे सैनिक सहायता चाही। इन पंक्तियोंके लिखते समय तक (२३-७-५८) लेबनानमें लगभग ६ हजार अणु-आयुधोंसे लैस अमरीकी सिपाही पहुंच चुके हैं। विद्रोहियोंमें इतना दम कहाँ, जो ऐसी सुसज्जित शक्तिका सामना कर सकें। अमरीकी सेनाओंका लेबनानमें आनेका विरोध प्रायः हर क्षेत्र से हुआ है। राष्ट्रपति आइज़नहावरने अमरीकाकी कांग्रेस और जनताके समक्ष स्थितिपर प्रकाश डालते हुए कहा है कि अमरीका लेबनानकी स्वाधीनता बनाये रखनेमें सहायता दे रहा है और लेबनानकी स्थितिके सम्बन्धमें भारत-स्थित अमरीकी दूत श्री एलिजबैथ बंकरने संयुक्त राज्य अमरीकाके लेबनान-सम्बन्धी दृष्टिकोणके बारेमें निम्नांकित विज्ञप्ति निकाली है—

"मैं यह अनुभव करता हूं कि यहाँ भारतमें लेबनानकी घटनाओंपर पर्याप्त चिन्ता है। इस चिन्ताके कारण ही मैं अपनी सरकारकी स्थितिको स्पष्ट कर देना चाहता हूं :

लेबनान एक स्वतन्त्र और लोकतन्त्री देश है और वहाँ की सरकारका निर्वाचन जनता द्वारा हुआ है।

सं० रा० अमेरिकाकी उचित रीतिसे निर्वाचित इस कानूनसम्मत सरकारकी ओरसे सहायताके सम्बन्धमें एक अत्यावश्यक अपील प्राप्त हुई है।

संयुक्त राष्ट्रिय घोषणा-पत्र (अनुच्छेद ५१) की धाराओं और १९५० के 'कार्यों द्वारा शान्ति'-प्रस्तावकी भावनाके अनुरूप कार्य करते हुए ही अमेरिकाने लेबनानकी सहायता की है। लेबनानके विद्रोहको काहिरा और दमिश्कसे होनेवाले रेडियो-प्रचार द्वारा उकसाया और प्रोत्साहित किया गया है तथा संयुक्त अरब गणराज्यके हथियारों और आदमियोंका उपयोग किये जानेसे ही यह विद्रोह हो सका है।

संयुक्त अरब गणराज्य प्रचार तथा सामग्रीके रूपमें जो सहायता दे रहा है, उसका उद्देश्य लेबनानकी कानूनसम्मत सरकारको उलटकर ऐसी सरकार स्थापित करना है, जो लेबनानको उसकी नीतियोंके अधीन ले जाये।

अमेरिकाकी यह मान्यता है कि संयुक्त राष्ट्रिय प्रेक्षक दल

को उपलब्ध वर्तमान साधन अपर्याप्त हैं और हम इस दलकी कार्यवाहियोंको बढ़ा हुआ देखना चाहते हैं। (संयुक्त अरब गणराज्यने जब विद्रोहकी दृष्टिसे हस्तक्षेप करना शुरू किया, प्रेक्षक उससे छः सप्ताह बाद लेबनान पहुंचे और वे विद्रोही इलाकोंमें केवल कुछ स्थानोंपर ही जा सके।)

अमेरिकी सेनाएँ अन्तरिम कार्यवाहीके तौरपर लेबनान भेजी गई हैं और इस सम्बन्धमें संयुक्त राष्ट्र-संघ द्वारा की जानेवाली अगली कार्यवाहीकी प्रतीक्षा की जा रही है। अमेरिकी सेनाएँ वहाँ अमेरिकियोंकी जीवन-रक्षा तथा लेबनान सरकारको अपनी लेबनानकी तथा राजनीतिक अक्षुण्णताकी रक्षा करनेमें मदद देनेके लिए हैं।

अमेरिकाने संयुक्त राष्ट्र-संघमें एक प्रस्ताव रखा है, जिसमें लेबनानकी रक्षाके लिए संयुक्त राष्ट्रीय सेना भेजने तथा देशके भीतर और बाहरसे की जानेवाली ध्वंसात्मक कार्यवाहियोंको बन्द करनेकी माँग की गई है। जब ये बातें पूरी हो जायँगी, तब अमेरिका अपनी सेनाएँ वापस बुला लेगा।

लेबनानकी स्थितिकी स्वेज-संकटसे तुलना करना गलत और भ्रामक है। अमेरिकाने इन दोनों मामलोंमें सम्बद्ध देशोंकी कानूनी ढंगसे स्थापित सरकारोंका समर्थन किया है। (कादर-सरकारकी तथाकथित प्रार्थनापर रूसियोंने हंगरीमें जो हस्तक्षेप किया, यदि उसकी लेबनानके मामलेसे तुलना की जाय, तो यह और भी गलत और भ्रामक होगा। यह नागी सरकार थी, जिसे रूसियोंने उखाड़ फेंका था और कादर-सरकारको रूसियोंने स्वयं उसके स्थानपर नियुक्त किया था।)

लेबनानके मामलेमें जो प्रश्न उपस्थित है, वह स्वतन्त्र और स्वाधीन रहनेके बारेमें छोटे राष्ट्रोंके अधिकारका है। यदि हम लेबनानको बाहरी तोड़-फोड़का शिकार होने देते, तो कोई भी छोटा राष्ट्र अपनेको सुरक्षित अनुभव नहीं कर सकता।

यदि संयुक्त राष्ट्र-संघके सायेमें कानूनी तरीकेसे निर्वाचित सरकारोंके अधिकारोंकी इस प्रकारके हस्तक्षेपोंसे, जैसा कि लेबनानमें किया गया है, रक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं हुई, तो संयुक्त राष्ट्र-संघ का हाल भी वही होगा, जो कि राष्ट्र-संघका हुआ था।

अमेरिका अरब राष्ट्रवादका समर्थक है और बराबर इसका समर्थन करता रहेगा। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि एक अरब देश द्वारा कानूनी तरीकेसे निर्वाचित दूसरी सरकार के खिलाफ की गई विध्वंसात्मक कार्यवाहियोंको नजरअन्दाज कर दिया जाय।"

लेबनानमें अमरीकी हस्तक्षेप किसीको पसन्द हो या नहीं, पर इतना स्पष्ट है कि लेबनानमें अमरीकी सेनाका प्रवेश इंग्लैंड और फ्रांस द्वारा स्वेज नहरके आक्रमणके समान नहीं है। कानूनी तौरसे स्वेजपर आक्रमण था और लेबनानमें अमरीकी सेनाका प्रवेश आक्रमण नहीं है। साथ ही अमरीका स्वेज-आक्रमणका विरोधी है। यह बात दूसरी है कि लेबनान में अमरीकी प्रवेशका पश्चिमी एशिया और मध्य-पूर्वमें भिन्न प्रकारका प्रभाव हो। वैसे यदि बाहरी प्रचार और बाहरी सहायता लेबनानके विद्रोहियोंको रोक दी जाय, तो लेबनानमें संयुक्त राष्ट्रिय पुलिस सेना शान्ति-रक्षाके लिए भेज देनी चाहिए।

बुनियादी बात

लेबनानके विषयमें हमारे खयालसे बुनियादी बात यह है कि रूस चाहता है कि मध्य-एशियामें उसके प्रभावकी स्थापना हो और अमरीका अपना प्रभाव चाहता है। बस, इन दो बातोंको लेकर ही पश्चिमी एशियाकी राजनीतिका घोटाला हो रहा है। इस बातमें भी कोई सन्देह नहीं कि अरब राष्ट्रोंमें जागृतिकी एक लहर दौड़ रही है और उस जागृतिका प्रतीक है मिस्र। अरब लोगोंमें मध्य-पूर्वसे लगाकर अल्जीरिया और ट्यूनिसिया तक विदेशी शासनके विरुद्ध एक भारी रोष है और जहाँ-जहाँ अरब राष्ट्रोंका शासन सुल्तानों और शेखों तथा राजाओं द्वारा होता है, वहाँकी जनता दुःखी तो है ही, जाग्रत भी है। मुकुट धराशायी हो रहे हैं, राजाओंका निष्कासन हो रहा है। जो चिपके रहना चाहते हैं, उनको तलवारके घाट उतारा जा रहा है। मध्य-पूर्वकी राजनीति विशेषकर तेल-भण्डारोंमें ही केन्द्रीभूत है। राष्ट्रपति नासिर कम्यूनिस्ट नहीं हैं, पर उन्हें भुगतना पड़ा है। वे अमरीका और इंग्लैंडके विरोधी हैं, अतः रूसके तरफदार। मिस्र और सीरियाका एक अरब गणतन्त्र बन गया है और उसकी प्रतिक्रिया अन्य अरब राष्ट्रोंमें है। मध्य-पूर्वका तेल एक प्रकारसे इंग्लैंड और अमेरिकाके अधीन है। यदि कुवैत और ईराकका तेल इंग्लैंडको न मिले, तो उसकी आर्थिक व्यवस्था और यातायातपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। रूस जब यह माँग करता है कि लेबनानसे अमरीकी सेनाएँ हट जायँ, तब वह इस बातको भूल जाता है कि पूर्वी जर्मनी, हंगरी और आस्ट्रियामें रूसको अपनी सेनाएँ रखनेका क्या

अधिकार है। बस, यही न कि वहाँकी कम्यूनिस्ट सरकारें वर्त्तमान सोवियत शासनके अधिकारमें हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हम लेबनानमें विदेशी सेनाएँ चाहते हैं, वरन् यह कि प्रश्न तो सत्ता और प्रभावका है। रूस मध्य-यूरोपमें अपनी सत्तामें तनिक भी कमी नहीं करना चाहता, वरन् कई देशोंकी स्वतन्त्रताके नामपर वहाँ रौकेटोंके अड्डे और अणु-आयुधोंके भण्डार रखनेकी बात भी चल रही है। अमरीकाका प्रभाव मध्य-पूर्वमें है और वह भी उसे बनाये रखना चाहता है। हम इन दोनोंमें से किसी एकके भी पक्षपाती नहीं हैं। इन समस्याओंमें हमारी कोई हस्ती नहीं, पर निष्पक्ष विवेचन तो हम कर ही सकते हैं।

ईराकमें खूनी क्रान्ति

गत १४ जुलाईको ईराककी शासन-प्रणालीमें हिंसात्मक ढंगोंसे पुराना शासन-सूत्र पलट दिया गया। कतिपय युवक ईराकी सैनिक अधिकारियोंने ईराकके युवक राजा फैजुल द्वितीय और युवराज अब्दुल इलाह और ईराकके लौह प्रधान मन्त्री नूरी-अल-सईदको मार डाला। एक खबर तो यह भी है कि राजघरानेका कोई भी व्यक्ति युवक सैनिकोंने जीवित नहीं छोड़ा तथा ईराकमें प्रजातन्त्र प्रणालीकी स्थापना कर दी तथा नए प्रधान मन्त्री अब्देल करीम खातिम बना दिए गए। हत्याका षड्यन्त्र इतनी सतर्कता और संगठित रूपसे कार्यान्वित किया गया कि कूटनीति-विशारद नूरी-अल-सईद को भी वह अपने जीवनको अन्तिम घड़ियोंसे कुछ पूर्व ही मालूम हो सका। ईराक अरबका एक बहुत ही उपजाऊ भाग है। दजला और फरात नदियोंके कारण वहाँकी भूमि काफी उपजाऊ है और ईराकी तेल इंग्लैंडकी आर्थिक व्यवस्थाकी जान है। स्मरण रहे कि नूरी-अल-सईद एक घुटे-घुटाये राजनीतिज्ञ थे और राष्ट्रपति नासिरके घोर विरोधी। जब मिस्र और सीरियाका एक संयुक्त गणतन्त्र बना, तब नूरी-अल-सईदने फौरन ही ईराक और जोर्डनका एक संघ बनाया। पश्चिमी राष्ट्रोंके हामी होनेके कारण नूरी-अल-सईद मध्य-पूर्वमें पश्चिमी राष्ट्रोंके स्तम्भ थे। पाठकोंको यह बताना भी आवश्यक है कि स्व० नूरी-अल-सईद स्व० लौरेंसके मित्रों और साथियोंमें से थे और गत प्रथम महायुद्धमें तुर्कीके विरुद्ध अरब लोगोंको करनेमें लौरेंस और नूरीका हाथ था। ईराकी क्रान्तिसे पश्चिमी राष्ट्रोंको बड़ा भारी धक्का लगा है और रूस तथा मिस्र इस क्रान्तिपर खुशियाँ मना रहे हैं। राष्ट्रपति नासिरने तो स्पष्ट कहा है कि ईराकी क्रान्तिकी जीत मिस्रकी जीत है। जिन ईराकी युवक जनरलोंने हिंसात्मक सफल क्रान्ति की है, उनमें से सब ही ने इंग्लैंडमें शिक्षा पाई थी और वे सब अंग्रेजोंके विरोधी हैं। ईराकी सरकारको सबसे पहले मान्यता मिली मिस्र, रूस और चीनसे। भारतने भी ईराककी नई प्रजातन्त्र सरकारको मान्यता दे दी। खबर तो यह भी है कि सउदी अरब भी ईराकको मान्यता देनेको तैयार है।

ईराकी क्रान्ति और बगदाद पैक्ट

बादशाह फैजुल और नूरी-अल-सईद तुर्कीकी राजधानी अंकारामें बगदाद संधि सम्बन्धी देशोंकी एक महत्त्वपूर्ण बैठक में भाग लेनेको हवाई अड्डेकी ओर जा रहे थे कि उनपर छापा मारा गया। तुर्कीमें तुर्कीके प्रधान मन्त्री उनके स्वागतके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे, पर अंकारा पहुंचनेके बजाय वे दूसरी दुनियामें पहुंचा दिए गए। ईराक बगदाद संधि देशोंकी जान था और जब ईराकमें प्रजातन्त्र हो गया और उसने बगदाद संधिसे अपने आपको अलग कर लिया, तब फिर इस समय बगदाद संधि व्यावहारिक रूपसे बेकार-सी है। ईराकको बगदाद संधि देशोंकी जान न भी मानें, तब भी वह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी तो था ही। उस कड़ीके टूट जानेसे वह संधि बिखरी पड़ी है। एक समाचारपत्रमें हमने यह पढ़ा कि अंकारामें यह प्रस्ताव आनेवाला था कि ईरान और पाकिस्तानका एक संघ-शासन बना दिया जाय। भारत बगदाद संधिके विरुद्ध रहा है और विरोधकी मूल बात यह है कि पाकिस्तान आए दिन इन्हीं संधियोंके कारण और पश्चिमी राष्ट्रोंके गुटमें होनेके कारण भारतको अपमानित करनेकी कोशिश करता है। उसकी गुंडागीरी भारतीय सीमापर निरन्तर रूपसे जारी है। स्वयं तो पाकिस्तानमें कोई दम नहीं है, पर वह ईसपकी एक कहानीमें वर्णित उस बकरीके समान है, जो एक छतपर खड़ी होकर भेड़ियेको गाली देती थी। भेड़ियेने बकरीसे अन्तमें यही कहा कि तू मुझे गाली नहीं दे रही, वरन् यह छत मुझे गाली दिला रही है। भारत भेड़िया नहीं है और न पाकिस्तान बकरी है, पर इतना अवश्य है कि पाकिस्तान जो इतनी बकवास करता है, वह बगदाद सन्धि और पश्चिमी राष्ट्रोंके बूतेपर करता है। स्वयं स्व० नूरी-अल-सईदने गत मनिलाकी सीटो कान्फ्रेंसमें तथा अन्य स्थानोंमें पाकिस्तानकी कश्मीर-नीति का समर्थन किया। हमें नूरी, फैजुल तथा अन्य ईराकी लोगोंके बधपर प्रसन्नता नहीं है। हम आदमीपर तो

गोली चला सकते हैं, पर शत्रुओंकी भी स्त्रियों और बच्चोंको नहीं मार सकते। हम इस कहावतको मानते हैं, 'जो तलवार में विश्वास करते हैं, वे तलवारके सहारे ही जीते हैं और तलवारके घाट ही उतरते हैं।' पर ईराकी प्रजातन्त्रपर हमें खुशी है। हम विश्व-इतिहासको समझते हैं। फ्रांसकी राज्य-क्रान्तिमें लुई, उनकी रानी मेरिया एन्टेनेरी तथा अन्य क्रांतिकारियोंको क्रांतिमें बाधा डालनेके आरोपमें जानसे मार डाला गया। रूसकी राज्यक्रांतिमें तो ज़ारके कुटुम्बियोंका तो बीन-बीन कर बध किया गया। अपने राजनैतिक शत्रुओंको मारनेकी प्रथा तो रूसमें एक प्रकारसे अब भी चल ही रही है। ईराकके क्रांतिकारी इस प्रकारकी प्रथासे प्रेरित हों तो कोई बात नहीं है।

जोर्डनके बादशाह हुसैन और ईराकके स्व० फैजुल चचेरे भाई हैं और वे हशमाइट क़बीलेके हैं। हशमाइट लोग ईराक़में अब भी हैं, पर ऐसा प्रतीत होता है कि ईराक के नवीन सूत्रधारोंने बड़े कौशलसे काम लिया है। जोर्डनमें भी गड़बड़ीकी आशंका थी, पर वहाँ अंग्रेजी सेना पहुँच गई है और अनेक सैनिक अधिकारियोंको गिरफ्तार कर लिया गया है। निःसन्देह ईराक़की घटना अरब राष्ट्रोंकी जाग्रति की द्योतक है। अन्य अरब राष्ट्रोंमें जनतन्त्रकी भावना जोरों पर है और कौन जाने सउदी अरबमें भी राजसी मुकुट भूशायी न हो जाय, क्योंकि सउदी अरबमें एक दल नासिर का पक्षपाती है और दूसरा पश्चिमी राष्ट्रोंका।

अब बगदाद सन्धिको पुनर्जीवित करनेके लिए पश्चिमी राष्ट्र कुछ करेंगे अवश्य, पर पाकिस्तानमें लाहौरके वकीलोंने एक सभामें प्रस्ताव पास किया कि पाकिस्तानको नई ईराक़ी सरकार मान लेनी चाहिए। पर पाकिस्तान तो नई ईराक़ी सरकारको तब मान्यता देगा, जब अमरीका और इंग्लैंड नवीन ईराक़ी सरकारको मान्यता देंगे। अमरीका और इंग्लैंडने इस समय स्पष्ट रूपसे कहा है कि उनका विचार ईराक़में कोई हस्तक्षेप करनेका नहीं है।

रूस क्या करेगा?

ईराक़की क्रान्ति और लेबनानमें अमरीकी सेनाओंके प्रवेशके कारण विश्वमें एक आतंक-सा छा गया कि आखिर रूसकी प्रतिक्रिया क्या होगी। हमारा प्रारम्भसे ही अनुमान था कि अमरीका लेबनानमें अपनी सेनाएँ अवश्य भेजेगा। अमरीकाकी स्थितिमें हम होते, तो हम भी वही करते, जो अमरीकाने किया। लोगोंमें बड़ी चर्चा थी कि मध्य-पूर्वके मामलेको लेकर रूस भी हस्तक्षेप करेगा, पर हमारी व्यक्तिगत राय परिस्थितिको देखकर यही थी कि रूस कोई ग़लत क़दम नहीं उठायेगा। रूस और अमरीकाका शीत-युद्ध चल रहा है और दोनोंमें से कोई भी तृतीय महायुद्ध प्रारम्भ करनेकी जोखिम सहज ही नहीं उठायेगा। लेबनानमें प्रवेश अवांछनीय होनेपर भी कानूनी है। श्री बंकरका ऊपर दिया गया बयान, राष्ट्रपति आइज़नहावरकी स्पष्टोक्ति और विश्वकी परिस्थिति को देखकर रूस मध्य-पूर्वमें सीधा हस्तक्षेप नहीं करेगा। बहसकी खातिर हम मान लें कि रूस हस्तक्षेप करना भी चाहे, तो किस प्रकार करे? यातायातके तीन ही मार्ग हैं—वायु, स्थल और जल-मार्ग। जल-मार्ग दर्रे दानियालसे सम्भव है। अमरीकाका शक्तिशाली छठा बेड़ा लेबनानके आसपास स्थित है। इंग्लैंडका विश्वविख्यात जलबेड़ा पैंतरेपर सतर्क खड़ा है, इसलिए रूसी बेड़ा लेबनानकी ओर न तो जिब्राल्टर से आ सकता है, न दर्रे दानियालसे, न स्वेज नहरसे। ईरानकी खाड़ीसे चक्कर काटकर रूसी सेनाका आना एक भयंकर भूल होगी। अब रहा थल-मार्गकी बात, सो तुर्की और ईरान तटस्थ देशोंसे रूसी सेनाएँ भेजना सम्भव है। पर रूसका वह क़दम आक्रमणकारी ठहराया जायगा। हाँ, रूस यदि महायुद्ध चाहता है, तो उसके लिए तुर्की और ईरान होकर आक्रमण करना नितान्त सम्भव है। अब रही वायु-मार्गकी बात, सो वायुयानों द्वारा छतरीधारी तथा अन्य सैनिक उतारे जा सकते हैं, पर केवल वायु-सेनासे ही महायुद्ध में कुछ नहीं है। फिर जब महायुद्ध ही छेड़ना है, तब रूस रौकेटों और दूरमारक अणु-आयुधोंसे ही अमरीका और इंग्लैंड को नष्ट करनेका प्रयास क्यों न करे। पर इस प्रकारके युद्धमें सम्पूर्ण विश्वका विनाश सम्भव है। साथ ही रूस इतना मूर्ख नहीं है, जो इस प्रकारका काम करे। पहले उसे कूटनीतिकी लड़ाई लड़नी है और अब तककी कूटनीतिकी लड़ाईमें रूसका पलड़ा भारी ही रहा है। हाँ, रूस मध्य-पूर्वमें वालन्टियर्स भेज सकता है। समाचारपत्रोंकी ख़बर है कि राष्ट्रपति नासिरने रूससे आग्रह किया कि वह मध्य-पूर्वमें अभी दखल न दे, इसलिए रूस अभी कुछ नहीं कर रहा है। यदि राष्ट्रपति नासिरने ऐसा किया है, तो हम उनकी बुद्धिमत्ताको बधाई देते हैं।

एक बात हम और स्पष्ट कर दें कि मध्य-पूर्वकी अब तककी घटनाओंसे नासिर और ख्रुश्चेवका प्रभाव और प्रतिष्ठा बढ़े हैं। राष्ट्रपति नासिर अपनी राजनीतिक पैंतरेबाज़ीके कारण

अन्तर्राष्ट्रिय ख्यातिके व्यक्ति बन गये हैं। रूसके प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चेवको अपनी नीतिमें सफलता ही मिली है, क्योंकि बग़दाद सन्धिका एक महत्वपूर्ण स्तम्भ नूरी-अल-सईदका ईराक़ ख्रुश्चेव और नासिरका पक्षपाती बन गया है। लेबनानकी स्थिति रूसके पक्षमें है। आगे क्या होना है, इसपर कुछ लिखना अभी असामयिक होगा।

राष्ट्रपति नासिरकी दौड़-धूप

गत मास राष्ट्रपति नासिर यूगोस्लेवियाके राष्ट्रपति टिटो से मिले और कई दिनोंके परामर्शके बाद एक संयुक्त वक्तव्य इस आशयका निकला कि शासनाध्यक्षोंका शिखर सम्मेलन होना चाहिए और मध्य पूर्वमें पश्चिमी राष्ट्रोंको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। स्मरण रहे कि यूगोस्लेविया और रूसमें तनातनी चल रही है, पर ऐसा लगता है कि राष्ट्रपति नासिर अपनी लम्बी रूसी यात्राके बाद श्री टिटोको रूसका कुछ सन्देश ले गये हों। पर राष्ट्रपति नासिरकी जो गुप्त यात्रा रूसकी हुई, उसका केवल यह ही समाचार छपा कि किसी विशेष मन्त्रणाके लिए राष्ट्रपति नासिर गुप्त रूपसे रूसके प्रधान मन्त्री श्री ख्रुश्चेवसे मिलने गये। यह सब मिलन लेबनानमें अमरीकी प्रवेशके बाद हुआ। स्पष्ट है कि मध्य-पूर्वमें रूसकी क्या नीति होगी, इस विषयपर अन्तिम वार्ता हुई होगी।

मध्यपूर्व सम्बन्धी सुरक्षा परिषद्की बैठक

मध्य-पूर्वकी बिगड़ती हालतको देखकर सुरक्षा परिषदकी आवश्यक बैठक बुलाई गई मध्य-पूर्वकी स्थिति सुलझानेके लिए, ताकि अमरीकी सेनाएँ वहाँसे हट जायँ। विभिन्न विचार रखे गये और जापानने एक प्रस्ताव इस बातका रखा कि लेबनानमें संयुक्त राष्ट्रकी एक पुलिस सेना भेज दी जाय। मध्य-पूर्व सम्बन्धी वाद-विवादमें अमरीका और रूसने एक-दूसरेपर खूब कीचड़ उछाली और रूसने अपने विशेषाधिकार (वीटो) का प्रयोग करके जापानी प्रस्तावको गिरा दिया। यह भी कोशिश की गई कि संयुक्त राष्ट्रसंघकी जनरल एसेम्बलीको बुलाया जाय, पर यह बात तय नहीं हो सकी। रूसकी ओरसे स्पष्ट कह दिया गया कि पश्चिमी एशियाकी बिगड़ती हालत देखकर रूस चुप न बैठ सकेगा। हम पहले ही ऊपर कह चुके हैं कि रूस तृतीय महायुद्धके प्रारम्भ करनेके जोखिमको नहीं उठायेगा ; पर यदि स्थिति बिगड़ती गई, तो रूसी प्रोपेगैंडासे ईरानकी स्थिति बिगड़ सकती है। रूसी सीमावर्ती ईरानका ऐज़रबेजान इलाक़ा एक प्रकारसे कम्यूनिस्ट प्रभावमें है। वहाँपर ईरानी कम्यूनिस्ट दल—तूदे दल—काफी प्रभावशाली है और ईरानके लिए सबसे खराब बात यह होगी कि ऐज़रबेजान वर्तमान ईरानी शासनके विरुद्ध विद्रोह कर दे और रूस उसकी सहायता करे। हम यह बात इस आधारपर लिखते हैं कि रूसकी नीति यह रही है कि वह अपनी सीमाका विस्तार करता रहे। स्वयं ईरानमें शाह ईरानका एक विरोधी दल है, पर शाह ईरान बहुत लोकप्रिय हैं और ईरानी घटनासे वे काफी सतर्क हो गये होंगे।

श्री ख्रुश्चेवका प्रस्ताव

जैसा हमने ऊपर लिखा है कि रूसका कूटनीति-युद्ध बड़ी तेज़ीसे जारी है। श्री ख्रुश्चेवने एक बड़ा तेज़ क़दम उठाया है। उन्होंने राष्ट्रपति आइज़नहावर, इंग्लैंडके प्रधान मन्त्री श्री हैरल्ड मैकमिलन, फ्रांसके प्रधान मन्त्री जनरल डी गौल और भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूको पत्र लिखकर इस बातपर ज़ोर दिया है कि पश्चिमी एशियाकी बिगड़ती हालत को सुधारनेके लिए शिखर सम्मेलन शीघ्र कर लिया जाय। उन्होंने सम्मेलनकी तिथि भी एक थोड़ी अवधिकी बाँध ली थी। राष्ट्रपति आइजनहावर, प्रधान मन्त्री हैरल्ड मैकमिलन, जनरल डी गौल, भारतके पं० जवाहरलाल नेहरू और अरब राष्ट्रके प्रतिनिधि न्यूयार्कमें मिलें और श्री ख्रुश्चेव स्वयं उसमें भाग लेनेको न्यूयार्क जानेको तैयार हैं। उन्होंने भारतके प्रधान मन्त्री पं० नेहरू और अरब राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनमें भाग लेनेपर काफी जोर दिया और स्पष्ट कह दिया कि बिना इनके सम्मेलन करना व्यर्थ है। इस पत्रकी प्रतिक्रिया अमरीका, इंग्लैंड, फ्रांस और भारतमें बहुत अच्छी हुई। पं० नेहरूने स्पष्ट लिख दिया कि अगर इस शिखर सम्मेलनमें भाग लेनेसे विश्व-शान्ति-स्थापनामें कुछ सहायता मिल सकती हो, तो वे सहर्ष तैयार हैं। पर सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सम्मेलन बुलानेको जो थोड़ी अवधि रूसने दी है, उसमें सम्मेलनकी बैठक सम्भव नहीं। उसमें चार-पाँच दिनके नोटिससे विभिन्न राष्ट्र अपने पूर्व निश्चित प्रोग्राम रद्द नहीं कर सकते। फिर पश्चिमी राष्ट्र रूसी प्रस्तावपर विचार करनेमें कुछ समय भी लेंगे और यह सम्मेलन कहाँ होता है, इसका निर्णय भी श्री ख्रुश्चेवके ऊपर न होगा। हमारे विचारसे ऐसे सम्मेलनकी नितान्त आवश्यकता है। अंग्रेजी समाचारपत्रोंमें यह खबर भी छपी है कि लेबनानको अन्तर्राष्ट्रिय क्षेत्र करार दे दिया जाय। अभी प्रोग्रामके बारेमें इन पंक्तियोंके लिखते समय तक (२३-७-५८) कोई समाचार नहीं मिला है।

ख्रुश्चेवको उत्तर

इन पंक्तियोंके लिखते समय (२५-७-५८) राष्ट्रपति आइज़नहावरने रूसके प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेवको पश्चिमी एशिया सम्बन्धी शिखर सम्मेलनके विषयमें उत्तर दिया है कि शिखर सम्मेलन अवश्य हो, पर उसमें सुरक्षा परिषदके स्थायी सदस्य मूलतः भाग लें। सुरक्षा परिषदके स्थायी सदस्य हैं रूस, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, इंग्लैंड, फ्रांस और कोमिंटांग। यों बातें करनेके लिए और देश भी आ सकते हैं, क्योंकि शिखर सम्मेलन सुरक्षा परिषदकी कार्य-विधिके अनुकूल होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अमरीकाके मतसे शिखर सम्मेलन केवल लेबनान और जोर्डनको लेकर ही न हो, वरन् उन राष्ट्रोंसे मिलनेवाले राष्ट्रोंके सम्बन्धमें भी होने चाहिए। शिखर सम्मेलनके प्रोग्राम और उसकी तिथि संयुक्त राष्ट्र कौंसिल ही तय करे। ऊपर बताया गया है कि रूस इस सम्मेलनमें अरब राष्ट्रों और भारतके प्रतिनिधि को भी चाहता है। शिखर सम्मेलनकी इस पृष्ठभूमिमें समझमें नहीं आता कि दोनों ओरकी पैंतरेबाज़ीसे कोई सफल नतीजा निकल भी सकेगा या नहीं। अनुमानतः यदि जल्दी-से-जल्दी शिखर सम्मेलनकी तिथि निश्चित हो सकी, तो वह अगस्तके द्वितीय सप्ताहसे पूर्व नहीं हो सकती। शिखर सम्मेलनके सम्बन्धमें राष्ट्रपति आइज़नहावरने जो यह बात कही है कि शिखर सम्मेलन केवल लेबनान और जोर्डनके सम्बन्धमें नहीं होना चाहिए, वरन् उन सब देशोंके सम्बन्धमें भी, जिनके क्रिया-कलापोंका आघात-प्रतिघात लेबनान या जोर्डनमें होता है, उचित कही है।

एक आशंका

इन पंक्तियोंके लिखते समय रेडियोपर हमने सुना कि रूसने तुर्कीको धमकी दी है कि यदि उसने ईराक़में कुछ गड़बड़ी की है, तो उसे फल भोगनेको तैयार रहना चाहिए। स्पष्ट है कि यदि तुर्कीने बग़दाद सन्धिके सम्बन्धमें मध्य-पूर्व के मामलेमें सक्रिय भाग लिया, तो रूस तुर्कीपर आक्रमण करेगा। ऐसा होनेपर मध्य-पूर्वमें तृतीय महायुद्धका सूत्रपात होगा। इसके अतिरिक्त हमने 'स्टेट्समैन' में कैरोके समाचारपत्र 'अल अहरान' में लिखित एक लेखका अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा, जिसमें 'अल अहरान' के सम्पादक मुहम्मद हैकल राष्ट्रपति नासिरके साथ गुप्त यात्रामें मास्को गये थे, उसीकी चर्चा उन्होंने की है। मुहम्मद हैकल राष्ट्रपति नासिरके मित्र भी हैं। सम्भव है, यह लेख प्रोपेगैंडा मात्र हो और यह भी सम्भव है कि प्रतिष्ठा बढ़ाने और रोब गाँठनेको वे सब बातें लिखी हों। रोब गाँठनेकी बात हम इसलिए कह रहे हैं कि कैरो और मास्कोमें इस प्रकारकी बातें प्रायः छपा करती हैं और उनका उत्तरदायित्व वहाँकी सरकार पर नहीं होता। लेखका सार यह है कि प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेवने राष्ट्रपति नासिरको बताया कि भूमध्यसागरमें लेबनानके निकट स्थित अमरीकी छठे जहाजी बेड़ेको रूस आवश्यकता पड़नेपर बिलकुल नष्ट कर सकता है और रूसी सेना तुर्की और ईरानकी सीमापर अपनी सैनिक गति-विधिसे लैस है। हमारे मतसे अमरीकाने इन सब बातोंको सोच ही लिया होगा और अपने बेड़ेके बचावके लिए कुछ किया ही होगा। हम महायुद्धके हामी नहीं और हमारे खयालसे आशंकाओंके होनेपर भी तृतीय महायुद्ध न भड़के ; पर एक बात निश्चित है कि यदि अमरीकी छठा जहाजी बेड़ा नष्ट होता है, तो उसके साथ मिस्र और ईराक भी नष्ट हो जायेंगे। तृतीय महायुद्धसे विश्वका कौन-सा राष्ट्र बचेगा, हमारी तो समझमें नहीं आता। बस, यही एक रुकावट तृतीय महायुद्धके लिए है। हाँ, अणु-आयुधोंको छोड़कर युद्ध हो जाय, तब और बात है। पर तीसरे महायुद्धमें रौकेटों और अणु-बमोंका प्रयोग न होगा, इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते।

पाकिस्तान और भारत

भारतकी विदेशी नीतिसे भारतकी प्रतिष्ठा काफी बढ़ी है, पर भारतकी पाकिस्तान सम्बन्धी नीति तथा केन्द्रीय सरकारके गृह-विभागकी ढिलाईके कारण भारतकी प्रतिष्ठाको काफी धक्का भी लगा है। पाकिस्तान अपनी गुंडागीरीपर तुला है और भारतकी ओरसे सिवाय विरोधके और कुछ नहीं होता। पाकिस्तान इस बातसे लाभ उठाता है, क्योंकि सीमावर्ती जितनी घटनायें होती हैं, उनका उत्तर बड़े गुस्सेमें दिया जाता है, पर पाकिस्तान इसे केवल विरोध मात्र समझता है। हमारा मतलब यह कभी नहीं है कि छोटी-छोटी घटनाओंको लेकर भारत पाकिस्तानसे युद्ध छेड़ दे या गुण्डागीरी करे। पर भलमनसाहतके मानी कमजोरी के कभी नहीं हैं और हम भारतके प्रतिरक्षा-मन्त्री श्री मेनन की बात दुहराते हैं कि 'जो राष्ट्र अपनी सीमाकी रक्षा नहीं कर सकता, वह अपनी आजादी कायम नहीं रख सकता।' हम अपनी सरकारपर यह आरोप अवश्य लगाते हैं कि हमारी पाकिस्तान सम्बन्धी नीति बड़ी ढीली है। आन्तरिक शासन भी ढीला है। ढीले पुर्जेवाली मशीन ठीक कार्य

नहीं करती। उदाहरणके लिए पश्चिमी पाकिस्तान और हमारे पंजाबकी सीमापर फजलिकाके निकट पाकिस्तानकी सीमा पुलिसने सात भारतीय सैनिकोंको मार दिया। भारत ने विरोध प्रगट किया और हरजाना तथा माफीनामेकी माँग की। पर गत २५ जुलाईकी करांचीकी खबर है कि पाकिस्तान-सरकारने भारतीय विरोधको खारिज करके कह दिया कि पाकिस्तानी सीमा पुलिसने आत्म-रक्षामें गोली चलाई, जिससे सात भारतीय मारे गए। अब भारत क्या करेगा? मामला यहीं तक नहीं है। असम और पूर्वी पाकिस्तानको सीमापर जो झगड़े हुए थे और पाकिस्तानी सैनिकोंने लगातार भारतीय सीमापर गोली चलाई। विरोध-प्रदर्शनसे गोलीका चलना बन्द हुआ, पर पाकिस्तानने अपने रौबका सिक्का बिठा लिया। सीमावर्ती भारतीयोंके दिलोंपर यह बात घर कर गई है कि सीमावर्ती भारतीयोंका वहाँ रहना खतरनाक है। अब खबर आई है कि वहाँ पाकिस्तानी सेना खाइयाँ खोद रही है। छिटपुट झगड़े हो ही जाते हैं। पश्चिमी बंगालमें भी मुर्शिदाबादकी सीमा पर पाकिस्तानियोंने प्रवेश किया और भारतकी ओरसे बस वही कड़ा विरोध और तेज भाषणोंका दौरा रहा। अगर केवल उग्र भाषणोंसे ही समस्या हल हो जाती, तो प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेव और राष्ट्रपति आइजनहावर वक्ताओंके वाक् युद्ध करा देते। केन्द्रीय सरकारको हम बता देना चाहते हैं कि भारतकी पाकिस्तान सम्बन्धी ढिलमिल नीतिसे बहुत कम लोग सन्तुष्ट हैं। सीमावर्ती पाकिस्तानी दुर्घटनाओंको रोकनेके लिए केन्द्रीय सरकारकी आज्ञाकी आवश्यकता नहीं है। आखिर पाकिस्तान पुलिस और सेना इतना दुस्साहस क्यों करती है कि मनमाने ढंगसे वह भारतीय पुलिसमैनों और नागरिकोंको मार देती है। क्या भारतीय अपनी आत्मरक्षाके लिए कुछ नहीं कर सकते? आवश्यकता इस बातकी है कि पाकिस्तानी ऐसा दुस्साहस ही न करें।

भारतका शत्रु

पाकिस्तानके खाकसार नेता अल्लामा मशरिकीने कहा था कि पाकिस्तानका भीतरी शत्रु नं० एक स्व० डा० खान साहब थे और विदेशी शत्रु नं० एक पं० नेहरू। पाकिस्तान की गतिविधिको देखकर हमें कहना पड़ता है कि भारतका अगर कोई शत्रु है, तो वह पाकिस्तान है। भारतके विरुद्ध उसने पुर्तगालसे साँठ-गाँठ की। कश्मीरके मामलेको लेकर उसने ईराकी पुरानी सरकारको भड़काया और बगदाद संधि-सम्बन्धी देशोंमें भारतका विरोध किया। हमारी धारणा तो यहाँ तक है कि चौधरी गुलाम अब्बास आदिका जो तमाशा था कि वे कश्मीरमें प्रवेश करेंगे और पाकिस्तानने उनकी गिरफ्तारी कराई, वह सब मियाँ नून और पाकिस्तानके अन्य उच्च अधिकारियोंके इशारेसे हुआ। हमें तो यह भी आशंका है कि इस प्रकारकी कार्यवाही करानेमें किसी विदेशी सरकारका भी हाथ हो सकता है। पाकिस्तान में इतनी शक्ति नहीं कि वह इतनी मुँहजोरी करे। इसके अतिरिक्त एक सैनिक सिद्धान्त यह है कि जब कोई राष्ट्र किसीसे भिड़ना चाहता है, तब वह दूसरे राष्ट्रकी आन्तरिक शक्तिके अनुमानके लिए सीमापर उत्पात करता है। इससे प्रतिक्रियाको वह जान लेता है। अगर प्रतिक्रिया तीव्र हुई, तो वह नहीं भिड़ता। हमारे अनुमानसे पाकिस्तानने इसी प्रकारकी परीक्षाएँ भारतकी सीमापर की हैं। गुण्डागीरीको बढ़ावा देना, चाहे वह राष्ट्रिय स्तरपर हो, चाहे अन्तर्राष्ट्रिय स्तरपर, हमेशा हानिकारक होता है और इस दृष्टिसे हम अपनी केन्द्रीय सरकार और राज्योंकी सरकारको उनकी ढिलाईपर क्षोभ प्रगट करते हैं और उनपर कमजोर गृह-नीति का आरोप भी लगाते हैं और आशा करते हैं कि भारत-सरकार इस स्थितिको रोकनेकी कोशिश करेगी।

पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि पाकिस्तान नागाओं को भड़काने, हथियार देने और उनका स्वागत करनेमें भी नहीं चूकता और गैर-सरकारी तौरसे पाकिस्तानने माँग की है कि नागा प्रदेश पाकिस्तानमें मिला दिया जाय। इन सब घटनाओंको देखते हुए हमें ऐसा लगता है कि विदेशी नीति की जो हमारी प्रतिष्ठा है, उसमें हमारी भीतरी कमजोरीसे काफी बट्टा लगता है। हम यह नहीं कहते कि हमारा देश किसी गुटमें शामिल हो जाय, पर यह अवश्य कहते हैं कि जब कभी कोई विदेशी मसला सामने आता है, तो जो आतुरता हमारे प्रधानमन्त्री दिखाते हैं, मानो हमारे कारण ही विश्व-शान्ति बनी है। विश्वमें नेहरूजीके कारण भारतकी प्रतिष्ठा है। देशमें भुखमरी मुँह बाये खड़ी है, कांग्रेस शासन डूब रहा है, दलबन्दीके पाटोंमें देश पिस रहा है, सीमापर हम अपमानित होते हैं, इन सब समस्याओंमें इतनी आतुरता क्यों नहीं दिखाई जाती?

हम राजा महेन्द्रप्रतापकी इस बातसे सहमत नहीं हैं कि हमारा कर्तव्य पाकिस्तानको मिटाना है, पर हमारी मान्यता यह अवश्य है कि हमारे देशको पाकिस्तान द्वारा अपमानित न होना पड़े और पाकिस्तानको सीमापर गुण्डागीरी करनेका दुस्साहस न हो। गुण्डागीरीके प्रति कमज़ोरीसे काम नहीं

चलता और न सीमावर्ती गुण्डागीरीके मामले सुरक्षा परिषद में ले जाये जा सकते हैं।

हिसार (पंजाब) फार्म विनाशकी ओर

गत २६ जुलाईके नई दिल्लीके हिन्दीके 'हिन्दुस्तान'में उसके संवाददाता द्वारा लिखित छठे पृष्ठके तीसरे कालममें निम्नांकित समाचार छपा है—

"पंजाबके मुख्य मन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरोंने मंडल कांग्रेस कमेटियोंके कार्यकर्ताओंकी एक विशेष सभामें भाषण देते हुए कहा कि यह कहना बिलकुल गलत है कि गैर जिले के लोगोंको लाकर स्थानीय सरकारी फार्ममें बसाया जा रहा है। फार्मकी भूमि बिहारके हरिजनोंको ही दी जायगी। जिन मुजायरोंके पास पाँच एकड़से अधिक भूमि है, उनको भूमि बट्टेपर नहीं दी जायगी।"

उपर्युक्त समाचार इतना अधूरा और सूक्ष्म है कि उससे पूरी बात समझमें नहीं आती, पर इतना तो स्पष्ट ही है कि सरकारो हिसार फार्मकी भूमिपर लोग बसाये जा रहे हैं। पाठकोंको हम बता दें कि पशु-पालन फार्म हिसार भारतका ही नहीं, एशियाका सबसे बड़ा फार्म है। उसका क्षेत्रफल चौवालीस हज़ार एकड़ है। हिसारसे सिरसाकी ओर जानेमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक लगभग नौ मील लग जाते हैं। सन् १८०९ में फ्रांसीसियोंने ऊँट पालनेके लिए यह फार्म खोला था। बादमें अंग्रेजोंने इस फार्मकी उन्नति की। हिसार फार्म अंग्रेजोंकी एक ऐसी देन है, जिसपर हम गर्व कर सकते हैं। देहरादूनका फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, हिसार फार्म और कई अन्य ऐसे कार्य हैं, जो भारतके गौरवकी वस्तु हैं। यह हम जानते हैं कि भाखरा-नंगल बाँधके बँधते समय सुनाफाखोरोंने यह प्रयत्न किया था कि हिसार फार्म बन्द कर दिया जाय। हमने जब यह बात सुनी, तब स्व० रफी अहमद किदवईसे चर्चा की, तो उन्होंने बड़ी तेज़ीसे कहा, "हिसार फार्मको कौन खतम कर सकता है, वह तो चण्डूखानेकी बात है।" हमें बात सुनकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि एशियाका सबसे बड़ा फार्म उन्नति करता रहेगा। हिसारमें ऐसे भी कट्टरपंथी लोग हैं, जो हिसार फार्मको गो-वंशकी उन्नतिके लिए बाधक समझते हैं, पर हमारे खयालसे वे कठमुल्ले हैं। हमारा सरदार कैरो और देशके अन्य लोगोंसे आग्रह है कि उस फार्मकी भूमिको किसीको न दें, वरन् उसकी और उन्नति करें। वहाँसे बढ़िया चारा और घास देशके अन्य भागोंको भेजा जा सकता है। तर्कमें लोग कह सकते हैं कि हिसार फार्म तो चलेगा और उसके अधीन दस-पाँच एकड़ भूमि बनी रहेगी। हम उस फार्मकी एक एकड़ भूमिके देनेके भी पक्षमें नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि हिसार फार्म देशके लिए चारेका एक अपार भण्डार बन सकता है। वहाँ २५-३० हज़ार गायें रह सकती हैं। हरिजनोंको उद्योग-धन्धोंमें लगाइये और बनी-बनाई चीज़ मत बिगाड़िये। हिसार फार्मको खतम करना भारत और पंजाब-सरकारके लिए कलंक होगा और हरिजनोंका उससे उद्धार न होगा, क्योंकि हिसार फार्मको धक्का लगना गो-वंश और देशकी आर्थिक स्थितिपर आघात होगा। लोगोंको चाहिए कि वे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमन्त्री श्री नेहरू और आचार्य विनोबासे हिसार फार्मके विषय में चर्चा करें कि वहांकी एक एकड़ भूमि भी किसीको न दें। सरकार स्वयं जो-कुछ भी करना चाहे, वहाँ करे।

पशुओंके चारे और आहारकी योजना

गत १९ जुलाईके 'आर्थिक समीक्षा' पत्रिकाके पृष्ठ ४५ पर निम्नांकित समाचार छपा है :—

"हमारे देशके पशु निर्बल हैं और इसी कारण समय पर न ब्याने और अनियमित रूपसे ब्याने तथा कम दूध देने आदि की समस्याएँ बनी रहती हैं। पशुओंका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारोंके सहयोगसे उनके लिए अच्छा आहार और चारा देनेकी योजना दो वर्षसे चला रही है।

इस योजनाके अन्तर्गत केन्द्रिय खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय राज्योंको केन्द्र ग्रामोंमें ये काम शुरू करनेके लिए सहायता देता है। १९५७-५८ में आन्ध्र-प्रदेश, आसाम, बिहार, मैसूर, राजस्थान और त्रिपुराको अच्छा चारा पैदा करनेके लिए १,१५,००० रु० तक की सहायता दी गयी। चालू सालमें इन राज्योंके अलावा बम्बई, मद्रास, उड़ीसा और बंगालमें भी अच्छा चारा पैदा करनेकी योजनाएँ बनायी गयी हैं। अन्य राज्योंको भी ऐसी योजनाएँ बनानेको कहा गया है।"

हम उपर्युक्त योजनाका स्वागत करते हैं, क्योंकि चारे और ईंधनकी समस्या हल किए बिना खाद्यान्नकी समस्या हल नहीं हो सकती। खाद्यान्नकी कमी तो अभी १०-१२ वर्षसे ही है, पर चारेकी कमी गत ५० वर्षोंसे चली आ रही है। कृषि विभागको प्रत्येक जिलेमें बढ़िया और अधिक चारा उगवानेमें सहायता देनी चाहिए।

प्रसार-तिथि : २२-१-५८

व्रज-संस्कृतिकी विशेषताएँ

श्रीराम शर्मा

व्रज-संस्कृतिकी का विशेषताएँ ऐं, जा बात कूं समझिबेके लयें जि जानिबौं भौतू जरूरी ऐ कि संस्कृति कैत काए सूं ऐं और फिरि व्रज-संस्कृति है का ? इतनौ समझिबेके बाद ही व्रज-संस्कृतिकी विशेषताएँ मालूम परैंगी।

संस्कृति और सभ्यतामें फरकु ऐ। हृदय और मस्तक की जो उच्चतम सूक्ष्म भावनाएँ शब्द, संकेत, स्वर, वादन, उत्कीर्ण स्थापत्य, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा द्वारा प्रस्फुटित होति ऐं, बिनई सूं संस्कृति कहैत ऐं। इनकौ ई स्थूल रूप सभ्यता होतु ऐ। जि बात एक उदाहरण सूं और समझिमें आई जाइगी। एक मुसलमान बादशाहने चारि वेगमें करी। एक दिल्लीकी, दूसरी लखनऊकी, तीसरी ईरानकी और चौथी हती एक फूहर गँवरिया। बादशाहने जि जानिबेके लयें कि बिनकी संस्कृति कैसी ऐ, चारौन सूं एक ही बात अलगि-अलगि पूछी। अपनी लखनऊकी बेगमके महलमें जा दिना वु रह्यो, ता दिना बादशाहने सबेरेके चारि बजेके लगभग पूछी, "बेगम ! जि बताओ कि का बजो होइगो ?" लखनऊ बारी बेगम बोली, "हजूर, चारि बजे होंइगे।" तब बादशाहने कही, "तुमने कैसे जानी ?" बेगमने जवाब दयो, "हजूर, आपने जो सोवते बखत पानकी गिलौरी दई हती सो वु मौंहमें गरि गई ऐ। ताई सूं मेरो अन्दाजु ऐ कि चारि बजे होंइगे।" जब बादशाह दिल्ली वाली बेगमके महलमें गयौ, तब बेई सवाल बासूं करौ। दिल्ली बारी बेगमनेऊं ठीक चारिकौ बखतु बतायो। जब बादशाहने पूछी, "कैसे तुमने बखतु बतायो ?" तौ दिल्ली बारी बेगमने कहौ, "मालिक, मेरी नारिमें आपकौ दयौ जो हीरनकौ हास ऐ, बु ठण्डौ परि गयौ। चारि बजेके बखतु बु ठण्डौ परि जातु ऐं।" जाई तरह ईरानी बेगमने ऊं ठीक बखतु बतायो और जि पूछिबे पै कि बाने बखतु कैसे बतायौ, ईरानी बेगमने जवाब दयौ, "जहाँपनाह ! सोहबे तै पैले जो फूलनुकौ गजरा आपने दयौओ बाके फूल अब मुरझाई गये ऐं। बाई तैं हूं समझि गई कि चारि बजेकौ बखतु ऐ।" अखीरमें फूहर गँवारके महलमें जब बादशाह गयौ और बेई सवाल चारि बजेकी बिरियाँ बासूं करौ तौ देखिबेमें सुन्दर परि बैसें फूहर बेगमने ठीक बखतु बतायौ और कही, मैंने चारि बजैकौ बखतु तासूं बतायौ कि मेरो पेट गुड़गुड़ातु ऐ और मोई हँगास लगी ऐं।"

अब समझिबेकी बात जि ऐ कि चारौ बेगमनने बादशाह की बातकौ जवाब ठीक दयौ, परि किनने अपनी बात कौन-सी बातके सहारें कही और कैसे कही। अपनी मैतारी सूं अम्मा, माताजी कहिबौ कितनौ अच्छौ, मीठौ, स्नेहयगौ और सुन्दर ऐ। मैताईके लयें कोई बापकी लुगाई कहै तौ कितनी बुरी कुसंस्कृत बात होइगी। बस, इन बातनि सूं अच्छी तरह समझिमें आई गई होइगी कि संस्कृति का चीज है।

व्रजके मानी ऐं गोबरभूमि, चरागाह और वु भूमि जहाँ गैया बँधे। जाकौ सम्बन्ध गोचरभूमि और गायसूं होय वु संस्कृति भई व्रज-संस्कृति। व्रज-संस्कृतिके प्रवर्त्तक व्रजचन्द भगवान श्री कृष्णचन्द्र हते। बिनने लोगनिके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, भावनायें, नृत्य-वादन आदिके आचार-विचार लोगनुकूं सिखाये और उनकौ प्रचार करौ। बेई व्रज-संस्कृति भई। एक क्षेत्र-विशेषमें बा संस्कृतिकूं बिनने बढ़ायौ ताई सूं बा क्षेत्रकौ नामु व्रज परौ। भगवान कृष्णकौ गीताकौ उपदेश एक क्षेत्र-विशेषके लयें नाएं वु तौ दुनिया भरिके लयें ऐ। ठीक बा तरह जा तरह गाँधी, ईसा, बुद्ध आदिकौ उपदेश कोई हमारेई देशके लयें नाएँ वु तौ दुनिया भरिके लयें ऐ। व्रज-संस्कृति जा हिसाबसूं ग्राम-संस्कृति, विकेन्द्रीकरणकी संस्कृति, गृह-उद्योग, खेती, गोपालन, लोक-सेवा, कर्तव्य-पालन, समता और आध्यात्मिकके लयें ई नाएँ।

साम्यवादके प्रवर्तक कार्लमार्क्सने वैज्ञानिक भौतिकवादकी नींव पै साम्यवादकौ प्रचार करौ, परि कृष्णजीने अब तैं पाँच हज़ार बरस पहलें वैज्ञानिक भौतिकवाद लोगनि कूं समझायौ। जि बात, बकवासकी नाएं। भागवतमें बिनने इन्द्रकी पूजाके लयें लोगनि सूं नाई करी। अन्नकूटकी महिमा जो गाई जाति ऐ, सो भगवान कृष्णने ग्वाल-बालन कूं समझायौ कि मैं हूं जो वस्तु ऐ, वामें इन्द्रकी कौन-सी बात

है। बु तौ घाम, पानी और बादर जैसे ही कारनन सूं बस्सतु है। इन्द्रकी पूजा ताईं सूं बिनने छुड़वाई और लोगनि में समता फैलाई। जा हिसाब सूं व्रज-संस्कृति में वैज्ञानिक भौतिकवादकौ आधार खेती-बारी और खाइबे-पीबे कूं बारे में बतायौ ऐ, परि कोरो वैज्ञानिक भौतिकवादको सुन्दर समन्वय ऐ। आज जो पंचशीलकी चर्चा ऐ, बु व्रज-संस्कृति में मन, वचन और कर्मके स्तरपर चलाई गई। 'गीता' में कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोगकौ जो पूरौ और सुन्दर वर्णन ऐ, बु आजुऊ एक तरह सैं दुनिया भरि के लयें पंचशील और सह-अस्तित्व कौ नमूना ऐ। अर्जुन कूं जो व्रजचन्दने उपदेश दयौ कि तुम, कर्म करौ, अपनौ कर्त्तव्य पालन करौ और फल की आसा मति करो—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचिन'—जा हिसाब सूं कर्मके फलन कौ नामुई भाग्य ऐ। आदमी कौ धरम अपनौ कर्त्तव्य निभाइबे कौ ऐ। वाकौ फल भलो होय या बुरो, तासूं बीई कछू नई हौंनों चइयें। जाई सूं निष्काम कर्म कैत ऐं। भगवानने अर्जुन कूं जो उपदेश दयौ बू कोई अकेले अर्जुनके लयें नाए, बु तो अर्जुन जैसे लोगनिकी प्रवृत्ति भरिके हर युगके लोगनिके लयें ऐ। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे मानव-समाज चारि भागनमें बाँटौ जाई सकतु ऐ :—

१. कर्म-प्रधान लोग जो कर्म करिकै ई मोक्षकी प्राप्ति कत्त ऐ।
२. तार्किक लोग जो काऊ बात कूं बिना समझे और तर्क करै बिना मानत ई नाएं ऐसे लोगनि कूं ज्ञानयोग ऐ।
३. भक्ति-प्रधान लोग जो भक्ति-भाव सूं बिना पूछे-कछेई भगवानको सदा मानत ऐं बिनके लयें भक्तियोग बतायो ऐ।
४. रहस्यमयी बातनकूं मानिबे बारे लोगनि कूं राजयोग ऐ।

दुनिया भरिके धरम इनई चारौ योगनिमें आई जात ऐं। दिल्लीसे बम्बई, चायें बिमान सूं पौंच जाओ, चायें रेल सूं और चायें पाईन-पाईन, जि सब अपई-अपई सामर्थ के ऊपर ऐ। बाई हिसाब सूं कौनके लयें कर्मयोग, कौन कूं ज्ञानयोग और कौनसे कूं राजयोग या भक्तियोग ऐ। जि सब लोगनि की अपई-अपई मनोवृत्तिके ऊपर ऐ। जामें कोई लराईकी बात नायें। गहराई सूं सोचिबे पै दुनिया भरिके सब धरम इनई चारि बातिनमें आई जात ऐं। कोई ऊंच-नीच नायें। जाई सूं कही ऐ कि व्रज-संस्कृतिमें सब धरमति की एकता ऐं।

परि 'भूखें भजन न होई गोपाला' बारी बातऊ ठीक ऐ और ताई सूं व्रज-संस्कृतिमें अध्यात्म उन्नति के संग-संग भौतिक उन्नतिकी योजना ऐ। भौतिक उन्नति के लयें व्रज-संस्कृति में एक योजना हती ऐं आस बु योजना दो-चार बरस के लयें नायें बु तौ जा जनम और अगिले जनमि तकके लयें ऐ।

ऊपर बताई भई आध्यात्मिक उन्नति और भौतिक उन्नति के बिना व्रज-संस्कृतिकी कल्पना तक ना करी जाई सकति। मानव-समाज के लयें आध्यात्मिक उन्नतिमें अलग-अलग विधान और प्रवृत्तिनिके हिसाब सूं अलग-अलग योग-विधि बताई गई ऐ। भौतिक उन्नतिके लयें व्रज-संस्कृतिमें जो परम्परा और विधान ऐं, बे थोरें शब्दनमें यो कहे जाय सकत ऐं कि (१) सिबते पहले आदमी कूं ठीक करिबे की जरूरत ऐ। आदमीमें नैतिकता न होय, वाको कोई चरित्र नाये और सिद्धान्त ना हतौ तौ बु कोई काम ना करि सकतु, चायें बापे कितनौऊ रुपया होय। (२) आदमीके उपरान्त धरती माताको बात आवति ऐं। धरती माता सबको पालन-पोषनु करति ऐं और बाकूं स्वस्थ रखिबे कूं बन, उपवन, ताल, तलैया और बांध बनाने पत्त ऐं। ऐसो करौ जाय तौ धरती माताकूं कटनकौ रोग है जायगौ, जो बाके लयें राजरोग के समान ऐ। गिरिराज गोवर्धन एक तरह तें धरती माताके लयें बांधको काम कत्त ऐं, जाई सूं व्रजमें बिन दिननमें बाढ़ नई आवती। अबऊं व्रजकी रक्षा अलवर और दिल्लीकी ओरके पानी सूं गोवर्धन ही करि रह्यौ ऐ। (३) तीसरी बात आर्थिक समृद्धिके लयें व्रज-संस्कृतिमें है गऊ माता की। भगवान कृष्णचन्दने खुद गायें चरायकें जन-साधारणके लयें एक आदर्श रक्ख्यौ। बिनने लोगनि कूं बतायो कि गैया मैया समृद्धिकी जननि ऐ। बिना गोपालन के व्रज-संस्कृति और ग्राम-संस्कृति चलि न सकति। (४) चौथी बात व्रज-संस्कृतिमें ऐ घरेलू छोटे धन्धनकी। बड़ी-बड़ी मशीननके लयें पहलें व्रज-संस्कृतिमें कोई स्थान नई हतोओ। बाको नतीजा जिओ कि लोगनिके धन-धान्यको सद् उपयोग होतो, सौनो और रुपया-पैसा कूं बु दरि व्रज-संस्कृतिमें नायें, जो पश्चिमी संस्कृतिनिमें ऐ। व्रज-संस्कृति में रुपया-पैसा असली माल ना कहाबतु, माल-मता तौ बेई ऐ, जासु लोगनिकी बुनियादी जरूरतैं पूरी होय, रुपया और नोट तौ बौपारके लयें एक बिचपतिको काम कत्तु ऐं। मानि लेयु काऊ पै दस हज़ार रुपया के नोट ऐं। कोई सूदे नोट खाय तौ का भूख बुझेगी? नोटनि कौ कुरता, कोट और धोती बनवावे तौ सरीरकी रच्छा ठण्ड और गरमी सूं

नई होइगी। बस्सि जाई सूं व्रज-संस्कृतिमें असली बातकी ओर ध्यान दयौ गयौ ऐ। जब तैं लोगनिने इन नियमनिकौ उल्लंघन करौ, तब तैंई दारुन दुःख है गयौ।

अखीरमें जि बात और स्पष्ट करनी ऐ कि व्रज-संस्कृति की एक विशेषता जेऊ ऐ कि बु वर्गहीन समजा पै आधारित ऐ। सिद्धान्त रूप से अहिंसा कौ बामें बड़ौ ऊंचौ स्थान ऐ, परि बु अहिंसा कर्तव्य-पालन, समाज और देशकी रच्छाके लयें ई ऐ, स्वार्थके लयें नाए। गांधीजीको प्यारौ गीत, 'वैष्णव जन तौ तैंणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे' को उद्गम और विकास व्रजमें ई भयौ। दुनिया भरिमें सबसे कमि मांसाहारी लोग आजिकलिऊ व्रजमें ई बसत ऐं। व्रज-संस्कृतिके कारन ही भक्तिमार्ग और वैष्णव धर्म इतनौ पनपौ कि बाने समाजके व्यवधान और मजहबके सांकरे मार्ग कूं पार करि लयौ। जि बात कोई व्रजचन्द कृष्णके कालमें ई नई हती। मध्यकालीन युगमें मुसलमान तक कृष्णजीके उपदेशके अनुयायी बनि गये। ताई सूं रसखानने व्रज-संस्कृतिके अनुयायी बनिकें जि बात कही :—

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूंपुर कौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि के सुख, नंदकी गाय चराय बिसारौं।
नैनन सौं रसखान जबै व्रज के, बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं।

मुसलमान कवियित्री ताज अकबरके समयमें व्रज-संस्कृतिकी अनुयायी बन गई। व्रज-संस्कृति काऊ मजहब विशेषकी बात नायें। बु तौ ईमानदारी, जीवनकी सचाई और निष्काम कर्तव्य पालन करिबेमें ई ऐ। व्रज-संस्कृतिकी जेई एक बड़ी विशेषता ऐ कि भगवान कृष्णकी जि संस्कृति उनकी सोलहो कलान सौं पूरन ऐ, जब कि अन्य संस्कृतियाँ सब एकांगी ऐं।

[आकाश वाणी नई दिल्लीसे साभार।
उपर्युक्त वार्ता व्रजभाषामें है।]

राष्ट्रिय जीवनमें विष-बीज

तारकनाथ बाली

आज हमारे राष्ट्रिय जीवनमें चार प्रकारके विषैले संघर्ष-बीज बोए गए हैं या बोए जा रहे हैं:—

१. प्रान्तीयतासे उत्पन्न।
२. राज्योंके पुनर्गठनसे उत्पन्न।
३. भाषा-समस्यासे उत्पन्न।
४ द्रविड़-आर्य-विरोधसे उत्पन्न।

इन सबका कारण एक ही है: राष्ट्रिय दृष्टिकोणका अभाव, और इन चारोंके कारण हमारा समाज कितना विश्रृंखल होता जा रहा है, इसपर प्रत्येक भारतीयको गंभीरतासे विचार करना चाहिए। यह एक बड़ी खतरनाक परिस्थिति है और इससे भयंकर परिणाम निकल सकता है। अगर समयपर इन विषैले बीजोंके नाशका शक्तिशाली प्रयास न किया गया, तो देशका भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा।

इसका एकमात्र उपाय है समाजमें राष्ट्र-प्रेमकी जड़ोंको और गहरा बनाना, उसके राष्ट्रिय दृष्टिकोणको और सुव्यवस्थित और दृढ़ बनाना। हम सबको ऐसा प्रयास करना चाहिए कि प्रत्येक भारतीयके मनमें देश-प्रेम इतना गंभीर हो उठे कि ये विषैले बीज अपने-आप उसकी आगमें भस्म हो जाएँ। इसके अतिरिक्त इस विषको दूर करनेका कोई उपाय नहीं।

सांस्कृतिक एकताके इस पुण्य प्रयासमें सबको लग जाना चाहिए। सरकारको भी और जनताको भी। आज न तो सरकारकी ओरसे संघर्षके इन बीजोंको नष्ट करनेकी कोशिश हो रही है और न ही जनताकी ओरसे। जो कोशिश हुई है, वह बहुत हल्की है। हमारे देशका नेता सामान्यतः अपने प्रान्तसे आगे नहीं बढ़ता। साहित्यकारकी परिधि भी प्रायः सीमित-सी रहती है। हिन्दीका साहित्यकार हिन्दी-प्रदेश की संस्कृतिका ज्ञान रखता है और उसीका चित्रण करता है। संभवतः यही दशा अन्य भाषाके साहित्यकारोंकी भी है। अन्य प्रान्तकी संस्कृतिका ज्ञान करनेके लिए अनुवादित रचनाएँ पढ़नी पड़ती हैं। यह दुर्भाग्यकी बात है।

अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी रचनाओंका अनुवाद करना कोई बुरी बात नहीं है, बल्कि प्रत्येक साहित्यकारका पुनीत कर्त्तव्य है। किन्तु अनुवाद भी तो अधिक नहीं होते। विदेशी भाषाओंके साहित्यका अनुवाद शायद प्रान्तीय

भाषाओंके साहित्यके अनुवादकी अपेक्षा अधिक हो रहा है। वह भी अच्छा है, किन्तु हरेक प्रान्तका उत्कृष्ट प्रतिनिधि साहित्य हरेक प्रान्तीय भाषामें उपलब्ध होना चाहिए। सरकार की ओरसे ऐसा प्रयास हो रहा है। इतना ही पर्याप्त नहीं है। सभी साहित्यकारों और प्रकाशकोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए।

अनुवादोंसे भी अधिक आवश्यकता है अन्य प्रान्तोंके सांस्कृतिक जीवनपर मौलिक उपन्यासोंकी। हिन्दीके साहित्यकारोंको गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, आसाम, मद्रास, आन्ध्र, केरल आदि प्रान्तोंमें जाकर रहना चाहिए। वहाँकी भाषा, वहाँके साहित्य, इतिहास और संस्कृतिका अध्ययन करना चाहिए और उन प्रान्तोंके जीवनपर हिन्दीमें मौलिक उपन्यास लिखने चाहिए। इसके साथ ही हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रके सांस्कृतिक जीवनपर अन्य प्रान्तीय भाषाओं—बँगला, तमिल आदिमें रचनाएँ लिखनी चाहिए। इसी प्रकार अन्य प्रान्तके साहित्यकारोंको भी विभिन्न प्रान्तोंमें जाकर उनके जीवनका चित्रण अपनी भाषामें तथा अपने प्रान्तके जीवनका चित्रण उनकी भाषामें करना चाहिए। देशके सांस्कृतिक सम्मिलनके लिए यह एक प्रधान और शक्तिशाली साधन है। देशकी सांस्कृतिक एकताको सुदृढ़ करनेके लिए तीन प्रकारके साहित्यिक प्रयासोंकी आवश्यकता है:—

(१) प्रत्येक प्रान्तीय भाषाका उत्कृष्ट-प्रतिनिधि साहित्य सब प्रान्तीय भाषाओंमें उपलब्ध हो।

(२) हरेक प्रान्तका साहित्यकार अन्य प्रान्तोंमें जाकर वहाँके सांस्कृतिक जीवनपर अपनी भाषामें साहित्य रचना करें। यथा हिन्दीके साहित्यकार बंगाल आदि प्रान्तोंमें जाकर वहाँके जीवनका चित्रण हिन्दी भाषामें करें।

(३) हरेक प्रान्तका साहित्यकार अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें अपने प्रान्तीय जीवनको मुखरित करे। यथा हिन्दीका साहित्यकार बँगला आदि भाषाओंमें हिन्दी-भाषी-क्षेत्रके जीवनका चित्रण करें।

ये उपाय सरल नहीं हैं। यह बताना जितना आसान है, उनका करना उतना आसान नहीं है। किन्तु साहित्यकार साधनाकी प्रतिमा होता है। अगर साहित्यकार यह नहीं कर सकता, तो कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अगर साहित्यकार भारतके सांस्कृतिक सम्मिलनके इस महान प्रयासमें पूर्ण सहयोग न प्रदान करेगा, तो और कौन करेगा? महान फलकी प्राप्तिके लिए महान साधनाकी आवश्यकता होती है। यदि हमारे साहित्यकार उपर्युक्त ढंगसे रचनाएँ करने लगें, तो कोई कारण नहीं कि देशकी जटिल-से-जटिल समस्या आसानीसे हल न हो जाए।

उपर्युक्त तीनों उपायोंमें से तीसरा साधन अधिक कठिन है। किन्तु कोई साहित्यकार उसमें भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। अन्य दो उपाय तो अपेक्षतया आसान हैं। प्रथम प्रकारका प्रयास तो हो ही रहा है—साहित्य अकाडमी द्वारा भी और प्रकाशकों द्वारा भी। उसे और अधिक तीव्र एवं व्यापक बनानेकी आवश्यकता है। द्वितीय प्रकारका प्रयास होना निहायत जरूरी है और यह शीघ्र किया जा सकता है।

हमारी जनतामें एक दोष है। वह यह कि हम हरएक कार्यके लिए सरकारपर निर्भर करते हैं। यह चाहते हैं कि हमारी सब समस्याएँ सरकार ही हल करे। यह अनुचित एवं असम्भव है।

हमारे इस प्रकार सोचनेका कारण भी है। वह है हमारी परिस्थितियोंकी अपक्वता, जिसमें शिक्षाका अभाव प्रधान कारण है। किन्तु शिक्षित लोगोंको तो प्रयास करना चाहिए और तुरन्त करना चाहिए।

आज जो हमारे सामने उपर्युक्त जटिल परिस्थितियाँ आईं और उनके घातक प्रभाव हुए, सरकारने सबका सामना किया और उन्हें सुलझानेकी कोशिश की। हम इसके लिए सरकारकी प्रशंसा करते हैं। किन्तु इसके साथ ही उसमें एक दोष भी है। वह यह कि सरकारने इन समस्याओंका समाधान नहीं किया, उन्हें दबा दिया है, टाल दिया है और कहीं-कहीं नजर-अन्दाज भी कर दिया है। यह एक बड़ी गलत नीति है। समस्याओंको लटका देनेसे उनका अधिक घातक प्रभाव पड़ता है और एक समय ऐसा भी आ सकता है, जब कि ये सब लटकाई हुई समस्याएँ एक साथ सिर उठा दें और देशकी शान्ति भंग हो जाये। इतना ही नहीं, देशमें हलचल और अनार्की-सी फैल जाये। उदाहरणके लिए राज्य-पुनर्गठनकी अनेक समस्याएँ लटका दी गई हैं (जैसे बंबई) तथा प्रान्तीय भाषाओंकी समस्या लटका दी गई है (जैसे पंजाबमें)। हो सकता है, इस प्रकारके प्रयासोंसे लाभ भी हो या लाभ ही हो, किन्तु इनसे हानि भी हो सकती है या हानि ही हो सकती है।

और इस सम्बन्धमें हमें दूसरी बात यह कहनी है कि सरकारने ऊपरी समस्याओंको ही हल करनेकी कोशिश की

है, उनके मूल तक पहुंचनेकी कोशिश नहीं की। यदि हम इन समस्याओंके मूल कारणको जान जायँ और उसे ही नष्ट कर दें, तो ये समस्याएँ हमेशाके लिए समाप्त हो जायँगी। और मूल कारण वही है, जो ऊपर बताया गया है—राष्ट्रिय दृष्टिकोणकी अपरिपक्वता, देशमें सांस्कृतिक एकताकी गम्भीरता का अभाव। साहित्यकार इस दिशामें जो कर सकता है, उसका चित्रण ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी राष्ट्रिय एकताकी नींव दृढ़ की जा सकती हैं, जिनमें दो ये हैं—

१. **सांस्कृतिक सम्मेलन**—हरएक प्रान्तमें ऐसे सांस्कृतिक सम्मेलन और समारोह होने चाहिए, जिसमें देश के सब भागोंके लोग सम्मिलित हों और अपने-अपने क्षेत्रोंकी संस्कृति एवं जीवनकी झाँकियाँ उपस्थित करें। इस प्रकारके समारोह हरएक प्रान्तमें होने चाहिए और सारे प्रान्तोंको इनमें भाग लेना चाहिए। वस्तुतः हम इस प्रकारके समारोहों के लिए पूर्णतः सरकारपर निर्भर नहीं रह सकते। इनका आयोजन सामाजिक संस्थाओं द्वारा होना चाहिए। राजनीतिक पार्टियाँ भी सांस्कृतिक प्रयासोंमें एक साथ मिलकर कार्य कर सकती हैं और इस प्रकार देश भरमें सभी पार्टियाँ मिलकर एक विराट सांस्कृतिक पार्टीकी या सांस्कृतिक समितिकी स्थापना कर सकती हैं। यह सांस्कृतिक समिति भी देशकी सांस्कृतिक एकताकी स्थापनामें विशेष कार्य कर सकती है।

यदि सभी राजनीतिक पार्टियाँ मिलकर एक सर्वदेशीय सांस्कृतिक समितिकी स्थापना कर सकें, तो यह एक बड़ा महत्वपूर्ण कदम होगा। और अगर इन पार्टियोंको देशकी अपेक्षा पार्टीके स्वार्थ अधिक प्रिय हों, तो दूसरी बात है। ऐसी अवस्थामें हरएक पार्टी अपनी एक सांस्कृतिक समितिकी स्थापना करे, जो केवल पार्टीका प्रचार ही न करे, वरन् देश की एकताकी स्थापनामें पूर्ण सहयोग दे। देशके सांस्कृतिक सम्मिलनके लिए एक शक्तिशाली सांस्कृतिक आन्दोलन चलानेकी आवश्यकता है। अभी भी समय है। यदि अब भी सोते रहे, तो शायद समय बीत जाय और हम हाथ मलते रह जायँ।

२. हरएक राज्य-सरकारको अपने प्रान्तके अनेक विद्यार्थी अन्य प्रान्तोंमें पढ़नेके लिए भेजने चाहिए। हम अपने विद्यार्थी विदेशोंमें भेजते हैं; लेकिन अपने देशके विभिन्न प्रान्तोंमें भेजनेसे भी हमारा लाभ हो सकता है, यह शायद किसीने कभी सोचा नहीं। देशकी सांस्कृतिक एकताको बनाये रखने के लिए यह बहुत आवश्यक है, और यह कार्य अपेक्षाकृत आसान भी है। इस प्रकार प्रान्तोंके बीच विद्यार्थियोंके पढ़ने-पढ़ानेके विषयमें विभिन्न प्रान्तोंके शिक्षा-विभागोंके मंत्री आपसमें मिलकर बातचीत कर सकते हैं और कुछ निश्चित सिद्धान्त बना सकते हैं। इस प्रकारके विद्यार्थी देशकी एकता की स्थापनामें बहुत अधिक योग दे सकते हैं। स्कूलोंकी उच्च कक्षाओं एवं कालेजोंके विद्यार्थियोंको अन्य प्रान्तोंमें भेजा जा सकता है। इस कार्यमें भी सरकारको पूरी-पूरी सहायता करनी चाहिए। ऐसे विद्यार्थियोंकी कमी नहीं होगी, जो अन्य प्रान्तोंमें जाकर शिक्षा लेना आनन्दपूर्वक स्वीकार करेंगे। केवल प्रान्तीय सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा कालेजों द्वारा प्रोत्साहन मिलनेकी देर है।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियोंको विभिन्न प्रान्तोंमें भ्रमणके लिए प्रोत्साहन और सहायता देनी चाहिए। उचित रीतिपर कार्य करनेसे इस उद्देश्यमें भी सफलता मिलेगी। एक बार विद्यार्थियोंके सामने इस प्रकारकी परम्पराएँ बन जायँगी, तो फिर सब कार्य स्वयमेव वांछित रूपसे चलने लगेगा।

इसी प्रकारके अन्य अनेक उपाय भी सोचे-सुझाये जा सकते हैं। सवाल सिर्फ उनपर अमल करनेका है और यही प्रमुख सवाल है। और एक बार हम देशमें राष्ट्रिय दृष्टिकोणका सही विकास करनेमें समर्थ हो गये, तो फिर देश की अनेक समस्याएँ—भाषा, राज्य-पुनर्गठनादि सम्बन्धी—अपने-आप हल होती चली जायँगी। यह बात भी उतनी ही सत्य है, जितनी यह कि इस प्रकारके प्रयासोंके अभावमें हम इन समस्याओंको सुलझा नहीं सकते और अगर सुलझा भी लें, तो उनके दुष्प्रभावोंसे छूट नहीं सकते।

—*—

महान जीवन

डा० इन्द्रसेन

सच्ची महत्ताका उद्देश्य है मनुष्यको वास्तविक अर्थोंमें महान बनाना। वह मनुष्यकी आन्तरिक चेतनाको उच्च स्तरपर लाकर उसमें एक सामान्य सुधार लाना चाहती है। लेखकके अनुभवके अनुसार ऐसा ही एक जीवन पांडिचेरी के आश्रमकी श्री माताजीका है। वर्तमान युग इस तथ्यका एक साक्षात् साक्षी है, चाहे इसे कोई स्वीकार करे या न करे।

जीवनके अति प्रारम्भिक कालमें ही माताजीने अपने कार्यको अर्थात् जीवनके 'सर्वांगीण रूपान्तर' के कार्यको जान लिया था। उन दिनोंकी उनकी डायरीमें मनुष्य-जीवनके सच्चे सुधारके लिये, उसमें वास्तविक विकास लानेके लिये, उसकी चेतनामें एक मूलभूत परिवर्तन लानेके लिये उत्कट और अभीप्सापूर्ण प्रार्थनाएँ लिखी मिलती हैं। उन्होंने यह स्पष्टतः देख लिया था कि दिव्य चेतना इस मानवी ढाँचेमें जीवन फूँक सकती है, बल्कि एक बिलकुल ही नए जीवनका निर्माण कर सकती है। यही उच्च आदर्श तब उनका ध्येय बन गया। उनकी अपनी खोज और साथ ही उनका अपना विकास इसी ध्येयपर केंद्रित हो गये और उनके जीवनके कार्यने भी यही स्पष्ट रूप धारण कर लिया कि वह जीवनके आमूल पूर्ण रूपान्तरसे कम कुछ भी नहीं होगा।

इस सम्बन्धमें उनके ये निम्न शब्द तीव्र उत्साह और गहन विश्वाससे कितने ओतप्रोत हैं :—

"ओ मेरे प्रिय स्वामी, सर्वथा हमें अपनी ज्योतिका सर्वोच्च एवं श्रेष्ठ दान प्रदान कर,...

"ऐसी कृपाकर कि तेरी इच्छा सर्वत्र पूर्ण हो, तेरी शक्ति समस्त विश्वपर शासन करे।

"ऐसी कृपा कर कि मैं अपना कार्य पूरा कर सकूं, मैं तेरी सर्वांगीण अभिव्यक्तिमें सहायक हो सकूँ।"*

उसके पश्चात् शीघ्र ही उनके हृदयमें भारत आनेकी इच्छा बलवती हो उठी। उन्हें यहाँ आध्यात्मिक पथप्रदर्शन मिलनेकी आशा थी। वे यहाँ आईं, श्री अरविन्दसे मिलीं और उन्होंने उन्हें जीवनके पूर्ण रूपान्तरके कार्यके महान नेताके रूपमें पहचान लिया। उधर श्री अरविन्दको भी मानव-प्रकृतिके वास्तविक रूपान्तरकी सम्भावनाएँ खोज निकालने, उन्हें प्राप्त करने और इस कार्यको सम्पन्न करनेकी प्रबल प्रेरणा मिल चुकी थी। अतएव माताजीने उनके साथ मिलकर यह काम करनेका निश्चय कर लिया।

सन् १९२० से माताजी श्री अरविन्दके साथ इसी कार्य को करती रही हैं। उन्होंने आश्रमकी स्थापना की, श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयको जन्म दिया एवं विकसित किया और अब वे आध्यात्मिक पुनर्जन्मके विस्तृत कार्यका नेतृत्व कर रही हैं। वे हजारों लोग, जिन्हें उनके व्यक्तित्वका संस्पर्श प्राप्त हो चुका है, अपने अनुभवसे एक महान् जीवनके प्रेम, उसकी करुणा, उसके उत्थानकारी सम्पर्क और उसकी रूपान्तरकारी शक्तिको जान गये हैं। मूल्योंका परिवर्तन ही शिक्षा और संस्कृतिकी सम्पूर्ण समस्या है और सामान्य अनुभव हमें यह बताता है कि व्यक्तिके मूल्यांकनोंमें परिवर्तन लाना अत्यधिक कठिन है; किन्तु महान् जीवनका शायद यह एक अत्यधिक निश्चयात्मक लक्षण है कि वह जिस वस्तुको स्पर्श करता है, उसीको बदल देता है। माताजीके विषयमें यह एक जाना-बूझा और आनन्द-पूर्ण अनुभव है कि यदि व्यक्ति अपने-आपको उनके प्रभावके प्रति खोल सकता है, तो उसे अपनी कठिनाइयों एवं बाधाओं के लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। उसमें निश्चय ही परिवर्तन होगा और वह एक अधिक अच्छा, प्रसन्न और अधिक विश्वासयुक्त व्यक्ति बन जायगा।

एक महान् जीवनके द्वारा प्रदत्त लाभ भी बहुत महान होते हैं। उसका लक्ष्य ही यही होता है और उसका जन्म भी इसीके लिये होता है। संघर्ष करते और कष्ट पाते हुए सामान्य मनुष्यका हित करना ही उसका अभिप्राय है। यदि मनुष्य अपने हितकारीको पहचान कर उससे लाभ उठा सके, तो उसका भाग्य प्रबल होगा।

---

* श्री माताजीकी 'प्रार्थनाएँ एवं ध्यान' नामक पुस्तकसे।

बंगला कहानी

ताजमहल

'वनफूल'

ताजमहल देखनेकी प्रबल इच्छाको हृदयमें लेकर ही मैं प्रथम बार आगरा गया था। रेलगाड़ी अभी आगरे स्टेशन पर पहुंच भी नहीं पाई थी कि एक सहयात्री अचानक कह उठा—'वो रहा ताजमहल, यहाँसे ही साफ दिखलाई पड़ रहा है।' मैंने जल्दीसे खिड़कीके बाहर मुँह निकाला।

वो रहा ताजमहल—

इतनी दूरसे दोपहरके प्रखर रौद्रमें ताजमहलको देखकर मन उदास हो गया। क्या यही है शाहजहाँका ताजमहल? यह तो सफेदी की हुई एक साधारण-सी मसजिद है! फिर भी एकटक ताजमहलकी ओर देखता रहा। कुछ भी हो, आखिर है तो यह ताजमहल—वही ताजमहल, जिसकी इतनी प्रसिद्धि है!

गाड़ी दौड़ी चली जा रही थी। कुछ ही देरमें वह सफ़ेदी किया हुआ साधारण मसजिद-सा ताजमहल बहुत पीछे रह गया।

× × ×

इसके बाद ताजमहल देखने गया था, पूर्णिमाकी रात को। चाँद उग आया था। ज्योत्सना चारों तरफ बिखरी हुई थी। उस समय मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे ज्योत्सना की स्वच्छ ओढ़नी ओढ़े राजराजेश्वरी शाहजहाँ-महिषी मुमताजमहल स्वयं मेरे स्वागतके लिये उपस्थित है। उस दिन का आनन्द सचमुच अवर्णनीय है। एकटक देखता रह गया।

× × ×

इसके बाद बहुत दिन बीत गये हैं!

कौन-से कन्ट्राक्टरने ताजमहलसे कितने रुपये कमाये, कौन-सा होटलवाला ताजहलके दर्शकोंकी दौलतसे 'राजा' बन गया, ताँगेवाले किस प्रकार आगन्तुकोंको ठगते हैं, यह सब खबरें मेरे लिये बहुत पुरानी हो चुकी हैं। आजकल दिनमें कम-से-कम चार-पाँच बार ताजमहलके सामनेसे गुजरना पड़ता है, क्योंकि आगरेके एक दातव्य चिकित्सालयमें मैं डाक्टर नियुक्त हुआ हूं। अब ताजमहल मेरे लिये कोई आकर्षण नहीं। फिर भी एक दिन·····अच्छा तो फिर शुरूसे ही सुनिये·····

उस दिन 'आउटडोर'का काम खत्म करके आ ही रहा था कि, देखता हूं कि, एक बूढ़ा मुसलमान सदर दरवाजे से अन्दर आ रहा है। एक बड़ी-सी पोटली उसकी पीठपर थी। उसके भारसे उस बूढ़े मुसलमानकी कमर झुकी हुई थी। देखकर मैंने सोचा, शायद कोई फलादि बेचनेवाला है। किन्तु पोटली खोलनेपर पता चला कि उसके अन्दर फलादि नहीं, बल्कि एक पर्दानशीन औरत है। वह बूढ़ा व्यक्ति मुझे सलाम करके शुद्ध उर्दूमें बोला कि अपनी बेगम को दिखलानेके लिये लाया है। गरीब होनेके कारण मुझे मेरी 'फीस' देकर इलाज करानेका सामर्थ्य उसमें नहीं है। अगर मैं मेहरबानी करके·····

नजदीक जाते ही एक दुर्गन्धसे सर चकरा गया। असह्य दुर्गन्ध। औरतके 'क्यांकोमारिस क्रू'को बीमारी थी—आधा मुँह सड़ ही गया था। दाहिना गाल सड़कर गिर चुका था एवं इस कारण उसके दाँत बीभत्स रूपसे बाहर निकल आये थे! मैंने उसे अस्पतालके बरामदेमें रखनेको कहा। किन्तु बरामदेमें उसे रखना भी असम्भव हो उठा। अन्य रोगी आपत्ति करने लगे। कम्पाउण्डर, ड्रेसर, यहाँ तक कि मेस्तर भी उसके पास जानेको राजी नहीं होता। भीषण दुर्गन्ध। किन्तु वह वृद्ध मुसलमान निर्विकार रूपमें दिन-रात सेवा कर रहा था। सबोंकी आपत्ति देखकर मैंने उसे नजदीकके एक पेड़की छायामें रहनेके लिये आदेश दिया। आदेनुसार वह उसी वृक्षकी छायामें रहने लगा। अस्पतालसे दवाई ले जाता। मैं बीच-बीचमें जाकर देख आता। इसी तरह दिन कट रहे थे।

एक दिन अचानक देखा कि पेड़के आसपास कोई नहीं है···

इससे कुछ दिन बादकी बात है। उस दिन भी 'आउटडोर' का काम खत्म करके लौट रहा था। दूरसे एक

मैदानमें उस बूढ़े मुसलमानको देखा। क्या कर रहा है वह? दोपहरकी चिलचिलाती धूप। ऐसे समयमें वह बूढ़ा मैदानमें बैठा-बैठा क्या कर रहा है, जाननेकी उत्सुकता हुई। उसके नजदीक जानेपर देखता हूं कि कुछ टूटी-फूटी ईंटोंके टुकड़ों तथा कुछ गीली माटीसे न जाने क्या बना रहा है।

'यहाँ क्या कर रहे हो, मियाँ साहब?'

मुझे सलाम करके धीरेसे बोला—'बेगमकी कब्र बना रहा हूं, हुजूर!'

'कब्र?'

'हाँ, हुजूर!'

कुछ देर मौन रहा। फिर धीरेसे पूछा—'तुम रहते कहाँ हो?'

'आगरेके आसपासमें भीख माँगता फिरता हूं, गरीब-परवर!'

'तुम्हें कभी भीख माँगते तो मैंने नहीं देखा। नाम क्या है तुम्हारा?'

'फकीर शाहजहाँ!'

सुनकर मैं मौन खड़ा रहा।

अनु० श्री गोपाल माहेश्वरी

सुखमें, दुखमें

हरिशरण 'मराल'

सब नश्वर है, मत मान करो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें!

दिन हँसता है, निशि रोती है,
पल-पलको आयु पिरोती है;
कब टूट पड़े यह तार, डरो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।
जब यौवनको विकसाता है,
नहिं फूला फूल समाता है;
गिरता मुरझाकर, ध्यान धरो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।
क्षण भर ही ज्योति दिखाती है,
पर चपला यों इतराती है;
बस खोज मिटे न गुमान करो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।

बहु वीर हुए, बलवान हुए,
कितने न महीपाते 'मान' हुए;
अब कौन कहाँ? उर ज्ञान भरो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें!
यह जन्म-मरणकी माया है,
अब धूप कहीं फिर छाया है;
इक रंग बनो, बहु रंग हरो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।
प्रभु पीछे दुनिया पड़ती है,
जब बनकर बात बिगड़ती है;
नित भक्ति-सुधा-रस पान करो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।

कुछ तत्व नहीं जग-फन्दोंमें,
फँसना न कहीं छल-छन्दोंमें;
भव-सागर पार 'मराल' तरो,
हरि नाम जपो, सुखमें, दुखमें।

बंगाल और राष्ट्रभाषा

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

हिन्दी प्रेमियो,

बड़ी खुशीके साथ इस नगरमें हम लोग आपका स्वागत करते हैं। जो सज्जन कलकत्तेसे वाकिफ़ हैं, उनको यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं है कि कलकत्तेमें पाँच लाख हिन्दी-भाषा-भाषी रहते हैं। शायद हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्त में—जो प्रान्त हिन्दीवालोंके घर हैं, उनमें भी कहीं इतने हिन्दुस्तानी ज़बान बोलनेवाले नहीं पाये जाते। साहित्यकी दृष्टिसे भी कलकत्तेका स्थान हिन्दीके इतिहासमें बहुत ऊँचा है। मैं हिन्दी-भाषाका पंडित नहीं हूं—बड़े खेदके साथ यह बात मुझे स्वीकार करनी पड़ेगी कि मैं शुद्ध हिन्दी बोल भी नहीं सकता, इसलिये आप मुझसे उम्मीद नहीं कर सकते कि मैं हिन्दी-साहित्यके प्रारम्भिक इतिहासके विषयमें कुछ कहूं। अपने मित्रोंसे मैंने सुना है कि आजकलके हिन्दी-गद्य का जन्म कलकत्तेमें ही हुआ था। लल्लूजी लालने अपना 'प्रेमसागर' इसी नगरमें बैठकर बनाया और सदल मिश्रने 'चन्द्रावली'की रचना यहीं पर की, और यही दोनों सज्जन हिन्दी-गद्यके आचार्य माने जाते हैं। हिन्दीका सबसे पहला प्रेस कलकत्तेमें ही बना और सबसे पहला अखबार 'बिहार-बन्धु' यहींसे निकला। इसलिये हिन्दी-सम्पादन-कलाके इतिहासमें कलकत्तेका स्थान बहुत ऊँचा है। सबसे पहले कलकत्ता-विश्वविद्यालयने हिन्दीको एम० ए० में स्थान दिया। आजकल भी हिन्दीके लिये जो काम कलकत्तेमें हो रहा है, वह महत्वपूर्ण है। इसलिये जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, कलकत्ता उनके लिये घर जैसा ही है। कम-से-कम वे तो हमारी स्वागतकी त्रुटियों या अभावके लिये हमें क्षमा कर ही देंगे।

सबसे पहले मैं एक ग़लतफहमी दूर कर देना चाहता हूं। कितने ही सज्जनोंका ख्याल है कि बंगाली लोग या तो हिन्दीके विरोधी होते हैं या उसके प्रति उपेक्षा करते हैं। बेपढ़े लोगोंमें ही नहीं, बल्कि सुशिक्षित सज्जनोंके मनमें भी इस प्रकारकी आशंका पाई जाती है। यह बात भ्रमपूर्ण है और इसका खण्डन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

मैं व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहता, पर इतना तो अवश्य कहूंगा कि हिन्दी-साहित्यके लिये जितना कार्य बंगालियोंने किया है, उतना हिन्दी-भाषी प्रान्त छोड़कर और किसी प्रान्तके निवासियोंने शायद ही किया हो। यहाँ मैं हिन्दी-प्रचारकी बात नहीं कहता, उसके लिये स्वामी दयानन्द ने जो कुछ किया और महात्मा गान्धीजी जो कुछ कर रहे हैं, उसके लिये हम सब उनके कृतज्ञ हैं, पर हिन्दी-साहित्यकी दृष्टिसे कहता हूं।

बिहारमें हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपिके प्रचारके लिये स्वर्गीय भूदेव मुखर्जीने जो महान उद्योग किया था, क्या उसे हिन्दी-भाषा-भाषी भूल सकते हैं? और पंजाबमें स्वर्गीय नवीनचन्द्र रायने हिन्दीके लिये जो प्रयत्न किया, क्या वह कभी भुलाया जा सकता है? मैंने सुना है कि यह काम इन दोनों बंगालियोंने सन् १८८० के लगभग ऐसे समयमें किया था, जब कि बिहार और पंजाबके हिन्दी-भाषा-भाषी या तो हिन्दीके महत्त्वको समझते ही न थे, अथवा उसके विरोधी थे। ये लोग उत्तरी भारतमें हिन्दी-आन्दोलनके पथ-प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

संयुक्त-प्रान्तमें इण्डियन प्रेसके स्वामी स्वर्गीय चिन्तामणि घोषने प्रथम सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका 'सरस्वती' द्वारा और पचासों हिन्दी-ग्रन्थोंको छपाकर हिन्दी-साहित्यकी जितनी सेवा की है, उतनी सेवा हिन्दी-भाषा-भाषी किसी प्रकाशकने शायद ही की होगी। जस्टिस शारदाचरण मित्रने एक लिपि-विस्तार-परिषदको जन्म देकर और 'देवनागर' पत्र निकालकर हिन्दीके लिये प्रशंसनीय कार्य किया था। 'हितवार्ता' के स्वामी एक बंगाली सज्जन ही थे और 'हिन्दी-बंगवासी' अब भी इसी प्रान्तके एक निवासी द्वारा निकाला जा रहा है। आजकल भी हम लोग थोड़ी-बहुत सेवा हिन्दी-साहित्य की कर ही रहे हैं। कौन ऐसा कृतघ्न होगा, जो श्री अमृतलालजी चक्रवर्तीको, जो ४५ वर्षसे हिन्दी-पत्र-सम्पादनका कार्य कर रहे हैं, हिन्दी-सेवाको भूल जावे? श्री नगेन्द्रनाथ बसु लगभग १५ वर्षसे हिन्दी-विश्वकोष द्वारा हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। श्री रामानन्द चटर्जी 'विशाल भारत' द्वारा हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। हमारी भाषाके जिन पचासों ग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दीमें हुआ है और उनसे

हिन्दी-भाषा-भाषियोंके ज्ञानमें जो वृद्धि हुई है, उसकी बात मैं यहाँ नहीं कहूंगा।

मैं शेखी नहीं मारता, व्यर्थ अभिमान नहीं करता, पर मैं नम्रतापूर्वक आपसे पूछना चाहता हूं कि क्या यह सब जानते हुए भी कोई यह कहनेका साहस कर सकता है कि हम लोग हिन्दीके विरोधी हैं। मैं इस बातको मानता हूं कि बंगाली लोग अपनी मातृभाषासे अत्यन्त प्रेम करते हैं और यह कोई अपराध नहीं है। शायद हममें से कुछ ऐसे आदमी भी हैं, जिन्हें इस बातका डर है कि हिन्दीवाले हमारी मातृभाषा बँगलाको छुड़ाकर उसके स्थानमें हिन्दी रखवाना चाहते हैं, यह भी भ्रम निराधार है। हिन्दी-प्रचारका उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेजी से लिया जाता है, वह आगे चलकर हिन्दीसे लिया जाय। अपनी मातासे भी अधिक प्यारी मातृभाषा बँगलाको तो हम कदापि नहीं छोड़ सकते। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके भाइयोंसे बात-चीत करनेके लिये हिन्दी या हिन्दुस्तानी तो हमको सीखनी ही चाहिए और स्वाधीन भारतके नवयुवकों को हिन्दीके अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच आदि यूरोपीयन भाषाओं में से भी एक-दो सीखनी पड़ेंगी, नहीं तो हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें दूसरी जातियोंका मुकाबला नहीं कर सकेंगे। लिपिका झगड़ा मैं नहीं उठाना चाहता। महात्माजीकी इस बातसे मैं सहमत हूं कि हिन्दी और उर्दू लिपि दोनोंका जानना जरूरी है। आगे चलकर जो लिपि अधिक उपयुक्त सिद्ध होगी, वही उच्च स्थान पावेगी, उसके लिये अभीसे झगड़ा करना व्यर्थ है। सरल हिन्दी और सरल उर्दू दोनों एक ही हैं। वैसे ही हम लोगोंमें लड़ाई-झगड़ोंके लिये अनेक कारण मौजूद हैं, नये कारण बढ़ानेकी ज़रूरत नहीं है।

महात्माजीसे और आप लोगोंसे मैं प्रार्थना करूँगा कि हिन्दी-प्रचारका जैसा प्रबन्ध आपने मद्रासमें किया है, वैसा बंगाल और आसाममें भी करें। स्थायी कार्यालय खोलकर आप लोग बंगाली छात्रों तथा कार्यकर्ताओंको हिन्दी पढ़ानेका इन्तजाम कीजिये। इस कलकत्तेमें कितने ही बंगाली छात्र हिन्दी पढ़नेको तैयार हो जायँगे, पढ़ानेवाले चाहिये। बंगाल धनवान प्रान्त नहीं है और न यहाँके छात्रोंके पास इतना पैसा है कि वे शिक्षक रखकर हिन्दी पढ़ सकें। यह कार्य तो अभी आप लोगोंको ही करना होगा और कलकत्तेके धनीमानी हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन इधर ध्यान दें, तो कलकत्तेमें ही नहीं, बंगाल तथा आसाममें भी हिन्दीका प्रचार होना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। आप बंगाली छात्रोंको छात्रवृत्ति देकर हिन्दी-प्रचारक बना सकते हैं। बोल-चालकी भाषा चार-पाँच महीनेमें पढ़ाकर और फिर परीक्षा लेकर आप लोग हिन्दीका कोई प्रमाणपत्र दे सकते हैं। मेरे जैसे आदमीको भी, जिसे समय बहुत कम मिलता है, आप हिन्दी पढ़ाइये और फिर परीक्षा लीजिये। हम लोग जो मजदूर आन्दोलनमें काम करते हैं, हिन्दुस्तानी भाषाकी ज़रूरतको हर रोज महसूस करते हैं। बिना हिन्दुस्तानी भाषा जाने हम उत्तरी भारतके मज़दूरोंके दिल तक नहीं पहुंच सकते। अगर आप हम सबके लिये हिन्दी पढ़ानेका इन्तजाम कर देंगे, तो मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि हम लोग आपके योग्य शिष्य होनेका भरपूर प्रयत्न करेंगे।

अन्तमें बंगालके निवासियोंसे और खास तौरसे यहाँके नवयुवकोंसे मेरा अनुरोध है कि आप हिन्दी पढ़ें। जो लोग अपने पाससे शिक्षक रखकर पढ सकते हैं, वे वैसा करें। आगे चलकर बंगालमें हिन्दी-प्रचारका भार उन्हींपर पड़ेगा, यद्यपि अभी हिन्दी प्रान्तोंसे सहायता लेना अनिवार्य है। दस-बीस हजार या लाख दो लाख आदमियोंके हिन्दी पढ लेनेका महत्त्व केवल पढ़नेवालोंकी संख्या पर ही निर्भर नहीं है। यह कार्य बड़ा दूरदर्शितापूर्ण है और इसका परिणाम बहुत दूर आगे चलकर मिलेगा। प्रान्तीय ईर्ष्या-विद्वेषको दूर करनेमें जितनी सहायता इस हिन्दी-प्रचारसे मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीजसे नहीं मिल सकती।

अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंकी भरपूर उन्नति कीजिए, उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसीकी बाधाको सहन ही कर सकते हैं; पर सारे प्रान्तोंकी सार्वजनिक भाषाका पद हिन्दी या हिन्दुस्तानीको ही मिला। नेहरू-रिपोर्टमें भी इसीकी सिफारिश की गई है। यदि हम लोगोंने तन-मन-धनसे प्रयत्न किया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब भारत स्वाधीन होगा और उसकी राष्ट्रभाषा होगी 'हिन्दी'।

[महात्मा गांधीके सभापतित्वमें ता० २९ दिसम्बर सन् १९२८ को कलकत्तेमें राष्ट्रभाषा-सम्मेलनका अधिवेशन हुआ था। श्री सुभाषचन्द्र बोस स्वागत-समितिके सभापति थे। हिन्दीमें दिये हुए उस भाषणकी अक्षरशः रिपोर्ट ऊपर दी गई गई है। —वि० भा० सम्पादक]

—*—

नार्मदीय लोक-संस्कृति

(विवाह-गीत)

प्रो० रामाधार शर्मा

नार्मदीय साहित्य विशाल लोक-साहित्यका ही एक अंग है। अतएव यहाँ लोक-साहित्यके सम्बन्धमें चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। लोक-साहित्य जनताका साहित्य है। उसका जन्म जनताके बीचमें होता है, बाहर नहीं। दूसरे शब्दोंमें, लोक-साहित्य सामूहिक होता है, वैयक्तिक नहीं। लोक-साहित्यके अन्तर्गत हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति सुरक्षित है। वह मौलिक रहा है। उसमें लिखित साहित्य जैसा शिल्प-परिष्कार नहीं पाया जाता। वस्तुतः जन-जीवनकी समस्त अलिखित अभिव्यक्ति लोक-साहित्यके अन्तर्गत आ जाती है।

पाश्चात्य विचारकोंने लोक-साहित्यका सम्बन्ध अशिक्षित या पिछड़ी हुई जनतासे माना है। उसमें उन्हें मनुष्यके आदिम स्वरूपकी झलक दिखलाई पड़ती है—सभ्य या सुसंस्कृत स्वरूपकी नहीं। पर हमारे पूर्व-पुरुष वेदों और उपनिषदोंके रचयिता ग्राम, वन, उपवनोंमें रहे हैं। उनके मानस-प्रदेशमें सदियों पूर्व वहाँ एकान्त ज्ञानकी किरणें आलोकित हो चुकी थीं। हम न-जाने कबसे एक अत्यन्त समृद्ध और उच्चतम संस्कृतिकी धरोहरको लेकर चल रहे हैं। हमारे लोक-साहित्यमें कलात्मक परिष्कार भले ही न हो, परन्तु उसमें केवल आदिम प्रवृत्तियोंकी खोज करना उचित न होगा। हमारे लोक-साहित्यको अशिक्षित या पिछड़े हुए लोगोंसे सम्बन्धित बतलाना अनुचित है। भारतीय लोक-मानस संस्कारोंसे युक्त है। डाक्टर विनयमोहन शर्माका कथन है कि पश्चिमी विचारकोंके उद्धरण देते समय हिन्दीके विद्वानोंसे इस सम्बन्धमें भूल हुई है।

लोक-साहित्यमें जनताका सारा बाह्य और आन्तरिक जीवन समाविष्ट है। वह लोक-मात्रका विषय कहा गया है। लोककी सारी मानसिक सम्पन्नताका इसके भीतर समावेश है। डा० वासुदेवशरण अग्रवालके शब्दोंमें—"लोकमें बसनेवाला जन, जनकी भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थानमें उस जनकी संस्कृति—इन तीन क्षेत्रोंमें लोकके पूरे ज्ञानका अन्तर्भाव होता है," लोक-साहित्यका सम्बन्ध भी इन्हीं के साथ बतलाया गया है।[1] इसके अन्तर्गत आचार-विचार की सारी परम्परागत सम्पत्ति आती है। इसके अतिरिक्त सारे लौकिक धार्मिक विश्वास, धर्म-गाथाएँ तथा कथाएँ, लौकिक गाथाएँ और कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, जन-जीवन के राग-द्वेष, टोने-टोटके, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि भी इसके अंग कहे गये हैं।

लोक-साहित्यका संकलन बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। घरकी दीवारोंके भीतर कामिनियोंके कोकिल-कण्ठोंमें जातीय विविधताओंकी स्वर-बहुलतामें जो साम्य झंकृत होता है, उससे भारतकी अखण्ड और व्यापक संस्कृतिका सुन्दर परिचय मिलता है। आज यह बात माननेमें कोई आपत्ति नहीं है कि भारतीय संस्कृतिकी सुरक्षा कुल-ललनाओंने जितनी सरलतासे कर ली, उतनी युगोंके लाख-लाख प्रयत्नों द्वारा भी न की जा सकी। हमारे बहुरंगी लोक-साहित्यमें हमारी अखंड संस्कृतिका बड़ा स्पष्ट चित्र मिलता है। भिन्न-भिन्न जातियों, भू-भागोंके लोक-साहित्यका अध्ययनकर यदि समताके सूत्र एकत्र किये जायँ, तो देशकी एकताको बाँधनेका एक सबल सहारा मिल सकता है। निस्सन्देह राष्ट्रव्यापी ऐक्यका उद्घाटन करनेके लिए जनपदोंमें बसनेवाली जनताका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।[1] "गीत भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें गाये जाते हैं और घरके भीतर गाये जानेवाले गीतोंमें सर्वत्र समानता मिलती है। जान पड़ता है कि एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न भाषाओंमें बोल रही है। यह हमारी एक संस्कृतिका प्रभाव है। और यही इस बातका भी प्रबल प्रमाण है कि सारा भारतवर्ष एक है।"[2]

लोक-साहित्यका संकलन एवं अध्ययन आज साहित्यिक मूल्य ही नहीं रखता, वह राष्ट्रकी अमूल्य सम्पत्ति है। उसमें राष्ट्रकी आत्मा निवास करती है। उसे वाणीके चंचल प्रवाहसे निकालकर सुरक्षित करना प्रत्येकका पुनीत कर्त्तव्य बन गया है। असंख्य-असंख्य भारतीय जन-गणको जानने-पहचानने का सर्वोत्तम साधन लोक-साहित्य ही है। जनता इस नवोदित राष्ट्रकी महती देवता कही गई है। उसका सम्यक् परिज्ञान आज अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए लोक-साहित्य

१. पृथिवी पुत्र—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ८५।

१. पृथिवी पुत्र—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ७१।

२. कविता-कौमुदी (तीसरा भाग)—श्री रामनरेश त्रिपाठी

का 'अध्ययन राष्ट्रिय कार्य-क्रमका हरावल दस्ता' कहा गया है।[१] जिस साहित्यमें ग्रामवासिनी भारत माताका प्रतिबिंब हो, जहाँ हमारे समग्र राष्ट्रका चरित्र उसकी प्रकृतिमें अंकित हो, उसकी महत्ता और उसके अध्ययनकी आवश्यकता असंदिग्ध है। जनपदोंको संस्कृति और साहित्यके कार्यको हम राष्ट्रके 'समग्र' या गीताके 'कृत्स्न' रूपको पहचाननेका कार्य कहते हैं। जनपद राष्ट्रका एक अंग है। उसके साथ सूक्ष्म परिचय हुए बिना हमारी राष्ट्रियताकी जड़ें आकाश-बेल की तरह हवामें तैरती रहेंगी। जनपदोंकी सांस्कृतिक-साहित्यिक भूमि सारे राष्ट्रिय साहित्यके लिए परम दुधार धेनु सिद्ध होगी।[२]

लोक-साहित्यका अध्ययन अन्तर्राष्ट्रिय दृष्टिसे भी महत्त्व-पूर्ण है। एक ही देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें गाये जानेवाले गीतोंमें ही समानता नहीं मिलती, संसारके सभी देशोंका साहित्य समान भावनाओंसे तरंगित बनलाया गया है। लोक-गीतोंने मानवके देश और जातिके भेदोंके आच्छादनको वेधकर उसके व्यापक ऐक्यका उद्घोष किया है। मानव-मात्र की एकताका पाठ पढ़ानेवाले ये लोक-गीत, विश्वके धरातलपर उठकर सोचनेवाले इस युगमें, बड़े मूल्यवान माने जायँगे। आज लोक-साहित्यके सार्वभौमिक तथा शाश्वत रूपको स्पष्टतः प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता है।

लोक-साहित्य अन्य दृष्टियोंसे भी महत्त्वपूर्ण है। अपार लोक-साहित्यका संचय और सम्यक् अध्ययन हिन्दी-साहित्य को कितना लाभान्वित करेगा, उसे कितने नये-नये भाव, नई-नई शैलियाँ तथा नये-नये शब्द देगा, इसका अभी हम केवल अनुमान लगा सकते हैं। लोक-साहित्यके संकलन-कार्य में हिन्दी-साहित्यकी श्री-वृद्धिकी अनन्त सम्भावना निहित है। लोक-साहित्यके भीतरसे जिस भाषाका जन्म होगा, वह सच्ची लोक-भाषा होगी और उसमें अपरिमित शक्ति होगी। तब उसमें ऐसा ऊर्ज उत्पन्न होगा कि पंजाब और बंगाल तथा समस्त दक्षिण निर्विरोध भावसे उसे अपने सिरपर बैठा लेंगे। हमारी सच्ची राष्ट्रभाषा लोक-गीतोंकी गंगामें बही जा रही है। उसमें भावोंके विपुल वैभवके साथ शब्दोंकी सहस्र-सहस्र मणियाँ चमक रही हैं। यदि हम उन्हें ग्रहण न कर सके, तो यह हमारा दुर्भाग्य है। भाषा-शास्त्रीके लिए तो लोक-साहित्य कल्पवृक्षके समान कहा गया है। दो हजार वर्ष पुराने शब्द तो लोक-गीतोंमें चलते-चलते मिल जाते हैं। ऐसे लोक-गीत भाषा-शास्त्रीके लिए साक्षात् कामधेनु सदृश हो गये हैं। देशकी व्यापक संस्कृतिको समझनेके लिए लोक-साहित्यसे बढ़कर दूसरा साधन नहीं है। समाज-शास्त्रके विद्यार्थीको भी जितनी अमूल्य सामग्री यहाँ उपलब्ध होगी, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। पुरानी रीति-नीति, आचार-विचार, विश्वास-मान्यताएँ आदिके लोक-गीत अनंत भांडार हैं। इतना ही नहीं, लोक-गीतोंमें आदि-मानवका अंतस् भी स्फुरित बतलाया गया है। इनमें मनुष्यके अद्यतन विकासके विभिन्न स्तर व्यक्त हुए हैं। लोक-गीत मनुष्यके विकासकी एक क्रमबद्ध कहानी कहते हैं। इस प्रकार समाज-विज्ञान और नृ-विज्ञान दोनोंके लिए लोक-गीत मूल्यवान सामग्री देते हैं।[१]

इतिहासके लिए भी लोक-साहित्य नई सम्भावनाएँ लेकर प्रस्तुत हुआ है। अभी तक इतिहास बाहरी घटनाओं और व्यापारोंको लेकर लिखा जाता था। अब जनताकी आन्तरिक वृत्तियोंको ध्यानमें रखकर इतिहास-रचना की जायगी। ये प्रवृत्तियाँ लोक-साहित्यमें स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हैं। अतएव लोक-साहित्यका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। लोक-साहित्य ही सच्चा साहित्य है। नगरोंके साहित्यको 'कुटी प्रावेशिक' की संज्ञा दी गई है और जनताके साहित्यको 'वानानपिक' कहा गया है। इसी दूसरे साहित्यमें जनताका जीवन, उसकी आशा-आकांक्षाएँ, आचार-विचार व्यक्त हुए हैं। अतएव इस लोक-साहित्यका कार्य देवकार्य जैसा पवित्र, उच्चाशयसे भरा हुआ कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी।[२] लोक-साहित्यका संकलन आज प्रचुर परिमाणमें होने लगा है। फिर भी बहुत कार्य करना है। इसमें शीघ्रताकी आवश्यकता है; क्योंकि श्री रामनरेश त्रिपाठीके शब्दोंमें, "जितने वृद्ध स्त्री-पुरुष रोज मर रहे हैं, उनमें से हरएक ग्राम-साहित्यकी सम्पत्तिको कम ही करता जा रहा है।"[३]

संकलन-कार्यके लिए यदि कार्यका विभाजन कर लिया जाय, तो वह सरलतासे किया जा सकता है। हमारा देश बाह्य दृष्टिसे जहाँ जनपदोंमें विभक्त था, वहीं उसमें एक जातीय विभाजन भी बड़ा स्पष्ट रहा है। प्रत्येक जातिके

१. पृथिवी पुत्र - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४३।
२. " " " " " पृ० ९७।

१. व्रजलोक-साहित्यका अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृ० ४२।
२. पृथिवी पुत्र—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६७।
३. कविता-कौमुदी (तीसरा भाग)—श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ४, भूमिका।

अपने आचार-विचार रहे हैं। इनकी अभिव्यक्ति गीतोंमें हुई है। अतएव लोक-साहित्यका संकलन करते समय यदि जातीय आधारपर दृष्टि रहे, तो अधिक उपयुक्त होगा। हो सकता है कि विशिष्ट भूमि-भागको आधार माननेपर किसी वर्गकी समस्त विशेषताएँ स्पष्ट न हों। जातीय आधारपर संकलन-कार्य करनेपर यह बात नहीं रहेगी। संकलन-कर्त्ताको भी इसमें अनेक सुविधाएँ मिलेंगी।

यहाँ नार्मदीय जातिके गीतोंपर चर्चा की जा रही है। यह जाति नर्मदाकी उपत्यकामें बसी हुई है—विशेषकर निमाड़ तथा मालवा, होशंगाबादमें फैलती गई है। इसकी धर्म-गाथाएँ नर्मदासे ही सम्बन्ध रखती हैं। प्रस्तुत निबन्धमें नार्मदीय जातिमें विवाहके अवसरपर गाये जानेवाले गीतोंपर विचार हुआ है। इनमें विवाहके अवसरपर अनेक प्रकारके गीत गाये जाते हैं, जैसे—बधावा, कुकडा, सांझुली, ममेरा, बिदा, साजन, निह्‌वाली, जवई, नन्दोई, पारसी, नाच, बन्ना-बन्नी, जिमण्डार आदि। कतिपय अन्य गीत भी गाये जाते हैं, जैसे—गणेश-पूजा, रूपो, हल्दी, परछनेका गीत, मण्डपका गीत, रुखड़ी। इन गीतोंमें कुछ गीत मांगलिक हैं और कुछ आनुष्ठानिक। आनुष्ठानिक गीत विशेष कृत्यके साथ गाये जाते हैं। ये बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सगुनसे सम्बन्ध रखनेके कारण इनका गाया जाना अनिवार्य है। मांगलिक गीतोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। ये सारे गीत स्त्रियोंके द्वारा ही गाये जाते हैं। वस्तुतः अधिकांश लोक-गीतोंका सम्बन्ध स्त्रियोंसे ही है। इसे अपौरुषेय साहित्यकी संज्ञा दी गई है।[1] साहित्यमें पुरुष वर्गकी प्रधानता रही है। लोक-साहित्यमें स्त्रियोंका आधिपत्य है। लोक-साहित्यके अध्ययनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारियोंने जीवनकी प्रत्येक स्थितिको संगीतके मधुर स्वर दिए हैं। पुरुषोंकी अपेक्षा यह काम नारियोंने अधिक सफलतासे किया है। नार्मदीय जातिके समस्त विवाह गीत स्त्रियोंके द्वारा ही गाये जाते हैं। उन्होंने पुरुषोंको यह आनन्द नहीं बटाने दिया। विवाह दो प्राण और परिवारोंके सम्मिलनकी सुखद घटना है। सोलह संस्कारोंमें विवाहका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका आयोजन बड़ी धूमधामसे किया जाता है। भारतीय जीवनका यह आनन्दोत्सव है। फूल-माला और चाय-पार्टीमें इसका सारा आनन्द नष्ट हो जायगा। बड़े दुःखकी बात है कि इस पवित्र भारतीय संस्कारको कुछ लोगोंने व्यापारका केन्द्र बना रखा है। जहां प्रेमके सजल सूत्रोंसे दो हृदयों और परिवारोंका गठबन्धन होना था, वहाँ आरम्भमें ही रुपये गिने जाते हैं और सन्तानोंका क्रय-विक्रय होता है। यह जघन्य अपराध है। हमें यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि नार्मदीय जाति इस अभिशापसे बची हुई है। अतएव उसके गीतोंमें ऐसी भावनाएँ नहीं मिलेंगी :—

होत बिहान परल सीर सेन्दुर नव लाख दाहेज थोर रे।
भीतरीके गेड़ुवा बहर दै मरली, सनरूके धीया जनी होई हो।
समधी जे बइठेंलें लालो पलंगिया हो आप प्रभु साथरी बिछाईरे
समधी जे क्वाँटें लमी-लमी बनीया रे आप प्रभु सीर नवाईरे॥
ई धीअवा मोरी अयेरनो-बयेरनो ई धीया सत्रु हमारि रे।
ई धीअवा मोर नग्र लुटावली अवरो हरली मोर गेयान रे॥[1]

उपर्युक्त गीतोंमें से प्रत्येकका समय निश्चित है और कुछ गीत कृत्योंके साथ भी जुड़े हुए हैं। 'कुकड़ा' संख्यामें नौ हैं—'सार कुकड़ा' ब्राह्म मुहूर्तमें सबसे पहले गाया जाता है और 'सूरीमल कुकड़ा' सूर्योदयके समय सबसे अन्तमें। मंडपके पहले तक कुकड़े पाँच, सात या अधिक-से-अधिक नौ दिन तक गाये जाते हैं। विवाह और यज्ञोपवीतके कुकड़े एक ही हैं। विवाहका आरम्भ 'बधावा' गीतसे होता है।[2] चूल्हा कोठीकी मिट्टीके दिन बधावेकी मंगलमयी भावनाएँ संगीतके स्वरोंमें विवाह-घरमें गूँजने लगती हैं और विवाहका आरम्भ दिखाई देने लगता है। इसके पहले भी कतिपय कार्य-क्रम हो जाते हैं। सगाई, पान-प्रसाद, निमन्त्रण आदि आरम्भिक कार्य-क्रम हैं। परन्तु कभी-कभी यही आरम्भ अन्त बन जाता है। सगाइयाँ टूट जाती हैं, पान-प्रसाद व्यर्थ चला जाता है। बधावे तीन तरहके हैं—चूल्हा कोठी[3] की मिट्टीके दिन गाए जाने-वाला बधावा, लड़की या लड़केकी विदाके बाद, प्रातःकाल या सन्ध्याके समय गाये जानेवाला बधावा। 'सांझुली' गीत चार हैं। ये सन्ध्याके समय गाये जाते हैं। मंडपके पाँच, सात या नौ दिन पहले तक इनका भी समय है। मामाके घरकी ओरसे गाए जानेवाले 'ममेरा' कहलाते हैं।

१. भारतीय लोक-साहित्य—श्री श्याम परमार, पृ० ४०।

१. कविता-कौमुदी (ग्राम गीत)—श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ४४४
२. पांच बधावा मोय ये भला आया,
पांच बधावा रे आवत हम देख्या।
३. चूल्हा कोठीकी मिट्टी गणेश-पूजनके पाँच-सात या नौ दिन पहले लाई जाती है।

ममेरेमें स्त्रियां भी जाती हैं। विवाह-घरमें इन्हें 'साजन' सुनाये जाते हैं और समधियोंको भोजनके समय 'निह्वाली' सुनाई जाती हैं, जिनमें समधियोंकी स्त्रियोंका अनेक प्रकारसे वर्णन किया जाता है। दामादोंको 'जवई' या 'नन्दोई' में गालियां सुनाई जाती हैं। ससुरालमें बरसे पूछी गई पहेलियां 'पारसो' कहलाती हैं। सगाई होते ही 'बन्ना-बन्नी' आरम्भ हो जाते हैं। जब भी स्त्रियोंको अवकाश मिलता है या वे कार्यके लिए एकत्र होती हैं, तभी लड़केके यहाँ 'बन्ने' और लड़कीके यहाँ 'बन्नी' गीत गाये जाते हैं। ये भी मंडपके दिन तक चलते हैं। स्त्रियोंको विवाहके अवसरपर जब भी अवकाश मिलता है, वे नाचने-गानेके लिए एकत्र हो जाती हैं। गणेश-पूजनके उपरान्त, मण्डपके दिन तथा लड़केके चले जानेपर स्त्रियाँ नाच-गानमें अपना अवकाश व्यतीत करती हैं। इसी समय 'ठोट्या' खेला जाता है। नाचनेके साथ भी कुछ गीत गाये जाते है, उनकी अपनी पृथक् कोटि है। भोजनके समय गाये जानेवाले गीत 'जिमण्डार' कहलाते हैं। बड़ी पंगतिके दिन ये गीत विशेषकर गाये जाते हैं। 'नीलवड़ो' समधिनें बड़ी पंगतिके दिन भोजनके लिए आते समय गाती हैं। वस्तुतः ये सब मांगलिक गीत हैं। विवाहके विशेष अवसरोंपर, विशेष कृत्योंके साथ गाये जानेवाले आनुष्ठानिक गीतोंमें 'रूपा', 'हल्दी', 'रुखड़ी' जैसे गीतोंका नाम लिया जा सकता है। बारातके आनेपर वधूको गहने-कपड़े चढ़ानेके कार्यको 'रूपा' कहा जाता है और उस समय गाये जानेवाले गीतोंको 'रूपा' संज्ञासे अभिहित किया गया है। वर-वधूको हल्दी चढ़ाते समयके गीतोंको 'हल्दी' नाम दिया गया है। मण्डपके दिन अर्द्ध रात्रिमें पूर्वजोंको निमन्त्रित किया जाता है, इसे 'रुखडी न्योतना' कहते हैं।[1] उस समयके गीतको 'रुखड़ी' संज्ञा दी गई है। ये सब गीत विशेष कृत्योंसे सम्बद्ध होनेके कारण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें उस समयके समस्त विधानका संगीतमय वर्णन मिलता है। यदि ये गीत नष्ट हो जायँ, तो ये सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम लुप्त हो जायँगे। नई पीढ़ियां इन्हें भूलती जा रही हैं। थोड़े दिनोंमें विवाह-शादी, यज्ञोपवीत आदिके अवसरोंपर सन्नाटा छा जायगा। कोई पूर्व रीति-नीतियोंको करने-करानेवाला नहीं निकलेगा। ऐसी परिस्थितिमें इन गीतोंका संकलन अत्यन्त आवश्यक है। इनमें से कई रीतियाँ मार्मिक हैं और साथ ही महत्त्वपूर्ण भी। 'रुखड़ी' के लोकाचारमें हमारे जन्म-जन्मान्तरके विश्वासकी व्यंजना है। उसमें लोक और परलोक दोनोंको माननेवाली भारतीय आध्यात्मिक संस्कृतिकी झलक है। उसका व्यावहारिक उपयोग भी है। विवाहके आमोद-प्रमोद और आनन्द-उल्लासमें भी पूर्वजोंका विस्मरण नहीं किया जाता।

इन गीतोंमें पारिवारिक जीवनके अनेक चित्र और चरित्र उपलब्ध होते हैं। इसमें माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, ननद-भौजाई, लड़की-दामाद और समधी-समधिन का विशेष रूपसे उल्लेख हुआ है। घरमें पिताका स्थान बहुत ऊँचा है। वह घरका प्रमुख व्यक्ति है। अतएव गीतोंमें उसको अधिक आदर दिया गया है। उसका नाम गीतोंमें सबसे पहले लिया जाता है। वह घरका मोटाजी भाई है।[2] ऊँची मयड़ीपर सोता है।[3] हाथीपर बैठता है और बालकों को गोदीमें लेकर खिलाता है।[4] वह कन्याका दान करता है। कन्या-दानका सबसे बड़ा अधिकारी वही है।[5] बारात को सजानेका उत्तरदायित्व भी उसीपर रखा गया है।[6] ये सब बातें घरमें उसके प्रभुत्वकी सूचना देती हैं। जितने भी कार्य उसे दिये गये हैं, वे सब उत्तरदायित्वसे पूर्ण हैं, अतएव वह ऊँची मयड़ीपर सोने और हाथीपर बैठनेका अधिकारी है। घरका प्रत्येक कार्य उसकी अनुमतिपर होता है। हल्दी-जैसी छोटी-सी वस्तुका मोल-भाव वही करता

१. मंडपके दिन मामाके यहाँसे कपड़े लाये जाते हैं, उन्हें पहननेके पश्चात् और सारे कार्यक्रमोंसे निवृत्त होनेपर लगभग आधी रातके समय पूर्वजोंको निमन्त्रित किया जाता है। एक सूपेमें आटा, दाल, नमक, मिर्ची, पापड़, दो पैसे रख लिये जाते हैं। यह सामान सवेरे कुम्हारको दे दिया जाता है। दो सूपे, दो पैसे और कुछ गेहूं लेकर दो सौभाग्यवती स्त्रियाँ आमने-सामने बैठ जाती हैं। पूर्वजोंका नाम ले-लेकर गेहूं और पैसे एक-दूसरेके सूपेमें डालती जाती हैं।

१. रींजणों दीजो अमका जवईका हात मोटाजी भाईकी सेज रमावसे।

२. ऊँची मयड़ी हो राजा गह गही जहाँ पह वड्या मोटाजी भाई वीर बिहाणों।

३. खोला धरि धरि मौरा कुणरे फेर। कुणरे फेर अपणा बाप बिना हातई बठंता दादाजी म्हन वालेरा लाग।

४. जब हमरा दादाजी दीहड़ी संजोव जब हम चालांतुमरेसाथ।

५. दादाजी लाया ते जहान संजोय, जहान हो लाया ते केसरी।

है, यद्यपि कीमत छोटा भाई चुकाता है।[1] इससे घरकी मर्यादा और अनुशासनका आभास मिल सकता है। संयुक्त परिवार-प्रणालीकी सफलताके ये संकेत इन गीतोंमें छिपे पड़े हैं। मर्यादाकी भावना और अनुशासनके बिना सम्मिलित परिवारकी कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्री-वर्गमें सबसे प्रमुख स्थान माताको मिला है। उसके भी कतिपय कार्य निश्चित हैं। वह वरकी थाली परसती है।[2] दूल्हेको परछती है।[3] उसे माँचीपर बैठाया गया है।[4] कतिपय गीतोंमें माताका हृदय फूट पड़ा है। कहींपर उसके हृदयके असीम आनन्दकी व्यंजना हुई है और कहीं विषादकी। पुत्रके यहाँ आनन्दोत्सव देखकर वह मनकी समस्त शक्तियोंसे बधावा गाती है—

बधावो म्हारी अंगूठी रो लाल, चम्पारो छोड़, गुलाबो फूल
बधावो म्हारा मनवाम स।

विवाहित पुत्रको देखकर माता प्रसन्नतासे भर उठती और कन्याकी विदाके समय उसीका हृदय रोने भी लगता है। 'विदा' के गीतोंमें माताके हृदयकी ही व्यंजना हुई है। कन्या-जन्मके समय माताको हर्ष हुआ। उसे पाल-पोसकर बड़ा किया, पर जब वह काम करने योग्य हुई, तो साजन उसे ले जा रहे हैं—

मन हरकत दीहड़ी जनमिया, मन पोसत दिन जाय,
कामकी बिरिया साजन लै हो चल्या।

एक गीतमें लड़कीको माता पतिको उलाहना देती है कि वह लड़की क्यों हार गया।[1] माता लड़कीपर रोटी, गाय-बछिया, जनेऊ, खेती-बाड़ी सब न्यौछावर कर देती है—

बेटी सरीसी रोटी क्यउं नी हारया म्हारा पिहूजी
राजकुवारो क्यउं हारया।
गउवा सरीसा बछुवा क्यउं नी हारया म्हारा
जवत्या सरीसी जनवई क्यउं नी हारया म्हारा···
चरवा सरीसी टुकडी क्यउं नी हारया म्हारा···।

मातृ-हृदयकी यह ममता जातीय गीतोंमें समान रूपसे अभिव्यक्त हुई है।[5]

विवाह-गीतोंमें भाई और बहनके सम्बन्ध भी अनेक प्रकारसे व्यक्त किये गये हैं। 'ममेरा' गीत भाई-बहनकी भावनाओंसे भरे हुए हैं। भाईके प्रति बहनके हृदयमें जो प्रेम होता है, वह इन गीतोंमें शतधा होकर बहा है। कहींपर भाईके विवाहमें न आनेपर बहन घरके प्रत्येक व्यक्तिसे व्याकुल होकर भाईको पत्र डालनेकी प्रार्थना करती है, उसकी आतुरतासे प्रतीक्षा करती है और भाईको आया देखकर प्रसन्नतासे फूली नहीं समाती। वह भाईसे पीली साड़ीकी ही कामना करती है। इसीमें उसे सन्तोष है।[1] बहनकी तीव्र अभिलाषा रहती है कि भाई उसे साड़ी पहनावे। कहीं-कहीं चूड़ीकी अभिलाषा भी व्यक्त की गई है। इसके लिए कहीं-कहीं तो बहन भाईके बैल और भाभीके गहने गिरवी रखवा देना चाहती है। इसमें केवल बहनके अधिकारकी तीव्र अभिलाषा ही व्यंजित है। वह केवल एक साड़ी चाहती है और कुछ नहीं।[2] इन गीतोंमें जीवनकी विभिन्न परिस्थितियों के बीच भाई-बहनकी भावनाओंका चित्रण किया गया है। सम्पन्न भाईसे बहन समस्त परिवारके यथायोग्य सम्मानकी कामना करती है और निर्धनसे अपने लिए केवल एक साड़ी ही चाहती है।[3] यहाँ उसके सन्तोषका चित्रण हुआ है। सम्पन्न भाईके द्वारा उचित रूपसे सम्मानित बहनके गर्व-मिश्रित हर्षका भी इन गीतोंमें वर्णन किया गया है।[4] बहनके

---

१. जो हो मोटाजी भाई हलदुली मोलवोजी हो अमका भाई खरच्या छे दाम।
२. माताजी लाई ते थाल परोस मीठी वा लाई ते लापसी।
३. सासूजी वर पड़ोछसे जिन्न पूजीया भगवान।
आरती करो हो तुम माता जसोदा सावला हरिनी आरती।
४. माची बसंती माताजी म्हन वाळेरी लाग।
५. ब्रज लोक-साहित्यका अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृ० १९०

---

१. म्हारा ससराजी रे ससराजी तुम म्हारा बाप, म्हारा पीहर कागद मोकलो।
पाणी ख रे, पाणी ख गई रे तलाव, म्हारा वीरा रे जीव वीराजीकी बाटुली
हाँ रे वीरो आयो रे, वीरो आयो करण दातार।
२. अब पहरावो रे गुण साहेर बोरा चूँदड़ म्हारी,
बैण बिराज, बेगो आव,
टब्बारा गहणा गहण मेलजे रे बोरा—
बंडारा गहुंड़ा गहण मेलजे रे बीरा—
पाय गारा नाँट्या गहण मेलजे रे बीरा
चूंदड़ म्हारो बैण बिराज, बेगो आव।
३. हुसंगाबादका बीरा म्हारा घर अबैलड़ो
आवजे हऊँ थारा प कई नी माँगती,
टुकड़ी हो तपसिल्लाका म्हारा घर डिडा हो
भरिया एक पेलो लई आवजे।
४. नापूं तो हाथ पचास रुपया लाग्या डेढ़ सौ जी,
धरूँ तो तरस म्हारो जीव पेरूँ तो मोती झड़ी पड़ जी।

हृदयमें भाईके लिए बड़ा प्रेम होता है और अवसर-अवसरपर उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। विवाह-शादीके अवसरपर सारे नैहरके होते हुए भी एक भाईकी अनुपस्थितिसे बहनका मन अत्यन्त उदास हो जाता है, उसे गुलाबका फूल भी अच्छा नहीं लगता—

झुकी जाजे रे फूल गुलाब का।
म्हारा दादाजी बो आया म्हारा मामाजी,
म्हारो माड़ी जायो नजर न आव, झुकी जाजे रे फूल गुलाबका।

सम्पन्न बहन भाईसे एक पीली साड़ीकी कामना व्यक्त करती है। पर निर्धन बहन अपनी निर्धनतामें स्वाभिमानिनी बन जाती है और अपने चार बाल-बच्चोंको लेकर भाईके घर जानेसे मना कर देती है।[1] इन गीतोंमें अनेक प्रकारकी बहनें अवतरित हुई हैं। कोई सम्पन्न है और कोई निर्धन। सम्पन्न बहन सरल और सन्तुष्ट है; निर्धन सतर्क और स्वाभिमानिनी। परन्तु सभी बहनें अपने भाइयोंको हृदय खोलकर आशीर्वाद देती हैं—उनके वंशकी अक्षयवट-सी वृद्धिकी कामना करती हैं।[2] भाई और भाभीके आशीष माँगनेपर बहन भाईको बड़, पीपल और कड़वे नीमके समान बढ़नेका एवं भाभीको पाँच पुत्र और एक कन्याका आशीर्वाद देती हैं।[3] बहन-बेटियोंकी उपस्थिति विवाह-शादीमें आवश्यक कर दी गई है। वरको बधानेका कार्य बहन-बेटियोंको ही सौंपा गया है। और इस कार्यके लिए उनका मान-सम्मान भी बहुत किया जाता है।[4] विवाहके पश्चात् लड़कियोंका सम्बन्ध कुछ दिनोंमें अपने नैहरसे टूट-सा जाता है। यदि इन अवसरोंपर उनकी उपस्थिति अनिवार्य न हो, तो इस परिवारको वे टूटी हुई कड़ी ही रह जाती हैं।

विवाहादिके अवसर बड़े महत्त्वपूर्ण हुआ करते हैं। इनमें समस्त परिवारके संगठनकी योजना निहित है। परिवारके प्रत्येक व्यक्तिकी उपस्थिति इनमें अनिवार्य है। प्रत्येक व्यक्तिको कुछ कार्य सौंप दिया गया है। इस प्रकार इन अवसरोंपर समस्त परिवार एकत्र हो जाता है। ये अवसर वस्तुतः पारिवारिक संगठनके अचूक साधन रहे हैं। आज भी उनकी यह उपयोगिता नष्ट नहीं हुई है।

बहनके समान भाईका भी इन गीतोंमें विविध परिस्थितियोंमें चित्रण किया गया है। भाईका स्पष्ट अभिमत है कि "बैण बिनाकसी इरदुलीजो"। इन गीतोंमें भाईके अनेक भाव अंकित हुए हैं। कहीं उसमें गर्व मिश्रित प्रेम है और कहीं बहनके प्रति प्रेमका चित्रण आहत अभिमान को भूमिकापर हुआ है। बहनके घर कार्य होनेपर भाईके ऊपर एक बड़ा भारी दायित्व रखा गया है। उसे ममेरा ले जाना पड़ता है और मंडपके दिनका कार्यक्रम उसी का माना जाता है। स्वयं उसके यहाँ कार्य होनेपर उसका कर्त्तव्य है कि वह जाकर बहनको लाये और उसे उचित रूपसे सम्मानित करे। कई गीतोंमें पत्नीके विरोधकी उपेक्षा कर भाई बहनके कार्यमें सम्मिलित हुआ है या उसे अपने घर लेकर आया है। ममेरा लेकर आये हुए भाईको देखकर बहनके हर्षकी निम्नलिखित गीतमें बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है—

आज तो सावलियो वीरो मायरो लई आयो री।
मायरो लई आयो वीरो म्हारो ममेरो लई आयो री।
गूड़ लायो घीव लायो सक्कर की तो बोरी जी।
बयणीका कारण वीरो म्हारो बणीयो बणि आयो री।
ऊमंड-घूमंड वीरो बादलई सो छायो री॥ आज तो०॥

इन गीतोंमें दाम्पत्य जीवनके भी अनेक चित्र अंकित हुए। पति और पत्नीके प्रेमका कई गीतोंमें बड़ा अच्छा चित्रण किया गया है। पत्नीकी मर्म व्यथासे पतिको ही सहानुभूति रहती है। परिवारके अन्य लोग तो उसपर ताने कसते हैं। भाईके न आनेपर बहन व्याकुल है। वह सबसे भाईको पत्र डालनेकी प्रार्थना करती है, पर कोई भी उसकी बात नहीं सुनता। उसका पति स्वयं जानेके लिए तैयार हो जाता है। यह पतिके प्रेमका स्पष्ट प्रमाण है।[1] दाम्पत्य जीवनके हास-परिहासके बीच पति-पत्नीके

---

१. बीरा म्हारा लोभी म्हारो आवणो नी होय हमारा छे
नाना नाना बालूरा जी।

२. आखई बड़ आखई बड़ बाँधू बड़की पालतो,
यो बड़ कूण लगावसे जी?
लगाव म्हारा लगाव म्हारा अरजुण भीम रतनालई
भावज छींच से जो।

३. बच जे न रे बीरा बड़ रे पीपल सो फलजे रे कड़वा लीम सो,
एक जलमजे वो भावज पांचई पुत्र एक जलमजे वो दीहलड़ी।

४. अस्नान करी वर ऊम्या रह्यो म्हारो बयणी आरती संजोव।
थारी आरती वो बैण आदर दीसाँ, बैठ्यो,
तुम ख माँगणो होय वो माँगो म्हारी बयणी,
आज वीरा जी घर सोहेलो।

१. गौरी कहो तो हमहिं सिधारां कहो तो ब्राह्मण मोकलां।

मनोभाव भी कहीं-कहीं व्यक्त हो गये हैं। अपने परिवारकी उपेक्षासे वह कठोर भी हो सकता है।[1] पत्नीसे परामर्श लेता है, पर उसके इंगितोंपर नहीं नाचता।[2] इस प्रकार पारिवारिक जीवनके बीच पतिके सच्चे और संयत प्रेमकी धारासे ये गीत बड़े सरस हो उठे हैं। पत्नीके जीवनके तो राशि-राशि चित्र इन गीतोंमें भरे हुए हैं। यहाँ वे पति-प्राणा भारतीय ललनाएँ हैं, जो क्षणभर भी पतिसे अलग नहीं होना चाहतीं; यहाँ वे पतिव्रताएँ हैं, जो अहर्निश पतिकी सेवामें लगी रहती हैं; यहाँ विनोद-प्रिय वाक-चतुर कुल-वधुएँ हैं, यहाँ संयोगिनी-वियोगिनी हैं, प्रोषित-पतिका-आगतपतिका हैं। यहाँ रूपकी वे प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, जिनके डाबरिया नयनोंमें काजलकी रेखा है, उजली बत्तीसी में पानका बीड़ा है, गोरे मुखपर बेसरकी शोभा है।[3] सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन गीतोंमें वे विशाल हृदयवाली स्त्रियाँ विद्यमान हैं, जिन्होंने परिवारको समष्टिमें अपने व्यक्तित्वको विलीन कर दिया है। नारी-जीवनके उदात्त त्यागमय रूपका इन गीतोंमें बड़ा कलापूर्ण चित्रण हुआ है। निम्नलिखित गीतमें समस्त परिवारको शरीरके भिन्न-भिन्न आभूषणोंके रूपमें चित्रित किया गया है —

म्हारा ससराजी सोहन साकलो सासूजी न हो हिवड़ाके रो हार।
म्हारा जेठ वाहाँ केरा बाजूबंद जेठाणी न हो बाजूबंद केरी लूम।
म्हारो देवर हाथो दाँतको चूड़िलो देराणी न हो चूड़िला केरी चोप।
म्हारी दीह हाथकी आरसी जवई न हो आरसीके रो काँच।
म्हारो पुत्र अंग केरो काचलो म्हारी कुल बऊ हो अंगिया केरो फूद। बधावा जी हो मैं सुण्यां।

सम्भवतः लोक-गीतोंकी कुल-वधुओंके इसी रूपको देखकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है कि लोक-गीतोंकी "एक-एक बहूके चित्रणपर रीति-कालकी सौ-सौ सुग्धाएँ, खंडिताएँ, धीराएँ निछावर की जा सकती हैं; क्योंकि ये निरलंकार होनेपर भी प्राणवती हैं और वे अलंकारोंसे लदी होनेपर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवनके लिए किसी शास्त्र-विशेषकी मुखापेक्षी नहीं हैं और अपने-आपमें परिपूर्ण हैं।"[1] पत्नीके प्रेम और त्याग तथा सेवाकी इन गीतोंमें त्रिवेणी बह रही है। लोक-गीतोंमें प्रतिष्ठित पत्नीका यह रूप आज बहुत कम घरोंमें दिखलाई पड़ता है। भारतीय आदर्शोंके स्वर्गसे उतरकर आज अधिकांश परिवारोंको स्त्रियोंने नरकोंमें परिणत कर लिया है। जहाँ देखो वहीं लड़ाई-झगड़े, दाँता किट्टी चला करती है। इन सबके मूलमें घरकी भवानियाँ ही हुआ करती हैं।

ननद और भावजके सम्बन्ध सदैव तने हुए रहे हैं। सभी जातियोंमें लगभग उनके इसी प्रकारके सम्बन्ध अभिव्यक्त किये गये हैं। इन गीतोंमें भी भावजने पतिसे ननदको पड़ोसमें न रखनेकी प्रार्थना की है,[2] उसके यहाँ कार्य होनेपर पतिको जानेसे रोका है,[3] उसकी उपस्थिति अनिवार्य होनेपर उसके साथ द्वेष-पूर्ण व्यवहार किया है।[4] पर अन्ततः वह ननदके पैर पड़ती है और उससे अनेक मनचीते आशीर्वाद प्राप्त करती है। कभी-कभी वह अपने मनकी बात भी कह देती है कि 'थारा वो वीरा स म्हारो मन लाग्यो।'

जवई, नन्दोई, साजन और निहाली गीत लगभग एक ही कोटिके हैं। ससुरालमें जवाइयोंके साथ बड़ा हँसी-मज़ाक किया जाता है। इन गीतोंमें जातिकी विनोद-प्रियताके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। ऐसे गीत बड़ी संख्यामें उपलब्ध हैं। जवाईको कहीं गृहपतिपर पंखा झलनेका आदेश दिया जाता है, कहीं उसे गुड़, घी-भात खिलाकर धक्के देकर बाहर निकालनेका आयोजन होता है, कहीं उसे गधेको सवारीके लिए उत्सुक बतलाया जाता है। इतना ही नहीं, ससुरालमें उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। उसकी सात पीढ़ियों तककी

---

१. पिहू पूछ हसि रलई वातुली म्हारी गोरी वो थारो बालैयो कुण?
कि सोन्ना की डांडी दियो बल।...
गोरी येई बचनका कारणा तुख मारिस वो चाबुक दोई चार।
कि सोन्ना की डांडी दियो बल।...

२. आवो न हो गोरी मतो हो मतसां, नानो सो पूत परणावसां।

३. डाबरिया नयनामें काजल खुली रह्यो।
नीली साड़ी रे नीलो घाघरा नीलो छे नागरबेली पान।
उजली बत्तीसी म बिड़ुलो खुली रह्यो। पीली साड़ी रे पीलो घाघरो, पीलो छे मारुणीको रूप।
गोरा सा मुखड़ा प बेसर खुली रह्यो।

१. हिन्दी-साहित्यकी भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १३०

२. एक सुण जो हो म्हारा सुघड़ा साहिब जी ननद पड़ोसेण मत राखजो।

३. बाई थारी भावज मांड्यो रूसणो मनावन लागी असी देर।

४. गैली वो गोरी मुखिड़ गवार थारो वो बैण बाईको नी बण।
राखसां हो पोहा दिन दुई चार चूंदड़ पेराई बाई ख मोकलां
भाटो पीठो डाटो देवाड़ चापड़ मोकलो मेलसां।

खबर ली जाती है। धोड़े-गधे जैसे जानवरोंसे उसका सहज सम्बन्ध स्थापित होता है। उसकी कमरसे कूचे और करवे बाँधे जाते हैं। वह डाक्खी (अधिक खानेवाला) सिद्ध किया जाता है। ये बातें गीतोंमें ही नहीं लिखी हैं। इनके प्रयोग (प्रैक्टिकल) होते हैं और कभी-कभी सीधे और दुर्बल जवाइयोंके प्राण संकटमें पड़ जाते हैं। अभी कुछ दिन पहले एक दामाद बाबूको उनके कुल शालिमद्रोंने नर्मदाजीमें इतनी डुबकियाँ खिलाईं कि बेचारेका नया जन्म होते-होते बचा। नन्दोईके साथ भी वही व्यवहार किया जाता है, जो दामादके साथ होता है। विवाह-शादीमें उसे वरके लिए घोड़ा सजानेका कार्य सौंपा गया है।[1] परन्तु हास-परिहासके उपरान्त इन लोगोंका मान-सम्मान भी बहुत होता है। मांगलिक गीतोंमें इनका नाम घरके व्यक्तियोंके साथ लिया जाता है। वे घरकी इकाई बन जाते हैं। झेला-पगड़ीसे उनके सम्मानित होनेका गीतोंमें उल्लेख है।[2]

साजन गीतोंका सम्बन्ध समधियोंसे है। इनके साथ भी विवाहादिके अवसरोंपर हास-परिहास होता है। बड़ी पंगतिके दिन समधीकी दुर्दशा की जाती है। समधीको कहीं एक दानेका भोजन करवाया गया है, कहीं सकरे मंडपमें उसकी धोंद ठोकी गई है, कहीं उसे साधू बनाकर धर्मशाला या बागमें माला जपवाई गई है, कहीं उसके हुक्केपर व्यंग्य है, तो कहीं उसके भागनेका वर्णन किया गया है। आज इनमें से अनेक बातें गीतोंमें ही रह गई हैं। पहले ये निश्चित रूपसे चरितार्थ होती होंगी। समधियोंके ऊपर किए गये व्यंग्योंमें शिष्टता है। पर निह्वाली गीतोंमें सीधी-सीधी गालियाँ सुनाई जाती हैं। ये निह्वाली गालियाँ समधियोंका नाम ले-लेकर गाई जाती हैं। इनमें बड़े-बड़े तिरछे, उल्टे-सीधे सम्बन्ध जोड़े गये हैं। यह प्रवृत्ति न जाने इन लोक-गीतोंमें कहाँसे और कबसे आ गई है। यह ठीक है कि ये सब हास-परिहासके लिये गाए जाते हैं, परन्तु यह हास-परिहास अतिरंजित है। कहींपर माँ अपने लड़केसे कहती है कि वह आधी रातको उसके यारके यहाँ गई थी और बहुत-सी वस्तुएँ भेंटमें ले आई है, कहीं वह बाँसपर चढ़ गई है और ढोल बज रहा है, कहीं दही बेचते समय और कहीं करौंदीकी गाड़ी ले जाते समय उसे साजन मिल जाते हैं, कहीं वह महलसे गिरनेपर साजन द्वारा झेली गई है। उदाहरणके लिये एक गीत यहाँ दिया जाता है—

नया रे साजन नई जोट बणी,
भला हाँजी नया रे साजन जी की नाचण महेल चढ़ी।
महेल चढ़ी वो लंगड़ गीर पड़ी,
हमारा अमला भाई न झेल लिवी।
भला हाँजी हमारा नाना भाईने झेल लिवो,
झेल लिवी वो गल लाय लिवी।
माथाकी बिन्दकी दारीकी रलक रही,
नयनारो काजल दारी को रलक रह्यो।

समधिन महलपर चढ़ी थी गिरनेके लिये और समधी महाशय नीचे खड़े थे उसे झेलनेके लिये। इतना ही नहीं, समधी महाशय बड़े फुर्तीले निकले। तुरन्त गले लगाकर गिरनेपर सहानुभूति व्यक्त कर दी तथा बिन्दकी व काजल को "रलका" कर व्याज भी भर दिया। सारा रीति-काव्य मात कर दिया। गालियाँ तीन प्रकारकी बतलाई गई हैं—व्यंग्यपूर्ण, अर्थ-गम्भीर और अश्लील।[1] व्यंग्यपूर्ण गालियोंमें भगवानकी विविध लीलाओंका स्मरण किया जाता है। ऐसी गालियाँ भी अनेक उपलब्ध हैं। अर्थ-गम्भीर गालियाँ, जिनमें उपदेशपरक बातें कही जाती हैं, कम मिली हैं। वे गालियाँ जिन्हें तृतीय कोटिमें रखा गया है, बहुत बड़ी संख्यामें प्राप्त होती हैं।

इन गीतोंमें जातिके आन्तरिक जीवनका ही परिचय नहीं मिलता, इनमें उसका बाह्य रूप भी प्रतिबिम्बित है। उसके खान-पान, वेश-भूषा, आभूषण आदिके ये गीत संग्रह-स्थल हैं। इस प्रकार एक समूची संस्कृति इनमें प्रगट होती है। 'जिमण्हार' गीतोंमें भोजन व्यवस्थाके दर्शन होते हैं। पंगतियोंमें रोटी, पापड़, भात, मूंगकी दाल, लड्डू, बड़ी, कढ़ी, घी और कदाचित दूध भी परोसा जाता था। इनमें से कई वस्तुएँ पंगतियोंमें नहीं दिखाई पड़तीं। लौंगके बघारकी प्रथा उठ-सी गई है। कुछ गीत गाता यशोदाके नामके हैं। इनमें पकवानों और साग-भाजियोंकी एक लम्बी सूची दी गई है। एक 'जिमण्हार' भगवानके लिये है, जिसमें भगवानको युक्तिपूर्वक भोजन करानेकी अभिलाषा व्यक्त की गई है। इसमें प्रथम 'पद्म' नामके किसी कविका उल्लेख है। एक वैसा ही गीत कविता-कौमुदीमें श्री रामनरेश त्रिपाठीने भी संकलित किया है, जिसकी टेक

१. बाधा पेरी न घर ऊम्या रह्या म्हारा
बहणोई जो धोड़ी लो संजोव।

२. डोमीड़ा रा बंधावो रे सेलो भर पाग।

१. ब्रज लोक-साहित्यका अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृ० २१९

इस गीतसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।[1] परन्तु उसके अन्तमें 'तुलसीदास गवाँर' का नाम आया है।

इन गीतोंमें अनेक बार वेश-भूषाका भी वर्णन किया गया है। वेश-भूषामें स्त्रियों और पुरुषों दोनोंके लिए पृथक्-पृथक् वस्त्रोंकी योजना है। यह वेश-भूषा आजकल बहुत कम दिखलाई पड़ती है या दिखलाई ही नहीं पड़ती। पहले पुरुषोंके सिरपर रंग-बिरंगी पगड़ियाँ चमका करती थीं।[2] वे बाँधाबन्धव पहनते थे।[3] पुरुषोंका पाँच कपड़ोंसे सम्मान होता था। स्त्रियाँ लँहगे-लुगड़े पसन्द करती थीं। चूँदड़ी ओढ़ी जाती थी।[4] काचली (कंचुकी) या पानकी चोली धारण करती थीं।[5] टुकड़ी, तपसिल्ला और पेला (पीली साड़ी) बहुत प्रचलित थे।[6] दक्षिणकी चीर (मद्रासी साड़ी) की भी इन गीतोंमें प्रशंसा की गई है।[7] समधियोंने लहरदार लोहरियाँ भी देनेका वचन दिया है।[8] रंगरेजसे ढाकाके मलमलका समुन्दर लहरका दुपट्टा रँगवाया जा रहा है।[9] इन गीतोंमें प्राचीन वेश-भूषाकी एक स्पष्ट झलक मिल जाती है।

वस्त्रोंके समान पुरुषों और स्त्रियोंके आभूषणोंका भी वर्णन किया गया है। जिन अंगोंमें ये आभूषण पहने जाते हैं, उनका भी कतिपय गीतोंमें संकेत है। स्त्रियाँ नाकमें बेसर और मोरड़ी, कंठमें हार, बाँहमें बाजूबन्द और बावट्या, हाथोंमें गजरा और बंगड़ी, पाँवोंमें टोडर और नेवरी, पैरोंकी अँगुलियोंमें बिछियाँ धारण करती थीं।[1] और भी सरजा, ठुस्सी, वजट्टी, रमझोल, डोगा-बिन्दी, भवर, लटकन, लुमझुम, नौगरी, कड़ो आदिका भी उल्लेख मिलता है। हाथोंमें हाथी-दाँतकी चूड़ी बहुत ऊँची वस्तु मानी जाती थी।[2] बन्ना-गीतोंमें पुरुषोंके आभूषणोंका वर्णन किया गया है। वरका श्रृङ्गार विभिन्न आभूषणोंसे किया जाता था। उसके सिरपर चीरा और पेंच सँवारे जाते थे। कानोंमें कुण्डल और मोती लटकाये जाते थे, गलेमें चौंसर और कण्ठी पहनाई जाती थी, पोयची और अँगूठी धारण करवाई जाती थी, पाँवोंमें बेड़ी और मोजा तथा साथमें एक म्याना रहता था।[3] वरके गलेमें साँकल डोरेका भी उल्लेख हुआ है। आजका पढ़ा-लिखा वर इनमें से अनेक वस्तुओंको अस्वीकार कर देता है।

इन गीतोंमें नये जीवन और नई-नई सभ्यताकी भी अनेक बातें प्रवेश करने लगी हैं। परन्तु इससे उनकी प्राचीनतामें किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। स्त्रियाँ अनेक बार प्राचीन वस्तुओंके स्थानपर नई वस्तुका नाम जोड़ देती हैं। इस प्रकार कुछ गीत नये रंगके दिखलाई पड़ते हैं। पर यह नया रंग ऊपरी और परिवर्तनशील है। गीतोंकी आत्मा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। गीतोंमें उनकी प्राचीनता के शत शत प्रमाण-पत्र निहित हैं। इनमें समयके अनेक उतार-चढ़ाव प्रतिबिम्बित हुए हैं। गीतोंकी धरतीपर आदिकालसे आज तककी मानव-यात्राके स्पष्ट चरण-चिह्न अंकित बतलाये गये हैं।

ग्रामीण जीवनके अनेक चित्रोंसे ये गीत सुसज्जित हैं। आजकी सभ्यता दिन-पर-दिन नागरिक होती जा रही है। इन गीतोंमें इसके भी प्रमाण मिलने लगे हैं। पर इनमें ग्रामीण सभ्यता ही बद्धमूल है। आज भी नार्मदीय जाति अधिकतर गाँवोंमें बसी हुई है। परिवारकी संयुक्त और असंयुक्त दोनों प्रणालियोंका संकेत गीतोंमें निहित है। संयुक्त परिवारोंमें बड़ा भाई सर्वोपरि होता है और उसकी आज्ञाके बिना छोटे-से-छोटा कार्य भी नहीं हो पाता। छोटा

१. तुम जीमो म्हारा सीरी भगवान जुगुत स जिमाडूँगी—
पद्म भणें परणां पांय लागूँ तुम्हारा सेवक चरण आधार।
जुगुतिसे परसौ जी ज्यौनार करि-करिके सतकार—
गावें तुलसीदास गवांर जुगुतिसे परसौ जी ज्यौनार।
—कविता-कौमुदी, पृ० ४५२

२. डोमीड़ा ख बंधावो रे सेलो अर पाग अपणी बाई ख नवरंग चूँदड़ी जी।

३. राम बनाजी ख बाधा वी सोहे अच्छा बन्धव सवारो जनक अंगणा।

४. पेली साड़ी रे पेलो घागरो।

५. चोली जो लीजो राजा पानको।
एक अर्द्ध गरदकी चंगेरी हो लागी पान फूलको काचलो।

६. टुकड़ी हो तपसिल्लाका म्हार्‌यां डिंडा हो भरिया एक पेलो लेई आवजे।

७. हऊं तो मांगूँ दखिणारो चीर चोली जो मांगूँ बूटाकी।

८. दस साल ओढ़ाऊं हो कि बारह लोहरियां।

९. रंग द्यो रंग द्यो जी रंगरेज दुपट्टा समुन्दर लहेरका।

१. सम्दणकी छवि कहा कहूं महाराज। (यह गीत देखिये)

२. तारो टूट्यो गगन मं कान्हा थारी बंसी बजी रे मधुबनमें। (यह गीत देखिये)

३. बना जी छोड़ो हल्दी रो पोयचो मोतन रो गजरो। (यह गीत देखिये)

भाईके ऊपर खर्च करनेका भार था। हल्दी मोल लेनेकी एक छोटी-सी घटनाका ऊपर उल्लेख हो चुका है। अधिकतर गीतोंमें संयुक्त परिवारका चित्रण किया गया है। ऐसे गीत निस्सन्देह बहुत पुराने हैं। पर कुछ गीतोंमें विभक्त परिवार भी चित्रित किये गये हैं। दो आँगन—दो घर बन गये हैं। फिर भी भाइयोंमें प्रेम बना हुआ है।[1] ऐसे गीत भी आज के—एकदम नये—नहीं माने जा सकते। आजके अधिकांश भाइयोंके छल-कपट, ईर्षा-द्वेष, स्वार्थ आदिके कल्मष-कर्दमसे गीतोंकी यह गंगा काली नहीं हो पाई है। विवाह-प्रथाके भी अनेक रूप और रूढ़ियाँ इन गीतोंमें प्रत्यक्ष हुए हैं। एक बात विशेष ध्यान देनेकी है कि अधिकांश गीतोंमें प्रौढ़ वर-वधुओंका चित्रण किया गया है। गुड्डे-गुड्डी नहीं सजाये गये। बाल-विवाहकी प्रथा बहुत बादकी है। 'सप्तपदी' में वरकी प्रतिज्ञाएँ और वधूके उत्तर प्रौढ़ बुद्धिके प्रमाण हैं। वेदोंमें प्रौढ़ विवाहका ही समर्थन है। परदा मुसलमानोंके आक्रमणके उपरान्त जटिल हुआ होगा। इन गीतोंकी वधुओंने अपने मुँहको हाथ भरके घूँघटसे नहीं ढाँका है। एक गीतमें तो बहन ससुर और जेठसे भी भाईको पत्र डालनेकी प्रार्थना करती है।[2] कम-से-कम ऐसे गीत निश्चित रूपसे बहुत पहलेके हैं। इन गीतोंमें ऐसी भावनाएँ व्यक्त की गई हैं, जो बालक-बालिकाओंके मनमें नहीं उठ सकतीं। कहीं-कहीं तो वर इतना बड़ा है कि विवाहकी सारी सामग्री वही एकत्र करता है।[3] कहीं वधू वरके साथ चलनेकी और कहीं अपने पिताके बागके पुष्पोंका हार पहनानेकी अभिलाषा व्यक्त करती है।[4] एक गीतमें वरको वधूके अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ दी जाती हैं, पर वर कन्याके अतिरिक्त सब वस्तुओं को अस्वीकार कर देता है।[1] प्राचीन गीतोंमें बड़ी सार्वभौमिकता है। ऐसी भावनाएँ दूसरी जातियोंके गीतोंमें भी उपलब्ध होती हैं। इन भावनाओंमें किशोर वयका भी अतिक्रमण मिलता है। परन्तु कतिपय गीतोंमें वरकी अवस्था छोटी है। हल्दीके गीतमें उसे कुंवर कहा गया है। उसकी अवस्था छोटी बतलाई गई है।[2] परछनेकी सारी क्रियाका सम्बन्ध बाल-विवाहसे जोड़ा जा सकता है। छोटे-छोटे बालकोंको सजाकर निकालनेमें नजर लग जानेका भय बना रहता था। इसलिए उसे बार-बार मूसल, रई (मथानी) रोसा, कैंड़ेकी रोटी और सूपेसे परछा जाता था। अब तो उस रूढ़िके द्वारा बूढ़े वरोंकी भी नजर उतारी जाती है। गीतोंमें अनेक रंगके घोड़ोंका वर्णन हुआ है। प्राचीन कालके वर घोड़ेकी सवारीमें दक्ष रहे होंगे—वे अपने दृढ़ हाथोंसे घोड़ोंकी बागडोर सम्हालते होंगे। पर आज यह एक रूढ़ि ही रह गई है। पहले बहु-विवाह प्रचलित थे। गीतोंमें सपत्नियोंका बार-बार नाम लिया गया है। विवाह आरम्भमें व्यक्ति की इच्छापर निर्भर थे। विवाहित स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह स्त्रीकी बिना स्वीकृतिके सम्भवतः नहीं हो सकता था। यदि स्त्री कुरूप, विकलांग या वन्ध्या हो, तो स्वीकृति आवश्यक नहीं थी। 'गंगा-विवाह' शीर्षक गीतमें ये बातें स्पष्ट हो गई हैं। प्राचीन वर-परीक्षाकी प्रथाका भी एक गीतमें संकेत मिलता है। वधूका पिता वरसे यमुना तैरकर आनेके लिये कहता है। यह धनुभंग या लक्ष्य-वेधका ही रूपान्तर है।

विवाह-गीतोंमें कतिपय स्थानोंके भी नाम आये हैं। इनसे नार्मदीय जातिके निवास तथा प्रसारका अनुमान लगाया जा सकता है। सौराष्ट्र, मालवा, मैसर (माहेश्वर), नरवरगढ़, दुलरीगढ़, देवास, इन्दौर आदि स्थानोंके नाम गीतोंमें इधर-उधर बिखरे हुए हैं। अनेक पौराणिक कथाएँ इधर-उधर दिखलाई पड़ जाती हैं। इन कथाओंमें अनेक बार सम्बन्धोंका व्यत्तिक्रम हुआ है। अर्जुन भीमसे रुक्मणी और राजा दशरथसे नन्दनन्दनका सम्बन्ध जोड़ा गया है। इनसे जातिकी धार्मिक वृत्तिका भी परिचय मिलता है। इन गीतोंमें और भी अनेक तत्त्व छिपे पड़े हैं। इनमें स्त्रियोंकी दैनिकचर्याका वर्णन मिलता है। उनके सौन्दर्यके

१. मोटाजो भाईका आंगन अम्बो महवर्‌यो, नानाजी भाईका आंगण गहरी छांव।

२. म्हारा ससुराजी रे, ससराजी तुम म्हारा बाप म्हारा पीहर कागद मोकलो। म्हारा जेठजी रे, जेठजी तुम म्हारा बाप म्हारा पीहर कागद मोकलो।

३. बना लगिण लिखावण आप गये—बना गहणों घड़ावन आप गये।

४. बना ठण्डोरे पाणी देवासको झारी भर लइयो रे बना थारी संग चलूँ।
यो छे बाग म्हारा दादाजीको थोड़ा फूल मरोड़ो जी
थोड़ा फूल मरोड़ा जी रे राई वर हाथरां गजरा गूँथो जी,
हाथरा गजरा गूँथो रे राई वर बनड़ी न पहराओ जी।

१. घरकी मांडन बेटी अमकी बाई देहूं जवं जाई समझ दुलव राय जी।

२. कुवर कीछे नानड़ी एस कुवर ख हलद चढ़।

अनेक चित्र उतारे गये हैं। कई गीत बड़े कलात्मक बने हैं। उनका साहित्यिक सौन्दर्य भी कम नहीं है। सच पूछा जाय तो प्राणवान साहित्य इन गीतोंमें ही निवास करता है। कई गीतोंमें इतनी स्पर्शिता है कि सारा लिखित साहित्य उनके आगे फीका लगने लगता है। इसे अपौरुषेय साहित्यकी संज्ञा दी गई है। इनकी रचनाका श्रेय स्त्रियों को दिया गया है। परन्तु कई गीतोंमें पुरुषोंका नाम मिला है। फिर कई गीतोंकी रचनासे यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि उनके रचयिता निश्चित रूपसे काव्य-कलाके मर्मज्ञ और काव्य-रूढ़ियोंके ज्ञाता होंगे। उनमें वस्तुओं और व्यापारोंका क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। आवृत्ति नहीं है। यह सारा लोक-साहित्य स्त्रियों द्वारा ही बनाया गया है, इस बातपर अभी विचार करनेकी आवश्यकता है। इनमें अनेक अज्ञात नाम कवियोंकी रचनाएँ भी मिल गई हैं। ये गीत हमारी महार्घ सम्पत्ति हैं। इनमें और भी बहुत-सी ज्ञातव्य बातें भरी हुई हैं। इनका संकलन तथा प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है। ये गीत किसी जाति या वर्गमें प्रयुक्त होते हुए भी व्यापक राष्ट्रीय जीवनका परिचय कराते हैं। अन्य जातियोंके गीतोंमें और इनमें भावनाओंका ही साम्य नहीं है, कई स्थलोंपर तो समान शब्दोंका प्रयोग किया गया है। व्यापक राष्ट्रिय संस्कृतिके निर्माणके लिये ये गीत मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत करते हैं। उनमे शतधा विभक्त राष्ट्रके ऐक्यकी भावना दृढ़ होती है। इनसे हमें इस बातका ज्ञान होता है कि रूप-रंग, आहार-विहार, भाषा-भूषामें भिन्न होते हुए भी समस्त भारतके अन्तःप्रदेशमें समान भावोंकी भागीरथी प्रवाहित है। ऐसे गीतोंकी सुरक्षाका प्रयत्न पुनीत राष्ट्र-सेवा ही होगी।

रुबाइयाँ

'नीलम'

(१)

हृदयकी बात तुम सितारोंसे कहो
प्रणयकी बात तुम बहारोंसे कहो
दर्दे-दिल मगर यों मिटता नहीं है—
एकसे कहो या हज़ारोंसे कहो!

(२)

उजड़कर सजता नहीं है बाग दिलका
बिखरकर बजता नहीं है राग दिलका
अश्रुकी तो बात ही छोड़ ऐ साथी—
सिन्धु से धुलता नहीं है दाग दिलका!

(३)

दर्दके मारे मुझे नींद ही नहीं आती
मत सताओ, पीर मुझसे सही नहीं जाती
कहनेको तो रहमदिल बहुत हैं दुनियामें
मनकी पीर हर किसीसे कही नहीं जाती।

(४)

रूप से न डाह मेरी नज़र करती है
प्यारकी न चाह मेरी नज़र करती है
भूल से देख भर लेती है उन्हें कभी
बस इतना गुनाह मेरी नज़र करती है!

(५)

पहले तो दिल किसीको दिया नहीं जाता
दे दिया तो फिर किसीसे लिया नहीं जाता
उठानेको सदमें चाहे हज़ारों उठाओ
मगर जहर अपने हाथोंसे पिया नहीं जाता!

(६)

साधना अभिशापको वरदान बना देती है
भावना पाषाणको भगवान बना देती है
पर अल्हड़ जवानीकी रवानीमें बहनेपर
वासना इन्सानको शैतान बना देती है!

(७)

प्राणोंके स्पन्दनसे हीन कभी छन्द नहीं होता
आँचलकी छाँह जलता दीप कभी मंद नहीं होता
पलकोंकी जंजीरोंसे चाहे जितना बाँधो साथी
मगर आँखोंकी कारामें नीर कभी बंद नहीं होता!

धूर्त धर्मध्वज

बालकृष्ण पोद्दार

सेठानी अनारदेवीको ट्रेनपर चढ़ाकर जब पण्डा मणीलाल स्टेशनसे घर लौटे, तो उनकी पत्नी सत्यभामाने चिंतित होते हुए कहा—"सुफलके रुपये आपने उधार रक्खे तो रक्खे, लेकिन ब्राह्मण भोजनमें लगी इतनी भारी रकम उधार न रखनी चाहिए थी। वह पराई रकम है।"

पण्डा मणीलालने तावमें आकर कहा—"कैसी पागलपन की बातें करती हो! सेठ हरमुखराय पचीस करोड़के आदमी हैं। कलकत्तेमें उनका करोड़ोंका लेन-देन चलता है। मैं क्या उनका दस हजार रुपयोंका भी विश्वास न करूँ? फिर यह तो तीर्थयात्रा और एक ब्राह्मणका कर्ज है। भला इस काममें बहमकी क्या बात है। कलकत्ते पहुंचते ही सेठानी माँ हमारे रुपये जरूर भेज देंगी।"

सत्यभामाने कहा—"रुपये आ जानेमें ही शान है, नहीं तो बाप-दादोंकी इज्जतमें बट्टा लग जायगा। कहीं भी मुँह दिखाने लायक न रहोगे। बैठे-बिठाये आपने फिजूलकी आफ़त गले लगा ली। पुण्य लूटा सेठाजीने और कर्जदार बने आप।"

मणीलाल बोले—"इसमें आफत काहेकी है। हम अपनी इज्जतको भी तो ज़रा देखें। इतने बड़े सेठकी सेठानी को द्वारकापुरीमें लाया और उनकी ओरसे ब्रह्म-भोज भी न हो? भोज नहीं करवाता, तो द्वारकाके लोग मुझे क्या कहते। हमारी जो-कुछ हस्ती है, वह इन सेठ-साहूकारोंकी ही बदौलत तो है। तुम क्या जानो कितनी मुश्किलसे मेरे मनकी मुराद पूरी हुई है।"

सत्यभामाने उत्तर दिया—"खैर, मनकी मुराद तो आपने पूरी कर ली। अब नाथजीसे यही विनती करो कि रुपये जल्दी आ जायँ, ताकि बाजारकी देनदारी मिटाकर इस पराये कर्जसे छुटकारा मिल सके।"

मणीलाल द्वारकाके प्रथम श्रेणीके पण्डा थे। रकम तो उनके पल्ले उतनी नहीं थी, मगर प्रतिष्ठा उनकी अच्छी थी। सालमें दो-तीन दौरे बड़े शहरोंके किया करते और हर दौरेमें किसी-न-किसी धनाढ्य सेठ-सेठानीको तीर्थस्थानोंमें भ्रमण कराते हुए वे द्वारका ले आते थे। रास्ते भर वे पथ-प्रदर्शकका काम करते। रेलवेका टिकट कटा लानेसे लेकर बाजारसे चीजें खरीदकर ला देने तकका काम वे बड़े ही हर्ष और दिलचस्पीके साथ किया करते थे। बदरीनारायणको छोड़ बाकी सब तीर्थोंका दर्शन करा देनेके बाद अन्तमें यजमानोंको लिये हुए वे द्वारकापुरी पहुंचते। वहाँ तो उनका प्रबन्ध मार्केका रहता। पुरीकी सर्वश्रेष्ठ धर्मशालामें उनके यजमानों के लिए कमरे रिजर्व रहा करते थे। पण्डा मणीलाल अपने यजमानोंकी अच्छी खातिरदारी करते और द्वारकाधीशके दर्शनोंका परम आनन्द दिलाकर, अपनी सुफल-दक्षिणा वसूलकर, बही-खातोंमें सबकी सही लेकर तथा आशीर्वाद देकर उनको विदा करते। यजमान और अपनी प्रतिष्ठाके लिहाजसे वे हर यजमानसे ब्रह्म-भोज दिलवाने तथा द्वारकाधीशको हर प्रकारकी पूजा-भेंट चढ़वानेका प्रयत्न करते। अपनी सुफल-दक्षिणाकी अपेक्षा इन बातोंका उनको विशेष खयाल रहता और यही खास कारण था, जिससे द्वारकापुरीमें उनकी तूती बोलती थी।

अनेक बारके आवागमन और प्रयत्नके बाद, सेठानी अनारदेवीको तीर्थयात्राके लिए लानेमें मणीलाल सफल हुए थे। पण्डा मणीलालसे तीर्थस्थानोंकी अपार महिमा सुन-सुनकर सेठ हरमुखराय प्रभावित हो अपने पापोंका भारी पुलिन्दा किसी पवित्र नदी या महासागरके गर्भमें डुबो आनेका इरादा पांच सालसे बराबर करते हुए भी उनको इस पुनीत कामके लिए प्रस्थान करनेकी फुर्सत नहीं मिलती थी। अन्तमें पण्डा मणीलालके भगीरथ प्रयत्नके कारण सेठानी अनारदेवीको अपनी ओरसे तीर्थयात्राको भेजकर सेठजीने अपने पापके खातेको बराबर किया।

सेठानी अनारदेवी पुरी, मद्रास, रामेश्वरम्, तीर्थकोटि आदि अनेक तीर्थोंमें देवी-देवताओंके दर्शन करती हुई तथा सेठ हरमुखरायके पाप-खातेका भुगतान करती हुई अन्तमें द्वारकापुरी आ पहुंचीं। जिस समय सेठानीको धर्मशालामें टिकाकर पण्डा मणीलाल अपने घर पहुंचे, उस समय उनकी खुशीका कोई ठिकाना नहीं था, क्योंकि इतने बड़े यजमानको द्वारकापुरीमें लानेका सौभाग्य उनको पहली बार प्राप्त हुआ था। नहा-धोकर मणीलालने रेशमी पीताम्बर और दुपट्टा पहना। गलेमें सातलड़ी सोनेकी कण्ठी और दोनों हाथोंकी

अंगुलियोंमें कम-से-कम एक दर्जन अँगूठियाँ डालीं। दाहने बाजूपर मीनेकी कारीगरीवाला बाजूबन्ध पहनना भी वे नहीं भूले। धर्मशाला लौटकर पण्डा मणीलालने बड़े ही प्रेम और यत्नपूर्वक सेठानीको गौतमीजीमें स्नान करवाया और फिर द्वारकाधीशके दर्शन करा उनको कृतकृत्य किया। डेरेपर लौटनेपर मणीलालने सेठानीजीके सामने पुरीके सब ब्राह्मणों को भरपेट भोजन कराने और एक-एक रुपया दक्षिणा देनेका सुझाव पेश किया। सेठानी अनारदेवीने मणीलालके सुझाव को तो मंजूर किया, लेकिन बोलीं—"पण्डाजी, मेरी भी यही इच्छा है कि आपकी और हमारी इज्जतके अनुकूल ही सब काम हो। लेकिन अन्य तीर्थोंमें पासके रुपये कुछ ज्यादा खर्च हो गये हैं। बस, आठ सौ रुपये बचे हैं। अपने बूतेपर यदि सब काम करा सकते हो तो करा दो। रुपये कलकत्ते जाकर ही भेज सकूँगी।"

सेठानीका उत्तर सुनकर पण्डा मणीलालकी बाँछें खिल गईं। तावके साथ उन्होंने उत्तर दिया—"कोई बात नहीं सेठानी माँ। रुपये आप कलकत्ते जाकर ही भेज दें। आपका हुक्म होनेपर काम बाकी नहीं रहेगा। फिर आपका यह छोटा-मोटा पण्डा भी तो अपनी कुछ हस्ती रखता है। यह तो आठ हजारकी बात है। साठ हजार भी हो, तो पुरीका कोई सेठिया या दुकानदार मुझे इनकार नहीं कर सकता। मैं आप-जैसे करोड़पतियोंका पण्डा जो ठहरा।"

अन्तिम वाक्य मणीलालने गर्दन टेढ़ी करते हुए बड़े ही गर्वके साथ कही थी और सेठानी अनारदेवीने भी हर्षसे गद्-गद् होते हुए उसे सुना था। सेठानीको केवल वचन ही देना पड़ा। मणीलालकी योजनाके अनुसार ब्राह्मण-भोजन संतोष-जनक हो गया और सेठानी अनारदेवीने द्वारिकापुरीकी पवित्र भूमिपर यह अक्षय पुण्य अर्चन किया। विदा होनेके समय पंडा मणीलालको सेठानी इक्कीस सौ एक रुपयेकी सुफल-दक्षि-णा देना चाहती थीं। किन्तु रुपयोंकी कमीके कारण केवल एक सौ एक रुपये पंडा मणीलालके चरण-कमलोंमें अर्पण कर उनसे प्रशंसा प्राप्त की। सब मिलाकर पूरे दस हजार रुपयोंके कर्ज का भार लिये सेठानी अनारदेवी द्वारकासे विदा हुई थीं।

सेठानी अनारदेवीको गये करीब एक महीना हो चला, पर उनकी पहुंचका पत्र तक भी नहीं आया। पहली, दूसरी और फिर तीसरी चिट्ठीका भी जब जवाब न मिला तो पंडा मणीलालके तोते उड़ गये। पावनेदारोंके तकादोंसे तंग आकर अन्तमें फिर एक बार उन्हें कलकत्तेके लिये रवाना होना पड़ा।

पंडा मणीलाल रेल गाड़ीसे उतरकर सीधे सेठ हरमुख-रायकी कोठीपर गये। पंडाजी जब कोठीके फाटकमें घुसे, उस समय सेठ हरमुखराय पोर्टिकोमें खड़ी न्यूक कारमें बैठकर कहीं बाहर जा रहे थे। सेठजीने जैसे ही दाहिना कदम कार के पावदानपर रक्खा, वैसे ही पंडाजीकी आँखें चार हुईं। सेठ जीके प्रणामकी प्रतीक्षा किये बिना ही, दाहिने हाथको ऊपर उठा पंजेको फैलाकर आशीर्वादकी मुद्रामें हाथको हिलाते हुए मणीलाल सेठजीकी ओर देखकर मुस्कराने लगे। किन्तु बदले में सेठजीने जब पंडा मणीलालकी ओर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हुए कारके अन्दर प्रवेश किया तो पंडा मणीलाल स्तम्भित रह गये। उनके होंठोंकी मुस्कराहट लुप्त हो गई और आशी-र्वादके लिये उठा हुआ हाथ धीरेसे नीचे खिसक आया। उसी क्षण सेठजीकी कार फुर्रसे दरवाजेके बाहर निकल गई।

सेठजीके नौकर-चाकर पंडाजीको अच्छी तरह जानते थे। किन्तु सेठजीकी उपेक्षापूर्ण दृष्टिका वास्तविक अर्थ समझकर वे भी अजनबीकी तरह पंडाजीके मुँहकी ओर ताकने लगे। इस दृश्यको देखकर पंडा मणीलालके कपालसे पसीना छूटने लगा और घबराहटके मारे पसीनेसे तरबतर हो गये। सेठानी अनारदेवीके साथ जो नौकर तीर्थ-यात्रामें गया था, उसके जरिये मणीलालके आगमनकी खबर सेठानीके पास भिजवाई। करीब आध घंटेके बाद नौकरने आकर जवाब दिया कि सेठानीजीने तीन दिनका मौन-व्रत धारण कर रक्खा है। अतएव इस समय उनसे बात-चीत नहीं हो सकती।

पंडा मणीलाल इरादा तो करके आये थे कि सेठजीके यहीं ठहरेंगे; किन्तु सब किसीके ऐसे बेरुखे रंग-ढंग देखकर उल्टे पाँव लौटकर एक धर्मशालामें उन्हें अपना डेरा डालना पड़ा।

चार दिनोंके लगातार प्रयत्नके फलस्वरूप पंडा मणीलाल को पाँचवें दिन सेठ हरमुखरायके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कितनी ही देर तक तो सेठजीने पंडाजीको पहचाना तक नहीं। जब मणीलालने इधर-उधरकी बहुत-सी बातें याद दिलाईं, तब उन्होंने यह स्वीकार किया कि हाँ, सेठानीको तीर्थ-यात्राके समय एक बार उन्होंने उनको देखा था। सेठजीकी स्वीकृति सुनकर मणीलालकी जानमें जान आई और वे बोले—"हाँ, सेठजी, मैं ही तो कलकत्तेसे द्वारिका-पुरी तक सेठानी माँके साथ-साथ गया था।"

सेठजीने मुस्कराते हुए कहा—"आप तो बड़े चलते-पुर्जे पंडा नज़र आते हैं। बड़ी जल्दी वापस आ गये!"

पंडा मणिलाल बोले—"वापस तो इतनी जल्दी नहीं आता, मगर सेठानी माँसे मिलनेके लिये आना पड़ा।"

भृकुटी टेढ़ी किये तीक्ष्ण स्वरमें सेठ हरमुखरायने पूछा—"सेठानी माँसे अब कौन-सा काम बाकी रह गया है?"

सेठ हरमुखरायके प्रश्नको सुनकर पंडा मणीलालके पाँवों की जमीन खिसकने लगी। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे चारों ओर घोर अंधकार छा गया हो और उस अँधियारेमें वे अथाह जलमें डूबे जा रहे हों। आतंकके मारे उनकी घिग्घी बँध गयी। घिघियाते हुए वे बोले—"जी, सेठजी महाराज, वे दस हजार रुपये लेने आया हूं।"

सेठजी तपाकसे बोल उठे—"कौन-से दस हजार?"

डरते-डरते मणीलाल बोले—"वही ब्राह्मण भोजन और सुफलवाले···।"

सेठजीने मणीलालकी ओर आँखें तरेरते हुए कहा—"तुम्हारा माथा तो खराब नहीं हो गया है?"

भयके मारे काँपते हुए मणीलालने दबी जबानसे कहा—"जी, महाराज! सेठानी माँने द्वारकापुरीमें ब्राह्मण-भोजन कराया था और सुफलके भी दो हजार रुपये बाकी रक्खे थे। उन्होंने कहा था कि कलकत्ते जाकर सब रुपये भेज दूँगी।"

बिजलीकी तरह कड़कते हुए हरमुखराय बोले—"रुपये कोई पेड़पर नहीं लगते हैं, जो हिलाते ही टपक पड़ें। मैं तो तुम्हें भला आदमी समझता था, मगर तुम तो पक्के ठग मालूम पड़ते हो। औरत समझकर तुम सेठानीको ठगना चाहते हो। मगर याद रखो कि यह कलकत्ता है। ऐसी ठगबाजी करोगे तो सीधे बड़ेघरकी हवा खानी पड़ेगी।"

सेठ हरमुखरायकी बातें सुनकर पण्डा मणीलालको ऐसा लगा, जैसे उड़ते हुए हवाई-जहाजसे उनको किसीने नीचे ढकेल दिया हो। उनकी आँखोंके सामने बिल्कुल अँधेरा छा गया और कलेजेपर हथौड़ेकी-सी चोट लगने लगी। उनके मुँहसे केवल इतना ही शब्द निकला—"हाय, हाय! सेठजी, आप यह क्या कह रहे हैं!" और संज्ञाहीन हो वे वहीं गिर पड़े।

पण्डा मणीलालको जब होश आया, तो उन्होंने देखा कि सेठजीके दो नौकर उनकी दोनों भुजायें पकड़े उनको बाहरकी ओर घसीटकर लिये जा रहे हैं। पण्डा मणीलालने ठिठककर दहाड़ मारकर रोते हुए कहा—"सेठजी, ब्राह्मणका पैसा मत मारो। मैं बर्बाद हो जाऊँगा। ऐसा पाप करोगे तो आप भी तबाह हो जाओगे।"

सेठ हरमुखराय अपने व्यावसायिक कामोंमें ऐसे मग्न हो गये कि मणीलालकी आवाज उनके कानोंमें प्रवेश ही न कर पाई। भुजा पकड़नेवालोंमें से एक नौकरने मुस्कुराते हुए आहिस्तेसे उनको बातका उत्तर दिया—"पण्डाजी महाराज! सेठजीके पापोंका गट्ठर तो आप ही ठिकाने लगवायके आये हो। पापका पलड़ा एकदम खाली हो गया है। सेठजी पक्के बनिये हैं। अब आपकी दाल नहीं गलनेकी। भला चाहते हो तो सीधे घरकी राह लो।"

नौकरोंने मणीलालको लाकर बाहर फुटपाथपर बैठा दिया और तिरछी चितवनसे पसीनेसे तरबतर पण्डाजीकी ओर ताकते हुए वे अन्दर लौट गये।

पण्डा मणीलाल जीवित मुर्देके समान द्वारकापुरी लौटे और घरके गहने तथा सम्पत्ति बेचकर बाजारके दस हजार रुपयेके ऋणसे मुक्त हुए। बाजारका ऋण तो उन्होंने चुका दिया, सेठ हरमुखरायके विश्वासघातसे उन्हें एक ऐसी चोट लगी कि पैंतालीस वर्षीय पण्डा मणीलाल सत्तर वर्षके बूढ़े प्रतीत होने लगे। प्रतिदिन प्रातःकालके समय अनायास ही उनके मुँहसे एक वाक्य निकल जाता, "परमात्मा उस धोखेबाज सेठको कभी-न-कभी दण्ड अवश्य देगा।"

एक वर्ष बाद अपने दैनिक मन्त्रका उच्चारण करके पण्डा मणीलाल दैनिक समाचारपत्र पढ़ने बैठे, तो मुखपृष्ठपर मोटे अक्षरोंमें लिखा था—"कलकत्तेके करोड़पति सेठ हरमुखराय को धोखेधड़ी और ठगीमें दस वर्षका कठोर कारावास और दस लाख रुपयेका जुर्माना हुआ। हाईकोर्टने सज़ाको बहाल रखा।"

पण्डा मणिलालने समाचार पढ़कर इतना ही कहा—"पिछले जन्ममें मैंने सेठका रुपया मारा होगा। कर्म-विपाकके कारण ही सेठको इसी जन्ममें दण्ड मिला।



भारतीय संस्कृति

केशवदेव चतुर्वेदी

भारतीय संस्कृति संसारकी सर्वोत्कृष्ट एवं प्राचीनतम संस्कृति है। भारतवर्षके सांस्कृतिक ज्ञानके भाण्डार यहाँकी भाषा और साहित्य हैं, जिनके अध्ययन करनेसे भारतीय संस्कृतिकी झाँकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारतवर्षको संस्कृतिके मूलस्रोत वेद, वेदाङ्ग हैं। वेदको श्रुति भी कहते हैं। वेदाङ्गमें आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृति, तन्त्र हैं। वेदाख्यान निबन्धनप्राय पुराण हैं, जिनकी संख्या अठारह है। 'पुराण प्रविभेद इवेतिहासः'—पुराणका ही प्रभेद इतिहास है। इसके दो भेद हैं—(१) परिक्रिया इतिहास, (२) पुराकल्प इतिहास। रामायण (वाल्मीकि) परिक्रिया इतिहास है और महाभारत पुराकल्प इतिहास है। भारतीय संस्कृतिकी पूर्णता और व्यापकताके तत्त्व इनमें सन्निहित हैं। अतः इन ग्रन्थोंके जाने बिना यहाँकी संस्कृतिका ज्ञान अधूरा है।

इस संस्कृतिका प्रादुर्भाव कब हुआ, इस विषयमें इतिहासकार निश्चित मतपर नहीं पहुंचे हैं। किसी विदेशी इतिहासकारने इस विषयमें निष्पक्ष भावसे विचार नहीं किया; क्योंकि ये लोग मिस्र और रोम आदिकी संस्कृतिसे भारतीय संस्कृतिको प्राचीन मानना नहीं चाहते थे। इस प्रकार विदेशी भारतीय संस्कृतिको २००० वर्षकी ही प्राचीनता स्वीकारकर उसपर आलोचना करेंगे, परन्तु उनके ऐसा कहनेसे भारतीय संस्कृतिका यही काल नहीं हो जायगा और न हम भारतीय इसको मान्यता देंगे।

दो हजार वर्षसे पूर्वका तो विक्रम संवत् भारतमें प्रचलित है, जिसका २०१५ संवत् १ अप्रैल १९५८ से चालू है। भारतवर्षमें अपने नामसे संवत् चलानेवाले अनेक शासक हुए। कलियुगमें ६ शककर्ता माने गये हैं, जिनमें एक विक्रम संवतका वर्णन पहले हो चुका है, शेष पाँच शक और हैं, जिनकी गणना यह है—युधिष्ठिर शक ३०४४ है; शालिवाहन शक १८००० वर्ष; विजयाभिनन्दन शक १०००० वर्ष; नागार्जुन शक ४००००० वर्ष; कर्नाटके शक ८२१ वर्ष। यह सब शक भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनताके द्योतक हैं।

आधुनिक इतिहासकार भी कम-से-कम इतना तो मानते ही हैं कि जिन देशोंकी प्राचीन संस्कृतियाँ हैं, उनमें से एक भारत भी है। इतिहासज्ञ भारतीय संस्कृतिको अब प्रागैतिहासिक मानने लगे हैं। यह समय ईसासे २५०० वर्ष पूर्वका है। यह काल-निर्णय यत्र-तत्र खुदाई करनेपर प्राचीन वस्तुओं की कला आदिके अध्ययन करनेसे होता है। प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति आर्य संस्कृति है और उसकी भाषा संस्कृत है। सर विलियम जोन का मत है कि यह भाषा एवं संस्कृति यूरोपके उत्तरी मैदान (जर्मनी), नार्वे, स्वीडन, मध्य-एशिया, उत्तरी ध्रुव, चीन, जापान एवं लंकामें फैली हुई थी। संस्कृति-प्रेमी भारतमें तथा अन्य देशोंमें शोध-कार्यमें संलग्न हैं। जैसे-जैसे यह शोध-कार्य होते रहेंगे, वैसे-वैसे वास्तविकता सबके सम्मुख आती जायगी कि भारतीय संस्कृति संसारकी प्राचीनतम संस्कृति है।

वैदिक सिद्धान्तके अनुसार यदि हम विचार करें, तो भारतीय संस्कृति सृष्ट्यादि है। जबसे सृष्टिका प्रारम्भ हुआ, तभीसे भारतीय संस्कृतिका भी प्रादुर्भाव हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान सृष्टिकी रचना हुए १९७२९४९०५५ वर्ष हुए हैं। इस संख्याका व्यवस्थापक मानपत्र संसारमें पंचांग होता है। ज्योतिषशास्त्रमें सृष्ट्यादि और कल्पादि दोनों अहर्गण होते हैं। उसके अनुसार वर्तमान समयकी गणना की जाती है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सृष्टि को हुए इतने ही वर्ष हुए हैं, यह तो वर्तमान सृष्टिकी गणना है, इससे पूर्व और भी सृष्टि है, जिसका वेदमें इस प्रकार वर्णन आता है—'सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्'—ब्रह्माने सूर्य और चन्द्र जैसा पहले था, वैसा ही (परिकल्पित) किया। आधुनिक वैज्ञानिक भी सृष्टिको लगभग २॥ या ३ ही अरबकी रचना मानते हैं। भारतीय संस्कृतिके अनुसार उपर्युक्त सृष्टि-गणना गणितागत है। वेदादि आर्षग्रन्थोंमें अनेक स्थल भारतीय संस्कृतिके स्वर्णकालीन युगके परिचायक हैं। भारतीय संस्कृतिमें जीवनकी पूर्णता और व्यापकताके तत्त्व सन्निहित हैं। रामायण, महाभारतमें भारतीय संस्कृतिकी अमिट छाप है। इसमें आदर्श और व्यवहार दोनोंका अच्छा समन्वय किया गया है। यह संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—संसारमें सब रहनेवाले एक कुटुम्बी हैं तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा

कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।'—सब प्राणी सुखी हों, नीरोग हों, सबका कल्याण हो, कोई दुःखी न हो। इस संस्कृतिकी ये उदात्त भावनाएँ हैं। पंचशीलके सिद्धान्त भारतीय संस्कृतिकी ही देन हैं, जिनके आगे आज विश्व नतमस्तक है।

भगवद्गीता और दर्शनशास्त्र भारतीय संस्कृतिकी ही देन हैं। इन ग्रन्थोंके संसारकी प्रचलित प्रायः सब भाषाओंमें अनुवाद हो गये हैं। विदेशी भी अब भारतीय संस्कृतिके तत्त्वोंको इन अमूल्य निधियोंके अध्ययनसे समझते जा रहे हैं और इस देशकी संस्कृतिकी गौरम-गरिमा विश्वमें व्याप्त होती जा रही है। भारतके लिए यह कोई विशेष महत्त्वकी बात नहीं है, क्योंकि इतिहासकी तो पुनरावृत्ति होती ही है। हमारी संस्कृति सत्य, अहिंसा आदि दस धर्मोंपर आधारित है। वह हमें अकर्मण्य होनेका सन्देश नहीं देती। यदि राष्ट्र-विरोधी आततायी इसका अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टा करें, तो नीतिशास्त्रमें कहा है—'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। नाततायि वधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।' राष्ट्रद्रोही जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्षमें अपना अपहरणादि करे, तो उसको आता हुआ देख बिना विचारे ही मार दे, क्योंकि आततायीके मारनेमें मारनेवालेको दोष नहीं होता। संसारकी स्थिति रखनेके लिए इसका प्रयोग केवल उसी स्थानपर होना चाहिए, जहाँ राष्ट्र-संकटादि अनिवार्य परिस्थिति उत्पन्न हो जाय।

इस संस्कृतिने वर्णाश्रम धर्मको प्रधानता दी है। अपने कर्तव्योंका पालन करते हुए अपने इष्ट लाभको मनुष्य प्राप्त कर सकता है। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'—ऐसा गीताका दिव्योपदेश है। सबको कर्तव्य-पालनका समान फल बताया गया है—यही भारतीय संस्कृतिकी विशेषता है।

"द्वावेव पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ,
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखे हतः।"—गीता

यहाँपर एक ब्रह्म-साक्षात्कार करनेवाले योगी और देश-रक्षाके लिए प्राणार्पण करनेवाले सेनानीको एक ही प्रकारकी गति प्राप्त होती है। भारतीय संस्कृतिमें सेवा-भावका उच्च आदर्श प्रदर्शित किया है और सेवकको किसी प्रकार हीन न मानकर योगीसे भी ऊँचा कहा है। रामायणमें श्री हनुमानजीने अपने लिए कहा है—'मैं सेवक सचराचर रूपराशि भगवन्त', अर्थात् मैं भगवत्-स्वरूप प्रत्येक जीवका सेवक हूं। तभी तो सेवकवर्गके लिए इतना उच्च स्थान दिया गया है—'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यम्', अर्थात् सेवा-धर्म परम गहन है, जो योगियोंके लिए भी अप्राप्य है। इस प्रकार यह संस्कृति सर्वांङ्गीण समुन्नत एवं लोकोपकारी है।

मध्यकालीन युगकी भारतीय संस्कृति ही इतिहासकारों की आलोचनाका विषय रही है। यह केवल दो हज़ार वर्षका भारतीय संस्कृतिका इतिहास ही इतिहास नहीं है। वह तो आजसे दो हज़ार वर्ष पूर्वका भारतीय संस्कृतिका इतिहास है, जो इस संस्कृतिके समस्त इतिहासका कोऽंश है। पहले एक हजार वर्षके संस्कृतिके इतिहासमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके कारण भारतीयोंको लज्जित होना पड़े। इस ज़मानेमें विदेशी आक्रमणकारी आये, पर या तो वे हारकर लौट गये या सड़-गलकर यहीं रह गये। पिछले एक हज़ार वर्षका भारतीय संस्कृतिका इतिहास भारतीयोंके लिए गौरव की बात नहीं है, पर इस इतिहासका रूप भी हमारे सामने ठीक रूपसे नहीं रखा जाता।

जिस समय मुसलमानोंने भारतपर आक्रमण किया था, उस समय मुसलमानोंकी शक्ति संसारमें बड़ी प्रबल थी। इनके प्रवाहमें बड़े-बड़े राष्ट्र नष्ट हो गये। स्पेन तकमें इस्लामी झण्डा गड़ गया। मिस्र, फारस आदिकी प्राचीन संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं। यहाँ तक कि वहाँकी जातियाँ मुसलमान बन गईं। ७०० वर्ष तक इस शक्तिका भारतीयोंने साहससे मुक़ाबला किया और अन्तमें भारतसे मुसलमानोंकी शक्ति नष्ट हो गई। भारतीयोंने विजय पाई और मरहठोंके प्रभाव से अटकसे कटक तक भारतकी विजय-पताका फहराने लगी। भारतीयोंको अंग्रेजी राज्यसे पहले विजित मानना ऐतिहासिक भूल है।

जान-बूझकर अंग्रेज भारतीयोंकी संस्कृतिको पराधीनता की वृत्ति उत्पन्न करनेके लिए सदैव हीन बताते रहे। यह एक मनोवैज्ञानिक बात है कि किसीसे यह कहा जाय कि तुम्हारे पूर्वज मूर्ख थे, तो यदि उसे अपनी संस्कृतिका ज्ञान नहीं है, तो वह उसको उसी प्रकार मान लेगा। दुर्भाग्यवश अपना देश हज़ारों वर्षोंसे दासताकी बेड़ीमें जकड़ा रहा। अंग्रेजोंने अपनी संस्कृति हमपर बलात् थोपी। शनैः-शनैः हम अपनी संस्कृतिको भूल गये यह एक तथ्यकी बात है कि जिस देशको गुलाम बनाना हो, पहले उसकी संस्कृतिको भुला दिया जाय और कतिपय क्षणिक प्रलोभनोंको दिखाकर प्रभावित किया जाय, तो लोग प्रत्यक्ष लाभ देखकर स्वतः उसके अनुयायी हो जायँगे।

यही दशा भारतीय संस्कृतिकी हुई। यहाँकी संस्कृतिको

भुलाकर अंग्रेजोंने अपनी संस्कृतिकी नींव ऐसी गहरी डाली कि यद्यपि अपना देश स्वतन्त्र हो गया है, तथापि यह जन-साधारणके हृदयमें स्थान किये हुए है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमको पद-पदपर मिलते हैं। अभी हालमें दिल्लीके निगम चुनावोंमें एक प्रत्याशीने अपना चुनाव-चिह्न 'गुड मौर्निंग सर' रखा था। यदि कोई मनुष्य सबसे बलिष्ठ हो, तो उसको भीम या हनुमानकी उपमा न देकर शिष्ट समाज हरक्युलीज़की उपाधि देना अधिक गौरवास्पद समझता है। बड़े-बड़े संस्थानोंके अधिपति भी अपने संस्थानोंका मिनर्वा, जूपिटर इत्यादि नामकरण करते हैं। इसी प्रकार हमारे कुछ भारतीय अंग्रेजी भाषाके मोहको स्वतन्त्र भारतमें भी त्यागनेको तैयार नहीं हैं और दासताके एकमात्र प्रतीक विदेशी अंग्रेजी भाषा को अनिश्चित काल तक राज्य-भाषाके पदपर अलंकृत रहनेके स्वर्णिम स्वप्नको देख रहे हैं। ऐसी राष्ट्र-विरोधी भावनाएँ स्वतन्त्र देशके लिए तथा भारतीय संस्कृतिके लिए शोभाजनक नहीं हैं। यदि हम भारतीयोंकी ऐसी ही दास-मनोवृत्ति रही, तो धीरे-धीरे अपनी संस्कृतिका नाम ही शेष रह जायगा।

जो भारतीय संस्कृति कभी उन्नतिकी पराकाष्ठापर थी, वह अब अवनतिकी पराकाष्ठापर पहुंच गई है। जो सूर्य उदय होता है, वह अस्त भी होता है। 'पतनान्ताः समुद्भवाः'—पतनके अनन्तर फिर अभ्युदय होता है, ऐसा सृष्टिका क्रम है। भारतीय संस्कृतिके इतिहाससे हमको प्रेरणा मिलती है कि जैसे प्राचीनकालमें भारतीय संस्कृति गौरवके शिखरपर थी, उसी प्रकार हम अपनी संस्कृतिको विश्वके सम्मुख सुप्रतिष्ठित करें।

भारतीय संस्कृतिपर यद्यपि बहुत-से कुठाराघात हो रहे हैं, परन्तु इसका परिणाम अच्छा ही है। विशुद्ध कांचनको जितना तपाया जायगा, उतनी ही उसकी कान्ति निर्मल होगी। सांस्कृतिक संकटोंकी यह प्रभात-शर्वरी है। अब वह समय दूर नहीं, जब कि भारतीय संस्कृति-रूपी परम प्रकाशमान भास्करका उदय होगा और इस प्रकाशसे सब राष्ट्र आलोकित होंगे।

शहीद नारायणदास खरे

भगवानदास माहौर

सन् १९३७ में प्रान्तीय स्वायत्त शासन कांग्रेसने स्वीकार किया और परिणामतः राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये। मैं भी भुसावल-बम-केसमें आजीवन कारावासकी सज़ामें से केवल आठ वर्ष ही काटकर बाहर आया। उस समय भावनाकी आँखें शहीद साथी चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदिको बराबर ढूँढ़ती रहीं। कवितामें सुनी हुई यह बात कि शहीदोंके खूनकी एक-एक बूँदसे सैकड़ों स्वातंत्र्य वीर पैदा होते हैं, मनमें काफी गहराई तक उतर गई थी और सम्भवतः इसीने मुझे जेलको यातनाएँ भुगतनेके लिए बल दिया था।

जेलसे निकला तो और सभी साथियोंकी तरह मैं भी कांग्रेसमें सम्मिलित हो गया और कार्य करने लगा। देहातों की कांग्रेसी सभाओंमें भी जाने लगा। ऐसी ही एक सभामें जाते हुए मार्गमें मुझे श्री नारायणदास खरेके सर्वप्रथम दर्शन हुए। उस समय उनकी आयु केवल बीस-इक्कीस सालकी रही होगी। वे गेरुआ कुरता और गेरुआ धोती पहने हुए थे। बड़े हँसमुख, बड़े फुर्तीले, सब काम आगे-आगे होकर करनेवाले, नेताबाज़ीसे कोसों दूर, रास्ते भर आप मजेदार चुटीली बातें ठेठ बुन्देलखण्डीमें बराबर करते रहे। उनके प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था।

गाँवमें पहुंचे। सभा हुई। सभामें ज़मींदारोंने पत्थर फिकवाये। उस समय मैं बोल रहा था। वैसे बोलना मुझे कुछ नहीं आता था, केवल इसलिए कि मैं भगतसिंह, आज़ाद आदि क्रान्तिकारियोंका साथी रहा हूं और आजन्म कारावास की सज़ामें से आठ वर्ष काटकर आया हूं, साथी लोग मुझे खींचे-खींचे फिरते थे और बोलनेके लिए मजबूर करते थे। और मैं अपने पुस्तकीय ज्ञान और अखबारी बातें ऐसी भाषा में झाड़ता रहता था कि उसमें से कुछ भी ग्रामीण जनताके पल्ले न पड़ता था। एक तो मेरी स्पीच ही सभा उखाड़नेके लिए काफी थी, उसपर ज़मींदारोंके पत्थर भी पड़ने लगे। सभा उखड़ते देख मैं शायद 'इन्क़ाब ज़िन्दाबाद', 'साम्राज्य-वादका नाश हो' आदि नारे लगा-लगवाकर बैठ जाता; लेकिन जब मंचपर पत्थर गिरने लगे, तो कैसे बैठ जाता। भगतसिंह, आज़ाद आदिके साथीको लोग बुज़दिल समझें, यह भला मैं कैसे सहन कर सकता था? अतः मैंने अपना सभा-उखाड़ भाषण और अधिक जोर-जोरसे झाड़ना चालू रखा।

पत्थर भी पड़ते रहे। और जाहिर है कि मेरे भाषण और पत्थरोंकी दुहरी मारसे भला सभा कैसे जमी रह सकती थी।

नारायणदास उचककर मंचपर आ गये और लोगोंसे शान्त रहकर बैठे रहनेके लिए अपील करनेके बहाने स्वयं बोलने लगे ठेठ बामुखिरा बुन्देलखण्डीमें। मैं पीछे पड़ गया। नारायणदासका भाषण जम गया, और उखड़ गई जमींदारोंके गुर्गोंकी पत्थरबाज़ी। नारायणदासने कुछ ऐसी बातें ठेठ बुन्देलखण्डीमें कहीं, जिसमें उन्होंने मेरे क्रान्तिकारी जोश और त्यागकी प्रशंसा थी और कहा कि ज़मींदार आदि जय बोलें महात्मा गांधीकी कि आज ये क्रान्तिकारी उनके झण्डेके नीचे हैं और यदि ज़मींदार यही चाहते हों कि हिन्दुस्तानमें भी रूस-जैसी खूनी क्रान्ति हो, तो ऐसी ही पत्थरबाज़ी करते रहें, रूस-जैसी क्रान्ति होकर रहेगी। उन्होंने रूसकी क्रान्तिमें ज़मींदारोंकी क्या दुर्दशा हुई, इसका सुन्दर-सा शब्दचित्र खींचा, जो सही भले न हो, था बड़ा प्रभावोत्पादक। उन्होंने ग़रीब किसानोंके उत्साहको बढ़ाया और व्यंजनासे ज़मींदारों और उनके गुर्गोंको धमकाया भी, और अन्तमें क्रान्तिकी तथा महात्मा गांधीकी जय बोली। अपनी बुन्देलखण्डी उपमाओंसे उन्होंने कई श्रोताओंको हँसाया। ज़मींदारोंके अत्याचार और साथ ही धर्मके ढोंगकी बातें करते हुए उन्होंने मजेदार किस्से सुनाये।

मेरी सभा-उखाड़ स्पीचको भी उन्होंने बरदाश नहीं। कह तो वे ग्रामीण जनतासे रहे थे, परन्तु उनका उपदेश था मेरे लिए। उन्होंने ऐसा कुछ कहा: माहौरजीकी बातें समझनेके लिए पहले बहुत-कुछ पढ़ना-समझना पड़ेगा, तब उनकी ये ऊँची-ऊँची बातें समझमें आ सकेंगी। अपने मतलबकी 'महुआ-मूसर'की बातें हमसे सुन लो। जब कभी जहाँ कहीं स्वराज्यकी, कांग्रेसकी सभा हो, उसमें हमें पहुंचना चाहिए और नेताओंकी बातें समझमें आयें चाहे न आयें, बराबर बैठे सुनते रहना चाहिए।

यह उपदेश था मेरे लिए कि देहाती सभाओंमें क्या होता है और उनमें मुझे क्या और कैसे बोलना चाहिए, जो इस प्रकार मीठे शब्दोंमें मुझे दिया गया था कि मुझे ज़रा भी बुरा नहीं लगा।

नारायणदास खरे अक्सर झांसी आते ही थे, अब मेरे घर भी आने लगे। मेरे घरपर अपनी खुश-मिजाजीसे उन्होंने सबको अपना आत्मीय बना लिया, विशेषतः मेरी मां के प्रेम-भाजन बन गये। मां को उनकी बातोंमें बड़ा रस मिलता था। वे मेरी मांके उसी प्रकार लाडले बेटे बन गए, जैसे पहले आज़ाद बन गए थे। यह गुण भी उनमें आज़ाद जैसा ही था। आज़ाद एक गुप्त सशस्त्र क्रान्तिकारी दलके फरार व्यक्ति थे, जन-सम्पर्कसे उन्हें दूर ही रहना पड़ता था, परन्तु नारायणदास खरे एक खुले सार्वजनिक आन्दोलनके कार्यकर्ता थे। नारायणदासकी बाई, बऊ, कक्की, ताई, जिज्जी, बिन्नू, बब्बा, कक्का, दद्दा घर-घरमें हो गये थे। मुझे यह देखकर आश्चर्य और झुँझलाहट दोनों होते कि जिस बातको मैं मांसे कभी नहीं मनवा पाता, नारायणदास अपनी चुटीली बुन्देलखण्डी बोलीसे बड़ी आसानीसे उसे मांके गले उतार देते। जब मैं कहता कि "मां, यही मैं भी कह रहा था," तो मां कहती, "हओ तुम कै रहते, तुम तो अंगरेजी मसक रएते, संस-कीरत कुटक रएते।" (जी हाँ आप, कह रहे थे। आप तो अंगरेजी मसकते थे और संस्कृत कुटकते थे।) मैं हतप्रभ होकर रह जाता और नारायणदास शरारतसे मुसकराते और कहते—"बाई, इनकी तुमई नई, हम सोऊ नई समज पाउत; तुमाई हम समझन, हमाई तुम, मौआ मूसरकी जो ठैरी।" अर्थात्—"माँ, इनकी आप ही न समझती हों, यह बात नहीं, मैं भी नहीं समझ पाता। आपको मैं समझता हूँ और मेरी आप समझती हैं—महुआ-मूसरकी बातें जो हैं।" माँका नारायणदासकी इन 'मौआ-मूसर' की बातोंमें बड़ा रस मिलता। माँ खाटपर पड़ी होती, तो नारायणदास उनके पैर भी दबाने लगते। माँ संकोचसे पैर हटा लेती और कहती—"अरे नारान! जौ का करत?" (अरे नारायण, यह क्या करते हो?) तो नारायणदास आग्रहपूर्वक पैर दबाते और कहते—"अरे बाई! तुम शहीदनकी बाई हो, तुमाए पाँव आजाद जैसनने परे। तुमारे पाँव दबावे को का, छूवे भरको भाग कौन-कौन खौं मिलत? तुम का अकेली भगुआनकी बाई हो? तुम तो हम सबकी बाई हौ।" (यानी—वाह माँ! आप शहीदोंकी माँ हैं, आपके पैर आज़ाद जैसोंने छुए हैं। आपके पैर दबाने का क्या, छूने भरका सौभाग्य किस-किसको मिलता है? आप क्या अकेली भगवानदासकी माँ हैं? आप तो हम सबकी माँ हैं।) और माँ गद्‌गद् हो जाती और मेरे लम्बे कारावाससे उन्हें जो पीड़ा हुई तथा घरबार तक बिक जानेकी गरीबीका जो कष्ट हुआ, उसे केवल भूल ही नहीं जाती, उसमें गौरव अनुभव करने लगता। सन् १९२६-२७ में मुझे आज़ादके लिए माताजीको रोटियाँ चुरानी पड़ती थीं। अब सन् ३८-३९ में नारायण खरे आदि साथियोंने मेरी

माँको हम सबकी माँ बना लिया और फिर मेरी माँकी ग़रीब हंडियासे एक चमचा दाल और मटेलनीमें से चार रोटियाँ घर आये, हर भूखे साथीको माँके स्नेहसे चुपड़ी हुई मिल जाती, और इसमें जो सुख तथा सन्तोष माँको मिलता, उसे न तो मैं कभी कमा-धमाके दे सकता था, न कोई सरकारसे प्राप्त राजनीतिक पीड़ितकी पेन्शन ही दे सकती थी। और फिर नारायणदास खरेकी ऐसे बाई-बऊ-जिज्जो आदि उनके कार्यक्षेत्रके घर-घरमें हो गई थीं कि बिना किसी भेद-भावके काछी, कोरी, चमार, ब्राह्मण, बनिया सभी घरोंकी हंडियोंमें से उन्हें दाल और हार्दिक स्नेहसे चुपड़ी हुई चार रोटियाँ सब कहीं मिल जाती थीं।

पहले-पहल जब मैंने नारायणदास खरेको गेरुआधारी संन्यासी (उनका सर मुंडा हुआ नहीं था) के वेशमें देखा, तो मुझे कुछ हैरानी हुई। एक तो अपनी मार्क्सवादी विचार-धारासे मुझे संन्यास बिलकुल बेकारकी बात लगा और फिर २०-२१ वर्षके तरुण नारायणदासका संन्यास तो बहुत ही वाहियात मालूम हुआ। कुछ आत्मीयता बढ़ जानेपर मैंने उनसे कहा—"तुम यह संन्यासी-फन्यासीका वेश बनाये क्या फिरते हो?" तो उन्होंने उत्तर दिया—"भैया, इससे मेरे स्वराज्यकी समस्या हल हो जाती है।" मेरी समझमें कुछ भी न आया, तो मैंने कहा—"यार, क्या बकते हो? तुम्हारे स्वराज्यकी समस्या? क्या माने?" नारायणदासने अपने लाक्षणिक हास्यको जारी रखते हुए कहा—"देखो बाबा! सब नेता लोग कहते हैं कि हमने प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त कर लिया और आप कहते हैं कि यह स्वराज्य-फुराज्य कुछ नहीं है। प्रान्तमें नेता लोग मन्त्री बन गये, सो प्रान्तीय स्वराज्य हो गया और आप कहते हैं कि जब तक पूरे भारतवर्षको खानेको नहीं मिलता, तब तक स्वराज्य कैसा? हमने आपकी और नेताओं दोनोंकी बातें मान लीं—पूरे हिन्दुस्तान भरके लोगोंको खानेको मिलने लगे, वह होगा पूर्ण स्वराज्य; कुछ लोगोंको मिलने लगे, यह हुआ आंशिक स्वराज्य। पूरे जीवन भर खानेको मिलने लगे, वह होगा ज़िन्दगी भरका स्वराज्य और एक दिनका खानेका मिल जाय, वह हुआ दैनिक स्वराज्य। इस संन्यासी वेशसे मेरे दैनिक स्वराज्यकी समस्या हल हो जाती है। किसी के भी यहाँसे वह कोरी हो, चमार हो, काछी हो, ब्राह्मण हो, बनिया हो, ठाकुर हो रोटी माँगकर खा लेता हूँ और कोई उसे बुरा नहीं समझता, नहीं तो चमार पहले तो खुद ही रोटी नहीं देता, रोटी क्या पानी नहीं पिलाता—किसी की जाति बिगाड़नेके पापके डरसे और दूसरे एक बार चमारके घर रोटी खा लेनेपर फिर बनिया और ब्राह्मणके यहाँ खानेको मिलता नहीं, इसलिए आजकी परिस्थितिमें इस संन्यासी वेशसे अपने दैनिक स्वराज्यकी समस्या हल होनेमें सुविधा हो जाती है और जिससे स्वराज्य मिले, वह बात गलत नहीं हो सकती। क्यों दादा, है न?" और फिर ठहाका मार कर नारायणदास हँसते रहे। सैद्धान्तिक बहसमें फँसना नारायणदासको अच्छा नहीं लगता था। किसी भी सिद्धान्त की कसौटी उनके लिए ठोस वास्तविकता थी।

परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आरम्भमें उनके संन्यासी वेशसे उनके इस 'दैनिक स्वराज्य' की समस्या हल होनेमें भले कुछ सुविधा हो गई हो, वास्तवमें प्रत्येक घरमें उन्हें जो स्नेह और घरका रूखा-सूखा जो हुआ मिल जाता था, उसका कारण उनका आत्मीयतापूर्ण व्यवहार था और उनके प्रति सबका यह विश्वास था कि नारायणदास एक सच्चा, परिश्रमी, निरभिमान कार्यकर्त्ता है, जो उनके प्रत्येक सुख-दुःखमें साथ रहनेवाला है, केवल भाषण झाड़नेवाला अहम्मन्य नेता नहीं। बादमें जब नारायणदास अपने कार्य-क्षेत्रमें इस प्रकार पर्याप्त जनप्रिय हो गए, तो उन्हें फिर इस संन्यासी वेशकी आवश्यकता नहीं रह गई। वे फिर सादा लिबासमें ही रहने लगे और बादमें उन्होंने विवाह भी कर लिया और एक बच्चीके बाप भी बने।

उनके इस दैनिक स्वराज्यकी बात मेरे घरपर खूब चली। एक बार नारायणदास मेरे घर जेठकी दुपहरीमें ठीक दिनके १ बजे पहुंचे। घरपर सब खाना खा चुके थे। नारायणदास बैठ गए, मैं घरपर था नहीं। नारायणदास माँसे अपनी 'मौआ-मूसर' की मसकते रहे। माँको क्या मालूम कि नारायणदासने अभी तक खाना नहीं खाया है और कहीं खाना न मिलनेसे खानेकी टोहमें ही वे मेरे घर पहुंचे हैं। माँने पूछा कि वे ऐसी दुपहरीमें कहाँ भटकते फिर रहे हैं, तो नारायणदासने उत्तर दिया—"बाई, सांची कहें? सुराज के लानेई तो आ फिर रए, सांचऊँ बाई आज दारी कऊँ घुवइया नई लगी, जहसे मैंने कई कि लो अब तो बाई यई स्वराज करायें।" (यानी—माँ! सच कहूं, स्वराज्यके लिये ही तो फिर रहा हूं। सच माँ, आज कहीं कोई युक्ति काममें नहीं आई। इसीसे मैंने कहा कि बस अब आज तो माँ ही स्वराज्य करायेंगी।) भला माँ नारायणदासके इस स्वराज्यका

अथ क्या समझतीं ! जब माँने कहा कि आज वे कैसी अंट-संट बातें कर रहे हैं, तो नारायणदासने अपने स्वराज्यका अर्थ उन्हें बतलाते हुए कहा—"ये लो बाई, तेरो कौल जौ नैकऊ झूठी कई होय। सुराज का होत ? सब खों चैनसे खावें खों मिलन लगें जोई नई ? सो आज खावें खों मिल जाय सो आज को सुराज।" (यानी—माँ, तेरी सौगंध, जो मैंने ज़रा भी झूठ कहा हो। स्वराज्य क्या होता है ? यही न कि सबको चैनसे खानेको मिलने लगे ? सो आज खानेको मिल जाय, तो आजका स्वराज्य हो गया।) माँ उनकी बात, मुख-मुद्रा और हाव-भावसे समझ गई कि नारायणदास भूखे हैं। उस रोज़ कोई त्यौहार था और घरपर साग-पूड़ी-खीर आदि कुछ अच्छा खाना बना था। माँने नारायणदासको खाना परोसा। नारायणदास खाने लगे। इतनेमें मैं आ गया। नारायणदासको देखा, तो उनसे ऐसी कुछ बातें करने लगा कि अमुक मण्डलमें कितने कांग्रेस सदस्य बने, यहाँके मण्डलका हिसाब-किताब बड़ा गड़बड़ मालूम होता है आदि, क्योंकि उस समय मैं झाँसी जिला कांग्रेस कमेटीका आफिस-सेक्रेटरी था। नारायणदास केवल हूं-हाँ करते जाते थे, कुछ ठीक उत्तर नहीं दे रहे थे। मैंने कहा—"यह हूं-हाँ क्या करते हो ? कुछ ठीक-ठीक कहते क्यों नहीं ?" नारायणदासने निवाआ गलेके नीचे उतारा और मुझसे कहा—"आप ऐसी रिएक्शनरी बातें करेंगे, यह मैंने कभी सोचा भी नहीं था।" मैं झुँझलाया और उबल पड़ा। बात यह थी कि एक नेता महाशय हिसाब-किताबमें बड़ी गड़बड़ी करते थे। मैं कांग्रेस कमेटीके दफ्तरमें उन्हींसे उलझकर आ रहा था। जब मैंने उन महाशयसे इस सम्बन्धमें कहा था, तो वे बोले—"हम तो समझते थे कि तुम क्रान्तिकारी हो, पर तुम तो बिलकुल हिसाबी-किताबी बनिया हो। एक-एक कौड़ीका हिसाब माँगते हो ! हिसाब-किताबसे कहीं क्रान्ति होती है ? यहाँ तो देहात-देहातमें भटकते भूखे-प्यासे मरते फिरते हैं और आप हैं कि एक-एक कौड़ीका हिसाब-किताब माँग रहे हैं। ज़रा देहातमें चल-फिरकर काम कीजिये, तो पता लगे।·· क्रान्तिकारीकी तरह रहा करो। बिलकुल बनिया या मुंशीजी मत बनो। एक-एक पैसेके लिए गला पकड़ते हो।" अब यहाँ नारायणदास मेरी बातोंको रिएक्शनरी बता रहे थे। मैं बिगड़ता रहा और नारायणदास मुसकराते और खाते रहे। माँ मुझपर बिगड़ी और बोली—"उसे खा तो लेने दे, फिर हो तेरा यह लेक्चर।" नारायणदास जोरसे हँसे और बोले—"बाई को तुम हो पक्की क्रान्तिकारी। क्या आनन्दसे मेरा स्वराज्य हो रहा है और इसमें भगवान बाधा डाल रहे हैं।" फिर मेरी ओर देखकर बोले—"देख नहीं रहे हो यह खीर, ये पूड़ी, यह पापड़, यह चटनी, यह रायता, भलेमानस, आज कांग्रेसी स्वराज्य नहीं, आपका पक्का पूरा प्रोलितारियन रेवोल्यूशन हो रहा है और तुम अपनी बातोंसे इसका मज़ा बिगाड़ रहे हो। मेरे आजके स्वराज्य—स्वराज्य क्या जी, स्वराज्य तो रोटी-दाल होती है—यह तो सम्पूर्ण श्रमिक महाक्रान्ति है, इसमें तुम्हारी बातें रिएक्शनरी हो रही हैं।" इसपर मुझे भी हँसी आ गई और मेरा उबाल शान्त हो गया। तबसे मेरे घरमें 'स्वराज्य' शब्द भोजनका पर्यायवाची बन गया। जब कभी मैं बिना खाना खाये घरसे कामके लिए निकलने लगता, तो माँ कहती—"ए सुराजके ठरगजे, पैले घरैं सुराज करैं जाओ, तब फिरियो सुराजके लाने।" जब कभी नारायणदास या और साथी घर आते, तो माँ पूछती—"काय नारान ! आज सुराज भओ के नईं ?" और नारायणदास चार-छै बासी रोटियाँ आमके अचारके साथ खाके, पानी पीके कहते—"बाई, तेरी जै हो, तुम जियत रहओ, तुमें सुराज न दिखाऔ तौ कछू न करौ।" (यानी—माँ, तेरी जय हो ! तू जीवित रहना। तुझे तेरे जीवनमें ही स्वराज्य न दिखलाया, तो हम लोगोंने कुछ नहीं किया।) माँ जीवित रहीं और स्वराज्यका महोत्सव देख लेनेके बाद ही मरीं। मेरे बड़े भाईका नाम भी नारायणदास ही है। मरते समय माँ मेरी गोदमें लेटी थीं और कह रही थीं—"···नारान···भगुवान···अब तौ देख लओ सुराज, अब अच्छी तरां रह्यौ···।" मैं तो आज डिग्री कालेजमें लेक्चरर होकर अच्छी तरह ही हूं, परन्तु जिस 'नारान' ने उन्हें स्वराज्य दिलानेकी प्रतिज्ञा की थी, वह ओरछा राज्यकी गरीब किसान प्रजाके स्वराज्यके लिए राजशाही और जमींदारशाहीके हत्यारोंके हाथसे गोली खाकर गिरा और फिर उनके द्वारा न-जाने तलवारसे, न-जाने कुल्हाड़ीसे टुकड़े-टुकड़े किये जाकर शहीद हो गया। वह कभी 'अच्छी तरह' नहीं रहा, कभी अच्छी तरह नहीं रहा।

नारायणदास खरे भी चन्द्रशेखर आज़ादकी तरह ही एक जन-पुत्र थे। अपनी राजनीति और अपना राजनीतिक दर्शन उन्होंने भी संघर्षमें रहकर उसीमें से सीखा था, कालेज या पुस्तकोंसे पढ़कर नहीं। उनके मनमें अमूर्त सिद्धान्त नहीं,

अपने साक्षात् परिचयकी अपनी आत्मीय गरीब, अशिक्षित, कुसंस्कारग्रस्त, चीथड़ेहाल, भूखी जनता ही सदा रही। कांग्रेसमें रहकर वे कई बार जेल गये, परन्तु स्वराज्यके बाद जब उन्होंने कांग्रेसमें पदोंकी छीना-झपटी देखी और साथी कार्यकर्ताओंमें भोग-विलासमय जीवनकी इच्छा देखी, तो उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी तथा अपनी कमर और अधिक कसकर, अपना झोला सम्हालकर, अपनी किसीसे उधार माँगी हुई खड़खड़िया साइकिल पकड़कर कम्युनिस्ट पार्टीमें पहुंच गये। पहले नारायणदास खरेके हाथमें तिरंगा रहा करता था, अब लाल झण्डा रहने लगा।

जब हैदराबादका आर्य-सत्याग्रह चला था, तो नारायण दास उसमें भी चले गये थे। जब वापस आये तो मिले। मैंने उनसे पूछा—"आप और आर्य-सत्याग्रह!" तो सीधा कोई सैद्धान्तिक उत्तर न देकर आपने कहा—"दादा! बँधे रहनेसे घोड़ा और बैठे रहनेसे सिपाही बिगड़ जाता है। अरे, यह तो कसरत करने-जैसी बात है!"

नारायणदास खरेने कभी अत्याचार या तकलीफका रोना नहीं रोया। साथियोंने भी जब कभी उनके साथ रूखा व्यवहार किया या ग़लतफहमीके कारण अनुचित बर्ताव भी किया, तो रोष या द्वेषसे उन्होंने कभी वैसा व्यवहार स्वयं नहीं किया। उनके प्रति किये गये अन्यायके लिए जब कभी मैंने समवेदना प्रकट की, तो भी उन्होंने यही कहा कि भैया, कोई मिनिस्टर या एम० एल० ए० तो मैं हूं ही नहीं कि मुझे अपनी कुर्सी छिन जानेका डर हो। मेरा यह झोला और घर-घरसे मिल जानेवाली रोटियाँ सलामत रहें, इधर नहीं तो उधर, उधर नहीं तो और कहीं, कार्य करता ही रहूँगा। और वे बराबर झाँसी जिलेमें, नहीं तो टीकमगढ़ राज्यके गाँवोंमें काम करते रहे और कार्य करते-करते ही शहीद हो गये।

उनके साथियोंने समझाया कि नारायणदास बहुत बढ़-बढ़के बातें न करो, इसीमें भलाई है, नहीं तो ठाकुरोंका गुस्सा जानते ही हो, किसी दिन तुम्हारी बोटी-बोटी स्यार खा जायँगे। परन्तु नारायणदासकी कार्यशीलतामें कोई अन्तर नहीं आया। एक रोज बड़ागाँवसे उन्हें एक अन्य गाँवको जाना था, जहाँ उन्हें एक सभामें सम्मिलित होना था। साथियोंको कुछ ऐसा मालूम हुआ कि नारायणदासके लिए मार्गमें खतरा है। उनसे बहुत कहा गया कि आजका अवसर टाल जायँ। परन्तु यह कहकर कि ऐसे अवसर टालने लगें तो फिर काम हो चुका। अपने लिए कोई बख्तरबन्द मोटरगाड़ी तो आयेगी नहीं। इसी खड़खड़िया साइकिलपर ही तो घूमना है और यह बात तो रोजकी है। वे अकेले अपनी खड़खड़ियापर सवार होकर रात रहते ही बड़े तड़के चल पड़े और मार्गमें मार डाले गये।

चन्द्रशेखर आज़ाद देशकी आज़ादीके लिए साम्राज्य-वादियोंकी गोली खाकर शहीद हुए, नारायणदास गरीब किसान प्रजाकी आज़ादीके लिए जमींदार-राजाशाहीकी गोली खाकर शहीद हुए। दोनोंकी शहादत भी मुझे एक-सी ही लगी। चन्द्रशेखर आज़ादको कीर्ति अधिक मिली, नारायण-दास खरेको कम—बहुत कम, यह केवल परिस्थितियोंके फेरकी बात है।

कहावत है, 'जाति न पूछो साधुकी'। इसी प्रकार शहीद का राजनीतिक दल भी नहीं पूछा जाना चाहिए। शहीद तो शहीद है, जिसके रक्तसे स्वतन्त्रताका पौधा पनपता है तथा अन्य आवश्यक शहीद उत्पन्न होते रहते हैं। शहीद तो खरा सोना है, परिस्थितियाँ कभी उसपर चन्द्रशेखर आज़ादका ठप्पा लगा देती हैं, कभी नारायणदास खरेका।

गौरव अनुभव

किशन सिंह

जिस प्रकार मा अपने भोले शिशुकी क्रीड़ाओंको दूरसे देख-देख कर मग्न होती है और उसके साहसिक बाल प्रयासोंको अपना काम छोड़कर भी देखा करती है कि कहीं वह दुर्घटनाका शिकार न हो जाये, उसी प्रकार जगतात्मा भी संघर्षोंमें पड़े हुए अपने मानव शिशुको बड़े ध्यानसे देखा करती है। सारे काम छोड़कर वह उसीकी मंगल-कामनामें एकाग्र हो जाती है। उसकी सफलतामें ही वह अपना गौरव अनुभव करती है।

कविकी प्रिया

भगवतीप्रसाद चंदोला

(१)

कवि,
तुम्हारी प्रेमिकाको देखनेकी—
कमल-वनकी उस कलीको,
गगनकी उस तारिकाको,
दमकती घन-दामिनीको,
सरितकी चंचल लहर,
शेफालिकाकी मुग्धकारी
उस सुरभिको,
शरद्‌की उस चाँदनीको,
और भी अनुपम
भरा जो इस धरामें,
सब मिलाकर
जो तुम्हारी
कामनाकी मूर्त्ति
निर्मित हो उठी थी
हृदयके एकान्त मन्दिर में तुम्हारे ;
साधनामें लीन रहते·
भूलकर निजको सदा
जिस रूपसीकी,
जिस धराकी उर्वशीकी,
साधनामें लीन रहते
जिस परीकी,
उस परीको, उर्वशीको, रूपसीको
देखनेकी चाह थी,
कवि, तुम्हारी प्रेयसीको देखनेकी
चाह थी।
चाह थी, बस
बहुत ही मेरे हृदयमें चाह थी।

(२)

एक दिन आया कि वह आई इधर,
चाहकी परितृप्ति-सी आई इधर।
सुन्दरी थी
स्वप्नकी रानी तुम्हारी,
भावनाकी मूर्त्ति प्यारी
वह तुम्हारी प्रेयसी थी।
थी विधाताकी मृदुल कृति
सुन्दरी वह,
(ज्यों धरामें हैं अपरिमित रमणियाँ)।
पर, न क्या निज भावनासे,
कामनासे, कल्पनासे,
चेतनाकी शक्तिसे
जो थी समाई
कवि, तुम्हारी चेतनामें
है रचा तुमने उसे
निज प्यारसे,
वेदनासे, आँसुओंसे, विरहसे,
अनुरागसे ?
ओसका मोती बना था
भोरके आलोकमें,
या कि रविकी रश्मियोंसे
कंज-कलिको था मिला मुस्कानका वर—
कवि, तुम्हारी प्रेमिका भी
खिल उठी चिर-प्रेम पाकर।
मानवी वह बन गई कुछ और ही
या तुम्हारे हृदयका अनुपम सुधाकण,
प्राणका, मनका
मधुर वरदान पाकर
बन गई थी और ही कुछ—
पा गई अमरत्त्व तुमसे,
दे गई अमरत्त्व तुमको।

पश्चिम बंगालमें जेल-सुधार

आजकल जेल-व्यवस्थाका प्रधान लक्ष्य कैदियोंकी मानसिक एवं नैतिक स्थिति तथा उनकी प्रवृत्तियोंकी परिष्कृति कर उन्हें जीवनमें पुनः प्रतिष्ठित करना है। हमारी जेलोंमें साधारणतः कई तरहके कैदी आते हैं। इनमें से कुछ तो स्वभावसे ही अपराधी मनोवृत्तिके होते हैं, जो अपराध करना अपना पेशा बना लेते हैं, परन्तु अधिकतर ऐसे होते हैं, जो परिस्थितियोंसे बाध्य अथवा उत्तेजनाके क्षणोंमें अपराध कर बैठते हैं और फलस्वरूप चाहारदीवारीके भीतर पहुंचते हैं। सचमुच यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है। हमें इनको सामाजिक जीवनका एक दुर्बल अंग मानना पड़ेगा। इन्हें केवल दण्ड देनेसे काम नहीं बनेगा, अपितु यथोचित चिकित्सा द्वारा स्वस्थ बनाकर इन्हें फिर समाजमें वापस लाना ही होगा। मनुष्यताको इस अपमृत्युसे बचाना ही होगा। आजकलके कानूनके अनुसार उन्हें जेलमें लाना ही होगा, किन्तु इस जेल-जीवनमें उनके प्रति सच्ची सहानुभूति और सद्भावके साथ उनकी मनोस्थितिको समझना होगा। उन्हें क्यों इस तरहके अपराध करनेकी प्रवृत्ति हुई, इसे भलीभाँति समझकर इस तरहकी व्यवस्था करनी होगी, जिससे वे जेल-जीवन समाप्त कर समाजमें लौटनेपर अच्छे नागरिककी तरह जीवन यापनके लिए उत्साह पा सकें।

यह तो मानना होगा कि कैदियोंका ठीक तरहसे श्रेणी विभाग करना बहुत जरूरी है। ऐसा नहीं होनेपर उनकी आवश्यकताके अनुसार उनकी चिकित्सा और कर्मशिक्षा-व्यवस्था सम्भव नहीं होगी। इसमें संदेह नहीं, साधारणतः उम्र, स्त्री-पुरुष और अपराधोंके आधार पर श्रेणी-विभाजन किया जाता है। जिस प्रकार नये आनेवाले कैदी, जो शायद जीवनमें पहली बार अपराध करके कैदखानेमें आनेके लिए बाध्य हुए हैं, उन्हें पुराने अपराधी कैदी अपने प्रभावमें लाकर और अधिक बिगाड़ न दें, इसलिए उन्हें अलग रखा जाता है। किन्तु केवल इस तरहका श्रेणी-विभाग ही पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। इसका प्रधान कारण है जेल भेजनेके समय चालानकी कितनी मियाद है और किस अपराधमें वह जेल भेजा गया है, यही बातें लिखी होती हैं। वह किस वातावरणमें रहता था, किस तरहके परिवारसे उसका सम्बन्ध है, उसका पिछला इतिहास क्या है, उसका झुकाव किस ओर है, वह किस विषयमें प्रवीण है आदि बातों का जिक्र उसके मामलेके साथ नहीं रहता। इसलिए जिस दिन वह जेलमें पहुंचता है, उस दिन जेल-अधिकारियोंको उसके सम्बन्धमें इन बातोंकी जानकारी नहीं रहती। किस प्रकार उसकी चिकित्सा आरम्भ की जाय आदि बातें निश्चत करनेमें जेल-अधिकारीको दिक्कतें होती हैं। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखते हुए इस सालसे अलीपुर सेन्ट्रल जेलमें और प्रेसीडेन्सी जेलमें मनोविज्ञानके एक विशेषज्ञके तत्वावधानमें एक केन्द्र स्थापित किया गया है। ये विशेषज्ञ कैदियोंके मनस्तत्वको समझकर उनके मानसिक रोगका निर्णय करते हैं। इसके बाद उसीके अनुसार 'कामके माध्यम'से उनकी चिकित्सा भी करते हैं। इसी उद्देश्यसे मनोविज्ञानके विशेषज्ञ और उनके सहयोगी कार्यकर्ता प्रत्येक बड़ी मियादवाले कैदियोंकी मनोवैज्ञानिक परीक्षा करनेमें व्यस्त हैं। यह योजना पश्चिम बंगाल सरकारके अधीन कैदियोंकी मनोवैज्ञानिक परीक्षा करनेकी प्रथम योजना है। आशा की जाती है, इस प्रकार परीक्षासे जो तथ्य प्राप्त होंगे, उनसे अपराध करनेके मूल कारणोंपर ही प्रकाश नहीं पड़ेगा, वरन् कामके माध्यमसे कैदियोंके मानसिक और नैतिक परिवर्तन करनेमें पर्याप्त सहायता मिलेगी। इस तरहके कार्योंमें अधिक धनकी आवश्यकता होगी। अर्थ-व्ययको कम करनेके लिए कलकत्ता-विश्वविद्यालयके मनस्तत्व-विभागके छात्र-छात्राओंकी सहायता प्राप्त की जा रही है। ऐसा खयाल किया जाता है कि इन छात्रोंको हाथ और कलमके माध्यमसे परीक्षामें सफल घोषित करनेके बजाय यदि वे कैदखानेकी चहारदीवारियोंके अन्दर बन्द दुःखी और दुर्बल-चित्त जो अपने जीवन के ज्वलन्त उदाहरणको लेकर बैठे हैं, उनके जीवनके रहस्यका उद्घाटन कर सकें, तो उनके लिए भी यह एक बड़ी बात होगी और वे कैदी भी पुनः स्वस्थ जीवनमें प्रवेश पा सकेंगे।

लम्बी मियादकी स्त्री-कैदियोंके लिए बरहमपुर सेण्ट्रल जेलमें महिलाओंके रहने योग्य स्थानकी व्यवस्था रखी गई है। उनके लिए विभिन्न प्रकारकी शिल्प-शिक्षा, नैतिक शिक्षा और लिखने-पढ़नेकी शिक्षाकी व्यवस्था की गई है। कम मियादकी स्त्री-कैदियोंके लिए कलकत्ता-प्रेसीडेन्सी जेलमें

व्यवस्था है, और सेवाव्रती महिलाएँ स्वेच्छासे इनके बीच सेवा-कार्य करती हैं।

स्त्री-कैदियोंके सम्बन्धमें सबसे बड़ी समस्या यह है कि समाज इन्हें पुनः वापस नहीं लेता। आत्मीय स्वजन मुँह फिराकर चल देते हैं और समाजमें इनकी पुनः प्रतिष्ठा कठिन हो जाती है। इनके लिए सरकार आश्रय-सदन तैयार करनेका प्रयत्न कर रही है।

कैदियोंके लिए कैदकी मियाद पूरी होनेके बाद समाजमें अपनी अनिश्चित अवस्थाकी भावना ही सर्वाधिक कष्टदायक होती है। वास्तवमें कैदमें रहनेकी कलंक-कालिमा उसपर इस तरह छाई रहती है कि जब वह सामाजिक जीवनमें पुनः प्रवेश करना चाहता है, तब उसपर लादे जानेवाले अपमानों की सीमा नहीं होती। उस समय वह अपने परिवारसे विच्छिन्न हो जाता है, पासमें कोई सहारा नहीं और कहीं खड़े होनेकी जगह भी नहीं मिलती। उस समयकी थोड़ी-सी सहायता और किंचित सहानुभूति उसे स्वस्थ सामाजिक जीवनमें पुनः प्रतिष्ठित कर सकती है। ऐसा न होनेपर अपराधी जीवन ही उसका क्रम बन जाता है। बहुत दिनों तक कैदखानामें रहनेके फलस्वरूप वह कैदखानेमें ही और वहाँके लोगोंमें ही आत्मीयताका अनुभव करने लगता है। बाहरके संसारके लिए वह अवांछित हो जाता है, पद-पदपर लांछित होना पड़ता है और सभी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं। गरीबीकी ज्वालासे दग्ध और रिक्तहस्त सही राहपर चलना भी चाहता है, फिर भी पराजित होता है। मुक्त कैदीका कोई विश्वास करना नहीं चाहता। किसी दिन भूलसे अथवा क्षणिक उत्तेजनावश कोई अपराध कर बैठा था—फिर क्या उस एक दिनकी भूल ही उसके जीवनमें सत्य बनकर रह गई! उनके मनोजगतकी किसीने खबर नहीं ली, उसकी अवस्थापर किसीने विचार नहीं किया, उसकी बातको किसीने समझनेकी भी कोशिश नहीं की। इस निष्ठुर वातावरणमें सही राहपर चलनेकी उसकी अथक कोशिशें बेकार हुईं और उसने जान-बूझकर पुनः कोई-न-कोई अपराध किया और उसका लाभ उठाकर कैदखानेमें पुनः प्रतिष्ठित होकर निश्चिन्त हो जाता है। और इसी क्रमसे वह प्रकृत अपराधी बन जाता है। अधिकतर कैदियोंका यही इतिहास है। समाजके सामने वह मनुष्य नहीं गिना जाता, वह केवल अपराधी, दागी और घृणित ही माना जाता है।

यही है मनुष्यताकी अपमृत्यु। महान बर्बादीके हाथसे समाज उसकी रक्षा कर सकता है। किन्तु समाजने आज उसकी तरफसे मुँह फेर लिया है। निष्ठुर और निर्दय समाज आज उसे स्थान देनेके लिए तैयार नहीं है। समय आ सकता है, जब समाजका हृदय इनकी तरफ झुके; पर हो सकता है, इसके पहले अनेक मूल्यवान प्राणोंको बलिवेदीपर भेंट हो जाना पड़े।

कैदियोंको स्वावलम्बी बनानेके लिए तरह-तरहके हस्त-शिल्प-शिक्षाकी व्यवस्था की गई है। काम करनेके एवजमें उन्हें पारिश्रमिक भी दिया जाता है। इससे कैदखानेके कारोबार और उद्योगकी ही वृद्धि नहीं होती, अपितु मनुष्यत्वको भी स्वीकार किया जाता है। ये कैदी उत्पादनके एक यन्त्रके समान नहीं समझे जाते, बल्कि उनका जमा पारिश्रमिक कैदसे मुक्तिके समय दे दिया जाता है। यह रकम स्वस्थ जीवनमें प्रवेशके लिए मूलधनका काम करती है। इस योजनासे कैदियोंको आशासे अधिक लाभ पहुंच रहा है और कैदी भी जीविकाकी अनिश्चयतासे रक्षा पा रहे हैं।

इन व्यवस्थाओंके अलावा कैदियोंके लाभकी दृष्टिसे अनेक अन्य योजनाएँ भी बनाई गई हैं। पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत कैदियोंके प्रतिनिधि जेलकी शासन-व्यवस्थामें योगदान देते हैं। छोटे-छोटे अभियोगोंकी जाँच-पड़ताल करने और उनपर फैसला देनेका भार उनके ऊपर रखा गया है। इससे उनमें जिम्मेदारी और कर्तव्य-ज्ञानकी वृद्धि होती है। कैदखानेमें आमोद-प्रमोदकी व्यवस्थाका भार भी इनके ऊपर रहता है। घानी खींचना आदि अपमानजनक और अमानुषिक शारीरिक परिश्रम बन्द कर दिया गया है। कैदियोंका पहलेका पहनावा बदल दिया गया है। अपने खर्चसे कैदी धूम्रपान कर सकता है। कैदखानेमें उनकी शिक्षाकी भी व्यवस्था की गई है। आजके कैदखानेके शासनकी मूल व्यवस्था शास्तिमूलक न होकर संस्कारमूलक है। हम आज इन्हें कैदखाना न कहकर संशोधनशाला कह सकते हैं।

(पश्चिम बंगालके सूचना-विभाग द्वारा प्राप्त)

लीला अपरम्पार तुम्हारी

गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

आशाकी परछाईं पाकर,
होने लगती घोर निराशा,
हार जीतमें परिणत होती
गायब होती स्वयं दुराशा,
एक बवंडर अकस्मात् उठ दृश्य दुरा देता है सारा,
बोझिल होतीं पलकें भारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
सुखद दृश्यमें मन डरता है,
भयद दृश्यमें सुखमय झलकें,
पलकोंमें दुख-सागर उमड़ा,
हर्ष-ज्वारसे भीगीं पलकें,
एक अनोखी आभा देकर भूल बना देते हो सबको,
मुक्त व्योम-पाताल-विहारी--
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
शाख-शाखमें फल बन लटके,
कभी फलोंसे हीन पेड़ सब,
कण-कणसे गुंजार निकलता,
बोल रही हैं इसे मेड़ सब--
आतप खानेका भूखा मन आतप छोड़ वारि पीता है,
गिरती हैं जब बूँदें प्यारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
उगते जोश हृदयके सारे,
पलमें हो जाते हैं ढीले,
ढीले जोशों में पल भर में,
गड़ जातीं तेजीकी कीलें,
लहरों के उत्थान-पतन-से पतवारें लेकर नौका को,
रह-रह देते तुम्हीं खुमारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।

ज्वालाको शीतल कर देते,
शीतल जल-कणको ज्वालासे,
हार बनाते विजय-श्रीसे,
मुक्ति अमुक्ति-रूप-मालासे,
मुक्ति-अमुक्ति निरंतर जैसे नचा रहे अपनी उँगलीमें,
पलमें रूप अनगिनत धारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
अन्धकार में आभा नूतन,
आभामें लिपटी आँधियाली,
दिनमें ज्यों सोयी रजनी है,
रजनीमें दिनकी उजियाली,
तिमिर-प्रकाश-किरणसे रँगते जगको छिपे-छिपे तुम हरदम,
नयन अगोचर, बारी-बारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
राहें बिल्कुल बन्द जहाँ हैं,
वहाँ राह दिखती है बाकी,
पूनो के चन्दा से चमचम,
बनती काली रात अमाकी,
राह खोलते सूत्रधार बन नचा रहे जन-जनके मनको।
कोई बाजी कभी न हारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।
कोई मिहनत व्यर्थ न जाती,
पानीमें भी आग दहकती,
तेल निकल जाता बालूसे,
अंधड़में भी बाती जलती,
अंधड़-तूफानों में हँस-हँस दीपक कौन जला पाता, जो
बन्द युक्तियाँ करते सारी—
लीला अपरम्पार तुम्हारी।

———

लेबनानका युद्ध

विष्णु दुग्गल

नाम तो उसका है लुबनान, परन्तु अंग्रेजी प्रभावमें उसे लेबनान कहने लगे हैं। यहाँसे उठ रही गृह-युद्धकी चिनगारियाँ सारे विश्वका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रही हैं। यह छोटा-सा देश भूमध्यसागरके तटपर एक पहाड़ी प्रदेश है। जनसंख्या १४ लाख है। उत्तर-पूर्वमें सीरिया या शाम तथा दक्षिणमें नवीन प्रदेश इजरायल स्थित है। देशकी जनसंख्याका लगभग ५२ प्रतिशत भाग ईसाई मतको मानता है और ४५ प्रतिशतके आसपास लोग इस्लामके अनुयायी हैं। सभी लोग अरबी भाषा बोलते हैं। परन्तु यह शेष अरबोंके प्रभावसे प्रभावित नहीं। यह स्वतन्त्र प्रदेश है और कहा जाता है कि शेष अरब प्रदेशकी भाँति गरम न होकर शान्त प्रदेश है। गेहूं, जुआर, मक्की तथा आलूका उत्पादन यहाँ काफी मात्रामें होता है। इसकी विदेशी मुद्रा का मुख्य साधन अंगूर, नारंगी, नीबू तथा जैतूनका निर्यात है। पशु-धनका बाहुल्य होनेके कारण ऊनका उत्पादन भी काफी है। देशकी व्यापारिक स्थिति और यातायातकी अवस्था भी अच्छी है।

प्रारम्भमें भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग यहाँ आते रहे, फिर इसपर रोमन साम्राज्यका अधिकार हुआ, बादमें यह अरबी खिलाफतका अंग बना। १९१८ तक यह तुर्की साम्राज्यका अंग बना रहा।

सन् १९१४-१८के युद्धमें तुर्की जर्मनीका साथी था और अंग्रेजोंके इशारोंपर अरबोंने तुर्कीके खिलाफ बगावत की थी। अरबोंका विचार था कि युद्धकी समाप्तिपर अंग्रेज और उनके मित्रराष्ट्र उन्हें स्वतन्त्र कर देंगे, किन्तु हुआ उलटा ही। युद्धके बाद इराक, जोर्डन तथा फिलिस्तीनका संरक्षण तो अंग्रेजोंको मिला और सिरिया तथा लेबनानका फ्रांसको। कुछ दिनोंके लिए मक्काके शरीफ हुसेनके पुत्र फैजल भी सिरियाके शासक रहे थे। सिरिया तथा लेबनानके अरबोंने समय-समय पर फ्रांसीसी संरक्षणका विरोध किया था, किन्तु वे सदा स्वतन्त्रता-प्राप्तिमें असफल रहे। सन् १९३९-४५के युद्धके बाद यहाँ फ्रांसीसी शासन खतम हुआ। किन्तु ऐसा होते समय फ्रांसने अंग्रेजोंके अनुकरणपर धर्मके आधार पर देश के दो भाग कर दिये। बड़े भागका नाम सिरिया है, जो कि पूर्ण रूपसे इस्लामी राष्ट्र है। लेबनानकी आबादीमें लगभग आधे ईसाई और आधे मुसलमान हैं, अतः नियमित रूपसे राष्ट्रपति ईसाई होता है तथा प्रधान मंत्री मुसलमान।

इजराइलके मामलेमें लेबनान सदा अरब राष्ट्रोंका साथी रहा है। इसका एक कारण तो यह है कि मुसलमान और ईसाई दोनों ही समान रूपसे यहूदियोंके विरोधी रहे हैं। दूसरा कारण है लेबनानका इजराइलका सीमावर्ती होना। इस कारण ही इजराइलके दो लाख अरब-निवासी शरणार्थीके रूपमें डेरा डाले पड़े हैं। इससे सीरियाके प्रति उसका आकर्षण बढ़ गया है, जिसे मित्रराष्ट्र बिलकुल पसन्द नहीं करते। जबसे पश्चिमी एशियामें संयुक्त अरब गणराज्यका उदय हुआ है और राष्ट्रपति नासिरको अरब राष्ट्रीयताका प्रतीक माना जाने लगा है, तबसे लेबनानके मुसलमानोंका ध्यान अरबकी एकता की ओर जाने गया है। इसके साथ-साथ लेबनानके मुसलमान पश्चिमी देशोंके विरोधी होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे मुसलमान पश्चिम विरोधी हो रहे हैं, वैसे-वैसे लेबनानके ईसाई पश्चिमी देशोंके समर्थनमें पक्के होते जा रहे हैं।

आज स्थिति यह है कि लेबनानके ईसाई राष्ट्रपति कामिल शामौन अमरीकी सहायताके बलपर शासन कर रहे हैं। उन्होंने इस वर्ष होनेवाले राष्ट्रपतिके नये चुनावमें पुनः खड़े होनेका निश्चय करके मुसलमानोंको अधिक नाराज कर दिया है। लेबनानके संविधानके अनुसार कोई व्यक्ति दो बार राष्ट्रपति नहीं बन सकता। लेकिन कामिल शामौन अमरीकी सहायताके बलपर संसदमें एक बिल लाकर संविधान में संशोधन करानेका यत्न कर रहे हैं। इसकी प्रतिक्रिया यह है कि लेबनानमें जगह-जगह विरोधी दंगे हुए और अमरीकी पुस्तकालयों तथा अन्य अमरीकी कार्यालयोंको जलाया गया। मुस्लिम प्रधान-मंत्रीने इस्तीफा भी दे दिया है और सम-झौतेके अवसर समाप्त हो गये हैं।

दैनिक समाचारपत्र 'टेलीग्राफ'के संपादक नसीब मतनी की हत्या कर दी गयी थी। इसी हत्याके प्रतिरोधमें समस्त विरोधी दलोंने सम्पूर्ण देशमें हड़तालकी घोषणा की। हड़-

ताली कर्मचारियोंपर जब त्रिपोलीमें गोलियां बरसाई गयीं, तो जनताने गोलियोंके विरोधमें लाठियों, पत्थरों और बन्दूकोंका प्रयोग किया। त्रिपोलीका विद्रोह बेरुतमें फैल गया है।

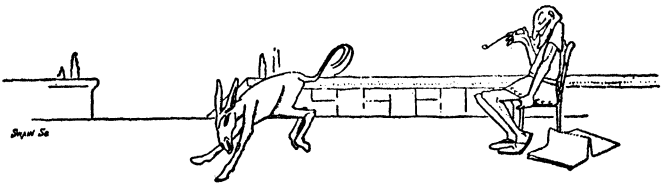
काहिराके दैनिक "अल अखबार"के अनुसार लेबनानके विरोधी दैनिक "टेलीग्राफ"के सम्पादकको हत्या इसलिये की गयी कि उन्होंने हाल ही में इस बातका भंडाफोड़ किया था कि किस प्रकार अमरीकी धन राष्ट्रपति शामौनको पुनः राष्ट्रपति चुनवा लेने के लिये व्यय किया जा रहा है। उन्होंने यह भी लिखा था कि किस प्रकार लेबनानको अमरीकी फौजी गुटमें सम्मिलित करनेका यत्न किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में एक राजनीतिक प्रेक्षकका कहना है—

"अमरीका तथा उसके साथी लेबनानकी पृथक सत्ता दो कारणोंसे चाहते हैं। एक तो यह कि वे अरबोंका संगठन नहीं चाहते। यदि एशिया तथा अफ्रीकाके अरब संगठित होकर एक महान देशकी कल्पना करें, तो यूरोप और अमरीका का प्रभुत्व कम हो जाना स्वाभाविक है। अतः अरबोंके इस संगठनको रोकनेके लिए वे धर्मके नामपर लेबनानकी पृथक सत्ता चाहते हैं। दूसरा कारण आर्थिक है। ईरानकी खाड़ी पर अवस्थित ईराकमें जो पेट्रोलका अनन्त भण्डार भरा पड़ा है, उसकी पाइप लाइन इस लेबनान द्वारा ही भूमध्यसागरमें पहुंचती है। यह आर्थिक कारण भी लेबनानकी पृथक सत्ता का आधार है। इन दिनों लेबनानकी जनताने इस पाइप लाइनको तोड़कर स्पष्ट कर दिया है कि वह लेबनानके पश्चिमी राष्ट्रोंके सम्बन्धके इस आर्थिक आधारको भी अधिक महत्व नहीं देती। इस प्रकार भले ही कुछ राष्ट्र भूगोल, धर्म तथा अर्थकी दृष्टिसे लेबनानको पृथक राष्ट्र रखना चाहते हैं, किन्तु यथार्थमें वह अरब राष्ट्र है।"

लेबनानमें विरोधी दलके प्रमुख नेता श्री गम्बलेट हैं। वे अमरीकाके विरोधी नहीं हैं, लेकिन वे किसी विदेशी शक्ति को देशके आंतरिक मामलेमें हस्तक्षेप नहीं करने देना चाहते। पश्चिमी राष्ट्र श्री गम्बलेटको जमाल अब्दुल नासिरका समर्थक कहते हैं, हालांकि श्री गम्बलेटने संयुक्त अरब गणराज्यमें लेबनानको सम्मिलित करनेकी बात कभी नहीं कही।

लेबनान-सरकारने आरोप लगाया है कि इन दंगोंमें सीरियाका हाथ है। मालूम नहीं कि यह आरोप कहाँ तक सत्य है, लेकिन यह बता देना जरूरी है कि संयुक्त अरब गणराज्यकी घोषणाके बाद जब राष्ट्रपति नासिर सीरियामें आये थे, तब उन्हें देखनेके लिये लेबनानकी एक-तिहाई आबादी बिना पार-पत्र लिये सीरियामें आई थी। इससे मालूम पड़ता है कि राष्ट्रपति नासिरका क्या प्रभाव है। ऐसी स्थितिमें सीरियाकी सहायताके बिना भी लेबनानमें विद्रोह हो सकता है, इस बातमें कोई शक नहीं किया जा सकता।

लेबनानमें दंगे जल्दी समाप्त हों, सभी स्वतन्त्रता-प्रिय देश यही चाहते हैं। डर है कि कहीं ये दंगे साम्प्रदायिक रूप धारण न कर लें। अगर कहीं इन दंगोंने साम्प्रदायिक रूप धारण किया, तो लेबनानका भविष्य खतरेमें है। अच्छा यह है कि वर्तमान अमरीका समर्थक राष्ट्रपति श्री कामिल शामौन राष्ट्रपति-पदके नये चुनावसे हट जायें।



प्रेमचंद और उनका समकालीन जीवन

सुन्दर लोहिया

साहित्य समाजकी परिस्थितियों और उसकी अन्तर-प्रवृत्तियोंका कलात्मक इतिहास होता है। कलाकार अपने समाजसे प्रभावित होता है और इस प्रभावको अमिट छाप उसके साहित्य पर पड़ती है। इस दृष्टिसे हम प्रेमचन्द के समकालीन सामाजिक जीवनको उनके उपन्यास और कहानियोंके माध्यमसे समझ सकते हैं।

भारतीय लोक-जीवनकी धारा ग्राम्य और शहरी तटोंसे बँधकर प्रवाहित होती है। ऊपरसे अलग दीखनेवाले दो किनारे धाराओंकी गहराईमें एक दूसरेसे भिन्न हैं। प्रेमचंद के साहित्यमें भारतीय जीवनके इन दोनों पक्षोंके अभिन्नत्वके दर्शन होते हैं। रंगभूमि, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम और गोदान इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस प्रकारके उपन्यासोंके दूहरे और तिहरे कथानकों द्वारा प्रेमचन्दने भारतके समग्र जीवनके चित्रणका प्रयास किया है। वे अपने प्रयासमें कहां तक सफल हुए हैं, यह एक अलग प्रश्न है। हमें तो यहाँ उनके साहित्यके माध्यमसे समकालीन जीवनका रेखा-चित्र प्रस्तुत करना है।

अपनी सुविधाके विचारसे हम पहले उन ऐतिहासिक घटनाओंकी चर्चा करेंगे, जिनसे प्रेमचन्द-साहित्यमें वर्णित घटनाओं और चरित्रोंकी पृष्ठभूमि समझनेमें सहायता मिलेगी। प्रेमचन्दके आविर्भाव-काल तक भारतमें सामन्ती शक्ति मृतप्राय हो चुकी थी। उसके स्थानपर पूँजीपतियोंका दबदबा बढ़ रहा था, जिसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक विधि-विधानों और आपसी सम्बन्धोंमें पूँजीवादी व्यावसायिकता व्याप्त हो रही थी। प्रेम और विश्वासका स्थान छल और कपटने ले लिया था। सामाजिक सम्बन्ध निजी स्वार्थोंपर आधारित हो चुके थे। हर काममें हानि-लाभकी तोल-जोख होती थी। इस प्रकारकी सामाजिक व्यवस्थाका प्रभाव, जिसका उद्भव और विकास शहरोंमें हुआ था, ग्राम्य-जीवनपर भी पड़ा; क्योंकि पूँजीवादके अन्तर्गत जो वैज्ञानिक प्रगति हुई, उससे भौगोलिक सीमाएँ निरन्तर लघुताको प्राप्त होती गईं।

सामन्ती शक्तिने भारतीय किसानका भूमिपर से स्वत्व धीरे-धीरे छीन लिया था। किसान आर्थिक शोषणके कारण ऋणके जालमें फँस रहे थे। इस प्रकार सामन्ती शोषणके घेरेसे निकलकर भारतीय किसान पूँजीवादी शोषण या महाजनवर्ग, जिन्हें हम टुटपूँजिये कह सकते हैं, की जकड़में अनजाने फँसते जा रहे थे। इन शब्दों द्वारा हम प्रेमचन्दके समकालीन जीवनका शब्द-चित्र तैयार कर सकते हैं। यह शब्द-चित्र प्रेमचन्द-साहित्यमें किस प्रकार प्रतिफलित हुआ, अब हम इसका विवेचन करेंगे।

प्रेमाश्रमका एक जमींदार पात्र कहता है कि असली जमींदार तो विदेशी हुकूमत है, हमारा महत्त्व कारकुनों जैसा रह गया है। इन शब्दोंमें तत्कालीन शामन्तशाहीके उतरनेकी आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ती है। उसके स्थानपर विदेशी हुकूमतकी अफसरशाहीका बोलबाला था। 'गोदान' के रायसाहब अफसरों और हाकिमोंसे मेल-जोल रखते हैं। 'रंगभूमि' का जनसेवक एक ईसाई अफसरको फाँसकर राजा साहबको अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें नीचा दिखाना चाहता है। इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द-कालीन भारतीय समाजमें सामन्तशाही टूट रही थी, पूँजीवाद अभी सिर उठा ही रहा था और समाजकी संचालन-शक्तियाँ एक तीसरे वर्ग के हाथमें थीं, जिसे हमने ऊपर अफसरी वर्ग कहा है।

समाजके मध्यवित्त वर्गका चित्रण तो प्रेमचन्दने बड़ी कलात्मकतासे किया है। वे स्वयं इसी वर्गकी उपज थे। इस वर्गकी पारिवारिक कलह, सास-बहूके झगड़े, भाई-भाई की अनबन, कन्या-विवाहकी समस्याएँ तथा आर्थिक रूपमें खोखले होनेपर भी आडम्बर और प्रदर्शनकी भावना—सभी विषयोंको प्रेमचन्दने अपनी लेखनीके स्पर्शसे सजीव रूपमें चित्रित किया है। पारिवारिक-जीवनके दर्शन कराने वाली उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियोंमें 'बड़े घरकी बेटी' और 'बेटोंवाली विधवा' महत्त्वपूर्ण हैं। 'बेटोंवाली विधवा' नामक कहानीमें भाइयोंकी आपसी अनबनके कारण बूढ़ी माँकी दुर्दशाका चित्र मिलता है। सासें बहुओंपर शासन करती आई थी—लोकगीतोंने सास-पीड़िता बहुओंके स्वरको उभारा था। किन्तु बहू-पीड़िता इस सासकी मर्मव्यथाको प्रेमचन्द जैसा सजग और संवेदनशील साहित्यकार ही पहचान सका। विधवाओं-नारियों और

वेश्याओंकी समस्याओंपर भी प्रेमचन्दने खूब लिखा है। 'सेवा-सदन' में ही उनकी पैनी दृष्टिने अपने समाजमें एक ईमानदार व्यक्तिकी दुर्दशा और दहेजकी कुप्रथाके कारण सुमनके पतनका दर्शन कराकर अपने अन्दरके साहित्यकारकी सजगताका परिचय दिया। वृद्ध-विवाह क्यों होते हैं, उनके कितने भयंकर परिणाम निकलते हैं, इसका दिग्दर्शन निर्मलामें कराया गया है। नारी सम्बन्धी अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द आर्यसमाजसे प्रभावित दीखते हैं। इस तरह उनका समकालीन समाज जिस सुधारवादसे ओतप्रोत था, उसके दर्शन इन उपन्यासोंके कथानकोंमें हो जाते हैं। मध्यवर्गीय आडम्बर-प्रियता और आभूषण-प्रियताका अच्छा खासा चित्र उसके पुण्यपरिणामों-सहित हमें 'गबन' उपन्यास में मिलता है। पढ़े-लिखे लड़के और लड़कियोंका विवाह सम्बन्धी जटिलताओं एवं मान्यताओंका संकेत 'गोदान'के मेहता और मालती हैं। ये दोनों आर्यसमाजी सुधारवादी युगके बादकी उपज हैं।

प्रेमचन्दने किसानोंके घरमें घुसकर कृषक समाजका मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया है। 'गोदान' को आलोचकों ने भारतीय कृषकका महाकाव्य कहा है। इस उपन्यासमें किसानोंकी आर्थिक दुर्दशाका, उनके शोषणोंके उपकरणोंका पूरा चित्र है। किसानोंके आँगनमें फसल पड़ी है, फिर भी उनके मुँहपर मायूसी छायी हुई है। क्योंकि इसका नगण्य भाग ही उनके हिस्से पड़ेगा, शेष जमींदार और साहूकार उठा ले जायेंगे। कृषक समाजमें औरतोंकी क्या अवस्था है, इसके दो उदाहरण 'रंगभूमि' की 'सुनिया' और 'गोदान' की 'धनिया' ही काफी हैं। सुनियाको उसका पति इसलिए पीटता है कि वह अन्धे सूरके प्रति नारी-सुलभ संवेदनशीलता के भावसे देखती है। धनियाको होरीके हाथों जो मार पड़ी थी, उसका निशान उसके सिरपर मौजूद है। लेकिन फिर भी ये औरतें मर्दोंसे ज्यादा काम करती हैं। यही कृषक नारियोंकी सामाजिक अवस्थाका कारुणिक चित्र है।

प्रेमचन्दने अपने कालके राजनैतिक आन्दोलनोंका चित्रण भी अपने साहित्यमें करके एक सजग साहित्यकार होनेका प्रमाण दिया है। वे एकाध बार स्वयं जेल जा चुके थे। उनका कहानी-संग्रह 'सोज़े वतन' राजनैतिक कारणोंसे ज़ब्त कर लिया गया था। पहले-पहल प्रेमचन्द इन आन्दोलनोंके प्रति कुछ भावुक रहे हैं। किन्तु बादमें इनकी दुर्बलताएँ और आडम्बर प्रेमचन्दकी पैनी दृष्टिसे बच नहीं सके। उस समय कई रायसाहब भी सत्याग्रह करके जेल जाकर अपनी देशभक्ति और देशप्रेमका ढिंढोरा पीट रहे थे। प्रेमचन्दने उनकी आडम्बरप्रियताका पर्दा उठा दिया। 'गोदान' के रायसाहब शुद्ध खद्दर पहनते हैं और एकाध बार जेल भी जा चुके हैं, परन्तु अंग्रेजों और जिलेके हाकिमोंसे उनका मेलजोल पूर्ववत् चालू रहा। उनकी डालियों और पार्टियोंमें कोई कमी नहीं आई।

हमारे समाजमें एक ऐसा भी वर्ग है, जिसने सारे समाजकी नैतिकताका ठेका ले रखा है, वह है पुरोहितवर्ग। प्रेमचन्द-साहित्यमें इस वर्गके क्रिया-कलाप तथा असामाजिक आचरणोंपर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। महाजनी सभ्यताके अंधड़में यह वर्ग भी महाजनीपर उतर आया था। पुरोहिताईसे जो मिलता, महाजनीसे उसे दुगुना कर देते थे। 'गोदान'के सतादीन इसके प्रमाण हैं। उनके पुत्र मातादीन गाँवकी चमारिनसे अनुचित सम्बन्ध रखते हैं। भेद खुलनेपर शुद्धिके द्वारा मातादीन तो पुनः द्विज पदको प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु बेचारी सिलिया दोनों समाजों द्वारा ठुकराई जाती है। इसके अतिरिक्त समाजके निम्न वर्गके साथ कैसा बर्ताव किया जाता था, इसकी साक्षी मन्त्र कहानीका वह बूढ़ा देगा, जिसका इकलौता पुत्र केवल इसलिए डाक्टरके बिना देखे मर गया कि डाक्टर साहबको गोल्फ खेलनेके लिए क्लब जाना था।

इस प्रकार हम प्रेमचन्द-साहित्यमें उनके सामाजिक जीवनका पूरा रेखा-चित्र गहरे-हल्के रंगोंके साथ देख सकते हैं।



तमिल पाठ

रवीन्द्रनाथ

नवाँ पाठ

सावी=चाबी	पट्शी=पक्षी	वीदि=रास्ता	करुमै=काला
मणी=घंटी	कंबी=तार	दीपम=दीप	मंजल=पीला
निलम्=जमीन	आणी=कील	निरम=रंग	नील=नीला
वण्डी=गाड़ी	सरीरम=शरीर	वेल्लै=सफेद	सिहप्पु=लाल
ऊदल=सीटी	एट्टम=रहट	वण्णान=धोबी	आहामम्=आकाश

एन्नुडैय सावीयै कोण्डुवा=मेरी चाबी ले आओ; उंगल सावी एंगे इरुक्किरदु=तुम्हारी चाबी कहाँ है? इंगे इल्ले=यहाँ नहीं है? इन्द वण्डी यार वण्डी=यह गाड़ी किसकी गाड़ी है? इदु एन तहप्पनुडैय वण्डी=यह मेरे बापकी गाड़ी है। इन्द पट्शीयै पार=इस पक्षीको देख। इदु एन्न पट्शी=यह क्या पक्षी है? इदु काहम=यह कौआ है। काहम एन्न निरम=कौआ कैसे रंगका है। काहम करुमै निरम=कौआ काले रंगका (होता है)। तम्बीकु ऊदल कोडु=छोटे भाईको सीटी दो। इदु एन्नुडैय ऊदल इल्ले=यह मेरी सीटी नहीं है। उंगल वीडु एंगे इरुक्किरदु=तुम्हारा घर कहाँ है? इदु एन वीदि=यह मेरी सड़क है। इदु ओरु सिहप्पु दीपम्=यह एक लाल दीया है। इदु आणी इल्ले इदु ओरु कम्बी=यह कील नहीं तार है। आहामम एन्न निरम=आकाश कैसे रंगका? आहामम नील निरम=आकाश नीले रंग (का है)। वण्णान एन्न पारकिराय=धोबी तू क्या देखता है? एन तूणी मञ्जल इरुक्किरदु=मेरा कपड़ा पीला है।

दसवाँ पाठ

मरम=पेड़	सक्करम=चक्र	पम्बरम्=लट्टू	इरतम्=रथ
मान=हरिण	कुट्टी=जानवर का बच्चा	मंमिल=मोर	पण्ड्री=सूअर
सीसा=बोतल	पल्ली=छिपकली	पाम्बु=साँप	नण्डु=केकड़ा
विसिरी=पंखा	पूट्टु=ताला	ऊञ्जल=झूला	कुडम=घड़ा
सूरियन=सूर्य	रूबाय=रुपया	पेना=कलम।	

इदु एन्न मरम=यह क्या पेड़ (है)? इदु ओरु मामरम=यह एक आमका पेड़ है। इंगे आरञ्जु मरम इरुक्किरदु=यहाँ नारंगीका पेड़ है? उन पम्बरम इंगे इल्लै=तेरा लट्टू यहाँ नहीं (है)। अवन ओरु पाम्बै पारकिरान=वह एक साँप को देखता है। नान ओरु पल्लियै पारकिरेन=मैं एक छिपकली को देखता हूं। नी इरण्डु पण्ड्रीहलै पारकिराय=तू दो सूअरों को देखता है। इरामनुक्क ओरु पूट्टु वेण्डुम=रामको एक ताला चाहिए। अवल ओरु मान कुट्टियै पार्किराल=वह एक हरिणके बच्चेको देख रही है। एनक्कु उन सीसा वेण्डाम्=मुझे तुम्हारी बोतल नहीं चाहिए। ओरु विसिरी वेण्डुम=एक पंखा चाहिए। इदु एन इरतम इल्ले=यह मेरा रथ नहीं है। उंगलुक्कु एन्न वेण्डुम=तुमको क्या चाहिए? ओरु पाय वेण्डुमा=एक चटाई चाहिए? उंगलुक्कु ओरु रूबाय वेण्डुम, पुस्तहम वेण्डामा=तुमको रुपया चाहिए, पुस्तक नहीं चाहिए? एनक्कु रूबाय वेण्डुम पुस्तहम कूंड वेण्डुम=मुझे रुपया चाहिए, पुस्तक भी चाहिए। ओरु मंमिल तण्णीर कुडिक्किरदु=एक मोर पानी पीता है। मंमिल रोम्ब अजहान पट्शी=मोर बहुत सुन्दर पक्षी (है)। सूरियनै पार=सूर्यको देख। इदु मीन इल्ले नण्डु इरुक्किरदु=यह मछली नहीं, केकड़ा है।

ग्यारहवाँ पाठ

एकवचन	बहुवचन
नान पार्त्तेन=मैंने देखा	नाम पार्त्तोम=हमने देखा
नी पार्त्ताय=तूने देखा	नींगल पार्त्तीरहल=तुमने देखा
अवन पार्त्तान=उस (पु०)ने देखा	अवरहल पार्त्तारहल=उन्होंने देखा

अवन पार्त्तार=उन्होंने (मानसूचक एकवचन) देखा

अवल पार्त्ताल=उस (स्त्री) ने देखा	अवन पार्त्तन=उन्होंने (नपुंसक) देखा

अदु पार्त्तदु=उस (न) ने देखा।

नान अन्द्प्पैयनै पार्त्तेन=मैंने उस लड़केको देखा। नी इन्द नायैप्पार्त्ताय=तूने इस कुत्तेको देखा। अवल अंगे इरुन्दाल=वह वहाँ थी। नी वण्णानै पार्त्ताय=तूने धोबीको देखा। एन पुस्तहत्तै एनक्कु कोडु=मेरी पुस्तक मुझे दो। नान उनक्कु ओरु पज़म कोडुत्तेन=मैंने तुम्हें एक फल दिया। अम्मा अवनुक्कु एन्न कोडुत्ताल=अम्माने उसको क्या दिया? नींगल पुदुच्चेरियै पार्त्तीर्हला=आपने पांडीचरी देखी? अंगे श्री अरविन्दाश्रमै पार्त्तीर्हला=वहाँ श्री अरविन्दाश्रम देखा? आम नान आश्रम पार्त्तेन=हाँ, मैंने आश्रम देखा।

यहाँ पाठक देखेंगे कि लड़का=पैयन और लड़केको पैयनै; पस्तहम=पुस्तक और पुस्तहत्तै=पुस्तकको यानी शब्दके अन्तिम अक्षरके आगे 'ऐ' की मात्रा लगा देनेसे कर्मकारक

बन जाता है। कर्मकारकके बादका शब्द क, च, त, प से शुरू हो तो 'ऐ' के बाद और एक क, च, त, प लगा देते हैं। जैसे, कदवैतिरु=दरवाजा खोल, अवलै प्यार=उस (स्त्री) को देखो।

इन्द, अन्द और एन्दके बाद भी यदि क, च, त, प से शुरू होनेवाला शब्द हो तो क, च, त, प को डबल कर देते हैं। जैसे, इन्द कृकाहम=यह कौआ, अन्द प्पल=वह दाँत, इन्द प्पालै क्कुडि=इस दूधको पी। अन्द कृकल्लै कृकोंण्डु वा=उस पत्थरको ले आ।

बारहवाँ पाठ

नी=आग, सेरुप्पु=चप्पल, सेम्बु=लोटा, तोप्पी=टोपी, कोविल=मन्दिर, मोदिरम=अंगूठी, तेङ्गाय=हरा नारियल, सेवल=मुर्गा, कुदिरै=घोड़ा, कजुदै=गधा, तवलै=मेंढक, वौवाल=चिमगादड़, मुदलै=मगर, पुदिय=नया, पजैय=पुराना।

कोण्डुपो=ले जा, तिर=खोल, सात्तु=बन्द कर, सोल=कह।

छोटे-छोटे शब्दोंमें जहाँ ह्रस्व मात्रा ही होती है, कर्मकारक बनाते हुए 'ऐ' लगानेसे पहले अन्तिम अक्षरको डबल कर देते हैं; जैसे, कल से कल्लै, पल से पल्लै, और जहाँ शब्द के अन्तमें 'इ ई या ए' की मात्रा हो, वहाँ 'ऐ' की जगह 'यै' लगाते हैं; जैसे, ती से तीयै, कै से कैयै।

उंगल पुदिय वीदु एंगे इरुक्किरदु=तुम्हारा नया मकान कहाँ है? इन पजैय सेरुप्पु रोम्ब नल्लाय इरुक्किरदु=मेरी पुरानी चप्पल बहुत अच्छी है। नी अन्द नरीयै प्यारताया=तूने उस लोमड़ीको देखा? वण्णानुक्कु ती वेण्डुम=धोबीको आग चाहिए। मुदलै एंगे इरुक्किरदु=मगर कहाँ है? इंगे मुदलै इल्ले=यहाँ मगर नहीं है। आनाल मीनगल इरुक्किन्रत=लेकिन मछलियाँ हैं। एन तहप्पन अन्दत्तेङ्गायै प्यारतान=मेरे बापने उस नारियलको देखा। अदु एन तोप्पी इल्ले=वह मेरी टोपी नहीं है। अन्द सेम्बु एनक्कु वेण्डाम=वह लोटा मुझे नहीं चाहिये। वौवाल ओरु पट्शी=चिमगादड़ एक पक्षी है। कोविल अजहाय इरुक्किरदु=मन्दिर सुन्दर है। अवल ओरु मुदलैयै प्यारत्तार=उस (स्त्री) ने एक मगर देखा। वौवारलै कोण्डु पो=चिममादड़को ले जाओ।

पाठक ध्यानमें रखें कि तमिलके साधारणतः च और स के लिए एक ही अक्षर प्रयुक्त होता है, इसलिए लिखते समय तमिल सावो और हिन्दी चावी एक ही है। इसी तरह शब्द के बीचमें क और ह के लिए एक ही अक्षर आता है। काहम और काकम् (कौआ) एक ही हैं। इस तरह देखनेपर और भी बहुत-सी समानताएँ मिल जायँगी। तमिल-वाक्य-रचनामें कर्म क्रियाके पहले आता है। हिन्दी अर्थोंके साथ तमिल वाक्य मिलाकर देखिये, वाक्य-रचना कितनी मिलती-जुलती है। अब कुछ तमिल वाक्य दिये जाते हैं, इनका हिन्दीमें अनुवाद कीजिये और पीछे दिये गये अनुवादसे मिलाइये।

१. इन्द वीदु पुदिय वीदु, २. ओरु वौवाल इंगे इरुक्किरदु, ३. अन्द मोदिरम पजैयदु, ४. वेण्डुक्कु माम पज़म कोडु, ५. वाजै पज़म नल्ल पज़म, ६. वाजै पज़सैप्पार, ७. पट्शीयै प्यार, ८. मुदलैयै प्यारत्तेन, ९. तीयै कोण्डुवा, १०. अवल तन वीट्टिटकु पोहिराल, ११. इदु एन सेवल इल्ले, १२. इदु अवल ऊदल इल्ले, १३, इन्द कजुदै अज़हानदु, १४. एनक्कु पल्ली वेण्डाम।

अनुवाद

१. यह एक नया घर है, २. यहाँ एक चिमगादड़ है, ३. यह अँगूठी पुरानी है, ४. लड़कीको आम दो, ५. केला अच्छा फल है, ६, केलेको देखो, ७. पक्षीको देखो, ८. मैंने मगर देखा, ९. आग ले आ, १०. वह अपने घर जाती है, ११ यह मेरा मुर्ग नहीं है १२. यह उसकी सीटी नहीं है, १३. यह गधा सुन्दर है, १४. मुझे छिपकली नहीं चाहिए।

वणक्कम (नमस्कार)

भूल-सुधार

मईके तमिल पाठमें छापेकी भूलें :

ओरु = एक—कहीं-कहीं ओस छपा है
काडु = जंगल—काडु नहीं
पेट्टी = पेटी—नेट्टी नहीं
कोण्डु वा की जगह काण्डुवा छपा है
पज़म = फल—पजणू छपा है
किली = तोता—किकी छपा है
पारक्किरेन में न की जगह द छपा है।

मौलवी और जाटनी

श्रीराम शर्मा

१ एक थे मौलवी साहब।

२ जाटोंके गाँवमें वे पढ़ाया करते थे।

३ अबसे ६०-७० साल पूर्व उत्तरी भारतके देहातोंमें प्रायः मौलवी लोग पढ़ाया करते थे।

४ मौलवी साहबको लड़के तीज-त्यौहार पर तथा कभी-कभी वैसे भी खीर-पूरी तथा अन्य पकवान लाया करते थे।

५ एक जाटनीका लड़का भी मौलवी साहबके मकतबमें पढ़ता था, पर वह मौलवी साहबके लिए कभी खानेकी चीज़ नहीं लाता।

६ मौलबी साहब जब उससे कहते, "लड़के, तू कभी मेरे लिए कुछ नहीं लाता, क्या तेरी माँ कभी खीर भी नहीं बनाती?" लड़का उत्तर तो न देता, पर माँसे तकाजा अवश्य करता।

७ एक दिन जाटनीका लड़का मिट्टीकी सैनकियामें खीर भरकर लाया और मौलवी साहबको पेश की।

८ खीर खानेके बाद मौलवी साहबने प्रसन्न होते हुए लड़केसे पूछा, "लड़के, तेरे घर आज क्या था, जो इतनी बढ़िया खीर बनी?"

९ लड़केने बाल-सुलभ सरलतासे कहा, "मैं माँसे खीरके लिए तकाज़ा किया करता था, पर वह बनाती नहीं थी। आज दूधकी हाँड़ीमें कुत्ता मुँह डाल गया, तो माँने कहा, तेरे मौलवी साहबके लिए खीर बना दूँगी। इसलिए उसने खीर बनाकर दे दी।"

१० मौलवी साहबने क्रुद्ध होकर सैनकिया फेंक दी और कहा, "नामाकूल कहींका! नापाक जानवरके झूठे दूधकी तैने मुझे खीर खिला दी है!"

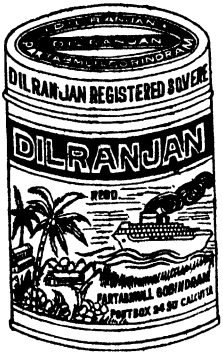
११ लड़का सैनकिया फूटने पर रो पड़ा।

१२ मौलवी साहबने आश्चर्यसे पूछा, "अबे नामाकूल, रोता क्यों है? एक तो बेहूदा हरकत की है, ऊपरसे रोता है।"

१३ लड़केने सिसकते हुए कहा, "मेरी माँ मुझे अब पीटेगी, क्योंकि उस सैनकियामें मेरे छोटे भाईके आबदस्तके लिए पानी भरा रहता था।"

१४ मौलवी झल्लाकर इतना ही कह पाये, "लाहौल विला कुव्वत! लानत है इस खीर पर!"

दिलरंजन बाम



सरदीसे या गरमीसे कैसा ही शिर-दर्द क्यों न हो दर्दके स्थानपर दिलरंजन मालिश करनेसे दर्द मिट जाता है।

प्रस्तुतकारक :—

प्रतापमल गोविन्दराम

११६, खेङ्गरापट्टी, कलकत्ता।

फोन :-२२-२५५७

चिट्ठी - पत्री

अमरीकी डाक

चि० शिरीष द्वारा अपने भाई-बहनोंको लिखे पत्र

प्रेषक—विनयमोहन शर्मा

न्यूयार्क,.....'५७

हाँ, तो इस पत्रमें तुम मुझसे क्या जाननेकी अपेक्षा रखते हो ? सबसे विशेष बात जो यहाँपर किसी भी विदेशी और खासकर पूर्वके यात्रीके लिए कुतूहलजनक है, वह यह कि यहाँ अधिकांश व्यक्तियोंके जीवनमें बड़ा परिवर्तन आ गया है। बहुत-से लोग एक नये आर्थिक ढाँचेमें ढले हुए हैं। इस दुनियामें मनुष्य अस्पतालमें आँखें खोलता है, बड़े होनेपर होटलोंमें उसका जीवन पलता है और सम्भवतः मरनेपर कोई संस्था द्वारा दफनाया जाता है। खाने-पीने एवं मनोरंजनके साधन भी उसे स्वयं बाहर खोजने पड़ते हैं। सड़कपर मोटर दौड़ानेका एक मामूली-सा उदाहरण लूँ, तो लोग यहाँ मोटर चलाते नहीं—सड़कमें लगी लाल-नीली बत्तियाँ उन्हें चलाती हैं। आगे-पीछे आनेवाली मोटरें चलाती हैं और यदि तुम्हारी दृष्टि किसी अनुपम दृश्यपर पड़ गई, तो तुम्हें उसे देखने या उस अनुपम अनुभूतिको प्राप्त करनेका अवसर नहीं मिलेगा, क्योंकि 'ट्रैफिक जाम' का भय सिरपर लगा रहता है। इस तरह वैयक्तिक जीवनमें जो मधुरता या उसका जो अपना निराला संगीत है, वह दिन-रात सड़क व होटलोंकी मशीनों और यन्त्रोंके कर्कश स्वरोंमें डूब जाता है। इसीलिए लोग यहाँ टी० एस० ईलियटके शब्दोंमें 'distracted from distraction by distraction के पीछे हावी होते हैं।

यहाँपर किस तरह मनुष्य छोटा रूप धारण करता जा रहा है, उसका एक नमूना देता हूं। तीन-चार दिन पहले मैं न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरीमें गया। भव्य इमारत है। यहाँपर पेशाब-घरमें देखा, दो व्यक्ति खुली जगहमें शौच कर रहे थे, क्योंकि उनके पास १० सेंट नहीं थे, जिसको वे बन्द दरवाजेमें डाल सकें। उसीके पास यहाँके करोड़पति (अरबपति कहना चाहिए) रॉकफेलरकी मलजा नामक ७२ मंजिलकी इमारत है। उसीसे लगा चर्च है। इस छोटे-से चर्चको देखकर मनमें खयाल आया कि यह दर्शाता है कि किस प्रकार आधुनिक सभ्यतामें इन दोनों स्तरोंका, जो दो विभिन्न मानवीय आकांक्षाओंके प्रतीक हैं, स्थान है।

लेकिन इससे तुम लोग यह न समझ लेना कि यहाँके समाजने इतनी भौतिक उन्नतिके साथ-साथ लोगोंके सुखकी चिन्ता नहीं की। यहाँपर बूढ़ोंको सरकारकी तरफसे अच्छी पेंशन दी जाती है, उनके लिए Air conditioned (वायु अनुकूलित) होटल बनाये गये हैं। मैंने पत्रमें केवल तुम लोगोंका कुतूहल जाग्रत करनेके लिए यह बात लिख दी है। इसपर विस्तारसे नहीं लिखा जा सकता। वहाँ आनेपर बहुत-सी बातें बताऊँगा।

× × ×

न्यूयार्क,.....'५७

यहाँपर तीन-चार दिनोंसे लगातार पानी गिरता रहा, जिससे ठंडक बढ़ गई थी। लेकिन आज पुनः अच्छा सूर्य निकला, जिससे दिन बहुत सुहावना हो गया। ठंडके समय कमरेमें Central Heating System से गर्मी रखी जाती है, परन्तु अक्सर यहाँके लोग ज्यादा तापमान बढ़ा लेते हैं, पर हम लोग खिड़की खोलकर उसे ठीक कर लेते हैं।

मैं इस शनिवारको शहरसे बाहर ३०-४० मील पिकनिक के लिए केन और मार्जरीके साथ जा रहा हूं। केनने मोटरका प्रबन्ध किया है। इस समय बाहरका दृश्य बहुत मनोरम होता है। वृक्ष अपने पुराने पत्ते गिराते और नये रंग-बिरंगे पत्ते चारों तरफ बहुत अच्छे लगते हैं। अगले महीनेसे बर्फ गिरना शुरू हो जायगा। यहाँपर भारतीय नृत्यका बड़ा जोर है। दक्षिण-भारतके शांता रावका आजकल प्रोग्राम हो रहा है। अखबारोंमें उसकी काफी तारीफ निकली है।

मैंने अजायबघरमें Planatoriam भी देखा, जिसमें अँधेराकर एक बड़े हॉलमें सूर्य-मण्डल बनाया गया है तथा किस तरह ग्रह और नक्षत्र अपने चारों ओर छाये हुए हैं, यह उसमें बड़ी सजीवतासे दिखाया गया है। रशियाने जो नया चन्द्रमा बनाया है, उसकी आवाजका रिकार्ड भी सुना। यहाँ बड़े-बड़े आर्ट म्यूज़ियम भी हैं, उन्हें कभी देखने जाऊँगा। तुम लोगोंकी अब छुट्टी होगी और दिवालीकी जोरोंसे तैयारी चल रही होगी। यहाँ तो टाइम्स स्टेशनपर हर रात इतनी

रोशनी होती है कि दिनका अँदेशा होने लगता है। दिवाली-जैसी जगमगाहट मालूम होती है।

× × ×

आज तुम्हें अपनी परसोंक यात्राका हाल लिखूँगा। यहाँपर लोग सोमवारसे लेकर शुक्रवार तक खूब कड़ी मेहनत करते हैं। इसके बाद शनिवार-इतवारको खूब मौज मनाते हैं। परसों मैंने भी सप्ताहान्त मनाया। मेरे मित्र केन व मार्जरी कल सुबह ही अपनी मोटरमें न्यूयार्कसे करीब सौ-डेढ़-सौ मील ले गये। हडसन नदीपर वाशिंगटन-पुल करीब दो मील लम्बा पार करनेपर दृश्य एकदम बदल गया। चौड़ी-चौड़ी सीमेंटकी सड़कोंपर नई चमकती मोटरें दौड़ी जा रही थीं। अक्टूबरका महीना, जिसे Fall (पतझड़) कहा जाता है, अमेरिकामें सबसे सुहावना होता है। वृक्षकी पत्तियाँ पककर अपना रंग बदलने लगती हैं। लाल, पीली, गुलाबी, नारंगी रंगोंसे वृक्ष, लताएँ रँगी रहती हैं और उनपर जब सूर्यकी रोशनी पड़ती है, तो मानों सारा प्रदेश अग्निसे प्रज्वलित हो उठता है। लेकिन उस अग्निका ताप मन्द शीतल वायु हर लेती है। यह सब 'बुझने' के पहलेका खेल है! कुछ ही दिनोंमें तेज बर्फीली हवा इन्हें नीचे गिराकर मिट्टीमें मिला देगी। है न दीपकके बुझनेके पूर्वकी ज्योति? फिर भी था सौंदर्य, क्षणिक ही क्यों न हो। किसी रेशमी, लाल-पीले दुपट्टेकी तरह आहिस्ता-आहिस्ता हवामें तैरता मेरे हृदयमें छा गया है—शायद सदाके लिए। पहाड़ोंपर ऊँची-नीची होती सड़कें, एक तरफ आकाश छूता पहाड़, तो दूसरी तरफ नीची पथरीली खाई, जिसके नीचे बहती हुई विशाल नदी। जहाजोंका ताँता, खुला प्रदेश, जहाँ लोग सप्ताहान्त मनाते हुए नाचते-गाते दिखाई पड़ते हैं—सब आप अपनी मोटरसे देखते चलते हैं। मोटरमें रेडिओ मधुर तान छेड़ रहा है, 'हीटर' आपको ठण्डसे बचा रहा है—सारा दृश्य देखते-देखते मनुष्य स्वयं अपनेको उसमें खो देता है। वह स्वयं सुन्दर बन जाता है। 'लाली मेरे लालकी, जित देखौं तित लाल', बस। लिखनेको बहुत-कुछ है, लेकिन दुनिया कविता रचनेवालोंकी जगह नहीं है। सामने रखी किताबोंसे मगज-पच्ची करना है। दीवालीका त्यौहार तुम सब खूब हँसी-खुशीसे मनाना। मेरी तरफ़से माँसे छीनकर मिठाइयाँ खाना। मैं भी यहाँकी अमेरिकन 'पाई' मिठाई खाऊँगा।

× × ×

न्यूयार्क,.....'५७

गत शनिवार मैं यहाँसे ३० मील दूर White plains गया था, श्री ओरुकके निमन्त्रणपर। उनके यहाँ सप्ताहान्त (weekend) मनानेका प्रोग्राम था। यहाँपर विदेशी विद्यार्थियोंकी सहायताके लिए तीन-चार अच्छी संस्थाएँ हैं। उनके स्वयंसेवक एरोड्रोम तथा बन्दरगाहपर विद्यार्थियोंसे मिलते हैं तथा उनके रहनेका उचित प्रबन्ध करते हैं। साथ ही उनकी अनेक योजनाएँ हैं, जिससे विद्यार्थीवर्ग अमेरिकन जीवनके पहलूसे ज्यादा-से-ज्यादा परिचित हो जाता है। अमेरिकाके अनेक बड़े शहरोंमें इस तरहकी अनेक संस्थाएँ कार्य करती हैं। मेरा एक मित्र एक अमेरिकन परिवारके साथ एक महीना ठहरा। वह experiment in International living (अन्तर्राष्ट्रीय रहन-सहनके प्रयोग) नामक योजनाके अंतर्गत यहाँ आया था।

यहाँसे हम चार भारतीय, दो जर्मन, एक अर्जेण्टाइना, दो स्वीडन, एक हंगेरी तथा दो फ्रांसके विद्यार्थी ट्रेनमें १ बजे रवाना हुए। करीब १॥ बजे White plains पहुंचे। स्टेशनपर हम लोगोंको लेने लोग आ गए थे। हरेक विद्यार्थी एक-एक परिवारके साथ हो गया। मुझे श्री और श्रीमती ओरुक लेने आये। उनके साथ पहले हम अमेरिकन फुटबाल मैच देखने गये। अमेरिकन फुटबाल हम लोगोंसे भिन्न तरीकेसे खेला जाता है। इसमें रगबी और फुटबालका मिश्रण है। दो हाई स्कूलोंके बीच मैच हो रहा था। मध्याह्नमें जीतनेवाले स्कूलने बहुत सुन्दर परेड की। मैदानमें उनका बैंड बजा तथा लड़के-लड़कियोंने कवायतका सुन्दर नमूना पेश किया। उसके बाद हम लोग एरोड्रोम गये। वहाँपर एक अच्छे रेस्तराँमें सोडा व आइसक्रीम पिया। यहाँपर एक मजेदार घटना हुई। इन व्यक्तियोंको हिन्दुस्तान के बारेमें बहुत थोड़ा ज्ञान था। शायद बचपनमें जंगलकी कहानियोंमें भारतका प्रसंग आया होगा। इसलिये वे मुझे बड़े आग्रहके साथ हवाई जहाज, जेट हवाई जहाज दिखाने लगे। मैं मुसकुराता रहा। बादमें उन्होंने धीरेसे पूछा कि मैंने हवाई जहाजमें यात्रा की है या नहीं? सौभाग्यवश एक बार मौका आया था। इसलिए फौरन 'हाँ' कहा। घर चलनेके पूर्व मैंने उनसे कहा कि स्टोरसे आटा, चावल तथा तरकारी खरीद ली जाय। आज मैं आप लोगोंको भारतीय परौठे और आलू-गोभीकी तरकारी खिलाऊँगा। उन्होंने मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। यह शहर १०-१५ मील

दूर जंगल और पहाड़ोंके बीच था। बड़ा रमणीय स्थानपर घर बना था। रास्तेका दृश्य बहुत सुहावना था। श्री ओरुक के पिता आयरलैण्डसे आये थे। वे यहाँ वकालत कर रहे हैं। अमेरिकामें वकालत करनेसे काफी आर्थिक लाभ होता है। घर पहुंचनेपर हम तीनों खाना बनानेमें जुट गये। उनके मसालेके डिब्बोंको सूँघ-सूँघकर चीजें निकालीं। रसोई-घर आधुनिक चीजोंसे सुसज्जित था। एक घण्टेमें खाना तैयार हो गया। भोजनके समय मैंने उन्हें अपने देशके बारेमें बहुत-सी प्रारम्भिक बातें बताईं। बादमें श्रीमती कहने लगीं—अरे, तुम्हारा रहन-सहन और कार्य-कलाप तो हम लोगों-जैसे ही हैं। मैंने उन्हें यही कहा कि घरसे बाहर निकलनेपर मुझे भी यही अनुभव हुआ। दुनियामें लोगोंके बीच समानता अधिक है, बनिस्बत असमानताके। बात करते-करते दस बज गये थे। उसके बाद टेलीवीजनपर दो अच्छे प्रोग्राम थे, वे देखे। १०॥ बजे हम लोग सोने चले गये। मेरे लिए उन्होंने अलग कमरेका इन्तजाम किया था। सुबह ९॥ बजे तैयार होकर हम लोग चर्च गये। लौटकर फलाहार किया—सेबका ताजा रस, गेहूंकी डबल रोटी, काली कॉफी आदि। इसके बाद जंगलमें जाकर कुछ देर उनकी राइफलसे निशाना मारता रहा। मशीनसे मिट्टीकी तश्तरीको आकाशमें फेंककर उसे नीचे गिरते हुए देखनेके पश्चात् हम लोग नये मकानोंको देखने गये। इस तरह मेरा प्रथम सप्ताहान्त (weekend) अमेरिकन परिवारके साथ व्यतीत हुआ।

× × ×

न्यूयार्क, ...'५७

आप लोगोंका दीवालीके दिन लिखा पत्र मिला। मैंने भी गत शनिवारको दिवाली मनाई। चूंकि विद्यार्थी वर्गको शनीचर-इतवारको छुट्टी मिलती है, इसलिए दिवाली बुधवारको न मनाकर शनिवारको मनाई। यहाँपर फिफ्थ एवेन्यूमें स्थित भारतीय काउन्सेलेट बिल्डिंगमें शामको ७ बजेसे हो न्यूयार्क के सब भारतीय इकट्ठे हो गये। बाहर बिजलीकी रोशनीसे काउन्सेलेट भवन अच्छा जगमगा रहा था। अन्दर प्रवेश करते ही हालमें दीये चमचमा रहे थे। स्त्रियाँ तो हमेशा साड़ी पहनती हैं, लेकिन उस दिन पुरुष भी शेरवानी पहने दिखाई दे रहे थे। करीब १००-१५० भारतीय तथा ५०-६० अमेरिकन वहाँ उपस्थित थे। उस दिन वहाँ भिन्न चीजें खानेको मिलीं—२ समोसे, १ गुलाबजामुन, जलेबी, चूड़ा, हलुवा, १ पेप्सीकोला या कोकोकोला। करीब ११ बजे तक विविध मनोरंजनका कार्यक्रम चलता रहा। दो भारतीय नृत्य, मणिपुरी तथा कथकली। आरकेस्ट्रा, कुछ गाने, एक श्री ४२० का गाना तथा सबसे अच्छा कार्यक्रम एक अमेरिकन कलाकार द्वारा प्रस्तुत किया गया था। उसने उस दिन भारतीय नृत्य-पद्धति तथा पाश्चात्य पद्धतिका एक अनोखा मिश्रण प्रस्तुत किया। भारतीय गाने तथा तालके साथ Ballet dances ने मिलकर दीपक नृत्य प्रस्तुत किया। प्रयास प्रशंसनीय रहा। यहाँपर भारतीय संस्कृतिका तत्त्वज्ञान (Philosophy) के बारेमें पढ़े-लिखे लोगोंमें काफी रुचि बढ रही है। इसी माह विश्वविख्यात मैट्रोपोलिटन म्युजियम आफ आर्टमें भारतीय मन्दिरोंके सुन्दर चित्रोंकी प्रदर्शनी हुई थी। उस दिन शामको वहींके किसी विशेषज्ञने दक्षिण-भारतके ७ मुख्य मन्दिरोंपर एक सुन्दर भाषण दिया था। उसी समय भारतके सांस्कृतिक पहलूसे सम्बन्ध रखनेवाली फिल्मोंको भी वहींके ऑडेटोरियममें दिखाया गया। रविशंकर तथा उस्ताद अली अकबर खांके यहाँ आनेपर लोगों को भारतीय संगीतके बारेमें काफी रुचि पैदा हो गई है। उनके long playing records यहाँपर मिलते हैं। मैंने अभी मीडियम बुक्स द्वारा प्रकाशित प्रोफेसर हेनरिककी 'फिलॉसोफीज आफ इण्डिया' खरीदी। यह पुस्तक काफी अध्ययनके बाद लिखी गई है। नवम्बरके दूसरे सप्ताहमें एक दूसरे अमेरिकन परिवारके साथ रहने जा रहा हूं। यहाँके लोग अब भारतीयोंसे बड़ी इज्जतके साथ मिलते हैं। स्वराज्यके पूर्व भारतीय विदेशोंमें सिर उठाकर चल ही नहीं पाता था, उसे पग-पगपर अपमानका अनुभव करना पड़ता था। आज तो मुझे यहाँ जरा भी अजनबीपन नहीं मालूम हो रहा है।

चयन

पत्र-व्यवहार

परशुराम

सुकान्त दत्त बड़ा भला लड़का है। एम० एस-सी० पास करनेके कुछ दिन बाद ही पी० एच-डी० की डिग्री भी उसे मिल गई है। एक अच्छी-सी नौकरी तलाश कर करीब साल भर हुआ, सिन्द्रीके खाद कारखानेमें काम कर रहा है। उसके माँ-बाप जिन्दा नहीं हैं—मामाने उसे पाला-पोसा था।

आज सुबहकी डाकमें मामासे सुकान्तको एक चिट्ठी मिली। उन्होंने लिखा है—"सुकान्त, तुम्हारी शादी विजयलक्ष्मी काटन मिलके मालिक विजय घोषकी बेटी सुनन्दाके साथ तय की गई है। पुराना घराना है। विजय बाबू हम लोगोंके नजदीक शाखारीपाड़ामें ही रहते हैं। लड़की खूबसूरत है, काफी गोरी है, बी० एस-सी० पास नहीं कर पाई, पर काफी समझदार है। फोटो भेज रहा हूं। अपनी आँखोंसे देखकर लड़की पसन्द करना तुम्हारा काम था। पर पता नहीं क्यों आजकलके लड़के होकर भी तुमने मेरे ऊपर यह जिम्मेदारी सौंप दी। बहरहाल, भरसक देख-सुनकर ही मैंने यह लड़की पसन्द की है। उम्मीद है, तुम्हें भी पसन्द आएगी। २३ फागुनको शादी है। अबसे सिर्फ पाँच हफ्तेके बाद ही। तुम अभीसे कोशिश करो, जिससे पन्द्रह दिनकी छुट्टी मिल जाए। शादीसे कम से कम दो रोज पहले तुम्हारा यहाँ पहुंच जाना जरूरी है।"

सुकान्तने ध्यानसे मामाकी चिट्ठी पढ़ी। फोटो भी अच्छी तरहसे देखा। कुछ देर सोचते रहनेके बाद उसने अपने रंगके बक्ससे तीन-चार किस्मके रंग निकाले और उसे एक कागजपर लगाया। उसके बाद अपनी कलाईपर वह कागज रखकर देखा कि अपने बदनके रंगके साथ वह रंग मेल खा रहा है या नहीं। उसके बाद और भी थोड़ी देर सोचने-समझनेके बाद उसने यह चिट्ठी लिखी—

"श्रीमती सुनन्दा घोष समीपे।

मेरे साथ आपके विवाहका रिश्ता तय हुआ है। मामा जी की चिट्ठीसे पता चला कि आप बहुत गोरी हैं। लेकिन मेरा रंग काफी काला है। शायद आप सुन चुकी होंगी कि मैं साँवला हूं। पर उसमें भी बहुत-से शेड होते हैं। मेरा असली रंग क्या है, यह आपको बताना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। इसलिए कागजके एक टुकड़ेपर रंग लगाकर भेज रहा हूं। मेरे बाएँ हाथकी कलाईके पिछले हिस्सेके रंगसे यह रंग पूरी तरह मेल खाता है। इस तरह के घोर साँवले रंगके पतिसे आपको अगर एतराज न हो तो कृपाकर एक लाइन लिख भेजिएगा—'एतराज नहीं है'। अपने पतेके साथ लिफाफा भेज रहा हूं। अगर एतराज हो तो चिट्ठी लिखनेकी जरूरत नहीं। पाँच रोजमें आपकी चिट्ठी न मिली, तो समझ लूँगा कि आप राजी नहीं हैं। ऐसी हालतमें मैं मामाजीको लिख दूँगा कि यह रिश्ता मुझे पसन्द नहीं। दूसरी लड़की तलाश की जाए।

भवदीय
सुकान्त।"

चार रोजके बाद जवाब आया—

"डा० सुकान्त दत्त समीपे।

एतराज नहीं। लेकिन असली खबर आपको मिली नहीं। मेरे बदनका रंग आपसे भी काला है। लड़को दिखाते वक्त मुझे पेन्ट कर आपके मामाजीको ठगा गया था। लेकिन आपकी तरह सत्यवादी सज्जनको मैं ठगना नहीं चाहती। मेरे पास चित्र बनानेवाला रंग नहीं है। आपने जो नमूना भेजा है, उसी कागजसे एक टुकड़ा काटकर उसके ऊपर जरा ब्ल्यू-ब्लैक स्याही लगाकर अपने हाथके रंगके समान बनाकर भेज रही हूं।

"मर्दके साँवले रंगसे कोई नुक्स नहीं पड़ता। पर गोरी लड़की सभी ढूंढ़ते हैं। जोंककी तरह काला-कलूटा आदमी भी अप्सरा-सी दुलहन चाहता है। आप जरा-सा भी संकोच न करें। मेरे काले रंगसे एतराज हो तो रिश्ता तोड़ दें। और एतराज न हो तो पाँच दिनके अन्दर एक लाइन लिखकर सूचित कीजिएगा।

भवदीया
सुनन्दा।"

चिट्ठी पाते ही सुकान्तने जवाब लिखा—

"आपका रंग मुझसे भी एक पर्त ज्यादा काला हो तो कोई एतराज नहीं। फिर भी सच्ची बात ही बताऊंगा।

पहले-पहल मन जरा छोटा पड़ गया था। वजह यह कि सुन्दरी पत्नी एक सम्पदाके समान है। वह पतिका गौरव और रोब बढ़ाती है। लेकिन बादमें यह ख्याल हुआ कि ऐसा सोचना महज़ खुदगर्जी है। फोटो देखकर ही मैं समझ गया हूं कि आपमें सुडौलपनकी कमी नहीं है। इतना ही काफी है। रंग सांवला होनेसे इन्सान बदसूरत नहीं हो जाता।

"मेरी एक बुरी आदत है, जिसे बतलाना उचित समझता हूं। रोज पन्द्रह-बीस सिगरेट मैं पी जाता हूं। मेरी एक मामी जी कहती हैं कि सिगरेट पीनेवालोंकी सांसमें एक बहुत खराब, जले चामकी, बू आती है, जिसे उन लोगोंकी बीवियाँ पसन्द नहीं करती हैं; लेकिन मारे लिहाजके कुछ कह भी नहीं पातीं। दो-चार बंगाली लड़कियाँ मेमोंकी नकल कर सिगरेटकी आदत डाल चुकी हैं, उन्हें शायद एतराज न हो। पर आप अवश्य ही उन लोगोंके दलमें नहीं आतीं। आपको कोई एतराज हो तो एक लाइन लिख भेजिएगा, मैं रिश्ता तोड़ दूँगा।

भवदीय
सुकान्त।"

× × ×

चार रोज बाद सुनन्दाका जवाब आया—

"चामजली बूसे मुझे कोई एतराज़ नहीं, पर मैंने सुना है कि सिगरेट पीने पर कैन्सर होता है। आप उसे छोड़कर हुक्का पीना क्यों नहीं शुरू कर देते? उसकी गन्ध भी मुझे बुरी मालूम नहीं होती। अब मेरी सुनिए—मेरी भी एक बुरी आदत है। रोजाना बीस-पच्चीस बीड़े पान और जर्दा खाती हूं। दांतकी क्या हालत होगी, इसका अन्दाजा तो आप लगा ही लेंगे। जो लोग पान-जर्दा खाते हैं, सुना जाता है उनकी सांससे अमोनियाकी बू आती है। मेरे छोटे भाई लम्बूकी नाक काफी सेन्सटिव है, कुत्तेसे भी ज्यादा। रेडियोपर कृष्ण मुहागिन देवीका कीर्तन होता है, तो उसीसे लम्बूको अमोनियाकी बू मिल जाती है। फिर, ग्रामोफोन पर जब उस्ताद बड़े गुलाम मौलाके कनाड़ा रागका रेकार्ड बजता है, तब लम्बूको लहसुनकी बू मिल जाती है। मेरी बुरी आदतके बारेमें आपको कोई एतराज न हो, तो एक लाइन लिख भेजिएगा, नहीं तो रिश्ता तोड़ दीजिएगा।

भवदीया
सुनन्दा।"

× × ×

सुकान्तने जवाब लिखा—

"आप जब सिगरेटकी बदबू बरदाश्त करनेको तैयार हैं, तब आपके पान जर्देसे भी मुझे कोई एतराज नहीं। इसके अलावा हमारे यहाँके कारखानेमें अमोनिया बड़ी मात्रामें तैयार किया जाता है। उसकी मुझे आदत हो गई है। हुक्केके बारेमें आपका जो प्रस्ताव है, उसपर गौर करूंगा।

"इस किसी भी मामलेमें मैं आपको ठगना नहीं चाहता। इसलिए इस पत्रमें मैं अपना एक और नुक्स आपको बता रहा हूं। मर्द लोग जिस तरहसे अनन्यपूर्वा स्त्री चाहते हैं, लड़कियाँ भी उसी तरह ऐसा पति चाहती हैं, जिसका पहले कभी किसी लड़कीसे प्रेम न हुआ हो। मैं यह इकरार करता हूं कि मैं अक्षतहृदय नहीं हूं। डिप्टी कमिश्नर लाला तोपचाँद ढींगराकी बेटी सुरंगीके साथ मेरा प्रेम हो गया था। उसके माँ-बापको कोई एतराज नहीं था, पर सुरंगी ही आखिरमें भड़क गई। हालमें उसने कामर्स डिपार्टमेंटके मिस्टर हनुमन्तैयासे शादी कर ली है। वह तो था यमदूत-सा काला-स्याह, पर उसकी तनख्वाह मुझसे तिगुनी है। मेरे दिलका घाव अब काफी भर गया है। उम्मीद है, आपसे शादी करनेके बाद वह बिल्कुल पूरा हो जाएगा। सुरंगीका एक फोटो मेरे पास है। आपके सामने ही उसे जला डालूंगा।

"सुरंगीकी शादी हो जानेके बाद मुझे ख्याल हुआ कि मेरी भी शादी जल्दी हो जानी जरूरी है। खाली वक्तमें मैं तस्वीर बनाता हूं, फोटो खींचता हूं और कई तरहकी वैज्ञानिक खोजें करता हूं। गिरस्तीका झंझट कन्धोंपर लेनेके लिए एक घरवाली रहनेपर बेफिक्र अपने शौक पूरे कर सकता हूं। अब मुझे अक्ल आ गई है कि अचानक प्रेममें पड़ना बेवकूफी है, एक साथ रहनेके कारण आहिस्ता-आहिस्ता स्त्री और पुरुषमें जो प्रेम जमता है, वही खालिस चीज है। सन्तान पैदा होनेसे पेश्तर उसे देखनेका कोई उपाय नहीं है, फिर भी माँ-बापके प्यारमें कोई कमी नहीं आती। उसी तरह ब्याह से पहले लड़की न देखनेसे भी कोई नुक्सान नहीं। इसलिए ही सब कुछ छोड़ रखा है।

"अपने चाल-चलनके बारेमें सभी कुछ मैंने आपको बता दिया। एतराज न होनेपर जरा खबर भेजिएगा।

भवदीय
सुकान्त।"

सुनन्दाका जवाब आया —

"आपके चाल-चलन और मतामतके बारेमें मुझे कोई

एतराज नहीं। जो चिट्ठियाँ आपने लिखी हैं, उससे यह समझ पाई हूं कि आप बड़े ही सत्यवादी, सरल व साधु पुरुष हैं। इसलिए मैं भी सरल मनसे अपनी खामियोंके बारेमें बता रही हूं। पवनकुमार पोस्ट ग्रेजुएटका विद्यार्थी था, उसके साथ मेरा प्रेम हो गया था। लेकिन वह था भादुड़ी ब्राह्मण। उसके पुराने ढर्रेके माँ-बाप मुझे बहू बनानेको राजी नहीं हुए। पवन इस वक्त बंगलोरमें है। काफी बड़ा-सा कोई पोस्ट मिला है उसे। उसे एकदम भूल नहीं पाई हूं, पर आपके समान महाप्राण पति पानेपर एकदम भूल जाऊँगी, इसमें कोई शक नहीं। मैं कहती हूं कि सुरंगी और पवनकी फोटो जलाकर क्या होगा, बल्कि एक ही फ्रेम में दोनोंकी फोटो एक साथ बँधवाकर अपने सोनेके कमरेमें टाँग रखूंगी। उससे जहर-से-जहर मारनेका काम होगा। आपकी क्या राय है? अपना इरादा बताइएगा।

भवदीया
सुनन्दा।"

सुकान्तने जवाब लिखा—

"सुनन्दा, आज तुम्हें नाम लेकर सम्बोधित कर रहा हूं, क्योंकि हम दोनोंमें अब कोई चीज लुकी-छिपी नहीं रह गई। शादीमें भी कोई रुकावट नहीं रही। लोग कहते हैं कि मैं जरा गम्भीर तबीयतका आदमी हूं। मेरी भलाई चाहने वाले मित्र कहते हैं कि मैं जरा बेवकूफ हूं। तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर समझमें आया कि तुम जरा मजाक-पसन्द हो और मामाजीकी चिट्ठीसे पता चला कि तुम बी० एस-सी० फेल होनेपर भी समझदार लड़की हो। लगता है कि तुम्हारी और मेरी प्रकृति एक दूसरेकी पूरक या कम्प्लीमेन्टरी है। मनोविज्ञानके पंडितोंके अनुसार यही सर्वोत्तम जोड़ी है। आदर्श दम्पतिके यही लक्षण हैं। आज सोलह फाल्गुन है, सात रोजके बाद हम लोगोंकी शादी है। तुम्हारे साक्षात्कारकी कल्पनाका आनन्द ले रहा हूं।

तुम्हारा
सुकान्त।"

चन्द रोजके बाद ही सुनन्दा की चिट्ठी आई।

"मुझे क्षमा कीजिएगा। सब चौपट हो गया। पवन भादुड़ी यहां आ गया है। कल मेरे साथ मुलाकात कर उसने कहा, "देखो सुनन्दा, अब मैं आजाद हूं, अच्छा-खासा कमाता हूं। माँ-बापके अधीन रहकर चलनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम मेरे साथ चलो, बंगलोरमें सिविल या हिन्दू मैरेज जो चाहती हो, वैसा ही होगा।

"अब यह परिस्थिति है। मेरी हालत क्या है, यह तो आप जरूर ही कूत पाए होंगे। पवन भादुड़ीको हँका देना मेरे बसका नहीं। कल ही, यानी आपके साथ शादी के दो रोज पहले ही मैं पवनके साथ भाग रही हूं। लेकिन आपकी ओर भी मेरा एक कर्तव्य है। उसी कर्तव्यको ध्यानमें रखकर आपका इन्तजाम बगैर किए मैं नहीं जा रही हूं। मेरी छोटी बहन नन्दा मुझसे डेढ़ साल छोटी है। शक्ल-सूरत मुझ जैसी ही है, सिर्फ रंग गोरा जरूर है। वह भी बी० एस-सी० फेल है। दाँत बिल्कुल चमाचम चमकते हुए, पान-जर्दा नहीं खाती, आज तक कभी प्रेमका शिकार भी नहीं हुई। आपकी सब चिट्ठियाँ उसने भी पढ़ी हैं, और पढ़कर काफी मुग्ध हो गई है। आपसे शादी करनेके लिए उतावली हो बैठी है। डाक्टर सुकान्त, आपसे प्रार्थना है कोई हंगामा खड़ा न कीजिएगा, घरके लोगोंसे भी कुछ न कहिएगा। अपने प्रोग्रामके मुताबिक बारात लेकर वक्तपर हमारे घर आइएगा। पुरोहित जो मन्त्र पढ़ाएँ, उसे भले लड़केकी तरह पढ़िएगा। मेरे पिताजी नन्दाको ही आपके हाथोंमें समर्पित करेंगे। उसे पाकर आपको जरूर खुशी होगी। आप तो गिरस्तीकी देखभाल के लिए एक घरवाली चाहते हैं, लिहाजा सुनन्दाके बदले नन्दा मिलनेपर भी आपका काम मजेमें चल जायगा। अपनी बहनकी तारीफ करना भला नहीं लगता, वर्ना मैं विस्तारसे लिखतो कि नन्दा कितनी अच्छी लड़की है। अब बिदा लेती हूं। इसके बाद कभी मौका मिला, तो आपसे मुलाकात कर क्षमा माँग लूँगी।

भवदीया
सुनन्दा।"

सुनन्दाकी उक्त चिट्ठी पाकर सुकान्त भौंचक रह गया। उसे गुस्सा भी आया। लेकिन वह था तर्कवादी यानी रैशनल। थोड़ी देर बाद ही वह समझ गया कि सुनन्दाका प्रस्ताव बुरा नहीं। जब घरवालो ही चाहिए तो एक लड़की के बदले दूसरी लड़की हो तो क्या नुकसान, खास तौरसे जब वह गोरी है और न पान ही खाती है। सुकान्तने निश्चय किया कि वह कोई हंगामा खड़ा नहीं करेगा। किसी तरहकी खोज-खबर भी नहीं लगाएगा। पूरी तौर पर मामाके अधीन चलेगा। वह जैसा भी इन्तजाम करेंगे, उसे सिर नवाकर पूरा करेगा।

विवाहसे दो दिन पूर्व सुकान्त जब कलकत्तेमें मामाके

घर पहुँचा, तो किसीने भी सुनन्दाके बारेमें कुछ नहीं कहा और न कोई व्याकुलता ही दिखाई पड़ी। वक्तपर बारातियोंके साथ सुकान्त शादीके मकानपर पहुँच गया। वहाँपर भी किसी तरहके गोलमालके कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़े।

सुकान्तने देखा कि सोलह-सत्रह सालका एक लड़का सबको पान और सिगरेट दे रहा है और लड़कीवाले उसे 'लम्बू' नामसे पुकार रहे हैं। उसे इशारेसे नजदीक बुला कर सुकान्तने धीरेसे उसे पूछा—"तुम सुनन्दाके छोटे भाई 'लम्बू' हो?"

लम्बूने कहा, "जी, हाँ।"

"इधरकी खबर क्या है?"

"खबर सब अच्छी ही है। दीदीका इस वक्त सिंगार हो रहा है। थोड़ी देर बाद ही तो शादीकी शुभ घड़ी है।"

"सुनन्दा चली गई?"

"यह क्या कह रहे हैं आप? शादीकी दुलहिन कहाँ चली जाएगी?"

"तुम्हारी और एक दीदी नन्दा है, उसको क्या खबर है?"

"वाह भई, मेरी तो एक ही दीदी है, जिसके साथ आपकी शादी हो रही है।"

सुकान्तने आश्चर्यसे कपारपर आँखें चढ़ाते हुए कहा, "अच्छा!"

रात बारह बजेके बाद जब बासर-घरमें कोई और न रहा, तब सुकान्तने अपनी पत्नीसे पूछा—"तुम सुनन्दा हो या नन्दा?"

"दोनों ही। कालेजका नाम सुनन्दा है और घरका नाम नन्दा।"

"चिट्ठीमें इतनी झूठी बातें क्यों लिखी थीं?"

"कोई दूसरा इरादा नहीं था। सत्यवादी, उदार भावी दूल्हेको जरा ठोक-बजाकर देख रही थी कि उसमें बरदाश्त करनेकी ताकत कितनी है।"

"तुम्हारे उस पवननन्दन भादुड़ीकी क्या खबर है?"

"हवा होकर उड़ गया है। उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। मेरे पास हनुमानजीका एक अच्छा-सा चित्र है, तुम्हारी उस सुरंगीके फोटोके साथ बँधवा रखनेसे अच्छा रहेगा न?"

"तुम बड़ी ही शरीर लड़की हो। तभी तो बी० एस-सी० में फेल हुई।"

"थुनी मिस्तर मुझसे शरीरमें डबल है, पर वह फर्स्ट कैसे आ गई! मैं सवालमें कच्ची हूँ। मैक्सवेलको थियोरो मेरी समझमें बिल्कुल नहीं आती और वही सवाल इम्तहानमें आ गया। मैं क्या करती?"

"क्यों? वह तो काफी सीधा सवाल है। समझा देता हूँ। सुनो, वी इक्वल टू रूट ओवर वन माई कम्पाउण्ड."

"बस, बस! बासर-घरमें सवाल हल करना अशुभ माना जाता है।"

"अच्छा, कल समझा दूँगा।"

"कल तो कालरात्रि है। दूल्हा-दुलहिनसे मुलाकात नहीं हो सकती। बस, परसों सुहाग रातमें ही मुलाकात होगी।"

"अच्छी बात। तभी समझा दूँगा।"

"सुहाग-रातमें सवाल लगानेसे महापाप होता है, यह भी नहीं जानते क्या? उस दिन तो मेरी दादी-अम्माँ कमरेके बाहर कान लगाकर खड़ी रहेंगी। अगर उन्होंने यह सुन लिया कि सुहाग-रातमें नया जमाई सवाल हल कर रहा है, तो गोबर खिलाकर घर भरका प्रायश्चित करेंगी। जल्दी किस बातकी है? मैं कोई भागे थोड़े ही जा रही हूँ। सालभर बीत जाने दो, उसके बाद समझा देना।"

"अच्छा ऐसा ही होगा। अब क्या कहती हो? सुनो सुनन्दा, तुम देखनेमें खूब अच्छी-खासी हो।"

"सच? तुम्हारी नजर तो बड़ी तेज है।"

'सुनन्दा, मेरा जो क्या कर रहा है, जानती हो?"

"मुझे चबाकर खा डालनेको?"

"ठीक ऐसा नहीं। लग रहा है—"

"जो कुछ लगता है, लगने दो। मगर अब चुपचाप सो जाओ।" —रूपान्तरकार : प्रबोधकुमार मजूमदार

('आजकल')

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'लेखनी बेला'— श्री वीरेन्द्र मिश्रकी नूतन कविताओंका संग्रह है, जिसमें ५७ गीतोंका स्वर मुखरित हुआ है। 'वीरेन्द्र' का नवोदित कवियोंमें स्पृहणीय स्थान है। उनके गीतोंका एक आकर्षण उनकी अभिनव अभिव्यक्ति है। आजकी नई कविता नया परिधान धारणकर बीते कालकी प्रत्येक परम्पराका परित्याग करना चाहती है, जिसमें छन्दका बन्धन भी एक है। यद्यपि कविताके लिए छन्द अनिवार्य नहीं है, तो भी छन्दमें शब्द-लयताके कारण भावकके हृदयके लयमय स्पन्दनके साथ अविलम्ब एकतानता स्थापित हो जाती है—उसकी प्रेयणीयता बढ़ जाती है और फिर रचनाओंमें प्रतिबिम्बनाओंका कौमार्य किसकी रसानुभूतिमें बिछलन नहीं भर देगा? यही कारण है कि कवितामें छन्द या शब्द-लयके समर्थनको जी चाहता है। प्रसन्नता है, 'वीरेन्द्र' ने भी अपने 'कवि' से यही आग्रह किया है—"गद्यवाले राज-पथपर तू व्यर्थ जाकर हाथ मत फैला।" और

"छन्द रे स्वच्छन्द होकर गा
मत कहीं भी बन्द होकर गा।
साँस से सींचे बगीचे में
फूल-सा खिल, गन्ध होकर गा।"

कविने प्रेमके, प्रकृतिके, परमात्माके, देशके—सभीके राग गाये हैं। कहा जा सकता है कि प्रेमके गीत तो पहले भी बहुत गाये जा चुके हैं, उनमें नवीनता क्या आ सकी होगी? पर कविके ही शब्दोंमें—

"रूपके प्रीतिके, गीतके राजमें
अनसुना और अनकहा बहुत-कुछ शेष है
और रहेगा।"

प्रत्येक युगमें कविने रूप और प्रीतिको लेखनीसे चित्रित करनेका प्रयत्न किया है। फिर भी इनका सौन्दर्य ऐसा है कि

"ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि
त्यों-त्यों खरी निकरै सुनिकाई।"

उनका कोई-न-कोई पहलू प्रत्येक बार अछूता रह ही जाता है। भटके-भूले आनेवाले प्रियको देखकर कविका मन-मयूर नाच उठता है—

"ज़रा अब मुस्कराओ भी, खिले मधु ऋतु, बहे सावन
बसन्ती चाँदनीमें झूम जानेका हुआ है मन।
न जो गाया गया, वह गीत गानेका हुआ है मन।
मिले हो तो, कहो कुछ तुम, कहें कुछ हम, सुने जीवन।"

प्रियकी अनुकम्पासे वह इतना अभिभूत हो चुका है कि कहता है—

"यह जलन है मधुर, यह तपन है बहुत
जन्म लेना पड़ेगा दुबारा मुझे।
उम्रमें, प्यारका कर्ज़ चुकाना कठिन
प्यार इतना मिला है तुम्हारा मुझे।"

प्रथम आषाढ़के मेघकी आकुल प्रतीक्षा है—

"अम्बरके ऊँचे मचानसे जरा गा, बदरी कजरारी।
चुल्लूसे ही पी लेंगे हम ढोल जरा क़ारी पनिहारी।
मन हरियाए जामुन चूनर, घूँघट उठा दरसनेको
मेरे गीत बड़े आकुल हैं तेरे साथ बरसनेको।"

इसमें प्रतिबिम्बनाएँ कितनी सजीव हैं! श्री भवानीप्रसाद मिश्रका 'मैं गीत बेचता हूं' गीत बहुत प्रसिद्ध है। वीरेन्द्रने 'गीत क्यों बेचता हूं' की कैफियत दी है, जो बहुत सीधी-सादी है—

"चूल्हा जलता रहे जिन्दगीका सदा
इसीलिए अनमोल गीत! मैं तुझे दे रहा माटी मोल।"

इसमें भवानीप्रसाद मिश्रके समान जीवनका झंझट नहीं है। संग्रहका

"लो अब गाता हूं—
कोई अंधकारकी चादर मेरी ओर बढ़ाए ना।"

गीत लाजवाब है। इसमें देशका जो प्रकृत रूप प्रस्तुत किया गया है, वह तो कानोंसे दर्शनीय है ही, चित्र-भरे शब्दोंमें कविकी जो स्नेह-संकुल आत्मा छिपी हुई है, उसने भी उसमें माधुर्य भर दिया है—अपने देशका एक-एक दृश्य कविको खींच रहा है, जो बरबस उसके शब्दोंमें बिना बनाव-सिंगार के खिंचता चला जा रहा है। एक चित्र देखिये—

"संजा और सकारे ऐसे हैं कहाँ
सूरज-चाँद सितारे ऐसे हैं कहाँ
श्याम-घटा-बिजली-बरखा मनभावनी
रिमझिम बूँद फुहार चँदनिया सावनी।"

यहाँ निवेदन है कि सावन-भादोंकी चँदनियाँ उतनी उज्ज्वल-निर्मल नहीं होतीं, जितनी कार्तिककी, जब आकाश प्रायः निर्मेघ रहता है।

देशकी और भी झाँकी देखिये—

"आल्हा भी हुंकार रमायन की कथा
वृन्दावनके रास, गोपियोंकी व्यथा।

त्योहारोंकी धूम, दिवालीके दिये,
होलीके रंगों बिन कोई क्या जिये।
मनीपुरीके नृत्योंकी चंचल पुरी,
और भरतनाट्यपर छिड़ती बाँसुरी।
यह सब मेरी दुनियाको आवाज़ है,
इसपर ही तो होना मुझको नाज़ है।"

देशके कई नजारे कविने प्रस्तुत किये हैं। 'अपने संस्कृतियोंके देशसे' वह औपनिषद स्वप्न-द्रष्टाओंके शब्दोंमें माँग करता है—

ज्योति दो
ज्ञान दो
तम जहाँ हो
छान दो!

संग्रहके अन्तके कुछ गीत भारतीय संस्कृति और प्रेमसे ओतप्रोत हैं। एक गीतकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं—

"साँझ-सकारे चंदा-सूरज करते जिसको आरती
उस मिट्टी में मन का सोना ढोल दो
ग्रह-नक्षत्रो! भारत की जय बोल दो।"

और 'ज्ञान-किरण' से कहता है—

"जिस मंदिर-मस्जिद-गिरजेमें कैद पड़ा इन्सान हो
जाओ उसमें किरन! किवारा खोल दो!
कुंकुमपत्रो! भारत की जय बोल दो!'

पहले कहा जा चुका है कि कवि प्रकृतिके भी लुभावने चित्र अंकित करता है। 'मसूरी' के दृश्यको उसने शब्दोंके कैमरेमें उतार लिया है—क्षण-क्षण परिवर्तित होनेवाले दृश्य क्षिप्र गतिसे ध्वनित हो उठे हैं। वहाँ उसे लगा है—

"ठण्डी-ठण्डी छाव है, मीठा-मीठा राग है
धरती जैसी आँखमें सपने जैसा बाग है।
× × ×
खोई-खोई धूपकी बिखरी-बिखरी प्यास है
झरनोंवाली बाँहमें पर्वत क्या आकाश है।"

कविकी अपनी राह है, क्योंकि उसका कथन है कि—

"मेरी जिह्वा कलम न चल पाती गैरोंकी राहपर।"

इसीसे उसमें खुमार-भरी मस्ती है। उसकी भाषा लोकाभिमुख अधिक है, जो व्यंजक और कर्ण-मधुर है। कुछ शब्दोंसे उसे बेहद प्यार है, जैसे क्वारी, छाँव, सघन संजा, सकारे। कविका प्रवहमान भाषापर अच्छा अधिकार है, तभी वह उसे अपने जी की साधोंको कहनेके लिए जिस रूपमें चाहता है, ढाल लेता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं—मानव और मानवेतर, प्यार और पूजाके, मीठे और नमकीन गीत श्रोताओं तथा पाठकोंको पुनः-पुनः गुनगुनानेको विवश करेंगे।

—विमलमोहन शर्मा

सौंदर्य-प्रतियोगिता—यह श्री गोपाल शर्माका बहु-चर्चित नाटक है, जो द्विअंकी होनेपर भी, जहाँ तक देशकाल और वस्तुका सम्बन्ध है, एकांकी सदृश है। विज्ञप्तिका यह कथन सत्य है कि "इसमें पात्र और घटनाएँ इस प्रकार गृहीत हैं, मानो समाजके उद्यानसे तोड़कर उन्हें ताजे रूपोंमें ही गूँथनेका प्रयास किया गया हो।" मध्यम श्रेणीका महत्वाकांक्षी धनीराम वकील कीर्ति-लोलुपताका प्रतीक है, जो हर कीमतपर अपने सार्वजनिक चरित्र (career) का निर्माण करना चाहता है। धनीरामकी पत्नी, जो हर जगह "मा" सम्बोधित होती है, पतिका पल-पलपर उपहास करनेको तत्पर रहती है और उसकी लीडर बननेकी योजनाओंको विफल बनानेका प्रयत्न करती रहती है। जब नगरमें सौंदर्य-प्रतियोगिताका आयोजन होता है, तो धनीराम को उसका 'जज' बननेको आमन्त्रित किया जाता है। वह प्रतियोगिता-मैनेजरके इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेता है। पर उसकी 'पत्नी' उसे व्यंग्यबाणोंसे आहत कर उससे पराङ्मुख करती है। वह पतिके सामने ही पुत्रसे कहती है—"ओ बेटा, मृदुल, देख, तेरे सायजी पचासको उमरमें जवान छोकरियोंको घूरने जा रहे हैं।" स्वयं कहती है—'क्यों भले घरकी लड़कियोंपर आँख गड़ाकर भारतका झंडा ऊँचा उठाने जा रहे हो? अब समझी यह सौंदर्य बार-बार तुम्हारे मुँहसे लारकी तरह क्यों टपका पड़ता था।"

धनीरामकी कन्या विमला आधुनिक रंगमें रँगी हुई खुशमिजाज लड़की है, जो सौंदर्य-प्रतियोगितामें जानेकी आतुरता दिखाती है और अपने माता-पिताको आश्चर्यचकित करती है। पिताके बहुत समझाने-बुझानेसे वह इस शर्तपर सौंदर्य-प्रतियोगितामें भाग लेनेसे विमुख होती है कि धनीराम उसके 'जज' नहीं बनेंगे। माँ, बेटी और पितामें इस बातको लेकर खूब वाग्युद्ध होता है। इस बीच धर्मानन्द गोवर्धनशालाके उद्घाटनका प्रस्ताव लेकर धनीरामके पास आता है और उससे सौंदर्य-प्रतियोगिताके निर्णायक न बनने का आग्रह करता है। वह उसकी धर्मपत्नीसे मिलकर सौंदर्य-प्रतियोगिताके विरुद्ध आन्दोलन भी करता है। धनीराम मन मसोसकर घरपर रह जाता है—'जज' बनने नहीं जाता। धनीरामका पुत्र मृदुल बेहद मूर्ख और शौकीन

युवक है। शलभ विमलाका प्रस्तावित वर है। यह विमला देशधारिणी उसकी नौकरानीपर, जो सौंदर्य-प्रतियोगितामें सर्वप्रथम घोषित की गई थी, मुग्ध हो जाता है। पर जब इस रहस्यका उद्घाटन होता है कि विमलाने सौंदर्य-प्रतियोगितामें भाग ही नहीं लिया था, तब वह विमलासे विवाह करनेको उत्सुक हो जाता है।

धर्मानन्द, धनीरामके सौंदर्य-प्रतियोगिता-समारोहमें न जानेपर स्वयं निर्णायक बनकर भाषण देता है और इस प्रकार अपने ही सिद्धान्तकी हत्या करता है। नाटकमें समाजके विभिन्न कोटिके व्यक्तियोंके आचारोंपर जमकर कशाघात किया गया है और यह सच है कि धनीराम, उसकी पत्नी और उसकी पुत्रीके बीच होनेवाला संवाद उनकी सामाजिक स्थितिके अनुरूप नहीं है—अतिरंजित है। परन्तु ऐसा आरोप करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि यह नाटक मूलतः व्यंग्य-प्रधान है। इस कोटिके नाटकोंका यही तन्त्र है कि घटनाओं और पात्रोंके व्यवहारोंको इतना अधिक अतिरंजित कर दिया जाय कि आलोच्य वस्तु विद्रूप हो उठे और स्वयं पात्रका आचरण विद्रूप हो जाय। समाज ऐसे पात्रोंके प्रति अरुचि प्रदर्शित करने लगे। पूरा नाटक पढ़नेपर हम धनीरामके 'केरियरशिप' की लालसाके प्रति क्षुब्ध होते हैं, पत्नीके पतिपर अत्यधिक हावी होनेकी भर्त्सना करते हैं, लड़कीकी अति आधुनिकताके प्रति हमारी अरुचि जाग्रत हो जाती है, लड़केके गँवारूपनकी हम हँसी उड़ाने लगते हैं और धर्मानन्दके ढकोसले और नीतिवादको हम घृणाकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। आजके समाजकी यही तो विकृतियाँ हैं, जो उपर्युक्त विभिन्न पात्रोंके रूपमें हमारे सामने आती हैं। हिन्दीमें पात्रोंके अतिरंजित चित्रणके माध्यमसे समाजकी विकृतियोंके शोधनका टेकनीक जगदीशचन्द्र माथुरके 'ओ मेरे सपने !'में देखा जा सकता है। सौंदर्य-प्रतियोगिता उसी कोटिके व्यंग्य-शिल्पपर आधारित है। तभी उसमें पात्रोंके सम्भाषण अतिरंजित—अस्वाभाविक लगते हैं। नाटककारपर यह भी आरोप लगाया जा सकता है कि उसने 'कला' को 'श्रमदान'के प्रचारका साधन बनानेका प्रयास किया है। 'माँ' श्रमदानका नेतृत्व कर धनीरामके हाथमें टोकनी और स्वामी धर्मानन्दके हाथमें फावड़ा देती है। सौंदर्य-प्रतियोगिता की अनैतिकता सिद्ध करनेके लिए 'माँ' एक साहित्यिक भाषण भी देती है—"तुम्हें नारीका सौंदर्य परखना है, तो उसके बच्चोंको देखो, उसके पतिको देखो, उसके रसोईघरमें जाओ। उसकी सजावटकी जाँच करो। उसके रिश्तेदारोंसे, पास-पड़ोस वालोंसे पूछो। तुम जो देखने जा रहे थे, वह था सिर्फ गुलदान। गुलदान अपने-आप पौदेदानसे ज्यादा कोई मतलब नहीं रखता।" प्रतीत होता है, नाटककार कलाकी सार्थकता, उसकी सार्वजनीन उपयोगितामें मानता है। पर उसकी नाट्य-गतिकी ऐसी भूमिका नहीं है। हिन्दीमें अभिनय योग्य नाटकोंकी कमी है। सौंदर्य-प्रतियोगिताका कई बार अभिनय हो चुका है और उसे सफलता भी मिली है। हिन्दीके इस लघु-कलापूर्ण नाटकका हम स्वागत करते हैं और भविष्यमें अधिक उत्कृष्ट अभिनेय नाटकोंकी अपेक्षा रखते हैं।

—विनयमोहन शर्मा

'सदन-शिक्षण : एक युग'—(सचित्र, सजिल्द, जेकिटके साथ); सम्पादक-मण्डल—यशपाल जैन, बाबूराव जोशी, शकुन्तला पाठक; प्रकाशक, महिला-शिक्षा-सदन, हट्टण्डी, अजमेर।

भारतवर्ष विरोधी मान्यताओंका देश है। असमताओंकी यही समता इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। जहाँ एक ओर पदलोलुपता तथा स्वार्थान्धताका बोलबाला है, वहीं दूसरी ओर कुछ उन्नतमनाओंके सात्विक-परोपकारी प्रयत्न भी पाये जाते हैं। हट्टण्डीका महिला-शिक्षा-सदन इसी प्रकारकी एक संस्था है। अजमेरके निकट एक छोटे-से, अनजान गाँवमें श्री हरिभाऊ उपाध्यायने, वर्षों पूर्व, बापूसे प्रेरणा प्राप्त करके 'गांधी-आश्रम'की स्थापना की थी। उसके शिक्षा-सदनका इस पुस्तकमें चित्रित इतिहास उपस्थित किया गया है। राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्रीका केवल सन्देश ही पुस्तकमें नहीं है, अपितु इन दोनों महानुभावोंने सदनकी उन्नतिमें यथासमय अनेक बार योग भी दिया है। इस ग्रन्थमें काका साहब कालेलकर, श्री वियोगी हरि, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, महाकवि नवीनजी आदिके लेख हैं। श्रीमान् नवीनजीका 'दादा साहब' (पं० हरिभाऊ उपाध्याय) विषयक संस्मरण परम सुन्दर है। दिनेशनन्दिनीजीकी कविता भी सुन्दर है।

अनेक माननीय देशनायकों तथा साहित्यिकोंके सन्देशों और उत्कृष्ट चित्रोंसे युक्त यह ग्रन्थ सदनका सचित्र इतिहास है, जो निष्काम कर्मियोंको सात्विक प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। छपाई तथा गेट-अप भी अति उत्तम है। ग्रन्थ पठनीय है। केवल एक बात हमें नहीं जँची—इस ग्रन्थमें विभिन्न 'फर्मों'के विज्ञापन नहीं होने चाहिए थे। मंगल-कलशपर कीचड़के छींटोंके समान ये विज्ञापन ग्रन्थकी आत्माको कुण्ठित

करते-से प्रतीत होते हैं। यह ग्रन्थ प्रत्येक आश्रम तथा सामुदायिक योजना-केन्द्रमें रखने और पढ़ने योग्य है।

—रमेशकुमार शर्मा

'प्राण-गीत'—रचयिता, 'नीरज'; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६; द्वितीय संस्करण; सजिल्द मूल्य तीन रुपया।

आलोच्य पुस्तक जनप्रिय गायक 'नीरज'के ५० गीतों का संग्रह है। कविने प्रारम्भमें 'दृष्टिकोण' शीर्षकसे कविताकी व्याख्या करते हुए सौंदर्य, प्रेम एवं मृत्यु-सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा अपने काव्यकी भाव-भूमि स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। उसने सौंदर्यको 'चिति', प्रेमको 'गति' तथा मृत्युको 'यति' माना है।

संकलित गीतोंकी समीक्षा करनेसे पता चलता है कि उनका चयन उपर्युक्त दृष्टिकोणके आधारपर नहीं किया गया है। हिन्दीके ('बच्चन', महादेवी आदि कतिपय गीतकारोंको छोड़कर) अधिकांश कवियोंके काव्य-संग्रहोंमें भाव-क्रमका अभाव रहता है और वही 'नीरज' की प्रस्तुत कृतिमें भी है, जो खटकनेवाला है। पहला गीत 'प्यार'से प्रारम्भ होता है, किन्तु उसका भी मूल-स्वर मानवतावादसे सम्बद्ध है। 'दृष्टिकोण'में व्यक्त विचारोंके अनुसार सौंदर्य-सम्बन्धी गीतसे पुस्तकका प्रारम्भ होता, तो संग्रहकी प्रभाव-प्रक्रिया कुछ और ही होती। आगे चलकर हम देखते हैं कि समस्त गीत टूटी मालाके बिखरे पुष्पोंकी तरह इधर-उधर दुष्क्रमसे पड़े हैं। एक गीत यदि 'सौन्दर्य' से सम्बन्ध रखता है, तो दूसरा अध्यात्मवादके निकट खड़ा है; तीसरा यथार्थवाद और प्रगतिवादके निकट है, तो चौथा मृत्युको भाव-भूमिपर निराशा एवं विराग-वृत्तिका पोषण करता है और आगेका गीत रहस्यवादी साधनाके निकट पाठकको खींच ले जाता है। बीच-बीचमें प्यार है, मृत्यु है और है रोज़ी-रोटीकी बात। वस्तुतः भाव-क्रम गीत-संग्रहका प्राण होता है, जिसके ठोस आधारका 'प्राण-गीत' के संचयमें ध्यान नहीं रखा गया। आशा है, 'नीरज'जी अपने आगेके काव्य-संग्रहोंमें इस ओर ध्यान देंगे।

प्रत्येक गीतको पृथक्-पृथक् समीक्षा करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि प्रायः सभी गीत गेय, सरस, मधुर तथा प्रभावोत्पादक हैं। प्रत्येक गीत हृदयको आकर्षित करता है तथा स्थायी प्रभाव छोड़ता है। कुछ गीत तो इतने अधिक सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक हैं कि उन्हें बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। ३, ४, ७, ९, १३, १५, १७, १९, २३, २७ तथा २८ संख्यावाले गीत विशेषतः हृदयको आकर्षित करते हैं तथा विचार-जगतपर अपनी स्थायी छाप छोड़ते हैं। प्यारको महत्व देते हुए 'नीरज'जी कहते हैं—

"मैं न बँधा हूं देश-कालकी ज़ंग लगी ज़ंजीरमें।
मैं न खड़ा हूं जाति-पाँतिकी ऊँची-नीची भीड़में।
मेरा धर्म न कुछ स्याही शब्दोंका सिर्फ गुलाम है।
मैं बस कहता हूं कि प्यार है तो घट-घटमें राम है।"

उन्होंने आगे लिखा है—

"प्रेमको ही न जगमें मिला मान तो
यह धरा, यह भुवन सिर्फ शमशान है।
आदमी एक चलती हुई लाश है।
और जीना यहाँ एक अपमान है।"

समाजकी दुर्दशा देखकर वे लिखते हैं—

"बंकालोंकी जुड़ रही भीड़ चौराहेपर
फिरसे बननेवाला है कोई वज्रधान।
बिक रहे प्राण, बिक रहे शीश, बिक रही मौत
फिरसे जगनेको हैं मरघट मसान।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'नीरज'के गीतोंमें एक ऐसा आकर्षण है, जो प्रत्येक प्रकारके पाठकको प्रभावित कर देनेके लिए पर्याप्त है।

—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

माताजीकी बातचीत, भाग १-२ (आश्रमके बच्चोंके साथ); प्रकाशक उपर्युक्त ही; मूल्य ६) (जो बहुत अधिक प्रतीत होता है।)

"जब हम एक विशेष अर्थमें श्रीमाँकी ज्योति या मेरी ज्योतिकी बात कहते हैं, तब हम एक विशिष्ट गुह्य क्रियाकी बात कहते हैं—किन्हीं ऐसी ज्योतियोंकी बात कहते हैं, जो अतिमानससे आती हैं।...सच पूछा जाय तो जो ज्योतियां ऊपरसे उच्चतम दिव्य सत्यसे आती हैं, वे सब-की-सब श्रीमाँ की ही हैं।...श्रीमाँ और मेरे पथमें अन्तर नहीं है।... हमारा पथ केवल अन्तमें ही एक नहीं है, बल्कि वह आरंभसे ही एक रहा है।"

श्री अरविन्दने उपर्युक्त शब्दोंमें श्रीमाताका वर्णन किया है। मानसिक शान्ति देनेवाला अरविन्दका पांडिचेरी आश्रम अभी भी अपने प्रयासोंको, श्रीमांकी प्रेरणासे जारी रखे हुए है। आश्रमके बच्चोंके प्रति श्रीमाँके प्रवचनोंका जो यह संग्रह है, उसमें एक बात प्रखर रूपमें निखर उठती है। उस आश्रमके बालक कोई सामान्य बालक नहीं प्रतीत होते।

श्रीमाताजी उनसे 'गुह्य विद्या' (पृ० ५३), 'रहस्यवाद और गुह्यवाद' (पृ० ५७) तकपर बातचीत करती हैं। सामान्य, संसारी बालकोंमें चकपकाहट-मिश्रित कौतुक भी भावनाको ही ऐसी बातें जगावेंगी। संभव है, वातावरण तथा निरन्तर 'उपदेशामृतपान' से आश्रमके बालक इन गुह्य उपदेशोंसे लाभ उठा सकते हैं।

श्रीमाँके उपदेश बालकोचित अन्तर्कथाओंसे युक्त होनेके कारण परम रोचक हैं, इसमें सन्देह नहीं है। 'मांस-भोजन', 'बुद्ध और शंकर' नामक प्रवचन तो प्रौढ़ोंके लिए भी उपयुक्त है। ग्रन्थकी छपाई भी मनोरम तथा साफ है। कागज ज़रा अच्छा नहीं है। वैसे गेट-अप, आश्रमकी भावनाके अनुरूप सादा और सात्विक है।

'योजना' (मासिकपत्रिका) का अप्रैल १९५८ का अंक; सम्पादक, वेद राही; प्रकाशक, लालारुख पब्लिकेशन्ज़, जम्मू, कश्मीर।

भारतके मस्तक-मणि-स्वरूप कश्मीर प्रदेशसे निकलनेवाली यह हिन्दी-पत्रिका सुन्दर छपाई तथा सुरुचिपूर्ण चित्रों में उस स्वर्णिम प्रदेशकी वर्तमान प्रगतिका परिचय करानेवाली है। कागज अच्छा है, अनेक चित्र आर्ट पेपरपर हैं तथा कुछ रंगीन भी हैं। सबसे बड़ी बात है इस पत्रिकाका सांस्कृतिक समन्वयकारी स्वरूप, डोगरीकी कविता, उर्दूकी गज़ल, कश्मीरी कविता तथा हिन्दीके गीत—सबको इसमें स्थान मिला है। बालकों तथा स्त्रियोंके उपयोगका मसाला भी उपस्थित किया गया है तथा उसके साथ-साथ योजनानुसार प्रगतिका संकेत भी है।

अभी इस पत्रिकाके लेखों तथा कविताओंका स्तर नीचा ही है। सम्भव है, सामग्रीके अभावके कारण ऐसा हो। आशा है, भविष्यमें इसके स्तरको क्रमशः ऊँचा उठानेका प्रयत्न किया जायगा। पत्रिकाका स्वरूप-विधान (ले-आउट) सुरुचिपूर्ण है।

'अदिति-सह, भारत माता'—श्री माताजीके जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें निकाला गया फरवरी १९५८ (वर्ष १६, अंक १) का विशेषांक; प्रकाशक, अदिति कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी; प्रबन्ध-सम्पादक, श्री केशवदेव पोद्दार तथा श्री श्यामसुन्दर झुनझुनवाला; वार्षिक मूल्य ६); एक अंकका रु० १=७५ न०पै०।

श्री माताजीके ८०वें वर्ष पूरा करनेके उपलक्ष्यमें यह विशेषांक निकाला गया है। श्री अरविन्दके भक्तोंने २१ फरवरीको श्री माताजीके जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें अनेक उत्सव किये थे, और उसीके साथ-साथ यह 'अदिति-सह, भारतमाता' का विशेषांक निकाला है। प्रो० के० आर० आयंगर तथा स्वयं श्री अरविन्दके श्री माताजी विषयक विचार इस विशेषांकमें हैं। श्री माताजीका एक प्रसिद्ध चित्र भी इसमें दिया हुआ है। यह पत्रिका सर्वसाधारणके लिए नहीं है, केवल अरविन्दवादी हो इससे किसी मात्राकी प्रेरणा या आध्यात्मिक आनन्द उठा सकते हैं। अरविन्द-दर्शन विवादग्रस्त है, इस कारण उसका प्रभाव सबपर समान नहीं पड़ता। पत्रिकामें माताजीकी विभिन्न भाषाओंकी हस्तलिपिके 'फोटोस्टेट' भी हैं। प्रार्थनाके ऊपर दिया गया निबन्ध परम सुन्दर है। मानसिक शान्तिके लिए भटकनेवालोंमें से कुछको तो अरविन्द-दर्शनने शान्ति प्रदान की ही है, उन्हीं लोगोंके लिए यह पत्रिका है। छपाई आदि सुन्दर है।

सार्वजनिक संपर्क कार्यालय, राजस्थान, जयपुरकी पुस्तकें

१. **'राजस्थानकी कला'** (सचित्र)—लेखक, विभिन्न; मूल्य आठ आना।

सुन्दर आर्ट पेपरपर छपी ३२ पृष्ठोंकी यह पुस्तिका राजस्थानकी चित्रकला, स्थापत्य-कला, जवाहरातका काम, छपाई और रँगाईका काम तथा मीनाकारीकी कलाका संक्षेपमें परिचय करानेवाली है। इसमें छपे लेख जयपुर-रेडियोसे प्रसारित हो चुके हैं। श्री रामगोपाल विजयवर्गी जैसे उच्चस्तरीय कलाकारों तथा ज्ञाताओंने इस पुस्तकमें योग दिया है। अनेक चित्र भी इसमें हैं। राजस्थानकी जनताको अपने गौरवसे परिचित करानेमें यह पुस्तिका समर्थ होगी, ऐसी आशा है। छपाई आदि स्वच्छ है। चित्रोंकी छपाई और भी स्वच्छ हो सकती थी।

२. **'नवीन गीत'**—लेखक, पुरुषोत्तम मेनारिया तथा लक्ष्मीनारायण; मूल्य २५ न० पै०

राजस्थानमें प्रचलित पुरातन लोकप्रिय लोक-गीतोंकी धुनके आधारपर, पंचवर्षीय योजनाके कार्योंके प्रचारके लिए ये गीत बनाये गये हैं। इसमें प्रथम कविके आठ तथा द्वितीय के सात गीत हैं। भाषा सरल है तथा भाव और लयका ध्यान रखा गया है। भाषा राजस्थानी है, किन्तु गीतोंका हिन्दी-रूपान्तर भी दिया गया है। प्रयत्न स्तुत्य है। कागज आर्ट पेपर है। गेट-अप अच्छा है।

३. **'पृथ्वी-पुत्रोंकी जय-यात्रा'** (एकांकी नाटक)—लेखक, सुमनेश जोशी; मूल्य ५० न० पै०

श्रमदानके महत्वको जनतापर प्रकट करनेके लिए यह

नाटक लिखा है। लम्बे-लम्बे उपदेशात्मक संवादोंके कारण यह नाटक लोकप्रिय बन सकेगा, इसमें सन्देह है। नाटक लिखनेसे काम नहीं चलेगा, यदि इस प्रकारके नाटक खेले जायँ, तभी कुछ हो सकता है। कोमल उपदेश देनेकी शिक्षा हमें 'इप्टा' वालोंसे लेनी चाहिए।

४. **'नई रागनी'**—लेखक, श्री सुमनेश जोशी; मूल्य २५ न० पै०

आर्ट पेपरपर छपी यह पुस्तिका भी पंचवर्षीय योजना तथा निर्माण-कार्योंकी सहायताके लिए लिखी गई है। कविताएँ लय तथा गेयतासे युक्त हैं। भाव भी सरल है—कहीं-कहीं बोझिल हो गया है। 'जूझो रण जूझार' नामक कविता बहुत सुन्दर है। बँधाई अच्छी है।

उपर्युक्त सभी पुस्तकोंके कवर सुन्दर चित्रोंसे युक्त हैं। राजस्थान-सरकारके इस जन-सम्पर्कका प्रयत्न स्तुत्य है, किन्तु कहीं ऐसा न हो कि गौन अधिक गाये जायँ, काम कम हो।

'जीवी' (गुजराती भाषाका आंचलिक उपन्यास)—लेखक, पन्नालाल पटेल, अनुवादक, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'; प्रकाशक, (साहित्य अकादेमीकी ओरसे) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य रु० ४=५० न० पै०

शरत् बाबूके उपन्यासोंके समान सन्तुलित भावाधारपर निर्मित तथा आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी चित्रणसे युक्त यह गुजरातीका उपन्यास हिन्दीके वर्तमान कालमें निकलनेवाले अधिकांश उपन्यासोंसे श्रेष्ठ है। इसकी कथा (सवा वर्षकी) राजस्थान तथा गुजरातके सन्धि-स्थलके ग्रामोंकी कथा है, जिसमें लेखकने ग्रामीण वातावरणका यथातथ्य चित्रण किया है। मुख्य बात यह है कि आजके युगमें, जब कि टूटपूँजिये उपन्यासकार यथार्थवादको अश्लील चित्रणका पर्याय मान बैठते हैं, लेखकने बड़े सात्विक संयमसे काम लिया है। कानजी तथा जीवीके अनुचित सम्बन्धको लेकर अनेक घिनौनी परिस्थितियोंकी कल्पना की जा सकती थी; किन्तु लेखकने प्रेमके भावनामय रूपका ही अधिक चित्रण किया है, शारीरिकताको तो धता ही बता दी है! प्रेमका यह भावनामय चित्रण अस्वाभाविक आदर्शवादसे बोझिल होते-होते बच गया है, क्योंकि लेखककी अन्तर्दृष्टिने उसे भाव-चित्रोंकी स्वाभाविकता प्रदान कर दी है।

नापित-पुत्री जीवीके प्रथम दर्शनपर ही उसके प्रेमसे अभिभूत होकर कानजी उसकी प्राप्तिके लिए व्याकुल हो जाता है और अपने मित्रकी सहायतासे जीवीको अपने गाँव के 'गट्टे-खत्वाड' नाईके पल्ले बाँध देता है। जीवीके नैकट्य की प्राप्ति तो उसे हो जाती है, किन्तु परिस्थितिवश (आदर्शवादके कारण) वह उसके प्रेमका उपयोग नहीं कर पाता। जीवी उसके प्रेममें अपना सब-कुछ छोड़कर आती है और निराशाके कारण अन्तमें विक्षिप्त हो जाती है। उसकी इस अवस्थाको देखकर ही कानजी सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेका साहस एकत्रित कर पाता है और जीवी (जो कि अब तक विधवा हो चुकी है) को लेकर शहर चला जाता है। मनकी घुटन तथा समाजके व्यक्तिपर लगे प्रतिबन्धोंका सुन्दर चित्रण हम इस उपन्यासमें पाते हैं। कथाकी विशेषता यह है कि इसमें उप-कथा एक भी नहीं है। कहानीके ठाटके समान उपन्यासकी कथा आरम्भसे अन्त तक अपने ध्येयकी ओर द्रुतगतिसे धावित होती रहती है। उपन्यासको रोचकता का एक मूल कारण यह भी है।

अन्तर्द्वन्द्व तथा बहिर्द्वन्द्वसे पूर्ण यह उपन्यास ग्रामीण वातावरणको ही यथातथ्य चित्रित नहीं करता, अपितु गाँव-वालोंकी नस-नसमें बसी उनकी अन्ध-विश्वासी मान्यताओं, उनके लोक-गीतों, उसके सुख-दुःख, उनके 'अधिकारी-भय' तथा उनकी स्वस्थ स्वतन्त्रताकी ओर भी सुन्दर संकेत करता है।

लेखकने गाँवकी उक्तियों तथा अर्थ-चित्रोंका भी सुन्दर प्रयोग किया है—'बाँस बराबर दिन चढ़नेपर' (पृ० २२ आदिपर), 'भादोंकी बदरीली रात' (पृ० २४), 'बच्चोंवाले घरमें तो अभी काम भी नहीं निबटा होगा कि वे लोग उस महुएके निकट आ गये' (पृ० ६१)। इसके साथ-साथ शैली परम सशक्त है—'छेड़ी हुई कुमारीके रक्तवर्ण मुख-जैसा सूर्य भी क्षितिज...' (पृ० ५०)। इस प्रकारकी उल्लासकारी उपमाएँ उपन्यासमें भरी पड़ी हैं। लेखकने गाँव तथा गाँव-वालोंको समझा है और उनके मन तथा जीवनका भावपूर्ण चित्रण किया है। अनुवादकने लेखककी अनुभूतिको समझा है और उसे गुजरातीसे हिन्दीमें बड़े कौशलसे उतारा है। कमलेशजी अनुभवी साहित्यकार हैं। गुजरातीमें तो उनकी विशेष गति है। मुंशीके अनेक उपन्यासोंका वे परम सफल अनुवाद कर चुके हैं। व्रजके गाँवोंसे उनका परिचय है। इस कारण इस उपन्यासकी आत्माको वे पहचान सके हैं और उसका रूपान्तर बड़े मधुर वेशमें उन्होंने किया है। गुजराती के लोक-गीतोंका व्रजभाषा-रूपान्तर तो चार चाँद लगा देता है। अकेडमीको ऐसा योग्य रूपान्तरकार चुननेके लिए बधाई है। फिर भी निम्न सुझाव हम देते हैं, जो यदि सम्भव हो, तो अगले संस्करणमें रखे जा सकते हैं—पृ० १९७ पर 'गोंदा' के स्थानपर 'लोंदा'; पृ० १८९ पर 'मौंगरा' नहीं 'थपारी'

होना चाहिए। छापेकी ये अशुद्धियाँ निकाल दी जानी चाहिए —'तुरत' (पृ० २८); 'करहिया (पृ० ३२); 'धूला भाई' के स्थानपर 'हीरा' (पृ० ७५) होना चाहिए ; पृ० १८४ पर 'भूला' के स्थानपर 'धूला' होना चाहिए। पृ० २०० पर 'ऊँचा' के 'उँचा' होना चाहिए। हरा चना स्वयं ही 'होला' कहलाता है (पृ० ११७), केवल बैलगाड़ीके रास्तेको ही 'दगड़ा' नहीं कहा जाता (पृ० ४७)। भुट्टेकी 'छल्ली' के स्थानपर (पृ० ३२) 'छूँछ' होना चाहिए।

जितना श्रेष्ठ उपन्यास है, उतना ही उत्कृष्ट अनुवाद है। अनुवादक तथा अकाडमीको बधाई है। छपाई तथा गेट-अप सुरुचिपूर्ण, सादा और सुन्दर है। प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। आशा है, इसी कोटिके अन्य उपन्यास, अन्य प्रादेशिक भाषाओंसे भी, हिन्दीवालोंको मिलते रहेंगे। —रमेशकुमार शर्मा

'पक्षी और आकाश' (उपन्यास)—लेखक, डा० रांगेय राघव ; प्रकाशक, राजपाल एण्ड संज़, दिल्ली ; सजिल्द तिरंगा आवरण ; पृष्ठ संख्या २५१ ; मूल्य ४), प्रथम संस्करण।

प्रस्तुत उपन्यास डा० रंगिय राघवकी नवीन मौलिक कृति है। इसमें उन्होंने नियतिवादी दृष्टिकोणसे सामाजिक जीवनके आर्थिक पहलूपर विचार किया है। उपयुक्त वातावरण की सृष्टिके लिए उन्होंने बौद्ध-युगको अपनी कल्पनाका आधार बनाया है। आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व मानव-समाजके सम्मुख जो समस्याएँ थीं तथा उन्हें सुलझानेके जो प्रयत्न उज्ज्वल भविष्यकी आशामें किये गये थे, उनका दिग्दर्शन इस उपन्यासमें कल्पनाके माध्यमसे कराया गया है। प्रारम्भसे अन्त तक एक संक्षिप्त कथानक द्वारा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि मनुष्यका प्रयत्न एवं पुरुषार्थ भाग्यके आगे नगण्य है। जीवनगत सुख-दुःख नियतिके दुर्ज्ञेय विधानपर अवलम्बित हैं। मनुष्यके करनेसे कुछ नहीं होता, जो-कुछ भवितव्य है, वही होता है। भाग्य जिसके अनुकूल है, वह संसारकी समस्त शक्तियोंके प्रतिकूल होते हुए भी सफलता पाता है और भाग्य जिसके प्रतिकूल होता है, वह अपार शक्ति और साधन होनेपर भी दर-दर भटकता है तथा पग-पगपर ठोकरें खाता है।

उपन्यासमें लेखकने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि धन जागतिक जीवनकी एक ऐसी समस्या है, जिसके कारण मनुष्यके मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। इससे समस्त मानवीय सम्बन्धोंपर पानी फिर जाता है। यह स्नेह-रज्जु काटकर प्राणीको निरीह एवं निराश्रित बना देता है। यह उसीका साथ देता है, जो भाग्यशाली होता है। भाग्यका महत्त्व प्रतिपादित करता हुआ लेखक धनकुमारके शब्दोंमें कहता है—

"यह क्या भाग्य नहीं था ! जो मर गया, वह जीवित था। जिनके पास था, वे नंगे थे और सच यह सब कितना विचित्र था !"

तथा—"·· यह सब क्यों हुआ ? दैवके ही तो कारण हुआ। मुझसे छीना था सब। स्वयं सब छिन गया।"

धनको लेखकने सब पापोंका मूलाधार माना है, "धन एक पिशाच है, जो सबपर छा रहा है। वह सबपर बैठ गया है। धनके दीपकमें अधिकारकी दीपशिखा जलती है और अहंकारकी चमक फैलती है, जो सब कुछ दिखाती है, किन्तु अपने ही नीचेके अंधकारको कभी नहीं मिटा पाती। लाभ के लिए मनुष्य करता है बेईमानी। ईमानकी रोटीका अर्थ है दरिद्रता। दरिद्रताका अर्थ है पाप। उस पापका प्रतिकार है वैभव ! जो उससे भी बड़ा पाप है।"

उपन्यासमें आदिसे अन्त तक जैन-दर्शनका प्रभाव स्वीकार किया गया है। कर्म-फल उसीको देन है, जिसे लेखकने भाग्यका पर्यायवाची घोषित किया है। कथा-धारा अत्यन्त क्षीण एवं मंद है, विचार-प्रवाह विस्तृत, गम्भीर तथा तीव्र है। पुस्तकमें औपन्यासिक रोचकता है, किन्तु उससे भी अधिक उसमें है दार्शनिक विश्लेषणकी गम्भीरता, जो पाठक के मानसिक कुतूहलकी तृप्ति कम करती है, चिन्तन-प्रवृत्तिका पोषण अधिक। उनकी यह कृति सामाजिक समस्याओंपर विचार करनेवाले उस पाठकके लिए बड़े उपयोगकी वस्तु है, जो वर्तमान जगत्को अतीतकी आँखोंसे समझना चाहता है, मनोरंजनाभिलाषी सामान्य पाठककी तृप्ति इससे अधिक नहीं हो सकती। भाषामें भी गम्भीरता, तत्समता तथा साहित्यिकता अधिक है। उपन्यासका नायक स्वयं अपनी कथा कहता है और अन्तमें जीवनकी अर्थ एवं कामकी समस्याओंपर विचार करता हुआ महावीर वर्द्धमानकी शरण में मोक्ष पानेकी कामनासे चला जाता है। उपन्यासका अन्त उसी समस्यासे होता है, जो आरम्भमें सामने आई थी तथा जो अब तक जगतके सामने है। छपाई, गेट-अप सुन्दर है। —रामगोपाल शर्मा 'विनेश'

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अयोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

वार्तालाप

[श्री प्रभात नियोगी



भाग ६२, अंक ३] कलकत्ता, सितम्बर १९५८ [पूर्णांक ३६९

सम्पादकीय विचार

उत्तरी भारतमें बाढ़के कारण

बंगाल और बिहारमें तो बाढ़ोंका प्रकोप रहा ही करता था; पर अब गत २ वर्षोंसे कश्मीर, पंजाब और उत्तर-प्रदेशमें भी बाढ़का प्रकोप होने लगा है। बाढ़के इस प्रकोपकी गुरुता का अनुमान इस बातसे लगाया जाता है कि पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और पंजाबके लोग बाढ़के अभ्यस्त नहीं थे। बाढ़के कारणोंपर हम कई बार लिख चुके हैं, पर आज हम कुछ विस्तारसे बाढ़के कारणोंपर लिखना चाहते हैं। बाढ़के मूलतः दो कारण होते हैं। एक तो प्राकृतिक—उसे पाठक दैवी कोप कह सकते हैं। दूसरा मनुष्य-निर्मित कारण। हम पिछले बीस-पचीस वर्षोंसे जमीनकी कटन, भुखमरी, कृषि, गोपालन, भूमि-संरक्षणपर निरन्तर रूपसे लिख रहे हैं और जबसे सरकारकी नवीन योजना चली है, तबसे हम यह बात स्पष्ट लिखते आये हैं और कड़े शब्दोंमें सरकारकी आलोचना भी करते आये हैं कि जब तक खाद्यान्नमें देश स्वावलम्बी न होगा, तब तक सरकारकी कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती। देशकी सत्तर प्रतिशत जनता सीधे खेतीसे संबंधित है और बारह प्रतिशत दूसरी तरहसे।

इन दिनों उत्तरी भारतमें बाढ़के कारण हाहाकार मचा है। उत्तर-प्रदेशके कई जिलोंमें बाढ़ और अभावके कारण गेहूंका भाव २८) से ३०) मन तकका है। जानवरोंको चारा है ही नहीं। हम यहाँपर दैवी प्रकोपमें केवल यह बात लिखेंगे कि अपने पिछले पचपन वर्षके स्मरणके वर्षोंमें और अन्य लोगोंके ७५ वर्षकी याद्में पहली बारिश इतनी नहीं हुई, जितनी इस वर्ष हुई। पहले सूखा पड़ा, फिर लगातार २४ दिनों तक पानी बरसता रहा। फलस्वरूप अधिकांश किसान खेत बो नहीं सके। बाँध टूटे, नदियोंमें उफान आये और जल प्रलयके दृश्य उपस्थित हो गए। पर इस दैवी प्रकोपके अतिरिक्त बाढ़के मनुष्य-निर्मित कारण भी हैं। अंग्रेजी सरकारने एक मलेरिया कमीशन बैठाया था। उसकी रिपोर्टमें हमने पढ़ा था कि बंगालमें अधिक मलेरिया फैलनेका कारण रेलोंके कारण पानीका स्वाभाविक बहाव अवरुद्ध हो गया है। फलस्वरूप मच्छरोंकी पैदावार वहाँ बढ़ने लगी। पर बाढ़का मनुष्य-निर्मित कारण केवल रेलें ही नहीं हैं, वरन् पक्की सड़कें और नहरें भी हैं। हमारा मंशा यह नहीं है कि रेलोंकी लाइनें न निकाली जायँ या पक्की सड़कें न बनें; पर हमारा यह मंशा अवश्य है कि इनको इतने गलत तरीकेसे बनाया गया है कि इनसे पानीका स्वाभाविक बहाव रुक गया है। चाहिए यह कि रेलों और सड़कोंपर अधिक और चौड़ी पुलियाँ हों, ताकि पानीका स्वाभाविक मार्ग रुके नहीं। इसके अतिरिक्त सरकारकी मूर्खता और किसानोंकी स्वार्थपरताके कारण कृषिकी इतनी गलत नीति व्यवहृत होती है कि नदियोंके नीचे तक जमीन जोत दी जाती है और जब नदियोंमें पानी बढ़ता है तो जुती हुई जमीन कट जाती है और पानी सतह पर फैल जाता है। पुराने जमानेमें और मुगल काल तक तालाब-निर्माणकी परिपाटी थी। उन तालाबोंमें देहातका बहुत कुछ पानी इकट्ठा हो जाता था और बाढ़ोंमें प्रत्येक तालाबसे पूरे गाँवकी

सिंचाई होती रहती थी। अब हम अपनी सिंचाईकी समस्या को अमरीकी और रूसी तरीकोंसे ही हल करना चाहते हैं। ट्यूबवैल और नहरें ही सिंचाईका साधन बनाई जा रही हैं। हमारे मंत्रीगण, जो कि रचनात्मक कार्योंके लिए नौसिखिये ही हैं, अभी प्रयोग ही किये ही जा रहे हैं। लाखों रुपयों की बरबादीके बाद उनकी समझमें आता है कि क्या काम ठीक है। बंगाल, बिहार और कश्मीरकी बाढ़ोंको रोकनेके लिए जनता और सरकारको मिलकर नदियोंके स्रोतसे ही काम करना पड़ेगा। नदियोंके पहाड़ी और मैदानी इलाकोंमें इतने पेड़ काटे गए हैं कि पानी जो बरसता है, वह जमीनके भीतर जानेकी अपेक्षा बहकर नदियोंको भरकर बाहर फैल जाता है। पेड़ोंके कटनेसे जमीनकी कटन इतनी अधिक है कि पहाड़ोंकी जमीन कटकर नदियोंके सतहको भर रही है और उर्वरा भूमि कट-कटकर समुद्रमें जा रही है। गत द्वितीय महायुद्धमें हिमालयके जंगलोंसे इतने पेड़ काट डाले गए हैं कि जमीनकी कटन बहुत बढ़ गई है। इसलिए उत्तरी भारतकी नदियोंको यदि काबूमें करना है, तो कश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊँ और नेपालसे निकलनेवाली नदियोंके दोनों किनारोंकी रक्षा वहींसे करनी होगी। नदीकी धारसे कुछ दूरी तक कानूनन खेती बन्द कर देनी चाहिए और पेड़ लगाने चाहिए। इस प्रकार करोड़ों रुपये जो सहायतार्थ खर्च करने पड़ते हैं, वे बचेंगे, चारा बढ़ेगा और ईंधनका बाहुल्य होगा। घासका प्रत्येक पौधा, प्रत्येक पेड़ भाखरा-नंगल बाँधके समान है। आबादीके लिए भी यही कहना पड़ता है कि हमारे यहाँ शहर-कस्बे बसानेमें भी कोई नियम नहीं बरता जाता। जहाँ जिसे जगह मिली, मकान बना लेता है। हमारे यहाँ योजनायें तो बहुत है, पर उनमेंसे अधिकांश एकांगी हैं। 'टाउन प्लानिंग' ठीक नहीं होता और अधिक बारिशमें निचले भागोंवाली आबादी परेशानीमें पड़ जाती है तथा हमारी सरकारकी फूँ-फाँ तब रक्षा करनेमें बहुत होती है। हमारी सेना भी जुट जाती है। मुसीबतमें जुटना भी चाहिए, पर यह स्थिति पैदा ही क्यों की जाती है? इस वर्ष मथुरा, आगरा, अलीगढ़, एटा, बुलंदशहर आदि पश्चिमी जिलोंमें बाढ़का एक कारण यह था कि बरसाती नदियोंमें आगरेकी ओर पानी काट दिया गया। फलस्वरूप मैनपुरी, आगरा, एटाके उपजाऊ प्रदेशोंमें जलप्रलय हो गई। इसलिए इस प्रकारकी बाढ़ रोकनेके लिए पंजाब, राजस्थान और उत्तर-प्रदेशकी एक संयुक्त योजना बननी चाहिए। पूर्वी यू० पी० की बाढ़को रोकनेके लिए गंगा, जमुना, चंबल, रामगंगा, घाघरा तथा सरजू आदि नदियोंके स्रोतसे काम करना होगा। इसी प्रकार बिहारके लिए कोसी, गंडक, बागमती तथा अन्य नदियोंके स्रोतोंसे ज़मीनकी कटनको रोकना होगा और बाँध बाँधने होंगे। पर इसके अतिरिक्त बंगाल, बिहार, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, कश्मीर और राजस्थानकी एक संयुक्त योजना बननी चाहिए। हाँ, अकेली इस योजना से ही काम न चलेगा। खेतीके विषयमें भी सरकारको एक नीति निर्धारित करनी पड़ेगी। जमीनके विषयमें भी सरकारको स्पष्ट और कारगर नीति अपनानी ही पड़ेगी। बाढ़के दिनोंमें लोगोंको अन्न-कष्ट तो होता ही है, पर चारेके अभावमें किसानकी मुख्य पूँजी पशु मर जाते हैं। बाढ़में यातायात ठप हो जाता है। खाद्यान्न तो नावोंसे और हवाई जहाजोंसे पहुंचाया जा सकता है, पर चारा? स्मरन रहे, गत ५० वर्षोंसे चारेकी कमी पहलेसे ही ३५ प्रतिशत है। अतः जमीनकी नीति निर्धारित करते समय ऐसे पेड़ ही लगाने चाहिए, जो मुसीबतमें किसानोंको चारा दे सकें। हमारी बातें न किताबी हैं, न कोरी कल्पना-जगतकी। हमारे पास ५० गोधन हैं। मुसीबत के दिनोंमें बबूल और उसीके नीचेकी घाससे काम चलाते हैं। भूसा बाढ़के दिनोंमें बहुत तेज़ होता है। फिर बाढ़-पीड़ित इलाकेमें पहुंचाया भी नहीं जा सकता।

खाद्यान्न और नेहरूजी

गत २९ अगस्तका नई दिल्लीका समाचार है—लोकसभा में आज देशकी खाद्य-स्थितिपर बहसके समय हस्तक्षेप करते हुए प्रधान मंत्री नेहरूजीने कहा कि मैं अब यह अनुभव करता हूं कि कृषि-उत्पादनमें वृद्धि भारतकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण और कठिन समस्या है; एक-दो वर्ष पहले मैं इसे इतना महत्वपूर्ण नहीं समझता था। अब योजना-आयोग भी इसे देशकी सबसे अधिक आवश्यक समस्या महसूस करने लगा है। राज्य सरकारोंका ध्यान भी अब इस ओर अधिक आकर्षित किया गया है।

सदनमें आज इस विषय पर बहसके समय सभी दलोंके वक्ताओंने सरकारकी खाद्य-नीतिकी इतनी कड़ी आलोचना की कि कृषि तथा खाद्य मंत्री श्री अजितप्रसाद जैनके लिए उत्तर देना कठिन था। सदनके इस वातावरणको देखकर नेहरूजीने अचानक हस्तक्षेप किया और कहा कि यदि ७ या ८ वर्ष पहले खाद्य-समस्याओंके बारेमें मुझसे कोई प्रश्न

पूछना, तो मैं कहता कि वह महत्वपूर्ण समस्या है, लेकिन फिर भी मैं उसे कठिन समस्या नहीं कहता। खाद्य-समस्याका तात्कालिक हल आबादीमें वृद्धि रोकना नहीं, बल्कि अनाज के उत्पादनमें वृद्धि करना है। आबादीमें वृद्धिको रोकना इस समस्याका दीर्घकालीन हल है।

देश की खाद्य-समस्याके बारेमें जितने निर्णय किए गए हैं, उनका उत्तरदायित्व मंत्रिमण्डलपर है और मेरे ऊपर है। कृषि-उत्पादनमें वृद्धि करना वस्तुतः राज्य सरकारोंका उत्तरदायित्व है, लेकिन वे अपनी-अपनी ओर अधिक देखती हैं, स्वभावतः उन्हें अपने हितकी ओर अधिक देखना पड़ता है।

पूर्वी उत्तर-प्रदेश, बिहार व उड़ीसाके कुछ हिस्सोंकी हालत अधिक खराब है। वे पिछड़े हुए इलाके हैं। भारत में जितनी अधिक समस्याएँ हैं, उतनी चीनके अलावा दुनियाके किसी देशमें नहीं हैं।

बहसका उत्तर कृषि तथा खाद्य मंत्री श्री अजितप्रसाद जैन ने दिया, लेकिन वह संतोषजनक उत्तर न दे सके। मालूम होता था कि उन्हें स्वतः विश्वास नहीं है कि क्या देश अनाजके मामले में कभी स्वावलम्बी हो सकता है।

अंतमें सदनने सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसके अनुसार सरकारसे अनुरोध किया गया कि वह देशको अनाजके मामलेमें स्वावलम्बी बनानेके लिए अधिक उचित और व्यावहारिक कदम उठाए।

श्री अजितप्रसाद जैनने कहा कि मैं कोई तिथि नहीं बता सकता कि कब देश अनाजके मामलेमें स्वावलम्बी हो जायगा। देशकी यह समस्या अनाजके उत्पादनमें वृद्धि करनेसे ही हल हो सकती है।

'विशाल भारत' के पाठक जानते हैं कि शायद ही कोई महीना जाता हो, जब हम खाद्यान्न-समस्या पर कुछ न लिखते हों। उसका कारण यह है कि जब तक खाद्यान्न समस्याका हल नहीं किया जायगा, तब तक देशमें न तो कोई योजना सफल हो सकती है और न हमारे कागजी आदर्शोंपर व्यवहार ही किया जा सकता है। हमें इस बातकी खुशी नहीं है कि प्रधान मंत्री हमारी इस बातकी ताईद करते हैं कि देशकी खाद्यान्न-समस्या सर्वप्रधान और कठिन है। हमने भारत-सरकारके खाद्यान्न और कृषि मंत्री तथा आंध्र राज्यके कृषि मंत्रीको छोड़कर अन्य कृषि मंत्रियोंके विषयमें लिखा कि उनको शीघ्रातिशीघ्र अपने विभागोंसे मुक्त कर देना चाहिए और किसी जानकार कर्मठ व्यक्ति को कृषि मंत्री बनाना चाहिए। जब किसी कृषि मंत्रीको इस बातका विश्वास ही नहीं कि देश खाद्यान्नमें स्वावलम्बी हो सकता है, तो उसे कृषि विभागमें चिपकाये रहनेसे क्या लाभ? हमारे खयालसे ५-६ वर्षोंमें भारत खाद्यान्नमें स्वावलम्बी हो सकता है। पर उसके लिए तेज़ क़दम उठाना होगा और उसे राजनीतिक दलबंदीसे अलग रखना होगा। कहने को तो सब कह देते हैं, पर व्यवहारमें ऊपरसे लगाकर नीचे जिला-परिषदों और कांग्रेस-मंडलों तक राजनीति ही बरती जाती है। कांग्रेस-विरोधी अन्य दल तक खाद्यान्न-संकट-जन्य परिस्थितिका लाभ उठाकर सत्ता हथियानेकी चिंतामें रहते हैं। कितने एम० पी०, एम० एम० ए० और एम० एल० सी० खेती करते हैं? एक नई बिरादरी इन लोगोंकी क़ायम हो गई है, जिनका काम बहस करना और किसानोंपर रौब गाँठना है। हमें खुशी इस बातकी है कि नेहरूजी यह मानते हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारोंकी बड़ी भारी जिम्मेदारी खाद्यान्नकी कमीके बारेमें है। पर केवल यूलनो मानने से ही काम न चलेगा। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जो कम्यूनिटी प्रोजेक्ट और द्वितीय पंचवर्षीय योजना चल रही है, उसका देहात सम्बन्धी दृष्टिकोण ठीक नहीं है। उसके लिए जो शासन-सूत्र बनाया गया है, वह भी बड़ा दोषपूर्ण है तथा उसमें भी राजनैतिक रूप है। कम्यूनिटी प्रोजेक्टमें एक साथ इतनी चीजें ले ली गई हैं कि काम निभ नहीं रहा है। यदि हीरेके आप कई टुकड़े करके बेचें, तो उन सबका मूल्य बड़े हीरे के बराबर नहीं होगा। कृषि, पशु-पालन, साग-सब्जी और फलोंके विकासपर ही ध्यान देना चाहिए। करोड़ों रुपयोंका व्यय जो गल्ला मँगाने और बेचनेमें होता है, उसके एक अंशसे किसानोंको बढ़िया खाद, आबपाशीके साधन और बढ़िया बीज उपलब्ध होने चाहिए। पतलूनोंमें घुसे बाबू लोग, जिन्हें खेती और देहातसे कोई सम्बन्ध नहीं, गाँवोंमें रौब गाँठते हैं। किसानको अपने मालकी बिक्री और ऊँची क़ीमतपर बढ़िया बीज देनेका तथा साग-सब्जी बेचनेका उचित प्रबन्ध हो, तो भारतीय किसान सब कुछ कर सकता है। प्रति एकड़की उपजमें भारतीय किसान किसी भी देशके किसानसे पीछे नहीं है। पर उसके सामने योजनाओंकी मरु-मरीचिका रख दी जाती है। समाज-कल्याण, हरिजन-उद्धार महिला-मंडल तथा अन्य इस समय फ़ज़ूलकी बातोंको उसके ऊपर थोपा जाता है। हम यह नहीं कहते कि कम्यूनिटी प्रोजेक्ट बुरी

चीज़ है, पर हमारा यह दावा है कि जितना रुपया वहाँ लगाया जाना है, उसके अनुपातसे खाद्यान्नकी वृद्धि कुछ भी नहीं होनी। जिन इलाकोंमें कम्यूनिटी प्रजेक्ट नहीं है, वहाँ कम्यूनिटी प्रोजेक्ट इलाकोंसे कम खाद्यान्न नहीं होना। कम्यूनिटी प्रोजेक्टका अर्थ यह तो नहीं है कि देहातियोंके मत्थे मढ़कर बेकारोंको रोज़गार दिया जाय। पहले ग्राम-सेवकको अच्छी और लम्बी शिक्षा होनी चाहिए और खाद्यान्नपर ही सबसे अधिक रुपया खर्च होना चाहिए। हम यहाँ द्वितीय पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी कृषिकी नीतिके सम्बन्धमें विस्तारसे नहीं लिख रहे। पर यह हमने संकेत कर दिया है कि वह नीति गलत है। हमें आशा है कि भारत सरकार और राज्योंकी सरकारें खाद्यान्नके यथेष्ट उत्पादनके लिए अपनी कृषि सम्बन्धी नीतिमें परिवर्त्तन करेंगी और ईंधन, चारा, अन्न, फल, साग-सब्ज़ीपर पूरे तौरसे ध्यान दिया जायगा। प्रत्येक ज़िलेमें रजिस्टर्ड बढ़िया काश्तकार होने चाहिए। बड़े-बड़े शहरोंमें जो खाद चुंगियाँ बनानी हैं, उसको सड़कोंके किनारेवाले दूरके काश्तकारोंको बिना यातायातके खर्चेमें देना चाहिए और खादके मूल्यमें बौंड लिखाकर गल्ला खरीदना चाहिए।

नेहरूजीकी आवाज

गत १५ अगस्तको स्वतंत्रता दिवसके अवसरपर लाल-किलेकी प्राचीरसे प्रधान-मंत्री पं० नेहरूका भाषण हमने रेडियोपर सुना। हमें उनकी आवाज सुनकर बड़ा क्लेश हुआ। उस आवाज़में न युवकोंकी-सी तेज़ी थी और न वह उत्साह था, जो नेहरूजीके ऐसे अवसरोंके भाषणमें होता था। वह आवाज़ एक थके, बूढ़े और परेशान नेताकी-सी थी। उस आवाज़में सफलताओंके गर्वकी बात न थी, वरन् विपमताओंसे पीड़ित आत्माकी आवाज़ थी। यह ठीक है कि नेहरूजीकी आयु सत्तर वर्षके करीब है, पर अहमद बादकी घटनाओं, देशकी फूट तथा पाकिस्तानसे विषैले सम्बन्धोंके कारण आवाज़में वेदना थी। उनके भाषणसे हम सहमत हैं और पाठकोंसे हमारा आग्रह है कि वे उसपर विचार करें। हम किसी दलके व्यक्ति नहीं हैं। हम नेहरूजीकी ईमानदारी, सद्भावना और विद्वत्ता के कायल हैं। हाँ, यदि वे अधिक भाषणोंसे बच सकें और विदेशी समस्याओंमें अधिक समय देनेकी अपेक्षा देशकी समस्याओंपर उस समयको विचारनेमें निकालें, तो देशका अधिक कल्याण हो। गत १५ अगस्तको नेहरूजीने लाल किले से जो भाषण दिया था, वह इस प्रकार है—"आज फिर हमारी आज़ादीकी ११वीं साल-गिरह है और हम उसे मनाने यहाँ जमा हुए हैं। मुबारक हो आपको आजका दिन। आप और हम यहाँ किस लिए आए हैं? ग्यारह साल पहले इस किलेपर क़ौमी झंडा फहराया था। वह खास दिन था। उस दिन हमारा मुल्क आज़ाद हुआ। जिस शांतिसे हमारा मुल्क आज़ाद हुआ, वह भी अनोखी मिसाल हो गई। उसके बादके ११ वर्ष कशमकशके रहे, परेशानीके रहे। शुरूमें ही जिस दिन यह झंडा उठा, दिल खुशीसे भरा था, लेकिन वह दिन ढलने नहीं पाया था कि दूसरी खबर आई कि आपसमें खूब झगड़ा हो रहा है। हम शान करते थे कि अहिंसासे आज़ादी ली, लेकिन खबर मिली कि भाई भाईको मार रहे हैं। वह झगड़ा-फसाद दिल्ली शहर तक फैला। उस दिन सवेरे फतह की निशानी थी और शामको हारकी निशानी थी। हार दुश्मनसे नहीं, अपने ही आदमियोंसे हुई। हमने शेरका मुकाबला किया और पीछेसे आकर साँपने काटा। इसीलिए मैं आजके दिन फिर याद दिला रहा हूं कि फिर भी साँप पीछेसे आ रहे हैं और काट रहे हैं। हमें अधिक सतर्क रहनेकी आवश्यकता है।

हम यहाँ पुराने ज़मानेकी तरफ देखने आये हैं, हम भविष्यकी भी तस्वीर देखना चाहते हैं। स्वराज्यकी यात्रा बन्द हुई, लेकिन उससे बड़ी सफर शुरू हो गई। इस सफर का ध्येय यह है कि लोगोंकी मुसीबतें कम हों, जरूरी चीजें मिलें। हम खुशहाल हों, मुल्ककी तरक्की करें। जिस रास्तेमें हम चले, हजार मुसीबतें आईं, कभी बारिश इतनी हो कि सम्हालना मुश्किल, कभी बारिश नहीं, तो हालत उससे भी बदतर। किस तरह मुल्कने इन सबका सामना किया। मुल्कपर कितनी मुसीबतें आईं, इसकी एक लम्बी कहानी है; लेकिन सिर नहीं झुका। मुसीबतमें परख होती है, मुसीबतों से हम कई बातें सीखते रहे, मुसीबतोंसे हमें सबक सीखना चाहिए कि हम किस तरह मिलकर काम करें। मुसीबतोंसे घबरानेकी जरूरी नहीं है। लेकिन जब आपसमें फूट हो, तब वह सबसे अधिक खतरनाक है। हमारे यहाँ आपसमें फूट हो, तो उसके क्या मायने हैं, क्या हम गांधीजीको भूल गये, अपने भविष्यको भूल गये, बच्चोंको भूल गये, किस बातके लिए झगड़ा-फसाद करते हैं। हिन्दुस्तानके हिस्सेमें झगड़ा-फसाद करते हैं, जलाते हैं और मारते हैं।

मैं किसीको भला-बुरा कहने नहीं खड़ा हुआ हूं, किसी एक दलकी ओरसे कहने नहीं खड़ा हुआ हूं। मैं आपसे

और यहाँके रहनेवालोंसे दरख्वास्त करता हूँ कि हमारा कर्तव्य आपसमें मिलकर शान्तिसे काम करना हो, तभी हमें अपने कठिन कार्यमें सफलता मिल सकती है। अगर हमारी रायमें फर्क हो तो एक-दूसरेको समझायें। हमने पंचशीलकी आवाज उठाई, लेकिन हमारे मुल्कमें जो हो रहा है, उससे सिर झुक जाता है। मेरी आपसे दरख्वास्त है कि आप लोग सवालोंपर गौर करें और अपने-आपको सम्हालें। अगर हम आपसमें झगड़ा करते रहते हैं, तो न आजादी रह सकती है, न समाजवाद, न प्रजातन्त्रवाद। अगर हम आपसमें लड़ते रहे, तो हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। दुनियामें अब बड़ी-बड़ी ताकतें हैं, लेकिन उनमें बनानेकी ताकत नहीं, बिगाड़नेकी ताकत है। आप जानते हैं कि दुनियाकी हालत खतरनाक है। बड़ी-बड़ी ताकतें पश्चिम एशियामें हथियार लेकर खड़ी हैं। मैं आशा करता हूं कि वहाँके मसले शान्तिसे हल हो जायेंगे और वहाँके लोग आजादीसे रह सकेंगे।

दुनियामें हिन्दुस्तानकी कुछ वकत है। हिन्दुस्तान एक समझदार मुल्क समझा जाता है, दानिशमन्द मुल्क समझा जाता है। यह कहाँ तक सही है और कहाँ तक गलत है। सही है, क्योंकि गांधीजीके जमानेमें हिन्दुस्तानने अहिंसाकी मिसालें दीं। गलत है, क्योंकि अब कई हिस्सेमें भाई भाईको मार रहे हैं, आग लगा रहे हैं आदि। गुजरातके लोगोंने क्या किया। जहाँ गांधीजीने सबसे अधिक सबक सिखाया, जहाँके लोग देशके अगुवा समझे जाते हैं, उन लोगोंने क्या किया। क्या बात है? किसी फैसलेमें उनका ताल्लुक नहीं है। हरएक व्यक्तिको आजादी है अपनी राय रखनेकी, लेकिन किसीको अख्तियार नहीं है कि जबरदस्तीसे दूसरोंकी राय बदलनेकी कोशिश करें व धमकी दें। यह सबसे बड़ी कमजोरी है, अपनी कमजोरियोंसे हम खाईमें गिरेंगे।

हमारे नौजवान अच्छे हैं, हिन्दुस्तानके चमकते हुए भविष्यका वे ही बोझ उठायेंगे, लेकिन वे भी बहक जाते हैं और छोटे-छोटे झगड़ोंमें पड़ जाते हैं। देशके सामने बड़े-बड़े सवाल हैं, खासकर नौजवानोंको उनपर सोचना चाहिए। जाहिर है कि हजारों मुसीबतोंका सामनाकर यहाँ पहुंचे हैं, जहाँ हम आज हैं। हमें काम हिम्मतसे जारी रखना है, चाहे कितनी भी मुसीबतें आयें। हमें कमजोरियोंको निकाल कर फेंक देना है।

आपको और मुल्ककी जो शिकायतें हैं, सही हैं और गलत भी हैं। देशमें अकाल पड़ा, चीजोंके दाम बढ़े, मुसीबतें आईं; आपकी शिकायत जायज है। यह भी शिकायत है कि देशमें जब ऐसी मुसीबतें हैं, तब भी व्यापारी लोग बहुत ज्यादा फायदा उठाते हैं। बजाय इसके कि मदद करें, आप लोगोंका बोझा बढ़ाते हैं, चोरबाजारी करते हैं। आपकी शिकायतें सही हैं। वे लोग कमजोरी दिखाते हैं, गद्दारी करते हैं। इसका नतीजा उनपर और मुल्कपर क्या होगा?

आप चाहे कन्याकुमारीके हों, या काश्मीरके हों, या गुजरातके हों, असल बात यह है कि आप हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तानके नागरिक हैं। जो हिन्दुस्तानकी एकताको बाधा पहुंचायेगा, उसे कभी बर्दाश्त नहीं किया जायगा, चाहे वह देशका हो या विदेशका। देशकी एकता सबसे बड़ी चीज है। हम गफलतमें पड़कर इस सबसे बड़ी बातको कभी कभी भूल जाते हैं।

यह किला गुलामीकी निशानी था। अब आजादीकी निशानी है। हमने इसी किलेपर १५ अगस्त सन् १९४७ में क्या प्रतिज्ञा ली, उसे आप न भूलें। उस प्रतिज्ञाको पूरा करनेके लिए हम यहाँ सालमें एक बार आजके दिन एकत्र होते हैं। हम याद करें गांधीजीको, जो आजादीके स्तम्भ हैं। उनके काम कहानी नहीं, सबकनामा हैं। गांधीजीने देशको खड़ा किया, आजाद किया और इसीके लिए उन्होंने अपनी जान निछावर कर दी।"

गोविन्दसागरको खतरा

गत मास 'स्टेट्समैन' के एक प्रतिनिधिने 'स्टेटसमैन' में लिखा है—"यदि शीघ्र ही हिमाचल प्रदेशके सूखे पहाड़ोंपर वन न लगाये गये, तो कुछ ही वर्षोंके अन्दर भाखरा बाँधपर बनाया गया करोड़ों रुपयेका गोविन्दसागर बाँध मिट्टीसे भर जायगा।'

'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधिका कथन है कि "सतलजका क्षेत्र निब्बनको सीमासे लेकर बिलासपुर, मंडी व सुकेत तक है, जो आज नंगा पर्वतमाला-क्षेत्र बन गया है। वन काट डाले गये हैं। यह पर्वतमाला भारी वर्षाके कारण कट-कटकर गिर रही है, जिससे ऐतिहासिक चम्पानगरके नष्ट हो जाने का खतरा है। यदि पर्वतमालाओंको फिरसे हरा-भरा कर दिया जाय, तो नदियोंमें आनेवाली बाढ़ भी काफी कम हो जाय।"

हमने अपनी बाढ़-सम्बन्धी टिप्पणीमें इसी बातकी चर्चा की है। हम जानते हैं कि भारत-सरकार और राज्योंको

सरकारोंके लिए हमारी आवाज नक्कारखानेमें तूतीके समान है। पर हमें आशा है कि पाठक हमारे सुझावोंपर विचार करेंगे और भारत-सरकार तथा राज्योंकी सरकारोंको जमीन की कटन और बाढ़ रोकनेके लिए वैज्ञानिक ढंगसे वृक्षारोपण के लिए बाध्य करेंगे। 'स्टेट्समैन'के प्रतिनिधिने गोविन्द-सागरके लिए जो गम्भीर चेतावनी दी है, उससे हमारे सत्ताधारी चेतेंगे और स्वतन्त्र भारतके गर्व—भाखरा-नंगल बाँध और गोविन्दसागर—को नष्ट होनेसे बचायेंगे।

नागा और पाकिस्तान

पाठक यह जानते हैं कि हमारे देशके विरोधी तत्वोंको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सहायता देनेमें पाकिस्तान हमेशा तैयार रहता है। यह हम जानते हैं कि हिमायतीको गधी ऐरावतके भी लात मारती है। पर न तो भारत ऐरावत है और न ही पाकिस्तान गधी। हाँ, उसके हिमायती अवश्य हैं और समझते हुए भी हम यह लिखते हैं कि हमारी समझमें नहीं आता कि अमरीका और ब्रिटेनका पिट्ठू होते हुए भी पाकिस्तानकी ओरसे भारतके विरुद्ध युद्ध और युद्धकी बातें क्यों कही जाती हैं? पाकिस्तानके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मियाँ सोहरवर्दीने भी भारतसे युद्धकी बात कही है। पाकिस्तानके अन्य नेताओंने भी यही बात दुहराई है। भारतके विरुद्ध गोआसे साँठ-गाँठ करनेमें पाकिस्तान चूका नहीं। लोगोंका अनुमान था कि नागाओंको पाकिस्तान सहायता देनेका इच्छुक था और वह चाहता था कि नागा लोग अपने क्षेत्रको पाकिस्तानमें मिलानेकी माँग रखें। गत २१ अगस्तको लोकसभामें असमके विद्रोही नागाओंके विषय में अनेक प्रश्न पूछे गये। प्रश्नोंके उत्तरमें गृहमन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्तने बताया—"विद्रोही नागा डाली नामीके पाससे जो कागजात पकड़े गये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि विद्रोही नागा पाकिस्तानसे सहायता प्राप्त करना चाहते थे और उनका सम्पर्क शिलांग-स्थित पाक डिप्टी हाई कमिश्नरसे था। भारत-सरकारके अनुरोधपर पाक सरकारने इन डिप्टी हाई कमिश्नरको वापस बुला लिया है।" उन्होंने यह भी कहा कि यह बताना कठिन है कि विद्रोही नागाओंकी संख्या कितनी है, क्योंकि वे अधिकतर छिपे रहते हैं; परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी संख्या कम अवश्य हो रही है। सरकार उनकी सरगर्मियोंपर निगाह रखे हुए है।

उज़बेक भाषामें भारतीय फिल्म

गत १९ अगस्तके सोवियत संघके 'विचार और समाचार' में प्रकाशित रूसी समाचार एजेन्सी 'तास'का गत १२ अगस्तका ताशकंदका समाचार है :—

"'नौकरी', 'मिर्ज़ा ग़ालिब', 'बंजारेवाली' और 'श्री चार सौ बीस'—इन चार फिल्मोंका ताशकंत-फिल्म स्टुडियोमें उज़बेक भाषामें रूपान्तर हुआ है। ये फिल्में वहाँके सिनेमा-प्रेमियों को बहुत पसन्द हैं। अफ्रीकी-एशियाई लेखक-सम्मेलनके अवसरपर उज़बेकिस्तानके सिनेमाघरोंमें अच्छी-से अच्छी भारतीय फिल्में दिखाई जायँगी।"

सोवियत रूस भारतीय फिल्मों और पुस्तकोंके अनुवाद का कार्य जिस तेजीसे कर रहा है, उस गतिसे पश्चिमी राष्ट्रों का अन्य कोई राष्ट्र नहीं कर रहा। पारस्परिक सद्भावना उत्पन्न करनेके अतिरिक्त नैतिक सहानुभूति बढ़ानेके लिए इससे अच्छा और कोई मार्ग नहीं है।

सोवियत स्कूल और हिन्दी-उर्दूकी पाठ्य पुस्तकें

सोवियत संघके 'विचार और समाचार'में श्री एन० शुस्कोका निम्नांकित सूक्ष्म लेख छपा है :—

मास्को और लेनिनग्राद के कुछ स्कूलोंके पाठ्य-क्रममें पिछले कुछ वर्षोंसे हिन्दी और उर्दू भाषायें शामिल की गई हैं। ताशकंत, समरकन्द, बुखारा तथा अन्य मध्य एशियाई शहरोंमें भी अब ये भाषायें पढ़ाई जा रही हैं। लेनिन मध्य एशिया विश्वविद्यालयके प्राच्य विद्या-संस्थानके शिक्षकोंने पाठ्य-पुस्तककी रचना आरम्भ कर दी। इस कार्यमें उन्हें उज़बेकिस्तान और कज़ाखस्तानके विशेषज्ञोंसे तथा मास्को-प्राच्य विद्या-संस्थानके विशेषज्ञोंसे बहुत सहायता मिली।

इसके बाद शीघ्र ही प्रथम वर्षके लिए हिन्दी भाषाकी पाठ्य-पुस्तक ताशकंतके पाठ्य-पुस्तक प्रकाशनगृहने प्रकाशित की। सोवियत संघमें पहली बार इस तरहकी पुस्तक प्रकाशित हुई है। यह सही है कि किसी समय मास्कोके विदेशी साहित्य प्रकाशनगृहने अकादमिशियन बरान्निकोव लिखित हिन्दुस्तानी पाठ्य-पुस्तक (हिन्दी और उर्दू) प्रकाशित की थी, किन्तु यह पुस्तक उच्च शिक्षा-संस्थानोंके छात्रोंके लिए थी और इसका प्रयोग प्राथमिक स्कूलमें नहीं किया जा सकता था।

हालमें मध्य एशिया विश्वविद्यालयके प्राच्य-विद्या-संस्थान

के शिक्षकोंने दूसरे वर्षके उर्दू छात्रोंके लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार की हैं।

श्री कामताप्रसाद गुरुके "हिन्दी व्याकरण" का रूसी अनुवाद भारतीय भाषाओंका अध्ययन करनेमें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। व्याकरणका रूसी-संस्करण दो भागोंमें विभाजित है। प्रथम भागमें भूमिका, ध्वनिशास्त्र, शब्द रूप गठन, शब्द साधन, शब्दोंका वर्गीकरण है।

प्रथम भाग कबका प्रकाशित हो चुका और इसकी प्रतियां भी कुछ ही दिनोंमें हाथोंहाथ बिक गईं। इसमें शब्द-निर्माण, वाक्य-रचना तथा काव्यगत भाषा-प्रयोगके ऊपर एक अलग परिच्छेद है।

कामताप्रसाद गुरुका "हिन्दी व्याकरण" भाषा-विज्ञान की दृष्टिसे अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक है और हिन्दी भाषाके क्रमिक विकासकी रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें समृद्ध सामग्रियोंसे भरा है। यह पुस्तक सोवियत भाषा-विज्ञान-विदों और सोवियत विशेषज्ञोंके लिए सामान्यतया अत्यन्त उपयोगी है।

निकट भविष्यमें मास्कोमें न केवल भारतकी भाषाओंका अध्ययन करनेवाले सोवियत नागरिकोंके लिए, वरन् ऐसे भारतवासियोंके लिए जो रूसी भाषाएँ नहीं जानते, पुस्तकें मुद्रित होंगी। साहित्य-प्रकाशनगृह शीघ्र ही हिन्दी-रूसी मुहाविरोंकी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करेगा।

हमें यह लिखते हर्ष होता है कि स्व० श्री कामता प्रसाद गुरु द्वारा रचित 'हिन्दी व्याकरण'का श्री वरान्निकोवने रूसी रूपान्तर किया है। 'हिन्दी व्याकरण' का अनुवाद करनेमें श्री वरान्निकोवने अथक परिश्रम किया और उस विषयमें भारतके कई स्थानोंकी यात्रा भी की।

अमरीकाकी छः सूत्रीय योजना

गत १३ अगस्तको राष्ट्रपति आइज़नहावरने संयुक्त राष्ट्रिय महासभाके विशेष अधिवेशनमें पश्चिमी एशियाके संबंधमें शांति स्थापनाके लिए भाषण देते हुए एक छः सूत्रीय कार्यक्रमका सुझाव दिया। उसके अनुसार :—

१- लेबनानमें संयुक्तराष्ट्र संघकी दिलचस्पी, २- जोर्डनमें शांति कायम रखनेकी दिशामें संयुक्तराष्ट्र संघ द्वारा उचित कार्रवाई, ३- बाहरी शक्तियों द्वारा गृहयुद्ध या विद्रोह भड़काने की नीतिका परित्याग, ४- संयुक्तराष्ट्र-संघीय शांति-सेनाका निर्माण, ५- प्रादेशिक विकास कार्यक्रम तथा ६- शस्त्रास्त्रोंकी होड़ समाप्त करनेकी दिशामें प्रभावशाली कार्रवाई।

मध्यपूर्वमें धीरे-धीरे अमरीकी और अंग्रेजी प्रभाव घट रहा है। राष्ट्रपति आइज़नहावरके भाषण और प्रोगामका विरोध रूस और रूसी गुटने किया और पश्चिमी देशोंके सात राष्ट्रोंका एक प्रस्ताव मध्यपूर्वके लिए तैयार किया गया। पर इस बीच अरब राष्ट्रोंमें ऐसी खलबली मची कि जोर्डन, लेबनान तथा सऊदी अरबको ऐसा प्रतीत हुआ कि ऐन मौकेपर अमरीकी मददसे काम न चलेगा, इसलिए अरब लीगके तत्वावधानमें अरब राष्ट्रोंकी ओरसे संयुक्त राष्ट्र परिषदमें एक विशेष प्रस्ताव पेश किया गया।

मध्यपूर्व संबंधी अरब देशोंका प्रस्ताव

गत २२ अगस्तको संयुक्त राष्ट्र महासभाके आपत-कालीन अधिवेशनने आज सुबह मध्यपूर्वपर अरब देशोंका जो प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास किया है, उसमें इन देशोंने पंच-शीलके सिद्धान्तोंपर दृढ़तासे चलनेका वचन दिया है।

प्रस्तावको ईरान, लेबनान, मोरक्को, सऊदी अरब, सूडान, ट्यूनिशिया, संयुक्त अरब गणराज्य, यमन, लीबिया व जोर्डनकी ओरसे रखा गया था और उसपर अरब लीगकी बैठकमें विचार कर लिया गया था।

प्रस्तावमें इस बातका वचन दिया गया है कि वे प्रत्येक देशकी स्वतंत्रता, अखंडता व प्रभुसत्ताका सम्मान करेंगे, आपसी सम्बन्ध दृढ करेंगे और ऐसी नीतिपर चलेंगे, जिससे अंतरराष्ट्रीय तनाव कम हो।

प्रस्तावमें आगे कहा गया है कि संयुक्तराष्ट्र महासभा अरब देशोंके इस आश्वासनका स्वागत करती है कि वे अरब लीगके संविधानकी आठवीं धाराका पूरी तरह पालन करेंगे। इस धारामें कहा गया है कि लीगका प्रत्येक सदस्य देश अपने साथी देशोंकी प्रशासन-पद्धतिका सम्मान करेगा और उसमें कोई हस्तक्षेप न करेगा और कोई ऐसा प्रयत्न न करेगा, जिसका उद्देश्य इस पद्धतिमें परिवर्तन करना हो।

प्रस्तावमें अन्तमें सेक्रेटरी जनरलसे कहा गया कि वह ऐसी व्यवस्था करें, जिससे कि लेबनान व जोर्डनसे विदेशी सेनाओंका हटना शीघ्र संभव हो सके। साथ ही अरब देशोंकी आर्थिक सहायताके कार्यक्रमपर भी विचार-विमर्श करें और अपनी प्रथम रिपोर्ट ३० सितम्बर तक दे दें।

उक्त प्रस्तावका लेबनानके राजनीतिक नेताओं ने स्वागत किया है। विरोधी दलके नेता श्री साहेब सलामने एक बयानमें कहा है कि मध्यपूर्वमें झगड़ेकी जड़ विदेशी हस्तक्षेप है। यदि

यह बंद हो जाय तो सारे अरब देश मिलकर ऐसा समझौता कर लेंगे, जो प्रत्येककी स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता व अखंडताकी गारण्टी होगी।

उपयुक्त प्रस्ताव संयुक्तराष्ट्र सहासभाके आपतकालीन अधिवेशनमें सर्वसम्मतिसे पास हुआ। जिस ढंगसे संयुक्तराष्ट्र संघके अधिवेशन में घटनाचक्र घटा, वह बड़ा ही आश्चर्यजनक है। विश्वके सब ही राष्ट्रोंका ध्यान इस अधिवेशनकी तरफ था और अनुमान यह था कि अधिवेशनमें सप्त देशोंका वह प्रस्ताव, जिसको अमरीका और इंग्लैंडका समर्थक प्राप्त था, पास हो जायगा। पर मध्यपूर्वके अरब राष्ट्रों और अफ्रीकाके राष्ट्रोंने मिलकर जादू-सा कर दिया। आश्चर्य तो यह है कि इस प्रस्तावसे अमरिका और इंग्लैंड भी प्रसन्न हैं। इस प्रस्ताव के पास होनेसे हमारे मनसे रूस और मिस्रकी विजय हुई है। राष्ट्रपति आइजनहावरने मध्यपूर्वके लिए एक छः सूत्रीय प्रोग्राम रखा था। छः सूत्रीय प्रोग्रामको हम अगली टिप्पणी में देंगे, ताकि पाठकोंको उपर्युक्त अधिवेशनके पूर्वपृष्ठका पता चल जाय। उपर्युक्त प्रस्तावके पास होनेसे लेबनान और जोर्डनसे अमरीकी और ब्रिटिश सेनायें हटेंगी। हमारे खयाल से अरब राष्ट्रोंको इज़राइलसे बहुत डर है और इराकके खूनी क्रांतिसे उन्हें यह पता चल गया कि वास्तविक शक्ति विदेशी सहायताकी अपेक्षा स्वावलम्बनमें है। हमारे अनुमानसे जोर्डन और लेबनानकी वर्तमान सरकारोंको अपने ही देश-वासियोंसे खतरा बना रहेगा और उपर्युक्त प्रस्तावमें निहित भावनाके होनेपर भी यथासमय बाहरी सहायतासे उलटफेर होते रहेंगे। मूल कारण यह है कि इज़राइलको छोड़कर अन्य अरब राष्ट्रोंमें जनताका प्रतिनिधित्व नहीं है। यदि शासन-सूत्रका अब कहीं परिवर्त्तन होगा, तो सऊदी अरब और जोर्डनमें होगा। लेबनानकी स्थिति भी खतरेसे खाली नहीं है। अरब राष्ट्रोंकी भारी भूल यह है कि वे इज़राइलको मान्यता नहीं दे रहे। यदि वे इज़राइलको मान्यता दे दें, तो उनके प्रति उपी छुरी मौथरी हो जाय। अरब राष्ट्रों द्वारा इज़राइलको मान्यता न देना ठीक वैसे ही है, जैसे वर्त्तमान ईराक सरकारको अन्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता न मिलना। विश्व के लगभग सब ही राष्ट्रों द्वारा ईराकको मान्यता मिल गई है, पर इज़राइलको अरब राष्ट्रों द्वारा अभी तक मान्यता नहीं मिली। यह हमारे खयालसे एक राजनैतिक भूल और अंतर्राष्ट्रिय अनैतिकता है। अस्तु, मध्यपूर्वके ऊपर जो महा-युद्धके बादल मँडरा रहे थे, वे इस प्रस्तावसे एक प्रकारसे हट गए हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि महायुद्धकी आशंका बहुत-कुछ टल गई है।

महायुद्धका नया केन्द्रबिन्दु—

मध्यपूर्वसे हटकर महायुद्धका केन्द्रबिन्दु सुदूरपूर्वकी ओर आ गया है। शायद श्री ख्रुश्चेव और चीनके श्री माओत्सेतुंग की गुप्त वार्ताका यह फल है। मध्यपूर्वमें अमरीकाका प्राधान्य बढ़ रहा था, इसलिए चीनने फारमूसाकी ओर अपनी वायुसेना लगा दी और फारमूसा अधीन क्यूमोय टापू पर भयंकर गोलाबारी की। अमरीकाके विदेश मंत्री श्री डलेसने चेतावनी दी है कि फारमूसापर आक्रमण एक भयंकर भूल होगी। फारमूसा-स्थित अमरीकी सेना और राष्ट्रिय चीनकी सेना काफी सतर्क है। साथ ही अमरीकाका प्रशान्त महासागर-स्थित सातवाँ जहाजी बेड़ा उसी भाँति सतर्क कर दिया गया है, जिस भाँति भूमध्यसागर-स्थित अमरीकी छठा जहाजी बेड़ा लेबनानकी बिगड़ती स्थितिके समय सतर्क कर दिया गया था।

हिन्दी-सत्याग्रहके सम्बन्धमें

कुछ मास पूर्व, पंजाबकी हिन्दी-समस्याको लेकर हिन्दी-सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया था। प्रारम्भ करनेसे पूर्व हिन्दीके नेताओं और साहित्यकारोंकी कोई अनुमति या सम्मति नहीं ली गई। देशमें भावुक भक्तोंकी कमी नहीं है। हिन्दीके नामपर सैकड़ों नहीं, सहस्रों नर-नारी 'सत्याग्रही' के रूपमें जेल चले गये। कारागारकी कठोर यन्त्रणाएँ सही और कितने ही लोगोंको तो अपने प्राणों तककी आहुतियाँ देनी पड़ीं। इस आन्दोलनमें न धनकी कमी रही और न जनकी। यह आन्दोलन अपने यौवनपर था कि इतनेमें ही हिन्दी-रक्षा-समितिके प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्तका वार्तालाप, गृहमन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्तसे हुआ और आन्दोलन सहसा 'स्थगित' या बन्द कर दिया गया। हम उसे 'स्थगित' नहीं, बन्द ही करना कहेंगे; क्योंकि आन्दोलनकारियोंने इसे अपनी 'पूर्ण विजय' कहकर पुकारा। बड़े-बड़े विजयोत्सव मनाये गये और लम्बे-लम्बे जुलूस निकाले गये। अगर आन्दोलन को सफलता न प्राप्त हुई होती, तो यह सब-कुछ क्यों होता? आश्चर्य तो हमें इस बातपर हुआ कि इन 'विजयोत्सवों' के कुछ ही दिनों बाद आन्दोलनकारी यह कहने लगे कि हमने तो 'सत्याग्रह' स्थगित किया था, यदि हमारी माँगें पूरी नहीं हुईं तो सत्याग्रह फिर होगा! ऐसी दशामें इन आन्दोलन-कारियोंसे पूछा जा सकता है कि यदि आपकी माँगें पूरी

नहीं हुई थीं, तो 'पूर्ण विजय'का ढोल क्यों पीटा गया और विजयोत्सव क्यों मनाये गये ? यदि पंतजीने कुछ आशाजनक वचन दिये थे, तो वे क्या थे, जब कि पन्तजीने किसी प्रकारके वचन देनेसे संसदमें साफ इन्कार किया है। फिर केवल वचन-दानका नाम 'पूर्ण विजय' कैसे कहा जा सकता है, जैसा कि आन्दोलनकारियोंने घोषित किया। 'पूर्ण विजय' के पश्चात् वह कौन-सी बात रह गई, जिसके लिए सत्याग्रह की पुनरावृत्तिके विचार प्रकट किये जा रहे हैं ?—जो हो।

हमने तो इस हिन्दी-सत्याग्रहकी समीचीनता कभी स्वीकार नहीं की और इस विषयपर, इन स्तम्भोंमें, अपने स्पष्ट विचार भी प्रकट किये। हमें तो बड़ा आश्चर्य था कि जो हिन्दी सारे देशकी राष्ट्रभाषा है, उसके सेवक, शुभचिन्तक और समर्थक कुछ लोग ही कैसे हो सकते हैं! ऐसे सेवक और समर्थक कि सत्याग्रह आरम्भ करनेसे पूर्व किसी हिन्दी संस्था, नेता या विद्वानकी अनुमति या सहमति प्राप्त करना भी पसन्द नहीं करते। फिर एक बात और कि पंजाबके जिन शिक्षणालयोंमें हिन्दीपर अत्याचार हुआ बताया जाता है, उनमें हिन्दीके हितैषी और शुभचिन्तक शिक्षक और अध्यापकके रूपमें निरन्तर कार्य कर रहे हैं। उनके लिए सरकारसे आर्थिक सहायता ले रहे हैं और अपने बालक-बालिकाओंको उनमें पढ़ने भेज रहे हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि पंजाबके हिन्दी-हितैषी तो हिन्दीका अहित देखते हुए भी, अपने स्वार्थपर तनिक भी आँच नहीं आने देंगे, बराबर हिन्दी-विरोधी संस्थाओंसे सुदृढ़ सम्बन्ध बनाये रहेंगे। हाँ, बाहरके लोग आयें और 'हिन्दी-रक्षा'के नामपर सत्याग्रह करें! यह कैसे अन्धेरकी बात है। क्या ऐसे आँकड़े प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे यह प्रकट हो कि हिन्दी-रक्षाके नामपर इतने अध्यापकों, प्राध्यापकों, छात्र-छात्राओं और संस्था-संचालकोंने हिन्दी-विरोधी विद्यालयोंसे अपने सम्बन्ध विच्छेद किये – असहयोग किया ? पंजाबके हिन्दी-हितैषी ऐसा नहीं कर सके, तो क्या उनकी यह निर्बलता और स्वार्थपरता नहीं है ? क्या ऐसे लोग कभी प्रशंसाके पात्र कहे जा सकते हैं ?

एक और विचित्र बात सुनिये, एक ओर तो कुछ लोगोंने भावुक भक्तोंकी भीड़ साथ लेकर, हिन्दीके नामपर सत्याग्रहकी आँधी उठा दी, दूसरी ओर पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने गत अप्रैल मासमें, अपनी रजत-जयन्ती मनाई और इसके उपलक्ष्यमें एक सुन्दर स्मृति-ग्रंथ भी प्रकाशित किया। इस सुमुद्रित स्मृति-ग्रन्थमें 'विशाल भारत'-आकारके २५० पृष्ठ और सौ-सवा-सौ चित्र हैं। इस ग्रन्थका समर्पण भारतीय लोकसभाके अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आर्यंगरको हुआ है। पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति श्री रलारामजी, एम० एल० ए० और प्रधान मन्त्री पं० भीमसेन विद्यालंकार हैं। यह ग्रन्थ इस समय हमारे सामने है। हमें इसमें पंजाबमें हिन्दीपर अत्याचार होने या 'सत्याग्रह' की चर्चा कहीं नहीं दिखाई दे रही। सभी लेख सुपाठ्य और प्रसिद्ध विद्वानोंकी लेखनियोंसे लिखे गये हैं, जिनमें पंजाबमें हिन्दीकी प्रगति और गति-विधिका बड़ा अच्छा वर्णन तथा विवरण है।

इस ग्रन्थके अन्तमें एक लेख है, उसका शीर्षक है 'पंजाब और हिन्दी'। इसके लेखक हैं, पंजाब प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रधान श्री यशजी, एम०एल०सी०। वे लिखते हैं—

"मैं समझता हूं, पंजाब के लिए उस दिन से अधिक बुरा दिन और कोई नहीं हो सकता, जिस दिन हिन्दी और पंजाबी विवाद उठा। किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाये, यह विवाद केवल नितान्त अनावश्यक और सर्वथा अस्वाभाविक ही नहीं है, अपितु घोर हानिकर और अत्यन्त घिनौना भी। हिन्दी और पंजाबीमें यदि माँ और बेटीका रिश्ता माननेमें किसीको आपत्ति हो भी तो कम-से-कम यह स्वीकार करनेमें किसीको इन्कार नहीं हो सकता कि दोनोंका उद्भव भाषाओंकी भाषा संस्कृतसे हुआ है। हिन्दी अपने गुणों और स्वभावके कारण समूचे देशमें लोकप्रिय हो गयी और पंजाबी अन्य प्रादेशिक भाषाओंकी तरह अपने देशमें फूलती-फलती रही। हिन्दीके प्रश्रयसे पलनेवाली पंजाबी अकेली नहीं, अवधी, राजस्थानी, ब्रजभाषा, बांगड़, डोगरी अनेकों भाषा ऐसी हैं, जो हिन्दीके अटूट कोषसे निरन्तर रसपान करती हुई समृद्ध होती रही हैं। इन भाषाओंकी समृद्धिमें ही हिन्दीकी समृद्धि और सौन्दर्य है।"

उपर्युक्त पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि पंजाबी हिन्दीका विवाद अत्यन्त अनुचित, अनावश्यक और घृणास्पद है। इस बातको कोई साधारण व्यक्ति नहीं कहता, बल्कि पंजाब प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलनके प्रधान (अध्यक्ष) का यह कथन है। पंजाबमें दो हिन्दी साहित्य संस्था हैं—(१) पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और (२) पंजाब प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन। दोनोंके उच्च अधिकारियोंकी सम्मति हिन्दी-सत्याग्रहके पक्ष या समर्थनमें नहीं रही, यह बात उपर्युक्त स्मृति-ग्रन्थकी उद्धृत पंक्तियोंसे स्पष्ट है।

इतना ही नहीं, हिन्दी-सत्याग्रहका कारण बताते हुए उपर्युक्त श्री यशजी लिखते हैं—

"भाषाकी आड़में सत्तालोलुप अपना खेल खेल रहे हैं। मिथ्या प्रचार और मिथ्या शंकाओंसे ऐसी मनोवृत्ति पैदा कर दी गयी है कि जनसाधारण वास्तविक प्रश्नको भूलकर पत्तों को जड़ समझने लगे हैं। × × × यह तनाव हिन्दी साहित्यके विकासमें ही बाधक नहीं बन रहा, अपितु इससे राष्ट्रीयताका भारी अहित हो रहा है। ·····प्रादेशिक भाषाओंके लिये भी स्वस्थ वातावरणकी शर्त अनिवार्य है।"

यह तो हुई श्रीयशजीकी विचारधारा, अब इसी ग्रन्थके एक दूसरे लेखमें, पंजाबके शिक्षा-मंत्री श्री अमरनाथजी विद्यालङ्कार के भाव देखिये। वे भी इस तनावको 'हानिकारक', 'अनावश्यक' और 'घिनौना' बताते हैं। फिर पं० भीमसेन विद्यालङ्कार, श्री यश एम० एल० सी०, पं० अमरनाथ विद्यालङ्कार तीनों ही आर्यसमाजी हैं। अगर पंजाबमें हिन्दीपर वस्तुतः आघात हुआ होता तो ये विद्वान क्यों ऐसा लिखते? पंजाब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और पंजाब प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन क्यों अपनी उदासीनता और निष्क्रियता दिखाते और इस प्रकारके भाव क्यों प्रकट करते? अस्तु,

जो हुआ सो हुआ, परन्तु अब इस आधारपर हिन्दी सत्याग्रह कदापि नहीं होना चाहिए। अगर करनेकी आवश्यकता हो, तो एक अखिल भारतवर्षीय सम्मेलन बुलाया जाए, जिसमें हिन्दीके बड़े-बड़े नेताओं, विद्वानों और साहित्यिकोंको भी विशेष रूपसे आमंत्रित किया जाय। सब कहते हैं—

"हिन्दीकी बदकिस्मती यह है कि हिन्दीके तथाकथित ठिंठोरचियोंने आज उसे हिन्दू धर्म और आर्यसमाजके साथ धार्मिक गठबन्धनमें सीमित कर दिया है। हिन्दीवालोंकी गणना करनेके लिये सिक्खोंको गणनामें से निकाल दिया जाता है और सब हिन्दू हिन्दीवाले मान लिये जाते हैं। हालाँकि बहुत-से हिन्दू हिन्दी नहीं जानते और बहुत-से सिक्ख आज पंजाबमें हिन्दी पढ़े हुए हैं। मेरा विश्वास है कि यदि हिन्दीको धर्मकी चारदीवारीसे आजाद करके, राजनीतिके दलदलसे न निकाला गया, तो हिन्दीका प्रसार सीमित हो जायगा। आज हिन्दीको सब भारतवासियोंको राष्ट्रभाषाके सिंहासनसे उतारकर एक धर्मवालोंकी एक धार्मिक भाषाके स्थानपर बिठानेका उन्मादवाले महानुभावोंकी कमी नहीं है। भगवान् हिन्दीको उसके तथाकथित दोस्तोंसे बचावे।"

उपर्युक्त सब उद्धरण उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियोंके हैं। उनसे कहीं यह प्रकट नहीं होता कि पंजाब में हिन्दी-हित-हत्या हो रही है। बल्कि वे लोग मिलजुलकर खूब विचार-विमर्श करें और यदि उनका निर्णय सत्याग्रहके पक्षमें हो, तो वह अवश्य किया जाए, नहीं तो यह विवाद बिल्कुल बन्द हो जाना चाहिए। हमें संतोष है कि उत्तर-प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाकी अन्तरंग सभाने सर्वसम्मतिसे यही निर्णय किया है, और २५ अगस्तको देहलीमें हिन्दी-रक्षा-समितिकी कार्यकारिणी भी इसी आशयका निश्चय कर चुकी है। भविष्यमें ऐसे उत्कट और उग्र आन्दोलन बहुत सोच-विचार के पश्चात् प्रारम्भ करने चाहिए। हिन्दी कुछ लोगोंकी ही नहीं, सारे राष्ट्रकी भाषा है। उसके लिए किसी प्रकारका आन्दोलन प्रारम्भ करनेसे पूर्व सबकी ही सम्मति लेनी पड़ेगी।

क्या संस्कृत विदेशी भाषा है?

गत जुलाई सन् १९५८ की त्रैमासिक पत्रिका 'शिक्षा' में श्री सैम्यूएल मथाईका अंग्रेजीमें एक लेख है। 'शिक्षा' उत्तर-प्रदेशके शिक्षा-विभाग द्वारा प्रकाशित होती है और उसका प्रचार उत्तर-प्रदेशके स्कूलों और कालेजोंमें है। सैम्यूएल मथाई साहबने अपने लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि अंग्रेजी भाषा भारतवर्षमें उतनी ही विदेशी है, जितनी संस्कृत। तात्पर्य यह है कि अंग्रेजीको भारतीय भाषा मान लिया जाय। अपनी बातकी पुष्टिमें उन्होंने जो तर्क दिए हैं, वे विज्ञानके जानकारों और भारतीय साहित्यसे परिचय रखनेवालोंके लिए न केवल हास्यास्पद हैं, वरन् मूर्खतापूर्ण भी। हम सैम्यूएल मथाई साहबके उपयुक्त लेखकी चर्चा नहीं करते, यदि 'शिक्षा' पत्रिका सरकारी पत्रिका न होती और विद्यार्थियोंमें उसका प्रचार न होता। श्री मथाई साहबका कथन यह है कि संस्कृत आर्योंके साथ आई, यहाँ उसका प्रचार हुआ और अंग्रेजी भी अंग्रेजोंके साथ आई और यहाँ उसका प्रचार हो गया। मथाई साहबने एक प्रोपैगैंडिस्टकी भाँति अपने कठमुल्लेपनका प्रतिपादन किया। एक तो उन्होंने आर्योंको आक्रमणकारी कहा। पहले तो यह बात काफी विवादग्रस्त है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुवसे आये या मध्य एशियासे या वे यहींके निवासी थे। पर बहसकी खातिर आर्योंका बाहरसे आना भी मान लें और संस्कृतको बाहरसे आया भी मान लें, पर मथाई साहब इस बातसे इन्कार नहीं कर सकते कि आर्य लोग एक बार आकर फिर यहीं घुलमिल गए। अंग्रेज आए, यहाँ शासन किया, पर वे बहुत थोड़े

दिनों बाद ही देश छोड़ गए और अंग्रेजी भाषाके जानकार भारतमें एक प्रतिशत भी नहीं हैं। संस्कृतको राष्ट्रभाषा बनानेका एक कारण जो डा० काटजू देते हैं, वह कुछ ठीक भी है कि संस्कृत सब भारतीय भाषाओंका समन्वय करती है वैदिक संस्कृतसे लगाकर कालिदास और पौराणिक संस्कृत तक देश में घुलमिल गई है। हम अंग्रेजीके विरोधी नहीं, पर गलत प्रचार और विद्यार्थियोंके मस्तिष्क बिगाड़नेवाले नर्कके हम घोर विरोधी हैं। संस्कृत भाषा भारतीय है और अंग्रेजी विदेशी है। सैम्यूएल मथाइ साहब भारतीय हैं; पर यदि उनकी मातृभाषा अंग्रेजी है तो इसका यह अर्थ नहीं कि अंग्रेजी विदेशी भाषा नहीं है। सैम्यूएल मथाई साहबने भाषा-विज्ञान और भारतीय इतिहासकी हत्या करके अपने मतका प्रतिपादन किया है। पत्रकार-कला और सम्पादनसे हमारा गत चालीस वर्षोंसे घनिष्ठ संबंध है। यदि हम 'शिक्षा' के सम्पादक होते तो उस लेखके नीचे एक टिप्पणी देते कि "यह लेख श्री मथाईका निजी मत है, उसका सबंध 'शिक्षा' सम्पादक और उत्तर-प्रदेश-सरकार से नहीं है।" श्री सैम्यूएल मथाईके लेखका हमने यहां केवल सकेत मात्र ही किया है।

उत्तर-प्रदेशमे खाद्यान्नकी कमी

उत्तर-प्रदेश जनसंख्याकी दृष्टिसे भारतवर्षके अन्य राज्यों से बड़ा है। यों तो सारा देश कृषि-प्रधान है, क्योंकि कृषिपर देशकी ८२ प्रतिशत जनसंख्या अवलम्बित है, पर उत्तर-प्रदेशमें यह प्रतिशत अधिक ही होगा। विभाजनके बाद गेहूंके उत्पादनमें उत्तर-प्रदेश अग्रणी है। चीनी, गुड़, तिलहन, जौ तथा कई अन्य मदोंमें उत्तर-प्रदेश अन्य राज्योंसे आगे है। एक प्रकारसे वह 'सरप्लस' राज्य है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर उन्नत कृषि होनेपर भी वहाँ गल्लेकी कमी क्यों और इतनी मँहगाईका कारण क्या है? गेहूंका भाव अनेक जिलोंमें २७ रुपया प्रतिमनसे ३५ रुपया प्रतिमन तक है। आखिर इस कमीका क्या कारण है? पाठकोंको हम निष्पक्ष रूपसे बताना चाहते हैं कि गत रबीकी फसलमें उत्पादन अच्छा नहीं हुआ। सन् १९४४-४५ से लेकर सन् १९५६-५७ तक उत्तर-प्रदेशसे चावलको निर्यात हुआ २९ लाख १४ हजार मन। बाजरे और ज्वारका निर्यात हुआ ६३ लाख ८७ हजार मन। इस अवधिमें उत्तर-प्रदेशमें गेहूंका आयात हुआ ३ करोड़ ९ लाख ७१ हजार मन। स्पष्ट है कि उत्तर-प्रदेशमें गेहूंका आयात होता था। सन् १९५५-५६ और सन् १९५६-५७ में उत्तर-प्रदेशसे आयातकी अपेक्षा निर्यात अधिक हुआ। पूरे आँकड़ोंमें स्थान बहुत घिरेगा। उत्तर-प्रदेशको आयातमें मिलना चाहिए था २५ लाख ९४ हजार मन प्रति वर्ष, वहाँ दो वर्षोंमें मिला तो कुछ भी नहीं और उल्टा बाहर गया ४३ लाख ७४ हजार मन। अब प्रयत्न यह हो रहा है कि इस कमीको कैसे पूरा किया जाय। यह हम मानते हैं कि प्रत्येक किसान, प्रत्येक गाँव और प्रत्येक जिलेको न केवल स्वावलम्बी होना चाहिए, वरन् उत्पादन आवश्यकतासे अधिक होना चाहिए। बिना ऐसा किये काम नहीं चलेगा। हमारा दावा है कि प्रति वर्ष बढ़नेवाली ५० लाखकी आबादीके लिए यह देश सन्तुलित भोजन दे सकता है; पर उसके लिए घोर परिश्रम करना पड़ेगा। मँहगाईका कारण जितना मनुष्य निर्मित है, उतना प्राकृतिक नहीं। हमारे यहाँ जमीन-सम्बन्धी नीति बड़ी दूषित है। एक भयंकर मनोवृत्ति यह पैदा हो रही है कि शहर और देहातका वैमनस्क बढ़ता जाता है। कण्ट्रोल और राशनिंग शहरोंकी खातिर होते हैं, इसके मानी यह हैं कि शहरोंकी आवश्यकताएँ काफी बढ़ी हुई हैं। वर्तमान युगमें जहाँ औद्योगीकरण होगा और सेनाके अड्डे बनेंगे, वहाँ शहरोंका बढ़ना अनिवार्य है। गत ग्यारह वर्षोंसे कृषि-सम्बन्धी सरकारी नीति बड़ी लचर रही है। खेतीकी ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। विधान सभाओं और पार्लमिण्टमें किसानोंका प्रतिनिधित्व नहीं है। पर खाद्य-समस्याको हल किये बिना कोई शासन और राजनीतिक दल नहीं चलेगा।

मंहगाईके विरुद्ध आन्दोलन

यह हमारे जीवनका अभिशाप है कि भुखमरी और बाढ़जन्य परिस्थितिसे लाभ उठानेके लिए नेता लोग अपने-अपने दलोंको मजबूत करनेमें जुटे हैं। इस दोषके भागी कम्यूनिस्ट, प्रजा सोशलिस्ट और कांग्रेसी लोग भी हैं। कोई भूख-हड़तालका नोटिस देकर या भूख-हड़ताल करके भुखमरी दूर करना चाहता है, तो कोई सत्याग्रहका नुस्खा दिखाकर सत्तारूढ़ होना चाहता है। सत्तारूढ़ दल कहनेको तो कहता है कि खाद्यान्नके मसलेमें सब दलोंको क्षणिक सन्धि कर लेनी चाहिए। पर व्यवहारमें अधिकांश कांग्रेसजन खाद्यान्न के उत्पादनमें दलबन्दीसे ही काम लेते हैं। वे ऐसे व्यक्तियों का सहयोग नहीं प्राप्त करते, जो इस विषयके जानकार और काम करनेवाले हैं। तिलक-छाप और दल-विशेषके साइनबोर्ड के बिना किसीकी प्रतिष्ठा नहीं मानी जाती। हमारा विश्वास है कि खाद्यान्नकी समस्या सुलझाई जा सकती है और जो

लोग मँहगाईको राजनीतिक रूप देते हैं, वे देशका अहित कर रहे हैं। हाँ, कांग्रेस अपने कृषि-मन्त्रियोंमें परिवर्त्तन करे और अपने ही आदमियोंमें से किसी जानकार आदमीको यह काम सौंपे। प्रत्येक राज्यमें कृषिका नव-निर्माण होना चाहिए, जिसमें चाटुकारोंका ध्यान न रखकर सक्रिय योग देनेवाले व्यक्तियोंको लेना चाहिए। जिलोंके स्तरपर भी १०-१२ आदमियोंकी एक समिति हो, जिसमें कम-से-कम एम० एल० ए० और एम० एल० सी० हो। खेती और भोजनके तरीके भी बदलने चाहिए। इस समय गाजर, मूली इत्यादि फसलोंको ज़ोरोंसे करना चाहिए, ताकि लोगोंकी गुजर-बसर हो।

नून-नेहरू-सम्मेलन

पाठकोंके हाथोंमें 'विशाल भारत' पहुंचने तक भारत और पाकिस्तानके प्रधान मन्त्रियोंका सम्मेलन नई दिल्लीमें इसी मास ९ सितम्बरको समाप्त हो चुकेगा। यह सम्मेलन केवल भारत और पाकिस्तानकी सीमा-सम्बन्धी मामलोंपर होगा, क्योंकि पाकिस्तानके प्रधान मंत्री मियाँ फीरोज खाँ नूनने यह साफ कह दिया है कि उनकी वार्ता केवल सीमा-सम्बन्धी झगड़ोंपर ही सीमित रहेगी। हम यह नहीं चाहते कि भारत पाकिस्तानके प्रति आक्रमणकारी बने, पर भारतके प्रतिरक्षा मंत्री श्री मेननके शब्दोंमें कि जो शासन अपनी सीमाकी रक्षा नहीं कर सकता, वह शासन करनेका अधिकारी नहीं है। धैर्यकी एक सीमा होती है और सौजन्यके मानी कमजोरीके नहीं हैं। अगर भारतीय गाँवोंपर पाकिस्तानकी निरन्तर गोलाबारी युद्ध-सूचक नहीं है, तो फिर भारतकी ओरसे उसके मुकाबलेकी या अधिक गोलाबारी कैसे युद्ध-सूचक हो सकती है? आखिर पाकिस्तान गुण्डागर्दीका साहस क्यों करता है? पाकिस्तानकी दुरंगी नीति है, एक ओर तो वह शान्ति और सद्भावनाकी बातें करता है और दूसरी ओर जिहाद-आन्दोलन चलता है। पश्चिमी पाकिस्तानकी विधान सभामें मियाँ दौलतानाने स्पष्ट शब्दोंमें पाकिस्तानियों से अनुरोध किया कि वे भारतकी प्रत्येक अच्छी-से-अच्छी वस्तुसे भी घृणा करें। पाकिस्तानके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मियाँ सोहरवर्दीने, जो पुनः प्रधान मन्त्री बननेके उलट-फेरमें हैं, स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि भारतसे युद्ध किये बिना काम नहीं चल सकता। यह ठीक है कि अमरीकाने घोषणा कर दी है कि यदि भारत और पाकिस्तानमें युद्ध हुआ, तो वह पाकिस्तानका साथ नहीं देगा और न पाकिस्तानमें रखा अपार शस्त्र-भण्डार भारतके विरुद्ध प्रयुक्त होगा। पर पाकिस्तान घृणा और युद्धकी धमकी क्यों देता है? पाकिस्तान जैसे पिट्ठू देशके कान अमरीका कभी भी मल सकता है। अमरीका और ब्रिटेनका मुसाहिब और पिछलग्गू होनेके कारण ही पाकिस्तान इतराता है, वरना उसकी आबरू तो अरब राष्ट्रों तकमें नहीं है। व्यक्तिगत रूपसे हमारा अनुमान है कि सीमा-सम्बन्धी घटनाएँ बन्द भी हो गईं, तब भी झगड़ा सहज खतम न होगा। आशावादी होनेपर भी हमें आशंका है कि नेहरू-नून-मिलनसे शायद ही कोई स्थायी समझौता हो सके। स्थायी समझौता हमेशा उस अवस्थामें होता है, जब दोनों पक्ष ईमानदारीसे समझौता करना चाहें। मियाँ नून अथवा उनके किसी उत्तराधिकारीसे यह आशा हमें नहीं कि वह भारतके प्रति सद्भावना दिखा सके। भारत-सरकारसे हमारा अनुरोध है कि वह कोई कमजोरी न दिखाये।

कुमारी मृदुला साराभाईकी गिरफ्तारी

गत ६ अगस्तका नई दिल्लीका समाचार है—दिल्ली-पुलिसने आज यहाँ निवारक निरोध अधिनियमके अन्तर्गत कुमारी मृदुला साराभाईको—जो पहले एक प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्री थी तथा पिछले दिनों शेख अब्दुल्लाको समर्थक बनी हुई थीं—गिरफ्तार कर लिया गया।

पुलिसने कुमारी मृदुलाको रातके लगभग ९ बजे उनके नई दिल्लीवाले निवास-स्थानसे गिरफ्तार किया। कुमारी मृदुला साराभाईको केन्द्रीय गृह-मन्त्रालय द्वारा जारी किये गये वारंटके आधारपर गिरफ्तार किया गया है। उन्हें दिल्ली जिला जेलमें रखा गया है।

इससे पूर्व, जूनके महीनेमें विशेष मजिस्ट्रेट श्री एम० के० हकके, जो काश्मीर षड्यन्त्र केसकी सुनवाई कर रहे हैं, आदेशपर उनके निवास-स्थानकी तलाशी ली गई थी। इस तलाशीके फलस्वरूप कुछ कागजातको कब्जेमें किया गया था। क्योंकि कुमारी मृदुलाका मुकदमा विचाराधीन है, उसपर कोई मत प्रकट नहीं किया जा सकता। पर कुमारी मृदुलाका स्वभाव बड़ा ही उग्र है—यह बात हम निजी अनुभवसे जानते हैं। महात्मा गांधीके साथ वे रहीं और वहाँपर भी उनका आगन्तुकोंके साथ व्यवहार उद्दंडताकी सीमा तक पहुंच जाता था। स्वयं हमारी कई बार उनसे झड़पें हुईं। हमारा अनुमान तब ही से था कि वे कोई ऐसा जिम्मेवारीका काम नहीं कर सकतीं, जिसमें देशकी प्रतिष्ठाका

प्रश्न हो। अमीरी और बड़े आदमियोंके सम्पर्कसे लोगोंमें विनम्रता और विवेक आने चाहिए।

केरलकी स्थिति

केरलकी स्थितिके विषयमें समाचारपत्रोंमें विभिन्न मत प्रगट किये जा रहे हैं। केरलमें कम्यूनिस्ट शासन है और उसके विरुद्ध कांग्रेसियोंने आरोप लगाये हैं कि केरल शासन के कारण सामाजिक जीवनमें बड़ी बाधायें पड़ रही हैं और कम्यूनिस्ट सरकार ऐसे तत्वोंको प्रोत्साहन देती है, जिससे अराजकता बढ़ रही है। पाठ्य-पुस्तकोंमें अप्रत्यक्ष रूपसे कम्यूनिज्मका प्रचार होता है। प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूने केरलकी स्थितिके विषयमें बड़ी चिन्ता प्रकट की है। कुछ लोगोंने यह भी सुझाव दिया कि केरलमें राष्ट्रपति शासन लागू करना चाहिए। पर केरल सरकारकी ओरसे वहाँकी स्थितिपर प्रकाश डाला गया है और कहा गया है कि केरल को ऐसी स्थिति नहीं है, जैसी कि बताई जाती है। जब लोगोंने यह प्रयत्न किया कि केरलकी स्थितिपर भारत-सरकारकी ओरसे जाँच की जाय, तब कम्यूनिस्ट पार्टी और वर्त्तमान केरल सरकारकी ओरसे विरोध किया गया कि अकेले केरलकी ही जाँच क्यों की जाय। हमारा पहलेसे ही खयाल था कि केरलमें राष्ट्रपति शासन लागू करनेका प्रश्न तब तक नहीं उठ सकता, जब तक कि वहाँकी स्थिति इतनी गम्भीर न हो जाय कि साधारण लोगोंके जीवन-कार्यमें अड़ंगा न लगे। इसमें कोई शक नहीं कि केरलकी आन्तरिक स्थितिकी जानकारीके लिए देशके अनेक क्षेत्रोंमें बड़ी शंका है। पर हमें इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं कि केरलकी वर्त्तमान कम्यूनिस्ट सरकार प्रचारके लिए ऐसे कार्य करे, जिससे कम्यूनिज्मका प्रचार हो। कम्यूनिस्टोंके लिए साधनोंकी अपेक्षा साध्य ही का अधिक खयाल रखा जाता है। एक समय था, जब रूसमें गांधीजी और नेहरूजीके विरुद्ध लेख छपते थे, आज उसी रूसमें इन्हीं व्यक्तियोंकी तारीफ़ोंके पुल बाँधे जाते हैं। अभी पिछले दिनों एक भारतीय कम्यूनिस्ट नेताने पं० नेहरूके विषयमें कहा था कि उसे पं० जवाहरलाल नेहरूकी अन्तर्राष्ट्रिय तटस्थ नीतिके विषयमें इस बातकी आशंका है कि उनकी नीति तटस्थ है भी या नहीं। कारण यह था कि नेहरूजीने कम्यूनिस्ट देशोंकी आलोचना कर दी थी। नेहरूजीने केरलमें व्यक्तिगत स्वतंत्रताके विषयमें चिन्ता प्रगट की। भारतीय लोकसभामें कई बार केरलके विषयमें चर्चा चली है और भारतीय लोकसभा के कई सदस्योंने केरल सरकारके विरुद्ध बड़े संगीन आरोप लगाये हैं। हमें आश्चर्य इस बातका है कि लोग कम्यूनिस्ट शासत-प्रणालीको भूल जाते हैं। कम्यूनिस्ट शासन-प्रणाली में व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके लिए कोई स्थान नहीं है। कम्यूनिस्ट शासन-प्रणालीकी विशेषता यही है कि वहाँपर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता खतम करनी ही पड़ती है। लोकतन्त्र और कम्यूनिस्ट शासन इस प्रकार विरोधी हैं। शायद कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबरभाई दौरा करते हुए वहाँ जाकर स्थितिको देखेंगे। पर लोकतन्त्रीय भारतमें केरलकी समस्या राजनीतिक ढंगसे ही हल होगी और कम्यूनिस्ट सरकारके विरुद्ध वोटाधिकारसे ही काम लेना पड़ेगा।

अव्यावहारिक

पाठकोंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा होगा कि भारत-सरकार के खाद्य-मन्त्री श्री अजितप्रसाद जैनने अधिक अन्न उत्पादनके लिए एक विशाल योजनाकी घोषणा की है। उसके अनुसार आगामी रबीकी फसलके लिए विद्यार्थियों और सैनिकोंका सहयोग प्राप्त किया जायगा। सैनिक और विद्यार्थी किसानों के पास जाकर अधिक अन्न उत्पादनमें सहयोग देंगे। इस समाचारको पढ़कर हमें क्लेश भी हुआ और अव्यावहारिक तथा हास्यास्पद योजनापर हँसी भी आई। भारत-सरकार और श्री अजितप्रसादजीसे हम पूछते हैं कि आखिर वे किसानोंकी स्थितिसे इतने अनभिज्ञ क्यों हैं? कृषि-विभागके कर्मचारियोंकी, जो कृषिकी खातिर ही वेतनभोगी हैं, बातों तकको जल्दी ही किसान नहीं मानते, तब फिर विद्यार्थी बाबुओंसे क्या यह आशा की जा सकती है कि वे किसानोंका हाथ बँटा सकते हैं। हाँ, बिना कुछ लिये अगर वे केवल शारीरिक श्रमसे किसानका साथ देना चाहते हैं, तो इस बातका स्पष्टीकरण होना चाहिए। कागजपर हिटलरकी योजनाएँ भी बड़ी कारगर प्रतीत होती थीं; पर कृषि-योजनाओं और सैनिक योजनाओंमें बड़ा अन्तर है। किसानोंपर रौब गाँठनेसे काम नहीं चलेगा। पहला काम जो करना है, वह यह है कि कृषि-मन्त्रियोंके बारेमें जानकारी प्राप्त करें और कृषि-मन्त्रालयमें परिवर्त्तन तथा जनताका सहयोग प्राप्त करें।

एक आशा-किरण

गत २२ अगस्तका वाशिंगटनका समाचार है कि राष्ट्रपति आइसेनहावरने घोषित किया कि ३१ अक्टूबरसे एक वर्ष तकके लिए उदाणु-अस्त्रोंका परीक्षण शर्तोंके साथ स्थगित करनेके लिए अमेरिका तैयार है।

अपने औपचारिक वक्तव्यमें राष्ट्रपतिने कहा कि परीक्षण स्थगित करनेके लिए शर्तें होंगी कि (१) अस्त्रोंके परीक्षण स्थगनके अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेकी वार्ताके लिए सोवियत संघ राजी हो और (२) परीक्षण स्थगनके गत मार्च मासके अपने एक पक्षीय निर्णयपर सोवियत संघ कायम रहे।

राष्ट्रपतिने अपने वक्तव्यमें कहा है कि यदि सोवियत संघ अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेके निमित्त ३१ अक्टूबरको वार्तारम्भ करना स्वीकार करे और अगर रूस परीक्षण फिरसे शुरू न करे, तो अमेरिका अपनी ओर से एक वर्ष तक आणविक और उद्जन आयुधों का आगे परीक्षण रोकनेके लिए तैयार है।

ह्वाइट हाउसके अधिकारियोंने कहा कि यह सोचना गलत होगा कि अमेरिका हमेशाके लिए परीक्षण स्थगित करनेका विचार कर रहा है। उन्होंने कहा कि राष्ट्रपतिके वक्तव्यकी मंशा समझौता-वार्ताको अग्रसर करनेके लिए दरवाजा खोलना है।

राष्ट्रपतिने अपने वक्तव्यमें यह भी कहा कि प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय समझौतेमें शान्तिपूर्ण कार्योंके लिए उसके प्रयोग के प्रश्नपर भी विचार होना चाहिये। ह्वाइट हाउसके अधिकारियोंने इसकी व्याख्या यों की कि राष्ट्रपतिका विचार पूर्णतः शान्तिपूर्ण कार्योंके लिए अणु-विस्फोट जारी रखनेका है तथा अमेरिका राष्ट्रसंघीय पर्यवेक्षकोंसे यह भी कहेगा कि ऐसे परीक्षणोंके समय वे उपस्थित रहकर देखें कि वे केवल शान्तिपूर्ण कार्योंके लिए हो रहे हैं।

ब्रिटिश घोषणाका वक्तव्य प्रधानमन्त्रीके दफ्तरसे जारी किया गया। उसमें ३१ अक्टूबरको न्यूयार्कके वार्तारम्भका प्रस्ताव किया गया।

राष्ट्रपति आइसनहावरकी उपर्युक्त घोषणा वर्त्तमान अणु-आयुधोंकी होड़में एक आशा-किरण है। वह इस बातका प्रमाण है कि अमरीका शांतिका पक्षपाती है और संभवतः अमरीकाने अणुबमों और हाईड्रोजन बमोंमें रूससे अधिक प्रगति कर ली है। यदि इसी प्रकार रूस, अमरीका, इंग्लैंड और फ्रांसमें सचाईके साथ हृदय-परिवर्त्तन हो, तो महायुद्ध और विश्व-विनाशके बादल टल जायँ।

जनेवा अणु-सम्मेलनकी सफलता

गत २१ अगस्तका जनेवाका समाचार है कि पूर्व तथा पश्चिमी देशोंके अणु वैज्ञानिकोंके बीच परमाणु-परीक्षण बंद करने व उनके होनेका पता लगानेके लिए यहां जो काफी समयसे वार्ता चल रही थी, वह आज परमाणु-परीक्षणोंका पता लगानेके उपायोंपर वैज्ञानिकोंके बीच समझौतेके साथ सफलतापूर्वक समाप्त हो गई। परीक्षणोंका पता लगानेके लिये आवश्यक टेकनीकल साज-सामानपर वैज्ञानिकोंके बीच समझौता हो गया। वार्ताकी सफलतापर यहां भारी प्रसन्नता प्रकट की जा रही है।

इस वार्तामें अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस व कनाडा (पश्चिमी राष्ट्रों) तथा सोवियत रूस, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया व रूमानिया (पूर्वी राष्ट्रों) के कुल मिलाकर २० वैज्ञानिकोंने भाग लिया। वार्ताकी समाप्तिपर सोवियत रूसके प्रतिनिधि वैज्ञानिकने कहा हम इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि छोटे-से-छोटे परीक्षणका भी पता लगाया जा सकता है। काफी ऊँचाईपर किये गये परीक्षणोंका कृत्रिम उपग्रहों द्वारा आसानीसे पता लगाया जा सकता है।

हमारे ख्यालसे उपर्युक्त जनेवा अणु-सम्मेलनकी सफलता से अब यह आशंका नहीं की जा सकती कि रूस या अमरीका गुप्त रूपसे कोई अणु-परीक्षण कर सकेंगे। ऐसी स्थितिमें विश्व-शांतिकी आशा और प्रबल हो गई है। हमें आशा है कि अणु-परीक्षण हमेशाके लिए बन्द कर दिया जायगा, पर आयुधोंके वर्त्तमान भंडारको नष्ट किये बिना महायुद्धकी आशंका सूक्ष्म रूपसे हमेशा बनी रहेगी।

मुद्रा-विनिमय-शक्तिकी क्षीणता

पाठकोंको मालूम है कि भारतकी मुद्रा-विनिमय-शक्ति अति क्षीण हो गई है। लफ्फाजी, परिश्रम-हीनता और आन्तरिक कलहके कारण भारतका निर्यात बहुत कम है। व्यापारिक दृष्टिसे दक्षिणी-पूर्वी एशियामें विशेषकर वस्त्र उद्योग में चीन और पाकिस्तानका प्रभुत्व बढ़ता जाता है। भारत पर कर्जेका बोझा इतना अधिक हो गया है कि उसकी अदायगी एक समस्या बन गई है। किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्रका खर्च जब आमदनीसे अधिक होता है, तब उसकी स्थिति भयावह हो जाती है। अरबों रुपयोंका कर्ज देशपर है और कितने लज्जाकी बात है कि भारत जैसे कृषि-प्रधान देशमें अरबोंका खाद्यान्न बाहरसे मँगाया जाता है! भूख बुझानेको कर्जा लेना चाहिए, पर जो ऋणको आमदनी समझता है, उसका आर्थिक विनाश अवश्यम्भावी है। बाहरसे आवश्यक वस्तुओंका मँगाना भी बड़ा कठिन हो गया है। पौंड पावना भी केवल १९७ करोड़ रह गया है। भाषणोंकी तेजीके साथ ऋणका बोझ भी तेज होता जा रहा है।

विदेशोंमें ऋणके लिए दौड़ लगाई जा रही है, अरबोंका ऋण मिलेगा भी।

उद्योग वाणिज्य मंत्री श्री शास्त्रीजीने गत १७ अगस्तको आयात-नीति-घोषणामें विलम्बका कारण बताते हुए कहा—"हम इस समय देशकी वैदेशिक विनिमय सामर्थ्य बढ़ानेकी चेष्टाओंमें तत्पर हैं। हमें देखना है कि ब्रिटेन, अमेरिका, प० जर्मनी और जापानसे हमें किस मात्रामें और किस रूपमें साधन उपलब्ध होते हैं। जब हमें अगले मासके अंत तक इस विषयमें कुछ निश्चित रूपमें पता लगेगा, तब हम आयात-नीति घोषित करनेकी स्थितिमें होंगे। इस बातकी बहुत कम सम्भावना है कि आयातमें छूट देनेकी उदारता बरती जा सके। केवल उन पदार्थों पर जो कि अत्यन्त आवश्यक श्रेणी में आते हैं, आयातकी कड़ाई कुछ ढीली की जा सकती है, अन्यथा हम विदेशोंको अपने भुगतान बढ़ानेकी स्थितिमें हैं नहीं। आजकी हमारी स्थिति इस दृष्टिसे विगत छमाहीकी स्थितिसे अधिक शोचनीय है। हमारा पौंड पावना केवल १ अरब ९७ करोड़ है।

"देशके जिन उद्योगोंसे उत्पादनके निर्यातमें वृद्धि होनेकी अधिक सम्भावना होगी, उनके लिए औद्योगिक आवश्यकताओंके आयातमें कुछ उदारता बरतनेकी गुंजाइश हो सकती है। जिन उद्योगोंसे अधिक मनुष्योंकी जीविका चलती है, उनकी आवश्यकताओंके प्रति भी आयात नीति कुछ ढीली की जा सकती है।

"आयातकर्ताओं और विदेशी वस्तुओं के विक्रेताओं द्वारा स्टाक अपने अधिकारमें करके मालको दबाने और कृत्रिम अभाव उत्पन्न करके मुनाफाखोरी करनेके लिये भाव बढ़ाने की प्रवृत्ति समाजके प्रति अन्याय है। विक्रेता तथा उपभोक्ता से ऐसी आशा है कि वे भावों का ख्याल रखें और कीमतें इतनी न बढ़ने दें कि सबको वे वस्तुयें उचित मूल्य पर प्राप्त होना दुर्लभ हो जाय।"

जब तक भारत का निर्यात न बढ़ेगा और देश खाद्यान्न में स्वावलम्बी न होगा, तब तक विदेशी मुद्राकी स्थिति शोचनीय रहेगी ही।

खाद्यान्न की कमी और आन्दोलन

देशमें खाद्यान्नकी कमी है और उस कमीकी बहुत कुछ जिम्मेदारी सरकार के ऊपर है, क्योंकि सरकारकी कृषि संबंधी नीति दोषपूर्ण है। पार्लमेंट और विधान सभाओंमें किसानोंका प्रतिनिधित्व नाममात्रका है। जो किसानोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका खेतीसे कोई सम्बन्ध नहीं। जो खाद्य मंत्री और कृषि मंत्री हैं, वे भी अधिकांश निकम्मे हैं। उनका कोई वास्ता भारतकी खेतीकी ज़मीनसे नहीं है। पर जो लोग खाद्यान्नकी कमीको राजनीतिक रूप दे रहे हैं और यह चाहते हैं कि देश में इस कमी के कारण सत्याग्रह शुरू किया जाय और सरकारी गोदामोंपर अधिकार करके अन्नको वितरित किया जाय, वे आगसे खेल रहे हैं। अच्छा हो सत्तारूढ दलसे विधान सभाओं और पार्लमेंटमें 'नोंक-झोंक' हो, उन्हें पदच्युत भी किया जाय। अगर विरोधी समझते हों कि उनमें कार्यक्षमता है तो ऐसा करें, पर देहातों में ऐसा आन्दोलन छेड़ना अराजकता है। इस प्रकारके आन्दोलनोंसे खाद्यान्नकी स्थिति बिगड़ेगी; लूट-मार, चोरी-डकैतीको बढ़ावा मिलेगा। चाहिए तो यह कि कोरी बकवासको छोड़ कर एम० एल० ए०, एम० पी० खेती करके दिखायें। पर यह बात कि सत्तारूढ़ दल खाद्यान्नकी समस्याके कारण इस्तीफा दे और नया चुनाव लड़े, न केवल हास्यास्पद है, वरन अनावश्यक भी। चुनावोंमें कितना खर्चा पड़ेगा। प्रति उम्मेदवार ८-१० हजार रुपया खर्च पड़ना है। सरकारको भी सरकारी अफसरोंपर करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ता है। अगर विधान सभाई लोग, जिनमें कांग्रेसी भी शामिल हैं, यह निश्चय करें कि अगामी दो वर्षोंके लिए अधिवेशन न हो, सदस्योंको भत्ता न मिले और जो उनपर व्यय होता है, जिसकी चोट गरीब किसान पर पड़ती है, वह सब कृषि उत्पादनमें लगाया जाय, तो हम स्वागत करेंगे। जो व्यक्ति अपनी योग्यता और परिश्रमसे ७५ रुपया मासिक भी नहीं कमा सकते, वे व्यक्ति प्रतिमास चार सौसे लगाकर एक हजार तककी आमदनीको कैसे छोड़ दें! अतः ये आन्दोलन खाद्यान्नकी कमीको दूर करनेको नहीं है, वरन् अपने हलुवे और माड़ेको कायम करनेके लिए है। गरीब मर रहे हैं, उनके दुःख और मौतसे विधान सभा और पार्लमेंटके लोग अपना उल्लू सीधा करनेकी कोशिशमें हैं। हां, ऐसे व्यक्ति भूख हड़ताल नहीं, सप्ताह में एक व्रत कर लिया करें और अपनी बचतको गरीबोंको दें या कृषि उत्पादन मे लगायें। अनावश्यक राजनीतिक आन्दोलनोंसे भुखमरी फैलेगी, शासन-सूत्र खतम हो जायगा। स्मरण रहे, हम किसी राजनैतिक दलके सदस्य नहीं हैं। हम जानते हैं कि कांग्रेसके निकम्मेपनेके कारण ही ऐसी स्थिति है। स्वयं कांग्रेसको चाहिए कि उसके मंत्रियोंमें जो

निकम्मापन है, उसे दूर करके खाद्यान्न बढ़ाना चाहिए। किसान शांत और गंभीर है, उसकी वेदना अंतर्मुखी है। जब उसमें चेतना आयेगी, तब अधिकांश विधान सभाई, कम्यूनिस्ट और समाजवादी दूधकी मक्खीकी तरह फेंक दिये जायेंगे और आन्दोलनकारी स्वयं ही अपनी आगमें भस्म हो जायेंगे। यह हमारे जीवनका अभिशाप है कि विधान सभाई लोग किसानोंकी गरीबी और बेबसीसे राजनीतिक लाभ उठाकर अपनी स्थितिको मजबूत करना चाहते हैं, खाद्यान्नकी स्थितिको नही सुधारना चाहते!

स्व० पं० केदारनाथ भट्ट

हमें यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक और कवि स्व० पं० बदरीनाथ भट्टके बड़े भाई तथा तुलसीकृत रामायणके प्रसिद्ध टीकाकार स्व० पं० रामेश्वरनाथ भट्टके द्वितीय पुत्र पं० केदारनाथ भट्टका गत १७ अगस्तको लखनऊमें देहावसान हो गया। स्व० पं० केदारनाथ भट्ट बड़े सजीव व्यक्ति थे, बड़े ही औला-मौला, हास्य-विनोद और व्यंगके अवतार तथा हिन्दी-साहित्यके मर्मज्ञ आलोचक। व्यंग और विनोद उनके रोम-रोमसे प्रस्फुटित होता था। ढोंग और अहंकारके विरुद्ध वे खड्गस्थ रहते थे। उनकी इच्छा थी कि हिन्दीमें व्यंग और विनोद का एक पत्र निकले। इसी दृष्टिसे उन्होंने आगरेसे 'नोंकझोंक' नामक पत्र निकाला। कभी-कभी तो वे बड़े व्यंगात्मक लेख लिखते और कल्पित नामसे खुद ही उनका उत्तर देते। उनके व्यंग बड़े कारगर होते थे। स्व० भट्टजी अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दूके पण्डित थे। एम० ए०, एल-एल० बी० पास करनेके बाद उन्होंने आगरेमें वकालत शुरू की और फिर ललितपुर चले गये। ललितपुरमें उनकी वकालत खूब चमकी और यही कारण था कि उन्होंने वकालत छोड़ दी। स्वभावसे मौजी होनेके कारण उन्हें वकालतकी बला पसन्द न आई। अगर स्व० पं० केदारनाथ भट्ट लगनके साथ हिन्दीका काम करते, तो वे कई पुस्तकोंके स्वतन्त्र लेखक बन सकते थे; पर निर्द्वन्द्व भट्टजीको संसारकी इन बातोंसे कोई मोह नहीं था। स्व० पं० केदारनाथ भट्टकी निधनके समय आयु लगभग सत्तर वर्षकी थी। अपने छोटे भाई पं० बदरीनाथ भट्टके अन्तिम दिनोंमें स्व० पं० केदारनाथ भट्ट लखनऊ ही रहे, वहाँ उनको सेवा की। आश्चर्यकी बात है कि स्व० पं० केदारनाथ भट्ट अपने अन्तिम दिनोंमें स्व० पं० बदरीनाथ भट्टके सुपुत्र श्री प्रेमनाथ भट्टके पास रहे और वहीं लखनऊमें इहलीला समाप्त की। स्वयं स्व० पं० केदारनाथके कोई सन्तान नही है। वे वर्षोंसे विधुर थे। हम गत बीस वर्षोंसे स्व० पं० केदारनाथ भट्टके किरायेदार हैं। हम श्री प्रेमनाथ भट्ट और अन्य कुटुम्बीजनोंको समवेदना प्रगट करते हैं और आशा है कि उस दूसरी दुनियामें, जहाँ भी भट्टजी रहेंगे, हास्य और व्यंगकी सुरसरी प्लावित करते रहेंगे।

स्व० डाक्टर क्यूरी

हमें यह जानकर दुःख हुआ कि विश्वविख्यात विज्ञान-पंडिता स्व० मैडम क्यूरीके कुटुम्बी डाक्टर क्यूरीका देहान्त गत मास पेरिसमें हो गया। स्व० डाक्टर क्यूरी फ्रांसके अणु-शक्तिके विख्यात वैज्ञानिक थे और वे संसारके प्रमुख वैज्ञानिकोंमें गिने जाते थे। पाठकोंको मालूम होगा कि अबसे २२ वर्ष पूर्व रेडियमका आविष्कार करनेवाली मैडम क्यूरीपर एक लेख छपा था। क्यूरी कुटुम्ब अपने विज्ञान-ज्ञानके कारण विश्वविख्यात है। अतः डाक्टर क्यूरीका निधन केवल फ्रांस ही नहीं, वरन् विश्वके विज्ञानकी क्षति है।

'विशाल भारत' का दीपावली-अंक

सदा की भाँति 'विशाल भारत' नवम्बर १९५८ का अंक विशेषांक होगा।

यह 'विशेषांक' अधिक सुन्दर तथा मनोरंजक होगा।

दूसरा विशेषांक "शहीद-अंक" होगा।

जनवरी १९५९ का अंक शहीद-अंक होगा। जनवरी १९५९ से 'विशाल भारत' का वार्षिक चन्दा १०) हो जायगा।

संस्मरण

ठाकुर झंडूसिंह

श्रीराम शर्मा

प्रतिभा एक दैवी देन है, जो परिश्रम, सत्संग और कल्पना-शक्तिसे निखरती है। कभी-कभी प्रतिभा ऐसे व्यक्तियोंमें पाई जाती है, जिनका मानसिक स्तर शिक्षाके अभावमें अविकसित रह जाता है। प्रतिभाके अनेक रूप हैं, पर हास्य-विनोदकी प्रतिभा हमारे देशमें अपेक्षाकृत कम है। हमारे यहाँ जीवन-सरिताको लोगोंने अहंकार और अज्ञानसे अवरुद्ध कर रखा है। हास्य और विनोदके लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई धनवान हो या जीवनके सब साधन उसे उपलब्ध हों। अत्यन्त गरीब लोगोंमें भी हास्य और व्यंगको कला पाई जाती है। यह ठीक है कि चिन्ता और कष्टसे हास्य और व्यंग-विनोदकी कला कुण्ठित हो जाती है।

इन पंक्तियोंके लेखकको अपने ६२ वर्षके जीवनमें से गत ५५ वर्षकी मुख्य बातें सब याद हैं। अनेक व्यक्तियोंसे मिलना हुआ है, देशके महापुरुषोंसे लगाकर देहातके अत्यन्त साधारण व्यक्तियोंसे लेखकका सान्निध्य रहा है। महापुरुषोंसे हास्य और विनोदकी बातें सुनी हैं। हास्य और व्यंग-विनोद बड़ी ऊँची कला है। महात्मा गांधीके मुखारविन्दसे लेखकने सुना है कि यदि जीवनसे हास्य निकल जाय, तो वह निकम्मा हो जाता है। यहांपर किसीकी तुलना नहीं करनी, पर जब इन पंक्तियोंका लेखक यह सोचता है कि उसकी जानकारीमें अत्यन्त विनोदी और हास्यरसका अवतार कौन-सा व्यक्ति था, तब उसे इसी नतीजेपर आना पड़ता है कि स्व० ठाकुर झंडूसिंह जैसा हास्यरसका अवतार और विनोदी कोई दूसरा नहीं देखा।

ठाकुर झंडूसिंह मक्खनपुर (जिला मैनपुरी, उत्तर-प्रदेश) के निकटवर्ती गाँव बहेराके चौहान ठाकुर थे। उनका निधन अबसे लगभग बीस वर्ष पूर्व एक मामूली-सी बीमारीमें हो गया। निधनके समय उनकी आयु ५५-५६ वर्षकी रही होगी; पर देखनेमें वे ३०-३५ वर्षके ही जँचते थे। छोटा मझोला, शरीर गठा हुआ, आँखें छोटी पर तेज, रोम-रोमसे शक्ति प्रस्फुटित होती थी। इन पंक्तियोंके लेखकसे उनकी उमर १४-१५ वर्ष बड़ी थी।

ठाकुर झंडूसिंह लेखकके बड़े भाई साहबके साथ पढ़ते थे, पर वैसे उनके घरसे हमारे घरका पीढ़ियोंका सम्बन्ध था। पहले-पहल जब ठाकुर झंडूसिंह लेखकके बड़े भाई साहबसे मिलने आये, तो हँसीका फौव्वारा-सा छूट पड़ा। व्यंग-विनोद के अवतार ही थे। चाहे उनके साथ हफ्तों रहो या महीनों, ठाकुर झंडूसिंहकी हँसी चलती ही रहती। उनमें हँसी करने की प्रवृत्तिका प्रादुर्भाव ६-७ वर्षकी आयुमें हो हो गया था। मज़ाक करनेमें वे किसीसे नहीं चूकते थे। अपनी ठकुरानी, पुत्र, पुत्र-वधू, साहित्य-सेवी, नेता, पण्डित, मित्र सबसे वे मज़ाक करते थे। हँसी-मज़ाककी कसौटी एक यह है कि जिससे किया जाय, उसे भी आनन्द आये। जब वे मक्खनपुर के स्कूलमें दर्जा दोमें पढते थे (सन् १८९८), तब डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स स्कूलका निरीक्षण करने आये। दूसरे दर्जेके लड़कोंकी पढाई उन्होंने देखी। अध्यापक पढाने लगे और डिप्टी इन्सपेक्टर कुर्सी डालकर बैठ गये। पाठमें एक जगह 'दामाद' शब्द आया। डिप्टी इन्सपेक्टर अनायास बालक झंडूसिहसे पूछ बैठे, "लड़के, जानते हो, दामाद किसे कहते हैं? बताओ तो।" बालक झंडूसिंहने सीधा-सादा उत्तर दिया, "तुमाई लरिकिनी (तुम्हारी लड़की) कौ (का) बियाहु (विवाह) मोसूँ (मुझसे) है जाय (हो जाय) तो हूं (तो मैं) तुमाओ दमाद लगो (तुम्हारा दामाद लगा)।"

मक्खनपुर स्कूलके बाद हिन्दी मिडिलकी पढ़ाईके लिए झंडूसिह शिकोहाबाद मिडिल स्कूल गये। हेड मास्टर मौलवी अब्दुल ग़नी हाजी थे। बड़े ही कट्टरपन्थी और मजहबी मामलोंको निभानेवाले। पाँच वक्त नमाज़ पढ़ते और शिकोहाबादके मजहबी मुसलमानोंमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। नाराज होकर वे लड़कोंकी धुनाई रुईकी तरह करते। शायद ही कोई दिन जाता, जब झंडूसिहकी पिटाई न होती। पर हँसी और विनोदकी शरारत झंडूसिंहके जीवनका एक अंग थी, मानसिक भोजन थी। स्कूलकी हदसे लगी एक मसजिद थी। मसजिद और स्कूलके बीच एक ३-४ फुट ऊँची दीवार थी। लड़के दीवारसे झाँककर मसजिदमें अच्छी तरह देखते थे। मसजिदका मुल्ला घुटी खोपड़ी खसखसी दाढ़ी रखता, स्वभावसे चिड़चिड़ा और लड़कोंको डाँटता। पर मुल्लाकी मित्रता हेडमास्टर मौलवी अब्दुल ग़नीसे थी। मुल्लाकी लड़ाई एक मुसलमान पेशकारसे थी और पेशकारका लड़का झंडूसिंह

के साथ मिडिल स्कूलमें पढ़ता था। पेशकारका लड़का कम पिटता था, अतः झंडूसिंहने उसे चुनौती दी कि उसकी एक दिन डटकर पिटाई कराई जायगी। मसजिदमें जहाँ मुल्ला नमाज़ पढ़ता था, ऊपर एक बड़ा-सा बरौंका छत्ता था। अवसर पाकर झंडूसिंह नमाजके समय दर्जसे खिसक गये और एक ढेला ताकपर बरौंके छत्तेमें ठीक उस समय मारा, जब मुल्ला नमाज़के लिए झुके थे। ढेला मारकर झंडूसिंह अपनी क्लासमें आकर बैठ गये और पढ़ाई शुरू कर दी। उधर मुल्लाजीकी बुरी हालत थी। छत्ता टूटकर मुल्लाजीके ऊपर गिरा और दर्जनों बर्रे मुल्लाजीकी खोपड़ी तथा शरीरसे चिपट गईं। नमाज़ कज़ा हो गई और चीखता-चिल्लाता बेचारा मुल्ला मौलवी साहबके पास आया तथा सिसकता हुआ बोला, "मौलवी साहब, आपके किसी लौंडेने ढेलेसे छत्ता तब गिराया, जब मैं नमाज़ पढ़ रहा था। नमाज़ कज़ा हो गई और मैं मरने लायक हो गया हूं।" मुल्लाकी बात सुनकर मौलवी साहब आगबबूला हो गये और चार-पाँच छड़ियाँ लेकर गरजे, "बताओ, किस बदमाशने यह शरारत की है ?" झंडूसिंहने एकदम खड़े होकर कहा, "पेशकारके लड़केने ढेला मारकर छत्ता गिराया था।" मौलवी साहबने आव गिना न ताव और पेशकारके लड़केपर छड़ियोंकी वर्षा होने लगी। लड़का इतना हक्का-बक्का हो गया कि कुछ कह नहीं पाया। मौलवी साहबने मारते-मारते लड़केको बिछा दिया और यही समझा कि अपने बापकी दुश्मनी लड़केने मुझसे निकाली है। दस बारह दिन बाद लड़का ठीक होकर स्कूल आने लगा। पिटाईकी बात अब पुरानी हो गई थी। पेशकारने मौलवी साहबसे क्षमा माँग ली थी, "मुल्लाजीसे मेरी लड़ाई है; पर मज़हबके मामलेमें जो बेहूदा हरकत मेरे लड़केने की है, उसपर मैं शरमिन्दा हूं।" लड़केके मना करनेपर भी किसीने विश्वास नहीं किया।

गौना कराकर युवक झंडूसिंह चले आ रहे थे। पत्नी रथमें पर्दा किये बैठी थीं। शहरके कुछ मनचले युवक रथके इधर-उधर चलकर घूरके देखने लगे। झंडूसिंहने यह हालत देख रथ रुकवा दिया। स्वस्थ तो थे ही, घोड़ीसे उतरकर एक मनचलेको हाथसे पकड़कर रथके पास लाये। अपनी पत्नीको पर्दा हटाकर मुँह दिखानेके लिए कहा। इस प्रकार सबको दिखाकर बोले, "देखो कितनी सुन्दर है। पर तुम्हारे घरके लिए नहीं है। दर्शन कर लिये, अब वापस जाओ, अन्यथा मुझसे लड़ना पड़ेगा।" सब लज्जित होकर चले गये।

हम लोगोंपर जमींदारोंने मुकदमा चलाया कि क़ानूनके विरुद्ध हम लोगोंने पेड़ लगा लिये हैं, अतः हमें बेदखल कर देना चाहिए। ठाकुर झंडूसिंह हमारे गवाह थे। जमींदारोंके वकीलोंने चुनौती दी थी कि ठाकुर झंडूसिंहकी गवाही बेकार रहेगी, क्योंकि वे हमारे मित्र और साथी हैं। हमारा कहना था, पेड़ पुराने हैं। ठाकुर झंडूसिंहकी गवाही इसी बातकी थी। मुकदमा पेश हुआ। मजिस्ट्रेटने ठाकुर झंडूसिंहसे पूछा—"आप किस सनमें पैदा हुए ?"

झंडूसिंह—"मैं किसी सनमें पैदा नहीं हुआ।"

मजिस्ट्रेट—"आप तो मिडिल पास हैं ?"

झंडूसिंह—"हाँ, हिन्दी-उर्दू मिडिल पास हूँ।"

मजिस्ट्रेट झल्लाये—"तब फिर आपको यह नहीं मालूम कि आप किस सनमें पैदा हुए ?"

झंडूसिंह—"मैं कहता हूं कि मैं सनमें पैदा नहीं हुआ।"

मजिस्ट्रेट बिगड़कर—"तो तुम्हें जन्म-संवत् भी नहीं मालूम ?"

झंडूसिंह—"हाँ साहब ! मैं चौहान ठाकुर हूं, जन्म-घड़ी, मुहूर्त, समय, दिन, संवत् सब मालूम है। मेरे जन्मसे सन् और हिजरीका क्या सम्बन्ध ?" (इसके बाद उन्होंने सब बता दिया।)

जमींदारके वकीलसे जब जिरह हुई, तब वकीलने पूछा—"पंडितजी आपके दोस्त हैं ?"

झंडूसिंह—"दुश्मनी तो नहीं है। उन्हें इलाका भर जानता है, मैं भी जानता हूं।"

वकील—"आप पंडितजीके यहाँ अकसर जाया करते हैं और क्यों जाते हैं ?"

झंडूसिंह—"उधर होकर मेरी ससुरालका रास्ता है। बर्रोंमें पानी-पत्ता करता हूं।"

वकील—"आपने पेड़ देखे हैं ? कैसे देखे हैं ?"

झंडूसिंह—"पेड़ मैंने ऊपरसे भी देखे हैं, बीचसे भी देखे हैं, नीचेसे भी देखे हैं।"

वकील—"यह क्या बात हुई, ऊपर, बीच और नीचेसे।"

झंडूसिंह—जब ऊँटपर बैठकर ससुराल जाता हूं, तो पेड़ ऊपरसे दिखाई पड़ते हैं, घोड़ेपर बैठकर जाता हूँ, तो बीचसे दिखाई पड़ते हैं। जब पैदल ससुराल जाता हूँ, तो नीचेसे पेड़ दिखाई पड़ते हैं।"

अन्तमें वकीलने झुँझलाकर जिरह करनी ही छोड़ दी। अदालतोंमें उनके इस प्रकारके जवाब सैकड़ों हैं।

स्व० गणेशशंकर विद्यार्थीपर जब दरोगा शिवदयाल सिंहने मानहानिका मुकदमा चलाया, तब ठाकुर झंडूसिंह 'प्रताप' की ओरसे गवाह थे। स्व० गणेशजी ठाकुर झंडूसिंह से इतने प्रभावित थे कि जब कभी गणेशजी हमारे गाँव किरथरा आते, तो ठाकुर झंडूसिंहको जरूर बुलाया जाता। एक दिन अलावपर तापते हुए गणेशजीने सहज स्वभावसे ठाकुर झंडूसिंहसे पूछा—"ठाकुर साहब, आपकी गृहिणी कुछ पढ़ी-लिखी भी हैं ?" ठाकुर झंडूसिंहने तुरन्त उत्तर दिया—"अरे विद्यार्थीजी ! हमारी तो घररहनी है, आप लोगोंकी ही संग्रहणी होनी हैं।" गणेशजी गृहिणी और संग्रहणी शब्दके प्रयोगपर कहकहा लगाकर हँसे और घण्टों तक ऐसा ही मज़ाक चलता रहा। गणेशजीका एक विचार था कि 'प्रताप'के गवाहोंपर एक लेखमाला लिखी जाय, जिसमें ठाकुर झंडूसिंहपर एक बड़ा लेख हो।

ठाकुर झंडूसिंहकी सूझ स्वाभाविक, बुद्धि बड़ी पैनी थी। मक्खनपुर से सटे तुरकियाके नगलामें जो मुसलमान हैं, वे पहले चौहान ठाकुर ही थे और ठाकुर झंडूसिंहके पुराने खानदानके। ठाकुर झंडूसिंहकी एक मुसलमानसे बातें हो रही थीं तो मुसलमानने कहा, "ठाकुर साहब, हमारे बाप-दादे तो एक ही थे, पर हम कलमा पढ़ते हैं और आप गायत्री जाप करते हैं।"

ठाकुर झंडूसिंह बोले, "हाँ, मैं सपना देखता हूं, तुम ख्वाब देखते हो, पर किसनजी और जसोदाको अब भी तुम नहीं भूले। पहले तुम कहते थे, 'लाई लाई लै लला मोंह मूँदि रसु लै लला', पर जसोदाजीकी उस बातको तुम अब यों कहते हो, 'ला इलाही इल्लिला मुहम्मद रसूल्लिला'।" ठाकुर झंडूसिंहकी बात सुनकर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ गए।

डाक्टर स्पूनरके नामसे अंग्रेजी साहित्यके जानकार परिचित हैं। अक्षर बदल कर जो शब्द और वाक्य वे बनाते थे, उसे अब भी स्पूनरिज्म कहते हैं। ठाकुर झंडूसिंह भी इसी तरह प्रायः बोला करते थे। पर हिन्दीमें इस प्रकारके वाक्योंके लिए कोई शब्द नहीं है। ठाकुर झंडूसिंह हिन्दीके डाक्टर स्पूनर थे। कभी-कभी तो वे लगातार ऐसे वाक्य बोला करते। एक दिन उन्होंने अपनी चौपाल पर कहा, "पंडितजी चढ़ा मढ़े भूसा कुत्तत ऐं।" चूँकि कुत्ते भोंक रहे थे, इससे मैं समझ गया कि ठाकुर झंडूसिंहने 'मढ़ा चढ़े कुत्ता भूसत ऐं' के स्थानपर यह बात कही है। हँसी खतम होनेसे पहले ही वे बोले, "लक्खनपुरके माला आ रहे हैं।" असलमें मक्खनपुरके एक लाला आ रहे थे।

ठाकुर झंडूसिंह बड़े ही सहृदय पुराने ढंगके ठाकुर थे—ब्राह्मणोंके भक्त और पर्दे के कायल। एक दिन वे घर में बिना मठारे चले गए, तो देखा पुत्रवधू आँगनमें मुँह खोले काम कर रही है। ठाकुर झंडूसिंह एकदम पास जाकर बोले, "राम राम सा ब !" उनकी पुत्रवधू ठाकुर झंडूसिंहके जीवन भर फिर कभी बिना पर्दा किए आँगनमें नहीं आई।

एक बार ठाकुर झंडूसिंहकी ठकुरानीने गंगादशहराके लिए शिकोहाबादकी नहरपर सकुटुम्ब जानेको कहा तो ठाकुर साहबने आज्ञा दे दी कि खाना बनाकर रख लिया जाय और डटकर मेला देखा जाय। प्रातःकाल चौपालसे उठकर वे घर गए और मेलेकी तैयारी पूरी देखी। ठाकुर झंडूसिंहने अपने और अपने पुत्रके लिए खाना मँगाया और लड़केसे कहा कि वह भी पुत्रवधूसे कह दे कि खाना खा ले। आज्ञा माननी होगी। खाना खाकर ठाकुर साहबने अपनी ठकुरानीके कंधोंमें तीन-चार धक्के मारे और पुत्रसे बोले, "बेटा, तू भी भीतर जाकर बहूके धक्के मार आ। मेलेमें धक्के ही तो खाना चाहती हैं ये, सो घरवालोंके धक्के कहीं अच्छे हैं।" सब लोग हँसकर घर रह गए। खाना सारे दिन मजेसे खाया गया।

बहेरा पहुंचकर यह मुम्किन नहीं था कि ठाकुर झंडूसिंह बिना पूरियाँ खिलाये वापस कर देते। ब्राह्मणको कच्चा खाना तो वे खिला ही नहीं सकते थे। एक दिन प्रातःकाल शिकारको उधर जा निकला, बहेराके ऊसरमें दो हिरन मारकर मैं ठाकुर झंडूसिंहकी तरफ जा पहुँचा। पहले उन्होंने पालागन किया और फौरन दूध पीनेके लिए कहा। कलेऊ तबतक बनेगी। भीतर घरमें ले गए। मैंने कहा, "भैंसका दूध मैं नहीं पीऊँगा और खानेकी कोई इच्छा नहीं है।" व्यंगकी हँसीमें वे बोले, "पेटमें विद्या भर ली है, जगह कहाँ है, जो खाओ। भैंसका दूध क्यों नहीं पीते, क्या भारी होता है ?" इतना कहकर उन्होंने कटोरी उठाई और ठकुरानीसे बोले, "हो तो तू बूढ़ी गई है, पर पंडितजीकी भाभी लगती है, हो सके तो थोड़ा दूधका प्रबन्ध कर दे।" ठकुरानी हँसी और बोली, "तुम्हारी ठट्ठा बुढ़ापेमें भी नहीं गई। तुम्हारे नाती भी हैं।" ठाकुर साहबने कहा, "यह ठट्ठा तो दमके साथ जायगा।"

'हिन्दू संसार' के मानहानि केसमें ठाकुर झंडूसिंह हम लोगोंके साथ देहरादून और हरिद्वार रहे। हिन्दू संसारकी

ओरसे वे पैरोकार थे। उन दिनोंके उनके हँसी-मज़ाक इतने अधिक हैं कि समझमें नहीं आता कि किस मज़ाकको लिखा जाय और किसको नहीं। बदरीनाथके रखलसे मिलनेके लिए जब मैं स्वामी विद्याभूषण बनकर जनवरी माहमें गया, तब ठाकुर झंडूसिंह एक शिष्यके रूपमें मेरे साथ थे। मैंने उनसे कह दिया था कि चढ़ाईके मुकाबलेमें पहाड़का उतार खतरनाक होता है। पर उन्होंने मेरी एक न मानी और कई दिनोंकी कठिन चढ़ाई और उतराईके बाद वे लँगड़े-से हो गये। उनकी गति बहुत धीमी हो गई तो, मैंने उनसे कहा, "कहिए, अब क्या हाल है?"

तब हँसकर बोले, "पंडितजी, उतारसे पाला पड़ा है। जब उतारसे पाला पड़ता है, तो पुरुषकी एक नहीं चलती।" उतार शब्दके प्रयोगको सुनकर मैं हँस पड़ा। सौ-सवा-सौ मीलकी पैदल यात्रा ठाकुर झंडूसिंहके साथ मजे से कट गई।

एक दिन भले-चंगे शामको सोये। थोड़ी-सी बीमारी—हैजेसे पीड़ित हो, उससे भी हँसी-मजाक करते हुए वे इस दुनियासे चल पड़े। ठाकुर झंडूसिंहकी स्मृति अब भी बझेरा और मक्खनपुरके आसपास ताजी है। उनकी-सी सजीवता इन पंक्तियोंके लेखकने कहीं भी नहीं देखी। बिना हँसी-मजाकके उनसे रहा ही न जाता था। सुख हो या दुःख, वे जीवनको एक सजीवताका रूप समझते थे। जब थोड़ी-सी बीमारीसे वे सफल मजाक न कर सके, तब सबको बिलखता छोड़ चल बसे। दूसरी दुनियामें शायद हँसी और विनोद मूर्त्तिमान होकर प्रस्फुटित हो रहा होगा।

सावन-गीत

: : रंजन सूरिदेव

धरा-व्योमके घाट-घाटपर लगा सावनी मेला!
नभमें जलद जलदमें शीतल सुधा-सलिल अति निर्मल,
पिघल-पिघल कर, गगन-पटलपर फैल रहे घन-बादल,
ज्यों विधुराके रुदन-अश्रुसे श्याम गालपर काजल,
घुमड़-घुमड़ कर, घहर-घहर कर करता ठेलमठेला,
लगा सावनी मेला!

एक-एक कर बादल का दल धरतीपर झुक आता,
हवा परस से आपस में सब टकरा कर मुस्काता,
मचल-मचल कर, झूम-झूम कर चलता, कुछ-कुछ गाता,
हहर-हहर कर, गरज-गरज कर, करता नभ में खेला,
लगा सावनी मेला!

तनमें सुरभि, सुरभिमें मादक मधु-मदिराका प्याला,
चंचल नयन, नयनमें उन्मन तरल सरल-सी हाला,
सिहर-सिहर कर, थिरक-थिरक कर, ले बूँदों की माला,
घन-कण-कण से उलझ-सुलझ कर चलता पछुवा-रेला,
लगा सावनी मेला!

मुखपर चमक, चमकमें चंचल अभिनव विभा सलोनी,
अधर दबाकर, पलक झुकाकर, घनमें आँख-मिचौनी,
दहक-कहक कर, तड़क-तड़क कर, दिखला शोखी-सानी,
मचा रही है खेल दामिनी मध्यनिशा की वेला,
लगा सावनी मेला!

विमल मृदुलतर चंचल श्यामल वधु-वसुधाका अंचल,
पुरुष-रिझसक कर छूता परदेशीका व्याकुल हृत्तल,
लहर-लहर कर, मचल-मचल कर, यौवन नूतन उच्छल,
देता मनको एक वेदना-बोझिल विपुल झमेला,
लगा सावनी मेला!

सन-सन करती घोर भयंकर अन्धकार में रजनी,
छिपा शशीमुख रमण-मिलनको चली सुन्दरी सजनी,
तोड़ कूल-कुल प्रबल वेगसे चली मदीली तटिनी,
ठहर-ठहर कर होता सुन्दर रिमझिम गान रसीला,
लगा सावनी मेला!

मृदुल शयन पर रूठी रमणी पड़ी सजनसे हटकर,
सुन घन-गर्जन हृदय-विकम्पन भयसे चकित सिमटकर,
अपराधी प्रिय-उर से अपना उन्नत हृदय लगाकर,
हँस-हँस उन्नत बिखरा देती यौवन-मदिर नशीला,
लगा सावनी मेला!

वनके थल हैं जल से पूरित सरसिज पंकिल पिच्छिल,
सुरभित कुरबक, कुटज प्रफुल्लित, केतक केसर-उज्ज्वल,
गुन-गुन-गुन-गुन मधुकर-मधुरव मुखरित, किसलय कज्जल,
बिलखा-बिलखा वियोगिनीको बहता पवन हठीला,
लगा सावनी मेला!

अलका पुलकित मुदित कि जलधर यक्ष-सन्देशा लाया,
उरमें आह, आहमें कविका गीत मधुर-सा आया,
द्वार-द्वार पर, राह-राह पर सावन हँसता आया,
हरी छाँह में छिपा किसी का गूँज उठा स्वर गीला,
धरा-व्योमके घाट-घाट पर लगा सावनी मेला!

गुजराती संत कवयित्री गवरी बाईकी हिन्दी कविता

विनयमोहन शर्मा

लगभग दो वर्ष पूर्व डूंगरपुरके बड़नगरा नागर ब्राह्मण कुलमें गवरी बाईका जन्म हुआ था। गुजरात और राजस्थानमें इनके भजन बड़े चावसे पढ़े और सुने जाते हैं। कहा जाता है कि इनका जीवन मीराके समान ही अभावपूर्ण रहा है। जब ये पाँच वर्षकी थीं, तभी इनका विवाह हो गया था और विवाहके एक सप्ताह पश्चात् ही इनका सुहाग रूठ गया था। जब इनके पतिके देहान्तका वृत्त इनसे कहा गया, तब इन्होंने अत्यन्त सरल भावसे कहा, "मेरा पति तो भगवान है। मुझे कौन विधवा बना सकता है?"

सन् १८८२ में अचरतलाल मणिराम भचेतने इनका एक जीवन-चरित छपवाया था। भचेनका कहना है कि उन्होंने गवरी बाईका जीवन उन वृद्धोंके मुखसे सुना है, जिन्होंने इनके दर्शन किये थे। इस अज्ञात कवयित्रीके कीर्तनोंको प्रकाशमें लानेका श्रेय बम्बईके गुजराती पत्रके स्वामी स्वर्गीय इच्छाराम देसाईको है। उन्होंने 'बृहत् काव्य दोहन' भाग १ में इनके ग्यारह पद संकलित किये हैं। प्रतीत होता है कि बाईके जीवन कालमें ही किसी भक्तने इनके भजनोंका संग्रह कर लिया था। अहमदाबादमें गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी के संग्रहालयमें 'गवरी कीर्तनमाला' नामक एक हस्तलिखित प्राचीन कृति विद्यमान है। श्री मस्त नामक एक भावुक सज्जनका दावा है कि "मुझे भी एक स्वतन्त्र हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है, जिसमें कीर्तनोंकी संख्या अहमदाबादकी प्रतिसे कुछ अधिक है।" मस्तजीने नागरी लिपिमें लिखित मूल पाण्डुलिपिसे गुजराती लिपिमें नकलकर अपनी प्रति तैयार की है।

'गवरी बाई नुं जीवन-चरित्र' में भचेतने लिखा है कि विधवा होनेके पश्चात् ग्यारह वर्षकी आयुसे बाईने घर ही में एकान्तवास ग्रहण कर लिया था। वे अपना सारा समय शास्त्र-पुराणोंके अध्ययन और कीर्तन आदिमें व्यतीत करती थीं। धीरे-धीरे उनके सात्विक भक्तिपूर्ण जीवनकी ख्याति चहुंओर फैलने लगी। एक बार स्वयं डूंगरपुरके राजा साहबने उनके घर जाकर उनके दर्शन किये और उनके भक्ति-भावसे प्रभावित होकर उनके लिए मन्दिर भी बनवा दिया। जब मन्दिरमें ठाकुरजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी गई, तब बाई अपनी दो विधवा सम्बन्धिनियोंके साथ उसी मन्दिरमें रहने लगीं। मन्दिरके निर्माणके सम्बन्धमें उनका एक पद भी मिलता है :—

गिरधर गवरी का मन्दिर बनवाया।
बागड़ रेखन गिरपुर माहे भक्ति राह चलाया॥
ए मंदिरकी सुन्दर शोभा देखत दिल लुभाया।
संवत् १८३६ माहे माघ शुक्ल पक्ष आया॥
वसन्त षष्ठो सतगुरु वारे रामलला पधराया।
कथा किरतन अन्धे ग्याने धूनमें ध्यान लगाया॥
प्रेम प्रीत और गुरुकी किरपा दिन-दिन होय सवाया।

(पद-संख्या १३)

बाईकी महिमासे आकृष्ट हो दूर-दूरसे भक्तजनोंका वहाँ मेला लगने लगा। बाईका वर्ण गौर, मुख-मुद्रा तेजस्वी और कीर्तनशैली मनमोहक थी। अतः श्रोताओंपर उनके सान्निध्य का अत्यन्त प्रभाव पड़ता था। एक बार दो अज्ञात साधु मन्दिरमें आये और उन्होंने एकान्तमें बाईको आत्मज्ञानका उपदेश दिया। कहते हैं, तभीसे उनकी 'सुन्न समाधि' लगने लगी। अपनी समाधिका अनुभव उन्होंने अपने कई पदोंमें व्यक्त किया है। एक पद है :—

सुन रे सन्त ग्यानी को अनहद धुनी।
गगन मँडल में बाजे बाजे मुरली सुनी।
प्राण कुं बंध कर पवन बंध से लाया।
चन्द्र सुरज एक ही घर मिलाया।
गंगा यमुना उलटी बही झलक मोती,
घटमें उजाला भया झलझल ज्योती।
पांच सखी अमीरस पीवे हिलमिली,
मधुकर विलंब्यो है जहाँ कमल की कली।
गवरी सतगुरु चरण ध्यान उन मुनि धरी।
घट-घट सचराचर में निरखत हरी।

कबीर आदि निर्गुणी सन्तोंकी शून्य समाधिकी साधना का यह अनुभव-जनित वर्णन है। एक बार मन्दिरकी किसी सेविकाके मनमें सन्देह हुआ कि बाईकी समाधि कहीं ढोंग तो नहीं है। अतः उसने समाधि-अवस्थामें ही उनकी जंघामें सुई चुभो दी; पर जब उससे उनकी समाधि भंग न हुई, तो वह बड़ी घबराई और सुईको जंघामें छोड़कर ही भाग गई। कहा जाता है कि उस सुई छेदनेवाली सेविकाको कोढ़ हो गया। परन्तु बाईसे क्षमा-याचना करनेपर वह रोगमुक्त हो गई थी। सन्तोंके जीवनके साथ ऐसी आश्चर्यजनक घटनाओं का प्रायः सम्बन्ध रहता ही है।

सन् १८६० में बाईने डूंगरपुर छोड़ दिया। जब वे मथुरा-वृन्दावनकी ओर जा रही थीं, तब मार्गमें जयपुर-नरेश के आग्रहसे उन्होंने कुछ समय उनके यहाँ व्यतीत किया। इसी अवधिमें काशी-नरेशने उन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया और वे काशी-वासकी इच्छासे वहाँ चली गईं और अन्त तक वहीं रहीं। मृत्युके कुछ समय पूर्व ही उन्होंने अपने अन्तिम प्रस्थानकी घोषणा कर दी और संवत् १८६५ में देहका परित्याग कर दिया। उस समय उनकी आयु पचपन वर्ष की थी।

बाईके भजन—बाईके भजनोंकी संख्या कितनी है, यह कहना कठिन है; परन्तु प्राप्य संग्रहोंमें इनकी अधिकसे अधिक संख्या ६१० है। उनमें विभिन्न देवताओंकी स्थिति, अवतारी पुरुष राम और कृष्णका लीला-वर्णन, गुरु और नाम-महिमा तथा नीतिपरक गीत हैं, जो छत्तीसों रागोंमें गाये गये हैं। जिन रागोंका उल्लेख है, वे हैं कनडी, कल्याण, काफी, खमायची, गरबी, गवड़ी, जंगलों, जंगलानो, जयजयवन्ती, टोडी, देवगांधार, धनासरी, धमाल, धोल, नट, पद, पुरबी, प्रभाती, पंजाप, बेहागेड़ो, भैरव, मलार, मारू, सोयणी, मेवाड़ो, रामकली, रेखतो, हिण्डोलो, ललित, वसन्त, वैलावल, साखी, सारंग, सोरठा, सकैत और आरती।

इससे स्पष्ट है कि बाईको संगीतका ज्ञान था। मध्ययुगीन सन्तोंमें कीर्तनकी परिपाटी रही है और कीर्तन संगीतबद्ध होता था, जिससे श्रोता सहज आकृष्ट होते थे। तेरहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रमें जिन सन्तोंके हिन्दी-पद प्राप्त हुए हैं, वे किसी-न-किसी राग-रागिनीमें बँधे हुए हैं। बाईका संगीतबद्ध कीर्तन मध्ययुगीन सन्त-परम्पराके अनुकूल है।

पदोंकी भाषा—बाईने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें मधुर पद-रचना की है। हिन्दी पदोंकी भाषा गुजराती, राजस्थानी, खड़ी बोली और ब्रजसे मिश्रित है। स्थानीय डूंगरपुरी भाषाकी भी यत्र-तत्र छाया आ गई है।

बाईकी साधना—प्रतीत होता है कि गवरी बाई वैधव्यके प्रथम प्रहरमें राम और कृष्णकी सगुणोपासनामें रत रहीं। बाह्य जगतको शुष्कतामें हरीतिमा अंकुरित करनेके लिए उनकी यह भूमिका स्वाभाविक थी। कौशल्या रामको गोदमें खिला रही हैं। बाईका वात्सल्य उमड़ उठा है। वे गाती हैं :—

कौशल्या हरि कुं गोद खिलावे।
सिव ब्रह्मादिक और सनकादिक याको पार न पावे।
सिरपर मुकुट मकराकृति कुण्डल सोभा वरणि न जावे।
मन्द हास कमल दल लोचन निरख परम पद पावे।
फूली कौसल्या पुलकित गात हेरे हरि कुं हसावे।
दास गवरी ये छवि निरखन आनन्द उर न समावे।

रामके समान कृष्ण भी बाईको मीठे लगते हैं :—

मीठो लागे छोरो गिरधारी जू।
मोर मुकुट कटि पीताम्बर, बनि चन्दनकी खोर।
यमुना तीरे धेनु चरावे मुरलि बजे घनघोर।
मोहिनी सूरत माधुरि मूरत मोहन चित्त चकोर।
प्रेम मेघ मँद मँद बरखाई, मधुरे बोले मोर।
अन्तर में निरन्तर निरखूँ उठे आनन्द अंकूर।
दिन-दिन प्रेम अधिक लागयो री बढ़यो नेहको पूर।
गवरी गिरधारीसे लव लागी रे जैसे चन्द चकोर।

जब नन्दको छोरा ग्वाल-बालके साथ वृन्दावनकी कुञ्ज-गलियोंसे लौटने लगता है, तब उसकी छवि देखकर कौन निहाल नहीं हो जाता?—

आरी री वे आवे गोपाल।
सुन्दर मुकुट मोर पंखवारो कमल नयन विसाल।
चन्दन खोर किये मनमोहन उर सोहे वनमाल।
पीत पट कट कछन आछे, ललित सोहावणि चाल।
संग सखा है सब लिये री मुरलि बजावे रसाल।
गवरीके प्रभुकी छवि निरखन नयना भये निहाल।

दूसरे पदमें कहती हैं :—

तन-मनकी सुधि भूल गई रे देखनको ललचाऊँ जी।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन छवि ऊपर बलि जाऊँ जी।
बाहर देखूँ हरि भीतर देखूँ हरि हरिमें मैं तो समाऊँ जी।

मोहनकी जब मुरली-ध्वनि श्रवणोंमें सरसती है, तब सब सुध-बुध बिसर जाती है। पशु-पक्षी लुभा जाते हैं, यमुनाका जल थिर हो जाता है, रवि-शशिका रथ ठहर जाता है, पवन रुक जाता है और शंकर जैसे तपस्वी समाधिमें भूल जाते हैं, तब गवरी कहती है—'हम तो अबला हैं, भला हम अपनेको कैसे रोकें?' कितना सहज प्रश्न है।

वृन्दावनमें वसन्त बिखरा हुआ है, आकाशमें चाँदनी क्रीड़ा कर रही है, गोपियोंका मन रासके लिए मचल उठता है :—

वृन्दावन सघन कुंज, रास रचाइ,
जमुनाके सभग नीर कदमकी छाई।

बाजत मृदंग ताल, नाचत हैं सुलभ चाल,
मधुर बोलें रसाल, गान सुन्दर गाई।
करत हैं नरत नाद, घुघरी झांझर वाद,
तना धइ, तना धइ, उभे तान मिलाई।
मुरली नागर नंद, ज्यु तारन बिचे चन्द,
नाचत है मंद-मंद सुन्दर सुहाई।
जुवति जन जुथ मिलि राधिका रस रंग भरी
बरस उर झर भरी झलमलाट झाई।
एक-एक गोपी गोपाल झलकत है तिलक माल
गले मोतनकी माल, नटवर कन्हाई।
खंजनसे चपल नयन, लाजत है कोटि चंद,
निरखत मन भयो चंग, सोभा सुखदायी।

और भी--

वृन्दावनकी सुन्दर सोभा सुन्दर आसी मास रे।
सुन्दर कुंजन कलिनकी सोभा ज्या हरि रंमछे रास।
सुन्दर गोपी, सुन्दर गोपाल, सुन्दर तिलक भाल रे।
मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल, कमल नैन विसाल रे।
पीताम्बर कट कछनी काछे, ललित त्रिभंगु चाल रे।
मुरली सुन्दर स्याम बजावे, मोह्या सुर मुनि नार रे।
गोपी सणगार आभूषण अंगे सुन्दर एकावल हार रे।
चरण चोली सुन्दर चुनड़ी झाँझरका झनकार रे।
राखड़ी गूंथी मोती सवारि राधा झाँक झँवार रे।
पांवल नेपुर छंदरी बाजे घुघरीका घमघार रे।
ज्युं तारा बीच सोभे चन्दा त्युं गोपी मधे गोपाल रे।
प्रत प्रत गोपी गिरधर बाजा बहु विध बाजे रसाल रे।
ब्रह्मादिक याको पार न पावे अखण्ड रास गिरधारी रे।
गवरी ठाकुर गोपीनाथ कहावे तो भी है ब्रह्मचारी रे।

बाईने दान-लीलाके पद भी रचे हैं, जो कृष्ण काव्य परम्पराके अनुसार हैं। उनका एक पद है:—

हारे कान्हा पल्लो मेरो मेल रे।
मही छलकाये मेरी चुनरो भंजाये हरि जाय जसोदा कहुं फेल रे।
बरज रही बरजो नहीं माने सुन्दर नन्दजीको छेल रे।
गवरीके प्रभु गिरधर मिलोयो रंगनी भइ छे जु रेल रे।

नन्दजीके लाड़ले वृन्दावनसे मथुरा चले जाते हैं। गोपियोंके हृदय मुरझ जाते हैं। कानोंमें वंशीकी ध्वनिका रस खंडित नहीं हो पाता। उनकी आकुलता पुकार उठी है:—

एक बिरिया ब्रिज आव रे।
श्री नन्दजुके लाडले एक बिरिया ब्रिज आव रे।
दिनु दिनु मोकुं कल न परत रे, बंसीकी धुन सुनाव रे।
वृन्दावनकी कुंज गलिनमें रंग भर रास रमाव रे।
गवरीके प्रभु गिरधर नागर मुख देखदा चाव रे।

और भी--

हरि बिना नहीं जोवुं रे।
जल बिन मच्छी नहीं जीवे तलफ जीव जाय छूटी रे।
काशी जाकर करवत लेऊं मरूं विष खाई घूंटी रे।
घर-आँगनमें पल न सुहावे जोउं बाट चढ़ ऊँची रे।
गवरी कहे गिरधर मलिया जगत जाल थी छूटी रे।

कृष्ण-काव्यमें जिस प्रकार वृन्दावन-विहारी जमुनाके पुलिनोंपर गोप वधुओंसे होली खेलते हैं, उसी प्रकार राम-काव्यमें भी राम अयोध्याकी नागरियोंके साथ सरजू-तटपर होली खेलते हैं। गवरी बाईने वसन्त रागमें इसी प्रकार की होली गाई है:—

हे री जल कैसे जाऊँ रघुनाथ खेले फाग री।
सरजू तीर धम मची रे जल भर कैसे आऊँ।
राम लछमन भरत शत्रुघन सुन्दर प्रभु जोरी रे।
अबीर-गुलाल उछाले उमंग भर गावत राग होरी रे।
ताल मृदंग झाँझ डड बाजे अंग उमंग मुनाऊँ।
हूं मारो रंडापन गमाऊँ तनकी सुध बिसराऊँ।

इस पदमें माधुरी भावकी झलक है, जो राम-काव्यमें तुलसीके अनन्तर कहीं-कहीं परिलक्षित होता है।

बाईकी साधना सगुण भक्तिसे प्रारम्भ हुई; पर उसका पर्यवसान निर्गुण भक्तिमें हो गया। सद्गुरुकी कृपासे उनके राम और कृष्ण केवल अवतारी पुरुष ही नहीं रहे, व्यापक ब्रह्मके प्रतीक बन गये:—

सकलमें व्यापि रह्यो परण रूपे रघुराई।
जित देखुं तित गिरधारी, गुरुऐ ज्ञानेन्द्रिय उघारी।
बाहर-भीतर मे जो वनमालो मोहि दरसाई।

संतोंकी तरह बाईका भी राम नामके प्रति नेह उमड़ता है:—

नेहड़ा नामसे लगाऊँ
नामसे लगाऊँ परम पद पाऊँ
रात दिवस सवत सपनेमें राम-राम रसनाए गाऊँ।

कितने दृढ विश्वासके साथ 'नाम' की महिमा गाती है:--

हरि नाम बिना और बोलना क्या?
हरि कथा बिन और सुणना क्या?
सुखसागर सामलीवो त्यागी, कुबड़के घर डोलना क्या?

घट भीतर गिरधारी पाया बाहर दिग फिर खोलना क्या ?
आत्मा अखंड आवे ने जावे जनम नहीं फिर मरना क्या ?
गवरी ब्रह्म सकलमें जाज्या जान्या तो जग बोलना क्या ?

इस पदमें बाईने खड़ी बोलीमें बहुत-कुछ विशद रचना की है। गवरी ऐसे देशमें जानेको आतुर है, जहाँ राग-द्वेष निःशेष हो जाता है। सदा एकरसता छाई रहती है:--

चलो हंसा जइये वैसे विदेस
जहाँ जनम जरा नहीं उस देस
जहां रवि ससि को नहीं परवेस
जहाँ दिन रजनी नहीं है लेस
हरख शोक कछु नहीं विकार
निजानन्द नित्य करत विहार
पवन कुं गम ना जह न होय
पंछी उड़ सके नहीं कोय
गवरी जहाँ नहीं जीव जन्तु रे
गोपी गोपाल रमे वसन्त रे।

प्रसादने सम्भवतः कुछ ऐसी ही मनोदशामें 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' गीत लिखा होगा। बाईने कुछ दोहरोंकी भी रचना की है। यथा :—

मात-तात और बन्धवा, थिर न रहे निरधार।
चेतनहारा चेत जो काया कांच विचार।
कनक कुण्डल अन्तर नहीं वेद विदान्त ही गाय।
गवरी कहे एक सन्तजन पूरण ब्रह्म समाज।
जीव ब्रह्म तो एक छे जोय जीव की जान।
घट-घटमें गिरधर बस्यो ज्यों फूलनमें बास।
भूल भई रे तू थको ज्युं दरपनवाली काई।
दिल दर्पन मांज्या बिना हरि देखा नहि जाई।
नजीक थी नेडो घणो दूर थको हरि दूर।
सद्गुरुको किरपा भई हरि देखे भरपूर।
मातो भयो जब ज्ञानको कहाँ रंक और राव।
अनुभव विद्या नोकमी कहाँ पढ़न को चाव।

गवरी बाईकी पदावलीके अध्ययनसे स्पष्ट है कि ये उचकोटिकी साधिका थीं और सगुण-निर्गुणके द्वन्द्व-भावसे परे थीं। इनमें अकृत्रिम कवित्त-शक्ति थी, जो पूर्ववर्ती सन्तों की भावधारासे अनुप्राणित थी। मीराके समान इन्होंने भी लोकापवादका उत्पीड़न सहा था, जिसकी प्रतिध्वनि इनके पदोंमें यत्र-तत्र सुन पड़ती है। यथा :—

कोई निन्दो कोई बन्दो
तुम सखे! मेरे स्मरथ स्वामी
कहा करें मोको संसारी।

हिन्दीकी निर्गुण भक्त-मण्डलीमें गवरी बाई निस्सन्देह उच्चासनकी अधिकारिणी हैं।

फरियाद

: : सीताराम 'प्रभास'

मोल बताना क्या प्राणोंका तुझ कातिल बेपीरको?
गीत सुनेगा तू? झंकृत कर साँसोंकी जंजीरको?

जल्दी कर जालिम, सिर हाजिर,
चला, चला शमशेर को;
रुकना मना, लिया सुन
राधाने वंशी की टेर को।

दुनिया के सब अपने सपने हुए, सभी लाचार हैं,
सब निराश, प्यासे पीते छवि-बसे दृगोंके नीरको!
मोल बताना क्या प्राणोंका तुझ कातिल बेपीरको?

मेरी दुर्बलता को ही अपराध
बड़ा समझा गया;
मैं तो मृग, पर भ्रमवशात् ही
व्याध बड़ा समझा गया।

करता क्या? समझाना किसको? कौन धुला है दूधका?
अरे सदैव सभीने चूमा निष्ठुरकी तस्वीरको!
मोल बताना क्या प्राणोंका तुझ कातिल बेपीरको!

काँटोंका ही राज्य, नित्य है
शासित जीवन फूल का,
मुसका जाती नियति, मिलेगा
रूप सभी को धूल का।

मेरी ही आकुल चंचलता कैसे तुझको खल गई?
दावा धधकी मधुवनमें, क्या हुआ वसंत-समीरको?
गीत सुनेगा तू? झंकृत कर साँसोंकी जंजीरको?

जो कुछ होता, उसके पीछे
अदभुत तेरी सैन है,
दुख तो दुख, सुख संचित करने
में भी जग बेचैन है।

माँझीको नौका ले जाना पार नहीं स्वीकार हो,
तो कैसे दोषी आरोही? कोसे गंगा-तीरको?
गीत सुनेगा तू? झंकृत कर साँसोंकी जंजीरको!

वैदिक कालीन संस्कृति

गोविन्दजी

वैदिक कालकी संस्कृतिका केन्द्र सरखती नदीका तट तथा उसका निकटवर्ती प्रदेश माना जाता है। आगे चलकर इस भू-भागको 'ब्रह्मावर्त' अथवा 'ब्रह्मर्षि-देश' के नामसे सम्बोधित किया गया। सम्भवतः इन्हीं देशोंमें वैदिक कालीन संस्कृति पनपी तथा पुष्पित हुई।

इस युगके अध्ययनकी सामग्री बहुत सीमित है। इस कालके न तो सिक्के ही हमें प्राप्त हैं और न शिलालेख ही मिलते हैं। लौकिक तथा ऐतिहासिक साहित्य भी इस कालके अप्राप्य हैं। साधनों तथा सामग्रियोंके अभावके कारण वैदिक संस्कृतिका सर्वाङ्गीण रूप हमें नहीं प्राप्त होता।

वैदिक संस्कृतिकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। वेद-कालके निर्णयमें ऋग्वेदका काल-निर्णय ही मुख्य है। भाषाकी कठिनता एवं प्राचीनताके कारण वैदिक मन्त्रोंके सच्चे अर्थोंको समझना भी कठिन हो गया है। इसलिए इस सम्बन्धमें कोई मत स्थिर करना सरल नहीं है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि वेदोंकी सृष्टि दो अरब वर्ष पहले हुई थी। अतः, वैदकालीन संस्कृति दो अरब वर्ष पुरानी है। श्री अविनाशचन्द्र दत्त भूगर्भशास्त्रके आधारपर उसे लाखों वर्ष पुराना मानते हैं। लोकमान्य तिलकने ज्योतिषके आधारपर इसे ८००० वर्ष पुराना कहा है। ज्योतिषके आधारपर ही जैकोबी इसे ४५०० वर्ष पुराना मानते हैं। भारतके बाहर पाये गये वैदिक संस्कृतिके चिह्नोंके आधारपर विन्टरनीटय इसे ३००० वर्ष पुराना बसाते हैं। मैकडालेनका कथन है कि वैदिक सभ्यताका प्रारम्भ २२०० ई० पूर्वके पहले ही प्रारम्भ हो गया था। मैक्समूलर १५०० ई० पू० से १२०० ई० पू० के बीच वैदिक संस्कृतिको विद्यमान मानते हैं।

वैदिक संस्कृति तथा सभ्यताके स्थानके विषयमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। लोकमान्य तिलक वैदिक संस्कृतिका स्थान उत्तरी ध्रुव मानते हैं। अधिकांश यूरोपीय विद्वान इस संस्कृतिका स्थान मध्य-एशिया मानते हैं। भारतीय विद्वानोंका एक समूह इस संस्कृतिका मूल स्थान भारतको ही मानता है। इन विद्वानोंका विश्वास है कि गंगा और यमुनाके बीचका भू-भाग ही इस संस्कृतिका उद्गम-स्थल रहा है। यहींसे इस संस्कृतिने पुष्पित होकर देश-विदेश तक अपने प्रभाव-परागको बिखेरा है।

वैदिक कालका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ऋग्वेद-संहिता है। यह बहुत प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण है। यह एक धार्मिक गीति-काव्यका संकलन है। इसमें दस मण्डल तथा १०२६ सूक्त (गीति) हैं। ऋग्वेद पूर्णतया धार्मिक ग्रन्थ है। उसमें विभिन्न देवताओंकी स्तुति की गई है। उसमें कुछ ऐसी भी ऋचाएँ हैं, जिनसे उस युगके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विषयोंपर प्रकाश पड़ता है।

जहाँ तक ऋग्वेदकी भाषाका प्रश्न है, वह लौकिक संस्कृत का पूर्व रूप है। भाषामें बहुत-कुछ साम्य है। वैदिक भाषा स्वराघात-प्रधान भाषा है। प्रत्येक स्वरका उच्चारण कुछ नीची आवाज़में होता है।

वैदिक भाषाको अर्थ-परम्पराके सम्बन्धमें कुछ कठिनाइयाँ हैं। वैदिक और लौकिक संस्कृतके बीचकी कड़ियाँ अप्राप्य हैं। अतः, कुछ शब्दोंके अर्थके विषयमें बहुत मतभेद है। यास्कका मत है कि वैदिक शब्दोंका अर्थ व्युत्पत्तिके अर्थपर लगाना चाहिए। कुछ कर्मकाण्डी लोगोंका कहना है कि कर्मकाण्डको ध्यानमें रखकर ही वैदिक शब्दोंका अर्थ करना उचित है। पाश्चमी विद्वान वैदिक ग्रन्थोंको निश्चित देश और कालका मानकर उन्हींके अनुसार अर्थ करते हैं।

वैदिक छन्द संस्कृत छन्दोंके पूर्व रूप हैं। गीति-काव्यकी जो परम्परा निकली है, वह वैदिक साहित्यमें भी मिली है। ऋग्वेदमें वार्त्तिक छन्दोंका प्रयोग हुआ है। तीन प्रकारके मुक्तक छन्द वैदिक साहित्यमें पाये जाते हैं—(१) गायत्री (२४ वर्ण), (२) अनुष्टुप (३२ वर्ण) और (३) त्रिष्टुक (४४ वर्ण)। अनुष्टुप छन्द बादकी संस्कृत-रचनाओं, जैसे वाल्मीकीय रामायण आदिमें भी पाया जाता है। त्रिष्टुक छन्दका प्रयोग रघुवंश आदि संस्कृतके काव्योंमें मिलता है।

वैदिक युगके मुख्य देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश नहीं थे। राम-कृष्णकी उपासना तथा उनके अवतारोंकी कल्पना भी इस युगकी देन नहीं है। तपस्या, भक्ति आदिकी भावनाएँ, जो बादके युगमें महत्त्वपूर्ण रहीं, उस कालमें महत्त्वपूर्ण नहीं थीं। कर्मकाण्डके सिद्धान्तोंका उल्लेख भी ऋग्वेदमें हमें नहीं मिलता।

ऋग्वेदमें जो स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ता है, वह है 'दैवत्ववाद'। दैवत्ववादमें परमात्माकी शक्तिको प्रकृतिके

विभिन्न रूपोंमें देखनेकी भावना है। प्राकृतिक शक्तियोंके अन्तर्गत ही देवताओंकी कल्पना की गई है। वे वैदिक देवता तीन रूपोंमें मिलते हैं :—

(१) देवलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता—वरुण, विष्णु, सविता (सूर्य), पूषा आदि।

(२) अन्तरिक्ष लोकसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता—इन्द्र, रुद्र, मरुत, मद्र आदि। इन्द्र शक्तिका प्रतीक है। जहाँ शक्ति, बल, ओज आदि दिखाई दे, वहीं इन्द्र है। रुद्र प्रकृतिका ध्वंसात्मक रूप है। मद्र प्रकृतिका रूप है।

(३) पृथ्वी लोकसे सम्बन्धित देवता—अग्नि, सोम, पृथ्वी आदि पार्थिव देवता।

आधा ऋग्वेद इन्द्र, अग्नि और सोमसे सम्बन्धित है। इन देवताओंकी स्मृति, उपासना और प्रार्थना ही ऋग्वेदमें मिलती है। वैदिक कालके लोग मूर्तिमें ईश्वरको न प्रतिष्ठित कर प्रकृतिको शक्तियोंमें ही प्रतिष्ठित कर पूजते थे।

अपने धर्मके समस्त दर्शनोंका मूल रूप हमें वेदमें मिलता है। आत्माका स्वरूप तो हमें ऋग्वेदमें मिलता है; लेकिन कर्म तथा पूर्व जन्मके सम्बन्धमें कोई मत नहीं मिलता। कल्पना है कि मृत्युके पश्चात् आत्माएँ पितृलोकमें चली जाती हैं। आत्माओंके लौटनेके बारेमें कोई कल्पना नहीं की गई है। सबसे पहले पितृलोकमें यम गये थे। वे ही पितृलोकके राजा हैं। स्वर्ग और नरककी कल्पना भी वेदोंमें नहीं की गई है। वैदिक कालमें कर्मकाण्डका वर्तमान रूप नहीं था, बल्कि यह यज्ञके रूपमें था। दो यज्ञ मुख्य थे:—

(१) देव यज्ञ (अग्निहोत्र)—वैदिक ऋचाओं द्वारा अग्नि में घी डालना तथा देवताओंकी उपासना। वैदिक कालमें यज्ञमें मांसका प्रयोग निषिद्ध था।

(२) पितृ यज्ञ—बड़े-बूढ़े (जीवित या मृतक) की उपासना तथा सेवा करना। इन्हीं दो यज्ञोंसे आगे चलकर पंच महा-यज्ञोंका विकास हुआ। वे हैं—(१) देव यज्ञ, (२) ब्रह्म यज्ञ, (३) पितृ यज्ञ, (४) बलिवैश्य—देव यज्ञ और (५) अतिथि यज्ञ।

ऋग्वेदमें नैतिक आदर्शोंपर काफी जोर डाला गया है। ऋतु अर्थात् प्राकृतिक नियमोंका पालन तथा सत्य इस युगमें जीवनका प्रमुख अंग रहा है। प्राकृतिक नियम तथा नैतिक आदर्शोंमें पूर्ण सम्बन्ध था। वैदिक युगके लोगोंका विश्वास था कि प्रकृतिके नियम अकाट्य हैं। दान और आतिथ्यकी महिमा ऋग्वेदके प्रत्येक सूक्तमें गाई गई है। जुआड़ो तथा शराबोकी निन्दा की गई है।

वैदिक कालमें गृहको इकाई माना जाता था। गृहके मुखियाको गृहपति कहा जाता था। वह एक प्रकारसे अपने घरका राजा था। अनेक गृहोंके संगठनको ग्राम कहते थे। ग्राममें एक मुखिया होता था, जिसे ग्रामणी कहा जाता था। अनेक ग्रामोंके समूहको जनपद कहते थे। जनपदोंका प्रमुख राजा होता था। राजा स्वतन्त्र नहीं होता था, बल्कि जनताकी रायसे ही वह शासन-कार्य करता था। राजाके लिए एक चुनाव होता था और उसमें जनपदोंके समस्त ग्राम और व्यक्ति योग देते थे। राजाकी सहायताके लिए वैदिक कालमें दो संस्थाएँ थीं—(१) समिति और (२) सभा। समिति, जो एक तरहकी बड़ी संस्था थी, जिसमें समस्त जन-पदोंके प्रतिनिधि रहते थे। सभा छोटी संस्था थी। समिति द्वारा कानून तथा न्याय-विधान बनता था। सभाका सदस्य होना सम्मानित पद माना जाता था। राजाका शासन अधिकारी-वर्ग द्वारा चलता था। उसमें सेनापति, पुरोहित, मुख्य ग्रामणी, आमात्य आदि रहते थे। राजाके उत्तराधिकार की समस्या अधिकारीवर्ग, समिति तथा सभाके सामने लाई जाती थी। वे लोग जो निर्णय देते थे, उसीके अनुसार राजाके उत्तराधिकारीका चुनाव होता था।

वैदिक कालका समाज दो प्रधान भागोंमें विभक्त था—(१) आर्य लोगोंका समुदाय और (२) दस्यु—अनार्य लोगोंका समुदाय। आर्य और अनार्य लोगोंमें विवाह-सम्बन्ध नहीं होता था, लेकिन स्वयं आर्योंके अन्दर खान-पान और शादी-ब्याहमें कोई बन्धन नहीं था। आर्योंके अन्दर एक वर्ग-व्यवस्था थी, जो आगे चलकर वर्ण-व्यवस्थामें बदल गई। मुख्य रूपसे तीन वर्ग थे—(१) पुरोहितवर्ग (ब्राह्मण), (२) राजन्यवर्ग (क्षत्रिय) और (३) जनवर्ग (वैश्य)। वैदिक कालमें विवाह एक स्थायी सम्बन्ध समझा जाता था। धार्मिक संस्कारके रूपमें इसका बड़ा महत्व था। वैदिक कालमें यह नियम था कि एक पुरुष एक स्त्रीके साथ विवाह कर सकता है। पुरुषको अपनी संगिनी तथा स्त्रीको अपना पति चुननेकी स्वतन्त्रता थी; लेकिन इसमें माता-पिताकी अनुमति आवश्यक थी। बाल-विवाहके उदाहरण वैदिक युगमें नहीके बराबर मिलते हैं। पर्दा-प्रथा भी उस युगमें नहीं थी। गृहिणी पतिके कार्योंमें हाथ बँटाती थी। घरका सम्पूर्ण

प्रबन्ध गृहिणियोंके ज़िम्मे ही था। विधवा-विवाहके कुछ उदाहरण उस युगमें मिलते हैं।

वैदिक कालका भोजन सादा था। मुख्य भोजन फल, जौ, चावल, दूध, घी और आलू था। मांस और मदिराका भी प्रयोग होता था; लेकिन ये दैनिक भोजन नहीं थे। सिले वस्त्र पहननेका रिवाज विशेष नहीं था। ऊपरके वस्त्रको उत्तरीय और नीचेके वस्त्रको अधोवस्त्र (उष्णीश) कहते थे। ये कपड़े प्रायः रेशमी और ऊनी होते थे। सूती कपड़ोंका उल्लेख ऋगवेदमें नहीं मिलता है। चमड़ेका प्रयोग चमड़ेके वस्त्रके रूपमें होता था। स्त्री और पुरुष दोनों आभूषणोंका प्रयोग करते थे। बालोंको अनेक प्रकारसे बनाने, गूँथने तथा काढ़नेका भी रिवाज था। मनोविनोद के लिये जुआ, सोमपान, संगीत तथा नृत्य अधिक लोकप्रिय थे। खेतीपर लोग जीवन निर्वाह करते थे। अतः पशु-पालनका काफी महत्व था। गाय और घोड़ा पाला जाता था। व्यापार विशेष नहीं होता था। कुछ दूर देशों में लोग व्यापार करने जाते अवश्य थे। विनिमयकी भी प्रथा इस युगमें थी। शिल्पोंमें बढ़ईगीरी और लोहारी आदिका काम मुख्य था।

हमलोगोंके जीवन-गठन तथा यापनके मूलमें वैदिक संस्कृतिका ही उत्स है। वैदिक संस्कृतिमें हम जीवनको प्रकृतिके अधिक निकट पाते हैं। यही कारण है कि इस युग के लोग धन-संपन्न तथा सुखी थे। वैदिक संस्कृति प्रकृति प्रधान है। जीवनकी प्रवृत्तियोंका झुकाव उस समय रस और आनन्द लेनेकी ओर था। आगे चलकर यह संस्कृति निवृत्ति की ओर झुकने लगी। वैदिक संस्कृति जीवनके पूर्ण स्वरूप को उपस्थित करती है। जीवनके समस्त अंगोंमें यह संस्कृति सन्तुलन स्थापित करती है।

—*—

भगवती मीराँकी अनन्य भक्ति

चन्द्रकला मित्तल

भारतीय संस्कृतिका नवनीत भक्तियोगमें निहित है। ज्ञान और कर्मके बीचमें भक्तिको प्रतिष्ठित करके भारतीय दर्शनने मानवीय मूल्योंके विकासकी दिशामें बहुत बड़ा क़दम उठाया है। मानवीय चारित्र्यका प्रधान तत्व निष्ठा या भक्ति है। जब मनुष्यकी कर्म-प्रेरणा मोह और आसक्तिसे ऊपर उठकर भक्तिके धरातलको छूती है और वह विज्ञानका प्रयोग रागद्वेषसे परे होकर करता है, तब उसका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप अभिव्यक्त होता है। भक्तिके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्यको अपने स्वयंके और अपनेसे श्रेष्ठ स्वरूपके अस्तित्वमें पक्का विश्वास होना चाहिए। आत्मा जब परमात्माका अवलम्बन ग्रहण करती है, तो उसकी भावना ऊर्ध्व आरोहणका स्वरूप ले लेती है, साधकके लिए यही अभीष्ट स्थिति है। परन्तु जब आत्मा अनात्म तत्व अर्थात् जड़सृष्टि या पदार्थ-जगतकी ओर ढुलकती है, तो उसका अधोपतन आरम्भ हो जाता है। भक्तिका अर्थ है आत्माका परमात्माके प्रति प्रेम।

भक्तिमें दो तत्वोंका संयोग होता है—(१) आस्तिकता और (२) अनन्यता। आस्तिकताका अर्थ है ईश्वर—अर्थात् मनुष्यके श्रेष्ठ तत्व जिस तक हमें अपने-आपको ले जाना है—के अस्तित्वमें विश्वास। परम आत्मा है, यह भक्तकी मौलिक निष्ठा है। यदि उसके होनेमें ही शंका रहती है, तब भक्तिका प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ परमात्माके अस्तित्वके साथ उसके स्वरूपका प्रश्न उठता है। ईश्वर या अन्य कोई परम चैतन्यमयी शक्ति है, यदि यह मान भी लें, तो उसका स्वरूप क्या होगा, इस बारेमें भी सोचना पड़ेगा। इस विषयमें एक विचार तो यह है कि यह सत्ता अव्यक्त, इन्द्रियातीत और निराकार है। दूसरी मान्यता यह है कि यह साकार, व्यक्त एवं इन्द्रियगम्य है। यह विवाद धर्मज्ञोंके बीच बहुत पुराना है, इसमें न पड़कर हम इतना ही कहना चाहेंगे कि ईश्वरका मूल स्वरूप यदि निराकार भी मान लिया जाय, तो भी हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि उसके भीतर साकारका निर्माण करनेकी सत्ता है। सारे स्वरूप उस

प्रभुकी कल्पनासे ही बने हैं। इस प्रकार जो ईश्वर सारे स्वरूपोंका निर्माता है, वह जब अपने किसी भक्तकी भक्तिपर प्रसन्न हो जाता है, तो उसकी इच्छाके अनुरूप ही अपने स्वरूपको उसके सामने ज़ाहिर करता है। जो भक्त उस प्रभु को मानवीय आकारमें देखना चाहता है, उसके सामने वह भक्त-वत्सल उसी रूपमें दर्शन दे सकता है, क्योंकि उस भगवानमें स्वरूप-धारणा-शक्ति निहित है। आकार ग्रहण कर लेनेसे ईश्वरकी महत्ता कम नहीं होती, क्योंकि उससे उसके प्रकार अर्थात् मूल गुणपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भक्तिका दूसरा तत्व अनन्यता है। गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—'अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते'। तो भक्ति में महिमा अनन्य योगकी है। श्री रामचन्द्रजीके मुखसे भी गोस्वामीजीने कहलाया है—'सबके ममता ताग बटोरी, मम पद बाँध मनहि बर डोरी'। भक्तके मामलेमें दोहरी निष्ठा काम नहीं करती। भगवान रामने भक्तकी कसौटी यह बताई है—'मोर दास कहाई करई नर आसा तो कहहु कहा बिस्वासा'। प्रेमके सिवा इस जगतमें और कुछ भी सत्य नहीं है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। यह भक्तकी भूमिका होती है।

भारत अपनी भक्ति और भक्तोंकी परम्पराके लिए लोक विख्यात है। यहाँ हम भगवती मीराँको अनन्य-भक्तिका वर्णन उनके कुछ पदोंके आधारपर कर रहे हैं। मीराँके प्रदेशमें जन्म लेकर मीराँके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करनेका यह अवसर हमें मिला है, यह जानकर इन पंक्तियोंकी लेखिका अपनेको कृतार्थ मानती है।

साँवरा जी तुम लग मेरी दौर

भगवती मीराँ परम आस्तिक थीं, उनके लिए प्रभु ही जीवनका एकमात्र सहारा हो गये थे—

हरि मेरे जीवन प्रान अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार॥
आप बिना मोहिं कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
मीराँ कहे मैं दासी रावरी, दीज्यौ मती बिसार॥

ऐसे जीवन-आधार हरिसे देवी मीराँ विनती करती हैं—

स्याम मोरी बाँहड़ली जी गहो।
या भवसागर मँझधारमें थे ही निभावण हो॥
म्हां में औगुण घणां छै हो, थे ही सहो तो सहो।
मीराँके प्रभु हरि अविनाशी, लाज बिरदकी बहो॥

इस पदमें श्री मीराने अपने हरिके कुछ गुणोंका वर्णन किया है और उनसे अपनी बाँह पकड़नेकी विनती की है। मीराँ देवीके प्रभु अविनाशी हैं। वे इस संसार-सागरमें फँसे हुए जीवके एकमात्र त्राता हैं और जीवमें जितने अवगुण हैं, उन्हें केवल वह प्रभु ही सहन कर सकता है। यह भगवानकी गुरुता और महत्ताका वर्णन है।

भगवती मीराँ अपने प्रभुके चरणोंमें क्या नैवेद्य चढ़ावें, यह प्रश्न उनके सामने है। इसका समाधान वे इस प्रकार करती हैं—

भावनाको भूखौ साँवरौ म्हारौ भावनाको भूखौ?
शबरीके बोर सुदामाके चांवल भर-भर मूठ्यां ढूकौ॥
दुरजोधनका मेवा त्यागा साग विदुर घर लूकौ॥
करमाबाईको खीच आरोग्यौ लूखौ गण्यौ नहीं सूकौ॥
मीराँबाईके हरि गिरधर नागर औसर कबहूं न चूकौ॥

भावनाका भूखा भगवान शबरीके बेर, सुदामाके चावल मुट्ठी भर-भरकर खाता है, दुर्योधनका मेवा छोड़कर विदुरके घर रूखा साग खाता है और करमाबाईकी खिचड़ी खाते समय रूखे-सूखेका ध्यान भूल जाता है। वह ऐसे अवसरोंको कभी नहीं चूकता। ऐसा सरल जो देवता हो, उसे छोड़कर भला श्री मीराँका ध्यान किसी और देवतामें कैसे लग सकता है—

आन देव म्हारी दाय न आवै, तुमसूं लागौ मेरौ मन हो।
जैसे चन्द चकोर सिहारे, यूँ सिमरूँ छिन छिन हो॥

एक दूसरे पदमें भगवती अपने नन्दकिशोरसे विनती कर रही हैं—

साँवरा जी तुम लग मेरी दौर।
मात पिता सुत भाई बन्धु, मिल-मिल भये और।
जात-पात कुल सैण संगाती, सबसे बैठी तौर।
या जगमें प्रभु कोई न मेरौ, लोक करत सब सौर।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, मिलो-मिलो नंदकिसोर॥

ईश्वरसे लाज रखनेकी प्रार्थना करती हुई श्री मीराँ कहती हैं—

रख रे रख प्रभु लाज हमारी रख रे।
औरां के प्रभु और वसीला, हमरे तुम्हारी पख रे।
जल डूबत ब्रजराज रख लई है, धर गिरवरको नख रे।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, मुखपर मुरली धर रे।
लोक-लाज सब त्याग दई है, जग मारौ चाहे झख रे।
मीराँ के प्रभु गिरधरके शरणे, चरण कमलको पख रे॥

हे प्रभु, और लोगोंका तो और कुछ सहारा भी होता

है, परन्तु हमें तो तुम्हारा ही सहारा है। ('अनन्यता') पदमें आगे वे कहती हैं कि लोक-लाज सब छोड़ दी है, चाहे संसार कुछ भी करे। वास्तवमें भक्त दो घोड़ोंपर सवारी नहीं कर सकता, उसे भगवानके लिए जगतकी पर्वाह छोड़ देनी पड़ती है। सत्य जितना प्रखर होता है, जगतके लिए वह उतना ही कटु हो जाता है और वह सत्यके प्रकाशककी निन्दा किया करता है। सत्यका अनुयायी अपने शीलकी रक्षा करके सत्यका अनुसन्धान करता रहता है।

भगवती मीराँने अपना सर्वस्व श्रीकृष्णपर न्यौछावर कर दिया है। अब वे श्रीकृष्णसे पूछती हैं—'रावरी हाई कणै रे जाऊँ है हरि हिवड़ा रो साज'। मैं आपको होकर अब कहाँ जाऊँ, मेरे हृदयकी शोभा तो आप ही हैं। श्री मीराँने सारा संसार छोड़ दिया है, क्योंकि—

यौ संसार सगौ नहिं कोई, साँचा सगा रघुबरजी।

केवल भगवान ही सच्चा सगा रह गया है। निम्न पदमें भी यही भाव व्यक्त हुआ है—

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हारा बाला गिरधारी।
पूर्व जनमकी प्रीति हमारी, अब नहिं जात निवारी॥
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई है भारी।
म्हारे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी॥
मोती चौक पुराऊँ बारहा, तन मन तो पर वारी।
म्हारो सगपण तोसूँ सांवलिया, जगसूँ नहीं विचारी॥
मीराँ कहे गोपिन को बालहौ, हमसूँ भये ब्रह्मचारी।
चरण चरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी॥

हे मेरे स्वामी गिरधारी! तुम्हें क्या-क्या कहकर समझाऊँ, हमारी पूर्व-जन्मकी प्रीति है, अब छोड़ी नहीं जाती। तुम्हारे सुन्दर मुखको देखकर मुझे तुमसे भारी प्रीति हो गई है। हे गिरधर, तुम मेरे घर पधारो, मैं तुम्हारी स्त्री मंगल-गान गा रही हूं। (तुम आओगे तो मैं) चौकको मोतियोंसे पुरा दूँगी और तुमपर तन-मन न्यौछावर कर दूँगी। हे सांवलिया, मेरा सगापन तुमसे ही है, मैंने विचार लिया है, संसार से नहीं है। मीराँ बाई कहती हैं कि हे गोपियोंके बालम, मुझसे ब्रह्मचारी हो गये हो। मैं तुम्हारे चरणोंकी शरणमें तुम्हारी दासी हूं, पल भरके लिए मुझे अपनेसे अलग मत कीजिए।

इस पदमें श्री मीराँने श्रीकृष्णके साथ सगेपनकी बात कही है। अब वे कहती हैं:—

तुज बिन मोरी कोण खबर ले श्री गोवरधनधारी रे।
औरन कू तो और भरूसो हमकु आस तुमारी रे॥

अनन्य भावमें मीराँ देवी बहुत आगे बढ़ गई हैं, उन्हें यह संसार खारा लगने लगा है। अनन्यता की चरम सीमा है, इससे आगे किसी कविकी कल्पना क्या काम करेगी?

म्हारे घर आओ प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा।
तन मन धन सब भेंट करूंगी, भजन करूंगी तुम्हारा।
तुम गुणवन्त सुसाहिब कहिये, मो में औगुण सारा।
मैं निगुणी कछु गुण नहि जानूं, तुम छो बगसण हारा।
सेज संवारी आप नहिं आये, कब की करूं जी विचारा।
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे, तुम बिना नैण दुखारा।

मैं तो तेरी सरण परी रे रामा ज्यूं जाणे ज्यूं तार

भगवती मीराँके पदोंमें शरणागतिका तत्व बहुत सफाईसे उभरा है। उन्होंने स्थान-स्थानपर ईश्वरको उसकी विरदकी याद दिलाई है और शरण होनेकी बात कही है। श्री मीराँने पुराने भक्तोंकी याद दिलाकर ईश्वर-कृपाकी विनती की है:—

करमा की खिचड़ी खाई, तुम गणिका पार लगाई।
मीराँ प्रभु तुमरे रंग राती, या जानत सब दुनियाई॥

भगवती मीराँ अपने अवगुणोंका स्मरण दिलाती हुई भगवान कृष्णको मीठा उलाहना देती हैं और कृपाकी याचना करती हैं:—

म्हें तो बुरी छां थांके भली छे घणेरी, तुम हो एक रसराज।
थांने हम सब ही की चिन्ता, सबके हो गरीब निवाज॥

मैं तो बुरी हूं, तुम्हारी तो बहुत-सी भली नारियाँ हैं, क्योंकि तुम तो रसराज ठहरे। तुम्हें हम सब ही की चिन्ता है? तुम तो सभी गरीबोंके कृपालु हो।

श्री मीराँ प्रभुके पतित-उधारन-स्वरूपका वर्णन करके कहती हैं:—

हमने सुनी छे हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण॥

"मीराँके प्रभु कब रे मिलोगे सो बन्दीपर एति अबेरि भई किण कारण।"—किस कारणसे मुझ दासीपर कृपा करनेमें इतनी देर हो गई है? ऐसा न हो कि श्री मीराँपर कृपा करनेसे उनका यश ही समाप्त हो जाये:—

लाज गया थाँको विरद न रेसी लोग करेला हाँसी।
म्हारो तो काँई नहीं बिगड़सी थाँकी ही पत जासी॥

म्हारे हरिकी लाख दावड़ियाँ साँवरिया म्हारो एक जी।
कर जोड्यां थाँकी मीरां ऊभी चरणां चाकर रखसी॥

भगवतीको भगवानके यशकी चिन्ता सबसे अधिक है। इस पदमें श्री मीराने कितनी सरलता और सरसताके साथ श्रीकृष्णसे मीठी चुटकी ली है। एक ओर तो वे उन्हें अपयश और लोक-हँसीका भय दिलाती हैं और दूसरी ओर उनके रसियापन पर उलहना देती हैं कि हमारे कृष्णकी तो लाख दासियाँ हैं। साथ ही श्री मीरां अपनी अनन्य भक्तिका परिचय भी देती हैं।

मोराँ नाँव पीयालै छाकी

श्री मीराँने नाम रटनकी भक्ति की है। वे कहती हैं—

मन माने जब तार प्रभुजी,
नदिया गहरी नाव पुरानी, किस विध उतरूँ पार॥
वेद पुरान बखानी महिमा, लगे न गुणको पार।
योग यान जप तप नहिं जानूँ, नाम निरन्तर सार॥
बाट तकत हौं कबकी ठाढ़ी, त्रिभुवन पालनहार।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार॥

नामके मदमें देवीने राजसत्ताको खुली चुनौती दी है—"मीरां नाँव पीयालै छाकी, काँई जाणूँ राणाजी कुण हो।" मतवाली मीरा नामका प्याला पीकर छक गई है, अब वह क्या जाने कि राणाजी कौन होते हैं।

इसी प्रकार भगवती मीरां अन्यत्र कहती हैं :—

नातो नामको जी म्हासूँ तनिक न तोड्यो जाय॥
म्हारो नातो नाँवको रे और न नातो कोय।
मीरां व्याकुल विरहिणी रे, दरसण दीज्यो मोय॥

श्री मीराँके ही समकालीन श्रद्धेय गोस्वामी तुलसीदासने श्री रामचरितमानसमें नाम-महिमाका गायन किया है और रामके नामको रामसे भी बड़ा बताया है।

कद आवोगा रमैया म्हारे देश

श्री मीरां श्रीकृष्णकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। वे उनसे प्रार्थना करती हैं :—

मैं वारी जाऊँ राम तुम आवा गली हमारी।
तुम देख्यां बिन कल न परत है, जोऊं बाट तुम्हारी॥
कौन सखी सों तुम रंगराते, हमते अधिक पियारी।
किरपा कर मोहि दरशन दीज्यो, सब तक्सीर बिसारी॥
मैं शरनागत तुम हो दयाला भव तल से तार मुरारी।
मिरां दासी तुम चानन की बार बार बलिहारी॥

इस पदमें श्री मीराँने श्रीकृष्णको मधुर उपालम्भ दिया है, "तुम किस सखीसे रंगरेलियाँ कर रहे हो, जो तुम्हें हमसे अधिक प्यारी है।" बेचारी मीरां देवी कन्हैयाकी याद और प्रतीक्षामें बेहाल हो रही हैं। उधर कृष्ण दूसरी सहेलीके संग रास रचा रहे हैं। इसपर भगवतीको कष्ट होना सहज ही है, फिर भी अनन्य भक्ति-सम्पन्ना भगवती मीराँकी निष्ठा अडोल रहती है :—

कद आओगा रमैया म्हारे देश, ऊभी जोऊँ बाटड़ली॥
मन मन्दिरमें ज्ञान बुहारी दे दीनी भरपूर।
पापका कूड़ा सोर बिया है फेंक दिया सब दूर॥
म्हारे नेणा में बिराजो घनश्याम, ऊभी जोऊँ बाटड़ली॥
पलकां पर पग मेलतां जा उतरया मन्दिर बीच।
दरशण करस्यां भोग लगास्यां दोऊ आंख्यां मींच॥
थारा चोखा चोखा सिणगार करस्यां, ऊभी जोऊँ बाटड़ली॥
साँवरी सूरत मन बसी जी घूँघरवाला केस।
जादूगारी बाँसुरी थारो, नट नागरिया बेस।
म्हारे आंगनिया में निरत कराय, ऊभी जोऊँ बाटड़ली॥
ठाकुर के सिंहासन ऊपर, आन बिराजो चीर।
हम तो कछु जानें नहिं जी, तुम जानो यदुबीर।
गावे मीराँबाई भजन बनाय, ऊभी जोऊँ बाटड़ली॥

भक्तिकी प्रक्रिया कुछ इस प्रकारकी है, जिसमें अन्तःशुद्धि का होना बहुत आवश्यक होता है। बाट जोहनेके पीछे भी एक रहस्य है। बाट जोहना अर्थात् प्रियके स्वागतके लिए हरदम तैयार रहना। न-जाने प्रभुकी ज्योति अन्तर्मन को किस क्षण आलोकित कर दे। भक्तिमें प्रमाद नहीं चलता। भक्तके भीतर तत्परता और तल्लीनता होनी ही चाहिए। उपरोक्त पदमें मीराँने स्पष्ट इंगित किया है कि वे निर्गुण और निराकार परमेश्वरकी उपासक हैं। वे भगवान का दर्शन दोनों आँखें बन्द करके करनेकी बात यहाँ कहती हैं। वह कृष्ण, जिसका आकर्षण नित्य प्रति श्री मीराँको बौराये रहता है, उनके आँगनमें नृत्य करता रहता है और वे खड़ी हुई बाट जोहती रहती हैं। हृदय ही आँगन है। इस आँगनमें कृष्ण नाचता रहता ही है, हम झाँककर देखें भर।

चाकरी री चाह म्हारे मन

श्री मीराँके पदोंमें दास्य-भाव स्थल-स्थलपर अभिव्यक्त हुआ है। नवधा भक्तिका सम्पूर्ण दर्शन मीराँ देवीके काव्य में मिलता है। विनयपूर्वक वे कृष्णसे निवेदन करती हैं :—

तन मन सुरति सँजोई सीस चरणां धरूँ।
जहाँ-जहाँ देखूँ म्हारो राम तहाँ सेवा करूँ॥
सदकै करूँ जी सरीर जुगै जुग वारणैं।
छोड़ी छोड़ी कुलकी लाज स्याम थारे कारणे॥
थोड़ी थोड़ी लिखूँ सिलाम बहुत कर जाणज्यो।
बन्दी हूं खानाज़ाद महरि कर मानज्यो॥
हाँ हौ म्हारा नाथ सुनाथ बिलम नहिं कीजिये।
मीराँ चरणाँको दासी दरस दीजिये फिर दीजिये॥

एक अन्य स्थलपर श्री मीराँ दास्य-भावसे आत्म-समर्पण कर रही हैं :—

म्हारा हरिजी, चाकरी री चाह म्हारे मन, राखोला शरण हजूरी॥
बैल बँधावौ भावै घोड़ा बँधावो चाहे करावो मजूरी॥
खावा पीवाको म्हाकी चिंता मत कीज्यो, कंगन दीज्यो भावै कूरी
ओढ़नकूँ कारी कमरिया दीज्यो और चटाई खजूरी॥
जो थे देशो सो म्हे लेशो योई मत म्हारे पूरी।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर निज चरणनकी धूरी॥

सेवाके भावमें नारीकी अपनी विशेषता होती है। सेवाके लिए सेवककी ओरसे सम्पूर्ण और प्रतिकारकी कामना से सर्वथा मुक्त आत्म-समर्पण अनिवार्य है। नारी और विशेषकर भारतकी नारी, उसमें भी जगप्रसिद्ध जौहरसे सतीत्वको सिद्ध करने और कड़ाईके साथ एकपतिव्रतका निर्वहन करनेवाली राजस्थानकी नारी वैसा आत्म-समर्पण करना सहज स्वभावसे ही जानती है। नारीकी महत्ता उसके पत्नीत्वमें नहीं, मातृत्वमें है। माताके नाते उसमें सेवाका स्वभाव होता है और जब वह पतिकी सेवा करती है, तब वास्तवमें वह अपने पतिके प्रति वात्सल्यसे ओतप्रोत होती है। मीराँ नारी है और राजस्थानके प्रसिद्ध राजपूत घरानेकी नारी, जिसमें अपने पतिके प्रति अनन्य निष्ठा होती है। वास्तवमें नारीका प्रेम फलाकांक्षासे सर्वथा मुक्त होता है। उसका साध्य केवल उसके आराध्यका आध्यात्मिक, बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और अन्य हर प्रकारका सुख होता है। उसे सुख देनेके निमित्त वह किसी प्रकारकी भी मजूरी कर सकती है और कैसा भी मोटा-झोटा खा-पहन, ओढ़ सकती है। मीराँ महारानी अपनेको कृष्णके चरणोंकी धूलि कहती हैं। यह उनके वैयक्तिक अहंकार और देहाभिमान के नष्ट होनेका प्रमाण है।

दर्शनानन्द और प्रेमालाप

भाव-जगतकी अनुभूतियाँ बड़ी सघन और रहस्यमयी होती हैं। चमड़ेकी आँखें जिसको देख भी न पाती हों, भाव-जगतमें साधक उसके दर्शनका आनन्द और उसके संगका सुख ले सकता है। यही साधककी साधनाके सातत्य का रहस्य है। यदि उसका अन्तःकरण इतना सजग और संवेदक न हो कि वह अपने आराध्यको भाव-जगतमें पाकर उसके सन्निध्यका आनन्द लूट सके, तो उसके लिए साधना एक नीरस व्यायाम हो जायगी, जिसे वह अधिक समय तक जारी नहीं रख सकेगा।

मीराँने साहित्य सृजन किया, इसका सामान्य अर्थ यही है कि वह भावलोकमें सतत् जिसके सहित रहती थीं, बाह्य जगतमें उनके कर्म और वाणीसे उसीका साहित्य-निर्झर प्रवाहित हुआ।

आवो जी गिरधारीजो थांसूँ म्हें बोलां॥
थे तो म्हारा जनम-जनम रां संगी, थारे लारां
लारां संगमें डोलां।
आद अंत तन मन धन मोरे, आनंद करां कलोलां।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, आन मिलो अनमोलां॥

यह आवाहन है भक्तकी ओरसे भगवानके प्रति। इस निमंत्रण-पत्रमें बुलानेका उद्देश्य भी साफ-साफ बता दिया गया हैं।

उमंगमें भरकर मीराँ गा रही हैं :—

बौत नाची गोपाल अब मैं बौत नाची गोपाल।
हरि मन्दिरमें नाचुं राचुं, कर से बजाऊँ ताल:
नाच नाच मैं रे मनकुं रिझाऊँ, हरि गुण गाऊँ रसाल।
जप तप साधन कछु नहिं जानूँ, ऐसे भई मैं निहाल।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल प्रतिपाल।

दर्शनोंका आनन्द पानेके बाद कीर्तन हो रहा है :—

गोपाल राधे कृष्ण गोविन्द गोविन्द।
बाजत झाँझरी और मृदंग, और बाजे करताल।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजन्ती माल।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर, भक्तनके प्रतिपाल:

———

केरलके महाकवि उल्लूर और उनकी रचनाएँ

का० ल० मोदी

मलयालम् साहित्यके इतिहासमें महाकवि उल्लूर परमेश्वर ऐयरा जैसा बहुमुखी प्रतिभाशाली कवि शायद ही कोई हुआ हो। इतना ही नहीं, उन्होंने मलायालम् भाषाको जितना समृद्ध बनानेमें प्रयत्न किया, वैसा प्रयत्न मलयालम्के किसी अन्य साहित्यकारने नहीं किया। वे एक उच्चकोटिके कवि थे, जिनकी तुलना असन और वलातोलसे की जा सकती है। ये तीनों आधुनिक मलयालम् साहित्यकी त्रिमूर्ति कहलाते हैं। महाकवि उल्लूर बहुत-सी भाषाएँ जानते थे। उन्होंने मलयालम्, संस्कृत और अंग्रेजी तीनों भाषाओंमें गद्य और पद्य दोनोंमें समान रूपसे रचनाएँ की हैं। उन्होंने बालपदों, महाकाव्यों और लोककथाओंसे लेकर अध्यात्म, रहस्यवाद और विज्ञानके सिद्धन्तों तकसे संबंधमें पुस्तकें लिखी हैं। उन्हों ने १७ हजारसे ऊपर पृष्ठोंको प्रकाशित किया है। यही कारण है कि महाकवि उल्लूरको सर्वज्ञके नामसे पुकारा जाता है।

उल्लूरने अपने जीवनका स्वयं निर्माण किया था। उनमें अदम्य वीरता थी और वे अपने समस्त जीवनमें संघर्ष करते रहे। वे १७७८में ऐसे घरानेमें उत्पन्न हुए थे, जो उल्लूरसे आया था। उल्लूर त्रिवेन्द्रमका एक उपनगर है। जब वे छोटे ही थे, तभी उनके पिताकी मृत्यु हो गई। उन पर घरका भार छोटी ही आयुमें पड़ा था। उनका परिवार बड़ा था। उन्होंने उच्च-पदवियाँ और अपनी शिक्षा अपने ही प्रयत्नों द्वारा प्राप्त की। उन्होंने छोटी-सी नौकरीसे प्रारंभ कर अंतमें त्रावणकोरमें दीवान पेशकार का पद प्राप्त किया। त्रावणकोर यूनिवर्सिटी और साहित्य-परिषद् आदि सांस्कृतिक संस्थाओंको स्थापनामें उनका हाथ था। उनकी मृत्यु ७२ वर्षकी आयुमें हुई। त्रावणकोरके मंदिर-प्रवेशकी घोषणामें भी उनका हाथ था। वे अपनी मृत्युके आखिरी दिन तक कार्य करते रहे। वे अपनी मृत्युके समय केरल-साहित्यका इतिहास लिख रहे थे।

यद्यपि उन्होंने साहित्यके अनेक क्षेत्रोंमें कार्य किया, तो भी केरल-साहित्यमें मुख्यतया उनका नाम महाकविके रूपमें स्मरण किया जाता है। उन्होंने १ महाकाव्य, १७ खंडकाव्य और सैकड़ों गीत लिखे हैं। उनकी सबसे श्रेष्ठ कृति 'उमाकेरलम्' महाकाव्य है। उल्लूरने अपने इस महाकाव्य के लिए विषय त्रावणकोर राज्यके इतिहाससे चुना है। अब से तीन सौ वर्ष पूर्व वेनादमें, जो बादमें त्रावणकोर राज्य में परिणत हो गया, एक कमजोर राजा राज्य करता था। उसका नाम आदित्यवर्मा था। उस राजाकी एक लड़की थी, जिसका नाम कल्याणी था। उसका अपने राज्यके मन्त्री नवयुवक रविवर्मा सम्पनसे प्रेम हो गया। उस राज्यमें आठ सरदार ऐसे थे, जो इस राजवंशका नाश करना चाहते थे। उन्होंने इस प्रकारका षड्यन्त्र किया कि जिससे पहले तो सम्पनको राज्यसे निर्वासित कर दिया गया, क्योंकि वह इस राजवंशकी बड़ी चतुराईसे रक्षा करता था और उसके बाद उन्होंने राजाको जहर देकर मार डाला। उमयम्मा रानीके पाँच पुत्र थे। इनमें से सबसे बड़े पुत्रको कलिधानकुलम् सागरमें डुबोकर मार डाला गया। सम्पूर्ण राज्य एक मुसलमान आक्रान्ता मुकिलानके हाथमें चला गया। अन्तमें आक्रान्ताको मारकर भगा दिया गया। राज्यको पुन व्यवस्था और स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और दोनों प्रेमियोंक विवाह हो गया।

इतिहासकी इस छोटी-सी कहानीको महाकविने अपनी प्रतिभा और कल्पनाके द्वारा एक महाकाव्यमें परिणत कर दिया। कहानीकी सत्यता और प्रामाणिकताके विषयमें तो अनेक सन्देहात्मक प्रश्न किये जाते हैं; परन्तु जहाँ तक उल्लूरके महाकाव्यका प्रश्न है, उसकी श्रेष्ठतामें किसीको कोई सन्देह नहीं है। महाकवि जब इस महाकाव्यमें अपनी जन्मभूमिका वर्णन करते हैं तो उनका अपनी मातृभूमिके प्रति प्रेम समस्त सीमाओंका उल्लंघन कर जाता है—

"इस पर्वतमालाके पश्चिम तटपर
एक प्रदेश है
जहाँ रमणीयसे रमणीय फूल खिलते हैं
जो अलकाके समान है
जो कि शिवके पर्वतके दक्षिणकी ओर है
यह प्रदेश समुद्रसे आवेष्टित है
समुद्रकी लहरें प्रसन्नतासे नृत्य करती रहती हैं
समुद्र ने इस सुन्दर प्रदेशको अपनी

रंगभूमि बनाया है
मलयालमका यह वरदानतुल्य प्रदेश !"

यह महाकाव्य अनेक सुंदर शब्दचित्रों और सुन्दर सूक्तियों से परिपूर्ण है। उल्लूर के अन्य काव्य, पुराणोंकी कथाओंपर आधारित हैं। इनमें 'कर्ण-भूषणम्' बड़ी सुंदर रचना है। इस काव्यमें उन्होंने दान-महिमाको प्रदर्शित किया है। कर्ण महादानी था। कर्णके कारण कौरवोंको अपनी विजयपर पूर्ण विश्वास था। जबतक कर्णके कानोंमें कुण्डल थे, कोई योद्धा उसे पराजित नहीं कर सकता था। उसके पिता सूर्यदेवने सोचा, "कर्ण महादानी है। कहीं ऐसा न हो कि स्वर्गाधिपति इन्द्र इन कुण्डलोंको दानरूपमें माँग लें। वह उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दे देगा और इस प्रकार उसका जीवन संकटमें पड़ जायगा।" यह सोचकर एक दिन सूर्यदेव एक ब्राह्मणके रूपमें कर्णके पास आए, उन्होंने कर्णको इस सम्बन्धमें बहुत समझाया और अंतमें अपना सच्चा रूप भी प्रकट कर दिया। परंतु कर्णने उत्तर दिया कि चाहे मुझे अपने जीवनसे भी हाथ क्यों न धोना पड़े, परंतु दान देनेसे इन्कार कर दूँ, यह असम्भव है—

"इन्द्रके राज्यमें पत्थर भी हीरे हैं
जितने पानीके स्रोत हैं सब अमृतके हैं
और योगी जिन्होंने सब कुछ अनुभव कर लिया है
उसे अपने उपहारोंसे संतुष्ट करते हैं
इससे बड़ा और आनंद क्या हो सकता है
कि स्वर्गाधिपति इन्द्र मुझसे भीख माँगनेके लिए आए
दानसे बड़ी और कौन-सी वस्तु है
यह तो सत्य सनातन धर्म है।"

सूर्यदेव कर्णके उत्तरसे प्रसन्न हो जाते हैं और उसे अपने समस्त हृदयसे आशीर्वाद देते हैं :—

'तुम्हारा यश वृद्धिको प्राप्त हो
तुम्हारा नाम महिमासे उज्ज्वल हो
तुम्हारा दान निस्सीम हो
ऐसा दानी आजतक दूसरा नहीं उत्पन्न हुआ
ये कुण्डल यदि तुम्हारे कानोंका परित्याग करेंगे
तो वे विश्वके आभूषण बन जाएंगे।"

महाकवि उल्लूरने एक और काव्य लिखा है। इसका नाम है 'पिंगला'। पिंगला एक वेश्या थी। वह मिथिला में रहती थी। वह महान सुंदरी थी। कविके शब्दोंमें वह अमृतके घटमें सुराकी एक बूंद थी। वसंतके सुखद और सुंदर दिन थे। चांदनी रात थी। शीतल, मंद और सुगंध समीरण बह रही थी। पिंगला इस आशामें बैठी थी कि उसके प्रेमी उस द्वारपर आयेंगे, परंतु कुछ ऐसा हो गया कि उस दिन कोई प्रेमी उसके द्वारपर नहीं आया। घंटोंपर घण्टे बीत गए और रात्रि पर्यवसित होने लगी। अंतमें वह निराश होकर होशमें आई और उसे इस बातका अब बोध हुआ कि उसके झूठे प्रेमियोंने उसे छोड़ दिया है। उसने प्रायश्चित्त करनेका निश्चय किया। अगले दिनसे मिथिलावासियोंने देखा कि उस वेश्याने पवित्र जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया।

पिंगलाके जीवन-परिवर्तनका चित्र कविने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। वह लिखता है—

"मृत्यु अपनी कुल्हाड़ीसे प्रहार कर रही है
लगातार
जीवन-रूपी वृक्षकी डालोंपर
प्रातःकाल, दुपहरे, सायंकाल और रात्रिमें
हृदयको धड़कनमें यही आवाज प्रतिध्वनित
होती रहती है।"

पिंगला मनुष्यके वैभवोंकी चंचलताको अनुभव करती है—

"घासपर व्याप्त ओस-कणोंको
प्रातःकाल, जब सूर्यकी किरणें चुम्बन करती हैं
तो वे ओस-कण इंद्रधनुषके रंगोंमें
प्रकाशमान हो उठते हैं
परंतु कुछ समयके पश्चात् वे बूँदें
बिखर जाती हैं और कुछ नहीं रहता।"

इस तरह पिंगला पवित्र जीवन व्यतीत करने लगती है और उसकी भक्ति श्रीराममें स्थिर हो जाती है।

'भक्ति-दीपिका'में कविने इस बातको प्रतिपादित किया है कि भगवानके दर्शनके अधिकारी एकमात्र उच्चवंशके लोग या विद्वान ही नहीं होते। उसके लिए विद्या या वंशकी आवश्यकता नहीं है। उसके लिए तो हृदयकी पवित्रताकी आवश्यकता है। 'चित्रशाला'में कविने नारीकी महिमाका वर्णन किया है।

उल्लूरकी छोटी कविताओं और गीतोंमें भी उच्च आदर्श और विचारोंकी पवित्रता है। उनका एक गीत है 'कन्याकुमारीमें सूर्योदय'। इस प्रकारकी कविता अन्य भाषाओंके साहित्योंमें कठिनाईसे प्राप्त हो सकती है। उनकी एक अन्य कविता है, जिसका केरलके घर-घरमें शौकसे गान किया जाता है। वह कविता है 'प्रेम-संगीतम्'। उनकी

यह कविता मलयालम्-भाषाके साहित्यमें अमर रहेगी। वे इस कवितामें लिखते हैं—

"धरतीका एकमात्र धर्म
नहीं नहीं—धरतीकी आत्मा
प्रेम है
यही वह चन्द्रमा है जो पृथ्वीपर
सुधाका वर्षण करता है
यही साक्षात ईश्वर है
जो कि अनेक रूपोंमें आविर्भूत होता है
और जगतको प्रकाशमान कर देता है।"

उल्लूरकी रचनाओंमें देशभक्तिका स्वर स्पष्ट रूपसे सुनाई देता है।

"माँ! तेरा अभिवादन हो
तुम्हारे ही यहाँ 'ऋग्वेद'की घटनाओंकी सृष्टि हुई
तुम्हारे गौरवका कौन वर्णन कर सकता है
तुम्हारी धूलका प्रत्येक कण
किसी देवता या ऋषिका निर्माण कर सकता है!"

उल्लूर कविका विश्वास मनुष्यके भ्रातृ-भाव और धर्मोंकी एकतामें था—

"राम और रहीम
कृष्ण और क्राइस्ट
नाम तो अवश्य भिन्न-भिन्न हैं
परंतु ये एक ही प्रकाशकी मूर्ति हैं।"

महाकवि उल्लूर कलाको कलाका उद्देश्य नहीं मानते हैं। वे इसके द्वारा मानव-जीवनको उदार और समृद्ध बनाना चाहते हैं। वे प्रत्येक अन्यायके प्रति विद्रोह करना चाहते हैं और दीन तथा शोषित व्यक्तियोंका संरक्षण।

अखबारका टुकड़ा

जयशंकर पंड्या

कहते हैं, जितने मस्तिष्क हैं, उतने ही मत हैं—विचार हैं, जितने मुँह हैं, उतनी बातें हैं। कुछ यथार्थ—कुछ मिथ्या। शास्त्रोंमें ठीक ही कहा है, 'मुण्डेमुण्डे मतभिन्ना'।

आजके भौतिक युगमें आज जो कहा जाता है, वही कल सदियों प्राचीन प्रतीत होने लगता है; लेकिन प्रायः पाया गया है कि कुछ व्यावहारिकता, जिसे पाश्चात्य संस्कृति के अन्धभक्त फार्मलिटीसे सम्बोधित करते हैं, आज भी सदियों प्राचीन होते हुए भी नूतन रही है। आज भी हमारी ओछी बुद्धि वही लकीरकी फकीर बनी हुई है—हम उस फार्मलिटीका अनुसरण करनेमें एक अनुपम आत्माभिमान अनुभव करते नहीं अघाते।

चुनावके दिन थे। जनरल इलेक्शन समीपस्थ होता जा रहा था। सर्वत्र पेपर, पेट्रोल एवं पैसोंका धुँआ उड़ाया जा रहा था। पंचवर्षीय योजनाओंको सफलीभूत बनानेके लिए हमें सदैव सम्पत्तिका अभाव अनुभव होता रहा है। भारत-भाग्य-विधाता सदैव चाँटा मारकर ललाटकी लालिमा बनाये रखनेको प्रयत्नशील रहते हैं। जनता-जनार्दनसे श्रम-दान, सम्पत्ति-दानकी अपील आये दिन होती रहती है। लेकिन चुनाव क्या आ गया, पैसोंका बाँध टूट गया, जो वर्षोंसे संचित था—पैसा पानीकी तरह बहाया जाने लगा।

जिनके लोक-कल्याणकारी कार्योंका नाम तक नहीं सुनने को मिला था; जिन्होंने देशके उत्थानके विषयमें अपने निजी स्वार्थोंसे विमुख होना तो दूर, लिप्त रहकर भी दो क्षण सोचा तक नहीं था; देशके सहस्रों पीड़ितों, निरीहों, निर्धनों, अपाहिजोंकी आहें-कराहें जिनके निर्मम कर्णों तक भूलकर भी नहीं पहुंच पाई थीं, वे आज जनताका प्रतिनिधित्व करने लगेके चूहोंकी भाँति सैकड़ोंकी संख्यामें दृष्टिगोचर हो रहे थे!

हमने पढ़ा है और आपने पढ़ा होगा कि वेदोंमें ब्रह्मको 'नेति-नेति' से परिभाषित करनेका प्रयास किया गया है। आज चुनाव-शास्त्रके प्रकाण्ड पंडित उपदेशक, अबोध-अज्ञानी, निरक्षर जनताको नेताके पाठ पढ़ा रहे थे।

भगवानने कहा था, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, लेकिन

इनकी वाणीका अर्थ स्पष्ट था कि हम हैं—नेता, नेता !

प्रत्येक अवसरवादी आज नेता बना हुआ है। राजनैतिक शतरंजपर अपने पासे धन-दौलतके बलपर फेंकता दृष्टिगोचर होता है। कब अवसर हाथ लगे, कब मात दे ! मात देना सभी चाहते थे—वजीर खोकर भी !

आज प्रत्येक उम्मीदवारके व्यक्ति-वाचक, जाति-वाचक, भाव-वाचक संज्ञाओंको कुविशेषणोंसे अलंकृतकर चिकागोके भोंपूका भी गला बैठा जा रहा था। विजयमाला धारण करनेकी तीव्र आशा उसे यथार्थसे अन्धकारकी ओर प्रेरित जो कर रही थी।

हाय री आशा ! कितनी निगोड़ी है तू ! अरी निर्मम ! अपनी क्षणिक प्रसन्नताके लिए तू क्या नहीं करती ? एककी आत्मा—तू सहस्रों जीवोंके जीवनसे खिलवाड़ करती है ! तेरा आसक्त तेरे कृपा-स्मित मात्रके लिए कुम्भीपाककी यातनाएँ सहीकारता है—गरलको गलेसे लगाता है। घोर गर्तमें गला-सड़ाकर भी तू उसका पीछा नहीं छोड़ती—वह तुझे नहीं छोड़ पाता !

चुनावके उम्मीदवारोंने पत्रों, पत्रिकाओं, पत्रकारों एवं सम्पादकोंको मानों क्रय कर लिया था। वे इन भीष्म पितामहोंकी प्रशंसाके पुल बाँधकर मानों जीवन-साफल्य लाभ करना चाहते हों। कई लब्ध प्रतिष्ठित कवियों, लेखकों, आलोचकोंकी दुर्लभ कृतियोंको प्रेसोंमें दीमक लग रही थी। सम्पादकोंको क्षमा-याचना तो दूर, सधन्यवाद प्राप्तिके दो शब्द लिखनेका भी तो वक्त नहीं था। कई तो फरियाद भी कर रहे थे, भगवानने कामका तो ढेर कर दिया, लेकिन समयके नामको २४ से २५ घण्टा नहीं बढ़ाया। आखिर आदमी काम करे भी तो कितना ? मरनेकी भी फुरसत नहीं है।

अभी चुनाव-दिवसके ५ दिवस अवशेष थे। जनता उम्मीदवारोंके लिए विविध अनुमान लगा रही थी। फलाँ व्यक्तिको अमुक क्षेत्रमें अधिक जोर है - फलाँने प्रत्येक वोट का ५) देनेका वादा किया है। जय और पराजयका मापदंड उम्मीदवारकी सेवाओंसे हटकर उसके अपने प्रचारकी प्रबलतापर एवं उसके द्वारा प्रवाहित धन-प्रवाहपर आकर अटका था।

मैं प्रातः शीघ्र उठनेके सम्बन्धमें सदैव स्वयंको अनुवर्तन-वादी होकर सूर्यवंशी विशेषणसे सम्बोधित करनेमें अद्वितीय गर्वका अनुभव करता हूं। जब तक अरुणरूपी सूर्य उदित नहीं हो जाता, अपनेराम बिस्तर छोड़ना अपनी हेठी समझते हैं। न-जाने क्यों आज पत्नीने बड़े तड़के ही नाक-भौं सिकोड़ना आरम्भ कर दिया था। कब तक घुरघुराते रहोगे, सूरज सिरपर चढ़ आया है ; लेकिन आप हैं कि उठनेका नाम नहीं लेते और तनिक विलम्ब हो जाता है, तो तमक पड़ते हो दूसरोंपर।

दो-एक बार तो मैंने ऊँहूं कहकर टाल दिया, फिर भी जब न उठा, तो झल्ला पड़ी, मैंने ही पाप किये हैं—गायें मारी हैं। मैं ही जल्दी उठूँ, चूल्हा जलाऊँ, दुनिया भरका काम करूँ और आप हैं कि खुर्राटे मारते हैं, और अगर कभी विलम्ब हो गया, तो सारा घर सिरपर उठा लेते हैं। और रूँआसी होकर बोल रही थी, मानों अशिक्षित होनेका सन्ताप उसे सन्तप्त कर रहा हो, "अपढ़ हूं, इसीलिए सब सहन करती हूं, वरना कोई पढ़ी-लिखी होती, तो सरपर उपले थापती, तब मालूम होता !"

और जब हारकर उसने रजाई खींच ली, तो मुझे उठना ही पड़ा। मैं आँखें मलते हुए बके जा रहा था, सुबह-सुबह यह क्या टें-टें लगा रखी है ? मुश्किलसे आँख लगी थी—नींद बिगाड़ दी। मैं अभी अँगड़ाइयाँ ही ले रहा था कि उसने रसोईघरसे पुकारा, "अब मुँह भी धोओगे ? चाय ठंडी हुई जा रही है।"

मैंने पत्नीको इतना वाचाल कभी नहीं पाया था। आज यह नूतन परिवर्तन मुझे आश्चर्यान्वित कर रहा था। चायका एक घूँट गलेके नीचे उतारते हुए मैंने उससे पूछा, "क्योंजी, आज यह दिमागका पारा चढ़ता कैसे जा रहा है ?" चाय के प्यालेको ओठोंसे लगाये हुए मैं कनखियोंसे उसे देख रहा था।

मेरे स्वभावसे परिचित, विषादपूर्ण दिवस व्यतीत होनेकी आशंकासे वह भीरु बोली, "कल चौराहेपर गाँवके सभी लोग जमा हुए थे और जीपमें भरकर जो लोग आये थे, उनमें वह दो चोटियोंवाली गोरी-गोरी छोरी क्या बता थी, भूल गये ? अब तो आप हमें कुछ नहीं कह सकते। आज दिन तक तो मुझे मालूम नहीं था, इसीसे चुप थी। अब तो हमारे भी आपके बराबरीके अधिकार हो गये हैं। आप देरसे उठोगे तो मैं भी देरसे उठूँगी। फिर यह न कहना कि स्कूल जानेमें देर हो गई।" उसकी कृत्रिम गम्भीरता हँसीके फुहारेमें फूट पड़ी। मैं भी हँसी न रोक सका। उसने शीघ्र ही आशंकित स्वरमें पूछा, "एक बात पूछूँ ?"

मैंने कहा, "एकके बदले दो, अब तो तेरे बराबरीके अधिकार जो हैं।"

उसने कहा, "नहीं-नहीं, लेकिन वह लड़की विधवा थी क्या? उसकी एक कलाईमें तो नन्हीं-सी घड़ी थी और दूसरी तो रीती थी। बेचारी बचपनमें ही....."

स्त्रियाँ शीघ्र ही सहज निर्णय कर लेती हैं और कभी व्यथित, तो कभी उग्र हो जाती हैं।

मैं पत्नीकी पलकोंका गीलापन उसके लाख बचानेपर भी दिख ही गया। मैंने कहा, "अरी पगली! यह तो आजकी समानाधिकार चाहनेवाली ललनाओंकी फैशन है। सौभाग्य-कंकणोंको न पहनना तो आजके युगकी शिक्षित सन्नारियोंका एटीकेट है।"

उसने कहा, "भाड़में जाय उसकी फैशन। भला, पुरुषके जीवित होते हुए भी वैधव्य चिह्न· ····?"

मैंने उसे उत्तेजित करते हुए कहा, "देख, उसने अपनी बायीं कलाईको तो घड़ीसे सुशोभित कर रखा था, क्योंकि वह कलाई तो उसको स्वयंकी थी।"

उसने कहा, "और दायीं?"

मैंने गम्भीर मुद्रामें कहा, "उसे तो उनके समानाधिकारने पुरुषोंके हाथों जैसा···बना दिया है। पुरुष कभी चूड़ियाँ थोड़े ही पहनते हैं जो··"

उसने लजाते हुए कहा, "धत्।"

मैंने ऊँटको अपनी ओर बैठानेका एक पाँसा फेंकते हुए कहा, "हम पुरुष चूड़ियाँ वगैरह हाथोंमें नहीं पहनते, इसीलिए हमारी बराबरीके प्रतीक-स्वरूप इन शिक्षित सन्नारियोंने सौभाग्य-चिह्नोंको पाश्चात्य सभ्यताको समर्पित कर दिया है। और चूड़ियोंके मारसे बचे रहनेके लिए अपने कर-कमलोंमें कुछ भी धारण नहीं करतीं। तू भी चाहे तो एक हाथकी चड़ीको तोड़···"

"तुम भी बड़े वैसे हो। खबरदार, जो एक अक्षर भी आगे बोले तो···।" झटसे मेरे मुँहपर हाथ धरते हुए पत्नी सुलभ अधिकारपूर्ण शब्दोंमें बोली।

अभी उसका हाथ मेरे मुँह पर ही था कि गाँवके नम्बरदार लालजी भाईने कमरेके बाहरसे पुकारते हुए प्रवेश किया।

हम आवाज सुनते ही व्यवस्थित हो चुके थे।

लालाजी भाईको एक जीर्णावस्था-प्राप्त मुड्डेपर बैठनेका संकेत करते हुए मैंने कहा, 'आज सबेरे ही कैसे रास्ता भूल गये?"

उन्होंने कहा, "माड् साब (मास्टर साहब) गजब हो गया। आपने सुना नहीं, विरोधी पार्टीका प्रचार करनेवाले एक व्यक्तिको दूसरी पार्टीके किसी व्यक्तिने गोलीसे मार दिया।"

मैंने उन्हें राजनैतिक हथकंडोंको अपनी समझ-बूझ एवं साधारण बुद्धिके अनुसार समझाते हुए कहा, "लालाजी भाई, ये तो राजनैतिक गतिविधियाँ हैं। मनुष्य अपने स्वार्थों की सिद्धिके लिए मनुष्यके हृदयको कुचलनेमें तनिक भी नहीं सकुचाता। समाजका सर्वोच्च कहा जानेवाला, विश्वकी दृष्टिमें दैवी पुरुष माना जानेवाला व्यक्ति भी स्वार्थके प्रवाहमें प्रवाहित हो जाने पर क्या नहीं करेगा, इसकी कल्पना तक दुरूह है। यह सब तो काका उस ऊपरवालेके पराक्रम हैं! देखते चलो, क्या होता है।"

लालाजी भाईने थोड़ी देर इधर-उधरकी बातें कीं और विदा लेते हुए कहा, "लेकिन माड् साब, चुनाव पर इसका प्रभाव तो अवश्य पड़ेगा।"

मैंने भी उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए उन्हें विदा कर स्कूल जानेकी तैयारी करने लगा। अभी नित्य नियमका लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम मेरे समक्ष मुँह बाये खड़ा था।

दूसरे दिन तो प्रत्येक पार्टीके प्रचारक कौवोंकी भाँति घटनाकी वास्तविकताकी परिधियोंसे आगे बढ़कर कांव-कांव चिल्लाने लगे। इतना तो स्पष्ट था कि प्रत्येक नेता अबोध लोगों—ग्रामीणोंके उज्ज्वल मस्तिष्क-पटलपर कुछ-न-कुछ अंकित अवश्य कर जाता था।

कुछ भी हो, इस घटनाने ऊँटकी करवटको बैठते हुए बदल दिया। यह भी सुना गया कि अपराधीको हवालातमें रखा गया है। जन-संरक्षक अधिकारी घटनाकी वास्तविकता का, कानूनकी परिधिके अन्दर, छान-बीन कर रहे हैं।

× × ×

अदालतमें मामला चल रहा था। अपराधीने अपराध स्वीकार कर लिया था। आज अंतिम निर्णय दिया जानेवाला था। कुछ कार्यवशात मैं भी शहर-बाजार आया था। जिज्ञासा प्रबल हुई कि देखें, अदालतमें मामला किस प्रकार चलता है। अपराधीको फाँसी-प्राणान्त-दंडका अनुमान सर्वत्र लगाया जा रहा था। दस मील चलकर बाजार आया था, फिर भी अनायास ही मेरे कदम अदालत की ओर मुड़ पड़े और अदालत पहुंच कर ही रुके।

कोर्टमें सुई रखनेकी भी जगह नहीं थी। कानूनके

डंडेने सभीको मौन धारण करा रखा था। सर्वत्र नीरवता व्याप्त थी। अपराधी कटघरेमें भयभीत खड़ा था। जिन्दगी और मौतका भीषण ताण्डव उसके निर्निमेष नेत्रोंके समक्ष प्रत्यक्ष हो रहा था, यद्यपि मौत-महाकालकी ही विजय उसे स्पष्ट दीख रही थी। लेकिन दूर-दूर कहीं व्योममें वह आशा भी...! महाकालके द्वारपर स्थित उस कंकालको भी जीवनकी आशा थी! उस जीवनको—जिसने कभी उसे भरपेट भोजन नहीं दिया—उसके बच्चे रोटी और चिथड़ों को तरसते रहे—उसकी कृशकाय पत्नीने गर्भ आँसू पीकर दिन व्यतीत किये—जिस जीवन को बनाये रखने को उसने मानवके रक्तसे अपने हाथ रँगे, उसे ये दिन देखने पड़े! हाय रे विधाता हाय रे जीवन .!

यमराजकी भाँति काला चोगा पहिने न्यायाधीश महोदय अपनी बैठी हुई नाक की डंडी पर चश्मा चढ़ाए कानून सागरको अपनी मतिकी मथौनीसे मथकर अन्तिम निर्णयरूपी घृत निकाल रहे थे। इधर भीड़में कानाफूँसी चल रही थी—विश्वके दार्शनिकोंका जमघट ही जानो। "अपने कर्मोंका फल तो भाई, यहीं भुगतना पड़ता है। जो जैसा करे वैसा भरे वाली बात चरितार्थ है। दुनियाकी आँखोंमें धूल झोंकी जा सकती हैं—न्यायको नहीं। और वह ऊपरवाला उठ थोड़े ही गया है संसार से!" तो कोई कह रहा था, "नेताओंके मुँह लगकर बेचारेके स्त्री-बालक अनाथ हो गये!" कोई तो उन सनातनी वाक्योंको दुहरानेमें ही अनुपम गर्व अनुभव कर रहा था—स्वर्ग-नरक आखिर क्या है? हमारे ही कर्मोंके परिणाम हैं। मृत्यु पश्चात ब्रह्म-भोजन, गौ-दान, श्राद्ध-तर्पणसे स्वर्ग थोड़े ही प्राप्त हो जाता है? जीवों पर दया-दृष्टि रखो, स्वर्ग आपके पैरों पर लोटेगा।

अचानक सायलन्स, सायलन्सकी पुकारने सभीके मुँहको मानो ताले लगा दिए। सहस्त्रों अनिमेष, जिज्ञासिक, आतुर नेत्र जज साहबकी ओर मुड़ पड़े!

उस नीरवता को भंग करते हुए जज महोदयने धीरे-धीरे निर्णय सुनाना प्रारम्भ किया।

"अपराधी श्री · ने स्वर्गीय श्री .की हत्या करना कोर्टके आगे स्वीकार किया है। पुलिस अधिकारियों द्वारा घटनाकी की गई जाँचकी रिपोर्ट और गवाहोंके जवाबोंसे इस बातकी पूर्ति होती है कि वास्तवमें श्री. .ने धारा ताजिरात हिन्दके अनुसार एक ऐसा जुर्म किया है, जिसकी सज़ा फाँसीके अलावा और कुछ नहीं हो सकती।" फैसला सुनाकर जज साहबने अन्तिम निर्णय पर हस्ताक्षर किए और लेखनीको तोड़कर फेंक दिया।

निर्णय सुनकर अपराधी मूर्छित होकर गिर पड़ा था। लोगोंकी तीव्र कानाफुसियोंने अदालतको गूँजा दिया था। उस गुम-पुसमें कभी-कभी कुछ स्पष्ट वाक्य भी सुन पड़ते थे—क्या ही न्याय किया है! उस इन्फ्लुएन्सके जमानेमें भी इस प्रकार दृढ़तापूर्वक निर्णय देना गरलके घूँट पीनेसे कदापि कम नहीं है। कुछ भी हो, दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया, साहबने!

मेरा ध्यान अपराधी से हटकर उस निर्जिव लेखनीकी ओर आकृष्ट था। इस बेचारीने क्या अपराध किया था, जो इसे तोड़कर फेंक दिया गया। भगवती शारदाके कर-कमलोंको सुशोभित करनेवाली, कवियों-लेखकोंकी अक्षय पात्र-सी, जिसके शरण जाकर सहस्रों लोग अपने यश-उदधिसे भी विस्तृत उदरके भरणका साधन जुटा पाते हैं। विश्व मध्य कौन व्यक्ति है, जो इस लेखनीकी दया पर जीवित नहीं रहता हो। मानवको जिस थालीमें खाना, उसीमें छेद करनेकी इस प्रवृत्तिने हो उसे अवनतिके गर्तमें पहुंचा दिया है। मैं उत्तेजित होकर चिल्ला पड़ा, "यह अन्याय है, घोरतम अन्याय! आज अदालतसे न्याय उठ गया है।"

सैकड़ों आँखें अनायास ही मेरी ओर उठ गयीं। जज साहब मुझे घूर रहे थे, मानो खा ही जायेंगे। उनके निर्णयमें आशंका जो प्रगट की गयी थी।

एक वकील साहब तो दुम हिलाते हुए बोल भी पड़े—"भाई लार्ड! यह आपके फैसलेका अपमान है, आपका अनादर है, अदालतकी तौहिन है।" अब मैं अपराधी था, लेकिन कटघरेके बाहर!

जज साहबने तमक कर पूछा—आपका अपराधीसे क्या ताल्लुक है? फैसलेके संदेहके लिए आपके पास क्या सबूत है? कोई शहादत दे सकते हो?

मैं उबल पड़ा—"आपने अन्याय करनेमें अब कसर भी क्या बाकी रखी है। पतझड़ पेड़की पत्तीको जिस प्रकार तोड़ कर फेंक देता है, उसी प्रकार आपने भी उसे तोड़ कर फेंक दिया—ये सहस्रों आँखें देख रही हैं कि आपने इस निर्जीवको तोड़कर फेंक दिया—फिर भी आप सबूत चाहते हैं—शहादत चाहते हैं! आपने इस ममतामयी माताका अपमान किया है, जो मुझे, तुम्हें और इन

समीको रोटी देती है—रोजी देती है। उस लखनीको तोड़ दिया!"

जज साहबको कदाचित मेरी दलीले समझमें आ गई थीं। उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—"वह तो रघुकुल रीतिकी भाँति चली जानेवाली अदालतकी प्रथा है, देहान्त-दण्ड देकर लेखनी तोड़ डाली जाती है। इट इज फार्मलिटी, बी मस्ट आबजर्व इट।"

मैंने उत्तेजित होते हुए कहा—"हां, क्योंकि हमारे रक्तमेंसे अभी पाश्चात्य प्रथाके कीड़े मरे नहीं हैं। इतनी कड़ी सजा इस लेखनी द्वारा लिखी गई, अतः इसे तोड़नेकी तो फार्मलिटी बनी, लेकिन मैं पूछता हूं कि उन कर-कमलोंको काट कर क्यों नहीं फेंक देते, जो इस लेखनीको वहन करते हैं, उससे सजा दिलवाते हैं। उन ग्रन्थोंको क्यों नहीं जला दिया जाता, जो वैसे दंड दिलानेमें मार्ग दर्शन करते हैं। उस मस्तिष्कको निर्मूल क्यों नहीं कर दिया जाता, जिसके परिश्रमका यह परिणाम है। क्या इनके लिए कोई फार्मलिटी नहीं बनी?"

जज साहबने कहा—"आपका मतलब है, क्या अपराधी को दंड न दिया जाय?" मैंने कहा—"आप दंड दें या छोड़ें। मेरा प्रश्न तो केवल आपकी इस निरर्थक फार्मलिटी द्वारा लेखनी के साथ किये गये अन्याय तक ही सीमित है। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि न्याय दयाका दानो! क्या आप सन्तोषजनक जवाब प्रदान कर सकते हैं?"

एम वकील बीचमें ही बोल उठा—"हुजूर, इस आदमीको अदालतकी तहज़ीब मालूम नहीं है। बोले जा रहा है मुँह-फटकी तरह। उसे एकाध दिनकी हवालात……!"

जज साहबने उसे टोकते हुए कहा—"नहीं, न्यायकी सीमाओंके बाहर आबजर्व की गयी निरर्थक फार्मलिटीजके विरुद्ध इनका कहना है।" मेरी ओर मुखातिब होते हुए पुनः बोले—"आपके सवालका जवाब तो उच्चाधिकारीको पूछ कर ही दिया जा सकेगा। धन्यवाद…!" और वे चल दिये।

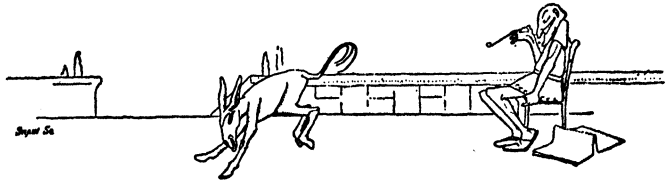
उस समय कोर्टमें मुश्किलसे २०-२५ आँखें मुझे देख रही होंगी, जिनका व्यंग बचाता हुआ वहाँसे भाग निकला।

× × ×

करीब दो सप्ताह बाद, जब मैं गांवकी एक छोटी-सी दुकानसे शक्कर लाया तो व्यापारीने अखबारके एक टुकड़ेमें पुड़ियाँ बांध दी थी। दो सप्ताह बाद आज मैं अखबारका मुंह देख पाया था। शक्करको एक पात्रमें रखकर मैं चायके प्यालेके साथ पेपर पढ़ने का आमोद प्राप्त करने लगा।

एकाएक मेरी दृष्टि एक बड़े अक्षरोंमें प्रकाशित हेडिंग पर जा टिकी। "भावनामय न्यायाधीशने अंगुली काट दी—पाश्चात्य निरर्थक प्रथाओंको राजकीय कार्यालयोंसे अविलम्ब दूर करनेकी सिफारिश की गई।"

मैं आगे तो बहुत पढ़ना चाहता था, पर पढ़ न सका, क्योंकि पेपरकी सीमा वहीं समाप्त हो जाती थी.... बेचारा अखबारका टुकड़ा…विवश पाठक! और मैं चायका एक घूँट पीकर रह गया!



विद्वत्प्रवर डा० अमरनाथ झा

रामइकबाल सिंह 'राकेश'

विद्वत्प्रवर डा० अमरनाथ झा देशके लिए एक देन थे। उनके जीवन-प्रसङ्गोंकी चर्चा करते हुए सबसे पहले मिथिलाके उस छोटे-से निश्चल-प्रशांत गाँवका चित्र मेरी आँखोंके सामने आ जाता है, जिसके इर्द-गिर्द खेतोंमें धानके पौदे हवाके मन्द-मन्द झकोरोंसे झूमते हैं; जहाँ पान, मखान, तेलसी तथा पुदीनेके हरे-चिकने पत्ते प्रतिक्षण एक नूतन आकर्षण पैदा करते हैं, और अमराइयोंके आम्र-विटपकी नवीन कोपलोंवाली डालियोंपर बैठकर वसंत-चारण कोकिल अपना संगीत सुनाते हैं। इन सबके साथ प्रकृतिकी रमणीयतासे ऐक्य स्थापित करनेके कारण ही डा० झा महोदयके हृदयमें निर्मलता, उनके स्वभावमें अकृतिमता और उनके व्यक्तित्वमें सजीवताका विकास हुआ था।

यह मेरा सौभाग्य था कि पूज्य डा० झा महोदयके निकट पहुंच कर उनके चरित्रकी सृजनशील शक्ति और उनके व्यक्तित्वकी महत्ताको वास्तविक रूपमें देखने-समझनेका मुझे अवसर मिला। किंतु केवल इसलिए उनके जीवनके स्मरणीय अध्यायके बारेमें निश्चित विचार बना लेना मेरे लिए संभव नहीं है। उनके आदर्श चरित्रके विभिन्न पहलुओंके सम्बन्धमें अपने प्रयत्नों द्वारा मैं जितना जान सका, इस संस्मरणात्मक लेखमें मैं उनपर अत्यन्त संक्षेपमें प्रकाश डालना चाहूंगा।

मानव-सभ्यताके इतिहासमें भारतीय संस्कृतिका जो सर्वश्रेष्ठ दान है, उसके सर्वाङ्गपूर्ण आदर्शके प्रति डा० झा महोदयके हृदयमें अत्यधिक आदर और प्रेम था। युग-युगका अभिनंदन प्राप्त करनेवाली मानव-संस्कृतिकी रंगीन विभूतिको सूत्रबद्ध मान्यताओंकी दृष्टिसे देखनेके बजाय मानवताके परिष्कृत दृष्टिसे देखना उनके दिशा-दर्शनकी विशेषता थी। उन की दृष्टिमें राजनैतिक और आर्थिक वादोंकी सीमा-रेखाओंने मानव-संस्कृतिकी अंतर्वाहिनी धाराको नियन्त्रित कर दिया था। क्योंकि विभिन्न मतवादोंके रंगमंचपर मानव-संस्कृति की प्रतिष्ठा जीवनके मूलभूत सिद्धान्तोंकी उपेक्षा करती है। उनके अनुसार हमारा लक्ष्य रेखाबद्ध मन्तव्योंको ही ज्ञानकी चरम सीमा समझकर अपनी बुद्धिपर आवरण डाल लेना नहीं, बल्कि चैतन्य होकर और स्वयं जिज्ञासु बनकर स्वतंत्र निरीक्षणके द्वारा ज्ञानकी उपलब्धि करना था।

यह एक जानी हुई बात है कि डा० झा महोदयके अंतर्मनकी सम्पूर्ण निष्ठा आध्यात्मिकताके प्रति समर्पित थी। आध्यात्मिकताकी रूप-संपदाने उनके विचारोंपर गहरा प्रभाव अंकित कर दिया था। प्रतिदिन प्रातःकाल नियमित रूपसे निष्ठा और अचल श्रद्धाके साथ संयतशील रहकर वे संध्या-वन्दन तथा गायत्रीका जप किया करते थे। प्रति माघ मासमें तीर्थराज प्रयागमें निर्लिप्त भावसे कल्पवास करना उनके आवश्यक कर्त्तव्य-कर्मोंका एक सहज स्वाभाविक और अनिवार्य अंग था। उनके निजी पत्र लिखनेके कागज़पर अंकित भगवान् शिवके हिमलिंगकी मूर्त्तिसे भी धर्मके प्रति उनकी एकान्त ध्येय-निष्ठा और अविचल प्रीतिका आन्तरिक परिचय मिलता है।

भौतिकवादके वर्त्तमान युगमें तर्क-संगतिके आधारपर अध्यात्मके प्रति उनके इस केन्द्राय आकर्षणके सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि यह तो जीवनसे आँख बचाकर, उसकी परिधिसे बहिर्मुख होकर चलना है, यह कल्पनाके यानमें बैठकर आकाशमें उड़ना है, यह दृष्टिकोण नवीन प्राणवायुसे अनुप्राणित नहीं है, और यह अध्यात्म-दर्शनको आदर्श मानकर अदृश्यके क्रोड़में यथार्थको अवगुण्ठित करना है। परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जहाँ यह सत्य है, वहाँ यह भी सत्य है कि निरी तर्क-बुद्धि अथवा विज्ञानकी चक्षुष्मत्ता भौतिक पदार्थोंकी क्षमतासे नियन्त्रित है। तत्त्व-वस्तुके रहस्यमय अन्तःकरणमें उसका प्रवेश नहीं है। प्रोफेसर जाज डार्विनने ब्रिटिश एसोसियेशनके प्रधानकी हैसियतसे ठीक ही कहा था—'The mistery of life remains as impenetrable as ever.'—जीवनका रहस्य आज भी उसना ही गूढ़ है, जितना कि पहले था।

यहाँ यह कह देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि मार्क्सवादी जिस भारतीय अध्यात्म-दर्शनको नितान्त निर्वीर्य, प्राक्कल्पित, व्यर्थ एवं निराधार मानते हैं, डा० झा महोदय उसको सर्वोन्नतिका मूल, सर्वज्ञ-परिपूर्ण, प्रकर्षोन्मुख, पूर्ण वैज्ञानिक और महान् मंगलमय मानते थे। वैज्ञानिक भौतिकवाद की सत्यता अथवा उसकी आर्थिक उपयोगिताको ही प्रमुख रूपसे जीवनका केन्द्र-बिन्दु मान लेना उन्हें उचित नहीं

मालूम देता था। उनके अनुसार घोर निराशा, असफलता और लाचारीकी स्थितिमें आत्म-विश्वासके अभावके कारण ही मार्क्सके जड़वादी दर्शनका विचार-बीज हमारी मनोभूमिमें अंकुरित और फलित होता है। यहाँ इस बातकी पुष्टिके लिए एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। मेरी काव्य-रचना 'गाण्डीव' की मूल और प्रमुख प्रवृत्ति मार्क्सके भौतिकवादी दर्शनकी विचार-धारासे प्रभावित है। २९ नवम्बर, १९५३ को इसके सम्बन्धमें सूत्रसदृश शब्दोंमें अपने विचार व्यक्त करते हुए डा० झा महोदयने एक स्थानपर इस प्रकार लिखा था--"कई पदोंमें निराशाकी जो झलक मिलती है, आशा है, क्षणिक है। जिस कविकी कृति इतनी सुन्दर है, वह अधिक दिन तक सौन्दर्य और अह्लादसे वंचित नहीं रह सकता है।" इसपर उनसे जब मैंने निवेदन किया कि निराशाकी दुर्बल भावना तो 'गाण्डीव' के किसी भी पदमें कहीं नहीं है, तब डा० झा महोदयने अविचलित दृढ़ताके साथ कहा—"मन-इन्द्रियोंके द्वारा आकाशका जितना अंश दृष्टिगोचर होता है, उतना ही सब कुछ नहीं है। यह बात भी ध्यानमें रखनी होगी कि मन-बुद्धि आदि इन्द्रियोंसे अतीत परम तत्त्व ही जीवनके महान् और गूढ़तम प्रश्नका समाधान है। निरा भौतिक जड़वाद तो निराशा और मानसिक दासताका ही द्योतक है।"

हमें यह भी मान लेना चाहिये कि डा० झा महोदयका धर्म अंधविश्वाससे प्रेरित अथवा मानवीय भावनाओंसे परे नहीं, बल्कि मानवताकी विशद धारणासे परिप्लावित था। उनका सामान्य व्यवहार भी स्वभावतः आन्तरिकतासे पूर्ण प्रतीत होता था। उनके अन्तर-बाहर और आचार-विचारमें एक मूलगत साम्य था। व्यवहारमें औपचारिकता उन्हें रुचिकर नहीं थी। वे विनम्र प्रकृति, शालीन और अपने चिर परिचितों तथा निकटतम मित्रोंके लिए सहज ही सुलभ थे। अपने कर्त्तव्योंका परम तत्परतासे दृढ़-निश्चयपूर्वक पालन करना उनके चरित्रकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। उनके व्यक्तित्वके समान उनकी लेखन-शैलीमें भी सजीवता थी और उनकी बातचीतमें एक अपना निजी आकर्षण था, जिसमें निरर्थक वाग्विस्तार या रङ्गीन अलंकरण नहीं था।

व्यायाम, आमोद-प्रमोद, प्रहसन और अभिनयके प्रति भी डा० झा महोदयका कुछ कम प्रेम नहीं था। वसन्त-पञ्चमीके अवसर पर सरस्वती-पूजाके प्रसङ्गमें अपने गाँव पाहीटोलमें उन्होंने एकाधिक बार भासकृत प्रतिज्ञायौगंधरायण नाटकमें विदूषकके रूपमें बड़े कौशलके साथ अभिनय किया था। इसी प्रकार इससे पूर्व कई बार महाकवि कालिदास कृत नाटकोंमें रङ्गमंच पर उनके द्वारा सफलतापूर्वक किये गये अभिनयको दर्शकोंने बहुत पसन्द किया। सच तो यह है कि उनके सफल और स्वाभाविक अभिनयका दर्शकोंके मन पर पूर्ण प्रभाव पड़ता था। अनुचित और अश्लील दृश्योंको रंगमंच पर अभिनयके रूपमें दिखलाना उन्हें पसन्द नहीं था। वे टेनिसके भी एक अच्छे खिलाड़ी थे। उत्तरप्रदेशके बाल-चरदल-संगठन (Boy Scouts' Association) के सभापतिकी हैसियतसे छात्रोंके द्वारा आयोजित शरीर-विकास-सम्बन्धी प्रदर्शनोंमें वे स्वयं सम्मिलित होकर विशेष रूपसे हाथ बँटाते थे।

डा० झा महोदयका सम्बन्ध केवल संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी साहित्य तक सीमित नहीं था। उन्होंने हिन्दी और उर्दू साहित्यके विविध अङ्गोंसे भी घनिष्ठ परिचय प्राप्त किया था। बिहारीकी अमर रचना 'बिहारी-सतसई' का अत्यन्त सुन्दर और परिष्कृत ढंगसे अंग्रेजी अनुवाद कर उन्होंने अंग्रेजी भाषा-भाषियों का ही नहीं, करोड़ों अहिन्दी भाषा-भाषियोंका भी उपकार किया।* हिन्दीके सुसमर्थ और प्रतिभाशाली कवियोंको सर्वश्रेष्ठ रचनाओंके अतिरिक्त मीर-तक़ी, मौलाना हाली, मौलाना आज़ाद, सर इक़बाल, हज़रत अकबर इलाहाबादी और ज़ौक तथा अन्यान्य उर्दू-शायरोंको विभिन्न विषयोंकी रचनाओंका भी वे बड़े ध्यानके साथ अध्ययन करते थे। ज़ौकका निम्नलिखित शेर उन्हें बहुत पसन्द था, जिसका अभिप्राय यह है कि सद्भावना-पूर्वक अभिन्न भावसे किसी दूसरेके दुखका अनुभव करनेके लिए ही भगवान्ने सृष्टिके अमूल्य पुष्प मनुष्यको उत्पन्न किया है, वरना उसकी वन्दना (इबादत) करनेके लिए आसमानमें फरिश्ते कम नहीं थे।

'दर्द दिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको,
वर्ना ताअतके लिए करें बयाँ कुछ कम न थे।'

* खेदकी बात है कि 'बिहारी-सतसई' का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद अभी तक अप्रकाशित ही है। क्या स्वर्गीय पूज्य डा० अमरनाथ झाके अनुज पंडित विभूतिनाथ झा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट निकट भविष्यमें इसके प्रकाशनकी ओर ध्यान देंगे? —लेखक

इस बातकी जानकारी शायद कम लोगोंको होगी कि खान-पानकी दृष्टिसे उत्तेजक, मादक और तामसिक पदार्थोंमें स्वभावतः डा० झा महोदयकी रुचि नहीं थी। उनके विचारसे केवल स्वादके लिए अखाद्य वस्तुओंको दैनिक आहार के रूपमें प्रश्रय देना सर्वथा व्यर्थ, अस्वाभाविक तथा अहितकर था। सादा, नपा-तुला और सात्विक भोजनका उनकी दृष्टि में बड़ा महत्व था।

डा० झा महोदयने मौंस अथवा उससे बने हुए दुष्पाच्य एवं अरुचिकर पदार्थोंको अपने दैनिक आहारमें कभी स्थान नहीं दिया। जहाँ तक मुझे पता है, इस नियमका उन्होंने आजीवन अक्षरशः पालन किया। यथार्थमें देखा जाय तो सात्विक भोजनका हमारे जीवनके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, और यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि उसका प्रभाव हमारे हृदय और मस्तिष्कपर निश्चित रूपसे पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद् (७।२६।२) 'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः' के अनुसार सबल, उदात्त और निर्मल मनका विकास आहारके प्रकार पर ही अवलम्बित है। श्रद्धेय पंडित बनारसीदास चतुर्वेदीने 'विशाल भारत' के साहित्याङ्कमें साहित्यिक बीमारियोंके इलाजकी चर्चा करते हुए ठीक ही लिखा था—"हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जो लोग अंटसंट लिखते हैं, उसमें उनका कसूर कुछ भी नहीं है या यों कहिये नाममात्रका है। यदि आप तेलकी पकौड़ी और लालमिर्चके दही-बड़े खाकर 'साकेत' पढ़ने बैठेंगे, तो कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनामें आपको दोष-ही-दोष दीख पड़ेंगे। जो लोग अखाद्य वस्तुओंका भोजन करते हैं, वे ही प्रायः अपनी लेखनी द्वारा विष-वमन करते हैं।"

संगीतकी वशीकरण तथा मार्मिक कलाने डा० झा महोदयके चित्तको अपनी ओर विशेष रूपसे आकर्षित किया था। उनके निवास-भवनमें उनके मनोविनोदके लिए एक रेडियो-सेट रहा करता था। समय तथा ऋतुका विचार रखते हुए वे उसपर अपनी रुचि तथा आकर्षणके अनुसार पृथक्-पृथक् राग-रागिनियोंके गान सुना करते थे। शरद् ऋतु के अरुणोदयमें, जब कि प्राची दिशाके मुखपर सूर्य चुपके-चुपके लालिमाकी रोली मल देता है, भैरवी; दिनके चतुर्थ प्रहरमें सैन्धवी; ग्रीष्म तथा हेमन्त ऋतुओंके मध्याह्न कालमें टोड़ी; वसन्तागममें दिनके द्वितीय प्रहरमें पटमंजरी और वर्षाऋतुमें रात्रिके प्रथम प्रहरमें मलार रागिनीकी बोल-तानों तथा सुरीलो गमकोंसे जार्जटाउन, प्रयागमें स्थित उनका 'मिथिला' नामक निवास-भवन गूँजता रहता था। फिल्म-संगीतको वे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। प्रसंगवश बातचीत में वे उसपर कड़ी कमानके तीर बरसाते थे। ख्याल, ध्रुवपद, ध्रुवपदांग-ख्याल, यमनकल्याण तथा शुद्ध सारंग जैसी शास्त्रीय संगीत-शैलियोंके कलात्मक माधुर्यने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया था। उन गौरवपूर्ण दिनोंकी मधुर स्मृति आज भी मेरे हृदयमें बनी हुई है, जब कि सन् १९५२ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे 'मैथिली लोकगीत' के प्रकाशनके समयमें हर तीसरे दिन विराम कालमें उनके पास जाया करता था, और वहाँ मेरे स्फूर्तिशून्य मस्तिष्कको एक प्रकार की नई प्रेरणा मिलती थी।

लेकिन अब इन बातोंसे क्या? अगर मिथिला शास्त्रीय चक्षुष्मत्ता और सांस्कृतिक गरिमाकी ज्योतिर्मयी स्मृति थी, तो अब उसकी वह चिह्न-रेखा अतीतके गहन अन्धकारमें तिरोहित हो चुकी। उसके इतिहासका वह गौरवमय स्वर्णयुग बीत चुका। वह मिथिला सूनी हो गई, जिसकी एक-एक इंच भूमि सरस्वतीकी पूजा-वेदी थी और जहाँ कभी मूर्त्तिमान् बृहस्पति मण्डन मिश्र, षड्दर्शनोंके टीकाकार वाचस्पति मिश्र, महापण्डित मधुसूदन झा और डा० सर गंगानाथ झाके समान आत्म-विस्मृत मनीषी अपनी वाणीसे मोती बरसाते थे। पाण्डित्यकी दृष्टिसे डा० अमरनाथ झा उस परम्पराके अन्तिम गौरव-स्तम्भ थे। अब तो मिथिलाका नाम ही अवशेष रह गया है। उसकी आत्मा तो डा० झा महोदयके अस्थि-फूलके साथ ही गंगाके निर्मल धारा-प्रवाहमें विलीन हो गई!



साहित्यका अनुभूत सत्य

परमानन्द दोषी

अनुभूति और अभिव्यक्ति, ये दोनों ही साहित्यकी मुख्य आधारशिलाएँ हैं। बिना अनुभूतिके जिस भाँति न तो अभिव्यक्ति सम्भव है, उसी भाँति बिना अभिव्यक्तिके किसी प्रकारके प्रत्यक्ष साहित्यका प्रस्तुतीकरण भी। इस सत्य के अपवाद-स्वरूप यदाकदा अनुभूतिके अभावमें भी अभिव्यक्तिका प्रयत्न किया ही जाता है। इस प्रकारके प्रयत्नसे उत्पन्न साहित्य अथवा कला जानदार नहीं हो पाती। अभिव्यक्तिकी जान तो अनुभूति ही है। वैसे सीमेंट अथवा गारेके अभावमें भी जिस-तिस भाँति ईंटोंको सजाकर भवन का रूप दिया जा सकता है; लेकिन इस प्रकारसे बने भवन टिकाऊ तथा सुन्दर नहीं हो सकते; भले ही भवनकी आकृति या रूप-रेखा इन्हें हासिल हो जाय। भवन-निर्माण अथवा स्थापत्य-कलामें जो स्थान सीमेंट, चूने अथवा गारेको प्राप्त है, वही स्थान साहित्य-निर्माण अथवा ललित-कलामें अभिव्यक्तिका भी है। चूने-गारेके संयोगसे भवनमें सौन्दर्य आता है, अनुभूतिके सहयोगसे साहित्य अथवा अन्य कलाओंमें। भवन-निर्माणकी रूप-रेखाकी भाँति साहित्यकी रूप-रेखा भी निर्मित की जा सकती है अनुभूतिके अभावमें भी। परन्तु इस प्रकारसे बने अथवा रचे गये साहित्य हल्के तथा खोखले ही रहेंगे।

साहित्यमें अनुभूतिकी महत्ता स्थापित-प्रतिपादित कर देनेके पश्चात् अब यह देखना उपयुक्त प्रतीत होता है कि साहित्यगत अनुभूति भी सदैव सत्य ही होती है क्या? यदि वास्तवमें सदैव ऐसा होता, तो हमारा सारा साहित्य शाश्वत, चिरन्तन और कालजयी होता; पर ऐसा प्रायः नहीं हो पाता। यह इस बातका सूचक है कि साहित्यगत अनुभूतियाँ अधिकांशतः काल्पनिक, उधार ली हुई, चुराई हुई तथा झूठी होती हैं। एक सर्वहारा साहित्यिक ज़िन्दगीके कष्टोंको स्वयं झेलकर, जीवनगत समस्याओंसे खुद लड़कर, व्यावहारिक जीवनकी कठिनाइयोंसे लोहा लेकर तथा अपनी अस्तित्व-रक्षाके निमित्त नाना प्रकारके संघर्षोंसे भिड़कर एतत्सम्बन्धी लेखा-जोखा अपने द्वारा प्रणीत साहित्यके माध्यमसे साहित्य की अन्यान्य विधाओंके रूपमें जन-सामान्य अथवा पाठकवर्ग के सम्मुख जब उपस्थित करता है, तब उसमें सचाईकी रेखाएँ होती हैं, स्वतः अनुभूत बातें होती हैं और उसमें कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिनके सौन्दर्यसे लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। उदाहरण देकर इसे यदि स्पष्ट किया जाय, तो अच्छा रहेगा। हिन्दी-साहित्यके कथा-साहित्यको मिसालके रूपमें उपस्थित करनेका उपक्रम यहाँ हम करेंगे। कथा-साहित्य में भी उसकी आंचलिक प्रवृत्तियोंसे ही हमारा आशय है। बिहारके वयोवृद्ध साहित्यकार श्री शिवपूजन सहायजीकी पुस्तक 'देहाती दुनिया' एक आंचलिक उपन्यास है, जो आजसे कोई १५-२० वर्ष पूर्व लिखा गया था। सम्भवतः 'देहाती दुनिया' के कथाकारने हिन्दी-साहित्यमें पहली बार इस प्रकारका उपन्यास हिन्दी-साहित्यको दिया। लेखकने अपने अनुभूत सत्यको ही 'देहाती दुनिया' के कथानकके माध्यमसे हिन्दी-जगतके सन्मुख समुपस्थित किया। इसी कारण उसमें साहित्यगत ईमानदारी, कौशल, वर्णन, चित्रण आदि इतने सुष्ठु रूपमें आ सके। उन दिनों साहित्य-सृजनके लिए परिस्थितियाँ उतनी अनुकूल तथा उत्साहवर्द्धक नहीं थीं, जितनी वर्तमान समयमें हैं। फलतः उसकी 'देहाती दुनिया' की अनुकृति नहींके बराबर हो सकी। वर्तमान समय में आंचलिकताकी ओर जिन हिन्दी-कथाकारोंके ध्यान गये, उनमें शिवप्रसाद 'रुद्र', फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन आदिके नाम अग्रगण्य हैं। हिन्दी-कथा-साहित्यमें इधर पाँच-सात वर्षोंके अन्दर-अन्दर जिस एक व्यक्तिने आंचलिकताका प्रवर्तन तथा प्रतिनिधित्व किया है, वह है 'नागार्जुन'। नागार्जुन नामधारी इस व्यक्तिने उन अंचलोंके विषयमें कोई रेकर्डेड अथवा लिपिबद्ध बातोंकी जानकारी हासिल करके उन्हें कथानकके रूपमें सूत्रबद्ध नहीं किया है, जिन अंचलोंकी घाटीसे होकर उसके उपन्यासोंकी कथानक-रूपी गाड़ी गुजरी है; बल्कि स्वयं उसका वे अंचल कार्यक्षेत्र रहे हैं। उनमें वह पैदा हुआ है, पाला-पोसा गया है, लड़कपन बिताया है, जवानी बिताई है और अब तक जीवनकी शेष घड़ियाँ भी वहीं बिता रहा है। जिस जीवनका उसने चित्रांकन अपनी पुस्तकोंमें किया है, उस जीवनको वह स्वयं जीया है। यही वजह है कि उसकी कृतियोंमें सजीवता, सचाई, अकृत्रिमता है और हृदयको छू लेनेकी सामर्थ्य रखनेवाली कुछ ऐसी बातें

हैं, जिनकी अनुभूति तो सहज सम्भव है, पर अभिव्यक्ति कष्टसाध्य। तो, आंचलिक उपन्यासोंकी लोकप्रियता, प्रसिद्धि, धूम और चर्चाको देख बहुतेरे उपन्यासकारोंने अपनी कलम तो अंचलोंकी ओर कर दी, पर उनके डेग उन दिशाओंकी ओर, उन क्षेत्रोंकी ओर नहीं बढ़ सके। नतीजा यह हुआ कि आंचलिकताकी मुहर तो उनकी कथा-कृतियोंपर लग गई, परन्तु अंचलोचित सचाईसे वे चीजें कोसों दूर रह गईं। ऐसी तथाकथित आंचलिक कला-कृतियोंकी बातें सीठी-सी, ऊपरसे चिपकाई हुई, अनाकर्षक, मनको ऊबा देनेवाली तथा झूठी सिद्ध होती रही हैं। इससे स्पष्ट यह हुआ कि अनुभूति और एकमात्र अनुभूतिके अभावमें शिल्प, कथानक प्रस्तुत करनेकी शैली आदि अनेकानेक अवान्तर गुणोंसे मण्डित रहने के बावजूद भी ऐसी कृतियाँ लोक-प्रतिष्ठा तथा लोकप्रियता हासिल करनेसे वंचित रह जाती हैं। दुर्भाग्यवश कथा-साहित्य में आंचलिकताके नामपर इसी प्रकारके दुष्प्रयोग या दुष्प्रवृत्तियाँ कार्य करती रही हैं।

अकेले कथा-साहित्य ही क्यों, कारयित्री प्रतिभाके बलपर बननेवाले सृजनात्मक साहित्यके अन्य अंग-उपांग—जैसे कविता, नाटक आदिमें भी इस प्रकारके दुराग्रह दृष्टिगोचर होते हैं। जीवन भर किसानोंके मुँह तक देखनेसे वंचित रहनेवाले शहरी कवि भी सस्ती लोकप्रियता और झूठी वाहवाही हासिल करनेके लोभमें किसानोंकी करुण-गाथा लिख-लिखकर 'प्रगति-वीर' बनते रहे हैं! बिना चोट खाये हुए हृदयसे भी असफल प्रेमकी चीत्कारें बहुत कवि निकालते रहे हैं! यह तो अनुभूति-शून्यताका कविताके क्षेत्रमें एक दृष्टान्त-मात्र हुआ। हम ऊपरकी पंक्तियोंमें कह चुके हैं कि साहित्यकी विभिन्न विधाओं, विभिन्न विषयों, विभिन्न अंगों-उपांगोंमें इसी प्रकारकी अनुभूति-शून्यताका बोलबाला देखा जाता है। और इसी कारण श्रम, आकार तथा साहित्यगत अन्य अपेक्षित खूबियोंके होते हुए भी वह साहित्य सत्साहित्य नथा सर्वाङ्गपूर्ण नहीं हो पाता। निष्कर्ष यह कि साहित्यमें अनुभूति अभिव्यक्तिकी सहोदरा होते हुए भी अभिव्यक्तिसे बीस पड़ती है। बिना अनुभूत सत्यके न तो स्पष्ट अभिव्यक्ति सम्भव है और न स्पष्ट अभिव्यक्तिके बिना स्वस्थ, सर्वाङ्गपूर्ण और सुन्दर साहित्य ही। अन्य कलागत विषयोंमें भी अनुभूतिकी सचाई नितान्त अपेक्षणीय है। जिस कलाकृतिमें, जिस अनुपातसे अनुभूत सत्यका समावेश रहता है, उसी अनुपातसे वह जन-सामान्यका लोकरंजन करनेमें सहज समर्थ हो पाती है।

भास-नाटकोंमें चित्रकला और संगीत

आर० श्रीनिवासाचार्य

संगीत एवं चित्रकलाका साहित्य-कलासे एक अपूर्व एवं गाढ़ सम्बन्ध है। रसकी निष्पत्ति करना ही साहित्य-कलाका मूल उद्देश्य रहता है। रसकी निष्पत्ति होनेसे ही आनन्दका अनुभव किया जा सकता है। कलाका मूल उत्स है आनन्द। परन्तु आनन्द केवल अनुभवगम्य है, क्योंकि वह भाव मन और वाणीकी पहुंचके अतीत है। प्रत्येक चेतनकी प्रकृति रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदिके गुणोंको ही लेकर बनी हुई है। इन गुणोंकी तन्मात्राओंमें से किसी एकका संभवन होनेसे तत्तद्रूपी अनन्त प्रेममय ब्रह्मके अस्तित्वका अनुभव होने लगता है। उपनिषदोंमें ब्रह्मके सम्बन्धमें कहा गया है—'रसो वै सः'। इसी रसमय ब्रह्मका अनुभव रससे ओतप्रोत साहित्य-कला द्वारा किया जा सकता है। इसी रसकी पुष्टिके लिए संगीतकला, चित्रकला आदि अन्यान्य कलाओंकी शरण लेनी पड़ती है। संस्कृत नाटक साहित्यमें संगीत एवं चित्रकलाका समावेश अत्यन्त गाढ़तर है। भास, कालिदास आदि महाकवियोंने इन्हीं चित्र, संगीत आदि कलाओंका साहित्य-कलासे मधुरमय समावेश करके चिदानन्दमय परमपुरुषके रसमय रूपको अपने ग्रन्थ-रत्नोंमें प्रतिबिम्बित कर दिया है। इसी द्वारा उन्होंने कलाके 'आनन्दरूपममृतम्' का अनुभव किया था।

चित्रकला

भासकालीन समाजमें चित्र एवं संगीतकलाकी क्या दशा थी? उनका क्या स्थान था? उनका प्रभाव किस हद तक मानव-समुदायोंपर पड़ा था? राजाओंकी रुचि उनके प्रति किस तरह थी? ये सब बातें भास-नाटकोंका आद्योपान्त अध्ययन करनेसे विदित हो जाती हैं। भास कविकी ममता

इन कलाओंपर अत्यधिक थी। भासकालीन समाज चित्रकला के लिए अत्यधिक एवं अत्युन्नत उत्तेजन दिया करता था। राजाओंके नमक खानेवाले चित्रकारोंने तो सारे प्रासादको कला-कोशके रूपमें परिवर्तित कर दिया होगा। जीवनमें घटी हुई घटनाओंको चित्रके रूपमें चित्रित करवानेकी पद्धति राजा लोगोंमें जारी रही। देव-मन्दिरकी दीवारें भी आकर्षणीय चित्रपटोंसे सुशोभित रहती थीं। चित्रफलकस्थ वधू एवं वरका विवाह किये जानेकी प्रथा जारी थी।[1] यह प्रथा क्षत्रिय धर्मोचित ही थी।[2] इस शुभ अवसरपर तैयार किया गया चित्रपट भी मनमोहक एवं सुन्दर रहता था। राजप्रासादके एक अंग 'दारुपर्वतक'की दीवारें रमणीय और आकर्षणीय चित्रपटोंसे अलंकृत रहा करती थीं। विरामकाल में या थकावटके अवसरपर या गृह-जीवनसे ऊब जानेके अवसरपर अन्तःपुरके निवासी वहाँ आकर अपने दिलको बहलाया करते थे। अस्वस्थ एवं पीड़ितजन भी सुन्दर चित्रपटोंसे सुशोभित शय्या-गृहमें स्वस्थ होनेके काल तक रहा करते थे।[3] चतुरतासे चित्रित चित्रपट वीक्षकके मनको शान्ति प्रदान करता है न? दुःखिता पद्मिनी भी दुःखका शमन करनेके लिए अपने इष्टजनोंकी प्रतिकृतियोंपर दृष्टि डालती है।[4] सकल भोगैश्वर्यकी सम्पत्तिसे सम्पन्न गृह हो या दारिद्र्य एवं दुःखके अन्धकारसे पूर्ण घर हो—सबकी भित्तियाँ चित्रपटोंसे शोभायमान थीं।

भास महाकवि चित्रकलाके श्रेष्ठ विमर्शक थे। भासका मत है कि आदर्श चित्र भी आदर्श गुणोंकी भाँति सबको अतीतके आनन्द-रसका अनुभव करा सकता है। दूतवाक्यके—'अहो दर्शनीयः अयं चित्रपटः'—एक ही वाक्यमें कविने कहला दिया है कि चित्रपटावलोकन नेत्रोंका आनन्दमय भोजन है। सुन्दर और स्वच्छ चित्रपट वीक्षकोंके मनमें भावनाकी तरंगें उठा सकता है। चित्रको सर्वानुरंजित करनेके लिए उसे नाना रंगोंमें रँगना पड़ता है। सुव्यक्त और सुचारु रूपसे चित्रित चित्र ही प्रेक्षकके मनको अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।[5] चित्रकी हरेक रेखा और वर्ण घन, स्पष्ट तथा धीर रहना चाहिए। इन लक्षणोंसे रहित 'संकीर्णलेख्य' में भास कविका कुछ भी गौरव नहीं और वह भासके अनुसार सर्वथा वर्जनीय है। द्रौपदीका मानभंग-प्रसंग कितने ही शक्तिशाली चित्रकारसे चित्रित होनेपर भी वह चित्र रसिकमूर्ति कृष्णको नहीं रुचा। उचितोचित वर्णोंसे रंजित चित्रकी कान्ति कभी कुण्ठित हो नहीं जाती, कलंकित नहीं हो जाती। यद्यपि वह प्रमादवश राखसे ढकी हुई आगकी भाँति कुण्ठित होनेपर भी राखको उखाड़ फेंकनेसे वह चित्र पहलेसे ही अधिक कान्तिमान बन जाता है।[6] नाना रंगोंसे रंजित चित्र विविध वर्णोंसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाले कुसुमकी भाँति दर्शनीय है। इसीलिए वासवदत्ता का चित्र देखते ही पद्मावती दाँतोंमें अंगुली दबा लेती है। भावनापूरित चित्र चित्रकारके कला-कौशलका परिचय दे सकता है और घटी हुई घटनाओंकी याद भी दिला सकता है। दुःशासन द्रौपदीकी साड़ीके आँचलको पकड़े खड़ा है। तब भी द्रौपदी दिग्भ्रान्त दृष्टिसे देख रही है। द्रौपदीकी इस दुरवस्थाको देख कुपित भीम सभामण्डपके एक स्तम्भकी ओर ताक रहा है। इसे ज्ञातकर मतिभ्रष्ट युधिष्ठिर अपनी आँखोंकी दृष्टि फेरकर अपने भाई भीमको शान्त करनेका प्रयत्न कर रहा है। प्रियतमाकी अवस्थाको देख गाण्डीवको चलानेके लिए उद्यत होकर अर्जुन रोषभरी आँखोंसे दाँतोंको पीस रहा है। कटिको वस्त्रसे बाँधकर दाँतोंको पीसते-पीसते नकुल-सहदेव हाथोंमें खड्ग लिये खड़े हैं। भावपूरित सन्निवेशको, महाव्यक्तियोंको तथा उनकी मनोवृत्तियोंको प्रतिबिम्बित करनेवाला यह चित्रफलक कितना अद्भुत है![7]

---

१. आत्मनश्चपलतयानिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। —स्वप्न० अं० ६

२. क्षत्रधर्मेणोद्दिष्टस्ते दुहितुर्विवाहः। किमिदानीं हर्षकाले सन्तप्यसे। तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्। —प्रतिज्ञा० यौ० अं० ४

३. रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता। —स्वप्न० अं० ६ श्लोक ४

४. एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव। —स्वप्न वासवदत्ता अं० ६

५. अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता। अहो युक्तलेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि। —दूतवाक्य

६. युक्तलेखतया वर्णानां यथा यथा प्रमार्ज्मि, तथा तथा उज्ज्वलतरं भवति। —प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक ३

७. एष दुःशासनो द्रौपदी केशहस्ते गृहीतवान्। एषा खलु द्रौपदी,

दुःशासनपरामृष्टा संभ्रमोत्फुल्ललोचना।
राहुषक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते॥

भास-नाटकोंमें साहित्यके साथ चित्रकलाका मणि-कांचन-सा संयोग हुआ है। भगवान् वासुदेव पाण्डव-दूतके रूपमें शान्ति-सन्धानके लिए जब दुर्योधनकी सभामें आते हैं, तो उनका स्वागत करनेकी अभिच्छासे दुर्योधन बादरायणसे उस चित्रपटको लानेकी आज्ञा देता है, जिसमें द्रौपदीका मान-भंग-प्रसंग चित्रित है।[1] उसी चित्रपटपर अपनी स्थायी दृष्टि डालकर केशवके आते वक्त वह खड़ा नहीं हो जाता है। आगे उस चित्रपटपर जब कृष्णकी दृष्टि पड़ती है, तो अम्हनशील बनकर वह उसे हटा ले जानेको कहता है।[2] इन्द्र ब्राह्मणके वेशमें रणांगणमें स्थित कर्ण से जब एक महत्तर भिक्षा माँगता है, तो उस ब्राह्मणकी 'धीर-वाणी तथा मधुर-स्वर'को सुन कर्णके अश्व अपने 'कर्णोंको उठाकर', 'गलेको हिलाकर', 'अंगोंपर अपना अधिकार खोकर' एक चित्रवत् खड़े हो जाते हैं।[3] भीकर 'समन्तपंचक' मृतनृपोंसे मिले हुए हत-अश्व-गज एवं योधवृन्दोंसे भरे हुए एक अस्पष्ट चित्रपट

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति। एष युधिष्ठिरः

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः।
करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम्॥

एष इदानीमर्जुनः,

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठस्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत्।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः शनैः समाकर्षति गाण्डीवज्याम्॥

एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति। एतौ नकुलसहदेवौ,

कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ
परुषिनमुखरागौ स्पष्टद्रष्टाधरौष्ठौ।
विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ॥

एष युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति—

नीचोऽहमते विपरीतमतिः कथं वा रोषं परित्यजतमद्य-
नयानयज्ञौ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः सत्वाधिकेषु वचनीय परा-
क्रमाः स्युः। —दूतवाक्य

१. बादरायण! आनीयतां सचित्रपटो ननु, यत्र द्रौपदीकेशांबरावकर्षणमालिखितम्। —दूतवाक्य

२. अपनीयतामेष चित्रपटः। —दूतवाक्य

३. आकर्ण्य स्वरमस्य धीरनिनदं चित्रार्पिताङ्गा इव। —कर्णभार श्लोक २५

की भाँति था।[4] इसी रणभूमिमें दुर्योधन 'ऊरुभंग' होकर पड़ा है। उसके गुरुपुत्र अश्वत्थामा पास जाकर सुयोधनके पराभवके कारणभूत कृष्ण तथा पाण्डवोंको युद्धमें 'संकीर्णलेख्य चित्रपट'की भाँति अपने शस्त्रजालोंसे फेंकनेका गर्जन करता है।[5] शिवालयमें अपने 'मोदकमल्लक'को न देख उसे खोजते-खोजते भ्रमके गर्तमें पड़कर सुचित्रित 'मोदकमल्लक'को ही अपना समझता है विदूषक।[6] 'वत्सराज'का 'वासवदत्ता'के साथ 'घोषवती'को लिए 'भद्रवती'की सहायतासे कौशानीकी ओर प्रस्थान हो चुकनेकी बात सुनकर शोकाभिभूत अंगारवती आत्महत्या कर लेनेको उद्यत हो जाती है। तब उसका पति 'चित्रफलकस्थ' वत्सराज तथा वासवदत्ताके विवाहका प्रबन्ध कर उसे आत्महत्या कर लेनेसे बचा लेता है।[7] उदयन पद्मावतीको देखनेकी अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट करनेसे विदूषक अनुमान करता है कि पद्मावती 'मृगपक्षीसंकुल' चित्र से शोभायमान 'दारुपर्वतक' प्रासादमें रही होगी।[8] पद्मावती भी अपने प्रियतमके प्रेमादर-पात्र वासवदत्ताके चित्र देखनेकी इच्छुक हो जाती है। उसकी इस अभिलाषाकी पूर्ति कर देती है धात्री। विदूषक गत वैभवकी याद करके व्यथित हो जाता है कि चारुदत्त जब संपत्श्रीसे सम्पन्न था, तब उसके यहाँ नाना भोजन-पात्रोंके बीच बैठ भुजित में नाना वर्णोंसे भरे पात्रोंके बीच बैठ चित्रण करनेवाला एक चित्रकार की भाँति था।[9] राम, सीता, लक्ष्मणके वन-प्रस्थानको बात सुनकर जब वृद्ध दशरथ उनसे मिलनेको उद्यत हो जाता है, तो यह कहकर कि 'हमारे प्रस्थानके पश्चात् प्रासादमें अपनी प्रतिकृतियोंको देखें महाराज दशरथ' राम, सीता और लक्ष्मण चले जाते हैं।[10]

---

४. एतद्दृशं हतगजाश्वनरेन्द्रयोधं संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम्। —ऊरुभंग श्लोक ३

५. कृष्णं सपाण्डुतनयं युधि शस्त्रजालैः संकीर्णलेखमिव चित्रपटं क्षिपामि। —ऊरुभंग श्लोक ६०

६. अविधा आलिखितं खलु मम मोदकमल्लकम्। —प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक ३

७. तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजावासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम् इति। —प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक ४

८. आलिखित मृगपक्षिसंकुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। —स्वप्नवासवदत्ता अंक ४

९. चित्रकर इव बहुमल्लकैः परिवृतः। —चारुदत्त अंक १

१०. गतेष्वस्मासु राजा न शिरस्थानानि पश्यतु। —प्रतिमानाटक अंक १ श्लोक ३१

संगीत-कला

भासकालीन समाजमें चित्रकलाके लिए जितना आदर-सत्कार तथा प्रोत्साहन मिला था, उतना ही संगीतकलाको भी। भासकालीन समाजमें संगीतकला अत्यन्त जनप्रिय हो चुकी थी। इस कलाके उपासक न केवल स्त्रियाँ थीं, बल्कि पुरुष भी थे।[1] वसन्तसेना जैसी वेश्या-स्त्रियोंके लिए संगीतकलाकी उपासना ही स्वधर्म रही।[2] बिना संगीतके कोई उत्सव मनाया नहीं जाता था। संगीतकलाका ध्वज उन्नतिके शिखर पर फहरा रहा था। इसका मूल कारण था राजा लोगोंका निरन्तर आश्रय तथा प्रोत्साहन। राजाके महलोंके अन्तपुरमें गायक लोगोंको आश्रय मिला था। वैथालिका तथा उत्तरा वीणा सिखानेमें निपुण थीं। पर उसी अन्तपुरकी कांचनमाला वीणा बजानेमें अत्यन्त चतुर थी। कांचनमालाकी इसी कलाचातुरीपर मुग्ध होकर ही वासवदत्ताको वीणा सीखनेकी प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई थी।[3] नृपमन्दिरोंमें सुव्यवस्थित संगीत-शालाओंका प्रबन्ध था।[4] संगीतकलाकी दीक्षा देनेवाले उपासक अधिक मात्रामें रहते थे। अंगारवती अपने प्रियतमसे प्रार्थना करती है कि अपनी पुत्रीको वीणा सिखानेके लिए एक आचार्यकी नियुक्ति हो जाय।[5] पर, पुरुष भी संगीत-कलोपासक होनेके कारण वे स्वयं अपने विवाह हो चुकनेके पश्चात् प्रियतमाओंको भी कलामें दीक्षित करवाते थे। प्रद्योत कहता है कि वासवदत्ता विवाहके बाद अपने पतिदेवसे ही वीणा सीखे। इसलिए पद्मावती भी अपने पति उदयनसे ही वीणा सीखनेका प्रयास करती है। लड़कियोंको माता-पिताके घरमें यथेच्छ गानेकी जितनी स्वतंत्रता रही, उतनी ससुरालके गृहमें नहीं थी।[6] संगीतकलोपासकके साथ ही साथ संगीतकलानभिज्ञ भी थे। संगीतरसका आस्वादन केवल सुसंस्कृतज्ञ ही कर सकता है। परन्तु उस रसके अनुभवकी प्राप्तिके लिए पूर्वजन्मकृत पुण्यविशेषकी अत्यधिक आवश्यकता है। इसलिए ही वीणा-निनादका अनुभव जितना चारुदत्तने किया, उतना विदूषक न कर सका।[7] अर्थशास्त्राध्ययनमें ही तीव्र आसक्ति रखनेवाला प्रद्योत महाराजका ज्येष्ठ पुत्र गान्धर्वद्वेषी है। तब उसके भाईकी क्या बात है, जिसके लिए व्यायाम ही प्राण है; परदैव है? इसका मतलब यह नहीं है कि सारा समाज 'गो-पालक' या 'पालकमय' था। उस तरह रहा हो तो प्रायशः नारद जैसे 'स्वरगणका उत्पादन' करनेको शक्तिवाले लोग नहीं रहते। स्त्री, पुरुष दोनों इस कलामें निष्णात थे। फिर भी भासकी धारणा है कि यह कला केवल स्त्रियोंके लिए शोभदायी है। इसके प्रति विदूषकके मुँहसे स्वारस्य-पूर्ण दो-चार बातें कहला दी हैं। विदूषकको पढ़नेवाली स्त्री और गानेवाला पुरुष नहीं रुचते हैं। गानेवाला पुरुष रक्तवर्ण-पुष्प-मालिकाधारी पुरोहितकी भाँति उपहास्यास्पद है। पढ़नेवाली स्त्री छिन्न-नासिका धेनुकी भाँति हँसीकी चीज बन जाती है। इससे संगीतकलाभ्यास उचित है स्त्रीके लिए और विद्याध्ययन पुरुषके लिए।[8] संगीत-शृंगारके उद्दीपनका विभाव है, जिससे प्रेमी-प्रेमिकाओंको आनन्दका अनुभव हो जाता है।[9] कंसका वध करके वासुदेव जब वसुदेवका बन्धन-विमोचन करता है, तब भी वाद्यका नाद-निनाद गूँज उठता है। नारद तथा अन्य देवगायक भी

१. कोनु खलु अयं सर्वकालमुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्व-मनुभवति। व्यक्तं स्वयं वीणा वादयति।.....गीतं तु पुनः स्त्रियाः। —अविमारक अंक ३

२. कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम्। —चारु० अंक २

३. उत्तराया वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्। केनापि किलोद्धान्तेन कांचनमालां वीणा-योग्यां कुर्वतीं प्रेक्ष्य शिक्षितुकामासीत्। —प्रतिज्ञा अंक २

४. वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्। —प्रतिज्ञा अं २
सारसिके! सारसिके! संगीतशालां गत्वा नाटकीयानां विज्ञापय। —प्रतिमा० अंक २

५. आचार्यं मिच्छामि। —प्रतिज्ञा० अंक २

६. क्रीडतु क्रीडतु। नैतत् सुलभं श्वशुरकुले। —प्रतिज्ञा अंक २

७. वयस्य। भावशाबलेन बहुशः खल्वद्य मधुरं गीतम्। न च भवान् रमते। —चारुदत्त अंक ३

८. मम खलु तावद् गायन् मनुष्यः स्त्र्यपि पठन्युभयमादरं न ददाति। गार्यं स्तावन्मनुष्यो रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो दृढं न शोभते। स्त्र्यपि पठन्ति छिन्ननासिके व धेनुरति-विरूपा भवति॥ —चारुदत्त अंक ३

९. उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
संकीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी॥
—चारुदत्त अंक ३ श्लोक २

कृष्णकी पूजा करने आ जाते हैं।[1] आधी रातके समय जब चोर-वेशमें अविमारक आ रहा है, तो उसे गान्धर्व-ध्वनि सुनाई जाती है।[2] आगे जब वह प्रासादके सामने उतरता है, तो 'तन्त्री-नाद' उसका स्वागत करता है।[3] नारदके गायनसे ही हरि पुलकित हो जाता है। अविमारकका नारद' न केवल 'कलहप्रिय' है, बल्कि 'गानप्रिय' भी।[4] वृन्दावनकी गोपिकाएँ उल्लास-प्रमुदित होकर गाती हैं।[5] सूत्रधारको ध्रुव विश्वास है कि नटीके गायनसे प्रेक्षक लोग रसादित-प्रमुदित हो जाते हैं।[6] उदयन वत्सराज 'गान्धर्व-वित्ता' है। उसमें वीणा बजाकर ही प्रमत्त गजको भी अपने वशमें लानेकी एक अपूर्व शक्ति विद्यमान है।[7] वासवदत्ता तो वीणाके 'मधुरान् स्वरान् निशम्य' उसे किसी-न-किसी तरह सीखनेके लिए उन्मादिनी बन जाती है।[8] पद्मावती भी वासवदत्ताकी भाँति अपने प्रेमी वत्सराजसे ही वीणा बजानेकी कला सीखना चाहती है।[9] इसके लिए ही पद्मावतीके पिता वसन्तराज, वसन्तकसे आज्ञा देते हैं कि 'घोषवती' नई तन्त्रियोंसे शोभित कराकर शीघ्र लाओ।[10] नायक चारुदत्त में वीणा-नादपर एक अपूर्व, अनुपम हृद्गत गौरव समा गया है और वीणाके प्रभावका वर्णन विदूषकसे इस प्रकार करता है—'वयस्य! वीणा नामा समुद्रोत्थितं रत्नम्।'

(चारुदत्त अंक ३)

भास-नाटकोंमें तूर्य, शंख, पटह, डिंडिम, वीणा, काकनी आदि वाद्य-विशेषोंके निर्देश पाये जाते हैं। इनमें शंखका प्रयोग युद्धमें होता था।[11] नटह हेलमेल या उत्सवोंमें युवतियोंसे बजाया जाता था।[12] यही प्रभातके समयकी सूचना देनेवाला वाद्य था।[13] अपने नाना वर्णोंसे आकृष्ट करानेवाले डिंडिम-वाद्यका प्रयोग नृत्योंमें होता था।[14] काकली चोरोंका वाद्य था। यह जाननेके लिए 'घरके सभी लोग प्रगाढ़ निद्रामें तल्लीन हैं कि नहीं'—इस अल्प ध्वनि-वाला काकली वाद्यका प्रयोग किया जाता था।[15] भास-नाटकोंमें वीणा-वाद्य-विशेषका निर्देश अधिक पाया जाता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वीणा उत्तम

---

१. नन्दन्ति सुरतूर्याणि वृष्टिः पतती कौमुदी।
कंसान्तकस्य पूजार्थं प्रायो देवाः समागताः॥
—बालचरित अंक ५ श्लोक १४
कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजार्थं देवशासनात्।
सगन्धर्वाप्सरेभिश्च देवलोकादिहागतः॥
—बालचरित अंक ५ श्लोक १७

२. अये गन्धर्वध्वनिरिव श्रूयतो। —अविमारक अंक ३

३. अये तंत्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः अन्यतो यास्यामि।
—अविमारक अंक ३ श्लोक १४

४. वेदैः पितामहमहे परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुद्गतरोमहर्षम्।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैरुपायैस्तन्त्रीषु च
स्वरगणान् कलहांश्च लोके॥
—अविमारक अंक ६ श्लोक ११

५. वृन्दारण्यगते समप्रमुदिता गायन्ति केचित् स्थिताः।
—बालचरित अंक ३ श्लोक ३

६. ततस्तव गीतप्रसादिते रंगे वयमपि प्रकरणमारभामहे।
—प्रतिज्ञा अंक १

७. गर्ज तमहं वीणाद्वितीयं आनयामि इति।—प्रतिज्ञा अंक१

८. वीणा प्रदानेन भूयोऽप्युन्मत्तेव तिष्ठति।—प्रतिज्ञा अंक २

९. अहमपि वीणां शिक्षिष्ये इति।—स्वप्नवासवदत्ता अंक ४

१०. वसंतक! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय। —स्वप्न० अंक ६

११. अहं ही शङ्ख! क्षीरोदाद् विष्णुना स्वयमुद्धृतः।
मम शब्देन नश्यन्ति युद्धे ते देवशत्रवः॥
—बालचरित अंक २ श्लोक २५
हे पाञ्चजन्य!···वनितानिद्रां युद्धे महासुरं भयङ्करः।
प्रयाति गगने शीघ्रं महोल्केव विभात्ययम्॥
—दूतवाक्य श्लोक ५०

१२. आरोपसज्जाः परहरूपवेषा व्याहर्तुं गच्छामः।
—बालचरित अंक ३

१३. (नेपथ्ये पटह शब्दः क्रियते) सञ्जलकः—(कर्णं दत्वा)
अये प्रभातसमयः संवृत्तः। —चारुदत्त अंक ३
चेटी—भट्टिनी! पटह शब्द इव।
आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासेन लङ्घिते।
—प्रतिमा अंक २ श्लोक ५

१४. रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः केचिन्नदन्तः स्थिताः।
—बालचरित अंक ३ श्लोक ३

१५. अद्यास्य भित्तिषु मया निशि पाटितासु-
छेदात् समासु सकृदर्पित काकलीषु।
कार्यं विषादविमुखः प्रतिवेशवर्गो
दोषांश्च मे वदतु कर्मसु कौशलं च॥
—चारुदत्त अंक ३ श्लोक १०

कोटिके तन्त्रीवाद्योंमें एक थी और वही भास कविको अत्यन्त प्रियतर रही। वीणा बजानेके विधानका वर्णन भी किया है कविने।[१] जिस प्रकार लोग तन्त्रीवाद्योंको बजाने में दक्ष थे, उसी प्रकार कण्ठगीतोंमें भी कुशल थे। कण्ठ-गीतोंका अनुसरण करते हुए तन्त्रीवाद्योंको बजानेकी पद्धति जारी थी।[२]

अब मनमें यह प्रश्न उठ जाता है कि इस दिव्य कलापर भासका मत क्या था? गीतिका सौख्यप्रदायिनी है और हर्ष ही उसका मातृस्थान है।[३] दुःखी नहीं गा सकता। ज्ञातिकुलको अस्वस्थताको स्वप्नमें देखकर दुःखिता नटी कैसे गा सकती है?[४] मुख एवं नासिका-जनित ध्वनि मृदुतर एवं स्फुटतर होनी चाहिए। गीतकी रम्यता तालबद्ध होनेसे अधिक बढ़ जाती है।[५] कहाँ है तालबद्ध गीतका सुमधुर नाद और कहाँ इस आस्वादका भंग लानेवाले 'उल्लूक'का भैरव-हुंकार? हाय! तपस्वी अविमारकको दोनों नादोंका लाभ उठाना पड़ा।[६] तन्त्रीगीत हो या कण्ठगीत, उसको सुश्राव्य रहना चाहिए। गीतके साहित्योच्चारणके साथ यथोचित अभिनयका समावेश हो जाय, तो संगीतकी शोभा बढ़ जायगी। किसी भी प्रकारका तन्त्रीवाद्य हो, उसे 'घोषवती' का अनुसरण करना है। 'घोषवती' न केवल देखनेमें मधुर है, तथापि सुननेमें भी। तन्त्रियोंपर हाथ फेरनेसे विविध राग स्वाभाविक ही उठ जाते हैं। ऋषिगत मन्त्रविद्याकी तरह तन्त्रीनादको पर-हृदयोंको अपनी ओर आकर्षित करना है।[७] इस प्रकारकी अद्भुत शक्तिसे समायुत वीणाको पाकर वासवदत्ताके उन्मादिनी बन जानेमें क्या आश्चर्य है? पर-हृदयको द्रवीभूत करनेवाली वीणाका नाद सुनकर प्रमत्त गज वशीभूत होनेमें क्या अद्भुत है? सुन्दर समुन्नत चित्रपटको देखनेसे जिस प्रकार हृदयकी सुप्त भावनाएँ जाग उठती हैं, उसी प्रकार घोषवतीका नाद सुनकर वत्सराज के हृदयमें सुप्त वासवदत्ता-विषयक भावनाएँ जाग उठती हैं।[८] भास महाकविने चारुदत्तके नायक द्वारा संगीतके स्वरूप एवं लक्षणके विषयमें अपने मतको इस प्रकार प्रकट किया है—

नायकः—सर्वथा सुव्यक्तं गीतम्। कुतः
रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम्।
किंवा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा
भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतोति विद्याम्॥
—चारुदत्त अंक ३ श्लोक २

१. 'करजाग्रहता च वीणा।' —बालचरित अंक १ श्लोक ५
तन्त्रीश्च घट्टयामि।' —बालचरित अंक १ श्लोक ४
श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतंत्री।
—प्रतिज्ञा० २-१२

२. अये तन्त्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः।
—अविमारक अंक ३-१४

३. सुखी पुरुषः गान्धर्वमनुभवति। —अविमारक अंक ३

४. अद्य मया स्वप्ने ज्ञातिकुलस्या स्वास्थ्यमिव दृष्टम्।
—प्रतिज्ञा० अंक १

५. तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो जातश्च नादो मुखनासिकेन।
स्थूलोऽपि हेतुः करतालनादः सञ्जायते सद्वलयस्वनेन॥
—अविमारक अंक ३-६

६. कोनु खल्वयं पक्षी भैरवस्वरः। आ उल्लूकः खल्वयम्। कथं हसितमत्रेन। उलूकस्वरश्रवणभीतया कान्तया परिष्वक्तः खल्वयं तपस्वी।

७. श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतंत्री।
ऋषिवचनगतेव मंत्रविद्या गजहृदयानि बलाद् वशी करोति॥
—प्रतिज्ञा० अंक २ श्लोक १२

८. चिरसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया॥
—स्वप्नवासवदत्ता अंक ६ श्लोक ३

डाईन

मनमोहन गुप्त

घरके पासवाली आरा मशीनसे अपनी-अपनी कमीज़ोंकी झूलमें बुरादा बटोरते-बटोरते छोटूने शन्नोसे कहा—तू तो बड़ी डाईन है···ढेर-ढेर बटोर लेती है···तेरी अम्मा बड़ी डाईन है···बड़ी-बड़ी झूलवाली कमीज़ पहना देती है··· ढेर-ढेर बटोर लेती है। अच्छी बात है, ले जा डाईन···सब ले जा···कलसे मैं भी सलवार-कमीज़ पहन आऊँगा। देखना तब, मैं भी कितना बटोरता हूं···

—धत्! लड़के कहीं सलवार-कमीज़ पहनते हैं? कहकर अँगूठा दिखाती हुई, मुँह बिचकाकर, शन्नो घरकी ओर भागी।

पीछे-पीछे, छोटू भी भागता हुआ बोला—हाँ, तेरे लिए....देखना, कल मैं वैसे आता हूं कि नहीं।

—अच्छी बात है। देखूँगी···मगर ठीक इसी टेमपर आना···हाँ, तेरा नाम क्या मजेदार है—छोटू न?

झल्लाकर छोटूने कहा—बार-बार नाम क्या पूछती है, होगा कुछ भी···

—नहीं-नहीं, बड़ा मजेदार नाम है···छोटू-मोटू—है बड़ा पेटू! छोटू-मोटू—है....

कहती हुई और तेज़ीसे शन्नो घरकी ओर भागी। छोटूने कहा—देख, मेरा नाम लेकर मज़ाक न उड़ाना, नहीं तो ठीक न होगा···मैं किसीसे डरता नहीं, सर फोड़ दूँगा।

—हें-हें-हें-हें···हो-ही-ही-ही···छोटू···मोटू···बड़ा भारी पेटू।

कहते-कहते शन्नो बड़ी तेज़ीसे भागकर बगलवाली गली में घुसकर लापता। जब तक गलीके सामने छोटू पहुंचता, तब तक पता नहीं कि शन्नो कहाँ गई।

थोड़ी देर तक छोटू वहीं खड़े शन्नोका रास्ता देखता रहा। मगर शन्नो वहाँ दिखाई पड़े तब न। छोटू अपने मनमें गुनगुनाते हुए चला—छोटू···मोटू···बड़ा भारी पेटू···

किन्तु न! यह तो उसीके मुँहसे अच्छा सुनाता।···कुछ नहीं···कुछ नहीं। गुनगुनाना बन्द किया। आहिस्ते-आहिस्ते घर चला गया।

× × ×

दूसरे दिन ठीक उसी समयपर दोनों आरा मशीनके पास बुरादा बटोरने आये। सचमुच आज छोटू बड़ी भारी सलवारवाली कमीज़ पहने हुए आया है, देखकर शन्नो खिल्ला पड़ी—हा-हा-हा-हा! ही-ही-हौ-ही!

खूब हँसने लगी। छोटूने झल्लाते हुए कहा—अरे, हँस क्या रही है डाईन! कल तूने ही तो कहा था कि देखेगी... अरे-अरे! ई तो हँसते-हँसते ही मर जायगी।

—सचमुच मर जाऊँगी···ही-ही-ही-ही···सचमुच··· ही-हो-ही-ही···ही-ही···ही-ही···तेरे पाँव पड़ूँ···खोल... ही-ही-ही-ही....ओ रे, मेरा पेट ...ही-हो-ही-ही...मेरा पेट.... ही-ही-हो-ही....फटा जा....

कहते-ही-कहते पेट पकड़कर शन्नो बैठ गई....ही-ही-ही-ही करते-ही-करते उसका चेहरा लाल हो उठा। वह रोने लगी।

देखकर छोटू घबड़ाया। पास आकर शन्नोको कहा—अभी हँसती थी....फिर रोने भी....

आगे कुछ कहनेसे पहले ही शन्नोने आँखें बन्द कर लीं। धीरे-धीरे बुरादेके ढेरपर लोटने लगी। उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। छोटूने उसे थाम लिया। आहिस्ते-आहिस्ते लेटा दिया।

लेटा तो दिया। किन्तु इसके आगे क्या करना चाहिए? शन्नोको क्यासे क्या हो गया? छोटूको कुछ भी पता नहीं। बेचारा शन्नोके मुँहकी ओर टुकुर-टुकुर देखने लगा।

हाँ, इसी कमीज़के पीछे तो ऐसा हुआ, स्मरण होते ही उसने उसी समय उसे उतार लिया। पर···पर···यह तो वैसे ही पड़ी है···अरे इसकी सलवार कमीज मैली हो रही है? देखते ही देखते छोटूने अपनी कमीज बिछा दी और उसीपर उसने शन्नोको किसी प्रकारसे लेटा दिया। शन्नो पड़ी ही रही। छोटू आँखें फाड़-फाड़ कर उसके मुँहकी ओर देखने लगा। असहायता, एकाग्रता, क्षोभ, दुःख, भय एवं प्रतीक्षाके समावेशने उसके छोटे-से हृदयको हिलोरना आरम्भ किया। आहिस्ते-आहिस्ते वह कब बगलमें बैठा, कब उसके हाथ शन्नोका पेट मलने लगे,

इसका उसे स्वयं भान न रहा। शन्नोकी हालत देखकर उसकी आँखें भर आईं। वह असहाय था।

ऐसे कितना समय बीत गया, कौन जाने। छोटूको भी तब होश आया, जब शन्नोको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसके घरसे नौकर आया। शन्नो वैसे ही पड़ी है और छोटू उसका पेट मल रहा है, देखते ही नौकरने लपक कर छोटूको पकड़ लिया। छोटू तो यों ही रुआसा था ही, तिसपर नौकरने जब कड़क कर पूछा—बोल, क्या कर रहा था ?

छोटू रो पड़ा। आहिस्तेसे उसके मुँहसे निकला—कबसे ऐसे पड़ी है···

—पड़ी क्यों है ? तू क्या कर रहा था ?

एक प्रश्नका ही उसके पास उत्तर न था, तो दो-दोका कहाँसे उत्तर देता ? वह एक बार शन्नोकी ओर और एक बार नौकरके मुँहकी ओर देखने लगा, और कड़ककर नौकरने फिर पूछा—बोल, तूने क्या किया ?

छोटू चुप।

—अच्छा चल मेरे साथ...तू ऐसे न मानेगा।

कहकर नौकरने शन्नोको गोदमें उठा लिया। छोटूका हाथ पकड़ा। यद्यपि छोटूने अपनेको ढीला छोड़ा था, फिर भी नौकर उसे घसीटते हुए शन्नोके घर ले चला।

अपराधीको ऐन मौकेपर पकड़कर जिस प्रकारसे सिपाही फूला नहीं समाता, नौकरकी हालत उसी प्रकारकी थी। सीधे 'मालिक', यानी सेठ अचलचन्दके पास ले गया। सेठजी नौकरकी बहादुरीकी बात बादको सुनते, इकलौती बेटी 'बेहोश' है, सुनते ही वे गोदमें लेकर छातीसे चिपकाए अन्दर भागे। घर भरमें दौड़-धूप मच गई। टेलिफोन, मोटर, ड्राइवर डाक्टरके लिए चल पड़े। मिनटोंमें डाक्टर आया। खूब परीक्षा की, कुछ पता न चला। तब छोटूके सवाल-जवाबकी बारी आई।

बड़ा-सा मकान, नौकर-चाकर, डाक्टर, मोटर, देखकर छोटूका सर यों ही चकरा रहा था, ऊपरसे डाक्टरके प्रश्नने उसे गूंगा बना दिया। वह हतबुद्धि-सा देखने लगा।

प्रश्न छोटूसे किया गया था, उत्तर नौकरने दिया—हुजूर ! शन्नो बच्ची जब बेहोश थी, तब यह लौंडा उनके गलेसे हार उतार रहा था···मैं न पहुंचा होता, तो भाग गया होता !

"एँ !"—कहकर डाक्टर ने कहा—केस ज़हर देनेका है। पुलिसमें खबर करो, मोटर भेजो मेरे चेम्बरमें। कम्पाउण्डर को तैयार होकर आनेको कहो।

सेठ अचलचन्दके घरकी औरतें एक साथ रो उठीं। सेठजी सिरपर हाथ धरकर बैठ गये। थानेमें खबर करते ही दारोगा साहब अपने नन्दीभृङ्गी सहित प्रकट हुए। टेलिफोनपर सब जान गये थे। आते ही हण्टर घुमाते हुए आवाज़ लगाई—कहाँ है वह लौंडा ?

सामने ही छोटू खड़ा था। दारोगाको देखकर काँपने लगा। दारोगाने देखते ही सिर हिलाकर हण्टर घुमाकर कहा—अच्छा ! तुम ही हो वह रतन ? कपड़े उतारो, अभी कबूलवाता हूं।

कपड़े उतारनेकी आवश्यकता न थी। दोनों नितम्ब, यों ही बड़े-से हाफपेण्टके फटे हुए हिस्सेसे झाँक रहे थे। सपाक्से दारोगा साहबका हण्टर पड़ा। 'माई री'—कहकर छोटू चीख पड़ा।

दारोगा साहबने पूछा—बोल, अब बतायेगा ? बोल, किसने तुझे दिया था ?

क्या दिया था, क्या पूछा जा रहा है, क्यों मार पड़ी ? इनमें से किसी भी प्रश्नका छोटूके पास जवाब नहीं था। वह चीख-चीखकर रोने लगा।

इतनेमें दारोगा साहबने फिर हण्टर उठाया। देखकर छोटू अबकी और ज़ोरसे चिल्लाया।

—बच्चू, मैं तुम लोगोंकी सब तालें जानता हूं। खूब पढ़ा दिये जाते हो ; मगर मैं हूँ दारोगा हिम्मतबहादुर सिंह, जिसके नामसे शेर-बकरी एक घाटमें पानी पीते हैं। भले आदमीकी तरह बता दो कि शन्नोको जो पिलाया, वह किसने दिया ?

अब छोटूको बुद्धि अनुसार बात सुलझ गई। उसने हण्टरके डरसे भिनभिनाते हुए कह दिया—अम्माने सलवार-कमीज़ दी।

बात साफ नहीं सुनाई पड़ी। फिर भी मूँछ ऐंठते हुए दारोगाने हण्टरको चूमा और उपस्थित जनताको इसका चमत्कार समझाते हुए कहा—देखा न आप लोगोंने, एक ही सपाटेमें पाताल तककी ठोह लगा ली ...संखिया ज़हर भी कबूल दिया ! क्या बताऊँ इस कांग्रेसी सरकारकी.... नहीं तो भला मेरे हाथसे कोई खाली थोड़े ही जाता। पर अब ज़माना वह है कि सख्ती करने नहीं देती। आजकल ज़रा भी सख्ती करो तो उल्टा हम ही अपराधी बनें।

कहते-कहते छोटूसे कहा—चल बे लौंडे, तेरी अम्माकी भी खबर लें !

—तें, अम्माकी भी खबर लें !

छोटू काँप उठा। वह हण्टर अम्माको, अम्माको, अम्माको ! ना-ना, कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। मेरी अम्माको ! ना-ना-ना-ना !

उसका छोटा-सा हृदय भी वज्र होता गया। वह अकड़ कर खड़ा हो गया। सिपाहीने हाथ पकड़ा, तो वह अपना नन्हा-नन्हा हाथ छुड़ाते हुए पूरी ताकतसे खींचा।

देखकर दारोगाने सिपाहीसे पूछा—क्या कहता है, फिर... ले।

सिपाहीके उत्तरसे पहले ही छोटूने कहा—ना, ना, ना, अम्माको नहीं, नहीं, नहीं !

—अच्छा बेटा ! बिगड़ गये तेरी अम्माको नंगी करके बीस न जमाया तो मेरा नाम हिम्मतबहादुर नहीं। दोनोंको जहन्नुमरसीद करूँगा—मारते-मारते, मार डालूँगा।

कहकर दारोगाने स्वयं ही लपककर छोटूको पकड़ लिया और एक प्रकारसे घसीटते हुए बाहर निकाला। छोटूको अन्तिम सहारा याद आया, उसने चिल्लाकर कहा—बचाओ ! बचाओ ! मेरी अम्माको बचा ! डाईन, मेरी अम्माको बचा ! डाईन, मेरी अम्माको बचा !

उधर बड़े ज़ोरोंसे डाक्टर साहबकी ज़हर निकालनेकी क्रिया चल रही थी। पर बीचमें ही बाधा पड़ गई। पहले हाथ-पैर हिले। फिर कान खड़े हुए। शन्नो छलांग मारकर खड़ी हो गई।

हें-हें ! करते ही करते शन्नो भागती हुई बाहर पहुंची। नौकर-चाकर, मालिक-मालकिन सब पीछे-पीछे। शन्नो तो वहाँ जाकर रुकी, जहाँ दारोगा छोटूको घसीटे लिये जा रहा था।

नंगे बदन छोटू ! लहूलोहान छोटू ! घिसटता हुआ छोटू ! 'डाईन, मेरी अम्माको बचा !'

वह छोटूसे लिपट गई। सिसकियाँ भरती हुई बोल उठी—अरे, छोटू ! अरे, यह तेरा क्या हुआ ?

आगे कुछ कह न सकी। छोटू हतप्रभ खड़ा था।

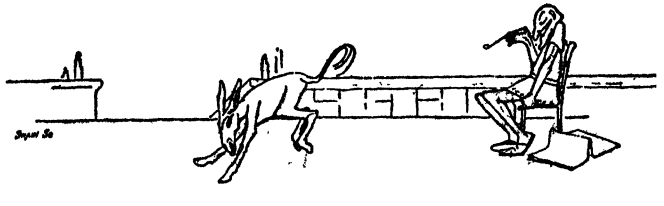
तब भी शन्नो लिपटती गई और पूछती गई—यह कैसे हुआ ?

उसी समय छोटूकी माँ उधरसे कमाने जा रही थी। 'अरे बाप रे, सेठजीकी लड़कीको छोटू.... ?' भागती हुई आकर लड़केको पकड़ लिया। लहूलोहान बच्चेको गोदमें उठाकर छातीसे चिपका लिया। तब तक शन्नोकी माँ और पिता भी पहुंच गये थे। माँने अपनी बच्चीको गोदमें उठा लिया।

दारोगा हिम्मतबहादुर सिंह बगलमें खड़े-खड़े छोटूको और उसकी डाईनको आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। दोनों बच्चे भी अपनी-अपनी माँकी गोदसे एक दूसरेको आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। अभिभावक लोग अपने-अपने बच्चोंको छातीसे चिपकाये माताओंको देख रहे थे। डाक्टर खड़े हाथ मल रहे थे।

जब पूछताछ की गई, तो असली बातें सामने आ गईं। शन्नोके पिताजी पहले और कारणसे बेताब हो रहे थे, पर अब सारा सत्य खुल जानेपर दूसरे कारणसे उसी प्रकार बेताब बने रहे। उन्हें कुछ सूझता ही न था कि क्या करें।

शन्नोकी माँने छोटू और उसकी माँको भीतर बुला लिया। सबसे अजीब दशा दारोगाजीकी हुई। उनका हण्टर जाने कहाँ छिप गया और उसके साथ-साथ वे भी पता नहीं किस बिलमें समा गये। जाते-जाते उन्होंने शन्नोको छोटूसे यह कहते सुना—'मेरा नाम डाईन नहीं है, मेरा नाम शन्नो है। समझा ?'



'सेक्स' बनाम सुन्दरता

डी० एच० लारेंस

यह दुःखकी बात है कि 'सेक्स' शब्द इतना घृणित है : लघु और कुरूप, और वास्तवमें करीब-करीब अचिन्त्य। तब आखिर 'सेक्स' है क्या? इसके बारेमें हम जितना अधिक सोचते हैं, उतना ही कम जानते हैं।

विज्ञान कहता है, 'सेक्स' एक अन्तःप्रेरणा है। लेकिन अन्तःप्रेरणा क्या है? स्पष्ट रूपसे यह एक पुरानी आदत है, जिसकी जड़ें गहरी जम चुकी हैं। लेकिन आदत, चाहे कितनी भी पुरानी क्यों न हो, उसका कोई आरम्भ होना चाहिए। और इस तरहके किसी आरम्भकी बात 'सेक्स' के साथ नहीं है। जहाँ जीवन है, वहाँ 'सेक्स' है। अतः 'सेक्स' आदत नहीं है, जैसी कि लोगोंकी धारणा है।

फिर लोग कहते हैं कि 'सेक्स' पेटकी भूखकी तरह आत्माकी क्षुधा है। एक क्षुधा, लेकिन किस लिए? आत्म-विस्तारके लिए क्षुधा? यह तो हास्यास्पद है। लोगोंका विचार है कि मोर अपने शरीर पर सुन्दर पंख इसलिए रखता है कि वह मोरनीको आकर्षित करे और अपने आत्म-विस्तारकी क्षुधाको भी तृप्ति करे। लेकिन मोरनी अपने ऊपर सुन्दर पंख क्यों नहीं रखती है—मोरको आकर्षित करनेके लिए और अपने आत्म-विस्तारकी क्षुधा-तृप्तिके लिए? इसमें शक नहीं कि उसे भी अंडों और बच्चोंके लिए चिन्ता है, जैसा कि मोरके लिए। हम लोग विश्वास नहीं कर सकते कि उसकी 'सेक्स'-शक्ति इतनी कमजोर है, जितनी कि उसे सुन्दर नीले पंखोंके माध्यमसे रखनेकी जरूरत है। बिल्कुल नहीं।

जहाँ तक अपनी बात है, मैंने किसी मोरनीको मोरका असीम सौन्दर्य देखते कभी नहीं पाया। मुझे विश्वास नहीं कि वह मोरको शायद ही कभी देखती हो। मुझे एक क्षणके लिए भी विश्वास नहीं कि उसे अष्टधातुके रंग, नीले रंग, भूरे रंग अथवा हरे रंगका अन्तर मालूम है।

यदि मैंने मोरनीको, अपने स्वामीके सुन्दर और प्रदर्शन-पूर्ण पंखों पर कभी भी ध्यानपूर्वक, एकटकसे देखते हुए पाया होता तो मैं विश्वास कर लेता कि मोर अपने ऊपर सुन्दर पंख मोरनीको 'आकर्षित करने' के लिए रखता है। लेकिन मोरनी मोरको देखती ही नहीं। केवल उसी समय वह थोड़ा चंचल और गर्वान्वित होती है, जिस समय मोर अपने बहुत-से पर फड़फड़ाकर उसपर वैसे डाल देता है, जैसे कोई तूफान वृक्षों पर अपना प्रहार करता हो। तभी वह कुछ ध्यानपूर्वक मोरको देखती है।

'सेक्स' के प्रति ऐसे सिद्धान्त आश्चर्यजनक हैं कि कोई मोर मोरनीको रिझानेके लिए, जब कि वह कभी उसे हाव-भावपूर्वक देखती ही नहीं, अपने ऊपर सुन्दर पंख रखे। आप किसी सीधेसादे वैज्ञानिककी ही कल्पना कर लीजिए, जिसने मोरनीको मोरके रंग और रूपकी गत्यात्मक प्रशंसाके प्रति इतना गम्भीर बतलाया है।

एक नर-बुलबुल मादा-बुलबुलको आकृष्ट करनेके लिए गाता है। यह देखकर तो बड़ा आश्चर्य होता है कि नर-बुलबुल सबसे अच्छी तरह तभी गाता है, जब कि मादा-बुलबुलसे वह काफी स्वागत पा चुकता है, उसके साथ संभोग कर चुकता है और मादा-बुलबुल उसको छोड़कर अपना ध्यान एकमात्र अपने छोटे बच्चों पर केन्द्रित कर लेती है। अच्छा तो यदि वह मादा-बुलबुलको आकृष्ट करनेके लिए नहीं गाता तो निश्चय ही उसे विकृष्ट करनेके लिए गाता होगा, विश्रामके क्षणोंमें आनन्द पहुंचाता होगा।

कितने आनन्ददायक और कितने अकृत्रिम और सरल ये सिद्धान्त हैं! लेकिन इन सबके अन्तरालमें एक लिपटी हुई इच्छा है। यानी 'सेक्स' के इन सभी सिद्धान्तोंके पीछे एक जबर्दस्त इच्छा है, और वह इच्छा है न-न कहनेकी और सौन्दर्य-रहस्यको खोलनेकी।

क्योंकि सौन्दर्य एक रहस्य है। आप न तो इसको चख सकते हैं और न छू ही सकते हैं। और तब विज्ञानके अनुसार सौन्दर्य किसी युवतीको पकड़ने और उसके साथ रमण करनेका बाकछल कहा जायगा। कहना कितना सरल है! मानो किसी युवतीको बहकानेकी जरूरत है। वह तो अँधेरेमें भी रमण कर लेगी, यदि कहीं इसकी इच्छा हुई। तब, क्या सौन्दर्य एक छल है, एक हस्तकौशल है?

विज्ञानको सुन्दरतासे एक रहस्यपूर्ण घृणा है; क्योंकि सुन्दरता उसके कार्य-कारण-सिद्धान्तमें फिट नहीं करती, और समाजको 'सेक्स' से रहस्यपूर्ण घृणा है, क्योंकि 'सेक्स'

सामाजिक मनुष्योंको अधिक द्रव्य-प्राप्तिकी योजनाओंमें बाधा डालता है। अतएव दोनों घृणाओंका मेल हो गया, और 'सेक्स' एवं सुन्दरता केवल आत्म-विस्तारात्मक आत्माकी क्षुधा हैं।

अब 'सेक्स' और सुन्दरता एक चीज हैं, जैसे कि लौ और आग। यदि आप 'सेक्स' से घृणा करते हैं, तो आप सुन्दरतासे घृणा करते हैं। यदि आप जीवन्त सुन्दरताको प्यार करते हैं, तो आप 'सेक्स' के प्रति अनुराग दिखलाते हैं। वास्तवमें आप पुराने और मृनक सौंदर्यको प्यार कर सकते हैं और 'सेक्स' के प्रति घृणा भी। लेकिन जीवन्त सुन्दरताको प्यार करनेके लिए आपको 'सेक्स' के प्रति अवश्य सत्कारका भाव रखना होगा।

सेक्स और सुन्दरता अभिन्न हैं, जैसे जीवन और चेतना। और इनके प्रति आपकी जो बुद्धि जाती है और जो बुद्धि इनसे उद्भूत होती है, वह सहज प्रज्ञा है, अन्तर्ज्ञान है। हमारी सभ्यताका सबसे बड़ा खतरा यही 'सेक्स' के प्रति दूषित घृणा है। फ्रायडके आत्म-विश्लेषणसे बढ़कर कौन-सा दूसरा उदाहरण होगा, जो कि 'सेक्स' के प्रति विषाक्त घृणाको बतलावे? जो आत्म-विश्लेषण सुन्दरताके प्रति, जीवन्त सुन्दरताके प्रति एक तरहका भय उत्पन्न करता है और हमारी आन्तरिक प्रज्ञा एवं हमारी अन्तरात्माके क्षयका कारण बनता है।

आधुनिक मनुष्यों और स्त्रियोंकी आत्मा-सम्बन्धी सबसे बड़ी बीमारी अन्तर्प्रज्ञाकी क्षुणता और क्षयात्मक दशा है। हम अन्तर्प्रज्ञा और केवल अन्तर्प्रज्ञासे एक जीवन्त दुनियाको देख सकते और इसका आस्वादन कर सकते हैं। हम उसकी उपेक्षा करते हैं, क्योंकि हम 'सेक्स' और सुन्दरताको अस्वीकार करते हैं, जो कि अन्तर्प्रज्ञा और आनन्द-वृद्धिके साधन हैं और जो मुक्त जानवरों और पौधोंमें बहुलतासे प्राप्त हैं।

'सेक्स' उस पौधेकी जड़ है, जिसका पत्ता है अन्तर्प्रज्ञा और फूल है सुन्दरता। कोई औरत, खासकर अपने बीसवेंमें क्यों खूबसूरत होती है? यह इसलिए कि औरतके मुखपर 'सेक्स' धीरे-धीरे उदय होता है, जैसे कि गुलाबकी झाड़ीमें कोई गुलाबका फूल, खिले रूपमें ऊपर, दिखलाई देता है।

और 'सेक्स' की अपील सुन्दरताकी अपील है। हम लोग, जहाँ तक होता है, इसको अस्वीकार ही करते हैं। हम लोग सुन्दरताको यथासम्भव छिछला और तुच्छ साबित करनेकी कोशिश करते हैं। लेकिन, पहले-पहल और सबसे जबर्दस्त रूपमें 'सेक्स' की अपील सुन्दरताकी अपील होती है।

अब सुन्दरता एक चीज है, जिसके बारेमें हम इतने अशिक्षित हैं कि मुश्किलसे बोल सकते हैं। हम लोग सोचते हैं कि सुन्दरता एक खास पोशाक पहननेमें है, सीधी लम्बी नाकमें है, बड़ी-बड़ी आँखोंमें है, इत्यादि। हम सोचते हैं कि एक सुन्दर औरत जरूर ही लिली-गिश फूलकी तरह होगी और एक खूबसूरत मनुष्य रूडोल्फ वैलेण्टिनोकी तरह। ऐसा ही हम लोगोंका विचार है।

वास्तविक जीवनमें हमारा व्यवहार इससे बिलकुल भिन्न होता है। हम लोग कहते हैं—'वह बहुत खूबसूरत है, लेकिन मैं उसकी परवा नहीं करता।' यह स्पष्ट बतलाता है कि हम लोग सुन्दरताका गलत अर्थ लेते हैं। हम लोगोंको कहना चाहिए—'उसमें सुन्दरताके बँधे हुए और सीमित गुण हैं, अतः मेरी दृष्टिमें वह सुन्दर नहीं है।'

सुन्दरता एक अनुभव है, और कुछ नहीं। वह एक बँधा हुआ आदर्श नहीं है अथवा अवयवोंकी एक निश्चित व्यवस्था नहीं है। यह वह प्रकाश अथवा आगकी लौ (glow) है, जिसको हम महसूस कर सकते हैं अथवा यह सुघड़ताके प्रति एक व्यक्त भाव है, जिसकी हम अनुभूति कर सकते हैं। यही भाव जब हममें मुर्देकी तरह अजाग्रत अवस्थामें रहता है, तो हम लोगोंको दुःख होता है और सुन्दरताके सर्वोत्तम गुणोंको हम नहीं देख पाते।

लेकिन फिल्मकी ओर मुड़नेपर—हमें प्रतीत होता है कि चार्ली चैपलिनके चेहरेकी सिकुड़नोंमें बहुत आवश्यक सुन्दरता है, जो कि वैलेण्टिनोके चेहरेमें नहींके बराबर कही जायगी। चैपलिनके भ्रूभंगोंमें और आँखोंमें सुन्दरताका वास्तविक अंश है, एक प्रकारकी पवित्रताकी दमक—चमक।

लेकिन सुन्दरताका भाव हममें ऐसे अजाग्रत और कुचले हुए रूपमें है कि हम लोग इसको देख नहीं पाते और यदि देखते भी हैं तो जान नहीं पाते। हम लोग रूडोल्फ वैलेन्टिनोकी कथित सुन्दरताको स्थूल दृष्टिसे देख सकते हैं, जो सुन्दरताके प्रति हमारी गढ़ी हुई धारणाको सन्तुष्ट करनेके कारण आनन्द देती है।

लेकिन सरल-से-सरल व्यक्ति भी सुन्दर दीख सकता है, सुन्दर हो सकता है। केवल 'सेक्स' की आगकी आवश्यकता है, जो कि उसके चेहरेकी कुरूपताको सुन्दरतामें बदल देती

है। यह वास्तवमें 'सेक्स' की अपील है, सुन्दरताके भाव की अभिव्यक्ति अथवा प्रकाशन।

प्रतिकूल रूपमें, कोई भी उतना प्रतीकारक नहीं हो सकता, जितना कि वस्तुतः एक सुन्दर रमणी। अर्थात्, चूँकि सुन्दरता एक अनुभवका प्रश्न है, उसका कोई ऐन्द्रिय रूप नहीं, कोई भी वास्तविक रूपसे सुन्दर कही जानेवाली रमणीसे बढ़कर कुरूप नहीं हो सकता! जब उसके अन्दर 'सेक्स'की आग नहीं रहती और वह बिल्कुल ठंडी दिखलाई पड़ती है, वह कितना घृणास्पद मालूम पड़ती है, उसकी सुन्दरताके बाह्य रूप कितने कुरूप मालूम पड़ते हैं!

'सेक्स' क्या है, हम लोग नहीं जानते, लेकिन यह किसी तरहकी आग जरूर होगा। क्योंकि इससे एक प्रकार की गर्मी, एक प्रकारकी दमक निकलती है। और उस दमक में यदि पवित्रताकी ज्योति चली आती है तो हमें सुन्दरता की भावनाका महसूस होने लगता है।

लेकिन गर्मी और 'सेक्स'की दमकका प्रकाशन वास्तविक 'सेक्स'की अपील है। हम सभीके अन्दर 'सेक्स' की आग है चाहे तो सुषुप्तावस्थामें अथवा हृदयके अन्दर ज्वलितावस्थामें। यदि हम नब्बे वर्ष तक जीवित रहें, तब भी यह वर्त्तमान रहेगी। जब यह खत्म हो जायगी, तो हम मुर्देकी तरह हो जायँगे और मुर्दे अभाग्यवश आज दुनियामें अधिक देखनेको मिलते हैं!

उस मनुष्यसे बढ़कर कोई भी कुरूप नहीं हो सकता, जिसमें 'सेक्स' की आग नहीं हो। आप उसको निरा मिट्टीका लोंदा कह सकते हैं, जिससे कि सभी पिंड छुड़ाना चाहते हैं। लेकिन जब तक हम लोग पूरी तरह जीवित रहते हैं, 'सेक्स' की आग हममें दमकती रहती है अथवा जलती रहती है। जवानीमें यह जगमगाती है और चमकती है, बुढ़ापेमें यह मन्द रूपमें दमकती है, लेकिन किसी न किसी रूपमें रहती ज़रूर है। हम लोग थोड़ा बहुत उसपर नियन्त्रण कर सकते हैं लेकिन थोड़ा ही। यही कारण है, समाज इससे घृणा करता है।

'सेक्स' की आग जो कि सुन्दरता और क्रोधकी जरिया है, जब तक हमारे अन्दर है, अपरिमेय रूपमें हममें जलती है। वास्तविक आगकी तरह, जब तक यह हमारे अन्दर है, हमारी उँगलियोंको जला देगी, यदि हम लोग इसे असावधानीसे छुएँ और इसलिए सामाजिक आदमी, जो केवल 'सुरक्षित' रहना चाहता है, 'सेक्स'की आगसे घृणा करता है।

भाग्यवश, बहुत आदमी, सामाजिक दृष्टिसे सफल नहीं होते। वृद्ध आदमके हृदयमें जो आग जलती थी, वही आग दूसरोंके हृदयमें आज भी जलती है। और इसी जलनेके गुण के कारण आग आग कहकर पुकारी जाती है। सेक्सकी आग जो आज यहाँ जलती है, वह पहले वहाँ आदमके हृदयमें भी जलती थी। यह पहले चिनगारीके रूपमें रहती है, फिर बढ़कर लौके रूपमें जलने लगती है। तब इसमें तेज जगमगाहट दीख पड़ती है। अथवा एक लौ दूसरी लौमें बदल जाती है और दूसरी लौ तीसरीमें, और इस तरह दहकने लगती है।

जब कभी 'सेक्स' की आग दमकती है, वह किसी न किसी रूपमें हृदयका कोई मौन उत्तर प्रस्तुत करती है। यह केवल उष्मताके एक भाव अथवा आशावादको प्रज्वलित कर सकती है। तब आप कहते हैं—'मैं उस लड़कीको पसन्द करता हूं; वह वास्तवमें अच्छे किस्मकी है।' उसमें 'सेक्स' की दमक दिखलाई पड़ सकती है, जिसे कि संसार सुन्दर कहता है और आप भी अच्छा महसूस करते हैं। तब आप कहते हैं— 'वह आकर्षक रमणी है, मैं उसे पसन्द करता हूं।'

अथवा उसके अन्दरसे एक लौ प्रज्वलित हो सकती है, जो कि दुनियाको चमकानेके पहले उसके चेहरेको चमका सकती है। तब आप कहते हैं—वह सुन्दर औरत है, वह मेरी दृष्टिमें सुन्दर दीखती है।'

मुश्किलसे ही कोई औरत सुन्दरताके वास्तविक भावको जगा सकती है। यह नहीं कि औरत जन्मजात ही सुन्दर है। वैसा हम इसलिए कहते हैं कि सुन्दरताके बारेमें जो हमारा थोड़ा, किफायतसे, मलिन ज्ञान है, वह दूसरोंको प्रकट न हो। हजारों औरतें ऐसी मिल सकती हैं, जो कि प्लायटर्सकी डायना, श्रीमती लैंगट्री अथवा अन्य प्रसिद्ध औरतोंकी तरह सुन्दर हों। आज हजारों-हजार बाहरसे सुन्दर दिखलाई पड़नेवाली औरतें मिल सकती हैं। लेकिन वास्तविक रूपसे सुन्दर औरतें कितनी कम हैं!

और क्यों? अपनी 'सेक्स'-अपीलकी असफलताके कारण। एक अच्छी दीख पड़नेवाली औरत मुझे तभी सुन्दर दिखलाई पड़ती है, जब कि उसमें सेक्सकी आग पवित्र और सुन्दर रूपमें जलती है और उसके चेहरेपर चमकती है तथा मेरे हृदयको छूती है।

तब वह मेरी दृष्टिमें सुन्दर औरत हो जाती है, तब वह प्राणवन्त दिखलाई पड़ती है, केवल फोटोमें अंकित चित्रकी

तरह निर्जीव नहीं। और सुन्दर औरत कितनी आकर्षक होती है! लेकिन, हाय! वे कितनी कम संख्यामें हैं! असामान्य, विलक्षण, सुन्दर लड़कियों और युवतियोंसे भरे संसारमें वे कितनी कम हैं!

आकर्षक, अच्छी दीख पड़नेवाली, लेकिन सुन्दर नहीं, खूबसूरत नहीं। आकर्षक और अच्छी दीख पड़नेवाली औरतें वे औरत हैं, जिनकी आकृति सुडौल हो और जिनके बाल सुव्यवस्थित हों। लेकिन सुन्दर औरत एक अनुभव है। यह अभिव्यक्त अथवा प्रज्वलित आगकी बात है। यह हमारे दरिद्र, क्षयिष्णु आधुनिक संसारमें 'सेक्स'की अपीलका प्रश्न है। वह 'सेक्स'-अपील, जो कि प्वायटर्सकी डायना अथवा अन्य दूसरी सुन्दरी अथवा अपनी पत्नीसे सम्बद्ध हो—क्यों? यह तो अपपानकी बात है और अपने-आपमें सीमित है। आजकल, चाहे जो हो, सुन्दरताकी आगके बदले, 'सेक्स'की अपील ही सब-कुछ है। दोनों एक ही चीज हैं, मैं समझता हूं, लेकिन ये दोनों एक, विस्तृत रूपमें, विभिन्न स्तरोंपर, हैं।

एक व्यवसायीकी सुन्दर और अनुरक्त औरत अपने 'सेक्स'-अपीलके कारण खासकर बहुमूल्य है। जो मुश्किलसे भी 'अनैतिक सम्बन्धों'की ओर दिशा-निर्देश नहीं करती।

आज भी थोड़ी-सी उदार लड़की यह महसूस करना पसन्द करती है कि वह किसी पुरुषको सहायता पहुंचावे, अगर वह ऐसा चाहता हो। और यह इच्छा कि वह उसको सहायता लेगा—उसके 'सेक्स'की अपील है। यह वास्तविक आग है, जिसमें बहुत साधारण गर्मी है।

इतना होनेपर भी, यह 'सेक्स'की आग व्यवसायको दुनियाको जीवन्त रखे हुए है। सम्भवतः, व्यवसायीके कार्यालयमें यदि स्त्री-सचिव तुल्य उसकी औरत नहीं रहे, तो उस व्यवसायीका जीवन मृतक-तुल्य हो समझिये। वह औरत ही अपने अन्दर पवित्र आग प्रज्वलित करती है और बाहर अपने स्वामीके प्रति इसको प्रकाशित करती है। स्वामीके हृदयमें एक प्रकारकी शक्ति और आशाकी अनुभूति होती है और व्यवसाय उन्नति करता जाता है।

'सेक्स'-अपीलका वस्तुत दूसरा पक्ष भी है। यह पहले पक्षका क्षयिष्णु रूप हो सकता है। जब कोई औरत 'सेक्स' की आग अपने अन्दर प्रज्वलित कर लेती है और अपने लाभके लिए 'सेक्स'की अपील करती है, तो यह कुछ मनुष्योंके लिए असामान्य रूपसे बुरा क्षण भी हो सकता है। लेकिन 'सेक्स'-अपीलका यह दूसरा पक्ष अन्ततः शक्तिसे बाहर पड़ जाता है, इसलिए आज यह उतना खतरनाक नहीं है, जितना कि पहले था।

'सेक्स'-अपील करनेवाली वे वेश्याएँ भी, जिन्होंने बालजाककी रचनाओंमें वर्णित पुरुषोंको बर्बाद कर दिया—अविलम्ब 'सेक्स'की आगका पता नहीं पा सकतीं। मनुष्य आज बहुत सीधेसादे हो गये हैं। वे कामके आवेग उत्पन्न करनेवाली रमणियोंसे पनाह माँगते हैं। वास्तवमें, मनुष्योंकी ऐसी धारणा हो गई है कि वे एक चूहेको छूते हैं, तो लगता है कि उन्होंने किसी रमणीकी सेक्स-अपीलका स्पर्श कर लिया।

'सेक्स'-अपीलको लेकर आज जो दुःख है, वह इसलिए है कि जीवनको लौके एक अंशका हमने गन्दा नाम रख दिया। कोई भी आदमी उतनी अच्छी तरह और उतनी सफलतापूर्वक काम नहीं करता, जितनी कि वह किसी औरत के द्वारा नसोंमें आग प्रज्वलित होनेपर करता है। जब तक कोई औरत किसीके प्यारमें नहीं होती, तब तक अपने घरेलू काम-धन्धोंमें वह वास्तविक आनन्द नहीं लेती और एक औरत लगातार प्रायः अनजान रूपमें, पचास वर्ष तक प्रेम कर सकती है।

अगर केवल हमारी सभ्यताने यह सिखलाया होता कि 'सेक्स'की अपीलकी धारा कैसे नियमित और सूक्ष्म रूपसे बहे, 'सेक्स' की आग कैसे स्वच्छ और जीवन्त रूपमें जले, अपनी अभिव्यक्ति अथवा प्रकाशनकी सभी शक्तियोंके विभिन्न स्तरोंपर कैसे जगमगाये, दमके अथवा प्रज्वलित हो, तो हम सब-के-सब प्रेमका जीवन जीते, जिसका अर्थ यह है कि हममें 'सेक्स' की आग प्रज्वलित है और हम सभी रीतियों और सभी पदार्थोंके प्रति उत्साहपूर्ण हैं।

जब कि आजके जीवनमें कितना ढेर मुर्दा राख पड़ी है!

अनु०—गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

—*—

साइप्रस और स्वतन्त्रता-आन्दोलन

विष्णु दुग्गड़

टर्कीके तटके निकट और मिस्रके ठीक सामने पूर्वी रोम सागरमें स्थित साइप्रस द्वीपमें स्वतंत्रताके लिये घमासान युद्ध हो रहा है। इस द्वीपपर १८७८ से ब्रिटेनका अधिकार है। सन् १८७८ में ब्रिटेन तथा टर्कीमें यह समझौता हुआ था कि रूसका टर्कीपर आक्रमण होनेपर ब्रिटेन टर्कीकी सहायता करेगा। इसके बदलेमें टर्की साइप्रसको ब्रिटेनके सुपुर्द कर देगा। अतः १९१४ में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होनेपर इसपर ब्रिटेनका नियन्त्रण हो गया और टर्कीका अधिकार समाप्त हो गया। उस समयसे साइप्रस ब्रिटेनके अधिकारमें है।

साइप्रसमें ब्रिटिश शासनमें आनेसे लगभग २५ वर्षसे ही इस द्वीपमें स्वतन्त्रताकी एक लहर चल रही थी, जिसे यूनानी भाषामें एनोसिस कहते हैं। एनोसिसका अर्थ है यूनानके साथ एकता। इसका अर्थ यह है कि साइप्रसकी पाँच लाखकी जनसंख्याके ८० प्रतिशत यूनानी यह चाहते हैं कि साइप्रस यूनानका ही एक प्रदेश हो और वहाँ यूनानी राज्यपाल प्रशासन चलाये। परन्तु ब्रिटिशने यूनानी जनता की इस माँगको सदा ठुकराया है और जबसे इसने मध्यपूर्वमें साइप्रसको अपनी सेनाओंका प्रमुख कार्यालय बनाया है, तब से तो इस प्रस्तावका खुलमखुल्ला विरोध किया गया है। इन परिस्थितियोंने साइप्रसकी जनताकी सहनशक्तिका अन्त कर दिया और वहाँके उग्र राष्ट्रवादियोंमें एक क्रान्तिकारी दल संगठित करके स्वतन्त्रता-आन्दोलनको एक नया रूप दिया और अहिंसाको त्याग हिंसाकी शरण ले ली।

साइप्रसकी जनताकी एकताको देखकर ब्रिटेनने फूट डाली और शासन करोकी नीति अपनाई और ९० हजार तुर्कोको यूनानियोंके खिलाफ भड़काया। इसके परिणाम स्वरूप न केवल साइप्रसमें रहनेवाले तुर्की, बल्कि स्वयं टर्कीने यह माँग की कि क्योंकि ब्रिटेनने साइप्रसको टर्कीसे छीना था, इसलिए यह द्वीप टर्कीको लौटा दिया जाय। इस माँगका समर्थन करते हुए टर्कीके प्रधान मन्त्री श्री मेंडेरिसने १९५१ में यह घोषणा की थी कि साइप्रस द्वीप टर्कीके तटके इतना निकट है कि यदि यह किसी अन्य राज्यके हाथमें चला जायगा, तो यह टर्कीकी स्वतन्त्रताके लिये खतरा बन जायेगा।

ब्रिटेनने टर्कीकी इस माँगका सहारा लेकर यूनान और टर्कीके प्रतिनिधियोंको लन्दन बुलाया, परन्तु वह असफल रहा और यह बात भी स्पष्ट कर दी गई कि साइप्रसको यूनानमें नहीं मिलाया जायगा। समझौते से समस्या हल न होते देखकर साइप्रसके यूनानी आन्दोलनवादियोंने ब्रिटेनके खिलाफ हथियारोंका प्रयोग शुरू कर दिया।

यह देख अक्तूबर, १९५५ में साइप्रसके ब्रिटिश गवर्नर सर जान हार्डिंगने बड़े पादरी मकारिओससे पुनः वार्ता आरम्भ की और उन्हें समझौते की बातचीतके लिये बुलाकर धोखेसे गिरफ्तार कर लिया और सैकड़ों मील दूर सचिलीजमें नज़रबन्द कर दिया। उसके पश्चात् अनगिनत दूसरे पादरी गिरफ्तार करके जेलोंमें ठूँस दिये गये। श्री मेकारिओसने कई अवसरों पर हिंसाके विरुद्ध राय व्यक्त की है। एक बार उनकी मोटरकारकी तलाशी ली गई, तब उन्होंने कहा था—'गुलामोंकी जिन्दगीमें इस प्रकारकी घटनाएँ होती रहती हैं, लेकिन अंग्रेज़ अफसर हमारी गाड़ीमें शस्त्रास्त्र पाते कैसे, जब कि हमने उन्हें अपने दिलमें छुपा रखा है?' यह ४२ वर्षीय यूनानी मकारिओस एक किसान परिवारमें है। आप १९४२ में एथेन्स-विश्वविद्यालयके ग्रेजुएट हुए। वहीं उन्होंने कानूनका अध्ययन किया और बादमें अमरीकाके बोस्टन-विश्वविद्यालयमें समाज-विज्ञानकी शिक्षा प्राप्त की। इसी अवधि में वे मिटियनके बिशप चुने गये। १९४८ में जब वे स्वदेश लौटे, तब उन्होंने जनताके एकीकरणके प्रश्न पर मतगणनाकी प्रेरणा दी। ९५ प्रतिशत वोट एकीकरणके पक्षमें रहे। इस नई सूझने इन्हें इतना लोकप्रिय बनाया कि वे ३६ वर्षकी आयुमें आर्कबिशप हो गये। इस महान् पुरुषको नज़रबन्द करनेका प्रभाव आन्दोलन पर न पड़ा हो, यह तो नहीं कहा सकता। वहां आज स्थिति जैसी विषम हो गई है, वैसी इसके पूर्व कभी नहीं हुई होगी और वह कुछ रंग लाये बिना नहीं रहेगी। परन्तु संघर्ष बहुत बड़ा है।

साइप्रस ब्रिटेनके लिये एक बड़ा महत्त्वपूर्ण द्वीप है। जब तक स्वेज-क्षेत्रमें ब्रिटिश सैनिक अड्डे थे, तब तक ब्रिटेनके लिये साइप्रसका सैनिक महत्व न था। परन्तु स्वेजके अड्डे ब्रिटेनके हाथसे निकल जानेके बाद उसने साइप्रसमें अपने फौजी अड्डे बना लिये और इस छोटे-से द्वीपमें ८० हजार सशस्त्र सैनिक, ५०० से अधिक बम गिरानेवाले हवाई जहाज़, सैकड़ों टैंक और एक मज़बूत पैराशूट फौज रखी हुई है, जिसे पूरा अधिकार है कि वह जिस व्यक्तिपर शक हो, उसे गोलीसे उड़ा दे। जोर्डनमें ब्रिटिश नीतिको गहरा धक्का लगनेके कारण ब्रिटेनके लिए साइप्रसका महत्व और अधिक बढ़ गया है।

इसी साइप्रससे ब्रिटेन और फ्रांसने अपनी विमान और नौ सेन द्वारा मिस्र पर भयंकर आक्रमण किया था। साइप्रसका स्वतन्त्रता-संग्राम मलाया, केनिया और अलजीरियाके संग्रामोंसे भिन्न नहीं है। इन तीनों देशोंकी जनताकी भाँति साइप्रसकी जनता भी सैनिक दृष्टिकोणसे दुर्बल होते हुए भी ब्रिटेन जैसी महान शक्तिका सामना कर रही है। एक च्यूँटी पहाड़से टक्कर ले रही है और उसके साहस और सहन-शक्तिको देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है।

साइप्रसमें आन्दोलनकारी अपने एक ही झंडे-तले गुरीला युद्ध लड़ रहे हैं, जिसके कारण साइप्रसमें कोई अंग्रेज अपने आपको सुरक्षित नहीं समझता। इस आन्दोलनके नेता कर्नल ग्रीवास हैं, जो द्वितीय महायुद्धमें यूनानमें जर्मनीके खिलाफ गुरीला युद्धमें कमाण्डर थे। ब्रिटेनने उनकी गिरफ्तारीके लिये १० हजार पौंड के इनामकी घोषणा कर रखी है। ब्रिटिश सेनायें जंगलों, देहातों और कस्बोंमें तलाशके लिये मारी-मारी फिर रही है, परन्तु उन्हें गिरफ्तार करना कोई सरल काम नहीं है।

हालमें ही छतरी सेना उतारकर उस जंगलको घेर लिया गया, जहाँ कर्नल ग्रीवासने गुरीला सेनाका मुख्यालय बना रखा था। गोरीला सेनाने शत्रु का डटकर सामना किया और फिर शत्रुको भगानेके लिये जंगलमें आग लगा दी। ब्रिटिश सैनिक अपनी जान लेकर भागे और ग्रीवास साफ बच गये।

सितम्बर १९५५ में फील्डमार्शल सर जान हार्डिंगको गवर्नर और कमाण्डर नियुक्त करके आन्दोलनकारियोंको नष्ट करनेकी हिदायतें दी गईं और उन्होंने घोषणा की कि वह इस कार्यको तीन मासमें पूरा कर देंगे, परन्तु आज लगभग दो वर्षसे अधिक समय बीत चुका है और वे अपनी समस्त सैनिक शक्तिको प्रयोगमें लाकर और अनगिनत अत्याचार करके भी इस स्वतन्त्रता-आन्दोलनको समाप्त नहीं कर सके।

साइप्रसमें ब्रिटिश सेनाके भयका प्रमाण इस बातसे मिलता है कि इस द्वीपमें कोई युवक अथवा युवती शनाख्ती कार्डके बिना घरसे बाहर नहीं निकल सकते। यदि किसीके पास कोई हथियार मिले, तो उसे गोलीसे उड़ा दिया जाता है अथवा फाँसी दे दी जाती है। इस तरह करनेपर भी कोई दिन ऐसा नहीं होता, जब कोई बम न फटे अथवा किसी अंग्रेजपर आक्रमण न हो। समस्त साइप्रसमें मार्शल ला है। कोई व्यक्ति ५ बजे सायंकालसे ५ बजे प्रातः तक घरसे बाहर नहीं निकल सकता। ऐसा होनेपर भी गुरीला सेना आक्रमण कर रही है।

एक वर्षके लगभगकी बात है, सर जान हार्डिंगके आदेश से दो यूनानी नवयुवकोंको फाँसीकी सज़ा दी गई। समस्त साइप्रसमें इसका विरोध करते हुए हड़ताल की गई। यूनान सरकारने भी माँग की कि उन्हें फाँसी न दी जाये। परन्तु उसकी भी किसीने न सुनी और दोनों नवयुवकोंको फाँसीपर लटका दिया गया। तब कर्नल ग्रीवासके आन्दोलनकारियोंने दो अंग्रेज अफसरोंको फाँसीपर लटकानेकी घोषणा की, परन्तु सर जान हार्डिंगको यह सन्तोष था कि आन्दोलनकारियोंकी कैदमें कोई अंग्रेज अफसर नहीं है। आन्दोलनकारियोंने दो अफसरोंको मारकर उनके शव बाजारमें फेंक दिये और उनके हजारों चित्र प्रकाशित करके बाँटे।

आन्दोलनकारियोंका साहस बहुत बढ़ चुका है। यहाँ तक कि पिछले दिनों इंग्लैंडकी मलिकाने साइप्रसका दौरा करनेका निश्चय किया, तो उन्होंने धमकी दी कि यदि उन्होंने साइप्रसके तटपर कदम रखा, तो उन्हें गोलीसे उड़ा दिया जायेगा। इसी प्रकार ड्यूक आफ एडिनबर्गको भी धमकी दी गई है। आस्ट्रेलियाके एक समाचारपत्र 'ट्रुथ'ने लिखा है कि उसे मेलबर्नसे एक पत्र प्राप्त हुआ है। लिखने-वालेने अपना नाम न देते हुए अपने-आपको साइप्रसका एक आन्दोलनकारी बताया है और उसके पत्रका आशय यह है कि उसे अपने देशसे यह आज्ञा मिली है कि वह ड्यूक आफ एडिनबर्गको, जब वे आस्ट्रेलिया आयें, हत्या कर दे। और

[शेषांश पृष्ठ २११ पर]

मुतलक़ खिचड़ी

श्रीराम शर्मा

१ एक थे पटवारी। नाम था मुंशी भरतपाल।

२ आजादीसे पूर्वकी बात है, जब पटवेरियोंका दौरदौरा था और पटवारीका प्रभाव आजकलके डिप्टी-कलक्टरोंसे अधिक था।

३ मुंशी भरतपालका वेतन तो कम था, पर आमदनी काफी थी।

४ नजरानेकी आमदनी प्रतिवर्ष तीन-चार हजार हो जाती और खाने-पीनेकी सामग्री, दूध-घी इत्यादि मुफ्तमें मिलते।

५ मुंशी भरतपाल गाँववालोंके काम भी आते।

६ उर्दू और फारसी वे अच्छी जानते थे, अतः उनकी बोलचालमें फारसीके ऐसे शब्दोंका प्रयोग रहता, जैसे 'तोबा, मुतलक़, मुश्तरिका' इत्यादि।

७ गाँववाले ऐसे शब्द जानते न थे, पर अनुमानसे अर्थ लगा लेते।

८ एक बार मुंशी भरतपाल बीमार पड़े। अच्छे होनेपर भी हकीमोंने उन्हें कई माह तक खिचड़ी खानेका आदेश दिया।

९ एक दिन खेतोंकी पड़ताल करते हुए मुंशी भरतपाल जाटोंके गाँवमें जा पहुँचे और रातको वहीं रहना हुआ।

१० जाटोंने मुंशीजीकी बड़ी खातिर की। जाटोंके उस गाँवसे ही उन्हें अच्छी आमदनी होती थी।

११ जाटोंके मुखियाने पूछा, "मुंशीजी, खानेके लिए क्या बनवाऊँ? खीर, पुआ, कचौड़ी, हलुआ, रबड़ी तो बनेगी ही। कोई खास चीज बनवानी हो तो बताइये।"

१२ मुंशी भरतपालने कहा, "चौधरी, तुम्हें मालूम नहीं कि मैं अलील (बीमार) हूँ। मुझे लवाजमात नहीं चाहिए, मुतलक़ खिचड़ी खाऊँगा।"

१३ जाटने घर जाकर कहा, "मुंशी जीके लिए गोमूत्रकी खिचड़ी बना दी जाय।" पर बहुत कोशिश करने पर भी गोमूत्र नहीं मिला।

१४ जाट मुंशीजीके पास गया और विनय की, "मुंशीजी, गोमूत्र तो मिलता नहीं। आज दूध ही पी लेना। न सही गोमूत्रकी खिचड़ी।"

१५ मुंशी भरतपालने बिगड़ कर कहा, "चौधरी, तुम जाट ही रहे! क्या मैं गोमूत्रकी खिचड़ी खाऊँगा? मुझे चाहिए मुतलक़ खिचड़ी।"

१६ जाट अन्यमनस्क घर लौटा और कई अन्य जाटोंको बुलाकर उसने कहा, "मुंशीजी को कोई बहुत बुरा रोग है। गोमूत्रकी खिचड़ी भी वे नहीं खायेंगे। उन्हें चाहिए मुतलक़

खिचड़ी। इतना मूत्र कहाँसे लाया जाय और कौन बनाये ?"

१७ सब जाटोंने मिलकर तय किया कि महतरको बुलाया जाय और एक हाँड़ीमें १०-१२ घरोंका मूत्र इकट्ठा किया जाय।

१८ तब कई घरोंसे मूत्र इकट्ठा किया गया और एक हाँड़ीमें महतरसे ही घरके बाहर खिचड़ी बनवाई गई। परोसनेके लिए एक बढ़िया थाल लाया गया और तय किया कि आगमें तपाकर उसे बादमें शुद्ध किया जायगा।

१९ थालमें परोस कर जाट-मुखिया मुतलक़ खिचड़ी ले गया। साथमें पानीके लिए कहार भी था।

२० हाथ धोकर मुंशीजी खाने बैठे। दो-चार कौर खानेके बाद मुंशी भरतपालने पूछा, "चौधरी, घी बढ़िया है, अचार अच्छा है, पापड़ भी ठीक भुना है, पर खिचड़ीमें खारीपन अजीब किस्मका है। गलेके नीचे नहीं उतरती।"

२१ जाट बोला, "मैंने तो पहले ही कहा था कि आप दूध पीकर रह जायँ। आठ-दस घरोंसे जबरदस्ती मूत्र इकट्ठा किया। स्त्रियाँ हँसती और गाली देती थीं। तब कहीं जाकर आपकी मुतलक़ खिचड़ी बनी है।"

२२ मुंशी भरतपालको उबकाई आई और झल्लाकर बोले, "तोबा, तोबा! अरे नामाकूलो, तुमने यह क्या हरकत की ?"

२३ गलेमें उँगली डालकर मुंशीजीने कै की और गंगाजल पिया।

२४ जाट तब समझे कि मुंशीजीका अर्थ मुतलक़ खिचड़ीसे केवल या बिल्कुल खिचड़ी ही से था।

[पृष्ठ २०९ का शेषांश]

उसने इस आज्ञाका पालन करनेका दृढ़ निश्चय भी व्यक्त किया है।

संसारकी आँखें साइप्रसकी ओर लगी हुई हैं। उसे कई देशोंकी सहानुभूति प्राप्त है और संसारके लोग टकटकी लगाये यह देख रहे हैं कि हजारों जानें बर्बाद हो रही हैं, जो खूनकी नदियाँ बह रही हैं, स्त्रियोंकी इज्जत लुटी जा रही है, कमसिन बच्चोंको मौतके घाट उतारा जा रहा है, चारों ओर बेचैनी और बदअमनी फैली हुई है, इंग्लैंडसे सुन्दर लड़कियोंको भेजकर साइप्रसके युवकोंको बहकाने और उनके नैतिक स्तरको गिरानेके लिए जो-कुछ किया जा रहा है, उसका अन्त कहाँ होगा और उसके क्या परिणाम होंगे ? लोग उत्सुकतासे देख रहे हैं कि विजय सत्यकी होती है या असत्यकी !

चिट्ठी - पत्री

नई दिल्ली

.....

एक पत्र प्रकाशनार्थ भेज रहा हूं। श्री ईथल मैरिनको अंग्रेजी पुस्तक 'ब्रेड एण्ड रोज़ेज' में कृषि और ज़मीनके ऊपर बड़े सुन्दर अवतरण हैं। यह भी बता दूँ कि ईथल मैरिनने कुमारी विल्किन्सनका एक स्केच लिखा था और यह मुझे मालूम है कि कुमारी विल्किन्सन आपके गाँव किरथरा गई थीं।

चारेके महत्वके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता था और न मुझे यह मालूम था कि बबूलकी पत्तियाँ चारेके काम आती हैं; पर जब मैंने पीपल और नीम तथा बबूलके पेड़ों की पत्तियोंको काटते लोगोंको देखा, तब आपकी बातका गुरुत्व समझमें आया। कनैटामें चौबे सुदर्शनलालजीके बाग का एक पीपल बाकी है। वह बिलकुल नग्न था। पत्ती भी बेच दी गई थी, बड़ी मही शकल जँचती थी। चित्र मैंने लिया था। आगरेकी सड़कपर वृक्षोंकी छाल छीलनेवालों का उत्पात बन्द हुआ या नहीं? आपके आदेशानुसार मैंने उदाहरण देखे थे।

विनीत—
बनारसीदास चतुर्वेदी

[गत अगस्तके अंकमें चारा-सम्बन्धी लेख निकल गया है। हमने उसपर सम्पादकीय नोट भी लिखा था। हमने श्री ईथल मैरिनकी पुस्तक नहीं पढ़ी है। चतुर्वेदीजीसे हमारा आग्रह है कि वे छोमतन या वैसे ही पुस्तक भिजवा दें।

स्व० कुमारी विल्किन्सन ब्रिटेनके मज़दूर मंत्रिमंडलमें शिक्षा-मन्त्राणी थीं। मंत्रिमंडलमें शामिल होनेसे पूर्व उन्होंने भारत-यात्रा की थी और देहात तथा अन्य जानकारीके लिए वे हमारे गाँव आई थीं।

हमारा दावा है कि भारतकी खाद्यान्न समस्या तब ही हल हो सकती है, जब चारे, ईंधन और खाद्यान्नकी समस्याओंको एक-सा महत्व दिया जायगा। इन समस्याओंके साथ भूमि-संरक्षण और बाढ़ोंकी समस्या भी है। इन समस्याओं का हल किसी राजनीतिक दलबन्दीके आधारपर नहीं होना चाहिए। ये समस्याएँ राजनीतिक दलबंदीके परेकी समस्याएँ हैं। सब विषमताएँ हमारे अज्ञान और स्वार्थके कारण ही अधिक बढ़ी हुई हैं। हमें खुशी है कि चतुर्वेदीजी इन बातों की ओर अब ध्यान देने लगे हैं। सड़कके पेड़ोंकी कटाई जारी है। —'विशाल भारत'-सम्पादक]

[२]

११-७-५८

प्रिय बनारसीदासजी,

आशीर्वाद। आपका लेख दूसरे पैकेटमें इसीके साथ लौटाया गया है। आपको हमारी अपेक्षा सन् अधिक याद हैं, ऐसा हमारा अनुमान है। हम बहुधा भूल जाते हैं इसलिए संशोधनकी कोई जगह नहीं थी। हाँ, यह दूसरी बात है कि प्रशंसा पूरी हुई या उसमें कुछ कसर रह गई। से हमारी समझमें वह ज़रूरतसे ज्यादा हुई है।

फिर भी 'जगत' के 'त' को हमने जहाँ-तहाँ 'त्' बना दिया है और एकआध जगह कुछ और फालतू 'भी' काट दिया है। इसलिए आपके श्रमको व्यर्थ नहीं जाने दिया।

प्रसंगवश हमें यह बुरा लगा कि लक्ष्मण रावजी व श्रीराम शर्माको नामिनेट करनेके बदले बेढबजी patronage के अधिक पात्र समझे गये। वे अपात्र या कुपात्र नहीं हैं पर प्रथमोक्त दोनोंकी उपेक्षा खटकती है।

इधर शरीर गड़बड़ चल रहा है। फिर भी संस्मरण लिखना आरम्भ किया है। प्रायः ८० पृष्ठ फुल्सकेपके हो गये हैं, जिनमें ३६ पृष्ठ तो वंश-परिचय ही है। बीच-बीच में शरीर मट्ठर बैलकी तरह आगे नहीं चलता, इसलिए काम मन्द गतिसे हो रहा है। फिर भी यत्न जारी है।

भवदीय—एक साहित्य-सेवी

[उपर्युक्त निजी पत्र हिन्दी-साहित्यके एक सुप्रसिद्ध पत्रकार और साहित्य मनीषीका है, जो उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदीको लिखा था। चतुर्वेदीजीने उस पत्रकी नक़ल हमारे पास भेज दी और हमने पत्र-लेखक श्रद्धेय महानुभाव और चौबेजीकी अनुमति बिना ही 'विशाल भारत' में दे दिया है। हमारे खयालसे भी सवाल 'पैट्रोनेज'का ही है यह तो उन श्रद्धेय पत्र-लेखकका हमारे प्रति स्नेह है, जो हमें स्मरण किया और चाहा कि यू० पी० कौंसिलके लिए नामज़दगी हमारी होनी चाहिए थी। हमारे खयालसे श्रीमान् लक्ष्मण राव गर्देजीकी नामज़दगी अच्छी रहती गर्देजीको नई पीढ़ीके पत्रकार साहित्यकार नहीं जानते; पर उन्होंने हिन्दीकी जो सेवा की है, वह स्तुत्य है। उनके बाद पं० हरिशंकर शर्माका नाम आना चाहिए था। रही अपनी बात, सो हमारी साहित्यके अतिरिक्त कुछ सेवा राजनैतिक भी है; पर राजनीतिमें उन काफ़िरोंको कौन पूछता है, जो

दलगत राजनीतिसे दूर रहकर कुछ काम करना चाहते हैं। हम कांग्रेसी होनेपर भी कांग्रेस-दलके सदस्य नहीं होना चाहते। हम वकील तो नहीं हैं; पर हमारी प्रवृत्ति न्यायाधीशकी-सी है, जो निष्पक्ष निर्णय देनेका प्रयास करता है। वैसे कांग्रेसमें आजकल 'पैट्रोनेज', बिरादरी और दलबन्दीका बोलबाला है। हम बेढबजीके विरोधी नहीं हैं और न उस नामज़दगीमें बेढबजीका कुसूर है। हमारा ख़याल है कि स्वयं बेढबजी ही श्री गर्दे जी और पं० हरिशंकर शर्माका विरोध न करते। पर कविवर इक़बालके शब्दोंमें—

जमहूरियत वह तर्ज़े हुकूमत है कि जिसमें,
बंदोंको गिना करते हैं तोला नहीं करते।

हम फिर चतुर्वेदीजी और अपने श्रद्धेय साहित्य-सेवी, जिन्होंने चौबेजीको पत्र लिखा है, से 'विशाल भारत'में पत्र छापनेके लिए क्षमा चाहते हैं। व्यक्तिगत सम्बन्धके नाते हम ऐसा दुःसाहस करनेका अधिकार भी रखते हैं।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]

[३]

गुडिवंडा
१०-७-५८

अब 'विशाल भारत' के बारेमें दो बातें लिखना चाहता हूं। आजकल उसमें जो तमिल-पाठ छपता है, वह मुझे पसंद नहीं आता। उससे इनेगिने लोगोंके सिवा ज्यादा लोगोंको फ़ायदा नहीं है। अगर कम-से-कम सौ पाठकोंको इससे कुछ फ़ायदा होगा, तो मुझे कोई ऐतराज नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं तमिलका विरोधी हूं। तमिल साहित्य हिन्दी-भाषामें आ जाय, तो मैं दिलसे पसंद करूँगा। तमिल-पाठको पसन्द नहीं करता। मैं ही नहीं, नब्बे फी-सदी पाठक पसन्द नहीं करेंगे। जिनकी 'मातृभाषा या देशभाषा तमिल ही है, उनको इससे लाभ नहीं है। रही दो-चार सीखनेवालोंकी बात। महीने भर एक पाठ पढ़कर कोई थोड़े ही सीख लेगा। हाँ, एक फ़ायदा इससे जरूर होता है कि कुछ कठमुल्ले तमिलवाले सुप्रीत होते हैं।

आपसे अति विनीत होकर यह पूछना चाहता हूं कि तमिल-पाठकी तरह तेलुगु और कन्नड़-पाठके लिए भी गुंजाइश है क्या? इसका उत्तर 'विशाल भारत' में देनेकी कृपा करें। दूसरी बात यह है कि अगर 'विशाल भारत' कार्यालयमें एक संस्कृत जाननेवाला व्यक्ति हो, तो कितना अच्छा होगा। आजकल 'विशाल भारत' में जो संस्कृत श्लोक छपते हैं, उनमें अशुद्धियोंकी भरमार होती है। इससे साधारण पाठक कुछ-का-कुछ समझ लेते हैं। कुछ पाठक लेखककी ही भूल समझते हैं। स्वयं लेखक भी सुखी नहीं होता। उसके दिल में भी यह खटकती है। याद करनेवाले भी भ्रममें पड़ते हैं। अतः इस समस्याको हल करनेके लिए आप कौन-सा मार्ग अपनाना चाहते हैं? मेरे खयालमें तो 'विशाल भारत' और 'प्रवासी' दोनोंके लिए एक संस्कृतज्ञ हो, तो यह त्रुटि दूर होगी। एक तरहसे संस्कृतको भी प्रोत्साहन मिलेगा। न-जाने इस विषयमें आपका और व्यवस्थापक महोदयका क्या अभिप्राय होगा। इस उत्तरकी भी प्रतीक्षा मैं 'विशाल भारत' में करूँगा। ये दोनों सुझाव एक अहिन्दी-भाषा-भाषीके हैं।

—अनन्त रामैय्या

[श्री रामैय्याजीके पत्रका उत्तर हम अगस्तके अंकमें दे चुके हैं। पर मूल पत्र न दे सके थे। हम कठमुल्ले नहीं हैं और न किसी कठमुल्लेके भक्त। हिन्दी, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, बँगला आदि भाषाओंके भक्त है, क्योंकि वे हमारे देशकी भाषाएँ हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा भारतीय एकतारूपी दृढ़ रस्सेकी एक लड़ीके समान है। हम चाहते हैं कि सब ही भाषाओंपर कुछ दिया करें। यदि तेलुगु, कन्नड़पर कुछ आ जाता, तो हम उसे दे देते। तमिल-पाठके बाद हम कन्नड़-पाठका वचन देते हैं। हम हरएक भाषाको महत्वपूर्ण समझते हैं।

'विशाल भारत' को हमने फरवरी १९५७ से फिर सँभाला है। किसी प्रभावशाली पत्र अथवा किसी संस्थाका विकास पौधेके विकासके समान होता है। हम स्वयं अपने लेखों और सम्पादकीयके अन्तिम प्रूफ भी नहीं देख पाते। श्री रामैय्याजीके द्वारा बताई सब त्रुटियोंको हम यथासम्भव दूर कर देंगे। बस, पाठकों और ग्राहकोंकी सहायताकी आवश्यकता है। —'विशाल भारत'-सम्पादक]

[४]

अलीगढ़
१४-८-५८

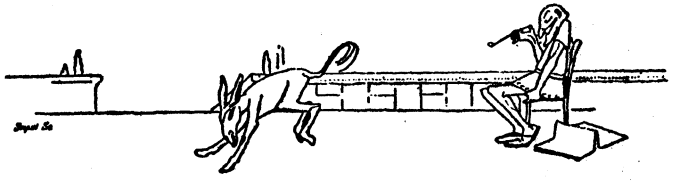
'विशाल भारत' को मैं नियमसे पढ़ता हूं और आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आई० ए० एस० के परीक्षार्थी 'विशाल भारत' के सम्पादकीयको बड़े ध्यानसे पढ़ते हैं। विभिन्न विषयोंकी जानकारी और समस्याओंका विवेचन उनमें रहता है, जो अन्यत्र नहीं मिलता। पर एक बातपर

आप प्रकाश डालें कि मथुरा, अलीगढ़, एटा, आगरा तथा मैनपुरी ज़िलोंमें अब नियमित रूपसे बाढ़ क्यों आती है? इसके अतिरिक्त आपकी जो निर्भीक आलोचना कांग्रेसकी होती है, तो क्या आप किसी दूसरे राजनीतिक दलमें हैं? चतुर्वेदीजी तो अब कांग्रेसमें हैं ही। यह बात व्यक्तिगत होनेपर भी 'विशाल भारत' में उत्तर दें। मुझे तो उसका सम्पादन पसन्द है। —एक सरकारी कर्मचारी

['विशाल भारत' लोगोंको और आई० ए० एस० वालों को पसन्द है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। 'विशाल भारत' व्यक्तिगत पत्र नहीं है। कोई भी पाठक, हमारा आग्रह है, हमारे विषयमें व्यक्तिगत बातें छापनेको न भेजें।

रही बाढ़की बात, सो हमारे खयालसे उपर्युक्त जिलोंमें जो बाढ़ आती है, उसमें प्राकृतिक कोप तीस प्रतिशत है, तो हमारी मूर्खता सत्तर प्रतिशत। पत्र-लेखकसे हमारा आग्रह है कि 'मलेरिया कमीशन रिपोर्ट' पढ़ जायँ। इस वर्ष इन ज़िलोंमें बाढ़ आनेका कारण है कि जुलाईके महीनेमें पिछले ५० वर्षोंसे तो १९ इंच पानीकी पहली वारिश कभी नहीं हुई। पर बाढ़का मूल कारण है पानीके प्राकृतिक बहाव (Drainage) को अवरुद्ध कर देना। रेल, पक्की सड़कें और नहरोंके कारण पानीका प्राकृतिक बहाव अवरुद्ध हो गया है। पानी अपने बहावका स्वाभाविक मार्ग ढूँढ़ लेता है। हमारा मंशा यह नहीं है कि नहरें, सड़कें, रेलें न बनें; पर उनके बनानेमें पानीके प्राकृतिक बहावमें कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिए। इसके लिए रेलवे लाइनोंमें अनेक और बड़ी पुलियाँ होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त आजकल प्रत्येक कार्य में राजनीतिक प्रभाव चलता है। सड़कें वहाँ बना दी जाती हैं, जहाँ नहीं बनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त शहर बसाने और खेतीके तरीके भी गलत हो गये हैं। नदीके किनारे ही नहीं, वरन् नदीके भीतर भी खेती करते हैं। नदीके किनारे काफ़ी दूर तक पेड़ लगाने चाहिए और निचले स्थानोंमें बस्तियाँ नहीं बसनी चाहिए। बाढ़प्रसित क्षेत्रोंसे व्यक्तियों को निकालने, बसाने और फिर वहाँ पहुंचानेमें अपार धन-राशि व्यय होती है। गाँव-के-गाँव बेकार हो जाते हैं। लगान माफ़ करना पड़ता है, सहायता देनी पड़ती है, सरकारका करोड़ों रुपया खर्च होता है। अंग्रेजोंके समयमें कोई राजनैतिक प्रभाव नहीं चलता था; पर आजकल सफेद टोपी, लाल टोपी, गेरुआ टोपीमें वह संघर्ष चलता है, मानों राजनीतिक दलोंके तिलक-छापसे ही काम चल जायगा। आगरा कमिश्नरीमें जो बाढ़ आती है, उसकी रोकके लिए आगरा कमिश्नरीके कर्मचारियों तथा भरतपुर, अलवर, गुड़गाँव और दिल्लीके कर्मचारियों, वहाँके जंगल-विभागके कर्मचारियोंसे मिलकर एक योजना बनाई जाती है। सरकार की मूर्खता यह है कि वह इस प्रकारकी मीटिंगोंमें केवल एम० एल० ए० और एम० पी० को ही बुलाती है। और खेती तथा खाद्यान्नकी जानकारीमें अधिकांश एम० एल० ए० और एम० पी० बहुत कम ज्ञान रखते हैं। उनका अधिकांश समय वोट बटोरनेमें ही जाता है।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]



चयन

ब्रिटेन और जार्डनके बसम्बन्ध

विगतका सिंहावलोकन

शासनादेशिक शासन १९४६ तक चला, जब ब्रिटेन और जार्डनमें हुई एक सन्धिसे ट्रान्सजार्डनको सम्पूर्ण स्वाधीनता मिली। १९४६ का स्थान लेनेवाली १९४८ की सन्धि मार्च, १९५२ में समाप्त की गई। उन दिनों जार्डनके प्रधान मन्त्रीके शब्दोंमें, "यह सन्धि सहमतिपूर्वक तथा हमारे दोनों देशोंमें शान्तिमय और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए समाप्त की गई।"

आगतका विवेचन

"मुझे यह प्रश्न अविलंब कार्यवाहीकी आवश्यकता उत्पन्न करनेवाला प्रश्न प्रतीत हुआ। क्या अपने अमेरिकन मित्रों आदिसे लम्बे-चौड़े विचार-विमर्शकी प्रतीक्षा करना ठीक होगा या नहीं, इस प्रश्नका निर्णय मुझे लेना था, और अपने निर्णयकी बुद्धिमत्ता और विवेकपर ही मुझे अन्ततः आश्रित होना था।" —प्रधान मन्त्री, श्री मैक्मिलन

संधि-काल पर्यन्त ब्रिटेनने मित्रताकी वह भावना कायम रखी थी, जिसका उद्देश्य उक्त संधिका संवर्द्धन था। ब्रिटेनने जार्डनकी रक्षाके अपने आभारकी, जो संधिमें निहित थे, बार-बार पुष्टि की, और संयुक्त राष्ट्रोंमें जार्डनका समर्थन करता रहा। ब्रिटेनने जो आर्थिक सहायता जार्डनको पहुँचाई है, वह भी उल्लेखनीय रही है।

ब्रिटेन तथा जार्डन हाशिमी राजतन्त्रके सम्बन्ध १९१६ से चले आ रहे हैं। उस वर्ष एक अरब विद्रोह, जिसका नेतृत्व मक्काके शरीफ़ हुसैनने किया था, ब्रिटिश अस्त्रों और सहायतासे, ट्रान्सजार्डन प्रदेश सहित विस्तृत क्षेत्रको तुर्कीके शासनसे मुक्त करानेमें सफल हुआ था।

हेजाज़के शाह हुसैनके छोटे पुत्र अमीर अब्दुल्लाको ट्रान्सजार्डनके प्रशासकके रूपमें मान्यता ब्रिटेनने १९२१ में दी थी, और १९२२ में उसने इस प्रबन्धकी पुष्टि भी की।

ट्रान्सजार्डनमें अमीर अब्दुल्लाके शासनान्तर्गत स्वतन्त्र सरकारका अस्तित्व ब्रिटिश सरकार, लीग आव नेशन्सकी स्वीकृतिके अधीन, इस शर्तपर मान लेगी कि उक्त सरकार संविधान-सम्मत अथवा सांविधानिक हो और ब्रिटिश सरकार को ऐसी स्थिति प्रदान कर सके, जिसमें वह इस राज्यक्षेत्र-विषयक अपने अन्तर्राष्ट्रीय आभारोंको, दोनों सरकारोंमें किये जानेवाले समझौतेके द्वारा, पूरा कर सके—इस आशयकी घोषणा अप्रैल, १९२३ में की गई थी।

स्वाधीनताकी घोषणा

मई, १९२३ में अमीर अब्दुल्ला द्वारा ट्रान्सजार्डनकी घोषणा की गई। आन्तरिक कठिनाइयाँ थीं ही, और सीमापर सऊदी अरबकी हलचलके कारण ये और भी जटिल बन चली थीं। किन्तु इन कठिनाइयोंके होते हुए भी बातचीत अथवा वार्ता-व्यवहार जारी रहे, जिसके फलस्वरूप एक संधि फरवरी, १९२८ में यरूशलममें हस्ताक्षर-सम्पन्न हुई। लीग आव नेशन्सके स्थायी शासनादेश आयोगकी आवश्यक शर्तों के अनुरूप १९२८ की संधिमें यह व्यवस्था दी गई थी कि विधान बनाने और प्रशासन चलानेके अधिकार—जो ब्रिटेन को, शासनादेश-प्राप्त सत्ताके रूपमें सौंपे गये थे—अमीर द्वारा, सांविधानिक सरकारके जरिये, क्रियान्वित हों।

वैदेशिक सम्बन्धोंके विषयमें ब्रिटेनकी सलाह लेना तथा किन्हीं आधारिक कानूनोंको ब्रिटिश सरकारके सामने रखना, अमीरने स्वीकार कर लिया। शासनादेशिक शासन १९४६ तक रहा, जब ब्रिटेन और जार्डनमें एक सन्धि हुई, जिससे ट्रान्सजार्डनको पूरी स्वाधीनता मिली, और अमीर अबदुल्ला शाह कहलाने लगे। १९४६ में इस राज्यक्षेत्रका नाम बदलकर 'जार्डन हाशिमी राजतन्त्र' रख दिया गया। १९४८ में एक नयी सन्धिने १९४६ की सन्धिका स्थान ले लिया। इसके उपबन्ध और इसकी शब्दावली राष्ट्रवादी जनमतको अधिक मान्य थी।

१९४८ की इस सन्धिके अनुसार, प्रत्येक पक्षने यह आभार अंगीकार किया कि यदि इनमें से किसीको युद्धमें संलग्न होना पड़े, तो दूसरा उसके सशस्त्र सैन्यबलको समस्त सुविधायें और मदद देगा। शान्तिकालमें, ब्रिटिश राज-

शाही विमानबलकी टुकड़ियोंका अम्मान तथा मफ़राक विमान-क्षेत्रोंपर आधारित किया जाना जार्डनने स्वीकार किया, और ब्रिटिश सैन्यबलको जार्डन पार आवागमनकी सुविधायें भी, इनकी माँग की जानेपर, देना मंजूर किया।

अन्य खंडोंमें सैनिक कार्य, प्रशिक्षण, उपकरण तथा सुरक्षाके उपायोंको समन्वित करनेके लिये एक संयुक्त प्रतिरक्षा मंडलकी स्थापना व्यवस्थित थी। ब्रिटेनने जार्डनकी सेनाके प्रशिक्षणकी व्यवस्थाका आभार अंगीकार किया तथा सन्धि में अनुलग्न पत्र-व्यवहारमें अरब लीजन—१९२० के अन्तपर निर्मित सैन्यबल, जिसके समादेशक ब्रिटिश सेनाधिकारी थे—को वार्षिक आर्थिक सहायता, जो उसे अब तक ब्रिटेनसे मिला करती थी, जारी रखनेका आभार भी अंगीकार किया।

शासनादेशका अन्त

सन्धिपर हस्ताक्षरके दो मास पश्चात् फिलिस्तीनमें ब्रिटेनका शासनादेश समाप्त हुआ। इसके बाद जो युद्ध छिड़ा, उसमें अरब लीजनने अन्य अरब राज्योंकी सेनाके साथ मिलकर उदीयमान इस्रायल राज्यके विरुद्ध लड़ाई की। जार्डनकी स्थितिमें अन्तिम रूपभेद हुआ १९४९ में, जब ब्रिटेनने जार्डनकी सीमाओंके विस्तार (फिलिस्तीनके उस भागको सम्मिलित करते हुए जो अरब हाथोंमें रह गया था, किन्तु गाजापट्टीको अलग रखते हुए) को औपचारिक मान्यता प्रदान की थी।

आगामी कुछ वर्ष आन्तरिक परिवर्तनोंके वर्ष रहे। शाह अब्दुल्ला २० जुलाई, १९५१ को यरूशलममें एक मस्जिदमें प्रवेश करते समय एक फिलिस्तीनी युवकके हाथों मारे गये। उनके उत्तराधिकारी बने उनके ज्येष्ठ पुत्र तलाल, जिनका शासन बहुत कम समय तक रहा और जिनके शासनके दौरानमें (जनवरी, १९५२ में) एक नया संविधान चालू किया गया। मानसिक व्याधिसे पीड़ित होनेके कारण तलाल अगस्त, १९५२ में गद्दीसे उतारे गये। उनके १७ वर्षीय पुत्र हुसैन गद्दीपर बैठे। उनके औपचारिक रूपमें पदारूढ़ होने तक एक राज-परिषद् राज्यके काम-काज चलानेके लिए बनाई गई।

१९५४ में १९४८ की ब्रिटिश-जार्डनी सन्धिके पुनरीक्षण का प्रश्न उत्पन्न हुआ। अन्ततः १९४८ की यह सन्धि, जो बीस वर्ष तक लागू रहनेवाली थी, १९५७ के मार्च महीनेमें, जार्डन-सरकारके अनुरोधपर, समाप्त कर दी गई। इससे पहले अर्थात् मार्च, १९५६ में शाह हुसैनने जनरल जे० बी० ग्लब को अरब लीजनके समादेशक पदसे अलग करते हुए एक आज्ञप्ति जारी की। ब्रिटिश पदाधिकारी जनरल ग्लब १९३९ से अरब लीजनके सेनाध्यक्षका पद सम्हाल रहे थे।

ब्रिटेनसे सहायता

सन्धि-काल पर्यन्त ब्रिटेनने मित्रताकी वह भावना क़ायम रखी थी, जिसका उद्देश्य उक्त सन्धिका संवर्द्धन था। ब्रिटेनने जार्डनकी रक्षाके अपने आभारको, जो सन्धिमें निहित थे, बार-बार पुष्टि की, और संयुक्त राष्ट्रोंमें जार्डनका समर्थन करता रहा।

ब्रिटेनने जो आर्थिक सहायता जार्डनको पहुंचाई है, वह भी उल्लेखनीय रही है। जार्डन अरब सेना—जो मई १९५६, से, अरब लीजनका नाम रहा है—को आर्थिक सहायता (१९५५-५६ में कुल मिलाकर ८८,००,००० पौंडकी बैठती थी) देनेके अतिरिक्त ब्रिटेनने अप्रैल १९४९ से जार्डनके बजटमें सहायतार्थ ब्याजरहित ऋण और अनुदान भी दिये हैं। उनका कुल योग ७४,५०,००० पौंड रहा है।

वर्तमान परिस्थितियाँ

"मेरा यह खयाल नहीं है कि संयुक्त राष्ट्रीय आदेश-पत्रके भावार्थ या शब्दार्थ किसीको इस प्रकारकी विघातक घटनाओं को रोकनेके परम्परागत अधिकार और कर्तव्यसे वंचित करते हैं। यदि ऐसी बात हो तो संयुक्त राष्ट्र आक्रमण और अत्याचारके शिकारके रक्षक न रहकर आक्रमणके समर्थक बन जायँगे, और हम संयुक्त राष्ट्रको यह रूप प्रदान करना तो कदापि नहीं चाहते।"

ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री श्री हेरल्ड मैक्मिलनने हाउस आव कामन्सको १७ जुलाईको सूचित किया कि ब्रिटेनसे सैनिक सहायताका जार्डनके प्रधान मन्त्री द्वारा समर्थित जो अनुरोध जार्डनके शाह हुसैनने किया है, उसे ब्रिटिश सरकारने स्वीकार कर लिया है।

श्री मैक्मिलनने बताया कि यह अनुरोध करते हुए शाह हुसैन तथा उनके प्रधान मन्त्रीने कहा था कि संयुक्त अरब गणतन्त्र द्वारा जार्डनमें, ईराककी हालकी घटनाओंके ढंगपर, आन्तरिक उथल-पुथल मचाने और वर्तमान शासनको पलटने का प्रयत्न तत्काल किया जानेवाला है। उन्होंने बताया कि संयुक्त अरब गणतन्त्र द्वारा यह षड्यन्त्र आज, अर्थात् १७ जुलाईको, क्रियान्वित किया जानेवाला है।

श्री मैक्मिलनने कहा कि शाह हुसैनने यह अनुरोध जार्डनके शाहकी हैसियतसे किया था, और आपने सदनको

यह आश्वासन दिया कि जार्डनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जानेकी सूचनाकी पुष्टि ब्रिटिश सरकारको अन्य स्वतन्त्र स्रोतसे मिली खबरसे हो जाती है। श्री मैक्मिलनने यह भी बताया कि बग़दाद रेडियोपर प्रसारित किन्हीं बातोंसे भी इस सूचनाकी पुष्टि बहुत-कुछ हो जाती है और उदाहरण-स्वरूप, आपने इस महत्वपूर्ण वाक्यका उद्धरण दिया, जो बग़दाद रेडियोपर १६ जुलाईको प्रसारित वक्तव्यसे लिया गया है : कल जार्डन की जनता एक महान् क्रान्ति द्वारा राजतन्त्रका नाश करने जा रही है।

ब्रिटिश द्वारा संयुक्त राष्ट्रको सूचना

अतएव, ब्रिटेनके सैनिक १७ जुलाईको साइप्रससे विमान द्वारा जार्डनमें उतारे गये, श्री मैक्मिलनने बताया, और यह सूचना देनेके बाद कि प्रारम्भतः पैराशूट ब्रिगेडके लगभग दो हजार सैनिक भेजे जा रहे हैं, कहा कि परिस्थितियोंके प्रकाशमें इनकी संख्या बढ़ाने-न-बढ़ानेकी बात तय की जायगी।

इस कार्यवाहीकी सूचना संयुक्त राष्ट्रोंको दी जा रही है, और यदि सुरक्षा परिषद् जार्डनकी वैधानिक सरकारकी सुरक्षाका प्रबन्ध करे तो ब्रिटिश कार्यवाही समाप्त कर दी जायगी।

तब श्री मैक्मिलनने बताया कि ब्रिटेन तो यही पसन्द करता, यदि यह सारी कार्यवाही संयुक्त राष्ट्रोंपर छोड़ी जा सकती, और ब्रिटेन या अन्य देशोंके तुरन्त कार्यवाही न करनेके दुष्परिणामका संकेत करते हुए आप बोले :

मेरा यह ख़याल नहीं है कि संयुक्त राष्ट्रीय आदेश-पत्रके भावार्थ या शब्दार्थ किसीको इस प्रकारकी विघातक घटनाओं को रोकनेके परम्परागत अधिकार और कर्तव्यसे वंचित करते हैं। यदि ऐसी बात होती, तो संयुक्त राष्ट्र आक्रमण और अत्याचारके शिकारके रक्षक न रहकर आक्रमणके समर्थक बन जायँगे, और हम संयुक्त राष्ट्रको यह रूप प्रदान करना तो कदापि नहीं चाहते।

परोक्ष अभ्याक्रमणका प्रश्न

संयुक्त राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्में उसी दिन भाषण करते हुए ब्रिटिश प्रतिनिधि सर पियर्सन डिक्सनने कहा कि उन्हें भरोसा है कि संयुक्त राष्ट्र उन सिद्धान्तोंको मान्यता देना जारी रखेंगे, जो परोक्ष अभ्याक्रमणके प्रश्नपर संयुक्त राष्ट्रीय महासभाने निर्धारित किये थे। हाउस आव कामन्सकी मध्यपूर्व-सम्बन्धी बहसमें बोलते हुए ब्रिटेनके विदेश मन्त्री श्री सेल्विन लायडने कहा कि परोक्ष अभ्याक्रमणके इस प्रश्नमें निहित प्रश्नों-समस्याओंका सामना सदनको करना चाहिए। आपने कहा कि संयुक्त राष्ट्रोंमें इस प्रश्नपर कई बार बहस हो चुकी है।

दिसम्बर, १९४९ में एक प्रस्ताव पारित हुआ था, जिसमें कहा गया था कि किसी राज्यकी स्वाधीनता, स्वतन्त्रता या अखण्डताको कमज़ोर बनाने या गृह-युद्धको उत्तेजना प्रदान करने अथवा राज्यकी जनताके संकल्पको पलटनेके उद्देश्य रखनेवाली किन्हीं प्रत्यक्ष या परोक्ष धमकियों या कार्यवाहियोंका प्रयोग न करें।

'कार्यों के ज़रिये शान्ति' शीर्षक एक अन्य प्रस्ताव भी था, जो १८ नवम्बर, १९५० को पारित हुआ था, और जिसमें किसी राज्य द्वारा दूसरे राज्यके आन्तरिक मामलोंमें वहाँकी वैधानिक सरकारको धमकियों या बल-प्रयोगसे पलटनेके उद्देश्यसे हस्तक्षेपकी भर्त्सना की गई थी, और इस बातकी पुष्टि भी कि 'चाहे जिस साधनका उपयोग किया जाये, कोई अभ्याक्रमण अप्रत्यक्षतः सम्पादित या किसी विदेशी सत्ताके लाभार्थ गृह-युद्धकी अग्नि भड़कानेके रूपमें या अन्यथा सम्पादित विश्व भरकी शान्ति और सुरक्षाके विरुद्ध गम्भीरतम अपराध है।'

जार्डनके सामने उपस्थित इस खतरेका बलपूर्वक उल्लेख हाउस आव लार्डसमें भी किया गया था, जहाँ लार्ड होमने कहा था : 'मुझे विश्वास है कि स्वतन्त्र जगत् यह मानेगा कि हमने, अर्थात् अमेरिका और ब्रिटेनने, संयुक्त अरब गणतंत्र तथा साम्यवादियों द्वारा प्रयुक्त अभ्याक्रमणके इस नये और घातक रूपका प्रसार रोकनेमें और उसके स्थानमें कानूनके शासनको प्रतिष्ठापित करनेमें तथा संयुक्त राष्ट्रोंके अधिकारको बलपूर्वक प्रकट और प्रकाशित करनेमें एवं उसे वास्तविकता बनानेमें थोड़ा-बहुत अंशदान किया है।'

परोक्ष अभ्याक्रमणकी यह आशंका, जो एक आसन्न विपदाके रूपमें जार्डनके सामने उपस्थित थी, थी वह आधार जिसपर, और जिसके अनुसार, ब्रिटेनने अविलम्ब कार्यवाही की थी। जैसा कि प्रधान मन्त्री श्री मैक्मिलन बता चुके हैं, एक ऐसे छोटे और मित्र देशकी सहायता करना ब्रिटेनका नैतिक धर्म था, इससे पहले जिसे वह बहुतेरी सहायता पहुंचा चुका है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके अनुसार

श्री मैक्मिलनने बताया कि जार्डनमें एक निश्चित

षड्यन्त्रकी सूचना मिली थी और इस षड्यन्त्रके विदेशी रचयिताओंने उसके आज, अर्थात् जुलाई १७को, कार्यान्वित किये जानेके आदेश दे रखे थे। इस षड्यन्त्र, जिसकी भविष्यवाणी बगदाद रेडियोपर इतने भरोसेके साथ की गयी थी, का निवारण संयुक्त राष्ट्रोंसे की गयी अपीलके सामर्थ्यकी बात नहीं थी। नैतिक दृष्टिकोणसे मुझे यह प्रतीत होता है कि स्थिति असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट है। ब्रिटेनकी कार्यवाही से अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके भाव और शब्दका उल्लंघन कदापि नहीं होता। इस तथ्यपर बल डालते हुए श्री मैक्मिलनने कहा :

जार्डनको अपनी भूमिकी अखंडता और आजादीके सामने उपस्थित सन्तर्जना और आक्रमणके खतरेका सामना करनेके लिये मदद पहुंचाकर परिस्थितिको स्थिर बनाना ही इस सैनिक सहायताका उद्देश्य रहा है। हमारे सैनिक एक स्थानीय ब्रिटिश समादेशक या कमान्डर, जो अपना कार्य जार्डनके शाह और शासनकी सहमतिसे करेगा, के अधीन रहेंगे।

तब श्री मैक्मिलनने बताया कि ब्रिटेनसे यह अनुरोध करते समय जार्डनके शाह और शासनने हमें विश्वास दिलाया था कि यह उनका इरादा कदापि नहीं है कि ब्रिटिश सैनिकों का उपयोग इसलिए किया जाये कि ईराकपर आक्रमण करने के लिए जार्डनके सैनिक खाली हो सकें।

हमने जो कार्यवाही की है, उसकी सूचना हमने राष्ट्रकुल (कामनवेल्थ) के अन्य देशोंको तथा नेटो परिषद्को दे दी है और उन्हें उन कारणोंसे भी अवगत किया है, जिनसे प्रेरित होकर ब्रिटिश सरकारको इस निर्णयपर पहुंचना पड़ा है।

उतावलीके साथ किये गये इस निर्णयके पीछे एकमात्र उद्देश्य यही था कि वर्तमान समयके लिये सम्बन्धित प्रदेशको सुरक्षित रखा जाये, इस आशामें कि आगे चलकर अधिक अनुकूल और सन्तोषप्रद स्थिति उत्पन्न हो सके। हमारा एकमात्र अभिप्राय यही था।

प्रतिपक्षका दृष्टिकोण

हाउस आव कामन्सकी बहसके दौरानमें प्रतिपक्षके नेता श्री ह्यू गैत्स्केलने परिस्थितिपर गहरी चिन्ता व्यक्त की। श्री गैत्स्केलने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके प्रश्नको उठाना वे नहीं चाहते, पर प्रतिपक्षके सदस्योंको सरकारकी इस कार्यवाहीकी बुद्धिमत्तामें सन्देह जरूर है। श्री गैत्स्केलने पूछा कि ब्रिटिश सैनिकोंको जार्डनमें कितने समय तक रखने का विचार है और इस बातमें सन्देह प्रकट किया कि वे जार्डनमें सुस्थिर, जनतांत्रिक और पश्चिम-समर्थक शासनको पीछे छोड़ते हुए वहाँसे हटाये जा सकेंगे।

श्री गैत्स्केलने कहा कि परस्पर एकताकी अरब जातिके लोगोंकी प्रबल अभिलाषाएँ माननीय सदस्योंको समझनी चाहिये। उन्होंने कहा कि वे यह नहीं मानते कि इस अभिलाषामें एकाकी अधिनायकके आधिपत्यका निहित होना जरूरी ही है। इन्हीं कारणोंसे हम सरकारकी इस कार्यवाही को, सद्भावना-प्रेरित वह जितनी भी क्यों न हो, न केवल अपने स्वार्थोंके लिये, पर संसारकी शान्तिके लिये भी गम्भीरतम खतरोंकी सम्भावनासे पूर्ण समझते हैं।

प्रतिपक्षके कुछ अन्य प्रवक्ताओंने श्री गैत्स्केलकी अपेक्षा अधिक खरी आलोचना की थी। प्रतिपक्षकी ओरसे अन्तिम भाषण करते हुए श्री ऐन्यूरिन बेवनने कहा कि सरकारकी ओरसे जो कुछ बताया गया है, उसका मतलब यही निकलता है कि जार्डनके शाहकी हालत इतनी पतली है कि विद्रोहकी सूचना पहले से प्राप्त हो जानेपर भी उन्होंने परिस्थितिका मुकाबला करनेके लिए अपने सैन्यबलको पर्याप्त नहीं पाया। श्री बेवनने जार्डनमें ब्रिटिश सैनिक भेजनेका तगड़ा विरोध किया। उन्होंने ऐसी स्थितिका उत्पन्न हो जाना सम्भव बताया, जिसमें ब्रिटेनके सैनिकोंको सोवियट सैनिकोंके विरुद्ध अधिकाधिक भिड़ना पड़े और जिसमें दोनों सत्ता-समूहोंकी प्रतिष्ठा अधिकाधिक उलझ जाए। यही कारण है कि हम पूरे हृदयसे यह आशा करते हैं कि अभी भी सरकार चेत जायेगी और उस स्थिति, जिसमें वह कूद पड़ी है, से अलग होनेकी कोशिश करेगी। हम प्रधान मन्त्री और सदनको यह बता देना चाहते हैं कि हमारी रायमें हमारे सैनिकोंको नाहक खतरेमें डाल दिया गया है और सरकारने जो कुछ किया है, वह ब्रिटिश जनताका हित-साधक नहीं बन सकता, दीर्घकालिक दृष्टिसे या अल्पकालिक दृष्टिसे ही। मत-विभाजन में ६३ के बहुमतसे सरकारकी जीत हुई। मतदानमें भाग न लेनेवालोंकी संख्या २० थी। (प्राप्त)

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'संकट'—लेखक, प्रो० हरिदत्त दूबे, एम० ए०; प्रकाशक, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।

यह लेखकका प्रथम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। विवाह पुरुष और नारीकी शाश्वत समस्या है। क्या स्त्रीको उसी पुरुषसे विवाह करना चाहिए, जिसे वह हृदयमें अहर्निश स्पन्दित करती रहती है? क्या स्त्री धनके प्रलोभनमें अन्य पुरुषको शरीरार्पण कर मनसे अपने प्रेमीके प्रति तरल रह सकती है? क्या पुरुष अन्यके प्रति आकृष्ट स्त्रीसे विवाह कर सुखी हो सकता है? आदि प्रश्न हैं, जो समाजको नित्य झकझोरा करते हैं। 'संकट'में इन्हीं प्रश्नोंका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। उसकी नायिका मनोरमा निम्न-मध्यम श्रेणीकी तरुणी है, जिसका अपने दूरके सम्बन्धी तरुण किशोरसे परिचय है, क्योंकि वह उसीके पड़ौसमें रहता है। मनोरमा उसकी माँको चाची कह उसके घरके काम-काजमें थोड़ी-बहुत सहायता कर देती है। किशोर मनोरमाको मन-ही-मन प्यार करता है; पर उस प्यारको उसने अपनी अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की। मनोरमामें भी किशोरके प्रति यौवन-सुलभ कौतूहलका भाव अवश्य जागृत होता है; पर उसे स्निग्ध प्रेमकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। मनोरमाके घर मनोहर नामक साधारण श्रेणीका प्रतिभाशाली युवक किरायेपर रहने आता है। उसके साथ उसकी विधवा बहन सुशीला भी रहती है। मनोरमा मनोहरके पास अपनी पाठ्य-पुस्तकों-सम्बन्धी कठिनाइयाँ हल कराने प्रायः आती है। वह उसकी चारित्रिक महानता और बुद्धि-कौशलपर मुग्ध हो जाती है। उसकी वह मुग्धता गुणोंसे स्थानान्तरित होकर गुणीमें घनीभूत होने लगती है। किशोर और मनोहर में अभिन्न हृदयता थी। वास्तवमें किशोरने ही मनोहरको मनोरमाके गृहमें स्थान दिलाया था। मनोरमाकी माता अपने पतिसे मनोहरके शील-व्यवहारको देखकर उससे अपनी कन्याका विवाह प्रस्तावित करती है। किशोरकी माँ मनोरमा के रूप और गुणोंपर रीझ जाती है। वह अपने पतिको मनोरमाको अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करनेके लिए तैयार करती है। एक दिन किशोरकी माँ (रानी) अपने घर रामायणकी कथाका आयोजन करती है और मनोरमा तथा मनोहर आगतोंका स्वागत-सत्कारकर सभीके प्रशंसा-पात्र बनते हैं। किशोर मनोरमा और मनोहरका परस्पर सौहार्द देखकर ईर्ष्यासे जलने लगता है और उनसे बड़ी रुखाईके साथ पेश आता है। यहींसे संघर्षकी स्थिति पैदा हो जाती है। मनोरमा और मनोहर किशोरकी मनःस्थितिसे भलीभाँति अवगत हो जाते हैं। मनोरमाके मनमें किशोर और मनोहर के गुण-दोषोंकी तुलनाका व्यापार प्रारम्भ हो जाता है। मनोरमाने जब अपने हृदयको टटोला, तो उसे लगा, जैसे उसने किशोरका मानसिक वरण कर लिया था। इसीलिए उसने कथाके प्रबन्धको इस तरह हाथमें लिया था, मानों वह घरकी मालकिन ही हो। पर उस प्रबन्धके समय उसके भीतर जो उल्लास लहरा रहा था, उसका भी उसने विश्लेषण किया। क्या उसके मनमें किशोरकी सम्पत्तिमें अपनेपनका भाव था या मनोहरका सान्निध्य? अथवा दोनों? मनोहरके मनमें भी द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। मित्रके सुखमें बाधक क्यों बनें? मनोरमाका धनके प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है। उसने किशोरके मार्गसे हटनेका विचार कर लिया और मनोरमाके घरको छोड़नेके लिए तैयार हो गया। मनोरमा उसे रोकती है। वह कहती है, "आप मेरे कारण जा रहे हैं और यह आपका अन्याय है। मैंने क्या अपने-आपको बेच दिया है?" पर उसके अचेतन मनसे आवाज़ सुन पड़ती है, "मैंने अपने-आपको सचमुच बेच दिया है और इस क़ीमत पर।" फिर भी उसका चेतन, जो व्यावहारिक है, कहलाता है, "आपको एक वचन देना होगा; आप जायँगे नहीं।"

स्त्री भी एक पहेली है। मनोरमा धनके सुखको भी रौंदना नहीं चाहती और हर समय तर्कसे मनको समझाकर किशोरको वरना चाहती है। साथ ही मनोहरके स्निग्ध सम्पर्कसे वह उसकी भी बनी रहना चाहती है। पर समाज द्रौपदियोंकी पुनरावृत्तिको मान्यता नहीं देता। गुप्ताचारको भी वह गर्हित समझता है। यदि मनोरमाको धन और मनोहर दोनोंकी प्राप्ति हो जाय, तो वह सन्तुष्ट हो सकती है। यह प्रसंग किशोरके त्यागसे सम्भव हो गया। किशोरके साथ मनोरमाके विवाहकी चर्चा जब शहरमें फैली, तो वहींके एक पुलिस अफसरने किशोरको मनोरमासे विरक्त करनेका एक षड्यन्त्र रचा। मनोरमाको उसकी कन्याके जन्म-दिवसोत्सवमें बुलाया गया और जान-बूझकर विलम्बसे रातके समय ताँगेमें भेजा गया और उसके साथ गुण्डे लगा दिये गये। मनोहर मनोरमाके आनेमें विलम्ब देखकर पुलिस अफसरके घरकी ओर जाता है और मनोरमाके ताँगे का पीछा करता है। एकान्त स्थानमें गुण्डे मनोरमाको

अपमानित करनेकी चेष्टा करते हैं। मनोहर उसकी रक्षा करता है; पर ऐसा करनेमें उसे छुरेका घातक वार सहना पड़ता है। वह अस्पतालमें लाया जाता है, जहाँ किशोरके पिताके प्रभावसे उसके प्राण बच जाते हैं। यहींसे किशोरको विश्वास हो जाता है कि मनोरमाका हृदय उसके साथ नहीं, मनोहरके साथ है और वह घर छोड़कर भाग जाता है। वह अज्ञात स्थानसे पिताको अपनी आधी जायदाद मनोहरके नाम लिखकर उसकी और मनोरमाकी शादी सम्पन्न करानेका आग्रह करता है। पिता पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिए उसकी इच्छा पूरी करता है। मनोरमा और मनोहर विवाह-सूत्रमें बँधकर किशोरके घरमें ही रहने लगते हैं। इसमें किशोरका त्याग चरम सीमापर पहुंच जाता है।

उपन्यासमें प्रेमका उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया गया है। प्रेमियोंके सम्भाषणों तथा आचरणोंमें कहीं भी सामाजिक मर्यादाका स्खलन नहीं पाया जाता। सारा वातावरण एक संस्कारितासे उच्छ्वसित है। सुहागरातके दृश्यमें भी भुजाएँ युग्म नहीं होतीं, अधर सिक्त नहीं होते, शब्द नियताश्राव्य नहीं होते। इतनी सात्त्विकता प्रेमाख्यानक उपन्यासोंमें क्वचित् ही उपलब्ध होती है, कदाचित् नहीं ही होती। पात्रोंके अन्तरमनके रहस्योंको बड़े कौशलसे उद्घाटित किया गया है। ज्यों ही किशोरको ज्ञात होता है कि मनोरमा उसे नहीं, उसके धनको चाहती है, वह अपनी वासनाका उदात्तीकरण कर देता है; अपने प्रतिद्वन्द्वीको अपने समान ही धनी बनाकर उसे अपनी काम्यवस्तु (मनोरमा) को सौंप देता है। एक बात जो सजग पाठकका ध्यान खींचती है, वह यह है कि प्रायः सभी पात्र तार्किक हैं; प्रत्येक समस्याको तर्ककी कसौटीपर कसनेके उपरान्त जो निश्चय करते हैं, उसपर आरूढ़ रहते हैं। दूसरी बात है, प्रायः सभी पात्रोंका प्राञ्जल-भाषा-प्रयोग। मनोरमाके पिता हँसोड़ प्रकृतिके पुरुष हैं। अपनी धुनमें अत्यन्त सामान्य शिक्षा-स्तरकी पत्नी, यशोदा, से कभी-कभी अंग्रेजी अनूदित हिन्दीमें भाषण करने लगते हैं। अन्य पात्रोंके संवादोंकी भाषाकी भी यही स्थिति है। काश, सभी पात्रोंका स्तर शिक्षा-संस्कार-समन्वित होता! इतना होनेपर भी कथा-प्रवाह रसस्रावी बना रहता है। सच तो यह है कि इस उपन्यासमें मनोविज्ञानमें कथा समाई हुई है और कथामें मनोविज्ञान। लेखकका यह प्रथम उपन्यास उसके सुन्दर भविष्यकी सुखद घोषणा है।

—विनयमोहन शर्मा

ब्रिटेनका संविधान—लेखक, योगेन्द्र मलिक; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, देहली-६

श्री योगेन्द्र मलिककी पुस्तक 'ब्रिटेनका संविधान' प्रारम्भिक अध्ययनके लिए अच्छी पुस्तक है। विषय-सामग्री को वैज्ञानिक व सरल ढंगसे रखनेका प्रयास किया गया है, परन्तु शैलीसे अनुवादका आभास अधिक होता है, मौलिकता कम। साथ ही अध्ययनका दृष्टिकोण तुलनात्मक और आलोचनात्मक नहीं है। इस कारण यह पुस्तक गम्भीर अध्ययनमें सहायता नहीं दे सकती। मन्त्रिमंडलकी तानाशाही, लार्ड्स सभाकी आलोचना तथा सुधार, मन्त्रियों तथा कर्मचारियोंके पारस्परिक सम्बन्ध, राजतन्त्रके इग्लैंडमें अबतक बने रहने जैसे विवादग्रस्त विषयोंपर पुस्तकमें अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है। संक्षेपमें यह पुस्तक केवल प्रारम्भिक विद्यार्थियोंके लिए प्रवेशिकाके रूपमें ही उपयोगी है, और संभवतः लिखी भी उनके लिए ही गई है। इस दृष्टिसे यह पुस्तक अपने उद्देश्यमें सफल प्रतीत होती है; किन्तु फिर भी यदि अध्ययनमें तुलनात्मकता तथा आलोचनात्मक विवेचन होता, तो पुस्तक वास्तवमें सुन्दर बन जाती। छपाई तथा गेट-अप बहुत बढ़िया है। —डा० इकबालनारायण

उत्तरीय संगीतशास्त्र (सजिल्द)—लेखक, पतंजलदेव शर्मा : प्रकाशक, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६; मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों तथा प्रारम्भिक जिज्ञासुओंके लिए लिखी गई है, और हम यह आरम्भमें ही कह देना चाहते हैं कि इस उद्देश्यमें लेखकको पूर्ण सफलता मिली है। हिन्दीमें संगीत-विषयक आधिकारिक तथा विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की भारी कमी है। सस्ते 'स्वयंशिक्षक' तो तमाम भरे पड़े हैं, किन्तु अच्छी सरल शैलीमें लिखी गई शास्त्रीय पुस्तकें बहुत कम मिलती हैं। जो हैं, उनकी छपाई, गेट-अपकी कोटि निम्न है। इस पुस्तकमें ये दोष नहीं हैं। साफ छपाई, सरल भाषा तथा क्रमपूर्वक लिखी गई यह पुस्तक प्रारम्भिक जिज्ञासुओंके लिए उत्तम है।

विवादग्रस्त विषयोंके प्रत्येक पक्ष तथा मतका विवेचन है और निष्कर्ष युक्तियुक्त हैं। विशेषकर रागवर्गीकरणके विषयका विवेचन बहुत अच्छा है। 'रागोंका समय-सिद्धान्त' नामक विषय यदि कुछ और विस्तृत होता तो अच्छा था, किन्तु स्थानाभावके कारण संभवतः लेखक अधिक नहीं लिख सके हैं। 'गायनोंका प्रकार-भेद' नामक प्रकरण भी विद्वत्ता पूर्ण है।

पुस्तकान्तमें प्रसिद्ध संगीतज्ञोंका संक्षिप्त परिचय है, जो इस छोटे-से ग्रन्थको पूर्णता प्रदान करता है। लेखक तथा प्रकाशकको बधाई है।

'धरतीके बोल' (सुन्दर पट्ठेकी ज़िल्दके साथ तथा सचित्र)—कवि, श्री जयनाथ नलिन; चित्रकार, योगेन्द्रकुमार लल्ला; प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६; मूल्य, ३ रु० ५० नये पैसे।

"हिन्दी-कविता वादोंके नये-नये बच्चे देनेमें सम्भवतः बहुत उर्वरा है। अधिक बच्चे जननेवाली नारीका सौन्दर्य और स्वास्थ्य जैसा हो, वैसा ही हिन्दी-कविताका भी हो, तो पछतावा क्या?"

उपर्युक्त कथन नलिनजीकी स्वतन्त्र तथा रूढ़िमुक्त प्रकृति का प्रमाण है। आजके वादके खूँटेसे बँधे, कीड़ोंके समान किलबिलाते, असंख्य कवियोंसे स्वतन्त्र गायक नलिनजी बहुत ऊँचे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्रस्तुत संग्रहमें कविके परम मधुर ४८ गीत संग्रहीत हैं। प्रत्येक (हाँ प्रत्येक) गीत अनुभूतिकी तीव्रता तथा अभिव्यक्तिकी सशक्तताका प्रतीक-सा है। जीवन-मंथन तथा चिन्तनसे उद्भूत दार्शनिकताके साथ-साथ इन गीतोंमें "धरतीकी प्रकृत गन्ध है।" जैसा कि भूमिका-लेखक आचार्य विनयमोहन शर्माने लिखा है, इन गीतोंमें "धरतीके रूप, रस, गन्धके अतिरिक्त भी बहुत-कुछ है, जो मुखर न होकर भी संवेद्य है।"

गरल दंशन-सा सहसा आज
टीस उठता - उठता वातास
नहीं यदि प्राण प्राणके पास
आह कैसा मधुमास विलास।
बहे जाते हैं आकुल प्राण
कि जैसे चंचल शैल प्रपात। (पृ० १०)

विरही मनकी घुटनका प्रकृति (उद्दीपनके कारण) के माध्यमसे परम सरस रूपक है, इस प्रकारके भावपूर्ण स्थलोंसे संग्रह भरा पड़ा है। इसी प्रकार 'मेघ-सन्देश' (पृ० १७) में विरहिणीका भाव-चित्र कविने बड़े कौशलसे उतारा है। यद्यपि अधिकांश कविताएँ विरह-गीतोंके रूपमें हैं, किन्तु बीच-बीचमें कविके कर्मठ मनका ओज निखर-निखर उठा है—

रक्त मेरे चरणका—
पगडण्डियोंकी माँगका सिन्दूर बनता,
कर चुका मैं जिन्दगीकी विषम कितनी बाट पूरी। (पृ० २०)

ये तीन पंक्तियाँ ही अपने-आपमें विशाल भाव-सौन्दर्य तथा प्रेरक दृढ़तासे सराबोर हैं। इस प्रकारके असंख्यों भाव-रत्न संग्रहमें बिखरे पड़े हैं, जिनमें भाषा तथा भावका एकान्त सहयोग दृष्टिगोचर होता है:—

बिजली-सी सहसा कौंध गई
कितनी जवानियाँ रौंध गई
दुर्घटना-सा आगमन, आह-सा क्षिप्रगमन।
(पृ० २३)

'दुर्घटनाका आगमन' तथा 'आह-सा क्षिप्रगमन' वर्णन-कौशल लाजवाब है। इसी प्रकार:—

"घाटीके थाम किनारे, संध्या सुरा पी रहा प्यासा तम।"
(पृ० ३४)

जहाँ एक ओर सूची-भेद्य अन्धकारके समान निराशाके घटाटोप आवरणमें व्याकुल विरही मनकी यह कराह है:—

दर्दकी तसवीरमें घन रंग बनकर भर गये बादल।
मर्म मेरा अधपका-सा और भी तर कर गये बादल।
चातिकीके स्वर तड़पते आम्र-काननमें—
आज उसके वास्ते बेपीर निर्जल भर गये बादल।
नीड़ में मेरे जमा दमघोट सूनापन।
(पृ० ९५)

वहीं दुखी दिलकी यह तसवीर भी है, जो कि परोपकार के साथ-साथ मुश्किलोंसे लड़नेकी प्रेरणा देकर 'आदमी' की परिभाषा बन जाती है:—

पलकोंकी बगियामें फूलों-सी महक रहीं रातें सूनी।
जो आग पचाकर जी न सके,
प्राणोंके रेशम तारोंसे जो जोड़ न पाये फटे जिगर,
जो घाव किसीके रिसते दिलके सी सके,
वह क्या जीता? (पृ० १०५)
जो चूम न ले विषकन्याके कस गरल-गाल।

इसके अतिरिक्त संग्रहमें वर्तमानके प्रति असन्तोष, पाखंड के प्रति क्रूर व्यंग तथा सुधारकी ओर कोमल इंगित भी पाये जाते हैं, किन्तु हैं वे समझनेवालोंके लिए ही:—

कौन समझे घायल धरतीकी रिसती पीर।
चीखते हैं 'धरतीके बोल', कलेजा चीर॥ (पृ० ११६)

आजके खुशामदी-अवसरवादी-पेट-पूजक साहित्यिकोंपर व्यंग तथा आजके नेता तथा विद्यार्थियोंकी बालविकतापर संकेत ('तीन तस्वीरें') भी सुन्दर बन पड़े हैं। खासकर समाज-सिरताजका यह चित्र देखिये:—

बिल तंग गुड़गड़ीकी नलकी-सा
और पेट कितना विशाल !
इसमें मानवताका मरघट
यह जायँ हजम कर लाखोंका घर-बार-माल !
× × ×
इनकी पगड़ीके पेचोंमें,
बन्दी गाँधीकेप, चप्पलें कुर्ते, बंडी । (पृ० ५३)

आजकी आज़ादीमें दरिद्रकी अवस्थामें कोई परिवर्तन हीं हुआ है। शोषितका शोषण हो ही रहा है, हाँ, ोषककी गद्दी तथा उसके रक्षक बदल गये हैं :—

स्वाधीन वतन—
रैयतकी कमरें झुकीं, हुजूर सलाम वही।
स्वाधीन वतन—
पोलीसके मुँहपर 'साले-नमकहराम' वही।
पी तिरस्कार, मैं तो हूं आज गुलाम वही।
(दीनूका सपना, पृ० ३८)

"इन गीतोंमें संगीतकी साँस है तथा ये अतुकान्त नहीं । प्रायः प्रत्येक कवितामें अपने ढंगकी बन्द है, इसलिए नमें नूतन और पुरातन दोनों गुण विकसित हुए हैं।" त्येक गीत परम गेय है तथा उसकी कला गोरी सुराहीदार र्वनमें पड़ी एक लटवाली सोनेकी जंज़ीरके समान उसे अलंकृत ो करती है, पर आवरित अथवा बोझिल नहीं बनाती।

हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि इस वर्ष जितनी ी कविताकी पुस्तकें हमें देखनेको मिली हैं, उनमें यह र्वश्रेष्ठ है। प्रत्येक गीतके साथ परम भावपूर्ण तथा कलात्मक चित्र हैं, जो संग्रहको और भी आकर्षक बना देते हैं।

छपाई, गेट-अप उत्कृष्ट कोटिका है। प्रकाशक महोदयको ारी हार्दिक बधाई है। आशा है, नलिनजी जैसे मूक तथा पब्लिसिटी-शाई' भाव-साधककी और रचनाएँ प्रकाशक हमें ीघ्र ही देंगे। —रमेशकुमार शर्मा

मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण'—(भाग १ से ४ तक); लेखक, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बंबई; मूल्य, भाग पहला-दूसरा साढ़े चार रुपया; भाग तीसरा-चौथा तीन रुपये; पृष्ठ-संख्या भाग पहला-दूसरा ३२८, भाग तीसरा-चौथा १८८। छपाई साफ; गेट-अप सुन्दर और आकर्षक।

आलोच्य ग्रन्थ दो पुस्तकोंमें है। प्रत्येक पुस्तकके दो भाग हैं। प्रथम भाग अकबरके राज्यारोहणसे औरंगजेबके राज्यारोहण तक है, दूसरा भाग औरंगजेबके राज्यारोहणसे शिवाजीके अवसान तक है। तीसरा भाग साम्राज्यके कब्रिस्तानमें सम्भाजीके मुगल कैदखानेसे छूटकर आनेसे लेकर सैदयोंके अधःपात तक और चौथा भाग मराठोंकी शक्ति-संचयसे पानीपतका युद्ध और उपसंहार तक है।

विषयकी दृष्टिसे लेखकका यह विभाजन बड़ा सुविधाजनक है। आलोच्य ग्रन्थमें लेखकका एक ही उद्देश्य है और वह है मुगल साम्राज्यके क्षयके कारणोंका विश्लेषण और विवेचन करना। इसके लिए यह आवश्यक था कि पृष्ठभूमिके रूपमें ग्रन्थको अकबरके राज्यारोहणसे ही प्रारम्भ किया जाय। अकबरने ही मुगल साम्राज्यकी नींव डाली और उसीके राज्यकालमें शहजादा सलीमके विद्रोहने मुगल साम्राज्यके क्षयके कारणोंका बीजारोपण किया, जो औरंगजेब और उसके बाद फला। पानीपतके युद्धके पश्चात् मुगल साम्राज्यका अस्तित्व केवल नामका ही अस्तित्व रह गया था। अतएव लेखकका अपने ग्रन्थका यह विभाजन सुविधाजनक तो है ही, साथ ही उचित भी है।

"इतिहास" अनेक तथ्योंका गुम्फित रूप है। तथ्य अपने में सरस और नीरस दोनों होते हैं। तथ्यों की सरसता और नीरसता उसके कथ्यपर निर्भर है। "इतिहास एक नीरस विषय है", ऐसे मतवालोंको इन्द्र विद्यावाचस्पतिजीका 'मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' पढ़ना चाहिये। इतिहास के तथ्य कितने सरस रूपमें प्रस्तुत किये जा सकते हैं, इसका अपूर्व उदाहरण आलोच्य ग्रन्थ है।

'मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' में उपन्यास जैसी सरसता तो है ही, पर इसके साथ जो नये तथ्योंकी उद्भावना और उनकी ओर संकेत है, वह प्रशंसनीय है। जैसे औरंगजेब जैसे शुष्क व्यक्तित्ववाले शहज़ादेका हीराबाईसे रोमांस, अकबरकी मृत्युका कारण, दाराशिकोह और औरंगजेबके मध्य गृह-युद्धकी अनेक घटनायें, स्वयं दाराशिकोहके जीवनकी अनेक विशेषतायें, मराठाओंके उदयकी अनेक घटनायें—ये तथ्य ऐसे हैं, जिनकी ओर विशेष ध्यान देनेके लिये इतिहासकारोंको विद्यावाचस्पतिजीने मार्ग बता दिया है।

आलोच्य ग्रन्थ न तो विद्यार्थियोंको परीक्षामें उत्तीर्ण कराने की दृष्टिसे लिखा गया है और न इतिहासके विद्वानोंके सामने कोई शोध प्रबन्ध रखनेकी दृष्टिसे। स्वयं लेखकके

शब्दोंमें "यह ग्रन्थ आम जनताके लिये लिखा गया है, इस कारण इसे आधारभूत ग्रन्थोंके नाम-निर्देशों और टिप्पणियों से भारी और दुरूह बनानेका यत्न नहीं किया गया।" इस दृष्टिसे यह एक सफल ग्रन्थ है। एक साधारण पाठक इसे उसी रुचिसे पढ़ेगा, जैसे उपन्यास और साथ ही उतना ही ज्ञान अर्जित कर सकेगा, जितना किसी गम्भीर शोधपूर्ण इतिहासके ग्रन्थको पढ़कर करता।

ग्रन्थ लिखनेमें लेखकका केवल एक उद्देश्य है कि "मुगल-साम्राज्यके क्षयकी कहानी द्वारा उन सिद्धान्तोंको प्रकट करना जो राज्योंके उदयास्तके मूल कारण होते हैं।" इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये लेखकने अपना एक दृष्टिकोण बना लिया है और यह निश्चित है कि उस दृष्टिकोणसे कुछ लोगोंका बहुत-से स्थानोंपर मतैक्य नहीं होगा; यथा बैरामखाँके विषयमें जो लेखक का दृष्टिकोण है, वह सर्वमान्य नहीं है। बैरामखाँके प्रति एक सहानुभूति दृष्टिकोण भी है। उसकी खामियोंका समुचित समाधान भी है। मुगल साम्राज्यका स्वामिभक्त सेवक निरादरका पात्र नहीं। इसी प्रकार अनेक स्थानोंपर पाठकका लेखकसे मतभेद संभव है। पर इसके लिये लेखकने स्वयं स्पष्ट कर दिया है—"यदि किसी घटनाके सम्बन्धमें इतिहास-लेखकोंमें दो मत हैं, तो उनमेंसे लेखकको जो ठीक जँचा है उसे स्वीकार कर लिया गया है।" यह युक्तियुक्त ही है।

लेखक अपने मन्तव्यमें पूर्ण सफल रहा है। ग्रन्थकी भाषा, शैली, इतिहासके ग्रन्थोंके लिये संभवतः नया प्रयास है। हिन्दीमें इतिहासके तथ्योंको इतनी रोचकतासे प्रस्तुत करनेकी बड़ी आवश्यकता है। हम लेखक और प्रकाशकको "मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण" के द्वितीय संस्करणपर बधाई देते हैं। छपाई, गेट-अप बहुत उत्तम।

—राजेन्द्र कुशवाहा

'आरती और अंगारे' (सजिल्द तथा जेकिटके साथ) : कविवर बच्चनके १९५०-५७ में लिखे १०० गीतोंका संग्रह; प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मूल्य—चार रुपये, (नरेन्द्र श्रीवास्तव रचित सुरुचिपूर्ण आवरण-चित्र के साथ)

आरम्भमें बच्चनजीने 'अपने पाठकोंसे' कहा है कि प्रत्येक कविको अपने पाठकों और श्रोताओंका एक वर्ग तैयार करना पड़ता है। हम निस्संकोच यह कहनेको तैयार हैं कि आज 'वादके खूँटों' से कवियोंको बाँधनेवाले इस युगमें कवि-प्रवर बच्चनके श्रोताओंकी संख्या संभवतः सबसे अधिक है। हम उनके पुराने भक्तोंमेंसे हैं और हमें इस बातका गर्व है कि हमारे कविने इसे एक बार (आरती और अंगारे) को छोड़कर हमें कभी निराश नहीं किया है। इस पुस्तकको पढ़कर हमें तो बड़ा धक्का लगा कि महान् गीतकार कवि बच्चनने इस प्रकारकी टँटपूजिया कविता कैसे छपवा दी! ऐसा लगता है कि बच्चनजीने इन सात वर्षोंके बचेखुचे माल की 'क्लियरेन्स सेल' कर डाली हो।

बच्चनजीने स्वयं शायद इसीलिए अपने इन गीतोंके विषयमें इतना अधिक 'अपने पाठकोंसे' कहा है! हम यह नहीं मानते कि गीतोंका युग बीत गया है, किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि 'किसी कविके ऊँचे' नामके सहारे उसकी रद्दी कृतियाँ नहीं छपनी चाहिए; ठीक है कि कविकी अनुभूति सर्वदा समान भावोन्मेषकारी नहीं होती, किन्तु क्या यह आवश्यक है कि बड़ा कवि जो भी लिखे, वह सभी कुछ छापा जाय? इस संग्रहका तीन-चौथाई माल नीलामी है।

'भारती और अंगारे' में एक विशेष भाव-क्रम पाया जाता है। वेदके निर्माता कवियोंसे लेकर संस्कृतके वाल्मीकि, कालिदास आदि कवियोंको, फिर हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजीके कुछ विशिष्ट कवियोंकी प्रशस्ति इसमें पाई जाती है! आरम्भके पच्चीस गीत इसी प्रकारके हैं। इनमें 'केशव' पर अनावश्यक छींटाकसी की गई है और गुप्तजीकोके चारणों समान प्रशंसा। महाकवि गुप्तजीको इसकी आवश्यकता नहीं है और 'केशव' की मर्यादापर इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके बाद कुछ मूर्तिकारोंका स्तवन है।

इनमें "ओ वेदोंकी स्वर्गीय गिराके नायक" तथा "पंडित-राज जगन्नाथकी तुमको याद दिलाता हूँ" कविताएँ सुन्दर हैं।

प्यार करा करते हैं पौरुषवाले, कीमत देते हैं।
जिस कारण काशीके पंडोंने उनको ठुकराया था,
ठीक उसी कारण उनको मैं बीच सभा अपनाता हूँ॥

'कबीर' विषयक कविता भी भावपूर्ण है, किन्तु उसमें 'हींजड़ा' का प्रयोग (पृ० ४५) कुछ जँचा नहीं।

कविने स्वयं कहा है कि प्रत्येक कविको अपने श्रोताओं और पाठकोंका वर्ग तैयार करना पड़ता है। बच्चनजी जानते हैं कि आज किसी भी कविके (गुप्तजीके भी नहीं) श्रोताओं और पाठकोंकी संख्या उतनी नहीं है, जितनी कि अपने समयमें 'केशव'के प्रशंसकोंकी थी—काल-प्रवृत्ति तथा अभिरुचि केशवके समयमें उसी प्रकारकी कविताको चाहती थी, इस बातको भूलकर आजके आलोचक प्राचीन कवियोंको अपने संकीर्ण साँचोंमें 'फिट' करना चाहते हैं। 'भारतेन्दु' विषयक कविता एकदम इतिवृत्तात्मक है।

इस संग्रहकी १०० कविताओंमेंसे १५ या २० में ही हमें अपने प्रिय गीतकार बच्चनके दर्शन होते हैं। बीसवाँ गीत (सिंहनी शिशुको देखकर जन्म, चल बसी थी जंगलमें एक) लय, भाव तथा प्रभावकी दृष्टिसे पूर्णरूपेण 'बच्चनित' है। 'वाल्ट डिज़्ने' की सीपिश-लाइनवाली कौमिक-स्ट्रिपकी कथाका बड़ा ही भावपूर्ण सहारा लिया गया है।

अरे! मैं भी तो सिंह सपूत
मुझे यों डरना था बेकार
और की उसने एक दहाड़
कि जिससे काँप उठा कान्तार।
हुई थी मेरे मनकी ठीक
वही हालत, जिस दिन जिस याम
निहारा था मैंने निज रूप
तुम्हारे प्यालेमें खय्याम
तुम्हारी मदिरासे जिस रोज
हुए थे सिंचित मेरे प्राण,
उसी दिन मेरे मुखकी बात
हुई थी अन्तरतमकी तान।"

इसी 'अन्तरतमकी तान' को हम बच्चनजीसे सुनना चाहते हैं—और सुनते रहे हैं।

चौबीसवाँ गीत "भारतकी सुत · " भी अच्छा है।

इसके बाद कविने अपने पूर्वजोंका तथा अपने जीवनका 'आत्मकथात्मक' सांकेतिक वर्णन किया है, जिससे कवि की भावभूमि तथा उसके जीवनके दर्शन तो हमें होते हैं, किन्तु सुन्दर कविताका मज़ा नहीं आता।

३९वाँ गीत 'बाल्य स्मृति' से युक्त है तथा भावपूर्ण है। "ई हमार करैज खाथै मोर बचवा" में सुन्दर भावचित्रका सृजन किया गया है। ४४वाँ गीत गद्यात्मक (प्रोज़ेक) है, रही है।

७६वें गीतमें 'तअज्जुब' का प्रयोग दूषित है। उर्दूकी 'एन' का उच्चारण केवल मात्रा-पूर्तिके लिये है। कोई भी भाषा अन्य भाषाओंके शब्दोंको हज़म करके ही महाप्राण बनती है। इस प्रकारके प्रयोग हिन्दीको 'बदहज़मी' करा देंगे।

गीत नं० ८० में अपने बच्चनजीकी झलक हमें फिर मिल जाती है—

अब दिन बदले, घड़ियाँ बदलीं
साजन आए, सावन आया
धरतीकी जलती साँसोंने
मेरी साँसोंमें ताप भरा
सरसीकी छाती दरकी तो
कर घाव गई मुझपर गहरा···

८३वाँ गीत अनावश्यक कटु आलोचना करनेवालोंपर सुन्दर व्यंग है—

यह कमलकी वास है दादुर
इसे पहिचान तू सकता नहीं है

गीत अच्छा है। इस संग्रहमें कमल वास ही कम है, 'दादुर' क्या 'भ्रमर' भी भूखा ही लौटेगा।

गीत ९२ में आत्मश्लाघाके दोषोंको दिखाया है। हम सर्वदासे मानते रहे हैं कि बच्चनजी आत्म-प्रशंसासे सर्वदा दूर भागते रहे हैं—यही नहीं, सब मानियोंमें जो पूर्ण कवि हैं, उनमें बच्चनजी तथा नवीनजीका नाम मूर्धन्य स्थानपर आता है, यह हमारा मत है।

इस संग्रहकी अन्तिम कविताओंमें भावोन्मेष अधिक है। आरम्भकी अधिकांश कविताएँ पत्र-पत्रिकाओंके लिए लिखी जानेवाली फरमायशी प्रयत्न-प्रसूत कविताएँ-सी लगती है। १०० मेंसे ३५ कविताएँ ही संग्रहके तथा कविके नामके योग्य हैं। हमारी बच्चनजीसे प्रार्थना है कि अपनी रस-सिक्त वाणीसे हम 'दादुरों' को सिंचित करें—क्या मालूम इस 'एटम' के युगमें 'दादुर' भी शायद कमल वासको समझने लगें। छपाई, तथा गेट-अप उत्कृष्ट कोटिका है।

—रमेशकुमार शर्मा

बाल-साहित्य

१. 'राबिन हुड', २, 'जादूनगरी' ('एलिस इन वण्डरलैण्ड' का अनुवाद); ३. 'वीर सिपाही' ('आइवन हो' का अनुवाद), तीनों सचित्र; रूपान्तरकार, श्रीकान्त व्यास; प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; मूल्य प्रत्येक का डेढ़ रुपया; प्रत्येक पुस्तक, चित्रित पट्टेकी ज़िल्दके साथ।

'राबिन हुड'—इन पुस्तकोंमें भी उनके गूल-लेखकोंका नाम नहीं दिया गया है। हमारा सुझाव है कि मूल-लेखक का नाम, चित्र तथा एक पन्नेका उसका परिचय, अवश्य होना चाहिए। इससे मनोरंजनके साथ-साथ बालकोंका ज्ञान-वर्धन भी होगा। तीनों पुस्तकें छपाई गेट-अपकी दृष्टिसे परम उत्तम हैं, किन्तु रूपान्तरकारका काम इस बार ढीला रहा है। लगता है, जैसे एक आदमीने अनुवाद नहीं

किया है ; अन्यथा 'फ़ायर टक' के लि० कहीं 'पादरी' (पृ० १०) और कहीं 'फ़कीर' (पृ० ९१) शब्दका प्रयोग न होता। 'नोटिंगहम' के स्थानपर 'नोटिंघम' अच्छा रहता। 'हिरण' (पृ० १२) के लिए या तो 'हरिण' अथवा 'हिरन' ठीक रहता। 'लिटिल जान' के स्थानपर 'छोटा जान' अधिक भावपूर्ण तथा प्रभविष्णु रहता। कथाकी अन्वतिमें भी कहीं-कहीं बाधा पड़ गई है। ह्विचर्डके अचानक प्रगट होनेका प्रसंग शायद ही बच्चोंकी समझमें आवे। कथाको संक्षिप्त करनेमें अन्य दोनों पुस्तकोंमें भी लापरवाही बर्ती गई है।

'जादूनगरी'—इस पुस्तकमें चित्रोंकी संख्या अधिक होनी चाहिए थी, चाहे वे दो-दो इंचके ही क्यों न होते, किन्तु प्रत्येक पृष्ठपर चित्र होना चाहिए था। 'अंगुश्ताना' (पृ० १९) जैसे शब्दोंका प्रयोग रुचिकर नहीं है। 'झिनगे' के स्थानपर 'भुनगा' चलता है (पृ० २५)। 'उचेस' तथा 'मार्च हेयर' के लिए 'बैसाखी खरगोश' का प्रयोग बच्चोंके पल्ले नहीं पड़ेगा। उसकी थोड़ी-सी व्याख्या होनी चाहिए थी। पृ० ३६ पर 'सुकड़' के स्थानपर 'सिकोड़' होना चाहिए था। एक ही पृष्ठ ६२ पर उसी पात्र (कछुए) के लिए एक स्थानपर 'नक्काल' तथा दूसरेपर 'नकली' का प्रयोग है। दोनों शब्दोंसे जमीन-आसमानका भेद हो जाता है। लगता है, लिखकर दुहराया भी नहीं गया है। पृ० ७३ पर जो चित्र है, वह पाठके अनुसार नहीं है। राजाके सिरपर 'विग' के स्थानपर मुकुट ही लगा है। कथाका मज़ा ही कम हो गया है इससे।

'वीर सीपाही'—बच्चोंकी पुस्तकें लिखना ही कठिन नहीं है, रूपान्तर करना भी कष्टसाध्य होता है। बालकोंको गलत तथ्य नहीं देने चाहिए। 'क्रूसेड्स' यहूदियोंके खिलाफ नहीं थे (पृ० ६)। इस प्रकारकी गलतियाँ बालकोंके ज्ञान में विष घोलती हैं तथा प्रकाशक एवं रूपान्तरकारकी प्रतिष्ठा में धब्बा लगाती हैं। 'हैट' हमारे यहाँ पुल्लिग है (पृ० १८), स्त्रीलिंग नहीं। पृ० ६ पर लिखा है कि युद्ध यहूदियोंके विरुद्ध था, पृ० २० पर ठीक बात लिखकर विरोधी कथनोंसे बच्चोंको भ्रमित कर दिया गया है। हमारे छोटे भाईने इस बातपर विरोध प्रकट किया था। 'ज़ोन' के स्थानपर (पुरुषके लिए) 'जॉन' का प्रयोग होना चाहिए (पृ० ३८)।

एक बात और है—चित्रोंमें ऐतिहासिक एवं देशकालके अनुरूप स्वाभाविकताका अभाव है। भोजनके दृश्यमें सम्मानीय मेजबान मूर्धन्य स्थानपर ('हेड आफ द टेबिल') होता है—ऐसी छोटी-छोटी (टेकनीकल) बातोंका ध्यान नहीं रखा गया है।

छपाई आदि बहुत उत्तम है, किन्तु रूपान्तरकारने सावधानीसे काम नहीं लिया है।

देहली लाइब्रेरी बोर्डकी पुस्तकें

१. **'डाकतार'**, २. **'संयुक्त राष्ट्र संस्था'**, ३. **'हमारा भारत'**, ४. **'हमारे बालक'**, ५. **'राष्ट्र-निर्माण और योजनायें'**, ६. **'दीमक'**, ७. **'सड़कें'**, ८. **'रेशमका कीड़ा'** ; मूल्य नं० ४ का १॥) ; नं० ३ का ८७ न० पै०, शेष सबका ६२ न० पै०; प्रकाशक, अत्तरचन्द कपूर एन्ड सन्ज़, दिल्ली।

(प्रत्येक पुस्तक सुन्दर मोटे आर्ट पेपरकी चित्रित जिल्द के साथ है तथा उसमें असंख्य साफ-सुथरे सुन्दर चित्र हैं, जिनके ब्लाक सफाईसे बनाये गये हैं।)

भारत-सरकार तथा यूनेस्कोकी सह-योजना, देहली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा तैयार की गईं ये पुस्तकें बहुत ही श्रेष्ठ कोटिकी हैं। विदेशी सहयोगकी गहरी छाप इनपर, सफाई तथा उत्कृष्ट गेट-अपके रूपमें, साफ-साफ़ नज़र आती है। छपाई नयनाभिराम तथा चित्र सुन्दर एवं भावपूर्ण हैं।

विषयोंका चुनाव हो नहीं, अपितु उनका निदर्शन भी बालकोपयोगी दृष्टिकोणसे किया गया है। स्थानाभावके कारण प्रत्येक पुस्तककी पृथक्-पृथक् समालोचना करनेमें तो हम असमर्थ हैं, किन्तु हम यह दावेसे कह सकते हैं कि ये पुस्तकें प्रत्येक स्कूलके वाचनालयमें अवश्य ही होनी चाहिए। इतिहास, जीव-विज्ञान, संस्कृति, विज्ञान आदि विषयोंसे बालकोंका ज्ञान-भण्डार वर्धित करनेके लिए ये पुस्तकें अद्वितीय हैं। मूल्य भी बहुत ही उचित एवं कम हैं। जन्म-दिवस आदिपर बच्चोंको भेंटमें देनेके लिए ये बड़ी सुन्दर हैं। विशेषकर 'हमारा भारत' पुस्तक तो बहुत ही अच्छी है।

पुस्तकोंकी भाषा बोधगम्य तथा शैली रोचक है। प्रकाशक, भारत-सरकार तथा यूनेस्को, को बधाई है। अन्य देशोंके विषयमें इसी प्रकारकी पुस्तकें भी यदि छापी जायँ, तो बड़ा उत्तम रहे।

× × ×

'लोक-कथाएँ' (पट्टेकी चित्रित जिल्दके साथ)—लेखक, द्रोणवीर कोहली ; मूल्य सवा रुपया (पुस्तक सचित्र है); प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन लि०, दिल्ली।

लेखक हिन्दीके अनुभवी लेखकोंमें से हैं, इस कारण

सरस, सरल भाषामें उन्होंने लोक-कथाओंका वर्णन किया है। पुस्तकमें छोटी-छोटी नौ कहानियाँ हैं तथा कुल ३२ पन्नोंकी यह पुस्तक मूल्यमें कुछ अधिक-सी प्रतीत होती है। कागज कुछ रद्दी-सा है, किन्तु छपाई साफ और सुन्दर है।

भारत-सरकारके प्रकाशन

पब्लिकेशन्स डिवीज़न सूचना एवं प्रसार मंत्रालयके प्रकाशन :—

१. **'गगन सवारी'** (कठपुतली नाटक)—मूल्य २० न० पै०।

यह एक नूतन दिशाकी ओर सराहनीय प्रयत्न है। इस छोटे-से नाटकमें, सांकेतिक सुधारवादी भावना तथा देशके विभिन्न भागोंके संगीत-संस्कृतिकी सूक्ष्म-सी झलक मिलती है। नाटक सुन्दर है, भाषाशैली बोधगम्य तथा सशक्त है।

२. **'हमारे राष्ट्र-गीत'**—मूल्य २५ न० पै०।

इस पुस्तकमें 'वन्देमातरम्' तथा 'जन-गण-मन' का उद्गम, अंगीकरण तथा व्यवहार दिया हुआ है, साथ-ही-साथ स्वर-लिपि भी है। राष्ट्रिय ध्वजके प्रयोगपर भी लिखा गया है। पुस्तक उपादेय है।

३. **'छोटी बचत योजना'**—मूल्य २५ न० पै०।

अपने विषयको जनता तक पहुँचानेमें समर्थ यह पुस्तिका जन-शिक्षण तथा राष्ट्र-निर्माणमें योग देगी।

४. **'द पुलिस इन इण्डिया'** (सचित्र)—मूल्य ४० न० पै०।

पुलिसका संगठन, इतिहास, उसके कार्यकरणकी विधि, उसके अफ़सर तथा जवान और उनकी ट्रेनिंग, पुलिस विभाग में खेल-कूद आदि विषयोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। सरकारकी दृष्टिसे पुलिसका यह विवेचन जनताके लिए शिक्षाप्रद तो होगा; किन्तु जब तक पुलिसका रवैया नहीं बदलता, तब तक यह पुस्तक कुतूहल एवं क्षोभ ही उत्पन्न करेगी जनताके मनमें।

५. **'मेट्रिक माप-तौल'**—खण्ड १, अंक १, जुलाई १९५८; मूल्य ४० न० पै०।

चित्रों और चार्टोंके माध्यमसे इस व्यवस्थापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। पुस्तिका प्रत्येक व्यक्तिको पढ़नी चाहिए, क्योंकि इच्छा अथवा अनिच्छासे सबको इसी व्यवस्था के अनुसार कार्य करना है। लेख सरल शैलीमें है तथा समझाकर लिखे गये हैं।

६. **'बाल-भारती'का कहानी विशेषांक** (जून १९५८)—मूल्य ३५ न० पै०।

आर्ट पेपरपर छपा सुरुचिपूर्ण चित्रोंसे चित्रित यह अंक बालकोंका और भी अधिक मनोरंजन कर सकता था, यदि कहानियोंके चुनावमें थोड़ी-सी सावधानी और बर्ती गई होती। कुछ कहानियाँ उपदेशात्मक भी होनी चाहिए थीं। कहानियोंकी भाषामें पंजाबीपन बहुत है।

७. **'कुरुक्षेत्र' का ग्रामोद्योग विशेषांक** (मई १९५८)—मूल्य २५ न० पै०।

अंक अच्छा छपा है, लेख भी सुन्दर है, किन्तु हमने इस पत्रको जनतामें प्रचलित होते नहीं पाया है। सरकारी संस्थाओंमें ही आता-जाता है। रूखे प्रचारकी मात्रा अधिक है।

८. **'आजकल' का वार्षिक अंक** (मई १९५८); मूल्य १)

भारत-सरकार द्वारा पाले गये अनेक सफेद हाथियोंमें इस भारी-भरकम प्रकाशनका अपना अलग स्थान है। वैसे तो बँधे हुए लेखकवर्ग तथा विषयोंको ही यह स्वीकार करता है, किन्तु यह अंक अच्छा निकला है। विशेषकर चित्रकलापर नगेन्द्र भट्टाचार्यका सचित्र लेख बहुत अच्छा है। इस अंकके एकआध लेखको छोड़कर अन्य सब उत्तम कोटिके हैं। सबसे अच्छी बात तो यह है कि इसमें जो पुस्तक-समालोचना है, वह निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र है। अंक संग्रहके योग्य है।

सेण्ट्रल हेल्थ एडुकेशन ब्यूरो, स्वास्थ्य मन्त्रालय, भारत-सरकार, नई दिल्लीके प्रकाशन

१. **'स्वस्थ हिन्द'** (अंग्रेजी), जून १९५८ का मलेरिया-अंक।

मलेरिया-निवारणमें भारत-सरकारके प्रयत्नोंसे जनताको अवगत करानेके लिए यह अंक अच्छा है। साथ-ही-साथ इसमें मलेरियाके विषयमें जनताके ज्ञान-वर्धनका प्रयत्न भी है। अंक संग्रहके योग्य है।

२. **'कण्ट्रब्यूटरी हेल्थ स्कीम'**—इसमें सरकारकी इस स्कीमका वर्णन है।

वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित

'उद्योग व्यापार पत्रिका'—निर्यात विशेषांक, जुलाई १९५८; मूल्य ५० न० पै०।

अर्थशास्त्र एवं कामर्सके विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी यह अंक विदेशी व्यापारका विविध-रूप आभास देनेवाला है। 'विदेशी विनिमयका उपार्जन' तथा 'प्राचीन भारतमें निर्यात व्यापार' नामक निबन्ध बहुत अच्छे हैं। अनेकों चार्टों तथा 'टेबुलों' से युक्त यह अंक संग्रह करने योग्य है।

× × ×

'इन्सान' (जुलाई १९५८ का अंक)—आन्ध्र-प्रदेशसे निकलने वाला यह हिन्दीका छोटा-सा पत्र उस प्रदेशमें हिन्दी-प्रचार

का समर्थ साधन बन रहा है। संचालकोंको बधाई है। आशा है, हिन्दीवाले इस पत्रके प्रकाशनमें योगदान देंगे।

—रमेशकुमार शर्मा

वैदिक संस्कृतिका विकास (सजिल्द)—मूल-लेखक, लक्ष्मण शास्त्री जोशी; अनुवादक, डाक्टर मोरेश्वर दिनकर पराडकर; प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बंबई (साहित्य अकादेमी, नई दिल्लीकी ओरसे); पृष्ठ-संख्या ३६०; मूल्य पाँच रुपये।

इस पुस्तकमें पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशीके उन व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद है, जो उन्होंने सन् १९४९ में पूना-विश्वविद्यालयमें 'वैदिक संस्कृतीचा विकास' के नामसे दिये थे। इस प्रकारके व्याख्यानोंकी जो दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं, वे दोनों ही इसमें पाई जाती हैं—(१) संक्षिप्त विवेचन और (२) विद्यार्थियोंके लिए उपयोगिता।

इसमें लेखकने जिस दृष्टिसे वैदिक संस्कृतिका अध्ययन किया है, उसे उसने स्वयं ही प्रस्तावनामें स्पष्ट कर दिया है—"वर्त्तमान भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृतिका ही विकसित रूप है।" और यह सराहनीय है कि सम्पूर्ण पुस्तकमें लेखक की यही दृष्टि दिखाई देती है। लेकिन इस पूर्वाग्रहको लेकर चलनेसे एक दोष यह भी आ गया है कि लेखक अवैदिक मतोंके साथ न्याय नहीं कर सका, न उनका अपेक्षित विस्तृत विवेचन ही कर पाया है और न ही वैदिक संस्कृतिके साथ उसका पूर्ण सम्बन्ध ही स्थापित कर पाया है। साथ ही लेखक कहीं-कहीं ऐसे निष्कर्ष निकालता है, जिन्हें युक्तियुक्त एवं तटस्थ विवेचनका आधार प्राप्त नहीं है। एक उदाहरण देखिए :

"वैदिक तथा अवैदिक दर्शनोंकी एक संकलित महान संस्था है; अतएव यह निश्चित होता है कि सांस्कृतिक सहयोगकी दृष्टिसे क्या जैन, क्या बौद्ध और क्या वैदिक, तीनोंका वैचारिक अधिष्ठान एक ही है।" (पृ० २१९)

यह एक मत हुआ, जिसके लिए अपेक्षित विवेचनके विस्तारका अभाव है। बौद्ध दर्शन परिवर्तनको परम सत्य मानता है और वैदिक दर्शन अपरिवर्तनको। इस विरोधकी चर्चा तक नहीं है, उसके समाहारकी तो बात ही क्या है।

जैसा कि पुस्तकका नाम है, इसे देखते हुए यह आवश्यक था कि पृष्ठभूमिके रूपमें वेद-पूर्व कालकी चर्चा की जाती, क्योंकि आगेके विवेचनमें (जैसे शिवके विवेचन, पृष्ठ १५५में) उसका उल्लेख है।

कई स्थानोंपर कालका संकेत नहीं है, जिससे विवेचनका ऐतिहासिक पक्ष काफी कमजोर हो गया है।

जैन-दर्शनका विवेचन अपेक्षाकृत बहुत कम और अपूर्ण है। पाँचवें और छठे अध्यायके बीच बहुत बड़े काल भागका स्पर्श ही नहीं किया गया। पाँचवें अध्यायमें बौद्धों और जैनोंका विवेचन है और छठेमें आधुनिक भारतका। बीचका लगभग १५०० वर्षका काल गायब है। शंकराचार्य तथा वैष्णव आचार्योंकी साधनाका उल्लेख तक नहीं है।

आधुनिक युगकी संस्कृतिका विवेचन भी अत्यन्त संक्षिप्त एवं अपूर्ण है। यन्त्रके आगमनसे यहाँकी सांस्कृतिक परम्परा पर क्या प्रभाव हुआ, इसकी चर्चा ही नहीं है। श्री अरविन्द आदिके विचारोंका संक्षिप्त विवरण है, लेकिन उनका मूल्यांकन नहीं किया गया।

लेखकने अंग्रेजी शासनकी आवश्यकतासे अधिक प्रशंसा की है और उसके दोषोंकी ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। देखिये—"यही वह शासन था, जिसके उदार मतोंका पुरस्कार करनेवाले न्यायासनका सूत्रपात किया और आधुनिक ढंगकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको प्रधानता देनेवाले, सब धर्मोंके व्यक्तियोंको समान माननेवाले क़ानूनकी स्थापना की।" (पृष्ठ २६०)। जैसे जहाँ अंग्रेज नहीं पहुंचे, वहाँ कुछ विकास हुआ ही नहीं!

संस्कृतके मूल उद्धरण उसी पृष्ठपर होने चाहिए थे, जहाँ उनका उल्लेख है। बौद्धों और जैनोंसे सम्बद्ध मूल उद्धरण दिये ही नहीं गये।

कुछेक बातोंका अच्छा और वैज्ञानिक विवेचन है, जैसे संस्कृतिका सामान्य अर्थ (पृ० २-१०), यज्ञका विवेचन (पृ० २९, १७२), आत्मतत्व (पृ० ५९), ब्रह्म (पृ० ६४), धर्म, पुरुषार्थ (पृ० ९८) आदि।

विषय बहुत व्यापक है और पुस्तकका आकार बहुत छोटा है। इसी कारण कई कमियाँ आई हैं। पुस्तककी उपयोगिता इस बातमें है कि कम आकारमें भारतीय संस्कृति का सामान्य ज्ञान हो जाता है। आरम्भिक ज्ञानके लिए पुस्तक परम उपादेय है। छपाई साफ है, कागज यदि थोड़ा और अच्छा होता, तो गेट-अप सुन्दर बन जाता।

—तारकनाथ शास्त्री

'हिन्दी-गद्य-काव्य'—लेखक, डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'; प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन (प्राइवेट) लिमिटेड, दिल्ली; पृष्ठ-संख्या ३२८; मूल्य सात रुपये।

आलोच्य ग्रन्थ आगरा-विश्वविद्यालयकी पी-एच० डी० उपाधिके लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। पूरा प्रबन्ध सात अध्यायोंमें विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय है 'गद्य-काव्यकी परिभाषा'। इसके अन्तर्गत विद्वान लेखकने लगभग सभी उपलब्ध परिभाषाओंका विवेचन करनेके अतिरिक्त, व्यक्तिगत पत्रों द्वारा वियोगी हरि, वृन्दावनलाल वर्मा, सद्गुरुशरण अवस्थी, रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी', रघुवीर सिंह, भँवरमल सिंघी, कान्ति त्रिपाठी, दिनेशनंदिनी डालसिया, बालकृष्ण बलदुवा आदि ख्यातिप्राप्त गद्य-काव्यके लेखकोंके भी गद्य-काव्यकी परिभाषाके विषयमें विचार जान कर अन्तमें अपनी मौलिक परिभाषा देनेका प्रयत्न किया है। लेखकके अनुसार—"छन्द बन्धनरहित और इतिवृत्तहीन ऐसी भावपूर्ण कल्पना-प्रधान रचनाको गद्य-काव्य कहेंगे, जिसमें बुद्धि-तत्त्वको विशेष महत्व न दिया गया हो।" (पृ० ८)

दूसरा अध्याय है—'हिन्दी-गद्य-काव्यका इतिहास'। यहाँ लेखकने पुष्ट प्रमाणोंके आधारपर यह सिद्ध किया है कि हिन्दीमें गद्यकी यह विद्या बंगलासे न आकर स्वतन्त्र रूपसे ही विकसित हुई है। लेखकके अनुसार—"हिन्दीमें गद्य-काव्य की धाराका एक वह रूप आरम्भसे ही विद्यमान है, जिसको सर्वश्री गोविन्दनारायण मिश्र और बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सँवारा। यह संस्कृतकी 'कादम्बरी' की शैलीका अनुकरण करता हुआ हिन्दी-गद्यकी सालंकार और सानुप्रास भाषासे काव्यमय बननेमें समर्थ हुआ और गद्य-काव्यके कई लेखकोंने इस शैलीसे प्रेरणा ली।" (पृ० ३९)

लेखकने यह माना है कि "हिन्दी-साहित्यमें नवयुगके जन्मदाता भारतेन्दुकी ही गद्य-काव्यके प्रवर्त्तक होनेका श्रेय मिलना चाहिए। उनकी 'चन्द्रावली' नाटिका शुद्ध गद्य-काव्य है, जिसके समक्ष अनेक गद्य-काव्य फीके हैं।" (पृ० ४३)

तीसरा अध्याय है—'गद्य-काव्यात्मक कृतियोंका प्रवृत्ति-गत विभाजन'। इसके अन्तर्गत विद्वान लेखकने हिन्दी-साहित्यके सभी प्रवृत्तिमय गद्य-गीतोंका विश्लेषण करके अपना मौलिक विभाजन उपस्थित किया है, इससे आगे अध्ययन करनेवालोंके लिए बड़ी सुविधा होगा।

चौथा अध्याय है—'भाषा, अलंकार, रस और भाव-व्यंजना-शैलीके रूप'। लेखकने भाषा-शैलीकी दृष्टिसे शब्द-संगठन और प्रवाहके रूप-रेखा प्रस्तुत की है। प्रवाहके चार भेद किये हैं—(१) धारा, (२) तरंग, (३) विक्षेप और (४) प्रलाप। यह लेखककी अपनी सूझ है और उसके सूक्ष्म निरीक्षणका फल है।

पाँचवाँ अध्याय है—'गद्य-काव्य और मनोविज्ञान'। "हिन्दी-गद्य-काव्यसे उदाहरण देकर लेखकने उनमें फ्रायड और समसामयिक मनोवैज्ञानिकोंकी मान्यताओंकी खोज की है।" छठवाँ अध्याय है—'गद्य-काव्य और दर्शन। सातवाँ अध्याय उपसंहार है और परिशिष्टमें गद्य-काव्य के प्रमुख लेखकोंकी जीवनी और कृतित्वका परिचयात्मक विवरण है तथा परिशिष्ट (२) में लेखकको भेजे हुए गद्य-काव्यके प्रमुख लेखकोंके पत्र हैं।

सब मिलाकर हिन्दी-गद्य-काव्य हिन्दी-साहित्यकी एक महत्वपूर्ण, पर अभी तक सर्वथा उपेक्षित विद्याका बड़ा सफल अनुसन्धानात्मक अध्ययन है। ग्रन्थका आवरण बहुत सुन्दर और छपाई बहुत साफ़ है। लेखक अपने ग्रन्थके लिए और प्रकाशक इसके प्रकाशनके लिए बधाईके पात्र हैं, किन्तु मूल्य अधिक प्रतीत होता है। —राजेन्द्र कुशवाहा

वे जीते कैसे हैं ?—लेखक, पं० श्रीराम शर्मा, प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बंबई; छपाई सुष्ठु; मूल्य अढ़ाई रुपये।

यह हिन्दीके समर्थ लेखककी अपने विषयकी अनुपम कृति है। इसमें उसकी बीस रचनाएँ हैं; प्रत्येकका अपना शिल्प है—तर्जेबयाँ है। प्रत्येकमें मानो उसने अपनी आत्मा का रस उँड़ेला है। हिन्दीमें रेखाचित्र, आत्मकथा, संस्मरण लिखनेकी प्रवृत्ति इधर बढ़ती जा रही है, पर जो एकान्त तन्मयताके साथ 'वस्तु' में प्राणप्रतिष्ठा प्रस्थापित करनेकी क्षमता प्रस्तुत संग्रहकी कृतियोंमें परिलक्षित होती है, वह अन्यत्रा दुर्लभ है। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि संस्मरण और रेखाचित्राङ्कनके आदर्श रूपके यदि कहीं दर्शन होते हैं, तो "वे जीते कैसे हैं" में ही। पहला ही संस्मरण "स्मृति" हमें आश्चर्य और भयसे कँपा देता है। देहाती कुएँमें ग्यारह वर्षका बालक गिरी हुई चिट्ठियोंको उठानेके लिए जानबूझकर फुफकारते हुए साँपसे मुठभेड़ लेनेको उतरता है और बड़ी सतर्कतासे उसे झाँसा देकर चिट्ठियों सहित ऊपर आ जाता है! जीवन और मृत्युकी आँख-मिचौनी सचमुच पाठक को विस्मयमें डाल देती है। 'बोलती प्रतिमा' अत्यन्त करुण चित्र है। तेरह वर्षसे लगातार अस्थि-मात्र रोगी चारपाईपर पड़ा है। उसके शरीरने जवाब दे दिया है, पर उसकी आत्मिक शक्ति उसे जीवित रखे हुए है। उसकी भीतरी सभी इन्द्रियाँ सजग हैं। उसे विधि विधानमें बेहद आस्था है और इसीसे वह निश्चिन्त भावसे साँस ले रहा है। 'मौतके मुँहमें' शिकार

का चित्र है, जिसमें आशंका, आशा और निराशाके अस्तोदय की झलकियाँ हैं। 'दीनबंधुके अंतिम दिन' में भारतबंधु सी० एफ० एन्ड्रूजके अंतिम क्षणोंकी पवित्र झाँकी है। एन्ड्रूजके हृदयमें भारत और भारत-प्रेमी देशभक्तोंके प्रति कितनी ममता और कितना आदर था, इसका आभास इसमें मिलता है। 'तमाखू लाओ' ठगोंकी रोचक कहानी है। किस प्रकार मध्य युगमें ठग अपने शिकारको येनकेनप्रकारेण फाँसकर उसका अंत किया करते थे, इसका इसमें सजीव वर्णन है। 'स्वर्गीय आसामी बाबू' एक क्रांतिकारीका चित्र है। स्वाधीनता-संग्राममें जिन अनेक अनुल्लिखित वीरोंने अपनी आहुति दी है, उनमें आसामी बाबू भी एक हैं। लेखकने इन्हें रेखाङ्कित कर अमर बना दिया है। 'चंदा' जमींदारी-प्रथासे उत्पीड़ित पात्र है। कदाचित् उसीके शापका परिणाम है कि जमींदारीका उन्मूलन हो गया है। पर आज भी जगह-जगह दूसरोंके लिये अपना 'रक्त-दान' देनेवाले भूखे 'चंदाओं' की कमी नहीं है। 'पीताम्बर' एक निस्स्वार्थी आदर्श बैदाका चित्र है। 'स्व० रफी अहमद किदवई' में उनकी महान देशभक्तिका उद्घाटन हुआ है। वे साम्प्रदायिकताके घोर शत्रु थे। उन्होंने देशको अनेक संकटोंसे बचाया है। 'नयना सितमगर' में घड़ियालके शिकारका रोचक वर्णन है। 'स्वर्गीय राजा बहादुर रुस्मांगद सिंह' और और 'स्वर्गीय कुंवर साहब' दो लक्षीपति देशभक्तोंके रेखाचित्र हैं। लेखक जहाँ भी, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, उच्च मानवता और देशभक्तिका अंश देखता है, भाव-विभाव हो उठता है और बिना किसी संकोचके उसके प्रति अपनी भावाञ्जलि अर्पित कर देता है। 'इदन्नमय' रूसी क्रांतिकारी पुश्किनकी बड़ी ही प्रभावशाली हृदयभेदी कहानी है। क्रांतिकारियोंके साहसको सचमुच कोई सीमा नहीं, जो अपने प्राणों को हथेलीमें लेकर उछालते चलते हैं, उनके लिये कुछ भी अकरणीय नहीं। अंतिम चित्रमें निकटस्थ आत्मीयोंसे बिछुड़ने पर अत्यन्त बूढ़ोंकी पूर्ण मनोदशाका वर्णन कर लेखक पूछता है—'वे जीते कैसे हैं?'

पुस्तकके सारे 'चित्रों' की भाषा सहज गतिसे प्रवाहित होती है, कहीं वह आवेशपूर्ण हो जाती है और कहीं शरत्कालीन सरिताके समान प्रशांत। एकमें भावुकता और दूसरीमें चिन्तनका प्राधान्य हो जाता है। परंतु, दोनों अवस्थाओंमें वह पाठकको अपनी ओर खींचती जाती है। मेरा विश्वास है, पाठकोंका इससे निश्चय मनोरंजन होगा। हिन्दी के लेखकोंको इससे कलापूर्ण संस्मरण और रेखाचित्र लिखनेकी प्रेरणा प्राप्त होगी। —वि० मो० शर्मा

संस्कृतसे अनूदित

१. **'दशकुमार चरित'** (महाकवि दण्डीके उपन्यासका हिन्दी-रूपान्तर)—मूल्य तीन रुपये। २. **'मुद्राराक्षस'** (विशाखदत्तके नाटकका अनुवाद)—मूल्य दो रुपये; दोनोंके अनुवादक, डा० रांगेय राघव, प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; दोनों पुस्तकें पट्टेकी चित्रित जिल्दके साथ।

यथार्थवादकी निर्मम अभिव्यक्ति तथा चुटीले व्यंगों एवं मजाकके लिए प्रसिद्ध 'दशकुमार चरित' का संस्कृत-साहित्यमें अपना एक विशिष्ट स्थान है। रूपान्तरकारने संस्कृतके भावों की सफल रक्षा की है तथा यत्रमें प्रवाह भी उपस्थित किया है। आरम्भकी भूमिकामें अनुवादकने यह माना है कि 'काव्यादर्श' के लेखक दण्डी और 'दशकुमार चरित' के लेखक दण्डी भिन्न व्यक्ति है! इस कथनके लिए कोई पुष्ट प्रमाण उपस्थित करनेमें अनुवादक महोदय असफल रहे हैं। 'दण्डिन'का प्रयोग अशुद्ध न होते हुए भी 'दण्डी' के समान अच्छा नहीं लगता। कवरको छोड़कर सब स्थानोंपर अनुवादकने 'दशकुमार चरित' का प्रयोग किया है। 'दशकुमार चरित' होना चाहिए था। अनुवादक महोदयने अनुवाद बड़े परिश्रमसे किया है, इसका प्रमाण है उनकी लिखी भूमिका तथा उसमें वर्णित अन्य अनुवादोंके दोष। पं० निरंजनदेव विद्यालंकार, श्रीराम तेज शास्त्री तथा श्री केदारनाथ शर्मा प्रभृतिके अनुवादोंमें डा० रांगेय राघवको क्या-क्या दोष मिले हैं, इसका उन्होंने विस्तृत विवेचन किया है। अनुवादमें प्रवाह तो है; किन्तु कहीं-कहीं अनावश्यक रूपमें सरलता प्रदान करनेका प्रयत्न करके उसे हलका बना दिया गया। "बहानोंसे मुड़कर देखा, कि दिल फेंक गई" (पृ० १६९)। 'दिल'के स्थानपर 'हृदय'का प्रयोग (जैसा कि इस पृष्ठपर अन्यत्र सर्वदा किया गया है), अनुवादको अधिक प्रभविष्णु बनाता।

'मुद्राराक्षस'के अनुवादके पूर्व भी अनुवादकने एक भूमिका दी है। यह भूमिका 'दशकुमार चरित' की भूमिकासे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इसमें प्रस्तुत नाटकका पूर्ण तथा अति सुन्दर विवेचन किया गया है। नाटकमें स्त्री-पात्रोंका लगभग अभाव है, फिर भी इसकी रोचकतामें कमी नहीं आती। इस गुणके कारण अनुवादकने इसकी तुलना 'जूलियस सीज़र' से की है। नाटकमें राजनैतिक षड्यन्त्रोंका आधिक्य है।

ये षड्यन्त्र नाटककी रोचकताको अन्त तक बनाये रखनेमें सहायता पहुंचाते हैं।

'मुद्राराक्षस' का भारतेन्दुका अनुवाद गद्य तथा पद्य दोनोंमें था—यह अनुवाद पद्यके स्थानपर भी गद्यका प्रयोग करता है। इस कारण इसमें समयानुरूपता तो आ ही जाती है—स्वाभाविकताका संचार भी हो जाता है। इस बुद्धि-प्रधान नाटकने देशी भाषाओंके अनेक मौलिक नाटकोंको प्रभावित किया है। डा० रांगेय राघवका यह सफल अनुवाद अब तकके सब अनुवादोंसे उत्तम है। इसमें पद्यका एकमात्र अभाव नहीं है। पृ० ६९ पर वैतालिकोंका एक सुन्दर गीत दिया गया है, जो वातावरणानुरूप है। अनुवादमें मूलकी आत्माकी सुन्दर रक्षा ही नहीं की गई है, अपितु उसे उत्कर्ष भी प्रदान किया गया है।

"ब्राह्मण धर्मको प्रधानता न देनेवाले घटिया क्षत्रियोंको वृषल कहा जाता था" (पृ० २६), इसका कोई पुष्ट प्रमाण अनुवादकने उपस्थित नहीं किया है। पृ० २८ पर 'प्रविश्य' का अनुवाद ही होनेसे रह गया है। 'ब्रज' के स्थानपर 'बृज' का प्रयोग तो (पृ० ११८) अक्षम्य अशुद्धि है।

डा० रांगेय राघवने जिस रफ्तारसे अंग्रेजी और संस्कृत से अनुवाद हालमें किये हैं, उसे देखते हुए उनके अनुवाद उत्तम कोटिके हैं। हाँ, यदि एकआध अनुवादोंको दुहरा लिया जाय, तो ये मामूली अशुद्धियाँ सम्भवतः निकल जायँगी। वैसे ये अशुद्धियाँ 'प्रेसके भूतों' की भी हो सकती हैं। दोनों अनुवाद सुन्दर हैं। सुन्दर छपाई तथा गेट-अपके लिए प्रकाशकको बधाई है। मूल्य भी उचित ही है।

'माँ और मुन्ना' (सचित्र जेकिट तथा सुन्दर जिल्दके साथ)—लेखक, प्रिन्सिपल हरिश्चन्द्र, एम० ए०; प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६; मूल्य ढाई रुपया।

हिन्दीमें स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंकी बड़ी भारी कमी है। जो थोड़ी-सी पुस्तकें पाई भी जाती हैं, वे बहुधा ठलुआ—डुकरिया—पुराणके आधारपर लिखी गई' अन्ध-विश्वासी भावनाओंसे युक्त होती हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचनकी सहायता लेकर लिखी गई यह पुस्तक इसीलिए अपना एक अलग स्थान रखती है। हम समझते हैं कि इस विषयपर इस प्रकारकी आधी दर्जन पुस्तकें भी हिन्दीमें नहीं होंगी। अनेक ग्रन्थोंकी सहायतासे लिखी गई यह पुस्तक सरल भाषामें मातृत्व-सम्बन्धी जानकारी तथा शिशुपालन-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातोंको उपस्थित करती है। कथाका ढाँचा प्रदान करके लेखकने पुस्तकको रोचकता प्रदान करनेका प्रयत्न भी किया है। विवाह तथा गर्भाधानसे लेकर शिशुके लगभग डेढ़ वर्ष तकके हो जाने तककी अवस्था तकके विषयमें लेखकने लगभग सब ज्ञातव्य बातें—वैज्ञानिक आधारपर—इस पुस्तक में उपस्थित की हैं। सर्वमुख्य गुण इस पुस्तकका यह है कि इसमें शालीनताका ध्यान आदिसे अन्त तक रखा गया है। जो भी बात कही जानी चाहिए, वह निस्संकोच, सुष्ठ शब्दों में कही गई है, और कहीं भी कोई कुरुचिपूर्ण संकेत नहीं है। आधुनिक विज्ञानके अनुसार, 'विटामिन', 'केलोरी' आदि को समझाकर विवेचन किया गया है। चार्टोंकी प्रचुर सहायता ली गई है, जो कि लेखकके परिश्रमकी द्योतक है और पुस्तकको लाभप्रद बना देती है। 'गृह-विज्ञान' के पाठ्यक्रममें लगा देने योग्य यह पुस्तक है। आधुनिक समयमें प्रत्येक शिक्षित कन्या तथा माताके पास यह पुस्तक होनी चाहिए। छपाई, गेट-अप एकदम उत्कृष्ट कोटिका है। इस वर्षके सर्वश्रेष्ठ लाभप्रद प्रकाशनोंमें इस पुस्तकको मूर्धन्य स्थान प्राप्त होगा। विषय-प्रतिपादन, छपाई आदिको देखते हुए दाम एकदम वाजिबी हैं। प्रकाशक तथा लेखकको बधाई है। पुस्तक बहुत ही अच्छी है। —रमेशकुमार शर्मा

'भारतीय समाज-चिमर्श'—लेखक, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित; प्रकाशक, गिंदन साहित्य-मन्दिर, लखनऊ; मूल्य चार रुपया।

आज जब हम अपने देशका नव-निर्माण करनेमें लगे हुए हैं इस बातकी आवश्यकता है कि हमारे विकासकी दिशा सुनिश्चित हो। यह तभी हो सकता है, जब हम अपने अतीत और वर्तमानके सम्बन्धको भलीभाँति समझें।

हिन्दीमें ऐसे ग्रन्थोंका अभाव है, जिनमे भारतीय संस्कृतिके ऐतिहासिक विश्लेषणको वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रस्तुत किया गया हो। इस पुस्तकके लेखकने सम्भवतः इसी अभाव की पूर्तिके लिए लेखनी उठाई है। किन्तु उपसंहारमें लेखकने लिखा है कि उनका उद्देश्य यह दिखाना है कि आर्य संस्कृति का विकास उत्तरी ध्रुव प्रदेशमें हुआ था और वहींसे वह भारत तथा संसारके अन्य अनेक देशोंमें फैली। इतिहासकी यह समस्या भी कम दिलचस्प नहीं है। जिस समय पहली बार लोकमान्य तिलकने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया, तो विद्वान लोग चौंक पड़े थे और आज तक भी यह मत स्वीकार नहीं किया गया है। यदि इस पुस्तकके लेखकने इसी उद्देश्य तक अपनेको सीमित रखा होता, तो शायद उन्हें अधिक

साहित्य प्रकाशन दिल्ली का नया कदम

साहित्य और समीक्षा की नई चेतना

श्री यज्ञदत्त शर्माके साहित्यके लिये तथा हिन्दीके प्रमुख प्रकाशकोंकी पुस्तकोंके लिये एकमात्र स्थान

साहित्य प्रकाशन दिल्ली का

नया सूचीपत्र मंगाइये

१ महल और मकान—[यज्ञदत्त शर्मा] सजिल्द ३)
२ बदलती राहें— ["] सजिल्द ३)
३ मधु— ["] सजिल्द ३)
४ दुनिया की शार्दा— ["] सजिल्द ३)
५ इन्साफ— ["] सजिल्द ३)
६ परिवार— ["] सजिल्द ५॥)
७ दबदबा— ["] १०)
८ भारत सेवक— ["] ५)
७ बाप बेटी—[ले० यज्ञदत्त शर्मा मौलिक] ४)
८ ललिता—[यज्ञदत्त शर्मा] ३)
९ प्रदीप—[हितवल्लभ गौतम] ५)
१० कमला—[देवेन्द्र शर्मा] २)
११ फूल और पतझर—[श्री नरोत्तम नागर] ५॥)
१२ करमू और जगनी—[हर्षमाद] ४)
१३ इमली—[हितवल्लभ गौतम] ५)
१४ प्यासी मीन—[सिद्ध विनायक द्विवेदी] २)
१५ पथराये नेत्र—[" " "] ३)
१६ मंटो की कहानियाँ—[सआदत्तअली मंटो] २॥)
१७ रजिया की बेटी—[अनु० श्री नरोत्तम नागर] ७
१८ केनिलवर्थ [वाल्टर स्काट] १॥)
१९ टैलिसमैन—[वाल्टर स्काट]
२० आइवन्हो—[वाल्टर स्काट] १॥)
२१ सुबह-शाम—[ले० गेटे, अनुवाद] २॥)
२२ मन के बंधन—[ले० सोमरसेट मॉम, अनुवाद] ५)
२३ पतिता— [" "] ५)
२३ प्रतिशोध एमिलीकी—[ले० एम०एल० ब्रोन्डो] ६)
२४ जय-पराजय—[ले० ग्राहम ग्रीन] ६)
२५ नया सूरज—[कुंग चुएह व दवांचिग] ६॥)
२६ केन्डिडे—[वाल्टेयर] ३)
२७ टैगोर का साहित्य दर्शन—[ले० रविन्द्रनाथ टैगोर] २॥)
२८ साहित्य का स्वरूप—
[ले० प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त] २॥)
२९ हिन्दी काव्य दर्शन—
[ले० प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त] ६)
३० काव्य-विवेचन—
[ले० प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त] ६)

सितम्बर १९५८ का नया प्रकाशन

जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा, ७॥) हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास, १२॥)

रवीन्द्र साहित्य और समीक्षा ३)

हमारे यहां पर भारत के सभी हिन्दी प्रकाशकों का माल उन्हीं के कमीशन पर फ्री डिलेवरी प्राप्त किया जा सकता है। लायब्रेरियोंको उचित कमीशन दिया जाता है

साहित्य प्रकाशन मालीबाड़ा दिल्ली

एजेण्ट आफिस :—

एफ एस ९।१२, लोअर चीतपुर रोड, फर्स्ट फ्लोर, कलकत्ता-१

सफलता मिलती। लोकमान्यके समयसे अब तक इस विषयमें जितने मत प्रतिपादित किये गये हैं, उन सबकी वैज्ञानिक समीक्षा करके कोई युक्तिसंगत निष्कर्ष प्रस्तुत करना चाहिए था; किन्तु ऐसा करनेमें लेखक महोदय असफल रहे हैं। कारण यह है कि उन्होंने बीसियों समस्याएँ उठा ली हैं। 'भारत' नाम क्यों पड़ा, देशमें नस्लोंका मिश्रण, वर्णव्यवस्था, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता, अन्य देशोंमें हिन्दू सभ्यताका प्रसार, भारतमें भाषाओंका प्रश्न आदि कितने ही विषयोंपर इस पुस्तकमें विचार किया गया है। परिणाम यह हुआ है कि सबके साथ न्याय नहीं हो सका और हो भी नहीं सकता था। दूसरे, ग्रन्थमें क्रम और व्यवस्थाका अभाव है। विभिन्न विषय असम्बद्ध तरीकेसे यत्र-तत्र जोड़ दिये गये हैं। तीसरे, लेखकने बिना गम्भीरतापूर्वक विचार किये और ठोस प्रमाण दिये कितनी ही बातें कह दी हैं। उदाहरणके लिए, लिखा गया है कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव प्रदेशमें ही विमान बनाना सीख गये थे। ग्रन्थकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि लेखककी निगाहमें वैदिक कालके बादकी भारतीय सभ्यताका कोई मूल्य नहीं है। बादका इतिहास तो पतनका इतिहास है। लेखक शायद ऐतिहासिक सापेक्षताके सिद्धान्तसे बिलकुल परिचित नहीं है।

ग्रन्थके प्रकाशनके लिए उत्तर-प्रदेशकी सरकारसे १५००) की सहायता मिली है। —डा० सत्यनारायण दुबे

'डाक्टर'—लेखक, विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; पृष्ठ-संख्या १३१; मूल्य दो रुपये आठ आने।

लेखकने 'डाक्टर' की रचना रंगमंचको ध्यानमें रखकर की है। नाटकके पहले और दूसरे अंकके लिए तो एक ही सेटिंग काममें आ जाती है। तीसरे अंकके लिए भी विशेष कठिनाई नहीं है। पहले और दूसरे अंकके सामानको हटा देनेके साथ ही परदा उठता है और फिर धीरे-धीरे आपरेशन का सामान लाया जाता है। इस प्रकार एक ही बारकी सेटिंगमें तीनों अंक बड़ी सफलतासे आ जाते हैं।

पूरे नाटकमें कोई भी ऐसा दृश्य नहीं है, जिसे सरलता और सुगमताके साथ न दिखाया जा सके। दूसरे अंकमें दूसरे दृश्यके अन्तर्गत 'आवाज़' और तीसरे अंकमें डा० अनीलाके अन्तर्द्वन्द्वको आवाज़का रंगमंचपर दिखाना कठिन प्रतीत होता है। लेखकने स्वयं तीसरे अंककी टिप्पणी में इस ओर संकेत कर दिया है—"यह आवाज़ पहलेसे रिकार्ड की जा सकती है।"

नाटकके कथोपकथन छोटे और नुकीले हैं। एक कथोपकथन दूसरे कथोपकथनका पूरक है। नाटकका प्रत्येक पात्र उभरकर आता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि काकी और सतीशचन्द्र जैसे पात्र भी, जो एक-दो बार ही आते हैं, अपनी सारी चारित्रिक विशेषताएँ दिखा जाते हैं। नीरूके विषयमें सन्देह हो सकता है; पर लेखकने उसके द्वारा 'ड्रामेटिक आइरोनी' का बड़ा सुन्दर निर्वाह कराया है।

नाटककी भाषा पात्रोनुकूल, सहज और स्वाभाविक है। बीच-बीचमें मुजफ्फरनगर, मेरठके आसपासकी बोलीका बड़ा सजीव प्रयोग किया गया है। तीसरे अंकमें आपरेशनका इतना सजीव और यथार्थ चित्रण है कि ऐसा लगता है कि लेखक स्वयं डाक्टर है।

'डाक्ट' की कथावस्तु मनोवैज्ञानिक है। मधुलक्ष्मीको उसके पति सतीशचन्द्र शर्माने इसलिए छोड़ दिया था कि उसके अफसर बननेके बाद वह उसके योग्य नहीं रही थी। वह सोसाइटीमें उठ-बैठ नहीं सकती थी। सतीशचन्द्रने दूसरी शादी कर ली। मधुलक्ष्मीके हृदयमें प्रतिशोधकी भावनाने घर कर लिया। उसके बड़े भाई कर्नल दादाका उसे सहारा मिला। वह भी अनीला बन गई। अपना नर्सिंग होम खोल लिया। सतीशचन्द्रकी दूसरी पत्नी बीमार पड़ी। डा० अनीलाके नर्सिंग होममें उसे लाया गया। डा० अनीलाके अन्दरकी परित्यक्ता नारी मधुलक्ष्मी और नर्सिंग होमकी डाक्टर अनीलामें अन्तर्द्वन्द्व हुआ। नारी प्रतीकार चाहती थी। आपरेशन उसके लिए सुनहरा अवसर था। डा० अनीलाके सामने कर्तव्य था। अन्तमें कर्तव्यने भावनापर विजय प्राप्त की। संक्षेपमें यही 'डाक्टर' की कथा-वस्तु है। लेखकने अन्तर्द्वन्द्वका बड़ा सफल उद्घाटन किया है।

हम अन्तके विषयमें इससे सहमत नहीं कि वह आदर्शात्मक अधिक है। एक बात हम अवश्य कहेंगे कि अन्त संकेतात्मक अधिक है।

सब मिलाकर 'डाक्टर' विष्णुजीका बड़ा सफल रंगमंचीय नाटक है। हिन्दीमें आज ऐसे नाटकोंकी बड़ी आवश्यकता है। विष्णुजीने 'डाक्टर' के द्वारा एक बड़े अभावकी पूर्ति की है। हम आशा करते हैं कि विष्णुजी निरन्तर इसी प्रकार माँ भारतीके मन्दिरमें ऐसे ही पुष्प चढ़ाते रहेंगे।

—राजेन्द्र कुशवाहा

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अयोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] दुःखके दिन [श्री असितकुमार हालदार



भाग ६२, अंक ४] कलकत्ता, अक्टूबर १९५८ [पूर्णांक ३७०

सम्पादकीय विचार

'फिर बुलाना'

पाठकोंको मालूम है कि हमारे देशके अनेक पत्रकार और साहित्य-सेवी विदेशी सरकारोंके निमंत्रणपर—विशेष कर रूस, चीन और शायद अमरीकाके निमंत्रणपर भी उन देशोंकी यात्रा किया करते हैं। इस प्रकार अनेक आमंत्रित पत्रकारों और साहित्य-सेवियोंका मार्गव्यय विदेशी सरकारें देती हैं। वहाँ उनका खूब आतिथ्य होता है—और आमंत्रितका आतिथ्य होना भी चाहिए—भेंट भी दी जाती है। इस ग़रीब देशके अनेक ग़रीब और साधारण स्थितिके पत्रकार आतिथ्यसे मंत्रमुग्ध हो जाते हैं और आभार प्रदर्शन करते हुए उनमें से प्रायः कहते हैं कि 'हमें आप फिर बुलाइये।' पं० जवाहरलाल नेहरू तकने एक निजी मीटिंगमें इस बातकी शिकायत की कि हमारे देशके पत्रकार और साहित्य-सेवी विदेशोंमें जानेपर वहाँपर दुबारा बुलाये जानेकी बात कहते हैं। विदेशोंमें अतिथि बनकर, एक प्रकारसे उनका नमक खाकर जब वे स्वदेश लौटते हैं, तब उन देशोंकी आंतरिक स्थिति की प्रशंसाके पुल बाँधते हैं। हमने कई हिन्दी-साहित्य-सेवियों और पत्रकारों द्वारा लिखे रूस और चीनपर लेख पढ़े हैं। उनमें वहाँके जीवन और समृद्धिकी समीचीन समीक्षा नहीं रहती। ऐसा मालूम होता है कि कोई वकील उन देशोंकी वकालत कर रहा हो। खेती, उद्योग तथा अन्य रचनात्मक कार्योंके विषयमें हमारे हिन्दी-पत्रकार बन्धुओंको विशेष ज्ञान होता नहीं, यों ही सुनी-सुनाई बातें होती हैं। उनकी रिपोर्टमें बस 'खाता और ले भागे' वाली बात होती है। हमें यह भी मालूम है कि लोक-सभाके सदस्योंकी प्रवृत्तियों तथा उनकी अन्य बातोंका भी लेखा-जोखा कई नई दिल्ली-स्थित विदेशी दूतावासोंमें पूरा रहता है। वे इस बातको जानते हैं कि किस प्रकारकी अपीलसे कौन-सा पत्रकार पसीज सकता है। दूसरोंके रुपयोंसे विदेशकी यात्रा करना और उन देशोंका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन देना नमक-हलाली करना है। विचारणीय बात यह है कि क्या इस प्रकारकी वृत्ति नैतिक पतनकी द्योतक नहीं है? भ्रष्टाचार और नैतिक पतनके अनेक रूप हैं और लेखकों तथा साहित्य-सेवियोंका भ्रष्टाचार तो अन्य सब प्रकारके भ्रष्टाचारोंसे खतरनाक है। हमारी खुफिया पुलिस जहाँ अन्य सब संदिग्ध लोगोंकी जाँच करती है, वहाँ वह इस बातकी जाँच क्यों नहीं करती कि कौन-से पत्रकार और साहित्य-सेवी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे विदेशोंसे धन लेकर देशको बदनाम करते हैं? नैतिक स्तर तो अपने हाथकी बात है। हमें यह भी मालूम है कि हिन्दीके दो-एक साहित्य सेवियों और पत्रकारों को विदेशोंसे कई बार निमंत्रण मिले, पर उन्होंने वहाँ जानेसे मना कर दिया।

स्व० रामानंद बाबूका उदाहरण

'मॉडर्न रिव्यू' के ख्यातनामा सम्पादक स्व० श्रीमान् रामानन्द चट्टोपाध्यायको एक बार ब्रिटिश सरकारसे निमंत्रण मिला कि वे राष्ट्र-संघकी बैठकमें शामिल हों। उन दिनों भारत-सचिव थे लार्ड बर्केनहेड। लार्ड बर्केनहेड बड़े ही योग्य, पर घोर प्रतिक्रियावादी थे। श्रीमान् रामानंद बाबू

ने पहले तो राष्ट्र-संघकी बैठकमें जानेसे मना कर दिया, क्योंकि वे ब्रिटिश सरकारके व्ययपर राष्ट्र-संघमें शामिल नहीं होना चाहते थे और स्वयं उनके पास यूरोप यात्राके लिए खर्चा नहीं था। लोगोंने उनसे आग्रह किया और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तकने भी जोर दिया कि वे राष्ट्र-संघकी मीटिंगमें अवश्य शामिल हों, क्योंकि उससे भारतका हित होगा। बाध्य होकर उन्होंने राष्ट्र-संघकी मीटिंगमें शामिल होनेकी स्वीकृति इस शर्तपर दी कि वे अपने व्ययसे यात्रा करेंगे। इस कामके लिए उन्हें आठ हजार रुपयेका ऋण लेना पड़ा। वे यूरोप गए, राष्ट्र-संघकी बैठकमें शामिल हुए और जेनेवामें एक दिन लार्ड बर्केनहेडसे भेंटका समय लिया। उन दिनों विदेशोंमें गैरसरकारी तौरपर 'मॉडर्न रिव्यू' भारतकी राष्ट्रियताका प्रतिनिधित्व करता था। 'माडर्न रिव्यू'की प्रतिष्ठाकी धाक थी और स्व० रामानंद बाबूके नोट्स विश्व-विख्यात पत्रोंमें अपना प्रमुख स्थान रखते थे। लार्ड बर्केनहेडने जो समय रामानन्द बाबूको दिया था, ठीक वही समय उन्होंने कनाडाके तत्कालीन प्रधानमंत्रीको दे दिया और जब स्व० श्रद्धेय रामानंद बाबू लार्ड बर्केनहेडसे मिलने गए, तब उनसे कह दिया गया कि वह समय तो कनाडाके प्रधान मंत्रीके लिए निश्चित कर दिया गया है। अपमान गरल पान करके श्रीमान् रामानन्द बाबू वापस आ गए। बादमें इंग्लैंडके कई राजनीतिज्ञोंने लार्ड बर्केनहेडको बताया कि उन्होंने एक लौह पुरुषसे टक्कर ले ली है। अपनी भूल मानकर लार्ड बर्केनहेडने रामानंद बाबूसे स्वयं भेंट करनेके लिए पत्र लिखा। उत्तरमें रामानंद बाबूने लिख दिया, "मैं अपने देशमें भारत-सचिवसे कम व्यस्त नहीं रहता। मैं देशकी समस्याओंमें व्यस्त हूं, अतः मेरे पास समय नहीं है।" भारत लौटनेपर रामानंद बाबूने अपनी राष्ट्र-संघकी बैठक, यात्रा और भारत-सचिवसे भेंटकी बात लिखी। सत्य और शिष्ट बात कहनेमें वे कभी नहीं हिचकते थे। उनके नोट्स पढ़कर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, ब्रिटिश पत्र, भारत-स्थित ब्रिटिश कर्मचारी तिलमिला गए। उस समयके लाहौरके गोरोंके पत्र 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट'ने लिखा, 'ये वयोवृद्ध महाशय, जिनको ब्रिटिश अतिथि बननेका सम्मान प्राप्त हुआ, इस प्रकारका दुःसाहस करते हैं....." हमें अब तक, 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट'का वह पैरा याद है। रामानंद बाबूने गोरे पत्रोंका उत्तर इस प्रकार प्रारम्भ किया—"मैंने ब्रिटिश आतिथ्यमें एक प्याला चाय भी नहीं पी....।" रामानंद बाबूके इस उत्तरको पढ़कर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और अंग्रेज पत्रकारोंपर घड़ों पानी पड़ गया।

स्पष्ट है कि रामानंद बाबू ब्रिटिश आतिथ्यपर राष्ट्र-संघमें शामिल होते तो उनकी सत्यप्रियता, निष्ठा और स्वतंत्रतापर कुछ आघात पहुँचता और अतिथि होकर अपने मेज़बानकी शिष्ट और सच्ची आलोचना भी कुछ बुरी ही लगती। इसलिए हमारा अपना मत है कि हमारे साहित्य-सेवी अपनी सरकारके खर्चपर या स्वयं अपने खर्चपर विदेशोंकी यात्रा करें। हमें तो इस बातपर भी हँसी आती है कि स्वयं अपने देशको देखे बिना विदेशको देखनेकी लालसामें हमारे पत्रकार बंधु अधूरी पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट देते हैं। इस प्रकारकी यात्रायें नैतिक दृष्टिसे अवांछनीय और भारतीय हितकी दृष्टिसे बड़ी हानिकारक हो सकती हैं।

विदेशी प्रोपैगैंडाका एक उदाहरण

हमने रूस द्वारा प्रचारित और प्रसारित एक प्रोपैगैंडा पत्रमें पढ़ा कि रूसने एक बारहमासी गेहूं (पेरीनियल व्हीट) का आविष्कार किया है और पशु-पालनमें रूसी वैज्ञानिकोंने मैन्डेरियन थ्योरीको एक तरहसे ग़लत साबित किया है। मैन्डेरियन सिद्धांतपर यहाँ हम विस्तारसे नहीं लिख सकते, केवल इतना ही लिख सकते हैं कि प्रजनन-शास्त्रके अनुसार तीसरी पीढ़ीमें पशु अपने पूर्व रंग और स्थितिपर आ जाता है। अतः नसल ठीक नहीं होता। पूरी बात यहां लिखना अप्रासंगिक और व्यर्थ है। हमारे एक मित्र भारत-सरकारके खर्चसे रूस यात्रापर गए। वे एक राज्यके कृषि और पशुपालन-विभागको देखते थे। रूस-यात्रासे पूर्व हमारे अपने मित्रसे बातें हुईं और हमने उनसे बारहमासी गेहूं और मैन्डेरियन सिद्धांतके विषयमें जानकारीके लिए कहा। बारहमासी गेहूंको हम कोरा प्रोपैगैंडा समझते थे। हमारे मित्रने गहराईसे जाँच की और लौटकर बताया कि रूसमें बारहमासी गेहूं जैसी कोई चीज नहीं है। मैन्डेरियन थ्योरीके बारेमें भी उन्होंने कहा कि रूसके पशु-पालन-विभागके लोग उसे मानते हैं। ऐसे प्रोपैगैंडा चीन और अमरीका भी करते हैं। भेद इतना ही है कि अपने प्रोपैगैंडामें अंग्रेज बड़े पटु हैं, अमेरिकन सुसंस्कृत है; पर रूस का प्रोपैगैंडा बड़ा भौंडा होता है। मध्यपूर्व और फारमूसाके विषयमें भी रूसका प्रोपैगैंडा—विशेषकर बन्दरघुड़कियों जैसा प्रोपैगैंडा—कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। लोग जानते हैं कि रूस इतना मूर्ख नहीं है कि बिना बात लड़ाईमें कूद पड़े। रूस और उसके गुटके

राष्ट्रोंकी आर्थिक व्यवस्था ऐसी नहीं है कि वह फिलहाल अमेरिकासे टक्कर ले सके। यों आत्मरक्षाके लिए कमज़ोर राष्ट्रको भी लड़ना पड़ता है। हम इस बातको मानते हैं कि रूसने आर्थिक और वैज्ञानिक क्षेत्रमें बड़ी भारी उन्नति की है और उन्नतिकी होड़में वह अमरीकासे बराबरी करनेपर उतारू है। जो शीत युद्ध चल रहा है और उससे संबंधित जो प्रोपैगैंडा चल रहा है, उससे साधारण व्यक्ति बहकावेमें आ ही जाते हैं, पर समझदार आदमी स्थितिको खूब समझते हैं।

श्री जयप्रकाश बाबूके यात्रा-संबंधी अनुभव

गत मासके तीसरे सप्ताहमें श्री जयप्रकाश नारायण अपने साढ़े चार मासकी विदेश-यात्राके उपरांत स्वदेश लौटे। अपनी यात्रामें उन्होंने २१ देशोंका भ्रमण किया और नई दिल्लीमें अपने अनुभवोंको पत्रकारों तथा अन्य व्यक्तियोंके सामने रखा। अरब राष्ट्रोंके बारेमें उन्होंने बताया कि उनमें नवीन स्फूर्ति है और पश्चिमी राष्ट्रोंके समाचारपत्रोंमें राष्ट्रपति नासिर और अरब राष्ट्रोंके विषयमें बड़ी ग़लतबयानी हो रही है। अंगरेजी और अमरीकी सेनाओंके हटनेसे वहाँ कोई राजनीतिक शून्यता न होगी, जिसकी पूर्ति रूसी प्रभावसे हो सकेगी। अरब राष्ट्रोंमें जागरणकी एक लहर है और वे अपने आंतरिक मामलोंमें किसीका हस्तक्षेप नहीं चाहते। हाँ, रूसके प्रति उन्हें सहानुभूति है। राष्ट्रपति नासिर तानाशाह नहीं हैं। यूगोस्लेविया में एकतंत्रीय शासन है, पर वहाँ जो उन्नति हो रही है, वह प्रशंसनीय है। इज़राइल जैसे छोटे राष्ट्रने सहकारिताके बल-बूतेपर आश्चर्य-जनक उन्नति की है।

जयप्रकाश बाबूने पत्रकार-सम्मेलनमें यह भी बताया कि उनका विचार राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेका नहीं है। यात्रासे उनकी नीतिमें नए पहलूका सुझाव अवश्य आया है। वे सर्वोदय नीतिके कायल हैं। उन्होंने इंग्लैंडके प्रसिद्ध विचारक और गांधीवादी श्री विल्फ्रेड वैलेककी बड़ी प्रशंसा की। उनके वे अतिथि भी रहे। 'विशाल भारत' के पाठकोंको मालूम है कि श्री विल्फ्रेड वैलेकपर लगभग सात वर्ष पूर्व हम एक लेख लिख चुके हैं, जब वे भारतमें पैसिफिस्ट कान्फ्रेंसके डेलीगेट होकर आए थे और हमारे अतिथि रहे थे। 'विशाल भारत' और 'मॉडर्न रिव्यू' से उनका पुराना संबंध है। गांधीवादको जितनी बारीकीसे वे समझते हैं, उतना कोई दूसरा अंग्रेज नहीं समझता। दूसरे देशोंने अपनी बुनियादी समस्याओंको हल कर लिया है। अमरीकी पत्रकारोंके लिए जैसे यह कोई समाचार नहीं है कि किसी कुत्तेने आदमीको काटा, पर अगर कोई आदमी कुत्तेको काटे तो समाचार है। ठीक इसी प्रकार वहाँ खाद्यान्न, भुखमारी आदिकी कोई समस्या नहीं है। उनकी समस्या है कि अपनी समृद्धि होनेपर आध्यात्मिक समन्वय वे कैसे करें और अपने वैभवका उचित उपयोग कैसे करें। समृद्धिकी सीढ़ीपर वे ऊँचे चढ़ गए हैं और वहाँसे आध्यात्मिक खोजको ओर कैसे जायँ। हम किसीको उपदेश देनेके अधिकारी नहीं हैं, पर हमारी प्रार्थना श्री जयप्रकाश बाबूसे यह अवश्य है कि वे नई दिल्लीसे १०-१५ मील दूर अथवा पटनाके निकट किसी गाँवमें जमकर कुछ कार्य करें। विचारों और विचारकोंकी हमारे देशमें कमी नहीं है, कमी तो विचारोंको कार्यान्वित करने की है। मानसिक अंधकार छाया हुआ है। निराशाकी भावना फैली हुई है और लोग एक नई दिशा, एक नए मोड़को कार्यरूपमें देखना चाहते हैं। जितने भी देशमें दल हैं, उनसे लोग ऊब रहे हैं। पं० जवाहरलाल नेहरूकी बात तो कांग्रेसजन ही नहीं मानते। उनका बुढ़ापा स्पष्ट सामने है। ऐसी दशामें नवीन ज्योति और स्फूर्तिकी आवश्यकता है। गांधीजीकी बातको आचार्य विनोबा और आचार्य तुलसी लोगोंके सामने रख रहे हैं, पर आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति एक स्थानपर जमकर सक्रिय रूपसे प्रोग्राम चलावे। स्टीम चाहे कितनी ही हो, यदि वह इंजिनके ठीक मार्गसे होकर पिस्टनसे प्रयुक्त नहीं होती, तब तक इंजिनको प्रेरित नहीं करती। इसी प्रकार विचार चारों ओर फैले हैं, पर उनसे क्या? कोई उन्हें लेकर कहीं जमे और सर्वोदयको चलावे, तो लोग अधिक अणुप्राणित होंगे। इसीलिए हम जयप्रकाश बाबूसे आग्रह करते हैं कि वे किसी देहातको चुन लें और वहीं जमकर कार्य करें। यदि लोग छोटे-छोटे क्षेत्रोंको लेकर सुधार लें, तो हमारी अनेक समस्याएँ हल हो जायेंगी।

योजना और विदेशी मुद्रा

गत २५ सितम्बरको योजना-मंत्री श्री गुलज़ारीलाल नंदाने राज्य सभामें कहा, "अब प्राप्त तथ्यों और आंकड़ोंसे, जो प्रगतिके अवलोकनके समय उपलब्ध नहीं थे, यह स्पष्ट है कि कमीकी राशि २,००० करोड़ रुपएके लगभग रहनेकी संभावना है। यह रकम भी केवल अनुमान है, क्योंकि वह बहुत-सी बातोंपर निर्भर है। योजनाका आकार ४५०० करोड़ रुपयेसे अधिक नहीं बढ़ेगा, किन्तु

उन्होंने संकेत दिया कि यह राशि कम भी हो सकती है, यह अतिरिक्त साधनोंकी सुलभतापर निर्भर है। योजनाकी पूरी अवधिमें घाटेका बजट निर्धारित सीमा १,२०० करोड़ रुपए तक नहीं पहुंचना चाहिए। यदि पहुंचा, तो इससे भारी संकट पैदा हो सकता है। योजनाके अमलमें सभी दलोंका सहयोग प्राप्त करने व नियमित तथा समुचित परामर्शकी व्यवस्था करनेके लिए कोई उपाय खोजना होगा। वर्तमान संसदीय सलाहकार समिति इस उद्देश्यके लिए पर्याप्त नहीं होगी। इस योजनामें दूसरे किसी स्थानकी अपेक्षा कहीं अधिक भारतीय जनता व दलोंकी बुनियादी एकता परिलक्षित होनी चाहिए। मैं इस प्रकारका कोई प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं, केवल 'मुखर चिन्तन' कर रहा हूं।"

अब प्रश्न यह है कि यदि द्वितीय पंचवर्षीय योजनाको चलाना है, तो विदेशी मुद्राकी कमीको कैसे पूरा किया जाय? यदि वांछित विदेशी मुद्रा नहीं मिलती, तो द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें असाधारण रूपसे कटौती करनी होगी। फलस्वरूप योजना समयसे पूरी नहीं हो सकेगी। विदेशी मुद्राकी उचित प्राप्ति निर्यातके बढ़ानेसे हो सकती है या फिर कर्ज़ लेने से। पर कर्ज़का बोझा इतना बढ़ रहा है और विदेशोंमें खाद्यान्नकी खरीददारी इतनी हो रही है कि ऋणकी अदायगीकी कोई शक्ल नहीं दिखाई देती। साधारण व्यक्तिको ऋणकी अदायगीमें निश्चित समयपर न देते पर अपनी पूंजी तथा अन्य सम्पत्तिको या तो गिरवी रखना होता है अथवा लम्बी अवधिके लिए अपने उत्पादन-स्रोतको ऋणदाताके हवाले करना पड़ता है। हम नहीं जानते कि अदायगीके समय हमारे देशकी क्या हालत होगी। खाद्यान्न की समस्या और भी गंभीर है और उसके हल किए बिना देशमें कोई योजना नहीं चल सकती। पर हमें दलगत राजनीतिको छोड़कर उत्पादन और कृषिकी उन्नतिके लिए जी-जानसे जुट जाना चाहिए, तब ही हमारी विदेशी मुद्राकी कमी पूरी हो सकती है, निर्यात भी बढ़ सकता है। कोरी कागजी योजना, भाषणोंकी भरमारसे पूरी नहीं हो सकती।

मिट्टीके तेलका उत्पादन

कच्चे (अस्वच्छ) मिट्टीके तेलका उत्पादन विश्व-भरका १९५६ में ८५७·७ मिलियन टन था और १९५७ में ८९९·३ मिलियन टन। स्मरण रहे, एक मिलियन दस लाखका होता है।

१९५९ में विश्वके मिट्टीके तेलका उत्पादन उतनी गति से नहीं बढ़ा, जितनी गतिसे मिट्टीका तेल सुरक्षित रखा गया। अर्थात् उत्पादनकी गति मिट्टीके तेलके सुरक्षणकी गतिसे कम थी। तेलके जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि सन् १९५६ में राशि ३१,२५० मिलियन टन थी और १९५७ में वह बढ़कर ३३,७५० मिलियन टन हो गई। यह आधिक्य विशेषकर मध्यपूर्वमें था और वह भी कुव्वैत और सऊदी अरब तथा वैनेजुलामें। मध्यपूर्वका रक्षित तेल विश्वके रक्षित तेलका ६३ प्रतिशत है। उसके बाद संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाका नम्बर १३ प्रतिशत और रूसका १० प्रतिशत आता है। १९४६-५७ की अवधिमें तेलके मुख्य क्षेत्रोंसे औसतन उत्पादन इस प्रकार हुआ—४ प्रतिशत संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकासे, ९ प्रतिशत दक्षिणी-अमेरिकाके उत्तरी समुद्र-तटसे, १६ प्रतिशत मध्यपूर्वसे, ३२ प्रतिशत ईस्ट-इंडीज से, १४ प्रतिशत रूससे, ३८ प्रतिशत कनाडासे।

नीचे लिखी तालिकासे स्पष्ट हो जायगा कि १९५६ और १९५७ में कच्चे मिट्टीके तेलका उत्पादन कितना हुआ। आंकड़े मिलियन टनोंमें हैं:—

पश्चिमी गोलार्ध	१९५६	१९५७
१. संयुक्तराष्ट्र अमेरिका (गैसोलीनके उत्पादन सहित)	३८०·५	३८०·४
२. वेनेजुला	१२५·६	१४१·५
३ कोलम्बिया	६·२	६·४
४. ट्रिनीडाड	४·१	४·९
५. कनाडा	२२·८	२४ १
६. मेक्सिको	१२·९	१२·४
७. अर्जेण्टाइना	४·३	४·८
८ पीरू	२·४	२·५
९. रूस	८३·०	९८·०
१०. अन्य राष्ट्र	१·९	२ ८
पश्चिमी गोलार्धका कुल तेल	६७७·८	६४३·७
पूर्वी गोलार्ध (मध्य-पूर्व)		
१. बहरीन	१·५	१·६
२. ईरान	२६·२	३४·९
३. ईराक़	३०·८	२१·५
४. कुव्वैत	५४·१	५६·४
५. तटस्थ क्षेत्र	१·७	३·४

६. क़तार	५·८	६·५
७. सऊदी अरब	४७·९	४८·१
योग	१६८·०	१७२·४
पश्चिमी यूरोप	१०·४	१२·२
ईस्ट-इण्डीज़	१८·६	२०·७
अन्य देश	३·०	३·४
पूर्वी गोलार्धके कुल तेलका उत्पादन	२००·०	२२१·५

जनश्रुति और प्रतिष्ठा

गत २१ सितम्बरके जयपुरके एक समाचारको हम गत २३ सितम्बरके 'हिन्दुस्तान' से उद्धृत कर रहे हैं :—

"जयपुर, २१ सितम्बर। राजस्थानके मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़ियाके समर्थकोंकी एक बैठक कल और आज हुई, जिसमें श्री जयनारायण व्यास आदिके संयुक्त वक्तव्यपर विचार किया गया। इन समर्थकोंकी यह राय बनी कि श्री सुखाड़ियाको विधान सभाके कांग्रेस दलका विश्वास प्राप्त करना चाहिए।

राज्यकी विधान सभाका आगामी अधिवेशन २४ अक्टूबरको हो रहा है, जब कि इस विषयमें मत लिये जाने की सम्भावना है। इधर तीन भूतपूर्व मुख्यमन्त्रियों तथा उनके समर्थकोंकी भी कलसे पृथक् बैठकें हो रही हैं।

सुखाड़िया-दलके एक प्रवक्ताने कहा कि कांग्रेसी विधान सभाई दलके ११९ सदस्योंमें ७१ सदस्य आजको बैठकमें उपस्थित थे। ज्ञात हुआ है कि सुखाड़िया-दलके सदस्योंकी कलकी बैठकमें मुख्यमन्त्रीने अपने तथा अपनी सरकारके विरुद्ध लगाये गये विभिन्न आरोपोंपर प्रकाश डाला और कहा कि कोई यह प्रमाणित करे कि मैंने राजस्थानमें १० वर्षके कार्यकालमें काफी निजी सम्पत्ति जमा की है। उन्होंने यह कहा बताते हैं कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि गत ४ वर्षोंमें राजस्थानने काफी प्रगति की है।"

हम राजस्थान अथवा किसी अन्य राज्यकी दलबन्दीसे सम्बन्धित नहीं हैं। पर देशमें अविश्वासका एक ऐसा वातावरण है और अफवाहोंकी भरमारसे वास्तविक स्थितिका पता चलना कठिन हो जाता है। कोई भी राज्य ऐसा नहीं, जहाँ सत्तारूढ़ दलके विरोधी ही नहीं, अपने ही आदमी लांछन न लगाते हों। यदि सत्तारूढ़ दलके लोग भ्रष्टाचारी हैं, तो उसी दलके लोगों द्वारा लगाये गये आरोप एक गम्भीर बात है। आरोपोंकी जाँचके बाद दोषी व्यक्तिको कठोर दंड देना चाहिए और अगर उसीके दलके लोगोंने आरोप लगाये हैं, जाँचके बाद अगर वे ग़लत साबित हों, तो आरोप लगानेवालोंको कठोर दण्ड देना चाहिए। जाँच तो विरोधी दलके आरोपोंकी भी होनी चाहिए। हम राजस्थानके मुख्य मन्त्री श्री सुखाड़ियाजीके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। न हम उनके विरोधी हैं, न समर्थक। हाँ, राजस्थानकी सम्भावनाओंके हम प्रबल समर्थक हैं और हमारा विश्वास है कि राजस्थान कृषि तथा अन्य उपयोगी कार्योंमें पंजाब तथा उत्तर-प्रदेशसे आगे बढ़ सकता है—अगर वहाँ दलबन्दी-रूपी कैंसरके कीटाणु घर न कर जायँ। हम सुखाड़ियाजीकी इस बातका स्वागत करते हैं कि उन्होंने अपने विरुद्ध तहक़ीकात का आह्वान किया है। यदि आरोप ग़लत निकलें, तो विरोधियोंको कठिन दण्ड देना चाहिए। आरोप लगानेवालों को कांग्रेससे निकाल दिया जाय तथा झूठा आरोप लगानेका मुक़दमा चलाया जाय। व्यवहारमें होगा तो ऐसा कुछ भी नहीं। पर अफवाह फैलाना एक गिरे नैतिक स्तरका द्योतक है। यह बात तो तब कही जाय, जब आरोपोंकी जाँच हो जाय। विद्यार्थी-जीवनमें हमने संस्कृतकी एक कहानी पढ़ी थी—'अनृतो तत्थो वा हरति महिमानम् जनस्य:'—जबतक कोई बात विश्वस्त रूपसे न मालूम हो, तब तक किसी अफवाहका फैलाना फैलानेवालेका निम्न नैतिक स्तर प्रगट करता है। अभी पिछले दिनों पंजाबके मुख्यमन्त्री श्री कैरो के विरुद्ध एक जाँच कमेटी बैठी थी और वे निर्दोष पाये गये। इस प्रकारके आरोप प्रत्येक राज्यके अनेक मन्त्रियोंपर लगाये जा रहे हैं और अफवाहें फैलाई जाती हैं। इस प्रकार की जनश्रुतियोंसे प्रशासन ढीला तथा कांग्रेसके विरुद्ध एक विषाक्त वातावरण पैदा हो रहा है। अच्छा तो यह रहे कि भारत-सरकार अवसरप्राप्त हाईकोर्टके जजोंका एक ट्रिब्यूनल बनावे, जो प्रत्येक राज्यके मन्त्रियोंके विरुद्ध किये गये आरोपोंकी जाँच करे। चारों ओर कमीशनों, डेलीगेशनों, सब-कमीशनोंकी धूम है, तब ऐसे जाँच-ट्रिब्यूनलसे जनताका भला ही होगा। इन पंक्तियोंके लिखनेमें हमें मानसिक वेदना है और देशकी स्थितिका ख़याल करके हमारी आँखें नीची होती हैं। इस प्रकारके ट्रिब्यूनलकी जाँचमें ये बातें होनी चाहिए :—१. किस मन्त्री अथवा मुख्यमन्त्रीने अपने कुटुम्बीजनोंको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे नौकरी दिलवाई। २. नौकरी दिलवानेमें उन्होंने क्या सिफारिश की। ३. मंत्री

बननेसे पूर्व उसकी आर्थिक स्थिति कैसी थी और अब क्या है। ४. निकटतम सम्बन्धियोंकी जायदाद कितनी है और स्रोत क्या है। ५. बिरादरीवादको किसने कितना प्रोत्साहन दिया है। उपर्युक्त थोड़ी-सी बातें हमने इसलिए लिखी हैं कि हम देखते हैं कि किसी-किसी राज्यमें मन्त्रियोंके सम्बन्धियोंको ऐसा वेतन भी मिल रहा है, जहाँ वे कुछ भी काम नहीं करते। मन्त्री खुद ठीक हैं, तो भी निकटतम सम्बन्धियोंको तरह देनी ही पड़ती है। उनकी जानकारीमें यह है या नहीं। यह बात हम हरएकके लिए नहीं कह रहे। अधिक लिखना भी एक अफवाह फैलानेके समान ही होगा; पर जाँच-ट्रिब्यूनलके सामने ये बातें रखी जा सकती हैं। यह कठोर सत्य है कि कुछ लोग सिफारिशकी सीढ़ीके द्वारा सरकारी उच्च पदोंपर हैं, अपनी योग्यतासे वे सौ या पचहत्तर की नौकरी भी नहीं पा सकते।

गांधीजीका तरीका

महात्मा गांधीने कभी भी अपने सम्बन्धियोंको कोई नौकरी अथवा कोई पद नहीं दिलाया, वरन् उनका जिस बात में विश्वास होता था, उसका अमल वे अपने निकट सम्बन्धियों और मित्रोंपर करते थे। स्व० महादेवभाईके बड़े लड़केको उन्होंने स्कूली शिक्षाके लिए नहीं भिजवाया। अपने पुत्र स्व० देवदास गांधी और रामदास गांधीको कभी भी नौकरी नहीं दिलाई। उनके पुत्र तीसरे दर्जेमें चलते थे और आर्थिक संकटमें भी रहते थे। यों तो गांधीजीका लोगोंने भयंकर श्राद्ध कर दिया है। उनके नामको तिलक छापका रूप दे दिया है। हमारे सत्ताधारी महात्मा गांधीके तरीकेको बरतें, तो उनके विरुद्ध अनेक कथित आरोप स्वयं ही निर्मूल हो जायँ। पर आज सेवावृत्तिकी भावना नहीं है, सत्तावृत्ति और जीविकावृत्ति है। नोट और वोटके बलपर सब कुछ होता है। क्या हम आशा करें कि सत्ताधारी लोग स्वयं ही स्थितिपर विचार करेंगे और शुद्धिकरणकी भावनासे ही काम करेंगे? पदोंको छोड़कर वे देशसेवाके अन्य काम करें। पर कुछ लोगोंकी दाढ़ोंमें तो सत्ताका खून लग गया है। योग्य और ईमानदार सत्ताधारी बने रहें। शासन-सूत्र चलानेके लिए हमें ईमानदार, योग्य और कर्मठ व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। पर पद पाकर कुनबापरस्ती बढ़ाना देशके लिए हानिकारक है और सत्ताधारियोंके लिए भी अन्तमें वह नीति विघातक होगी।

स्व० मौलाना आज़ादका उदाहरण

स्व० मौलाना आज़ाद भारत-सरकारके शिक्षा-सचिव थे। एक दिन उन्हें मालूम हुआ कि उनका कोई तथाकथित रिश्तेदार चार सौ या पाँच सौ रुपया मासिकपर नियुक्त हो चुका था; पर काम कुछ नहीं करता था। स्व० मौलाना साहबको जब यह मालूम पड़ा, तब उन्होंने उसका नाम पूछा और वेतन तथा पद मालूम किया। जितने दिनों वह सरकार का वेतनभोगी रहा, उतने दिनोंके वेतनका चेक मौलानाने काटकर उसे सरकारी खज़ानेमें जमा कराया और अपने तथाकथित रिश्तेदारको बरखास्त कर दिया। यदि स्व० मौलानाका अनुकरण अन्य मन्त्रीगण भी करें, तो देशका बड़ा कल्याण हो।

बर्मामें उलट-फेर

हम दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंके विषयमें नियमसे लिखते हैं। उनकी आन्तरिक स्थिति बड़ी खराब है। पारस्परिक कलह, लोकतन्त्रीय शासनका आवश्यकतासे अधिक तनाव, खाद्यान्नकी कमी और दलबन्दीसे उन देशोंकी उन्नतिका मार्ग बहुत-कुछ अवरुद्ध हो गया है। आये दिन उन देशोंसे राजनीतिक उलट-फेरके समाचार आते हैं। ईराक़ और हिन्देशियाकी स्थितिसे लोग अवगत हैं। बर्मासे जो समाचार आ रहे हैं, वे काफी चिन्ताजनक हैं। पूर्वी पाकिस्तानकी एसेम्बलीमें जो मारपीट हुई, जिसमें विधान सभाके उपाध्यक्षकी जान गई, वह आनेवाली राजनीतिक गति-विधि की द्योतक है। उत्तर-प्रदेशकी विधान सभामें जो विधान-सभाइयोंकी खींचातानी हुई और जिस उच्छृङ्खलताका प्रदर्शन हुआ, वह भी भावी स्थितिका पूर्वाभास है। बर्मामें करीनों का विद्रोह चल रहा था। प्रधानमन्त्री यू नू बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हैं, उन्हें भी बाध्य होकर शासन सेनाके सुपुर्द करना पड़ा। गत २७ सितम्बरको रंगूनके रेडियोसे बर्माके प्रधान मन्त्री श्री यू नूने अपना जो भाषण प्रसारित किया, वह इस प्रकार है :—

"मैं अगले माह प्रधानमन्त्री-पदसे इस्तीफा दे दूँगा और जनरल ने विनसे कहूँगा कि वे आम चुनाव होने तक प्रधानमन्त्रीका पद-भार ग्रहण करें और एक अन्तरिम सरकार बनावें। मेरी पार्टी नवम्बरमें देशमें आम चुनाव कराना चाहती थी, लेकिन हमने पाया कि स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव होना असम्भव है। इसलिए मैंने राष्ट्रपतिको परामर्श दिया कि वे २८ अक्टूबरको संसदका विशेष अधिवेशन बुलायें,

जिसमें मैं त्यागपत्र दे दूँगा और जनरल ने जिनसे कहूंगा कि वे प्रधानमन्त्री पद ग्रहण करें और छः माहके अन्दर आम चुनाव करा दें। जनरल ने जिनने मेरे पत्रके उत्तरमें लिखा है कि यदि मैं यह आवश्यक व अनिवार्य समझूँ, तो वे शासनका कार्यभार संभालनेको तैयार हैं। यदि संसदने उन्हें चुन लिया, तो वे अपने मन्त्रिमण्डलमें सभी राज्योंके प्रतिनिधियोंको शामिल करेंगे, लेकिन किसी राजनीतिक पार्टीके प्रतिनिधिको उसमें नहीं लेंगे।"

'अबहीं तौ बेटी बापकी'

ब्रजमें विवाहके समय फेरे पड़ते समय स्त्रियाँ गाना गाती हैं और छठे फेरे तक यह गीत गाती हैं कि 'अबहीं तौ बेटी बापकी'। सातवें फेरे के बाद उनका गीत इस रूप में हो जाता है कि 'अब तौ बेटी सजनकी,' यानी बेटी बाक़ायदा पतिको वर दी गई। बर्मा की स्थितिके बारेमें यही कहा जा सकता है कि सैनिक शासनके होने पर भी वहां लोकतंत्र समाप्त नहीं होगा। और बर्माके जनरल अपने मंत्रिमण्डलमें किसी राजनीतिक दलके आदमीको नहीं लेंगे। स्पष्ट है कि बर्माकी जनता राजनीतिक दलबन्दीसे त्रस्त है। और कौन जाने बादमें बर्माकी राजनीतिक वधूकी सातवीं माँवर भी पड़ जाय और वहाँ लोकतंत्रकी समाप्ति हो जाय।

बर्मा-स्थितिकी भारतमें प्रतिक्रिया

बर्माकी स्थितिके विषयमें भारतके गृह-मंत्रीने चिंता प्रकट करते हुए कहा, 'यदि किसी भी पड़ोसी देशमें गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो, तो हमें उस ओर ध्यान देना चाहिये और उसे एक गम्भीर संकेत समझना चाहिये।" यह बात बिल्कुल ठीक है; पर क्या पंतजी पड़ोसमें ही नहीं, स्वयं अपने देशमें जो स्थिति चल रही है, उससे अवगत हैं? अपने भाषणोंकी भरमारसे क्या वे यह नहीं समझते कि स्थिति काबूमें आ जायगी? अपने देशमें अनुशासनहीनता, बेचैनीकी आग लगी है। अरबों रुपयेका कर्ज देशपर लद रहा है और शासनसूत्र ढीला हो रहा है। पंतजीने एक बार यह भी फरमाया था कि योग्यताका स्तर नीचा करके भी हरिजनों को नौकरी दिलानी चाहिए। पंतजी यह क्यों भूल जाते हैं कि लोग मंत्रियोंकी अनुचित बातोंको इतनी जल्दी भूल जायेंगे? देशकी चिन्ताजनक स्थितिका उत्तरदायित्व पंतजी और उनके साथियोंपर कम नहीं है। हम एक बार लिख चुके हैं कि भारत और पाकिस्तानकी स्थितिमें बुनियादी तरीकेसे कोई विशेष भेद नहीं है। भारतकी स्थिति यदि नहीं सँभली, तो यहाँ पर भी वे ही घटनाएँ घटेंगी, जो अन्य पड़ोसी देशोंमें हो रही हैं। ये बातें हम क्रोध और आवेशमें नहीं लिख रहे, वरन् देशकी स्थितिसे हमें मार्मिक पीड़ा है और हम वेदना-प्रेरित भाव प्रकट कर रहे हैं। भेद इतना ही है कि हम भुक्तभोगी हैं और हमारा शासकवर्ग सत्ता और भाषणोंके मदसे पीड़ित है।

इसी सिलसिलेमें उत्तर प्रदेशके मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्दने कहा है—"बर्माके शासनमें जो उलट-फेर हुआ, वह साधारणतया सभी जनतंत्र-प्रेमी देशोंके लिए और विशेषकर भारतके लिए चिन्तनीय है। इस प्रकार जनताकी यदि जनतंत्रसे आस्था उठ गई, तो उसके परिणामस्वरूप तानाशाही--चाहे वह सैनिक हो या असैनिक--स्थापित हुए बिना नहीं रहेगी। जब जनता देशमें बहुत सारी राजनीतिक पार्टियोंके आन्दोलनों और कार्यक्रमोंसे त्रस्त हो जाती है और यह नहीं समझ पाती कि कौन ठीक और कौन गलत है, तब उसका रुझान स्वाभाविक रूपसे तानाशाहीकी स्थापनाकी ओर हो जाता है। हमारे पड़ोस के अनेक एशियाई देशोंमें जनतन्त्र समाप्त हो ही चुका है और अब बर्माकी इस घटनासे सभीको सावधान हो जाना चाहिए। छोटे देशोंमें तानाशाह या तानाशाही सरकारके लिये अच्छे व्यक्ति खोजना सरल बात हो सकती है, परन्तु बड़े देशोंमें इस दृष्टिसे और भी कठिनाई पैदा हो सकती है। दुर्भाग्यसे यदि कोई अच्छा व्यक्ति तानाशाही स्थापित कर ले और लोगोंको उनके जीवनकी मौलिक आवश्यकता खाना, कपड़ा, मकान आदि उपलब्ध करा दे, तो सर्वसाधारण रूपमें जनता उसे नापसन्द नहीं करती। उस हालतमें तो जनता और भी संतुष्ट रहती है, यदि यह तानाशाही स्वदेशी व्यक्तियों की हो। यह सही है कि किसी भी देश की जनता विदेशियोंसे लड़नेमें सदा सजग रहती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह स्वदेशी तानाशाहोंके विरुद्ध भी उतनी ही तत्परतासे लड़े। इसलिये सभी जनतान्त्रिक देशोंको, भारतमें हम लोगोंको, जागृत हो जाना चाहिए और जनतंत्रकी जड़ें मजबूत करनेके लिये जी तोड़ कोशिश करनी चाहिए।"

हम श्री सम्पूर्णानन्दजीके उपर्युक्त वक्तव्यसे सहमत हैं और उन्होंने बर्माकी स्थितिके संबंधमें जो स्पष्ट बातें कही हैं, वे बिल्कुल ठीक हैं। हम तानाशाहीके पक्षमें नहीं हैं, पर वर्तमान निकम्मी लोकतंत्रीय

शासनकी जो प्रतिक्रिया देशमें है, उससे हम श्री सम्पूर्णानंदजीसे अधिक ही अवगत हैं। बात बुरी लगेगी, पर कठोर सत्य यह है कि आज अगर पुराने अंग्रेजी राज्य की संभावना हो, तो गाँववाले और त्रस्त जनता अंग्रेजी शासनको वोट देगी। देशके अधिकांश लोग तानाशाही और लोकतंत्रके झमेलेमें नहीं पड़ते, वे तो अपनी बुनियादी आवश्यकताओंको पूर्तिमें लगे रहते हैं। जो स्थिति देशमें चल रही है, वह आवश्यकतासे अधिक चिंताजनक है। कांग्रेस, कम्यूनिस्ट, जनसंघ, समाजवादी और प्रजा-समाजवादी दलोंकी भूल-भुलैयासे लोग परेशान हैं। यह ठीक है कि लोकतंत्रीय प्रणालीको जड़े मज़बूत करनी चाहिए, पर उसकी जड़ें कैसे मज़बूत हों? केवल दार्शनिक विवेचन और हमारे सम्पादकीय नोट्ससे तो वे मज़बूत होंगी नहीं। वे तो मज़बूत होंगी दृढ़ शासनसूत्र, अनुशासन और खाद्यान्नकी कमीको दूर करनेसे। सम्पूर्णानंदजीसे हमार आग्रह है कि वे कांग्रेस संगठनको ही मज़बूत करें और शासनसूत्रमें प्रवेश किये हुए अवांछनीय तत्वोंको दूर करें। जो कोई साधारण जनताकी बेचैनी और कठिनाईको दूर करेगा, जनता उसीका साथ देगी। इतने बड़े देशमें भी तानाशाही चल सकती है। हम लिख चुके हैं कि हम उसके विरोधी हैं। रूस भारतसे काफी बड़ा है, पर वहाँ तानाशाही है। हमें आशंका है कि यदि शासनसूत्रमें सुधार न हुआ और लोगोंकी खाद्यान्न सम्बन्धी बेचैनी दूर न हुई, तो समय पाकर लोकतंत्रीय शासनकी जड़ें खोखली हो जायेंगी और तानाशाही शासन की पूरी सम्भावना हो जायगी। चारों ओरसे सुनाई पड़ रहा है कि भारतके लिए लोकतंत्रीय शासन उपयोगी नहीं है। हम लोकतंत्रीय शासनकी जड़ें मज़बूत करनेके लिए व्यक्तिगत रूपसे काम कर रहे हैं। किसी मंत्रिमंडलसे हमें कुछ नहीं लेना और कर्त्तव्य समझकर जो काम कर रहे हैं, उसमें कोई अहसान नहीं है। पर हम यह देख रहे हैं कि भारतमें भी विरोध और असंतोषका ज्वालामुखी सुलग रहा है। उचित कार्यसे उसका शमन हो सकता है और मूर्खतापूर्ण तथा अकर्तव्य नीतिसे वह धधक सकता है। प्रत्येक राज्यकी आन्तरिक स्थितिका खयाल करके हम उपर्युक्त सब बातें स्पष्ट कर रहे हैं।

बंजर-भूमि और बड़े फार्म

योजना आयोगके सदस्य श्रीमन्नारायणजीने कांग्रेसकी खाद्य व कृषि-सम्बन्धी स्थायी समितिमें भाषण देते हुए कहा, "जो किसान बंजर-भूमिको उपजाऊ बनानेका प्रयत्न करें, उनसे पांच वर्ष तक कोई लगान न लिया जाय। जो बड़े फार्मोंके मालिक अन्न उत्पादनमें योग नहीं देते, उनसे भूमि लेकर उन लोगोंमें वितरित कर दी जाय, जो अधिक अन्न उत्पादन करना चाहते हैं। देहातोंके तालाबों व कुओंकी मरम्मत करके उन्हें सिंचाईके साधन बनाया जाय। इस कार्यके लिए योजना आयोग राज्य सरकारोंकी सहायता करनेको तैयार है।"

बड़ी खुशीकी बात है कि योजना आयोगके सदस्य श्री श्रीमन्नारायणजीने कृषिके सम्बन्धमें एक व्यावहारिक बात कही। समाचारपत्रोंमें जो शब्द है, वह बंजर-भूमि है। बंजर-भूमि उस भूमिको कहते हैं, जो खेती करनेके योग्य तो हो, पर जिसमें खेती होती नहीं हो। अंग्रेजीमें उसे Fallow land कहते हैं। ऊसर-भूमि वह भूमि है, जो खेतीके लिए अयोग्य हो और जिसमें रेह इत्यादि हो। अंग्रेजीमें उसे Alkaline भूमि कहते हैं। हम नहीं समझते कि श्रीमन्नारायणजीका मतलब बंजर-भूमिसे है या ऊसर-भूमिसे। अनुमानतः उनका मतलब ऊसर-भूमि है, क्योंकि उनका सुझाव है कि पांच वर्ष तक लगान न लिया जाय। ऊसर भी कई प्रकारके होते हैं। देखना यह है कि उसका P.H. कितना है। यदि ऊसर-भूमिका पी० एच० आठ हो, तो उसको कृषि उपयोगी बनानेमें कम समय लगेगा। हम १०·५ पी० एच० वाली ऊसर-भूमिको बिना सरकारी सहायताके ठीक कर रहे हैं। हमारे विचारसे ऊसर-भूमिपर कम-से-कम दस वर्ष तक कोई लगान नहीं होना चाहिए। उत्तर-प्रदेशमें ३० लाख एकड़ ऊसर-भूमि है। यदि उसको दस एकड़से लगाकर ५० एकड़ तकके प्लाट्स में विभाजित करके काश्तकारोंको इस शर्तपर दी जाय कि दस वर्ष तक लगान नहीं लगेगा और पाँच वर्ष तक सिंचाई कर भी नहीं पड़ेगा—यदि सिंचाई प्रबन्ध हो, ऋण देकर पक्के कुएँका भी प्रबंध हो जाय और ऋणकी अदायगीकी अवधि १५ वर्ष रखी जाय, तो खाद्यान्नकी समस्या बहुत-कुछ हल हो जायगी। योजना आयोगकी भूल है कि वह मिश्रित खेतीपर जोर नहीं दे रहा है। खाद, इंधन और बैलोंका कृषि-व्यवस्थामें पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। इंधन और चारेकी व्यवस्था बिना खाद्यान्नका उत्पादन नहीं बढ़ सकता। रही बड़े फार्मोंकी बात, सो हम स्पष्ट लिख दें कि योजना आयोग के अधिकांश लोगोंको व्यावहारिक खेतीका ज्ञान नहीं है।

केवल क़ानूनसे कृषि उन्नति नहीं होगी। कोरे क़ानूनसे न भूख बुझती है, न शांतिकी स्थापना होती है। कानून तो सहारे और सहायताके लिए है। बड़े फार्मोंके लिए ऐसी कुछ अनिवार्य बात हो कि उन्हें कृषिके साथ गो-पालन करना ही होगा। बड़े फार्मोंकी समस्या टैक्सोंसे हल हो सकती है। ऊसरको कृषि उपयोगी बनाना एक बड़ा ही कठिन काम है। इस समय हमारी पूरी शक्ति खाद्यान्नके उत्पादनमें लगनी चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें खेतीके ऊपर आवश्यक ध्यान नहीं है। इस विषयमें एक अगले नोट में हम लिख रहे हैं।

अरब गणराज्यका प्रस्तावित जवाब

गत २९ सितम्बरका कराचीका समाचार है—यहाँके राजनीतिक व अर्ध-सरकारी क्षेत्रोंमें मध्य-पूर्वके गैर-अरब मुसलिम देशोंके एक नये संघकी योजनापर गंभीरतासे विचार किया जा रहा है। इन क्षेत्रोंका कथन है कि इस नये संघमें तुर्की, ईरान और पाकिस्तान शामिल होंगे। हो सकता है कि बादमें मुसलिम एकताके झण्डेके नीचे अफगानिस्तान भी आ जाय। तुर्कीके प्रेसिडेण्ट बयारकी अफगानिस्तान, ईरान और पाकिस्तानकी यात्राको अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। यद्यपि प्रेसिडेण्ट बयार काबुलसे निराश लौटे हैं, लेकिन उनका यह विश्वास है कि अफगान-नरेश देशके आर्थिक हितोंका ध्यान रखकर इस संघमें शामिल हो जायेंगे।

सबसे पहले ये देश एक दूसरेके यहाँ जाने-आनेकी लगी पाबन्दियाँ समाप्त करेंगे। उसके बाद कस्टम एक किया जायगा, ताकि इन देशोंके बीच व्यापार निर्बाध रूपसे हो सके। बादमें आर्थिक और टेक्नीकल साधनोंको एक किया जायगा ताकि इस संघका आर्थिक विकास तेजीके साथ किया जा सके। अन्तमें ये तीनों देश एक संयुक्त रक्षा-व्यवस्थाकी स्थापना करेंगे। इससे तीनोंका रक्षा-बजट कुछ कम हो जायगा। इस योजनाके समर्थकोंका कथन है कि यह संघ अरब देशोंसे मैत्री सम्बन्ध दृढ़ करनेमें सहायक होगा।

ईराककी सैनिक क्रान्तिके उपरान्त अरब गणतन्त्रके मुकाबले गैर-अरब मुस्लिम राष्ट्रोंको एक सूत्रमें बाँधनेकी चर्चा चली थी और समाचारपत्रोंमें तुर्की, ईरान और पाकिस्तानको एक संघ-शासनमें लानेकी बात पाकिस्तानके एक उच्च अधिकारी द्वारा कही गई थी। अब पाकिस्तानको भी इसमें लाने की बात कही गई है। तुर्कीके प्रेसिडेण्ट बयारने अभी पाकिस्तान और अफगानिस्तानकी यात्रा की है, उसका उद्देश्य भी पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्की तथा ईरानका एक संघ बनानेका है। अब पाकिस्तान और अफगानिस्तानमें काफी राजनीतिक मतभेद हैं। राष्ट्रपति बयार कदाचित् इन्हीं मतभेदोंको दूर करनेके लिए काबुल गये थे। अरब और सीरिया गणतन्त्रके मुकाबलेमें जिस प्रकार जोर्डन और ईराकका संघ बना था, उसी प्रकार अरब राष्ट्रोंके संघके मुकाबलेमें नवीन प्रस्तावित राष्ट्रोंका संघ है। कितने ही किसी भी प्रकारके संघ बन जायँ; पर जब तक संघको प्रत्येक इकाई आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे एक न होगी, तब तक उनका संघ बनना कोई महत्व नहीं रखता।

बरमामें सैनिक विद्रोह या व्यवस्था

यों तो हमने ऊपर बरमाकी परिस्थितिपर कुछ लिखा है, पर हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इसी मासकी २८ तारीखको शासनसूत्र वहाँके कमाण्डर-इन-चीफ़को सौंप दिया जायगा। यह विद्रोह नहीं है, वरन् आगामी चुनावके लिए एक व्यवस्था है, ताकि किसीपर दलबन्दीका आरोप न हो। पर वहाँकी स्थिति गम्भीर तो है ही। यदि स्थिति गम्भीर न होती, तो शासन-व्यवस्था चुनावके दिनोंमें सेनाके सुपुर्द करनेकी क्या आवश्यकता थी? यदि स्थिति बिगड़ती गई, तो वहाँ सैनिक शासन हो जायगा। बरमा ही क्या दक्षिणी-पूर्वी एशियाके सब देशोंमें यही स्थिति हो सकती है। भारत भी उसमें है। तानाशाही भी परिस्थितियोंके कारण ही आती है।

खाद्यान्नकी गम्भीर स्थिति

उत्तरी भारतमें बाढ़ तथा अति वृष्टिके कारण खरीफ़की फ़सल बहुत-कुछ बरबाद हो गई। मँहगाईकी महामारी मुँह बाये खड़ी है। किसानोंको आशा थी कि रबीकी फसलमें अधिक शक्ति लगाकर अधिक खाद्यान्न उत्पन्न करेंगे। कई राज्योंकी सरकारोंने रबी-आन्दोलनका सूत्रपात भी किया था, पर इन पंक्तियोंके लिखते समय (२९-९-५८) शिमला और कुमाऊँकी पहाड़ियों, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश तथा अन्य कई राज्योंमें कई दिनसे घोर वृष्टि हो रही है। गेहूं आदिके लिए खेत पहलेसे ही तैयार न थे। अब खेतोंमें पानी फिर भर गया है। अभी एक सप्ताह तक ओठ नहीं आयेगी। यदि धूप न पड़ी, तो खरीफकी फसलकी बरबादीके साथ रबी की बुवाई भी ठीकसे न होगी और देशके गेहूं-उत्पादक क्षेत्र में एक भयंकर स्थिति पैदा हो जायगी। हम आतंक फैलानेके विरोधी हैं। वास्तविक कठिनाइयोंकी अपेक्षा कठिनाइयोंका

आतंक अधिक हानिकर है। हमारा आग्रह है कि लोग गाजर, मूली, शलजम, चुकन्दर, मटर और आलू अधिक बोयें।' घबरानेसे काम नहीं चलेगा। हम कर्म-विपाकको मानते हैं कि यदि घोर परिश्रम करते हुए मनुष्य ईमानदार बना रहे, तो उसे शान्ति मिलती है और क्लेशोंका शमन होता है। जो पुनर्जन्म और ईश्वरमें विश्वास रखते हैं, उन्हें कर्तव्य-पालनमें ही सुख है। पाप और पुण्य कोई पढ़नेकी बात नहीं है, भुगतनेकी बात है। यदि बारिश बन्द नहीं हुई और रबीकी बुवाई न हो सकी, तो देशके सामने जो विकट परिस्थिति है, उसका सामना करनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

फ्रांसके नये विधानके लिए जनमत

पाठकोंको मालूम है कि फ्रांसकी राजनैतिक स्थिति अपने संविधानके कारण इतनी डाँवाडोल रहती थी कि कभी-कभी तो वर्षमें कई मन्त्रिमण्डल बदलते थे। फ्रांसकी दृढ़ताका एक ही कारण था और वह यह कि वहाँके किसान और मजदूर बड़े कर्मठ हैं। उन्हें अपने प्रतिनिधियों, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपतिकी विशेष चिन्ता नहीं रहती और न भारतकी जनताकी तरह अपनी उन्नतिके लिए वे सरकारका मुँह ताकते हैं। पर फिर भी फ्रांसकी आर्थिक उन्नति अथवा राजनीतिक निर्णय इसलिए नहीं हो पाते थे कि वहाँके प्रधानमन्त्रियोंकी स्थिति डाँवाडोल रहती थी। फ्रांसके राजनीतिज्ञोंने सोचा कि जब तक फ्रांसके संविधानमें परिवर्त्तन नहीं होगा, तब तक फ्रांसकी सरकार मजबूत नहीं हो सकती। जनरल डी गालने इस शर्तपर प्रधानमन्त्री बनना स्वीकार किया कि उन्हें नया संविधान बनने तक अधिक अधिकार दे दिये जायँ और नये विधानके लिए जनमत लिया जाय। फ्रांसमें नये संविधानके लिए जो जनमत लिया गया है, उसका समर्थन जनताने बहुमत से किया है।

इस मतदानकी दो विशेषताएँ हैं—(१) कम्यूनिस्टोंका पक्ष काफी कमजोर हो गया, (२) अल्जीरियामें आशासे अधिक मतदान हुआ। उसमें बुरका पहने मुसलिम महिलाओं ने भारी तादादमें संविधानके पक्षमें मत दिया है। करीब १६ प्रतिशत लोगोंने मतदानमें भाग नहीं लिया, जब कि पहले काफी लोग अनुपस्थित हो जाते थे।

प्रधानमन्त्री जनरल चार्ल्स डी गालके समर्थकोंको भी इतना भारी समर्थन मिलनेकी आशा न थी, क्योंकि कम्यूनिस्ट और डी गाल विरोधी पार्टियाँ डटकर उसके विरुद्ध प्रचार कर रही थीं।

फ्रेंच पश्चिमी अफ्रीका, मेडागास्कर और छोटे-छोटे टापुओं तथा संसार भरमें फैले फ्रेंच नागरिकों एवं दूतावासों के कर्मचारियोंने भी इस मतदानमें भाग लिया। कहीं-कहीं तो नये संविधानके पक्षमें ८० प्रतिशत तक मतदान हुआ। नये संविधान सम्बन्धी चुनावकी घोषणाके उपरान्त पाँचवें गणराज्यकी घोषणा की जायगी और आशा है कि फ्रांसकी राजनीतिमें बड़ी दृढ़ता और सक्रियता आ जायगी। हमारे विचारसे स्वतन्त्र अल्जीरियाकी घोषणा, जिसकी मान्यता मिस्र, सीरिया, इराक और चीनने स्वीकार की है, कुछ दिखावटी और अप्राकृतिक-सी मालूम होती है। हम साम्राज्यवादके घोर विरोधी हैं और अल्जीरियाकी स्वतन्त्रता चाहते हैं, पर वस्तुस्थितिसे आँखें कैसे मूँदी जा सकती हैं? ऐसा मालूम पड़ता है कि अल्जीरियन अरब निरन्तर युद्धसे थक गये हैं।

भाई बालकृष्णजीका स्वास्थ्य

हमें पाठकोंको यह बताते हर्ष होता है कि बंधुवर पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का स्वास्थ्य अब पहलेसे बहुत अच्छा है। हिन्दी-जगत् और राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं तथा उनके प्रियजनोंको भाई बालकृष्णजीके विषयमें बड़ी चिंता थी। उनपर हृदय-रोग और पक्षाघातके दो दौरे हुए थे, महीनों वे अस्पतालमें रहे और उनकी वाणीपर पक्षाघातका असर हुआ था। अब भी उनकी वाणी पूरी ठीक नहीं है। गत २६-९-५८ को हम उनसे मिले, तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे अब थोड़ा बोल लेते हैं, थोड़ा चल भी लेते हैं। भाई बालकृष्णजी जैसे सहृदय और मुसीबतके साथी कितने व्यक्ति हैं? हमें उनकी योग्यताका मूल्यांकन नहीं करना। पर हम स्पष्ट लिख दें कि उन जैसे साहित्य-सेवियोंसे सरस्वती का मुख उज्ज्वल होता है। उनकी लेखनीसे जो गद्य और पद्य प्रवाहित होता है, वह कितनोंको प्राप्त है और फिर वे हिन्दी-साहित्यको दलबंदी तथा दुच्चेपनसे कितने दूर हैं। व्यक्तिगत रूपसे हमें हिन्दीके चार-पाँच कवि ही उच्चकोटि के प्रतीत होते हैं और भाई बालकृष्णजी उनमें से एक हैं। हमें आशा है कि ठीक होकर भाई बालकृष्णजी हिन्दी-साहित्यका भंडार भरेंगे। राजनीतिक सेवायें भी उनकी कम नहीं हैं, पर राजनीतिमें आज तपोनिष्ठ व्यक्तिको कौन पूछता है?

भूमि-सुधार और अन्न उत्पादन

गत १६ सितम्बरका नई दिल्लीका समाचार है :—

"केन्द्रीय खाद्य व कृषि-मंत्री श्री अजितप्रसाद जैनने आज यहां राज्य-सभामें खाद्य-स्थितिपर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि भूमि संशोधन कानूनको लागू करनेमें अनिश्चित रूपसे विलम्ब होनेकी संभावना हो, तो उस दिशामें कुछ शांति व संशोधनकी-सी स्थिति अवश्य होनी चाहिए। उस सम्बन्धमें किसी-न-किसी रूपमें समझौता या 'हल' आवश्यक है। विलम्बमें अनिश्चित वातावरणसे उत्पादनकी दिशामें भी अड़चनें उत्पन्न होती हैं। जहां भूमि संशोधन, खाद्य उत्पादन के लिए आवश्यक है, विलम्ब व अनिश्चित वातावरणका अन्त भी जरूरी है। भूमि संशोधन अल्पकालमें ही देश भरमें लागू हो जायगा।"

उपर्युक्त समाचार इतना अस्पष्ट है कि उसकी विश्लेषणात्मक समीक्षा नहीं की जा सकती। भूमि सुधार कानूनके हम पक्षपाती हैं, पर भूमि सुधार कानूनकी रूप-रेखा क्या होगी, इसपर ऊपर लिखे समाचारमें कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। पर जिन लोगोंका यह ख्याल हो कि जोतोंके क्षेत्रको कम-से-कम करनेसे भूमिका उचित वितरण हो जायगा और खाद्यान्न बढ़ेगा, वे न तो किसानोंको समझते हैं और न खेतीको। हमने भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'एग्रीकल्चर लेजिस्लेशन इन इंडिया'—भारतमें कृषि सम्बन्धी कानून—के नवीनतम संस्करणको पढ़ा। इस संस्करणमें, जो भारत सरकारके कृषि और खाद्य मंत्रालय द्वारा प्रकाशित है, चकबंदी पर विशेष प्रकाश डाला गया है। पुस्तकमें इस बातसे बड़ी चिंता प्रगट की गई है कि भारतमें जोतोंके छोटे-छोटे टुकड़े होते जाते हैं। उदाहरणके लिए यदि किसीके पास १०० बीघे ज़मीन है और उसके चार पुत्र हुए तो प्रत्येकके पास २५ बीघे ज़मीन रह गई। फिर यदि किसीके पाँच पुत्र हुए तो एकके पास ५ बीघे ही रह गई। इसी तरह जमीनके इतने छोटे जोत बन जायेंगे कि वह खेती योग्य भी न रहेगी। इसलिए अत्यंत छोटी जोत अधिक उत्पादन और आधुनिक खेती करनेके ढंगोंमें एक अड़चन है, अतः बहुत छोटी जोत नहीं होनी चाहिए। उत्तर-प्रदेशमें एक कानून है कि सवा ६ एकड़के टुकड़े नहीं हो सकते। पर साथ ही बड़े फार्मोंमें एक दोष यह है कि खेतीके नवीन आविष्कार और तरीके वहाँ व्यवहृत नहीं होते।

देशके सामने इस समय विकट समस्या अधिक खाद्यान्न उत्पादन की है, कोरे कानून बनानेकी नहीं। कई राज्योंकी सरकारोंने खेतोंकी जोत सीमित करनेका कानून बनानेका जो प्रयास किया, वह इस समय नहीं करना था। उससे अधिक अन्न तो होगा नहीं, हाँ, असंतोष अवश्य बढ़ेगा। आगामी दस वर्षों तक जोतको सीमित करनेकी बात स्थगित करके अधिक खाद्यान्न उत्पादन करनेकी बातपर अधिक जोर देना चाहिए। भारतमें प्रति व्यक्ति कृषि उपयोगी भूमि २·८ एकड़ है। आबादी यहाँ वैसे ही काफ़ी है और प्रति वर्ष जनसंख्यामें ५० लाखकी वृद्धि हो जाती है। ऐसी दशामें हमारे देशमें न बड़े फार्मोंका विस्तार हो सकता है और न जोतोंमें विशेष वृद्धि ही हो सकती है।

स्मरण रहे कि भारतकी ७० प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूपसे और १२ प्रतिशत जनता अप्रत्यक्ष रूपसे पूरे तौरसे खेतीपर निर्भर है। अंग्रेजी शासनमें देहातोंको आघात इस बातसे पहुंचा कि वहाँके कुटीर धंधे नष्ट हो गए और लोगों को बाध्य होकर खेतीपर ही अवलम्बित होना पड़ा। जब तक देहातके बहुतेरे लोगोंको देहाती धंधों, उद्योगीकरण और कुटीर धंधोंमें काम नहीं मिलता, तब तक खेतीपर मार ही रहेगा। गत दस वर्षकी स्वतंत्रताकी अवधिमें भी देहाती उद्योग-धंधोंकी विशेष उन्नति नहीं हुई। चाहिए तो यह कि शहरवाले कपड़ा, अन्न तथा अन्य बुनियादी आवश्यकताओंके लिए गाँवपर अवलम्बित रहें; पर हो यह रहा है कि गाँव वाले शहरपर अवलंबित हैं। जापानमें बड़ी जोत नहीं है, न खेती ट्रैक्टरों द्वारा होती है, पर वहाँ आधुनिक वैज्ञानिक तरीकोंका खूब प्रयोग है और घोर परिश्रम है। इसलिए अधिक उत्पादनके लिए फार्मका बड़ा या छोटा होना आवश्यक नहीं है। बस, यह कि भूमिका सदुपयोग हो। खेतीके तरीकेमें परिवर्तनकी भी आवश्यकता है। हमारे यहाँ विशेषज्ञ तक अधिक खाद्यान्न उत्पादनमें केवल अन्नकी ही प्रधानता समझते हैं! बागवानी, साग-सब्जी, फल, गो-पालन आदिपर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। फलस्वरूप हमारे देशमें संतुलित भोजन तो क्या, पेट भरनेको पूरा मोटा अन्न भी पैदा नहीं होता। इस समय जोतके क्षेत्रको सीमित करने अथवा अन्य कानूनोंसे किसानोंको परेशान करनेकी आवश्यकता नहीं है। शहरके लिए यह कानून क्यों नहीं बनता कि कोई भी व्यक्ति इतने मकान नहीं रख सकता और १५ वर्ष तक रहनेवाला किरायेदार मकान-मालिक बन जाय, वह टैक्स दे सकता है, पर वह भी सरकारको। खेतीके

लिए ही कड़े क़ानून क्यों ? हमने तो यह तर्क पेश किया है कि किसानोंके लिए जो क़ानून बनते हैं, उनके बनानेवाले किसानोंके वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं। जो तथाकथित प्रतिनिधि हैं, वे न गाँवोंमें रहते हैं, न खेतीको समझते हैं। वह समय भी दूर नहीं, जब किसान स्वयं विधान सभाओंमें जाकर अपनी सुविधाके क़ानून स्वयं बनायेंगे।

हम पाठकोंको यह भी बता दें कि सन् १९५१ की जन-गणनाके अनुसार भारतीय खेतिहर आबादी १९११ की १७'६ करोड़से १९५१ में २५ करोड़ बढ़ गई, यानी ४२'०४ प्रतिशत और कृषि उपयोगी भूमिमें वृद्धि केवल ८'४ प्रतिशत हुई। अर्थात् कृषि उपयोगी भूमिमें खेतीपर अवलम्बित प्रति व्यक्तिके हिसाबसे २३'६८ प्रतिशत भूमि कम हो गई। भारतमें १६'८ प्रतिशत किसानोंकी जोतें एक एकड़ अथवा इससे भी कम हैं और २१'३ प्रतिशत जोतों का क्षेत्रफल १'१ एकड़से लगाकर २'५ एकड़ तक है। इसलिए अधिक अन्न उत्पादनके लिए केवल भूमि सम्बन्धी क़ानूनोंसे ही काम नहीं चलेगा, वरन् अन्य आर्थिक तथा उद्योग-धंधोंकी सक्रिय व्यवस्था भी करनी है। इस बातकी पूरी कोशिश करनी चाहिए कि जोतोंसे अधिक अन्न उत्पन्न हो तथा किसानोंके लिए बाजार तथा मंडीका पूरा प्रबन्ध हो। फ़सलके पहले सरकार काश्तकारोंको पेशगी रुपया दे दे, ताकि फसलपर भाव अधिक सस्ते न हो सकें और किसान अपनी उपजका उचित मूल्य प्राप्त कर सके।

नेहरू-नून-वार्त्ता—

पाठकोंको यह मालूम है कि भारत और पाकिस्तानकी तनातनी तथा वैमनस्यका एक कारण भारत और पाकिस्तानकी सीमा सम्बन्धी दुर्घटनायें हैं। भारतीय सीमामें पाकिस्तानके घिरे क्षेत्र (Enclaves) हैं और इसी प्रकार पाकिस्तानी सीमामें भारतीय घिरे क्षेत्र हैं। पूर्वी पाकिस्तान और असमकी सीमामें लगातार पाकिस्तानकी ओरसे गोलियां चलाई गईं और सीमाके कई क्षेत्रोंपर पाकिस्तानकी सेनाने भारतीय नागरिकोंको पकड़ा। अन्य प्रकारकी गुण्डागीरी हुई। पाकिस्तानमें घृणाका प्रचार भारतके लिए सुसंगठित रूपसे हुआ। पाकिस्तानके प्रधान मन्त्रियों और मन्त्रियोंने प्रत्येक भारतीय चीजके प्रति घृणाका प्रोपैगैंडा शुरू किया और स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि भारतसे पाकिस्तानको युद्ध करना ही होगा। जिहादकी धमकी दी गई। भारतने भी प्रति-रक्षाकी पूरी तैयारी की। पाकिस्तानकी ओरसे सीमा संबंधी समझौते भंग किये गये और स्थिति गम्भीर होती गई। भारतने जब कड़ा रुख अख्तियार किया, तब पाकिस्तानकी ओरसे दोनों देशोंके प्रधान मन्त्रियोंके मिलनकी बात कही गई और उसीके फलस्वरूप पाकिस्तानके प्रधान मन्त्री श्री फ़िरोज खा नून सपत्नीक अपने सलाहकारों सहित नई दिल्ली पधारे। दो दिनों तक सद्भावनापूर्वक पहले दोनों प्रधान मन्त्रियोंकी वार्त्ता अकेले हुई, फिर दोनों देशोंके सलाहकार भी विचार-विनिमयमें शामिल हुए। फलस्वरूप दोनों देशों का तनावका वातावरण बहुत कम हो गया। दोनों प्रधान मंत्रियोंको इस मिलनसे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा इस मिलनसे जो निश्चय हुए हैं, उनसे भी दोनों देशोंके प्रधान मंत्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। सीमा सम्बन्धी कुल ११ समस्यायें थीं उनमेंसे ९ तो हल हो गईं और शेष दो समस्याओंके लिए एक सचिव स्तरकी समिति बना दी गई है। यह भी आशा की जाती है कि शायद पं० नेहरूको इसके लिए कराचीकी सद्भावना यात्रा भी करनी पड़े। हम श्री जयप्रकाश बाबू से इस बातमें सहमत हैं कि पाकिस्तान और भारतमें मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए हर हालतमें। नून-नेहरू-मिलनके विषयमें नई दिल्लीसे जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है, वह निम्नांकित है:—

"भारतके प्रधान मंत्रीके निमंत्रणपर पाकिस्तानके प्रधान मंत्री ९ सितम्बर, १९५८ को नई दिल्ली आये और ११ सितम्बर तक ठहरे। इस अवसरपर पाकिस्तान और भारत के प्रधान मन्त्रियोंने, दोनों देशोंकी सीमापर तनावका कारण दूर करने और सीमा प्रदेशमें शांति कायम करनेकी दृष्टिसे सीमा सम्बन्धी विविध समस्याओंपर विचार-विनिमय किया। सीमा सम्बन्धी समस्याओंपर दोनों प्रधान मन्त्रियोंने मित्रोंकी तरह खुलकर बातचीत की। पूर्वी सीमा सम्बन्धी अधिकांश झगड़ोंपर दोनोंका समझौता हो गया। साथ ही भूतपूर्व कूचबिहारके उन क्षेत्रोंको जो पाकिस्तानमें हैं, और पाकिस्तानके उन क्षेत्रोंको जो भारतमें हैं, एक दूसरेको लौटाने पर दोनों सहमत हो गये। कुछ सीमा-विवादोंपर अभी विचार होनेकी जरूरत है। इनमें दो पूर्वी क्षेत्रमें रैडक्लिफ और वागेके फैसलोंके बारेमें और ५ पश्चिमी क्षेत्रके बारेमें हैं।

प्रधान मन्त्री अपने-अपने पेमाइश विभागोंको इन समझौतेके अनुसार हदबन्दी करने और अनिर्णीत झगड़ोंको तय करनेके तौर-तरीके निकालनेके लिए आवश्यक आदेश देनेको

राजी हो गये। हुसैनीवाला और सुलेमानके विवादोंके बारेमें पाकिस्तान सरकारके परराष्ट्र सचिव और भारत सरकारके राष्ट्रमंडल सचिव अपने इंजीनियरोंकी सलाहसे अपने प्रस्ताव प्रधान मन्त्रियोंको देंगे।

प्रधान मंत्री इस बातपर भी सहमत हुए कि जब इन विवादास्पद क्षेत्रोंकी हदबन्दीके झगड़े तय हो जायँ और वे नियत दिनपर एक-दूसरेके हवाले कर दिये जायँ, तो यहांके निवासियोंसे अपील की जाय कि वे जिस देशमें मिला दिये गये हैं, अपनेको उसीका नागरिक समझकर अपने-अपने घरोंमें ही रहते रहें। प्रधान मन्त्रियोंने यह भी स्वीकार किया कि अनिर्णीत झगड़ोंका फैसला होने, हदबन्दी होने और आपसी समझौतेसे क्षेत्रोंका तबादला होने तक स्थिति यथापूर्व रहे, जोर-जबरसे कोई झगड़ा खड़ा न किया जाय और सीमा प्रदेशमें शांति रहे। इस बारेमें सीमा-स्थित राज्यों और स्थानीय अधिकारियोंको आवश्यक हिदायतें दी जाएंगी।

दोनों देशोंमें मित्रताके सम्बन्ध और सहयोग स्थापित हो, यह दोनोंका समान उद्देश्य है। इस उद्देश्यको और आगे बढ़ानेके उपाय निकालनेके लिए दोनों प्रधान मन्त्रियोंने आगे भी आपसमें सम्पर्क रखना स्वीकार किया।"

हमें बड़ी प्रसन्नता है कि भारत-पाक सीमा-सम्बन्धी तनाव कुछ कम हो गया है। पर हम कागजी समझौतों, संधियों और घोषणाओंके इतने कायल नहीं, जितने कि उन पर किये गये आचरणोंपर। सीमा सम्बन्धी झगड़े प्रायः राष्ट्रों की सीमापर हुआ करते हैं, पर उनके पीछे पाकिस्तान द्वारा किया गया जैसा विष वमन और घृणाका प्रचार नहीं होता। सीमावर्ती लोगोंके झगड़ोंको राष्ट्र आसानीसे सुलझा लेते हैं। विश्वमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और कनाडाके सीमा-सम्बन्ध सबसे अच्छे हैं। भारत और पाकिस्तानके बीच हम ऐसे ही सम्बन्धोंकी कल्पना करते हैं। अब देखना यह है कि नून-नेहरू द्वारा प्रसारित संयुक्त विज्ञप्तिकी बातोंपर पाकिस्तान कहां तक आचरण करता है। नून-नेहरू-वार्तामें कश्मीर, नहरी पानी तथा पाकिस्तानपर भारतीय पावनेकी कोई बात नहीं हुई, क्योंकि दोनों प्रधान मन्त्रियोंका मिलन केवल सीमा सम्बन्धी बातोंको लेकर हुआ।

केरलकी आंतरिक स्थिति और कांग्रेस—

'विशाल भारत' के पिछले अंकोंमें हम कम्यूनिस्ट और केरलकी स्थितिपर अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। केरलकी सुरक्षा सम्बन्धी स्थिति भारतीय व्यवस्थाका केन्द्रबिन्दु बन गई है। केरल राज्यका शासन कम्यूनिस्ट दलके हाथोंमें है और कम्यूनिस्ट शासनसूत्रके विषयमें अनेक लोगोंकी शिकायतें हैं कि वहां जन-साधारणकी सुरक्षा खतरेमें है। कहा जाता है कि शासनसूत्रकी ओरसे दलबन्दीकी पराकाष्ठा हो गई है। पाठ्य-पुस्तकोंमें मार्क्स और लेनिन सम्बन्धी विषयोंको तरजीह दी जाती है और कम्यूनिस्टको मजबूत करनेके इसी प्रकारके प्रयत्न होते हैं। हमें दुःख है, समयाभाव और अपने स्वास्थ्यके कारण केरल जाकर ठीक स्थिति नहीं देख सकते। अतः हमें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित समाचारोंपर ही निर्भर रहना पड़ता है। केरलके मुख्य मन्त्री श्री नम्बूद्रीपाद तथा कम्यूनिस्ट दलने वर्त्तमान केरल शासनके विरुद्ध लगाये आरोपोंका खण्डन किया है तथा स्थानीय कांग्रेसजनोंपर प्रत्यारोप लगाये हैं कि वे सरकारके साथ रचनात्मक कार्योंमें सहयोग नहीं करते। पर केरलवासियोंकी ओरसे सत्तारूढ़ दलके विरुद्ध चुनौती सहित आरोप लगाये जानेके फलस्वरूप कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाईने केरलकी यात्रा की और नई दिल्ली आकर उन्होंने अपनी केरल सम्बन्धी रिपोर्ट कांग्रेस कार्यसमितिके समक्ष प्रस्तुत की। उनकी रिपोर्ट निर्विवाद स्वीकार कर ली गई और कांग्रेस कार्यसमिति ने केरल सम्बन्धी निम्नांकित प्रस्ताव गत १४ सितम्बरको पास किया :—

"कांग्रेस अध्यक्षने अपनी हालकी केरल-यात्राका विवरण दिया। कार्यसमितिने राज्यमें असुरक्षाकी हालत जारी रहनेपर और कांग्रेसजनों व अन्य गैर-साम्यवादियोंपर प्रायः हमलों व घातक प्रहारोंपर, साथ ही राज्य सरकारकी नीति पर, जो प्रायः भेदभावमूलक है और कानूनके नियमके अनुसार नहीं है, भारी चिन्ता व्यक्त की।

"समिति प्रदेश कांग्रेस कमेटीसे प्रार्थना करती है कि वह हिंसाका शिकार हुए व्यक्तियोंके प्रति उसकी सहानुभूति पहुंचा दे।"

कांग्रेस कार्यसमितिके उपर्युक्त प्रस्तावसे स्पष्ट है कि केरलमें सत्तादलके विरुद्ध लगाये आरोप हिंसात्मक हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू भी केरल सम्बन्धी दिये श्री ढेबर भाईके विवरणके श्रोताओंमें थे। जब उपर्युक्त प्रस्ताव सर्वसमिति से पास हुआ, तब इसका यह स्पष्ट अर्थ है कि नेहरूजी भी श्री ढेबर भाईके विवरणसे सहमत हैं। अब बुनियादि प्रश्न यह है कि केरलकी वर्त्तमान आंतरिक अरक्षाकी स्थिति

को ठीक कैसे किया जाय ? स्वयं कम्यूनिस्ट दल तो अपनी वृत्तियोंको बदलनेसे रहा और कम्यूनिस्ट शासनसूत्रकी स्थापनाका मूल कारण केरलकी विषम आर्थिक परिस्थिति तथा वहांके कांग्रेसजनोंका निक्कमापन है। राष्ट्रपतिका शासन लागू करनेका अर्थ होगा भारत सरकारका कांग्रेसके प्रति पक्षपात। हां, यदि आंतरिक स्थिति बिगड़ती ही गई और कम्यूनिस्ट शासक दलसे अरक्षा और अराजकताको बल मिलता गया, तो केरलमें राष्ट्रपति शासन लागू होगा ही, पर अन्तिम निर्णय तो जनताके वोट द्वारा ही होगा।

केरलकी वर्तमान स्थितिसे देशके अन्य राज्योंको सबक सीखना चाहिए। केरलके प्रमुख कम्यूनिस्ट नेता भूतपूर्व कांग्रेसी हैं। आर्थिक संकट, भुखमरी, भ्रष्टाचार और बेबसीके वातावरणमें कम्यूनिस्ट कीटाणु पनपते हैं। जनता कम्यूनिस्ट इसलिये नहीं होती कि उसका विश्वास कम्यूनिस्ट दर्शनमें है, वरन इसलिये कि अपनी परेशानीमें जनता परिवर्तन चाहती है। डूबती जनता कम्यूनिस्टोंके खोखले वादों-रूपी तिनकेको अपना सहारा मान लेती है। कांग्रेसमें स्वार्थपरताका बोलबाला है। खुशामदसे ही बहुतोंके लिए कांग्रेसमें आमद है। इसीलिए कांग्रेससे अनेक व्यक्ति अलग या तटस्थ होते जा रहे हैं। कम्यूनिस्टोंके लिए साधनका कोई विचार नहीं है। जिस प्रकार और जैसे भी साध्यकी सिद्धि हो, वे करते हैं।

निर्यात-वृद्धि संबंधी सरकारी निर्णय

गत ३० अगस्तको भारत सरकारने अपनी निर्यात सम्बन्धी नीतिको प्रकाशित कर दिया। नवीन निर्यात सम्बन्धी नीतिका आधार है भारतके निर्यात व्यापारमें वृद्धि करना और यह निर्णय देशकी आंतरिक आवश्यकताओं को ध्यानमें रखकर किया गया है ताकि भारतीय उपभोक्ताओंको कष्ट न हो। आशा है व्यापारी बन्धु इस नीतिसे लाभ उठाकर देशके व्यापारको बढ़ायेंगे, ताकि विदेशमें मुद्राकी कुछ उपलब्धि हो सके। सरकारी नई नीतिके अनुसार :—

प्रतिबंधवाली सूचीमें से अनेक चीजोंके निर्यातके लिए अब तदर्थ आधारपर निर्यात लाइसेंस दिये जाएंगे। जिनके निर्यातपर से पूरी तरह नियंत्रण हटा दिया गया है, उनमें मुख्य इस प्रकार हैं : बिजलीके छतके पंखे, कलईकी चीजें, लालटेन, दियासलाई, देशी दवाएँ, कागज और गत्तेकी चीजें, अनेक रसायन, बिसातखानेकी चीजें, ताजे फल और फलोंकी चीजें, साबुन और साबुनका चूरा, हथकरघा कपड़ा, रेशम और नकली रेशम, स्टोरेज बैटरियां, छाते, प्लास्टिकको चीजें, ऊनी और वस्टेंड कपड़े, लोहा और इस्पातका सामान, रंग, रोगन और इनेमल।

लगभग १०० ऐसी चीजोंपर से भी पूरी तरह नियंत्रण हटा दिया गया है, जिनके निर्यातके लिए अब तक आसानी से लाइसेंस दिए जाते थे, अर्थात् इनके निर्यातके लाइसेंस लेनेके लिए निर्यातकको अपना पिछला निर्यातका विवरण नहीं देना पड़ता था। अब निर्यातक बिना लाइसेंस लिए और लाइसेंसकी फीस दिए, उन चीजोंको बाहर भेज सकता है। कुछ मुख्य चीजें ये हैं : मिर्च, रेंड़ी और अलसीका तेल, क्लोरीन, ग्लीसरीन आदि कुछ रसायन, बिजलीके पंखे (मेजके), लैम्प, बिजलीका सामान और मोटरें, डीजल इंजन, सिलाईकी मशीनें, अलुमीनियमकी चद्दरें, लोहे और इस्पातके पाइप, टीनके डिब्बे, साइकिलें, सूतका कुछ सामान, बनियान, मोजे आदि।

कुछ ऐसी चीजोंके निर्यातपरसे नियंत्रण हटा दिया गया है, जिनपर अब तक प्रतिबन्ध था। उनमें मुख्य ये हैं : जैतूनका तेल, कच्चा निकल और टीन, पुराने अखबार आदि।

सूत, सिलाईके धागे, कांचकी खाली बोतलें, पेनेसिलीन आदिके निर्यातके लिए पहले कोटा निर्धारित किया जाता था। अब इनके निर्यातकी भी पूरी छूट दे दी गई है।

मवेशियों, मुर्गियों, गोला-बारूद, रंग आदिके निर्यातपर पूर्णतः प्रतिबंध था। अब इनके निर्यातके लिए तदर्थ आधार पर लाइसेंस दिए जाएंगे।

सारीय तेल, अगिन पासके बीज और जड़, लोहा, मैंगनीज आदिके निर्यातके लिए बहुत कम लाइसेंस दिए जाते थे। अब इनके निर्यातके लिए भी पूरी छूट दी जाएगी।

पाकिस्तान द्वारा ग्वाडरकी ख़रीद

तीन सौ वर्गमीलका प्रायद्वीप ग्वाडर कलातसे पश्चिमकी ओर पाकिस्तानकी सीमापर समुद्र-तटपर है। पहले यानी १७वीं शताब्दीमें यह कलातके खानके अधीन था, पर बादमें कलातके खानने मस्कत और औमानके सुल्तानको ग्वाडर दे दिया। गत मास पाकिस्तानने ब्रिटिश सरकारकी सहायतासे ग्वाडरको चौरासी लाख डालरमें खरीद लिया। चौरासी लाख डालर करीब साढ़े चार करोड़ रुपएके हुए। पाकिस्तान के पत्रोंमें समाचार छपा है कि पाकिस्तानने ग्वाडर दस करोड़ रुपएमें खरीदा। पर हम इसकी कीमतके आंकड़े एक अमरीकी पत्रसे दे रहे हैं। ग्वाडरका महत्व कई दृष्टियोंसे बहुत बड़ा

है। क़ीमतका कोई सवाल ही नहीं। यदि दस करोड़ रुपए भी उसके देना पड़ते, तो भी वह कोई अधिक क़ीमत न होती। ग्वाडर पाकिस्तानमें आनेवाली ग़ैरकानूनी वस्तुओंका अड्डा था और वह ईरानी लड़कियोंके चुराने तथा समुद्री डाकुओं का भी वह अड्डा रहा है। नावोंमें डीज़ल इंजिन लगाकर पाकिस्तानी पेट्रोलको चकमा देकर यहाँसे सामान बेचा जाता था। यह भी सम्भावना है कि ग्वाडरमें मिट्टीका तेल भी निकले और बिक्रीकी शर्त यह भी है कि यदि वहाँ तेल निकला, तो कुछ प्रतिशत तेल या उसकी आमदनी पाकिस्तान मस्कतके सुल्तानको देगा। ग्वाडरका सैनिक महत्व भी है। पाकिस्तानके पास अब तक एक ही कराचीका बन्दरगाह था। अब ग्वाडरका दूसरा बन्दरगाह भी हो गया जहाँ वह अपना हवाई अड्डा भी स्थापित करेगा।

बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि ग्वाडरकी बिक्रीका समाचार हमने पहले एक अमरीकी साप्ताहिकमें पढ़ा। हमें पाकिस्तानका यह प्रोपैगैंडा मालूम होता है कि भारत ग्वाडर खरीदना चाहता था। भारतके लिए वह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

नेहरूजीकी भूटान-यात्रा

गत मास भारतके प्रधान मन्त्री पं० नेहरूने भूटानकी यात्रा की। उनका वहाँ जो स्वागत हुआ, वह अलौकिक था। शायद नेहरूजी पहले ही विदेशी प्रधान मन्त्री हैं, जिन्होंने भूटानमें पदार्पण किया। नेहरूजीकी यात्रासे भूटान और भारतके सम्बन्ध और भी घनिष्ट हो गये। भारतकी ओरसे भूटानको आर्थिक सहायताका वचन भी दिया गया है। महाराज भूटानने घोषणा की कि भूटानके स्कूलोंमें हिन्दीका अध्ययन प्रारम्भ कराया जायगा। भूटान महाराज की यह योजना भूटान और भारतके लिए और भी उपयोगी सिद्ध होगी।

फारमूसाकी समस्या

फारमूसाकी समस्या अभी तक जटिल बनी हुई है। पाठकोंको शायद मालूम हो कि गत चार सितम्बरको चीनी साम्यवादी सरकारने घोषणा की थी कि वह अपने प्रादेशिक समुद्रके क्षेत्रको १२ मील तक बढ़ा रही है। इसलिए चीन तटवर्ती टापू किमोय और मात्सु इत्यादि उसके प्रादेशिक सामुद्रिक क्षेत्रमें आते हैं और फारमूसा भी साम्यवादी चीन का है। उसके लिए साम्यवादी चीन लड़ाई भी लड़ेगा। लगभग तेरह चेतावनियाँ साम्यवादी चीनने अमेरिकाको दी हैं कि अमेरिका फारमूसा खाली कर दे। चीनकी तटवर्त्ती तोपोंने किमोयपर भयंकर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। रूसके प्रधान मन्त्री श्री ख्रुश्चेवने घोषणा की कि यदि चीनपर अमेरिकाने आक्रमण किया, तो वह आक्रमण रूसपर माना जायगा। उधर अमेरिकाने अपना अत्यन्त शक्तिशाली सातवाँ समुद्री बेड़ा फारमूसाकी रक्षाके लिए लगा दिया और फारमूसामें आधुनिकतम सावर और जेट विमान तथा अन्य अणु-आयुध शस्त्रोंसे सुसज्जित सैनिक अड्डे क़ायम कर लिये। स्थिति अत्यन्त गम्भीर होनेपर भी हमें यह आशंका नहीं कि चीन और रूस संयुक्तराष्ट्र अमेरिकासे लड़ाई मोल लेंगे, क्योंकि महायुद्ध छिड़नेपर रूस और चीन मिलकर अमेरिकाका मुकाबला नहीं कर सकते। अमेरिकाके राष्ट्रपति श्री आइज़नहावर और विदेश मन्त्री श्री डलेसने यह स्पष्ट कर दिया कि अमेरिका रूस और चीनको धमकियोंमें नहीं आयेगा और न वह आक्रमणकी आशंकासे दबेगा। उधर क्यूमितांगके राष्ट्रपति मार्शल च्यांग काई-शेखने यह घोषणा कर दी है कि वे किमोयको किसी भी क़ीमतपर देनेको तैयार नहीं और आवश्यकता पड़ी, तो वे चीनके भूभागपर आक्रमण करेंगे।

रूसकी कूटनीतिका एक ढंग यह है कि वह पहले लम्बी-चौड़ी घोषणाएँ करता है, धमकियाँ देता है और फिर थोड़ा बहुत अपना काम निकालनेपर सन्धि-चर्चा करता है। यही कला रूस फारमूसामें व्यवहृत कर रहा है। भारतकी ओरसे राष्ट्रसंघमें भारतके प्रतिरक्षा मन्त्री श्री कृष्ण मेननने श्री डलेस और श्री चाऊ एन लाइके मिलनका प्रयत्न किया और यह भी कहा कि यदि चीनको राष्ट्रसंघकी सदस्यता प्राप्त हो जाय, तो फारमूसाकी समस्या हल हो जायगी। हमारे खयालसे किमोय द्वीपका कोई सैनिक महत्व नहीं है। प्रश्न तो प्रतिष्ठा का है। अमेरिकाकी परेशानी यह है कि यदि साम्यवादी चीनको राष्ट्रसंघमें मान्यता मिल जाती है, तो फिर राष्ट्रवादी फारमूसाका कोई स्थान नहीं रहता और अमेरिकाकी विदेशी नीतिको दूसरे ढंगसे ढालना होगा। इसके अतिरिक्त यदि फारमूसा साम्यवादी चीनको दे दिया जाता है, तो मार्शल च्यांग काई-शेखके लाखों अनुयाइयोंकी क्या गति होगी। सब चाहते हैं कि शान्तिमय उपायोंसे समस्या हल हो जाय; पर इच्छाएँ कार्यान्वित कैसे हों? फारमूसाके पीछे अमेरिका है और चीनके पीछे रूस। रूस और चीनकी ओर फारमूसा

के लिए केवल बानर विभीषिका है। अमेरिका शान्ति चाहता है; पर वह साम्यवादी बढ़वारको विश्व-शान्तिके लिए खतरा समझता है। किमोयमें खाद्य तथा सैनिक सामग्री पहुंचानेमें अमेरिकाने पूरी सहायता दी और साम्यवादी चीनके वायुयानोंने किमोयपर आक्रमण किया, तब श्रेष्ठतम अमेरिकी वायुयानोंकी सहायतासे अनेक रूसी विमान नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। इन पंक्तियोंके लिखते समयका समाचार है कि अमेरिकाका रुख किसी समझौतेके लिए उतना कड़ा नहीं है, जितना पहले था।

भारतीय गौरव मिहिर सेन

गत मास २७ वर्षीय बैरिस्टर श्री मिहिर सेनने इंगिलश चैनलको लगभग १४ घंटोंमें तैरकर पार किया। श्री मिहिर सेनने दो बार पहले भी असफल प्रयत्न किये थे, पर तीसरी बार वे सफल हुए। इंग्लैंडके किनारेसे फ्रांसके समुद्र-तटकी २२ मीलकी दूरीको उन्होंने सकुशल पार किया। श्री मिहिर सेन भारत ही नहीं, वरन् एशियाके प्रथम तैराक हैं, जिन्होंने इंगिलश चैनलको तैरकर पार किया। हम अपनी और 'विशाल भारत' की ओरसे श्री मिहिर सेनको बधाई देते हैं, क्योंकि उन्होंने भारतका गौरव बढ़ाया है।

स्व० सम्पूर्णसिंहजी

हमें यह जानकर दुःख हुआ कि श्री सम्पूर्णसिंहजीकी मृत्यु गत १० सितम्बरको जालन्धरके निकट गराना गाँवमें हो गई। उनका जन्म सन् १८८९ में अमृतसर जिलाके वरसिंह सुभा, सिंहवालामें हुआ था। उन्होंने १९१६ में वकालत शुरू की। वे १९२९ से १९४५ तक पंजाब विधान मण्डलके सदस्य रहे और कांग्रेस दलके नेता। वे केन्द्रीय विधान सभाके भी सदस्य रहे। दो बार वे गोलमेज-सम्मेलन में आमन्त्रित किये गये तथा कांग्रेस महासमितिके सदस्य रहे। वे केन्द्रीय रूई समितिके सदस्य तथा ईस्ट इण्डिया काटन एसोसियेशनके डाइरेक्टर थे।

विद्वद्वर डा० भगवानदास

गत १८ सितम्बरको भारतके प्रमुख दार्शनिक और प्रकाण्ड पण्डित भारतरत्न डा० भगवानदासजीका निधन अपने निवास-स्थान काशीमें हो गया। उनकी आयु ९० वर्ष थी। यों तो जन्म और मरण जीवनके दो आवश्यक पहलू हैं; पर मनीषियों और देशके गौरवतुल्य पण्डितोंका किसी भी आयुमें उठ जाना राष्ट्रकी क्षति है। स्व० डाक्टर भगवानदासका प्रकाण्ड पाण्डित्य भारतीय साहित्याकाशमें प्रचण्ड मार्तण्डकी भाँति तपा। उसकी प्रखर ज्योतिसे भारतका दार्शनिक जगत प्रकाशित हुआ। स्व० डा० भगवानदास एक उद्भट पण्डितके अतिरिक्त महामानव भी थे। जिस कामको करते, बड़ी लगनसे करते और 'योगः कर्मसु कौशलम्' के वे जीवित उदाहरण थे। स्वभावसे सरल, बुद्धिसे विचक्षण और दयासे परदुःखकातर डा० भगवानदास देशकी एक थाती थे। उनसे मिलनेमें कभी यह महसूस न होता था कि मिलनेवाला एक महापुरुषके सम्मुख बैठा है। व्यावहारिक दृष्टिमें भी वे बड़े पटु थे। एक बार हम एक बड़ी कठिनाईमें पड़ गये थे। बहुत सोचनेके बाद, तर्क एकत्र कर लिये और बन्दर मारनेका फैसला कर लिया। पर बन्दर मारनेपर तहलका-सा मच गया। पर बन्दर मारनेमें हमारे दो महापुरुष सहायक हुए। एक तो थे महात्मा गांधी और दूसरे स्व० डा० भगवानदासजी। उन्होंने बताया कि जब वे डिप्टी कलक्टर थे, तब उन्होंने एक बन्दर बन्दूकसे मारा था और बादमें बड़ा पांडित्यपूर्ण लेख भी लिखा था। उनके उस लेखकी चर्चा और मौखिक परामर्श हमारे लिए ढालके समान रहे। डा० भगवानदासके निधनसे भारतीय दर्शनका एक अध्याय समाप्त हो गया। हम श्रीप्रकाशजी तथा उनके कुटुम्बीजनोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रगट करते हैं। वैसे डा० भगवानदासजीका निधन राष्ट्रकी एक क्षति है और उस दृष्टिसे हम 'विशाल भारत' के पाठकोंकी ओरसे भी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।



गौतमचंद्रिकामें गो० तुलसीदास

डा० रामदत्त भारद्वाज

प्राक्कथन

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्रने २०१२ वि० की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'गौतमचंद्रिका' का एवं तद्गर्णित गो० तुलसीदासके चरित्रका सोद्धरण परिचय हिन्दी-जगत्के समक्ष विचारार्थ उपस्थित किया है। अतएव कुछ निवेदन है।

तुलसी-वृत्तकी मुख्य बातें

मिश्रजीने तुलसीदास-सम्बन्धी वृत्तान्तकी कुछ मुख्य बातें इस प्रकार अभिव्यक्ति की हैं :—

१–काशी में शिव-केदारके समीप आनंदकानन ब्रह्मचारी रहते थे, उनके यहाँ 'गौतमचन्द्रिका' के (तथाकथित) रचयिता कृष्णदत्त मिश्र भी पढ़ते थे। वर्षाऋतुमें एक बार तुलसीदास आये और उन्होंने ब्रह्मचारीजीके चरणोंमें प्रणाम कर अपने गुरु नरहरिका एवं अपना वृत्तांत बताया। २–नरहरिजी अयोध्यासे नर्मदा-तट चले गये थे और तुलसीदासजीने यमुना-तटपर यमुना नामकी किसी स्त्रीसे विवाह कर लिया था। ३–कृष्णदत्तने तुलसीदासको अपना परिचय दिया और माता-पिताके स्वर्गवासी होनेकी बात कही, जिससे वे दुखी हुए। ४–बाढ़ आनेपर तुलसीदासजीने गंगाजीको शान्त किया। ५–उजैनीदासने सूर और मीराके कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी पद गाये, और इसपर तुलसीदासजीने भी कृष्ण की प्रशस्तिके पद गाये। ६–कृष्णकी कीर्तिध्वजा फहराकर तुलसीदास 'गोसाईं' हो गये ; लोगोंने उन्हें ढोंगी, पतित, कुजाति आदि कहना आरम्भ किया, जिसपर उन्होंने रामके पतित-पावन बानेकी बात कही। ७–तुलसीदासजीने एक बार मिथिलामें जाकर विद्यापतिके वंशज रमाबन्धु ठाकुरके किसी व्यंग्यके प्रत्युत्तरमें कहा था कि आप तो श्री जानकीजी के नाते हमारे मामा हैं और मिथिला मेरी ननसाल है। ८–तुलसीदासजीके सत्संगी ये थे : काशीनाथ पण्डित, समर सिंह राजपूत, गंगाराम सत्संगी, कैलास कवि, उजैनीदास संगीतज्ञ, भजन ग्वाला, जयराम नगर सेठ, सियाराम तमोली, नाथू नाऊ, रामू मल्लाह, खेलावन रैदास, बोधो गोड़, हरि हरवाह, मीर ढाढ़ी, जसन जुलाहा, भगवान् ब्राह्मण, तोडर, कमण्डाके मेघा भगत आदि। ९–सरयू-घाघराके संगमपर शूकरक्षेत्रमें, जो शांडिल्य ऋषिका आश्रम है, नरहरि स्वामी रहते थे, जो शांडिल्य गोत्रके ही थे और तुलसीदासके गुरु थे और जो परिणत वयमें नर्मदासे रामेश्वर होते हुए शूकर-क्षेत्र लौटे और बुढ़ापेके कारण काशी आ बसे और कैलास-वासी हुए ; उनका श्राद्ध तुलसीदासने किया। १०–तुलसीदासजी २८ वर्षकी अवस्थामें (जब कि कृष्णदत्त १८ वर्षके थे) काशीनाथ पण्डित, कैलास कवि, मेघा भगत तथा अन्य लोगोंके साथ मानसरोवरकी यात्राको गये और ३१ वर्षके वयमें लौटकर अयोध्यामें रामचरित-मानसका निर्माण किया। ११–उन्होंने नैमिषारण्य, गंगासागर और जगन्नाथपुरीकी यात्रा की; रामेश्वरमें गंगाजल चढ़ाया; द्वारका, प्रभास, कुरु-क्षेत्र, वृन्दावन और नर्मदातटकी यात्राके अनन्तर काशी आकर रामायणके किसी व्यासको वाल्मीकि मानकर पूजन और रामराजलीलाका विस्तार किया। १२–तोडरकी मृत्युपर वे उनके लिए दुखी हुए। उन्हें (संवत् १६६८ के पश्चात्) आधे आषाढ़में बाहुपीड़ा हुई, जो आधे श्रावणमें दूर हो गयी। तदन्तर तोडरके पुत्र आनंदराम तथा रामभद्रके पुत्र कन्हईराम के झगड़ेमें पंच बनकर उन्होंने काज़ीसे समुचित निर्णय कराया। १३– (सं० १६६८ के पश्चात्) रुद्रबीसी और मीनकी सनीचरीमें काशीकी भयावह स्थिति हो गयी थी, किन्तु रामभजनके द्वारा गोस्वामीजीने महामारीको शान्त कर दिया। १४–संवत् १६८० में (श्रावण कृष्णा तीज) को ८० वर्षकी आयु पाकर गोस्वामीजीने गंगालाभ किया। १५–तुलसीदासजीकी रचनाका अष्टांगयोग यह है : रामगीतावली, पदावली, कृष्णगीतावली, बरवै, दोहावली, सुगुन (सगुन=शकुनावली=रामाज्ञा प्रश्न), कवितावली, सोहिलो मंगल।

साधारण विमर्श

जिस प्रकार 'घट रामायन' में तुलसीदासजीका जीवन-वृत्त पुस्तकके समाप्तिपर दिया गया है, ठीक उसी प्रकार 'गौतमचंद्रिका' में भी वह अन्तमें दिया गया है ; और जिस प्रकार पहला वृत्त भ्रामक है, वैसा ही दूसरा भी। इसके अतिरिक्त 'गौतमचन्द्रिका' की भाषा भी कहीं-कहीं ऐसी लचर है कि यह स्पष्ट नहीं होता कि लेखक क्या कहना चाहता है। अस्पष्टता कभी-कभी सुचिंतित होती है, जिससे मनमाना

अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। एक अँगरेज़ी उक्तिके अनुसार महान् वह है जिसकी बात समझमें कम आवे। इस न्यायसे 'गौतमचन्द्रिका'-कारको महाकवि कह देना स्यात् अनुचित न होगा। स्थालीपुलाकन्यायसे, 'हमहूँ गुरु आस्रम करि वासा। विधिवत करहुँ वेद अभ्यासा।' इस उद्धरणमें 'हमहूँ···करहूँ' को आर्ष (आकेंइक) प्रयोग मान लेना चाहिए, क्योंकि लेखक 'सामग' तो थे ही; वे स्वयं कहते हैं : 'सामग कृष्णदत्त मम नाऊँ'। निम्नलिखित पंक्तिसे यह भासता है कि तुलसीदासजी के समयमें भी चोर-बाजारी (ब्लैकमार्केटिंग) का बोलबाला था, पर क्या यह तथ्य है ?

'नहिं घर चोर बाजारि न साहू।
परी वस्तु किछु हानि न लाहू।'

यदि ऐसी च्युतियोंकी ही बात होती तब भी ठीक था, किन्तु कतिपय अन्य खटकनेवाले लेख तथा प्रबल अन्तःसाक्ष्य 'गौतम-चन्द्रिका' की चन्द्रिकाका अपहरण कर लेते हैं, जिनकी चर्चा अभी की जायगी।

लिपिकरणकी विलक्षणता

श्री चौधरी छुन्नी सिंहने गौतमचन्दिका-प्रदत्त तुलसी-विवरणको अपनी बहियोंके दाएँ-बाएँ पार्श्वोंपर नकल किया था। मिश्रजीने चौधरीजीसे पूछा था कि आपने बहियोंपर क्यों लिखा ? चौधरीजीने उसका जो उत्तर दिया, वह समझ में नहीं आता। क्योंकि यदि पाण्डु-लिपि ग्रन्थ-स्वामीके द्वारा छोड़ दी गयी थी, तो उसकी अनुपस्थितिमें पुस्तककी नकल बहियोंके हाशियोंपर ही क्यों ? वह तो यथावत् की जा सकती थी; और यदि ग्रन्थ-स्वामी वहाँ उपस्थित रहता था और उसे यह अभीष्ट न था कि ग्रन्थकी प्रतिलिपि की जाय, जैसा कि चौधरीजीका कथन है, तो वह वहींपर भी उसे नकल क्यों करने देता ? क्या ग्रन्थ-स्वामी धोखा खाता रहा, और बहुत समय तक ? अस्तु।

निर्माण-काल

'गौतमचन्द्रिका' में उल्लेख है कि यह पुस्तक गो० तुलसीदासकी बर्षीके दिन, अर्थात् श्रावण कृष्णा तृतीयाको संवत् १६८१ में, पूर्ण हुई। 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है :

संवत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
श्रावण स्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।

इसके अनुसार तुलसीदासजीका स्वर्गारोहण श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवारको संवत् १६८० में हुआ। 'गौतमचन्द्रिका' स्यात् रूपान्तरसे इसीका समर्थन इस प्रकार करती प्रतीत होती है :

संवत सोरह सै एकासी, तुलसी बरषी असी प्रकासी।
सावन कृष्णा तीजि तिथि पाई, यह गौतमचन्द्रिका पुराई।

उक्त उद्धरणमें वारका उल्लेख नहीं हुआ है, अतएव इस तिथि के सत्यापनका प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु 'मूल गोसाईं चरित'-प्रदत्त तुलसी-निधन-तिथि तो गणनासे अशुद्ध मानी गयी थी।

पूर्वापर-हीनता

'गौतमचंद्रिका' में पूर्वापर-सम्बन्धका निर्वाह नहीं है, अतएव घटनाओंके इधर-उधर हो जानेका उत्तरदायित्व उसपर नहीं होना चाहिए !

पूर्वापर संगति रहित सब्द करत मति आन।
स्रवन वदन दृग जोरि मति सोधु सब्द अनुमान।

उक्त चन्द्रिकाके ग्रन्थकार कृष्णदत्त तो गोस्वामीजीके समकालीन ही नहीं, गुरु-भाई भी थे। यदि वे गोस्वामीजीके विषयमें 'प्रत्यक्ष'के आधारपर संगतिपूर्वक पूर्वापरका निर्वाह कर देते तो लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पश्चात् किसी अनुसंधित्सु को 'अनुमान' की क्या अवश्यकता पड़ती ? अनुमान तो अनुमान ही है।

गुरु-भ्रातृत्व

तुलसीदासजीको कृष्णदत्तने अपना गुरु-भाई बताया है। काशीमें शिव-केदारके निकट आनन्दकानन नामक वेदान्ती ब्रह्मचारी रहते थे, उन्हींसे कृष्णदत्त पढ़ते थे। गोस्वामी जी भी, यमुनातटस्थ यमुना नामक पत्नीको छोड़कर, ब्रह्मचारीजीकी शरणमें आकर और 'अपुऔ गुरु हम कहँ प्रतिपालइ' कहकर उनके शिष्य बन गये।

सरयू-घाघरापर नरहरि

तुलसीदासजीके पहले गुरु शाण्डिल्य-गोत्रिय नरहरि स्वामी थे, जो सरयू-घाघराके संगमपर बराहक्षेत्रमें निवास करते थे। इन्होंने नर्मदा, रामेश्वर आदि तीर्थोंमें विचरण किया था और अन्तमें काशीमें आकर मोक्ष लाभ किया। उसी समय कृष्णदत्तके गुरु भी ब्रह्मपद-लीन हो गये और तुलसीदासजीने भी उनके चरणोंकी विधिवत् सेवा की थी।

सरऊ अपर घाघरी दोऊ। संगम तीर्थराज सम सोऊ।
धवलि जेठि एकादसि माही। तिहाँ विपुल नरनारि नहाही।
बहुरि बराहखेत मोथा सँचि। पूजहिं बटु बराह वेदी रचि।
तहँवा सकल लोक विख्याता। सुखदा भक्तिसुत्र निर्माता।
सांडिल रिषि आस्रम थल पासा। जहँ तहँ सरुधारिन्हकर बासा।
राम प्रदत्त भूमि अधिकारी। खलदल दलन धर्म धनुधारी।
सांडिल गोत्रज नरहरिस्वामी। ज्ञान निधान भक्ति पथ गामी।
रमि नर्मदाकुटी अगराए। रामेस्वरहि पूजि पुनि आए।
चउथपनाश्रम धर्म विसर्जन। चाहे करन भक्ति फल अर्जन।

अघगजगंजन नरहरि सूकरखेत् विहाइ।
आरन्यक सुखमाभरी कासी पहुँचे आइ।
रमि रमाय आनन्दवन गए महा सिवलोक।
गुरुपद उत्तरकृत्य करि तुलसी भए असोक।
मम गुरु माधव कृष्ण लहि भए ब्रह्मपदलीन।
तिन्ह पदकी आराधना तुलसिहुँ विधिवत कीन।

इन उद्धरणोंमें वराहक्षेत्रकी स्थिति सरयू-घाघराके संगमपर बतायी गयी है और नरसिंहजीको शांडिल्य-गोत्रका। सोरों-सामग्रीके अनुसार सूकरक्षेत्र गंगातटपर और नरसिंहजी वसिष्ठ-गोत्रीय और गृहस्थ थे। कृष्णदत्त अपने गुरुकी महिमाके लिए विशेष चिंतित और स्यात् तुलसीदासजीके द्वारा उनका चरण स्पर्श कराके आनन्दलाभ करते प्रतीत होते हैं। एक स्थानपर वे लिखते हैं :

हेरेउँ गुरुपद खोजि न पाएउँ।
तकि तव चरन सरन मैं अएउँ।
अब एहि छन कछु बातिक चालहु।
आपुओ गुरु हम कहँ प्रतिपालहु।

अन्यत्र वे लिखते हैं :

मम गुरु माधव कृष्ण लहि भए ब्रह्मपदलीन।
तिन्ह पदकी आराधना तुलसिहुँ विधिवत कीन।

उस समय तुलसीदास तो २८ के थे और उन्होंने तब तक रामायणका निर्माण नहीं किया था, क्योंकि कृष्णदत्तके अनुसार रामचरितमानसके रचनाकालके समय गोस्वामीजी ३१ वर्षके थे। सूकरक्षेत्रकी स्थितिको सरयू-घाघराके संगमपर बताना, उसका अन्य परिचय देना, वहाँ सरयूपारिणोंकी बस्तीका उल्लेख करना और उस भूमिको राम-प्रदत्त बताना 'गौतमचंद्रिका'-कारकी दूरदर्शिताको प्रकट करता है, क्योंकि उनके इस लेखसे तुलसीके सम-सामयिक कवि केशवका (कवि-प्रिया, २,१-३ में) यह लेख झूठा सिद्ध हो जाता है कि सनाढ्य ब्राह्मण रामचन्द्रजीके पुरोहित थे और उन्हें उनसे बहत्तर ग्राम दानमें प्राप्त हुए थे; एटा जिलेके गंगातीरस्थ सूकरक्षेत्रका भी निराकरण स्वतः हो जाता है।

'आनन्दकानन' कौन ?

पर 'आनन्दकानन' से क्या तात्पर्य ग्रहण किया जाय ? क्या यह नाम 'गौतमचन्द्रिका' के लेखक कृष्णदत्त मिश्रके गुरुका द्योतक है अथवा किसी बाग वा पार्क का ? गुरुरूपसे परिचय इस प्रकार है :

ब्रह्मचर्यव्रतरत महत दछिनी द्विजकुलदीप।
नामानँदकानन लसत सिव केदार समीप॥
सुद्ध वेद वेदांग के पारंगत श्रीमान।
ब्रह्मसूत्रज्ञाता परम मानत सबहिं समान॥
× ×
बहुतक सिष्य ब्रह्मचारीके। सुमति सुसील सकल सुठ नीके॥
पूर्व मध्य उत्तर मीमांसा। सूत्रन्हिं सरुझावहि गुरु पासा॥
पाई विपुल विद्या फल दानहिं। गुरु आनंदकाननहिं मानहि॥
हमहूँ गुरु आस्रम करि बासा। विधिवत करहुं वेद अभ्यासा॥

जब तुलसीदासजीके पहले गुरु नरहरि नर्मदासे काशी आये, तो कृष्णदत्तके शब्द हैं :

अघगजगंजन नरहरी सूकरखेत विहाइ।
आरन्यक सुखमाभरी कासी पहुँचे आइ॥
रमि रमाय आनंदवन गए महा सिवलोक।
गुरुपद उत्तरकृत्य करि तुलसी भए असोक॥

अतएव संदेह होता है कि 'आनन्दकानन' किसी व्यक्ति का नाम है अथवा किसी बनका ? यदि कहा जाय कि आनन्दवनमें निवास करनेवाले व्यक्तिका, तो प्रश्न उठता है कि क्या काशीके प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वतीका ही दूसरा नाम आनन्दकानन है, क्योंकि निम्नलिखित श्लोक 'गौतमचन्द्रिका' में आनन्दकाननके मुखसे निःसृत हुआ है :

"सुनि आनन्दकाननहु भाषे। नंदन बन जेहि पद अभिलाषे।
श्लोक—आनंदकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
कविताम्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता।"

किन्तु उक्त श्लोककी निःसृति तो मधुसूदन सरस्वतीजीके मुखसे तुलसीदासजीकी प्रशंसामें बतायी जाती है, जिसका उल्लेख अनेक व्यक्तियोंने किया है, स्व० रामदास गौड़ने भी। जो हो, 'गौतमचन्द्रिका' में तुलसी-प्रशंसक मधुसूदन

सरस्वतीका उल्लेख नहीं है। उनके श्लोकको अन्य व्यक्तिके मुखसे कहलानेका क्या अभिप्राय है, इसे कृष्णदत्त मिश्र ही समझते होंगे।

गौतम ब्राह्मण ?

कहीं गो० तुलसीदास कृष्णदत्तके कोई सगे-सम्बन्धी तो न थे ? क्योंकि प्रथम मिलनके अवसरपर जब तुलसीदासजी को कृष्णदत्तके वंशका परिचय मिला तो तुलसीदासजी व्याकुल होकर बोले उठे थे—

हम करजोरे सीस नवाए, नाउँ गोत कुल गाँउँ बताए।
सूधी सहिदानी बानी सुनि, तुलसी व्याकुल बोल उठे पुनि।
हा कुलदेव गौतमी माता, तोहि ग्रसि काल ग्रसेउ कुल नाता।

यहाँ 'गौतमी माता' से क्या तात्पर्य है ? क्या गौतमी तुलसीदासजीकी माता थीं ? स्यात् नहीं, क्योंकि कृष्णदत्त आगे लिखते हैं :

राम कृपा हुलसी जनित, तुलसी विरवा सोइ।
लै हलरावति सुरधुनी, जल अंचलमें गोइ।

तो क्या गोस्वामीजी गौतम ब्राह्मण थे ? कृष्णदत्तने स्पष्ट तो कुछ नहीं लिखा। किन्तु यदि ऐसा है तो यह कथन सोरों-सामग्री और राजापुर-सामग्री दोनोंके ही विरुद्ध पड़ता है।

तीर्थाटन

जब कृष्णदत्त और तुलसीदासजीका प्रथम साक्षात्कार हुआ तो उनमें से एक तो १८ वर्षके थे और दूसरे २८ के :

तुलसी वय अठबीस बताई, मम वय दस अरु आठ गनाई।

एकने गृहस्थाश्रम सँभाला, तो दूसरे तीर्थाटनके लिए चले गये :

द्वितीयाश्रम आश्रित हम भए, तुलसी तीर्थाटन पथ गए।

यदि गोस्वामीजी २८ वर्षकी अवस्थामें आनन्दकाननजी की शरणमें आये और अनेक सुदूर तीर्थोंमें घूमने चले गये तो उन्हें गुरूपदेशके लिए अवसर बहुत कम मिला होगा। तीर्थाटनमें उन्हें एकान्त भी बहुत कम प्राप्त हुआ होगा, जो तुलसी-जैसे सन्तके लिए परम आवश्यक था। 'गौतम चन्द्रिका' के अनुसार तो मार्गमें भजन-कीर्तन, कथा-वार्ता, वाद-विवाद सभी कुछ होता था और तीर्थाटनमें उनके साथ अनेक व्यक्ति भी साथ रहते थे। केवल तीन वर्षोंमें उन्होंने हरिद्वार नर-नारायण, शिव-केदार, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, कैलास, मानसरोवर आदि दुर्गम तीर्थोंके दर्शन कर डाले और लौटकर ३१ वर्षकी अवस्थामें अर्थात् संवत् १६३१ में 'रामचरितमानस' की रचना की। तदनन्तर वे प्रयाग, नैमिषारण्य, काशी, गंगासागर, रामेश्वर, कन्याकुमारी, द्वारका, प्रभास, सुदामाधाम और कुरुक्षेत्र पधारे थे। वे पुष्करसे वृन्दावन, नर्मदातट और गया होते हुए काशी लौट गये।

वल्लभ-प्रभाव

पुष्करसे तुलसीदासजी वृन्दावन आये थे।

तहँ ते चलि वृन्दावन आए, तुलसी रति जमुना उमगाए।
छवि सिंगार घन दामिनि सोभा, निरखत वृन्दावन मन लोभा।

यमुनाके लिए 'रति' शब्दका प्रयोग कितना भावपूर्ण है! कृष्णदत्तके अनुसार 'यमुना' गोस्वामीजीकी पत्नी थी, जो यमुना-तटकी रहनेवाली थी—पता नहीं, कृष्णदत्त क्या समझाना चाहते हैं—वह राजापुरकी थी अथवा वृन्दावनकी? जो हो, गोस्वामीजी वृन्दावनमें 'वल्लभ-भक्ति' और 'भागवत' से परिपुष्ट हुए; किन्तु गोस्वामीजी तो पहले ही इन दोनोंसे प्रभावित हो चुके थे, जैसा कि 'रामचरितमानस' की रचना से भी स्पष्ट है। सोरों-सामग्रीके अनुसार वल्लभाचार्यजी तुलसी के बचपनमें एक-दो बार सोरों पधारे थे। कृष्णदत्तने उस आख्यायिकाको भूलसे अथवा जानबूझकर छोड़ दिया है कि उनके निमित्त कृष्णमूर्तिने रामके रूपमें दर्शन दिये थे। अस्तु। तुलसीदासजी वृन्दावनसे काशी लौट गये, और वहाँ उन्होंने (स्यात् कृष्ण-लीलाके प्रचलनपर) रामलीलाका प्रचार किया। गोस्वामीजी भगवान् शिव, कार्तिकेय, विन्दुमाधव और हनुमानजीकी पूजा करते थे, और जब वे दीपावलीकी शोभाका गान करते तो कृष्णदत्त नगाड़ा बजाते थे :

'दीपावलि सजि तुलसी गावत, कृष्णदत्त दुंदुभी बजावत।'

अन्यत्र तो कृष्णदत्त मिश्रने अपने लिए उत्तम पुरुषका प्रयोग किया है।

सत्संगी

तीर्थाटनमें गोस्वामीजीके साथ कई व्यक्ति रहते थे :

पंडित कासी कवि कैलासू, मेघा भगत उजेनीदासू।
साधु वृद्ध अरु जुवा अनेका, तुलसी संग लगे गहि टेका।

तुलसीदासजीके सत्संगियोंकी सूची इस प्रकार है :

पंडित कासीनाथ महामति। अमरसिंह राजपूत प्रामपति।
गंगाराम परम सतसंगी। कवि कैलास कवित्त उमंगी।
उज्जेनी संगीत प्रवीना। भजन गोप, हरिवंस कुलीना।

नगरसेठ जैराम उजागर। तांबूली सियराम गुनागर।
नाथू नापित केवट रामू। अरु रैदास पेलावन नामू।
बोधी गोड़ हरी हरबाहू। धाढ़ी मीर, जसन जोलहाहू।
कहाँ कहाँ लगि नाम गनाई। कासी विस्वनाथ प्रभुताई।

तुलसी साहबने भी तुलसीदासजीके कुछ सत्संगियोंका उल्लेख 'घट रामायन' में किया है, जो 'गौतमचंद्रिका' में नहीं है। इस विषयमें दोनोंके उल्लेख नितान्त भिन्न हैं। तुलसी साहबने तुलसीदासके पट्टशिष्य काशी-निवासी 'हिरदे अहीर' का उल्लेख 'घट रामायन' में इस प्रकार किया है :

हिरदै अहीर काशीका वासी, रहे राजापुर नौकर पासी।
वोहू प्रतिदिन दरसनको आवे, प्रीति बड़ी हिन कहा न जावे।
रीति दिवस दिन-दिन रहै पासा, तुलसी बिना और नहीं आसा।
एक दिवस भइ ऐसी रीनि, कासी गये बहुत दिन बीती।
हमरा चित हिरदै में वासी, हम चलि गये नग्र महँ कासी।

किन्तु 'गौतमचन्द्रिका' में 'हिरदे अहीर' का कोई उल्लेख नहीं और तदुल्लिखित सत्संगियोंका 'घट रामायन' में नहीं।

ग्रन्थ-गणना

गोस्वामीजीने, कृष्णदत्तके अनुसार, निम्नलिखित ग्रंथोंका प्रणयन किया :

रामगीत अवली, पद अवली, कृष्ण गीत अवली, रामचरितमानस, बरवै, दोहावली, सुगुन, कवितावली, सोहिलो मंगल। सूची अपूर्ण तो है ही, उसमें तुलसीकृत कतिपय ग्रंथोंका नामकरण निजी प्रतीत होता है; यह मौलिकता-प्रदर्शन साज्ञान अथवा साभिप्राय है।

असंगति

एक बार जब गंगाजीमें बाढ़ आयी थी, तो, कृष्णदत्तके अनुसार, तुलसीदासजीने अपनी प्रार्थनाके द्वारा उसे शान्त किया। इससे गोस्वामीजीका महत्व स्पष्ट है। अतएव कोई आश्चर्य नहीं यदि तोडर और कृष्णदत्तके पिता भगवान् भी गोस्वामीजीके भक्त और सत्संगी थे :

ब्राह्मन कासीवार जो मम पितु तनु भगवान्,
तोडर सदन समान सो तुलसी बाग बितान।

कहनेका तात्पर्य यह है कि पिता-पुत्र दोनों ही तुलसीदासजीके भक्त थे। पर भगवान् कब और कैसे भक्त हुए? तुलसीदासजी सीधे यमुना-तटसे काशी आये थे और कृष्णदत्तका जो वार्तालाप हुआ, उससे स्पष्ट है कि कृष्णदत्तके माता-पिता मर चुके थे :

× × × हम लषि तुलसी पूछन लागे।
कुलपति आस्रम सेवाचालक। तुम केहि कुल पालकके बालक।
हम कर जोरे सीस नवाए। नाउँ गोत कुल गाँउँ बताए।
सूधी सहिदानी बानी सुनि। तुलसी व्याकुल बोलि उठे पुनि।
हा कुलदेव गौतमी माता। तोहि प्रसि काल ग्रसेउ कुलनाता।
पितु सपना सुषुप्ति मह माई। श्रुति परिवात सिमृति बनि आई।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्रके शब्द हैं, "श्री कृष्णदत्तने अपना परिचय दिया और माता-पिताके स्वर्गवासी होनेकी बात कही", जो कृष्णदत्तके उक्त उद्धरणको स्पष्ट करते हैं कि साक्षात्कारके तुरन्त पश्चात् कृष्णदत्त और तुलसीदासजीका परिचय हुआ और कृष्णदत्तने उन्हें अपने माता-पिताके दिवंगत होनेकी सूचना दी। यदि यह बात ठीक है तो कृष्णदत्तके पिता भगवान् किस प्रकार और कब तुलसीदासजी के सत्संगी सिद्ध होते हैं? किन्तु कृष्णदत्तने अपने पिताकी गणना तुलसीदासजीके सत्संगियोंमें की है। वे लिखते हैं :

तुलसी सतसंगी बहुतेरे। सुकृती सकल रामके चेरे।
ब्राह्मन कासीवार जो मम पितु तनु भगवान्,
तोडर सदन समान सो तुलसी बाग बितान।

यदि कल्पना की जाय कि प्रथम साक्षात्कारसे पूर्व ही, कृष्णदत्तके पिता भगवान् तुलसीदासजीके भक्त हो गये थे, तो कब? और कृष्णदत्त उनसे नितान्त अपरिचित क्यों रहे? तब तक गोस्वामीजीने 'रामचरितमानस' भी नहीं लिखा था; वे तो सीधे यमुनातटस्थ यमुना-नामक पत्नीको छोड़कर आये हुए थे। अतएव द्वितीय कल्पना असम्भव-सी प्रतीत होती है।

मानसकी प्राप्ति

दूसरी आपत्ति और है। वह यह है कि न पिताने और न सुपठित पुत्रने ही 'रामचरितमानस' की प्रतिलिपि तुलसीदासजीके जीवनकालमें लेनेकी परवा की। वे कैसे भक्त थे? वह रचना तो ऐसे सन्तकी थी, जिसकी प्रार्थनासे गंगाजीकी बाढ़ भी शान्ति हो गई और जिसके साथ उनकी घनिष्टता भी थी। आश्चर्य है कि कृष्णदत्तको 'रामचरितमानस' की उपलब्धि तोडर (टोडर) के घरसे हुई :

तोडर घरते पुस्तक, पाई रामचरित मानस अपनाई।

यह द्राविड़ी प्राणायाम क्यों? उसकी प्राप्ति सीधे गोस्वामी से क्यों नहीं?

भ्रान्त संवत्

कृष्णदत्तने लिखा है कि १६६८ वि० के पश्चात् तुलसीदासजीको बाहुपीड़ा हुई थी। किन्तु, तुलसीदासजीके ही शब्दोंमें, यह पीड़ा उन्हें रुद्र-विंशतिके अन्तर्गत मीनस्थ शनिमें हुई :

बीसी विस्वनाथकी बिसाद बडो बारानसी। (क० ७,१७०)
एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तासें।
कोढ़में की खाजु-सी सनीचरी है मीनकी। (क० ७,१७७)

गणनासे सिद्ध है कि तुलसीदासजीका यह संकट-समय संवत् १६२३ से १६४२ तक बीस वर्ष रहा और इसीमें मीनके शनि भी थे। कृष्णदत्त तो गोस्वामीजीके गुरुभाई और जात-बिरादरीवाले होनेका दावा करते हैं, उनकी उक्ति तथ्यपूर्ण होनी चाहिए थी; किन्तु उनके अनुसार तो १६६८ वि० के पश्चात्

गई रुद्रबीसी बिधि ओरी, भई सनि मीन बसंतक होरी।

जो ठीक नहीं है। यह कैसा सत्य ?

मौन ?

दीर्घ और घनिष्ठ परिचय होनेपर भी कृष्णदत्तजी गो० तुलसीदासके जन्म-स्थान, पितृ-नाम और वंश-परिचयके सम्बन्धमें नितान्त मौन हैं, यद्यपि उन्होंने अन्य विवरणोंके उपस्थित करनेमें कोई संकोच नहीं किया है।

निष्कर्ष

'गौतमचन्द्रिका' के तुलसी-विवरणकी उपलब्धि संदेहातीत नहीं है। गौतमचन्द्रिकाकारने बड़ी समझसे काम लिया है। उन्होंने संवत्, पक्ष और तिथिका प्रयोग केवल एक बार किया है, उसमें भी वारका वारण किया गया है। बुद्धिमत्ताकी दूसरी बात यह है कि उन्होंने घटनाओंके पूर्वापर सम्बन्धके उत्तरदायित्वका बवाल ही अपने सिरसे हटा दिया है। फिर भी भूलसे उन्होंने यह लिख ही दिया कि सं० १६६८ के पश्चात् रुद्रबीसी और मीनकी सनीचरीका अवसान हुआ, यह भूल उनके रचना-प्रामाण्यपर पानी फेर देती है।

सड़क बन रही है

'सलाम' मछलीशहरी

मईके महीनेका मानूस मंज़र
गरीबोंके साथी ये कंकर ये पत्थर
यहाँ शहरसे एक ही मील हट कर
—सड़क बन रही है।

जमींपर कुदालोंको बरसा रहे हैं
पसीने-पसीने हुए जा रहे हैं
मगर इस मुशक़्क़तमें भी गा रहे हैं
—सड़क बन रही है।

मुमीबत है, कोई मुसर्रत नहीं है
इन्हें सोचनेकी भी फ़ुर्सत नहीं है
जमादारको कुछ शिकायत नहीं है
—सड़क बन रही है।

जवाँ, नौजवाँ और खमीदा कमर भी
फुसुर्दा जबीं भी बहिश्ते-नज़र भी
वहीं शामे-ग़म भी जमाले सहर भी
—सड़क बन रही है।

जमादार सायेमें बैठा हुआ है
किसीपर उसे कुछ अताब आ गया है
किसीकी तरफ़ देखकर हँस रहा है
—सड़क बन रही।

ये बेबाक उलफ़त ये अल्हड़ इशारा
बसन्तीसे रामू तो रामूसे राधा
जमादार भी है बसन्तीका शैदा
—सड़क बन रही है।

अगर सिर पे पगड़ी तो हाथोंमें हंटर
चला है जमादार किस शानसे घर
बसन्ती भी जाती है पोशीदा होकर
—सड़क बन रही है।

समझते हैं लेकिन हैं मसरूर अब भी
उसी तरह गाते हैं मजदूर अब भी
बाहर हाल वां हस्बे-दस्तूर अब भी
—सड़क बन रही है।

यदि कुदउँ उस्ताद होते

रामचरण हयारण 'मित्र'

यदि कुदउँ उस्ताद होते तो राष्ट्रपतिके "उदयगिरि" हाथीको गोलीका शिकार न बनना पड़ता। यह हाथी राष्ट्रपतिको असम सरकारसे भेंट-स्वरूप प्राप्त हुआ था। इस कारण उनका उसपर विशेष प्रेम होना स्वाभाविक ही था और "उदयगिरि" का मस्त होना भी स्वाभाविक गुण था। किन्तु उसे गोलीका शिकार बनाना यह सिद्ध करता है कि देशमें अब ऐसे कलाकारोंकी कमी है, जो मस्त हाथी को अपने वाद्य द्वारा वशमें कर सकें। यद्यपि राष्ट्रपति इस समय भारतीय कलाकारोंको उनकी कलासे प्रभावित होकर विशेष उपाधियोंसे विभूषित कर रहे हैं, लेकिन कोई भी गायक-वादक, "उदयगिरि" को विमोहित कर उसके प्राणोंकी रक्षा न कर सका, क्योंकि मस्त हाथीको वशमें करना किसी संगीतज्ञका कार्य है, या कदली वनमें किलोल करती हुई हथनियोंके झुंडका, महावतका नहीं। हाँ, महावत तो उसका केवल मार्ग-दर्शक होता है। फिर भी महावत बाबाजान ने बहुत सतर्कतासे कार्य किया, जिससे बहुत-से आदमियोंकी रक्षा हुई।

आज हमें बुन्देलखण्डके स्व० श्री कुदउँ उस्तादका स्मरण आता है। कुदउँ उस्ताद एवं भवानी सिंह दतिया नरेशके दरबारके प्रसिद्ध पखावजी थे। यह बात संवत् १९०८ की आज भी बुन्देलखण्डमें चरितार्थ है। दतिया नरेश कुदउँ उस्तादको ५) राजासाई और अटालेसे पक्के भोजन उनके सम्मानमें भेंट देते थे। इसके अतिरिक्त यह भी राज्याज्ञा थी कि आवश्यकतानुसार दीवान १००) विशेष प्रदान कर सकते हैं।

दीवानकी इस विशेष आज्ञापर एक बार उस्तादकी बिगड़ गई—कलाकार जो थे, अपना डंडा-डेरा उठाकर चल दिये। यह समाचार महाराजको भी ज्ञात हुआ। उन्होंने भी समझाकर न जानेका अनुरोध किया, किन्तु उस्ताद महाराजको जुहार कर चलने लगे। चलते समय महाराजने कहा, "उस्ताद और सब जगह जाना, लेकिन समथर मत जाना।" क्योंकि दतियासे समथरका आन्तरिक मनोमालिन्य था। किन्तु "जे तीनउँ टलटे चलत सायर सिंह सपूत" की भाँति उस्तादने उत्तर दिया, "महाराज, जौं हमाई सींक समाहैं होंइ जैहैं।" और उस्ताद समथर ही पहुंचे।

समथर नरेश स्व० श्री चतुरसिंहने उस्तादका बड़ा आदर-सत्कार किया और अपने विश्रामगृहमें ठहरनेका प्रबन्ध करा दिया। अभी छै महीने भी न हो पाये थे कि दशहरेका त्योहार आया। उस्तादने दरबारमें गम्मत होनेकी खबर पहुंचाई। दरबारने हर्ष सहित स्वीकार की। उस्तादकी गजपर्ण विख्यात थी, इस कारण गजपर्ण गति सुननेका निश्चय किया गया। लेकिन उसके लिये मस्त हाथीकी आवश्यकता थी। फीलखानेमें खोज की गई, एक हाथी मस्त था, जिसका नाम "कैलाशगिरि" था।

महाराज चतुर सिंहने किलेके मैदानमें दरबार लगनेकी घोषणा की, क्योंकि आज उस्तादकी गजपर्ण गतिका प्रदर्शन था। हजारों नर-नारियोंकी भीड़ उस्तादकी पखावज सुननेको एकत्र हो गयी। उस्तादने हाथीको सौ गज दूरपर बाँधने के लिये कहा और साथ ही यह निवेदन किया कि जब दरबारको पखावजकी अधर ताल सुनाई पड़े, हाथीकी जंजीर खोल दी जाय।

लौलईंनकी बेलामें उस्तादने अपने इष्टदेवको मस्तक झुकाकर पखावजपर थाप मारी। थापके पड़ते ही ध्वनि गूंज उठी और थोड़े ही देरमें जनता वाद्य-ध्वनिसे विमोहित होकर झूम उठी। झूमती क्यों नहीं, उस्तादकी गजपर्ण गति बज रही थी। उस बीचमें दरबारको अधर ताल सुनाई पड़ी। मस्त हाथीके बंधन खोल दिये गये। "कैलाशगिरि" झूमता हुआ आया और उस्तादकी पखावजपर आत्मसमर्पणकी भावनासे मस्तक झुकाकर मस्तीके मोतियोंको बिखेरने लगा।

दरबारके चारों ओरसे उस्तादकी प्रशंसामें जयध्वनि होने लगी। समयपर नरेशने उस्तादकी कलापर प्रभावित हो सोनेके कड़े, ५००) प्रदान किये और उसी "कैलाशगिरि" पर बैठाकर उन्हें बड़े हर्षसे सम्मानपूर्वक विदा किया।

सुबह दतिया दीवान श्रीराम सिंह लिटौरियाको ज्ञात हुआ कि फीलखानेमें एक नया हाथी और आ गया है। आश्चर्यचकित हो विवशतासे महाराजको किलेमें खबर पहुंचाई। सूचना पाते ही नरेश पधारे और हँस कर कहने लगे, "मैंयाँ यह हाथी कुदउँ उस्ताद समथरसे विजय-पुरस्कार में लाये हैं। अभी तो तुम केवल उस्तादके ही खर्चपर क्षुब्ध थे, अब उस्तादका हाथी और बँध गया।" महाराज कला-पारखी थे, इस कारण उस्तादकी भूर-भूर प्रशंसा करने लगे।

यदि आज कुदउँ उस्ताद जैसा गजपर्ण बजानेवाला कोई पखावजी होता, तो राष्ट्रपतिका "उदयगिरि" गोलीका शिकार न बनता।

मिर्चका अचार

कुमारी उषा माथुर

हरी मिर्चका अचार

भारतीय भोजनमें मसालोंका प्रयोग काफी मात्रामें होता है। मसालोंमें मिर्चका प्रमुख स्थान है। मिर्चका अचार भी पड़ता है। अचार हरी और लाल मिर्च दोनोंका पड़ता है। आजकल हरी मिर्च खूब होती है। इन मिर्चोंका अचार कई प्रकारसे डाला जाता है। लाल मिर्चका अभी मौसम नहीं है। यहाँ दो प्रकारसे हरी मिर्चका अचार डालनेकी विधि दी जा रही है। एक विधिसे डाला गया अचार १५ दिनों तक रखकर खाया जा सकता है और दूसरे प्रकारसे तैयार किया गया अचार साल भर खाया जा सकता है।

१. नीबूकी हरी मिर्चका अचार (अल्पकालीन)

आवश्यक सामग्री

१. धनिया आधी छटाँक
२. राई आधी छटाँक
३. जीरा एक छटाँक
४. हल्दी एक बड़ा चम्मच
५. नमक अन्दाजसे
६. हरी मिर्च एक पाव
७. नीबू डेढ़ पाव

विधि—सब मसाले सूखे और पिसे होने चाहिए। हरी मिर्चोंको धोकर धूपमें थोड़ा-सा सुखा लें, फिर इन मिर्चोंको बीचमें से चीर लें। अब इन चिरी मिर्चोंको उपरोक्त मसाले मिलाकर भर लें। इन मसाला भरी हुई मिर्चोंको मर्तबानमें रखकर ऊपरसे नीबूका रस निचोड़कर डाल दें। रस डालते समय इस बातका ध्यान रखें कि बीज न जायँ। सारे दिन धूपमें रखें। शामसे ही खाना शुरू कर दें।

२. तेलकी हरी मिर्चका अचार (टिकाऊ)

आवश्यक सामग्री

१. हरी मिर्च एक पाव
२. कड़वा तेल तीन छटाँक
३. खटाई (अमचूर) आधा पाव
४. हल्दी एक बड़ा चम्मच
५. धनिया दो बड़ा चम्मच
६. सौंफ एक बड़ा चम्मच
७. मेथी एक चायका चम्मच
८. कलौंजी एक चायका चम्मच
९. नमक अन्दाजसे
१०. लहसुन एक छटाँक

विधि—मिर्चोंको धोकर गरम कढ़ाईमें पाँच-सात मिनट चूल्हेपर भून लें, ताकि उनका पानी सूख जाय। अब इन मिर्चोंके छोटे-छोटे ३-३, ४-४ टुकड़े कर लीजिए। इसके बाद खटाईको इतने पानीमें उबालें कि वह गलकर रह जाय। इस उबली खटाईको सिलपर पीस लें। पीसते समय पानी मत डालिये। लहसुनको भी पीसकर अलग रख लें। बाकी मसाले खूब पिसे होने चाहिए, सूखे भी। इसके बाद कढ़ाईमें तेल गरम करके पहले हल्दी छोड़िये और पिसा लहसुन भी डाल दीजिये, तब खूब भूनिये। तब खटाई, मिर्चके टुकड़े और बाकी मसाले कढ़ाईमें डालकर दो-तीन मिनट तक चूल्हेपर ही रखे-रखे हिलाते रहिये। फिर उतारकर ठण्डा हो जानेके बाद मर्तबानमें रख दीजिये। पूरे साल मजेसे खाइये।

नोट—जो लहसुनका प्रयोग न करते हों, वे न डालें। आगामी किसी अंकमें पकी लाल मिर्चके विषयमें लिखा जायगा।

कटहलका अचार

उत्तर-भारतमें कटहलका अचार आधे जेठ माहसे आषाढ़ तक डालना चाहिए, क्योंकि अचारके लिए कटहल पूर्ण रूपसे कच्चा होना चाहिए। तनिक भी पके हुए कटहलका अचार टिकाऊ नहीं होता। इस अचारके बनानेके लिए निम्नलिखित वस्तुएँ आवश्यक हैं—

आवश्यक सामग्री

१. कड़वा तेल एक सेर। २. कटहल दो सेर। ३. खटाई एक छटाँक (यदि आम डालना चाहें तो आध सेर कच्चे आमके टुकड़े कर लें, इन्हें भी कटहलके टुकड़ोंके साथ डालकर मसाले डालना चाहिए।) ४. राई आधी छटाँक। ५. हल्दी दो बड़े चम्मच। ६. धनिया ढाई बड़े चम्मच। ७. सौंफ दो बड़े चम्मच। ८. मेथी एक बड़े चम्मच। ९. कलौंजी (मगरैल) एक बड़े चम्मच। १०. लाल मिर्च चार बड़े चम्मच। ११. नमक अन्दाजसे।

विधि—कटहलको छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लेना चाहिए। टुकड़े इस प्रकार करने चाहिए कि उसके बीज व कोए कटने न पावें। काटनेके बाद कटहलको धोकर उबाल लें, पर वह अधिक गलने न पावे; टुकड़े कड़े ही रहने चाहिए। फिर उसे दो घण्टे धूपमें रख दें, ताकि पानी पूर्ण रूपसे सूख जाय। सूखनेके उपरान्त जार अथवा मर्तबानमें कटहल डालकर उपरोक्त मसालोंको, जो पहलेसे कुटे हुए होने चाहिए, डाल दें। थोड़ा तेल भी इस समय डाल देना चाहिए। इसको धूपमें रखे रहना चाहिए। दूसरे दिन बाकी तेल डालकर सात-आठ दिन बराबर धूपमें रखें। एक सप्ताह बाद अचार खाने योग्य हो जाता है।

स्वर्गीय श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

वनफूल

आज जब मैं 'विशाल भारत' को देखता हूं, तब मेरा मन इसके जन्मदाता स्व० रामानन्द बाबूके श्रीचरणोंमें अनायास ही पहुंच जाता है। आजसे तीस वर्ष पहले उन्होंने ही इस विख्यात हिन्दी-मासिकको चलाया था। बंगाली होते हुए भी उन्होंने इस पत्रके द्वारा हिन्दी भाषा, साहित्य तथा पत्रकारिताकी अपूर्व सेवा की।

'विशाल भारत', 'प्रवासी' तथा 'माडर्न रिव्यू' के जन्मदाता साधु रामानन्द चट्टोपाध्यायका जन्म सन् १८६५ में बाँकुड़ा जिला (बंगाल) के अन्तर्गत ओन्दा ग्राममें हुआ था। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार उनका बचपन ही उनकी अद्भुत प्रतिभाका द्योतक था। पढ़ने-लिखनेमें वे सदैव सबसे आगे रहते।

सन् १८८७ ई० में उन्होंने कलकत्ता-विश्वविद्यालयसे प्रथम श्रेणीमें तथा विशेषताके साथ बी० ए० पास किया। १८८९ में एम० ए० (अंग्रेजी) की परीक्षा उन्होंने उसी विशेषताके साथ पास की। तत्पश्चात् वे कायस्थ पाठशाला (प्रयाग) के अध्यापक नियुक्त हुए। इसके बाद वे कलकत्ता-स्थित सिटी कालेजमें प्रोफेसर हुए। कुछ दिनों तक वे 'शान्ति-निकेतन' और 'विश्वभारती' में भी अध्यापक थे।

पत्रकारितासे उन्हें जन्मजात अनुराग था। विद्यार्थी-जीवनमें भी वे बराबर लेख लिखते और उच्चकोटिके पत्रोंमें छपाते रहते। जीवन-क्षेत्रमें आनेपर उन्होंने अध्यापनके साथ-साथ 'प्रदीप', 'इण्डियन मेसेंजर' आदि पत्रोंका सम्पादन किया। १९०१ में प्रसिद्ध बंगला मासिक 'प्रवासी'का प्रादुर्भाव उनके द्वारा हुआ। उस समय यह पत्र प्रयागके 'इण्डियन प्रेस' में छपता था। १९०७ तथा १९२८ में उन्होंने क्रमशः 'माडर्न रिव्यू' तथा 'विशाल भारत' को जन्म दिया। इन तीनों मासिक पत्रोंका संचालन कर उन्होंने बंगला, अंग्रेजी तथा हिन्दीकी पत्रकारिताकी असीम तथा निस्स्वार्थ सेवा की। कितनी बार उन्हें घाटेकी बड़ी रकमें देनी पड़ीं, किन्तु इसके बावजूद भी वे इन्हें सहर्ष चलाते रहे। आज भी इन पत्रोंके द्वारा देशकी अनुपम सेवा हो रही है। यह सब स्व० रामानन्द बाबूके त्याग और बलिदानका फल है।

'प्रवासी' के जन्मके पूर्व बंगलामें पत्र और पत्रिकाएँ थीं तो अवश्य ; किन्तु उनमें छपे हुए लेखोंको केवल उच्चकोटिके विद्वान ही समझ सकते थे। साधारण जनता उन्हें समझ हो न पाती थी। इसके अतिरिक्त पहलेकी बंगला पत्रिकाएँ बड़ी अनियमित रूपसे छपती और बँटती थीं। वैशाखकी पत्रिका श्रावणमें निकलती थी। किन्तु 'प्रवासी' के निकलते ही ये सारे दोष लुप्त हो गये। जनताको प्रत्येक माहकी पहली तारीखको सुबह-सुबह पत्रिका मिलने लगी। लेख भी इतने सरल, उपयोगी एवं मनोरंजक होते थे कि प्रत्येक साक्षर व्यक्ति उन्हें भलीभाँति समझ जाते थे। 'प्रवासी' में रंग-बिरंगे लेख, चित्र और स्केच रहते थे। उपन्यास, गल्प, कविता, समालोचना, प्रबन्ध, भ्रमण-कहानी, अनुवाद आदिसे 'प्रवासी' पूर्ण रहने लगा। इस प्रकार शुष्क एवं जटिल पत्रकारिता शोभनीय, लुभानेवाली और नियमित हो गई। विश्वविद्यालयों तथा पुस्तकालयोंमें ही सीमित रहनेवाली पत्रकारिता आम बाज़ारमें सम्मानित एवं लोकप्रिय हुई। जिस कामको विलायतमें जोसफ एडिसनने किया, उसीको भारतमें स्व० रामानन्द बाबूने किया। उन्होंने साधारणसे साधारण व्यक्तिको आनन्दमय एवं सुखद मनोरंजन पहुंचाया।

उन्होंने बालकोंके हितार्थ 'कृत्तवासी रामायण' तथा बालोपयोगी अरबी उपन्यासोंका बंगलामें निर्माण किया। यद्यपि वे अध्यापक बहुत दिनों तक न रह पाये और कुछ दिनोंके अध्यापनके बाद ही पत्रकारिता और देश-सेवाके क्षेत्रमें चले आये, तथापि वे स्वभावतः अध्यापक ही थे और जीवन-पर्यन्त वे आदर्श शिक्षकका ही काम करते थे। लोक-शिक्षा और विशेषकर स्त्री-शिक्षाके निमित्त उन्होंने अपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया। केवल लेखों द्वारा ही नहीं, प्रत्युत सक्रिय उदाहरणों, प्रयत्नों तथा अपने निजी धनसे उन्होंने पद-दलित समाजकी अपूर्व सेवा की। 'प्रवासी' के 'विविध प्रसंग' के कालमोंमें 'कसौटी', 'पंचशस्त्र', 'पुस्तक-परिचय', 'देश-विदेश' आदि विषयोंके द्वारा जिस अमूल्य ज्ञान-धाराका प्रवाह प्रतिष्ठित हुआ, उसका श्रेय स्व० रामानन्द बाबूको ही है।

'प्रवासी' का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उसने विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरको प्रति मास कुछ-न-कुछ लिखनेपर बाध्य किया। यदि स्व० रामानन्द बाबूका ज़ोरदार और नियमित तकाज़ा न होता, तो सम्भवतः रवि बाबू इतना अधिक न लिखते, न बंगला जगत्को उनके स्वर्णिम साहित्य का यह स्वाद ही मिलता। 'गोरा' उपन्यासका इतिहास रवि बाबूने स्वयं मुझे बतलाया था। यह तकाजेका ही प्रभाव था कि उन्होंने इस अमर उपन्यासको लिखा।

परन्तु यह सब तो रामानन्द बाबू के बाह्य परिचयका कतिपय अंश हुआ। उनका हृदय असाधारण था। उनका चरित्र स्तुत्य था। उनके सम्मुख त्याग एवं उत्सर्गका एक ज्वलन्त आदर्श था, जिसपर वे पूर्णतया अमल करते थे। उनकी पोशाक अत्यन्त सादी थी। मोटे खादीकी धोती और कुर्ता यही उनका बाना था। कोई अनजान व्यक्ति उन्हें देखकर यह कभी भी अनुमान नहीं लगा सकता था कि वे इतने महान हैं। उन्होंने अपने जीवनमें कभी भी किसी नशीली वस्तुका व्यवहार नहीं किया। वे बहुत ही मितव्ययी थे। घमण्ड, आडम्बर या क्रोध तो उन्हें छू तक न गया था। उनकी सचाई, हृदयकी विशालता और सबसे बढ़कर उनका सौजन्य देवोपम था।

वे इतने स्पष्ट और साथ-ही-साथ इतने रहस्यमय थे कि बहुत कम लोग उनके विषयमें पूरी जानकारी रख पाते थे। वे जितने सरल और अकृत्रिम थे, उतने ही छिपे हुए भी थे। यही कारण है कि हम लोग उनके बारेमें अधिक नहीं कह सकते। उन्होंने लाखों नहीं, करोड़ों असहाय व्यक्तियोंकी गुप्त मदद की। कितनी अनाथ एवं विधवा स्त्रियोंको वे शरण दिया करते थे। गरीब विद्यार्थियों और होनहार लेखकोंकी वे बहुत मदद करते थे। सार्वजनिक सेवा और उचित सेवाके निमित्त उन्होंने अपना जीवन ही संकल्प कर दिया था।

यद्यपि शिक्षा में वे पश्चिमसे प्रभावित थे, तथापि आचार, विचार और संस्कृतिमें पूर्ण भारतीय थे। अपने देश के ग्राम-ग्राम तथा धाम-धामके लिए उनका अगाध प्रेम था। वे यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओंको ही व्यवहारमें लाते। उस समयकी खादी भी बोरेके समान मोटी और कष्टकर होती थी।

मातृभाषामें तो वे किसी भी विदेशी भाषाकी खिचड़ी नापसन्द करते थे। एक बार मैंने एक कहानी बँगलामें लिखकर 'प्रवासी' के लिए भेजी। उस कहानीमें एक जगह मैंने अंग्रेजी शब्द 'टी प्वाय' का व्यवहार किया था। स्व० रामानन्द बाबूने उसे काटकर 'द्वैरथ' कर दिया। किसी भी भारतीयको वे अपने पास अंग्रेजीमें पत्र नहीं लिखने देते थे। वे सच्चे भारतीय थे। बंगला संस्कृतिपर उन्हें बड़ा घमण्ड था। वे चूड़ा तथा लाईका जलपान और खाँटी देशी वस्तुओंका भोजन करते थे। अपने देशके होनहार नौजवानोंका वे बहुत आदर करते थे।

देश-प्रेमके साथ-साथ वे अपनी मातृभूमिकी दुर्नीतिकी कटु आलोचना भी करते थे। किसी भी ढंगका अन्याय उनके लिए असह्य था। एक अमरीकी लेखकने अंग्रेजीमें भारतकी प्रशंसा लिखी। स्व० रामानन्द बाबूने इसका हिन्दी-अनुवाद छापा, यद्यपि इसके लिए अंग्रेजी हुकूमतने उनपर मुकदमा चलाया। वे लाट साहबसे भी नहीं डरते थे और मित्रोंके दोषकी भी आलोचना करते थे। शेरे-बंगाल सर आशुतोष मुखर्जी उनके परम मित्र थे। कचहरीसे लौटते समय वे नित्य संध्याको रामानन्द बाबूके यहाँ बैठते, साथ-साथ नाश्ता करते और काफी देर तक विभिन्न विषयोंपर दोनों मित्रोंमें बातें होतीं। परन्तु बादमें जब श्री मुखर्जीने कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें पक्षपात और धाँधलीका बाजार गर्म किया, तब रामानन्द बाबूने अपनी घनिष्ट मित्रताका खयाल न करते हुए एक निष्पक्ष पत्रकारकी हैसियतसे श्री मुखर्जीकी सही आलोचना की। आलोचना-सम्बन्धी लेखों को लेकर वे स्वयं श्री मुखर्जीके पास जाते और उन्हें उचित सुधार करनेकी सलाह देते।

विलासमय साहित्य तथा रंगमंचको तो वे बिलकुल ही पसन्द नहीं करते थे। बस, इस अर्थमें वे भारतीय मिल्टन थे। कवि मिल्टनके वे अनन्य भक्त भी थे। मिल्टनकी कविता और लेखोंको अकसर पढ़कर मुझे सुनाया करते थे। यह नायक रामानन्द बाबूकी साधुताका ही फल था कि उनके समयका प्रत्येक बंगाली नवयुवक एक आदर्श रखता था और उसपर चलनेके लिए वह सारी कठिनाइयोंका सहर्ष आलिंगन करता।

यद्यपि अपनी स्पष्टवादिता और निष्पक्ष नीतिके कारण वे अपने जीवन-कालमें बहुत लोकप्रिय न हो सके, तथापि उनके चुने हुए विद्वान मित्र थे, जो उन्हें हदसे ज्यादा प्यार करते थे। उनके विख्यात मित्रोंमें कवीन्द्र रवीन्द्र, श्री एण्ड्रूज़, श्री रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, अध्यापक जोगेशचन्द्र विद्यानिधि थे।

'विविध प्रसंग' की टिप्पणियोंसे उनके चरित्रका ज्ञान हम लोगोंको मिलता है। 'विविध प्रसंग' रामानन्द बाबूकी निर्भीकता सत्यनिष्ठा, रसिकता, यथार्थवादिता भाषा, भावना मौलिकता, विश्वप्रेम, देशप्रेम, राजनैतिक समालोचना, सामाजिक मन्तव्य आदिका परिचायक है। 'शैली ही लेखक का व्यक्तित्व है' के अनुसार हम रामानन्द बाबूके चरित्रको 'विविध प्रसंग' में स्पष्टतया पाते हैं। यद्यपि उनका पार्थिव शरीर आज हमारे बीच नहीं है, तथापि विविध प्रसंग' की सम्पादकीय टिप्पणियोंमें उनका अमर व्यक्तित्व वर्तमान है।

अनुवादक—प्रोफेसर कृष्णचन्द्र

मोंगोल देशकी यात्राके संस्मरण

डा० शारदानी, एम० ए०, डी० लिट्०

हम भारतसे पश्चिमी योरोपमें अनुसन्धान सम्बन्धी वस्तुएँ एकत्रित करने गए। योरोपीय जाति अपने निरन्तर परिश्रम और अथक लगनके लिए प्रसिद्ध है। इटली, स्विट्जर्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, हालैण्ड, इंग्लैण्डके आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, चेकोस्लोवाकिया तथा रूस इत्यादि बहुत-से देशोंमें घूमकर वहाँके विशाल पुस्तकालय और अद्भुदागार देखे। वास्तवमें इन भण्डारोंमें प्राच्य अध्ययनके लिए अनन्त अमूल्य निधियाँ भरी पड़ी हैं।

जब हम हालैण्डमें थे, तब हमें मोंगोल शासनका निमन्त्रण मिला। हमारी प्रसन्नताका पारावार न रहा। मोंगोल देशके दर्शन हमारे लिए अति सुखकारी होंगे, इस प्रकार सोचते-सोचते वह दिन भी आ पहुंचा, जब हम मास्कोसे उलान्बातरके लिए चले। कई घण्टेकी उड़ानके पश्चात् हमारा विमान तातार गणतन्त्रकी राजधानी काज़ानमें उतरा। तत्पश्चात् स्वेर्दलोव्स्क, ओम्स्क, नोवोसिबिर्स्क (साइबेरियाकी राजधानी), क्रास्नोयार्स्क नगरोंमें रुकते हुए २८ घंटे पश्चात् इर्कुत्स्क पहुंचे। यह नगर रूस और मोंगोल सीमापर स्थित है। यहाँ रूसी विमानसे चीनी विमानमें जा बैठे, जो पेकिङ् जा रहा था। पेकिङ् के मार्गमें ही मोंगोल देशकी राजधानी उलान्बातर है। हमारा विमान सारा साइबेरिया पार करता जा रहा था। साइबेरियाको वहाँके निवासी शिबिर कहते हैं। साइबेरिया अंग्रेजी उच्चारण है। यहाँ के निवासी तम्बुओंमें रहते हैं। शिबिरवासियोंकी भूमिका नाम शिबिरदेश उचित ही है। विमानसे मरुभूमि ही मरुभूमि दिखाई देती थी। ठण्डके कारण वृक्ष नहींके समान थे। केवल नगरोंमें कुछ हरियाली दिखाई देती थी। इर्कुत्सक नगरके विमानक्षेत्रपर चीनके प्रधान मन्त्री और राष्ट्रपतिके रंगीन तैलचित्र लगे हुए थे। यहाँका समय पेकिङ् समयानुसार मास्कोसे पाँच घंटे आगे था। हमारा विमान अब बैकाल झीलके ऊपर था। २०० मील लम्बी यह झील हिमावृत थी। ऐसा लगता था, मानों हम श्वेत चद्दरके ऊपर उड़े जा रहे हैं। बैकाल झीलके पूर्वमें अङ्गार नदी थी, वह भी हिमाच्छादित थी। अब नीचे हिममय पर्वत शिखर और ऊपर कांचमें से छनकर धूपकी उष्मा हमें कुछ उष्णता पहुंचा रही थी। बैकाल झील और अङ्गार नदीके तट तक भारतीय आचार्य और पण्डित जाया करते थे। मानसरोवर के समान बैकाल झील पुण्यतीर्था थी। इतने भयङ्कर जलवायु में उष्ण जलवायु के अभ्यस्त भारतीय किस प्रकार यहाँ आते होंगे, कल्पना करके भी रोमांच हो जाता है। विमान-परिचारिका ने बताया कि ४० कला में हम उलान्बातर पहुंचनेवाले हैं, तब हमारी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा। सारी थकान उत्साह में परिणत हो गई। इतने दिनका स्वप्न आज साकार होने जा रहा है। विमानने भूमि स्पर्श की और हम उठ खड़े हुए। खिड़कीसे ही सारा दृश्य बड़ा सुन्दर लग रहा था। हमारे स्वागतार्थ गाण्डङ् विहार के लामा, एक बहुत बड़े विद्वान् श्री रिंछिन् और उनकी पत्नी रत्ना, लोब्साङ् वन्दन् विज्ञान समिति के सात-आठ अन्य व्यक्ति आये थे। चार वहित्र (कार) हमें लेने आये थे। आल्ताई होटलमें हमारे ठहरनेका प्रबन्ध था। दूसरे दिन अमावस्या थी। मोंगोल देशमें तिथियोंकी गणना भारतके समान होती है। वही अपनी एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या इत्यादि, अर्थात् चन्द्रमाकी गति के अनुसार पञ्चाङ्ग बनाया जाता है। लामा गोम्बोदोने हमें अपना मन्दिर दिखानेके लिए ऐर्देनीपील (मुख्य लामा) का निमन्त्रण दिया। अमावस्या और पूर्णिमाके दिन यहां संगीतमय पाठका महोत्सव होता है। दूसरे दिन प्रातः से हम बड़ी उत्सुकतासे वहां जानेकी प्रतीक्षामें थे। हमारा दुभाषिया आया और हम चल पड़े। आज गाण्डङ् विहारमें सारे पुजारी तथा अनेक दर्शनार्थी उपस्थित हैं। गाण्डङ् का अर्थ है तुषित-विहार। मन्दिरोंपर बाहरकी ओर संस्कृत, मोंगोल और भोटमें लकड़ीके फट्टों पर नाम लिखे हुए हैं। मन्दिरमें चढ़ानेके लिए हम भारतसे कुछ धूपबत्तियां और सुवर्णिम वस्त्र लाए थे? जब हम सुवर्णवस्त्र चढ़ा रहे थे, तो एक पुजारीने पूछा—क्या यह काशिक है? हमने कहा—हां, यह काशीका बना है। प्राचीन समयमें भी काशीसे कौशेय इन सुदूर देशोंमें जाया करता था? काशीके वस्त्रकी प्रसिद्धि बहुत पुरानी है।

गाण्डङ् विहार के प्रवेश-द्वारपर दो सिंह बने हैं, जो

विहारके रक्षकके रूपमें सुशोभित हैं। तत्पश्चात् प्रांगण है। यहां पर कई अलग-अलग भवन दृष्टिगोचर होते हैं। हरी और लाल छतोंपर सुवर्णमण्डित ऊपरको उठे शिखर भारतके सुवर्णमय शिखरों का स्मरण दिलाते हैं। प्रांगणमें प्रवेश करते ही मुख्य द्वारपर धर्मचक्र और उसके दोनों ओर दो शान्तमुख मृग। आज इनके सुवर्ण रङ्गका वैभव अन्दर से फूट रहा है। घुसते ही तीन भवन हैं। इनके मध्यमें विशाल धूपपात्र है, जिस पर मोंगोल, भोट और चीनी लेख हैं। एक भोट दीक्षामंच है? मुख्य तीन भवन ये हैं—चन्दनजोवो-भवन, वज्रधर-भवन, पूजा-भवन। मन्दिरका अपना एक विशाल पुस्तकालय है। उसका भवन पृथक् है। यहां सब धार्मिक पुस्तकें रखी हुई हैं। इनमें से एक बड़े भवन में पूजा होती है। इसका संस्कृत नाम भारतीय अक्षरों में लिखा है—तुषितः महायानद्वीप। शीर्षकके चारों ओर शंख, चक्र, मीन आदिके चित्र बने हैं। पूजा-भवनके विशाल काष्ठद्वारोंपर विश्ववज्र और प्रसादपूर्ण पात्रोंके चित्र सुकलात्मक बने हैं। हृक्ष्मूल्वर्यं का गुम्फित रूप और उसके पार्श्वमें धर्मचक्र तथा मृगसे द्वारकी शोभा द्विगुणित हो उठी है। भवनके अन्दर घुसते ही चौकियों पर पुजारियों के लिए गुदगुदे आसन बिछे हैं। इनकी चार पंक्तियां हैं। मध्यस्थित दो पंक्तियोंमें २४ आसन हैं। मुख्य मूर्तिके समीप दोनों पंक्तियोंमें प्रमुख लामाओंके बैठनेके आसन कुछ ऊंचे हैं। उभरे हुए नागालंकृत विशाल ढोल बैठे-बैठे ही बजाए जाते हैं। इनको बजानेके लिए विशेष दण्ड होता है। दाईं ओरकी भित्ति एक विशाल पटचित्र (थंका) से आवृत है। इस थंकापर उभरे हुए भगवान् बुद्ध, ध्यानिबुद्ध, अवलोकितेश्वर और स्वर्गका मनोहारी दृश्य उपस्थित किया गया है। यह हाथका बना हुआ है। चीन, मोंगोल और तिब्बतमें कौशेयके ऊपर रंगीन चित्र बनानेकी प्रथा है। मन्दिरोंको उन्हीं कौशेय चित्रोंसे सजाते हैं। ये चित्र थंका नामसे प्रख्यात हैं। इनको रंगनेके लिए वास्तविक सुवर्ण और चांदीका उपयोग किया जाता है। हरे, लाल, पीले, नीले रंग भी खनिजोंसे सज्जित किए जाते हैं। भारतमें भित्तिचित्र तो आज भी बनते हैं, इनके देशमें भी भित्तिपर चित्र बनाते हैं। मन्दिरकी प्रवेश-दीर्घामें अनेक भित्तिचित्र बने हुए हैं। मन्दिरके मध्यमें मूर्तियोंके सम्मुख घृतदीप और धूप वातावरणमें पवित्रता, गांभीर्य और प्राण भर रहे हैं।

दूसरा भवन वज्रधरकी विशाल मूर्तिसे सुशोभित है। भवनके सम्मुख एक विशाल धूपपात्र है और दण्डवत् प्रणाम करनेके लिए दो काष्ठफलक बिछे हैं, जिनपर दर्शनार्थी दर्शनसे पूर्व दण्डवत् प्रणाम करके अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करते हैं। प्रवेशकोष्ठमें चार लोकपालोंके चित्र बने हैं। छत सुनहरे लहराते हुए नागों से अलंकृत है। नेपालसे आई स्रोन्-चङ् गम्पो (तिब्बतमें बौद्धधर्मके प्रवर्तक प्रथम सम्राट्) के समयकी अवलोकितेश्वरकी मूर्ति है। यह नानाविध सहस्रों छोटी मूर्तियोंसे घिरी है। इस भवनमें कञ्जूरका नार्थाङ् संस्करण दोनों पार्श्वोंमें रखा है। इस भवनमें हमने साधुओंका दण्ड भी देखा। पूछा तो पता लगा कि १७ वीं शताब्दीमें तारानाथके प्रथमावतारके समय अश्मांगुलि और एक अन्य आचार्य भारतसे आए थे। उन्होंने यहां रहकर संस्कृत ग्रन्थ मोंगोलमें अनुवाद किए। विक्रमादित्य और राजा भोजकी कथाएं सुनाईं। उन्हींका यह दण्ड है। अश्मांगुलि आचार्यने भारतीय भोजन बनाना भी सिखाया। आज भी लामा बताशेको बातास कहते हैं। एक रजतमण्डित श्वेत शंख हम देख ही रहे थे कि एक लामाने सुवर्णमण्डित नेपालसे आया हुआ दूसरा शंख बजाकर हमें आश्चर्यचकित कर दिया। बोस वर्ष पूर्व इस विहारमें ताड़पत्रपर लिखे संस्कृतके ग्रन्थ थे। भवनसे बाहर निकलते समय लाञ्छा और भोट में लिखी एक धारणी दृष्टिगोचर हुई। वह इस प्रकार है—"ओं नमो भगवते भैषज्यगुरुवैडूर्यप्रभराजाय तथागताय अर्हते सम्यक्सं-बुद्धाय। तद्यथा। ओं भैषज्ये भैषज्ये महाभैषज्ये भैषज्ये। राजसमुद्गते स्वाहा॥"

तृतीय भवनमें चन्दनजोवोकी मूर्तिकी भव्य प्रतिकृति है। प्रवेश करते ही गुम्फित बीजाक्षर हृक्ष्मूल्वर्यं के दर्शन होते हैं। प्रवेशकोष्ठकी छतपर धर्मचक्र बने हैं, और छतपर पद्मनाभिमें बीजमन्त्र लिखे हैं। प्रथम युद्धसे पूर्वकी पौलैण्ड-निर्मित मूर्तियां भी इस कोष्ठमें विद्यमान हैं। १९११ में जब मोंगोल देश चीनी आधिपत्यसे स्वतन्त्र हुआ, तब मोंगोल लामाओंने पोलैण्डसे एक लाख मूर्तियां बनवाई थीं। स्वर्गदृश्यों और मूर्तियोंसे अलंकृत नवनीत-मेरु मण्डल बना है। मक्खन और सत्तूसे बने इस स्तूपपर मध्यमें बना वज्र अत्याकर्षक है। यह तोर्मा है। चन्दनजोवोकी मूर्तिके बाईं ओर पोलैण्डकी मूर्तियोंका वैभव है और दाईं ओर चोखापाकी अनेक मूर्तियोंके मध्यमें मौक्तिकलिखित 'ओं मणिपद्मे हुँ' है।

चतुर्थ भवन पुस्तकालय है। इसका संस्कृत नाम इस प्रकार लिखा है—तुषितः महायानद्वीपस्य पुस्तिकगञ्ज। भोट, चीनी, मोंगोलमें भी शीर्षक लिखा है। पुस्तकालयमें अनेक सुम्बुम् हैं। मोंगोल भाषामें बोधिमार्ग आदि और कात्मुक हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं। इसमें कात्मुक लिपिके अविष्कर्ता जयपण्डित गगनसागरका चित्र भी था। भोट और मोंगोल में सचित्र भद्रकल्पिकासूत्र तथा स्वयंभू, लाञ्छा और भोट लिपियोंमें मञ्जुश्रीनामसङ्गीति आदि ग्रन्थ थे।

पुस्तकालयमें केवल पुस्तकें ही नहीं, मन्दिर भी हैं। यहां हमारी भेंट उपमुख्य लामासे हुई। आपका नाम कर्म-सिद्धि है। पुस्तकालयके मध्यमें स्थित पटलका वस्त्र नवरत्नसे कढ़ा हुआ है—मध्यमें स्वस्तिक, चारों ओर श्रीवत्स, मीन, शंख, धर्मचक्र, विश्ववज्र, पद्म, कलश और छत्रांग। जब हम एक भवनसे दूसरे भवनमें जा रहे थे, तब हंसोंकी लम्बी पंक्ति नील गगनमें उड़ी जा रही थी। हमारा दुभाषिया बोला—यह शुभशकुन है। एक लामा बोले कि हमारे मन्दिर में आना हमारे लिए अतिशुभकारी सिद्ध होगा। इनके यहां हंस शुभ-पक्षियोंमें गिना जाता है।

स्वागत-भवनमें जानेसे पूर्व हम एक बार पुनः पूजा-भवन में गये और साष्टांग दण्डवत् किया। वाद्य इतने गंभीर और उनके बीच मन्त्रोंकी ध्वनि इतनी कर्णमधुर लग रही थी कि हर्षाश्रु रोकने कठिन प्रतीत हुए। हृदय गद्‌गद हो गया। बूढ़ी स्त्रियां माला फेर रही थीं। जब उन्हें पता चला कि हम भारत से आए हैं, तब वे हमारे साथ-साथ चलनेके लिए व्याकुल हो गईं। उनका स्नेह उनकी आँखोंसे झर रहा था। परिक्रमा करते समय वे कुछ-न-कुछ प्रश्न हमसे कर ही लेती थीं। मुख्य पुजारीसे हमने आशीर्वाद लिया—आशिर्वादमें उसने मन्त्र पढ़कर कुछ चावल हमारे हाथोंमें दे दिए। मन्दिरकी कुछ भस्म भी हमें मिली। आज महाकालका पाठ हो रहा था। वाद्योंकी गूँजके बीच कभी-कभी "महाकाल कालरूप"आदि कुछ शब्द सुनाई दे जाते थे। महाकालकी बड़ी मूर्तियां यहां भयानक मुद्राओंमें खड़ी हैं। मोंगोलियामें बौद्धधर्म तान्त्रिक धर्मसे मिश्रित होकर आया है। जैसे हमारे यहां शिव और शक्तिकी पूजा होती है, उसी प्रकार यहां अनेक देवता अपनी-अपनी शक्तियोंके साथ सुशोभित हैं। प्रवेशद्वार पर भयानक आकृतिका देवमुख बना रहता है। यह अमंगल को नाश करनेके हेतु लगाया जाता है, जिससे मन्दिरपर कोई विघ्न या कष्ट न आए और केवल कल्याणका ही प्रवेश हो। जब हम परिक्रमा कर चुके, तो एक भव्य लामा हमारे सम्मुख आए और हमें स्वागत-कोष्ठमें ले गए। स्वागत-कोष्ठ एक छोटे-से फाटकवाला गोल तम्बू था। इस तम्बूको ये लोग गेर कहते हैं। एक लामा बोला कि संस्कृतमें गृह और मोंगोलमें गेर—कितना साम्य है! यह गेर नमदेका बना होता है। जितनी अधिक ठण्ड बढ़ती जाती है, नमदे के उतने ही स्तर उसपर लपेटते जाते हैं। छत लकड़ीके डण्डोंपर मोटे नमदेसे आच्छादित कर देते हैं। यह तम्बू ३० कलामें गाड़ा जाता है। नीचे भूमिपर ५-६ कालीन एकके ऊपर एक बिछे रहते हैं जिससे भूमिका शीत ऊपर सर्वथा नहीं आता। इस तम्बूमें हमने प्रवेश किया। यहां भी घुसते ही पूजाका स्थान और छोटी-छोटी अनेक मूर्तियाँ छोटे-छोटे काष्ठ-मन्दिरोंमें सुशोभित थीं। इनके आगे निरन्तर मक्खनके दीप जल रहे थे। तम्बूकी भित्तिके साथ-साथ मूर्तियोंके पटल लगे थे, छोटी-छोटी बुद्धमूर्तियां, सहस्रबाहु अवलोकितेश्वर, हरिततारा, श्वेततारा आदि अपने सुनिश्चित स्थानपर विराजमान थे। लामा गोम्बोदो (नाथवज्र) बुद्ध-जयन्तीपर भारत आए थे। उन्होंने तम्बूमें हमारा स्वागत किया और गद्दियोंसे युक्त चौकियां हमें बैठने को दीं। दिल्लीमें जब लामा गोम्बोदो आए थे, तब हमने भी इन्हें अपने घर बुलाया था। हमारे स्वागतका स्मरण कर करके लामा गोम्बोदो हमें अपना घर स्मरण दिला रहे थे। इन्होंने हमारे लिए अनेक प्रकारकी भारतीय शैलीकी भोज्य सामग्री उपस्थित की। मक्खन और लवणवाली चाय, दही, मालपूए, मीठी मठरी, चावलकी खीर, बताशे, दूधकी दाखें पड़ी बर्फी इत्यादि। यहां १३ के लगभग लामा लोग थे। एक बहुत बड़े पकवानके ऊपर पर्वताकारमें अनेक वस्तुएं हमारे समक्ष परोसी जाने लगीं। बड़े पकवानका नाम याल्चुयिन् दुगुई अर्थात् उपाध्याय-चक्र था। जब लामा गोम्बोदो दिल्ली आए थे, तब उन्होंने कहा था—"हमारे देशमें ५०० वर्ष पूर्व गङ्गाजल गया था, जिसका उपयोग हम प्रतिदिनकी चायमें करते आ रहे हैं। अर्थात् कुछ बूँदें प्रतिदिनकी चायमें डाल देते हैं। अब मैं भारत आया हूं तो मेरे सहलामाओंने मुझे पुनः गंगाजल लानेको कहा है और मेरी स्वयं पुण्यतीर्था गङ्गा देखनेकी उत्कट इच्छा है।" यह बात जब हमारे पूज्य पिताजीने सुनी, तो उनका हृदय मोंगोल देशके स्नेही लामाओंके प्रति प्रेमसे उमड़ आया। उसी दिन एक बड़ी गाड़ीका प्रबन्ध किया गया और हृषीकेश

में जाकर पुण्यदा गंगामें इनको स्नान कराया। गंगाजल भर कर इन्हें मोंगोलियाके लिए दिया। विमानसे यह गंगाजल गाण्डङ् पहुंचा। आज उस दिनकी स्मृति लामा गोम्बोदोके मुखपर स्पष्ट झलक रही थी। लामाको यह पवित्र तीर्थ देखनेकी चिरकालसे इच्छा थी। उन्हें कभी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि वे कभी बुद्धकी पवित्र भूमि शस्यश्यामला भारत के दर्शन करेंगे और उसमें बहनेवाली पवित्र नदीको देख सकेंगे। हर्षके कारण वे उस समय भी गद्‌गद कण्ठ हो गए। उलान्बातर लौटकर उन्होंने सब सहलामाओंको गंगाजल बांट दिया और कुछ एक कूपीमें उठाकर सदाके लिये रख लिया। उस दिन जब हम उन सबके बीच तम्बूमें बैठे थे, भारतके संस्मरण लामा गोम्बोदोने सुनाए। वे कहते थे, मेरी भारत आनेकी पुनः बड़ी इच्छा है। आपके यहां आनेसे मुझे भारतवर्षका आभास हो रहा है।

यहां दो लामा संस्कृत जानते हैं। वे सब ही देवी-देवताओंके नाम संस्कृतमें बता रहे थे। ये सारस्वत व्याकरण पढ़ते हैं और इनकी भारत आनेकी उत्कट इच्छा है। हमने गेटसे बाहर निकलकर कुछ रंगीन चित्र लिए और सब लामाओंके नाम पूछे। ये सब नाम संस्कृतसे अनुदित हैं। ओद् सेर=धर्मरश्मि। रिंछेन् दोर्ज़=रत्नवज्र। तांजिन् ओद् सेर्=धर्मधरप्रभ। दाम् छोइ=सद्धर्म। लामाछब्=गुरुशरण। लोबसाङ् आगवाङ्=सुमतिवागिन्द्र। गोम्बोदोर्ज़्=नाथवज्र।

भारतके आचार्य साइबेरियामें स्थित २०० मील लम्बी झीलके उत्तर तक जाते थे। उस समय घोड़ा ही आवागमन का साधन था। बुर्यात् मंगोलियामें भी अनन्त अमूल्य निधियां भरी पड़ी हैं। एक चन्दन-निर्मित बुद्धकी अति-विशाल मूर्ति उलान्-उदेमें है। उलान्-उदेका अद्‌भुतालय दर्शनीय है।

जिस देशमें मई मासमें हिमाच्छादित पर्वत थे और हिममयी वर्षा होती रहती थी एवं हड्डियों तकको कँपा देनेवाली तीक्ष्ण वायु चलती थी, उस देशमें भारतकी उष्ण जलवायुके अभ्यस्त वे पण्डित आचार्य किस दिव्य शक्तिसे प्रेरित होकर जाते होंगे! टेढ़े-मेढ़े भूल-भुलैयोंवाले पर्वतीय मार्ग, दुर्गम वन, आवागमनके साधनोंकी विहीनता—क्या इनको निरुत्साहित नहीं करती थी? उनमें कैसी शक्ति थी, कैसी अदम्य प्रेरणा थी! उनके हृदयमें निरन्तर आध्यात्मिक ज्वाला जलती होगी। धर्मप्रेमकी यह अटूट प्रज्वलित ज्वालाका दीपक ही उन्हें इतने दुर्गम देशोंमें जानेका साहस देता होगा। इन्हीं प्राचीन आचार्योंने नृशंस जातियोंको सभ्यता और धर्मका पाठ पढ़ाया। बर्बर नरपशुको मानव बनाया, न केवल मानव, किन्तु देवपुरुष बना दिया। चीनकी सीमापर स्थित कुण्डुम् महाविहारमें योद्धा अपनी सब संहार-सामग्री मन्दिरमें भेंट कर जाते थे। सुवर्ण और धनके अतिरिक्त अपने अस्त्र-शस्त्र तक वे चढ़ा आते थे। भेरीघोष धर्मघोषमें परिणत हो गया।

लामाओंकी संस्कृत सुननेकी प्रबल इच्छा थी। दुभाषिये द्वारा उन्होंने कहलाया कि वे श्लोक सुनना चाहते हैं। हमने उन्हें संस्कृत श्लोक गाकर सुनाये। गम्भीर मुद्रामें एकाग्रचित्त सुनते रहे। सुननेके पश्चात् कहने लगे—पिछले समयमें देवियाँ भी इसी प्रकार गाती होंगी। मन्दिरसे बाहर निकलनेपर वहित्रके चारों ओर इतनी जनता इकट्ठी हो गई थी कि दुभाषिये और विज्ञान समितिके व्यक्तियोंको हमारे वहाँ ले जानेके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ा। कारकी खिड़की खोलकर उत्सुक जनताको नमोबुद्धाय किया और श्लोक सुनाया, सुनकर बूढ़ी स्त्रियोंकी आँखोंसे अश्रु बह निकले। ये हाथ उठाकर आशीर्वाद दे रही थीं। सबके मुख प्रेम और ममतासे इतने चमक रहे थे कि देखकर बरबस प्रेम उमड़ आता था। उनका यह प्रेम भगवान् बुद्धकी पवित्र जन्मभूमिके लिए था।

मोंगोल देश क्षेत्रमें बहुत बड़ा है, किन्तु अत्यधिक शीत के कारण बस्तियाँ बहुत थोड़ी हैं। लोग प्रायः घोड़ोंपर आते-जाते हैं। उलान्बातरको छोड़कर सभी लोग तम्बुओंमें रहते हैं। उलान्बातरका अर्थ इस प्रकार है—उलान् का अर्थ लाल और बातर का अर्थ बहादुर। बहादुर शब्द बातरका ही भिन्न रूप है। इस प्रकार उलान्बातर का अर्थ लालबहादुर हुआ। उलान्बातरका रक्षक देवता गरुड़ है। इस नगरके मध्यमें एक बहुत विशाल चौक है, जहाँ सुखेबातरकी अश्वारूढ़ पत्थरकी प्रतिमा लगी है। चौकके चारों ओर बड़े-बड़े भवन हैं। एक ओर संसद्-भवन है। संसद्के आगे ही सुखेबातर और छोइबाल्सान् की समाधियाँ बनी हैं। एक ओर राजकीय मुद्रणालय है, दूसरी ओर नाटक-गृह है, और विदेशियोंके ठहरनेके लिए आल्ताई होटल है। चौकसे कुछ ही दूर राजकीय पुस्तकालय है। संसद्-भवनके पीछे विश्वविद्यालयका विशाल भवन है। प्रथम मईका उत्सव सुखेबातर चौकमें होता है। ऐसा लगता है, सारा मोंगोल देश ही वहाँ आ गया हो। बच्चे, बूढ़े, बूढ़ी स्त्रियाँ, युवक-युवतियाँ सारे ही लोग

सैनिक प्रदर्शनमें भाग लेते हैं। पाठशालाओंके बच्चे अपने खेल-कूदकी नई-नई झाँकियाँ निकालते हैं। प्रातः ७ बजेसे दोपहरके १२ बजे तक निरन्तर उत्सव होता रहता है। दर्शकगण संसद्-भवनकी सीढ़ियोंसे देखते हैं। प्रधानमन्त्री अभिवादन लेते हैं। मौंगोलियाके राष्ट्रपतिका नाम शम्भु है। अपने राष्ट्रिय चिह्नको ये लोग सोयम्बु अर्थात् स्वयम्भू कहते हैं। मौंगोल झण्डेपर सोयम्बु (स्वयम्भू) चिह्न बना रहता है।

एक दिन सायंकाल प्राध्यापक रिंछिन् (रिंछिनका अर्थ रत्न है) और उनकी पत्नी रत्ना हमें अपने घर बुलाकर ले गये। प्रा० रिंछिन् अपनी पत्नीको रत्ना कहकर ही पुकारते हैं। प्रा० रिंछिन् बहुत बड़े विद्वान् हैं। मौंगोल साहित्य, व्याकरण, भाषा-विज्ञानके विशेषज्ञ हैं। फ्रेंच प्रवाहसे बोलते हैं। जर्मन, रूसी, चेक भाषाएँ भी भली प्रकार जानते हैं। हमसे ये फ्रेंचमें बात किया करते थे। इनकी सहृदया पत्नी रत्ना अंग्रेजी, जर्मन और रूसी भाषा जानती हैं। श्रीमती रत्नाने हमारा परिचय अपनी पुत्री इन्द्रीसे कराया। जैसे हमारे यहाँ इन्द्रसे इन्द्राणी बना, वहाँ इन्द्रसे इन्द्री बन गया। इन्द्रीके पति मौंगोल देशके उप-प्रधानमन्त्री हैं। इनके पुत्रका नाम स्वस्तिकवज्र है। इनके कुटुम्बी स्वस्तिकवज्रको भारतीय कहते हैं और बहुत प्यार करते हैं। प्रा० रिछिन् 'मौंगोल देशमें संस्कृत नाम' नामक पुस्तक लिख रहे हैं। इनके यहाँ कुछ अति प्रचलित व्यक्तियोंके नामोंपर दृष्टिपात कीजिये। आपको यन्त्र-तन्त्र ये नाम सुनाई पड़ेंगे। जैसे—उत्पल, रत्न, कीर्ति, कुशली, कुमुद, कुन्द, कुबेर, चक्र, सुमेरु, जय, ज्ञान, जिनमित्र, बृहस्पति, पंचरक्षा, पुण्य, वैडूर्य, वज्रपाणि, बुद्धरक्ष, महाश्री, सुमति, क्षेत्रपाल, पार्वती, पद्मबोधि, सुन्दरी, गरुड़ी, आयुषी, अनिन्द्, उष्णीष, धर्मसिद्ध।

श्रीमती रत्नाने बताया कि कुछ वर्षों पहले तक यहाँ विवाह बड़े वैभवसे होता था। लड़के और लड़कीकी कुण्डली देखकर विवाहका शुभ मुहूर्त पुजारी निकालता था। बहुत-से पुजारी-पण्डित विवाहोत्सवमें मन्त्र-पाठ करते थे। कुण्डमें अग्नि जलाकर वर और वधू उसमें मक्खन और चावल डालते थे। पण्डित दोनोंके वस्त्रोंमें गाँठ बाँधता था और वर-वधू अग्निकी प्रदक्षिणा करते थे। वर-वधू एक-दूसरेपर चावल फेंकते थे और मन्दिरमें जाकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे। विवाहोत्सव तीन-चार दिनमें सम्पन्न होता था।

प्राध्यापक रिंछिनने बताया कि मौंगोल लिपिके कलात्मक रूप मुख्यत; तीन हैं—(१) फाग्स्पा, (२) स्वयम्भू, (३) वागिन्द्र। फाग्स्पा और स्वयम्भूके ३३, ३३ प्रकार हैं। वागिन्द्रके दो प्रकार हैं। इस प्रकार ६८ प्रकारसे मौंगोल लिखी जा सकती है। इन रूपोंपर कोई विशेष पुस्तक नहीं है। प्रा० रिंछिन् इन रूपोंका संग्रह करके छापेंगे। इनका कहना है कि खुब्सुगुल् झीलके समीप वैयक्तिक पुस्तकालयमें उन्होंने पंचतन्त्रका हस्तलिखित ग्रन्थ देखा है। इन्हींके अनुसार शमन प्रार्थनाओंमें अनेक संस्कृत नाम आते हैं। कुछ शमन गीतोंमें 'राम' शब्द भी आता है। विक्रमादित्यकी कथाएँ मौंगोल देशमें बहुत प्रिय हैं। राजा भोज और राजा किसनकी कथाएँ भी लोकप्रिय हैं। १७ वीं शताब्दीके एक हस्तलिखित ग्रन्थमें लिखा है कि ये भारतीय भाषासे उन्दुर्गेगेन्के समय मौंगोल भाषामें अनुवाद की गईं। विक्रमादित्यकी कथाओंकी पुस्तक हमें भेंट-स्वरूप भी मिली है। सुभाषितरत्ननिधि भी संस्कृतसे अनूदित एक प्राचीन ग्रन्थ है। मौंगोलमें अमरकोष और मेघदूतका अनुवाद भी मिलता है। अमरकोष कई शताब्दियों पूर्व अनुवाद किया गया था। सब विहारोंके पुस्तकालयोंमें ये पुस्तकें रहती थीं। बड़े विहारोंके अपने मुद्रणालय भी होते थे। इनके यहां खुदे हुए काष्ठ-फलकोंसे छपाई होती थी। चाणक्यराजनीतिशास्त्रका प्राचीन अनुवाद मौंगोल भाषामें है। उलिगेरुन् दालइ अर्थात् कथासागर कहानियोंके लिए बहुत प्रसिद्ध है। आल्तान् गेरेल् अर्थात् सुवर्णप्रभासका कात्मुक हस्तलिखित ग्रन्थ हमें भेंट-स्वरूप दिया गया। मौंगोल देशमें प्रत्येक मन्दिरमें सहस्रोंकी संख्यामें पुस्तकें रहती थीं। बड़े-बड़े पुस्तकालय थे। इनके अतिरिक्त कञ्जूर तञ्जूर नामसे सुविख्यात धर्मग्रन्थ भी प्रत्येक पुस्तकालयमें रहा करते थे। कञ्जूर अर्थात् भगवान्के मुखसे निकले प्रवचन और तञ्जूर उन प्रवचनों पर टीकाएं। कञ्जूर तञ्जूरमें सहस्रों पुस्तकें हैं। इनमें धर्मसे सम्बद्ध ही नहीं, किन्तु राजनीति, दर्शन, आयुर्वेद, गणितज्योतिष, फलितज्योतिष तथा अनेक विषयोंसे संबद्ध नाना प्रकारके ग्रन्थ हैं। जिस देशमें ७५० विशाल विहार और २००० मन्दिर एवं एक लाख लामा निवास करते थे, वह देश तो आध्यात्मिक सुखसौरभका केन्द्र रहा होगा। धारणी और मन्त्रोंका पाठ तथा गंभीर मधुर वाद्योंका कर्ण-प्रिय संगीत वातावरणमें कितनी नैसर्गिक शान्ति भरता होगा, उसका आनन्द कल्पनातीत है; जब मनुष्य इस भौतिक लोकसे ऊपर उठकर पारलौकिक दिव्यलोकके पवित्र वायुमंडल

में विचरण करता होगा, वह कैसा अनूठा आनन्द होगा ! धन्य है यह मोंगोल जाति और धन्य हैं वे दिव्यशक्ति-सम्पन्न हमारे पण्डितगण !

एक दिन हमें प्राध्यापक लोब्साङ् वन्दन्ने अपने घर आमन्त्रित किया। लोब्साङ् वन्दन् और उनके छोटे भाई वीर हमें बुलाने आए। इनके घरपर कई पड़ोसी हम भारतीयोंको देखने आए हुए थे। परिवार जन तथा अन्य जनों से परिचय कराया गया। प्रा० लोब्साङ् वन्दन्का पुत्र धर्मसिंह है। पुत्रियोंके नाम इस प्रकार थे (१) ओयुन्देल्गेर्= प्रज्ञापारमिता, (२) ओयुन्गेरेल्=प्रज्ञाप्रभा, (३)ओयुन्बिलिग्= प्रज्ञामेधा, (४) मान्लाजव्=भैषज्यगुरुरुक्षिता। सबसे छोटा पुत्र बिलिक्थु = प्रज्ञावी था। लोब्साङ् वन्दन् बुद्ध-जयन्तीके अवसरपर भारतवर्ष आए थे। भारतकी एक-एक वस्तु इनको प्रिय है। मोंगोल विश्वविद्यालयमें प्राचीन साहित्य पढ़ाते हैं। इनके यहां हमने निम्न प्रमुख पुस्तकें देखीं— सुवर्णप्रभास (कात्सुक लिपिमें), ठलिगेरुन्दलाई अर्थात् कथासागर, मिलारास्वाकी गीतशतसाहस्रिका, छिंगिसखान्का इतिहास, पञ्चरक्षा, मणिकाम्बुम्, चन्द्रकोकिलागीत (इस पुस्तकमें काशीके राजाका उल्लेख भी है)। फग्वा नामक एक अन्य प्राध्यापक भी वहां उपस्थित थे। ये तुलनात्मक मोंगोल भाषाविज्ञान पढ़ाते हैं। इन्होंने मोंगोल भाषामें "क्रिया" पर कार्य किया है। आजकल नोमुनगेरेल्के व्याकरणका अध्ययन कर रहे हैं। यह व्याकरण पाणिनिसे प्रभावित है। १३०५ में यह व्याकरण रचा गया था। इसके रचयिता उइगुर पण्डित नोमुन्गेरेल् थे। इन्होंने बोधिचर्यावतारका अनुवाद किया और सुभाषितरत्ननिधिका भी। लोब्साङ् वन्दन्के यहां हमने दालादाख्वर अथवा ७० स्तर वाली पूर्णपोली खाई और मलाईकी रबड़ी, मीठे चावल इत्यादि। ये शाकाहारी भारतीय स्वादकी वस्तुएँ थीं।

उलान्बातरमें शासकीय पुस्तकालय बहुत विशाल है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंसे परिपूर्ण है। भोट (तिब्बती) और मोंगोल ग्रन्थोंका अद्भुत संग्रहालय है। उनकी सूचनानुसार एक लाख भोट पुस्तकोंका संग्रह है और ५० सहस्र से अधिक आधुनिक और पुरातन मोंगोल पुस्तकोंका। ताड़-पत्र पर लिखा हुआ संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थ यहां सुरक्षित है। इसमें रंगीन चित्र भी बने हैं। यहां अनेक भोट सुम्बुम् हैं। एक लेखककी कृतियोंके संग्रहको सुम्बुम् कहते हैं। यहां ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका संग्रह ही नहीं, अपितु कलाकी पराकाष्ठा देखकर दर्शक आश्चर्यचकित और मुग्ध रह जाता है। चांदीके पत्रों पर उभरे हुए सुवर्णाक्षरोंमें लिखित 'गुह्यसमाजतन्त्रराज' नामक ग्रन्थका सौंदर्य वर्णनातीत है। इसके प्रारम्भिक पत्रों पर बनी सुवर्णमयी मूर्तियां भारतकी उत्कृष्ट कलाके दर्शन कराती हैं। मुख पृष्ठोंपर बने सुवर्ण और रजतके उभरे हुए शाक्यमुनि, वज्रपाणि और ताराएँ तथा स्वर्गका मनोहारी दृश्य देखकर ऐसा लगता है कि संसारके महान कलाकारोंकी ये अमर कृतियां जगत्में अज्ञात क्यों हैं ? ये अनुपम कृतियां भारत के इतिहासकी भी सुन्दर झांकियां हैं। इनके दर्शन प्रत्येक भारतीयको करने चाहिए।

उलान्बातरके मध्यमें छोइजिनलामिन् सुमे है। जिब्जुन् दाम्पाके समयमें यह भविष्यवाणी विहार था। मन्दिरके चारों ओर लाञ्छा लिपिमें संस्कृत लिखी है। मन्दिरके अन्दर अनन्त मूर्तियां हैं। अष्टम अवतारके गुरुका सुवर्णरोपित शरीर रखा है। महाकालकी मूर्तियां भिन्न-भिन्न मुद्राओंमें हैं। भित्तिमें मूर्तियां उभरी हुई लगी हैं। ऐसा लगता है, मानों स्वर्गसे देवता नीचे झांक रहे हैं। अष्टमंगल और सप्तरत्न अपने शुद्ध रूपमें सुशोभित हैं। मीन, कलश, शंख, अश्व, गज, श्रीवत्स, चक्र इत्यादि बने हुए हैं। भगवान् बुद्ध कमलासीन होकर शिष्योंको उपदेश दे रहे हैं। लकड़ीके अनेक मन्दिरोंके अन्दर देवी ताराएँ और यमान्तककी मूर्तियां हैं। पीतलके घोड़ों पर पूजा-समग्री ले जाई जा रही है। कहीं सुखावतीका दृश्य है, तो कहीं अप्सराएं उड़ रही हैं। देवगण अपने-अपने विमानोंपर बैठे आकाशसे सारा दृश्य देख रहे हैं। भारत के १८ आचार्योंके चित्र भित्तिपर लटके हैं। मिट्टीकी मुद्रापर छोटे-छोटे असंख्य बुद्ध ही बुद्ध बने हैं। शाक्यमुनि, अवलोकितेश्वर, ध्यानिबुद्ध इत्यादि अनेक भिन्न-भिन्न रूपकी मूर्तियां ही मूर्तियां हैं।

हम लोग ३ मईको मध्याह्नमें उलान्बातरसे एर्देनिद्जूके लिए चल पड़े। यह ४५० किलोमिटरकी दूरीपर है। दो वहित्र साथ थे। दो चित्रकार, एक विज्ञान समितिका प्रतिनिधि, एक पुरातत्ववेत्ता, एक दुभाषिया तथा दो चालक। मार्ग बहुत ही भयंकर था। कभी वहित्र किसी टीले पर चढ़ता, तो कभी नीचे घाटीमें उतरता। कोई निश्चित सड़क बनी हुई न थी। केवल दिशा देखकर चालक जिधर चाहता, वहित्र घुमा कर ले जा रहा था। सामान्य चालक ऐसे स्थानपर चलानेमें असमर्थ रहेगा। कभी-कभी तो

ऐसा लगता था कि अब हम खड्डमें गिरे, बस समाप्त हुए, परन्तु चालक अत्यन्त पटु और धैर्यवान् था। दिन भर चलने के पश्चात् रात्रिको हम एक स्वास्थ्य-केन्द्रमें सोए। यह अभी बना है और इसकी प्रत्येक वस्तु नई है। भित्तियों पर पद्म और श्रीवत्स चित्रित हैं। इस जातिको भी द्वीपान्तर जातिके समान कलासे बड़ा प्रेम है। कलाविहीन वस्तु इन्हें अच्छी नहीं लगती। दूसरे दिन प्रातः ९ बजे एर्देनिदूजूके लिए प्रस्थान किया। मार्गमें ६८ उडगूर समाधियाँ देखीं। इनमें एक स्त्री दो घोड़ों सहित दबाई गई थी। लगभग १॥ घण्टे चलनेके पश्चात् एर्देनिदूज् पहुंचे। मार्ग पर्वतों से परिपूर्ण था। पुरातत्ववेत्ताने बताया एर्देनिदूजू १५८६ में स्थापित किया गया। दूरसे ही चौकोर श्वेत स्तूप दिखाई देने लगे। विहारकी भित्ति पर्याप्त ऊँची है और इसमें १०८ स्तूप बने हैं। स्तूपोंकी दशा जीर्ण थी। किसी के ऊपरका भाग टूट गया था, किसीका शिखर टेढ़ा होकर झूल रहा था। किसी समय इनपर सुन्दर रंग रहा होगा और शिखर सुवर्णलेपके कारण धूपमें चमकते होंगे। आज इस भव्य विहारके दर्शन करके हृदयको दुःख-सा हुआ। किन्तु यह सोचकर सन्तोष कर लेना पड़ा कि हम सौभाग्यशाली हैं, जो इसके दर्शन तो हो गए। ये १०८ स्तूप मालाके १०८ मनकोंके द्योतक हैं। इस स्तूपमालाके अन्दर प्रवेश करनेपर तीन विशाल मन्दिरोंके भग्नावशेष दिखाई देते हैं। कई विशाल पक्के मढ़ दिखाई देते हैं। इनके पास ही पत्थर और पकी मिट्टीकी अनेक टूटी-फूटी कलाकृतियाँ पड़ी हैं। यह पत्थरका टुकड़ा कभी किसी मूर्तिका अंग रहा होगा, दूसरा किसी मकरमुखका अवशेष और तीसरा किसी अलंकरणका भाग—ऐसी कल्पना करते-करते पर्याप्त अन्दर चले गए। हरे और लाल रंगोंकी खपरेलोंकी बनी छतें किसी समय धूपमें बड़ी चमकती होंगी।

मन्दिरके परिसरमें एक विशाल धूपपात्र बना हुआ है। दो विशाल शिलाओंपर लाञ्छा, मोट, मोंगोलमें 'ओं मणिपद्मे हूं' खुदा हुआ है। एकपर चीनी भी है।

मकरमुखसे विभूषित प्रवेशद्वार है। फाटकमें प्रवेश करते ही तीन मन्दिर दिखाई देते हैं। प्रथमकी छतमें अनेक तारा देवियाँ चित्रित हैं। छतके मध्यके गह्वर भागमें मण्डल बना हुआ है। सामने ही तीन सुवर्ण-मण्डिल मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियोंके सामने मञ्चपर अनेक छोटी सुवर्णमयी मूर्तियाँ रखी हैं। छोटे-छोटे चैत्य भी हैं। पूजा-सामग्री अनेक पात्रोंमें भरी है। मोरपंख खम्बोंसे लटकाए हुए हैं। समस्त भित्ति एक अति विशाल थंकासे आवृत थी। थंका कलापूर्ण और प्राचीन लगता था। दाईं ओर पुस्तकें रखी थीं। बाहरकी ओर भित्तिपर लगातार स्वयंभू लिपिमें संस्कृत लिखी थी। छतके ऊपर सुवर्ण स्तूप और धर्मचक्र बने थे।

द्वितीय मन्दिर दो भूमि ऊँचा है। इसके प्रवेशद्वारपर ज्वालामण्डलमें स्थित चण्डमहारोषणकी मूर्ति है। यहां संस्कृतमें सुवर्णाक्षरोंसे पट्टेपर लिखा है—'ओं चण्डमहारोषण हूं फट्'। सुवर्णलिखित हृष्ट्व्यं भी टँगा हुआ है। बाईं ओर लड़कीका छोटा-सा मन्दिर है। इसमें किसी गुरुमहाराजकी प्रतिमा स्थापित थी। सामने तीन विशाल सुवर्णकी मूर्तियाँ हैं, जो श्रद्धालु भक्तजनोंके भेंट किये वस्त्रखण्डोंको पकड़े हुए हैं। मूर्तिके मध्यमें ऊर्णा बनी थी। पूजा-सामग्रीमें सुपारी, गेहूं, दाखें, जौ, चावल और लाल रत्तियाँ हैं। दाईं और बाईं ओर महाकालकी काली विशालकाय दो मूर्तियाँ खड़ी हैं। महाकाल रक्षकके रूपमें हैं। अमंगलकारी वस्तुओंका संहार और मंगलकारी वस्तुओंका पोषण करते हैं। मन्दिरके चारों ओर परिक्रमा करनेके लिए दीर्घा बनी हुई है। परिक्रमा करके हम ऊपर गए। यहां विशाल बोधिवृक्ष सहस्र बुद्धोंकी मूर्तियां सुशोभित हैं।

तृतीय मन्दिरमें चारों ओर संस्कृतके मन्त्र लिखे हैं। इसमें प्रवेश करते ही काश्यप, शाक्यमुनि और मैत्रेयकी सुवर्णमयी मूर्तियाँ हैं। काश्यप पूर्व युगके, शाक्यमुनि वर्तमान युगके और मैत्रेय भविष्यमें होनेवाले बुद्धके रूपमें हैं। यहां द्वारपर नवरत्न बने हैं। द्वारपर लांछा लिपिमें 'ओं बलि बलि महाबलि स्वाहा' लिखा है। अन्दरके फाटकपर 'ओं पद्मोष्णीषविमले हूं फट्' लिखा है। हमने इन सब वस्तुओंके चित्र लिये हैं। मन्दिरके खम्बोंपर सोनेके चमकते हुए नाग चढ़े हैं। इन तीन विशाल मन्दिरोंके पार्श्वमें कई छोटे-छोटे भवन हैं। यहां हमें कुछ मूर्तियां उपहार-स्वरूप मिलीं। खण्डहरमें पड़े संस्कृतके मन्त्रोंसे युक्त छोटे-छोटे अनेक स्तूप हमने ढूंढ़ निकाले। मिट्टीकी कई छापें भी हमें मिल गईं।

एर्देनिदूजु विहारके बाहर कुछ दूरपर मोंगोल खानोंकी राजधानी काराकोरमूकी भित्ति बनी है। पत्थरका एक अतिविशाल कछुआ एर्देनिदूजुके फाटकके बाहर पड़ा है। यह कछुआ दीर्घ जीवनका प्रतीक है।

१२ मईको हम उलान्बातरसे चल पड़े। विमानक्षेत्रपर बहुत लोग आए थे। हम वहांसे चल तो पड़े, परन्तु हमारा

मन तो वहीं रमा हुआ था। इच्छा होती थी कि इस पवित्र मोंगोल देशमें कुछ वर्षों तक रहें और कुछ पुण्यार्जन करें; किन्तु दूसरी ओर अपनी मातृभूमिकी ममतामयी पुकार थी। मंगोलियाकी तीर्थ-यात्रा करके हमारा जीवन कृतार्थ हो गया। मोंगोल शासनके अति सौहार्दसे हमें जो अनन्त साहित्यिक-सांस्कृतिक सामग्री मिली, उसका सम्पादन और प्रकाशन करना हमारा परम कर्तव्य है।

चलनेसे एक दिन पूर्व प्रधान मंत्री त्सेदेन्बालका निमन्त्रण मिला। मोंगोल प्रधान मन्त्री बड़े प्रेमसे हमसे संसद्-भवनमें मिले। चाय और मिठाईसे हमारा आतिथ्य किया। मोंगोल देशमें हमारी सुख-सुविधाके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किए। हमने अपने कार्यका कुछ परिचय दिया और संस्कृतका शान्ति पाठ गाकर सुनाया। शान्ति-गीत सुननेके लिए वे तुरन्त खड़े हो गए और जब तक वह पूरा न हुआ, तब तक खड़े रहे। उनके साथ चित्र लेनेको कहा, तो वे तुरन्त चित्र खिचवानेके लिए उद्यत हो गए। उनके मुख-मण्डलसे भारतके प्रति प्रेम और सद्भावना फूटी पड़ती थी।

ब्राह्मण कालीन संस्कृति

गोविन्दजी, एम० ए०

इस कालमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी प्रधानता रही। अतः इस कालकी संस्कृतिको ब्राह्मण कालीन संस्कृतिके नामसे अभिविहित किया गया। ऋग्वेद कालमें संस्कृतिका केन्द्र सरस्वती नदीका किनारा तथा उसके आसपासकी भूमि थी; किन्तु ब्राह्मण कालमें आते-आते संस्कृतिका क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ और गंगाकी पूरी घाटी तथा मध्यदेश भी उसकी सीमामें आ गया। इस कालकी संस्कृति-विषयक सामग्री भी हमें बहुत सीमित मात्रामें मिलती है। इस कालके न तो लेख ही मिलते हैं और न शिलालेख ही प्राप्त हैं। संस्कृतिके अध्ययनके लिए जो कुछ हमें इस कालमें प्राप्त है, वह नितान्त धार्मिक सामग्री है। यह सामग्री प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है। धार्मिक साहित्यका जहाँ तक प्रश्न है, उसे हम तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) वेदसंहिता, (२) ब्राह्मण ग्रन्थ तथा (३) इतिहास एवं आख्यानक काव्य (रामायण और महाभारत)।

वेदसंहितामें ऋग्वेदको छोड़कर सभी अन्य संहिताएँ आ जाती हैं। अथर्ववेदमें बीस काण्डोंमें ७३० सूक्त तथा ६००० मन्त्र हैं। इसमें पारिवारिक जीवनसे सम्बन्धित विचार, राजनीति, समाजशास्त्र और आयुर्वेदसे सम्बन्धित सिद्धान्त भरे पड़े हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह ग्रन्थ जन-साधारणके धार्मिक जीवनका प्रतिबिम्ब है। सामवेद ऋग्वेद से अधिक सम्बन्धित है। यह यज्ञके अवसरपर गाये जानेवाले मन्त्रोंका संकलन है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका कोई महत्व नहीं है; क्योंकि ७५ मन्त्रोंके अतिरिक्त सभी मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। सम्पूर्ण मन्त्रोंकी संख्या १५४९ है। यजुर्वेद में पद्यके साथ-ही-साथ गद्यका भी दर्शन होता है। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकाण्ड है। यह विशेष रूपसे यज्ञसे सम्बन्धित है। विभिन्न यज्ञोंके समय उच्चरित किये जानेवाले मन्त्रोंका इसमें संग्रह है। इस वेदमें तन्त्र-मन्त्र तथा आर्थिक-सामाजिक सामग्रीके साथ-साथ रेखागणित तथा अंकगणित सम्बन्धी सामग्री भी मिलती है। भौगोलिक परिस्थितियों तथा प्रदेशोंका भी वर्णन इसमें है। यजुर्वेदमें संस्कृतिकी पर्याप्त सामग्री सुलभ है।

ब्राह्मण ग्रन्थोंकी सामग्री गद्यमें है। इन ग्रन्थोंके निर्माण का समय आठ सौ ईसा पूर्वसे पाँच सौ ईसा पूर्व है। इसका मुख्य विषय कर्मकाण्ड है। यज्ञके क्रियाकलापमें संहिताका विनियोग कैसा होना चाहिए, इसपर ब्राह्मण ग्रन्थमें प्रकाश डाला गया है। विषयकी दृष्टिसे यह विधि, अर्थवाद और उपनिषद तीन खण्डोंमें विभक्त है। विधिमें यज्ञ करनेकी विधि, यज्ञकी वेदी बनानेका ढंग और यज्ञके लिए आवश्यक बातोंका विधान दिया गया है। अर्थवादमें अच्छे-अच्छे उदाहरण देकर यज्ञके महत्व एवं फलको समझाया गया है। इसमें प्राचीन कालके कितने ही यज्ञ करनेवाले राजाओंका वर्णन मिलता है, जिससे तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक

जीवनपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उपनिषदमें यज्ञ और तत्सम्बन्धी अनेक बातोंका दार्शनिक ढंगसे विवेचन किया गया है। यज्ञके कर्मकाण्डको दार्शनिक विचार-सरणीकी सहायतासे प्रतीकके रूपमें समझानेका प्रयास किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थोंका सम्बन्ध वेदोंसे है। ऐतरेय ब्राह्मणका ऋग्वेद से, छान्दोग्यका सामवेदसे, तैत्तिरीयका कृष्णयजुर्वेदसे, शतपथ का शुक्लयजुर्वेदसे और गोपदका अथर्ववेदसे सम्बन्ध है।

ब्राह्मण कालमें ही रामायण और महाभारत दो आख्यानक तथा इतिहासके काव्योंका प्रणयन हुआ, जो आगे चलकर हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यताके साहित्य-स्तम्भके रूपमें स्थिर हुए। इन ग्रन्थोंका उपयोग धार्मिक रूपमें न होकर लौकिक कार्योंके लिए हुआ। आगे चलकर इन पुस्तकोंमें अनेक मत-मतान्तर तथा कथाएँ प्रक्षेप रूपमें आ गईं।

इस कालकी भाषा वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृतके बीचकी है। धीरे-धीरे यह धारा लौकिक संस्कृतकी ओर बढ़ती चली गई। इस कालमें दैवत्ववादका विशेष महत्व नहीं रहा। ऋग्वेदके देवताओंकी भी महत्ता इस युगमें नहीं रही। ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) इन तीन देवताओं की कल्पना की गई और इनके महत्वको सर्वोपरि बताया गया। कृष्ण और उमाका भी उल्लेख इस कालमें मिलता है। देवी-देवताओंके असंख्य भक्तोंका भी उल्लेख मिलता है। भक्ति पक्षपर इस कालमें विशेष जोर दिया गया। कर्मकाण्ड, समारोहादि सम्बन्धी धर्मकी बहुत वृद्धि हुई। फलस्वरूप पण्डिताई भी बहुत बढ़ गई। मूर्ति-पूजाका भी प्रचार इस कालमें था। यज्ञोंका स्थान धार्मिक जीवनमें महत्वपूर्ण हो गया था। अश्वमेध-यज्ञ, राजसूय-यज्ञ आदिकी प्रथा इस युगमें प्रचलित हो गई थी। पशुओंकी बलि भी दी जाने लगी थी। तन्त्र-मन्त्र, टोटका तथा बाह्याचार इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थोंकी देन हैं।

इस कालमें दर्शनोंके मूलाधार उपनिषद् ग्रन्थ थे। अद्वैतवादकी प्रतिष्ठा इसी कालमें हुई थी और इस दर्शनने दार्शनिक क्षेत्रमें अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। आत्माको परमात्माका एक अंश माना जाता था। पुनर्जन्मकी कल्पना इसी युगकी देन है। कर्मफलपर लोगोंका अटूट विश्वास था। आत्म-संयम, आत्म-नियन्त्रण तथा तपस्या जीवनका उपयोगी अंग समझा जाता था। आत्मा, प्रकृति और ईश्वर ये ही तीन दर्शनके मुख्य अंग थे। आत्माके समान ही प्रकृतिको अनादि माना जाता था।

इस कालमें सोलह जनपदोंका उल्लेख मिलता है, जिनमें चौदह जनपद तो मध्यदेशमें ही थे। कुरु, पंचाल, काशी, कोशल, कौशाम्बी आदि जनपद मध्यदेशमें थे। राजाके शासनके अतिरिक्त प्रजातन्त्रके रूपमें शासनके चलानेका भी उल्लेख मिलता है। व्रज तथा मल्ल ऐसे ही प्रजातान्त्रिक जनपद थे। सभा और समितिके स्थानपर दो अन्य नाम इस कालमें प्रचलित हुए—पौर और जनपद। इस कालके राजा भी निरंकुश शासक नहीं थे। आन्तरिक रूपमें राजा के राज्य प्रतिष्ठापनमें पौर और जनपदोंका भी सहयोग रहता था। इस युगमें राजाओंमें चक्रवर्तीकी भावना पाई जाती थी। जनपदोंके राजाओंमें जो सबसे अधिक शक्तिशाली होता था, वह चक्रवर्ती समझा जाता था। चक्रवर्ती होनेका यह मतलब नहीं था कि वह पड़ोसी राष्ट्रोंको क्षति पहुंचावे या हड़प ले।

इस कालमें वैदिक कालके आर्य और अनार्यकी समस्या सुलझ गई थी। अनार्योंको चौथे वर्ण अर्थात् शूद्रमें ले लिया गया था, लेकिन अब भी इस जातिमें आर्य लोग विवाह-सम्बन्ध नहीं करते थे। वर्ण-व्यवस्थाका अत्यधिक विकास हुआ। वर्णाश्रम-धर्मकी व्यवस्था भी इसी कालमें हुई। वर्णाश्रम-धर्ममें ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास-आश्रम सम्मिलित थे। इसका सम्बन्ध केवल द्विज मात्रसे था। पुरुषों और स्त्रियोंमें आजकी तरह अलगाव नहीं था। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि नारीका स्थान समाजमें अवश्य ही कुछ कम हो गया। विवाहके सम्बन्धमें भी कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये।

ब्राह्मण कालमें समाजका नैतिक स्तर काफी ऊँचा रहा। ज्ञानकी अपेक्षा चरित्रको अधिक महत्व दिया गया। शिक्षाके मुख्य तीन केन्द्र थे—(१) राजदरबार, (२) परिषद् तथा (३) गुरुकुल। इन केन्द्रोंमें वेद, स्मृति, इतिहास, ज्योतिष, गणित, शस्त्र-विद्या, नक्षत्र-विद्या आदिका पठन-पाठन होता था। गुरुकुलको एकसे अधिक गुरु मिलकर चलाते थे। इसी कालसे धीरे-धीरे दक्षिणी भारतमें भी आर्य संस्कृतिका प्रसार होने लगा और दक्षिण तथा गुजरातमें इस संस्कृतिने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

मणीपुरके सांस्कृतिक नृत्य

माधुरी निगम

साकार स्वप्नमें खोया-सा कलाकार खड़ा था। तीन दिनकी विकट यात्राके पश्चात् पतली सकरी नौका द्वारा हरहराती तीक्ष्ण प्रवाहवाली पर्वतीय सरिताको पारकर इसी क्षण वह तटपर पहुंचा था। अनन्त सौंदर्यकी वारुणी चहुं ओर छलकी पड़ी थी। पलकों द्वारा उसे अंतरमें बटोरते-बटोरते वह शिथिल हो चुका था। दृष्टि उठाकर उसने अंतरिक्ष में निहारा—सामने कोबरू पर्वतके शिखरोंपर सघन हरीतिमा के झुरमुटमें छोटे-छोटे घरेलुओंसे गुँधा बिखरा था—उसकी कल्पनाका देश मणीपुर! जहाँके समीरणमें घुँघरुओंकी रुनझुन, सरिताकी तरंगोंमें नर्तनकी सिहरन एवं तृण-गुल्मोंके प्रत्येक आवासमें कलाकी देवी वीणापाणिकी विहँसती प्रतिमा के उसने रोम-रोमसे दर्शन किए थे। वही उसका स्वप्नोंका देश हरे-भरे दुकूलसे मंडित सामने शिखरसे उसे आमंत्रण दे रहा था। बोझिल पलकोंको अनुपम तुष्टिसे भर धीरेसे उसने उस ओर निहारा और चल पड़ा अपने स्वप्नसे साक्षात् करने!

हिमालयके सुदीर्घ वक्षपर अनेक जीवन और संस्कृतियाँ भरी पड़ी हैं। आजके विज्ञान-युगकी प्रखरताके मध्य यहाँ अनेकों ऐसे मनोरम स्थल हैं, जहाँ विज्ञानका हारा-थका खिलाड़ी अपनी आँखें सेंक ले। कोबरू पर्वत मालाओंके मध्य हरी-भरी उपत्यकामें अण्डाकार रूपमें अवस्थित है मणीपुर देश। इसका क्षेत्रफल ७००० वर्गमील है। अपनी अनोखी स्थिति और सौंदर्यके कारण यह प्रकृति का समुचित वरदान-सा ज्ञात होता है। पर्वत-श्रेणियोंके बीच-बीच धानके सोपानवत् विशाल खेत हैं। इन शिखाओंके भाल बहुधा कजरारे मेघोंके सुन्दर किरीट धारण किए रहते हैं। समस्त उपत्यका सुन्दर चित्रशाला-सी जान पड़ती है। कहीं झलमलाती चपला सरिताएँ, कहीं झरझर कर बहते निर्मल निर्झर, कहीं नील परिधान किए पर्वत अंचल और कहीं शाखा-प्रशाखाओंके बाहुपाशमें बिंधे वनपुंज और इन सबका आलिंगन करनेकी आतुरतामें झुका नीलाम्बर—सब कुछ किसी चितेरेकी सुन्दर कल्पना-सा ज्ञात होता है। प्रकृति अपने अत्यंत सुमधुर एवं सुललित वेशमें यहाँ कूजन करती है। षट्ऋतुओंका चक्र अपनी प्रखरताओंको तज सरल सुशीतल रूपमें यहाँ रमा हुआ है। अपनी निराली स्थितिके कारण इस देशकी संस्कृति आजके जगत्से भिन्न अपनी अलग ही पृष्ठभूमिपर अंकित है। पुरातन कालमें कूकी, लुशाई जातियोंने यहाँ प्रवेश किया था। ये मंगोल जातिके वंशज थे। ये मणीपुर और त्रिपुरामें बसे हुए थे। इनके कुछ दक्षिणमें लुशाइयोंका निवास था। समयके परिवर्तनके साथ-ही-साथ इन सब जातियोंमें भी पारस्परिक आदान-प्रदान तथा संबंध होने लगे। उत्तर-दक्षिणकी इन जातियोंके मिश्रित स्वरूपको आज मेथीस कहते हैं। अब ये ही मणीपुरके मूलनिवासी कहलाते हैं। ये अत्यंत ही रूपवान तथा सुसंस्कृत हैं। अपने चारों ओरकी वन्य आदिम जातियोंके मध्य इस सुसंस्कृत देशकी स्थिति वास्तवमें विचित्र है। धीरे-धीरे इनका प्रभाव समीपकी नागा जातियोंपर पड़ रहा है। इन मेथीसोंने अपने पूर्व धर्मका परित्याग कर हिन्दू धर्म अपना लिया है। बहुत पहले यहाँ हिन्दुत्वकी भावनाका स्वीकरण आरंभ हो गया था। १५वीं शताब्दीमें यहाँ विष्णु-पूजाके प्रमाण मिलते हैं। कियाम्बा राजाके शासन-कालमें हिन्दूधर्मकी भलीभाँति स्थापना हो गई थी। किन्तु यह कार्य किसी भी रूपमें विवशतापूर्ण धर्म-परिवर्तन द्वारा नहीं हुआ। अतिथि ब्राह्मणोंसे स्वयं और स्वेच्छासे इन्होंने इस धर्मकी दीक्षा ली। ये ब्राह्मण अतिथि सिलहट और काछारके मार्गोंसे यहाँ प्रविष्ट हुए थे। श्री रामानन्द तथा श्री चैतन्यकी भक्ति-धाराका प्रवाह भी १८वीं शताब्दीमें इसी मार्ग-द्वारा यहाँ पहुंचा था। इसका प्राचीन नाम मणीपुराकाम था। १३वीं शताब्दीमें कन्नौजके ब्राह्मण राजा श्री सोमेश्वर पाठक यहाँ आए और यहाँ अपना राज्य स्थापित कर इसे संस्कृत नाम 'मणीपुरम्' से विभूषित किया। किन्तु इस ऐतिहासिक वृत्तकी अपेक्षा इस अलौकिक देशके नामकरणकी कितनी ही अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं। प्रसिद्ध है कि श्री शंकर और पार्वती कैलाश-पर्वतसे अपनी घोर तपस्याके उपरान्त यहाँ आए। वे यहाँ प्रथम बार ही आए थे। यहाँके निवासियोंने इनकी पूजा की। उनके साथ ही साथ स्वर्गलोकसे सप्त नक्षत्र (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र व शनि) भी अवतरित हुए थे। उन्होंने इस स्थानके सौंदर्यको देखकर इसे अपने अपूर्व रास-नृत्यके लिये चुना।

एक अन्य कथाके अनुसार एक बार श्रीकृष्णजी अपनी गोपिकाओंके साथ रास-नृत्य कर रहे थे। गोपीश्वर (ग्वालोंके

स्वामी) के रूपमें पार्वतीके साथ शिवजी वहाँ पहुंचे। उन्होंने रासमें भाग लेना चाहा। किन्तु कृष्णने उन्हें अनुमति न दी और अन्य किसी स्थलपर जाकर नृत्य करनेके लिए कहा। इसपर शिवजीने कोबदन पर्वतको अपनी नृत्य-भूमि चुना। किन्तु पर्वतके चारों ओरकी भूमिमें जलकी अधिकताके कारण नृत्य संभव न था। शंकरजीने जल-शोषण के लिये श्रीकृष्णकी स्तुति की। कृष्णजी इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, अश्विनिकुमार, वायु आदि देवताओं-सहित वहाँ पहुंचे। सबके सहयोगसे समस्त भूमिका जल सुखाया गया और विशाल रंगमंचकी स्थापना हुई। पुनः देवगण दिग्पाल बन वहाँ रक्षाके हेतु प्रस्तुत हुए। उस समय यहाँ केवल कुछ किरातोंका ही निशास था। आदिकर्त्ता शिव एवं जगत्-जननी पार्वतीके रास-नृत्यको देखनेकी लालसामें समस्त देवता, किन्नर आदि अपने-अपने वाद्य यन्त्रों सहित आ विराजे। सर्पराज श्री अनंत (शेषनाग) भी अपनी जज्वल्ला मणिसे मंडित होकर आ गए। सात दिन-रात यह अनंत नृत्य चलता रहा। सर्पराजकी मणिकी ज्योतिसे आलोकित होनेके कारण इस स्थानको 'मणिपुरा'—ऋषियोंका देश कहा गया। इस प्रकार पौराणिक कथाओंके आधारपर इस देशका निर्माण महाशक्तियोंके नृत्यके लिए ही किया गया था। रास-रससे तृप्त हो देवताओंने इसे सदैव सौंदर्य व राग-राससे परिपूर्ण रहनेका वरदान दिया। मणिपुराके पूर्व इसे शिवनगर कहते थे। रास-नृत्यकी समाप्तिके पश्चात् देवताओंने शिवजीसे प्रार्थना की कि वे यहीं रहकर अपना राज्य करें, किन्तु शिवजीने नागराज अनन्तको वहाँका अधीश्वर बना दिया। बाराह अवतारके समय विष्णुके श्वाससे एक बड़े पर्वतीय मार्ग का निर्माण हो गया था। वहीं पर नागराजने अपने दरबार की स्थापना की। उन्होंने अपने राज्यमें नौकारोहण, पोलो व नाना प्रकारके मनोरंजक नृत्य आरंभ किये। आज भी महामारी अथवा आपत्तिके समय यहाँ पोलोकी गेंद व छड़ी देवताकी भेंट चढ़ाई जाती है। कुछ दिनों राज्य करनेके बाद अनन्तराज पाताललोक चले गए। किन्तु उनका चिन्ह अर्थात् सर्प-विभूषित मुकुट आज भी मणीपुरके शासकों का राज-चिन्ह है। अनन्तराजके उपरान्त गंधर्वराज चित्रभान का उल्लेख मिलता है। चित्रभानकी पुत्री चित्रांगदाके साथ अर्जुनके विवाहकी कथा महाभारतमें मिलती है। मणीपुर देशके कुछ पवित्र स्थलोंमें अर्जुनके जीवनसे संबंधित कथाएँ प्रचलित हैं। इन स्थलोंमें उनके स्मृति-चिन्ह भी अब तक विद्यमान हैं। चित्रभानके उपरान्त उन्हींके वंशजोंका राज्य चलता रहा। १२ वीं शताब्दीमें लोयम्बाके समयमें मणीपुर-काव्यकी सर्वप्रसिद्ध घटना खम्बा और राजकुमारी थोइबीके प्रणयको घटित हुई। यह अनोखी प्रेम-कथा इनके काव्यकी प्राण है। इसके अतिरिक्त भारतीय पुराण इनके जीवन और कलामें घुले हुए हैं। हिन्दू मैथियोंकी यह संस्कृति भारतीय व मंगोल संस्कृतिका अनोखा मिश्रित रूप है। इसका आधार धर्म है। संसारकी प्रायः समस्त संस्कृतियाँ धर्मपर आधारित हैं। धर्मके प्रति निरंतर प्रेम एवं प्राकृतिक सौंदर्यके परिवेषसे ज्ञात होता है कि यहाँकी स्थिति युगयुगान्तर तक अपने पवित्र स्वरूपको इसी प्रकार धारण किये रहेगी। यहाँके मैबा (पुजारी) और मैबी (पुजारिन) वैष्णव व ब्रह्मण धर्म एवं संस्कृतिके साथ पुरातन संस्कृतिके बीजोंको भी संजोए हुए हैं। भगवत पुराण, थोइबी-खम्बाकी प्रणय-लीला तथा रास-नृत्य – ये सब इनकी मिली-जुली संस्कृतिके सुरंजित स्वरूप के प्रमाण हैं। लाई हरोबा नृत्य इनके जीवनका स्पन्दन-सा ज्ञात होता है। इसके नामसे ही स्पष्ट होता है कि इसका जन्म हिन्दू धर्मके पूर्व हुआ था। आज भी प्रत्येक गाँवमें कृषि-फलके अवसरपर नई फसलके पूर्व, अप्रैल मासमें इस नृत्यका समारोह एक मास तक रहता है। लाई हरोबा अर्थात् ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए विनयका आरम्भ, अर्चनाके हेतु, भक्ति-भावनासे भरकर हुआ था। कभी-कभी स्थान, ऋतु-विन्यास अथवा वहाँके अधीश्वरकी इच्छानुसार इसके समयमें परिवर्तन भी कर दिया जाता है।

लाई हरोबा नृत्य—इस वृहद नृत्यके अनेक खण्ड हैं। प्रथम उमेंगलाई—गाँवके देवताके लिए किया जाता है। गाँव के किसी भी स्थानपर, जहाँ चींटीके घरेलुओंके आकारकी उठी हुई भूमि मिलती है, वहींपर यह नृत्य आयोजित कर लिया जाता है। इस स्थानको चारों ओरसे बाँस आदिसे घेरकर देवालयका रूप दे दिया जाता है और गाँववाले नृत्य की तैयारीमें लीन हो जाते हैं। कहा जाता है कि उमेंगलाई देवताकी शक्ति अपार है। सर्वप्रथम ये वन-देवता कहलाते थे। इनके पुजारी मैबा व मैबी कहलाते हैं। इन्हें दैवी शक्ति प्राप्त रहती है। ये चिकित्सक, भविष्यज्ञाता तथा अलौकिक ज्ञानके भांडार होते हैं। ये ही लाई हरोबा नृत्यके निर्देशक, नर्तक और आयोजक रहते हैं। यह नृत्य धर्म, संस्कृति, कला एवं मनोरंजनका मिश्रित स्वरूप है। विभिन्न मुद्राओं द्वारा

नृत्यकार सृष्टिके जन्म, आदिरूप और विकासकी कहानी दर्शाते हैं, और इस प्रकार प्रति वर्ष सृष्टिके उदयका दार्शनिक तत्व दुहराया जाता है। मैबा इस नृत्यका संगीतकार होता है और मैबी गाँवकी सब स्त्रियों एवं कन्याओंके सहयोगसे नृत्य आरम्भ करती है। गाँवके युवक व युवतियाँ आदि समस्त जन इसमें भाग लेते हैं। ढोल और इकतारा (पेनाखोम्बा) की ध्वनिके साथ-ही-साथ नृत्य आरम्भ होता है। इकतारेके सिरेपर मोटी ध्वनिवाले घुँघरू बँधे रहते हैं। इसकी सुमधुर ध्वनिपर गति-संचालन होता है। पैरोंमें घुँघरू नहीं पहने जाते।

सर्वप्रथम उमेंगलाईके सम्मुख कुछ मानवाकार पीतलकी प्रतिमाएँ वस्त्रोंसे सुसज्जित कर गाड़ीपर रख दी जाती हैं। मैबा व मैबी शरीरसे चिपके श्वेत वस्त्रोंको पहनकर इन प्रतिमाओंमें दैवी शक्तिकी उद्भावना करनेका प्रयास करते हैं। दो ताँबेके पात्रोंमें जल भरकर रख दिया जाता है। मैबी एक सोने और चाँदीके टुकड़ेको पात्रके समीप फेंकती है। पुनः दोनों पात्रोंको धागेसे बाँध दिया जाता है। चाँदी स्वर्ग और सोना धरतीके प्रतीक हैं। गोल पात्रों द्वारा प्रगट होता है कि धरती गोल है और आरम्भमें यहाँ जल-ही-जल था। सूतके धागे प्रगट करते हैं कि किस प्रकार मकड़ीके जालेकी भाँति सृष्टिका निर्माण हुआ। उपरान्त अपनी विभिन्न मुद्राओं द्वारा नर्तक वायुकी गति, वर्षाकी झड़ी तथा धरती व आकाशके विनिमयसे सृष्टिका आरम्भ दर्शाते हैं। उपरान्त वे परिधान परिवर्तन कर नृत्यके दूसरे दृश्यपर आते हैं। इसे 'जागोई थापा' कहते हैं। प्रमुख नर्तक वीर वेशमें इन देव-प्रतिमाओंका रक्षक बन जोर-जोरसे ढोल बजाकर लाई हरोबाके आरम्भ होनेकी सूचना देता है। पुनः अनेकों स्त्रियाँ, जिनकी अवस्था ६ से लेकर ६० वर्ष तककी होती है, नृत्य आरम्भ कर देती हैं। साथ ही साथ ये गीत भी गाती हैं। अपनी विभिन्न मुद्राओं द्वारा ये प्रकृतिके जनन स्वरूपकी व्याख्या करती हैं। इस प्रकार अनेकों समूहोंमें नृत्य चलता रहता है। इसी समय पीछेसे पुरुषोंका समूह 'होई-होई' की ध्वनि करता आगे बढ़ता है। वे ढोल बजानेवालेके चारों ओर घेरा बना लेते हैं और लाई हरोबाकी प्रसिद्ध पंक्तियोंका उच्चारण करते हैं—"हरीलो-लोला हरीलो-लेरीलो-हैयूटे-खुलाइटे-होयाहे-अँसीबू-थोइना-हराओबा, होईहे-होईहे हाया नागेडा !"

कहते हैं कि इन पंक्तियोंका उच्चारण मणिपुरके आरम्भ कालमें देवताओं द्वारा किया गया था। इसका अर्थ है, ईश्वर की जय हो ! इससे बढ़कर आनन्द क्या अन्यत्र कहीं हो सकता है ? उत्तरमें 'लोटाई-लोटाई' अर्थात् 'नहीं-नहीं' की ध्वनि होती है।

तृतीय खंडमें पुरुषवर्ग मणीपुर ग्राम-गीतमालाओंका गान आरम्भ करते हैं। मैबा व मैबी सुन्दर राजकीय वेश-भूषासे सुसज्जित हो आते हैं। वे इस धार्मिक उत्सवके महाराजा कहलाते हैं। सर्वप्रथम मैबा व मैबी तथा पुरुषगण नृत्य करते रहते हैं। इन गीतोंमें बहुधा प्रेम-कथाएँ अंकित रहती हैं। धीरे-धीरे समस्त स्त्रियाँ नृत्य-भूमिके चारों ओर घेरा बना लेती हैं। प्रत्येक स्त्री अपनी कमरपर पीला वस्त्र अथवा पटका बाँधे रहती है। यह वसन्तऋतुका प्रतीक होता है। स्त्रियाँ ही मानों धरतीमाताका स्वरूप हैं। ये धरतीकी उर्वरा-शक्ति को प्रगट करती हैं। इसके बाद इस नृत्यका चतुर्थ खण्ड 'लाईबोशबा' अर्थात् ईश्वरसे प्रहास आरम्भ होता है। नृत्य-भूमिके मध्यमें तुलसी पौधेकी स्थापना रहती है। पुजारिनें फूल-पत्र-चन्दनसे इसकी पूजा करती हैं। पूजाकी सामग्री वे केलेके पत्तेपर रखकर चढाती हैं। यह पत्र तुलसी चौरेके समीप रहता है। यह जलपर ईश्वरके निवासका प्रतीक है। पुनः पुजारिनें कुछ सीकें पूजासे लेकर अपनी उँगलियोंके मध्य खोंसती हैं और आगे बढ़ती हैं। कुछ लोग समूहमें पात्रोंमें पानी तथा छाते, मोरछल आदि लेकर उनके पीछे चलते हैं। ये व्यक्ति पुजारिनों द्वारा उद्भूत शक्तिके प्रतीक रहते हैं। धीरे-धीरे एक जुलूस आगे बढ़ता है। पुजारिनें नृत्य करती घूमती हुई जाती हैं। उनका यह घूमना धरतीके निरन्तर घूमनेकी प्रक्रियाकी मुद्रा है। पुनः अनेकों मुद्राओं द्वारा सृष्टि का उदय प्रदर्शित कर सभी आनन्दसे नाच उठते हैं। ईश्वरके साथ पुजारिनोंके सम्बन्धकी रहस्यमयी कल्पनाकर आनन्दित होनेके कारण इसे लाईबोशबा कहा गया है। लाईबोशबाके साथ-ही-साथ 'लाई रे माथेक' अर्थात् सर्पदेवके रूपकी झलक दिखाई जाती है। नाचते-नाचते सर्पके लहराते स्वरूपके रूपमें ये पंक्तिबद्ध हो अग्रसर होते हैं। यह धरतीकी रूप-रेखाका भी प्रतीक होता है। पूरबसे पश्चिमकी ओर चलता हुआ यह जुलूस धरतीका अपनी धुरीपर घूमना दर्शाता है। रहस्यपूर्ण शब्दोंकी उद्भावना कर प्रकृति और पुरुषके मिलनके अनेक चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। सम्पूर्ण नृत्य अपने आदिम रूपमें देश और संस्कृतिके प्रारम्भकी व्याख्या करता है। इसका मुख्य उद्देश्य ईश्वरकी पूजा-अर्चना

कर उर्वरताके लिए याचना करना तथा सब-कुछ उसीको समर्पित कर देना है।

रासलीला—मणीपुरकी नृत्य-कलाका दूसरा भव्य रूप उसका रासलीला नृत्य है। स्वयं शंकर-पार्वतीने इस देशकी रचना मानों रासलीलाके लिए ही की थी। वसन्तऋतुमें पर्वतखण्डोंके वक्षपर मन्दिरोंके सम्मुख रात्रिके प्रहर इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। यह साधना नृत्य है। अतः इसके लिए गम्भीर साधना और भक्तिकी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है। विदेशी अथवा विजातियोंको इस लीला-नृत्यमें भाग लेनेकी अनुमति नहीं होती। राधा-कृष्ण पुनीत प्रांजल प्रेमकी अभिव्यंजना कर अलौकिक प्रेम एवं स्वर्गीय आनन्दके स्वरूपको दर्शकोंके सम्मुख रखा जाता है। मणीपुर देश-वासियोंकी यह रासलीला अपनी अनोखी सम्पदा है। वे इसे और इसके नर्तकोंको अपूर्व श्रद्धाके साथ देखते हैं। किसी दूसरेके सम्मुख वे अपने इस सुचित्र एवं सुरंगमय नृत्यको करना अच्छा नहीं समझते। मानों इससे उसकी प्रांजलतामें कमी आ जायगी। इसके नृत्यकार भावना-लहरीमें लीन स्वयं ईश्वरीय शक्तियोंकी अनुभूति करते हैं। कृष्णका अभिनय बहुधा १२ वर्षकी आयुका बालक तथा गोपिकाओंका युवती स्त्रियाँ करती हैं। यह प्रायः ७ घंटे तक होता रहता है। इसमें अभिनय, संवाद, गान, नृत्य सभी कुछ सम्मिलित होता है। मणीपुरमें रासलीलाके तीन रूप होते हैं—(१) वसंत-रास (मार्च-अप्रैल माहमें), (२) कुंजरास (दशहरा दुर्गापूजा के अवसरपर) तथा (३) महारास (शीतकालकी पूर्णिमाके अवसरपर)। प्रत्येककी अपनी भिन्न कथा व मुद्राएँ रहती हैं। वसन्तरासमें राधा-कृष्णका प्रेम, विरह-मिलन तथा राधा की मानलीला; कुंजरासमें वृन्दावनकी कुंजगलियोंमें राधा-कृष्ण लीला तथा महारासमें कृष्णका बिछोह, राधाका विरह-विलाप तथा कृष्णके पुनर्दर्शनका प्रदर्शन होता है। इसके अतिरिक्त नित्य रास नित्य प्रतिदिन, दिवारास दिनके प्रहर, ननना रास कृष्ण तथा गोपियोंके सहित और अष्टश्याम अष्टगोपी रासलीलाएँ हैं।

रासलीला नृत्यकी वेशभूषा अत्यन्त ही सुन्दर और आँखोंको सुख देनेवाली होती है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर सर्वप्रथम इस नृत्यको आसामके घने कुंजोंसे बाहर भारतके प्रांगणमें लाये और यह अत्यन्त ही ललित एवं लोकप्रिय सिद्ध हुआ। इसका समारम्भ सर्वप्रथम कीर्तन द्वारा किया जाता है। इससे सभामण्डपमें भक्तिका वातावरण छा जाता है। अपने विभिन्न गीतों द्वारा गायक राधाकृष्ण-भक्तिके प्रचालक श्री चैतन्य महाप्रभु तथा जयसिंहके काव्य एवं भक्ति-भावोंका गान करते हैं। पुनः वे वृन्दावनके लतापुंजों, वनकुंजों, यमुना-कछार आदिका सुन्दर चित्रण करते हैं। इसी समय अभिनेता मंचपर आकर लीला आरम्भ कर देते हैं।

इन दो प्रमुख नृत्योंकी अपेक्षा अन्य अनेक नृत्य मणिपुर देशकी माटीमें मिले हुए हैं। **गौरलीला नृत्य** द्वारा गौरांग महाप्रभुके अवतारकी कहानी कही जाती है। बालकगण ग्वालबाल बन इस नृत्यमें भाग लेते हैं। इसमें भगवद्भक्तिकी अभिव्यंजना विशेष रहती है।

रासाल अथवा गड़रिया नृत्य—यह बहुधा वसन्त-ऋतुमें किया जाता है। अनेकों बालक गड़रियेका वेश धारणकर साथमें बालकृष्णको लेकर आनन्दसे झूम-झूमकर नाचते हैं।

ढोल व ताफार नृत्य—नवम्बर माहमें जगन्नाथजीकी सवारीके अवसरपर उनकी गाड़ीके सम्मुख यह नृत्य होता है। ढोलोंकी तुमुल ध्वनिके साथ-ही-साथ नर्तकोंके पैर थिरकने लगते हैं। ढोलोंका विपुल नाद भी नृत्यकी ललित मुद्राके संयोगसे मधुर लगने लगता है। इसमें पुरुष भी भाग लेते हैं। इसमें शक्ति, पौरुषता और साहसका भी प्रदर्शन रहता है।

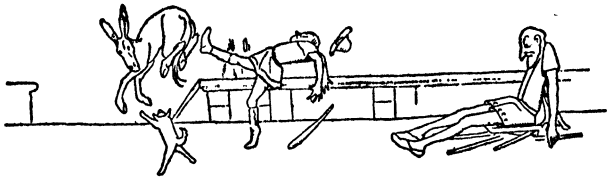
ताबाल चौंगबी—होली-पूर्णिमाकी रात्रिको छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष सभी समस्त भेद-भावोंका परित्याग कर इसमें भाग लेते हैं। गाँव और घरोंके बाहर मैदानमें इसकी आयोजना की जाती है। बड़ा-सा घेरा बनाकर ये अद्भुत कलात्मक ढंगसे नाचते व कूदते हैं। बीचमें पूजाका स्तम्भ रहता है। उसके चारों ओर घेरा बनाकर 'हरि बोल' की तुमुल ध्वनिके साथ पद-संचालना आरम्भ होती है। इस नृत्यको देखनेकी अपेक्षा इसमें भाग लेना अधिक सुखकर होता है। इसका आधार पौराणिक है। कहते हैं, सृष्टिके उदय कालमें सर्पराज पाखांबा (शेषनाग) के सिरपर धरती रखी गई थी। धरतीके बोझसे सर्पराज थककर चंचल हो जाते थे। यह देखकर शिवजीने देवलोकसे अप्सराएँ ताबाल चौंगबी नृत्य करनेके लिए भेजीं। अप्सराओंने इतनी सुन्दरता और लालित्यके साथ नृत्य किया कि सर्पराज मुग्ध हो स्थिर हो गये। ये ही सात अप्सराएँ आगे चलकर मणीपुरकी सात बड़ी जातियोंकी जननी बनीं।

पुंग चोलाम तथा करताल चोलाम नृत्य—पुंग अर्थात् ढोल नृत्यमें नर्तक एक कपड़ेके सहारे अपने गलेमें ढोल पहन लेते हैं। पुनः ढोल बजाते हुए उसकी तालसे तरंगित हो अद्भुत गतिसे पदक्षेप करते हुए कलात्मक प्रदर्शन करते हैं। धीरे-धीरे नृत्य क्षिप्र गति ग्रहण करता है और अनोखी झम-झमक आरम्भ हो जाती है। अन्तमें नर्तक आवेशमें सिर झटककर अपनी पगड़ी पीछेकी पंक्तिके गानेवालोंके ऊपर फेंक देता है। इसी प्रकार करताल नृत्यमें नर्तक हाथोंमें करतालें ले विभिन्न भाव-मुद्राओं और गतिका प्रदर्शन करते हैं। पुंग नृत्यकी भाँति ही धीरे-धीरे इसमें भी गति-संचरण होता है। ग्राम-नृत्य होनेपर भी इनमें कलाका पूर्ण समावेश होता है।

कीर्तन—किसी भी देशकी कला वहाँके धर्मपर आधारित रहती है। मणीपुरकी समस्त कलाओंका आधार भी धर्म है और धर्मका स्वरूप कला है। यहाँके देव-मंदिरों, भवनों आदि प्रत्येक पुनीत स्थानपर संगीत और नृत्यका समन्वित भक्तिभावोंसे भरपूर कलाका उत्कृष्ट स्वरूप-कीर्तन छाया हुआ है। मणीपुरके वृक्षपुंजोंके मध्य उठी प्राचीरोंके अंतरसे अथवा दिशाओंके जिस किसी कोणसे उठी कीर्तनकी ध्वनि समस्त वातावरणको पवित्र बना देती है। १८वीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभुने वृन्दावनकी कुञ्जगलीमें विचरण करते "सूरदासके चोर कन्हैया" की लीलाका गान ललित पदावलियोंमें किया था। देवताके सम्मुख अपने इन लीलापदों को गाते वे स्वयं राधा और कन्हैया बन नाच उठते थे। उनकी भक्ति माधुर्य-भाव रंजित प्रेमरस संचारिणी थी। इसी परंपरामें जयदेवने गीतगोविंदकी रचना कर प्रेमके संयोग और वियोग दोनों पक्षोंका निखार किया। ये ही सब पदावलियाँ आज मणीपुरकी संस्कृति और जीवनका स्पन्दन हैं। संध्या आरतीके समय पूर्णिमाकी रात्रिको तथा फाल्गुनमें होलीकी पूर्णिमाको इसका विशेष समा बँधता है। इस अवसरपर राजा श्रेष्ठ नर्तकियोंको पुरस्कार देते हैं। स्त्रियों की कीर्तन-मंडलियोंको रासशोरी कीर्तन अथवा न्यूपीपाला कहते हैं। राजा जयसिंहने अपने शासनकालमें इस प्रकार की कीर्तन-मंडलियोंको प्रोत्साहन दिया था। अंग्रेजोंने जयसिंहके वंशजोंको राज्यच्युत कर दिया था, किन्तु उनके वंशजोंमें आज भी किसी स्त्रीके देहावसानके ११वें दिन धूम-धामसे कीर्तन होता है। ढोल और शंखध्वनिके साथ वे इसे आरंभ करती हैं। इसके साथ ही इनका 'चालीशाबा' नृत्य भी होता है। चाली अर्थात् ताल देते हुए स्त्रियाँ नृत्य करती व गाती हैं। मणीपुरकी भूमिका प्रत्येक कण अपने जन्मसे ही इन घुँघरुओं और चालीकी छमकसे परिचित रहता है।

× × ×

सरल सलिलामें नौका मंथर गतिसे चप्पूसे मंद्र ताल देती चली जा रही थी। कवि देख रहा था उसकी दृष्टिसे धीरे-धीरे दूर होती स्निग्ध चन्द्रिकास्नात कोबरूकी गिरि-मालाएँ। पवनके शिथिल झोंके दूर कहीं ढोलकी थापपर पड़ती घुँघरुओंकी छमक लिए उसके कर्ण-कुहरोंमें अमृत रस बरसा रहे थे। वन-कुञ्जोंके मध्य अनंत रासलीलामें लीन रंग-बिरंगे घाँघरोंसे सुसज्जित गोपिकाओं के मुखकी पवित्र श्रीका स्मरण कर कविने आतृप्त हो मन-ही-मन अपनी श्रद्धाके फूल अनंत कलाकारके चरणोंमें अर्पित किए। दूर कहीं कोई नवयुवक बाँसुरीमें स्वर भर रहा था। नीरवता और ध्वनिका यह अद्भुत मिलन था।



स्व० पारसनाथ सिंह—कविके रूपमें

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

स्वर्गीय श्री पारसनाथ सिंहने व्यापार-क्षेत्रमें सफलता प्राप्त की, पत्र-संपादन और संचालनमें अद्भुत प्रतिभा दिखलायी, 'जगत्सेठ'-जैसे ग्रन्थको लिखकर अपने इतिहास ज्ञानका परिचय दिया। समय-समयपर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित लेख उनकी गद्य-लेखन-शैलीकी श्रेष्ठता तथा मनोरंजकताकी गवाही देते हैं—मतलब यह कि इन सारी चीजोंमें उनकी ऊँचे दर्जेकी पहुँच थी। उनमें उच्च श्रेणी की काव्य-प्रतिभा भी थी। उनकी सामयिक कविताएँ और तुकबन्दियाँ भाषा-काव्य-सौष्ठवके साथ-साथ रोचकतासे परि-पूर्ण हुआ करती थीं। इसके कुछ नमूने "विशाल-भारत" (जिससे आरम्भिक कालमें श्री पारसनाथ सिंहका घनिष्ठ संपर्क रहा) के पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ नीचे दिये जाते हैं।

आजसे प्रायः २८-२९ वर्ष पहलेकी बात है। हमारे शहरके सदर अस्पतालमें एक लेडी डाक्टर, मिस 'क' नियुक्त होकर आयीं, जो रहनेवाली किसी और प्रान्तकी थीं तथा जिन्हें देखकर महाकवि बिहारीलालके इस दोहेकी बार-बार याद आती थी :—

इक भीजै चहलै परै बूरे बहे हजार,
किते न अवगुन जग करत नय वय चढ़ती बार।

उनके यहाँ रहते हुए एक साल भी न हो पाया था कि एक दिन हमने सुना कि वह इस्तीफ़ा दिये बगैर या किसीसे कुछ कहे-सुने बिना कहाँ चली गयीं, एकाएक गायब हो गयीं। पीछे चलकर पता लगा कि उनका कोई प्रेमी था—कालेजका साथी—जो आया और रातोंरात उन्हें लेकर चलता बना। शहरमें इससे काफी खलबली मची। जो इस प्राप्त-यौवनापर फिदा थे, वे हाथ मलते रह गये। अस्पतालके अधिकारी सोचने लगे, जनाना वार्डका अब हम क्या करें, किसपर भार सौंपें? पर सबसे जटिल समस्या यह उपस्थित हुई कि वह स्थानीय सरकारी पशु-चिकित्सालयमें एक कुतिया छोड़ गयीं, जिसके इलाजका बिल पचास-साठ रुपयोंके करीब होता था। इस कुतियाका क्या हो और इस बिलका कौन भुगतान करे? चिकित्सालयके डाक्टरने शहरके अनेक गण्यमान लोगोंके पास कुतिया तथा प्रस्ताव भेजे कि वे बिलके रुपये चुकाकर इसे अपने पास रख लें; पर कोई इस बातके लिए राज़ी न हुआ, और अन्तमें वह कुतिया अस्पतालके धाँगड़ के हाथों पड़ी। पारसनाथ उन दिनों हमलोगोंके महमान थे। उनका हृदय शायद द्रवित हो उठा और उन्होंने एक लम्बी-सी कविता उस कुतियापर लिख डाली, जिसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार थीं:—

सभी रईसोंने ठुकराया, रखनेसे इनकार किया;
बोली कुतिया—'धिक् है मुझको, क्यों था मैंने जन्म लिया।
घर-घर घूमी कुतिया 'लैली', मिला न 'मजनूँ' उसे यहाँ;
कहा भूँककर उसने—'मेरी मौत! बता तू रुकी कहाँ?'
पर न मरी अब तक वह, दुःखके आँसू रोज बहाती है;
मिलो दान मेहतरको, उसकी हो कुतिया कहलाती है।

× × ×

कुतिया जहाँ-कहीं तू होवे, जल्दी तेरा समय कटे;
और नगर यह कई युगों तक तुम दुखियाका नाम रटे।

बरसोंके बाद, आजसे प्रायः डेढ़ साल पहले, अचानक उपर्युक्त मिस 'क' के साथ मेरी भेंट दिल्लीमें हुई, जब वह एक मेरे साथी संसद-सदस्यकी धर्मपत्नीके रूपमें मिलीं। मुझे तुरन्त ये पंक्तियाँ स्मरण हो आयीं।

उसी साल लखनऊकी 'सुधा' पत्रिकाका साहित्यांक धूमधामसे निकलने जा रहा था। स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माने संपादन-भार अपने कन्धोंपर ले लिया था। पारस-नाथजीसे उन्होंने लेखका तकाजा किया। उत्तरमें निम्नलिखित पद्य पारसनाथजीने उन्हें लिखा :—

खाक छान दिल्लीकी श्रीमन्! यहाँ आपका खत आया,
सुधासमुद्र उमड़नेवाला समाचार यह शुभ पाया।
किन्तु मुझे क्यों मिला निमन्त्रण? अमृत कहाँ मैं पा सकता?
और हाथमें लिये जहरका प्याला क्योंकर आ सकता?
बरसोंके अन्वेषणसे भी मुझे सुधारस मिला नहीं,
है मुझको सन्देह, धरापर मिल सकती वह वस्तु कहीं।
केवल विष है पास—आपकी सेवामें मैं क्या लाऊं?
सुधासिन्धु रचनेवालेको कौन मदद मैं पहुंचाऊं?
संभव है कुछ यही गरल इस हिन्दीका उपकार करे,
किन्तु लोग भय खाते विषसे—अच्छा था जो विष खाते,
भवसागरमें रहते पर भय-सागर पार पहुंच जाते।
पर, यह आशा निरी दुराशा, भय भारतका अधिपति है,
हो दासत्व दूर क्यों कर जब उलटी सबकी मतिगति है?
जो सचमुच संजीवन रस है उसे नहीं हम अपनाते,
पर जो रस है प्राण-विघातक उसे ग्रहण करते जाते।

मिला सदा स्वातंत्र्य उसीको जिसमें सत्साहस-बल था,
सत्य-प्रेमके जलसे जिसका परिप्लावित अन्तस्तल था।
क्या साहित्य हमारा वैसे साहसका परिचय देता?
अथवा सत्योपासक वैसा यहां एक भी है नेता?
जीवनसे साहित्य हमारा कोसों पीछे पड़ा हुआ,
बरसों पहले जहां खड़ा था वहीं आज भी अड़ा हुआ।
परम्पराके अन्धभक्त हम, नहीं किसीकी सुनते हैं,
सड़े-गले सूतोंसे 'स्थायी' वस्त्र काव्यका बुनते हैं।
नया जो कुछ हो निन्दनीय है, भले-बुरेका ज्ञान नहीं,
हितकर और ग्राह्य बातोंकी ओर किसीका ध्यान नहीं।
अन्धोंके नेता हैं अन्धे, कैसे राह दिखावेंगे?
हमें मृत्युके मुख-गह्वरमें, यह निश्चित, पहुंचावेंगे।
छन्दों तककी वर्ण-व्यवस्था हमपर शासन करती है,
कूड़ा-पन्थ यहां भी देखें कब तक दशा सुधरती है।
और अगर कोई उत्साही कुछ व्यक्तित्व दिखाता है,
नया भाव या नया ढंग कुछ निज रचनामें लाता है,
तो सनातनी कहने लगते—'यह तो छायावादी है',
मानो वह उच्छृंखल अथवा साहित्यिक उन्मादी है।
भाव-अभाव जहां हो ऐसा—समालोचना ऐसी हो,
उस भाषाकी, कहें आप ही, और अवस्था कैसी हो?
है आशा बस नवयुवकोंसे, वे साहित्य सुधार करें,
और ज्ञान-धनका संचयकर हिन्दीका भंडार भरें।
मत झूठा अभिमान करें वे, मत निन्दाका भय मानें,
पश्चिमसे है हमें सीखना अभी बहुत कुछ, यह जानें।
बर्न्स, बायरन, शेली जैसे कवियोंके अनुगामी हों,
हाँ, आपत्ति नहीं कुछ भी जो भूषणके भी हामी हों,
लिखें अवश्य, पढ़े पर उससे अधिक, और यह नियम गहें—
जीवन-ग्रन्थ विशाल, उलटते उसके भी कुछ पृष्ठ रहें।
मूल्य नहीं कुछ अन्य जनोंकी बातोंको दुहरानेका,
मूल्य सदा होता तत्त्वोंको अपने हाथों पानेका।
पूछें कविसे—ताजमहलके पीछे क्यों बेकार पड़ा?
बुरा विषय वह भूमि नहीं है जिसपर वह है अभी खड़ा।
नाट्यकारको सूत्रधार या नटी नहीं विस्मृत होती,
पर उसके सब पात्रोंके मुँह स्वाभाविकता है रोती।
कृत्रिमता ही कला नहीं है, ढाँचा प्राण न ला सकता,
शास्त्रसूत्र-अवलम्बनसे ही गुणगरिमाको पा सकता।
नकलनवीसी छोड़ हमारे लेखक मौलिक ग्रन्थ रचें,
महापाप दासत्व किसीका, उससे वे सब काल बचें।
अपनी आँखों दुनिया देखें, जिससे अनुभव खूब बढ़े,
और लिखें जो कुछ वे, उसपर कुछ तो पक्का रंग चढ़े।
बस थोड़ेमें यही निवेदन पत्रोत्तरमें करता हूँ,
अनधिकार चर्चा कुछ कर दी—अनौचित्यसे डरता हूँ।

क्षमा चाहता, निकल गयो हो
जो प्रसंगवश बात कठोर;
और आप साहित्य संभाले,
मैं जाता जीवनकी ओर।

किस रोचक ढंगसे अपने साहित्यिक विचार उन्होंने इस पत्रमें प्रकट किये हैं!

१९२९ का ग्रीष्मकाल था। मैंने उनके पास, कलकत्ते, कुछ आम तथा एक लेख संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान सर आर्थर बेरिडेल कीथ पर, एक पत्रिकाके लिए, उनके अनुरोधसे भेजे। इनकी पहुंच उन्होंने इन शब्दोंमें लिखी :—

कीथ-कथा-जल मिला, गया वह
भरने संपादककी गागर,
मिले आम्र-फल, उनसे पूरित
हुआ उदरका खाली सागर।
श्यामल पत्र मिले, ये घन हैं,
मन-मयूरको नाच नचाते,
किन्तु यहाँसे सबके बदले,
केवल धन्यवाद हैं जाते।

कलकत्तेमें जोरोंका 'डेंगू' ज्वर फैला हुआ था। मैं भी उसके चंगुलमें जा फँसा। डाक्टरोंने कहा, फौरन कलकत्तेसे बाहर चले जाओ। उसी रात घरके लिए रवाना हो गया। बीमार था, अतएव पारसनाथजी घर तक (उत्तर बिहार) पहुंचाने आये। घरपर उन दिनों एक मुकदमा चल रहा था, जिसके सम्बन्धमें अक्सर मेरे ममेरे भाई और उनके एक कारिन्दा आपसमें खानगी मशवरे किया करते थे। पारसनाथजीने कलकत्ते पहुंच कर जो पत्र भेजा, उसमें इसकी भी चर्चा की और लिखा :—

क्या वे दोनों अब भी मिलते,
नहीं कानतक जिनके हिलते,
किन्तु मंत्रणा होती ऐसी,
नित्य नये गुल जिससे खिलते?

एक बार सेठ जुगलकिशोर बिड़लाने एक बंगाली संस्कृत के पंडित, शास्त्री, को शुद्ध घीका एक टिन भेंट किया। घी विशुद्ध था, फिर तो ब्राह्मणका जातिगुण लोभ रोके न रुक

सका, लगे शास्त्रीजी नियमित रूपसे घी-भरे टिनकी याचना करने। पारसनाथजीने अपने एक मित्र श्रीराम शर्मा (मारवाड़वाले, 'विशाल भारत'-संपादक नहीं।) को लिखा :—

पीपा-नसमें घृत-घटा, लख नाचे मनमोर,
देखें कबतक भेजते, वह दिन जुगलकिशोर!
पीपा नहीं, पपीहरा, पड़ा हठीसे काम,
पीपा-प्रण पूरा करें, समझदार श्रीराम।

दैनिक 'स्वतंत्र' के दफ्तरमें एक दिन भूख लगी, तो उन्होंने अपने एक सहकर्मी संपादकके पास, बगलके कमरेमें, लिखकर भेजा :—

लगी है भूख,
मुँह गया है सूख,
रखते थे तुम किसमिस पास,
उसकी भी क्या तज दूँ आस?

ऐसे दो-चार नहीं, दर्जनों दृष्टांत मैं अपनी स्मृतिसे उनकी काव्य-कला तथा रोचक तुकबन्दियोंके दे सकता हूं। परन्तु स्थानाभावसे इस प्रसंगको यहीं समाप्त किया जाता है। गंभीर विषयोंपर भी उन्होंने कविताएँ लिखीं, महाकवि रवीन्द्रनाथकी बहुत-सी कविताओंका अनुवाद किया, पर उसकी यहां चर्चा न कर सका। मेरी इच्छा है कि स्व० मित्रवर पारसनाथ सिंहकी एक जीवनी लिखूँ, जिसमें उनकी कविताओंका पूर्ण समावेश हो। उनके मित्रों तथा अन्य परिचित जनोंसे अनुरोध है कि वे इस पुनीत कार्यमें मेरी सहायता करें। पारसनाथ सिंहजीके संबंधमें अपने स्मरण लिखकर भेजें। यदि उनके लिखे हुए पद्य-पत्र हों, तो उन्हें भेजें तथा और भी जो उपयोगी सामग्री उनके पास हो, उसे भी प्रेषित कर मुझे अनुगृहीत करें। ये सारी चीजें यथासमय उन्हें लौटा दी जायँगी। आशा है, मेरी यह प्रार्थना व्यर्थ न जायगी।

भारतीय चित्रकलाको बंगाल की देन

गौरीशंकर ओझा

आधुनिक भारतीय कलाओंको, पाश्चात्य प्रभावसे मुक्तकर भारतकी प्राचीन कला-परम्परा एवं आध्यात्मिकता-प्रधान संस्कृतिके अनुरूप उसको परिष्कृत तथा परिवर्तित करनेमें बंगालके कला-साधकोंका महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। विशेषतः संगीत, चित्रकला, नृत्य, नाटक एवं साहित्य आदिके क्षेत्रमें आज भारतीय संस्कृतिकी वर्त्तमान युगानुकूल जो गौरवपूर्ण परम्परागत प्रगति पाई जाती है, उसका श्रेय बंगालकी कला-साधनाको ही है।

आधुनिक कालके प्रारम्भमें जब भारतपर ब्रिटिश सत्ताका पूर्ण आधिपत्य हो चुका था, यूरोपीय कलाके बाह्य सौन्दर्यसे भारतीय विस्मित हुए, उनपर यूरोपीय चित्रकलाकी भड़कदार सजावटका प्रभाव पड़ा। इस कालमें यूरोपीय कलासे पूर्ण प्रभावित चित्रकार राजा रविवर्मा हुए। उनके चित्र पाश्चात्य शैलीसे प्रभावित होनेपर भी उनसे भारतीय रूप और संस्कृति की छाप नहीं हटाई जा सकी। यूरोपीय टेकनिकके आधारपर राजा रविवर्माने अनेक चित्रोंकी रचना की। उन्होंने अपने चित्रोंमें रामायण, महाभारत और पुराणोंकी अनेक घटनाओं का चित्रण किया है। इन चित्रोंमें रंगको विशेष महत्त्व दिया गया है। इसीलिए, उनके चित्र, चित्रकलाकी दृष्टिसे नहीं, अपितु धार्मिक दृष्टिकोणसे अधिक सम्मानित और प्रचलित हुए। राजा रविवर्माकी शैलीके आधारपर ही वर्त्तमान 'बम्बई स्कूल' की स्थापना हुई थी।

अंग्रेजोंके आधिपत्यसे भारतकी हिन्दू कलामें यूरोपकी कृत्रिमताका समावेश तो अवश्य होने लगा, किन्तु प्रत्येक देशकी कला उसकी संस्कृति तथा प्रवृत्तियोंके अनुकूल होती है। अतः इस दिशामें यहाँके चित्रकारोंका असफल होना ही सम्भव था। वे पश्चिमी प्रवृत्तिको भारतीय कलामें अंकित नहीं कर सके। इसके अतिरिक्त भारतीय चित्रकलाका आधार भी यूरोपीय कलासे नितान्त भिन्न रहा है। पश्चिमी चित्रकारोंकी सूझ प्रायः बाह्य आडम्बरों तक पहुंची, जब कि भारतीय चित्रकलामें मनुष्यकी मनोवृत्तियोंका रेखाओं द्वारा चित्रण किया गया है।

लगभग बीसवीं शताब्दीके आरम्भ कालसे भारतीय कलामें एक नूतन शैलीका आविर्भाव हुआ। अजन्ता तथा प्राचीन भारतीय चित्रकलाके आधारपर इस नवीन शैलीका निर्माण हुआ। इस शैलीके प्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध चित्र-शिल्पी

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। उन्होंने 'बंगाल स्कूल आफ आर्ट'की स्थापना की और इस नवीन पद्धतिका प्रचार किया। फल-स्वरूप उनके नेतृत्वमें भारतीय चित्र-शिल्पियोंने भारतीय कलाके विकासमें एक नवीन अध्यायका प्रारम्भ किया। उन्होंने भारतीय प्राचीन पद्धतिमें नवीन जाग्रति तथा नव-जीवनका संचार किया। इस नवीन आन्दोलनने अनेक प्रतिभाशाली चित्रकारोंके सहयोगसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कलाके क्षेत्रमें भी नवीन भारत अपनी प्राचीन गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परम्पराके अनुसार अपना एक ऐसा सन्देश दे सकता है, जिसे कोई भी यूरोप अथवा अमेरिकाकी कलाशालाओंका प्रतिबिम्ब नहीं कह सकता। यह कला पश्चिमी स्पर्शसे नितान्त भिन्न है। इसमें अपनी निजी मौलिकता तथा अपनी निजी, किन्तु शक्तिशाली व्यक्तित्व है। साहित्यके क्षेत्रमें कवीन्द्र रवीन्द्रने यह सिद्ध कर दिया था कि भारतभूमि अभी बिल्कुल कंगाल नहीं हुई है, उसी प्रकार कला-क्षेत्रमें चित्रकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने भारतकी कला-परम्पराकी गौरव-वृद्धि की।

शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रवर्त्तित चित्रकला में यह विशेषता है कि भावोंका चित्रण सूक्ष्म रेखाओं द्वारा होता है। बंगाल स्कूलके चित्रकारोंने भावोंके व्यक्त करनेमें अत्यन्त कुशलताका परिचय दिया है। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा चित्रित चित्रोंमें 'विरही यक्ष', 'महारानी तिष्यरक्षिता', 'यात्राका अन्त', 'बुद्धदेवकी निर्वाण-प्राप्ति', 'सिद्धार्थका गृह-त्याग', 'शाहजहाँके ताज-निर्माणका स्वप्न' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और कलाकी दृष्टिसे उच्चकोटिके हैं।

स्वर्गीय अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके अतिरिक्त उनके प्रमुख शिष्य चित्र-शिल्पी नन्दलाल बसुने भी इस पद्धतिको बहुत समृद्ध किया। भारतीय कलाके इस सूक्ष्म सौन्दर्यको उन्होंने अपने चित्रोंमें अत्यन्त सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। ठाकुर महोदयको छोड़कर यही आधुनिक भारतके सर्वश्रेष्ठ चित्रकार माने जाते हैं। आपने रेखाओं द्वारा भारतके दुःख-सुख, भावना, आशा-निराशा एवं संस्कृतिका अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। संसारकी नश्वरताने भी उनके ध्यानको अधिक आकर्षित किया है। आपके 'जीवन-कण' नामक चित्रमें यही भाव व्यक्त हुआ है। नन्दलाल बसु, स्वर्गीय विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके शान्तिनिकेतनके कला-भवनमें अध्यक्ष पदपर हैं। आप अपने चित्रोंमें स्वनिर्मित देशी रंगों का प्रयोग करते हैं। आपने अपनी कलामें चीनी तथा जापानी चित्रकलाकी पद्धतिका समन्वय भी किया है।

चित्रशिल्पी नन्दलाल बसुके 'शिव सती', 'ताण्डव', 'सती' तथा 'हर-पार्वती' आदि अनेक चित्र श्रेष्ठ कला-कृतियाँ हैं। भारतके कलाकारोंमें आजकल आपका सर्वोच्च स्थान है। भारतीय चित्रकलाके उत्तरोत्तर विकासमें आपने उल्लेखनीय योग दिया है। आपकी कला-कृतियोंमें आपके व्यक्तित्वकी स्पष्ट छाप झलकती है। नन्दलाल बसुने भारतीय चित्रकला को जो गौरव प्रदान किया है, वह अनेक सदियों तक अमर रहेगा।

बसु महोदयके अतिरिक्त शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के अन्य प्रतिभाशाली शिष्योंमें स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय, स्वर्गीय गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, असितकुमार हाल्दार, स्वर्गीय शारदाचरण उकील, वीरेश्वर सेन, क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार, शैलेन्द्रनाथ दे, हरिपद राय, फणीन्द्रनाथ मजुमदार आदि अनेक प्रसिद्ध चित्रकार हैं। इनमें से कई चित्रकारोंके नेतृत्वमें कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, लखनऊ, जयपुर आदि नगरोंमें चित्रकलाके विद्यालय प्रतिष्ठापित हुए, जिनके द्वारा भारतीय कलाका विभिन्न मौलिक पद्धतियोंके रूपमें विकास एवं प्रचार हो रहा है।

बंगालके बाहर भारतीय शैलीका प्रचार लखनऊमें असितकुमार हाल्दार तथा दिल्लीमें स्वर्गीय शारदाचरण उकील द्वारा विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। आधुनिक भारतीय चित्रकारों में बहुत कम ऐसे होंगे, जिन्हें रेखाओंके अंकनमें वह पटुता प्राप्त हो, जो हाल्दार महोदयको है। आपके चित्रोंमें सजीवता अपेक्षाकृत अधिक होती है। आप निरन्तर नई-नई रचना-प्रणालीका आश्रय लेते रहे हैं। हाल्दार महोदयके 'रासलीला', 'तूफानकी देवी', 'निर्माता अकबर', 'श्रेष्ठ भिक्षा', 'रवि-भारती' तथा 'माँ' नामक चित्र उच्चकोटिके हैं। हाल्दार महोदय बंगलाके एक सफल कवि भी हैं। आपका कविता-संग्रह 'खेयालिया' बहुत प्रसिद्ध है।

स्वर्गीय शारदाचरण उकील भी आचार्य ठाकुर महोदयके प्रिय शिष्योंमें से थे। उन्होंने मानव-सौन्दर्यका सहृदयता-पूर्वक चित्रण किया है। सन् १९१९ ई० में उन्होंने दिल्ली में 'स्कूल आफ माडर्न आर्ट' नामक कला-संस्थाकी स्थापना की और कलाका प्रचार करनेके लिए यथासमय अनेक प्रदर्शनियोंका भी आयोजन किया। कुछ समय तक उन्होंने कला-सम्बन्धी 'रूप-लेखा' नामक एक पत्रिकाका संचालन किया, जिसे अर्थाभावके कारण बन्द कर देना पड़ा। भारतीय

चित्रकलाके उत्थानमें स्वर्गीय उकीलका विशेष योगदान रहा। सन् १९३१ में लन्दनकी इण्डिया सोसायटीने इण्डिया हाउसमें शारदा बाबूके चित्रोंकी एक प्रदर्शनी आयोजित की थी। उस समय उनकी कला-कुशलता और चित्र-चातुरीपर इंग्लैण्डके कलाविद् मुग्ध हो गये थे।

बहुरंगे चित्रोंकी भाँति रेखाङ्कन-कलामें भी उकील महोदयने असाधारण कौशल प्रदर्शित किया है। धर्मकी ओर उनकी विशेष अभिरुचि थी। उन्होंने परम्पराओं तथा दन्त कथाओंसे विषय लेकर अनेक मौलिक रचनाएँ कीं। 'कृष्णकी बाँसुरी' नामक चित्र उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। कलाकारने इसमें यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि मनुष्य कैसे अपनेको विश्वात्मामें लीन करता है। इस चित्रकी सात्विकता तथा शान्ति देखते ही बनती है। 'औरंगजेब' उनका दूसरा सुन्दर चित्र है। इसमें मुगल साम्राज्यके पतनकी भविष्य-वाणी-सी मिलती है। इनके अतिरिक्त उनके चित्रोंमें 'वर्षा और बिजली', 'क्रुद्ध लहरें', 'गृहहीन माता', 'जटायु वध', 'शिव सती' आदि भी प्रसिद्ध हैं। इनमें कलाकारकी गम्भीरताकी सुन्दर रूपमें अभिव्यक्ति हुई है। उनके छोटे भाई रणदाचरण उकील और वरदाचरण उकील भी सफल चित्रकार हैं।

स्वर्गीय विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर महान् कविके अतिरिक्त एक उच्चकोटिके चित्रकार भी थे। उनकी पद्धति भावनापूर्ण एवं प्रतीकवादी थी। वे संगीतज्ञ, कवि तथा दार्शनिक थे और इन्हीं तीन धाराओंका सम्मिश्रण उनके चित्रोंमें है। उनकी कला रेखाङ्कन तक ही सीमित नहीं थी। साधारण मनुष्योंके लिए उनकी चित्रकला आकर्षित नहीं करती। उनकी कृतियोंमें उनके व्यक्तित्वकी स्पष्ट झलक है। पश्चिमी देशोंमें उनके चित्रोंका विशेष आदर हुआ।

आधुनिक भारतीय चित्रकलाके उत्थानमें स्वर्गीय गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, प्रमोदकुमार चटर्जी और वीरेश्वर सेनका योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। स्वर्गीय गगनेन्द्रनाथ ठाकुरके उच्चकोटिके चित्रोंमें 'निर्जला एकादशी', 'शिव-यात्रा', 'बरका जुलूस' तथा महाप्रभु चैतन्यदेवके जीवन सम्बन्धी अनेक चित्र हैं। उनकी कला भारतीय संस्कृतिकी गम्भीरता की द्योतक है। भारतीय कलाके पुनरुत्थानमें उनकी शैलीका विशिष्ट स्थान रहेगा।

प्रमोदकुमार चटर्जी उन युवक शिल्पियोंमें हैं, जिन्होंने भारतीय कलाके विकासके आन्दोलनमें विशेष सहयोग दिया। आपके चित्रोंमें 'हिमालयका एक दृश्य', 'चन्द्रशेखर' आदि अनेक उत्कृष्ट चित्र हैं। इनकी शैली आधुनिक भारतीय कलामें अपना अलग स्थान रखती है। आपकी कलामें सूक्ष्म भावोंका सौंदर्यपूर्ण चित्रण रहता है।

उक्त प्रमुख चित्रकारोंके अतिरिक्त हरिपद राय, रमेशचन्द्र मजुमदार, मणीन्द्रभूषण गुप्त, शैलेन्द्रनाथ दे, यामिनी राय, फणीन्द्रनाथ मुजुमदार, अर्द्धेन्दुकुमार गांगुली, मुकुलचन्द्र दे, शैलजा मुखर्जी तथा खास्तगीर आदि शिल्पाचार्य अवनीन्द्र-नाथ ठाकुर एवं चित्र-शिल्पी नंदलाल बसुके शिष्यवर्गने भारतीय चित्रकलाके पुनरुद्धारमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनमें सभी बंगाली कलाकार हैं। बंगालमें कलकत्ता अवस्थित 'इंडियन सोसायटी आफ ओरिएन्टल आर्ट' एवं शान्ति-निकेतन नामक संस्थाओं द्वारा भारतीय चित्रकलाके पुनरुद्धार, विकास एवं प्रगतिका महत्त्वपूर्ण कार्य होता रहा है। वास्तव में भारतीय चित्रकलाके उत्थानमें बंगालकी कला-प्रवृत्तियोंकी विशिष्ट प्रगति रही है और फल-स्वरूप उससे भारतीय कला का विश्वमें जो गौरव बढ़ा है, उसका श्रेय बंगाली कला-साधकों को ही है।



भारतका ऋतु-विभाग

अनन्त रामय्या (मैसूर राज्य)

भारतमें ऋतुओंका जो विभाग और नामकरण हुआ है, वह संस्कृत-साहित्यके आधारपर हुआ है। पहले ऋतुओंके नाम और वर्णन वेदोंमें पाये जाते हैं। ऋग्वेद के एक मंत्रमें, "शतंजीव शरदो वर्धमान शतं हेमंतान् शतं वसंतान्" ऐसा कहा गया है। 'शरत्' के दो अर्थ होते हैं—संवत्सर और शरत्काल। मंत्रका तात्पर्य, सौ वर्ष की आयुका आशीर्वाद करना है। वेदोंके बाद रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें भी ऋतुओंका वर्णन आया है। उसके बाद भी प्रत्येक काव्यमें ऋतुओंका वर्णन है। महाकाव्यके लिये ऋतुओंका वर्णन आवश्यक माना गया है। कालिदासने ऋतुसंहार नामक एक खण्डकाव्य भी लिखा है। भारतमें ऋतु-परिवर्तनकी जो परिपाटी है, वह मनोज्ञ है।

संस्कृत वाङ्मय पहले-पहल गंगा, यमुना और सिंधु नदियोंके तटवर्ती प्रदेशोंमें फूला और फला। इसलिये आर्यों ने जिन ऋतुओंका वर्णन किया है, वे उत्तर-भारतकी ही जलवायुके धर्म हैं। वे दक्षिण-भारतके लिये लागू नहीं होते। दक्षिण और उत्तरके ऋतु-धर्मोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। लेकिन हमारे लोगोंका ध्यान इसपर कम गया है। दक्षिणके कवियोंने आँख मूँदकर उत्तरके कवियोंकी परम्पराको अपनाया। स्वबुद्धिसे काम नहीं लिया।

इन पंक्तियोंका लेखक स्वयं दाक्षिणात्य है। उसने उत्तर-भारतका भी दौरा करके कुछ अनुभव प्राप्त किया है। उत्तरमें जो ऋतु-धर्म चालू हैं, दक्षिणमें ठीक उनके विरुद्ध पाये जाते हैं। क्रमशः ऋतुराज वसंतसे ही शुरू करें। वसंत उत्तरमें जितना सुहावना होता है, उतना दक्षिणमें नहीं। शिशिरमें ही यहाँ वसंतके धर्म आ जाते हैं। वसंतमें तो यहाँ ज्यादा गर्मी पड़ती है। सो भी उत्तरकी अपेक्षा बहुत कम। कभी-कभी पानी भी बरसता है। किसान जुताई वगैरह कर लेते हैं। ग्रीष्ममें उत्तरमें जो भयंकर गरमी पड़ती है, वह यहाँ नहीं पड़ती। बेचारे उत्तरके लोग लू लग जानेसे मरते रहते हैं, तो यहाँके लोग गरम कपड़े पहने रहते हैं। क्योंकि यहाँ पश्चिमी 'मानसून' शुरू हो जाता है। पश्चिमी घाटोंमें तो लगातार वर्षा होने लगती है। तभी कावेरी, तुंगभद्रा आदि नदियोंमें बाढ़ आती है। बाकी इलाकोंमें भी थोड़ा-थोड़ा पानी बरसता रहता है। आसमान हमेशा मेघाच्छादित होता है। खेतोंमें बीज बोये जाते हैं। पश्चिमी हवा बहुत तेज चलती है। एक दृष्टिसे हम इसे हवाका मौसम ही कहते हैं। क्योंकि चौबीसों घंटे तेज़ हवा चलती रहती है। दक्षिणकी मुख्य नदी कावेरी है। वह हवासे ही बढ़ती है। इसलिये उसका दूसरा नाम "मरुद्वृधा" पड़ा है। अर्थात् मरुत—हवासे, वृधा—बढ़नेवाली। यही नाम ऋग्वेदके एक मंत्रमें पाया जाता है। वह यों है—"इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतद्रिस्तोमं स च तापरुष्ण्या। असिक्न्यामया मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।" यहाँ 'मरुद्वृधा' का अर्थ कावेरी ही है। इसी मंत्रसे हमें भारतकी एकताका आभास मिलता है। आर्योंने दक्षिण-भारतको अपनेमें मिला लिया था। गैरमुल्क नहीं समझा था। यह बात द्रविड़ कज़गंवाले नहीं जानते। इसकी पुष्टि अमरकोशमें भी मिलती है। अमर सिंह औत्तराह्य होनेपर भी दक्षिणके बारेमें काफ़ी जानकारी रखते थे। अपने कोशके नदी-पर्यायमें "क्वेर कन्या कावेरी सखियोन्या मरुद्वृधा" ऐसा लिखा है। पश्चिमी हवासे ही पश्चिमी पहाड़ोंमें पानी बरसता है, और उसीसे कावेरीकी वृद्धि होती है। इसलिये इसका नाम "मरुद्वृधा" पड़ा है।

उत्तर-भारतमें सावन और भादों तो वर्षाका खास समय माना जाता है। दक्षिणमें सावनमें बहुत कम पानी बरसता है। कभी-कभी कड़ी धूप भी पड़ती है। भादोंमें कुछ अधिक मेह बरसता है। फिर भी उत्तर-भारतकी तुलनामें बहुत कम। शरत्काल चाँदनीके लिये प्रसिद्ध है। यह भी उत्तरमें ही। दक्षिणमें शरत् नवरात्रिके अवसरपर बहुत वर्षा होती है। उसी समय तालाब भरते हैं। सारा प्रदेश हरा-भरा दीख पड़ता है। कार्तिकके अंतमें वर्षा बंद हो जाती है। यहाँ तो शरत्कालमें चाँदकी सूरत ही नहीं दीख पड़ती। हाँ, माघ-फाल्गुन बड़े सुहावने होते हैं। चाँदनी खूब होती है। यह समय सर्दीके अन्त और गरमीके आरंभका होता है। सर्दी भी यहाँ उत्तर-भारतकी अपेक्षा बहुत कम पड़ती है। इससे सिद्ध हुआ कि उत्तर और दक्षिण भारतके मध्य ऋतुधर्मोंमें महान अंतर है।

दक्षिणकी ऋतुओंका विभाग हम एक और प्रकारसे भी कर सकते हैं। अर्थात् गरमीका मौसम, हवाका मौसम, बरसातका मौसम और सर्दीका मौसम। पश्चिमी समुद्रके तटवर्ती प्रदेशोंमें और भी कुछ फर्क पड़ जाता है। एक दृष्टि से दक्षिणवाले प्रकृति देवीके वरपुत्र हैं। क्योंकि यहाँ उत्तर की अपेक्षा गरमी, वर्षा और सर्दी तीनों मर्यादित रूपसे पड़ती हैं। लू लगनेका भी भय नहीं है। सर्वसाधारण नंगे पैर ही चलते और चारपाईके बिना ज़मीनपर सोते हैं।

समय-समयपर ऋतुधर्म बदलते आये हैं। आर्य कालमें जैसा था, वैसा आज नहीं है। कुछ हद तक हम भी ऋतुधर्मके बदलनेमें कारण हो सकते हैं। जंगल काटनेसे वर्षा कम हो जाती है। जहाँ यह लेखक रहता है, वहाँ पचास वर्ष पूर्व ६० इंच पानी बरसता था। तब चारों ओर घने जंगल थे। आज जंगलके साफ हो जानेसे ३० इंच भी पानी नहीं बरसता। इससे जलवायुमें अंतर आ गया है। रेगिस्तानके निर्माणका कारण भी हम ही हैं। बढ़ते हुए रेगिस्तानसे उत्तर-प्रदेशमें गर्मीकी मात्रा बढ़ रही है। सूखाके कारण गर्मीका मौसम जल्दी आने लगा है।

द्वापरकी व्रजभूमि और आजकी व्रजभूमिमें महान् अंतर है। उस समय ज़मीन हरी-भरी रहती थी। आज सूखी और जली-कटी दीख पड़ती है। गोवर्धनके आसपास भी पेड़-पौधे नहीं हैं। आजकल पं० श्रीराम शर्मा और उनके मित्र पं० श्रीराम शुक्ल (उद्यान विभागके अधिकारी, आगरा) की मेहनतसे गोवर्धनके चारों ओर कुछ पेड़-पौधे उगने लगे हैं। मालूम होता है कि उत्तर-प्रदेशकी सरकार भी इस ओर कुछ ध्यान दे रही है। हमें इसे देखनेका सौभाग्य शुक्लजी और शर्माजी की कृपासे मिला था।

भारत एक बड़ा विशाल देश है। इसमें विभिन्न जल-वायु, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न रस्म-रिवाजोंका होना अस्वाभाविक नहीं है। इतनी विभिन्नताओंके रहते हुए भी भारतकी सांस्कृतिक और साहित्यिक एकतामें कोई बड़ा अंतर नहीं दीख पड़ता। दक्षिणके सभी लोग हिन्दी सीख लेंगे, तो वे हृदयसे अपने-आप उत्तरकी ओर आ जायेंगे।

मुझे अपने बालकोंसे बात करने दीजिए

नारायण प्रसाद 'भूषण'

आइये बालगोपालो! नन्हें मुन्नो! आज हम दुनिया को ताजी फुलवारी बनायें। प्राचीन दुनियाके पुराने बगीचेके सूखे पत्तोंको झड़ जाने दें। नया वसन्त, नई उमंग, नई मोड़ अपने जीवनमें आने दें।

बासी ज्ञान, बासी भाषा, बासी विचार, बासी खाना, इन सबसे हमें बचना है। बचना है हमें उन सब बाधाओं, सब बंधनों से जो हमारी गतिमें रुकावट लाते हैं। जीत लेना है उन सब परिस्थितियोंको जो अपने सर्वांगीण विकास में बाधा डालती हैं।

नीले आकाशकी छाया-तले, हम सब दुनिया भरके बालक एक हैं। हम किसी जाति, वर्ग और रंग भेदके नहीं। हमारे सामने अमीरी-गरीबी कोई अर्थ नहीं रखती। नदी, नाले, पहाड़, समुद्र, इतिहास, भूगोल, भाषा, राज-नीति आदि हमारे एक होनेमें कोई बाधा नहीं डाल सकते।

सारे संसारके सब देशों, सब राज्योंको हमारे लिए उत्तम भोजन, उत्तम कपड़े, उत्तम स्वास्थ्य और उत्तम शिक्षा की उत्तम व्यवस्था करनी ही चाहिए। प्रत्येक राष्ट्रको नरवंशकी उत्तम परंपरा और उत्तम वातावरण दिलानेके लिए कमर कस लेनी चाहिये।

कभी-कभी और कहीं-कहीं अच्छी स्थिति और भले स्वभावके माता-पिता, पालक आदि भी नहीं मिलते। बहुत-से माँ-बाप हमें हमारे और अपने अज्ञानके कारण व्यर्थ ही पीटते रहते हैं, झिड़कियाँ देते रहते हैं। इतना होनेपर भी वे हमारी व अपनी समस्याएँ सुलझानेमें असमर्थ रहते हैं। बेचारे वे भी क्या करें? अज्ञान और दरिद्रता देशके इन दो दुश्मनोंने सदियोंसे उनपर विजय पा रखी है। खुद तो इनसे हारे ही हुए हैं, परन्तु हमें भी सदाके लिए इनसे हारा ही हुआ रखना चाहते हैं। हमें स्वतंत्रताकी साँस लेने से रोकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि हमारा लालन-पालन इनका अपना धर्म ही नहीं! वैसे परधर्म जैसे जाति, देश, राष्ट्र, रंगके झगड़ोंमें ये सदा सराबोर रहते हैं। और अपने स्वाभाविक स्वधर्म (बालपालन) से उदासीन रहते हैं।

यही कारण है हमारे सर्वांङ्गीण विकासके लिए, सदियों से आज तक पूर्व प्राथमिक शिक्षाकी योजना ही नहीं बन पाई थी। अभी भी उसके काममें लाने और फैलानेको एक अनिवार्य आवश्यकता है।

परीक्षा, पाठ्यक्रम, सड़ी-गली पढ़ाई—ये सब हमारे शत्रु हैं। आज हम संसारकी सजीव समस्या हैं। सस्ते शिक्षक हमारे सिरपर थोपे जाते हैं। वे स्वतः आजकी शिक्षा-दीक्षा से कोसों दूर हैं। यदि हमारे पालकगण एक यंत्र या घड़ी भी सुधारनेको देते हैं, तो ठोक-बजाकर पहले यह विश्वास कर लेते हैं कि यंत्र सुधारनेवाला या घड़ीसाज़ अपने काममें कुशल है; परन्तु उनकी सजीव संपत्ति बालकको वे बालकोंके दिमागोंको न पहचाननेवाले, मनोविज्ञानको न जाननेवाले सस्ते-से-सस्ते शिक्षकोंके हाथों सौंप देते हैं।

हमारे प्यारे माता-पिताका एक ओर रुपया लग रहा है, उनकी रोज़ी, रोटी नहीं चल रही है। एक ओर रुपयों का अभाव भी है और दूसरी ओर जितने भी रुपये हमारे लिए लग रहे हैं, वे सब बेकार जा रहे हैं!

कोई-कोई शिक्षक हमसे बीड़ी, सिगरेट, पान मँगाते हैं, कोई अपना घरू काम कराते हैं, कोई न मालूम कैसे अनैतिक सम्बन्ध हमसे रखते हैं! हमें उनके कारण शालाएँ जेल मालूम पड़ती हैं।

शालाएँ भी पैसेकी कमीके कारण मिलोंकी तरह दो-दो, तीन-तीन पालियोंमें चलने लगी हैं। हमें मौसमका बिना उचित ध्यान रखे कक्षाओंकी कालकोठरियोंमें ठूँस दिया जाता है। यदि हममें से कमजोर या दिमागी रोगवाला, उलझनवाला या अपराध वृत्तिवाला या अंधा या बहरा या गूँगा या और किसी विकल अङ्गवाला हुआ, तो उसे उनके ही जैसी संस्थाओंमें भर्ती न कराते हुए चालू स्कूली कारखानोंमें जानवरोंकी तरह भर दिया जाता है। वहां हम आजके उन्नतिके युगमें भी पिटते रहते हैं; झिड़कियाँ सुनते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हम अपने जीवनका उद्देश्य बिना बनाये शालाओंसे और अपने घरोंसे भी भाग जाते हैं।

इस अनर्थकारी युगमें कोई आदमीको आदमी नहीं समझता। तो बच्चेको बच्चा कौन समझता है? शासन अभी इस स्थितिमें नहीं कि सब बच्चोंकी ठीक-ठीक व्यवस्था कर सके। परन्तु दुःख तो यह है कि जन-मानसमें हमारे प्यारकी हिलोरें क्यों नहीं उठतीं?

किसी कठोर परिस्थितिमें हमें शाला और घरसे नौ दो ग्यारह होकर वैश्यालयों, होटलों, पानकी दुकानोंमें नौकरियाँ करनी पड़ती हैं। जो फल होता है, वह गहरे विचार करने योग्य है। यद्यपि अभी ये सब बातें हमारी समझके बाहर हैं।

हमारे बड़े-बूढ़ोंको निर्जीव सिक्कोंसे प्रेम है, हम चैतन्य प्राणियोंसे क्यों नहीं? वाहनवालोंको अपने समय, अपने सैर-सपाटेका खयाल है। अंधे या पंगु बालकोंके सीखनेकी जगहोंपर बिना शुल्क आने-जानेकी व्यवस्था करनेका ध्यान क्यों नहीं? यदि किसीके घर कोई बालक अंधा, गूँगा, या बहरा पैदा हो गया, तो क्या उसे उम्र भर भीख मांगने के लिए विवश किया जाना उचित है? यदि माता-पिता की बीमारीके कारण कोई बच्चा कोढ़ी हो गया हो, तो क्या उसे मानव-प्रेम और मनोचित सुविधासे सदा वञ्चित ही रखा जाना चाहिये? क्या हममें से सब लड़के ही लड़के उत्पन्न होना चाहिए? लड़कियाँ नहीं? क्या लड़कों ही लड़कोंसे संसार चलेगा? क्या लड़कियोंका जन्म सदैव बुरा माना जाता रहेगा? क्या लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंके पालन-पोषणमें अधिक उपेक्षा सदा चलती रहेगी?

क्या प्रत्येक बस्तीमें हमारे लिए पुष्पोद्यान, बालोद्यान, क्रीड़ोद्यान तथा माताका प्रेम और पिताका प्रेम पानेकी व्यवस्था नहीं की जा सकेगी?

क्या हमारे कुछ साधन-सम्पन्न भाई बहन बादामके हलवेका नाश्ता करते रहेंगे और कुछ पेटपर पट्टी बाँधे सोते रहेंगे? क्या हमारे नगर-निवासी भाई-बहनोंको बालमन्दिर आदिकी अनेक सुविधाएँ मिलती रहेंगी और गाँवके बालक इन सब बातोंसे रीते ही रहेंगे? क्या इन गाँवके बच्चोंकी सारी बचपनकी उम्रमें इनपर उपकार करनेवाले बुद्ध, ईसा, गांधी, मांटेसरी आदिका परिचय तक नहीं मिलेगा?

क्या हमारी वर्तमान परम्परासे चली आई हुई शिक्षा संस्थाएँ हमें आत्मानुशासनके प्रेम-पूर्ण सूत्रमें पिरो न सकेंगी? क्या यह आवश्यक होगा कि अमीरका लड़का अमीर, गरीब का गरीब, हिन्दूका हिन्दू और मुसलमान का मुसलमान, ईसाईका ईसाई, इञ्जीनियरका इञ्जीनियर, डाक्टरका डाक्टर ही बना रहे?

हम बच्चे, ऊपरसे कुछ साथ लेकर आते हैं और आये भी। बुद्ध, ईसा, गांधीने बचपनसे ही राजमुकुटको छोड़ने या उसके पापसे सने हुए अस्तित्व तकको न रखनेकी व न

रखने देनेकी बात ठान ली थी। मानवताकी इतनी सदियों की अवधिमें इनकी साध आजके गाँधी युगमें सफल हुई। आज राजमुकुटका अस्तित्व किसी-किसी देशमें ही है। अब तो देशका हर बच्चा राजकुमार है और उसकी माता चाहे वह किसान हो या मजदूर, राजमाता है।

अब कई देश स्वतन्त्र हो गये हैं। भारत भी। यहाँ सन् १९४७ से आज तक उत्पन्न हुए बालक स्वतन्त्र राष्ट्रके बालक हैं। हमें स्वतन्त्रताकी साँस मिलनी चाहिए और स्वतन्त्रताकी साँस लेनी भी चाहिए। हम ही भावी राष्ट्र व भावी संसार हैं। अन्यथा आजके कमजोर बालक कलके निर्बल नागरिक सिद्ध होंगे।

हमें संसारके बड़े लोगोंसे प्रार्थना करनी है कि वे अपने बड़प्पनका अभिमान छोड़ें, हमें ऊँचा उठायें। जड़ सिक्कोंकी अपेक्षा हम विकासोन्मुख एवं चैतन्य बालकोंकी अधिक चिन्ता करें।

यदि अर्थका अनर्थशास्त्र हमारे उत्कर्षमें बाधक होता है, तो वे उस अर्थ-व्यवस्थाको मिलकर ठोकर मार दें। परन्तु वे सब हमें उठायें, हमें पढ़ायें, हमें बढ़ायें। उनका कर्तव्य है कि वे बालकोंके प्रति प्रेमका आन्दोलन फैलानेके लिए दुनिया के दोनों गोलार्द्धोंपर उपयुक्त वातावरण पैदा कर दें। आज हमें यह नारा लगा लेने दीजिए—"दुनियाके बालको, आकाशकी छायातले सब समानतासे और प्रेमसे एक हो जाओ।"

हमारे सभ्य लोग हमारी शिक्षाको अनिवार्य बनानेकी बातें तो करते हैं, वे हमें रुचती भी हैं, उनसे आशा भी बँधती है; परन्तु हममें से कई भाई-बहनोंको, अनिवार्य शिक्षाकी घोषणा किये हुए क्षेत्रोंमें ही, होटलोंकी मज़दूरी करनी पड़ती है और पशु चराने पड़ते हैं!

कोई-कोई अर्थ-दस्यु भिखारीके रूपमें आकर हमारा अपहरण कर लेते हैं। हमारी आँखोंमें कौड़ियाँ भर देते हैं। हमारे अंग-भंगकर हमपर समाजकी दया उत्पन्न करवाते हैं और हमसे उम्र भर भीख मँगवाते हैं!

आप चाहे वसन्तपंचमी, रंगपंचमी मनायें, चाहे क्रिसमस, चाहे ईद मनायें, चाहे शिक्षा-मेले लगायें, परन्तु हम दीन हीनोंको तो आपकी खुशियोंसे सदा वंचित रहना पड़ता है। इन परम प्रसन्नताके पर्वोंमें भी हमारी ओर कौन झाँकता है?

माता-पिताविहीन बालक अनाथालयोंमें रहते हैं। समस्यायुक्त बालक सड़कोंपर मारे-मारे फिरते हैं। नौटंकियों व हीन कोटिके नाटकोंमें भी हमें घसीटा जाता है। माता-पिताके प्रेमके अभावके कारण हममें अपराध-वृत्ति पनपने लगती है। घी, दूध, फल व अन्य जीवन-तत्वकी कमीके कारण हम पूरे पनपने भी नहीं पाते। धर्मके पण्डे, पुजारी, पादरी, मुल्ला हमपर अपनी रोजी, रोटी चला लेते हैं।

किन्हीं परिस्थितियोंमें तो हमें माँका दूध भी नसीब नहीं होता। विशेषकर जब माताओंको अपनी जीविकाके स्थलों, कारखाना आदिमें, असमयपर ही जाना पड़ता है।

यदि कहीं हमारी परम पावन माताएँ दरिद्रता, पारिवारिक दुःख, अनमेल विवाह आदिके कारण अनैतिक स्थलों, व्यक्तियों, व्यापारोंमें गिर पड़ीं, तो हमारे चरित्र, पालन-पोषण, वातावरण, शरीर-पोषण, संस्कार आदिपर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। हमें अनैतिक घरों और व्यक्तियोंमें पान, बीड़ी, तम्बाकू और शराब आदि लानेकी नौकरियाँ करनी पड़ती हैं।

हमारे पढ़े-लिखे माता-पिता सिवा अपने सुख, विलास व अपने रोटी-रोजीके हमारी ओर भूलकर भी नहीं देखते। कभी-कभी तो हम नौकर-नौकरानियोंपर ही निर्भर रह जाते हैं, चाहे उनके चाल-चलन कैसे ही क्यों न हो?

कभी-कभी खाना तो दरकिनार रहा, शीत-निवारणके लिए वस्त्र, धूप, साँस लेनेके लिए शुद्ध हवा भी हमें नहीं मिलती। हमारे कई साथियोंको पछतावा होता है कि काश वे शराबी, जुआरी तथा चरित्रहीन माता-पिताके घर उत्पन्न नहीं होते।

अब हज़ारों बच्चोंका दम घुट रहा है, इस तेज़ीके अस्वस्थकारी जमानेमें। हमारे माँ-बाप तंग, हमारे मकान तंग, हमारे मदर्से तंग और हमारे मास्टर साहब भी तंग! हमारे कई शिक्षा-संचालक, निरीक्षक आदि सब तंग और सब बने बैठे हैं हमारी शिक्षाके सौदागर!

युद्धको सृष्टि करनेवालोंसे तो हम सदा डरते हैं, घृणा करते हैं। वे आप तो मर-कट जाते हैं, हमें विकलांग और अनाथ बना जाते हैं। वे समझते नहीं कि किसी एक व्यक्ति या एक राष्ट्रकी जीत, जीत नहीं, हार है। जीत तो सबकी हो, तभी सच्ची जीत होती है। बुद्धने यह बात बालपनसे ही पहचान ली थी।

हमारी जननियोंको भी बाल-पालनका उचित ज्ञान ही

[शेषांश पृष्ठ २९० पर देखें]

कहानी

तफतीश और रिपोर्ट

राजेन्द्र कुशवाहा

सारे गाँवमें यह खबर कि दारोगाजी, कप्तान साहब और न जाने कौन-कौन हुक्काम तफतीशको आये हुए हैं, बिजली की तरह फैल गई। और फिर आएँ भी क्यों न, किसी मामूली आदमीके घर तो चोरी हुई नहीं थी। जमींदारियाँ चली गईं तो क्या हुआ, डेढ़ हजार बीघेका फार्म, शहरकी कोठियों और सवायेपर उठा रुपया तो कहीं नहीं गया।

बड़ी हवेलीवालोंका अब भी वही दौर-दौरा था। पहले राजा बहादुर थे और अब पद्म-विभूषण बननेका पूरा प्रयत्न कर रहे थे। दौरे पर आए हुए प्रत्येक मंत्री और छोटे-बड़े अफसर सब उनके मेहमान बनते। "बड़ी हवेलीवालोंके यहाँ चोरी हुई", गृहमंत्री तक यह समाचार पहुंच गया था। सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, सर्किल इन्सपेक्टर, थाना इन्चार्ज आदि सब तफतीशके लिए आए हुए थे।

बड़ी हवेलीके बागमें छोटा-सा दरबार लग गया। शक में बुलाये गये फतहपुर—रामूके और आसपासके लोग एक कतारमें बैठा दिये गये। थाना इन्चार्ज जगदीश्वर सिंह तथा सब-इन्सपेक्टर महावीर सिंहके लिए दो आरामकुर्सियाँ पड़ गईं और उन्हींके पास एक मेज और कुर्सी हेड मुंशीके लिए भी डाल दी गयी।

छोटे दरोगाजीने हरएकसे सवाल पूछने शुरू किये। बड़े दरोगाजी सिगरेटके कश लगाते हुए बड़े गौरसे सवाल और जवाबोंको सुन रहे थे। हेड मुन्शी भी बड़ी तत्परतासे बयानोंको कलमबन्द कर रहे थे।

छोटे दरोगाजीने अपनी अफसरी आवाजसे पूछा—

"क्या नाम है तेरा?"

"झींगुरिया।"

दरोगाजी चौंक-से गये। अभी तक हरएकने उन्हें अपना नाम बतलानेसे पहले सरकार और हजूर जैसे विशेषणोंसे सम्बोधित किया था—इस छोटे-से उत्तरके लिए वे तैयार न थे। बड़े दरोगाजीने सिगरेटको एक ओर फेंकते हुए और कुर्सीपर जरा संभल कर बैठते हुए झींगुरियाको आँखें गड़ाकर देखना शुरू किया। रंग गेहुँआ, गोल और भरा हुआ चेहरा, ऊँचा ललाट, घुँघराले बाल—सब मिलाकर एक जँचता हुआ व्यक्तित्व था। बदनपर और लोगोंसे साफ कपड़े भी पहने हुए था।

छोटे दरोगाने होंठोंको दाँतोंसे काटते हुए फिर पूछा—

"कौन जात?"

"हिन्दू।"

वही छोटा-सा उत्तर मिला। दरोगाजी ऐसे उत्तरोंके अभ्यस्त न थे। उनकी आँखोंमें लाल डोरे आ गये, भौंहें तन गईं, बदन काँपने लगा और फिर अश्लीलतम गाली देते हुए बोले—"अबे हिन्दू तो सब हैं।"

"ये गालियाँ तो आप अपने मातहतोंके लिए ही रखिये।"

दरोगाजीने अपनी दस सालकी नौकरीमें कभी ऐसा उत्तर न सुना था। एक झटकेके साथ वे कुर्सीपर से उठ बैठे, पर झींगुरियाके चेहरेपर की दृढ़ता और कुर्तेमें से निकले कसरती सीनेको देख कुछ ठिठक गये। और तभी पासमें खड़े आठ-दस सिपाही एकदम झींगुरियापर टूट पड़े। दरोगाजीने भी आगे बढ़कर एक हाथ कसकर मुँहपर मारा और एक ठोकर पेटमें दी। झींगुरिया गिर पड़ा। उसके दोनों हाथ पीछे बाँध दिये गये। दरोगाजीने पाँच-सात लातें मारते हुए कहा—"सालोंके दिमाग तो देखो! इस सरकारने कितने चढ़ा दिये हैं···चोरी करते हैं और सीनाजोरी करते हैं···स्वराज्य क्या हुआ, किसीको समझते ही नहीं! अभी लो साला कबूल करता है। अरे जोरावर, रामदयाल, लालचन्द सालेका हवाई जहाज बनाओ।"

झींगुरियाके मुँहमें से खून निकलने लगा था। उसकी आँखें जल रही थीं, पर वह बोला कुछ नहीं, केवल अपने पीछे बँधे हाथोंको ऐंठने लगा।

दरोगाजीकी आज्ञा सुनकर दो सिपाही एक छोटी खाट को ले आए, झींगुरियाको लाकर खाटके सिरेपर खड़ा कर दिया और उसके एक पैरको एक पायेसे और दूसरेको दूसरे पायेसे बाँध दिया। चार सिपाहियोंने मिलकर उसे झुका दिया और उसके हाथ खोलकर दूसरे सिरके दोनों पायोंसे

बाँध दिये। झींगुरियाने भी किसी प्रकारका विरोध न किया। वह भलीभाँति जानता था कि सौको सती क्या कर सकता है।

दरोगाजी उठकर उसके पास आ गए और सिरके बालों को पकड़कर एक झटका देते हुए बोले—"क्यों बे, माल बतलाएगा या नहीं?" झींगुरिया जानता था कि यह सवाल तो केवल पिटाईका बहाना मात्र है, अतः वह चुप रहा। दरोगाजीने एक ठहाका मारकर सिपाहियोंकी ओर देखते हुए फिर कहा—"जरा हवाई जहाजको चालू तो करना, सालेके अभी दिमाग ठीक होते हैं।"

इतना कहना था कि बारी-बारीसे सिपाही खाटमें उल्टे बँधे झींगुरियाको पीछेसे ठोकर मारने लगे। हर ठोकरपर झींगुरियाके मुँहसे केवल एक उहकी आवाज निकली, पर वह छोटे-बड़े दरोगों के ठहाकोंमें विलीन हो जाती।

—दो—

शाम हो गई थी, दिन भर मुनिया झींगुरियाकी राह देखती रही। आज न जाने क्यों उसका मन कुछ भारी-भारी-सा था, उसे न जाने क्यों रह-रहकर खिजलाहट आती थी। उसे न तो आज भूख ही लगी और न किसी काममें उसका मन ही लग रहा था।

रह-रहकर वह खीज उठती—"यही समय है; यदि किसानने मेहनत न की, तो बस पेटसे पत्थर बाँधने पड़ेंगे और आज न जाने वह कहाँ चला गया है।" अपनी खिजलाहट वह छोटे-छोटे दोनों बच्चोंपर उतारती। गोदका तीसरा मासूम बच्चा भी उसकी झुँझलाहटका पात्र बन जाता।

झींगुरिया और मुनियाका जोड़ा फतहपुर—रामूमें तो क्या आसपास तक प्रसिद्ध था। उन्हें देखकर उनकी जातिवालोंके दिलोंपर तो साँप लोट ही जाता था, और जातिवाले भी सदैव ईर्ष्या करते थे। उन दोनोंका अपना सीमित संसार था—झींगुरिया, मुनिया, तीन सालका बड़ा और डेढ़ सालका छोटा लड़का तथा तीन मासकी मासूम बच्ची। बस, इतनेमें ही वे सीमित थे। गाँवमें कभी किसीने यह नहीं सुना कि आज दोनोंमें अनबन हुई। दोनों डटकर मेहनत करते और चैनसे रहते—न ऊधोका लेना, न माधोका देना। उन्हें किसी बातकी परवाह न थी। उनकी यही मस्ती औरोंकी ईर्ष्याका कारण बनी हुई थी?

जब शाम तक झींगुरिया लौटकर न आया तो मुनिया के हृदयमें एक अज्ञात-सी शंका धीरे-धीरे उठने लगी। तभी पड़ोसका एक लड़का भागा-भागा आया और मुनियासे घबराता हुआ बोला—"चाची! चाची! चाचाको बड़ी हवेलीमें पुलिसवाले बहुत मार रहे हैं।"

मुनियाको जैसे हजार बिच्छुओंने डंक मार दिया। सर्दियोंके दिनोंमें भी माथेपर पसीना आ गया। दो मिनट तक तो वह आँखें फाड़े दिवालकी ओर चुपचाप देखती रही और फिर यकायक उठकर गोदमें बच्चोंको ले बड़ी तेजीसे दरवाजेमें से निकल कर बड़ी हवेलीकी ओर चल दी। बड़े लड़केने तोतली आवाजमें पूछा—'अम्मा, कौं···जा···ल···ऐ?'

पर मुनियाने कोई उत्तर न दिया और न फिरकर देखा ही—जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं।

—तीन—

लगभग एक घण्टे तक झींगुरियापर ठोकरें पड़ती रहीं। दरोगाजीने कल्पना की थी कि झींगुरिया रोएगा, तड़फेगा, चिल्लाएगा, गिड़गिड़ाएगा और माफी माँगेगा, पर झींगुरियाके मुँहसे आवाज तक न निकली। पीछे ठोंकरे पड़ते-पड़ते मुँहसे खून टपकने लगा था। एक सिपाहीने जो झींगुरियाकी पथराई हुई आँखें देखीं तो वह घबड़ा गया और दरोगाजीसे डरी हुई आवाजमें बोला—"दरोगाजी, अब मार मत लगवाइए, साला कहीं मर नहीं जाय।"

दरोगाजीने उसी प्रकार हँसते हुए कहा—"साला मक्कार बनाता होगा।" दरोगाजी उठकर झींगुरियाके पास गये। ठोडीपर एक लात मारी। उसकी गरदन एक ओर लुढ़क गयी। झींगुरियाकी आँखें फट गई थीं, मुँह और नाकसे खून टपक रहा था, चेहरा स्याह पड़ गया था। दरोगाजी हड़बड़ाकर पीछे हट गये और उसी घबराहट भरे स्वरमें बैठे लोगोंसे बोले—"आप लोग अब घर जा सकते हैं। मुलजिम मिल गया है। आप लोगोंको हमने जो तकलीफ़ दी, उसके लिए आप हमें माफ करें।"

जब सब लोग चले गये तो छोटे दरोगाजीने बड़े दरोगाजीके कानमें कुछ कहा। बड़े दरोगाजीके चेहरेका रंग भी बदल गया। दोनों झींगुरियाके पास आये। छोटे दरोगाजीके पैर काँपने लगे। माथेपर पसीना आ गया। उनकी झींगुरियाको छूने तककी हिम्मत न पड़ी। बड़े दरोगाजीने

झींगुरियाकी नाकपर हाथ रखा और घबराकर पीछे हटते हुए पास खड़े सिपाहीसे कहा—"इसके हाथ-पैर सब खोल दो, मुँहपर जरा पानी तो डालो।"

झींगुरियाके हाथ-पैर सब खोल दिये गये। चार सिपाहियोंने उसे उठाकर जमीनपर लिटा दिया। बड़े दरोगा जीने डाँटते हुए सिपाहियोंसे कहा—"यहाँ नहीं, अंदर कमरेमें ले जाओ।" सबके चेहरोंकी हवाइयाँ उड़ी हुई थीं।

सिपाहियों और दोनों दरोगोंका घबराहटके मारे बुरा हाल था। बराबर वे लोग होंठोंपर जीभ फेरते और माथे परका पसीना पोंछते। सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबका शिकारसे लौटनेका समय हो चला था। उनकी समझमें न आ रहा था कि क्या किया जाय। जीपकी आवाज सुनाई दी। घबड़ाहट और भी बढ़ गई।

जीपमें से सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब, सर्किल-इन्सपेक्टर और बड़ी हवेलीवाले ठाकुर विक्रम सिंह आदि उतरे। जीपमें मरा हुआ एक हिरन रखा था। ठाकुर साहबने चौकीदार को आवाज लगाई और हिरनको उतारनेकी आज्ञा दी।

चारों ओर एक अजीब प्रकारका सन्नाटा था। सिपाहियों और दरोगोंके चेहरे फक पड़े हुए थे। आखिर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबने पूछा—"क्या बात है?" पर किसीने जुबान तक न हिलाई। दुबारा फिर कड़ककर पूछा।

"हुजूर...." बड़े दारोगाजीने कुछ कहनेकी कोशिश की।

"हजूर क्या? साफ क्यों नहीं बोलते, क्या बाप मर गया है?"

"जी···।" फिर बड़े दरोगाजीने कहनेका प्रयत्न किया।

'जी जी-जी जी क्या? साफ क्यों नहीं कहते।"

"हजूर, मैं आपसे कुछ अकेलेमें कहना चाहता हूँ।" आखिर बड़ी हिम्मत करके बड़े दरोगाजीने कह ही दिया।

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब और दरोगाजी एक ओरको हट गये। दरोगाजी थोड़ी देर तक कुछ कहते रहे, फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबके पैरोंपर गिर पड़े।

सुपरिन्टेन्टेन्ट साहबके चेहरेका रंग भी एकदम बदल गया। ठाकुर साहब, सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब और दरोगाजी झींगुरियाको देखने गये, तो झींगुरियाको देखकर ठाकुर साहब के औसान जाते रहे।

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब ठाकुर साहबको दिलासा देते हुए बोले—"ठाकुर साहब, आप कोई फिक्र न कीजिए, अभी सब मामला ठीक हुआ जाता है।"

"और तो मुझे कोई डर नहीं, पर इसकी औरतको आप नहीं जानते, मुझे केवल उसी ओरसे डर है।" ठाकुर साहब बड़े घबड़ाते हुए बोले।

"उसको मैं ठीक कर लूँगा। ऊपरकी आप ठीक कर लें।" और फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब दरोगाजीकी ओर मुँह करके बोले—"मुझे तो इन दारोगोंपर गुस्सा आता है। सालोंको इतनी भी लियाकत नहीं कि काम किस तरह करना चाहिए और तिसपर दरोगई करने चले हैं!"

दरोगाजी नीची निगाहें किये खड़े रहे।

बाहर एक नारीका स्वर सुनाई पड़ा—

"पाओं पड़ती हूं तुम्हारे, कहाँ हैं वह, बता भर दो, मैं दरोगाजीके और कप्तान साहबके पैरों पड़कर उन्हें छुड़ा लूँगी। उन्होंने किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा है। उनकी जगह मुझे पीट लो, मुझे जेल भेज दो—जो चाहो सो करो, बस उन्हें छोड़ दो। पाओं पड़ती हूं तुम्हारे—बता दो कहा हैं वह··· ?"

"अब क्या होगा सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब, जिसका मुझे डर था, वही हो गया—मुनिया आ गई .. !" ठाकुर साहबने घबड़ाते हुए कहा।

"सब ठीक हो जायेगा आप बिल्कुल न घबड़ायें।" सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबने दिलासा देते हुए कहा।

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब दरोगाजीको कमरेमें एक कोनेमें ले गए और धीरे-धीरे कुछ समझाया। दरोगाजी एक कदम पीछे हटे और फिर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबको सैलूट देकर बाहर निकल आये। ठाकुर साहब और सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब हवेलीके अन्दर चले गए।

—चार—

दरोगाजी जैसे ही बाहर आये, मुनियाने गोदकी बच्ची को उनके पैरोंपर डाल दिया और स्वयं भी उनके पैर पकड़ लिए। एक बारको दरोगाजीका भी दिल काँप उठा, पर दूसरे ही क्षण अपनेको स्वस्थ कर बोले—

"तुम झींगुरियाकी औरत हो क्या?"

"हाँ माई-बाप, कहाँ है वह? उसे कहीं बहुत तो नहीं मारा आपने? कैसे बताऊँ आपको--उसका किसीमें कोई हाथ नहीं—उसे खुशामद करनी नहीं आती सरकार! इसीलिए सबका बुरा है और जरा तेज मिजाजका है। अगर आपसे कुछ कह दिया हो तो मुझे मार लीजिए, मुझे

जेल भेज दीजिए, जो चाहो सो कीजिए। मेरा कोई नहीं है, मैं लुट जाऊँगी, कहींकी न रहूंगी।" मुनियाने दरोगाजीके दोनों पैर कसकर पकड़ लिए थे। वह फफकती जा रही थी और कहती जा रही थी।.....

"तू क्यों इतना घबड़ा रही है ? वह ठीक है, बस सुबह तक छोड़ दिया जायगा। तू खुद अपनी आँखोंसे देख सकती है, लेकिन एक शर्त पर।"

"सरकार, सब शर्तें मंजूर हैं।" मुनियाने दरोगाजीके पैरोंपर पड़ी हुई बच्चीको उठाते हुए कहा।

"जा तू एक थालीमें इसके लिए खाना ले आ। वह दिन भरका भूखा है। तू अपने हाथसे ही खाना दे देना, तब तो तुझे तसल्ली हो जावेगी ; लेकिन शर्त यह है कि तू उससे बात नहीं करेगी। उसके कमरेके पासवाले कमरेमें ही साहब हैं और अगर उन्हें इस बातकी भनक भी पड़ गई कि तू झींगुरियासे मिलने आई है, तो बस मुझे नौकरीसे हाथ धोना पड़ जाएगा। आखिर मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं।"

"बस सरकार, मैं देख भर लूं। आप विश्वास रखिए, मैं बोलूंगी नहीं। भगवान करे आपकी तरक्की दिन दूनी रात चौगुनी हो . " कहते-कहते मुनियाने अपना माथा दारोगाजीके पैरोंपर टेक दिया।

"बस-बस-बस, तू जल्दीसे एक थालीमें खाना ले आ।" दरोगाजीने अपने पैरोंको पीछे हटाते हुए कहा।

मुनिया दौड़ी-दौड़ी घर खाना लेने गई।

बड़े दरोगाजी छोटे दरोगाजीके पास गए और सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबकी सारी योजना उन्हें समझा दी। दरोगाजीका चेहरा खिल-सा गया।

छोटे दरोगाजी झींगुरियाके कमरेमें गये। झींगुरियाकी शक्ल देखते ही फिर काँप उठे। बड़ी हिम्मत कर उसे उठाया और उसे बैठाल दिया और स्वयं उसकी पीठको पकड़ कर उसके पीछे बैठ गये। बड़े दरोगाजीने छोटे दरोगाजी और झींगुरियाको एक ही कम्बलमें इस प्रकार लपेट दिया कि ऐसा लगता कि मानों झींगुरिया उकड़ू बैठा है।

--पाँच--

मुनियाको खाना लाते देर न लगी। बाहर खड़े बड़े दरोगाजी भी उसका इन्तजार कर रहे थे। मुनियाको देखते ही बोले—"चलो, मेरे साथ अन्दर चलो, पर देखना उससे बोलना बिल्कुल नहीं।"

मुनियाने उत्तरमें केवल सिर हिला दिया।

कमरेमें यद्यपि एक दिया रखा टिमटिमा रहा था, पर उसका प्रकाश इतना न था कि कमरेकी प्रत्येक वस्तु साफ दिखलाई पड़े। मुनियाने देखा कि कमरेके कोनेमें एक बंडल सा रखा है। काँपते हुए कदमोंसे वह उस ओर बढ़ी। दिये के क्षीण प्रकाशमें उसने झींगुरियाका चेहरा देखनेका प्रयत्न किया। उसका दिल काँप उठा—एक ओरको झुकी गरदन, पथराई-सी आँखें, स्याह चेहरा ! वह झींगुरियाको पकड़कर हिलानेवाली थी कि सहसा उसकी गोदकी बच्ची चीख मार कर रो उठी। दरोगाजीने लपकर उसकी बाँह पकड़ ली और दरवाजेकी ओर उसे खींच लाए।

बाहर गाँवके दो-एक आदमी और खड़े हुए थे। दरोगा जीने मुनियाको फटकारते हुए कहा—"तुम तो मुझे नौकरीसे हाथ धुलवाकर ही छोड़ोगी—बच्चीको इन्हीं लोगोंको दे जाती। साहबका सख्त हुक्म है, झींगुरियासे कोई न मिले। कह दिया था कि बस खाना रख आ, पर तू तो वहाँ बैठी ही रह गई। सुबह उसे जी भरकर देख लेना। सुबह मैं उसे छुड़वा दूँगा, पर तुम लोग दया करने लायक नहीं हो।"

मुनियाकी निगाहें नीचे झुकी हुई थीं। उसकी आँखोंके सामने वही एक ओरको झुकी गर्दन, पथराई आँखें, स्याह चेहरा नज़र आ रहा था !

गाँववाले एक साथ बोल उठे—"अजी आप इसका कसूर माफ करें, यह तो बिल्कुल पगली है। आप सुबह झींगुरियाको छुड़ा दें। हम जानते हैं कि झींगुरिया किसी भी फनमें नहीं है, वह अक्खड़ जरूर है।"

"देखो भाई, मैं अपनी कोशिशमें तो कोई कसर नहीं छोड़ूँगा, आगे भगवान जाने।"

अन्दर कमरेमें से थाली खटकनेकी आवाज आई। "जा तू थाली उठा ले, लेकिन मैं अब तुझे उसके पास न जाने दूँगा।" दरोगाजीने मुनियासे कहा।

थाली कमरेके दरवाजेपर ही रखी थी, मुनियाने कमरे में झाँककर देखा, झींगुरिया उसी प्रकार उकड़ूँ बैठा था, हाँ अब कुछ कोनेसे इस ओर हट गया था। कमरेमें और कोई नजर न आया। थालीमें आधा खाना छोड़ दिया गया था। वह थाली उठाकर चुपचाप चली आई। रह-रहकर उसकी आँखोंके सामने वही एक ओरको झुकी गरदन, पथराई आँखें, स्याह चेहरा नज़र आता !

[शेषांश पृष्ठ २९० पर देखें]

कलाकार

महेशचन्द्र 'सरल'

कवि—
अभिनेता—
पत्रकार—
गायक—
चित्रकार—
लेखक—
} नगरके प्रमुख कलाविद्

नेता— एक राजनीतिक कार्यकर्ता

[स्थान—पार्क। संध्याका समय। ठण्डी हवा चल रही है। कवि, गायक और चित्रकार घ सके मैदानमें एकत्रित हैं। सब अपनी-अपनी रुचिकी बातें कर रहे हैं।]

कवि—(निःश्वास लेकर) ओह! कैसा सुहावना लग रहा है! कविता लिखनेका 'मूड' हो रहा है।

गायक—(उन्मत्त होकर) मेरा जी तो तान छेड़नेको हो रहा है। कहें तो अभी ···गाने लगूँ।

चित्रकार—(प्रसन्न मुद्रामें) वाह! सूर्यास्तका कैसा नयनाभिराम दृश्य है! चित्र उतारनेकी इच्छा हो रही है।

[तीनों भावलोकमें बहने लगते हैं।]

कवि—आहा! कैसी सुन्दर पंक्ति गूँज रही है! क्या बताऊँ, डायरी नहीं लाया, नहीं तो वह लाजवाब कविता तैयार हो जाती कि जो सुनता वही फड़क उठता।

गायक—यदि मैं इसी समय गाने लगूँ, तो इतने कोमल स्वर निकलेंगे कि मनुष्य ही क्या पशु-पक्षी और वृक्ष तक झूमने लगेंगे। मेरा दावा है कि सारी कलियोंको खिले फूलमें बदल दूँगा।

चित्रकार—ओहो! वह रंगीनी कितनी मादक है! सोने-सी किरणोंकी आभा वृक्षोंके पीछेसे निकलकर सारे आकाश में फैल गई है। कितने रंग हैं? इस एक चित्रके बन जानेपर मैं सारे देशमें विख्यात हो जाऊँगा और वह चित्र ऐसा होगा, मानों स्वयं बोल रहा हो।

[कवि गुनगुनाते और गायक आलाप लेने लगता है।]

चित्रकार—तो मैं भी लाऊँ तूलिका और रंग?

कवि—क्या तुम भी चित्रकार बने हो? रंगोंकी प्याली लाओ, तूलिका लाओ, रंग मिलाओ, तब कहीं चित्र बने। उसमें भी कल्पनाका सहारा ज़रूरी है। और हमें क्या? पंक्ति उठी कि कविता बनती चली गई, जैसे झरना बहता है। दिमागमें सारी कविता, सारे भाव भरे रहते हैं।

गायक—ठीक है। मुझे भी क्या लेने जाना है? वाद्य नहीं है तो क्या, मैं गा नहीं सकता? अभी तो वह आलाप लेता हूं कि झूम उठोगे।

चित्रकार—सच है। कलाकी अपनी-अपनी महिमा है; पर मेरे चित्रोंका कितना मान होता है, यह कभी सोचा है? पाँच-पाँच सौमें एक-एक चित्र बिकता है।

कवि—कहाँ कविता और कहाँ चित्रकला? मेरी एक पंक्ति मृतकोंमें प्राण डाल देती है और तुम्हारी चित्रकलाका हाल यह है कि जीवनकी वास्तविकताके चित्र बनाते हो तो भय लगने लगता है और घृणासे मुँह फेर लेना पड़ता है।

[पत्रकार एकाएक भागता हुआ आता है।]

पत्रकार—(उत्तेजित स्वरमें) आप लोगोंने इधरसे किसी गुण्डेको तो नहीं भागते देखा?

गायक—कैसा गुण्डा? क्या पहने था?

चित्रकार—मुझसे सुनिये अखबारनवीस साहब! यहाँ इन लोगोंकी आँखें धरतीपर नहीं थीं। कल्पना-लोकमें विचर रही थीं। आँखें मूँदे आकाशकी ओर सैर कर रहे थे। ऊपरसे बहस करते हैं कि कविता और संगीत चित्रकलासे श्रेष्ठ है।

पत्रकार—हटाइये भी यह सब। कलाकार बड़ा ईर्ष्यालु होता है। दूसरेकी कलाको पनपते फूटी आँख भी नहीं देख सकता। हाँ, तो यह बताइये, आपने भी गुण्डेको नहीं देखा?

चित्रकार—देखिये, अभी सोचकर बताता हूं।

पत्रकार—जल्दी कीजिये। उसके भाग जानेसे कोई लाभ न

होगा। उसने एक महिलासे अभद्रताका व्यवहार किया है। मैं उसे पुलिसमें दूँगा।

कवि—गुण्डा होगा तो आदमी ही?

चित्रकार—जी नहीं। या तो वह कवि होगा या गायक। (पत्रकारसे) देखिये मिस्टर, इन दोनोंमें से तो वह नहीं है? ये लोग भी बड़े मनचले होते हैं। ज़रा किसीको देखा कि आहें भरने लगे और फिर या तो कविताके आँसू बहाने लगे या गा-गाकर आलाप लेने लगे।

कवि—चुप!

चित्रकार—क्यों? हाँ पत्रकारजी, वह जो सामने पेड़ है, जिसके नीचे पानीका नल लगा है, वहाँ एक नवयुवती अपने बच्चेको पानी पिला रही थी। शायद··· !

पत्रकार—पूरी बात कहो न। शायद क्या? और कोई भी वहाँ था? मेरा मतलब है पुरुषोंमें से। अभी इस संवादको प्रेसमें देना है। कल सबेरे न्यूज़ छपकर आ जानी है।

कवि—तो आप महिलाओंकी गुण्डोंसे रक्षा करनेकी पत्रकारिता करते हैं? कभी हम कलाकारोंकी भी दशापर कृपा करते। राष्ट्रके गौरव तो हम कलाकार ही हैं। हम यहाँ बैठे हैं, सो आपने एक बार भी नहीं पूछा कि क्यों, कैसी बीत रही है?

पत्रकार—(झल्लाकर) क्या वाहियात बकते हो? (चित्रकारसे) हाँ, तो फिर क्या देखा, बताओ?

चित्रकार—(मुस्कराकर) मुझे तो लगा कि महिलाका पति भी साथ था, जो तुरत आ गया और बच्चेको अँगुली पकड़ाकर महिलासे मस्तीसे बातें करता चला गया। हो सकता है वह सफ़ेदपोश गुण्डा हो और उस महिलासे···।

पत्रकार—धत्, वे तो प्रोफेसर साहब थे। आप लोगोंने मेरा सारा समय नष्ट कर डाला। गुण्डा ज़रूर भाग गया होगा।

[पत्रकार चला जाता है। तीनों कलाकार भी अपने-अपने घर लौट जाते हैं।]

दृश्य दो

[लेखकका कमरा—सारा सामान अस्तव्यस्त पड़ा है। लेखक मेज़पर पैर फैलाये कुर्सीपर बैठा है। सामने कागज़ बिखरे हैं। अभी लिखना समाप्त कर आरामकी साँस ली है। तभी अभिनेता अचानक प्रवेश करता है।]

अभिनेता—(सिगरेटका धुआँ उड़ाता हुआ) कहिये सरस्वती-पुत्र, क्या हो रहा है? कौन-सी दुनियाकी सैर हो रही है?

लेखक—(सचेत होकर) आइये, सोच रहा था कि इस बार ऐसी कहानी लिखूँ, जिसमें आदमीके सरमें सींग जमने का वर्णन हो और उसे जब आप लोग खेलें तो मंचपर पुरुष-पशु बना दिखाई पड़े।

अभिनेता—(कुर्सीपर सामने बैठता हुआ) वाह! क्या ऊँचा विचार है! धन्य है! पर यह नहीं सोचा कि सींगोंवाला पुरुष-पशु अपने निर्माताको छोड़ सकता है कहीं? वह तो पशु ठहरा। जब जीमें आया, सींग चलाने लगेगा।

लेखक—(मेज़पर बिखरे हुए कागज़ उठाता हुआ) अभी दया करो। जब सींग लग जायँ, तो देखा जायेगा। लाठीकी मार वह पड़ेगी कि अकल ठिकाने आ जायेगी। पर तुम क्यों बुरा मान गये?

अभिनेता (मुस्कराकर) बुरा न मानूँ? सींग तो मेरे लगेंगे। जनताके सामने तो हँसी मेरी होगी। तुम्हें कौन कहने आयेगा? उलटे तारीफ़ ही होगी। वाह रे लेखकका दिमाग! आदमीको जो चाहो बना दो!

लेखक—और तुम जिस रूपमें चाहो अभिनय करो, कौन रोकता है?

अभिनेता—तो शुरू करता हूं। आज तो होरोके स्थानपर 'भूत' का अभिनय करना चाहता हूं।

लेखक तो भी तुम्हारा भूत उतारनेके लिए पण्डित मुझे ही बनना पड़ेगा।

अभिनेता—तो होशियार हो जाओ पण्डितजी। पढ़ो अपने मन्त्र। लो सम्हलो, भूत आया।

[अभिनेता अपनी आँखें चढ़ाता है और मुखाकृति अत्यन्त भयानक बनाकर उच्च स्वरसे चीत्कार करता है। लेखक भयभीत हो जाता है। उसी समय बाहरसे नेता प्रवेश करता है। सफ़ेद खादीकी टोपी, कुरता व पाजामा पहने है। आँखोंपर काला चश्मा चढ़ाये है। अभिनेता लेखककी ओरसे घूमकर नेताकी ओर बढ़ता है।]

नेता--(भयातुर होकर) यह क्या है ? कौन हो तुम ?

लेखक--यह एक पागल है।

अभिनेता--(हुंकार भरकर) मैं पागल हूँ ? झूठ-भूत हूं।

[लेखक हँसता है]

नेता--यह हँसी कैसी ? तुम्हें भय नहीं लगता ?

लेखक--अरे, यह तो अपना अभिनेता मित्र है।

नेता--सच ?

अभिनेता--हाँ सच, देखो मेरी ओर। पहचानो मुझे।

[दोनों उसकी ओर देखते हैं।]

नेता--वाह ! तुमने तो कमाल कर दिया।

अभिनेता--कैसा कमाल ? मैं हूं क्या, यह नहीं जानते ?

लेखक--आज इन्होंने अपना परिचय दिया है। हम दोनों बहस कर रहे थे कि···।

अभिनेता--छोड़ो उस बहसको। (नेतासे) सुनाइये, क्या हाल है देशका ?

नेता--अपना हाल तो ठीक है। बाहरवालोंकी नब्ज़ें छूट रही हैं।

लेखक--कौन मर गया ?

अभिनेता--अरे बुद्धू, मर कोई नहीं गया। कल्पना करो कि कोई मर रहा है। बोलो दिखाऊँ, आदमी कैसे मरता है ?

नेता--नहीं-नहीं। सब लोग कहेंगे कि हमने मार डाला है। हमारे चले जानेके बाद मरना।

लेखक--मरने-जीनेकी बातें मत करो। डर लगता है। अब यह बताओ कि अखबारमें कौन-सा भाषण छप रहा है ?

[सहसा पत्रकार प्रवेश करता है।

पत्रकार--(नेताकी ओर देखकर) आप यहाँ बैठे हैं और मैं आपको ढूंढ़ता फिर रहा हूं। चलिये न।

नेता--बैठो भाई, चलता हूं।

पत्रकार--आप भूल गये ? घड़ी देखिये, कै बजा है ? लोग बैठे होंगे। आपको 'डिलाइट रेस्ट्रां का उद्घाटन करना है न ?

नेता--ओह ! भूल गया था वास्तवमें। चलो चलता हूं।

लेखक--अच्छे आये ! अपने साथ दूसरेको भी ले चले ! पत्रकार शैतानकी आँत होते हैं। जहाँ देखो, नेताओंके पीछे लगे रहते हैं।

अभिनेता--पर मैं अभी न जाने दूँगा। हमारी गोष्ठीका भी उद्घाटन किये जाइये। (पत्रकारसे) कल अखबारोंमें नेताजीका भाषण छप जाय। घर जाकर लिख लेना।

नेता--क्या मजाक करते हो ?

अभिनेता--मैं और मज़ाक ! नहीं-नहीं। हमारी गोष्ठीका उद्घाटन करना ही होगा। लो, मैं स्वागतमें नृत्य करता हूं।

[नृत्य करने लगता है और नेताका हाथ पकड़ लेता है। सब लोग हँसते हैं। पत्रकार नेताका हाथ छुड़ाकर अपने साथ ले जाता है।]

लेखक--(कहता रह जाता है) अरे, सिगरेट तो पीते जाइये।

दृश्य तीन

[सारे कलाकार पिकनिकको जाते हैं। नेताको भी साथ ले जाते हैं। शहरसे दूर एक वनमें पड़ाव डाला जाता है, जिसके पास नदी बहती है। दूसरी ओर एक गाँव बसा है।]

कवि--(सामनेकी ओर दृष्टि गड़ाकर) यह नदी किनारे कौन नहा रहा है ?

लेखक--(उसी ओर देखकर) कोई तो नहीं। हमें कोई नहीं दिखाई पड़ता।

कवि--और सुनो, यह पायलकी झनकार कहाँसे आ रही है ?

चित्रकार--शायद कोई 'वनदेवी' होगी। वह हम लोगोंको दिखाई नहीं दे सकती।

गायक--क्या कहा, दिखाई नहीं दे सकती ? जरूर दिखाई देगी। मैं एक गीत गाऊँ, तो वह क्या कोई भी हो, ज़रूर दौड़ा आयेगा।

चित्रकार--ठीक है। मैं तब अपने कविके लिए उसका चित्र बना लूँगा। दुःख तो यह है कि इन्हें धरतीकी देवी दिखाई नहीं दे पातीं। चश्मा जो चढ़ा रखा है। कल्पनाकी देवी हर समय इनका पीछा···।

नेता--चुपो भी। कहाँकी बातें ले बैठे ? रात-दिन यही सब करते हो या और कुछ ? ऊँचे आदर्शोंकी बातें करो। समाज-सुधार, देशका विकास, नैतिक स्तरकी उच्चता, ऐसे विषयोंपर क्यों नहीं दिमाग लगाते ?

लेखक--(पत्रकारसे) लो जी, रिपोर्ट लिखने लगे। 'पिकनिक' में भी नेताजी देशका ठेका लेकर आये हैं।

पत्रकार--सारी देशभक्ति जानता हूं। कहो तो अभी सुनाने लगूँ ?

नेता--जरूर सुनाओ। (आँखें चढ़ा लेता है)

अभिनेता--ठहरो। पहले मुझे कह लेने दो।

कवि--तुम क्या कहोगे ?

अभिनेता--मैं कहूंगा ही नहीं, कुछ करके भी दिखाऊँगा। लो देखो।

[अभिनेता अपनी मुद्रा इस प्रकार बना लेता है कि सबको हँसी आ जाती है।]

पत्रकार--(चित्रकारसे) लो जी, इनका 'कार्टून' तो बनाओ।

चित्रकार--'कार्टून' तो कविजीका बनना चाहिए। कह रहे थे कि किसीको देखा है नदी किनारे। तबसे बेचारे मन मारे बैठे हैं।

गायक--(मुस्कराकर) तो सुनो। दिलकी आवाज़ तो ज़रूर सुनी जायेगी। मैं इस किनारेपर खड़ा होकर·····।

लेखक--चलो एक कहानी बन गई, काल्पनिक ही सही।

[कविजी झेंप जाते हैं। बार-बार अपना चश्मा ठीक करने लगते हैं।]

नेता--तो एक मेरा प्रस्ताव रहा।

सब लोग--क्या ?

नेता--हममें से कुछ लोग नदी पार करें।

पत्रकार--पार कैसे करोगे ? नाव कहाँ है ?

गायक--क्या बात कही, नाव नहीं है ? अरे, कल्पनाके पंख लगाकर उड़ चलो न और उसके यहाँ सारे लोग उतरें।

अभिनेता--वह कौन है ? कहाँ है ?

कवि--(झल्लाकर) है तुम्हारे सरमें।

नेता--अच्छा भई, कोई और बात करो।

पत्रकार--ठीक है, खाने-पीनेकी बातें होनी चाहिए। चाय बन गई होगी।

लेखक--अभी तो विचार उबल रहे हैं।

गायक--और पकेंगे कब ?

कवि--जब दर्शन होंगे।

[ठीक इसी समय ग्रामीणोंका दल शोर करता हुआ निकट आता जाता है।]

अभिनेता--अब सबको देखना है। गाँववाले ऐसी पिटाई करेंगे कि याद रहेगी।

गायक--पर हमने किया क्या है ?

नेता--मेरे होते हुए कौन बोल सकता है ?

पत्रकार--मैं तो भाई सावधान होकर इनमें जा मिलूँगा, नहीं तो मामलेकी रिपोर्ट कैसे लिखनेको मिलेगी। आपबीती कौन लिखता है ? हम लोग तो दूसरोंकी बुराइयाँ देखनेके आदी हैं।

अभिनेता--मैं बताता हूं, हमने क्या किया है। हम लोगोंने उनका बाग उजाड़ दिया है। यह देखो इधर।

[सब लोग देखते हैं। आमोंका ढेर लगा है। एक टोकरीमें अमरूद भी हैं।]

नेता--हैं ! यह सब कैसे आये ? कौन तोड़ने गया था ?

गायक--क्या पता हम लोगोंको ? कविजीकी कल्पना देवी तोड़कर दे गई होंगी।

[कवि उसकी ओर घूरता है। गाँववालोंका स्वर पास आ गया है।]

नेता--तुम लोगोंने क्या मुसीबत मोल ले ली है ? मेरा तो खयाल रखा होता ?

चित्रकार--यह सब अभिनेताका किया हुआ है।

लेखक--किसीका भी हो, शामिल सबको होना है।

गायक--तो आप भी हैं। पर मैं बचा सकता हूं सबको। उनके यहाँ आनेके पहले हम लोग एक ड्रामा खेलने लगें। लगता है, वे आ गये हैं। मैं गाने लगता हूं और अभिनेताजी, आप मेरा गाना बन्द होनेके ठीक बाद ड्रामा खेलने लगना।

कवि--और मेरी कविता ?

गायक--धत्, मेरे होते तुझे कौन सुनेगा ? यह गाँवके लोग हैं। पढ़े-लिखे नारी-प्रेमी नहीं। (चित्रकारसे) तुम मेक-अप कर दो अभिनेताका।

नेता--और मैं क्या करूँगा ?

अभिनेता--तुम गरीब किसान बन जाओ। जो मनमें आये, कहने लगना। गाँववाले हमें यूनिवर्सिटीके लड़के समझते होंगे, तभी लाठी लेकर आ रहे हैं डराने। वे क्या जानें कि सारे कलाकार यहाँ आये हैं। हममें से जो लोग कुछ पहले आ गये थे, उन्होंने ही यह सब किया है।

पत्रकार--मेरे ज़िम्मे क्या सौंपते हो ?

गायक--तुम उन लोगोंको यहाँका रास्ता दिखाओ।

[सब लोग हँस पड़ते हैं। गाँववाले पास आ जाते हैं। गायक गाने लगता है--'काहे पे करे गुमान री'···। अभिनेता अभिनय करनेके लिए तैयार हो जाता है और नेता किसान बनकर तैयार हो जाता है।]

(गाँववाले गानेका आनन्द लेनेके बाद अभिनेता का अभिनय देखने लगते हैं। जब सब थककर चूर हो जाते हैं, तो बैठ जाते हैं।)

एक गाँववाला—(उठते हुए) आप लोगोंने इधरसे दो बैल तो भागते जाते नहीं देखे ? ऊँचे नागौरी बैल हैं। हम लोग सबेरेसे उन्हींको पकड़नेके लिए दौड़ रहे हैं।

[सारे कलाकार एक-दूसरेकी ओर देखने लगते हैं। मन-ही-मन सारे लोग झेंप जाते हैं, जो अपने-आप ही बेवकूफ बने।]

दूसरा गाँववाला—(नेताके निकट आकर) अरे ! रामबाबू, आप ! यह कैसा वेश बनाया है ?

[कलाकार ही-ही कर हँसते हैं।]

नेता—(अपनी जान छुड़ानेके लिए) कुछ नहीं, हम लोग एक ड्रामा तैयार कर रहे हैं बाढ़-पीड़ितोंके लिए। तुम्हारे यहाँ भी टिकट बेचने आयेंगे। सब लोग देखना, अच्छा। (फिर कुछ रुककर) हाँ, तुम्हारे दोनों बैल बड़े डरावने हैं। लाल-लाल आँखें किये फुफकारते जा रहे थे। पर अब तो वे दूर निकल गये होंगे।

गाँववाला—(अधीरतासे) गये किधर हैं ? हमने प्रण किया है कि पकड़कर ही दम लेंगे।

पत्रकार—और मैं तो यही बताने आ रहा था तुम लोगोंको; पर यहाँ गानेमें पड़ गये तुम लोग। जाओ, यह जो सामने रास्ता है, उसीपर गये हैं।

[गाँववाले शोर करते हुए भाग जाते हैं।]

गायक—कहो नेताजी, कैसी रही ?

[नेताके साथ सब हँसने लगते हैं।]

मुझे अपने बालकोंसे बात करने दीजिए

[पृष्ठ २८१ का शेषांश]

नहीं मिलता, तो हमारे मिलनेवाले ज्ञानकी बात तो दूसरी ही है। हममें बच्चोंकी बिरादरीका ज्ञान कौन दे ? हमारे दिलोंको दया-भरे बगीचे कौन बनावे ?

अपने दुखड़ोंको कहाँ तक रोवें ? अपनी गलतियोंके लिए तो हम दण्ड पाते ही हैं, परन्तु हमारे माता-पिता व गुरु आदिकी गलतियोंका भी हमें जीवन-भर दण्ड भोगना पड़ता है। हमारे गुरुओंमें भी यदि पढ़ानेकी कुशलता होती है, तो उनमें बच्चोंके प्रति निष्ठा नहीं होती। वे निष्ठावान मिलते हैं, तो कार्यकुशल नहीं मिलते। कुशलता और निष्ठा यदि एक घाट पानी पीने लग जाय, तो बाल-मंगल सुलभ हो जाय।

अब युग आ गया है, हम अपने दिलोंकी धड़कन, हमारे पूज्य बड़े लोगों तक पहुंचायें। बालहठसे ही सही, पृथ्वीपर शान्ति और स्वर्ग उतरवा दें। तभी तो हम अपने पिता, पितामहों, बुद्ध, गाँधी, ईसा आदिको शेष कार्यक्रम पूरा कर सकेंगे।

क्या ही अच्छा हो, सारे संसारकी माताएँ हमारे लिए आगे आवें और अणुशस्त्रोंके परीक्षण बन्द करवा देवें। डिग्री की बज़ारत, इल्मोंको तिजारत और कच्चे-बासी ज्ञानकी महारत मिटा दी जाय। इसीलिए मैं दुनिया भरके माता-पिताओंसे प्रार्थना करूँगा—"कृपया मुझे अपने बालकोंसे बात करने दीजिए।"

तफतीश और रिपोर्ट

[पृष्ठ २८५ का शेषांश]

—छः—

रातको झींगुरियाको एक बोरीमें बन्द कर दिया गया और बड़ी हवेलीके पीछेके रास्तेसे उसे निकालकर जीपमें डाल दिया गया। रातको दो बजे बड़ी हवेलीमें सहसा एक जोरोंका शोर सुनाई दिया – "पकड़ो-पकड़ो, भाग गया !" ठाकुर साहब, सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब, छोटे-बड़े दरोगा, सिपाही, हवेलीके नौकर, सब इधर-उधर भागने लगे—"कैदी भाग गया, झींगुरिया भाग गया" का शोर चारों ओर फैल गया।

हवेलीके बाहर पेड़के नीचे फटा कम्बल ओढ़े अपनी छातीसे तीनों बच्चोंको चिपकाए पड़ी मुनियाने भी सुना, "कैदी भाग गया", "झींगुरिया भाग गया !" उसकी आँखोंके सामने फिर वही चित्र खिंच गया—एक ओरको झुकी गरदन, पथराई आँखें, स्याह चेहरा !

दरोगाजीने सुबह रिपोर्ट लिख दी—"कैदी भाग गया !"

*

साथ क्या जाता है

श्रीराम शर्मा

१. अंग्रेजी शासनकालमें राजस्थानकी एक प्रसिद्ध रियासतके राजाने अपने बुढ़ापेमें अपने उत्तराधिकारी और प्रधान मन्त्रीसे कहा, "मेरी इच्छा है कि मेरे निधनके बाद मेरे शवपर बहुत बढ़िया कफ़न डाला जाय।"

२. राजा बड़े लोकप्रिय थे। उनकी आज्ञा शिरोधार्य की गई।

३. हीरे और अन्य जवाहिरातोंसे जटित एक दुशाला तैयार किया गया और उसे बनाने में पाँच लाख रुपये लगे।

४. महाराजा प्राणायाम इत्यादि जानते थे।

५. एक बार उन्होंने सोचा कि क्यों न इस बातकी जाँच की जाय कि उनके मरनेके बाद वह बहुमूल्य दुशाला उनपर डाला भी जायगा या नहीं।

६. बस, दरबारमें बैठे हुए उन्होंने दिलमें दर्द की शिकायत की और थोड़ी ही देरमें प्राणायाम खींच लिया तथा आँखें नटेर कर गिर पड़े।

७. महाराजाकी नब्ज़ ग़ायब थी और वैद्यों तथा डाक्टरोंने घोषणा कर दी कि दरबार साहबका अन्त हो गया।

८. हाहाकार मच गया और उनकी अर्थीकी तैयारी होने लगी।

९. महाराजा पड़े-पड़े सब सुनते रहे। अवसर पाकर देख भी लेते थे।

१०. जब कफ़न डालनेका समय आया, तब उसी दुशालेकी चर्चा हुई, जो महाराजाने अपने शवपर डालनेके लिए तैयार कराया था।

११. महाराजा के उत्तराधिकारी राजकुमारने बड़ी गम्भीरतासे कहा, "मरा व्यक्ति वापस नहीं आता और कफ़नमें पाँच लाख रुपये क्यों बरबाद किये जायँ। पिताजी तो अब लौट नहीं सकते।"

१२. राजकुमारकी आज्ञासे चार-पाँच हज़ारका कफ़न मँगाया गया।

१३. महाराजाने तब अपने शरीरमें गति की और कराहकर बैठ गये।

१४. उन्होंने मुस्कराते हुए उपस्थित लोगोंसे कहा, "मैंने सब बातें सुनीं। मुझे इस बातपर कोई अफ़सोस नहीं कि मेरे शवपर पाँच लाखका दुशाला न डालनेका निर्णय किया गया। असलमें आदमीकी करनी ही उसके साथ जाती है। मुट्ठी बाँधे आदमी पैदा होता है और खुले हाथ यहाँसे कूच करता है। उसकी सम्पदा और मालमता कोई साथ नहीं जाती।"*

* यह कथा हमने श्री आचार्य तुलसीसे उनके एक प्रवचनमें पिछले दिनों कानपुरमें सुनी थी।
—लेखक

चिट्ठी - पत्री

अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' की बहनका पत्र

(वे फ़ाके कर रही हैं)

अभी हमें कोसमा जिला मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) से काकोरी केसमें फाँसी पानेवाले शहीद 'बिस्मिल'की बहन श्रीमती शास्त्री देवीका एक पत्र मिला है। उसे हम ज्यों-का-त्यों दे रहे हैं :—

कोसमा, मैनपुरी

श्रीमान् प्रिय भाई साहब बनारसीदासजी नमस्ते स्वीकार हो। आपका पत्र आया मिला। मैंने आपके पहले पत्र लेखनी आई थी-उसका जवाब फौरन दिया था। कुछ वार्ता भी दी थी। बैरंग पत्र भेजा था, आपको न मिला क्या वजह हुई। मैं अपने भाईकी बात क्यों न जानूँगी। मेरेसे ४ साल बड़े थे। मेरे सहारेसे कई गुप्त काम किए। हथियार रियासत ग्वालियरसे मेरे ही सहारे आते थे। उनकी जीवन चरित्रमें सब लेखनी अपने हाथसे लिखी है। मैं भी कुछ नहीं जानती हूं। अब मेरी दीनताकी वजहसे बेवकूफ हूं। मैंने शाहजहाँपुरमें सबसे विनती की, मेरी तन पेटकी किसीने मदद नहीं की। अब मेरी बहुत हालत खराब है। भाई ओंकारनाथने मुझे ५ रु० दिए, एक धोती ले ली। बिल्कुल दशा खराब थी। कोसमा में बारिष बहुत हुई। सिवा पानीके कुछ नहीं दीखता। मेरा मकान भी गिर गया, खानेको अन्न नहीं मिला। फाका हो रहा है। ज्यादा लिखा नहीं जाता। अगर मेरे लड़केकी कहीं नौकरी लग जाती तो अच्छा होता।

आपकी बहिन,
शास्त्री देवी

१९ दिसम्बर सन् १९२७ को 'बिस्मिल' को फांसी हुई थी और उनकी पूज्य माताजी सन् १९४७ तक—यानी पूरे बीस वर्ष—भूखों मरती रहीं। तत्पश्चात् ७८ वर्ष उन्हें साठ रुपये महीनेकी पेंशन उत्तर प्रदेश सरकारसे मिली। पिताजी चल बसे, उनका छोटा भाई रमेश क्षय-रोगमें स्वर्गवासी हुआ और अब बिस्मिलकी बहनकी बारी है। माताजीके स्वर्ग-वासके बाद दो वर्षसे 'बिस्मिल' की ये विधवा बहन घोर आर्थिक संकटका सामना कर रही हैं।

जनताका यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह उनकी भरपूर सहायता करे। पैसा इस पतेपर भेजा जा सकता है—श्रीमती शास्त्री देवी, कोसमा, जिला मैनपुरी। 'बिस्मिल' की 'आत्मकथा' से (जो अभी प्रकाशित हुई है) स्वतंत्रता-संग्रामके उस वीर सैनिकके त्याग और बलिदानका पता लग सकता है।

९९, नर्थ एवेन्यू, —बनारसीदास चतुर्वेदी
नई दिल्ली

[हम स्व० बिस्मिलजीको व्यक्तिगत रूपसे जानते थे और एक कठिन समयमें हमने उन्हें अपने स्व० भाई डा० जीवारामके यहाँ तीन दिन फीरोजाबाद भी रखा था। बिस्मिलजीके विषयमें लिखना यहाँ अप्रासंगिक होगा ; पर हमें यह पता नहीं था कि बिस्मिलजीकी बहन श्रीमती शास्त्री देवी कोसमामें रहती हैं। कोसमा हमारे गाँव किरथरासे १४-१५ मील दूर ही होगा।

हमारे वर्त्तमान जीवनका यह अभिशाप है कि सच्चे कार्यकर्त्ताओं और तपस्वियोंकी कोई पूछ नहीं। हमारे खयाल से ऐसे व्यक्तियोंको इस बातकी शिकायत नहीं होनी चाहिए और हमारा विश्वास है कि उन्हें शिकायत भी नहीं है। इस चकचौंध और सिफारिशके जमानेमें उन्हें कोई पूछता भी नहीं। पुराने कांग्रेसी और सच्चे कार्यकर्त्ताओंकी स्थिति उन सिक्कोंकी-सी है, जिनका अब प्रचलन नहीं है ; पर वास्तविक मूल्य उनका अधिक है। मुद्रास्फीतके समान ढोंगियों और दम्भियोंका प्रचार अपेक्षाकृत बहुत है, पर देश निर्जीव नहीं है। हमारा विश्वास है कि देशकी आत्मा भी अभी कलुषित नहीं हुई है। हमें आशा है कि 'विशाल भारत'के पाठक अपनी श्रद्धानुसार बहन शास्त्री देवीकी सहायता ऊपर लिखे पते पर करेंगे। हम स्वयं बोमार रहते हैं और पानीके घटते ही आगामी दिसम्बर तक कोसमा जानेका प्रयत्न करेंगे। मनुष्य निर्मित बाढ़के कारण सिरसा नदीके आसपासके इलाकेमें हजारों ही मकान गिर गये हैं। हम सरकारसे कम-से-कम सहायता लेनेके पक्षपाती हैं और व्यक्तिगत रूपसे अपनी ही सरकारसे भी किसी भी प्रकारकी सहायता लेना अनुचित समझते हैं। लोगोंका कर्त्तव्य है कि वे अपनी सहायता खुद करें। सरकारी सहायतामें तो सिफारिशकी सीढ़ी द्वारा गैर-जरूरतमंदोंको सहायता मिल जाती है। सरकार करे भी क्या ? श्रीमती शास्त्री देवीकी स्वयं सहृदय लोग सहायता करें। हम इस विषय में उनसे पत्र-व्यवहार भी कर रहे हैं।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]

[२]

अणुव्रत छात्रावास

'अणुव्रत छात्रावास' की व्यापक योजनापर चिन्तन करने की प्रेरणा मुझे कैसे मिली और साथियोंके इस योजनाके प्रति रूखे भावोंको देखकर भी मेरा मन निरस्त न होकर दुगुने उत्साहसे इस योजनाके पीछे क्यों दौड़ रहा है ? यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा।

आचार्य श्री तुलसीके युवक शिष्य मुनि श्री रूपचन्दजी किशोरनगर (मेवाड़) चातुर्मासमें अणुव्रत-भावनाके आधारपर ग्राम-सुधारका कार्य सफलताके साथ सम्पन्नकर वापस पधारे, तो उनसे मैंने अपने पूर्व संकल्पके अनुसार व्यापारसे निवृत्त होनेकी बात कही और देश व समाजके कार्यके साथ अणुव्रत आन्दोलनमें अपने-आपको कैसे जोड़ा जाय—यह उनसे पूछा। उन्होंने कहा, "आपको समाज-सेवाकी भावना है, आप समाज का नैतिक स्तर ऊँचा देखना चाहते हैं, तो विद्यार्थियोंके जीवन-निर्माणके विषयमें सोचें। इस शक्तिको संयमकी ओर अग्रसर करते हुए इसके सदुपयोग करनेका कोई सुगम रास्ता निकाल सकें, तो देश व समाजकी सच्ची सेवाके साथ-साथ अणुव्रत प्रसारका अच्छा काम आप कर सकेंगे।" यह प्रेरणा पाकर मैंने इसपर चिन्तन किया और मुझे एक दिशा मिल गई। जैसे-जैसे मैं इसपर चिन्तन करता हूं, मुझे इस योजना से नई-नई आशाएँ सफल होती दिखाई दे रही हैं।

यह योजना केवल विद्यार्थियोंको चरित्रनिष्ठ, श्रमनिष्ठ तथा स्वावलम्बी बनाने तक ही सीमित नहीं है ; इस योजना में यह शक्ति भी भरी पड़ी है, जो अणुव्रत अभियानको नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिसे भी पूरी पुष्टि व बल प्रदान करनेवाली है तथा देशकी प्रत्येक समस्याको सुलझानेमें, देशके उत्पादनको बढ़ानेमें सहयोग और शक्ति प्रदान करने-वाली है। निःसन्देह ऐसा प्रत्येक शिक्षा-केन्द्र लाखों लोगों को अणुव्रत भावनासे परिचित करायेगा। ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न-योजनाके प्रति ऐसा कौन विचारशील व्यक्ति होगा, जो आकर्षित हुए बिना रहे।

यह योजना क्या है और इसपर क्या खर्च पड़ेगा—यह बताना भी आवश्यक है। प्रत्येक कालेजी क्षेत्रमें १०० विद्यार्थियोंके रहने लायक एक मकान बने, जिसमें एक हॉल रहे। छोटे कस्बोंमें, जहाँ कालेजसे एक मीलके अन्दर कम-से-कम १०० बीघा जमीन हो और सिंचाईकी व्यवस्था हो सके, ऐसी जगहमें डेयरीफार्म साथ रहे। शहरोंमें, जहाँ बिजलीकी सुविधा हो, वहाँ मकानके साथ उद्योगशाला साथ रहे। इन छात्रावासोंको बनानेमें व्यय शहरोंमें उद्योगशाला-सहित एक लाख होगा और छोटे कस्बोंमें गोशाला-सहित एक लाखके लगभग होगा। उद्योगशाला चलानेमें एक लाख तथा डेयरीफार्म खड़ा करनेमें ५० हजारकी पूँजी लगेगी, जो को-आपरेटिव सोसाइटी खोलकर प्राप्त की जायगी। इन छात्रावासोंमें विद्यार्थियोंको चरित्र-निर्माणकी ओर सम्प्रेरित करनेवाले एक विद्वान् कुलपति रहेंगे, जो प्रतिदिन प्रार्थनाके बाद अपने प्रवचनमें नैतिक शिक्षाएँ देंगे और छात्रावासके वातावरणको नैतिक बनाये रखेंगे।

विद्यार्थी देशकी बुनियाद हैं। आजके विद्यार्थी आनेवाले कलके भाग्य-स्रष्टा हैं। इसलिए इस बुनियादी योजनामें अणुव्रतोंके आधारपर विद्यार्थियोंको चरित्रनिष्ठ, श्रमनिष्ठ, स्वावलम्बी, सेवाभावी, अनुशासनप्रिय, कर्तव्यपरायण बनानेपर जोर दिया गया है, जिससे वे सच्चे सुयोग्य नागरिक बन सकें और सब क्षेत्रोंमें अपनी सचाईका परिचय देते हुए देशकी बुनियादको मजबूत बना सकें।

इस स्वावलम्बी योजनाकी उद्योगशालामें १६ घण्टे काम होगा, जिसमें से ९ घण्टे ३०० विद्यार्थियोंको स्वावलम्बी बनानेमें और ७ घण्टे १०० कर्मठ कार्यकर्ताओंको स्वनिर्भर बनानेमें दिये जायँगे। विद्यार्थियोंका थोड़ा समय और कार्यकर्ताओंका बाकी बचा समय देश व समाजके बहुमुखी इन कामोंमें लगेगा, जैसे साक्षरताका प्रचार करना, नैतिक व ज्ञानवर्द्धक मौखिक कहानियों द्वारा बच्चोंमें सुसंस्कार भरना, उनकी बुरी आदतें छुड़ाना, मादक द्रव्योंका सेवन छुड़ाना, सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वास, फैशन-आडम्बर, दुर्व्यसन आदिमें होनेवाली धनकी बरबादीको रोककर लोगोंके जीनेका तथा जीवनका स्तर ऊँचा उठाते हुए लोगोंकी इस गलत धारणाको निर्मूल बना देना कि नगाड़ेके सामने तूतीकी क्या आवाज होगी,—यानी आजके कालेजी वातावरणमें रहनेवाले हजारों विद्यार्थियोंके बीच छात्रावासके इन थोड़े-से विद्यार्थियों से क्या बननेवाला है और तीन घण्टा समय उद्योगमें, एक घण्टा समाज-कल्याणमें तथा एक घण्टा प्रार्थना, प्रवचन, स्वाध्यायमें देंगे तो पढ़ाई कब करेंगे ; परीक्षा पास नहीं कर सकेंगे, तो पढ़ाई का मूल ध्येय मारा जायेगा। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि पुरुषार्थ जागनेपर व्यक्ति कितना काम कर सकता है। इस योजनामें विद्यार्थियोंके पुरुषार्थको जगानेकी पूरी गुंजाइश है।

इस स्वावलम्बी योजनाकी उद्योगशालाके प्रत्येक केन्द्रमें, वर्षमें अनुमानतः १५ लाख रुपयेका सामान निर्मित होगा। इसमें ज्यादा शक्ति छात्रोंकी लगेगी। आशंका की जाती है कि छात्र काम नहीं करेंगे, तो कैसे कराया जायगा? काम खराब करेंगे तो क्या होगा? किन्तु इसमें ऐसी आशंका करनेकी जरा भी गुंजाइश नहीं है; क्योंकि यह काम छात्रों का खुदका है, नफा-नुकसान उनका अपना है तथा जिनको स्वावलम्बी बनना है, वे ही इस काममें भर्ती होंगे। फिर घरवाले यह जानेंगे कि लड़का तीन घंटे काम करके स्वावलंबी बन सकता है, तो वे भी प्रेरणा देंगे और खर्च भेजना नहीं चाहेंगे। इसलिए यह काम लड़के अवश्य करेंगे, पूरी शक्ति व तन्मयतासे करेंगे। जब शिक्षित लड़कोंके आदर्श और श्रमनिष्ठ जीवनको लोग देखेंगे, तो देशव्यापी श्रमविमुखताका मुँह मुड़े बिना नहीं रहेगा; लोग कठिन परिश्रम करनेके आदी बन जायँगे। तब फिर देशके सामने किसी भी प्रकार की समस्या नहीं रह सकेगी।

उद्योगशालाकी तरह वैज्ञानिक ढंगसे कृषि, बागवानी, गोपालन करके यानी १०० बीघे जमीनमें १०० अच्छी गायों का डेयरीफार्म चलाकर २०० विद्यार्थी ३ घंटे कार्य करके स्वावलम्बी बन सकते हैं और अपने साथ गाँवोंके नौजवानों को निःशुल्क रखकर उन्हें ट्रेनिंग दिलाते हुए यह काम गाँवों में फैलाकर देशका उत्पादन बढ़ा सकते हैं, फिरसे देशमें दूध की नदियाँ बहा सकते हैं।

प्रस्तुत योजना कार्यकर्ता उत्पन्न करनेकी खान होगी, जिनके समक्ष न स्वार्थसिद्धिकी भावना होगी और न तुच्छ दलबन्दीपर आधारित कलुषित राजनीति हो। वाद-विवादसे मुक्त ऐसे कार्यकर्ता अणुव्रत आदर्शोंके पोषक होंगे और निःस्वार्थ भावनासे देश एवं समाजकी सेवा कर सकेंगे।

आपको यह जाननेकी उत्सुकता होगी कि इस योजनाकी अच्छी-अच्छी बातें तो बताई गईं, किन्तु मूल बात अभी तक नहीं बतलाई गई, जिससे सिर्फ ३ घंटे कार्य करके लड़के स्वावलम्बी बन सकते हैं, जब कि कालेजमें पढ़नेवाले विद्यार्थी पर १००) माहवार खर्च पड़ता है, जिसे अच्छे-अच्छे व्यक्ति आठ-दस घंटे कार्य करनेपर भी कठिनाईसे कमा पाते हैं।

अणुव्रत भावनाके आधारपर अपने जीवनको ढालनेवाले विद्यार्थीका खर्चा १००) से घटकर ७५) अपने-आप हो जायेगा। विद्यार्थियोंको छोटी मशीन बनानेका या मशीनोंके पुर्जे बनानेका काम सिखाया जायगा, जो लाभकारी होगा—जैसे टेबिल फैनका काम, जिसमें ढलाई, झलाई, रंगाई, निकिल, वेल्डिंग, डाई बनाना, टेम्पर देना, आरमेचरका सामान बनाना, आरमेचर बाँधना, बिजलीका काम, फिटिंग, फिक्सिंग, हिसाब रखना आदि तथा कई प्रकारकी मशीनोंके उपयोगका शिक्षण भी हो जायगा। इनमें प्रायः अधिकतम काम हाथसे होनेवाले हैं तथा थोड़े दिनकी ट्रेनिंगके बाद हो सकते हैं। यह सब काम लड़के आठ-दस दक्ष मिस्त्रियोंके साथ रहकर सीखेंगे और करते भी जायँगे। कठिन काम मिस्त्री सम्भाल लेंगे। यह काम इस तरह होता भी रहेगा और लड़के दक्ष (एक्सपर्ट) बनते जायँगे। जब वे ४-५ वर्ष बाद वहाँसे निकलेंगे, तो पूरा वर्कशाप सम्हालनेके काबिल होकर निकलेंगे और मासिक ४००)-५००) कमानेके योग्य हो जायँगे।

इस पंखे तथा डेयरीफार्म-ले कामोंमें जैसी कल्पना की गई है, मजदूरी और लाभ मिलाकर विद्यार्थीको प्रति घंटे ३) रु० मिले तथा स्वावलम्बी बने, तो उससे कहीं ज्यादा ही लाभ होगा। यदि यह कल्पना सही उतरती है, जो कि अवश्य उतरनी चाहिए, तो आपको मानना होगा कि यह योजना देशव्यापी जटिल समस्याओंको एक समाधान देने वाली है, देशमें फैली हुई श्रम-विमुखताको मिटानेवाली है, देशके उत्पादनको बढ़ानेवाली है तथा व्यापक रूप धारण करनेवाली भी है।

इस स्वावलम्बी योजनाका दो-एक जगह प्रयोग सफल करनेकी आवश्यकता है। फिर तो यह योजना अपने-आप प्रवाहकी तरह सारे देशको आप्लावित कर देगी। अतः देश के विचारकोंसे अनुरोध है कि वे इस बातपर चिन्तन करें। उन्हें यदि उचित लगे तो इसपर बल दें और इसके अनुकूल वातावरण बनावें तथा विद्यार्थी भी सोचें, क्योंकि यह योजना उनके लिए है। वे इसके अनुकूल वातावरण बनानेमें साथ दें। विशेषतः सरकार तथा धनी-मानी व्यक्ति इसपर सोचें, क्योंकि प्रारम्भमें इस योजनाको चलानेमें वे आर्थिक सहयोग करेंगे, तभी इसे प्रारम्भ किया जा सकेगा। इस योजनामें उनके लिए बड़ी-से-बड़ी लाभकी बातें छिपी हुई हैं। विद्यार्थियोंको सम्भालनेवाले ज्ञानी-गुणी व्यक्ति इस देश-व्यापी योजनामें अपनी सेवाएँ अर्पित करनेको अपने-आपको तैयार रखें, ताकि माँग पूरी होनेमें विलम्ब न हो।

—कुन्दनमल सेठिया, संयोजक

[गत मास जब हम कानपुरमें आचार्य प्रवर श्री तुलसी जीके प्रवचन सुनने उनके निवास-स्थानपर गए, तब श्री

कुन्दनमल सेठियासे हमारी क्षणिक भेंट हुई। हम सेठियाजी की योजनासे पूर्णतया सहमत हैं। विद्यार्थी न केवल भावी भारतके कर्त्ता-धर्त्ता हैं, वरन वे समाजकी रीढ़ और नींव हैं। खबीसोंसे कोई अधिक आशा क्यों करे, पर जब हम विद्यार्थियोंको बगैर टिकट चलते देखते हैं, परीक्षाओंमें नकल करते सुनते हैं तथा अन्य भ्रष्टाचार पाते हैं, तब हमें मार्मिक वेदना होती है। जब देशकी रीढ़की ही यह हालत है, तब देश चलेगा कैसे? जब अनैतिकता इतना घर कर जाय और पैसा ही माई-बाप हो जाय, तब देशके उत्थानका खयाल ही पैदा नहीं होता। बालूकी भीतपर मकान खड़े नहीं किये जा सकते. अतः विद्यार्थियोंके चरित्र-निर्माण और स्वावलम्बनके लिए कोई कार्य करें। यह हम जानते हैं कि वर्त्तमान युगमें सेठियाजीका प्रोग्राम हास्यास्पद प्रतीत होगा, पर हमारा अटल विश्वास है कि हमारा विद्यार्थी-समुदाय सँभाला जा सकना है। विद्यार्थियोंकी जो स्थिति है, उसकी बहुत-कुछ जिम्मेदारी उनके अभिभावकों और अध्यापकोंपर है। स्पेनके इग्नेशियस लाइलाने लूथरके रिफर्मेशन आन्दोलनको अपनी जीजिर संस्था द्वारा बहुत-कुछ रोक दिया था। इग्नेशियस लाइला ने अपनी संस्थामें बच्चोंको ही दीक्षित किया था; पर सेठियाजी का कार्यक्रम एक दूसरे प्रकारका है और इसके हम इसलिये कायल हैं कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीमें विद्यार्थी आत्म-विश्वास खो बैठते हैं, स्वावलम्बनकी भावना कुंठित हो जाती है, पढ़ाईमें इतना खर्चा मासिक होता है कि उतना मासिक वेतन भी उन्हें नहीं मिलता। पढ़ाईके दिनोंमें यानी चढ़ती उमरमें शारीरिक श्रम वे करते नहीं, इसलिए गार्हस्थ जीवनमें प्रवेश करनेपर उनसे कोई काम नहीं होता। फ़ैशन और बाबूगीरीकी उन्हें लत पड़ जाती है। बिना पतलून घरसे बाहर निकला नहीं जाता। बाह्य टीमटामके पीछे खोखलापन होता है, इसलिये सेठियाजीके प्रोग्रामके अनुसार उनमें आत्म-विश्वासके साथ-साथ स्वावलम्बनकी भावना जाग्रत होगी। फजूल खर्चासे वे बचेंगे और भावी जीवनके चलानेमें उनका नैतिक स्तर उनका सहायक होगा। आचार्य तुलसीने अपने प्रवचनमें कहा था कि यदि रावणका सलाहकार कोई बनिया होता तो उसका इस प्रकार नाश न होता। श्री कुंदनमल सेठिया बनिये हैं और प्रेरणा मिली है श्री आचार्य तुलसीसे। अतः हमें आशा है, वे अपनी योजनामें सफल होंगे। इस विषयकी जो कोई भी नई बात होगी, हम सहर्ष 'विशाल भारत' में देंगे। —'विशाल भारत'-सम्पादक]

[३]

कलकत्ता,
१०-९-५८

मैंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा है कि हिन्दी पत्रोंकी संख्या घट रही है, जब कि देशकी अन्य भाषाओंकी ग्राहक-संख्या बढ़ रही है। आखिर इसका कारण क्या हो सकता है?

—एक विद्याव्यसनी

[हाँ, यह बात ठीक है कि हिन्दीके अधिकांश पत्रोंकी ग्राहक-संख्या घटी है और अन्य भाषाओंकी ग्राहक-संख्या बढ़ी है। यह बात हमने सरकारी रिपोर्टमें पढ़ी है। इस कम प्रचलनका मुख्य कारण यह ही है कि हिन्दी-भाषा-भाषियों में पढ़नेकी अभिरुचि खरीदकर कम है। हम व्यंगमें कहा करते हैं कि हिन्दीमें पाठकोंकी अपेक्षा लेखक अधिक हैं। एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दीमें बिना सोचे-समझे ही लोग समाचारपत्र निकाल बैठते हैं। सम्पादक और संचालक अपनी अनभिज्ञतामें प्रचार और प्रसारके सब्ज बाग बनाते हैं और अपनी उड़ानमें सोचने लगते हैं कि उनके ग्राहक दस-बीस हज़ार तो बड़ी आसानीसे बन जायेंगे। पर व्यावहारिक रूपमें उनके कल्पित अनुमान गलत साबित होते हैं, अतः थोड़े ही दिनोंमें पत्र डगमगाने लगता है और भारी नुकसानके कारण उसे बन्द करना पड़ता है। समाचारपत्र चलानेके लिए बढ़िया सम्पादन, उचित संचालन तथा यथेष्ट धनकी आवश्यकता है। यदि उपर्युक्त तीनों ही बातोंका समन्वय नहीं होता, तो पत्रको बधिया बैठ जाती है। ढर्रेपर पड़े समाचार-पत्रोंको भी स्थिति उपर्युक्त समन्वयके बिना बिगड़ती रहती है। यदि उचित संचालन और संपादन न हो, तो कोरे रुपयेसे भी काम नहीं चलता।

—'विशाल भारत'-सम्पादक]

चयन

हमारा निकटतम पड़ोसी देश : भूटान

श्री उदयनारायण सिंह

भूटान भारतका निकटतम एवं अभिन्न पड़ोसी देश है। उसके साथ भारतके जो सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक सम्बन्ध शताब्दियोंसे चले आ रहे हैं, उन्हें किसी भी दशामें छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। पूर्वसे लेकर पश्चिम तक १९० मील तथा उत्तरसे लेकर दक्षिण तक ९० मील चौड़े १८ हजार वर्गमील क्षेत्रफलवाले इस छोटे देशकी आबादी लगभग ६ लाख है। इसके उत्तरमें तिब्बत तथा दक्षिणमें भारत स्थित है। तिब्बतपर साम्यवादी चीनका अधिकार हो जानेसे इस छोटे देशकी महत्ता सामरिक दृष्टिसे और भी बढ़ गई है। इस देशकी ग्रीष्मकालीन राजधानी ताशी-चो-डांग तथा शरदकालीन राजधानी पुनाखा है।

बौद्ध धर्मका विकास

भारत और तिब्बतके सन्धि-स्थलपर स्थित होनेके कारण यह स्थान अवश्य ही प्राचीन समयमें बौद्ध धर्मका प्रमुख केन्द्र रहा होगा। तिब्बत, चीन, कोरिया तथा जापान जानेवाले बौद्ध धर्मके प्रचारक प्राचीन समयमें इसी देशसे होकर गुजरते रहे होंगे तथा उन देशोंके बौद्ध यात्री भी इस स्थल-मार्गसे हमारे देशमें बौद्ध धर्मका अध्ययन करनेके उद्देश्य से दाखिल होते रहे होंगे। भूटानको आज भी बौद्ध लोग छोटा तिब्बत कहकर संबोधित करते हैं। बताया जाता है कि प्राचीन कालमें सिक्किमने सैकड़ों लेपचाओंको, जो सिक्किम की ही एक जाति है, भूटान ले जाकर लामाओं द्वारा बौद्ध धर्मकी शिक्षा दिलाई। इन लामाओंने सिक्किम जाकर अपने यहाँ अनेक बौद्ध मन्दिरोंका निर्माण किया। ये केवल कारीगर ही नहीं, वरन् चित्रकार भी थे। सिक्किममें बने मन्दिरोंके भित्ति-चित्र इनकी कुशल कारीगरीके अप्रतिम उदाहरण हैं। इससे स्पष्ट है कि भूटानसे ही सर्वप्रथम बौद्ध धर्मका प्रसार सिक्किममें हुआ। यहाँसे तिब्बत, चीन, कोरिया तथा जापान में भी अमिताभका आलोक फैला। वर्तमान कालमें भी यहाँ की जनता बौद्ध धर्म एवं दर्शनमें विश्वास करती है। ताशो-चो-डांग यहाँका मुख्य बौद्ध विहार है, जिसमें आज भी १ हजारके लगभग बौद्ध मतावलम्बी रहते हैं।

ब्रिटिश कालमें

प्राचीन कालमें यह देश आर्थिक दृष्टिसे भारतपर अवश्य अवलम्बित रहा होगा, क्योंकि यहाँ इतनी पैदावार नहीं होती थी, जो यहाँकी जनताके लिए पर्याप्त हो। ब्रिटिश कालमें यद्यपि यह देश आन्तरिक मामलोंमें स्वतन्त्र था, लेकिन विदेशी मामलोंमें वह तत्कालीन ब्रिटिश सरकारकी अनुमतिसे ही कार्य करता था। यहाँकी जनता निर्भीक, लड़ाकू तथा उत्साही है। उनके लिए मामूली कारणोंको लेकर युद्ध कर बैठना साधारण-सी बात है। यहाँकी आबादी में बंगाली, मेच, कोच जातियोंके अलावा कुछ तिब्बती भी हैं, जो बादमें इस देशमें आये। उन्होंने १७वीं शताब्दीमें टेफू शासकोंको अपदस्थ कर दिया। सन् १७४१ तथा १७८३ में भारतके तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंगने भूटान तथा सिंगात्से (तिब्बत) के लामासे सम्पर्क स्थापित किया, जिसमें एक बंगाली साधुने मध्यस्थका काम किया था। सन् १७७४ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनीने भूटानसे एक समझौता किया, जिसके अन्तर्गत भूटानके शासकोंसे भूटानियों द्वारा भारतीय क्षेत्रपर किये जानेवाले आक्रमणोंको बन्द करनेके लिए कहा गया। सन् १८५२ में तिब्बतियोंके साथ भूटानियोंने एक समझौतेपर हस्ताक्षर किया तथा डारंग जिले के कुछ मैदानी भाग, जो अहोम राजाओंसे जबरदस्ती छीन लिये गये थे, आसामको लौटा दिये गये। भूटानियों द्वारा फालाकोटा (जलपाईगुड़ी) के कतिपय मेच-क्षेत्रोंके लूटे जानेके बाद सन् १८६० में फालाकोटा बंगालमें शामिल कर लिया गया। सन् १८६३ में ब्रिटिश सचिव श्री ए० एडेनने भूटानकी यात्रा की, लेकिन इस यात्रामें उन्हें जबरदस्ती लादे गये एक समझौतेपर हस्ताक्षर करना पड़ा। इसके पश्चात् सैनिक कार्रवाई शुरू हुई और दिसम्बर १८६४ में दालिम किले (कलिम्पोंग) देवगिरिपर, जनवरी १८६५ में चामूर्चीपर, फरवरी १८६६ में बक्सा बिसेन सिंह तथा अन्त में सालिखापर ब्रिटिश सेनाका कब्जा हो गया और भूटानियोंको आत्म-समर्पण करना पड़ा। नवम्बर सन् १८६५ में ब्रिटिश सरकारने प्रतिवर्ष भूटानकी सरकारको ५० हजार रुपये सहायतार्थ देना स्वीकार किया। सन् १९०४ में भूटान के राजनीतिक अधिकारी सर सी० ह्वाइट तथा श्री वेसके

प्रयत्नसे भूटानने ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार किया। सन् १९१० में की गई एक संशोधित सन्धिके अनुसार भूटानके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेका निर्णय किया गया। यद्यपि भूटानकी सरकारने तत्कालीन ब्रिटिश सरकारसे विदेशी मामलोंमें सलाह ले लेनेका फैसला किया। इस समझौतेके फलस्वरूप भूटानको दी जानेवाली सहायताकी रकम १ लाख रुपये कर दी गई। सन् १९११ में भूटानके राजाने दिल्ली-दरबारमें एक सम्मानित अतिथिकी हैसियतसे भाग लिया था। सन् १९१३-१४ में हुए एक सम्मेलनमें वर्तमान भूटान-तिब्बती सीमाको भारत-तिब्बती सीमाके एक भागके रूपमें स्वीकार किया गया। १ अप्रैल सन् १९४० में हुए एक समझौतेके मुताबिक भूटानको दी जानेवाली रकम बढ़ाकर दो लाख रुपये कर दी गई। इस तरह ब्रिटिश काल में भारत-भूटानके बीच कतिपय छिटपुट संघर्षोंके बावजूद अधिकांशतः दोनों देशोंके बीच मैत्री-सम्बन्ध जारी रहा। इतना स्पष्ट है कि यहाँकी जनताने शक्ति तथा दबावके आगे अपने घुटने नहीं टेके।

भारतकी स्वाधीनताके बाद

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारतके स्वाधीन होनेके बाद दोनों देशोंके मैत्री-सम्बन्धोंके एक नये अध्यायका श्रीगणेश होता है। ८ अगस्त सन् १९४९ में भारतकी स्वाधीन सरकारने भूटान सरकारसे एक नई संधि की, जिसमें भूटान सरकारके आन्तरिक मामलोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करने तथा विदेशी मामलोंमें भारतकी सलाहसे काम करनेकी व्यवस्था की गई। इसी समय भूटानको दी जानेवाली सहायताकी रकम बढ़ाकर ५ लाख रुपये प्रतिवर्ष कर दी गई। भारतने भूटानके साथ अपने दृढ़ मैत्री-सम्बन्धोंको बनाये रखनेके लिये २३ मीलका देवांगिरि नामक वह क्षेत्र भूटानकी सरकारको हस्तान्तरित कर दिया, जिसे उसने सन् १८६५ में अपने देशमें शामिल कर लिया था। किसी भी देशके उस क्षेत्रको, जिसे दूसरे देशने अपनी सीमामें मिला लिया हो, बिना माँग किये लौटा देना एक बहुत बड़ा काम है। इस घटनासे दोनों देशोंकी जनतामें एक-दूसरेके प्रति और भी विश्वासकी भावना पैदा हुई। इस संधिमें भूटानको आवश्यकतानुसार शस्त्रास्त्र भी देनेको भारतने वचन दिया। इसमें संदेह नहीं कि इस संधिके द्वारा भारत तथा भूटानके बीचके नये सम्बन्धोंका मार्ग प्रशस्त होता है। २० सितम्बर सन् १९५३ को भूटानके महाराजा तथा महारानीके भारत आगमनसे दोनों देशोंके मैत्री सम्बन्ध और मजबूत हुए। उस यात्राके समय भारतके राष्ट्रपतिने उन्हें 'पद्मविभूषण' प्रथम वर्गकी उपाधिसे सम्मानित किया। वर्तमान समयमें सिक्किम-स्थित भारतके कूटनीतिक एजेण्ट भूटानमें भारतका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। महामहिम कलिम्पोंगमें अपना एक एजेण्ट रखते हैं, जो भूटान तथा वहाँकी जनताके हितोंकी रक्षा करता है।

प्रशासनिक व्यवस्था

भूटानमें प्रत्येक करदाताको मताधिकार प्राप्त है अर्थात् प्रत्येक परिवारके पीछे १ सदस्य मतदाता है। ये लोग २२ प्रतिनिधियोंको चुनकर विधान सभामें भेजते हैं। १६ सदस्य महाराजा द्वारा नामजद होते हैं। महाराजा ८ व्यक्तियोंका एक मंत्रिमंडल नामजद करता है, जिनके जिम्मे अलग-अलग विभाग होते हैं और किसी महत्वपूर्ण प्रश्नपर वे एक साथ भी बैठकर निर्णय करते हैं। इनके नीचे आयुक्त होते हैं, जो विभिन्न घाटियोंके प्रशासनकी व्यवस्था करते हैं। इन्हें अदालती अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। देशमें अपराध कम होते हैं, लेकिन हत्याके लिए मृत्यु-दंड बहुत ही कम दिया जाता है। आयुक्त हत्याओंके मामलोंमें महाराजाके पास अपना मत लिखकर भेजते हैं और इसका अन्तिम निर्णय महाराजा ही करते हैं।

भूटानकी मुख्य उपज चावल, कोदो, लाख, मोम, चपड़ा, हाथी, खच्चर, याक तथा लोमड़ी है, जिनमें से मुख्यतः लकड़ी, लाख तथा हाथी बाहर भेजे जाते हैं। इसकी आर्थिक स्थिति अभी काफी अनुन्नत है और अधिकांश भाग निर्जन तथा उजाड़ होनेके साथ जंगलोंसे घिरा हुआ है। इसकी प्रशासनिक व्यवस्था भी आधुनिक तरीकेसे उन्नत नहीं है। शिक्षा और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी यह कम विकसित है। ६ लाखकी जनसंख्यावाले भागमें मुश्किलसे ४२ मिडिल स्कूल हैं। इससे अधिक उच्च शिक्षाके लिए देशमें कोई व्यवस्था नहीं है। औषधालय भी कम विकसित है तथा आधुनिक प्रकारकी चिकित्साका अभाव-सा है। ऐसी स्थितिमें अपने विकासके लिए भूटानको बाह्य सहायताकी अत्यधिक आवश्यकता है। भारत भूटानको वर्तमान समयमें ५ लाख रुपये वार्षिक सहायता देनेके अतिरिक्त भी उसकी विभिन्न विकास-योजनाओंके लिए और भी आर्थिक सहायता प्रदान कर रहा है। आर्थिक तथा सामरिक दृष्टिसे उन्नत पड़ोसी राष्ट्र एक कमजोर पड़ोसी देशसे कहीं अच्छा होता है।

भूटानकी सामरिक स्थितिको देखते हुए भूटानका हर प्रकारसे समृद्ध होना भारतकी स्वाधीनता तथा अखंडताके लिए वरदान है। भारतकी जनता भूटानवासियोंकी प्रगति एवं उन्नतिमें पूरा योग दे रही है तथा उनकी पूरी सहानुभूति भी इस छोटे निकटस्थ पड़ोसी देशके साथ है। निस्सन्देह प्रधान मन्त्री श्री नेहरूकी वर्तमान प्रथम भूटान-यात्रासे दोनों देशोंके मैत्री-सम्बन्धोंको कड़ी और भी दृढ़ होगी।

('साप्ताहिक भारत')

तैवान जलग्रीवा क्षेत्रकी परिस्थितिपर चीन लोक गणराज्यकी राज्य परिषद्के प्रधान मंत्री चाउ एन-लाइ का वक्तव्य

अमरीकी राज्य सचिव डलेसने, अमरीकी राष्ट्रपति आइजनहावरसे प्राधिकार प्राप्तकर, ४ सितम्बर १९५८ को एक वक्तव्य जारी किया है, जिसमें तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें अमरीकी आक्रमणको चीन लोक गणराज्यके विरुद्ध फैलाने की खुल्लम-खुल्ला धमकी दी गयी है और युद्धके लिए उत्तेजनाएँ पैदा की गयी हैं, जिससे अमरीका द्वारा पैदा किया गया इस क्षेत्रका तनाव और बढ़ गया है और सुदूर पूर्व व संसारकी शांतिके लिए गम्भीर खतरा पैदा हो गया है। इस सम्बन्धमें, चीन लोक गणराज्यकी सरकारसे प्राधिकार प्राप्त कर, मैं निम्नलिखित वक्तव्य दे रहा हूं :—

१. तैवान और पेंहु द्वीपपुंज प्राचीन कालसे चीनके इलाके रहे हैं। जापानका उनपर कुछ समय तक कब्जा रहने के बाद, वे दूसरे विश्व-युद्धके बाद चीनको फिरसे लौटा दिये गये। इन इलाकोंको मुक्त करानेके अपने प्रभुत्वाधिकार को प्रयोगमें लाना, चीनी जनताका पूर्णतया एक घरेलू मामला है। यह चीनी जनताका पवित्र और अनुल्लंघनीय अधिकार है। अमरीकी सरकारने खुद भी औपचारिक रूप से यह घोषणा की थी कि वह तैवान क्षेत्रमें चीनके घरेलू झगड़े में नहीं फँसेगी। यदि अमरीकी सरकार बादमें अपने खुदके वक्तव्यसे पलट नहीं जाती और सशस्त्र हस्तक्षेप नहीं करती, तो तैवान और पेंहु द्वीपपुंज कभीके मुक्त हो गये होते और चीन लोक गणराज्यकी सरकारके प्रशासनमें आ गये होते। ये ऐसे निर्विवाद तथ्य हैं, जिन्हें संसारका न्यायप्रिय जनमत सर्वसम्मतिसे स्वीकार करता है।

२. च्यांग काइ-शेक गुट, जो चीनकी समस्त जनता द्वारा बहुत दिन हुए ठुकराया जा चुका है, तैवान और पेंहु द्वीपोंमें जमा हुआ है और अमरीकाका उसकी सहायता करना तथा तैवान और पेंहु द्वीपोंपर सैन्य-बल द्वारा अपना सीधा अधिकार कर लेना ऐसे कार्य है, जो चीनके घरेलू मामलोंमें अवैध हस्तक्षेप और चीनकी प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ताका अतिक्रमण है। ये संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र और अंतर्राष्ट्रीय कानूनकी सभी व्यवस्थाओंके सर्वथा प्रतिकूल है। अमरीका और च्यांग काइ-शेक गुटके बीच जितनी भी तथाकथित संधियां सम्पन्न हुई हैं और अमरीकी कांग्रेसने तत्सम्बन्धी जितने भी प्रस्ताव पास किये हैं, वे सब चीनी जनता के लिए निरर्थक और बेकार हैं। वे अमरीकी आक्रमणको कदापि वैध रूप नहीं दे सकेंगे। तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें अपने आक्रमणको फैलानेके लिए अमरीकका उन्हें बहाना बनाना तो दूरकी बात है।

३. अमरीकाकी सहायतासे च्यांग काइ-शेक गुट चिंगमन (क्वेमोय) और मात्सु जैसे तटवर्ती द्वीपोंको, जो क्रमशः श्यामन (अमोय) और फूचोके निकट पड़ते हैं, बहुत समयसे, चीनकी मुख्य भूमिके खिलाफ सभी तरहकी क्लेशकर और तोड़फोड़वाली कार्यवाहियां करनेके लिए अग्रिम अड्डोंके रूपमें प्रयुक्त कर रहा है। हालमें, जबसे अमरीकाने अरब राज्योंके विरुद्ध सशस्त्र हस्तक्षेप आरम्भ किया है, चीनकी मुख्य भूमिके खिलाफ च्यांग काइ-शेक गुट की ये क्लेशकर व तोड़फोड़वाली कार्यवाहियां और बेलगाम हो गयी हैं। चीन सरकार तटवर्ती द्वीपोंमें जमी च्यांग काइ-शेककी फौजोंपर दृढ़तापूर्वक चोट करने और उनके खिलाफ आवश्यक सैनिक कार्यवाहियां करनेका पूरा अधिकार रखती है। इसमें किसी भी तरहका विदेशी हस्तक्षेप चीन की प्रभुसत्ताका एक दुष्ट अतिक्रमण होगा। परन्तु अमरीका इस परिस्थितिसे लाभ उठानेकी कोशिश कर रहा है—वह तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें भारी संख्यामें फौजें जमा कर रहा है और तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें अपने आक्रमणकी चिंगमन (क्वेमोय), मात्सु व दूसरे तटवर्ती द्वीपों तक फैलानेकी खुल्लमखुल्ला धमकी दे रहा है, जिससे कि दुनियाके लोगोंका ध्यान इस बातसे हट जाय कि मध्य-पूर्वमें अमरीकाका आक्रमण जारी है और वह लेबनानसे अपनी फौजें हटानेमें टाल-मटोल कर रहा है। यह ६० करोड़ चीनी जनताके विरुद्ध युद्धकी एक भयङ्कर उत्तेजना है और सुदूर पूर्व व संसारकी शांतिके लिए एक गम्भीर खतरा है।

४. तैवान और पेंहु द्वीपोंके अपने इलाकेको मुक्त कराने का चीनी जनताका जो संकल्प है, वह अडिग है । विशेषकर मुख्य भूमिके किनारे उसके भीतरी जल-क्षेत्रमें चिंगमन (क्वेमोय) और मात्सु जैसे तटवर्ती द्वीपोंके कारण जो तात्कालिक संकट पैदा हो गया है, उसे चीनी जनता कभी सहन नहीं कर सकती। अमरीकाकी युद्धकी कैसी भी उत्तेजनाएँ चीनी जनताको भयभीत नहीं कर सकतीं। इसके विपरीत, वे हमारे ६० करोड़ लोगोंके रोषको और बढ़ाएँगी और अमरीकी आक्रान्ताओंसे आखिर तक लड़नेके उनके संकल्पको और दृढ़ करेंगी। अमरीकाने लेबननसे अपनी आक्रामक फौजें अभी तक नहीं हटायी हैं और उधर वह तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें तेजीके साथ लड़ाईका एक नया खतरा पैदा कर रहा है। यह एक ऐसी वस्तुस्थिति है, जिससे संसारके शांतिप्रिय देश और लोग, शांतिके विनाशके लिए कटिबद्ध अमरीकी आक्रान्ताओंका पाशविक रूप और अच्छी तरह देख रहे हैं और यह समझ रहे हैं कि अमरीकी साम्राज्यवादी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीकाके तमाम राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलनों तथा विश्व-शांति-आन्दोलन के सबसे दुष्ट शत्रु हैं।

५. शांतिकी अपनी विदेश नीतिके अनुरूप, चीन सरकारका सदा यही रुख रहा है कि पंचशीलके अनुसार विभिन्न समाज-व्यवस्थाओंवाले देशोंमें शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व हो और तमाम अंतर्राष्ट्रीय झगड़े बातचीतके शांतिपूर्ण उपायों से सुलझाये जायँ। यद्यपि अमरीकाने सैन्य-बल द्वारा चीनके तैवान और पेंहु द्वीपोंके इलाकेपर हमला और कब्जा किया था और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंकी न्यूनतम व्यवस्थाओं को क्रूरतापूर्वक तोड़ा था, फिर भी चीन सरकारने तैवान क्षेत्र के तनावको कम और खत्म करनेके लिए अमरीकी सरकारके साथ बैठकर बातचीत करनेका सुझाव रखा। अगस्त १९५५ से आरम्भ होनेवाली चीनी-अमरीकी राजदूत-वार्ता में चीनी पक्षने बार-बार यह सुझाव रखा कि दोनों पक्षों को, एक-दूसरेकी प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखण्डताका सम्मान करने तथा एक-दूसरेके घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेके सिद्धान्तोंके अनुसार, इस आशयका एक वक्तव्य जारी करना चाहिए कि तैवान क्षेत्रमें चीन और अमरीकाके बीच जो झगड़ा है, वे उसे, एक-दूसरेके विरुद्ध धमकी या शक्तिका प्रयोग किये बिना, शांतिपूर्ण बातचीतसे हल करेंगे। परन्तु डलेसका उनके ४ सितम्बरके वक्तव्यमें जो कथन है, उसके विपरीत अमरीका ही इस तरहका वक्तव्य जारी करनेके लिए तैयार नहीं हुआ। यही नहीं, बल्कि उसने बादमें मनमाने ढङ्गसे बातचीत भी स्थगित कर दी। इस वर्ष जुलाईमें जब चीन सरकारने यह मांग रखी कि बातचीत एक निश्चित अवधिके अन्दर फिर शुरू की जाए तो अमरीकी सरकारने उसका समय पर जवाब नहीं दिया। परन्तु, अंतमें उसने राजदूत-स्तरका एक प्रतिनिधि निर्दिष्ट कर दिया। अब, अमरीकी सरकार तैवान क्षेत्रके चीनी-अमरीकी झगड़ेको शांतिपूर्ण बातचीतसे सुलझानेकी अपनी इच्छा फिर जाहिर कर रही है। चीन सरकार, शांतिकी रक्षार्थ एक और प्रयास करनेके लिए, दोनों देशोंकी राजदूत-वार्ता फिर शुरू करनेको तैयार है। परन्तु अमरीकाने चीनके तैवानके इलाकेमें लड़ाईका जो खतरा पैदा कर रखा है, वह इससे कम नहीं हुआ है। अमरीकी सरकार अक्सर कहती कुछ है और करती कुछ है, और शांतिपूर्ण बातचीतको, प्रायः, आक्रमण को बराबर फैलानेके अपने वास्तविक कार्यपर पर्दा डालनेके लिए आड़की तरह इस्तेमाल करती है। अतः, इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए, चीनकी समूची जनता और संसार भरके शांतिप्रिय लोगोंको चीनके घरेलू मामलोंमें अमरीकाके हस्तक्षेपके खिलाफ तथा सुदूरपूर्व और संसारकी शांतिके लिए अमरीकी खतरेके खिलाफ अपना संघर्ष जरा भी कम नहीं करना चाहिए।

६. तैवान जलग्रीवा क्षेत्रमें चीन और अमरीकाका झगड़ा तथा अपने निजी इलाकेको मुक्त करानेका चीनी जनताका घरेलू मामला, एक-दूसरेसे प्रकृतिमें बिल्कुल भिन्न दो चीजें हैं। अमरीका अब तक इन दो मामलोंको गड़बड़ाने की कोशिश करता रहा है, जिससे कि चीनमें उसके आक्रमण और हस्तक्षेपपर पर्दा पड़ सके। ऐसा कभी नहीं होने दिया जाएगा। चीनी जनता अपने निजी इलाकेको सभी उपयुक्त तरीकोंसे उपयुक्त समयपर मुक्त करानेका पूरा अधिकार रखती है और किसी भी तरहका विदेशी हस्तक्षेप सहन नहीं करेगी। यदि अमरीकी सरकारने चीनी जनताकी इन बार-बारकी चेतावनियों और संसारके लोगोंकी शांतिकी इच्छाकी धृष्टतापूर्वक उपेक्षाकर चीनके खिलाफ अपना आक्रमण और हस्तक्षेप जारी रखा और चीनी जनतापर लड़ाई थोपी, तो उसके जो भी गम्भीर परिणाम होंगे, उन सबके लिए वही उत्तरदायी होगी। (प्राप्त)

डा० भगवानदास

अशोकजी

आजसे करीब ३५ वर्ष पहलेकी बात है। मैं दसवें दर्जेमें पढ़ता था। एक दिन पूज्य डा० भगवानदासजीके दर्शन करने गया। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्यों बच्चा, कुछ कसरत करते हो या नहीं?" मैंने उत्तर दिया, "जी नहीं। आजकल कसरत करनेका समय कहां मिलता है, मैट्रिकका इम्तहान सिरपर है।" कुछ मुसकराकर डाक्टर साहबने उत्तर दिया, "मैं तो जब एम० ए० का इम्तहान दे रहा था, तब आठ सौ दण्ड लगाता था।"

शरीर और दिमाग दोनोंमें पहलवानीके संस्कार डाक्टर साहबको अपने प्रारम्भिक विद्यागुरु पं० हरि भट्टजी माणेकर से मिले थे। पं० हरि भट्टजी काशीकी पुरानी पंडित-परम्परा के प्रतिनिधि थे। अमरकोष और सिद्धांत कौमुदीके पाठके साथ-साथ वे अपने विद्यार्थियोंको दण्ड-बैठक भी लगवाते थे। डाक्टर साहब बताते थे कि प्रत्येक मंगलवारको पं० हरि भट्ट जी अपनी शिष्यमंडलीके साथ पैदल दुलकी चालसे शहरसे दो मील दूर दुर्गाजीके प्रसिद्ध मन्दिर जाते थे और वहां नहा निपट और दर्शन करके उसी तरह वापस आते थे। रास्तेमें विद्यार्थियोंसे शास्त्रचर्चा भी होती थी। डा० भगवानदासजीके प्रगाढ़ संस्कृत-ज्ञानका श्रेय पं० हरि भट्टजीकी शिक्षाको ही है

व्यावहारिक और कर्मठ

दार्शनिकोंके सम्बन्धमें साधारण धारणा यह है कि ये बड़े अव्यावहारिक और खपतुलहवास, होते हैं। डा० भगवान-दासजी ऐसे न थे। वे बड़े व्यावहारिक, कर्मठ, कपड़े-लत्ते, खानपान सब काममें दुरुस्त, संयमी और नियमित थे। उन्हें मकान बनवानेका बड़ा शौक था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की इमारतोंके ऊपर मन्दिरोंके जो शिखर सजे हुए हैं इस शैलीको डा० भगवानदासने ही चलाया था। काशीके पास चुनारगढ़में उन्होंने गंगा तटपर अपने रहनेके लिए "विश्राम" नामक मकान बनवाया था। उसमें स्नानघरमें बाहरसे पानी डालनेके लिए उन्होंने चुनारी मिट्टीको (जो चीनी मिट्टीकी तरह होती है) नली लगाई थी, जिसका मुख गोमुखके आकारका था। मकानके ऊपर भी उन्होंने चुनारी मिट्टीके बने और छोटे-छोटे शिखर लगाए थे। सिगरापर उनका मकान इन शिखरोंके कारण दूर ही से पहचाना जाता है। वेश-भूषा भी उनकी निराली और विशिष्ट थी। लम्बी धोती पर वे करीब-करीब पैरकी एड़ी तकका लम्बा ढीला-ढाला कुरता पहनते थे, जिसके बटन दोनों ओर कंधोंपर लगते थे। यह काशीके पुराने पंडिताऊ कुरतेका नया संस्करण था। इसी प्रकार उन्होंने पुरानी चौबन्दीका भी परिष्कार करके उसे लम्बे कोटका रूप दिया था।

अन्धविश्वासोंके विरोधी

डा० भगवानदासजीकी विद्वत्ता और अध्ययनका चरम उद्देश्य हिन्दू समाजकी कुरीतियों और रूढ़ियोंका सुधार था। वाणी और व्यवहारसे सौम्य होते हुए भी अंधविश्वासके विरुद्ध उनकी कलम भावुककी तरह चलती थी। एक बार काशीमें जब बन्दरोंने बड़ा उत्पात मचाया, तो नगरपालिकाने उन्हें पकड़नेका प्रबन्ध किया। रूढ़िवादियोंने इसका विरोध किया। डा० साहबने इसपर 'आज' में एक लेख लिखा, उसमें उन्होंने यह चुटकुला लिखा कि एक बार मथुरामें जमुनाजीमें एक मगरको एक अंग्रेजने गोलीसे मार दिया। इसकी निन्दा करते हुए एक ब्रजवासीने दूसरेसे कहा—वा कसाई सुपरडेंटने वा बेचारे नाकूको मारई डारौ। दूसरेने उत्तर दिया—वा नाकूने भी कितेक वधवानको और एक मनुक्खऊको भक्ष डारो हतो। पहलेने कहा—तो वामे नाकू को कहा दोस, वा सारे मनुक्खकी तो मीचई आई हती। उसपर दूसरेने जवाब दिया—तो तिहारे बहनोई नाकूकी भी मीच आई हती।

देश व समाज हितके चिन्तक

डा० भगवानदासने यावज्जीवन शास्त्र-चिन्तनके साथ-साथ देश और समाज-हितका भी चिन्तन किया। जिस प्रकार वे गहन विषयोंपर लिखते थे, उसी प्रकार वे समाचार-पत्रोंके कालमोंमें नित्यप्रतिके विषयोंपर भी लिखते थे। वे जनमतको शिक्षित करने, साधारण जनको देश और समाज की समस्याओंपर सोचने-विचारनेको प्रेरित करनेमें बराबर लगे रहते थे। पढ़नेका उनको शौक इतना अधिक था कि वे हर विषय—डाक्टरीकी किताबोंसे लेकर जासूसी उपन्यासों तकको पढ़ डालते थे। अपनी पुस्तकोंकी आलमारियोंके शीशोंपर उन्होंने पिछले ५० वर्षके अखबारोंसे महत्वपूर्ण कतरनें चिपका रखी थीं। जिसपर एक नजर डालते ही पुरानी घटनाएं आंखोंके सामने साकार हो जाती थीं। वे ऊंची पीठको कुर्सीपर सीधे बैठकर आठ-आठ घंटे एक सांस पढ़ा और लिखा करते थे। अपनी पुस्तकोंका प्रूफ वे खुद

[शेषांश पृष्ठ ३०४ पर देखिये]

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

सोनेमाका इश्क (सजिल्द, जैकिट सहित) : लेखक—एस० ए० बुखारी (पतरस); प्रकाशक—अदबी पब्लिशर्स; ८, शेफर्ड रोड, बम्बई-८। मूल्य ढाई रुपया।

पतरस साहबकी १३ हास्यरसात्मक कृतियोंका यह संग्रह देवनागरी लिपिमें छापा गया है। क्या ही अच्छा होता, यदि 'ममनून', 'सीगा', 'अफराद', 'तलम्मुज़' जैसे कठिन शब्दोंका अर्थ फुटनोटमें दे दिया गया होता। मज़ा सौ गुना हो जाता।

इस संग्रहकी 'कुत्ते' आदि कुछ कृतियाँ हिन्दीमें पहले ('विशाल भारत' में ही) भी अनूदित हो चुकी हैं। यह संग्रह उन्हें अविकल रूपमें,उर्दूमें ही हमारे सामने लाता है—प्रयत्न स्तुत्य है।

'मरहूमकी यादमें', 'सवेरे जो कल आँख मेरी खुली' तथा 'मुरीदपुरका पीर' इस संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। उर्दूमें हास्य तथा व्यंग जिस कोटिका पाया जाता है, वैसा हिन्दीमें आज भी नहीं है (परशुराम (बंगला) जैसा तो खैर उर्दूमें भी नहीं है)। इस कारण सुन्दर शुद्ध हास्य उपस्थित करनेवाला यह संग्रह हिन्दीवालोंको बहुत-कुछ सिखा सकती है।

इस पुस्तककी एक बढ़िया कहानी 'मरहूमकी यादमें' नवम्बर '५८ के अंकमें दी जा रही है और 'मुरीदपुरका पीर' दिसम्बरके अंकमें। पाठक इन कहानियोंसे पुस्तकके महत्वको समझ सकेंगे।

छपाई आदि बहुत अच्छी है, प्रकाशकको बधाई है।

नेकी और बदी तथा अन्य कहानियाँ (सचित्र, सुन्दर ज़िल्दके साथ) : मूल लेखक—साल्तीकोव शेद्रीन; अनुवादक—नरोत्तम नागर; प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, एम०एम० रोड, नई दिल्ली-१

जो लोग निन्दाके भारी आघात या प्रशंसाके बढ़ावेसे भी उत्साहित नहीं होते, ऐसे लोगोंको कर्त्तव्यके प्रति अणु-प्राणित करनेका एकमात्र साधन है कुरेदेनवाला व्यंग, इसीलिए साहित्यमें 'व्यंगका अपना स्थान है'। व्यंग सर्वदा सोद्देश्य ही हुआ करता है। पाठक—या समान्य जनता—के मनको कुरेदकर, बिना आहत किए उसमें से अकर्मण्यताको दूर करना व्यंगका कार्य है।

प्रस्तुत पुस्तकमें रूसी लेखक शेद्रीनके परमोच्च कोटिके व्यंग-चित्र हैं, जो रूढ़ि तथा तत्कालीन सामाजिक विषमताओंकी जड़ोंको ढीला करनेमें अवश्य समर्थ हुए होंगे। 'मूर्खाधिराज' नामक कहानी (!) में मदान्ध जमींदारके कुत्सित अन्तरका उसके बाह्यपर प्रभाव दिखाकर बड़ी ही प्रभावपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न की गई है—हस्य तो है ही। यही नहीं, उपयुक्त चित्रोंके द्वारा यह कहानी (तथा पूर्ण पुस्तक) और भी प्रभावशाली बन गई है। 'गधापचीसी' शायद 'सोलीटेयर' के लिए प्रयुक्त किया है, जँचा नहीं। 'ब्रूइन' 'भालू'को ही कहते है, इसलिए भालू हो चलाने देना था।

'रूढ़ि' परिपालनसे उत्पन्न कापुरुषी परवशताका सुन्दर चित्रण 'बलिदानी' खरगोशमें है। इसी प्रकार प्रत्येक कृति किसी-न-किसी विशेष ओर इंगित करती है। 'दो अफसर' तो बड़े ही कौशलसे सरकारी नौकरों (एकतंत्रीय प्रथाके) की मनोवृत्तियोंका चित्रण करता है।

सबसे बड़ी बात है कि इस ग्रन्थमें अनावश्यक राजनीतिक (साम्यवादी) प्रचारका लेश भी नहीं है।

अन्तमें अनुवादको लीजिए। हालमें अनेक अनूदित ग्रन्थ हमने पढ़े हैं, किन्तु अब तक पढ़े ग्रन्थोंमें से बहुत ही कममें रस आया है। नागरजीका यह अनुवाद बड़ा ही सरस है तथा उत्तम कोटिका है। अनुवादको पढ़कर यदि मूलको पढ़नेकी अभिलाषा न जगे तो अनुवाद असफल समझिए। चाहे हम रूसी भाषा कभी भी न सीख सकें, फिर भी शेद्रीनकी कहानियोंको पढ़नेकी उत्कट इच्छा इस श्रेष्ठ अनुवादको पढ़कर हमारे मनमें जग उठी है। उचित शब्द-चयन तथा उपयुक्त मुहावरों तथा कहावतोंके प्रयोगने अनुवादको सजीव बना दिया है। गेट-अप बढ़िया है।

आजके उर्दू शायर और उनकी शायरी (चित्रित जैकिट तथा सुन्दर पुख्ता ज़िल्दके साथ): सम्पादक—प्रकाश पंडित; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली; मूल्य—आठ रुपये।

प्रस्तुत संग्रहमें आजके कहे जा सकनेवाले २५ उर्दू शायरोंकी कविता हिन्दी लिपिमें संग्रहीत है। कवियोंकी बहुत ही अच्छी शैलीमें लिखी गई जीवनी भी साथमें है, जो कविके मनस्तत्व तथा उनकी कविताकी प्रवृत्तियोंसे भी

परिचय करवानेमें समर्थ है। वास्तवमें जितना महत्व संग्रहीत कविताओंका है, लगभग उतना ही सम्पादक महोदय द्वारा लिखी गई जीवनियोंका है। कठिन शब्दोंका अर्थ फुटनोटोंमें देकर हिन्दीवालोंको भाव-बोधमें सहायता दी गई है। यही नहीं, आरम्भमें—छः पृष्ठोंकी भूमिकामें—उर्दू कविताका स्वरूप स्पष्ट करनेका प्रयत्न भी किया गया है, जो पर्याप्त नहीं है। हमारे मतसे तो आठ रुपयेकी पुस्तकमें, जिसमें इतने कवियोंकी कविताएँ हैं, कम-से-कम बीस पृष्ठोंकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका होनी चाहिए थी, जो हिन्दीवालोंकी उर्दू कविताकी आत्मा पहचाननेमें और उसका साहित्य जाननेमें सहायता कर सकती। यह अभाव खटकता है। छः पृष्ठोंमें तो टालमटोल ही हो सकती है।

राजपाल एन्ड सन्सके यहाँसे "उर्दूके लोकप्रिय शायर" नामसे जो ग्रन्थमाला निकल रही है, उसके ग्रन्थोंका संक्षिप्तीकरण करके इस पुस्तकमें संग्रह कर दिया गया है। ऐसा लगता है। लेकिन है यह लाभदायक—जो लोग सब पुस्तकें ३५) या ३६) रु०में नहीं खरीद सकते, वे ८) रु०में ही २५ शायरोंकी शायरीका मज़ा ले सकते सकते हैं।

एक सबसे खटकनेवाली बात यह है कि इस संग्रहमें (और उसकी पोषिका पुस्तकमालामें भी) मामूली, सस्ते, साम्यवादी कवियों (मजरूह, सरदार, जैसे) को तो सम्मिलित किया गया है; किन्तु 'दिल' लखनवी, हरिचन्द 'अख्तर', 'शकील' बदायूनी, गोपीनाथ अज़, आनन्दशरण मुल्ला, इस्माइल असरार मखमूर देहलवी, मैकश अकबाबादी, 'दीवाना' मोहनसिंह, फ़ना कानपुरी आदि श्रेष्ठ कवियोंमें से एकका भी नाम तक नहीं है! 'तरक्कीपसन्द' शायरोंकी घुसेड़के लिए क्या यह आवश्यक था कि 'अख्तर' जैसे शायरों को भी छोड़ दिया जाय? साहित्यिक गुटबन्दीका घिनौना रूप इस उच्चकोटिके ग्रन्थमें दुर्गन्ध-सी ला देता है!

छपाई, गेट-अप परमोत्तम कोटिका है। इस प्रकारके ग्रन्थोंकी अभी भी बड़ी आवश्यकता है। पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालयमें होनी चाहिए। —रमेशकुमार शर्मा

अर्ध-कथानक (कविवर बनारसीदास विरचित आत्मचरित) सम्पादक—नाथूराम प्रेमी; प्रकाशक—यशोधर मोदी विद्याधर मोदी, संशोधित साहित्यमाला, ठाकुरद्वारा, बम्बई-२; सोल एजेन्ट—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई; मूल्य—तीन रुपये।

अर्ध-कथानकमें बनारसीदासजीने अपने जीवनके ५५ वर्षों की घटनाओंके आधारपर अपनी आत्मकथा कही है। लेखक ने मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु-मर्यादा ११० वर्षकी मानकर उसकी आधी कथा इसमें दी है।

अर्ध-कथानक मध्यदेशकी बोलीमें लिखा हुआ एक कथात्मक आत्मचरित है—

"सो बनारसी निज कथा, कहै अपसौं आप॥" और
"मध्यदेशकी बोली बोलि। गर्भित बात कहौं हिय खोलि।"

अर्ध-कथानकके सुयोग्य सम्पादक नाथूराम प्रेमीने इसे स्पष्ट रूपसे दो भागोंमें विभाजित किया है: (१) परिचयात्मक भाग अथवा आलोचना भाग, (२) मूलपाठ और परिशिष्ट।

परिचयात्मक भागमें चार निबन्ध हैं—

१—एक असफल व्यापारीकी आत्मकथा
—ले० डा० मोतीचन्दजी

२—हिन्दीका प्रथम आत्मचरित
—ले० पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

३—अर्ध-कथानककी भाषा
—ले० डा० हीरालाल जैन

४—भूमिका
—ले० श्री नाथूराम प्रेमी

प्रेमीजीने मूलपाठ पाँच उपलब्ध प्रतियोंके आधारपर संशोधित करके सम्पादित किया है। फुटनोट्समें विभिन्न प्रतियोंके पाठान्तर दिये हैं।

परिशिष्टमें विद्वान सम्पादक ने (१) नाम सूची, (२) विशेष स्थानोंका परिचय, (३) सम्बन्धित व्यक्तियों का परिचय, (४) अन्य उपयोगी परिचय और (५) अन्तमें अर्ध-कथानकमें आये कठिन शब्दोंके अकारादि क्रमसे अर्थ दिये हैं।

इस प्रकार अर्ध-कथानकके सुयोग्य सम्पादकने पुस्तकको अधिक-से-अधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया है। इसकी सफलताका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इस पुस्तकने शोधके लिए अनुसंधित्सुओंको आकर्षित किया, और हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरामें बनारसीदासजीपर स्वतंत्र रूपसे शोध-कार्य हो रहा है। प्रेमीजीको इसके लिये हम बधाई देते हैं।

परिचयात्मक भागका पहला निबन्ध है 'एक असफल व्यापारीकी आत्मकथा। डा० मोतीचन्दजीने बड़ी सरल और प्रवाहमय शैलीमें बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंगसे, इतिहास और मूलपाठके आधारपर बनारसीदासजीकी आत्मकथा दी है।

दूसरा निबन्ध है "हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित"। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीजीने इस पूरे निबन्धमें कहीं भी अपने इस शीर्षकपर विचार करनेका कष्ट नहीं किया है। उन्होंने पहले ही से यह बात मान ली है कि "हिन्दीका तो यह सर्वप्रथम आत्म-चरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकारकी और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं।" (पृ० २) इस मान्यताका आधार क्या है, इसका पता नहीं।

चतुर्वेदीजी यदि प्रिन्स क्रोपाटकिन, मार्क ट्वेन, स्टीफेन ज्विग, जार्ज मिश, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, कविवर शंकर जी, पण्डित पद्मसिंह शर्माके साथ-साथ हिन्दीमें आत्मचरित की परंपरा और विकासपर भी विचार कर लेते तो वह अधिक उपयोगी होता।

तीसरा निबन्ध है "अर्ध-कथानककी भाषा"। डा० हीरा लाल जैनने चलते हुए तरीकेसे साधारण रूपसे केवल व्याकरण की रूपरेखाके आधारपर अर्ध-कथानककी भाषापर विचार किया है और अन्तमें अपना निष्कर्ष दे दिया है कि "बनारसीदासजीने अर्ध-कथानककी भाषामें व्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगल-कालमें बढ़ते हुए प्रभाववाली खड़ी बोलीकी पुट दी है, और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेशकी बोली' कहा है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेशमें काफी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार अर्ध-कथानक भाषाकी दृष्टिसे खड़ी बोलीके आदिम कालका एक अच्छा उदाहरण है।"

यह निष्कर्ष एकांगी दृष्टिकोणके आधारपर है। किसी भी भाषाके निष्कर्षके लिये चार दृष्टियोंसे विचार करना आवश्यक है—(१) शब्दोंका गठन, (२) वाक्य-रचना, (३) अर्थ-विचार और (४) ध्वनि। विद्वान लेखकने इनमेंसे किसी भी दृष्टिसे अर्ध-कथानककी भाषापर विचार नहीं किया है। केवल सामान्य रूपसे व्याकरणकी रूपरेखा के आधारपर चलती हुई नज़र फेंकी है, जो अपर्याप्त है।

चौथी है भूमिका। श्री नाथूराम प्रेमीने बड़े परिश्रम से भूमिका लिखी है, इसमें सन्देह नहीं। प्रेमीजीने भूमिका के अन्तर्गत पूर्व पुरुष, सामाजिक स्थिति, वहम और अन्ध-विश्वास, विद्या-शिक्षा और प्रतिभा, इश्कबाजी, साहूकारोंका वैभव, शासन और धर्म, गुण और दोष, बनारसीदासजीका मत, बनारसीदासजीकी अन्य रचनाओंपर बहुत संक्षेपमें विचार प्रकट किया है। निस्सन्देह यह अर्ध-कथानकके विस्तृत और गंभीर अध्ययनके लिये मार्ग-निर्देशनका कार्य करेगा।

अर्ध-कथानक यद्यपि काव्यात्मक दृष्टिसे उत्कृष्ट कोटिकी रचना नहीं है, यह तो केवल पद्यात्मक आत्मकथा मात्र है, पर उसे पढ़नेपर तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनपर बड़ा प्रकाश पड़ता है। उस समयका रहन-सहन, खान-पान, मनोरंजन, जाति-व्यवस्था, अन्य मतावलम्बी समाज, पारिवारिक स्थिति, वस्त्र, आभूषण, चरित्र, नारी-पुरुषके सम्बन्ध आदिका चित्र हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। साहित्यके द्वारा सामाजिक एवं ऐतिहासिक सामग्री संकलन करनेके लिये अर्ध-कथानक एक अमूल्य ग्रन्थ है। इसका सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे गंभीर और विस्तृत अध्ययन होना चाहिये। पुस्तक पठनीय है। प्रेमीजीने जो यह शोध और अध्ययनके लिये मार्ग निर्देशित किया है, उसके लिये हम उन्हें बधाई देते हैं।

—राजेन्द्र कुशवाहा

शाइरीके नये दौर (पहला दौर) : (शाइरे इन्क़िलाब 'जोश' की जीवनी तथा उनकी कविताओंका चुना हुआ संग्रह) : सम्पादक तथा संग्रहकर्त्ता—श्री अ० प्र० गोयलीय; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पोस्ट बाक्स नं० ४८, बनारस-१; मूल्य तीन रुपये (सुन्दर जैकिट तथा जिल्दके साथ), पृष्ठ ३३६

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमालाका यह ७२वाँ हिन्दी ग्रन्थांक हजरत 'जोश' मलीहाबादीपर हिन्दीमें प्रकाशित अब तककी सब पुस्तकोंमें श्रेष्ठ है। पुस्तकके अन्तमें 'जोश साहब'की जो जीवनी दी गई है, वह उनके पाकिस्तान जाने तकके हालको लिये हुए है। 'जोश और पाकिस्तान' नामक परिच्छेदमें जोशके पाकिस्तान जानेके कारण और वहाँ उनकी अवस्थाका सुन्दर विवेचन है। 'जोश अपनी शायरीके आइनेमें' नामक प्रसंगमें तथा अन्य विवेचनों द्वारा जोशके व्यक्तित्वपर सुन्दर प्रकाश डाला गया है तथा उनकी शाइरीका मार्मिक मूल्यांकन किया गया है।

जिन कविताओंको इस पुस्तकमें संग्रहीत किया गया है, उन्हें बड़े परिश्रमसे विभिन्न शीर्षकोंके अन्दर बाँट दिया गया है। 'सौन्दर्य और प्रेम' तथा 'मदिरालय' नामक शीर्षकके अन्तर्गत रखी गईं कविताएँ विशेष रूपसे सुन्दर हैं :—

"मुस्कराती हुई यूँ आईं वह मैखानेमें;
रुक गई साँस छलकते हुए पैमानोंकी।"

जोश साहबने केवल प्रेम और मदिरालयकी ही कविताएँ

नहीं की हैं। 'हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य' आदि विषयोंकी उनकी कविताएँ भी परम श्रेष्ठ भावोन्मेषसे युक्त हैं। सैन फ्रेंसिस्कोमें भारतके प्रतिनिधिके रूपमें नून साहब तथा मुदालियर गये थे, उस समय जोश साहबने फरमाया था :—

यह बात अगर सच है कि इस बज्मे जहाँमें,
घोड़ोंके नुमाइन्दे हुआ करते हैं खच्चर।
यह बात अगर सच है कि इस दौरे फ़लकमें,
शेरोंके नुमाइन्दे हुआ करते हैं बन्दर।
यह बात अगर सच है कि इस दौरे महनमें[1],
अम्बर[2]का नुमाइन्दा हुआ करते हैं गोबर।
यह बात अगर सच है कि इस ओज़े फ़िज़ाँपर[3],
शाहीका[4] नुमाइन्दा हुआ करता है मच्छर।
तो ठोकके सीनेको मैं यह बात कहूंगा,
भारतके नुमाइन्दे हैं सर 'नून' ओ मुदलैयर।

जोश साहबकी कविताओंके इस परम श्रेष्ठ संकलनपर सम्पादक महोदयके अथक परिश्रम तथा उनकी परिष्कृत साहित्यिक रुचिकी छाप है। फुटनोटोंमें कठिन शब्दोंका अर्थ देकर हिन्दीवालोंके लिए जोशकी शाइरी सुलभ कर दी गई है। छपाई तथा गेट-अप उत्तम कोटिका है। कागज़ भी बढ़िया है। प्रकाशक तथा सम्पादक महोदयको बधाई है।

शाइरीके नये मोड़ : सम्पादक तथा संकलनकर्त्ता—श्री अ० प्र० गोयलीय; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पोस्ट बाक्स नं० ४८, बनारस-१, मूल्य तीन रुपये (सुन्दर, चित्रित तथा जिल्दसे युक्त)।

इस पुस्तकमें गोयलीयजीने १९४६ से १९५८ तककी उर्दू शाइरीकी एक झलक उपस्थित की है। नई लहरके अन्तर्गत चार विभाजन किये गये हैं :—१. भारत-विभाजन, २. स्वराज्य-प्राप्ति, ३. राष्ट्रपिताकी शहादत और ४. प्रेरणात्मक शाइरी। इस प्रकार भारतके विभिन्न प्रकारके २६८ कवियोंकी सुन्दर तथा प्रतिनिधि कविताओंका संग्रह इस पुस्तकमें किया गया है; इन कवियोंमें अनेक नवोदित हैं। अथक परिश्रम तथा लगनका द्योतक है यह संग्रह। कृष्ण असर, गोपीनाथ अम्न, कमर मुरादाबादी, मुयीस उद्दीन फ़रोदी, यनी, जिया फतेहबादी, दीवाना मोहनसिंह, मैकश अकबराबादी, सरशार जैभिनी, मखमूर देहलवी आदि कवियों की कविताएँ विशेष रूपसे प्रभावशाली तथा पठनीय हैं।

१. संसारमें, २. कस्तूरी, ३. आकाशपर, ४. बाज़का।

समय-समयपर पत्र-पत्रिकाओंसे संकलित ये कविताएँ हैं तो अच्छी, किन्तु उनका विभाजन सुन्दर पद्धतिपर नहीं हुआ है और न नये शायरोंका परिचय ही है। २६८ शाइरोंका परिचय दिया जाना भी असम्भव-सा है, किन्तु इतना बड़ा काम परिश्रम-साध्य तो होता ही है। हमारे मतसे यदि इस संग्रहमें १०० शाइरोंको ही रखा जाता और उनके परिचय के साथ उनकी कविताएँ दी जातीं, तो बड़ा सुन्दर होता। विषयके अनुसार विभाजन करके बस कविताओंको एकदम छाप दिया गया है। कठिन शब्दोंके अर्थ दे दिये गये हैं। छपाई, गेट-अप प्रकाशककी प्रतिष्ठानुकूल सुन्दर है।

दीपकी लौ : लेखक—रामजन्म चतुर्वेदी; प्रकाशक—अमिताभ प्रकाशन; ५१ ओल्ड क्वार्टर्स, पिलानी (राजस्थान); मूल्य सवा रुपया।

इस संग्रहमें लेखककी दस कहानियाँ संग्रहीत हैं। आरम्भिक प्रयत्न-सी लगनेवाली इन कहानियोंमें यद्यपि भावुकताकी अतिके दर्शन होते हैं, फिर भी कहीं-कहीं कहानी-कलाके दर्शन हो जाते हैं। 'उलझे हुए धागे' नामक कहानीमें सुन्दर विशेष शैलीका प्रयोग किया है और उसे लेखकने निभाया भी है। भाषापर अभी लेखकको पूर्णाधिकार नहीं है।

छपाई, गेट-अप मामूली है। कागज भी बहुत अच्छा नहीं है। मुखपृष्ठपर चित्र न होता, तो अच्छा रहता।

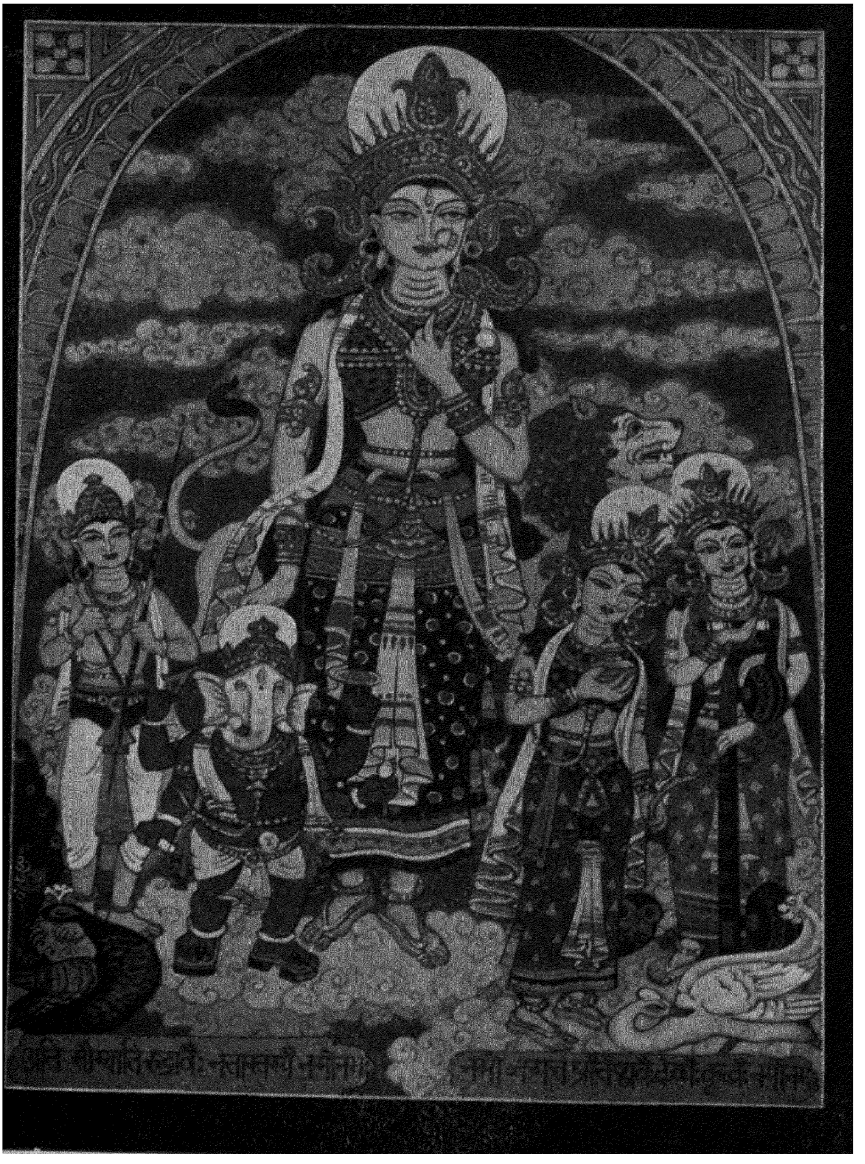
—रमेशकुमार शर्मा

[डा० भगवानदास—पृष्ठ ३०० का शेषांश]

देखते थे और प्रूफ देखनेमें वे नई बातें भी जोड़ते चलते थे, जिससे अक्सर उनकी पुस्तकें छपते-छपते दूना आकार ग्रहण कर लेती थीं। उनको अनेक प्रकारकी कलमें या फाउन्टेनपेन रखनेका भी बड़ा शौक था।

उन्होंने अनेक गम्भीर ग्रन्थ लिखे हैं; पर उनको जिस पुस्तकने मुझे और काशीके सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल और कालेज के सैकड़ों विद्यार्थियोंको सबसे अधिक प्रभावित किया और अपने धर्मका सच्चा स्वरूप दिखाया वह है—"सनातन धर्मके मूल सिद्धान्त" (एलीमेंटरी प्रिंसिपल्स आव सनातन धर्म) जो हम लोगोंकी धर्म-शिक्षाकी पुस्तक थी। इसमें उन्होंने सनातन धर्मकी जो उदार वैज्ञानिक व्याख्या की है, वही उनकी सब रचनाओंका भी मूलमंत्र है। उन्होंने अन्धविश्वास की काई हटाकर पुराने सामाजिक और धार्मिक सिद्धान्तोंके उज्ज्वल रूपको प्रकट किया है। यही उनकी सबसे बड़ी सेवा है। ('हिन्दुस्तान')

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अवोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।





भाग ६२, अंक ५] कलकत्ता, नवम्बर १९५८ [पूर्णांक ३७१

सम्पादकीय विचार

पाकिस्तानमें उलट-फेर

गत ७ अक्टूबरकी रातको पाकिस्तानके शासनसूत्रमें एक क्रांतिकारी परिवर्त्तन हो गया। सम्पूर्ण पाकिस्तानमें 'मार्शल ला' लागू कर दिया गया। केन्द्रिय तथा प्रान्तीय मंत्रिमंडल भंग कर दिये गये और साथ ही बरखास्त कर दी गयीं संसद और विधान सभाएँ। स्थल सेनाके कमांडर इन चीफ़ जनरल अयूब खाँको 'मार्शल ला'का मुख्य प्रशासक नियुक्त कर दिया गया। संविधान रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया गया और वहाँके प्रधानमंत्री श्री फीरोज़ खाँ नूनको नज़रबंद कर दिया गया। खान अब्दुल गफ्फार खाँ तथा अन्य पाकिस्तानी राजनीतिज्ञोंको गिरफ़्तार कर लिया गया। पाकिस्तानका यह क्रांतिकारी परिवर्त्तन हमारे लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं। 'विशाल भारत' के पाठक जानते हैं कि हम दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंके बारेमें नियमित रूपसे लिखते आये हैं और अपना अनुमान भी लिखते आये हैं कि दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंमें असंतोष और अनुशासनहीनताका ज्वालामुखी धधक रहा है और वहाँके राजनीतिक नेता ज्वालामुखीके क्रेटर-मुख-पर बैठे हैं। हमने यह भी संकेत किया था कि पाकिस्तानमें किसी भी समय विस्फोट हो सकता है। गत ७ अक्टूबरको वहाँ विस्फोट हुआ। उस उलट-फेरकी तैयारीमें बीस दिन लगे। उसकी योजना कैसे बनी—ये बातें मासिक पत्रके लिए अप्रासंगिक हैं, क्योंकि पाठकोंने वे बातें दैनिक पत्रोंमें पढ़ ली होंगी। हमें तो यहाँ उन बातोंका तात्विक विश्लेषण करना है और विशेषकर अपने देशकी परिस्थितिसे उसकी तुलना करनी है।

परिवर्त्तनके कारण और तत्संबंधी घोषणा

साधारण पाठकोंको यहाँ यह बताना आवश्यक है कि आखिर पाकिस्तानके राष्ट्रपति श्री इस्कन्दर मिर्ज़ाको यह क़दम क्यों उठाना पड़ा; इसका कारण स्पष्ट रूपसे उनकी उस घोषणामें है, जो उन्होंने 'मार्शल ला' प्रशासनके बाद पाकिस्तान में प्रसारित की। घोषणा हम इसलिए दे रहे हैं, ताकि पाठक भारत और पाकिस्तानकी स्थितिकी तुलना करते हुए यह विचार करें कि क्या भारत और पाकिस्तानकी स्थिति एक-सी नहीं है। श्री इस्कन्दर मिर्ज़ाकी घोषणा इस प्रकार है :—

"पिछले दो वर्षोंसे पाकिस्तानमें सत्ताके लिए जो निर्मम संघर्ष चला आ रहा है, भ्रष्टाचारका जोर रहा, हमारे यहाँकी सीधी-सादी, ईमानदार, देशभक्त और मेहनतकश जनताका जो निर्लज्जतापूर्ण शोषण होता रहा, शानकी हत्या होती रही और राजनीतिक उल्लू सीधा करनेके लिए इस्लामका जिस तरह दुरुपयोग होता रहा, उसे मैं बड़ी चिन्तासे देखता रहा। इसमें कुछ अपवाद भी रहे हैं। लेकिन ऐसे तत्व क्योंकि अल्पसंख्यामें थे, इसलिए वे देशके मामलोंपर अपना असर नहीं डाल सके।

"इन घृणित कार्रवाइयोंसे घटिया ढंगकी तानाशाही चल पड़ी। साहस करनेवाले व शोषक लोग फलने-फूलने लगे। अवामका नुकसान होने लगा। धनाढ्य लोग पहिले से ज्यादा धनी होने लगे। मेरी कोशिशोंके बावजूद अन्न के संकटको दूर करनेकी कोई कोशिश नहीं की गयी। अन्न का सवाल हमारे देशके जीवन-मरणका सवाल है। हमारे देशको तो अनाजके लिहाजसे मुनाफेका देश होना चाहिए

था। कृषि और भूमिके बंदोबस्तको राजनीतिका खिलौना बना दिया गया। फल यह हुआ कि मौजूदा शासन-प्रणालीके रहते हुए कोई भी राजनीतिक दल पैदावार बढ़ाने की दिशामें कोई कदम न उठा सका।

"पूर्वमें तो अन्न, दवाइयों तथा ज़िन्दगीकी दूसरी ज़रूरी चीजोंका बाकायदा तस्कर व्यापार चल रहा है।

"उधरके आम लोग अन्नकी तेजी व कमीके कारण सख्त परेशान हैं। यदि अन्न बाहरसे मँगाया जाता है तो उसका हमारी विदेशी मुद्रापर असर पड़ता है। फलस्वरूप सरकार को विकास-कार्य कम करने पड़ गये। हमारे कुछ राजनीतिज्ञ असेंसे रक्त-क्रांतिकी बातें करते रहे हैं। इन राजनीतिज्ञोंमें कुछ साहसिक लोग विदेशोंमें जाना उचित समझते हैं और उनके साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करते हैं। यह महज देशद्रोह है।

"पूर्वी पाकिस्तानकी विधानसभामें अभी हाल जो अशोभनीय दृश्य दिखाये गये, वे सभीको मालूम हैं। कहते हैं कि इस प्रकारकी घटनाएँ विभाजनके पूर्व बंगालमें एक आम बात थीं। आया वे होती थीं या नहीं, परंतु निश्चित रूपसे वह सभ्यतापूर्ण कार्य-विधि नहीं थी। अध्यक्षको पीटने, उपाध्यक्षकी हत्या करने तथा राष्ट्रिय-ध्वजकी पवित्रताको अपमानित करनेमें आप कोई अपने देशकी इज्जत नहीं बढ़ाते हैं।

"राजनीतिक दलोंकी मनोवृत्ति इतनी नीचे गिर चुकी है कि मेरे लिए अब इतनी भर भी विश्वास करनेकी गुंजाइश नहीं रह गयी है कि चुनाव भी देशकी वर्तमान आंतरिक अव्यवस्थाकी स्थितिमें कुछ सुधार कर सकेंगे तथा हम एक ऐसी शक्तिशाली एवं स्थायी सरकार बनानेमें समर्थ हो सकेंगे, जो देशके सामने प्रस्तुत अनेक पेचीदा समस्याओंको हल करनेमें समर्थ हो सकेगी। बहरहाल, हम योग्य व्यक्तियोंको चन्द्रमासे तो नहीं ला सकते। आखिर वे ही लोग तो अपने स्वार्थोंके लिए चुनाव लड़ेंगे, जो कि पाकिस्तान को विनाशके कगारपर लानेके लिए जिम्मेदार हैं। वे चुनाव में पहलेसे भी अधिक बदलेकी भावनाके साथ आयेंगे, क्योंकि वे निश्चित रूपसे व्यक्तिगत, क्षेत्रीय तथा फिरकापरस्तीके आधारपर चुनाव लड़ेंगे। जब वे चुनाव जीतेंगे तो अवश्य ही उसी प्रकारके हथकंडोंका इस्तेमाल करेंगे, जिसने कि प्रजातंत्रका इतना खेदजनक स्वरूप बना दिया है तथा इस समय देशमें वर्तमान निराशाके कारण बने हुए हैं। प्रशासन चाहे जितना भी प्रयत्न क्यों न करे, मेरी यह धारणा बन चुकी है कि चुनाव निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण नहीं हो सकेंगे, क्योंकि आये दिन दलोंके प्रति आस्थाको बदला जाता है तथा पदोंके पीछे बेतहाशा दौड़ लगायी जा रही है। वे निश्चितरूपसे हमारी कठिनाइयोंको हल नहीं करेंगे, बल्कि उल्टे ऐसी असुखद एवं निराशाजनक स्थिति पैदा कर देंगे जो अंततः वास्तवमें रक्तिम-क्रांतिका कारण बन जायेगी।

"पिछले तीन वर्षोंसे मैंने संविधानको प्रजातंत्री पद्धतिपर ले जानेको और उसका प्रजातंत्री ढंगपर परिपालन करनेकी बड़ी कोशिश की। मैं हर बार संयुक्त दलोंको सरकार बनाने का मौका देता रहा, ताकि जनताका अनाहत न हो और सभी दल एक रूपमें उसकी प्रगतिमें योग दें। परंतु मेरे विरोधी और निंदकोंने अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए मुझे बदनाम कर दिया, हालाँकि इसमें मेरा कोई दोष नहीं था। न केवल इतना मेरे विरोधियोंने तो हर चीजकी जिम्मेदारी मुझपर डाल दी। अगर कहीं ज्यादा अथवा कम बारिश हुई तो इसकी जिम्मेदारी भी मुझपर डाली गयी। उनकी दृष्टिमें तो संभवतः राष्ट्रपति ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति है, जिस पर हर प्रकारकी (अच्छी नहीं केवल बुरी) जिम्मेदारी है और उसकी अच्छाईका श्रेय कुछ भी नहीं। मैं मानता हूं कि मुझपर प्रशासनिक जिम्मेदारियां हैं, परंतु उस प्रकारसे नहीं, जैसा कि मेरे निंदक प्रचार करते रहे हैं।

"देशद्रोहियों और गद्दारोंने तो पाकिस्तानके राष्ट्रपति व सरकार दोनोंकी आलोचना करके उन्हें तबाह करना चाहा था और कुछ हदतक वे इसमें सफल भी हुए। अगर उन्हें खुले हाथसे खेलने दिया जाता तो मैं समझता हूं, वे अपना ध्येय पूरा किये बिना न मानते।

"देशमें दिनोंदिन बढ़ती हुई प्रशासनिक गड़बड़ीको देखकर मुझे विश्वास करना पड़ा कि अधिकांश जनता वर्तमान शासन प्रणालीमें किसी प्रकारका विश्वास नहीं रखती। न केवल इतना, खतरा तो इतना बढ़ गया था कि अगर स्वार्थी राजनीतिकोंको इसी प्रकार चलने दिया जाता तो गड़बड़ी बढ़ती ही जाती और एक समय ऐसा आता कि पाकिस्तानका वजूद ही मिट जाता।

"बड़े संघर्षोंके बाद २३ मार्च १९५६ को देशमें जो संविधान लागू किया गया, वह सही नहीं उतरा। इसमें इस प्रकारके खतरनाक समझौते निहित थे कि अगर उन्हें इसी प्रकारसे पोषित किया जाता तो पाकिस्तान शीघ्र ही

टुकड़े-टुकड़े हो जाता। ऐसी स्थितिमें मैंने सबसे पहले देश में शांतिपूर्ण वातावरण तैयार करनेका प्रयास किया है और समय आनेपर देशभक्तोंसे — हमारी समस्याओंको समझकर— ऐसा संविधान बनवाया जायगा, जो सबके लिए खुशियाँ लानेवाला होगा तो वर्तमान 'मार्शल ला' हटा लिया जाएगा।

"देशका नेता होनेके नाते मेरा सबसे पहला कर्त्तव्य यह था कि मैं स्वार्थियों और गद्दारोंके हाथोंसे अपने नागरिकोंको बचा लूँ और इसके लिए मैंने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। वर्तमान स्थितिमें जो कदम मैंने उठाया है, मेरी समझ में केवल यही एक मार्ग ऐसा है, जिससे देशको नष्ट होनेसे बचाया जा सकता है।

"इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि :—

१. २३ मार्च १९५६ का संविधान रद्द कर दिया जाए;

२. केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारोंको अविलम्ब पदच्युत कर दिया जाए;

३. राष्ट्रीय संसद और प्रांतीय विधान सभाओंको भंग किया जाए;

४. समस्त राजनीतिक दलोंको समाप्त कर दिया जाए, और

५. जबतक वैकल्पिक व्यवस्था न हो जाए तबतकके लिए पाकिस्तानमें 'मार्शल ला' लागू किया जाए।

"मैं पाकिस्तानकी सेनाके प्रधान सेनापति जनरल अयूब खाँको 'मार्शल ला' का प्रमुख प्रशासक नियुक्त करता हूं तथा सभी सशस्त्र सेनाओंको उनके अधीनस्थ करता हूं।

"पाकिस्तानकी वीर सेनाओंके लिए मेरा यह वक्तव्य है कि पाकिस्तानके निर्माणके समयसे ही उनके साथ निकट सम्पर्क होनेके कारण मैं सदासे उनकी देशभक्ति और वफादारीका प्रशंसक रहा हूं। मैं उनपर अत्यधिक भार डाल रहा हूं। मैं इस बातको अच्छी प्रकार अनुभव करता हूं, परंतु मैं सेनाके अफसरों तथा जवानोंसे यह कहूंगा कि उन्हीं की सेवापर पाकिस्तानकी भावी सत्ता एवं एक स्वतंत्र देशके रूपमें विश्वके राष्ट्रोंमें उसकी स्थिति निर्भर करनी है।

"आप अपना कार्य बिना किसी भय या पक्षपातके करें, खुदा आपकी सहायता करे।

"पाकिस्तानकी जनतासे मैं एक भाई और सहयोगीके रूपमें कहूंगा। वर्तमानमें जो कदम उठाया गया है, वह अत्यधिक खेदके साथ उठाया गया है, परंतु जनता और देशके लिए ऐसा करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। देशभक्त और कानून पर चलनेवाले लोगोंको मैं वचन देता हूं कि वे पहलेसे अधिक सुखी और स्वतंत्र होंगे।

राजनीतिक अखाड़ेबाजों, तस्करों, चोरबाजारियों, जमाखोरोंको परेशानियोंका सामना करना पड़ेगा, वे अवश्य दुखी होंगे तथा उनकी गतिविधियोंको अत्यधिक सीमित कर दिया जाएगा। जहाँतक देशद्रोहियोंका संबंध है, उन्हें मौका मिलते ही देशसे निकल भागना चाहिए।"

उपर्युक्त घोषणा पढ़नेके बाद हमें यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखना पड़ता है कि पाकिस्तानकी जिस आंतरिक परिस्थितिका वर्णन मिर्ज़ा साहबने किया है, उसकी ज़िम्मेदारी स्वयं मिर्ज़ा साहबपर भी थी और उस दोषके वे भी बहुत कुछ भागी हैं। जब उन्हें स्थितिका पता था तो पहले ही कड़ा कदम उठाना चाहिए था।

पाकिस्तानसे भारतको सबक़

हम स्पष्ट रूपसे पाठकोंसे पूछते हैं कि जिस परिस्थितिका वर्णन मिर्जा साहबने पाकिस्तानके बारेमें किया है, क्या वैसी स्थिति नहीं तो बहुत कुछ वैसी स्थिति हमारे देशमें नहीं है। मुनाफ़ाखोरी, भ्रष्टाचार, राजनीतिज्ञोंका टुच्चापन और स्वार्थपरताके कारण क्या हमारा देश धीरे-धीरे उसी गर्तमें नहीं जा रहा, जिसका संकेत मिर्जा साहबने किया है। पाठकोंको मालूम है कि महीनों पहले हमने एक सम्पादकीय नोट लिखा था, 'एक राजनीतिक फौर्मूला', उसमें हमने यह सिद्ध किया था कि यदि भरितसे पं० नेहरूको घटा दिया जाय तो :—भारत-जवाहरलाल=पाकिस्तान, होता है। नेहरूजी तथा अन्य कोई कितने ही भाषण दे ले, लोकतंत्रमें कितना ही विश्वास करे, गांधीजीकी कितनी ही दुहाई दे, भारतीय संस्कृति तथा कांग्रेसका बखान करे, पर यदि देशसे मँहगाई, असंतोष भ्रष्टाचार, दलबंदी और नैतिक पतनको नहीं रोका गया तो यहाँकी जनता भी 'मार्शल ला'का स्वागत करेगी। ईमानदार लोकसेवीको 'मार्शल ला' से क्या डर? भारतके किसानोंने कभी भी शासन-सूत्रके प्रकारका ख्याल नहीं किया। मुसलमान आए सुशासन किया, उनका स्वागत हुआ, अँग्रेज आए, उन्होंने शासनपद्धति ठीक की, उनका स्वागत हुआ। जब वह असह्य हो गया तो जनताने कांग्रेसका साथ दिया। अब केवल भीषण भाषणोंकी भरमार है, पर खाद्यान्नकी कमी है। शासन सूत्र कमज़ोर है। ग़रीब अधिक ग़रीब हो रहे हैं, अमीरोंकी

अमीरी बढ़ रही है। गुंडागीरीका बोलबाला है। हमारे देशके शासनकर्त्ताओंमें कई उच्च कोटिके भी हैं, पर वे अपवाद-स्वरूप हैं। विधान-सभाओं और लोक-सभाको देखिये। देशके वक्षपर अधिकांश सदस्य खून पीनेवाले कीटाणुओंके समान हैं। आखिर देशमें खाद्यान्नकी कमी क्यों है। लोग परेशान क्यों हैं। दुनियामें सबसे आसान काम अपने कर्मोंका कारण बता देना है, पर कोरे कारण बता देनेसे काम नहीं चलता। स्मरण रहे कि हम तानाशाही नहीं चाहते और न वह कोई कारगर इलाज है, पर जैसे त्रिदोषसे पीड़ित व्यक्तिके लिए दवाकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इतने भ्रष्टाचार और बेईमानीका इलाज कठोर शासन अवश्य है। तुर्कीमें कमालपाशाने अपनी तानशाहीके बाद प्रजातंत्रकी स्थापना की। हमें तनिक भी बुरा न लगे यदि पं० नेहरू स्पष्ट रूपसे राष्ट्रपति बन जायँ और देशके दस-बीस चुने व्यक्तियोंको अपने परामर्शदाता बना लें। पाँच-छः वर्षोंके लिए ही विधानसभायें भंग हो जायँ तो अनेक निकम्मोंकी अकल ठीक हो जाय। गरीब देशका रुपया भत्तोंमें जाता है, वह देशके हितमें लगे। पाठक यह न समझें कि हम सत्ताके अभिलाषी हैं, पर हम इस बातको अवश्य चाहते हैं कि दोषी दंडित किए जायँ और कड़े तौरपर। उदाहरण-रूप उत्तर-प्रदेश मंत्रि-मंडलकी दलबंदी क्या लज्जास्पद नहीं है। दलबंदीके गुरू बाहर बैठी ही शासन-सूत्र नहीं चलने देते। देहातमें तो गुंडोंका ही राज है। हम भुक्तभोगीकी हैसियतसे लिखते हैं कि शासनसूत्रके निकम्मेपनसे भले आदमीका जीना दूभर है। जो देशकी स्थिति समझे बिना शुष्क प्रजातंत्रके गीत गाते हैं, वे राजनीतिक रिपवान विकल हैं। समय है कि नेहरूजी अब भी स्थिको सँभाल लें।

देशका घेरा

यदि एशियाके मानचित्रमें भारतपर दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस महाद्वीपमें हमारा देश चारों ओरसे तानाशाही सरकारोंसे जकड़ा है। मिस्र, इराक, रूस, चीन, थाइलैंड, थोड़ा बरमा और पाकिस्तान इन सब देशोंमें तानाशाही है। अफगानिस्तान और ईरान पुराने ढर्रेपर हैं। इस प्रकार तानाशाहीके सागरमें भारत एक टापू है। यदि यहाँका चरित्र उज्ज्वल हो, राजनीतिक बकवास कम हो, शासन मज़बूत हो, स्वार्थियोंको ठीक किया जा सके तब तो लोकतंत्रीय शासन बच सकता है। हम निराशवादी नहीं हैं, अतः मानते हैं कि जो परिवर्त्तन होता है, वह भलेके लिए होता है। मौत भी जन्मके लिए होती है, अँधेरेके बाद ही प्रकाश आता है। संभव है, पाकिस्तानकी बुराईसे भारतमें भलाई निकले। जो कुछ भी हो स्थिति गंभीर है, उसे सुलझाना भारतवासियोंका कर्त्तव्य है।

पाकिस्तानमें दूसरा कदम

इस्कन्दर मिर्जा साहबने पाकिस्तानमें क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। इस परिवर्त्तनके अनुसार पाकिस्तानकी म्यान में दो तलवारें रखी गईं। राष्ट्रपतिके पदपर स्वयं इस्कंदर मिर्जा और प्रधान मन्त्रीके पदपर जनरल अयूब खाँ। राजनीतिक बारिकियोंको समझनेवाले लोगोंको आशंका थी कि 'मार्शल ला' और तानाशाहीमें द्वैध शासन नहीं चलता। गत २८ अक्तूबरको रेडियो समाचारसे पता चला कि मिर्जा साहबके प्रेसीडेंट-पदका भी चिराग गुल हो गया। उन्हें जनरल अयूबके सामने झुकना पड़ा। उन्हें करांची छोड़नी पड़ी। पद-त्यागते समय उन्होंने घोषणाकी कि पाकिस्तानकी खातिर विदेशोंमें फैले भ्रमको दूर करनेके लिए वे स्वेच्छासे अपने पद से हटते हैं। मिर्जा साहबकी ओरसे भ्रम बताया गया कि उनमें और जनरल अयूब खाँमें पटती नहीं है। पर यह दलील हास्यास्पद है। जनरल अयूब खाँ स्वयं राष्ट्रपति बन गए, मिर्जा साहबके बनाये मंत्रिमण्डलको भंग किया और शासन-सूत्रकी व्यवस्था यह बनाई कि पाकिस्तानमें कोई प्रधान मन्त्री न हो। सम्पूर्ण अधिकार राष्ट्रपतिको दे दिए जायँ और उसको परामर्श देनेके लिए मन्त्रियोंका एक मण्डल हो। किसी भी मन्त्रीको राष्ट्रपति जब चाहे तब बरखास्त कर सकता है। एक प्रकारसे राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्रीका पद जनरल अयूब खाँ को सौंप दिया गया। पाकिस्तानके नवीन राष्ट्रपति श्री अयूब खाँने विदेशी संवाददाताओंकी कांफ्रेंसमें बताया कि वे कुछ सैनिक अधिकारियोंके साथ मिर्जा साहबके यहाँ गये और उनसे पद-त्यागकी बात कही। मिर्जा साहबका सम्बन्ध पुराने मन्त्रियोंसे था, इसलिए मिर्जा साहबके विरुद्ध जाँच की जायगी। नए राष्ट्रपतिने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मिर्जा साहबके विरुद्ध उनके पास कुछ शिकायतें हैं, पर उनके विषयमें कुछ बताना वे नहीं चाहते। पाकिस्तान में मिर्जाका रहना ठीक नहीं और उन्हें इंग्लैंड भेजनेकी व्यवस्थके लिए विदेशी मुद्राका प्रबन्ध हो रहा है।

हमारे मतसे अभी यह नहीं कहा जा सकता कि पाकिस्तानके राजनीतिक उलट-फेरका यह अंतिमचरण है। जनरल अयूब खाँने जो मार्ग अपनाया है, उसकी प्रतिक्रिया स्वयं उनके विरुद्ध भी हो सकती है। पाकिस्तानके घटनाचक्रसे प्रतीत होता है कि पाकिस्तानी सेनामें भी दलबंदी है।

नवीनतम पाकिस्तान और भारत

पाकिस्तरनके नवीनतम राष्ट्रपति श्री अयूब खाँने संवाददाता-कॉन्फ्रेंसमें उत्तर देते हुए कहा कि भारत और पाकिस्तानके बीच दो ही समस्यायें हैं. एक है, नहरी पानीकी और दूसरी है, कश्मीरकी। नहरी पानीके लिए उन्होंने कहा कि जबतक पाकिस्तान नई नहरें नहीं बना लेता तबतक भारत को उसे पानी देना चाहिए और पाकिस्तान जो नई नहरें बनायेगा, उसके निर्माणका खर्च भी भारतको देना चाहिए। कश्मीरका मामला श्री अयूब खाँके मतसे पाकिस्तानकी प्रतिरक्षाका सवाल है और उसकी प्रतिष्ठाकी भी बात है, तथापि कोई उचित हल निकलना चाहिए। ऐसा न होनेपर पाकिस्तान भारतसे युद्ध भी कर सकता है और उसकी जिम्मेदारी भारतपर होगी। इस प्रकारकी बकवासपर हम क्या लिखें। पहले और अब पाकिस्तानके लिए न्याय, रक्षा, अंतर्राष्ट्रिय कानूनकी वही परिभाषा है, जो पाकिस्तानी करें या समझें। युद्ध छिड़ा तो किसकी जिम्मेदारी होगी इसका फैसला राष्ट्रपति-पद-मदसे चूर श्री अयूब खाँ कैसेकर सकते हैं। श्री अयूब खाँ ने यह समझ रखा है कि भारत सरकार और भारतीय जनतापर भी उनका लगाया 'मार्शल ला' लागू है। नहरी पानीका मामला जब विश्व बैंकके अधीन है, तब उसपर कोई राय जाहिर करना जनरल अयूब खाँ के राजनीतिक दीवालियेपनका द्योतक है। रही कश्मीरमें मतदानकी बात, सो पहले राष्ट्रपति अयूबखाँ अपने घरको संभाल लें और पाकिस्तानमें मतदान कराएं; जरा अपनी स्थिति भी मजबूत कर लें कि कहीं उन्हें भी इस्कन्दर मिर्जाके रास्ते न जाना पड़े।

विशाल भारतके पाठकोंसे

हमें दुःख है कि इस अंकमें हम स्थानाभावके कारण सम्पादकीय नोट्स बहुत कम दे रहे हैं। अनेक समस्याओंपर हमें लिखना था, पर 'विशाल भारत' के पाठकोंको दीपावली विशेषांकके कारण नोट्स अधिक न देनेपर आशा है, वे हमें क्षमा करेंगे।

ज्योतिर्धारिणि !

गोपालजी 'स्वर्ण किरण'

ज्योतिर्ज्वल दो ! ज्योतिर्ज्वल दो !!
मलिन मुकुर मन भरे स्वच्छता,
सरसित मुकुलित हो मानवता
किरणों के मीठे प्रकाश से
अन्धगुहा में हो प्रफुल्लता,
अन्तर-तम के व्यूह-भेद को बुद्धि प्रबल दो !
ज्योतिर्ज्वल दो ! ज्योतिर्ज्वल दो !!

सघन गगन का कुहरा गहरा,
अंधकार का फूल सुनहरा,
लोभ, मोह, भय उपजाता है
भ्रमका आँचल फहरा फहरा
लोभ-मोह, भय, भ्रम विनाश को असि उज्ज्वल दो !
ज्योतिर्ज्वल दो ! ज्योतिर्ज्वल दो !!

चकित ज्ञान है तम के वन में,
बोधशून्य मन जड़-चेतन में,
अँगड़ाती आलस की छाया
भू के विजन विपिन, कण-कण में,
ज्ञान-बाण-संधान-ध्यान हित ज्योति-कमल दो !
ज्योतिर्ज्वल दो ! ज्योतिर्ज्वल दो !!

मनुज-मनुज में हो ज्ञानोदय,
अचर - अचेतन में बोधोदय,
हर्ष - पराग मरंद सुवासित
आत्मा का प्रकाश हो अक्षय,
मुरझे मन में दिव्य तेज का परिमल मल दो !
ज्योतिर्ज्वल दो ! ज्योतिर्ज्वल दो !!

'दीपाली' या 'दिवाली'

तपस्या-त्रिवेणी

श्री पं० हरिशंकर शर्मा

दीप संस्कृतकी धातु है, जिसका अर्थ है, जलना, चमकना, प्रकाशित होना, रोशनी करना, ज्योति देना आदि। 'दीप' या 'दीपक' इसी धातुसे बने हैं। 'दीप मालिका' (दीपावली दीप-अवली) और दीपाली (दीप-आली-पंक्ति-कतार) संस्कृत शब्द हैं। दीपालीका ही हिन्दी रूप 'दीवाली' या 'दिवाली' हो गया प्रतीत होता है। पुराणों में लिखा है कि कार्तिक या कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी अथवा अमावस्याको, विष्णुके निमित्त दीप-दान करनेसे, भक्तजन पाप यातनाओंसे मुक्त हो जाते हैं। इसी 'धर्म-भावना' से प्रेरित होकर पुराणों पर विश्वास रखनेवालोंने कार्तिककी अमावस्याको 'दीप-दान' करना प्रारम्भ किया। यह भी कहा जाता है कि भगवान रामचन्द्र जब अपने वनवासकी अवधि बिताकर स्वदेश वापस आये और राज्यारूढ़ हुए थे, तब सारे देशमें 'दीपाली' या 'दिवाली' का उत्सव प्रारम्भ हुआ था। जो हो, दिवालीका एक महत्व और हो गया है। इस दिन भगवान महावीर, महर्षि दयानन्द, स्वामी-रामतीर्थ आदि अनेक महापुरुषोंने निर्वाण प्राप्त किया था। भारत वर्षमें दिवाली-उत्सव बड़े उत्साह और ठाठ-बाटसे मनाया जाता है। उस दिन लक्ष्मी-पूजन भी होता है। साल भरका व्यापारिक चिट्ठा तैयार किया जाता तथा नये बही-खाते शुरू होते हैं। कहीं-कहीं तो नया संवत् भी इसी दिनसे प्रारम्भ होता है। अर्थात् एक प्रकारसे दिवाली व्यापारिक वर्षका प्रथम दिन माना जाता है।

उधर याज्ञिकोंकी दृष्टिसे होली और दिवाली दोनों त्यौहार नवन्नेष्टि—यज्ञमें आते हैं। क्योंकि इस देशमें अन्नकी दो फसलें 'रबी' और 'खरीफ' इन्हीं त्यौहारोंसे शुरू होती हैं। होली पर तो भुने हुए जौ के दानोंका परस्पर आदान-प्रदान होता है और दिवालीके समय 'अन्नकूट' के नामसे यह विधि सम्पन्न की जाती है। बरसातमें ग्राम-नगर, गृह-मार्ग और गली-कूचोंमें जो मलीनता आ जाती है, वह दिवालीसे पूर्व सफाई करके दूरकर दी जाती है और गृह तथा नगर लीप-पोतकर स्वच्छ-सुहावने बना दिये जाते हैं। इसीसे दिवाली स्वच्छताका त्यौहार माना जाता है। इससे कुछ पूर्व विजयोत्सव आश्विन शुक्ल दशमीके दिन मनाया जाता है। वर्षा-ऋतुका जल सूख जाने पर, जब मार्ग स्वच्छ हो जाते थे और नदियोंमें बाढ़ नहीं रहती थी, तब विजय-यात्राएँ प्रारंभकी जाती थीं और इसी उपलक्ष्यमें यह विजयोत्सव मनाया जाने लगा। बंगालमें दुर्गापूजाका बहुत रिवाज है। यहाँ नवदुर्गाओंमें बड़े-बड़े व्रत, उत्सव किये जाते हैं। 'विजया' शब्द भी दुर्गाके लिये आता है, अतः वहाँ 'विजयोत्सव' दुर्गापूजाके अन्तर्गत ही माना जाता है। कुछ लोग भ्रम-वश यह भी कहते सुने जाते हैं कि भगवान रामने 'विजयादशमी' के दिन ही रावणका वध किया था, परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। रावण तो संभवतः चैत मासमें मारा गया था। इस उत्सवसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं।

ये दृष्टिकोण कुछ भी हों परंतु यह तो मानना ही पड़ेगा कि दिवाली स्वच्छता और सुन्दरताका त्यौहार है और वह सारे देशमें बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है और उस दिन हर्षोल्लास भी खूब रहता है। धनी ही नहीं, निर्धनोंके झोंपड़े भी उस दिन आनन्दसे उमगने लगते हैं। सर्वत्र हर्ष की एक हिलोर-सी आ जाती है।

दिवालीका दीप-दान या दीपोत्सव एक और दृष्टिसे भी देखा जा सकता है। उसे त्याग-तपस्याकी त्रिवेणी कहा जाय, तो अनुचित न होगा। दीपकमें तीन चीजें होती हैं, दीपक, बत्ती और तेल। तीनों चीजें तपस्याकी प्रतीक हैं। 'दीपक' बननेमें मिट्टीको कितना ठुकना, पटिना और जलना-बलना पड़ता है। इसी प्रकार जरा बत्ती और तेलका भी अनुमान कीजिए। मिट्टीसे 'दीप' बननेकी भाँति कपासका चखोंमें ओटा जाना, रुईका धुना जाना और फिर उसका बटा जाना! कितनी कठोर तपस्यासे कपासको बत्तीका रूप मिलता है। अब तेलके तपका अन्दाजा लगाइए कि उसे सरसों या तुंआके दानोंसे तेल-रूप धारण करनेमें कितने महान संकट सहने पड़ते हैं। फिर इन तीनों तपस्वियोंका एकीकरण

हुआ अर्थात् तीनों एक जगह सम्मानित और संगठित रूपमें मिले, परन्तु तब भी तपस्या बराबर बनी रही। जब बत्ती में आग लगाई गई, तेलने अपने साथीको स्नेह-दान दिया और दीपकने इस अभिनव संकट और जलनको देखकर अपना हृदय उन्मुक्त कर दिया और शरीर अड़ा दिया। तीनोंकी तपश्चर्याका पुण्य परिणाम समुज्ज्वल ज्योतिके रूपमें सबके सामने आया और तमसाच्छादित पुर-नगर प्राज्ज्वल प्रकाश-रेखासे जगमगा उठे। दीपाली या दिवाली ज्योति-र्मय और आनन्ददायिनी प्रतीत होने लगी। कुछ कौड़ियों के सस्नेह दीपकने अपनी अद्भुत आभासे, हृदयोंको आनन्द से भर दिया, नेत्रोंके सम्मुख सुदृश्य उपस्थित कर दिया और त्याग-तपस्याकी गौरव-गरिमा छम-छम नृत्य करने लगी।

सन्तोंने कहा,देखा भारतीय संस्कृतिमें 'दीपकों' की इसी-लिए महिमा है कि वे त्याग-तपके प्रतीक हैं, घोर कष्ट सहकर भी स्नेह और ज्योति प्रदान करते हैं और मानवको ठुक-पिट कट-छट, जल-भुन, पिट-पिसकर लोकसेवाका सत्यसंदेश देते हैं। इसीलिए भारतीय सभ्यताएँ यज्ञ-उत्सव, जन्म-मृत्यु विवाह-शादी, हर्ष-शोक इत्यादि सभी अवसरोंपर 'दीपक' को महत्व देतीं हैं। जब मिट्टी, कपास और सर्षपके कुछ निर्जीव कण या दाने तपस्या करके संसारको स्नेह और ज्योति दान दे सकते हैं, तब मनुष्य-संजीव और सविवेक मनुष्य तो अपने त्याग-तप एवं बल-बलिदान द्वारा विश्व भर का उद्धार-उपकार कर सकता है। आज जिन महापुरुषों, ऋषि-मुनियों, विवेकियों और वीरोंकी महिमा गाते-गाते हम नहीं थकते, उनमें 'दीपक'की भाँति ही त्याग-तप और बल-बलिदान थे। इसलिए वे संसारको सस्नेह ज्ञान-ज्योति या पुण्य-प्रकाश प्रदान कर सके।

दीप-प्रभा

परमेश्वर द्विरेफ

मा! तुम्हारी ज्योति पावन विश्वका तम दूर कर दे!
धान्य, धन, तृण, पशु, वनस्पति, सम्पदा, श्री, सौख्य भर दे!

रम्य, शिव आलोक में तव
देश यह फूले - फले मा!
प्रगतिके पथको न भूले
सबल हो, साहस न धर दे!

किसी कोनेमें कहीं भी
तिमिरका कण रह न पाये
यातनाका स्वर न गूँजे
शान्तिके सुन्दर प्रहर दे!

मा! तुम्हारी ज्योति पावन विश्वका तम दूर कर दे!
धान्य, धन, तृण, पशु, वनस्पति, सम्पदा, श्री, सौख्य भर दे!

मा! तुम्हारी ज्योति पावन विश्वका तम दूर कर दे!
धान्य, धन, तृण, पशु, वनस्पति, सम्पदा, श्री, सौख्य भर दे!

सत्य, शिव, प्रिय पंथपर मा!
हम बढ़ें, सबको बढ़ायें
तिमिर हर दें, ज्योति भर दें
हृदय मृदु, प्रज्ञा प्रखर दे!

मा! तुम्हारी ज्योति पावन विश्वका तम दूर कर दे!
धान्य, धन, तृण, पशु, वनस्पति, सम्पदा, श्री, सौख्य भर दे!

दीवाली

गुलाम रब्बानी 'ताबाँ'

'बक़ार'! रूहके तारोंको क्यों छुआ तुमने?
तुम्हारी नज्म 'दीवाली' बहुत ही अच्छी है।
मगर ये रातकी गर्दनमें दीप-मालायें,
सिपाहियोंमें उजालेके बदनुमा धब्बे,
ग़रीब हब्शीको जैसे जुज़ाम हो जाये।
ये टिमटिमाते दिये—

ये टिमटिमाते दिये सुबहका बदल तो नहीं!
मैं सोचता हूं कि इस रात चीनो-बरमामें,
किसी महाज़ पे कितने दिये जले होंगे?
जबान खूनकी हर बूँद इक किरन बनकर,
इक ऐसी सुबहकी तशकील कर रही होगी,
हजार सदियोंकी तारीको-तीरा रातोंमें,
बनी रही है जो इन्सांके ख्वाबका मरक़ज़।
वो सुबह दूर नहीं।
अँधेरी रातके सीनेसे नूरका चश्मा,
उबलने वाला है।

ये टिमटिमाते दिये—लक्ष्मीके चरणोंमें,
समीने हुस्ने-अक़ीदतके फूल डाले हैं,
वो जिनको लक्ष्मी देवीसे कुर्बे-ख़ास नहीं,
घरोंमें अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,
शिकस्ता झोंपड़ियोंको सजाये बैठ हैं,
कि इस तरफ़ भी इनायतकी इक नज़र हो जाये।
मगर वह भूलते हैं,
शिकस्ता झोपड़ियों—टूटे-फूटे खंडरोंमें
कभी भी लक्ष्मी देवी न मुस्करायेगी,
कभी बहार न इनके चमनमें आयेगी,
अगर वह खुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे।
सिपाहियोंके नुमाइन्दे—रातके बेटे,
हमारे फ़िक्रो—तख़य्युलको बांधनेके लिये,
तवहमातकी जंजीरें ढाल लेते हैं,
कभी दीवाली कभी शबबरात आती है।

जुज़ाम=कोढ़, तशकील=निर्माण, तारीको=तीरा=अंधकारमय, मरकज़=केन्द्र, हुस्ने-अक़ीदत=श्रद्धा, कुर्बे-खास=विशेष निकटता (संबंध) इनायत=कृपा, नुमाइन्दे=प्रतिनिधि, फ़िक्रो-तख़य्युलको=विचारों तथा कल्पनाओंको, तवहमात=भ्रमोंकी।

गृह-लक्ष्मीकी पूजा कीजिए

रामानन्द तिवारी शास्त्री

दीपावलीके ज्योति-पर्वमें युग-युगसे हम स्वर्गकी लक्ष्मीका आमंत्रण करते आये हैं। अमावस्याके अन्धकारमें शत-शत दीप जलाकर हम उसके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं। वह हमारे घर और जीवनको सुख और समृद्धिसे भर देगी, इसी आशामें हम प्रति वर्ष लक्ष्मी-पूजाका उत्सव मनाते हैं। स्वर्गकी यह अज्ञात लक्ष्मी इस प्रकाश पर्वमें प्रत्येक घरको अपने पदार्पणसे कृतार्थ करती है, अथवा नहीं, यह तो वही जाने। हाँ, इस निमित्तसे वह स्वच्छता, पवित्रता और प्रकाश का सन्देश देकर हमारे लिये सुख-समृद्धिके मार्गका संकेत अवश्य कर जाती है।

दीपक साधनाका प्रतीक है। उससे दीक्षा लेकर कितने लोग सुख-समृद्धिके लिये उद्योग या साधना करते हैं, यह अनिश्चित है। दीपावलीके मुक्त प्रकाशमें भी यह अमृत-संदेश सबको दिखायी नहीं देता। अधिकांश लोग भाग्य और छलके द्वारसे ही समृद्धिके आगमनकी कामना करते हैं। दीपावलीके व्यापार और द्यूतके छलमें लोककी यही कामना छिपी रहती है। भाग्यके आकाशसे, स्वर्गकी लक्ष्मीके अवतरणको ही लोग अपना सौभाग्य मानते हैं। दीपावलीके उत्सवमें हम इसी अज्ञात और अनिश्चित देवता की उपासना करते रहे हैं।

स्वर्गकी अज्ञात और अलौकिक लक्ष्मीके अनिश्चित आगमनकी आशामें, हम अपने गृह और जीवनकी साक्षात और साकार लक्ष्मीकी उपेक्षा करते रहे हैं। लोककी यह लक्ष्मी वही है, जिसे हम 'गृह-लक्ष्मी' का पद देकर उसके प्रति अपने कर्त्तव्यको भूल गये। 'नारी' लोकमें स्वर्गकी लक्ष्मीका साक्षात अवतार है। स्वर्गकी लक्ष्मी शील, सौंदर्य और समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी है। स्वर्ण-कलशोंसे गजराज उसका अभिषेक करते हैं। 'कमल' उसका आसन है। गजराज समृद्धिके सूचक हैं। 'कमल' शील और सौंदर्यका प्रतीक है। स्वर्गकी लक्ष्मी एक कल्पना है। किन्तु लोक और गृहकी लक्ष्मी जीवनका साक्षात सत्य है। प्रकृतिका सौंदर्य उसके रूपमें अपनी सीमाओंका स्पर्श करता है। संस्कृतका शील उसके चरित्र और आचारमें चरितार्थ होता है। समृद्धि उसके चरणोंका चुम्बन करती है। लोककी यह साकार लक्ष्मी जीवनमें शील, सौंदर्य और समृद्धिका विस्तार करती है।

अपनी स्वच्छन्दता और अपने पौरुषके मदमें विमूढ़ होकर हम युग-युगसे इस लोककी लक्ष्मीकी उपेक्षा करते आये हैं। उपेक्षा ही नहीं, पुरुषके दम्भ और मोहने उसपर अकथनीय अत्याचार भी किये हैं, जिनकी कालिमासे इतिहासके अगणित पृष्ठ कलंकित हैं। शिक्षा और स्वतंत्रतासे वंचित करके हमने इस गृह-लक्ष्मीको घरकी दासी ही नहीं बनाया, वरन् अनेक सामाजिक अधिकारों और अनेक सांस्कृतिक मूल्यों से उसे वंचित करके उसके जीवनको अर्थहीन भी बनाया है। संतान-पालन और घरकी सेवा ही उसके प्रमुख धर्म रहे हैं। ये परिवारके आवश्यक कर्म हैं। अतः इसमें सहयोग देना स्त्रीका कर्तव्य है। स्त्री अपने हृदयकी ममता और मनकी निष्ठासे इस कर्तव्यका पालन करती आई है। किन्तु पुरुषका इसमें सहयोग बहुत कम रहा। पुरुषके सहयोग के बिना भी स्त्री परिवारके जीवनको अपनी आत्माके सौंदर्य से अंचित करती रही है। अपनी साधना और पवित्रतासे गृहके बन्दीगृहको भी उसने श्रेय और सौंदर्यका तीर्थ बनाया है।

स्वच्छन्द होनेके कारण पुरुषने परिवारकी सेवा और प्रेम की साधनाकी अपेक्षा आर्थिक उद्योग, वैज्ञानिक अनुसंधान और अध्यात्मककी खोजमें अपनेको अधिक लगाया। आर्थिक समृद्धि पुरुषके उद्योगका एक महान फल है। वैज्ञानिक अनुसंधानोंके द्वारा चन्द्र और मंगल लोकोंके मार्ग खुल रहे हैं। धर्म और अध्यात्मकका ढोल भी युगोंसे पीटता रहा है। इस ढोलके कोलाहलमें धर्म और अध्यात्मकी वास्तविकता भी खोई रही। बाहरी आडम्बर और उपचार ही धर्मके क्षितिज पर छाये रहे। यथार्थकी दृष्टिसे मनुष्यका जीवन उतना ही लौकिक और भौतिक रहा, जितना कि वह अपने प्राकृतिक रूप में रहता है। वासनाके जिन बन्धनोंको अध्यात्मके उपदेश तोड़ते रहे, प्राकृतिक जीवनके प्रति मनुष्यका मोह उन बन्धनोंको उतना ही दृढ़ बनाता रहा।

धर्म और अध्यात्मका आडम्बर रचते हुए भी मनुष्यका जीवन प्रधानतः प्राकृतिक वासनाओं और भौतिक आकांक्षाओंसे ही प्रेरित रहा है। अर्थ और अधिकारमें मनुष्य की सनातन रुचि इस सत्यको प्रमाणित करती है। उद्योग और आविष्कारका उपयोग भी इसी दिशामें होता रहा है।

वर्त्तमान युगमें अर्थनीति और राजनीतिके संगमका यही कारण है। सामन्तवादी युगोंमें भी समृद्धि और ऐश्वर्यका संयोग रहा है। धर्म और अध्यात्मके शास्त्रों तथा उपचारों का अम्बार लगानेवाला पुरुष मुख्यतः प्राकृतिक वासनाओं और भौतिक आकांक्षाओंकी अतिरंजित पूर्तिमें संलग्न रहा है। उसके समाजका इतिहास इसका प्रमाण है। पुरुषकी के जीवनकी यह दिशा समाजमें संघर्षका कारण बनी। इन संघर्षोंका लेखा ही पुरुषका प्रसिद्ध इतिहास है। अपनी आकांक्षाओं और संघर्षोंमें संलग्न पुरुष नारीकी उपेक्षा ही नहीं करता रहा, वरन् इनकी वेदी पर नारीके जीवन और सौभाग्यकी बलि भी चढ़ाता रहा। नारीकी बलिके ये पर्व इन्द्रके सहस्राक्षकी भांति पुरुषके इतिहासके अगणित कलंक हैं। समाजकी देह पर इन बलियोंके कोढ़ सदा रिसते रहे हैं।

इतिहास और समाजके इन स्मरणीय पर्वोंके अतिरिक्त नारीका साधारण जीवन भी बहुत कुछ उपेक्षा और अत्याचार से पीड़ित रहा है। शासन और स्वामित्वका अभिलाषी पुरुष अपने दम्भ और अभिमानका परितोष एक पारिवारिक साम्राज्यवादमें करता रहा है। पुरुषका यह साम्राज्यवाद नारीके लिये सदा अपमान और आश्रयका जीवन बना रहा। पुरुषके इस साम्राज्यवादको भी नारी अपने स्नेहके सौंदर्य और सेवाके शीलसे सुन्दर तथा मंगलमय बनाती रही। नारीके इस शील और सौंदर्यकी यशोगाथाओंसे पुरुषका साहित्य भरा पड़ा है। पुरुषकी साहित्य और उसकी कला नारीके शील ओर सौंदर्यका हार्दिक सम्मान नहीं है। पुरुष के शासनमें भी सन्तुष्ट और उसकी सेवामें संलग्न रहनेके लिये यह नारीकी प्ररोचना मात्र है। नारीके गौरवकी अपेक्षा उसमें पुरुषके अहंकार और स्वर्थकी अभिव्यक्ति ही अधिक है। शृंगार, आभूषण आदिका प्रलोभन पुरुषकी इस प्ररोचनाको कथाकी दक्षिणाके समान पूर्ण बनाता रहा है। अपनी परिस्थितियोंसे विवश परिवारकी सेवामें व्यस्त और अपने अज्ञानमें अबुद्ध रहनेके कारण नारी पुरुषकी इस प्ररोचनाको अपना सौभाग्य मानकर उसके स्नेह और गौरवके गीत गाती रही है। पुरुषके रचे हुए धर्म और अध्यात्मके जालमें उलझकर वह अपने विवश, जीवनकी विडम्बनाको धार्मिक गौरवके आरोपणसे साधनाका रूप देती रही है।

पुरुषके दम्भ और दर्प तथा विलास और ऐश्वर्यका परिणाम नारीके लिये ही विडम्बनामय नहीं हुआ, यह समस्त मनुष्य समाजके जीवनके लिए अमंगलकारी हुआ। समाज का इतिहास इन अमंगलोंकी अनन्त गाथाओंसे परिपूर्ण है। इतिहासके युद्ध इस अमंगलके इतिहासके प्रमुख अध्याय हैं। अगणित अमंगल-अंकोंके इस महानाटकके अनन्त विषकम्भक हैं। पुरुषके इस इतिहासकी प्रगति आज अपनी चरमसीमा को पहुंच रही है। एक ओर विज्ञान चन्द्रलोकका मार्ग बना रहा है। दूसरी ओर उसीके आविष्कार मनुष्य-जातिके सर्वनाशका षड्यंत्र रच रहे हैं। इतिहासकी इस परिणतिने जीवनकी आस्थाओंको ही उच्छिन्न कर दिया है। मनुष्यका अन्तर अशांत और उद्विग्न है। अशान्ति और उद्विग्नताके कारण उद्योगों और विज्ञानोंकी समृद्धिसे प्राप्त ऐश्वर्य और वैभव निष्फल हो रहे हैं। अन्तरके विक्षोभके कारण समृद्धि का सुख भी नीरस हो रहा है। दूसरी ओर आर्थिक समृद्धि और विज्ञानके साधनोंकी अधिकांश सम्पत्तिका उपयोग युद्ध के लिए हो रहा है। धर्म, अध्यात्म सभ्यता और संस्कृति का ढोल पीटनेवाले पुरुषके कर्तव्यकी यह सबसे अधिक शोचनीय विडम्बना है।

इस विडम्बनाका उपचार यही है कि पुरुष अपने दम्भ और दर्पको त्यागकर स्नेह और सेवाका मार्ग अपनाए। स्नेह और सेवा ही अध्यात्मके मूल तत्व हैं। इन्हींमें संस्कृतिका सार निहित है। स्नेह और सेवामें ही जीवनके सौंदर्य और श्रेय साकार होते हैं। स्नेह और सेवाकी साधनाके द्वारा ही नारी जीवनके सौंदर्य और श्रेयकी रक्षा करती रही है। इसमें नारीको सहयोग देकर पुरुष उसकी साधनाको पूर्ण बना सकता है। पुरुषके इस सहयोगसे सभ्यता और संस्कृतिको श्रेय और सौन्दर्यकी पूर्णताका मार्ग मिलेगा। संस्कृतिकी इस साधनामें सहयोग देनेके लिये पुरुषको नारी का आदर करना होगा। सहयोगका आधार समानता है। समानताके अभावमें सहयोग नहीं, शासन होता है। इसी कारण समाजमें सदा पुरुषका शासन रहा है। सहयोगके रूपमें नारीको समानताका पद देकर पुरुष सभ्यताके इतिहास की नई भूमिका रच सकता है।

सभ्यताके नये इतिहासकी यह भूमिका रचनेके लिये पुरुषको दृष्टिकोण और व्यवहार दोनोंके नये रूप अपनाने होंगे। इनमें समानता और आदरका भाव ही मुख्य होगा, किन्तु यह केवल वैधानिक समानता ही नहीं है। वैधानिक समानता एक कोरा सिद्धांत है, जो समाजकी परिस्थितियोंके

[शेषांश पृष्ठ ३२० पर देखिए]

दीपावलीका आध्यात्मिक महत्त्व

गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

दीपावलीके मांगलिक अवसरपर जलाये जानेवाले लाख-लाख दीप एक-साथ उस अक्षय प्रकाश स्वरूप ब्रह्मका बोध करा देते हैं, जिनका बोध, सूर्य, चंद्र, तारे, अग्नि, विद्युत आदि करानेमें अक्षम हैं। ये दीप 'धूमरहित ज्योतिके समान अंगुष्ठ मात्र पुरुष'की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं और बतलाते हैं कि ब्रह्मकी अक्षय ज्योतिके हम अंशमात्र हैं। हममें वह शक्ति अन्तर्हित है, जो सूर्य, चंद्र, तारे, अग्नि, विद्युत आदिमें उपलब्ध नहीं हो सकती। वस्तुतः ये दीप ब्रह्मके अक्षय प्रकाशके प्रतीक मात्र हैं।

ब्रह्मका स्वरूप

ब्रह्म प्रकाशके अनुपम पुंज हैं। उनकी स्वीकृति है कि मैं जन्मसे ही परमात्मा-स्वरूप अग्नि हूं। घृत (प्रकाश) ही मेरा नेत्र है, नाना कर्म-फल रूपी अमृत मेरे मुखमें है (अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतंमेचक्षुरमृतं मे आसन्। साम० ६।३।१२)। ऋग्वेदके पुरुष-सूक्त (१०।९०) प्रश्नोपनिषद् (प्रश्न २।२), मुण्डकोपनिषद् (मुण्डक २, खण्ड १, श्लोक १०) में ब्रह्म के व्यापक स्वरूपपर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि अग्नि ही ब्रह्मका मस्तक है, चंद्रमा और सूर्य उसकी दोनो आँख हैं। वास्तवमें अग्नि, चंद्रमा और सूर्य मिलकर भी ब्रह्म के विराट रूपका आभास नहीं दे सकते। इसके लिए किसी अन्य स्थूल दृष्टांतकी आवश्यकता है। क्योंकि ब्रह्म सर्वव्यापक है। उनके प्रकाशमान होते हुए ही सबकुछ प्रकाशित होता है और उनके प्रकाससे ही सबकुछ भासता है। अन्यथा न तो सूर्य प्रकाशित होता न चंद्रमा और न तारे चमकते और न विद्युत ही चमचमाती। कठोपनिषद् (२।२।१५) में धर्मराज ने, वाजश्रवाके पुत्र नचिकेताको इसी आशयका भाव, सर्वव्यापक अप्रकाश्यत्वका वर्णन करते हुए, बतलाया है।

'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्त मनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥'

प्राचीन ऋषियों और मुनियोंने इसलिए ज्योति-स्वरूप ब्रह्म से ही प्रकाशकी कामनाकी और अपनी आसुरी वृत्तियों को दमिक करने तथा अपने मानसके अंधकारको हटानेके लिए प्रकाशपुंज ब्रह्मसे प्रकाश! प्रकाश!! की मांगकी और अक्षय प्रकाश पाया। इसके आलोकमें उन्होंने दिव्य मंत्रोंके दर्शन किए और आत्माकी अक्षय शक्तिका महत्त्व जाना। हिमानी की गुहाओं और झोपड़ियोंमें रहनेवाले ऋषियोंने इसीके आलोकमें अपनी आत्माकी सोयी शक्ति पहचानी और इसका विकास किया।

ऋग्वेदका प्रारम्भ ही प्रायः अग्निसूक्तसे हुआ है और इसमें अग्नि-स्वरूप ब्रह्मके व्यापकत्वपर विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला गया है। कहा गया है, 'त्वमाग्ने प्रथममायु पायवे देवा आकृन्वन्नहुषस्य विश्पतिम्।' (ऋग १।३१।१।११) अर्थात् हे अग्ने! तू मनुष्योंमें नरपति रूप है। तू आदि पुरुष है, तथा देवोंने तुझे मनुष्योंके लिए बनाया है, मनुष्योंके शासनके लिए तुझे वाणी दी गयी है और कुलके प्रसारके लिए ममत्व। अतः तू ही हमारी रक्षा कर। एक स्थानपर अग्निसे अभिभावक और संरक्षक बननेकी भी प्रार्थनाकी गयी है—हे अग्ने, तू हमारा अभिभावक और संरक्षक बन। तू हममें संजीवन और साहसका प्रचार कर। प्रकाश ब्रह्म है। अतः सर्वाधिक सूक्त-राशि अग्नि-स्वरूप परमात्माकी ही स्तुति करती दीखती है। साधकोंने भवसागरसे पार जानेकी आकांक्षा अग्निसे की, 'अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् (ऋग १।१८६।२) अर्थात इस नावरूपी अग्निके द्वारा ही हम इस संसार-सागरसे पार हो सकते हैं। इसलिए ऋषियोंने अग्निकी वंदना कई स्थानों पर की है।

दीपावलीका उद्देश्यः ब्रह्म-ज्योतिके दर्शनकी चेष्टा

दीपावलीका उद्देश्य है—ब्रह्मकी अक्षय ज्योतिको साकार रूपमें देखनेकी चेष्टा। लाख-लाख दीपोंकी शिखाएँ ब्रह्मकी इसी अक्षय अलौकिक ज्योतिका संकेत करती हैं, जिनसे मानस-गह्वरका अंधकार दूर होता है। प्राचीन ऋषियों और मुनियोंने इसीके कारण-स्वरूप दीपावलीका मंगल-पर्व शुरू किया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि जब ब्रह्मकी अक्षय अलौकिक ज्योतिको देखनेकी लालसा सूर्य, चंद्र, तारों, अग्नि, विद्युत् आदिसे न मिटी तब मिलकर सर्वसम्मतिसे एक ऐसे त्योहारका सृजन किया, जिसमें अपने

प्रयाससे ब्रह्म-ज्योतिको कोई साकार रूप दे सकें। मिट्टीके दीपोंको जलानेकी परंपरा कदाचित् इसी कारण शुरू हुई। कारण, सूर्य, चंद्र, तारों, अग्नि, विद्युत्का सृजन उनके वशकी बात न थी। मिट्टीके दीप और घृत अथवा तैलका इन्तजाम वे जरूर कर सकते थे। इसमें आत्मआविष्कारका भी आनंद अनुस्यूत है।

आध्यात्मिक उन्नति : ठोस आधार

आध्यात्मिक उन्नतिके लिए ठोस आधारकी आवश्यकता है। यह इसलिए कि मनको उस आधार विशेषपर टिकाकर उपासनाका विधान किया जा सके। सूर्य, चंद्र, तारों, अग्नि, विद्युत् आदि ऐसे ही ठोस आधार हैं, जो आत्मरचित नहीं होनेके कारण ऋषियों, मुनियों एवं मनु-पुत्रोंको कदाचित् अधिक तोष नहीं दे सके। फलतः दीपावलीके पुनीत-पर्वकी व्यवस्था की गयी और लाख-लाख दीपोंको जलाकर अपने अरमानको पूरा किया गया। ब्रह्मकी अलौकिक दिव्य ज्योति को भौतिक रूपमें अवतारित किया गया। दीपावलीके दीप-समूहमें हम उसी ज्योति-ब्रह्मका अनुमान और चिन्तन कर लेते हैं। कुछ समयके लिए हम खुश होते हैं और तब इसका गंभीर रूप हमारे सामने आता है। क्षण भर इस सृष्टिके गूढ़ रहस्य-जालमें पड़कर विस्मित होते हैं और परमात्माके अक्षय ज्योतिपुंजसे हम अपनेको प्रकाशमान पाते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, कन्फूसियस आदि इसी ज्योतिपुन्जके प्रकाशित कणके रूपमें धरतीपर अवतरित होते हैं, जिनमें हम अपनी उपासना और श्रद्धाके ठोस आधार पा लेते हैं।

आध्यात्मिक शक्तिका वैलक्षण्य

आध्यात्मिक शक्तिको जाग्रत् करनेमें दीपावलीका पुनीत पर्व सहायता पहुंचाता है। इस शक्तिके जाग्रत होनेपर आत्मा के अंतर्तम-प्रदेशमें प्रकाश-पुंज चमक उठता है। फलतः हम अंधकारसे भयभीत नहीं होते और सघन वन-प्रदेशमें बिना किसी बाह्य ज्योतिके प्रवेश कर सकते हैं। यह शक्ति दूसरे शब्दोंमें ज्ञानकी अक्षय शक्ति कहकर पुकारी जा सकती है। अतः कह सकते हैं, दीपावलीके लाख-लाख दीप, ज्ञान-स्वरूप ब्रह्मके अक्षय प्रकाशकी ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। तुलसीने बतलाया है :

'जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब विज्ञानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
एहि बिधि लेसै दीप, तेज रासि बिज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥'

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा।

परम प्रचंड दीप-शिखा स्वरूप ब्रह्मकी ओर हमारा ध्यान दीपावलीके दीपोंसे सहज आकृष्ट होता है। परमात्मा के स्वयं ज्ञान-स्वरूप और अनंत होनेका प्रमाण 'स्वयं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ऋते ज्ञानान्न-मुक्ति' इत्यादि श्रुति वाक्योंसे भी मिल जाता है। इससे अविद्याका अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है। कालुष्य धुल जानेपर सब कुछ भास्वर प्रतीत होता है। पाप भस्म हो जाता है। आलस्य और जड़ता दूर हो जाती है और हममें चेतनाकी तरंगे हिलोरें लेने लगती हैं। ऐसा हम प्रतिवर्ष अनुभव करते हैं।

दीपावली : समृद्धिका प्रतीक

दीपावली समृद्धिकी भी प्रतीक है। इसके लाख-लाख दीप समृद्धिकी देवी लक्ष्मीकी ओर भी हमारा ध्यान खींचते हैं। ऋग्वेदके श्रीसूक्तमें इसलिये अग्नि (ज्योति) के साथ लक्ष्मी (श्री) का भी संबंध बिठाया गया है। श्रीसूक्तमें कहा गया है – हे जातवेदः, तू हिरण्यगर्भवाली तथा सुवर्ण और रजतकी माला धारण करनेवाली एवं चंद्रवत् प्रकाशवान लक्ष्मीको प्राप्त कर, जो अनपायनी है तथा जिसके अवस्थित रहनेपर हम हिरण्य, गौ, अश्व, पुत्र, पौत्रादि भी प्राप्त कर सकते हैं :

'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम।
चंद्रा हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह॥
तां मम आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देव गामश्वं पुरुषानहम्॥'

इसलिए दीपावलीके दिन लोग लक्ष्मीकी भी पूजा करते हैं और अपनी समृद्धिके लिए प्रार्थना करते हैं। लक्ष्मी हमारे सभी भौतिक कार्योंकी आधार हैं। बिना इनके परमार्थिक काम भी नहीं हो सकते। लक्ष्मी स्वयं रजतकी माला धारण करनेवाली एवं चंद्रमाके समान प्रकाशमान हैं। अतः दीपावलीके साथ लक्ष्मी-पूजनको भी युक्त कर दिया गया है। सचमुच दीपावलीके प्रकाशसे अज्ञान, जड़ता, अहंकार,

दीनता, दारिद्र्य आदि दूर हो जाते हैं और लक्ष्मीके घरमें आ जानेसे मनुष्य अपूर्व सुखका अनुभव करता है। वह यही कामना बराबर करता है। इसका उल्लेख श्रीसूक्तकी एक ऋचामें यों मिलता है :

'चंद्रां प्रभासां यशसा ज्वलंतीं श्रियं लोके देव जुष्टामुदारम्।
तां पद्मनेम्रां शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मी मे नश्यतां त्वां वृणोम्॥

भौतिक वादियोंकी दृष्टिमें दीपावली

भौतिक वादियोंने भी दीपावलीकी महत्ता कई प्रकारसे बतलायी है। प्रत्यक्ष-रूपमें अंधकारके विनाश और दीपावली की ज्योतिमें लाख-लाख कीट-पतंगोंके विनाशसे सारा वातावरण शुद्ध हो जाता और आसुरी शक्तियोंके क्षय हो जानेसे एक दिव्य प्रकाश भासमान जगत्में दृष्टिगोचर होता है। इस अवसरपर कवियोंको धरतीपर आलोकके छंद बिछे हुए प्रतीत होते हैं और उनसे जीवनमें आगे बढ़नेकी प्रेरणा मिलती है। जीवनकी आध्यात्मिक शक्तिका विकास होता है और मन श्रद्धा और आनंदसे भर जाता है। प्रति वर्ष हम दीपावलीके दीपोंकी अर्चनाके बहाने अक्षय प्रकाश एवं अग्नि-स्वरूप ब्रह्मकी अर्चना कर लेते हैं।

चाय-चक्रम

डॉ० लप्पड़-झप्पड़

गत जनवरी १९५८ में 'विशाल भारत' सम्पादकके नवजीवन फार्मपर चाय-चक्रमका दौर रहा था। डॉ० लप्पड़-झप्पड़ अपनी साहित्यिक यात्रा समाप्तकर फार्मपर पहुंचे थे। कलकत्तेसे ठाकुर अयोध्या सिंह भी आये थे। चाय-चक्रमके दौरानमें जो बातें हुईं, वे सब जनवरी १९५८ के 'विशाल भारत' में छप ही गई थीं। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि चाय-चक्रमके दौरानमें ऐसा संकेत मिला था कि प्रत्येक तीसरे मास नवजीवन फार्ममें बबूलके नीचे चायका दौर चले और अनेक विषयोंपर डॉ० लप्पड़-झप्पड़ तथा अन्य आगन्तुक चायके पियक्कड़ आवश्यक चर्चा करें। पिछली बार चायमें टेनिन उतर आई थी, जिससे कुछ बातें सही होनेपर भी तेज़ हो गई थीं। उस लेखकी प्रतिक्रिया यह हुई कि किसीसे उस वार्ताका उत्तर तो बना नहीं, पर डॉ० सत्येन्द्रजीने आगरा यूनिवर्सिटीके डॉक्टर गुलाबरायजीके नखशिखका वर्णन कर डाला। उसमें उनकी मूछोंकी जो चर्चा की तो वीर रस खिसियाकर बग़ले झाँकने लगा। श्री भागीरथ प्रसादजीके भांजे श्रीपतलाल दुबेने डॉ० गुलाबरायजीकी हँसी की जो उपमा दी, उसके लिए साहित्यिक भाषामें कोई शब्द नहीं है।

चाय-चक्रमको प्रति मास न करनेका एक मुख्य कारण देशमें बढ़ती हुई मँहगाई है। चाय-चक्रम क्लबके सेक्रेटरीने प्रयत्न किया कि खाद्यान्नके भाव गिरें तो जन्माष्टमीपर ही चाय-चक्रम किया जाय। पर सब चीज़ोंके भाव इतनी तेज़ीसे बढ़े कि नवजीवन फार्मके ऊसरमें बबूलके नीचे चाय-चक्रमका प्रबन्ध ही न हो सका। पिछले दिनों पं० बनारसीदासजीके निवासस्थान फिरोज़ाबादमें जो भाव मिले तो मालूम हुआ कि भिंडी दो रुपया सेर, पालक चौदह आना सेर और गेंहूं सत्ताइस रुपया मन। अनावृष्टि और अतिवृष्टिसे अन्य साग-सब्ज़ियाँ भी नदारद थीं। चीनी और चायको मोल लेनेसे नवजीवन फार्मके मैनेजरने इनकार कर दिया। पर चाय और चीनीकी कठिनाईका पता कलकत्तेके मित्रोंको लग गया, क्योंकि 'विशाल भारत बुक डिपो' में लगातार कई दिनों तक ठाकुर अयोध्या सिंहजीने लाउड स्पीकरका काम किया और कहा कि चाय और चीनीके अभावमें चाय-चक्रम नहीं चल सकता, क्योंकि 'विशाल भारत' का अवैतनिक सम्पादक इतना खर्चा कैसे कर सकता है। यह बात चारों ओर फैल गई। एक मित्रने आसामके श्री सूरतराम खदरियाजीको लिख दिया और पाँच पौंड बढ़िया आसामकी चाय रजिस्टर्ड पार्सलसे नवजीवन फार्म पहुंच गई। उधर हिन्द शुगर लिमिटेड कम्पनीके संचालक त्रय श्री सोहनलाल पचीसिया, श्री प्रभूदयाल डावरीवाला और श्री मातादीनखेतानको पता चला कि चीनीके अभावमें चाय-चक्रम नहीं होगा। बस, एक कट्टा बढ़े दानेकी चीनी रेल द्वारा नवजीवन फार्म पहुँचा दी गई।

संयोग ऐसा हुआ कि विजयदशमीके दिन चाय और चीनी पहुंच गई। शरद्-पूर्णिमा निकट थी, इसलिए कई स्थानोंको तार भेजे गए कि शरद्-पूर्णिमाके अगले दिन यानी २८-१०-'५८ को नवजीवन फार्मपर चाय-चक्रमका दौर रहेगा। शरद्-पूर्णिमाको ताज देखने डॉ० लप्पड़-झप्पड़ तथा अन्य साहित्यिक और राजनीतिक व्यक्ति आए हुए थे। कई व्यक्तियोंके जवाब भी आ गए कि वे चाय-चक्रममें अवश्य शामिल होंगे। चाय-चक्रममें बिहारका कोई-न-कोई व्यक्ति किसी-न-किसी रूपमें रहता है। कलकत्तेमें छपरे जिलेके श्री रामधन द्वारा चायका प्रबन्ध होता था और नवजीवन फार्मपर मुंगेर जिलेके शांतिसाहू विद्यार्थीके द्वारा चायका अस्थायी प्रबन्ध हुआ।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदीने चाय-चक्रममें आनेका वायदा किया था। पर, जब उन्हें मालूम हुआ कि चाय-चक्रम दोपहर के बारह बजे से तीन बजे तक चलेगा, तब उन्होंने एक लम्बा तार दिया कि दोपहर बारहसे मध्याह्न तीन तक वे मकानके सामने नोटिस टांग देते हैं कि यह उनके सोनेका समय है। इस बीच टेलीफोन भी रजाईमें सोता है। ऐसी दशामें चौबेजी चाय-चक्रममें शामिल नहीं हो सकते। चाय-चक्रम का समय भी नहीं बदला जा सकता, क्योंकि रवीकी बुवाई है। पं० हरिशंकर शर्मा तो आनेको राजी हो गए और पत्रमें लिखा 'हिन्दी साहित्यकी चर्चा बासी हो गई है और साहित्य, राजनीतिक तथा सामाजिक जीवनकी उन्नतिके लिए नैतिक आन्दोलन चलाना चाहिए, इसलिए चाय-चक्रम में नैतिकताकी ही बात करनी चाहिए, बस २८ तारीखके दस बजे तक नवजीवन फार्मपर एक छोटा मजमा सा जम गया। कलकत्तेसे आने वालोंमें केवल ठाकुर अयोध्यासिंह जी थे। डा० लपड़ झपड़ तो एकदिन पहले ही आ विराजे। आगरेसे पं० हरिशंकर शर्मा जी के साथ एक टोली आई, जिसमें एक जाट साहित्यिक भी थे। बबूलके पेड़के नीचे फर्श बिछाया गया और सबसे पहले यह तय हुआ कि चाय-चक्रमको विधिवत चलानेके लिए अनौपचारिक ढंगसे एक सभापति चुन लिया जाय। सर्वसम्मतिसे पं० हरिशंकर शर्माजीको सभापति बनाया गया। सबसे पहले चायका एक एक प्याला पेश किया गया। उसके साथ पेठेका एक एक टुकड़ा और तेलका बढ़िया पराठा, मिर्चका आचार और पापड़ दिए गए। सबने तय किया कि एक प्यालेकी स्फूर्ति से ही बातें कर ली जाय। तब भरपेट खाया जाय। एक प्याला चाय पीकर अनौपचारिक सभापति पं० हरिशंकरशर्मा ने कहा, "देशकी स्थिति बड़ी खराब है। जब तक मन, वचन और कर्मका समुचित समन्वय सम्भव न होगा, तबतक देशका प्रत्येक प्रगति-पथ पतितावस्थामें हो रहेगा। साहित्य हो या राजनीति, समाज-शास्त्र हो अथवा कृषि-शास्त्र मन्त्री हो या मुसाहिब, जबतक नैतिक स्तर ठीक नहीं किया जायगा, तबतक देशकी दुर्दशा दिनोंदिन गिरती जायगी, इसलिए जो चर्चा हो वह ऊँचे स्तरपर हो। डी० लिट० आदिकी चर्चा करना फजूल बकवास है। आखिर हिन्दीकी आधुनिक थीसिसोंमें होता क्या है। चार पुस्तकें पढ़ कर एक पांचवीं बनकर डी० लिट० दिला देती है। अतः आप लोग दर्शन शास्त्र, राजनीति तथा हिन्दीके भविष्यपर बातें कीजिए। जो महाशय बोलें, वे विवाद के बावंडरमें न बहें, वरन् अपनी बात कहें। बस, अब शुरू कीजिए।"

श्रीराम शर्मा—'गलत विवाद तो ठीक नहीं' पर स्पष्टीकरणके लिए विचार-विनिमय तो आवश्यक है ही।'

सभापति—"सो ठीक है और सत्य तथा शिष्ट बात कहनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं चाहिए। व्यंग और हास्य भी लोगोंको राहे रास्तपर लानेके लिए वाजिब है।"

जाट साहित्यसेवी—"अजी हम तो सीधा वार करना पसंद करते हैं। लुका-छिपाकर आक्रमण करना हमें पसंद नहीं।"

सभापति—"अच्छा—अब डाक्टर लप्पड़-झप्पड़ जो अपने विचार प्रगट करें, उनकी स्लिपमें लिखा है कि वे सहुआ नातेपर दार्शनिक चर्चा करेंगे।"

डा० लप्पड़-झप्पड़—"यह बात तो सभी जानते हैं कि साढ़ू किसे कहते हैं। यदि दो बहनें दो व्यक्तियोंको विवाह दी जायें तो उन दोनोंके पति आपसमें साढ़ू हुए और नाता हुआ सहुआ। पर दार्शनिक दृष्टिसे इस प्रकारका सहुआ नाता हीन भावका द्योतक है। समान वृत्ति और समान विचारके लोग यदि एक परम्पराको लेकर चलें तो उन्हें साढ़ू भाई क्यों न कहा जाय। उदाहरणके लिए सोशलिस्ट नेता डा० राममनोहर लोहिया और उत्तरप्रदेशके 'लौह पुरुष' कांग्रेसी नेता श्री चन्द्रभान गुप्त साढ़ू भाई हुए। यों तो वे चिरकुमार हैं और उनकी रिश्तेदारी भी नहीं, पर डा० लोहिया भयंकर दलबन्दीमें रहते हैं और अपने नेतृत्वके लिए प्राणप्रणसे प्रयत्न करते हैं। उनकी पार्टीका कुछ भी हो, पर उनकी बात न टले। जवाहरलालजीको वे नाचीज समझते

हैं और उनके भक्त उनको भारतीय मार्क्स बताते हैं। श्री चन्द्रभानु गुप्त दलबंदीके दलदलमें इतने फंसे हैं कि उनके दलमें उनकी नेतागीरी बनी रहे, बस, कांग्रेसका चाहे जो कुछ हो, इससे उन्हें कुछ भी मतलब नहीं। दोनोंके अलग दल हैं, पर बुनियादी तरीकेसे मनोवृत्ति दोनोंकी एक-सी है। अतः मेरी थीसिसके हिसाबसे डा० राममनोहर लोहिया और श्रीचन्द्रभानु गुप्त सढ़ुआ भाई हुए। इस सढ़ुआ नातेका यदि अधिक विवेचन किया जाय तो हिन्दी साहित्यमें भी सब रोडरवाज और अपना उल्लू सीधा करनेवाले लोग सढ़ुआ नातेकी ग्रंथि में गुथे हुए हैं।"

ठा० अयोध्या सिंह—"तब फिर प्रकाशकोंमें जो ईमानदार हैं, वे साढ़ू भाई हुए और जो ठग हैं, वे साढ़ू भाई हुए।"

डा० लप्पड़-झप्पड़—"मैं पहले ही कह चुका हूं कि यदि सढ़ुआ नातेपर मैं थीसिस लिखूँ तो आगरा विश्वविद्यालय तो क्या ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मुझे डी० लिट० की एक विशेष उपाधि दे देगा।"

श्रीराम शर्मा—"वाह डाक्टर साहब! आपने भी क्या बात कही है। अब तो रूस और अमेरिकाका सढ़ुआ नाता हो गया। नासिर और टिटो भी साढ़ू भाई हुए। जिनने भ्रष्टाचारमें रत भारतके भ्रष्ट मंत्री हैं तथा पाकिस्तान के पदस्थ मंत्री हैं, सब साढ़ू भाई हुए। ऐसा लगता है, दुनियामें सढ़ुआ नाता ही सबसे बड़ा है।"

जाट साहित्य-सेवी—"तो फिर सब रँड़ुये साढ़ू भाई हुए।"

डा० लप्पड़-झप्पड़—"हाँ, यदि उनकी मनोवृत्तियाँ और विचारधाराएँ समान हों तो वह भी साढ़ू भाई हुए। दार्शनिक दृष्टिसे सढ़ुआ नाता एक बिरादरीमें ही नहीं होता। यदि मैं आपको सढ़ुआ नाता संबंधी अपनी थीसिसका एक अध्याय भी सुनाऊँ तो बहुत देर लग जायगी। अतः मैंने तो अपनी बात दो-चार पंक्तियोंमें ही कह दी है।"

जाट साहित्य-सेवी—"डा० लप्पड़-झप्पड ने राजनीति, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्रकी बात कही है, पर मैं तो मँहगाई और देशकी वर्त्तमान स्थितिसे परेशान हूं। जैसे साहित्य-सेवियों और पत्रकारोंका जन-सम्पर्क नहीं है, वैसे ही मंत्रियोंका भी जनतासे सम्पर्क नहीं है। क्या उनमें भी सढ़ुआ नाता नहीं है? एक मौलवी साहबसे हमने उर्दू पढ़ी थी। मौलवी साहबने ग़ालिबका एक शेर सुनाया, जो उन्होंने ज़ौकको संकेत करके लिखा था :

"बनके शहका मुसाहिब फिरे है इतराता,
वरना ग़ालिबकी शइरमें आबरू क्या है।

पर मैं तो इसे बदलकर यों कहता हूं :—

बनके मिनिस्टरका मुसाहिब फिरे है इतराता,
वरना लीडरकी गाँवोंमें आबरू क्या है।"

सभापति—"जाट देवता! आपके विश्लेषणमें राजनीति की तेज़ गंध आती है, ज़रा शिष्टतापूर्वक अपनी बात समझाइए।"

जाट साहित्य-सेवी—"मैं क्या समझाऊँ? गाँधीजीको सब भूल गये हैं। उनकी क़सम सब खाते हैं। राजनीतिक लोगोंमें मन, वचन और कर्मका समन्वय है ही कहाँ। भारत सरकारके गृहमंत्री श्री गोविन्दबल्लभ पंत कहते हैं कि योग्यताका स्तर कम करके हरिजनोंको ही नौकरीमें लेना चाहिए। यह तो मैं मानता हूं कि एक ही योग्यताके दो व्यक्ति हों तो पहले हरिजनको ले लीजिए। नेहरूजी, श्री जगजीवनरामको गृहमंत्री क्यों नहीं बना देते। किसी अयोग्य हरिजनको या श्री जगजीवनरामको ही गृहमंत्री बना देनेसे हरिजन उद्धार हो जायगा। अच्छा तो यह रहेगा कि श्री जगजीवनराम या उनकी बिरादरीके किसीको भी प्रधान सेनापति बना दीजिए। जब योग्यताका प्रश्न ही नहीं तब खुशामदके नगाड़े बजाइए। कविवर अकबरके शब्दोंमें 'दुनियाँ रोटी है और मजहब चूरन।' मैं बताये देता हूं कि जो नीति अयोग्यताकी बरती जाती है और जिस प्रकार हरिजनोंको सहायता दी जाती है, उससे देशमें विस्फोट होगा। फ़ीस माफ, ऊपरसे वजीफ़ा। हरिजन लड़का या लड़की फेल हुआ तब भी फीस माफ़ और वजीफ़ा जारी। आखिर यह रुपया आता कहाँसे है?"

श्रीराम शर्मा—"हाँ! निकम्मोंको एक नई बिरादरी खड़ी करके बिरादरीवादके विषैले वृक्षको सींचा जा रहा है। इसका फल भी वही होगा, जो कांग्रेसका मुस्लिम लीगसे समझौता करके हुआ था।"

सभापति—"शर्माजी! अब आप थोड़े शब्दोंमें हिन्दी की एकरूपताके विषयमें कहिए और चायका प्रबंध कीजिए।"

श्रीराम शर्मा—"अरे शांति शाह! ज़रा कुछ तेज़ चाय भिजवाओ। हरिभजनके न होनेसे तुम्हारा प्रबंध कुछ फीका

रहा। कुछ पकौड़ी भी लाओ। हाँ, तो अखिल भारतवर्षीय हिन्दीके रूपको मेरी दो कल्पनाएँ है। संस्कृत जिस प्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिममें बोली और लिखी जाती है, उसी भाँति हिन्दीका एक ही रूप होना चाहिए। इसमें दो एक पीढ़ी लग जायँ तब भी कोई बात नहीं। थोड़ी हेर-फेर व्याकरणमें करनी पड़े तब भी हर्ज नहीं। हाँ, संस्कृतका-सा समान स्टैण्डर्ड हो। हिन्दीमें स्वगं इतनी शक्ति चाहिए—जो उसमें है—जिससे लोग आकृष्ट होकर उसे अपनाएँ। हिन्दीका जो विरोध है, उसके आधारमें राजनीतिक स्वार्थ है। हिन्दी तो राष्ट्रकी एकताकी द्योतक है, पर फिलहाल उसमें राज्योंके हिसाबसे थोड़ा व्याकरण-भेद बना रहे तो वह क्षम्य है। संस्कृतजन्य सब भाषाएँ सहोदरा हैं। मैं तो हिन्दीकी समृद्धिमें दक्षिणके भाइयोंका सहयोग अधिक चाहता हूं। उनकी हिन्दी-प्रगति आश्चर्यजनक है तथा गौरवकी बात है।"

डा० लप्पड़-झप्पड़—"मैंने अपनी सद्भावना नाते संबंधी थीसिसकी थोड़ी चर्चा की थी। अब मैं हिन्दीके लेखकों और पत्रकारोंकी चर्चा करना चाहता हूं, विशेषकर उनकी जो विदेशोंकी यात्रा उन्हीं देशोंके खर्चसे कर आये हैं। 'विशाल भारत' के अक्टूबर अंकमें, जो पहला नोट 'फिर बुलाना' शीर्षक है, वह बिल्कुल ठीक है। मुझे लोकसभाके एक कांग्रेसी सदस्यने बताया कि प्रधानमंत्री श्री नेहरूजीने इस प्रकारकी यात्राओंकी भर्त्सना की थी। हिन्दी-पत्रोंमें जो अमेरिका और रूसकी भटैती निकल रही है, वह उसी प्रकारकी यात्राओंका फल है। अब मुझसे आप नाम सुनिए।"

सभापति—"नहीं-नहीं। कदापि नहीं। डा० लप्पड़-झप्पड़ साहब व्यक्तिगत बातें मैं नहीं कहने दूँगा। यह ठीक है कि चायका दूसरा दौर ज़रा तेज़ है। भ्रष्टाचारियोंको कौन नहीं जानता है। साहित्यिक, राजनैतिक सभी भ्रष्टाचारियोंकी कलई तो खुल गयी है। मुर्दोंपर कफन डालना आपका काम नहीं है। अब मोटरका समय भी है, बस थोड़ी चाय और आ जाय, कुछ पेटमें पड़ जाय तब हम सब चलेंगे। आप यह तो मानेंगे ही चाय-चक्रमके इस दौरमें मैंने टैनिनका जोर नहीं आने दिया।"

डा० लप्पड़-झप्पड़—"जोर आता कैसे, दूध अधिक पड़ा था।"

सभापति—"स्व० आचार्य पं० पद्मसिंह शर्माके शब्दोंमें चायमें उतना ही दूध चाहिए, जितनी लीडरमें ईमानदारी। बस चाय-चक्रम यहीं समाप्त होता है।"

चाय-पान और भोजनके उपरांत सब लोग नवजीवन फार्मसे विदा लेकर चले गए।

गृह-लक्ष्मीकी पूजा कीजिए : पृष्ठ ३१४ का शेषांश

अनुरूप ही साकार होता है। नारीके आदरके लिये पुरुषको अपने अहंकार, अभिमान और स्वार्थको कम करना होगा। संतान और परिवारकी सेवामें ही मनुष्य अपने नये दृष्टिकोण को प्रमाणित कर सकता है। धर्म और अध्यात्मके आडम्बर को छोड़कर शारीरिक सेवाका यह नवीन धर्म नयी सभ्यताकी भूमिका बनेगा। अहंकार और स्वार्थके त्याग तथा धर्म और अध्यात्मके आडम्बरके परित्यागके अतिरिक्त पुरुषको अपनी वासनाओं और आकांक्षाओंको भी सीमित बनाना होगा, तभी नारीकी वैधानिक समानता उसकी निर्भय स्वतंत्रता और उसके हार्दिक सत्कारमें सफल हो सकेगी।

स्वतंत्रता और सत्कारसे पूर्ण नारीकी यह समानता ही लक्ष्मीकी वास्तविक पूजा है। स्वर्गकी अलौकिक लक्ष्मीकी पूजाका ज्योतिर्मय पर्व इसी लक्ष्मी-पूजाका संकेत करता है। साधनाके दीपकोंके द्वारा ही हम जीवन-लक्ष्मीकी समुचित पूजा कर सकते हैं। ज्ञानके आलोकमें हम जीवन और संस्कृति के इस अपूर्व तत्वको देख सकेंगे, तभी हमारा युग-युगका दीपार्चन सार्थक होगा। अब तक हम वैभव और समृद्धिकी कामनाके लिए शत-शत दीप जलाकर स्वर्गकी अलौकिक लक्ष्मीकी राह देखते रहे हैं। अब हम साधनाके दीपोंसे अपनी लोक-लक्ष्मीकी अर्चना करें, तो श्रेय और सौंदर्यकी सभ्यताके नये क्षितिज उद्घाटित हों। लोककी यह लक्ष्मी घर-घरकी लक्ष्मी है। वह कल्पनाके कमलपर आसीन नहीं है। वह अपनी साधनाके शतदल पर स्थित है। वह अपने शील और सौंदर्य से गृह और लोकको स्वर्ग बनाती रही है। अपने हृदय-कमल पर उसे आसीन करके स्नेह और सत्कारके दीपकोंसे उसकी अर्चना कर हम इस लोकको स्वर्ग बनानेमें उसका सहयोग दे सकते हैं। पुरुषका यह सहयोग ही उसका श्रेष्ठतम धर्म है। इसी धर्मके पालनमें दीपावलीका ज्योतिपर्व सफल होकर हमारे जीवनके प्रति क्षणको आलोकमय और आनन्दपूर्ण बना सकेगा।

अमर शहीद अशफ़ाकउल्लाको श्रद्धाञ्जलियाँ

सुशील कुमार

मैं सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्तजीके पास ही बैठा था कि अमर शहीद श्री अशफ़ाकउल्ला खांके भाई श्री रियासतउल्ला खां साहब पधारे। श्री अशफ़ाकउल्लाको काकोरी षडयंत्रके अभियोगमें ही फाँसी हुई थी। पहलेसे ही मैं उनके सम्बन्धमें जाननेको बड़ा उत्सुक था। उनके बड़े भाईसे मिलनेके बाद यह उत्सुकता तीव्र उत्कण्ठामें बदल गई।

उसके कुछ ही दिन बाद श्री मन्मथनाथ गुप्तके यहां बनारससे श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी आए। श्री बख्शी भी काकोरी केसके अभियुक्त थे और उसमें उन्हें आजीवन कारावासकी सजा हुई थी। उनके सम्बन्धमें खास बात यह थी कि काफी दिन फरार रहनेके बाद पकड़े जानेके कारण उनको काकोरी षड्यंत्रके मुख्य मुकदमेमें नहीं शामिल किया गया था। उधर श्री अशफ़ाकउल्ला खां भी देरसे पकड़े जानेके कारण ही मुख्य मुकदमेमें शामिल नहीं किये गये थे, इसलिए श्री अशफ़ाकउल्ला और श्री बख्शीका मुकदमा एक ही अदालतमें साथ-साथ चला। वे लोग फैसला होने तक एक ही जेलमें एक साथ रखे भी गये थे।

यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई और मैंने श्री बख्शीसे यह अनुरोध किया कि वे श्री अशफ़ाकउल्लाके विषयमें मुझे अधिकसे अधिक बतानेकी कृपा करें।

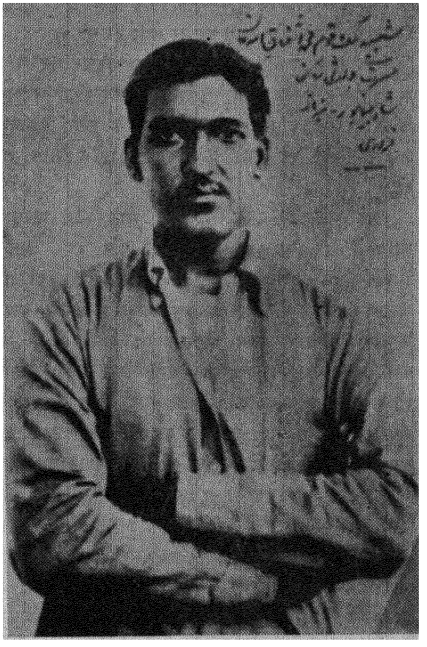
उन्होंने मुझे श्री अशफ़ाकउल्लाके सम्बन्धमें बताना सहर्ष स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन भोजनसे निबटकर हम बैठे ही थे कि मैं अपनेको सम्हाल न सका और तरह-तरहका प्रश्न करने लगा। क्षण भर भी विश्राम न करने देकर मैंने जो धृष्टता की, उसे बख्शीजीने एक सहज मुस्कानसे क्षमा कर दिया और उन्होंने अशफ़ाकउल्ला खांके बारेमें बताना शुरू किया।

"शाहजहांपुर स्टेशनके बाहर ही शहरके किनारे स्थित पठान घरानेमें उनका जन्म हुआ था। उनके सबसे बड़े भाई श्री शाहंशाह खां भोपाल राज्यमें बहुत ऊँचे पद पर थे। अशफ़ाकउल्लाका घराना काफी सम्पन्न था। बड़े भाईके पास बन्दूकका लाइसेंस भी था, जिसका उपयोग प्रायः क्रांतिकारियोंने ही किया।"

मैंने पूछा—"श्री अशफ़ाकउल्ला क्रांतिकारी दलमें कैसे शामिल हुए।

बख्शीजी बोले—"बहुतसे लोग समझते हैं कि अशफ़ाकउल्लाको पण्डित रामप्रसाद 'बिस्मिल' क्रांतिकारी दलमें लाये, पर ऐसा नहीं है। असफ़ाकउल्ला खुद कोशिश करके क्रान्तिकारी दलमें आये।"

पं० रामप्रसाद मैनपुरी षड़यंत्रके बाद शाहजहांपुरमें बस गये थे। उस वक्त पुलिस मैनपुरी षड़यंत्रके सिलसिलेमें



काकोरीके शहीद अशफ़ाकउल्ला खां

उनका पीछा कर रही थी। अशाफ़कउल्ला १९२१ में ही असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण पढ़ना-लिखना छोड़ चुके थे। पं० रामप्रसाद उस समय क्रांतिकारीके रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे, इसलिये मौका पाकर अशफ़ाकउल्लाने उनसे मेल-जोल बढ़ाया और क्रांतिके कामोंमें दिलचस्पी लेने लगे। वैसे पं० रामप्रसाद कट्टर आर्य समाजी थे, पर

जब वे १९२३ में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशनमें शरीक हुए और खुलकर काम करने लगे, तब उन्होंने अशफ़ाकउल्लाको अच्छी तरह आज़माया कि यह नौजवान पठान क्रांतिकारी दलमें आना चाहता है, कैसा रहेगा ?

इसी बीचमें शाहजहांपुरमें हिन्दू-मुसलमानके दंगे उठ खड़े हुए। अशफ़ाकउल्लाने झगड़ा दूर करनेकी पूरी कोशिश की और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका सम्मिलित जुलूस निकाला। पं० रामप्रसादको अशफ़ाकउल्लाके सुलझे हुए विचार पसन्द आये। धीरे-धीरे वे लोग एक दूसरेके निकट आते गये और उनमें परस्पर मैत्री हो गई।

अशफ़ाकउल्ला खांके साथ मेरा प्रथम परिचय सन् १९२८ के पूर्वार्द्धमें हुआ जब मैं योगेश चटर्जी (अब संसद सदस्य) के साथ शाहजहांपुर गया था। उसके बाद हम लोग अक्सर मिलते रहे तथा क्रांतिकारी कामोंमें भाग लेते रहे।

वह लम्बे-चौड़े, पक्के खिलाड़ी, गोरे और खूबसूरत व्यक्ति थे। उनका वज़न पौने दो सौ पौंड था। बादमें चलकर जेलमें तो उनका वजन २०३ पौंड हो गया था। अत्यन्त आकर्षक और भारी-भरकम व्यक्तित्व होनेके कारण वे भीड़में भी सबसे अलग पहचाने जा सकते थे। जब कभी हम लोग खुलेआम बन्दूक राइफल लेकर चला करते थे, तो अशफ़ाक सहज ही हम लोगोंके बीच राजा साहब या कुँवर साहब बन जाते थे और हम सब लोग उनके दरबारी या शिकार पार्टीके बन जाते थे। कईबार हम लोगों ने इसी तरह स्वांग रच कर पुलिसको चकमा दिया था। उनमें ताकत भी गज़बकी थी। थकावटका तो नाम ही नहीं जाते थे। एक बार ५५-५६ मील लगातार पैदल चलनेके बाद हम सभी थककर चूर हो गये। स्वयं पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल भी शिथिल हो गये थे, लेकिन अशफ़ाक के चेहरे पर शिकन भी न आई थी !

अशफ़ाकउल्ला शायर, लेखक, वक्ता, चिन्तनशील तथा दूरदर्शी व्यक्ति थे। हर बातमें उनकी अपनी अलग विशेषता थी।

उस समय कुछ ऐसा मायूसीका वातावरण था कि कांग्रेसके बड़े-बड़े नेता पूर्ण स्वराज्यका लक्ष्य तो दूर रहा, डोमिनियन स्टेटसके इर्द-गिर्द मँडरा रहे थे। ऐसे समयमें हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशनके सक्रिय कार्यकर्ता भारतीय लोकतंत्रका उद्देश्य लेकर चल रहे थे। नौजवानों की भुजाएँ फड़क रही थीं। वे कुछ कर डालनेको उतावले हो रहे थे। वे सरकारका सीधा मुकाबला करना चाहते थे। सभी कुछ-न-कुछ करनेके लिये मर-मिटनेको तैयार थे।

दलको अक्सर रुपयेकी जरूरत रहती थी। अब तक इस अभावको पूरा करनेके लिये गाँवोंके अत्याचारी जमींदारों और महाजनोंके यहां डाके डाले जाते थे, पर इस तरीकेमें कई बुराइयाँ भी थीं। इस तरह डाका डालनेमें पुलिससे बचे रहनेकी तो काफी गुंजाइश रहती थी, पर साथ ही गाँववाले हमें अक्सर साधारण डाकू समझकर हमसे भिड़ जाते थे, जिसमें कितने ही निर्दोष देहातियोंकी हत्या का प्रश्न उठ खड़ा होता था। इसलिये व्यक्तिगत रूपसे किसी पर आक्रमण करके रुपये वसूल करनेके इस ढंगको छोड़ देनेका विचार किया गया और हुआ भी ऐसा ही। पर दलकी जरूरतोंको पूरा करनेकी भी समस्या थी ही।

उस समय जर्मनीसे मोउज़र पिस्तौल आने वाले थे; जिन्हें नकद रुपये देकर कलकत्ता बन्दरगाहसे प्राप्त करना था। सारी योजना गुप्त थी। ऐसा मौका हाथसे जाने नहीं दिया जा सकता था। पर रुपयोंकी बहुत कमी थी। गाँवोंमें डकैती करनेका विचार छोड़ा जा चुका था, क्योंकि वहाँ से बहुत काफी रुपया भी नहीं मिल पाता था।

इस बार एक बड़ी योजना बनाई गई। यह तय किया गया कि लखनऊके पास ८ डाउन ट्रेनको रोककर उससे आने वाला रेलका खजाना लूट लिया जाय। इसके लिये काकोरी स्टेशनके पास एक वीरान जगह भी चुन ली गई। सारी तैयारी गुपचुप, लेकिन बड़े सरगर्मीके साथ होती रही। पर अशफ़ाकउल्ला इसका विरोध करते रहे। यह मानना पड़ेगा कि वे बहुत दूरकी सोच रहे थे। उनका कहना था कि हमारा दल अभी इतना मजबूत नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यको खुली चुनौती दे सकें। अभी हम इस हालतमें नहीं हैं कि सरकारसे सीधी लड़ाई छेड़कर दलको कायम रख सकें। लेकिन सब जोशके मारे फड़क रहे थे। और अशफ़ाकउल्ला की बात नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज बनकर ही रह गई।

९ अगस्त, १९२५ को ट्रेन डकैतीका निश्चय किया गया था। हम लोग दस आदमी जब काकोरी स्टेशन पहुंचे, उस समय भी अशफ़ाकउल्ला कहते रहे कि रामप्रसाद बात मान जाओ। अब भी लौट चलो। पर उनका कहना अरण्य रोदन ही रहा। पं० रामप्रसाद बिस्मिलने मुझे



बाँएँसे दाएँ:—काकोरीके अमर शहीद रोशन सिंह, अशफ़ाकउल्ला खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी

बुलाकर कहा कि अशफ़ाकको समझाओ और उसे बताओ कि लोग उसके विरोधके कारण उसे क्या-क्या कह रहे हैं।

मैंने अशफ़ाकको बताया कि ऐन मौके पर पहुंचकर तुम जो विरोध कर रहे हो उसको प्रतिक्रिया साथियों पर बड़ा खराब असर डालेगी, बल्कि वे तो तुम्हें डरपोक भी कहने लगे हैं। दरअसल हमारे कई साथी कह रहे थे कि अशफ़ाक डर गया है। पं० रामप्रसाद बिस्मिलने भी अशफ़ाकउल्लाको बताया कि सभी यही सोच रहे हैं कि तुम डर गये हो।

पर अशफ़ाककी एक ही रट थी—लौट चलो, यह काम नहीं होना चाहिए।

खैर, नतीजा यह हुआ कि रेल डकैतीका काम शुरू करनेका भार पं० रामप्रसादने मेरे ऊपर डाला। मैंने अशफ़ाक और राजेन्द्र लाहिड़ीको भी साथ लिया तथा तीन सेकेण्ड क्लासके टिकट खरीदकर ट्रेनमें सवार हो गया। सारा काम बड़ी सफलताके साथ हुआ। ट्रेन रोकी गई। यात्रियोंको हवाई फायर करके चुप रहनेको मजबूर कर दिया गया और साथ ही उन्हें बता दिया गया कि हम क्रांतिकारी हैं। हमें किसी यात्रीको परेशान नहीं करना है। सरकारी खजाना लूटकर हम चले जायंगे।

गार्डके डिब्बेसे खजानेका सन्दूक उतारकर तोड़ा जाने लगा। एकाएक दूसरी ओरसे इञ्जिनकी तेज सर्चलाइट दिखाई पड़ी। हमारे दिलकी धड़कने बढ़ गईं और यह शक हुआ कि किसी तरह हमारी गुप्त योजना खुल गई है और पुलिस आ रही है। फिर भी हम पूरी तरहसे मरने-मारनेको तैयार थे। जान हथेली पर रखकर हम युद्धके लिये प्रस्तुत हो गये और किसीने अपनी जगह न छोड़ी। जो जिस ड्यूटी पर था, वहीं रहा।

पर बात दूसरी ही निकली। वह कोई साधारण एक्सप्रेस ट्रेन थी और साथ वाली दूसरी लाइन परसे निकल गई सन्दूक तोड़कर खजाना निकाल लिया गया और हम सब लखनऊके लिये पैदल ही रवाना हो गये। अशफ़ाकउल्ला

यद्यपि शुरूसे ही इस डकैतीका विरोध कर रहे थे, फिर भी मौके पर उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहटके अपनी ड्यूटी पूरी तौरसे अदा की।

दूसरे दिन सबेरेमें लखनऊ स्टेशन पर काकोरी डकैतीके विषय में पता लगानेको जा ही रहा था कि अचानक एक अजीब-सी सूचना मिली। अखबारमें समाचार निकला था कि डकैतीके सिलसिलेमें एक हत्या भी हो गई है। हम न तो ऐसा चाहते ही थे और न बादको ही जान पाए थे कि किसकी और किस तरह हत्या हो गई। सारी परिस्थिति बदल चुकी थी। मैं एक अखबार लेकर डेरे पर लौटा और तुरन्त सबको खबर दी। फौरन सब क्रांतिकारी साथियोंको सावधानीके साथ तितर-बितर कर दिया गया।

१९२५ के २६ सितम्बर को ४ बजे सबेरे प्रान्त भरमें छापा मारा गया तथा गिरफ्तारियां की गईं। जिसमें चन्द्रशेखर आजाद, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफ़ाकउल्ला तथा मैं और अन्य कई लोग गिरफ्तार नहीं किये जा सके। धीरे-धीरे और लोग पकड़े गए, पर चन्द्रशेखर आजाद अन्त तक गिरफ्तार नहीं किए जा सके।

फरार होते ही अशफाकउल्ला अपने घरसे आधे मीलके अन्दर ही गन्नेके खेतमें छिपे रहे। रातको उनका खाना वहीं पहुंचा दिया जाता था। इस प्रकार उन्होंने दो-तीन दिन तो बिताये, पर तलाशीके समय उनके भाईको बन्दूक भी जब्त कर ली गई। उन्होंने देखा कि शाहजहांपुरके सभी लोग पकड़ लिए गए। वे शाहजहांपुर छोड़कर अन्य साथियों की तलाशमें कई शहरोंमें गए। घूमते-घामते वे बनारस पहुंचे। वहां भी वे जहां-जहां गये कोई नहीं मिला। सब पहले से ही गायब हो चुके थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी कई साथी कार्यकर्त्ता थे, जिनसे अशफ़ाकउल्लाका परिचय था। उन्हींकी पहचानसे वे बिहार चले गये। वहां एक साथीके जरिएसे जिला पलामूके डाल्टनगंजमें एक्जिक्यूटिव इंजीनियरके आफिसमें नौकरी करने लगे। उस जगह उन्होंने अपना परिचय मथुराके एक कायस्थके रूपमें दिया और पूरी तरह हिन्दू बनकर लगभग आठ-दस महीने तक नौकरी की।

संयोगसे इंजीनियर भी शायरीका शौकीन था और खुद भी थोड़ी बहुत शायरी करता था। एक मुशायरेमें अशफ़ाकउल्लाकी शायरी सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और अशफ़ाकउल्लाकी बड़ी इज्जत करने लगा। उसने खुश होकर अशफ़ाकउल्लाकी तनख्वाह बीस रुपये और बढ़ा दी।

डाल्टनगंजमें रहनेके समय ही अशफ़ाकउल्लाने बंगला सीख ली और बंगला कुछ-कुछ बोलने तथा समझने भी लगे। उन्हें बंगला गाने गानेका भी अभ्यास हो गया। बंगला-साहित्य के सम्पर्कमें आ जानेके कारण उन्हें हिन्दू-संस्कृतिका बहुत परिचय मिला। कहना यह चाहिए कि इसके द्वारा वे पठान होते हुए भी हिन्दू-संस्कृतिकी तह तक पहुंच गए। डाल्टनगंजमें उनके आठ महीने अध्ययन, शिकार और शायरीमें ही बीते। उन दिनों मैं पलामूसे सौ मीलके अन्दर भागलपुर और हजारीबागमें रहा, पर मेरा अशफ़ाकसे कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका, क्योंकि हम दोनों ही एक दूसरेकी स्थितिसे एकदम अनभिज्ञ थे। न मुझे मालूम था कि अशफ़ाक मेरे इतने नजदीक हैं और न अशफ़ाक ही जानते थे कि मैं यहीं भागलपुरमें हूं। ये बातें तो हमें बादमें चलकर मालूम हुईं, जब हम दोनों गिरफ्तार होकर लखनऊ सेन्ट्रल जेलमें मिले।

अशफ़ाक शीघ्र ही डाल्टनगंजसे ऊब गए और उन्होंने विदेश चले जानेका निश्चय किया। डाल्टनगंजसे वे दिल्ली पहुंचे। वहां इंजीनियरिंग पढ़नेके बहानेसे विदेश जानेके लिए वे पासपोर्ट प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। उसी समय इत्तफ़ाकसे उनके एक सहपाठी मित्र दिल्लीमें मिल गए, वे भी शाहजहांपुरके पठान थे और तब शायद दिल्लीमें कहीं नौकरी करते थे। वे अशफ़ाकको बड़े तपाकसे अपने डेरेपर ले गये। उस दिन उन्होंने वहीं खाना खाया और वहांसे लगभग ग्यारह बजे रात अपने डेरेपर लौटे। दूसरे दिन ४ बजे ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया। वे एक सालतक फरार रहे। सितम्बर, १९२६ में पकड़े गये। अशफ़ाकका पूरा खयाल था कि उनको पकड़नेके लिए ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो दो हजारका इनाम रखा गया था, उसीके लालच में पड़कर उनके सहपाठी और सजातीय मित्रने गद्दारी की है। उनका इस बातपर पूरा विश्वास हो गया था कि मित्रने ही दगा करके उनकी गिरफ्तारी करा दी।

उनकी गिरफ्तारीके तीन-चार माह बाद यानी कुल सोलह महीने फरार रहकर मैं भी भागलपुरमें गिरफ्तार हो गया। मैं भी वहां से लखनऊ सेन्ट्रल जेल लाया गया। वहां मालूम हुआ कि अशफ़ाक जेलके योरोपियन बोर्डमें रखे गये हैं। मुझे अलग बैरककी एक कोठरीमें रखा गया। वहां से अशफ़ाकके साथ सम्पर्क स्थापित करनेमें मुझे कई दिन लग गये।

उस वक्त अशफ़ाकउल्ला सेशन सपुर्द हो चुके थे। पर मेरे आनेपर उनका मुकदमा स्थगित कर दिया गया और जल्दी-जल्दी मेरे सेशन सपुर्द किये जानेकी तैयारी होने लगी, जिससे सेशन जजके सामने हम दोनोंके मुकदमोंकी साथ-साथ सुनवाई हो सके। उस समय काकोरी केसके अन्य कैदी लखनऊ जिला जेलमें इकट्ठे थे और उनका मुकदमा अलग चल रहा था। हम लोगोंको उस मुख्य मुकदमेमें शामिल नहीं किया गया था, क्योंकि हम तो बहुत देरमें गिरफ्तार हुए थे और हमें शामिल करने पर दोबारा सारे मुकदमेको नये सिरे से चालू करना पड़ता।

मेरे मुकदमेकी सुनवाई रोज १० बजे से ६ बजेतक होने लगी और जल्द-जल्दी वहांसे मेरा मुकदमा उठाकर कोई डेढ़ महीने बाद मुझे भी सेशन सपुर्द कर दिया गया।

सेशन सपुर्द होनेके बाद पहले दिन हम दोनों साथ-साथ सेशन जजकी अदालतमें ले जाए गये। उस समय एक अजीब-सा दृश्य उपस्थित हो गया।

श्री बख्शी इस दृश्यका वर्णन करते समय विभोर हो गये। ऐसा लगा जैसे वे इस समय भी आंखोंके सामने ठीक वही दृश्य देख रहे हैं। उनकी वाणीमें कोमलता आ गई। उन्होंने बताया—

जेलसे अदालत ले जानेके पहले हमारे पैरोंमें बेड़ी डाल दी जाती थी। जब मैं आफिसमें पहुंचा और मुझे बेड़ी डाली जाने लगी, उस समय मैंने देखा कि अशफ़ाक बेड़ी पहने हुए आफिस जेलरके पास खड़े बातें कर रहे हैं। उस समय जेलका सारा स्टाफ, सब जेलर, आफिस जेलर, डिप्टी जेलर, बाबू लोग आफिसमें इकट्ठे हो गए थे। वे हमारे प्रथम मिलनका तमाशा देखनेके लिये जुटे थे। आफिस जेलरका कहना था कि हमलोग भरत-मिलाप देखनेके लिए आये हैं।

जब मुझे बेड़ी डाली जा चुकी तो आफिस जेलरने मुझे बुलाया—"बख्शीजी! जरा इधर सुनिये!"

मैं पास पहुचा तो अशफ़ाकउल्लाने बड़े तपाकसे कहा—"अच्छा आप ही बख्शीजी हैं?"

मैंने आफिस जेलरसे पूछा—"आप कौन हैं?"

आफिस जेलरने परिचय दिया—"यही तो अशफ़ाकउल्लाखां हैं!"

हम दोनोंने बड़े जोशके साथ हाथ मिलाया और एक दूसरे के गले मिले। उसी समय चारों ओरसे हथेलियां बजीं। सब कहने लगे कि हम यही भरतमिलाप देखनेके लिए तो इकट्ठे हुए थे।

असल बात यह थी कि हम लोगोंके बीच पहलेसे ही तय हो चुका था कि हम यह बात किसीके सामने जाहिर नहीं होने देंगे कि हम एक दूसरे को पहलेसे ही जानते हैं, क्योंकि इससे हमारे मुकदमेपर हमारे विरुद्ध असर पड़ सकता था और विरोधी पक्षको यह साबित करनेका मौका मिल जाता कि हम एक साथ काम करते थे।

तबसे मैं भी योरोपियन वार्डमें रख दिया गया और बादमें फैसला होनेकी तारीख तक हम साथ ही रहे।

हमें मालूम हुआ कि पं० रामप्रसाद हवालातमें बहुत धार्मिक कट्टरता दिखलाते थे तथा धर्म-प्रचार भी करते थे। मैंने जब इसका विरोध किया तब अशफ़ाकने यह बतलाया कि शायद पं० रामप्रसादने यह आडंबर रचकर बचावकी कोई चाल खेली हो और वे भी खूब नियमके साथ निमाज वगैरह पढ़ने लगे। रोजा भी रखना शुरू कर दिया। नियमितरूपसे निमाज वगैरह पढ़नेपर भी वे कट्टर कतई नहीं थे। धर्मको वे कभी रास्तेका रोड़ा बनते नहीं देख सकते थे। बल्कि ऐसा होनेपर वे धर्मको रोड़ेकी तरह ठुकरा देना ठीक समझते थे। वे मुल्ककी आजादीके सवालको मजहबी मतभेदोंसे कहीं ऊँची चीज मानते थे। पहले वे देशको स्वतंत्र देखना चाहते थे। इसीसे अशफ़ाकउल्लाकी धर्म सम्बन्धी उदारताका तथा उनके हृदयमें हिलोरें लेती हुई देशभक्तिका परिचय मिल जाता है।

मैं था कट्टर नास्तिक तथा भगवान और अल्ला दोनोंको गाली देनेवाला, लेकिन बहुत दिनों तक साथ रहनेपर भी हमलोगोंमें कभी इस सम्बन्धमें या धर्मके किसी भी विषयपर बहस नहीं हुई, जैसी कि श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और श्री गोविन्दचरण कारकी बहस धर्म और ईश्वरके पक्षमें दूसरे कम उम्र अभियुक्तोंसे हुआ करती थी। इस विषयमें अशफाकउल्लाका कहना था कि मैं किसी ताकतको बहुत ऊँचा मानता हूं यानी यह समझता हूं कि हमारे और दुनियाके ऊपर कोई और है। तुम इसे नहीं मानते, जिस दिन मेरा भी इस बातसे विश्वास उठ जायगा, उस दिनसे मैं भी ईश्वर को मानना छोड़ दूँगा। यह तो एकदम व्यक्तिगत विश्वास की बात है।

उन दिनों लखनऊसे 'हमदम' नामका एक उर्दू दैनिक निकलता था, जिसमें 'वारसी' तखल्लुस (उपनाम) से

अशफ़ाकउल्लाकी बहुत-सी ग़ज़लें छपती थीं। अशफ़ाक हवालातमें बैठकर अकसर ग़ज़लें लिखा करते थे। हमारे वकील लोग उन्हें ले जाकर छपाया करते थे। उनकी एक ग़ज़ल मुझे अभीतक याद है, जिसे उन्होंने मेरे सामने लिखा था—

सुनाएँ ग़म की किसे कहानी, हमें तो अपने सता रहे हैं।
हमेशा सुबहोशाममें दिलपर सितमके खंजर चला रहे हैं॥
न कोई इंगलिश, न कोई जर्मन न कोई रूसियन न कोई तुर्की।
मिटानेवाले हैं अपने हिन्दी, जो आज हमको मिटा रहे हैं॥

अशफ़ाकउल्ला बहुत खुशदिल और हँसमुख व्यक्ति थे। उनको कभी गुस्सा होते तो मैंने देखा ही नहीं। जेलमें भी उनकी खुशमिजाज़ी हमेशा कायम रही। एक दिन मुख्य मुकदमे के सरकारी वकील पं० जगतनारायण मुल्ला हमारे कोटमें चंद मिनटोंके लिए आए थे। उस वक्त मुख्य मुकदमेका फैसला नहीं सुनाया गया था। अशफ़ाकउल्लाने पं० जगतनारायण मुल्लाके बारेमें उसी वक्त कुछ शेर कहे थे—

चलो चलो यारो रिंग थियेटर, दिखाएँ तुमको . . .
जो चंद टुकड़ोंपर सीमोजरके नया तमाशा दिखा रहे हैं।

इसमें पं० जगतनारायण मुल्लाकी ओर इशारा था, जो गवर्नमेंटसे ५०० रुपये रोज लेकर देशभक्त क्रांतिकारियोंके खिलाफ सरकारकी ओरसे पैरवी कर रहे थे। रिंग थियेटर में हमारे मुकदमेकी अदालत बैठती थी।

मुकदमेकी सुनवाई समाप्त हो चुकी थी। फैसलेके दिन से पहले वाली रात को खाने-पीनेके बाद अशफ़ाकने सलाह की कि कल कचहरीमें गानेके लिए कोई नई चीज़ बनाई जाये। फिर उन्होंने एक गीत बनाया, जिसकी चन्द लाइनें मुझे अब तक याद हैं।

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूंगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन करूंगा।

सेशन-कोर्टमें एक एक्ज़िबिट था। वह थी, अशफ़ाक-उल्लाकी एक चिट्ठी, जिसमें उन्होंने हिन्दुस्तानकी बहुत-सी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर खूब तर्क-वितर्कके द्वारा चिन्तन किया था।

अशफ़ाकउल्ला वैसे उम्रमें मुझसे साल डेढ साल बड़े ही थे, लेकिन पार्टीके संगठनका ज्यादा पुराना और तजर्बेकार कार्यकर्ता होनेके नाते वे मुझे ही बड़ा मानते थे। रोज व रोज होनेवाले क्रांतिकारी मामलोंमें वे मुझे ज्यादा प्रवीण भी समझते थे, इसलिए हमेशा मुझसे सलाह लेते थे और उसे मानते भी थे। लेकिन जिस वक्त मुझे और अशफ़ाक को सजा सुनाई गई थी—मुझे उम्र कैद यानी कालेपानीकी सजा दी गई और अशफ़ाकको फांसीकी सजा सुनाई गई। मुझे ऐसा लगा मानो अशफ़ाक एकाएक मुझसे बहुत ऊँचे हो गये हैं। वैसे मैं बता चुका हूँ कि वे राजकुमारोंके समान ऊँचे पूरे और गठे हुए बदनके आकर्षक व्यक्ति थे, पर उस समय तो उनका व्यक्तित्व सहसा मुझे इतना बड़ा लगने लगा कि मेरी समझमें कुछ न आया। मेरी आँखोंसे आंसू निकल आये। मैं बड़ी कठिनाईसे बंगलामें कह सका—एक यात्रा में पृथक फल नहीं होना चाहिये, मुझे भी यही सजा मिलनी चाहिये थी।

मेरा गला रूंध गया था। मुझसे और कुछ नहीं बोला गया। उस समय अशफाकउल्ला ही उलटे मुझे समझाने लगे थे। उनके धैर्य-धारण करनेकी शक्ति अद्भुत थी।

हम लोग फैसला सुनाये जानेके बाद अदालतसे जेल लाये गये। शामको लखनऊ-स्टेशन तक हमारा साथ रहा, फिर वे फैजाबाद जेलमें फांसी घरके लिये भेज दिये गये और मैं आगरा सेण्ट्रल जेल भेजा गया।

उस दिनसे हम और वे हमेशाके लिए अलग हो गये। फिर कभी अपने प्यारे अशफ़ाकको देखनेका मौका न मिला, लेकिन आज भी उनका आकर्षक व्यक्तित्व, सुन्दर हँसमुख राजकुमारों जैसा चेहरा मेरी आँखोंके आगे मौजूद है।

श्री बख्शी इस समय तक बहुत व्याकुल हो गये थे, मानों उनके सामने सचमुच अशफ़ाकउल्ला साकार होकर उपस्थित हो गये हों। बड़ी कठिनाईसे वे इतना कह पाये—

"१९ दिसम्बर, १९२७ को उन्हें फांसी दी गई।"

अशफ़ाक इस संसारको छोड़कर अमर शहीद हो गए। साम्राज्यवादने उनके शरीरको मिटा डाला, पर अशफ़ाक सदा सदाके लिए भारतीयोंके हृदयमें अमिट हैं। देशके ऊपर न्यौछावर होनेवाले वीरोंको भला कौन भूल सकता है? भारतको अपने जिन बेटों पर गर्व है, शहीद अशफ़ाक का नाम उनकी सर्वोच्च श्रेणीमें रक्खा जायगा।

अशफ़ाक

रामप्रसाद "बिस्मिल"

मुझे भलीभांति याद है, जब कि मैं बादशाही ऐलानके बाद शाहजहांपुर आया था, तो तुमसे स्कूलमें भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलनेकी बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्रके सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूलका मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकारकी बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातोंका उत्तर उपेक्षाकी दृष्टिसे दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुखसे हार्दिक भावोंका प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादेको योंही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चयपर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेसमें बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रोंद्वारा इस बातका विश्वास दिलानेकी कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिलमें मुल्ककी खिदमत करनेकी ख्वाहिश है। अन्तमें तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशोंने मेरे दिलमें जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिलके सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनोंमें ही तुम मेरे छोटे भाईके समान हो गये थे, किन्तु छोटे भाई बनकर ही तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता के अधिकार चाहते थे, तुम मित्रकी श्रेणीमें अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गये। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमानका मेल कैसा? मैं मुसलमानोंकी शुद्धि करता था। आर्यसमाज मंदिरमें मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातोंकी किंचितमात्र भी चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हारे मुसलमान होनेके कारण कुछ घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चयमें दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मंदिरमें आते-जाते थे। हिन्दू-मुसलिम झगड़ा होनेपर, तुम्हारे मुहल्लेके सब कोई तुम्हें खुलमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिरके नामसे पुकारते थे, पर तुम कभी उनके विचारोंसे सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवनमें कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानोंको खुदा अक्ल देता कि वे हिन्दुओंके साथ मिल करके हिन्दोस्तानकी भलाई करते। जब मैं हिन्दीमें कोई लेख या पुस्तक लिखता, तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दूमें क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें? तुमने स्वदेश-भक्तिके भावोंको भलीभांति समझनेके लिए ही हिन्दीका अच्छा अध्ययन किया। अपने घरपर जब माताजी तथा भ्राताजीसे बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँहसे हिन्दी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकारकी प्रवृत्ति देखकर बहुतोंको संदेह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्यागकर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तुकी कराते? तुम्हारी इस प्रकारकी प्रगतिने मेरे हृदयपर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्रमण्डलीमें बात छिड़ती कि कहीं मुसलमानपर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने-तुमने एक थालीमें भोजन किए। मेरे हृदयसे यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमानमें कोई भेद है। तुम मुझपर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ! तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकते थे। तुम तो मुझे सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हें हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँहसे बारम्बार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बांधवोंको आश्चर्य था कि 'राम'-'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह'-'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्रका आगमन हुआ, जो 'राम' के भेदको जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलनेपर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग 'राम'-'राम' के भेदको समझे।

अन्तमें इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रताका परिणाम क्या हुआ? मेरे विचारोंके रंगमें तुम भी रँग गये। तुम भी एक कट्टर क्रांतिकारी बन गये। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि जिस प्रकार हो मुसलमान नवयुवकोंमें भी क्रांतिकारी भावोंका प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी

आंदोलनमें योग दें। जितने तुम्हारे बंधु तथा मित्र थे, सबपर तुमने अपने विचारोंका प्रभाव डालनेका प्रयत्न किया। बहुधा क्रांतिकारी सदस्योंको भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमानको क्रांतिकारी दलका प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञाकी अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्तके समान मेरी आज्ञा पालनमें तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है, तो यही कि तुमने संसारमें मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारतके इतिहासमें यह घटना भी उल्लेखनीय हो गयी कि अशफ़ाकउल्लाने क्रांतिकारी आंदोलनमें योग दिया। अपने भाई-बंधु तथा सम्बन्धियोंके समझानेपर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जानेपर भी अपने विचारोंमें दृढ़ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मासे उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालतमें तुमको मेरा सहकारी (ऐप्रूवर) ठहराया गया और जजने मुकदमेका फैसला लिखते समय तुम्हारे गलेमें जयमाल (फाँसीकी रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर संतोष होगा कि जिसने अपने माता-पिताकी धन-सम्पत्तिको देश-सेवामें अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदरके भावी भाग्यको भी देश-सेवाके लिए भेंट चढ़ा दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवामें अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफ़ाकको भी उसी मातृ-भूमिकी भेंट चढ़ा दिया।

'असग़र' हरीम इश्कमें हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिये हुए॥

(आत्म-कथा से उद्धृत)

['बिस्मिलकी आत्म-कथा' आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीर गेट, दिल्लीसे २॥) में मिल सकती है।]

दीपदान दो !

घनश्याम अस्थाना

दीपदान दो !
दो नवीन ज़िन्दगी, नया विहान दो !
दीपदान दो !
कोटि-कोटि दीपमाल झिलमिला उठें !
युग-सुषुप्त अंधमूल तिलमिला उठें !
ध्वांत-बन्दि हेतु, शुभ्रि !
मुक्तिगान दो !
दीपदान दो !

व्योमदीप संग नैशगान गा उठें !
मुग्ध-सी प्रदीपराग गुनगुना उठे !
दीपमालिके ! प्रदीप्त-
स्वर-वितान दो !
दीपदान दो !

मुग्धसे प्रकाश-गीत-विन्दु झर पड़ें !
रक्तमय पलाश-पुष्पसे बिखर पड़ें !
दीप-नृत्य-मध्य, प्राण !
ज्योति-स्नान दो !
दीपदान दो !

पुर्तगाली युद्ध-पोत

एक प्रकृति प्रेमी

पुर्तगाली युद्ध-पोत ? हाँ, पुर्तगाली युद्ध-पोत। पर पुर्तगाली युद्ध-पोत शब्दसे पाठक घबरायें नहीं। लेखका शीर्षक पुर्तगाली युद्धपोतोंसे तात्पर्य पुर्तगालका कोई जंगी जहाज नहीं है, वरन् ऐसे समुद्री जीवोंसे है, जो उष्ण-प्रधान समुद्रोंमें चलते-फिरते हैं और समुद्री तूफान तथा लहरोंके कारण कभी-कभी इंग्लैंडके डैवन और कार्नवालके समुद्री तटोंपर आ पटके जाते हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके उत्तरी समुद्र तटपर भी वे पड़े पाये जाते हैं। उनका नाम पुर्तगाली युद्ध-पोत शायद इसलिए पड़ा कि पुर्तगालने पहले-पहल अपने जलपोतोंपर लोहेके प्लेट लगाये थे।

पुर्तगाली युद्ध-पोतका वैज्ञानिक नाम 'फाइसेलिया' है। युद्ध-पोतके समान 'फाइसेलिया'—पुर्तगाली युद्ध-पोत—समुद्रमें तैरने और गति करनेमें बड़ा अभ्यस्त है। पर युद्ध-पोतोंके ही समान वह समुद्री तूफान और भयंकर लहरोंसे घबराता है और प्रचंड प्रहारसे वह इधर-उधर ले जाया जाता है। पुर्तगाली युद्ध-पोत—फाइसेलिया—का नामकरण बुलबुलेके समान एक तैरती हुई वस्तुके कारण है। पुर्तगाली युद्ध-पोत फुटबौलके समान दिखाई पड़ता है, पर वह रंग-बिरंगे रंगोंसे रंजित रहता है। उसमें नाइट्रोजन गैसके कोष होते हैं, कुछ औक्सीजन भी होती है। इन गैस कोषोंके सहारे वह समुद्रके ऊपर तैरता भी है और अंदर भी चला जाता है। फुटबौलके बैलूनके समान कर्ण-रूप में बनी हुई एक लकड़ी-सी ऊपरको तैरती हुई दिखाई पड़ती है और पुर्तगाली युद्ध-पोतको पहचाननेका यही सबसे सरल तरीका है। उसके नीचे पानीमें डोरीनुमा भुजायें और जैली फिशकेसे अवयव रहते हैं।

पुर्तगाली युद्ध-पोत यों तो 'हाइड्रा' और 'जैलीफिस' वंशका एक जीव है, पर वह उन सबसे अधिक विकसित विशेष प्रकारका जीव है। इस वंशमें लगभग दस हजार जीव हैं और वे कई भागोंमें विभाजित हैं। वैज्ञानिकोंने उन्हें 'मैडूसा' और 'पौलिप्स' कहा है। 'हाइड्रा' 'पौलिप' का ही एक विशेष रूप है। हाइड्रा डंठलाकार होता है, उसके लम्बी भुजायें होती हैं और बीचमें मुँह होता है। उष्ण प्रधान समुद्रमें जो जीव चट्टाने-सी बनाते हैं और स्पंज मिलते हैं, वे पौलिस हैं। छतरीनुमा जैलीफिश देखनेमें पौलिप नहीं मालूम होते। अन्य 'मैडूसा' जीवोंके समान जैलीफिश पलटी हुई पौलिप मालूम देती है। पर इसका शरीर अपेक्षाकृत अधिक फैला हुआ घंटेके समान दिखाई पड़ता है।

फाइसेलिया—पुर्तगाली युद्ध-पोत—के लिए यह कहना पड़ेगा कि वह एक जीव नहीं है, वरन् बहुतसे जीवोंका एक

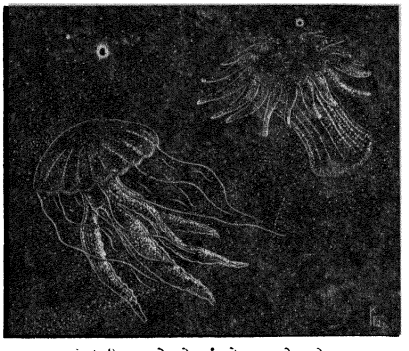


समुद्रके धरातलपर तैरता हुआ पुर्तगाली युद्धपोत। उसके नीचे पानीमें उसकी विशाल भुजाओंका जाल-सा है।

उपनिवेश है, जिसमें पौलिप्स और मैडूसा दोनों ही सम्मिलित हैं। मैडूसा और पौलिप्सके विभिन्न कोश पुर्तगाली युद्ध-पोतमें इस प्रकार समन्वित रहते हैं कि उनका कार्य मिला जुला होता है। यों तो 'पौलिप्स' और 'मैडूसा' बिल्कुल अलग-अलग जीव होते हैं, पर पुर्तगाली युद्ध-पोत में एक ही जीवमें वे इस प्रकार मिले रहते हैं कि उनको यदि अलग कर दिया जाय तो जीवित नहीं रहते। अर्थात् दोनोंके मिलनेसे जो नया जीव बनता है, वही पुर्तगाली

युद्ध-पोत होता है। पर उनका मिलन युद्ध-पोतके जन्मसे ही होता है। पुर्तगाली युद्ध-पोतमें वायुका एक बबूला, मैडूसाका एक संशोधित रूप है और मैडूसाके तरारे (float) से तीन प्रकारके विशेष पौलिप्स लटकते हैं। इन लटकते हुए तीन पौलिप्सका सहकारिताकी दृष्टिसे एक विशेष स्थान होता है। अब तक वैज्ञानिकोंको इस बातका पूरा पता नहीं है कि पुर्तगाली युद्ध-पोतोंका जन्म और विकास कैसे होता है। उनमें नर और मादा होते हैं और प्रजननका कार्य भी उन्हींसे होता है।

पुर्तगाली युद्ध-पोतका खानेवाले भाग सम्पूर्ण उपनिवेश को भोजन पहुंचाता है। पुर्तगाली युद्ध-पोतको महसूस



पुर्तगाली युद्धपोतके वंशके सगुद्रो जोव जैली फिश और मैडूसा।

करनेवाली और पकड़नेवाली भुजायें पचास फीट या उससे भी अधिक लम्बी होती हैं। अभागी मछलीका बचना मुश्किल ही होता है। ये विशाल भुजायें (Tentacles) शिकार पकड़नेके अतिरिक्त पुर्तगाली युद्ध-पोतके उपनिवेशका और भी काम करती हैं। जब समुद्रमें तूफान आता है और वह लहरोंसे उद्वेलित हो जाता है तब पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजायें लंगरका काम करती हैं। पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजायें अनेक थैलियोंसे सुसज्जित रहती हैं, जिनको आक्रमण अथवा धमकीकी थैलियाँ कह सकते हैं। उन थैलियों अथवा कोषोंके कारण ही पुर्तगाली युद्ध-पोतको विषाक्त कटीले जीव कह सकते हैं। बिच्छू-घासके काँटोंके छूनेसे जिस प्रकार छूनेवालेके शरीरमें फौरमैलीन एसिड प्रवेश कर जाती है, मानो बिच्छूने डंक मार दिया हो, उसी प्रकार पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजाओंमें स्थित छोटे-छोटे काँटोंसे विष निकलता है। प्रत्येक कण्टक-कोषमें एक 'कैप्सूल' होता है। कैप्सूलके भीतर एक लम्बी गुजलकदार नली होती है। काँटेका कोष बन्दूकके घोड़े जैसा सुसज्जित होता है और जब यह घोड़ा कोई छू लेता है या उससे छेड़खानी हो जाती है तब कैप्सूलमें वही गति होती है, जो भरी बन्दूकके घोड़ा दबानेसे होती है। पर बन्दूकके घोड़े दबाने और युद्ध-पोतकी भुजाओंमें लगे कैप्सूलके घोड़ेके समान यंत्रमें भेद यह है कि बन्दूकके घोड़ेके दबानेसे एक यांत्रिक



शिकारकी खोज करनेवाले जाल जैसी डोरियों और अंगूर जैसी लगी ग्रन्थियाँ नर और मादा मैडूसा।

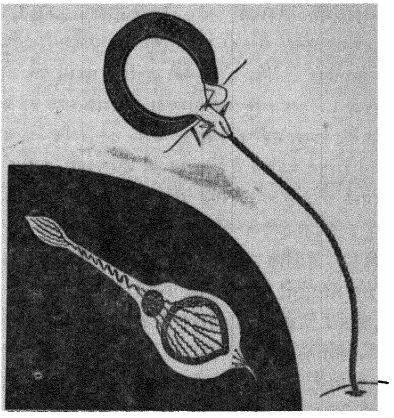
क्रिया होती है। अर्थात बन्दूकके घोड़ेको दबानेकी क्रिया नितांत रूपसे यांत्रिक है, यदि भरी बन्दूकके घोड़ेको कोई भी दबाये तो बन्दूक चल जायगी, पर पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजाओंमें स्थित कैप्सूलसे लगे घोड़ेके दबने या स्पर्शसे पुर्तगाली युद्ध-पोतके सजातीय जीवोंपर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है—उनसे कोई जहर निकलकर सजातीय जीवों पर नहीं छूटता। पुर्तगाली युद्ध-पोतके इन विषाल काँटोंकी यांत्रिक रूपरेखा कुछ भी हो, पर हजारों मानवी तैराक इस बातका प्रमाण दे सकते हैं कि पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजाओंके छू जानेसे उनके शरीरमें विष प्रवेश कर जाता है। विष-कोषोंकी एक विशेषता यह है कि जब एक बार उनके विष-कोषोंकी कैप्सूलसे विष निकल जाता है तब दुबारा विषके लिए कुछ समय चाहिए।

जैली फिश अनेक प्रकारसे प्रहार करती है, उनमें दो मुख्य हैं। एक तो भालेकी तरह फेंककर अपने शिकारपर आक्रमण करना और दूसरे अपनी भुजाओंसे जकड़कर उसमें जहर डालना। पुर्तगाली युद्ध-पोत भाला (हारपून) फेंक कर मारनेकी भाँति हमला करता है और जो विष उससे निकलता है, वह जैली फिश, हाइड्रा, मैड्रसा आदिके विषोंसे तेज होता है। समुद्रके और भी ऐसे जीव हैं, जो स्पर्शमात्र से जहरको शरीरमें डंककी भाँति पहुंचा देते हैं। उनमेंसे अनेक जीवोंके विष साधारण-सी पीड़ा करते हैं, पर पुर्तगाली युद्ध-पोतका विष समुद्रके अन्य जीवोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र है। कभी-कभी तो वह विघातक भी होता है। साधारण विषसे तीव्र वेदना होती है और अधिक विषसे कभी-कभी मनुष्य मर भी जाता है।

पुर्तगाली युद्ध-पोतके विषाक्त कोषोंके स्पर्शसे मनुष्यके शरीरमें बड़ा तेज जहर प्रवेश कर जाता है। वेदनाके अतिरिक्त खालपर घाव हो जाते हैं। वेदना कई सप्ताहतक चलती है। जी मचलाता है, बुखार भी आ जाता है। पुर्तगाली युद्ध-पोतसे हाथसे छेड़खानी करना अथवा उसके रंग विरंगे बल्बाकार कोषोंकी ओर आकर्षित होना बड़ा खतरनाक है।

स्मरण रहे कि पुर्तगाली युद्ध-पोत इतना खतरनाक होने पर भी कुछ जीवोंके लिए निर्दोष-सा है। कुछ समुद्री केकड़े और दो-एक प्रकारकी मछलियाँ उसके जहरसे मुक्त-सी हैं और एक मछली तो उसकी भुजाओंपर मुँह मारकर अपना भोजन भी प्राप्त करती है और पुर्तगाली युद्ध-पोतकी भुजाओं में घुसकर कुछ मछलियाँ बड़ी मछलियोंसे संरक्षण भी प्राप्त करती हैं। प्राणिशास्त्रके वैज्ञानिकोंका मत है कि पुर्तगाली युद्ध-पोतके सम्पर्कमें रहनेसे और थोड़ा-थोड़ा उसका जहर शरीरमें जानेसे, वे केकड़े और मछलियाँ उस जहरके प्रभावसे मुक्त हो जाते हैं।

समुद्री जीवोंके विषयमें अभीतक लोगोंको पूरी जानकारी नहीं है। उदाहरणके लिए अनेक लोगोंको यह नहीं मालूम कि ताजे पानीका शार्क जो बहुत बड़ा तो नहीं होता, पर बड़ा खतरनाक होता है। जिस जगह वह होता है, वहाँ नदियोंमें लोग घुसनेका साहस नहीं करते। उसका प्रहार इतना तीव्र होता है और आदमीकी टाँग इतनी तेजी से काट ले जाता है कि टाँग कटनेकी वेदना आदमीको तब होती है, जब कटी टाँगमें खारी पानी लगता है। कलकत्ते से दक्षिणकी ओर सुन्दरबनकी ज्वार-भाटेकी नदियोंमें कोई इसलिए स्नान नहीं करता कि कहीं शार्क आक्रमण न कर दे। कुछ वर्ष पूर्व डाइमंड हार्बरमें कई अंग्रेज तैरनेको पानी



बाईं ओर डंक सज्जित विष-कोष। उसके अन्दर काँटे का कैप्सूल है, जिसका कि जहर फेंकनेवाली नलीका विष आक्रमणसे खाली हो गया है। दाहिनी ओर विषसे भरा ट्यूब है। भीतर गुंजलकमारी ट्यूबसे जब खुले घोड़ेसे छेड़खानी होती है, तब जहर निकलता है। भीतरके रेशे जहर फेकनेमें सहायक होते हैं।

में घुसे। उन्हें शार्कका खतरा बताया गया, पर वे नहीं माने। कमरतक पानीमें जाते-जाते दो अंग्रेजोंकी टाँगें शार्क काट ले गए। एक-दो पर साधारण हमला हो पाया। पुर्तगाली युद्ध-पोत भी समुद्रका एक खतरनाक जीव है, जिससे जानकार लोग हमेशा बचते हैं। समुद्री जीवनकी कथा बड़ी रोचक और उपादेय है। पुर्तगाली युद्ध-पोत उन्हींमेंसे एक अध्ययनयोग्य जीव है।

(संकलित)

तमसो मा ज्योतिर्गमय

रामवीर शास्त्री 'अरुणेश'

दीपावली हमारे राष्ट्रिय पर्वोंमें एक है। इसका स्थान उन चार महापर्वोंमें प्रधान है, जिन्हें हम क्रमशः श्रावणी, विजयादशमी, दीपावली और होली नामसे पुकारते हैं। लोकमान्यतानुसार श्रावणी ब्राह्मणोंका, विजयादशमी क्षत्रियों का, दीपावली वैश्योंका और होली शूद्रोंका प्रधान पर्व माना जाता है। यद्यपि कि यह मान्यता आंशिक सत्य ही प्रकट करती है, सम्पूर्ण नहीं। वास्तविकता यह है कि ये चारों ही पर्व राष्ट्रिय महापर्व हैं और सम्पूर्ण भारतवर्षमें समान रूप से मनाये जाते हैं। अतएव ये वर्गीय नहीं, प्रत्युत राष्ट्रिय पर्व हैं। अतः इन्हें वर्गीय पर्व मानना अत्यन्त अनुचित एवं अविवेकपूर्ण है और इसके महत्त्वको कम करना है। अतएव हम सब भारतीयों का यह परम कर्त्तव्य है कि हम सब इस निर्मूल और निराधार धारणाका कटिबद्ध होकर समूलोच्छेद कर दें, क्योंकि ऐसी ही धारणाएँ राष्ट्रिय एकतापर कुठाराघात करती हैं। इसीलिए इन राष्ट्र-विनाशक धारणाओंका समूलोच्छेदन हम सबका परम धर्म है। ऐसी ही असंख्य धारणाएँ आज राष्ट्रको चतुर्दिक पादाक्रान्त करके जर्जर बना चुकी हैं, जिनका समय रहते सत्यानाश करना होगा, वरना हाथ मलते हुए हमें फिर कहना पड़ेगा "अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।' इसीलिए राष्ट्र-हितैषियो! समय रहते सावधान हो जाओ! तुम्हें भावी भव्य भारतका भाग्योदय करना है, मानव-सौभाग्यका सूर्योदय करना है, रामराज्यका अरुणोदय करना है! उठो! जागो!! सावधान हो जाओ! वह देखो! क्षितिजके उस पार देखो!! जहाँ उषाके आँगनमें अरुणोदय आशाका अमर संदेश दे रहा है। जागृतिका शंखनाद कर रहा है। इसीलिए तो दीपावली प्रतिवर्ष आकर हमें आशा और ज्ञान का दिव्य प्रकाश दे जाया करती है। प्रकाश सदा ही ज्ञान का प्रतीक रहा है और अंधकार अज्ञानका। इसी कारण सर्वाधिक तमपूर्ण दिवस कार्तिक अमावस्याको ही हम दीप जलाकर अपने अज्ञान-अंधकारको नष्ट करते हैं और ज्ञानका नूतन आलोक फैलाते हैं, जो मानव जीवनमें सुख-शांति-समृद्धिके लिए सर्वाधिक आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य वस्तु है। जिसके अभाव में मानव दानव क्या पशु बन जाता है। वह दानवसे भी दुर्धर्ष और पत्थरसे भी कठोर बन जाता है। इसके विपरीत, यह जिसमें जितने अधिक मात्रामें होता है, वह उतना ही बड़ा महापुरुष होता है। मानव-विकास इसी ज्ञानपर अवलम्बित है। इसीलिए तो युग-युगसे हम यह वैदिक प्रार्थना करते आये हैं—"तमसो मा ज्योतिर्गमय।" दीपावली जिसका प्रतीक बनकर प्रतिवर्ष हमें प्रबुद्ध कर जाया करती है। इसी महत्त्वके कारण तो आधुनिक भारतके उद्धारक, राष्ट्रपितामह महर्षि दयानन्दने आजीवन ज्ञान-दान करते हुए, इस दिनकी दीपशिखाको अपने प्राणोंसे प्रदीप्त किया था।

दीपावलीके समय कृषकोंका घर नवीन अन्नसे भर जाता है। प्रायः नये अन्न इस समय उत्पन्न हो जाते हैं। कृषक वर्षभरके श्रमका पुरस्कार प्राप्तकर फूले न समाते हैं और इसका आनन्द मनानेके लिए दीपावली मनाते हैं, इसीलिए तो दीपावली मनाना खुशीका मुहावरा हो हो गया। इसीलिए तो दूसरे दिन अन्नकूट मनाया जाता है और बहनें भाइयोंको मिष्टान्न खिलानेके लिए तीसरे दिन भ्रातृ-द्वितीया मनाती हैं। इस प्रकार यह कृषिका सर्वोत्तम दिन है। इसकी सुन्दर संधिवेलासे जब कुछ अन्न तैयार हो गये रहते हैं, कुछ तैयारीकी दिशामें अग्रसर होते हैं, कृषकोंका भण्डार नए अन्नसे भर जाता है, तभी व्यापारका भी श्रीगणेश होता है। समृद्धि शब्द स्त्रीलिंग होनेसे ही इसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीकी कल्पना भी स्त्री रूपमें ही करके उसका पूजन आरम्भ किया गया है, ताकि हमारे यहाँ सदा ही समृद्धिका सागर लहराता रहे। इसीलिए वैश्यवर्ग इस दिन अपना नया हिसाब-किताब भी आरम्भ करते हैं। इसी हेतु कुछ लोगोंने इसे वैश्योंका ही पर्व माना है। उत्पादन और वितरणका सम्पूर्ण अधिकार वैश्यवर्गके ही हाथों सुरक्षित होनेसे, वे ही समाजके अन्नदाता-पिता हैं। इसीलिए वे ही इस महासमारोहको आयोजित करते हैं। पर इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं है कि यह पर्व केवल उन्हीं लोगोंका है। इससे तो सम्पूर्ण समाज लाभान्वित होता है। फिर यह केवल उन्हींका कैसे हुआ? अतः ऐसी धारणा बौद्धिक दिवालाका द्योतक है।

इस दिन दीपमाला सजाकर दीपावलीको मनानेका वैज्ञानिक कारण यह है कि हम नए अन्नोंके उत्पन्न हो जानेपर उसका हर्षोल्लास मनाते समय भविष्यके लिए यह शुभकामना तथा प्रार्थना करना नहीं भूलते हैं कि इस नवीन अन्नका भोजन करनेसे हमें ज्ञान प्राप्त हो, जिससे हम भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अधिकाधिक उन्नतिकर लोक-परलोकमें सुख, शान्ति और समृद्धिका सागर लहरायें। यह अन्न हममें ज्ञान, विज्ञान और पराक्रमकी वृद्धि करे, क्योंकि अन्नसे ही हमारा पालन-पोषण होता है। इसीपर मानव-जीवन निर्भर है। इसलिए हमारे शास्त्रोंमें अन्नको ही ब्रह्म कहा गया है :—"अन्नं ब्रह्म" क्योंकि भूखमें तो धर्म-कर्मकी सुधि भी नहीं रह जाती, फिर उनका आचरण कैसे सम्भव है? कहा भी है "बुभुक्षितः, किं न करोति पापम्", 'भूखे भजन न होई गोपाला'। पर पेट भर जानेपर केवल धर्म ही नहीं होता, अपितु उससे अधिक पाप ही होता है। इसीसे बचनेके लिए तो हम ज्ञान प्राप्तिकी कामना करते हैं और इसके लिए उस सर्वशक्तिमानसे प्रार्थना करते हैं। इसीलिए दीप जलाकर ही दीपावली मनाते हैं; क्योंकि दीपसे ही ज्योति मिलती है और ज्योति ज्ञानका प्रतीक है। इसी कारण तो सदियोंसे ही नहीं, सहस्राब्दियोंसे, इससे भी अधिक आदि सृष्टिसे हम यह वैदिक प्रार्थना करते आए हैं :—'तमसो मा '। यही दीपावलीका रहस्य है और इसकी उत्पत्तिका यही वैज्ञानिक कारण है। इसीलिए हमारे जीवनमें इसका इतना महत्व है। जब मानव मात्रका अज्ञान-आवरण नष्ट हो जायेगा तो हम जिसे अपना राष्ट्रिय पर्व ही मानते हैं, वह दीपावली मानव मात्रका सार्वभौमिक पर्व हो जायेगा, तभी सार्वभौमिक संस्कृतिका विकास होगा तभी सार्वभौमिक समाज और सार्वभौमिक राज्यका निर्माण संभव होगा, तभी और केवल तभी मानव मात्र सुख-शान्ति-समृद्धिके सागरमें गोता लगा पायेगा, सानन्द सुखकी नींद सो पायेगा, विश्वयुद्धसे मुक्त हो पायेगा, अन्यथा उसका विनाश ध्रुव निश्चित है। आज संसारके सम्मुख दो ही विकल्प हैं :—सार्वभौमिकता या सर्वनाश। इनमेंसे मानवको किसी एकको चुन ही लेना है। सर्वोत्तमको चुननेके लिए ज्ञानकी आवश्यकता है और दीपावली प्रतिवर्ष इसीका अमर संदेश देती है। हम जिसका सदा ही अनुगमन करते आए हैं। तभी तो हमारी संस्कृति भीषण आंधियों और तूफानोंमें भी जीवित रही है। इसीपर तो मुग्ध होकर कविवर इकबालने कहा था :—

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
ईरान, मिश्र, रोमा सब मिट गए जहांसे,
बाकी जहाँमें अब तक नामो निशां हमारा।"

भारतीय संस्कृतके अमर गायक 'प्रसाद' इसका और प्रचण्ड शंखनाद करते हैं :—

"जातियोंका उत्थान पतन, आंधियां झड़ी प्रचण्ड समीर,
खड़े देखा हेला हंसते, प्रलयमें पले हुए हम वीर,
... ...
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्यसंतान॥

इसकी उत्पत्तिका दूसरा वैज्ञानिक कारण तथा रहस्य यह है कि वर्षा-ऋतुमें वर्षाके कारण सर्वतोमुखी मलीनता छा जाती है। बाह्य तथा आभ्यंतरिक दोनों ही प्रकारकी अशुद्धताका साम्राज्य छा जाता है, जिसे इसी दिन नष्ट किया जाता है; क्योंकि इस समय तक वर्षा बिल्कुल समाप्त हो जाती है। इस प्रकार सर्वतोमुखी स्वच्छतासे घर-बाहर सर्वत्र भव्य, आकर्षक और मनमोहक दृश्य उपस्थित हो जाता है।

तीसरा वैज्ञानिक कारण यह है कि वर्षा-कालमें असंख्य कीड़े जन्म लेकर मानवको कष्ट देते हैं, जिनका नाश दीपक जलनेपर ही होता है। इसीलिए असंख्य दीपमाला जलाकर उनका विनाश कर दिया जाता है।

यह शरद्-ऋतुमें मनायी जाती है। यह ऋतु वह सन्धि वेला है, जहाँ दो सर्वथा विपरीत ऋतुयें परस्पर मिलती हैं। कहाँ वर्षाकालीन दूषित जलवायु और शरद्-कालीन स्वच्छ जलवायु! आकाश-पातालका अन्तर है। इस ऋतुमें सबसे भयंकर बात यह होती है कि जो इसको पार कर जाय, वही फिर सौ वर्ष जीनेकी आशा कर सकता है। इसमें ग्रीष्म-कालीन रक्तप्रसारण शरद्-कालीन रक्त-संकोचनमें परिवर्तित हो जाता है। जिससे रक्त सम्बन्धी ज्वर-जुकाम आदि अनेक प्राणघातक व्याधियां हो जाती हैं; क्योंकि रक्तगतिही सर्वथा विपरीत हो जाती है। कहाँ तो ग्रीष्म-कालमें फैलती है और कहाँ शरद्-कालमें संकुचित होने लगती है। इससे स्वास्थ्यमें आश्चर्यजनक अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। जो शरीरके इस आन्तरिक संघर्षमें

विजयी होता है, वही सौ वर्ष तक अपनी अजेय विजय-वैजयन्ति लहराता है। "जीवेन, शरद् शतम्" आदि वैदिक मंत्रोंका भी यही वैज्ञानिक रहस्य है। इसीलिए इन वैदिक मंत्रोंमें बारम्बार शरद्-कालका ही उल्लेख किया गया है, दूसरे कालोंका नहीं। इसकी ज्ञानप्राप्ति भी दीपावलीमें ही सन्निहित है। इसीलिए दीपावली शरद्कालकी भरपूर जवानीमें ही मनायी जाती है।

दीपावलीके इन चारों वैज्ञानिक कारणोंको हम क्रमशः दो वर्गोंमें विभाजितकर सकते हैं :—आध्यात्मिक और भौतिक। प्रथम कारण आध्यात्मिक है और अन्य तीनों भौतिक। भौतिक कारणोंको भी दो वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है :—आर्थिक और आयुर्वेदिक।

इस प्रकार आद्योपान्त विवेचन करनेपर कहीं भी इसमें साम्प्रदायिकताका गंध नहीं मिलता। संसारके अन्य सब पर्व साम्प्रदायिक हैं; क्योंकि उनका सम्बन्ध किसी न किसी जाति और व्यक्ति विशेषसे है, जैसे कृष्ण-जन्माष्टमी, गुरु-नानक-जयन्ती, बुद्ध-जयन्ती, ईसा-जयन्ती (बड़ा दिन), और मुहर्रम इत्यादि। इनमेंसे कोई भी इसके अपवाद नहीं हैं। पर दीपावलीके साथ यह बात नहीं, वह अपनी उत्पत्ति, स्वरूप तथा विकास सबमें पूर्णतः सार्वभौमिक है। अतः इसे हम सब मानव मात्रको सोहोत्साह, सोल्लास और सानन्द मनाना चाहिये, ताकि हम सब ज्ञानी हों। जिससे हमारे अज्ञानजनित दुःख, द्वेष, और दारिद्रय आदि सब नष्ट हो जायं और हम मंगलमय सदा समृद्धिशील सार्वभौमिक समाज और सार्वभौमिक राज्यकी सृष्टिकर संसारको सदाके लिए सानन्द कर दें।

दीपावलीके गौरवशाली आनन्ददायक सांस्कृतिक इतिहासमें काल-क्रमसे अनेकानेक शृंखलाएँ आबद्ध होती गयीं। इसी दिन भारतीय संस्कृतिके अमर स्तम्भ, भक्तराज, महावीर हनुमानका जन्म हुआ था। जिनकी वीरता, त्याग, तप और बलिदान सदा ही चिर स्मरणीय आदर्श रहेंगे।

आनन्दकी तृतीय शृंखला यह है, जब युग-सम्राट भगवान राम चौदह वर्षका वनवास ही नहीं, संसारका प्रचण्ड अत्याचारी शासक रावणको भी समाप्तकर संत्रस्त मानव मात्रको भयमुक्तकर इसी दिन अपनी राजधानी अयोध्यामें पधार कर अपनी चरण-धूलिसे उसे पवित्र किया था और लोक संरक्षणार्थ राजदण्ड ग्रहण करते हुए "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" का तुमुलनाद किया तो सम्पूर्ण देश हर्षसे आन्दोलित हो उठा और दीपावलीको शताधिक उत्साहसे सानन्द मनाया। तभीसे इसपर्वमें अद्भुत जवानी आ गयी, जो अभी तक विकासकालमें अपनी शैशवावस्थाको पारकर यौवन-प्रांगणमें पदार्पण करनेके लिए शैशव और यौवनके देहलीपर खड़ी-खड़ी व्याकुल हो रही है।

जैन धर्मके प्रवर्तक महावीर तीर्थंकरने इसी पावन दिवस को अपना नश्वर शरीर छोड़ा था।

आधुनिक भारतके उद्धारक, मानवके नवीन दधीचि, राष्ट्रपिता महर्षि दयानन्दने भी इसी दिन आत्मबलिदानकर आजीवन ज्ञान-प्रसार करनेके व्रतको इस अनुपम पूर्णाहुतिसे पूर्णकर इस सांस्कृतिक इतिहासमें कीर्तिके चार चाँद लगा दिया।

भारतीय आध्यात्मिक पुनर्जागरणके चतुर्थ देवदूत स्वामी रामतीर्थने भी इसी दिन परम तत्वमें स्वतःको लीन किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दीपावलीका क्रमिक विकास अपना गौरवशाली सांस्कृतिक इतिहास लिए हुए, आज तक हमारे समुंख, संसारके समुंख खड़ा है और खड़ा रहेगा, और "तमसो मां·····" का अमर संदेश सुनाकर हमें कर्मपथपर अग्रसर करता रहा है और रहेगा। इसीलिए हमें दीपावली के इसी महत्त्वको समझते हुए इसी भावनासे शताधिक उत्साह से जैसे मनाते आए हैं, वैसे ही यावच्चन्द्रदिवाकरौ मनाना चाहिये, और इसकी दिव्य ज्योतिसे अपना अज्ञान भस्म करना चाहिये, ताकि आज पीड़ित और दलित भारतसे अन्याय और अभावका नाश हो जाय, क्योंकि अज्ञान राज्य में ही अन्याय और अभावका अस्तित्व रहता है और रहेगा।

इसी प्रसंगमें हम यह भी बता देना चाहते हैं कि कुछ लोग दीपावलीके शुभ पर्वमें मृत्युका उल्लेख अशुभ मानते हैं। पर यह उनका सर्वथा भ्रम ही है। क्योंकि मृत्यु हमारे धर्ममें पवित्र मानी गयी है। वह एक विश्राम स्थल है, जहांसे मानव नई स्फूर्ति और नई प्रेरणा लेकर आगे बढ़ता है। तभी तो भगवान कृष्णने अर्जुनको ललकारा था :—"हतो वा प्राप्स्यसे स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।" इसी आदर्शको चरितार्थ करके ही तो हमारे अनेक वीर हँसते हुए फांसीपर झूल गए। इसीलिए तो अपने बच्चोंको दीवारमें चुने जानेका समाचार पाते ही गुरु गोविन्द सिंह उछल पड़े और हर्षोल्लासमें मग्न होकर मिठाई बांटते हुए कहने लगे :—"अहा! मेरे धर्मवीर पुत्र आज धर्मपर बलिदान होकर मेरा मस्तक ऊँचाकर दिये और माताके अनमोल दूधका सचमुच मोल चुका दिये।"

देश भक्तिका स्वांग रचने वालोंसे मैं पूछना चाहता हूँ कि उनमें कितने गुरु गोविन्द सिंह जैसे सिंह हैं ? इसीलिए तो दयानन्दने "प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो।" करते हुए अपने आत्म-बलिदानसे स्वतंत्रताकी ज्वाला प्रचण्डकर दिया। मुहर्रम और मर्शिया तो वे मनायें जिनके यहां पुनर्जन्म और आत्मा नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। अतः मृत्यु शुभ ही नहीं महा शुभ है। अतएव उपर्युक्त तीनों मानव विभूतियोंके देहावसानसे दीपावलीकी दीपशिखा मलिन नहीं, प्रत्युत और भी प्रदीप्त तथा हर्षोत्फुल्ल हो उठी है। अतः हमें अपना अज्ञान-जनित भ्रम इसी शिखामें जलाकर भस्मकर देना चाहिये।

इसीलिए दीपावली हर्ष और गौरवका पावन प्रतीक है और सदियोंसे हम इसे मनाते आये हैं और मनाते रहेंगे।

संस्मरण

मानसिंहका डाकूदल

श्रीराम शर्मा

मनुष्योंका विभाजन जिस प्रकार विभिन्न दृष्टियोंसे अनेक वर्गोंमें किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यकी सांसारिक समस्याओंका विभाजन भी कुछ विशेष बातोंमें ही केन्द्रीभूत हो सकता है। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे मानव-समाजको मोटे तरीकेसे (१) कर्म प्रधान (२) तर्क प्रधान (३) भक्ति प्रधान और (४) रहस्य प्रधान वृत्तियोंमें विभाजित किया जा सकता है। इसलिये उपर्युक्त विभाजन प्रधान मानसिक वृत्तियोंके आधार (१) कर्मयोग (२) ज्ञानयोग (३) भक्तियोग और (४) राजयोग मुक्ति मार्गके साधन हैं। पर इस संस्मरणमें दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक गूढ़ वृत्तियों की विवेचना हमें नहीं करनी, वरन् उदाहरण स्वरूप ही करना है कि मानव-समाजको इन चारमें विभक्त किया जा सकता है। यदि सांसारिक दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्य की समस्याएँ ज़र (धन दौलत) ज़मीन और ज़न (स्त्री) संबंधी समस्याओंमें ही केन्द्रीभूत है। परिस्थितिओंका प्रभाव उन्हें गुरुतर और तीव्रतर बना देता है।

यदि कोई वायुयानसे आगरे जिलेके पूर्वी भागको या यों कहिये कि आगरेसे प्रयाग तक यमुनाके मार्गको भली-भाँति देखे और साथमें दक्षिनको ओर नजर डालता हुआ वायुयानसे मध्यप्रदेशके ग्वालियर क्षेत्र और थोड़ेसे चम्बल निकटवर्ती राजस्थानके क्षेत्रको देखे तो उसे ऐसा प्रतीत होगा मानों यमुना और चम्बल अपनी सखी सहेली नदियों के साथ कुछ घबराई-सी झुँझलाती-सी, अस्त-व्यस्त होकर मुड़-मुड़कर देखती हुई, आगे बढ़ती हैं, मानों धरती माताके वक्षः स्थलको विदीर्णकर उसके गर्भमें वे विलीन होनेकी चेष्टा करती हैं। ऊबड़-खाबड़ जमीन, जिसमें ग्रीष्मकालीन लू थपेड़े मारकर और वर्षाकालीन बहाव भूमिकी उर्वराशक्ति को चाटकर एक ऐसा दृश्य पैदा करती हैं, जिसे रेलयात्रा अथवा वायुयानसे देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इस क्षेत्रकी जमीनके कटनके कारण धरतीके वक्षःस्थलमें ऐसे घाव हो गए हैं—इतने गहरे खड्ड और खार बन गए हैं कि वहां खेती सम्भव नहीं। वहांकी धरतीकी काया ढकनेके लिए बारिश की गुदगुदीसे अर्धविकसित पेड़ और बल्लरियां उसके जीर्ण शरीरके सुहागकी बरबस रक्षाकर रही हैं। जहांकी जमीन कमज़ोर और गैरउपजाऊ होती है और जहां ज़मीनकी कटन होती है, वहांके निवासियोंकी मानसिक कटन भी हो जाती है। यह प्रकृतिका नियम है कि कमजोर ज़मीनमें मानसिक दृष्टिसे कमजोर व्यक्ति, कमजोर पशु तथा अन्य कमजोर प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। जिस कृषि-प्रधान देशकी कृषि-व्यवस्था कमज़ोर हो जाती है, वहाँपर बेईमानी, ठगी, और अनेक अन्य दुष्प्रवृत्तियां स्वभावतः उत्पन्न हो जाती हैं। समुचित-भूमि व्यवस्था तथा उचित खेतीके बिना कृषिप्रधान देशमें सचाई और ईमानदारी सम्भव नहीं। इस कठोरतथ्य का प्रमाण भारतीय इतिहास है। आगरे और मध्य प्रदेश के वे क्षेत्र जहां डाकुओंका दौरदौरा है, उपर्युक्त तथ्यको प्रमाण हैं।

आगरे जिलेकी बाह तहसील तथा फिरोजाबाद तहसील का वह क्षेत्र जो जमुनाके निकट है, और फतहाबाद तहसील का एक प्रमुख भाग, धौलपुरका बाग और बाह तहसीलसे सटा चम्बल पार ग्वालियरका भिंड और मुरैना क्षेत्र शताब्दियों से ज़मीनकी कटनके शिकार हैं। फलस्वरूप वहांकी आर्थिक व्यवस्था बहुत खराब है। जहांपर खार नहीं है, वहांकी

जमीन इतनी उपजाऊ है कि यदि वहां पानीका प्रबन्ध हो जाय तो धरती माता खाद्यान्नकी अपार राशि उगल सकती हैं। लगभग सौ वर्ष पूर्व वहाँ ईख और गेहूं बड़े ठाठसे होते थे। अब तो उनका नाम मात्रका क्षेत्र नदीकी कछार-भूमि में ही सीमित है। आर्थिक संकटके कारण यह भूभाग दस-बीस वर्षोंसे नहीं बहुत पहलेसे डाकुओंका क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है। ऊबड़ खाबड़ और गहरे खारोंकी चप्पे-चप्पे जमीनको वहाँके निवासी जानते हैं तथापि पुलिससे सफलतापूर्वक आँख-मिचौनी खेल सकते हैं। इस क्षेत्रमें एक वाक्य प्रचलित है, वह है, 'बेहड़ पकड़ लो' जब कोई व्यक्ति घबराकर अराजक तत्वोंका सहारा लेता है अथवा बदलेकी भावनासे अपनी जान पर खेलकर मर मिटनेपर उतारू हो जाता है तब कहता हैं, 'बेहड़ पकड़ लो' अर्थात् गाँवको छोड़कर बेहड़की शरण ले ले। जहाँ न पुलिसको व्यवस्था है, न राज्यका अंकुश। गोला-बारूद अधिक दामों पर प्राप्त हो ही जाते हैं तब बेहड़ पकड़नेवाला व्यक्ति आदमखोर बघेरेकी भाँति विचरता है। अवसर पाकर छापा मारता है और बेहड़में विलीन हो जाता है। पुलिस मुठभेड़में ऐसे व्यक्ति मारे भी जाते है, पकड़े जाने पर फांसीको सजा भुगतते हैं, 'पर बेहड़ पकड़ो' की प्रथा इस क्षेत्रमें बहुत दिनोंसे चली आ रही है और इसकी जिम्मेदारी है-समाज और आर्थिक व्यवस्था पर। तबियत करती है कि इस क्षेत्रके डाकू दलोंपर दो एक उपन्यास लिखे जायं, पर यह बात तो यहाँ अप्रासंगिक है। इस संस्मरणमें अपने ही जमानेके अनेक डाकूदलों-जैसे डूंगर बटोही-डाकू दल, दुलारेका डाकू दल, डकैतोंका कंजर गिरोह अथवा वर्तमान लाखनसिंह गिरोह पर कुछ नहीं लिखना है। इसमें तो ठा० मानसिंहके डाकूदल पर ही लिखेंगे और वह भी संस्मरणात्मक रूप में।

आगरे जिलेकी बाह तहसीलके हेडक्वार्टर बाहसे कुछ मील दूर एक गाँव है, नाम है उमका-राठौरखेड़ा। भारत-विख्यात अथवा कुख्यात मानसिंह राठौर इसी गाँवके रहने वाले थे। वे तीन भाई थे—बिहारीसिंह, नवाबसिंह और मानसिंह। कुलसे कुलीन क्षत्रिय राठौर, देहाती दृष्टिसे घर के खाते-पीते, जमीन काफी, पर पैदावार उस क्षेत्रके हिसाब से ठीक, घर भरा-पूरा। उसी गाँवमें इस राठौर परिवारका एक पुरोहित परिवार था। उस परिवारके मुखिया थे, पं० तलफीराम। पं० तलफीराम कुछ अधिक सम्पन्न और लेन-देन करनेवाले व्यक्ति थे। बाह तहसीलमें ब्राह्मण और क्षत्रिय बड़े घुले-मिले रहते थे, अब भी बहुतसे वैसे ही रहते हैं। एक प्रकारसे क्षत्रिय, सनाढ्य ब्राह्मण—जिनकी संख्या ब्राह्मणोंमें अधिक है—कान्यकुब्ज ब्राह्मण और चतुर्वेदी ब्राह्मणोंका पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध था। बाह तहसीलमें राजपूत लोग भी हैं, पर इन राजपूतोंसे क्षत्रियोंका रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं। अनेक ब्राह्मण और अनेक क्षत्रियोंका इन राजपूतोंसे कुछ आंतरिक मनमुटाव रहता। राजपूतोंका केन्द्र एक प्रकारसे बाहके निकट जरार गाँव है।

राठौरखेड़ामें जन और जरको लेकर कोई बवंडर नहीं हुआ, पर थोड़ी जमीनको लेकर पुरोहित और यजमानमें कुछ तन गयी। पुरोहित थे पं० तलफीराम और यजमान थे मानसिंहके भाई-बंधु। बस, इस मनमुटावने ही मानसिंह डाकूदलको जन्म दिया। प्रतिष्ठा, धन-दौलत, शारीरिक बलका जोम तलफीरामको था, पर शारीरिक बल और प्रतिष्ठामें मानसिंहका घर भी कोई कम न था। अनायास ही एक दिन दोनों घरोंका पानी एक ही कुएँपर भरा जा रहा था और दोनों घरोंकी तनातनी रिस-रिसकर पानीकी तरह ही नौकरोंतक पहुंच गयी थी। पुरोहित और यजमान तो शायद सहिष्णुता भी दिखाते, पर दोनों घरोंके हिमायती नौकरोंमें बात बढ़ गयी। आखिर वे दोनों घरोंका प्रति-निधित्व कर रहे थे। गाली-गलौज और अशिष्टताकी सीमा पार हो गयी, कुछ झगड़ा भी हुआ। नौकरोंकी उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया दोनों घरोंमें प्रवेश कर गयी और नवाबसिंहने आवेशमें आकर तलफीरामके एक नौकरको गोली से उड़ा दिया। वह गोली क्या चली मानों डकैतियों और कत्लकी भेरी बज गयी। अबसे लगभग तीन दशाब्दियों से पूर्व चली उस गोलीके कारण आजतक और अब भी सैकड़ों गोलियाँ चल रही हैं। उस झगड़ेके कारण नवाब-सिंह और मानसिंहको लम्बी सजाएँ हो गयीं। नवाबसिंह और मानसिंहके जेल जानेके बाद अंग्रेजी राज्यकालीन पुलिसने नवाबसिंहके लड़के दर्शनसिंह और मानसिंहके लड़के यशवन्तसिंहको परेशान करना शुरू किया और रुपया ऐंठना चाहा। परेशानी और बेबसीके कारण उनका जीना हराम हो गया और चूँकि 'वही है मौत जो जीना हराम हो जाय' इसलिए कोई मार्ग न पाकर उन्होंने 'बेहड़ पकड़ लिया।' बेहड़में स्वच्छंद घूमते, एक प्रकारसे पुलिसके जुल्मके कारण वे डाकू बन गए। नवाबसिंह और मानसिंहके जेलसे छूटनेके छः माह पूर्व बेहड़में उनकी पुलिससे मुठभेड़ हो गयी और

वे दोनों मारे गये। मानसिंह और नवाबसिंहकी मनोव्यथा और प्रतिक्रियाको अच्छी तरह समझा जा सकता है।

मानसिंहके जेलसे छूटनेके बाद तलफीराम और मानसिंह का तनाव बढ़ता ही गया। एक-दूसरेकी जानके गाहक हो गये थे। मानसिंहको यह भी संदेह था कि उनके पुत्र और भतीजेको मारनेमें तलफीरामकी ओरसे पुलिसको सहयोग दिया गया था। दैनिक जीवनमें पैंतरेबाजी आ गयी थी, दोनों ओरसे घातें लगायी जातीं। एक दिन मौका मिलने पर मानसिंहके चौथे पुत्र धनवन्तसिंहने तलफीरामके एक युवक पुत्रको गोलीका निशाना बना दिया। पुलिसने मानसिंहके परिवारके दस-बारह व्यक्तियोंको गिरफ्तार करना चाहा, पर अब 'बेहड़ पकड़ने' के अतिरिक्त कोई चारा न था और बेहड़ पकड़कर जीवन बितानेका साधन डकैतीके अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। मानसिंहकी डकैतीकी हालतमें भी उनकी प्रतिष्ठा क्षत्रियों और ब्राह्मणोंमें बनी रही, क्योंकि दो बातोंको मानसिंहने बड़ी कठोरतासे निभाया (१) किसीकी बहू-बेटीको कभी नहीं छेड़ा और (२) किसी गरीबको कभी नहीं सताया। हाँ, जिसने मुखबिरी की फिर चाहे वह कोई भी हो, उसे कभी छोड़ा भी नहीं। चुनौती देकर उसकी जान लेकर ही छोड़ी।

अनेक लोगोंका यह खयाल है कि मानसिंहने कोई डाका नहीं डाला। पर, यह बात बिल्कुल गलत है। मानसिंहने स्वयं डाके डलवाये और कई डाकूदलोंके वे सिरमौर थे। यह बात ठीक है कि उनका अपना निजी दल था और लाखनसिंहसे विरोध था। पर, भीर पड़नेपर और पुलिस तथा शत्रुओंके मुकाबलेमें एटाके गिरन्दसिंहका दल तथा गिरन्दसिंहके शिष्य बीरे डाकूका दल, आगरा जिलेके चरना का दल और लाखनसिंहका दल एक हो जाते थे। विशेषकर मानसिंह और चरनाके दलमें सहयोग भी था।

जो लोग यह खयाल करते हैं कि स्वयं मानसिंहने कोई डाका नहीं डाला, वे या तो ऐसे व्यक्ति हैं, जो डकैतियोंमें सहयोग करते थे या मानसिंहके नामका दुरुपयोग करते थे। सन् १९२८ की बात है—ठीक महीना याद नहीं रहा--इन पंक्तियोंका लेखक यमुना किनारे मगरके शिकारको गया हुआ था। ठहरनेके स्थान इटावे जिलेमें मैनपुरी जिलेकी सीमा पर बाह तहसीलकी ओर बाउथ गाँव था। बाउथ गाँवकी चर्चा लेखककी 'शिकार' पुस्तकमें है। ठाकुरोंके यहाँ ठहरना था। जिस दिन लेखकका बाउथ पहुंचना हुआ, उससे कई दिन पूर्व बाउथके महेरे ब्राह्मणोंके यहाँ मानसिंहके दलने डाका डाला था। बाउथमें यह भी पता चला था कि मानसिंहका दल बाउथके जमुना पार पारना गाँवमें ठहरा था। इसके अतिरिक्त पुलिसके रैकर्डमें मानसिंह-दलके नाम पर अनेक कत्ल और डकैतियाँ दर्ज हैं। यह संभव है कि इनमेंसे कुछ डकैतियाँ मानसिंहके नामसे अन्य लोगोंद्वारा की गयी हों, पर यह निश्चित है कि मानसिंहके नेतृत्वमें डाके डाले जाते थे और अपने घोर शत्रुओंका बध किया जाता था। बेहड पकड़कर जीविकाका और कोई साधन ही नहीं। इसके अतिरिक्त यह बात भी जानने योग्य है कि अगर कोई डाकू एक लाखका डाका डालता है तो उसके पल्ले अनुमानसे २५-३० हजार ही पड़ते हैं। गहने तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ लगभग आधे मूल्यमें जाती हैं। दलालोंको भी काफी देना पड़ता है। मानसिंह जैसे व्यक्तिको दान-पुण्यमें भी खर्च करना पड़ता था। किसी गरीब रिश्तेदार या किसी हितैषीकी लड़कीके विवाहपर दरवाजेका खर्चा, मात माँगनेका खर्चा और टीके तथा लगुनकी जिम्मेदारी लेनी पड़ती थी। डकैतोंके लिए हथियार और कारतूस जान होते हैं। अगर बाजारमें कारतूसोंका भाव पचास रुपया सैकड़ा है, तो डकैतोंको प्राइवेट लाइसेंसदारोंसे वे दो सौ और तीन सौ रुपया सैकड़ा मिलते हैं।

पाठकोंको यह जाननेकी इच्छा होगी कि आखिर मानसिंह दलको कारतूस और हथियार कहाँसे मिलते थे। दो-दो चार-चार घंटे पुलिससे मुठभेड़में सैकड़ों ही कारतूस फुँक जाते थे। कारतूस भी चलते थे, फौजी राइफलों, ब्रेनगनों और टौमीगनोंसे। हथगोलोंकी कमी भी उनके पास नहीं रहती थी। असलमें मानसिंह तथा अन्य डाकूदलोंको हथियार कुछ तो पुलिससे ही मिलते हैं, कुछ प्राइवेट लाइसैंसदारोंसे, कुछ रियासतोंके जमानेमें ग्वालियरकी सेनासे और डाकूदलोंका संबंध राजस्थानसे होकर पाकिस्तान तकसे है। बढ़िया अमेरिकन हथियार इस प्रकार उन्हें मिल जाते हैं। अमेरिकन हथियार अमेरिकासे नहीं आते, वरन् पाकिस्तानसे लुका-छिपाकर। हथगोले तो भारतीय सैनिकोंसे ही मिलते हैं, संभव है, पाकिस्तानसे वे भी आते हों। आगरेकी बाह तहसीलमें एक बड़े तेज दरोगाजी थे। डाकू उनसे बहुत घबराते भी थे। राष्ट्रपतिका पदक भी उन्हें वीरताका मिला था। अपने अच्छे कार्यके लिए उन्हें इंस्पेक्टर बनाकर दूसरे जिलेमें भेज दिया। पर बादमें तहकीकातसे पता चला

कि उनकी राइफल डकैतीमें जाती थी, तब उनको दण्ड दिया गया। सब पुलिसवाले ऐसे नहीं हैं। डाकूदल अपनी जान हथेलीपर लिए फिरते हैं। अपने सिरसे कफन बाँधे तो वे नहीं फिरते, पर वे जानते हैं कि वे कभी भी किसी समय मौतके घाट उतारे जा सकते हैं। पकड़े जानेपर फाँसी होगी, इसलिए उनके सामने मरने या मारनेका सवाल है। वे सशस्त्र पुलिसके सामने दाव-पेंचसे लड़ते हैं, पर उन्हें इस बातकी चिन्ता नहीं कि उनकी गोली पुलिसवालेके लगती है या किसी निर्दोष ग्रामीणके। इसी मनोवृत्तिके कारण उन्हें खूँखार आदमखोर बघेरेके समान समझा जाता है।

यह बात नहीं है कि स्वतंत्र भारतकी पुलिस ही मानसिंहके गिरोहका सफाया करनेमें असफल रही है, वरन् अंग्रेजी राज्यमें सर यंग सी० आई० जैसे होशियार पुलिस अफसरतक बरसोंतक मानसिंहके पीछे पड़े रहे, पर मानसिंह या उनके गिरोहका यंग साहब भी कुछ न कर पाये।

आखिर इसका कारण क्या है कि मानसिंहका गिरोह इतने दिनोंतक चला और मानसिंहके बाद भी मानसिंहका दायाँ हाथ रूपा (पं० रूपलाल) कक्का मानसिंहकी परम्परा को और भी उग्र कर रहा है। स्मरण रहे, मानसिंहको भदावरमें स्नेहसे कक्का कहते हैं और पं० रूपलालको रूपाके नामसे संबोधित किया जाता है।

यह ऊपर संकेत किया गया है कि मानसिंहके दलमें उनके भाई नवाबसिंह, उनके दो पुत्र सूबेदारसिंह और तहसीलदारसिंह तथा उनके विशिष्ट शिष्य रूपलाल प्रमुख हैं। इनके एक खास आदमी स्वामी केशवानंद भी थे, जो चरना गिरोहके फतहाबाद तहसीलके गाँव और धौलपुरके बीच घिर जानेपर मोर्चा जमाकर लड़ते रहे। दिन-रात गोलियाँ चलीं और अंतमें आगरेसे ब्रिगेडियर मिश्राके नेतृत्वमें एक सेनाकी टुकड़ी भेजी गई। सेनाने तीन इंच मौर्टरका प्रयोग किया, जिससे खड्डमें बैठा चरना गिरोह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। बस, डाकुओंके अंगोंके छिन्न-भिन्न टुकड़े ही मिले। इस मुठभेड़में मानसिंहके इस विशेष व्यक्ति स्वामी केशवानंदका भी अंत हुआ। पर चरना रातमें घेरेसे निकल भागा था तथा मैनपुरी जिलेके सिरसागंज कस्बेके निकटके एक गाँवके ईखके खेतमें वह लड़ते-लड़ते मारा गया। यहाँ इतना प्रसंगवश लिख दिया है, क्योंकि स्वामी केशवानंद मानसिंहके खास व्यक्ति थे, जो ज्योतिषी भी थे, तथापि संन्यासीके वेशमें इधर-उधरकी ख़बरें भी एकत्र करते थे।

हाँ, तो मानसिंहको लोकप्रियताका एक कारण ऊपर दिया गया है कि उनके दलने किसीकी भी बहू-बेटीको नहीं छेड़ा। ब्राह्मणों और ठाकुरोंमें मानसिंहकी प्रतिष्ठा उनके उच्च घरानेके कारण भी थी। उसके अतिरिक्त मानसिंहको ब्राह्मणों और ठाकुरके आभिजात्यपनका भी गर्व था, जो मानसिंहके मार्गमें नहीं पड़ा और जो ग़रीब था, उसकी सहायता भी मानसिंहसे हो जाती थी। अनेक गरीब लोगोंने मानसिंहसे याचनाके रूपमें कहा 'कक्का लड़कीका विवाह है, कुछ सहायता करो', मानसिंह यथाशक्ति उसकी सहायता करते। देहातकी पंचायतें भी मानसिंहके पास पहुँचतीं। फैसला न्यायपूर्ण होता और जो फैसला मानसिंहने किया, उसको निभाना ही पड़ता था। न निभानेपर फिर आफत ही थी। मानसिंह दोनों पक्षोंकी बात ध्यानसे सुनते और कहते "अदालतमें एक जीतता और एक हारता है। वहाँ खर्च बहुत होता है, वकील कुलटा स्त्रीके समान होते हैं। फीस देकर उनसे चाहे जो कुछ कहवा लो। अदालत के फैसलेकी अपीलें होती हैं, फिर फैसला न माने तो झगड़े बढ़ते हैं। मेरे पास आनेमें न कोर्टफीस है, न वकीलोंकी बकबक है, न रिश्वत है, न सिफारिश, गंगाजली है और ईमानदारी है, जो ठीक बात न माने तो बन्दूककी गोली है।" मानसिंहका आतंक भी कम न था, अतः मानसिंह द्वारा की गई पंचायतका फैसला मान्य होता था। गरीबोंमें भी लोकप्रियताका एक कारण था, जिसके लिए एक उदाहरण काफी होगा। फतहाबाद तहसीलके एक थानेको खबर लगी कि मानसिंहका गिरोह चम्बलके किनारे है। विनाहर और जैतपुरके थानोंको भी यह खबर भेज दी गई। इनमेंसे किसी स्थानपर एक युवक थानेदार जैन महाशय थे, अपने बापके अकेले बेटे। कान्स्टेबिलोंके साथ जैन महाशयने मानसिंह गिरोहकी खोज की। चम्बलसे एक मील दूर दरोगजीका दल किशानके खरबूजोंके खेतसे निकला। खरबूजे देखकर पुलिसवालोंकी तबियत ललचा गई, बीस सेर खरबूजे लेकर जो मनमें आया कीमत दी। फिर बैठकर खरबूजे खाने लगे। किसानोंमें-से एक गाँवका बहाना करके चम्बलकी ओर गया और मानसिंहको खबर कर दी। कुछ घंटे पूर्व मानसिंहका गिरोह उसी खेतसे निकला था। खरबूजे मानसिंह दलने भी लिये थे और कीमत पूछनेपर किसानने उत्तर दिया था, "कक्का आपके ही हैं, चाहे जितने खा लो।" पर मानसिंहने कहा, "नहीं! बाजारकी

कीमत बनानी होगी।" कीमत बता देनेपर मानसिंहकी ओरसे दुगनी कीमत दी गई। पुलिसवालोंने असली कीमतसे भी कम दाम दिये थे, इसलिए किसान कुपित हो गया। थोड़ी ही देर बाद मानसिंहके कई आदमी बाजकी तरह टूट पड़े और दरोगाजी तथा एक-दो कांस्टेबिल वहीं दम तोड़ गए।

इस सम्बन्धमें एक और घटनाका देना आवश्यक है और यह बात हमें बाहके कई सम्भ्रांत व्यक्तियोंने बताई, स्वयं हमारी इसमें कोई तहकीकात नहीं हुई। बाह तहसील और ग्वालियरकी विभाजक सीमा है, पुराण प्रसिद्ध चम्बल नदी (चर्मवती)। चम्बल-तटस्थ एक दूरवर्ती गाँवमें एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय परिवार रहते थे। शेष आबादी अछूत लोगोंकी थी। ब्राह्मण और ठाकुर-परिवार अपनी गरीबीके दिन एन-केन प्रकारेण काटते। उस ऊबड़-खाबड़ क्षेत्रमें अच्छी बारीशसे बाजरा हो जाता। घी बेचकर भी कुछ आमदनी हो जाती। जीवन-संघर्षकी तीव्रताके कारण कठिनाइयाँ बढ़ीं और क्षत्रिय परिवार गाँव छोड़कर चला गया। ब्राह्मणके पास कुछ जमीन थी, वह छोड़कर जा न सका। निरक्षर ब्राह्मणकी कन्या विवाह योग्य हुई। गरीबी तथा सामाजिक बंधनोंके कारण कन्याको उचित वर नहीं मिल रहा था। उस गाँवके अछूतोंने उन्नति की थी। एक लड़का ग्रेजुएट हो गया। ब्राह्मणकी परेशानी देखकर अछूत लड़केके पिताने ब्राह्मणसे कहा, "पं० जी गांधी कौ राजु ऐ हमाओ लरिका पढ़ौ लिखौ ऐ। खातु-पियतु घर ऐ। इतने पढ़े लरिकाके लएँ तुमैं दस-पाँच हजार खच्चु करने परिगैं। अपई लरिकिनी कौ व्याहु हमाए लरिका सूँ करि देओ।" ब्राह्मणका खून खौल गया। घर लाठी लेने दौड़ा गया, पर घरपर घरवालीने उसे मुसीबतमें शान्त रहनेको कहा। इतना अपमान तो ब्राह्मणका जीवनमें कभी नहीं हुआ था। काँग्रेसवाले, पुलिसवाले सबसे उसने शिकायत की, पर विवाहका प्रस्ताव रखना कोई ऐसा जुर्म तो नहीं है, जिसपर कार्यवाही की जाय। क्षुब्ध और क्रोधित ब्राह्मण कक्का मानसिंहके पास गया। बोला, "कक्का! मदद करो। पुलिस कुछ करती नहीं, काँग्रेसवाले भी सुनते नहीं। अब लाज तुम्हारे हाथ है, अन्यथा मैं घरवालोंको ज़हर देकर दो-चारको मारकर तुममें आ मिलूँगा।" मानसिंहने उत्तर दिया, "मैं तुम्हारी मदद करूँगा। पुलिस और काँग्रेस कुछ नहीं करेगी। कानूनमें चाहे यह जुर्म न हो, पर देहात की परम्परामें यह भारी जुर्म है। पुलिस और काँग्रेसवाले लकीर-के-फकीर हैं। जुर्म रोकनेकी कोशिश वे नहीं करते। जब जुर्म हो जाता है, तब कार्यवाही करते हैं। तुम हमलोगोंमें मत मिलो। पर कांग्रेसवालोंसे कहना कि जब लड़कीके माता-पिता और लड़की तैयार नहीं, तब वह धूर्त लगातार क्यों परेशान करता है। अभी चम्बल इतनी पाँफ नहीं कि गीदड़ उसे पार कर जायँ। तुम जाओ और उस बदमाशसे कहो कि विवाह मंजूर है तथा अमुक तिथिको टीका जायगा। टीकामें एक रुपया ले जाना। वे तुमसे बिगड़ेंगे और तुमको बुरा-भला कहेंगे, तब कह देना कि तुम्हारे यजमान रुपयेका प्रबन्ध करेंगे। मैं यहाँसे पं० रूपलाल और तहसीलदारको भेज दूँगा, वे हजारोंको ठीक कर देंगे।"

ब्राह्मण खुशी-खुशी घर आया। अछूतोंने जब ब्राह्मण कन्यासे विवाहकी बात सुनी तो मारे खुशीके फूले न समाये। नियत तिथिपर ब्राह्मण बनावटी टीका ले गया, तब एक रुपया देखकर सब बड़े नाराज हुए और कहा कि अगर ब्राह्मणके पास रुपया नहीं है तो वे उधार देनेको तैयार हैं, पर लड़केके अनुरूप चार-पाँच सौ रुपया तो चाहिये ही। ब्राह्मणने अपनी असमर्थता प्रकट की और बताया कि वह अपने दो यजमानोंसे रुपयेके प्रबन्ध की बात करेगा और इस प्रकार टीकेकी दूसरी तिथि निश्चित हो गई। नियत तिथि पर दोनों यजमान आये। वे यजमान थे, रूपा (पं० रूपलाल) और तहसीलदार सिंह। स्टेनगन और राइफलको छिपाये दोनों यजमान ब्राह्मणके साथ उत्सव-स्थान पर पहुंचे और बोले, "अपने पुरोहितकी ओरसे हम टीका करेंगे, पर लड़केको खड़ा तो करो, जरा हम देख लें।" जैसे ही लड़का खड़ा हुआ वैसे ही बिजली-सी चमककर गाज गिरी। स्टेनगनकी आवाजने चम्बल घाटीके वातावरणको कंपा दिया। प्रस्तावित वर धराशायी होकर दुनियाको छोड़ गया। दो-चार आदमी और मरे। दोनों यजमानोंने गोलियाँ और नहीं चलाईं, पर गालियां खूब दीं तथा चुनौती दी कि अगर कोई साहसी हो तो मुकाबले पर आवे।

उपर्युक्त घटनाकी हमने तहकीकात नहीं की, पर यह घटना मानसिंहके अनुरूप है। मनोविज्ञानके जानकार तथा परम्पराको निभानेवाले मानसिंहके लिए यह घटना साधारण-सी है। ऐसे ही अनेक कारण मानसिंहकी लोक-

प्रियताके हैं। जो बनिया कक्काकी शरणमें आ गया तो कक्काकी करामातसे उससे कोई कुछ कह नहीं सकता था। पर कोई भी व्यक्ति जिसने मानसिंहके विरुद्ध मुखविरी की हो, वह मदावरमें तो जीवित रह नहीं सकता था। अमरीका के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'टाइम'में, जो प्रति सप्ताह २७ लाख छपता है, हमने मानसिंहके ऊपर तीन अंकोंमें तीन लेख पढ़े। हमने उसमें पढ़ा कि अपने शत्रुको मारकर मानसिंह उसकी अंगुलियाँ काटकर मित्रोंमें उपहार भेजा करते थे। हमने यह बात सुनी अवश्य थी, पर 'टाइम'में पढ़कर आश्चर्य हुआ। स्वभाव और परम्परासे मानसिंह कातिल न थे। परिस्थितियोंमें पड़कर कत्ल और डकैती करनी पड़ती थी। पुलिसने मानसिंहका गाँव राठौरखेड़ामें सशस्त्र पुलिसका दस्ता रख दिया था। बाहमें बेतारका तार कई स्थान पर था। राठौरखेड़ामें एक औपरेटर रहता था। वह एक दिन कचौराघाट (यमुना नदी) से हटावा जाना चाहता था। यमुना तट पर नाव बंधी थी। औपरेटर मल्लाहको डाँट रहा था कि नाव जल्दी खोल दे। मल्लाहका रिश्तेदार नावपर था, उसने कहा, "कक्कासे बिना पूछे मैं नाव नहीं खोलूँगा।" औपरेटर मल्लाहकी झोपड़ीमें गया। वह नहीं समझता था कि कक्का कौन हैं। कक्काके पास जाकर मल्लाहने नाव छोड़नेके लिए पूछा। पर कक्काने औपरेटरसे पूछा, "तुम कौन हो ? क्या करते हो ? कहाँ रहते हो ?' औपरेटरने बड़ी शानसे कहा, "मैं सरकारी अफसर हूं। राठौरखेड़ामें सशस्त्र पुलिसके साथ रहता हूं। वायरलैस औपरेटर हूं।" औपरेटरकी बात सुनकर वृद्ध महाशयने कहा, "तुम्हें वहाँ कोई तकलीफ तो नहीं है, कोई हो तो बताओ। कोई सताता हो तो बताओ, मैं मदद करूंगा।" औपरेटरने उत्तर दिया, "मुझे कौन सतायेगा. पुलिसके साथ हूं, मानसिंह तक नहीं सता सकता।" बुड्ढेने हँसकर कहा, "अच्छी बात है। भूखे हो तो कुछ खा लो और नाव अभी खुलवाये देता हूँ।" नाव पर आकर औपरेटरने मल्लाहसे पूछा, "यह बुड्ढा कौन है, जो राठौरखेड़ाके मकानों तकके बारेमें जानता है।" मल्लाहने उत्तर दिया, "यही तो कक्का मानसिंह हैं, जिनकी आज्ञासे मैं नाव खोल रहा हूं।" मल्लाहकी बात सुनकर औपरेटर मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसे इस बातकी तनिक भी आशंका न थी कि मानसिंहसे उससे कभी मुलाकात होगी। हाँ, यह वह जानता था कि यदि कभी मानसिंहने उसे देख पाया तो उसे जानसे हाथ धोने पड़ेंगे। पर व्यवहारमें मानसिंहको उसने बिल्कुल ही विपरीत पाया।

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीकी एक सुपुत्री मिंड (मध्य प्रदेश) के निकट तरसोखर गाँवमें विवाही हुई हैं। चतुर्वेदी जी के दामादने इन पंक्तियोंके लेखकको बताया कि एक बार महामहोपाध्याय जी तरसोखर जा रहे थे (या शायद लौट रहे थे)। साथमें उनके नैकर पहने खाकी कपड़ोंमें एक व्यक्ति था। एक स्थान पर एकदम उनको डाकुओंने घेर लिया। राइफलें उनकी ओर तानकर डाकू दलके सरदारने पूछा, "तुम कौन हो और कहाँसे आये हो तथा कहाँ जा रहे हो ? सीधी सच्ची बात बताओ अन्यथा तुम्हारे शरीर यहाँ धूलमें लोटने लगेंगे।"

श्री गिरिधर शर्मा जी की ओरसे कहा गया, "तरसोखर में अमुक चतुर्वेदी जी के पुत्रको हमारी लड़की विवाही है। हम वहींसे आए हैं, घर जा रहे हैं।" बस फौरन ही राइफलें नीची हो गईं। डाकुओंके सरदारने आगे बढ़कर महामहोपाध्याय जी के पैर छुए और ५१) या १०१) रुपये नजरमें पेश किये। क्षमा-याचना मांगते हुए उन्हें बताया, "मैं मानसिंह हूं। आप हमारे पूज्य हैं। हमने आपको पुलिसका आदमी समझा। हमारा जीवन ही ऐसा है। आप क्षमा करें और खुशीसे जायं।"

इस प्रकारकी दर्जनों घटनायें हैं, जो मानसिंहकी लोकप्रियताके पक्षमें दी जा सकती हैं। पर पाठक यह न समझें कि लेखक कत्ल और डकैतीके पक्षमें है। लेखक कत्ल और डकैतीका घोर विरोधी है। व्यक्तिगत रूपसे हम मानसिंहके विरोधी नहीं, वरन् उनके डकैती और कत्लोंके विरोधी हैं। पर कितने स्वाभिमानी आदमी हैं, जो उस परिस्थितिमें रहकर अपना संतुलन रख सके। यहाँ यह लिखना भी आवश्यक है कि मानसिंह तथा उनके डाकूदलने बाह और वहाँको जनताका उतना अहित नहीं किया, जितना स्वार्थी लोगोंने मानसिंहके नामपर किया तथा कुछ काँग्रेसजनोंने अप्रत्यक्ष रूपसे डकैतीको जितना प्रोत्साहन दिया, उतना और किसीने नहीं। भारतके स्वतंत्र होनेके बाद और शायद उससे कुछ पूर्व मानसिंह अपने गाँव राठौरखेड़ामें सतर्कतासे रहते थे। मानसिंहपर कत्ल और डकैतीका वारंट था। वहाँके सरकारी अफसर जानते थे कि मानसिंह राठौरखेड़ामें रहते हैं, पर कोई उनको गिरफ्तार करनेका साहस न करता था। एक प्रकारसे तरह देता था। पाठकोंको इस बातसे भी आश्चर्य होगा कि

पुलिसके कर्मचारी तथा तहसीलके अनेक कर्मचारी मानसिंह के यहाँ खाना तक खाते थे। इस मनोवृत्तिके पीछे दो कारण थे। एक तो था, स्वयं मानसिंहका कौशल, जिसके द्वारा उन्होंने स्थानीय पुलिससे लगाकर जिलेके पुलिस कप्तानके कार्यालयके आदमियोंको मिला रखा था। मानसिंहके एक आदमीसे जब यह बात मालूम हुई तब जाँच हुई। उसी आदमीने बताया कि अगर कोई भी अर्जी मानसिंहके खिलाफ पुलिस कप्तानके पास दी जाती तो उसकी नकल तीसरे दिन मानसिंहके पास पहुंच जाती थी। इस बातकी पुष्टिके लिए मानसिंहके विश्वासपात्र आदमीको बिना बताये एक जाली चिट्ठी मानसिंहके खिलाफ पुलिस कप्तानको डाकसे भेजी गई। चौथे दिन उस चिट्ठीकी नकल बाहसे हमें दिखानेके लिए लाई गई। उस आदमीने बताया कि पुलिस कप्तानके पेशकारको इसी कामके ढाई सौ रुपया प्रति मास मिलते थे। बाह और जैनपुरके थानेदारोंको प्रति मास रुपया बँधा हुआ था। हर कांस्टेबिलको दस रुपया माहवारी मिलता था। पुलिस कह सकती है कि लेखककी बातें अपमानजनक हैं। हैं। पर जो बात हमसे कही गई और जिसका प्रमाण हमें उस चिट्ठी द्वारा मिला, वह हमने लिखी है। यदि ऐसी बात न होती तो कत्ल और डकैतीका वारंट होनेपर भी मानसिंह अपने घर कैसे रह सकते थे। बहरहाल उनके घरपर रहनेसे तो कोई इनकार हो नहीं कर सकता। अदालतमें चाहे कोई यह बात साबित भले ही न कर सके। हाँ, मेरठ और आगराके डिप्टी-इंस्पेक्टर जनरल श्री जैनलीने जब कड़ा कदम उठाया और मानसिंहका मकान गिरवाकर वहाँ पुलिस रख दी, तब फिर मानसिंहका वहाँ रहना न हो सका। इसके अतिरिक्त चौधरी नारायण सिंह बाहके तत्कालीन डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट पुलिसने भी कड़ाईसे काम लिया। बाहवाले जानते हैं कि मानसिंहके नामपर कुछ लोगोंने बाहमें इतना आतंक मचा रखा था कि बाहका बाजार दिनके पाँच बजेसे बंद हो जाता और देहातोंमें सायंकालसे ही कोई निकलनेका साहस न करता और मानसिंहके ये तथाकथित दलाल बाहमें मनमानी करते थे तथा पुलिस उनसे कुछ न कहती थी। उदाहरणके लिए पं० नीलकंठके मकानपर ऐसे ही आदमियों का अड्डा रहता और जब डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट श्रीनारायणसिंहने पं० नीलकंठको पीटनेका आदेश दिया, तब कांस्टेबिलोंने मना कर दिया और श्रीनारायणसिंहजीको स्वयं ही पीटना पड़ा और रुदमिली गाँवके एक प्रतिष्ठित घरानेके एक क्षत्रियके विरुद्ध वारंट भी काटना पड़ा। उस वारंटको खारिज करानेमें इन पंक्तियोंके लेखकका भी हाथ था, क्योंकि डिप्टी साहब और ठाकुर साहबकी बातें इन पंक्तियोंके लेखकके मकानपर ही हुईं।

बाह और मानसिंहका बहुत-कुछ अहिन अजगर आंदोलन से भी हुआ। अजगर शब्द अहीर, जाट, गूजर और राजपूत शब्दोंके प्रथम अक्षरोंको लेकर बना है। इस आंदोलनका तात्पर्य था कि ब्राह्मणोंके विरुद्ध अहीर, गूजर, जाट और राजपूत मिल जायँ। बादमें स्वार्थी लोगोंने 'अजगरमल' कर दिया, जिससे मल्लाहोंको भी उसमें शामिल कर लिया जाय। हरिजन तो उनके दबावमें थे ही। इससे पहले क्षत्रियों और ब्राह्मणोंका बड़ा हेल-मेल था। स्वयं मानसिंह इसी दलके आदमी थे। इस आंदोलनकी जड़ें गहरी तो न थीं, पर स्वार्थकी खातिर चुनाव जीतनेको काँग्रेसी और गैर-काँग्रेसी इसमें शामिल हुए। नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मणोंमें विद्वेषकी भावना आ गई। थोड़े दिनों बाद अजगर आन्दोलन बाह तो क्या, आगरा कमिश्नरीमें ठप हो गया। नासमझ आदमियोंने समझा कि मानसिंह ब्राह्मण विरोधी हैं। स्वयं मानसिंह और बाहके क्षत्रिय न तो ब्राह्मणोंके खिलाफ थे न हैं। स्वार्थी ब्राह्मणों और स्वार्थी क्षत्रियोंकी दूसरी बात है। मानसिंहका खास आदमी रूपा ब्राह्मण है। मानसिंहका विरोध लखनसिंहसे था और जब कभी रूपा लखनसिंहके गिरोहके आदमीको मारता, तब स्वार्थी और नासमझ यही कहते कि यह बिरादरीका झगड़ा है।

इन पंक्तियोंके लेखकके मनसे मानसिंहका अधिकतम अनिष्ट आगरेके कतिपय काँग्रेसजनोंने किया। मानसिंहसे झूठे वायदे किए गए। उन्हें विश्वास दिलाया गया कि वे उत्तर-प्रदेशके मुख्यमंत्री श्री पं० गोविन्दवल्लभ पंतसे कह-कर क्षमादान करा देंगे। फलस्वरूप मानसिंह दलको विश्वास हो गया कि उसके क्षमादानका कोई मार्ग निकल आयेगा। यह भी ठीक है कि अपनी नासमझीमें आगरे जिलेके कई काँग्रेसजनोंने मानसिंहसे आत्मसमर्पणकी बात कही थी और इस सिलसिलेमें वे मानसिंहसे मिला भी करते थे। यह बात जिलेभरकी जनताको मालूम थी, अतः जनता और भी भयभीत हुई कि मानसिंहसे पुलिसवाले मिले हुए हैं और काँग्रेसजन भी मिले हैं। काँग्रेसजनोंकी भारी भूल यह थी

कि उन्होंने पहले उत्तर-प्रदेशकी सरकारसे इस बातका वचन नहीं लिया कि यदि मानसिंह और उनके साथी आत्मसमर्पण कर दें तो उनको क्षमादान मिल जायगा। उन्होंने तो स्वयंभू मध्यस्थ बनकर कनवैसिंग करना शुरू कर दिया था। उन दिनों मानसिंह ऐसे व्यक्तियोंसे बहुत नाराज थे, जो यह बात कहते थे कि कोई भी सरकार इतने कत्ल और डकैतियोंके आरोप होनेपर क्षमा नहीं कर सकतीं, क्योंकि यदि इस प्रकार क्षमा-दान मिलने लगा तो आगरेके अधिकांश विशेषकर पीड़ित आदमी कातिल बन जायेंगे। ऐसे कुछ काँग्रेसजनोंसे जिनसे मानसिंह नाराज थे, उनमेंसे एक इन पंक्तियोंका लेखक भी है। कई बार मानसिंहके आदमी लेखकके पास संदेशा लाये, 'कक्का लेखकसे मिलना चाहते हैं। सभी प्रतिष्ठित काँग्रेसजन कक्कासे मिलते हैं, बस यह लेखक और श्रीजगनप्रसाद रावत ही नहीं मिलते। आगरे आना कक्काका सम्भव नहीं।" लेखककी ओरसे उत्तर जाता, "या तो सरकार मिलनेकी आज्ञा दे दे या स्थानीय जिला काँग्रेस-कमेटी अधिकार-पूर्वक मिलनेकी आज्ञा दे तो लेखक मिल सकता है। जो झूठा वायदा करते हैं, वे मानसिंहके हितैषी नहीं। लेखककी निजी राय है कि मानसिंह बिना शर्तके आत्मसमर्पण कर दें और सरकारसे अपील करें कि सरकारके लाखों रुपये खर्च करनेपर भी उनकी गिरफ्तारी न हो सकी। अराजकता और अशांति रोकनेकी खातिर वे आत्मसमर्पण करते हैं, फिर सरकार चाहे कुछ भी करे।" एक-दो बार मानसिंहकी ओरसे मिलनेकी खबर आई, पर ऊपरका उत्तर-संदेशवाहक द्वारा भेज दिया और साथमें कह दिया, "ठाकुर मानसिंह खानदानी आदमी हैं, क्षत्रिय हैं और बूढ़े हैं। रामायणका पाठ करते हैं, इसलिए वे आस्तिक भी हैं। जब जीवन ईश्वराधीन है तो बुढ़ापेमें फाँसीसे क्या डर। दो लड़के तो उनके मारे गए, दो लड़के सूबेदार सिंह, तहसीलदारसिंह उनके साथ हैं और उसी चक्करमें हैं, तब फिर अपनी पीढ़ीकी खातिर क्यों आत्मसमर्पण नहीं करते।" पर यह बात ठाकुर मानसिंहको पसंद नहीं आई, इसका समाचार भी लेखकको मिल गया। साथ ही ठाकुर मानसिंहने काँग्रेसके प्रति अपना सम्पर्क बढ़ाना शुरू किया।

जिला-काँग्रेस कमेटी आगरेका अधिवेशन बटेश्वरमें होने वाला था। उस अधिवेशनका सभापतित्व करनेके लिए उत्तर-प्रदेश सरकारके तत्कालीन गृह-मन्त्री तथा केन्द्रीय सरकारके वर्त्तमान वाणिज्य और उद्योग-मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री आनेवाले थे। बाहके लगभग एक दर्जन काँग्रेसजन लेखक के पास आए और श्री शास्त्रीजीके लिए उन्होंने एक अभिनन्दन-पत्र तैयार कराया, जिसमें बाह तहसीलकी डकैतियोंका जिक्र था और अराजकता रोकनेकी अपीलकी गई थी। मानपत्र लिखानेवाले बाह तहसीलके काँग्रेसमंडलके कुछ कार्यकर्त्ता थे। अभिनन्दन-पत्र सीधी-साधी भाषामें लिख दिया गया। पर जब जिला काँग्रेस-कमेटीके अधिकारियोंको उस मानपत्र का पता चला तो उसे भेंट करनेका प्रोग्राम कार्यसूचीमें नहीं रखा गया। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यसे ऐन मौकेपर पता चला कि शास्त्रीजी अधिवेशनमें नहीं आयेंगे। वे आते तो मानमत्र पढ़नेका मौका नहीं दिया जाता। किया यह गया था कि ठाकुर मानसिंहकी ओरसे अधिवेशनमें स्वामी केशवानन्द भेजे गए और वे लेखकके पास ही आ विराजे। महिलाओंकी भीड़में मानसिंहकी उपस्थित थी। अनुमान है कि अन्य कई गुप्तचर भी मानसिंहकी ओरसे अधिवेशनमें होंगे। यह भी सुना था कि ठाकुर मानसिंहने अपनी ओरसे किसी व्यक्ति द्वारा उनके किसी रिश्तेदार या उसी व्यक्तिके नामसे काँग्रेस-कमेटीको एक सौ एक रुपयेका दान भी दिया था। अधिवेशनमें गृहसचिवके पार्लमेंटरी सेक्रेटरी श्री जगतप्रसाद रावत भी आये हुए थे। हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस चौधरी नारायणसिंहजीने रावतजी से आज्ञा चाही थी कि वे स्वामी केशवानन्दको गिरफ्तार कर लें, क्योंकि वह मानसिंह दलका खास आदमी है। चौधरी नारायणसिंहजीने लेखकको बताया कि रावतजीने उन्हें उत्तर-दिया था कि अगर उन्हें रावतजीपर भी शक है तो वे गिरफ्तार कर सकते हैं। चौधरी नारायणसिंहजीने सादी वर्दी में कुछ आदमी स्वामी केशवानन्दपर लगा दिया और अधिवेशनकी समाप्तिपर स्वामी केशवानन्दको गिरफ्तार कर लिया। दिनभर खाना नहीं खाया था और उसी दिन आगरे लौटना था तथा चौधरी नारायणसिंहके साथ आगरे पहुंचनेका तय हो चुका था, पर पं० शंभुनाथ चतुर्वेदीके यहां पहले खाना खाकर तब ४५-४६ मीलकी यात्रा करनेका तय किया। यों तो सभी चतुर्वेदियोंसे, पर विशेषकर होलीपुरा, कमतरी, आगरे और फिरोजाबादके चतुर्वेदियोंसे लेखकका विशेष स्नेह और आत्मीयता है। होलीपुरामें पं० राधेलाल चतुर्वेदी (पं० शम्भुनाथ चतुर्वेदीके पिता) रायबहादुर पं० जुगलकिशोर चतुर्वेदी तथा पं० रूपकिशोर चतुर्वेदी और उनके पुत्रोंसे घर-

का-सा सम्बन्ध है। बाहकी ओर जानेपर भोजनका प्रबन्ध लेखक वहीं रखता है। इसलिए हमलोग होलीपुरा पहुंचे और वहां पं० जुगलकिशोर चतुर्वेदीसे भेंट हुई। जल्दी ही खाना तैयार करनेके लिए कह दिया गया। हम सब पांच-छः आदमी थे और चतुर्वेदीजसे कहा कि पिकअपमें पीछे जाकर वे देख लें कि कितने आदमी हैं। पं० जुगलकिशोर चतुर्वेदी बड़े ही मिलनसार और व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं। स्वयं जाकर देखा तो लौटकर आश्चर्यसे बोले, "पिकअपमें तो स्वामी केशवानन्द गिरफ्तार बैठे हैं।" मैंने उनसे कहा, "उसकी जिम्मेदारी तो आपके क्षेत्रके डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिसपर है, पर खाना तो आपको स्वामीजीको खिलाना ही होगा। हम सब खाना खाने ही आए हैं।" होलीपुरामें ५-६ व्यक्ति तो क्या सौ-दो सौ व्यक्तियोंका भोजन भी हो सकता था। खाना खाकर हम आगरे आए।

स्वामी केशवानन्दकी पेशी अदालतमें हुई और दो हजार की जमानत मांगी गई ताकि मुकदमेमें वे छूटे रहें। ठाकुर मानसिंहने नकद दो हजार किसीसे जमा करा दिए। स्वामी केशवानन्द जमाननपर छूटकर मानसिंह दलमें जा मिले। बादमें चरना गिरोहके अनेक व्यक्तियोंके साथ शमसाबादके निकट ब्रिगेडियर मिश्रा द्वारा स्वामी केशवानन्द मारे गए। उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

मानसिंहके गिरोहको पुलिसकी गति-विधियोंका पूरा पता रहता है। इस विषयमें इन पंक्तियोंके लिखते समय आगरेके एक स्थानीय पत्रमें २९-१०-'५८ के अंकमें निम्नांकित समाचार छपा है—

डाकू सभाके गिरोहसे छूटकर आये, थाना इरादत नगर के मवासी नामक व्यक्तिने बताया है कि सायंकाल ६ बजे जब वह खेत जोत रहा था तो डाकू मटरे अन्य ८ डाकुओं के साथ पुलिसकी वर्दीमें आया और उसे तथा लड़के दोनोंको जबरदस्ती पकडकर ले गया।

मवासीने यह भी बताया कि वही डाकू लोग दिनके तीन बजे भी मुखबिरके साथ आये थे, जिसने इशारेसे उसे पहचनवा दिया था।

मवासीने बताया—"डाकुओंकी संख्या करीब २२ है और उनके पास नये-नये हथियार हैं। डाकुओंके गुप्तचर पुलिस में घुसे हुए हैं, जो पुलिसको गतिविधियोंकी गुप्त सूचनायें देते रहते हैं।

अपहरणकी अवस्थामें डाकुओंने कोई तकलीफ नहीं दी और खाने-पीनेका ठीक प्रबन्ध रखा।"

उपर्युक्त समाचारसे पाठक समझ सकेंगे कि मानसिंहके नेतृत्वमें उनका दल पुलिसकी गतिविधिसे उतना ही अवगत रहता था, जितना कि मानसिंहके विशिष्ट शिष्य पं० रूपलाल (रूपा) के नेतृत्वमें वही दल।

ग्वालियर क्षेत्र और आगरेकी स्थिति बिगड़ती ही गई। मानसिंह-गिरोहने धनोपार्जनका एक नया ढंग निकला। डाका डालनेकी अपेक्षा अमीरों तथा उनके पुत्रोंको गिरफ्तार करना शुरू किया और रिहाईके लिए एक रकम बांध दी, क्योंकि डाकूदलके खर्चीले जीवनमें रहन-सहन, कारतूस आदिकी आवश्यकताके लिए धनकी अधिक जरूरत रहती है। स्वभावतः मानसिंह कातिल नहीं थे, इसलिए कत्ल और डकैती के कुकर्मसे बचनेके लिए यह मार्ग अपनाया गया। इसका भयंकर दुरुपयोग अन्य दलोंने भी किया, पर ऐसे कार्य भी अक्षम्य होते हैं। एक बार आगरेके प्रसिद्ध अमेरिकन ट्रांसपोर्ट कम्पनीके संचालक सरदार संतसिंहके साथ एक घटना घटी। स्मरण रहे अमेरिकन ट्रांसपोर्ट कम्पनीका सम्बन्ध अमेरिकासे कुछ भी नहीं है। संतसिंहने ही यह नाम रख लिया है। विभाजनके बाद पंजाबसे आए सरदार संतसिंहने आगरे में यातायातका काम बढ़ाकर लाखों रुपया कमाया। उनके विरोधी सिख उनसे नाराज हुए और उनके इकलौते पुत्रको आगरा शहरसे उड़वा दिया। लाखोंकी सम्पत्ति और संतसिंह का एकमात्र पुत्र। पुत्रकी रिहाईके लिए पचास हजार रुपये निश्चित हुए, समय और स्थान भी नियत हो गया। यदि ये सब उपकरण पुलिसको बताये जाते तो डाकू मारे जाते या नहीं, पर यह तो निश्चय ही था कि संतसिंह तथा उनका पुत्र अवश्य मारे जाते। चपचाप पचास हजार रुपया देकर लड़केकी रिहाई की गई। अकेले इस काण्डपर एक उपन्यास लिखा जा सकता है।

इसी प्रकार मानसिंहके पास रुपयेकी आमदनीकी नदी-सी बह निकली, खर्चा भी उसीके अनुरूप होने लगा। बाह तथा उसके तटवर्ती क्षेत्रोंमें त्राहि-त्राहि मच गई। दुःखी, व्यथित और पीड़ित लोग लखनऊकी यात्रा करने लगे। पतियोंके कत्लोंसे हुई विधवाओं और अपहृत लोगोंके कुटुम्बीजनोंके करुण-क्रंदनसे सरकारके लखनऊके देवता पिघले और उत्तर-प्रदेश सरकारके तत्कालीन गृहसचिव श्री लालबहादुर शास्त्री आगरे आये। आगरेके सर्किट हाउसमें एक

प्राइवेट मीटिंग बुलाई गई। सरकारकी ओरसे गृहसचिव श्री शास्त्रीजीके अतिरिक्त, उत्तर-प्रदेशके इंस्पैक्टर जनरल आफ पुलिस श्री लाहिड़ी, मेरठ-आगराके डी० आई० पुलिस, आगरेके तत्कालीन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, तत्कालीन बड़े पुलिस कप्तान और दो-तीन डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस मौजूद थे। गैर-सरकारी आमंत्रित व्यक्तियोंमें थे तत्कालीन जिला कांग्रेस-कमेटीके अध्यक्ष श्री बालमुकुन्द बल्ला, डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके प्रेसीडेंट श्री ठाकुर उल्फ़तसिंह, राज्यसभाके सदस्य बाबू रामचंद्र गुप्त, लोकसभाके सदस्य श्री सेठ अचलसिंह, श्रीमती विद्यावती राठौर एम० एल० ए० के पति कुँवर, बैजनाथसिंह और इन पंक्तियोंका लेखक। शास्त्रीजीने सबसे पहले लेखकसे कहा, "शर्माजी! आगरेकी डकैतियोंपर आप ही पहले प्रकाश डालें, क्योंकि आपने इन्हें रोकनेके लिए काफ़ी काम किया है।" शास्त्रीजीको लेखकने बताया कि वे (शास्त्रीजी) कुछ कर तो सकेंगे नहीं, उल्टे साफ़ बात कहनेवाला मुसीबतमें पड़ेगा। यदि कांग्रेसजन ही डकैतियोंको प्रोत्साहन न दें तो मामला बहुत सुधर जाय। शास्त्रीजीके आग्रहपर उपस्थित लोगोंके सामने लेखकने बताया कि "मानसिंहको गलत प्रोत्साहन डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस-कमेटी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डसे मिलता है।" श्री बालमुकुन्द बल्लाने, जो स्वयं मानसिंहसे मिले थे, कहा कि उनका उद्देश्य मानसिंहसे आत्मसमर्पण करानेका था। पर सवाल मिलनेके उद्देश्यसे नहीं, वरन् मिलनेसे थे। शास्त्रीजीके सामने मिलने और मिलानेवालोंने मान लिया कि वे ऐसा करते हैं। इस प्राइवेट मीटिंगके चार-पाँच दिन बाद, मानसिंहका एक संदेश फिर आया। संदेश क्या था, मानो आग्रह के साथ धमकी थी। उस संदेशका तात्पर्य था :—"पं०जी, हम ब्राह्मणोंके भक्त हैं, पर हमारा विरोधी चाहे कोई हो, उसे हम छोड़ते नहीं है। अंतिम बार प्रार्थना है कि आप लाख दो लाख रुपया हमसे लेकर अपने घर बैठें, अन्यथा नतीजा बुरा होगा।'

उस गर्वोक्तिका उत्तर लेखकने भेज दिया, 'मानसिंहसे कह देना मनुष्यका जीवन उसके हाथमें नहीं है। वे रामायण पढ़ते हैं, अतः उनसे रामायणकी यह पंक्ति कह देना, 'हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, विधि हाथ।' मैं सौजन्य से दबता हूं, धमकीसे नहीं। यदि मानसिंहके हाथों ही मरना है तो मैं क्या मौतके विधानको बदल सकता हूं। मेरा अंतिम समाचार यह भी कह देना कि जो लोग उन्हें धोखेमें रख रहे हैं, उनसे मानसिंहजीका हित न होगा और देशका तो होगा ही नहीं। उन्होंने क्षत्रियोंकी बात कही है तो मेरी ओरसे भी ब्राह्मणत्वका समाचार देना कि वीरताके साथ आत्मसमर्पण करें। मैं न पुलिसमें हूं, न दलाल, न किसी मंत्री का मुसाहिब। मानसिंहजीसे मेरा विद्वेष नहीं, उनकी डकैती और कत्लके खिलाफ रहा हूं और रहूंगा।" लेखकका यह समाचार मानसिंहजी तक पहुँच गया, इसका प्रमाण उनके अंतिम दिनोंमें एक आदमीसे कही बातसे मिला, "कांग्रेसवालोंने मुझे धोखेमें रखा। शर्माजीने ही बात ठीक कही थी। पर अब तो लड़ते-लड़ते ही मरना।"

ठाकुर मानसिंहका जो अंतिम धमकी भरा संदेश आया था, उसका कारण था, आगरेके सर्किट हाउसमें कही गई लेखककी बातें।

एक दिन एक्सप्रेस गाड़ीसे कलकत्तेसे लौट रहा था, शिकोहाबाद स्टेशनपर योंही प्लेटफार्मपर खड़ा हो गया, वैसे ही पासके डब्बेसे श्री जगनप्रसाद रावत अपने अरदलीके साथ उतरते दिखायी पड़े। उनके स्वागतमें मैनपुरीके जिलाधीश श्री खन्ना उपस्थित थे। देखते ही रावतजीने पूछा, "आप कहाँसे आये हैं और कहाँ जा रहे हैं?"

"कलकत्तेसे आया हूं, आगरे जा रहा हूं।" उत्तर सुनकर रावतजीने फिर कहा, "चलिए बटेश्वर चलें। शामको पिकअपसे आगरे चलेंगे।"

अपना सामान उतरवाकर श्री खन्ना और रावतजीके साथ डाकबँगले गया। चाय पीकर हमलोग बटेश्वर चले। शिकोहाबादसे बटेश्वर चौदह-पंद्रह मील है। बटेश्वर पहुंचते ही डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके एक सदस्यने सशंकित मुद्रासे पूछा, "शर्माजी, आप आगरे कब जायेंगे और किस रास्तेसे जायेंगे।" रावतजीसे मैंने अंग्रेजीमें बताया कि वह आदमी ठीक नहीं है, उसे मार्ग नहीं बताना चाहिए। बटेश्वरसे आगरेके लिए दो मार्ग हैं—एक तो शिकोहाबाद-फिरोजाबाद होकर और दूसरा बाह-आगरा सड़कसे फतहाबाद होकर। अन्यमनस्क भावसे पूछनेवालेसे कह दिया, "कब जायेंगे और किस रास्ते जायेंगे, अभी तय नहीं।" पर बाद में पिकअपके ड्राइवरसे मालूम हुआ कि उन हजरतने ड्राइवरसे मालूम कर लिया कि हमलोग सायंकाल सात बजे शिकोहाबाद-फिरोजाबाद होकर जायेंगे। पर विधिकी गति बड़ी विचित्र है। उसी दिन हजारों लोगोंके जनसमूहमें कांग्रेस की ओरसे जमींदारी उन्मूलनकी एक मीटिंग होनेवाली थी।

[शेषांश पृष्ठ ४१७ पर देखिये

हास्यरसकी कहानी

मरहूमकी यादमें

'पतरस'

एक दिन मिर्ज़ा साहब और मैं बरामदेमें साथ-साथ कुर्सियां डाले चुपचाप बैठे थे। जब दोस्ती बहुत पुरानी हो जाय तो गुफ्तगूकी चन्दां जरूरत बाक़ी नहीं रहती। और दोस्ती एक दूसरेकी खामोशीसे भी लुत्फअन्दाज हो सकती है। यही हालत हमारी थी। हम दोनों अपने-अपने खयालमें ग़र्क थे। मिर्ज़ा साहब तो खुदा जाने क्या सोच रहे थे, लेकिन मैं ज़मानेकी नासाज़गारी पर ग़ौर कर रहा था। दूर सड़कपर थोड़े-थोड़े समयके बाद एक मोटरकार गुजर जाती थी। मेरी तबियत कुछ ऐसी वाके हुई है कि जब मैं किसीकी मोटरकारको देखता हूं, मुझे ज़मानेकी नासाज़गारी का ख्याल ज़रूर सताने लगता है और मैं कोई ऐसी तरकीब सोचने लगता हूं, जिससे दुनियाकी तमाम दौलत सब इन्सानों में बराबर तक़सीमकी जा सके। अगर मैं सड़कपर पैदल जा रहा हूं, और मोटर इस अदासे गुजर जाय कि गर्दोंगुबार मेरे फेफड़ों, मेरे दिमाग़, मेरे मेदे और मेरी तिल्ली तक पहुंच जाय, तो उस दिन आकर इल्मे कीमिया[2]की वह किताब निकाल लेता हूँ, जो मैंने एफ० ए०में पढ़ी थी। और इस गर्वसे उसका मुताले़आ करने लगता हूं कि शायद बम बनाने का कोई नुस्खा हाथ आ जाय।

मैं कुछ देर तक आहें भरता रहा। मिर्ज़ा सोहबने कुछ तवज्ज न की। आखिर मैंने खामोशीको तोड़ा और मिर्जासे मुखातिब होकर बोला—

"मिर्ज़ा! हममें और हैवानोंमें क्या फ़र्क है?"

मिर्ज़ा साहब बोले—"भई, कुछ होगा ही ना आखिर।"

मैंने कहा—"मैं बताऊं तुम्हें?"

कहने लगे—"बोलो।"

मैंने कहा—"कोई फ़र्क नहीं। सुनते हो मिर्ज़ा! कोई फ़र्क नहीं। हममें और हैवानोंमें·····कम अज़ कम मुफ़्लिसों और हैवानोंमें कोई फ़र्क नहीं? हां, हां, मैं जानता हूं, तुम मीन-मेख निकालनेमें बड़े ताक़ हो। कह दोगे, हैवान जुगाली करते हैं। तुम जुगाली नहीं करते। उनके दुम होती है। लेकिन इन बातोंसे क्या होता है? इनसे तो बस यही साबित होता है कि वह मुझसे अफ़ज़ल हैं। लेकिन एक बातमें मैं और वह बिलकुल बराबर है। वह भी पैदल चलते हैं, मैं भी पैदल चलता हूं। इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है? जवाब नहीं! कुछ है, तो कहो। बस चुप हो जाओ। तुम कुछ नहीं कह सकते। जबसे मैं पैदा हुआ हूं, उस दिनसे पैदल चल रहा हूं—पैदल! तुम पैदलके मानी नहीं जानते? पैदलके मानी हैं सीनये ज़मीन पर इस तरहसे हरकत करना कि दोनों पाँवोंमें से एक ज़रूर ज़मीनपर रहे। यानी तमाम उम्र मेरे हरकत करनेका तरीका यही रहा है कि एक पाँव ज़मीनपर रखता हूं, दूसरा उठाता हूं। दूसरा रखता हूं, पहला उठाता हूं। एक आगे, एक पीछे। एक पीछे, एक आगे। खुदाकी क़सम, इस तरहकी ज़िंदगीसे दिमाग़ सोचनेके क़ाबिल नहीं रहता। हवास बेकार हो जाते हैं। तख़ैय्युल मर जाता है। आदमी गधेसे बदतर हो जाता है।

मिर्ज़ा साहब मेरी इस तक़रीरके दौरानमें कुछ इस बेपरवाहीसे सिगरेट पीते रहे कि दोस्तोंकी बेपरवाहीपर रोनेको दिल चाहता है। मैंने अज़हद हिक़ारत और नफ़रत के साथ मुँह उनकी तरफ़से फ़ेर लिया। ऐसा मालूम होता था कि मिर्ज़ाको मेरी बातोंपर यक़ीन नहीं आता। गोया मैं अपनी जो तकालीफ़ बयान कर रहा हूं, वह महज़ खयाली है। यानी मेरा पैदल चलनेके खिलाफ़ शिकायत करना क़ाबिले तवज्जः ही नहीं। यानी मैं किसी सवारीका मुस्तहक़ ही नहीं। मैंने दिलमें कहा—"अच्छा मिर्ज़ा योंही सही। देखो तो मैं क्या करता हूं।"

मैंने अपने दांत पिचीकर लिए और कुर्सीके बाज़ूपर झुककर मिर्ज़ाके क़रीब पहुंच गया। मिर्ज़ाने भी सर मेरी तरफ़ मोड़ा। मैं मुसकरा दिया। लेकिन मेरे तबस्सुममें ज़हर मिला हुआ था। जब मिर्ज़ा सुननेके लिए बिलकुल तैयार हो गया, तो मैंने चबा-चबाकर कहा—

"मिर्ज़ा! मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं।"

मरहूम=स्वर्गीय। इल्मे कीमिया=रसायन विद्या।

यह कहकर मैं बड़े इत्मीनानके साथ दूसरी तरफ़ देखने लगा।

मिर्ज़ा बोले—"क्या कहा तुमने? क्या खरीदने लगे हो?"

मैंने कहा—"सुना नहीं तुमने। मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं। मोटरकार एक ऐसी गाड़ी है, जिसको बाज़ लोग मोटर कहते हैं। बाज़ लोग कार कहते हैं। लेकिन चूंकि तुम ज़रा कुन्दज़हन हो, इसलिए मैंने दोनों लफ़्ज़ इस्तेमाल कर दिये, ताकि समझनेमें तुम्हें कोई दिक्क़त पेश न आये।"

मिर्ज़ा बोले—"हूं"।

अबकी मिर्ज़ा नहीं, मैं बेपरवाहीसे सिगरेट पीने लगा। भवें मैंने ऊपर चढ़ा लीं। सिगरेटवाला हाथ मैं मुंह तक इस अंदाजसे लाता और हटाता था कि बड़े-बड़े एक्टर इस पर रश्क करें।

थोड़ी देर बाद मिर्ज़ा फिर बोले—"हूं।"

मैंने सोचा, असर हो रहा है। मिर्ज़ा साहबपर रोब पड़ रहा है। मैं चाहता था मिर्ज़ा कुछ बोले ताकि मुझे मालूम हो कि कहां तक मरऊब हुआ है। लेकिन मिर्ज़ाने फिर कहा—"हूं।"

मैंने कहा—"मिर्ज़ा साहब! जहां तक मुझे मालूम है, तुमने स्कूल और कालिज और घरपर दो-तीन ज़बाने सीखी हैं। और इसके अलावा तुमको कई ऐसे अल्फ़ाज भी आते हैं, जो किसी स्कूल या कालिज या शरीफ़ घरानेमें नहीं बोले जाते। फिर भी इस वक्त तुम्हारा कलाम 'हूं' से आगे नहीं बढ़ता। तुम जलते हो। मिर्ज़ा, इस वक्त तुम्हारी जो ज़हनी कैफ़ियत है, उसे अरबी ज़बानमें हसद कहते हैं।"

मिर्ज़ा साहब कहने लगे—"नहीं, यह बात तो नहीं। मैं तो सिर्फ़ खरीदनेके लफ़्ज़पर ग़ौर कर रहा था। तुमने कहा, मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं। तो मियां साहबज़ादे, खरीदने तो एक ऐसा खेल है कि उसके लिए रुपये वगैरहकी ज़रूरत होती है। वगैरहका बन्दोबस्त तो बखूबी हो जायगा. लेकिन रुपयेका बन्दोबस्त कैसे करोगे?"

यह नुक्ता मुझे भी नहीं सूझा था, लेकिन मैंने हिम्मत न हारी। मैंने कहा—"मैं अपनी कई कीमती अशिया बेच सकता हूं।"

मिर्ज़ा बोले—"कौन-कौन-सी? मसलन!"

मैंने कहा—"एक तो मैं अपना सिगरेट केस बेच डालूंगा।"

मिर्ज़ा कहने लगे—"चलो दस आने तो यह हो गये। बाक़ी ढाई-तीन हज़ारका इन्तजाम भी इसी तरह हो जाए तो सब काम ठीक हो जायगा।" इसके बाद ज़रूरी यह मालूम हुआ कि गुफ्तगूका सिलसिला कुछ देरके लिये रोक दिया जाय। चुनांचे मैं मिर्ज़ासे बेजार होकर खामोश हो रहा। यह बात समझमें न आई कि लोग रुपया कहांसे लाते हैं। बहुत सोचा। आखिर इस नतीजेपर पहुंचा कि लोग चोरी करते हैं। इससे एक गूना इस्तेनान हुआ।

मिर्ज़ा बोले—"मैं तुम्हें एक तरकीब बताऊं? एक बाइसिकिल ले लो।"

मैंने कहा—"वह रुपयेका मसला तो फिर भी ज्यों का त्यों रहा।"

कहने लगे—"मुफ्त।"

मैंने हैरान होकर पूछा—"मुफ्त! वह कैसे?"

कहने लगे—"मुफ्त ही समझो। आखिर दोस्तसे कीमत लेना भी कहां तक शराफ़त है। अलबत्ता तुम अहसान कुबूल करना गवारा न करो, तो और बात है।"

ऐसे मौकोंपर जो हंसी मैं हंसता हूं, उसमें मासूम बच्चे की मसर्रत, जवानीकी खुशदिली, उबलते हुए फ़व्वारोंकी मौसिक़ी और बुलबुलोंका नग़मा, सब एक दूसरेके साथ मिले होते हैं। चुनांचे मैं यह हंसी हंसा और इस तरह हंसा कि खुली हुई बांछें फिर घण्टों तक अपनी असली जगह वापस न आईं। जब मुझे यक़ीन हो गया कि यकलख्त कोई खुश खबरी सुननेसे दिलकी हरकत बन्द हो जानेका जो खतरा होता है—उससे महफ़ूज हूं तो मैंने पूछा—"है किसकी?"

मिर्ज़ा बोले—"मेरे पास एक बाइसिकल पड़ी है। तुम ले लो।"

यक़ीन मानिये, मुझपर घड़ों पानी पड़ गया। शर्मके मारे मैं पसीना-पसीना हो गया। चौदहवीं सदीमें ऐसी बेग़र्ज़ी और ईसार भला कहां देखनेमें आता है। मैंने कुरसी सरका कर मिर्ज़ाके पास कर ली। समझमें न आया कि अपनी निदामत और मम्नूनियतका इजहार किन अल्फ़ाजोंमें करूँ।

मैंने कहा—"मिर्ज़ा, सबसे पहले तो मैं उस गुस्ताखी

ओर दुरुस्ती और बेअदबीके लिए माफ़ी माँगता हूं, जो अभी-अभी मैंने तुम्हारे साथ गुफ्तगूमें खा रखी। दूसरी मैं आज तुम्हारे सामने एक एतराफ करना चाहता हूं और उम्मीद करता हूँ कि तुम मेरी साफ़गोईकी दाद दोगे। मैं हमेशा तुमको अज़हद कमीना, मुमसिक, खुदग़र्ज़ और ऐयार इन्सान समझता रहा हूं। देखो, नाराज़ मत हो। इन्सानसे गलती हो ही जाती है। लेकिन आज तुमने अपनी शराफ़त और दोस्त परवरीका सबूत दिया है। और मुझपर साबित कर दिया है कि मैं कितना क़ाबिले नफ़रत, तंग ख्याल और हक़ीर शख्स हूं। मुझे माफ़ कर दो।"

मेरी आंखोंमें आंसू भर आये। करीब था कि मैं मिर्ज़ाके हाथको बोसा देता और अपने आँसूओंको छुपानेके लिए उसकी गोदमें सर रख देता। लेकिन मिर्ज़ा साहब कहने लगे—

"वाह! इसमें मेरी फ़ैयाज़ी क्या हुई। मेरे पास एक बाइसिकल है। जैसे मैं सवार हुआ, वैसे तुम सवार हुए।"

मैंने कहा—"मिर्ज़ा, मुफ्तमें न लूंगा। यह हरगिज नहीं हो सकता।"

मिर्ज़ा कहने लगे—"बस इसी बातसे मैं डरता था। तुम हस्सास इतने हो कि किसीका अहसान लेना गवारा नहीं करते। हालांकि खुदा गवाह है, अहसान इसमें कोई नहीं।"

मैंने कहा—"खैर कुछ भी सही, तुम सचमुच मुझे उसकी क़ीमत बता दो।"

मिर्ज़ा बोले—"क़ीमतका ज़िक्र करके तुम गोया मुझे काटोंमें घसीटते हो। और जिस कीमत पर मैंने खरीदी थी, वह तो बहुत ज्यादा थी। और अब तो वह इतनेकी रही भी नहीं।"

मैंने पूछा—"तुमने कितने में खरीदी थी?"

कहने लगे—मैंने पौने दो सौ रुपयेमें ली थी। लेकिन उस जमानेमें बाइसिकिलोंका रिवाज जरा कम था। इसलिये कीमतें ज़रा ज्यादा थीं।"

मैंने कहा—"क्या बहुत पुरानी है?"

बोले—"नहीं। ऐसी पुरानी भी क्या होती? मेरा लड़का उसपर कालिज आया-जाया करता था। और उसे कालिज छोड़े अभी दो साल भी नहीं हुए। लेकिन इतना जरूर है कि आज-कलकी बाइसिकिलोंसे ज़रा मुख्तलिफ है। आज-कल तो बाइसिकिलें टीनकी बनती हैं, जिन्हें कालेजके शर लौण्डे सस्ती समझकर खरीद लेते हैं। पुरानी बाइसिकिलोंके ढाचे मजबूत हुआ करते थे।"

"मगर मिर्ज़ा, पौने दो सौ रुपये तो मैं हरगिज नहीं दे सकता। इतने रुपये मेरे पास कहांसे आये। मैं तो इससे आधे कीमत भी नहीं दे फकता।"

मिर्ज़ा कहने लगे—"तो मैं तुमसे पूरी कीमत थोड़े ही मांगता हूं। अव्वल तो कीमत लेना नहीं चाहता, लेकिन...."

मैंने कहा—"ना मिर्ज़ा, कीमत तो तुम्हें लेनी पड़ेगी। अच्छा तुम यों करो। मैं तुम्हारी जेबमें कुछ रुपये डाल देता हूं। तुम घर जाकर गिन लेना। अगर तुम्हें मंजूर हुए, तो कल बाइसिकिल भेज देना, वरना रुपये वापस कर देना। अब यहां बैठकर मैं तुमसे सौदा चुकाऊं, यह तो कुछ दुकानदारोंकी-सी बात मालूम होती है।"

मिर्ज़ा बोले—भाई, जैसी तुम्हारी मर्जी। मैं तो अब भी यही कहता हूं कि कीमत-वीमत जाने दो। लेकिन मैं जानता हूं कि तुम न मानोगे।"

मैं उठकर अन्दर कमरेमें आया। मैंने सोचा, इस्तमाल शुदा चीजकी लोग आम तौर पर आधी कीमत देते हैं। लेकिन जब मैंने मिर्ज़ासे कहा था कि मिर्ज़ा मैं तो आधी कीमत भी नहीं दे सकता, तो मिर्ज़ा इसपर मोतरिज न हुआ था। वह बेचारा तो बल्कि यही कहता था कि तुम मुफ्त ही ले लो। लेकिन मुफ्तमें कैसे ले लूं। आखिर बाइसिकिल है। एक सवारी है। फिटनों, घोड़ों, मोटरों और ताँगोंके रम्जेमें शुमार होता है। बक्सको खोला तो मालूम हुआ कि हस्तो बूद कुल छियालीस रुपये हैं। छियालीस रुपये तो कुछ ठीक रकम नहीं। पैंतालीस या पचास हों जब भी कुछ बात है। पचास तो हो नहीं सकते और अगर पैंतालीस ही देने हैं, तो चालीस क्यों नहीं दिये जायं। जिन रकमोंके आखिरमें सिफर आता है, वह रकमें कुछ ज्यादा माकूल मालूम होती हैं। चालीस रुपये दे दूंगा, खुदा करे मिर्ज़ा कुबूल कर ले।

बाहर आया। चालीस रुपये मुट्ठीमें बन्द करके मैंने मिर्ज़ाकी जेबमें डाल दिये और कहा—मिर्ज़ा, इसको कीमत न समझना। लेकिन अगर एक मुफ्लिस दोस्त की हक़ीर-सी रकम मंजूर करना। तुम्हें अपनी तौहीन मालूम न हो तो कल बाइसिकिल भेज देना।

मिर्ज़ा चलने लगे, तो मैंने फिर कहा—"मिर्ज़ा, कल जरूर सुबह ही सुबह भिजवा देना।' रुख़सत होनेसे पहले मैंने फिर कहा—"कल सुबह आठ-नौ बजे तक पहुंच जाय। देर न करना···खुदा हाफिज···और देखो मिर्ज़ा, मेरे थोड़ेसे रुपयोंको भी ज्यादा समझना.....खुदा हाफिज···और तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया। मैं तुम्हारा बहुत ममनून हूं और मेरी गुस्ताखीको माफ कर देना। देखो न कभी-कभी यों ही बेतकल्लुफीमें···कल सुबह नौ बजे तक .....जरूर·····खुदा हाफिज।

मिर्ज़ा कहने लगे—"जरा उसको झाड़-पोंछ लेना और तेल वगैरहा डलवा लेना। मेरे नौकरको फुरसत हुई, तो मैं खुद ही डलवा दूंगा, वरना तुम खुद डलवा लेना।"

मैंने कहा—"हां, हां, वह सब हो जायेगा। तुम कल भेज जरूर देना और देखना आठ बजे तक या साढ़े सात बजे तक पहुंच जाय। अच्छा···खुदा हाफिज।"

रातको बिस्तरपर लेटा तो बाइसिकिलपर सैर करनेके मुख्तलिफ़ प्रोग्राम तजबीज़ करता रहा। यह इरादा तो पुख्ता कर लिया कि तीन दिनके अन्दर ईद-गिर्दकी तमाम मशहूर तारीखी इमारत और खण्डहरोंको नये सिरेसे देख डालूँगा। इसके बाद अगले गर्मीके मौसममें हो सकता, तो कश्मीरकी सैर करूंगा। सुबह-सुबह हवाखोरीके लिए हर रोज नहर तक जाया करूंगा। शामको ठंडी सड़कपर जहाँ और लोग सैरको निकलेंगे, मैं भी सड़ककी साफ़-सफ्फाफ सतहपर हल्के-हल्के, खामोशीके साथ, हाथीदांतकी एक गेंदकी मानिन्द गुजर जाऊंगा। डूबते हुए आफ़ताबकी रोशनी बाइसिकिलके चमकीले हिस्सोंपर पड़ेगी तो बाइसिकिल जगमगा उठेगी और ऐसा मालूम होगा, जैसे एक राजहंस जमीनके साथ उड़ रहा है। वह मुसकराहट जिसका मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ, अभी तक मेरे ओठोंपर खेल रही थी। बहरहाल दिल चाहा, अभी भागकर जाऊं और इसी समय मिर्ज़ाको गले लगा लूं।

रातको ख्वाबमें दुआएँ मांगता रहा कि खुदाया मिर्ज़ा बाइसिकिल देनेपर रजामन्द हो जाय।

सुबह उठा तो उठनेके साथ ही नौकरने यह खुशखबरी सुनाई कि हुजूर वह बाइसिकिल आ गई है।

मैंने कहा—"इतने सवेरे।"

नौकरने कहा—"वह तो रात ही आ गई थी, आप सो गये थे। मैंने जगाना मुनासिब नहीं समझा, और साथ ही मिर्ज़ा साहबका आदमी डिबरियां कसनेका एक औजार भी दे गया है।"

मैं हैरान तो हुआ कि मिर्ज़ा साहबने बाइसिकिल भेजनेमें इस क़दर उजलतसे क्यों काम लिया? लेकिन इस नतीजेपर पहुंचा कि आदमी निहायत शरीफ़ और दयानतदार है। रुपये ले लिये थे, तो बाइसिकिल क्यों रोक रखते।

नौकरसे कहा—'देखो! यह औजार यहीं छोड़ जाओ और देखो बाइसिकिलको किसी कपड़ेसे खूब अच्छी तरह झाड़ो और यह मोड़पर जो बाइसिकिलवाला बैठता है, उससे जाकर बाइसिकिलमें डालनेवाला तेल ले आओ और देखो—अबे भागा कहां जा रहा है? हम जरूरी बात तुमसे कह रहे हैं। बाइसिकिलवालेसे तेलकी एक कुप्पी भी ले आना और जहां-जहां तेल देनेकी जगह है, वहां तेल दे देना, और बाइसिकिलवालेसे कहना कि कोई घटिया-सा तेल न दे देना, जिससे तमाम पुर्जे खराब हो जायं। बाइसिकिलके पुर्जे बड़े नाजुक होते हैं और बाइसिकिल बाहर निकाल रखो। हम अभी कपड़े पहनकर आते हैं। हम जरा सैर को जा रहे हैं। देखो साफ कर देना और बहुत जोर-जोरसे कपड़ा भी मत रगड़ना। बाइसिकिलका पालिस घिस जाता है।"

जल्दी-जल्दी चाय पी। गुस्लहखानेमें बड़े जोश व खरोशके साथ "चल-चल चम्बेली बाग में" गाता रहा। इसके बाद कपड़े बदले। औजार जेबमें डाला और कमरेके बाहर निकला।

बरामदेमें आया तो बरामदेके साथ ही एक अजीबो-गरीब मशीनपर नजर पड़ी। ठीक तरह पहचान न सका क्या चीज है? नौकरसे दरयाफ्त किया—"क्यों बे, यह क्या चीज है?"

नौकरने कहा—"हुजूर, यह बाइसिकिल है।"

मैंने कहा—"बाइसिकिल? किसकी बाइसिकिल?"

कहने लगा—"मिर्ज़ा साहबने भिजवाई है—आपके लिए।"

मैंने कहा—"और जो बाइसिकिल रातको उन्होंने भेजी थी, वह कहां गई?"

कहने लगा—"यही तो है।"

मैंने कहा—"क्या बकता है, जो बाइसिकिल मिर्ज़ा साहबने रातको भेजी थी, वह बाइसिकिल यही है?"

कहने लगा—"जी हाँ।"

मैंने कहा—'अच्छा।" और फिर उसे देखने लगा।

"इसको साफ क्यों नहीं किया?"

"हुजूर, दो-तीन दफ़े साफ़ किया।"

"तो यह मैली क्यों है?"

नौकरने इसका जवाब देना शायद मुनासिब न समझा।

"और तेल लाया?"

"हां हुजूर, लाया हूं।"

"दिया?"

"हुजूर, वह जो तेल देनेके छेद होते हैं, वह नहीं मिलते।"

"क्या वजह?"

"हुजूर, धुरोंपर मैल और जंग जमा है, वह सुराख कहीं बीच ही में दब-दबा गये हैं।"

रफ्ता-रफ्ता मैं उस चीजके पास गया, जिसको मेरा नौकर बाइसिकिल बता रहा था। इसके मुख्तलिफ़ पुर्जोंपर गौर किया, तो इतना तो साबित हो गया कि बाइसिकिल है; लेकिन मुजमल हैयातसे यह साफ़ जाहिर था कि हल, राहट और चरखा और इसी तरफ़की और जदीद ईजायादसे पहलेकी बनी हुई है। पहियेको घुमा-घुमाकर वह सुराख तलाश किया, जहां किसी जमाने में तेल दिया जाता था। लेकिन अब सूराखमें से आमदो-रफ्तका सिलसिला बन्द था। चुनांचे नौकर बोला—"हुजूर, वह तैल तो सब इधर-उधर बह जाता है, बीचमें तो जाता ही नहीं।"

मैंने कहा—"अच्छा ऊपर-ऊपर डाल दो। यह भी मुफ़ीद होता है।"

आखिरकार बाइसिकिलपर सवार हुआ। पहला ही पाँव चलाया था, तो ऐसा मालूम हुआ कि कोई मुर्दा अपनी हड्डियाँ चटखा-चटखाकर अपनी मर्ज़ीके खिलाफ़ जिन्दा हो रहा है। घरसे निकलते ही कुछ थोड़ी-सी उतराई थी। इसपर बाइसिकिल खुद्-बखुद् चलने लगी। लेकिन इस रफ्तार में जैसे तारकोल जमीनपर बहता है। और साथ ही मुख्तलिफ़ हिस्सोंसे तरह-तरहकी आवाजें बरामद होना शुरू हुईं। उन आवाजोंके मुख्तलिफ़ गिरोह थे। चीं-चां-चूं किस्मकी आवाज़ ज्यादातर गद्दीके नीचे और पिछले पहियेसे निकलती थी। खट, खड़, खड़, खरड़के कबीलकी आवाजें मडगार्डसे आती थी। चर-चर्रख चर-चर्रखकी किस्मके सुर जंजीर और पैडलसे निकलते थे। जंजीर ढीली थी। मैं जब कभी पैडलपर जोर डालता, जंजीरमें एक अँगड़ाई-सी पैदा होती, जिससे वह तन जाती थी और चड़चड़ बोलने लगती थी और फिर ढीली हो जाती थी। पिछला पहिया घूमनेके अलावा झूमता भी था यानी एक तो आगेको चलता था और इसके अलावा दाहिनेसे बाँयें और बाँयेंसे दाहिनेको हरकत करता था। चुनांचे सड़कपर जो निशान पड़ता जाता था, उसको देखकर ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई मख्मूर साँप लहराकर निकल गया है। मडगार्ड थे तो सही, पर पहियोंके ऐन ऊपर न थे। उनका फ़ायदा सिर्फ यह मालूम होता था कि इन्सान शुमालकी सिम्त सैरको निकले और आफ़ताब मग़रिबमें गुरूब हो रहा हो तो मडगार्डोंकी बदौलत टायर धूपसे बचे रहेंगे। अगले पहियेके टायरमें एक बड़ा-सा पैबन्द लगा था, जिसकी वजहसे पहिया हर चक्करमें एक दफ़ा लहमे भरको ज़ोरसे ऊपर उठ जाता था और मेरा सिर पीछेको यों झटके खा रहा था, जैसे कोई मुतवातिर ठोड़ीके नीचे मुक्के मारे जा रहा हो। पिछले और अगले पहियेको मिलाकर चूँ-चूँ फट, चूँ-चूँ फट, चूँ-चूँ फट, चूँ-चूँ फटकी सदा निकल रही थी: जब उतारपर बाइसिकिल ज़रा तेज़ हुई, तो फ़िज़ामें एक भूचाल-सा आ गया और बाइसिकिलके कई पुर्जे, जो अब तक सो रहे थे, बेदार होकर गोया हुए। इधर-उधरके लोग चौंके। माओंने अपने बच्चोंको सीनेसे लगा लिया। खड़-खड़के बीचमें पहियोंकी आवाज़ जुदा सुनाई दे रही थी। लेकिन चूँकि बाइसिकिल पहलेसे अब तेज़ थी, इसलिए चूँ-चूँ फट, चूँ-चूँ फटकी आवाज़ने अब चूँ-चूँ फट, चूँ-चूँ फटकी सूरत अख्तियार कर ली थी। तमाम बाइसिकिलकी किसी अदृश्य अफ्रीकी ज़बानकी गर्दानें दोहरा रही थी।

इस क्षुद्र तेज़ रफ्तारी बाइसिकिलकी तबानाज़ुकपर गरां गुजरी। चुनांचे उसमें यकलख्त दो तब्दीलियाँ वाक़े हो गईं। एक तो हैण्डिल एक तरफको मुड़ गया। उसका नतीजा यह हुआ कि मैं सामनेको जा रहा था, लेकिन मेरा तमाम जिस्म दायें तरफको मुड़ा हुआ था। इसके अलावा बाइसिकिलकी गद्दी वफ्तन दो इंचके करीब नीचे बैठ गई। चुनांचे जब पैडल चलानेके लिए मैं टाँगें ऊपर-नीचे कर रहा था, तो मेरे घुटने मेरी ठोड़ी तक पहुंच जाते थे। कमर दोहरी होकर बाहरको निकली हुई थी और साथ ही अगले पहियेकी अठखेलियोंकी वजहसे सर बार-बार झटके खा रहा था।

गद्दीका नीचा हो जाना अज़हद तकलीफदेह साबित हुआ। इसलिए मैंने मुनासिब यही समझा कि इसको ठीक

कर लूँ। चुनांचे मैंने बाइसिकिलको ठहरा लिया और नीचे उतरा। बाइसिकिलके ठहर जानेसे यकलख्त जैसे दुनियामें एक खामोशी-सी छा गई। ऐसा मालूम हुआ, जैसे मैं किसी रेलके स्टेशनसे निकलकर बाहर आ गया हूं। जेबसे मैंने औज़ार निकाला। गद्दीको ऊँचा किया। कुछ हैण्डिलको ठीक किया और दुबारा सवार हो गया।

दस कदम भी चलने न पाया था कि अबकी हैण्डिल यकलख्त नीचा हो गया। इतना कि गद्दी अब हैण्डिलसे कोई फुट भर ऊँची थी। मेरा तमाम जिस्म आगेको झुका हुआ था। तमाम बोझ दोनों हाथोंपर था, जो हैण्डिलपर थे। बराबर झटके खा रहे थे। आप मेरी हालतपर तसव्वुर करें, तो आपको मालूम हो कि मैं दूरसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे कोई औरत आटा गूँध रही हो। मुझे इस मशाबहतका अहसास बहुत तेज़ था, जिसकी वजहसे मेरे माथेपर पसीना आ गया। मैं दायें-बाँयें लोगोंको कनखियों से देखता जाता था। यों तो हर शख्स मील भर पहलेसे ही मुड़-मुड़कर देखने लगता था, लेकिन उनमें कोई ऐसा न था, जिसके लिए मेरी मुसीबत जी आफ़त तबाका बाइस न हो।

हैण्डिल तो बेज़ा हो ही गया था। थोड़ी देरके बाद गद्दी भी नीचे आ गई और मैं एकाएक ज़मीनके करीब पहुंच गया। एक लड़केने कहा—"देखो, यह आदमी क्या कर रहा है।" गोया उस बदतमीज़के नज़दीक मैं कोई करतब दिखा रहा था। मैंने उतरकर फिर गद्दी और हैण्डिलको ऊँचा किया।

लेकिन थोड़ी देरके बाद उनमें से एक-न-एक फिर नीचा हो जाता। वह लहमे, जिनके दौरानमें मेरे हाथ और मेरा जिस्म दोनों बराबर एक ही बलन्दीपर बाके हों, बहुत ही कम थे। और उनमें भी यही सोचता रहता था कि अबके गद्दी पहले बैठेगी या हैण्डिल? चुनांचे निडर होकर न बैठता, बल्कि जिस्मको गद्दीसे कदरे ऊपर ही रखता। लेकिन इससे हैण्डिलपर इतना ज़ोर पड़ता कि वह नीचा हो जाता।

जब दो मील गुजर गये और बाइसिकिलकी उठक-बैठकने एक मुकर्रर बाकायदगी इख्तियार कर ले, तो फैसला किया कि किसी मिस्त्रीसे पेंच कसवा लेने चाहिए। चुनांचे बाइसिकिल की एक दुकानपर ले गया।

बाइसिकिलकी खड़-खड़से, जितने लोग काम कर रहे थे, सब-के-सब सिर उठाकर मेरी तरफ देखने लगे। लेकिन मैंने जी कड़ा करके कहा—"ज़रा इसकी मरम्मत कर दीजिये।"

एक मिस्त्री आगे बढ़ा। लोहेकी एक सिलाख उसके हाथमें थी, जिसके उसने मुख्तलिफ हिस्सोंको बड़ी बेदर्दीके साथ ठोंक-बजाकर देखा। मालूम होता था, उसने बड़ी तेज़ीके साथ सब हालतका अन्दाजा लगा लिया है। लेकिन फिर भी मुझसे पूछने लगा—"किस-किस पुर्जेकी मरम्मत करायेगा?"

मैंने कहा—"बड़े गुस्ताख हो तुम। देखते नहीं कि सिर्फ हैण्डिल और गद्दीको जरा ऊँचा करवाके कसवाना है। बस और क्या? इनको मेहरबानी करके फौरन ठीक कर दो और बताओ कितने पैसे हुए?"

मिस्त्री कहने लगा—"मडगार्ड भी ठीक न कर दूं?"

मैंने कहा—"हां! वह भी ठीक कर दो।"

कहने लगा—"अगर आप बाकी चीजें भी ठीक करवा लें, तो बहुत अच्छा हो"।

मैंने कहा—"अच्छा कर दो।"

बोला—"यूं थोड़े ही हो सकता है। दस-पंद्रह दिनका काम है, आप इसे हमारे पास छोड़ जाइये।"

"और पैसे कितने लोगे?"

कहने लगा—"बस तीस-चालीस रुपये लगेंगे।"

हमने कहा—"बस जी, जो काम तुमसे कहा है, कर दो और बाकी हमारे मामलातमें दखल मत दो।"

थोड़ी देरमें हैण्डिल और गद्दी फिर ऊँची करके कस दी गई। मैं चलने लगा तो मिस्त्रीने कहा—"मैंने कस तो दिया है, लेकिन पेच सब घिसे हुए हैं। अभी थोड़ी देरमें फिर ढीले हो जायेंगे।"

मैंने कहा—"हैं! बदतमीज कहींका, दो आने पैसे मुफ्तमें ले लिये।"

बोला—"जनाब, आपको बाइसिकिल भी तो मुफ्तमें मिली होगी। यह आपके दोस्त मिर्जा साहबकी है ना? लल्लू, यह वही बाइसिकिल है, जो पिछले साल मिर्जा साहब यहाँ बेचनेको लाये थे। पहचानी तुमने? कई सर्दियाँ ही गुजर गईं। लेकिन इस बाइसिकिलकी खता माफ होनेमें नहीं आती।"

मैंने कहा—"वाह, मिर्जा साहबके लड़के इसपर आते-जाते थे और उनको अभी कालेज छोड़े दो साल भी नहीं हुए।"

मिस्त्रीने कहा—"हां, वह तो ठीक है। लेकिन मिर्जा

साहब खुद जब कालिजमें पढ़ते थे, तो उनके पास भी यही बाइसिकिल थी।

मेरी तबियत यह सुनकर कुछ मुर्दा-सा हो गई। मैं बाइसिकिल साथ लिए आहिस्ता-आहिस्ता पैदल चल पड़ा, लेकिन पैदल भी मुश्किल था। इस बाइसिकिलके चलानेमें ऐसे-ऐसे पुट्ठोंपर जोर पड़ता था, जो आम बाइसिकिलोंके चलानेमें इस्तेमाल नहीं होते। इसलिए टाँगों और कन्धों और बाजुओंमें जा बजा दर्द हो रहा था। मिर्जाका ख्याल रह-रहकर आता था। लेकिन मैं हर बार कोशिश करके दिलसे हटा देता था। वरना मैं पागल हो जाता। और जुनूनकी हालतमें पहली हरकत मुझसे सरजद होती कि मिर्जाके मकानके सामने बाजारमें एक जल्सा मुनअकिद करता, जिसमें मिर्जाकी मक्कारी, बेईमानी दगाबाजीपर एक तवील तकरीर करता। कुल बनीनू इंसान और आनेवाली नस्लोंको मिर्जाकी नापाक फितरतसे आगाह कर देता। और उसके बाद एक चिता जलाकर उसमें जिन्दा जलकर मर जाता।

मैंने बेहतर यही समझा कि जिस तरह हो सके अब इस बाइसिकिलको औने-पौने दामोंमें बेचकर जो वसूल हो उसीपर सब्र शुक्र करूँ। बलासे दस-पंद्रह रुपयेका खमाराही सही। चालीस-के-चालीस रुपये तो जाया न होंगे। रास्तेमें बाइसिकिलकी एक और दुकान आई, वहाँ ठहर गया।

दुकानदार बढ़कर मेरे पास आया। लेकिन मेरी जबानमें जैसे कुफ्ल लग गया था। उम्र भर कभी किसी चीजके बेचने की नौबत नहीं आई थी। मुझे यह भी मालूम नहीं कि ऐसे मौकेपर क्या कहते हैं? आखिर बड़े सोच-विचार बड़े तअम्मूलके बाद मुंहसे सिर्फ इतना निकला कि—"यह बाइसिकिल है।"

दुकानदार कहने लगा—"फिर?"

मैंने कहा—"लोगे?"

कहने लगा—"क्या मतलब?"

मैंने कहा—"बेचते हैं हम।"

दुकानदारने मुझे ऐसी नजरसे देखा कि मुझे यह महसूस हुआ कि मुझपर यह चोरीका संदेह कर रहा है। फिर बाइसिकिलको देखा। फिर मुझे देखा। फिर बाइसिकिलको देखा। ऐसा मालूम होता था कि फैसला नहीं कर सकता कि आदमी कौन-सा है और बाइसिकिल कौन-सी है। आखिरकार बोला—"क्या करेंगे आप इसको बेचकर?"

ऐसे जवाबोंका खुदा जाने क्या जवाब होता है। मैंने कहा—"क्या तुम यह पूछना चाहते हो कि रुपये मुझे वसूल होंगे, उनका मसरफ क्या होगा?"

कहने लगा—"वह तो ठीक है। मगर कोई इसका लेकर करेगा क्या?"

मैंने कहा—"इसपर चढ़ेगा, और क्या करेगा?"

कहने लगा—"अच्छा, चढ़ गया। फिर?"

मैंने कहा—"फिर क्या? फिर चलायगा और क्या?

दुकानदार बोला—"अच्छा? हूँ, खुदाबख्श, जरा यहाँ आना। यह बाइसिकिल बिकने आई है।"

जिन हजरतका इस्मेग्रामी खुदाबख्श था, उन्होंने बाइसिकिलको दूरसे ही यों देखा, जैसे सूंघ रहे हों।

इसके बाद दोनोंने आपसमें मशवरा किया। आखिरमें वह, जिनका नाम खुदाबख्श नहीं था, मेरे पास आये और कहने लगे, "तो आप सचमुच बेच रहे हैं?"

मैंने कहा—"तो और क्या, महज आपसे हम कलाम होनेका फख्र हासिल करनेके लिये घरसे यह बहाना गढ़कर लाया था?"

कहने लगा—"तो क्या लेंगे आप?"

मैंने कहा—"तुम्हीं बताओ।"

कहने लगा—"सच-सच बताऊँ?"

मैंने कहा—"अब बताओगे भी या यों ही तरसाते रहोगे?"

कहने लगा—"तीन रुपये दूँगा इसके।"

मेरा खून खौल उठा और मेरे हाथ-पाँव और होठ गुस्सेके मारे काँपने लगे।

मैंने कहा—"ओ सनअत व हिरफतसे पेट पालनेवाले निचले तबकेके इंसान! मुझे अपनी तौहीनीकी परवा नहीं। लेकिन तूने अपनी बेहूदा गुफ्तारीसे इस बेजान चीजको जो सदमा पहुंचाया है, उसके लिए मैं तुझे कयामत तक माफ़ नहीं कर सकता।" यह कहकर मैं बाइसिकिलपर सवार हो गया और अंधाधुंध पांव चलाने लगा।

मुश्किलसे बीस कदम गया होगा कि मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे जमीन यकलख्त उछलकर मुझसे आ लगी है। आसमान मेरे सरपर से हटकर मेरी टांगोंके बीचसे गुजर गया। इधर-उधरकी इमारतोंने एक दूसरेके साथ अपनी-अपनी जगह बदली है। हवास बजा हुए तो मालूम हुआ कि मैं जमीनपर इस बेतकल्लुफ़ीसे बैठा हूं गोया बड़ी मुद्दतसे मुझे

इस बातका शौक़ था, जो आज पूरा हुआ। इर्द-गिर्द कुछ लोग जमा थे, जिनमें से अक्सर हँस रहे थे। सामने वह दुकान थी, जहाँ अभी-अभी मैंने अपनी नाकाम गुफ्तो शनीदका सिलसिला मुनकता किया था। मैंने अपने गुर्दी पेशपर गौर किया तो मालूम हुआ कि मेरी बाइसिकिलका अगला पहिया बिल्कुल अलग होकर लुढ़कता हुआ सड़कके उसपार जा पहुंचा है और बाकी बाइसिकिल मेरे पास पड़ी है। मैंने फौरन अपने आपको संभाला। जो पहिया अलग हो गया, उसको एक हाथ में उठाया, दूसरे हाथमें बाकी मान्दा बाइसिकिलको थामा और चल पड़ा। यह महज एक इज्तेदारी हरकत थी, वरना हाशा व कुल्ला वह बाइसिकिल मुझे हरगिज इतनी अजीज न थी कि मैं उसको इस हालतमें साथ-साथ लिये फिरता।

जब मैं यह सब उठाकर चल दिया, तो मैंने अपने आपसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा इरादा क्या है? यह दो पहिये काहे की लिये जा रहे हो?

इन सवालोंका जवाब यही मिला कि देखा जायगा। फिलहाल तुम यहाँसे चल दो। सब लोग तुम्हें देख रहे हैं, सर ऊँचा रखो और चलते जाओ। और जो हँस रहे हैं, उनको हँसने दो। इस क़िस्मके बेहूदा लोग हर क़ौम और मुल्कमें पाये जाते हैं। आखिर हुआ क्या, महज एक हादसा। बस दायें-बायें मत देखो, चलते जाओ।

लोगोंके नाशाइस्ता कलमात सुनाई दे रहे थे। एक आवाज आई—"बस हजरत गुस्सा थूक डालिये।" एक दूसरे साहब बोले—"बेहया बाइसिकिल! घर पहुंचकर तुझे मजा चखाऊँगा।" एक वालिद अपने लड़खड़े-जिगरकी उंगली पकड़े जा रहे थे। मेरी तरफ इशारा करके कहने लगे—"देखो बेटा, यह सर्कसकी बाइसिकिल है। इसके दोनों पहिये अलग-अलग होते हैं।"

लेकिन मैं चलता गया। थोड़ी देरके बाद मैं आबादीसे दूर निकल गया। अब मेरी रफ्तारमें एक अजीयत पाई जाती थी। मेरा दिल तो कई घण्टोंसे एक कशमकशमें पेचो ताब खा रहा था, अब बहुत हल्का हो गया था। मैं चलता गया, चलता गया, इत्ताकि दरयापर जा पहुंचा। पुलके ऊपर खड़े होकर मैंने दोनों पहियोंको एक-एक करके इस बेपरवाहीके साथ दरियामें फेंक दिया, जैसे कोई लेटरबक्समें खत डालता है और वापस शहरको रवाना हो गया।

सबसे पहले मिर्जाके घर गया। दरवाजा खटखटाया। मिर्जा बोले—"अन्दर आओ।"

मैंने कहा—"आप जरा बाहर तशरीफ लाइये। मैं आप जैसे खुदा रसीदा बुजुर्गके घरमें वजू किये बगैर कैसे दाखिल हो सकता हूं?"

बाहर तशरीफ लाये तो मैंने वह औजार उनकी खिदमत में पेश किया, जो उन्होंने बाइसिकिलके साथ मुफ्तमें मुझको इनायत फरमाया था। और कहा—"मिर्जा साहब, आप ही इस औजारसे शौक फरमाया कीजिये। मैं अब इससे बेनियाज हो चुका हूं।"

घर पहुंचकर मैंने फिर इल्मे कीमियाकी उस किताबका मुतालेआ शुरू कर दिया, जो मैंने एफ० ए० में पढ़ी थी।

खुली पुस्तक

नाथ! ऐसी अनुकम्पा करो कि यह जीवन एक खुली पुस्तक बन जाय। इसका प्रत्येक शब्द तुम्हारी स्वर्गिम आभाको, उन अगणित प्राणियोंके हृदयमें पहुँचा रहा हो, जहाँ चिरकालसे ही घोर अन्धकार छाया हुआ है। इसकी वाक्य-रचना इतनी सरस हो कि सर्वसाधारणको तुम्हारा अर्थ सुगम बना सके। प्रत्येक पृष्ठपर तुम्हारी कहानी अंकित हो।

जीवनमें पूर्णतया निराश और पराजितोंके लिए प्रत्येक परिच्छेदमें आशा और उत्साहका स्रोत भरा हो। इसका प्रत्येक विभाग विश्राम-स्थल बनकर थके पथिकोंकी यात्राको सुगम बनाता है! जन-जनके हाथोंमें सरलतापूर्वक पहुँचनेके लिए इसके मूल्यमें शून्यता भी हो। —किशनसिंह

आचार्य श्री तुलसीका दैनन्दिन जीवन-प्रसंग

मुनि श्री सुखलालजी

दिनांक २०-७-५८

शहरों के व्यस्त जीवनमें रविवार ही एक ऐसा दिन है, जिस दिन व्यक्ति कुछ खुलकर साँस ले सकता है। सप्ताह भर में न जाने कितने काम सिरपर चढ़ जाते होंगे। उन्हें यदि समेटनेका कोई दिन है तो वह रविवार। जब व्यक्ति अपनी-अपनी रुचिका विशेष काम भी प्रायः इसी दिन ही कर पाते हैं। प्रवचन सुननेके लिये भी साधारणतया लोगोंको प्रति दिन फुरसत नहीं मिलती। अतः रविवारके दिन आचार्य श्री का कार्यक्रम भी जरा व्यस्त हो जाता। प्रातःकाल विशेष प्रवचन होता है। मध्याह्नमें अणुव्रत-गोष्ठीका कार्यक्रम रहता है और रात्रिमें प्रायः विचार परिषद रहा करती है। यह एक प्रकारसे रविवारका बँधा हुआ कार्यक्रम है। इस दिन लोग भी अच्छी संख्यामें उपस्थित हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ दूसरे लोग भी इस दिन आचार्य श्री से कुछ प्रेरणाएँ पाना चाहते हैं। अतः इस दिन आचार्य श्री का प्रायः इधर-उधर भी एक आध प्रोग्राम रह ही जाता हैं। आज भी पुरानी दालमंडीमें अपराह्नमें चारसे पाँच तक आचार्य श्री का प्रवचन हुआ। वैद्य मुन्नालालजी इस आयोजनके प्रमुख आकांक्षी व्यक्ति थे। मैंने उन्हें बहुत समझाया। पहले आप वहां संतोंका एक कार्यक्रम रखवाइये, फिर यदि अवसर हुआ तो आचार्य श्री भी उधर जा सकते हैं। इस समय आचार्य श्री को जरा असुविधा रहेगी। यह समय हमारे प्रत्युपेक्षणा पंचमी तथा आहारका है। अतः इस व्यस्त समयमें आप आचार्य श्री को कष्ट न दें। पर उनका एक ही तर्क था कि आचार्य श्री नहीं पधारेंगे, तो लोग इकट्ठे नहीं होंगे। आचार्य श्री भले ही बोलें मत, केवल बठे ही रहें, यही हमारे लिये काफी है।

आचार्य श्री ने भी उन्हें कहा—ऐसी बात नहीं है। हमारे सन्त भी अच्छा बोलते हैं। हजारों लोग उसे दिलचस्पीसे सुनते हैं। पर उनका बहुत ज्यादा आग्रह रहा और जैसा कि प्रायः हमेशा होता है, आज आचार्य श्री अपनी मृदु प्रकृतिके कारण उनकी उपेक्षा नहीं कर सके।

दिनांक २३-७-५८

आज प्रवचनोपरान्त उत्तरप्रदेश-सरकारके उपमंत्री आचार्य लक्ष्मीरमणजी आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। आचार्यजी कह रहे थे कि इस बार किसी सरकारी कामसे काश्मीर चले जानेके कारण बहुत दिनोंसे आपके दर्शन नहीं हुए। अणुव्रत प्रचारके बारेमें हम लखनऊमें उत्तरप्रदेशीय अणुव्रत समितिका संगठन करना चाहते हैं। हम काम कैसे करें, इस बारेमें भी जरा परामर्श लेना था। अतः आज यहां आ गया। अपने बारेमें उन्होंने कहा—मैं तो हर समय तैयार हूं ही। मैं चाहता हूं कि कुछ और व्यक्तियोंको आगे लाया जाय, जो काम कर सकें। अतः पदासीन उन्हें किया जाय और मैं तो हर समयसे आन्दोलनके साथ हूं ही। आचार्य श्री ने आचार्यजीसे पूछा—आपने अणुव्रतों के नियमोंको पढ़ लिया है या नहीं?

उन्होंने कहा—पढ़ तो लिये।

तब फिर अणुव्रती बनना है या नहीं?

वे इसे इन्कार करनेमें अपने आपको असमर्थ पा रहे थे। वैसे वे सदाचारी व्यक्ति हैं। अतः अणुव्रतोंके बारेमें उन्हें असुविधा नहीं होनी थी। अतः अबसे वे पूरे अणुव्रती बन गये।

आचार्य श्री इस बार यह विचार लेकर चल रहे हैं कि उत्तरप्रदेशके उच्च पदस्थ व्यक्तियोंको अणुव्रती बनाना चाहिये। बिना अणुव्रती बने केवल प्रशंसा और उपदेशोंसे कुछ होनेवाला नहीं है। और अब तो आन्दोलनमें वह वेग भी आने लगा है, जबकि बड़े-से-बड़े व्यक्तिको भी अणुव्रती बननेको कहनेमें संकोच नहीं आता, फिर कहने लगे—अभी तो हम लोग दूसरोंसे यह कहते हैं, आप अणुव्रती बनिये। पर आगे ऐसा समय आनेवाला है, जब दूसरे लोग स्वयं अणुव्रती बननेमें अपना गौरव समझने लगेंगे। हमारे साधुओं तथा कार्यकर्त्ताओंको लगनसे काम करनेकी आवश्यकता है। मार्ग साफ दिखाई देता है।

दिनांक २४-७-५८

अणुव्रत-आन्दोलन एक असाम्प्रदायिक और एक सर्वदलीय आन्दोलन है। इसलिये प्रत्येक धर्म और प्रत्येक दलके लोग प्रायः इसमें दिलचस्पी लेते रहे हैं। आज भी कानपुर नगर कम्युनिष्ट पार्टीके मन्त्री श्री रामस्वरूप सिंहने आचार्य श्री से आन्दोलनके बारेमें विचार-विमर्श किया। आचार्य श्री ने उन्हें बताया, देशमें चाहे शासन-व्यवस्था कोई आ जाय, पर जब तक देशका नैतिक स्तर उन्नत नहीं होगा, तब तक वह व्यवस्था टिक नहीं सकेगी। हमारा इस बारे में जरा भी हस्तक्षेप नहीं रहता कि देशका संचालन किस व्यवस्थासे हो रहा है। हमारे सामने मनुष्य है, पार्टी

नहीं। और मनुष्य भी इस मानेमें है कि वह अपनी जीवन-शुद्धिपर विश्वास करता है या नहीं? अगर वह जीवन-शुद्धिपर विश्वास करता है, तो हम उसे उसका मार्ग बतायेंगे। ऐसा मनुष्य कोई नहीं होगा, जो जीवन-शुद्धिमें विश्वास न करता हो। जब तक मनुष्य है, तब तक व्यवस्था भले ही कोई आ जाय, मानव-सुलभ दुर्बलताओंसे वह बच नहीं सकता। हां, परिस्थितियोंका अन्तर पड़ता है। पर मूलमें असदाचरणके लिये मनुष्य स्वयं ही जिम्मेदार है। अतः उसे सन्मार्गपर लानेकी हमेशा आवश्यकता रही है, आज भी है और आगे भी रहेगी। इसलिये अणव्रत एक दलमुक्त और शाश्वतिक आन्दोलन है।

रामस्वरूप सिंहजीके और भी दूसरे साथी आनेवाले थे। पर अब तक उन लोगोंमें यह भय रहता है कि एक सन्त पुरुषके सामने वे राजनीतिके खिलाड़ी जाकर क्या करेंगे? आचार्य श्री ने उन्हें समझाया कि मनुष्य पहले मनुष्य है, फिर वह राजनीतिज्ञ, व्यापारी, अध्यापक, मजदूर आदि है। अतः हम आपसे एक मनुष्यके नाते बात करते हैं, जो प्रत्येक युगकी सबसे पहली युनिट है।

रामस्वरूप सिंहजीने आचार्य श्रीके दृष्टिकोणका समर्थन किया तथा भविष्यमें कानपुरमें अपनी पार्टीकी ओरसे सहयोग देनेका वचन दिया।

दिनांक २५-७-५८

प्रवचनोपरान्त आज मातादीनजी खेतान आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये। खेतानजी कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यापारी तो हैं ही, पर साथ-साथमें एक अच्छे सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके कई पदोंपर पहले वे अवैतनिक रूपमें अनेक सेवाएँ दे चुके हैं। अभी वे दिल्ली से भारत सेवक समाजकी बैठकमें भाग लेकर आ रहे थे। उन्होंने बताया--"आज देशमें अनेक आन्दोलन चल रहे हैं, पर ऐसा लगता है कि सबके नीचे भूमिका शुद्ध नहीं है। जो लोग उनमें जाते हैं, उनके पीछे प्रायः स्वार्थके तन्तु जुड़े हुए हैं। भारत सेवक समाजको ही लें। यह एक सामाजिक सेवा-संस्था है। पर इसमें भी लोग इसलिये आकर्षित होते हैं कि वहां लोगोंको अपने स्वार्थ फलते दिखाई देते हैं। अभी यह एक हिसाब लगाया गया था कि भारत सेवक समाजमें काम करनेवाले कितने लोगोंको अच्छे सरकारी स्थान मिल गये, तो पता चला करीब ७० ऐसे ऊंचे पदपर काम करनेवाले कार्यकर्त्ता थे, जिन्हें अच्छे सरकारी पद मिल गये। तो इस प्रकार लोगोंमें भारत सेवक समाज को अच्छा स्थान पानेकी एक सीढ़ी समझ ली है और ज्यादा आकर्षित होते हैं। शुद्ध सेवाके दृष्टिकोणसे उसमें कितने कार्यकर्त्ता हैं, यह कहना जरा कठिन है।"

आचार्य श्री ने बताया कि अणुव्रत आन्दोलन तो सर्वथा नैतिक आन्दोलन है। और मेरा विश्वास है कि इनके जितने भी व्यक्ति आते हैं, वे सर्वथा सेवाभावसे प्रेरित होकर ही आते हैं। आज तकके दस वर्षोंके इतिहासमें ऐसा एक भी अवसर नहीं मिलेगा कि जिसमें किसी अणुव्रती ने अणुव्रतोंको आर्थिक या राजनैतिक स्वार्थकी प्राप्तिका साधन बनाया हो।

नैतिक आन्दोलनमें काम करनेवालोंकी कठिनाइयोंकी चर्चा करते हुए खेतानजीने कहा, "आज देशमें अर्थकी कमी नहीं है। लोग अच्छे कार्यके लिये स्वयं पैसा देना चाहते हैं। पर आज कमी है अच्छे कार्यकर्त्ताओंकी। सेवाके नामपर पैसा संग्रह होता है और फिर होता है उसका दुरुपयोग। इससे लोग पैसा देनेमें भी संकोच करने लग जाते हैं। इससे काम करनेवालोंके सामने भी समस्याएं पैदा हो जाती हैं।"

नैतिक कार्योंकी बाधाओंके बारेमें उन्होंने बताया, "आजकलके युगमें नैतिक प्रवृत्तियोंका पनपना बड़ा ही असंभव हो गया है। क्योंकि नैतिक ढंगसे यदि कोई काम करना चाहता है, तो उसमें अर्थाभाव आ जाता है। अर्थाभावको चन्देके द्वारा यदि पूरा भी किया जाता है तो उसमें अनेक अविश्वास पैदा हो जाते हैं। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके औषधि विभागका काम देखते समय मैंने सोचा, हमें काम ठोक ढंगसे करना चाहिये और इसलिये मैंने तमाम औषधियोंको शुद्ध रूपसे बनाना शुरू किया। फलतः काफी रुपयोंका घाटा उठाना था। मैंने सोचा, किसी प्रकार से घाटेको पूरा कर लिया जायगा, पर पदाधिकारियोंमें मेरे प्रति जो अविश्वास पैदा हो जायगा, उसे कैसे पूरा किया जा सकेगा। क्योंकि वे लोग तो यही सोचेंगे कि पहले जब इस विभागमें घाटा नहीं आता था, तो अब कैसे आया? जरूर इसमें मेरा हाथ रहा है। यह सोच मैंने कार्य फिर उसी विधिसे चलाना शुरू कर दिया, जिस विधिसे वह पहले चलता था। तो घाटा तो दूर रहा, उल्टा सोसाइटीको मुनाफा रहा। इस प्रकार से आज कार्यकी ओर कार्यकर्त्ताओं की बड़ी भारी समस्या है। पर आप जो ईमानदार लोगोंके निर्माणका कार्य कर रहे हैं, वह वास्तवमें ही सराहनीय है।"

पश्चिम बंगालमें सड़क-विकास-योजनाओंकी प्रगति

स्वाधीनता-प्राप्तिके साथ-साथ देशमें निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुए। यह तो सभी जानते हैं कि देशकी उन्नति और समृद्धि विभिन्न विकास-योजनाओंपर अवलम्बित है। विभाजनके बाद पश्चिम बंगालके सम्मुख बहुमुखी समस्यायें उपस्थित हुईं। उदाहरणके तौरपर, जूटका उत्पादन होता है पूर्व बंगालमें और जूटके कारखाने हैं पश्चिमी बंगालमें। इस स्थितिसे जटिल समस्याओंका उत्पन्न होना अवश्यम्भावी था। इसी प्रकार विभाजनके फलस्वरूप पश्चिम बंगालके सामने देशके विभिन्न भागोंको नये मार्गों द्वारा जोड़ने और इनमें यातायातकी व्यवस्था करनेकी भी समस्या उपस्थित हुई।

सड़क-निर्माण और सड़क-सुधारकी इस समस्याको सामने रखकर पश्चिम बंगालमें प्रथम पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत सड़कोंके विकासकी योजनायें रखी गईं। इस दिशा में यह प्रारम्भिक प्रयास था। सन् १९४३ में भारतीय सड़क कांग्रेसका सम्मेलन हुआ था और इस सम्मेलनकी सिफारिशों के अनुसार ही पश्चिम बंगालमें सड़क-विकासका कार्य प्रारम्भ किया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजनामें सड़क-विकास

प्रथम पंचवर्षीय योजनामें सड़क-विकास-कार्योंको चार भागोंमें विभक्त किया गया--राष्ट्रीय सड़क, राज्य सड़क, जिलोंकी प्रधान सड़कें तथा ग्रामीण रास्ते।

राष्ट्रीय सड़कोंके अन्तर्गत राज्योंकी राज्यधानियों, बन्दरगाहोंको मिलानेवाले मार्ग रखे गये। इन मार्गोंका उद्देश्य राष्ट्रके मुख्य-मुख्य स्थानोंमें सम्बन्ध स्थापितकर इनमें यातायातकी सुविधा कायम करना है। राज्य मार्गोंके अन्तर्गत राज्योंकी बड़ी-बड़ी सड़कें रखी गयीं। जिलोंके प्रधान मार्गोंके अन्तर्गत वे सड़कें रखी गयीं, जो जिलोंके हाट-बजारों, प्रधान स्थानों तथा रेलवे स्टेशनोंसे सम्बन्ध जोड़ती हैं और ग्रामीण मार्गोंके अन्तर्गत वे रास्ते माने गये जो गाँवोंका बाहरके[illegible]से सम्बन्ध जोड़ते हैं।

पश्चिम बंगालके इन चार श्रेणियोंके मार्गोंके विकासकी योजनायें बनायी गयीं और इनमें सुधारके कार्य किये गये।

राष्ट्रीय सड़कें

पश्चिम बंगाल निम्नलिखित ६ राष्ट्रीय सड़कोंसे सम्बद्ध है:—

(१) एक कलकत्ता-दिल्ली राष्ट्रीय सड़क। यह सड़क कलकत्तेसे बारकपुर ट्रंक रोड होते हुए विलिंगडन ब्रिज तक और इसके बाद बालीको पारकर नये रास्तेसे ग्रांड ट्रंक रोडके पाससे कुछ पश्चिमकी ओर गयी है। यह सड़क विलिंगडन ब्रिजसे २१ मील उत्तरकी ओर ग्रांड ट्रंक रोडके साथ मिलकर बिहारकी सीमा तक जायेगी। यह सड़क घनी आबादीवाले अंचलोंको मिलाती चलती है।

(२) कलकत्ता-बम्बई, कलकत्ता-मद्रास राष्ट्रीय सड़क नं० ५ और ६। कलकत्तेसे विलिंगडन ब्रिज तक यह राष्ट्रीय सड़क ऊपर बतायी गयी राष्ट्रीय सड़क नं० २ (कलकत्ता-दिल्ली) के समान चली है। राष्ट्रीय सड़क नं० ५, ६ दक्खिन पश्चिम की ओर चलकर एक नये मार्गसे हवड़ा नगरके पश्चिमकी ओर उलबेरियामें उड़ीसा ट्रंक रोडमें जा मिलती है। यह राष्ट्रीय सड़क उलबेरियासे होती हुई बिहारकी सीमा तक जाती है। पश्चिम बंगालमें इस सड़कको लम्बाई ९० मील है।

(३) बिहार-आसाम राष्ट्रीय सड़क नं० ३१। पश्चिम बंगालमें इस सड़कका आरम्भ बिहारकी सीमाके समीप दार्जिलिंगकी कमला टी इस्टेटसे होता है। यहांसे यह सड़क बागतोरा तथा सिलीगुड़ी होते हुए पूर्वकी ओर डुअर्स इलाके में फलाकाता तक जाती है। फिर यह सड़क दक्खिनकी ओर पूर्व-बिहारके बीचसे होती हुई आसामकी सीमा तक पहुंचती है। पश्चिम बंगालमें यह सड़क १०१ मील लम्बी है। प्रथम पंचवर्षीय योजनाकालमें इस सड़कका ५० मीलका हिस्सा और इसके बीच पड़नेवाले ६ पुल तैयार हुए। इस नयी सड़कका काम प्रायः पूरा हो चुका है और तोरसा तथा लिस नदीके पुलोंके अतिरिक्त अन्य सब पुल तैयार हो चुके हैं।

(४) सिलीगुड़ी-गांगतोक राष्ट्रीय सड़क नं० ३१ए। यह सड़क दार्जिलिंग जिलेके अन्तर्गत सिभोकसे शुरू होकर सिक्किमकी सीमा तक गयी है। पश्चिम बंगालमें यह सड़क १८·५ मील लम्बी है। बाढ़से इसकी जो टूट-फूट हुयी थी, उसकी मरम्मत कर दी गयी है।

(५) कलकत्ता-सिलीगुड़ी राष्ट्रीय सड़क नं० ३४। कलकत्ता से शुरू होकर यह सड़क बारासात तक जैसोर रोडके साथ-साथ चलती है। यहाँसे यह रानाघाट, शान्तिपुर, कृष्णनगर और पलासी होती हुई बहरमपुर पहुंचती है। बहरमपुरमें भागीरथीपर पुल बाँधकर इस सड़कको धुवलिया तक पहुंचाया जायगा। बरहमपुर-रघुनाथगंज सेक्शन राष्ट्रीय सड़क नं० ३४ की यह शाखा ३० मील लम्बी होगी और इसके बीच जो बड़े बाँध बनाने पड़ेंगे, उनको छोड़कर इसके निर्माणमें प्रति मील प्रायः १४१००० रुपये खर्च आयेगा।

(६) कलकत्ता-बनगाँव राष्ट्रीय सड़क नं० ३५। यह सड़क कलकत्तेसे जैसोर रोडके पाससे होती हुई पूर्वी पाकिस्तान की सीमा तक जाती है।

राज्य सड़क

प्रथम पंचवर्षीय योजना-कालमें ८ राज्य मार्गोंका निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। इनमें से दो मार्ग राज्यके उत्तरी भागमें तैयार हो रहे हैं। पहला मार्ग अर्थात् सिलीगुड़ी-हल्दीबाड़ी राज्य सड़क दार्जिलिंग जिलेके साथ जलपाईगुड़ी और कूचबिहारको मिलाती हुई कूचबिहारके हल्दीबाड़ी तक जायगा। दूसरा मार्ग अर्थात् गाजल-वंशीहारी सड़क बालुर घाट एवं वंशीहारीको तथा राजगंज, मालदा और पश्चिम दिनाजपुरको मिलायेगा।

शेष ६ रास्तोंमें से, जो राज्यके दक्षिण भागमें पड़ते हैं, बरहमपुर-लालगोला-रघुनाथगंज सड़क बरहमपुरमें राष्ट्रीय सड़क नं० ३४ से निकलकर पश्चिमकी ओर चलती हुई रघुनाथगंजमें राष्ट्रीय सड़क नं० ३४ के साथ मिल जाती है। यह सड़क पूरी बन चुकी है।

दूसरी सड़क मुर्शिदाबादके अन्तर्गत मोराग्राममें राष्ट्रीय सड़क नं० ३४ की शाखाके रूपमें निकलकर बीरभूम जिलेमें सूरी तक जाती है। तीसरी है जलंगी-बहरमपुर-सूरी-बाँकुड़ा-बानसा राज्य सड़क।

प्रथम पंचवर्षीय योजनामें ७५३ मील लम्बे राज्य-मार्गों के निर्माण और मरम्मतकी व्यवस्था की गई, जिसमें ५३५ मील लम्बी नई सड़कें बनीं।

बरहमपुर-कांपी राज्य सड़क—यह सड़क ३७ मील लंबी है और सीमेंट तथा कंकरीटसे तैयार हुई है। इस सड़कपर २९०६००० रुपये खर्च हुए हैं।

जिलोंके मुख्य मार्ग

प्रथम पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत पश्चिम बंगालके जिलोंमें १७७३ मील लम्बे मार्गोंके निर्माणका कार्य प्रारम्भ हुआ और पुराने मार्गोंकी मरम्मतका काम भी शुरू हुआ। इनके अतिरिक्त अनेक ग्रामीण मार्ग तथा बस-मार्ग, नगर-पालिकाओं द्वारा निर्मित मार्ग आदि अनेक श्रेणीके मार्गोंके निर्माण और मरम्मतका काम भी शुरू हुआ।

सन् १९५३ के अक्टूबर महीनेमें नदिया, मेदिनीपुर, बर्दवान, बीरभूम तथा २४ परगनामें सामूहिक विकास योजनाओंके अन्तर्गत ८० मील लम्बे रास्ते तैयार करनेका काम शुरू हुआ।

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकी अवधि ३१ मार्च १९५६ को समाप्त हुई। द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें जिलों तथा गाँवोंके रास्तों, पुलोंके निर्माण और सुधारकी ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। नगरपालिकाओंके क्षेत्रोंके अन्तर्गत मार्ग-विकास का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है।

दूसरी पंचवर्षीय योजनामें मार्ग-विस्तार तथा सुधारपर २५·५ करोड़ रुपये खर्च किये जायँगे। इस रकममें राष्ट्रीय सड़कोंका खर्च शामिल नहीं है। राष्ट्रीय सड़कोंका व्यय-भार केन्द्रीय सरकारने ग्रहण किया है। राष्ट्रीय सड़कोंका कुछ काम द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें भी चलेगा। केन्द्रीय सरकार इनके सम्बन्धमें नई योजनाओंपर विचार कर रही है।



पद्माकरका रूप-वैभव

गोपालजी 'स्वर्णकिरण'

कवि-कर्मकी दुष्करतापर प्रकाश डालते हुए साहित्यदर्पण-कारने कहा है, 'एक तो मनुष्य-जन्म होना दुर्लभ है; दूसरे, उसमें विद्याका होना दुर्लभ है। कविता करना उसमें और दुर्लभ है तथा उसमें शक्ति होना, तो अत्यन्त दुर्लभ है।' यह शक्ति और कुछ नहीं, कवि-प्रतिभा है। कवि प्रतिभाके ही बलपर अप्रकटको प्रकट, असुन्दरको सुन्दर, अरूपको रूप करके दिखाता है। वह इसीके सहारे अपने भाव-जगतमें एक प्रकारसे युगान्तर पैदा करता और उसे ऐसा अलौकिक बना देता है कि वह हमारे आनन्द और मंगलका कारण हो जाता है। ऐसे कविकी कविता – सौन्दर्य-सृष्टि चिर नवीन बनी रहती है। उसमें कभी भी पुरानापन नहीं आता। इसीलिए कीट्सने एक बार कहा था कि सुन्दर वस्तु सदैव आह्लादको वर्षा करती रहती है—'A thing of beauty is a joy for ever'. ऐसी सृष्टि मामूली कवि नहीं दे सकता। मामूली कवि तो स्थूल पदार्थोंके ही वर्णन और अंकनमें कवि-कर्मकी इतिश्री समझ लेता है। महान् अथवा श्रेष्ठ कवि ही भौतिक जगतसे चुनकर सुन्दर चीजें, और सुन्दर बनाकर रखता है, जो कविकी अनुभूतिमें लिपटी होनेके कारण अत्यन्त मोहक होती हैं। कवि सदैव विचारोंमें डूबा रहता है। उसकी दृष्टि भू-लोकसे आकाश और आकाशसे भू-लोक तक घूमती रहती है। भावावेशके क्षणोंमें भी, जो भी दृश्य उसके मानस-चक्षुके सामने आते हैं, उनको वह रूप और जीवन देता है। यही रूप और जीवन पाकर मही और कुरूप आकृतियाँ जो वायवी हैं, जो अस्पष्ट और धुँधली हैं—सुन्दर, जीवन्त और स्पष्ट हो जाती हैं। शेलीका तो विचार है कि कवि अपनी असाधारण प्रतिभासे जिन प्राकृतिक दृश्योंको देखता है, उनको वह जीवन्त मनुष्यसे भी सजीव रूपमें प्रस्तुत कर उन्हें अमर कर देता है।

कविका वर्ण्यविषय केवल प्रकृति-जगत और मानव-मन ही नहीं, मानव-मनके अन्तर्गत उठनेवाले विविध भाव भी हैं। कवि मनोभावोंको साकार और जीवन्त रूपमें प्रस्तुत करता है। उनसे वह रसका आस्वादन करना चाहता है। वस्तुतः इन मनोभावों, मनोवृत्तियों एवं मनोवेगोंकी कोई सीमा नहीं बतलाई जा सकती। पुनरपि व्यावहारिक सौकर्य के लिए आचार्योंने भावोंके निरीक्षण-परीक्षण किये हैं और उनके वर्गीकरण भी किये हैं। ये भाव स्थायी और संचारी में बँटे हुए हैं। रसावस्थाको प्राप्त करनेवाले भाव नौ ही क्यों, और भी हो सकते हैं; पर मुख्यतः इनकी ही मानी गई है। संचारी भाव भी अनेक हैं; लेकिन मुख्यतः उनमें तैंतीस ही माने गये हैं। दया, श्रद्धा, सन्तोष, स्वाधीनता, विद्रोह, त्याग, अभिमान, सेवा, सहिष्णुता, लोभ, निन्दा, ममता, कोमलता, दुष्टता, जिघांसा, प्रवंचना, दम्भ, तृष्णा, कौतुक, द्वेष आदि संचारी भावोंके ही अन्तर्गत गिने जायँगे। कवि इन्हीं भावोंकी व्यंजना करता है। इनको आकार और जीवन देता है; इन्हें सहज संवेद्य और सहजग्राह्य बनाता है। इसलिए साहित्यको 'भावोंके उत्थान-पतनका खेल' भी कहकर पुकारा गया है।

कवि अज्ञात रहस्यको अपनी प्रतिभासे प्रत्यक्ष रूप देता है, मूक भावको मुखर करके रखता है। इसके लिए वह प्रकृति-जगतकी शरणमें जाता और स्थूल प्रतीकों, उपमानोंका सहारा लेता है। वह अनगढ़ भावोंको भी अपनी प्रतिभाकी छेनीसे गढ़कर सँवारकर रखता है। वह अस्पष्ट तथ्योंको रूपकके सहारे स्पष्ट और सुन्दर रूपमें रखनेका अभिलाषी है। रूपक-निर्माणकी शक्ति उसे बहुत मुश्किलसे प्राप्त होती है। अरिस्टोटलका विचार है, 'यह शक्ति किसी अन्य प्रकारसे प्राप्त नहीं होती, यह तो प्रतिभाका चिह्न है।' वस्तुतः प्रतिभाशाली कवि ही दिव्य और आकर्षक मूर्त्तियाँ हमारे सामने प्रस्तुत कर सकता है। ऋग्वेद कहता है—कवि ही दिव्य रूपोंका निर्माता है—'कविः कवित्वा दिवि रूपम् आसजत्।' जो वस्तुतः कवि है, वही सुन्दर मूर्त्तियाँ गढ़ सकता है। जिसके पास प्रतिभाका वरदान है, वही अज्ञात को ज्ञातसे समान रख सकता है। कवि कलाके सहारे नई-नई मूर्त्तियाँ रखता है, भावोंकी मूर्त्तियाँ, जो सूक्ष्म और वायवी हैं। कालरिज कहता है—नई-नई आकर्षक मूर्त्तियोंमें ही कविकी सच्ची कला निहित रहती है। कवि वस्तुओंको साधारण पुरुषसे भिन्न दृष्टिसे देखता और अपने प्रतिभा-बल

से उसे मोहक रूपमें प्रस्तुत करना है। स्पेंसरकी 'फेएरी क्वीन' चित्रोंका आगार है, शेक्सपियरका प्रत्येक शब्द एक चित्र है। इसका एकमात्र कारण यह है कि ये कवि हैं और इन्हें प्रतिभाका वरदान मिला है।

पद्माकरके सामने कई बन्धन थे। उन्हें प्रतिभाका वरदान मिला था, किन्तु उनकी कवि-प्रतिभा बन्धनके कारण बहुत कुछ कुण्ठित हो गई। यह युग-धर्मका प्रभाव कहा जा सकता है। कवि युग-धर्मसे ही प्रभावित होता है। यह सच्चा कवि कभी-कभी युगकी सीमाओंका अतिक्रमण कर, अपनी प्रतिभासे युगको प्रभावित करता है। पद्माकर युग-सीमाका उल्लंघन नहीं कर सके और युगकी बँधी-बँधाई लीकोंपर ही चलते रहे। ऐसा प्रतीत होता है, आर्थिक अभावके कारण उन्हें दर-दर भटकना पड़ा और एक राजाको छोड़ दूसरे राजाकी शरणमें जाना पड़ा। अन्यथा वे किसी एक ही दरबारमें अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। आर्थिक लोभने ही उनकी प्रतिभाको मानो बाधित किया और वे खुलकर रीति-परम्परासे आगे न जा सके। यही कारण है, उनकी कविताका विस्तार बहुत अधिक नहीं है। शृंगार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, वीर आदि कुछ क्षेत्रको छोड़कर वह अन्यत्र नहीं रम सकी। सबसे अधिक उनकी वृत्ति शृंगारिक दृश्योंमें रमी और यही कारण है, वे भव्य शृंगार-चित्र विस्तृत रूपसे प्रकट कर सके। यह युग-धर्मकी भी माँग थी कि कवि अधिक-से-अधिक शृंगार-चित्र ही प्रस्तुत करे। शृंगार-चित्रोंकी जरूरत अपने आश्रयदाता राजाओं एवं स्वामियोंको रिझानेके लिए भी पड़ती थी, क्योंकि वे राजा, वे स्वामी अधिकांशतः विलासी थे। वे प्रेमके भूखे न होकर विलासके, वासनाके दास थे। अतः उनकी इन्द्रिय-लिप्साकी पूर्तिके लिए कवियोंको बाध्य होकर उनके मनोनुकूल साहित्य लिखना पड़ता था। कविकी दृष्टि संकीर्ण क्षेत्रमें घूमनेको बाध्य हो जाती थी और उसे कुछ ही रूप-रेखाओं, रंगोंके सहारे प्रेम-चित्र प्रस्तुत करने पड़ते थे।

रीतिकालमें रीतिग्रंथ लिखनेका मोह स्वाभाविक था। इस मोहसे पद्माकर भी न बच सके। यही कारण है, पद्माकर की काव्य-प्रतिभाको हम संकीर्ण क्षेत्रमें भटकते हुए पाते हैं। पद्माकर यौवनके आवेशमें स्वामियोंके लिए सुंदरियोंके रूप-दर्शनकी चाह पूरी करते रहे; किंतु अवस्थाके ढलावके साथ, जब इनमें ज्ञान और वैराग्यके भाव उदित हुए, इनकी दृष्टि भक्ति-भावकी ओर मुड़ी और राम, शिव, कृष्ण, गंगा आदिकी शरणमें जाकर इन्होंने उनकी आराधना की, उपासना की। इसीसे पद्माकरके काव्यमें शृंगार-चित्र, नायकोंकी अपेक्षा नायिकाओंके मनोरम चित्र अधिक देखनेमें आते हैं। भक्ति-भावके प्रदर्शनमें राम, शिव, कृष्ण आदिके सुंदर चित्र देखने में नहीं आते, वहाँ उनके मनोभावोंका विस्तृत उद्घाटन देखनेमें आता है। पद्माकरने अपने आश्रयदाता जगतसिंह के मनोविनोद अथवा उनके नामको अमर करनेके लिये विशेष रूपसे नायक-नायिकाके सुंदर चित्र प्रस्तुत किए। पद्माकरने नायिकाओंके कलेजे की कसकको, जिनकी वेदना वैद्योंको भी अज्ञात रहती है, प्रतिभा-चक्षुसे देखा और चित्रित किया। इस दृष्टिसे पद्माकरको प्रेमका वैद्य कहकर भी अभिहित किया जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। वस्तुतः प्रेमके वर्णनकी परिपाटी कोई नयी नहीं थी, और न पद्माकरने, युग-सीमाका अतिक्रमण कर, प्रेमके बारेमें कुछ नया कहनेका ही प्रयत्न किया; तथापि अभिव्यक्ति-कलामें कुशल होनेके कारण प्रेमके विस्तृत उद्घाटनमें इनको जितना यश मिला, उतना बिहारी को छोड़कर शायद ही किसी रीतिकालीन कविको मिला होगा।

शृंगार-रसकी व्यापकता और श्रेष्ठता सर्वमान्य है। रीतिकालीन कवियोंमें देवने शृंगारको सब रसोंसे श्रेष्ठ बतलाया और इसको सब रसोंका मूल भी माना—'भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार' (कुशलविलास)। इसके पहले रस-निरूपणके क्रममें आचार्य केशवदासने भी शृंगारको सब रसोंका नायक माना था :

नवहूँ रसको भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास कहि नायक हैं सिंगार॥
(रसिकप्रिया)

अतः पद्माकरने भी सबका आभार स्वीकार करते हुए कहा कि शृंगार सब किसीके अनुसार राजा है, श्रेष्ठ है—'नव रसमें सिंगार रस सिरे कहत सब कोय' (जगद्विनोद)। इससे व्यंग्य अर्थ यह भी लिखा जा सकता है कि शृंगारकी विस्तृत-चर्चा करके भी कवि अपने कवि-कर्तव्यकी समाप्ति कर सकता है। रीतिकालके प्रायः कवियोंने ऐसा ही किया। रीति-काव्य लिखनेके सिलसिलेमें रस-ग्रंथको जिन्होंने लिया, शृंगारका ही विस्तृत उद्घाटनकर अपने कवि-कर्तव्यको पूर्ण समझ लिया।

पद्माकरने भी युग-सीमाके कारण परंपरित ढंगसे नायक-नायिकाके रूप खींचे अथवा उनके मनमें उठनेवाले भावोंके

ऊपर प्रकाश डाला। उनके सामने अज्ञातको ज्ञात, अरूपको रूप, अप्रकटको प्रकट करनेकी बहुत अधिक समस्या नहीं थी। उनके सामने तो काव्य-शास्त्रमें वर्णित नायिकाओंके ही रूप-चित्र खड़ा करनेका सवाल था। इनके लक्षण काव्य-शास्त्र में पहलेसे ही अंकित थे, बस उनकी पुष्टिके लिए अपनी ओरसे उदाहरण प्रस्तुत करना था। इन्हीं उदाहरणोंमें इन्होंने कवि-प्रतिभाको खुलकर खेलनेका मौका दिया। इनके रूप-चित्र बँधी-बँधायी परंपराके हैं, फिर भी नवीन हैं और मोहकताके कारण काफी विख्यात हैं। इनके रूप-वैभव आनंद-प्रदान करनेके प्रमुख साधन हैं।

पद्माकरने नायिका-रूप-चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंग रंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमलके,
बारनके मार सुकुमारिको लचत लंक,
राजै परजंक पर भीतर महलके।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जन रीझै जाहिं,
अंबर अमलके सकल जल-थलके;
कोमल कमलके गुलाबनके दलके,
सुजात गढ़ि पायन बिछौना मखमलके।

नायिका यह सौकुमार्य नया नहीं है, पुनरपि पद्माकरकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। पर्यंकके ऊपर उपस्थित यह नायिका समूचे महलको सुवासित कर रही है। इसको कमर बालोंके भारको नहीं संभाल सकती। इसके चरण अत्यंत सुकुमार हैं। इसीसे तो अच्छी तरह चलनेपर भी मखमलका बिछावन गड़ता है।

बिहारीने भी एक बालाके सुकुमार चरणोंके विषयमें लिखा है, जिसकी टीका कृष्ण कविके शब्दोंमें यह है :

प्यारीके नाजुक पाँय निहारिके हाथ लगावत दासी डरैं।
धोवन फूल गुलाबके लै पै तऊ झझकै मत छालै परैं॥

कवि केशवने भी एक नायिकाके सौंदर्यका वर्णन किया है :

दुरि है क्यों भूखन बसन दुति जोबनकी,
देहहूंको जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाहक सुबास लागे ह्वै है कैसी 'केशव'
सुभावतीकी बास भौंर भोर फारे खाति है॥
तेरी देख सूरतिकी मूरति बिसूरति हूं,
लालनके दृग देखिबेको ललचाति है।
चालिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचनके भार भये,
कंचनके भार ही लचकि लंकि जाति है॥

दासका सौकुमार्य-वर्णन इस प्रकार है :

घाँघरो झीन-सो सारी महीन-सो,
पीन नितम्बन भार परै मचि।
'दास' जू बास सुबास सँवारत,
बोझन ऊपर बोझ परै खचि॥
स्वेदके बूँद कढ़ैं तन बाम,
चलैं जबै फूलनि भारन सों पचि।
जात है पंकज पात बयारि सों,
वा सुकुमारिको लंक लला लचि॥

कविवर मतिरामने भी इसी भावपर लिखा है :

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँ इ जहाँ,
फूले-फूले फूलनि बिछायो परजंक है :
मारके डरनि सुकुमारि चारु अंगन मैं,
करत न अंगराग कुंकुमको पंक है॥
कहै 'मतिराम' देखि बातायन बीच आयो,
आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसे वह बाल लाल बाहरे बिजन आवै,
बिजन बयारि लागे लचकति लंक है॥

एक विद्वान कवि टी० लॉज नायिकाका रूप-चित्र खींचते हुए कहता है, उसकी देह कहीं मोती, कहीं लाल मणि, कहीं श्वेत संगमर्मर और कहीं नीलमसे पुष्ट हुई है। परंतु स्पर्शमें कितनी कोमलता है, दर्शनमें कितनी मधुरता है! स्वयं प्रकृति भी उसके रूपकी प्रशंसा करती है। देवता तक देख कर उसे मुग्ध हो जाते हैं। कामदेव तो स्वर्गको छोड़कर उसीके नेत्रोंसे अपना शर तीक्ष्ण करते हैं!

With orient pearl, with ruby red,
With marble white, with Sapphire blue
Her body every way is fed,
Yet soft in touch and sweet in view;
Hight ho, fair Rosaline
Nature herself her shape admires.
The Gods are wounded in her sight;
And Love forsakes his hevenly fires,
And at her eyes his brand doth light.

उर्दू कवि अकबरने एक ऐसी सुकुमारीका चित्र खींचा

है, जिसको सुरमा भी असह्य प्रतीत होता : नाजुकी कहती है, सुरमा भी कहीं वार न हो !

नासिखका भी वर्णन कुछ ऐसी ही है। प्रेयसीका वदन इतना सुकुमार है कि सुरमा भी आँखोंमें भारी लग रहा है, उस तरह जैसे बीमार मनुष्यको रात।

यों नजाकत सेगरौं सुरमा है चश्मे यारको ;
जिस तरह हो रात भारी मर्दूमे बीमारको।

बिहारीकी नायिकाके चरण कल्पना-जगतकी वस्तु हैं। केशवकी नायिका निसर्ग सुन्दर है। उसकी देह ही इतना प्रकाशमान है कि उसीसे रात दिनके समान प्रतीत होती है। शरीरकी सहज सुगंध भौंरोंको आकर्षित करनेके लिए काफी है। दासकी नायिका स्वभावतः सुंदरी और सुकुमारी है। उसकी कमरको लचकानेके लिए न तो केशवके समान आभूषणोंकी जरूरत है, न पद्माकरके समान बालोंके भारको। वह स्वभावतः लचकती रहती है। दासकी नायिकाका सौकुमार्य अपेक्षाकृत व्यंग्य है। मतिरामकी नायिका भीरु प्रकृतिकी है। बयारके लगनेसे ही उसकी कमर लचकती है। टी० लॉजकी नायिकाका सौकुमार्य व्यंग्य है। इसमें उपर्युक्त कवियोंकी तरह अतिशयोक्तिसे काम नहीं लिया गया है। अकबर और नासिखकी नायिकाओंमें तो नज़ाकत हद है। अकबरकी नायिका भीरु है। पद्माकरकी नायिका आँखोंमें अनंग-रंगके कारण मादक अधिक है। किन्तु पद्माकरकी सौन्दर्यानुभूति किसी कविसे भी कम नहीं है। नायिकाकी निसर्ग सुंदरता जल-थल-अंबर सब जगहके रहने-वालोंके लिए मोहक है। पद्माकरने नायिकाकी कोमल गति-मतिका भी अंकन किया है।

पद्माकरने तालमें तैरती हुई एक बालाका चित्र इस प्रकार दिया है। उसकी वेणी यमुना, उसके गलेके हीरेका हार गंगा तथा उसके लाल तलवे सरस्वती नदीका होना सूचित करते हैं। इससे वह बाला तालमें जहाँ-जहाँ तैरती है, वहाँ-वहाँ त्रिवेणीका ही दृश्य प्रस्तुत हो जाता है।

जाहिरै जागत-सी जमुना जब बूड़े बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पद्माकर हीरके हारन, गंग-तरंगनको सुख देनी॥
पायनके रँगसे रँगि जात-सी, भाँति-ही-भाँति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँ-ई-जहाँ वह बाल, तहाँ-तहँ तालमें होत त्रिवेनी॥

तद्गुण अलंकारके सहारे त्रिवेणीका अभेद रूपक पद्माकर ने प्रस्तुत किया है।

एक स्नानार्थिनी नायिकाके वयःसौंदर्यका चित्र पद्माकर ने इस प्रकार खींचा है। आँगनमें जड़ाऊ चौकीपर खड़ी-खड़ी वह अपने बालको खोल रही है। इससे चारों ओर सोंधी-सोंधी सुगंध फैल रही है। अंग-अंगसे प्रकाश फूटा पड़ता है। कंचुकी खोलनेपर वह और भी आकर्षण का केन्द्र बन जाती है :

चौकमें चौकी जराव जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।
छोरि धरी हरी कंचुकी न्हानको, अंगन ते जगे ज्योतिके कौंधे॥
छाई उरोजनकी छवि यों, 'पद्माकर' देखत ही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनौ, लरिकै करिकै दुहुं दुंदुभि औंधे॥

नव यौवनाके उत्तुंग उरोजोंका सौंदर्य पद्माकरको ऐसा प्रतीत होता है कि शैशव और यौवनके युद्धमें शैशव अवस्था पराजित होकर अपने स्वर्णिम विजय-नगाड़ोंको औंधाकर भाग गई। उक्तिका अनूठापन ध्यातव्य है। स्नानार्थिनी नायिकाका मूर्तिमान चित्र यहाँ प्रस्तुत है।

पद्माकरकी रति-क्लांता, संभोगशिथिला नायिका इस प्रकार लेटी है कि पता नहीं चलता, वह किन्नरी है, कि मानवी है, कि अप्सरा है, कि कोई छविदार परी है। उसका सहज सौंदर्य देखने योग्य है। लम्बे-लम्बे बाल उसकी कमरमें लिपटे हुए बड़े लहरदार प्रतीत हो रहे हैं। उसकी मलीन कंचुकी उत्तुंग उरोजोंको छिपानेके लिए पर्याप्त नहीं है। उसकी देहसे सुगंध भी निकल रही है। उसके मुख-चंदपर कुछ स्वेद-कण दिखाई पड़ रहे, जो सुगंधमें डुबोये हुए प्रतीत हो रहे हैं।

चहचही, चुभकैं चुभी हैं चौक चुम्बन की,
लहलही लाँबी लटैं लपटीं सुलंक पर।
कहै पद्माकर मजान मरगजी मंजु,
मसकी सुआँगी है उरोजनके अंक पर॥
सोई सरसायौ औ सुगन्धनि समोई स्वेद,
सोतल सुलौने लौने बदन-मयंक पर।
किन्नरी, नरी है, कै छरी है, छबिदार परी,
टूटि सी परी है कै परी है परिअंक पर॥

इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा चित्र भी मिलता है :

कै रति रंग थकी थिर है,
पलका पर प्यारो परी अलसाय कै,
त्यों 'पद्माकर' स्वेद के बिंदु,
लसैं मुकुताहल से तन छाय कै।

बिंदु रचै मेंहदी के सलै पर;
तापर यों रह्यो आनन आय के।
इंदु मनो अरबिन्द पै राजत,
इन्द्र बधूनके वृन्द बिछाय कै॥

नायिका अपने मेंहदी-चर्चित हाथके ऊपर अपने मुख-चन्द्रको रखकर सोई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कमल के ऊपर इन्द्रवधूटियोंको बिछाकर चन्द्रमा ही सोये हुए हों। वस्तुतः पद्माकरने कमलके ऊपर इन्द्रवधूटियोंको बिछाकर चन्द्रमाके सोनेसे नायिकाकी उपमा देकर नायिकाके सौन्दर्य को प्रस्फुटित किया है। शेक्सपियरने भी गलबवेष्टित कर-तलपर जुलियटके रखे हुए मुखड़ेकी सुन्दरता, रोमियोके इस आन्तरिक अभिलाषाको व्यक्त करा कर की है—'आह मैं उस हाथका गलब ही होता, जिससे उसके कोमल कपोलका स्पर्श सुख हो पाता।' पद्माकरने नायिकाके जिस सौन्दर्य को बाह्य उपादानों द्वारा व्यक्त किया है, वह शेक्सपियरने एक प्रेमीको अभिलाषा द्वारा दिखाया है। दोनों चित्रण अपने ढंगके अकेले हैं। शेक्सपियरकी सफलता सरलताके कारण है, पद्माकरकी सफलता अलंकारिता के कारण।

पद्माकरके इसी छन्दसे मिलता-जुलता श्रीपतिका एक छन्द इस प्रकार है :

भोर भयो तकिया सों लगी,
तिय कुन्तल पुंज रहे बगराय कै।
कंजनसे करके तल ऊपर,
गोल कपोल धरे अलसाय कै।
आनन पै बिलसै रदकी छबि,
'श्रीपति' रूप रह्यो अति छाय कै;
मानहु राहु सो घायल है बिधु,
पौढ़ो है पंकजके दल आय कै॥

पद्माकर तथा श्रीपति दोनोंकी नायिकाओंके चित्र प्रायः एक ही अवस्थाके हैं। किन्तु पद्माकरने जहाँ नायिका के कोमल रति-चिह्नोंको अंकित किया है, वहाँ श्रीपतिने कठोर रतिके आघातोंको बतलाया है। एकने स्वेद-बिन्दु विलसित अलसित आननको मेंहदी-चर्चित हाथपर सुलाकर उसकी उत्प्रेक्षा कमल-दलपर इन्द्रवधूटियोंको बिछाकर बैठे हुए चन्द्रमासे की है, तो दूसरेने रति-संग्राममें रक्षत आनन को हाथोंपर स्थिरकर उसकी उत्प्रेक्षा राहुसे घायल उस व्याकुल बिधुसे की है, जो अपने सहज विरोधी भावको भूलकर पंकज के दलपर आकर पौढ़ गया हो। दोनों चित्र यद्यपि एक ही-से हुए हैं, परन्तु कोमल रतिके चिह्नों द्वारा पद्माकरने अपनी नायिकाको उच्च कुलोद्भवा, श्रेष्ठ जातिसंभूता तथा अनिंद्य सुन्दरी बतलाया है। वह श्रीपतिकी नायिकाके समान बर्बर ताड़नाओंको सहनेमें सर्वथा अक्षम है।

एक प्रभातोत्थिता, विपर्यस्तवसना, वारवधूटीका चित्र पद्माकरने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। वह सौम्य-से-सौम्य है। उसके सिरकी साड़ी सरककर गिर जाती है। वह उसे संभालकर नहीं रखती। अंगोंसे सुगन्धकी तरंगें उत्पन्न करती है। उसके बाल हीरोंके हारपर बिखरे हुए हैं। उसके इजारबन्दका छोर धरतीको छूता-सा है। वह आलसमें डूबी हुई प्रतीत होती है :

आरत सों आरत सँभारत न सीस-पट,
गजब गुजारत गरीबनकी धार पर।
कहै पद्माकर सुगन्ध सरसावै सुचि,
बिथुरि बिराजैं वार हीरनके हार पर॥
छाजन छबीली छिति छहरि छटाकी छोर,
भोर उठि आई केलि मन्दिरके द्वार पर।
एक पग भीतर सुएक देहरी पर धरे,
एक करकंज, एक कर है किवार पर॥

एहसान दानिशने एक ऐसी ही सुन्दरीका चित्र खींचते हुए कहा है कि उसकी साँस अत्यन्त सुरभित है, उसका चेहरा ऐसा है कि गुलाबका फूल भी उससे ईर्ष्या करता है, उसकी आँखें अत्यन्त मस्त और मादक हैं :

मोअत्तर साँस चेहरा रश्के गुल मस्ती भरी आँखें;
जवानी है के एक सैलाबे रंगोबूका धारा है।

पीयूषवर्षी कवि जयदेवकी नायिका भी दर्शनीय है :

"व्यालोल केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेद लोलोकपोलौ,
दृष्टा बिम्बाधरश्री कृच कलशरुचाहारिता हार यष्टिः।
कांची कांचित् गतार्शा स्तन, जघनपदं पाणिनाछाद्य सद्यः,
पश्यंती सत्रपंमान्तदपि विलुलित लभरेय-धुनोति।"

साथ ही सुमोत्थिता विद्याका चित्र भी आँखोंके सामने खिंच जाता है :—

"अप्यायि तां कनक-चम्पक-दाम गौरीं,
फुल्लारविंद-नयनां तनु-रोम-राजिम्।
सुमोत्थितां मदन-विह्वलता लसांगी,
विद्या प्रमादगलितामिव चिन्तयामि॥"

लज्जा-भारके कारण अपने शरीरको सँभालनेमें असमर्थ शेलीकी सलज्ज नायिका भी देखने योग्य है :

···Like a naked-bride
Glowing at once with love and loveliness.
Blushes and trembles at its own excess.

पद्माकरकी नायिका आलस्यके कारण अपने शरीरको सँभालनेमें असमर्थ है। उसे लज्जा कहाँ! वह तो वार-वधूटी है, गणिका है!

पद्माकरकी स्वकीया नायिका विलक्षण है। उसके शरीरमें सोना और सुगन्ध दोनों है।

शोभित स्वकीय रान-गुन गनतीमें तहाँ,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।
कहै 'पद्माकर' पगी यों पति-प्रेम ही में,
पद्मिनि तोसी तिया तू ही पेखियतु है॥
सुबरन रूप वैसो तैसो शील-सौरभ है,
ताही ते तिहारो तनु धनि लेखियतु है।
सोनेमें सुगन्ध नाहिं, गन्धमें सुन्यौ न सोनों,
सोनों औ' सुगंध तामे दोनों देखियतु हैं॥

पद्माकरकी मध्या स्वकीया जवानीकी सब कामनाओंसे भरी हुई मोहकी अवस्था तक रति करनेमें समर्थ है। इसकी बाँहें मृणालके समान पतली हैं। किन्तु सौन्दर्यमें यह रतिसे भी बढ़ी-चढ़ी है। रति इसकी छाया तक भी नहीं छू सकती। इसके कुच अत्यन्त सुन्दर हैं। आँखोंमें लज्जा है, प्राणमें कन्हैया बसे हुए हैं, जबान मुखर अधिक है।

आई जु चालि गुपाल घरै, ब्रजबाल बिसाल मृणाल सी बाँहीं।
त्यों 'पद्माकर' सूरतिमें, रति छू न सकै कितहू परछाहीं॥
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर, मौज मनोभवकी मन माँहीं।
लाज बिराज रही अँखियानमें, प्रानमें कान्ह, जबानमें नाहीं॥

पद्माकरकी प्रौढ़ा धीरा नायिका अपने क्रोधको छिपाकर बाहरसे बड़ा आदर और सहकार दिखानेवाली सौंदर्य और सुगन्धकी खान है। यह अपनी द्युतिसे केलि-मन्दिरको प्रकाशित करती, प्रत्येक कोठरी और दालानको सुगन्धसे भर देती है। इसका मुँह चन्द्रमासे भी चमकदार है। प्रियतमके चुम्बनार्थ अपना मुँह आगे करनेमें यह संकोच नहीं करती। सर्वत्र यह प्रेम प्रसारित करती रहती है। इसका छल छिपानेपर भी नहीं छिपता। प्रियतमसे गले लगने के समय यह हार नहीं उतारती। हारसे इसे इतना प्रेम है!

जगर मगर द्युति दूनी केलि मन्दिरमें,
बगर-बगर धूप अगर बगार्‌यौ तू।
कहै 'पद्माकर' त्यों चन्द ते चटकदार,
चुम्बनमें चारु मुख चन्द अनुसार्‌यौ तू॥
नैननमें बैननमें सखी और सैननमें,
जहाँ देखो, तहाँ प्रेमपूरन प्रसार्‌यौ तू।
छपत छपाये तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबेकी बार हार न उतार्‌यौ तू॥

पद्माकरने मुग्धा वासकसज्जा नायिकाका रूप-चित्र इस प्रकार खींचा है। वह वस्त्र, शृंगार आदिसे सज-धजकर प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके आगमनकी प्रतीक्षा करती है। अपने केलि-मन्दिरको सजाती तथा आरती जलाती है।

सोरह सिंगार कै नवेलीको सहेलिन हू,
कीनो केलि-मन्दिरमें कलपित केरे हैं।
कहै 'पद्माकर' सुपास ही गुलाब पास,
खासे खस-खास खुशबोइनके ढेरे हैं॥
त्यौं गुलाब नीरस सों हीरनके हौज भरे,
दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे हैं।
चोखी चाँदनीमें बिछी चौसर चमेलिनके,
चन्दनकी चौकी चारु चाँदीके चँगेरे हैं।

अपने बालोंको सँवारती हुई, प्रियतमकी प्रतीक्षामें रत एक ऐसी ही नायिकाका चित्र एक अंग्रेज कविने खींचा है।

O somewhere, meek unconscions dove.
That sittest ranging golden hair,
And glad to find thyself so fair
Poor child, that waitest for thy love.

× × ×

And thinking this will please him best.
She takes a ribon or a rose.

नायिका अपने बालोंमें कभी रिबन लगाती है, कभी गुलाब; यह सोचकर कि इससे उसका प्रियतम अधिक खुश होगा।

पद्माकरने एक नायिकाके शरीरकी दीप्तिपर प्रकाश डालते हुए कहा है :—

जुवति जुन्हाई सों न कछु और भेद अबरेखि,
पिय आगम पिय जानिगो चटक चाँदनी पेखि।

शेक्सपियरने भी रोमियोकी प्रेमिका जुलियटके बारेमें लिखा है :—

Oh, she doth teach the torches to burn bright,
Her beauty hangs upon the cheek of night,
Like a rich jewel in an Ethiop's ear.
Beauty too rich for use, for earth too dear ;
—Romeo & Juliet.

अर्थात्—

अह, वह मशालको द्योतित करती अपनी द्युतिसे,
रखती अपनी उज्ज्वल आभा चमकानी-सी रजनीके मुख ;
इथिअप वासिनके कानोंपर कर्णफूल शोभित हों जैसे,
महँगी कीमतवाली सुषमा धरती-हित नन्दन-वनका सुख ।

आइमोजनकी शरीर-दीप्तिपर शेक्सपियरने इस प्रकार प्रकाश डाला है :—

Cytherea,
How bravely thou becomes thy bed, fair lilly
Add whiter than the sheets.
'Tis her breathing that perfumes the
chamber thus, the flame, the taper,
Bows towards her, and would under deep
her lids.
To see the enclosed light, now canopied,
With blue of heavens own linct.
—Cymbelline.

अर्थात्—

परम सुन्दरी,
सुषमा तनकी कुमुद-फूल-सी उज्ज्वल उज्ज्वल,
बिस्तरकी उज्ज्वल चादरको उज्ज्वल करती,
सुरभि तुम्हारी साँसोंकी महमह करती है भव्य भवनको,
मोमबत्तिकाकी लौ लघुतामें डूबी-सी छटपट करती,
चाह रही देखना तुम्हारी आँखोंकी लौ, जो है उसमें
दिव्य, दिव्यतर,
बन्द, नील नभमें बिजली ज्यों झलमल करती ।

महाकविके दोनों छन्दोंमें शरीरकी उज्ज्वल द्युतिका सुन्दर वर्णन हुआ है। किन्तु पद्माकरका वर्णन भी कम सुन्दर नहीं कहा जा सकता, यद्यपि इसमें विस्तार-लघुताका बन्धन है ।

हिन्दीके दो-चार अन्य कवियोंकी सौंदर्य-प्रभा की तुलना करनेके लिए यहाँ दिया जाता है :—

प्यारी खंड तीसरे रंगीली रंग रावरीमें,
तकि ताकी ओर छकि रह्यो नँदनंद हैं;
'कालिदास' बीचिन दरीचिन है छलकत,
छविकी मरीचिनकी झलक अमंद है।
लोग देखि भरमें कहाँ धौं है या घर में,
सुरँग भग्यो जगमगी ज्योतिनको कंद है;
लालनको जाल है कि ज्वालिनको माल है,
कि चामीकर चपला है कि रवि है कि चंद है ?
—कालिदास त्रिवेदी

चंदकी कला-सी चपला-सी निय 'सेनापति'
बालमके उर बीच आनँदको बोति है;
जाके आगे कंचनमें रंचक न पैये दुति
मानो मनमोती लाल माल आगे पोति है।
देखि प्रीति गाढ़ी ओढ़े तनु सुख ठाढ़ि
ज्योति-जोबनकी बाढ़ी छिन-छिन और होनि है;
झलकन गोरि देह बसन झीनेमें मानों
फानुसके अंदर दिपनि दीप ज्योति है।
—सेनापति

कालिदासने नायिकाके शृंगार-भावका अधिक उद्घाटन नहीं करके उत्तेजनामात्र जगाया है। उन्होंने आश्रय-भावको अभिव्यंजित किया है। उन्हें नायिकाकी देह-दीप्तिका कुछ निश्चय ही नहीं होता। सेनापतिकी नायिका कालिदासकी नायिकाकी तुलनामें कम सुंदर है, फिर भी नायकके हृदयमें आनंदोद्रेक करानेमें पूर्ण सक्षम है। सेनापतिने चंद-कला, चपलाको छोड़ दीप-ज्योतिसे नायिकाके शरीरके सौंदर्यकी तुलना कर उसके सौंदर्यको गिरा दिया है। पद्माकरके समान ये वर्णन स्वाभाविक और सजीव तथा मनोतृप्ति कर नहीं कहे जा सकते।

पद्माकरने उक्त शुक्लाभिसारिकाके अतिरिक्त एक और उदाहरण इस प्रकार रखा है। यह भी सौंदर्य-प्रभाकी दृष्टिसे दर्शनीय है। यह भी चाँदनीसे बढ़कर सुषमाधारिणी है। इसके शरीरसे सुगंधि निकलती और वनकुंजोंको यह महमह करती है। इसके चरण अत्यंत सुकुमार और रक्तिम हैं। यह जहाँ-जहाँ पाँव धरती है, वहाँ-वहाँ लगता है, लाल रंगके भरे घड़े ढुलक गये। हारों-से हीरे गिरते जाते हैं,

पद्माकरकी यह नायिका वस्तुतः उनकी प्रतिभाकी उपज है ।

पद्माकरने प्राकृतिक उपकरणोंके सहारे एक नायिकाका स्वाभाविक रूप चित्रित किया है । नायिकाकी सखी नायक कृष्णसे उसकी रूप-शोभा एवं मनोव्यथाका वर्णन करती है । वह कुछ इस ढंगसे नायिकाके मुखड़ेको कृष्णके सामने रखती है कि कृष्ण चकित-विस्मित हो जाते हैं । वह कहती है, वे क्यों नहीं उस चन्द्रको देखते, जिसमें दो लाल कमल धीरे-धीरे लालिमा पा रहे हैं । उसके ऊपर एक कोर वधू भी बैठी हुई मोती चुग रही है । ऊपरसे तम छाया हुआ है, सूर्यके प्रकाशसे भी वह हटनेका नाम नहीं लेता । वस्तुतः नायिकाकी सखी कहती है, वे नायिकाके अपूर्व चन्द्रमुखको लालिमा प्राप्त करते हुए दोनों नेत्रोंको क्यों नहीं देखते ? वियोगके मारे वह डूबी जा रही है । पुनरपि सुन्दर है । उसकी नासिका कीर-वधूकी तरह मोहक है । उसके दाँत मोतीकी तरह चमकीले हैं । ऊपरमें घुँघराले केश हैं, जो सूर्यके प्रकाश लगनेसे और चमकने लगते हैं ।

देखत क्यों न अपूरब इन्दु में द्वै अरबिन्द रहे गहि लाली ।
त्यों 'पद्माकर' कीर बधू इक, मोती चुगै मनो हौ मतवाली ॥
ऊपर ते तम छाय रह्यो, रतिकी दब ते न दबै खुलि ख्याली ।
यों सुनि बैन सखीके बिचित्र, भये चित चक्रिनसे बनमाली ॥

रूढ़ एवं परंपरित उपमानोंके सहारे पद्माकरने नायिकाका जो अपूर्व रूप-चित्र सोंचा है, वह वस्तुतः सुन्दर है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता है, इसमें नायिकाके मनोभावको कविने कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है । भावकी ऐसी कुशल अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है ।

पद्माकरकी एक नायिका इस प्रकार है । उसके नेत्र कमलके समान हैं, अधर मूँगेके दुश्मन हैं, अर्थात् मूँगोंसे लालिमामें बढ़े-चढ़े हैं । क्यों, इसका कोई आधार नहीं है । स्तन सूर्यके समान चमकीले हैं । उनसे एक विचित्र प्रकार की दीप्ति निकलती है । बाल अंधकारके प्रतिद्वन्द्वी हैं, अर्थात् कालिमामें अन्धकारको भी पीछे छोड़ देते हैं ।

कमल-चोर दृग, तुव अधर विद्रुम रिपु निरधार ।
कुच कोकनके बन्धु हैं, तमके बादी बार ।
(पद्माभरण)

चोर दृग कहकर पद्माकरने मानों इसकी सूचना दी है कि उसकी आँख जिसको देखती है, उसीका मन चुरा लेती है । यह रूप भी पद्माकरका अपना है । इसमें पद्माकरकी प्रतिभा फूटी पड़ती है ।

पद्माकरने नायिकाओंके अतिरिक्त नायकोंके रूप-चित्र पर प्रायः ध्यान नहीं दिया । यह भी युग-धर्मका ही प्रभाव कहा जा सकता है । नायकोंके अथवा अपने आश्रयदाताओं के एवं अपने आराध्य देवके रूप-चित्रको खींचनेकी चेष्टा उन्होंने नहीं की । न तो आश्रयदाताओंके शौर्य-वीर्यको किसी रूपमें बाँधनेकी चेष्टा की न अपने आराध्य राम, शिव, कृष्ण आदिके ही रूप-चित्र प्रस्तुत किये । उन्होंने एकमात्र विलासकी सामग्री जुटाई और नायिकाओंके ही रमणीय चित्र सामने रखे । पुनरपि उनके कृष्णका यह रूप उनके काव्यमें चित्रित मिलता है ।

देखु 'पद्माकर' गोविन्दकी अमित छबि,
संकर समेत बिधि आनँद सो बाढ़ो हैं,
झिझिकन झूमत मुदित मुसकात गहि,
अंचलको छोर दोउ हाथन सो आढ़ो है ।
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन तैं नीर कन काढ़ो है,
आगे नँदरानीके तनिक पय पीबे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकन ठाढ़ो हैं ।

वस्तुतः बालकृष्णके अमित सौन्दर्यका वर्णन न कर पद्माकरने उनके आग्रह एवं हठका मूर्त चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है । पुनरपि शंकर और ब्रह्मा तक इनके आग्रहको देखनेके लिए आनन्दसे भर गये हैं । कृष्णके अनुभावोंके सहारे उनके मानसिक क्षोभको हम साकार रूपमें देखते हैं । कृष्णका यह चित्र भी ध्यान देने योग्य है ।

सुविधाजनक किश्तों

पर

मोटरगाड़ियाँ * ट्रकें * बसें और टैक्सियाँ

मिलिये

कलकत्ता क्रेडिट कारपोरेशन

लिमिटेड

३६, चौरंगी रोड, कलकत्ता-१६

छप गया है !
नवीन
संशोधित
संस्करण

प्राणोंका सौदा



छप गया है !!
चौथा
संस्करण

यह शिकार-साहित्यके लब्ध प्रतिष्ठ लेखक पं० श्रीराम शर्माके शिकार सम्बन्धी लेखोंका दूसरा संग्रह है। इसमें कलाविद् तथा प्रसिद्ध शिकारियों पर बीती घटनाओं और दुर्घटनाओंका सचित्र चित्रण है। लेखककी सूक्ष्म कल्पनाशक्ति परिष्कृत, निरीक्षण बुद्धि तथा अनुभूतिने कहानियोंमें जीवन उँड़ेल दिया हैं। कहानियाँ पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है, मानो शिकार की सारी रोमांचकारी घटनाएँ पाठकके सामने घट रही हों। दम बंद ! लब बंद !! जबां बंद !!! बस इसी तरह कहानियाँ पढ़नेमें लग जायँगे। बिना पुस्तक समाप्त किये आपका जी उसे छोड़ने को न चाहेगा। शिकार सम्बन्धी इतने सजीव, रोमांचकारी और हृदयग्राही वर्णन अन्यत्र पढ़नेको न मिलेंगे। मूल्य ३॥) मात्र।

शिकार साहित्यकी अन्य पुस्तकें

१—शिकार (श्रीराम शर्मा) ३)
२—रुद्रप्रयागका आदमखोर बघेरा ३)
३—कुमायुके क्रूर शेर २॥)

पता—विशाल भारत बुक डिपो, १६५।१. महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

ऐंग्ल साहित्यके इतिहासकी विविध धाराएँ

कृष्णानन्द

ऐंग्ल साहित्यके इतिहासकी ७०० वर्षोंकी कालावधिको विविध विद्वानोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे विभाजित किया है। उनके काल-विभाजनकी शैली हमारे हिन्दी-साहित्यके विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी हो सकती है और उस अनुकरण पर हिन्दीके साहित्यको विभिन्न धाराओंमें प्रसारित किया जा सकता है। अब तक हिन्दी-साहित्यका इतिहास जिन मनीषी विद्वानोंने लिखा है, उनमें स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल, स्व० डा० श्यामसुन्दरदास, डा० रामकुमार वर्मा, डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और राहुल सांकृत्यायनके नाम विशेष रूपसे उल्लेख-योग्य हैं। यहाँपर उद्देश्य हिन्दी-साहित्यकी विवेचना करना नहीं, अपितु ऐंग्ल साहित्यकी रूप-रेखा और उसकी विशेष प्रवृत्तियों, विशेष विचारधाराओं और उसके विशिष्ट प्रतिनिधि कवियों, लेखकों, नाटककारों, निबन्धकारों, उपन्यासकारोंसे परिचय प्राप्त करना है और साथ-ही-साथ अपने हिन्दी-साहित्यकी तत्कालीन परिस्थितियों, विचार धाराओं और लेखकोंसे सन्तुलन करना है। हमें पूरी आशा है कि इस प्रकारका हिन्दी-इंग्लिश साहित्यका तुलनात्मक अध्ययन हमारी साहित्य-जिज्ञासा और पिपासाको सन्तुष्ट ही नहीं करेगा, अपितु हमारे लिये बहुत ही उपादेय सिद्ध होगा।

इस कालान्तरमें ऐंग्ल भाषाको बहुत-सी ऊँची-नीची परिस्थितियोंमें से गमन करना पड़ा है। यह भाषा इंग्लैण्डकी उन चार प्रमुख बोलियोंमें-से है, जिन्हें नार्मन तथा फ्रेंच विजेत्री जातियाँ घृणाकी दृष्टिसे देखती थीं और इनका साहित्य निम्नकोटिका साहित्य था। स्काटिश, मध्य-पश्चिम और मध्य-पूर्वकी बोलियोंमें लन्दनकी बोलीकी अपेक्षा पर्याप्त साहित्य था और साहित्यिक दृष्टिसे ये अधिक समृद्ध थीं। इन चारों बोलियोंमें राष्ट्रिय भाषाका पद प्राप्त करनेकी प्रतिस्पर्धा लगी रहती थी। वह राष्ट्रिय स्वतन्त्रता जिसे चार्लस द्वितीय और ब्लेक प्रिंसने बहुत कठिनाइयोंसे प्राप्त किया था, एक बार फिर इन चारों बोलियोंकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विनासे संकटापन्न हो उठी।

भाग्यवश लंदनकी बोलीको राष्ट्रिय भाषा बनानेका गौरव प्राप्त हुआ। इसके दो कारण थे, प्रथम लन्दनकी बोली थी और द्वितीय इसके क्षेत्रमें कैम्ब्रिज और आक्सफोर्डके दो महान विश्वविद्यालय थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस बोली को कोई उच्च कोटिका पद प्राप्त नहीं था, यह बोली तिरस्कृत समझी जाती थी। राजकीय कार्यके लिये फ्रेंच और धार्मिक और सांस्कृतिक कार्योंके लिये लेटिनका प्रयोग होता था। लेटिन और फ्रेंच भाषाओंका ज्ञान ही विद्वानोंकी विद्वत्ताकी कसौटी समझी जाती थी। इन्हीं भाषाओंके भीतर कवि अपनी कविताएँ करते और लिखते थे। इंगलिश भाषा केवल असहायों, निर्धनों और अनपढ़ोंकी बोली समझी जाती थी। चौदहवीं शताब्दी तक इस भाषाकी वही स्थिति रही, जैसी कि बीसवीं शताब्दी तक हमारी हिन्दी भाषाकी रही है। जैसे आजके समयमें इंगलिशका ज्ञान भारतीयोंके लिये गर्व और गौरवका विषय है, उसी प्रकार चौदहवीं शताब्दी तक फ्रेंच और लेटिनका ज्ञान इंग्लैण्ड-वासियोंके लिये गौरवकी बात समझी जाती थी।

चार्ल्स द्वितीय और ब्लेक प्रिंसने स्वतंत्रताके लिये फ्रांससे संग्राम किया, जिसमें उनको फ्रांसके ऊपर विजय प्राप्त हुई। इस विजयने इंग्लैण्ड-वासियोंकी शिथिल धमनियोंमें नव रक्तका संचार किया, पारस्परिक वैमनस्यकी कालिमाको एकता और प्रेमके पावन जलसे धो दिया। रोमकी धार्मिक दासता के बन्धनसे इंग्लैण्डने अपने-आपको बहुत कुछ मुक्त कर लिया। फ्रेंच सरकारका आधिपत्य इंग्लैण्डसे उठते ही फ्रेंच भाषाका भी ह्रास आरम्भ हो गया। इंगलिश अब केवल जनभाषा ही न रही बल्कि वह लन्दन संसदकी भाषा बन गई।

चौदहवीं शताब्दी इंगलिश भाषाका मुकुल-काल था। इसमें न तो अभी तक रिनैसेंसकी तरुणाई थी और न रेस्टोरेशनका चापल्य और न क्लासिक काल कटाक्ष, हास-परिहास और न रोमाण्टिसिज्मका सारल्य और न विक्टोरिया-कालकी कुलीनता व गम्भीरता। लड़कपनके साथ-साथ अक्खड़पन तो था ही, जिससे यह भाषा किसी विशेष परम्परा अथवा मर्यादाके बन्धनोंसे बँधी न थी। सामाजिक अवस्था शोचनीय थी। वहाँकी जनता श्रेष्ठ (नोबल) और साधारण (कामन्ज़) दो वर्गोंमें बँटी हुई थी। नार्मन जातियाँ अब शासिका न थीं। धनी वर्ग कुबेर

के कोपकी होड़ कर रहा था निर्धन वर्ग बेकारीकी चक्कीमें पिसा जा रहा था और "कहाँ जाई का करी" को दुहाई दे रहा था। नार्मन जातियाँ वहाँकी निवासी बन जानेके कारण इंग्लैण्डके लोगोंके साथ घुल-मिल गई थीं। फिर भी यदा-कदा विद्रोहकी आग भड़क उठती, परन्तु यह विद्रोह सामूहिक ढंगका न होकर वैयक्तिक होता था। विद्रोही नेता सरकारी कार्योंकी कटु आलोचना कर रहे थे। उनकी यह आलोचना औचित्यको मात्रासे ओत-प्रोत थी, क्योंकि शासकीय और पुरोहित वर्ग दोनों ही अपने स्वार्थके रंगमें रंगे हुए थे। उनमें देश-सेवा और समाज-सेवाकी भावना उनके दम्भ और पाखण्डोंसे ग्रसित हो चुकी थी।

जनता क्षुब्ध थी। कालयापन और जीवन-निर्वाहके लिये राजनीतिक नीतियोंसे असन्तुष्ट होकर लोग विदेशोंकी शरण लेनेके लिये बाध्य हुए। उनकी इस निर्धनतासे उनको अलौकिक लाभ पहुंचा। ये व्यापारीके रूपमें न रहकर अपने उपनिवेश स्थापित किये। धनकी सरिता बह उठी। जनतामें प्रसन्नताकी रेखा दौड़ गई। चारों ओर एक अपूर्व उत्साह ही उत्साह था।

साहित्यिक क्षेत्रमें इटलीको विशेष ख्याति प्राप्त थी। वहाँके विद्यावारिधि और कलाविशारद डाण्टे, बोकेशिओ और पेट्रार्चकी कीर्तियोंके नाद सुनाई पड़ रहे थे, जिनसे इंग्लण्डके विद्या-प्रेमियोंका प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। माण्डेविल, गोअर, वाइकिलिफ और जियोफ्रे चोसर अपने कालके कलाकार और कवि थे।

काव्य विषय अधिकतर कामोद्दीपक थे या जनताकी चित्तवृत्तियोंकी व्याख्या करनेवाले। मेडियिवल कालमें कोई महाकाव्य नहीं निर्मित हुआ। केवल कहानियां, गाथाएँ ही लिखी गईं। मौलिक रचना नाम मात्रको थी। फ्रेंच पुस्तकोंके अनुवादोंकी झड़ी-सी लग गई। इटालियन साहित्य का भी अनुवाद पर्याप्त मात्रामें हुआ। फ्रेंच भाषाकी लाक्षणिक पुस्तक 'रोमन-डि-लारोज़' के कुछ अंशोंका अनुवाद चौसरने किया और इसी महान कविने पेट्रार्चकी पुस्तक 'ट्रायलस ऐंड क्रेसिडा' का भी अनुवाद किया, जिसमें कविने अपनी नैसर्गिक प्रतिभासे इसको अधिक सौन्दर्य और गाम्भीर्य प्रदान किया। इसमें एक ओर तो मूलकी रक्षा हुई ही है, साथ-ही-साथ उसपर कविके हास्यरसकी रसीली लता भी आलिंगन करती हुई लक्षित होती है।

इस कालकी सभी पुस्तकें स्वप्नसे आरम्भ होती हैं। कवि देखते हैं और उस स्वप्नसे ही उनको प्रेरणा मिलती है, विषय मिलते हैं। लाक्षणिक और रूपक शब्दोंका प्रयोग प्रचुर मात्रामें मिलता है। चौसरसे पूर्व अष्टपदीय स्टैन्ज़ा प्रचलित थे, परन्तु चौसरने दसपदीय स्टेन्ज़ाका प्रचलन किया। लिरिक (गेय) बैलेड (वीरगीत) और राउण्डेल का भी प्रयोग कवि किया करते थे। इन गीतोंमें शोकके गीतोंकी मात्रा कुछ कम नहीं है।

पद्यका आधिपत्य रहा। गणका प्रयोग केवल धार्मिक उपदेशकोंने ही किया है। वाइक्लिफका वाइबिलका अनुवाद उस कालकी धार्मिक बोलीका सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। माण्डेविलका यात्रा-सम्बन्धी वर्णन अद्भुत और मनोरंजक है। लेखकने स्वयं अपने अनुभवके आधारपर अपनी आँखों देखा वर्णन लिखा है। गोशर लेटिनका पण्डित था, उसने इंग्लिश भाषाकी उपेक्षा की। परन्तु चार्ल्स द्वितीयके आदेशपर 'कुछ किताबें इंग्लिशमें भी लिखी जानी चाहिए' उसने पुस्तक लिखी। पर्ल्ज ऐण्ड पियर्स ल्योमैन ओजसे परिपूर्ण ग्रन्थ है, जिनके भीतर एक आदर्शकी निष्ठा निहित है। गद्यकी भाषा अपरिष्कृत, असंगत और शुष्क रही है। पद्यकी भाषामें चौसरने अपने हास्य और विनोदसे उसमें सौन्दर्य उत्पन्न करनेका भरसक प्रयास किया। भाषामें लालित्य और सौन्दर्यके लिये चौसरने फ्रेंच शैलीको ही अपनी कविताका आधार बनाया है। महाकवि स्पेन्सरने अपने शेफेर्डेसमें भाषाको अधिक परिमार्जित और परिष्कृत तथा गेय बना दिया। अब इंग्लिश भाषा शुष्क, नीरस न रही; उसमें सरसता, नाद-सौन्दर्य और परिमार्जित तत्वोंका समन्वय हो गया। दूसरी ओर लिलीने अपने इयूफ्यूज़ और इयूफ्यूज़ ऐंड हिज़ इंग्लैण्ड द्वारा गद्य क्षेत्रमें एक नई धूम मचा दी। उसकी इयूफ्युइस्टिक शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि उसके सभी परवर्ती लेखकों, विशेषकर यूनिवर्सिटी विट्सने अपनाया। ग्रीन, नाशेद, टोमस लाज, सिडनी, डेकर आदिने इस शैलीका उचित प्रयोग किया। सर नियूटन और ब्राउनिंगको छोड़कर जिन्होंने केवल विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखे, शेष सभी लेखकोंने लिलीकी शैलीका ही अनुसरण किया।

नाटककी ओर लोगोंकी रुचि विशेष थी। उनकी शिक्षा और दीक्षाका एक मात्र साधन रंगमंच था। जनता रंगमंचसे केवल शिक्षा ही नहीं प्राप्त करती थी, बल्कि उसके

माध्यमसे नाना प्रकारकी देशदेशान्तरकी सूचनाएँ भी लेनेके लिये उत्सुक रहती थीं। सुखान्त और दुःखान्त, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक कितने ही प्रकारके नाटक लिखे गये। विलियम शेक्सपियर अपने कालके महान कलाकार थे। यूनिवर्सिटी विट्मके विरोधके होते हुए भी जिन्होंने नाटक क्षेत्रमें क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इनकी कृतियोंमें वास्तविकता और भावुकता दोनोंका अद्भुत सामंजस्य है। मानव-प्रवृत्तियोंकी विशद व्याख्या शेक्सपियरकी कृतियोंमें मिलती है। हिन्दी-साहित्यमें जो ध्रुव स्थान कविकुल कलाधर तुलसीको प्राप्त है, वही स्थान इंग्लिश साहित्यमें शेक्सपियरको निश्चय ही प्राप्त है। दोनों कवि परमात्माकी अनुपम विभूतियाँ हैं और दोनोंका काल भी एक ही है। दोनोंकी उन्नतिमें अकिंचनताका हाथ है। सरस्वती का वरदहस्त उन्हें उपलब्ध है। दोनोंकी वाणियोंमें सजीवता, मधुरता, सरलता, स्पष्टताकी निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है। इन समानताओंके साथ-साथ देश, काल और परिस्थितिके अनुसार उनमें अन्तर भी है। शेक्सपियर स्वतन्त्र देशका कवि था। रानी ऐलिज़ाबेथका समय धन, वैभवसे सम्पन्न था। विजयश्री उसके चरणोंको चूम रही थी। इधर तुलसीदासजी उस कालके कवि हैं, जब कि हिन्दू-जाति पराधीनताके बंधनमें बँध चुकी थी। मुसलमानोंका आततायी आतंक उनके हृदय-कपाटोंपर कड़ा पहरा दे रहा था। वाणी मौन थी और हृदयका स्पन्दन निस्तब्ध था, इच्छाएँ निर्बल और ओज मन्द था। तुलसीदासजीने सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वरकी शरण ली और उसके बल, यश, तेज पराक्रमके गीत गाये। उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक था, इसलिये भक्ति-भावना उनके काव्यका प्रमुख विषय रही। उधर शेक्सपियर पर कोई नैतिक अथवा सामाजिक प्रतिबन्ध नहीं था। उसने अधिकतर सामाजिक विषय ही लिये। तुलसीदासजीके भाव आध्यात्मिकताके रंगमें रंगे हुए हैं, जब कि शेक्सपियरके भौतिकताके। तुलसीदासजी पूर्ण रूपसे आशावादी हैं, परन्तु शेक्सपियरमें आशा और निराशाकी गंगा-जमुनाका संगम है। तुलसीदासजीका दृष्टिकोण अधिक विशाल, अधिक परिपक्व और स्वस्थ है। उसमें विषय-वासनाकी आँच लगने नहीं पाई है। तुलसीदासजी शास्त्रागंगत पण्डित थे, परन्तु शेक्सपियरका ज्ञान उसके अनुभवोंपर और तथाकथित लोकप्रिय कहानियोंपर निर्भर था। इतनी कुछ समता और विषमता होनेपर भी दोनों कवि अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय हैं। दोनोंने ही अपने ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वियोंको अतिक्रमण किया।

शेक्सपियरके उपरान्त कोई ऐसा प्रतिभासम्पन्न, प्रत्युत्पन्न मति मेधावी कवि न हुआ, जो जनताकी रुचिको अपनी ओर खींचे रहता। शेक्सपियरने कोई ऐसा विषय नहीं छोड़ा, जिसपर उसने मानव-प्रवृत्तियोंके लिए पोषक सामग्री न दी हो। लार्ड चेपमेन और बेनजानसन, जो शेक्सपियरके विशेष प्रतिद्वन्द्वियोंमें से थे, क्लासिक लिट्रेचर (शास्त्रीय साहित्य) की ओर विशेष बल दिया। जनता उस उच्चकोटिके साहित्य में रुचि न ले सकी। वह जनताके मन और भावोंके नितान्त प्रतिकूल था। रंगमंचपर अभिनेत्रियोंके समावेशसे काम-वासनाको प्रोत्साहन मिला। प्योरिटन्स, जो पहले ही नाटकके विरोधमें थे, उनको रंगमंचकी परिक्रिया अभीष्ट न थी। उन्होंने १६४० ई० में रंगमंचपर प्रतिबन्ध लगानेके लिए पार्लियामेण्टमें बिल पास कराया, जिसके फलस्वरूप रंगमंच २० वर्ष तक स्थगित रहा। हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि रंगमंचकी रक्षा जनताकी हार्दिक सहानुभूति और सरकार द्वारा दी गई सुविधाओंपर ही आधारित थी, परन्तु जब स्टेजकी प्रतिष्ठाको कामुक वासनाओंसे धक्का लगा, तो सरकारने इसको प्रतिबन्धित कर दिया और जनता भी इससे दूर रहने लगी। स्टेज केवल निम्नकोटिके व्यक्तियों और सरकारी सामन्तोंको वस्तु बन चुकी थी। यह काल रेस्टोरेशन के नामसे विख्यात है। इस कालमें स्टेजके सम्बन्धमें सोच-विचार किया गया। ड्राइडेनने 'इसेटिक पोइज़ो' नामकी पुस्तक लिखी, जिसमें स्टेजकी त्रुटियों और उसके गुण तथा दोषोंपर सविवेक विचार किया गया। सुखान्त नाटकोंमें अभिवृद्धि हुई।

जिस प्रकारसे जैकोबियन डूमाने व्यभिचार और अशिष्ट साहित्यका प्रचार व प्रसार किया, उसी प्रकारसे हमारे हिन्दी-साहित्यमें भी रीतिकालीन कवियोंने नायिकाके नख-शिख वर्णनमें ही अपने काव्य-कलाकी इतिश्री कर दी। विषय नायिकाके बाल-जालमें ही उलझकर रह गया। पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रणी और शंखिनी नायिकाओंकी भाव-भंगिमाओं की अभिव्यंजनाएँ की गईं। आचार्य केशवदासने जो "भूषण बिन न बिराजहीं कविता बनिता वित्त" की उद्घोषणा की थी वह बिहारीकी क्षण-क्षण रूप बदलनेवाली नायिकाके शृंगार वर्णनमें लक्षित हुई, जिसकी सुन्दरताको वर्णन करनेमें सभी चतुर कलाकार चूक हैं :—

लिखन बैठि जाकी छवि गहि गहि गर्व गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

प्राकृतिक सुषमा और उसकी अभिराममयी मोहकता उनके हृदयको आकर्षित न कर सकी। कानन और कालिन्दी कूलपर किलोल करती हुई नायिकाओंको वे पूरी परख रखते हैं। सरिता-सरोवरोंमें निमज्जन करती हुई युवतियोंके मोहक रूप उनको अन्य प्राकृतिक सौन्दर्यका पान करनेका अवसर ही नहीं देते हैं। वातावरणकी जितनी अवहेलना इस कालमें हुई है, उतनी सम्भवतः किसी भी कालमें नहीं हुई। इस कालकी प्रतिक्रिया हमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी कृतियोंमें मिलती है। जो सुधारात्मिका प्रवृत्ति हमें ड्राइडेनमें मिलती है, वही प्रवृत्ति हमें भारतेन्दुकी रचनाओंमें गोचर होती है। ड्राइडेनने तत्कालीन प्रत्येक विषयको अभिव्यक्त करनेका भरसक प्रयत्न किया है। ड्राइडेन राजभक्त कवि थे। उन्होंने अंग्रेजी-साहित्यको एक नई दिशा प्रदान की। नूतन प्रवृत्तियोंका समावेश किया। ये प्रवृत्तियाँ फ्रेंच-साहित्यके प्रभावसे प्रभावित थीं। पद्यके स्थानपर इन्होंने गद्यको महत्व दिया। अपने युगकी विचारधाराओंको अपनी पैनी दृष्टिसे देखा और उसको कहीं हास्यरसमें, कहीं भर्त्सनापूर्ण शब्दोंमें और कहीं उक्ति-वैचित्र्यसे साहित्यमें परिवर्तन लानेका प्रयत्न किया। ड्राइडेनने गद्य और पद्य दोनोंमें ही उच्चकोटिकी रचनाएँ कीं। परिस्थिति हमारे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके सम्मुख थी। उन्होंने रीतिकालीन परिपाटीसे अलग रहते हुए उसमें सुधारात्मक विचारधाराएँ प्रस्तुत कीं। पद्यकी परम्परागत शैलीको त्यागकर गद्यको स्थान दिया। इनके साहित्यपर अंग्रेजी-साहित्यके प्रभावकी छाप है। ड्राइडेनकी भाँति हरिश्चन्द्रने भी व्यंग्य, हास्य उपहासके माध्यमसे जटिल-से-जटिल और अपेक्षित तथ्योंपर प्रकाश डाला। स्व० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लने भारतेन्दुको आधुनिक कालमें प्रतिष्ठित किया है, परन्तु मेरे विचारमें रीतिकालीन और आधुनिक युगके बीचमें एक विशेष अवधि है, जिसे हम हरिश्चन्द्र-युग अथवा हिन्दीका रेस्टोरेशन (सुधारवादी काल) कह सकते हैं।

रेस्टोरेशन कालमें धार्मिक ग्रन्थ अधिक लिखे गये। जॉन बनियनका पिलग्रिम प्रोग्रेस, ग्रेस अबाउण्डिंग विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं। इनके अतिरिक्त हाब्सने राजनीतिक पुस्तकें लिखीं, जो साहित्यकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण तो नहीं हैं, किन्तु गद्यकी रूप-रेखा प्रस्तुत करनेके लिए बहुत ही उपयोगी है। चूंकि रेनासेन्सका प्रभाव समाप्त हो चुका था, इसलिए भावामें लालित्यकी ओर कवियोंका ध्यान कम रहा, वह केवल साधारण और व्यंगात्मक ढंगसे ही अपने विषयको प्रस्तुत करते रहे। लक्षणा, रूपक और दृष्टान्तकी ओर कवियों की अधिक रुचि दिखाई पड़ती है।

अठारहवीं शताब्दी अंग्रेजी साहित्यके लिए कामधेनु था। राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियोंमें प्रतिदिन परिवर्तन हो रहा था। महारानी ऐनीके समयमें लेखकवर्गको प्रतिष्ठा और सम्मानसे सत्कृत ही नहीं किया गया, अपितु उनके जीवन-निर्वाहकी भी पूरी-पूरी व्यवस्था की गई। गद्य और पद्य दोनों ही इस कालमें अनवरुद्ध गतिसे फले-फूले। "सीज़न्स, नाइट्स थॉट्स", "रेप आफ दि लॉक" आदि काव्य बहुत प्रसिद्ध हुए। गद्यकी धारा बहुत ही तीव्र और वेगवती रही। यदि काव्यपर ड्राइडेन और ऐलेक्ज़ेण्डर पोप की शैलीकी छाप थी, तो गद्य लूइस फोर्टनीथकी शैलीसे प्रभावित था।

इस कालमें भावना और कल्पनाको अवगुण्ठित रखा गया। तर्क और प्रज्ञाको पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। समाचारपत्रोंके अस्तित्वमें आ जानेसे जनताको रंगमंचमें रुचि न रह गई थी। अब उनको सूचनाओंके लिए रंगमंच की आवश्यकता न थी। दैनिक समाचार उनको पत्रों द्वारा मिल ही जाते थे। पियूरिटन्सने जो आन्दोलन स्टेजके विरुद्ध चलाया था, वह इतना सफल रहा कि जनता रंगमंचको घृणाकी दृष्टिसे देखती थी और उससे अपनेको दूर रखती थी। उसको उपन्यास जैसी नवीन सामग्री पढ़नेके लिए मिल गई थी, इसलिए स्टेजकी ओर उसका ध्यान न गया। डैनियल डिफोने रोबिनसनक्रूसो लिखकर अंग्रेजी-साहित्य-जगतमें कौतूहल उत्पन्न कर दिया। उसके उपन्यासोंमें साहसपूर्ण चरित्र-चित्रणको भरमार मिलती है। वातावरणका अभाव और कथा-प्रसंगकी शृंखलामें शिथिलता मिलती है। इसका प्रभाव एडीसन, स्टील और स्विफ्टपर रहा। अभी तक इन उपन्यासोंमें जीवनकी वास्तविकताको दर्शानेवाले दृश्य कम मिलते थे। रिचार्डसन और फील्डिंगने उपन्यासको नई दिशा प्रदान की। इन्होंने चरित्र-चित्रणपर अधिक बल दिया। मानव-प्रवृत्तियोंकी विशद व्याख्या की। साहसिक वर्णनको छोड़कर इन्होंने क्षणिक भावोंका ही उद्घाटन किया। पामेला को इतनी ख्याति मिली कि लोगोंने रिचार्डसनको ही उपन्यासका अग्रदूत स्वीकार किया। जोसेफ एण्ड्रियूज़ फेलडिंग की यशस्विनी कृति है, जिसमें चरित्र-चित्रणके साथ-साथ

उपन्यासके अन्य तत्वों कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैलीकी स्पष्ट रेखा दिखाई पड़ती है। स्मालेट, स्टर्न और गोल्डस्मिथने भी अपने-अपने उपन्यासोंमें तत्कालीन परिस्थितियोंके चित्र खींचे। अठारहवीं शताब्दीका अन्तिम चरण विरोधी विचारधाराओंका अखाड़ा था। अमेरिकाने इंग्लैण्डके विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम किया, जिसमें उन्होंने अपना गणराज्य स्थापित किया। फ्रेंच आन्दोलनके प्रभावसे भी इंग्लैण्डवासियोंको घृणा हुई, उन्होंने अपनी राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक सम्बन्ध विच्छेद फ्रांससे करके जर्मनीके साथ स्थापित किया। यह काल रोमांटसिज़्मके नामसे प्रसिद्ध हुआ। कविताके क्षेत्रमें वर्डस्वर्थ, कालेरिज सूदे, कीट्स, बायरन और शेलीने धूम मचाई, तो उपन्यासके क्षेत्रमें सर वाल्टर स्काटने। स्काटने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासोंकी भाँति भय और साहसके उपन्यास न लिखकर केवल ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासोंमें महाकाव्यके गुण और लक्षण मिलते हैं। ऐतिहासिक तथ्योंको कल्पनाके मधुर रंगमें इस प्रकारसे रँगा है कि पाठकका मन उनमें निमग्न हो जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेमें सर वाल्टर स्काट को अद्वितीय सफलता मिली है। सच बात तो यह है कि सर वाल्टर स्काटने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर अंग्रेज़ी-साहित्यको एक नई दिशा प्रदान की। कलित कल्पनाके साथ-साथ मौलिक तथ्योंकी भी रक्षा स्काटने की है। 'दि हार्ट आफ मिडलोथियन' में उनकी उच्चतम प्रतिभाके दर्शन होते हैं। चरित्र-चित्रण, वातावरणका सुन्दर दिग्दर्शन करानेमें स्काट सिद्धहस्त हैं। भाषा पात्रानुकूल है। कहीं यह साधारण बोलीका रूप और कहीं काव्यात्मक धारामें प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है।

विक्टोरिया कालमें वाणी संयत और गम्भीर हो गई। उसमें अब गँवारूपनके रंग दृष्टिगोचर नहीं होते। विज्ञानके आविष्कारोंने धार्मिक अन्धविश्वासोंकी जड़ें खोखली कर दीं। विक्टोरिया साम्राज्य विश्वमण्डलमें व्याप्त हो गया था, तब भी वहाँकी जनता निर्धनताके चंगुलसे मुक्त न हो पाई थी। धनाधिपतियोंने अपनी-अपनी तिजोरियोंके वारे-न्यारे कर रखे थे, परन्तु निर्धन बेचारे जीविकाकी खोजमें स्थान-स्थान पर भटकते रहे। इस युगके लेखकोंने इन तथ्योंकी सुन्दर अभिव्यक्ति अपनी रचनाओंमें की है। हार्डीने अपने युगका प्रतिनिधित्व किया, तो कार्लाइल और रस्किनने युगकी माँगको अपने ओजपूर्ण शब्दोंमें अभिव्यक्ति किया।

चार्ल्स डिकेन्सने सामाजिक अंशोंको अपने उपन्यासोंमें स्थान दिया, तो दूसरी ओर थैकेने निराशाको व्यक्त किया। जार्ज इलियट और जार्ज मेरिडियने श्रमिकोंकी ओरसे रणभेरी का नाद किया। स्त्रियोंके प्रति पुरुषोंकी नृशंसताकी घोर निन्दा हमें जार्ज मेरेडिथकी रचनाओंमें लक्षित होती है।

आधुनिक कालमें लेखकोंकी विद्वत्ताकी कसौटी लैटिन और ग्रीक भाषाका ज्ञान न होकर उनकी व्यवहारकुशल बुद्धिपर आश्रित है। आजका लेखक धार्मिक अन्धविश्वासोंसे कोसों दूर है। उसकी वाणीमें करुणा है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनाहत नाद सुनाई पड़ता है। इन सभी कालों और प्रवृत्तियोंकी विशद विवेचना हम स्वतन्त्र रूपसे आगेके प्रकरणोंमें करेंगे।

गीत

: :

शिवेन्द्र कुमार 'परिवर्तन'

ज़िन्दगीसे घृणा, मौतसे प्यार है—
जीत भाती नहीं, भा रही हार है!

(१)

तुम नहीं इसलिए, विश्व भाता नहीं,
मन विकल है इसे, कुछ सुहाता नहीं;
खोजते दृग रहे, पर—न तुम पा सकीं—
वेदनाका हृदयपर—अतुल भार है!
ज़िन्दगीसे घृणा, मौतसे प्यार है।

(२)

चाँदनी खिल रही, 'औ' कुसुम खिल रहे—
वन्तपर गंध मय, वायुसे हिल रहे;
कोकिलें कूकतीं, गुंजरित कुंजपर—
तुम विना लग रहा, दृश्य निस्सार है!
ज़िन्दगीसे घृणा, मौतसे प्यार है।

(३)

तुम मिलो यदि यहाँ, ज़िन्दगीमें—रमें,
हार ठुकरा विजय-केतु लहरा—भ्रमूँ;
देखती क्यों नहीं, झाँककर तुम ज़रा—
वक्षपर बह रही, अश्रुकी धार है!
ज़िन्दगीसे घृणा, मौतसे प्यार है—
जीत भाती नहीं, भा रही हार है।

मलायाका उग्र राष्ट्रिय आन्दोलन

हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी

मलाया-संघ दक्षिणी-पूर्वी एशियामें पेनिनशुलाके दक्षिणी भागमें १० और ७० लेटीच्यूड्स (अक्षांश और) १००° तथा १०५° ई लांगीच्यूड (देशांतर) पर स्थित है। इसके उत्तरमें स्याम (थाईलैंड), पूर्वमें चीनी समुद्र, दक्षिणमें सिंगापुर और पश्चिममें हिंदेशियाका विशाल द्वीप सुमात्रा है। पूरे मलायाका क्षेत्रफल ५०६९ वर्गमील है, जो वेल्स सहित विलायतके क्षेत्रफलके बराबर है। देशकी लगभग ८० प्रतिशत भूमि घने जंगलों, पहाड़ों और दलदल स्थलोंसे घिरी हुई है, बाकी बची हुई ज़मीनपर रबड़ और चावल आदिकी खेती की जाती है। रबड़ और टिन यहांकी मुख्य उपज है, जो अंग्रेजोंके एकाधिकारमें है। इन दोनों वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रिय बाज़ारमें काफी मांग है। सन् १९५५ में देशकी कुल आबादी ६,०५८,३१७ थी। इसमें मलय २९६७२३३, चीनी २२,८६,८८३, भारतीय ७,१३,८१० और अन्य ९०,३९१ थे। मूल निवासी शक हैं, जो चीनके यूनान प्रान्तसे ३००० वर्ष पूर्व यहाँ आये थे। मलाया निवासी चीनी और भारतीय अधिकांशतया श्रमिक वर्गके हैं। चीनी मज़दूर टिनकी खानोंमें और भारतीय कुली रबड़के खेतोंमें काम करते हैं।

द्वितीय महायुद्धके पहलेसे ही इन मज़दूरोंका इनके मालिकों द्वारा शोषण होता रहा है। आरम्भमें मज़दूरोंकी पूर्तिके हेतु कोई संगठन न होनेसे इन्हें रोज़ीके लिए आपसमें ही तीव्र प्रतियोगिताका सामना करना पड़ता था। मज़दूरी की दर ठेकेदार मनमानी तय करते थे। मलय किसानोंकी दशा तो इनसे भी अधिक चिन्तनीय हो गयी थी। देशकी अधिकांश सम्पत्ति विलायत चली जाती थी। शोषणका क्रम सीधा न था। मलायाको अपनी उपज अमेरिकाके हाथों बेचकर डालर मिलता था, जिसे विलायत अमेरिकासे मंगाए हुए सामनोंके भुगतानके लिए इस्तेमाल करता था। इस प्रकार मलाया वासी शोषणकी चक्कीमें बुरी तरह पिस रहे थे। द्वितीय महायुद्ध आया। जापानने सन् १९४२ में नाटकीय ढंगसे मलायापर अधिकार कर लिया और अंग्रेज जिन्हें अपनी सुदूर पूर्वी नौसेनापर बड़ा गर्व था, मलाया वासियोंको अरक्षित छोड़कर भाग गये। आरम्भमें जनताने जापानियोंके आगमनका हार्दिक स्वागत किया। परन्तु कुछ ही दिनों बाद स्थिति बदल गयी। जापानियोंके दमनचक्रने सबको अपना दुश्मन बना लिया। कई हज़ार व्यक्तियोंको स्याम-बर्मा डैथ रेलवे बनानेके लिए जबरदस्ती स्यामके जंगलोंमें भेज दिया गया। जिसका स्मरणकर आज भी लोगोंको रोमांच हो उठता है। उस भीषण अत्याचारको देखकर नेताजीसे, जो उस समय सिंगापुरमें आज़ाद हिंद फौजका संगठन कर रहे थे, न रहा गया। अतः उन्होंने जापान सरकारसे नर्मीकी नीति अपनानेका आग्रह किया। परन्तु स्थिति अब काबूके बाहर हो गयी थी। मलायाके निवासियोंमें असन्तोषकी आग भड़क उठी, सोया हुआ सिंह जाग उठा। देशके इतिहासमें प्रथम बार राष्ट्रिय चेतना उमड़ पड़ी। कोर्स १३६ नामक सेना संगठित कर ज़ापानी शासनके विरुद्ध छापामार युद्ध आरम्भ किया गया। इस प्रकार मलायाकी स्वतंत्रताके संग्रामका आरम्भ जापानियोंके विरोधसे हुआ। युद्धका क्रम लगभग दो वर्षों तक जारी रहा। इसी बीच अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थिति बदल गयी। फलस्वरूप अगस्त १९४५ में जापानियोंको मलाया छोड़कर स्वदेश लौटना पड़ा।

अब मलायापर विदेशी शासन न था। छापामार युद्ध करनेवाले लोग जंगलोंसे निकलकर गाँवों और शहरोंमें आकर शासन प्रबन्ध सम्भालने लगे। लोगोंमें स्वतंत्रताकी चिनगारी जल उठी। परन्तु वह स्वतंत्रता कुछ ही महीनों तक टिक सकी। अंग्रेजोंने गुरखा फौजके सहारे हमला कर दिया। मलायावासी अपने नवअर्जित स्वतंत्रताकी रक्षा न कर सके। कुछ ही समयमें सारे देशमें पुनः बृटिश शासन स्थापित हो गया। विजयोल्लासके बीच बृटिश शासनने जनताके नागरिक अधिकारोंकी रक्षा और क्रमशः वैधानिक सुधारों द्वारा मलायाको स्वतंत्र करनेका वादा किया। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उनका वादा झूठा निकला। प्रशासनमें जनसहयोग लेनेके स्थानपर सरकारने मैक्मिकल योजना प्रस्तुत किया। जिसमें मलायाकी बढ़ती हुई राष्ट्रियताकी लहरको दबाकर उसे पराधीनताकी ज़ंजीरमें क़सकर जकड़नेकी योजना बनायी गयी थी। मैक्मिकल योजनाका जनताके सभी

वर्गोंने अदम्य उत्साहके साथ विरोध किया, विरोधको दबानेके लिए सरकारने दूना उत्साह दिखाया। नागरिक अधिकारोंकी हत्या कर दी गयी, देशभरकी लगभग १५० ट्रेड यूनियनों को भंग कर दिया गया, निहत्थे प्रदर्शनकारियोंपर गोली वर्षा होने लगी। आल मलाया कौंसिल अब ज्वाइन्ट एक्शनको, जो कई जनवादी राजनैतिक संगठनोंका एक संघ था, गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मलायन कम्यूनिस्ट पार्टी मलय नेशनलिस्ट पार्टी, ए० पी० आई० और मलायन डैमोक्रैटिक यूनियनको भी सरकारी आदेशका कोप भाजन बनना पड़ा। मलायावासियोंको सरकारकी इस नीतिसे बड़ी निराशा हुई। उनकी आजादीका सपना भंग हो गया। इधर नेतागणमें अंग्रेजोंके फूट डालो और शासन करोकी नीतिके फलस्वरूप आपसमें मौलिक मतभेद उत्पन्न हो गया। एक दल उदारवादी हुआ, जो क्रमशः वैधानिक सुधारों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता था। इसके नेता दातो सर आन बिन जफर और दातो सर चैंग लाक तैन हुए। दूसरा दल उग्रवादी हुआ, जो अंग्रेज़ोंको नेकनियतीमें विश्वास खो बैठा था। वह वैधानिक सुधारोंको अपर्याप्त समझता था। उग्रवादी बृटिश साम्राज्यके निहित स्वार्थोंसे भली भाँति परिचत थे। उनको आँखोंके सामने उपनिवेशवादका काला इतिहास स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनका दृढ़ मत था कि बृटेन स्वतः अपने स्वार्थोंकी बलि देकर मलायावासियोंको मलायाकी भेंट नहीं करेगा। विशेषकर ऐसी स्थितिमें जब कि अंग्रेजोंके हाथमें मलायामें २० लाख एकड़ रबड़के खेत, ८० प्रतिशत टिनकी खानें और ९० प्रतिशत अन्य बड़े उद्योग थे। उग्रवादियोंके नेता चिनपेंग और अब्दुल रशीद हुए। यह लोग जनताका समर्थन प्राप्त करनेके लिए सभाएँ करते और अपने विचार वैधानिक मसलोंपर साफ-साफ प्रकट करने लगे। बृटिश शासन उग्रवादियोंके बढ़ते हुए प्रभावसे चिन्तित हो उठा। फलतः सभी प्रमुख उग्रवादी नेताओंकी गिरफ्तारीके लिए अचानक आदेश जारी कर दिया। गिरफ्तारीसे बचनेके लिए लोगोंने जंगलका मार्ग अपनाया।

जंगलमें चीनी, मलय और भारतीय सभी वर्गोंको मिलाकर एक राष्ट्रीय सेना संगठित की गई, जिसे आरम्भमें मलायन नेशनल आर्मी कहा जाता था। बादमें उसका नाम बदलकर मलायन रेसेज़ एण्टी बृटिश लिबरेशन आर्मी रखा गया। नीति निर्धारित करने तथा महत्वपूर्ण प्रश्नोंका निर्णय करनेके लिए एक बृहत् संगठन बनाया गया। राष्ट्रवादी सशस्त्र मुठभेड़के लिए तैयार भी न हो पाये थे कि जून सन् १९४८ में आधुनिकतम शस्त्रोंसे लैस होकर बृटिश सैनिकोंने उनके ऊपर हमला करना आरम्भ कर दिया। सारे मलायामें आपत्कालीन कानून लागू कर दिया गया और राष्ट्रवादियोंसे सहानुभूति रखनेवालोंको गिरफ्तारी भी की जाने लगी। मलय नेशनलिस्ट पार्टीके अध्यक्ष इन्व इशाक बिन हाज्जी मुहम्मदको पुलिसने अचानक गिरफ्तार कर लिया, जिससे जनतामें बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। सारे देशमें अशान्ति फैल गई। राष्ट्रवादी सेनाने अंग्रेजी शासनके विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध शुरू कर दिया। रबड़के खेतों और टिनकी खानोंपर अंग्रेजों को हत्याएँ की जाने लगीं। राष्ट्रवादियों और बृटिश सेनासे जगह-जगह मुठभेड़ शुरू हो गई। बृटिश सेना आधुनिकतम शस्त्रोंसे लैस थी, जो राष्ट्रवादी सेनाको सुलभ न था। फलस्वरूप उन्हें आतंकवादी नीतिका सहारा लेना पड़ा। इस युद्धमें बृटिश सैनिक बहुत बड़ी संख्यामें आहत होने लगे। स्थितिकी गम्भीरतापर चिन्ता प्रगट करते हुए श्री एच० एच० पैशरने संघीय विधान सभामें कहा, "हम लोग समाचारपत्रोंमें पढ़ते-पढ़ते और वायरलेसपर सुनते-सुनते अभ्यस्त हो गये हैं कि २ आतंकवादी मारे गये, ३ पकड़े गये और सेनाके ५ नौजवानोंको जानसे हाथ धोना पड़ा।" आतंकवादी युद्धमें राष्ट्रवादियोंकी दृढ़ स्थितिसे बृटिश साम्राज्यवाद घबड़ा उठा। सरकारने सारा दोष अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादपर मढ़ दिया। उग्र राष्ट्रवादियोंको कम्युनिस्ट आतंकवादी घोषितकर उन्हें बदनाम करनेका ढोंग रचा गया। चर्चिलने २६ जून १९४८ को एक वक्तव्यमें कहा, "मलायामें बृटिश शासनकी कमजोरी के कारण साम्यवादकी लम्बी भुजाने बृटिश प्लैंटर्सकी हत्या प्रारम्भकर हमें वहाँसे निकालनेकी दिशामें पहला कदम उठाया है।"

स्थितिका अध्ययन करनेके लिए विलायतसे उपनिवेश मन्त्री श्री जेम्स ग्रिफिथ्सको मलाया जाना पड़ा। श्री ग्रिफिथ्सने जेट विमानसे छापामार युद्धका निरीक्षणकर हाई कमिश्नरको राष्ट्रवादियोंके विरुद्ध व्यापक स्तरपर युद्ध करनेका आदेश दिया। आतंकवादियोंका सामना युद्ध-स्तरपर होने लगा। १० हजार बृटिश सेना और ५ हजार शाही वायुसेनाके लोग राष्ट्रीय आन्दोलनके दमनमें लगा दिये गये। कुछ ही दिनोंमें बृटिश और मलायन सेनाकी संख्या बढ़कर १ लाख हो गई। २ लाख ५० हजार नौजवानोंका एक

होमगार्ड भी संगठित किया गया। शाही वायुसेनाके लोग सन्देहास्पद स्थानोंपर बमवर्षा करने लगे। साधारणतया इन बमोंका राष्ट्रवादियोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत निरीह खेतिहर मजदूर और हजारों स्कैटर्स बमोंसे आहत हुए और उनकी फसलें नष्ट हो गईं। दिन-रात उड़ते हुए वायुयानोंसे गोली वर्षा होते देखकर लोगोंको युद्धके दिन याद आने लगे। राष्ट्रिय विद्रोहको दबानेके लिए प्रतिदिन २ लाख ७ हजार डालर व्यय होने लगा। कुछ ही दिनोंमें प्रतिदिनका व्यय बढ़कर ३ लाख डालर हो गया। इतना व्यय होनेपर भी स्थितिमें सुधारके लक्षण नहीं दिखाई पड़े। फलतः अप्रैल १९५० में कामन्स सभामें डिबेटके समय बृटिश सरकारकी कटु आलोचना की गयी। श्री लिवनाई गमन्स एम० पी० ने खेद प्रकट करते हुए कहा, "मलायाके इस गर्म युद्धको बृटेन नहीं जीत रहा है। यह अजीब बात है कि ४ या ५ हज़ार आतंकवादी बृटिश सरकारकी बहुत बड़ी शक्ति को चुनौती दे रहे हैं। परिस्थिति सुधरनेके बदले बिगड़ती चली जा रही है। गत मासमें फौजके ७७ लोग मारे गये जब कि आतंकवादी ३८ मरे।" ·····बहसका उत्तर देते हुए उपनिवेस मंत्रीने संकेत किया कि शीघ्र ही राष्ट्रमंडलीय देशोंकी सेनाएँ मलायाके लिए उपलब्ध होंगी। उक्त घोषणा के कुछ ही दिनों बाद कई राष्ट्रमंडलीय देशों (भारतवर्षकी नहीं) की सेनाएँ मलायाके युद्ध स्थलपर पहुंच गयीं। बहुत बड़ी संख्यामें गुरखोंकी भर्ती शुरू हो गयी। किसी देशकी स्वतंत्रता आन्दोलनको दबानेके लिए कई देश मिलकर संगठित युद्ध करें, यह विश्वके इतिहासकी एक अनोखी घटना है। मलायाकी राजनीतिमें अन्य देशोंके सैनिक हस्तक्षेपको संयुक्त राष्ट्र-संघने कसे सहन किया ? राष्ट्रमंडलीय देशोंकी फौजी सहायताके कारण बहुत बड़ी संख्यामें राष्ट्रवादी मारे जाने लगे। सन् १९५१ तक सरकारी आंकड़ोंके अनुसार २६९३ 'आतंकवादी' गोरी फौजकी गोलीके शिकार हुए। १९५२ तक ५१,५३४ व्यक्तियोंको राष्ट्रवादियोंसे सहानुभूति रखनेके कारण देश निष्कासनकी सज़ा दी गयी। राष्ट्रवादी सेना भी अपने पूर्ण ताकतके साथ बृटिश सेनाके आक्रमणका सामना करने लगी। एक मुठभेड़में हाई कमिश्नर सर हेनरी गर्नीकी हत्या कर दी गयी। हत्याके लगभग ३ सप्ताह बाद बृटेनके आम चुनावमें कन्ज़रवेटिव पार्टीकी जीत हुई। उक्त पार्टी अपने औपनिवेशिक नीतिके कारण कुख्यात तो थी ही। उसने मलायाके स्वातंत्रता संग्रामको समूल रूपसे नष्ट करनेके लिए जनरल टेम्पलरको जनवरी १९५२ में मलायाका हाई कमिश्नर नियुक्त किया, जनरल टेम्पलरको व्यापक नागरिक और फौज़ी अधिकार दिये गये।

नये हाई कमिश्नरने पद भार संभालते ही घोषणा की कि यदि जन सहयोग मिले, तो ३ महीनेमें आतंकवादियोंका दमन किया जा सकता है। दमन-चक्र चलने लगा। बड़ी संख्यामें लोग मिनमिनकी सदस्यताके सन्देहके आधारपर गिरफ्तार होने लगे। गाँवोंके तमाम लोग पकड़कर डिटेन्शन कैम्पोंमें रखे जाने लगे। उनके मकानोंमें आग लगा दी जाती और उनकी सम्पत्ति जप्त कर ली जाती। डिटेन्शन कैम्पोंकी दशा चिन्तनीय थी। तरह-तरहकी यातनाएँ डिटनीज़को कैल्चनिंगके समय दी जाती। महिला डिटेनीज़ के कैम्प अलग होते थे। जनवरी १९५२ के आरम्भ तक ५,९२० चीनी, ९०२ मलय, २२२ भारतीय और ७८ अन्य व्यक्ति डिटेन किये गये, फरवरी १९५३ तक डिटनीज़ की संख्या ३९,९७४ तक पहुंच गयी। परमटैंगगिंगो गाँवके सभी निवासियोंको गिरफ्तारकर लिया गया। उनके घर नष्टकर दिए गये। उनका अपराध यह था कि वह राष्ट्रवादियोंकी गति विधिके बारेमें कोई सूचना सरकारको नहीं देते थे। तंजुग मालिम गाँवके २० हज़ार निवासियोंको इसलिए दंड दिया गया कि वह राष्ट्रवादी सेनाके साथ सहानुभूति रखते थे। जनरल टेम्पलरने स्वर्ग दंडकी घोषणा एकत्र गाँववालोंके सामने की। सारे गाँवमें करफ्यू लगा दिया गया। दुकानें केवल २ घंटेके लिए दिनमें खुलने लगीं। गाँव छोड़कर कोई बाहर नहीं जा सकता था। स्कूल बंद कर दिए गये। बस सर्विस रोक दी गयी। चावलका दैनिक राशन घटा कर ५ सेरसे ३ कातो प्रति व्यक्ति कर दिया गया। इसी प्रकार बुकुति चंगग गाँवको फौजने अचानक ध्वस्त कर दिया। संगू काप गाँवपर सरकारके साथ सहयोग न करनेके कारण ५० हज़ार डालर जुर्माना किया गया। बड़ी संख्यामें महिलाएं गिरफ्तारकी जाने लगीं। सुंगई चंगकाश गाँवकी दो चीनी महिलाओं चाक, पिन और ओरलो कैमका राष्ट्रवादियोंके साथ सहानुभूति रखनेके कारण पांच-पांच सालके कठिन कारावासकी सज़ा फरवरी १९४९ में दी गयी। एक चीनी महिलाको दस सालकी कैदकी सज़ा इसलिए दी गयी कि वह राष्ट्रवादियोंको खाद्य सामग्री भेजती थी। सिंगापुरके ४ अध्यापकों और कई विद्यार्थियों को जनवरी सन् १९५१ में इसलिए गिरफ्तार किया गया

कि उनपर राष्ट्रवादी साहित्यके प्रचारमें भाग लेनेका सन्देह किया जाता था। पी० वीरसेनान अध्यक्ष, पैन मलायन फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन, राजगोपाल भूतपूर्व मंत्री, सिंगापुर फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन और मलय राष्ट्रवादी बानअलीको गोरी फौजकी गोलीका निशाना बनाया गया। सैकड़ों राष्ट्रवादियोंको मृत्युदंड भोगना पड़ा। सुप्रसिद्ध मज़दूरनेता गनपतिको राष्ट्रवादी आंदोलनमें भाग लेनेके कारण मृत्यु-दंड दिया गया। दंड मालूम होनेपर भारत सरकारने बृटिश सरकारको एक कड़ा विरोध-पत्र भेजा। श्रीनेहरूने नयी दिल्लीकी प्रेस कान्फ्रेन्समें गनपतिको फांसी दी जानेकी निंदा की। शम्बाशिवम्, मंत्री रबर वर्कर्स यूनियन, सेगमत और प्रसिद्ध राष्ट्रवादी रूपियाका मृत्यु-दंड कार्यान्वित न हो सका। क्योंकि प्रीवी कौंसिलने दोनों राष्ट्रवादियोंकी सज़ाको भारत सरकारकी अपीलपर रद्द कर दिया था। अगस्त १९५७ तक सरकारी आंकड़ेके अनुसार लगभग ६ हज़ार राष्ट्रवादी और २,४०० नागरिक मारे गये। बृटिश सरकारने राष्ट्रवादियोंको जीवित अथवा मृत गिरफ्तार करने या करवानेके लिए पुरस्कार भी घोषित किया। राष्ट्रवादियोंके नेता केवल चिनपेंगको पकड़नेके लिए दो लाख पचास हज़ार डालर पुरस्कारकी घोषणा की गयी थी। लगभग ६ लाख स्क्वैटर्सको राष्ट्रवादियोंके साथ सहानुभूति रखनेके कारण अपनी बस्ती और व्यवसाय छोड़ कर सरकारकी कड़ी निगरानीमें 'नये गांव' बनाकर बसना पड़ा। इन स्क्वैटर्सका आर्थिक जीवन अब भी अस्त-व्यस्त अवस्थामें है। स्वतंत्रता-संग्राम एवं आन्दोलनको कुचलनेके लिए इससे अधिक और क्या किया जा सकता था।

मैनचेस्टर गार्जियनने अपने एक लेखमें मलायावासियों के साथ पुलिसके ज्यादतीकी घोर निन्दा करते हुए लिखा, "यह क्षोभका विषय है कि एक छोटेसे भूखंडको शक्तिके बलपर अधिकारमें रखकर बृटेन अपने उज्जवल मुखको विश्वके सामने लज्जित करे।" कामन्स सभामें भी सरकार के दमनपूर्ण नीतिकी कड़ी आलोचना की गई। श्री विलियम गेलेचर एम० पी० ने बहसके समय कहा, "मलायामें व्याप्त असंतोष मलायाकी आजादी पानेकी दिशामें एक वाजिब कदम है। मलायाका श्रमिक वर्ग साम्राज्यवादियों द्वारा टिन और रबड़के माध्यमसे अपना शोषण न होने देने के लिए अब कटिबद्ध है। उनकी आवाज यह है कि टिन और रबड़के उद्योग साम्राज्यवादियोंके हाथोंसे छीन लिये जायं. ..." श्रीमती मैनिंग (लेबररने) सरकारके दमन पूर्ण नीतिकी निन्दा करते हुए कहा, "मलायामें जो कुछ हो रहा है, वह राष्ट्रिय भावनाका प्रति फल है।" श्री स्टैन एवरीने श्रीमती मेनिंगका समर्थन करते हुए कहा कि मलाया के राष्ट्रिय आन्दोलनको अपराधके रूपमें नहीं देखना चाहिये। मलायामें वास्तविक राष्ट्रिय आन्दोलन चल रहा है, जो मलाया पर शासन करना चाहता है।" डेली वर्करने अपने १७ अप्रैल १९५० के अंकमें लिखा है, "मलायन नेशनल लिबरेशन आर्मी सारे मलायामें जन-सम्पर्क स्थापित कर स्वतंत्र संग्राम चला रही है। बृटिश सरकार अगणित गांवों पर बम गिराकर जनताको राष्ट्रवादियोंके और भी निकट कर दे रही है।" मलायाके स्वतंत्रता-संग्रामके दमनका आर्थिक पहलू कम गम्भीर नहीं है। १९ मार्च १९५३ को जनरल टेम्मलरने संघीय विधान सभाको सूचित किया कि जहां तक व्ययका सम्बन्ध है, संक्रमणकी स्थितिमें अब तक कोई सुधार नहीं दिखाई दे रहा है। मार्च १९४९ में बृटिश सरकारने बृटिश सेनाका भार वहन करनेके अतिरिक्त पांच लाख डालरकी आर्थिक सहायता राष्ट्रवादके दमन के हेतु मलायामें बृटिश शासनको दी थी। परन्तु १९५४ में यह सहायता बढ़ाकर साढ़े इक्यावन लाख डालर करनी पड़ी। बृटिश सरकार प्रति वर्ष मलायाके युद्ध पर ५५० लाख डालर वार्षिक खर्च करती थी। उक्त आंकड़े में मलाया संघ द्वारा व्यय की गयी अर्थराशि नहीं शामिल है। मलायाके राष्ट्रिय आन्दोलनको मलायावासियोंके ही धनसे दमन करनेमें बृटिश सरकारको कोई हिचक न थी। केवल १९५३ ई०में २५० लाख डालर मलाया संघके बृटिश शासनने दमन कार्यमें व्यय किये। दिन-रातकी बम वर्षा से रबड़का उत्पादन भी गिरने लगा। १९४८ में रबड़ ६९६००० टन पैदा हुआ। सन् १९५१ के पहले ही ६ महीनोंमें घटकर ३३००० टन हो गया। लन्दनके एकानमिस्टने अपने एक लेखमें घोषित किया कि मलायाका निर्यात से आय सारे स्टर्लिंग क्षेत्रके कुल आयका पांचवां भाग है, यदि युद्धकी स्थिति यही रही, तो इसका बृटेनकी अर्थ-व्यवस्थापर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

बृटिश शासन-कालमें मलायाके राष्ट्रवादियोंको परास्त नहीं किया जा सका और न राष्ट्रिय आन्दोलनका ही दमन हो सका। १९४८में सिंगापुरको मलायासे अलग कर मलाया-संघ कायम किया गया था। सारे मलाया-संघमें

आपत्कालीन कानून लागू कर दिया गया था। जिसका लक्ष्य यह था कि लोगोंमें पनपती हुई राष्ट्रिय भावनाको दबा दिया जाय। परन्तु राष्ट्रिय भावना किसानों, मजदूरों, विद्यार्थियों, सरकारी नौकरों, व्यापारियों और साधारण नागरिकोंमें तीव्र गतिसे फैलती गई और लगभग ८ वर्षोंके छापामार युद्धके बाद १९५५ में उन वैधानिक सुधारोंकी घोषणा की गई, जिससे मलायाकी आजादीका मार्ग प्रशस्त हुआ। उनके अनुसार :

१. ५२ सदस्योंकी निर्वाचित धारा सभा बनाई गई।
२. निर्वाचित मन्त्रियोंकी परिषद् कायम की गई।
३. मंत्रि-परिषदका अध्यक्ष पद प्रधान मन्त्रीको सौंपा गया।
४. बाहरी सुरक्षा और वैदेशिक विभाग अंग्रेजोंके हाथ में रखे गये।
५. भीतरी सुरक्षाके लिये एक सूचना परिषद् कायम की गई, जिसका अध्यक्ष हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया।
६. सुरक्षा-परिषद्को आपत्कालीन आदेश जारी करने का अधिकार दिया गया।
७. हाई कमिश्नरको वीटोका अधिकार दिया गया।

यह शासन-सुधार अंग्रेजोंको बहुत मँहगे पड़े। जुलाई १९५० के आम चुनावमें उदारवादी एलायन्सकी भारी बहुमतसे जीत हुई। अतः तंग्कू अब्दुल रहमान एलायन्सके सर्वमान्य नेताको हाई कमिश्नरने मन्त्रिमण्डल बनानेके लिये आमंत्रित किया। शासन यन्त्र जननांत्रिक नेताओंके हाथ में चला गया। निर्वाचित संघीय धारा सभामें उनके प्रचण्ड और अजेय बहुमतकी उपेक्षा न की जा सकी। एलायन्सने अपने चुनाव-घोषणा-पत्रमें आपत्कालीन शासनका अन्त कर स्वतंत्रताकी प्राप्तिका वादा किया था। अतः दिसम्बर १९-५५ में इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये तंग्कू अब्दुल रहमानके नेतृत्वमें एक प्रतिनिधि मण्डल उग्र राष्ट्रवादियोंके नेता चिन-पेंगसे मिलने बालिंग गया। बालिंग वार्ताके समय चिनपेंग ने सरकारी नेताओंको आश्वासन देते हुए कहा, "वर्तमान सरकार यद्यपि जनता द्वारा चुनी हुई सरकार है, फिर भी यह स्वाधीन सरकार नहीं है। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचते समय इस तथ्यको ध्यानमें रखना पड़ेगा। फिर भी यदि आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा निर्वाचित नेताओंके हाथमें आ जाय, तो हम हथियार रख देंगे और युद्धको समाप्त कर देंगे।" चिनपेंगने शस्त्र रख देनेका स्पष्टीकरण करते हुए कहा, "शस्त्र रख देनेका तात्पर्य शस्त्र सरकारको सुपुर्द कर देना नहीं है। हम उसी समय आत्म-समर्पण कर सकते हैं, जब कि हमें सामूहिक रूपसे देशकी राजनीतिमें भाग लेनेका अवसर प्रदान किया जाय।" बालिंग वार्तामें चिनपेंगका विश्वास प्राप्त करनेके बाद जनवरी १९५६ में तंग्कू अब्दुल रहमानने लन्दनके लिये मरडेका मिशनका नेतृत्व कर प्रस्थान किया। जनतांत्रिक नेताओं की लंदन यात्रा सफल हुई। मलायासंघको ३१ अगस्त १९५७को स्वतंत्रता देनेकी घोषणाकी गई।

३१ अगस्त १९५७ को मलाया स्वाधीन राष्ट्रमण्डलीय देशोंकी पंक्तिमें शामिल हुआ, परन्तु अक्टूबर १९५६को बृटेनके साथ हुई सुरक्षा एवं पारस्परिक सहयोगकी संधिके कारण मलायाकी आजादी अब भी अधूरी है। उक्त संधि के कारण मलायाको युद्धके समय ऐंग्लो अमेरिकन गुटका साथ देना पड़ेगा। मलायाकी इस अपमान पूर्ण सन्धिका अन्त तभी हो सकता है, जब मलायाकी राजनीतिमें उग्र राष्ट्रवा-दियोंका प्रभाव हो। बृटेनका हित इसीमें है कि शासनकी बागडोर उदारवादियोंके हाथोंमें बनी रहे। इसलिये बृटेन की सरकार उग्र राष्ट्रवादियोंको कम्युनिस्ट आतंकवादी कह कर बदनाम करती रही है। खेदका विषय है कि उदार-वादी नेता भी इसी भ्रमजालमें पड़े हुए हैं। अप्रैल १९५८ में तंग्कू अब्दुल रहमान, मलायाके प्रधान मंत्रीने लेखकके एक प्रश्नके उत्तरमें बताया, "छापामार युद्ध करनेवाले लोग राष्ट्रवादी नहीं हैं। क्योंकि उनमें ९९ प्रतिशत चीनी हैं, जो इस देशके नागरिक नहीं हैं। वह मण्डारिन भाषा बोलते हैं। जब कि मलायाकी राष्ट्रभाषा मलय है। अतः उन्हें देशकी राजनीतिमें सामूहिक रूपसे भाग लेने नहीं दिया जा सकता। .....एक अन्य प्रश्नका उत्तर देते हुए प्रधान मंत्री ने बताया, "मलायाको छापामार युद्धके कारण स्वतंत्रता नहीं मिली है। हमें आजादी शांतिपूर्ण वैधानिक प्रयत्नोंके फलस्वरूप मिली है।" प्रधान मन्त्र के उक्त कथन के फलस्वरूप दो मौलिक प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

१. क्या मलायाका छापामार युद्ध राष्ट्रिय आन्दोलनका अंग नहीं रहा है।
२. क्या मलाया ९ वर्षों तक चलते हुए छापामार युद्ध के फलस्वरूप आजाद नहीं हुआ है।

मलायाका छापामार युद्ध राष्ट्रिय आन्दोलनका अंग रहा है। प्रस्तुत लेखमें आरम्भसे अन्त तक इसी तथ्यको पुष्ट करनेका प्रयास किया गया है। इस युद्धमें चीनी, मलय, भारतीय यानी सभी वर्गोंके लोगोंने भाग लिया। निश्चय ही चीनियोंकी संख्या दूसरोंके अनुपातमें अधिक रही है। इसके दो मुख्य कारण हैं। चीन देशमें बहुत पहलेसे ही राष्ट्रियताके बढ़ते हुए वेगका प्रभाव मलायावासी चीनियों पर पड़ना स्वभाविक है। दूसरे अधिकांश मलायावासी चीनी श्रमिक वर्गके हैं, जो टिन और रबड़के अपने अंग्रेज मालिकों द्वारा शोषणसे ऊबकर राष्ट्रिय आन्दोलनमें जुट गये थे। हिन्दुस्तानकी आजादीके लिये कांग्रेस द्वारा चलाये गये राष्ट्रिय आन्दोलनमें मुसलमानोंकी संख्या पर्याप्त न होते हुए भी उक्त आन्दोलन शुद्ध राष्ट्रिय आन्दोलन रहा। इसी प्रकार मलायाकी आजादीकी प्राप्तिके लिये उग्रवादी आन्दोलनमें यदि मलय जातिके लोगोंकी संख्या पर्याप्त नहीं थी, तो भी उसे राष्ट्रिय आन्दोलन मानना चाहिये। तंकू अब्दुल रहमानका कथन है कि छापामार युद्धमें लगे अधिकांश चीनी मलायाके नागरिक नहीं हैं, एक भीषण षड्यंत्रका उद्घाटन करना है। जिन 'अधिकांश चीनी' का जिक्र प्रधान मन्त्रीने किया है, उनका जन्म मलायामें ही हुआ है और वह मण्डारिन भाषाके अतिरिक्त मलय भाषा भी जानते हैं। फिर भी उन्हें जान-बूझकर मलाया की नागरिकताके अधिकारसे ब्रिटिश शासनने वंचित रखा था। अतः उनकी देशभक्तिपर संदेह नहीं किया जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि छापामार युद्ध करनेवालोंको जनसहयोग प्राप्त था, जिसका विवरण इस लेखमें विस्तारपूर्वक दिया गया है। वास्तवमें यह जन-आन्दोलन था, जनताकी सरकार कायम करनेके लिये। आरम्भमें लगभग ५ हजार व्यक्तियोंने इस युद्धमें भाग लिया। परन्तु धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़कर लगभग १०००० तक पहुंच गई। अर्थात् यह आन्दोलन क्रमशः जनप्रिय होता गया। युद्ध करनेवाले राष्ट्रवादियोंको किसी भी अन्य देशसे सैनिक या आर्थिक सहायता नहीं मिली। इसका पुष्टिकरण ब्रिटायतके उपनिवेश मन्त्रीकी जेम्स ग्रिफिथ्सके २२ मार्च १९५० और युद्ध मन्त्री श्री स्ट्रेचीके २ जून १९५० के कामन्स सभामें दिये गये वक्तव्योंसे भी होता है। तथापि साम्राज्यवादी उग्र राष्ट्रवादियोंको कम्युनिस्ट आतंकवादी कहनेसे न हिचकते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस राष्ट्रिय आन्दोलन में बहुतसे साम्यवादी भी रहे हैं। चिनपेंग स्वयं साम्यवादी विचारधाराके पोषक हैं। तथापि इस महान राष्ट्रिय आन्दोलनके स्वरूप और उद्देश्यपर उसी प्रकार कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जिस प्रकार हिन्दुस्तानके राष्ट्रिय आन्दोलनपर अनेक सक्रिय साम्यवादियोंके भी भाग लेनेके कारण कोई प्रभाव नहीं पड़ा। रायल इंस्टीच्यूट आफ इन्टर नेशनल अफेयर्स लंदनने मलायामें गुरिल्ला कम्युनिज्म नामक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसके लेखक श्रीपाई अपने एक सालके फील्डवर्कके बाद इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि मलायाके छापामार युद्धमें भाग लेनेवाले, कुछ गिने-चुने अग्रगणी नेताओंको छोड़कर साम्यवादका तात्पर्य भी नहीं समझते। इसके अतिरिक्त बालिंग वार्ताके समय चिनपेंगने जो आश्वासन तंकू अब्दुल रहमानको दिया था, उन्होंने उसको निभाया। मलायाके स्वतंत्र होनेके बाद छापामार युद्ध समाप्त हो गया। परन्तु उदारवादी सरकार फौजी टुकड़ियोंको जंगलोंमें भेजकर बैंडिट्स आदिको गोलीसे मरवाकर विश्वको दिखानेकी कोशिशमें लगी रहती है कि छापामार युद्ध करनेवाले लोग देशकी स्वतंत्रताके लिए नहीं लड़ रहे थे। परन्तु सत्य अधिक दिनों तक नहीं छिप सकता। मलायाके छापामार युद्धका अंत मलायाकी आज़ादीकी प्राप्तिके बाद हो गया। जंगलोंमें इस समय जो इने-गिने लोग मारे जा रहे हैं, वह बैंडिट्स हैं, जिनसे मलायावासी सदियोंसे उत्पीड़ित होते रहे हैं।

जहां तक मलायाकी स्वतंत्रताकी प्राप्तिका प्रश्न है, मलाया की स्वतंत्रता देशमें लगभग १० वर्षोंसे चलते हुए राष्ट्रिय आन्दोलनकी उपज है। इस आन्दोलनकी आधारशिला व्यापक रही और इसका श्रेय उग्रवादी और उदारवादी दोनों को है। साम्राज्यवादी बृटेन दोनों मोर्चोंपर चलते हुए युद्ध का सामना न कर सका। एक तरफ उसे छापामार युद्धमें अपार धनराशि व्यय करना पड़ता था, दूसरी तरफ उसे उदारवादी एलायन्स द्वारा संचालित अहिंसात्मक राष्ट्रिय आन्दोलनका सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त बाहरी परिस्थितियां भी मलायाकी स्वतंत्रताप्राप्तिमें सहायक बनीं। इनमें स्वतंत्र मलायाको ऐंग्लो अमेरिकन गुटमें रखनेका प्रलोभन और एफ्रोएशियन देशोंके प्रबल जनमत प्रमुख हैं।

१. स्याम बर्मा डेथ रेलवे :—जापानियोंने मलायापर अधिकार करनेके बाद युद्ध-कालमें एक रेलवे लाइन बनाना प्रारम्भ किया था, जो स्याम और बर्माको स्थल मार्गसे मिला देती। उक्त रेलवे लाइनको बनानेके लिए कई

हजार मलायावासी जबरदस्ती स्यामके जंगलोंमें भेजे गये। जिनमेंसे लगभग नब्बे प्रतिशत लोग भूख और जहरीली मक्खियोंके शिकार होकर कालके गालमें चले गये।

२. मिनमिन :—यह मलायाके राष्ट्रवादी सेनाकी एक महत्वपूर्ण शाखा थी, जो राष्ट्रवादियोंके लिए खाद्य सामग्रीका प्रबन्ध और सेनामें भर्तीके लिए यत्न करती थी।

भौतिकता और आध्यात्मिकता

परमेश्वर 'द्विरेफ'

अभिलाषाएँ तृप्त रहें तो
जीवन सुख पाता है।
नहीं, चिन्तना बस जाती है,
भूखा रह जाता है।
भूखे जीवनकी अभिलाषा,
भूख - भूख चिल्लाती।
एक बारकी भूख निरन्तर
सौ-सौ भूख जगाती।
जिनकी भौतिक अभिलाषाएँ,
होती तृप्त नहीं हैं;
मिथ्या, कल्पित, अन्य जगतमें,
होते लिप्त वही हैं।
मिथ्या है संसार, भ्रान्ति है,
जो ऐसा कहते हैं:
क्या वे जीवनभर इस जगमें,
यहाँ नहीं रहते हैं?
भौतिक तनका भौतिक मन है,
भौतिक बाहर - भीतर;
क्या भौतिकताके अभावमें
कोई रहे महीपर?

भौतिकता ही क्या सब कुछ है?
कभी तृप्ति भी जीवन?
आत्माके शाश्वत हिमाद्रिसे,
भी क्या है ऊँचा मन?
यदि भौतिकता ही जीवन, तो
नर क्यों मर जाता है?
सब कुछ साधन रहते
फिर भी लौट नहीं पाता है।
तृप्ति मृत्यु है चिर अभाव ही,
जीवनका आलम्बन।
अल्हड़ यौवनकी मादकता,
मृगतृष्णा है बन्धन।
जिस दिन मानव तृप्त बनेगा,
जग यह जल जायेगा:
उसके अहंकारका झोंका
सबको दल जायेगा।
तृप्त मनुज ही अन्य लोककी,
चिन्ताएँ करता है;
इस भौतिक जगसे जब उसका,
हृदय नहीं भरता है।

जो विवेककी तन्मयतामें,
डूब नहीं सकते हैं;
वे इस भौतिक, नश्वर जगसे,
ऊब नहीं सकते हैं।

रीतिकालीन कवि आचार्य सुखदेव मिश्र

फूलचन्द्र मिश्र

सुखदेवजीकी जन्मभूमि ; गंगाके किनारे 'कपिल मुनिकी-बसाई' कम्पिला नामक नगरी है। वे हिमकरके मिश्र (शंकरवाले आसामी) थे। उनका विवाह कम्पिलामें ही हुआ। जगन्नाथ और बुलाकीराम (परमानन्द) उनके दो पुत्र भी वहीं पर हुए। बचपनमें थोड़ी-सी संस्कृत उन्होंने पढ़ी, पर विशेष ज्ञानार्जनकी प्रबलेच्छाने उन्हें बनारसमें पढ़नेके लिये बाध्य किया। वहाँपर किसी सिद्ध संन्यासीसे वे संस्कृत पढ़ने लगे। संन्यासीका नाम शायद ब्रह्मानन्द गोसाईं था। एक बार उन्होंने रातको आपने सन्यासी गहात्माके मुँहसे निकलती और प्रवेश करती हुई एक विशेष प्रकारकी ज्योति-शिखाको देखा। उसको प्रणाम करके वे सो गए।

दूसरे दिन आपने पढ़नेमें विशेष प्रगल्भता दिखलाई। अध्यापक महात्माको विशेष आश्चर्य हुआ तब आपने रात की बात बतलाई। इसपर संन्यासीजीने कहा, बस आपको विद्या प्राप्त हो गई। यह आशीर्वाद था। थोड़े ही दिनोंमें सुखदेवजी तंत्र और साहित्यमें पूर्ण पटु हो गए।

सुखदेवजीका जन्म रीतिकाल (संवत् १७००) के प्रारम्भमें ही हुआ, यह निश्चित है। संवत् १७४० से १७६० तकका समय उनका कविता-काल है। उन्होंने २० वर्षों तक कविता की।

विद्याध्ययनकर सुखदेवजी सीधे अपने घर नहीं गए। बनारससे वे सीधे असोथर गए। फतेहपुर जिलेमें असोथर एक कसबा है। वहाँका तत्कालीन राजा भगवन्त राय खीची इनका शिष्य हो गया। खीची स्वयं कवि था, परंतु उसके द्वारा लिखी गई कोई पुस्तक नहीं मिलती। सन् १७६० ईसवीमें वह दंगेमें मारा गया।

सुखदेवजी शाक्त थे। वे ताराके उपासक थे। भगवंत-रायसे असंतुष्ट होकर वे वहाँसे चले आये और फिर कभी वहाँ नहीं गए।

दौलतपुरसे दो मील दूर गंगाके किनारे बक्सर नामका एक गाँव है। उसके पास ही चण्डिकाका एक प्राचीन मन्दिर है। सुखदेवजी असोथरसे रवाना होकर यहाँ आये और एक कुटीमें विरक्तवत् रहने लगे।

चण्डिकाके मंदिरसे थोड़ी दूरपर डौंड़ियाखेरा नामक एक गाँव है, उसमें मर्दनसिंह तअल्लुकेदार रहते थे। उनको रावकी उपाधि मिली थी। रावके अन्तिम वंशज बाबू रामबख्श हुए। १८५७ ई० में वे अँगरेजोंसे बागी हो गए। बक्सर ग्रामके निकट पीपलके वृक्षमें सन् १८६१ में इन्हें फाँसी दी गई।

बक्सरमें सुखदेवजीकी प्रशंसा और पंडिताई बढ़ने लगी। बहुत आदमी इनके शिष्य हो गए। राव मर्दन सिंह भी इनसे मिले और मिलकर शिष्य हो गए।

उनके लिये उन्होंने एक स्थान अपनी राजधानीमें बनवा दिया। वहीं सुखदेवजी रहने और पूजा-पाठ तथा काव्यालापमें अपना समय बिताने लगे।

डौंड़ियाखेरामें कवियोंका बड़ा आदर था। सुखदेवजी के शिष्य शम्भुनाथ त्रिपाठी भी बहुत दिनों तक डौंड़ियाखेरा में रहे थे। इन्होंने 'बैताल पंचविंशतिका' का भाषांतर और 'मुहूर्त-चिन्तामणि'का हिन्दी पद्यानुवाद किया। 'राम-विलास' नामक एक रामायणकी भी रचना की। साहित्य-शास्त्रमें सुखदेवजीके जितने शिष्य थे, उन सबमें शम्भुनाथ और जयदेव ही प्रसिद्ध हुए। भगवन्त राय खीचीके यहाँ रहनेवाले शम्भुनाथजी अपने 'रामविलास' में लिखते हैं :—

श्री गुरु कवि सुखदेव के,
चरनन ही को ध्यान।
निर्मल कविता करन को,
वहै हमारे ज्ञान॥

इससे प्रकट है कि शम्भुनाथ इनके शिष्य थे। शम्भु-नाथ डौंड़ियाखेरामें अचला सिंहके आश्रयमें और जयदेव कवि देहलीमें नवाब फ़ाज़िलअली खांके आश्रयमें बहुत दिनों तक रहे।

धीरे-धीरे सुखदेवजीकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। लोग इनके दर्शनोंके लिये आने लगे। इनके शिष्योंकी भी संख्या बढ़ती गई। अमेठीके राजा हिम्मत सिंहने भी सुख-देवजीके दर्शनकी उत्कण्ठा प्रकट की और वे अमेठी गये। वहाँ भी उनका खूब सम्मान हुआ। तबसे कुछ दिन वे डौंड़ियाखेरा तथा कुछ दिन अमेठीमें रहने लगे। हिम्मत सिंहने भी इनसे गुरु-दीक्षा ली।

डौंड़ियाखेरा छोड़कर सुखदेवजी फिर बक्सर आ गये और वहाँ पर अपनी पुरानी कुटीमें रहने लगे। इस बार

आप औरंगजेबके मन्त्री नवाब फ़ाज़िलअली खां के यहाँ रहने लगे। एक दिन दरबारमें आप बैठे थे कि बाहर नक्कारे की आवाज़ सुनाई दी। इस पर फ़ाज़िल अलीखाँने पूछा--"पण्डितजी यह क्या कह रहा है?" आपने तत्काल उत्तर दिया—

द्वार दमामे ना बजत,
कहत पुकार-पुकार।
हरि न भजें से पशु भये,
परत चाम पर मार॥

इसे सुनकर नवाब बहुत खुश हुआ। अन्तमें सुखदेव-जी मुरारिमऊ आ गये और यहाँके अधिपति राजा देवी सिंह के साथ रहने लगे। राजाने इनके लिये मकान बनवा दिये और कम्पिलासे इनके स्त्री तथा बच्चोंको भी वहाँ बुलवा दिये। सारा परिवार मिश्रजीके साथ रहने लगा। सुखदेव जीके पाँच प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। रसार्णव, वृत्त-पिङ्गल, छन्द-विचार पिङ्गल, शृंगारलता और फ़ाज़िलअली प्रकाश। डौंडियाखेराके राव मर्दन सिंहके लिये वृत्त-विचार-पिङ्गल', मुरारिमऊके राजा देवी सिंहके लिये 'शृङ्गारलता' और नवाब फ़ाज़िल अलीखाँके लिए 'फाजिल अली प्रकाश' रचा। रसार्णव में नायिका भेद व रसोंका वर्णन है। वृत्त-विचारमें वृत्तोंके लक्षण और उदाहरण हैं तथा फाज़िलअली प्रकाशमें साहित्यके समस्त अंग, काव्यके गुण, दोष, लक्षण, व्यञ्जना और अलंकार आदिका पूर्ण वर्णन है। शृङ्गारलतामें क्या है यह हम नहीं कह सकते, क्योंकि उसकी कोई भी प्रति हमारे ग्राम दौलतपुर में नहीं है।

सुखदेवजीने अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका संग्रह किया था। परन्तु खेद है, वे प्रायः सभी नष्ट हो गये।

ग्रियर्सन साहब और शिवसिंह सेंगरके मतानुसार सुखदेवजी हिन्दीके कवियोंमें आचार्य माने जाते हैं। इनकी पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। इनके ग्रन्थोंमें 'रसार्णव' की कविता बहुत ही अच्छी है। उसके कुछ पद्य हम यहाँपर उद्धृत करते हैं। जो पुस्तक हमारे सामने है, वह संवत् १८६३ की लिखी गई है। उसका आरम्भ इस प्रकार है:—

कानन दूटैं विघनके; जाननके यह ज्ञान,
कज आननकी जाति मिटि; गज आननके ध्यान।
मरदन कवि सुखदेव सों; मान्यों निपट सनेहु,
कह्यो नायिका नायकनि; बरनि ग्रंथ करि देहु।
मरदानेके हुकुमतें; मिश्र सुकवि सुखदेव,
कहत लक्ष्य लक्षण सहित; न्यारे-न्यारे भेव।

इस ग्रंथमें आप 'करुण रस' का यह उदाहरण लिखते हैं:—

जीवेको आसरो कीजै कहा;
कहूँ कोऊ जियो बिसके अवलेहमें।
भूत भयानक संग भुजंग;
रहे लगि दूलहकी सब देहमें।
मीचुहि सोंपि दई गहि बाँह;
कहा करिहै परिहै जब छेहमें।
गौरिको गौनो दियो पै बढ़ो अहै;
सोकु पर्‌यो हिमवानके गेहमें॥

"रौद्र रस" का उदाहरण आप देते हैं:—

कोटिक काटि कटारिन ही;
कटकै कुलि सूरनहूं समुहौं।
तेग शिरोहिन द्रोहिनके शिर;
काटि हरा हरके अरु झूहौं।
तौ मरदानों कहाइहौं जौ;
जमलोकको शत्रुन पंथु बुझैहौं।
बैरि बधू दृग बौरी प्रवाहमें;
आपने क्रोधको आगि बुझैहौं।

नायिका-भेद वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:—

स्वीया परकीया कही; सामान्या मन आनि,
तीनि भाँति तिय भेद ये; जान कहै सब जानि।
स्वीया कहिए आपनी; परकीयापर बाम,
सामान्या तासों कहै; जासों धन सों काम।

'मुग्धा नायिका' का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:—

लरिकाईके खेल छुटे नव नाइ:
अजों न मनोजके बान लगे।
चतुराई कछूक चढ़ी चितमें;
तरुनीनके बैन सुहान लगे।
हरिको हैं कहाँके हैं कौनके हैं;
अवसान कछू वहि तान लगे।
अब तो तिरछे चलि जान लगे;
दृग कोन लगे ललचान लगे।

पुस्तकके अन्तमें आप कहते हैं:—

यह मरदान रसारनौ, पूरो कीनो ग्रन्थ।
याके जाने जानिये, रस ग्रन्थनको पंथ॥

सुखदेवजीके वंशमें उनके प्रपौत्र शीतलादीन भी अच्छे कवि हुए। इनका जन्म संवत् १८१२ में हुआ और कविता-काल संवत् १८३२ में प्रारंभ होता है। इनका 'राधाभोग-विलास' नामक ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है। ये बीचमें अंधे हो गये थे। उनकी उस समयकी कविताके दो उदाहरण देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं। ताराजीकी प्रार्थना में उन्होंने कई कवितायें लिखी हैं, उनमेंसे दो यहां उद्धृत की जाती हैं:—

महिषासुर मारि चंडमुंडहिं पछारि,
रक्तबीजहि उजारि शम्भु मार्‌यो एक सरमें।
पकरि-पकरि भट झिटिकि-झिटिकि,
झिझकोरि-झिझकोरि केल्यो मार्‌यो भूमिधर में॥
उदित उदराट नवखण्ड महि मण्डलमें,
प्रबल प्रचण्ड देवी खड्ग लीन्हें कर में।
देव दुख दारीडक खलनकी है खारीडक,
तू सोई मातु दण्डिक विजैव लीन्हें करमें॥१॥

परम पद दानी सिद्धि निधिकी निशानी,
घट-घटमें समानी चहूँ वेदन बखानी है।
महिषासुर मारि चंडमुंडहिं बिदारि,
रक्तबीजहिं संहारि शम्भु दानवै रिसानी है॥
महा मरदानो गहे कठिन कृपानी,
कहि 'सोतल' सयानी तिहूं लोकनमें जानी है।
दादि सुनि लीजै मेरे नैन करि दीजै,
सुनि पाथर पसीजे तू तो आदि महारानी है॥२॥

मिश्रजीके वंशमें कवियोंकी परम्परा अभी चल रही है। आचार्य सुखदेव मिश्र रीतिकालके महा-कवि थे।

सभी प्रकार के विदेशी शस्त्र और कारतूस, फौजी एवं नागरिक
हर प्रकार की उपयोगी तलवारों के स्टाकिस्ट और विक्रेता
एवं
पोलो स्टिक्स, बरछे, शिकारी चाकू और पीयून डैगर्स के विशेषज्ञ
और
सुप्रसिद्ध जर्मन हवाई बन्दूक "डीआना" (बगैर लाईसेंस)
आरडोनन्स फैक्टरीकी बन्दूकों के वितरक
तथा
सभी प्रकारके शस्त्रोंकी मरम्मतके लिये शताब्दीसे प्रसिद्ध
एकमात्र प्रतिष्ठान
पूरे विवरण और मूल्यके लिये लिखिये
मैण्टन एण्ड कं० लिमिटेड
१३, ओल्ड कोर्ट हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता—१
शाखा:—सींधिया हाउस, कर्नाट सर्कस, न्यू दिल्ली।

नवयुग प्रकाशन, दिल्लीके अभिनव प्रकाशन

१. नीलकंठ—गुलशन नन्दा (सजिल्द) ६)
२. गेलार्ड— ,, ,, ५)
३. सितारोंसे आगे-,, ,, ३)
४. कंकर—हंसराज रहबर ,, ५।)
५. हम लोग— ,, ,, ३।)
६. हाथमें हाथ—,, ,, ४)
७. जिन्दगी एक दाँव – कमल शुक्ल ,, ४॥)
८. कूल और कगार— ,, ,, ३)
९. बहता तिनका—कमल जोशी ,, २)
१०. फूलोंकी माला— ,, ,, २।)
११. कवि—ताराशंकर बन्दोपाध्याय ४)
१२. रूपया, रूप और रोटा—विनोद रस्तोगी ५॥)
१३. गोपाका दान— ,, ३॥)
१४. बकवास—शौकत थानवी ४')
१५. मनोज—जनार्दन गौड़ ४।)
१६. मनके हारे हार—यादवचन्द्र जैन ४॥)
१७. अभागा—मेक्सिम गोर्की ३॥)
१८. बेकरी का मालिक—मेक्सिम गोर्की ३)
१९. भद्रलोक का नोड़—इवान तुर्गनेव ४)
२०. कुलीन घराना— ,, ३)
२१. बाप-बेटे— ,, ३॥)
२२. एक ही रास्ता—श्रीशरण २॥)
२३. रेखाएँ—गुरुवचन सिंह ४॥)
२४. युग और देवता—गुरुवचन सिंह ३)
२५. डूबती नजरें—कृपाशंकर भरद्वाज ४॥)
२६. पथका अन्त—सत्यदेव शर्मा २।)
२७. तस्वीरका फ्रेम— ,, २)
२८. विद्रोही आत्माएँ – खुशवंत सिंह २)
२९. सुबहके बादल – फेग-शुंए-फेग १॥)
३०. मुर्दे भी काम करते हैं—सागर बालपुरी १।॥)
३१. रूसकी कहानियाँ—जगन्नाथ प्रभाकर १)
३२. चीनकी कहानियाँ— ,, १)
३३. गाँव और शहर—श्रीशरण ।॥)
३४. नन्हा कवि—इन्द्रसेन सिंह 'भावुक' ॥)
३५. लिबिडो—सुभाषचन्द्र २॥)
३६. शेरशाह—सेठ गोविन्द दास २॥)
३७. षट्-दर्शन— ,, १॥)
३८. घर बने घर टूटे—रामकुमार २॥)
३९. हिन्दीकी प्रतिनिधि कहानियाँ—अज्ञेय २॥)
४० नीली चिनगारियाँ—गोर्की २॥)
४१. पत्थर और दूब—हर्षनाथ ३)
४२ भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा—
(दोनों भाग)—श्रीराम लागी १०)
४३. पत्ते गिर पड़े—शिवसागर मिश्र ३॥)
४४. जयदोल—अज्ञेय ३)

सितम्बर १९५८ के नये प्रकाशन

जमीनका टुकड़ा—प्रीतमसिंह 'पंछी' २॥)
कल्पनाके आँसू—श्रीराम शर्मा 'राम' ४॥)
सड़कके किनारे—मन्टो ३॥)
बवंडर—श्रीशरण ५॥)
युग और देवता—गुरुवचन सिंह ३)
अमन की अंगुलियाँ—कृष्णचन्द्र ३)
डगरोही—कमल शुक्ल ४)

हमारे यहांसे भारतके सभी हिन्दी प्रकाशकोंका माल उन्हींके कमीशनपर फ्री डिलेवरी प्राप्त किया जा सकता है। लायब्रेरियोंको उचित कमीशन दिया जाता है

नवयुग प्रकाशन

२८१, चावड़ी बाजार, दिल्ली।

कड़क धाँय, करि धड़ाम

श्रीराम शर्मा

इन्द्रिय सुखोंमें किसीने किसी एक वृत्तिकी प्रशंसा की है तो किसीने किसी दूसरीकी। रसनावशीभूत एक व्यक्तिने तो यहाँ तक कह डाला कि सुख है 'गम्भीर-नीर परिपूरित मत्स्य खंडे'। पर वास्तविक सुख क्या है, इसका विवेचन तो धर्मशास्त्रोंमें ही है। सुख विषय-वासनामें न होकर मनकी एक अवस्थाका नाम है और वह धन-सम्पदापर आधारित नहीं है। लेकिन शिकार जीवन और प्रकृति-प्रेमीके लिए वन्य-पशुओंके अध्ययन तथा उनकी विविध प्रक्रियाओंके गूढ़तम चिन्तनमें है। जब उत्तेजना, शिकार खेलनेमें चरम सीमापर पहुँच जाती है, तब शिकारी शिकारके पीछे समाधिस्थ-सा होकर, तन्मय हो हाथमें राइफल लिये पैरोंमें बिजली-सी भरे, सगे-सम्बन्धियोंसे परित्यक्त, साहस और सजीवता की साकार मूर्त्ति बना चलता है। उत्तेजना और आतुरताका गुरुत्व उस समय और बढ़ जाता है, जब कोई शिकारी नये प्रकारके शिकारपर पहली बार जाता है। किसीने दर्जनों बार शेर मारे हों, बघेरोंसे उसकी भेंट हुई हो और अपनी जानकी बाजी लगाकर अनेक दुःसाहसके काम किये हों; पर जब वह नये शिकारपर जाता है, तब उसकी मनोदशा बड़ी विचित्र होती है। अगर कोई जंगली भैंसे अथवा जंगली हाथीके शिकार को पहली बार जाय, तो उसकी मनोदशा उस मयपरस्त (शराबका पूजक) की-सी होती है, जो अपनी मादकता में ग़ालिबके इन शब्दोंको गुनगुनाने लगता है :—

मयपरस्तीका मज़ा जब है, कि साक़ी कह उठे ;
मयमें वह मस्ती कहाँ, जो मेरे मस्तानेमें है।

पर मयपरस्तीमें मयपरस्त अपनी सुधबुध भूल जाता है, हिमाक़तपर उसका क़ाबू नहीं रहता। लेकिन ख़तरनाक शिकारपर पहली बार जानेमें जो सतर्कता, सावधानी और साहस शिकारी दिखाता है, वे अतुलनीय होती हैं।

× × ×

कौन-सा शिकार भयानकतम है और कौन-सा रोचकतम—इस विषयपर वही शिकारी राय दे सकता है, जिसने सब प्रकारके ख़तरनाक पशुओंका शिकार किया हो। शिकारका आकर्षण और रोचकता इस बातपर निर्भर नहीं है कि कोई वन्य-पशु कितना ख़तरनाक है, वरन् इस बातपर कि उसके शिकारमें कितनी तन्मयता और उत्तेजना होती है। बंशीसे मछलियोंका शिकार, बतखोंका शिकार तथा अन्य साधारण शिकार भी कम रोचक नहीं होते। शेर या सिंहको वनराज इसीलिए कहते हैं कि उसके क्रोधपूर्ण आक्रमणके सामने कभी-कभी हाथी भी घबरा जाता है, और जब वह घायल होकर जंगलमें बिगड़ता है तथा अपने शत्रुसे बदला लेनेकी उसकी प्रवृत्ति होती है, तब वह तड़ित-ताप और असुर आतंकसे कम नहीं होता। पर अनुभवी शिकारी जानते हैं कि क्रोधित शेर या सिंह और बघेरेके आक्रमण क्रोधित भैंसे और क्रोधित हाथीके आक्रमणके सामने कुछ भी नहीं। शेर या सिंहको वनराजकी पदवी शायद इसलिए दी गई कि लोगोंने हाथी और जंगली भैंसेसे पहले इन्हींका शिकार प्रारम्भ किया। अस्तु, आधुनिक युगमें सिंह या शेरको अपने सिंहासनसे पदच्युत ही समझना चाहिए और उसपर यदि किसीको आरूढ़ करना है, तो जंगली हाथीको ही उस पदसे विभूषित करना चाहिए। जंगली भैंसेका भी अपना एक विशेष स्थान है।

प्रसिद्ध शिकारी मेजर गैबर्ट फोरनका भी यही मत है कि वे क्रोधित और घायल आक्रमणकारी सिंहका सामना करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते, पर क्रोधित आक्रमणकारी हाथीसे घबराते हैं। सिंह-जैसे क्रोधित और घायल जीवके आक्रमणका सामना अनुभवी शिकारी अपने अचूक निशानेसे कर लेते हैं, पर किसी पर्वतका एक विशालकाय खंड जंगली हाथीके रूपमें चिंघाड़कर झाड़ियों और पेड़ोंको रौंदता हुआ अपने आक्रमणकारी शिकारीपर हमला बोल दे, तो फिर आदमीके स्नायु-जाल कंपित हो जाते हैं। भारी राइफल की गोली खाकर शिकारीके ऊपर हाथी गिर भी पड़े, तो उसका कचूमर निकल जाता है। दूरसे अपनी सूँड़से मरते समय भी हाथी अगर पकड़ ले, तो उसे मार ही देता है। अतः जंगली हाथीका शिकार बड़ा ही ख़तरनाक है। मेजर फोरनका कथन है कि उनके लम्बे शिकारी जीवनमें जंगली हाथीके शिकारमें ही अत्यधिक उत्तेजना और मौतकी घड़ियाँ दिखाई पड़ीं। सिंहका शिकार अपेक्षाकृत उतना ख़तरनाक नहीं होता। सिंहोंके शिकारमें ऐसे उत्तेजनापूर्ण क्षण नहीं आते, जितना कि एक शिकारी सघन वन या लम्बी घासमें चरते हुए दँतैल हाथियोंके झुण्डमें से किसी एकका शिकार करनेमें अनुभव करता है। निस्तब्ध खड़ा होकर जब शिकारी झुण्डके सबसे विशालकाय दँतैल हाथीको चुनता है, तब उसके स्नायुओंका तनाव अत्यधिक होता है। ऐसा होता है कि शरीरके सब स्नायु खिंचकर टूटने वाले हों। पर्वताकार शिलाखंड-सा जंगली हाथी पूरी तौरसे बड़ी घासमें दिखाई नहीं पड़ते और मन्थर गतिसे वे शिकारीके आगे कुछ ही गज़ दूर गतिशील होते दिखाई पड़तेहैं। यदि शिकारीकी ओरसे किसी तरहका कोई खटका हो गया और यदि कहीं हाथियोंकी ओरसे बहने वाली वायुकी दिशा उल्टी हो गई तो बस समझ लीजिये कि शिकारीकी ओरको बरफका एवलांश ही टूट पड़ेगा। एवलांशको फिरभला रोक ही कौन सका है! हाथीके शिकारमें आवश्यकता इस बातकी है कि जिस हाथीको मारा जाय, पहले उसे चुन लिया जाय और फिर ऐसे निकटतम स्थानपर पहुँचा जाय, जहाँसे पहली गोलीमें ही सफलता मिल जाय। फिर किसी भी समय कोई भी भयंकर स्थिति पैदा हो सकती है और वह स्थिति प्रायः आक्रमणकारी हाथीके ही पक्षमें होती है। क्रोधित सिंहके आक्रमणका सामना करते हुए शिकारी के ऊपर उसके आकारका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, पर हमला करते हुए हाथीका आकार और बड़े-बड़े दाँत, उठी हुई सूँड अप्रत्यक्ष रूपसे शिकारीको अपने आपको कीड़े-मकोड़ेके बराबर समझनेको बाध्य करते हैं। सिंह तो जंगलोंमें बड़ा शानदार दिखाई पड़ता है, पर अफ्रीकी हाथी जंगलमें विनाश और मौतका साक्षात् यमदूत दिखाई देता है। मेजर फोरनने जो पहला अफ्रीकी हाथी मारा, उसकी स्मृति जीवन भर उनके हृदय पटलसे विस्मृत नहीं हुई।

अफ्रीकी जंगली हाथीके शिकारके लिए एक दिन मेजर फोरनने कीनियाके एवरडेयर पर्वतमालाके एक शृंग पर अपना डेरा जमाया। पर्वतसे नीचेकी ओर शस्य-श्यामला घाटी थी और घाटीमें एक नदी अठखेलियाँ-सी करती वह रही थी, मानों कोई देहाती युवती प्रेम कंटकित होकर मधुर स्वर-लहरीमें अपने हृदय-उद्गार निःसृत कर रही हो। उस घाटीमें मेजर फोरनने कई दिनों तक एक बड़े जंगली हाथीकी खोज की। हाथियोंके चिह्न तो बहुत मिलते थे, पर विशालकाय हाथीके चिह्न उन्हें स्पष्ट नहीं दिखाई पड़े। तीन दिनकीनिरंतर खोजके बाद जब वे अपने कैम्पमें दुरबीन लगाये घाटीका दिग्दर्शनकर रहे थे तब उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे एक पर्वत-खंड मूर्त्तिमान होकर अपने मुखमें धवल छोटे शहतीर रखे उनके कैम्पकी

ओर मानों यह चुनौती देने आरहा हो कि घाटीको विशाल करि-कलेवरसे विहीन उन्होंने कैसे समझ लिया। जिस विशालकाय हाथीकी तलाशमें मेजर फोरनने तीन दिन यों ही बिता दिये थे, वही हाथी उनके कैम्पकी ओर आता दिखाई दिया। मेजर फोरनने अपने राइफल-वाहक नौकर हैमेसीको आदेश दिया कि वह उनकी बड़ी राइफल लेकर उनके पीछे आवे और स्वयं मेजर फोरन हाथीकी ओर चल पड़े। संयोगवश अथवा किसी अप्रत्यक्ष प्रेरणासे हाथीने अपनी गतिकी दिशा बदल दी। शायद वायुमें उसे मानव गंधकी आशंका हो गई थी। कुछ ही दूर जाकर मेजर फोरन हाथीके निकट पहुँचे और उन्होंने देखा कि उनसे पचास गजकी दूरीपर एक कुंजर-कलेवर निस्तब्ध खड़ा है। अपने बड़े कान फैलाये, सूंड तनिक उठाये हुए, जो कि मेजर फोरनकी ओर संकेत कर रही है। हाथीकी छोटी-छोटी आँखोंमें मानों शंका, क्रोध, और दैत्य-रूप भरा था। हाथीका पूरा सिर तो दृष्टिगोचर था, पर उसका सम्पूर्ण विशाल कलेवर एक घनी झाड़ीके कारण अदृश्य था, क्योंकि वह उस झाड़ीके किनारे ही खड़ा था। कुछ मिनटों तक मेजर फोरन गति-शून्य खड़े रहे मानों उनको किसीने वहाँ चिपका दिया हो। राइफल-वाहक आ नहीं पाया था। सशंकित हाथी पचास गज़ पर खड़ा हुआ था। वह कभी-कभी अपनी सूंड़को एक ओरसे दूसरी ओरको मानव गंध लेनेके लिये फिराता था। हाथीको अभी पूरी तौरसे यह पता न था कि मानवी पुतला उसके इतने निकट है। उसे पहले गंध आ गई थी और उसीकी खोजमें वह सूंड इधर-उधर करता था कि आस-पास यदि मनुष्य है, तो या तो उसे नष्ट किया जाय या फिर उस गन्धसे पलायन किया जाय। थोड़ी देर बाद, हाथीने संदेह और बेचैनीके चिह्न प्रकट किये, क्योंकि उसकी सूंड़ गन्धकी खोजमें जल्दी-जल्दी इधर-उधर होने लगी। उसकी सूंड़-गतिसे मेजर फोरनके शरीर में भयका एक कम्प-सा हो गया। उनके सामने एक ही स्थिति थी—या तो मरो या मारो। मेजर फोरनने चुपचाप मरनेकी अपेक्षा कुंजर-क्रीडाको समाप्त करने की ठानी। थोड़ी ही देरमें मेजर फोरनके स्नायु सध गये और जिस प्रकार बाल-रविकी रश्मियोंसे ओसकण बिलीन होने लगते हैं उसी भाँति मेजर फोरनका डर भी बिलीन होने लगा और वे साहस तथा सजीवताकी साक्षात् मूर्त्ति बन गये। वायुको बचाकर वे हाथीकी ओर ऐसे चले जैसे कोई रेंगने वाला जीव बढ़ता हो। उन्होंने यह सावधानी बरती कि वायु हाथीकी ओरसे उनकी ओर आये, उनकी ओरसे हाथीकी ओर नहीं। रेंगकर वे बीस गज आगे बढ़े। इस प्रकार हाथी उनसे अब केवल तीस गज दूर था। वहाँ वे रुके, अपनी साँस ठीक की। फिर साँस साधकर उन्होंने हाथीके मस्तकपर निशाना लिया जहाँसे गोली सीधी हथीके दिमाग पर पहुँच जाय। पर होनहार बलवान है। घोड़ेके दबाते समय ही हाथी न जाने क्यों आगे बढ़ा और गोली उसके मस्तक पर लगनेके बजाय उसकी पूंछकी जड़में पड़ी। गोलीके लगते ही दिल दहलाने वाली चिंघाड़ हुई और हाथी अपनी कमरको झुकाये, पूंछको टाँगोंमें छिपाये चारों ओर चक्करसे काटने लगा। शीघ्र ही वह घाटीके नीचेकी ओर बेतहाशा चलने लगा और अपनी राहमें हर चीज़को तोड़ता और रौंदता जाता था। छोटे पौधे उसकी गति और वजनसे दुहरे हो टूटते जाते। शाखाएँ टूटनेकी ध्वनि ऐसी थी मानों राइफलें चल रही हों। उसके मार्गमें ध्वनियोंका कोहराम मचा था। उन्हीं ध्वनियों के सहारे मेजर फोरन हाथीके पीछे चले। थोड़ी दूर जाने पर एकदम शांति हो गई। शाखाओंका टूटना, घासका रौंदना और कड़ाके तथा फटनेके सब शब्द समाप्त हो गये मानो किसी दैवी शक्तिने वहाँ

निस्तब्धताका वातावरण खड़ा कर दिया। मेजर फोरनका प्रयास था कि वे ऐसी सुविधाजनक स्थानपर पहुँचें, जहाँसे उन्हें हाथीकी बगल दिखाई पड़ जाय और फिर वे विघातक निशान ले सकें। पर इस खेल में एक विचित्र हालत हुई वह यह कि घायल हाथीकी, बगलमें पहुँचनेकी अपेक्षा वे हाथीके ठीक सामने पहुँच गये।

हाथीने मेजर फोरनको फ़ौरन ही देख लिया और देखते ही आव गिना न ताव, उसने मेजर फोरनपर सीधा आक्रमण किया। उस उत्तेजित आक्रमणसे बचना असम्भव था। भागनेके लिए स्थान न था। घनी झाड़ियाँ और पेड़ गतिका अवरोध करते थे। शिकारका बुनियादी प्रश्न मेजर फोरनके सामने था, मरो या मारो। भागकर अगर जान बचाई जा सकती तो मेजर फोरन वैसा ही करते, पर भागना संभव ही न था। सामनेसे 'भूधराकार शरीरा' शाखों और पेड़ोंको तोड़ता मेजर फोरनकी ओर पिल पड़ा। शाखाओं और पेड़ोंको वह अपनी गतिसे ऐसे तोड़ता, जैसे आदमी तिनकोंको तोड़ता चला जाता है। बस, मेजर फोरन परमात्माका नाम लेकर डट गए और उन्होंने अपनी राइफलको हाथीकी ओर साधा। थोड़ी ही देरमें हाथी मेजर फोरनके निकट आ गया और ऐसा मालूम दिया कि या तो वह अपनी सूँड़में पकड़कर उनको भुर्ता बना देगा या चीर डालेगा या शरीर भारसे उनका हलुआ बना देगा। मेजर फोरन अपने पैतरे पर, मरो या मारो प्रवृत्तिमें खड़े थे कि इतने हीमें क्रोधित और घायल हाथी उनके ऊपर आ गया। उनको पकड़नेके लिए उसने अपनी सूँड़ आगे बढ़ाई और मेजर फोरनने अपनी राइफल उसकी आँखोंके बीच दाग दी। आशा थी कि हाथी या तो अंधा हो जायगा या मार्गसे विचलित हो जायगा जिससे मेजरफोरनको बचनेका मौका मिल जायगा। दूसरी नालकी गोली हाथीकी छाती में दाग दी। निशान दोनोंही ठीक बैठे, पर उस जीवित गतिशील शिलाखंडको रोकनेमें असमर्थ रहे। कारतूस जेबमें थे, राइफल खाली थी। मेजर फोरन एकदम पीछेकी ओर झाड़ीमें हटकर गिर गये। जैसे ही मेजर फोरन झाड़ीमें गिरे, वैसे उन्होंने दूसरी रइफलकी आवाज़ सुनी। वे समझ गए कि हैमिसी आ चुका था और उसीने गोली चढ़ाई थी। जल्दीसे मेजर फोरन उठे,किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता था। उन्होंने झटपट अपनी राइफल फिर भर ली। हाथीका दृश्य बड़ा विचित्र था। वह खड़े होनेका प्रयास करता और घुटने टेक देता। इस क्रियामें उसके दूध जैसे सफेद, बड़े और भारी दाँत ज़मीनमें घुस जाते मानों हाथी अपने क्रोधमें धरतीमाताके गर्भमें घुसनेका प्रयत्न करेता हो! असहाय और निरर्थक जीवनसे क्या लाभ। पर हाथी कोई मानव तो था नहीं। वह तो अपनी अंतिम घड़ियों तक अपने शत्रुसे भुगतनेको तैयार था। मेजर फोरन उठकर, हाथीकी बग़लसे, उसपर कारगर निशान लेना चाहते थे। जैसे ही पीछे होकर उसके दूसरी ओर जानेको हुए वैसे ही हाथी पीछेको कुछ झुका और हटा। मेजर फोरन बस बाल-बाल बचे। ठीक समयपर क़दम आगे न बढ़ पाता तो हाथीके बोझसे उनका कचूमर निकल जाता। हाथीके पिछले पैरोंसे दबकर बचना एक दैवी घटना थी। घूमकर उन्होंने हाथीके कान और आँखके बीचोंबीच निशाना लिया। पर गोली कुछ नीचे पड़ी। हाथीने फिर शक्ति सँभाली और खड़ा हो गया। यह स्पष्ट था कि हाथीके आगे बढ़ने, घुटने टेकने, पीछे हटनेकी क्रियायें उसकी कमजोरी के कारण न थीं।

मेजर फोरन दूसरा निशान लेने ही वाले थे कि उनके आतंककी सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि हैमिसी हाथीकी सूँड़में शिरांकु बना ऊपर लटक रहा

था। हैमिसीको हाथीने उसकी कमरसे पकड़ा था। दूसरी गोली जब हाथीके लगी, तब मेजर फोरन यह देखकर ज्ञान-शून्यसे हो गए कि हाथीने हैमिसीको बड़े ज़ोरसे तीस गज़ दूर फेंका। आसमानमें केन्द्रकी अर्धपरिधि-सा बनाता हैमिसी तीस गज दूरीपर इस तरह फिंका जैसे कोई क्रिकेटका खिलाड़ी गेंदको ऊपर फेंक देता है। पेड़से टकराकर हैमिसी धराशायी हुआ। मेजर फोरन हैमिसीकी ओर लपके और हाथी लड़खड़ाता-सा दूसरी ओर अवश्य हो गया। मेजर फोरनको पूरी आशंका थी कि हैमिसीका हलुआ बन गया होगा, पर पास जाकर जो देखा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह जीवित था। उसके कपड़ोंकी धज्जियाँ उड़ गई थी और वे खूनसे तरबतर थे। सिर उठाकर उसने अपनी कुहनीपर रखा और वेदनायुक्त मुस्कानसे मेजर फोरनका स्वागत किया। हैमिसीकी बातोंसे हाथीकी प्रक्रियाओंका रहस्योद्घाटन हुआ। मेजर फोरनका हाथीसे आमना-सामना होनेपर दो गोली दागने और झाड़ीमें गिरनेके समय हैमिसीने हाथीपर गोली चलाई थी और हाथीने हैमिसीको पकड़कर धरतीपर रौंदना चाहा, परन्तु यह विधिका विधान ही था कि हैमिसी उस संक्रामक स्थितिमें आ गया अन्यथा हाथी मेजर फोरनका ढेर कर देता। हाथी अपने दूसरे मानव-शत्रु हैमिसीको भुगत रहा था। हैमिसीको पकड़कर उसने नीचे गिरा दिया और अपने सिरकी चोटसे उसका मलीदा बनाना चाहता था।परकभी-कभी प्राणियोंके भयंकर हथियार ही उनके विरोधी बन जाते हैं। हाथी हैमिसीको कुचलना चाहता था, पर उसके भयंकर लम्बे दाँत इस क्रियामें बाधक थे। जब वह अपना सिर हैमिसीको मारनेको नीचे लाता तो बिशाल गजदंत जमीनमें धँस जाते। उधर हैमिसीका यही प्रयत्न रहा कि वह दोनों दाँतोंके बीच में ही रहे। हाथी कईबार झल्लाया हैमिसीको लिये-दिये सिरसे ठोकर मारनेको सिर नीचे करते ही हाथीके विशाल दाँत जमीनमें धँस जाते। हैमिसी चतुर नटकी भाँति दाँतोंके बीचमें बना रहता। हाथीके घुटनेटेकने जाने का यही कारण था, उसकी कमज़ोरी न थी। मेजर फोरनका ख़याल यही था कि शक्ति-क्षीणताके कारण हाथी उठने-बैठनेकी कोशिशमें है। उन्होंने हैमिसी और हाथीका संघर्ष देखा ही न था। उन्होंने तो फुटबालकी भाँति केवल हैमिसीको फिंकते ही देखा था। जीवनमें ऐसी अनहोनी बातें होतीं हैं कि उसका कोई तार्किक दृष्टिसे कारण नहीं बताया जा सकता। कभी-कभी प्लेटफार्मपर खड़ी रेलगाड़ी लड़ जाती है और किसी प्रेरक शक्तिसे कुछ व्यक्ति पहले ही निकल जाते हैं और मौतसे बच जाते हैं। दमयंतीको ठीक समयमें अजगर और व्याधसे दैवी शक्तिसे ही त्राण मिला था। मनुष्यके तर्क और बुद्धिसे परे कोई शक्ति है, जिसपर बहस नहीं की जा सकती। अकस्मात् घटना घट जाती है। ऐसी ही घटनासे मेजर फोरनकी जान बची और हैमिसीकी उस भयंकर परिस्थिति और फिकावसे भी ज्ञान नहीं गई। यह आश्चर्य नहीं तो क्या है? हैमिसीने मेजर फोरनको यह भी बताया कि एक बार वह गजदन्त-शुंड-बन्धनसे सरककर झाड़ीकी ओरको हुआ, पर हाथीने अपनी लचीली संडसे उसे फिर पकड़ लिया, इतने ही में मेजर फोरनकी गोली हाथीके मस्तकपर पड़ी। तब हाथीने झल्लाकर हैमिसी को दूर फेंक दिया। रक्तरंजित हैमिसी अपने खूनसे नहीं सना था, वरन् हाथीके खूनसे सराबोर था। इस प्रकार मेजर फोरनकी गोलीने भी हैमिसीको उसी तरह बचाया, जिस तरह मेजर फोरनको बचानेमें हैमिसी हाथीकी शत्रुताका केन्द्रबिन्दु बन गया था। हैमिसीकी प्राथमिक परिचर्या करके मेजर फोरन अपने पड़ावकी ओर दौड़े और वहाँसे सहायता लाकर उन्होंने उसको पड़ावपर पहुँचाया। उसकी पाँच पसलियाँ टूट गई थीं

ठाकुर दास सुरेका



आयरन फौण्ड्री लिमिटेड

१७२, जे० एन० मुखर्जी रोड,

सलकिया, हावड़ा,

फोनः—हावड़ा : २६७२--२६७३

जलपान के लिये प्रसिद्ध देशी घी से प्रस्तुत मिष्टान्नों के विक्रेता

पवित्र जलपान

को

जलपान के समय न भूलें

पवित्र जलपान

प्रो० रामरतन गुप्ता

१८१-बी०, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता ।

और इसके अतिरिक्त अनेकों खरोंचें तथा साधारण चोटें थीं। पर चोटोंसे बढ़कर 'हैदपा' (हदस, Shock) उसे अधिक लगा था।

हैमिसीकी उचित परिचर्याके उपरान्त मेजर फोरन एक दूसरे अफ्रीकीको साथ लेकर हाथीकी तलाशमें निकले। अनुभवी और असली शिकारी किसी भी खतरनाक जानवरको बिना मारे घायल अवस्थामें नहीं छोड़ता। एक तो हाथी मृतप्राय-सा हो गया था और दूसरे हाथी-दाँतका लोभ मेजर फोरनके लिए कौन कम था।

हैमिसी-हाथी-कांडके स्थानसे दो मील दूर जाकर मेजर फोरनको हाथी पड़ा दिखाई दिया। दबे पाँव पास जाकर जो देखा, तो समझमें आया कि हाथीने खड़े होनेकी चेष्टा की होगी, लड़खड़ाया होगा और फिर धड़ामसे धरती माताकी गोदमें लेट गया होगा। जिस घाटीमें निर्द्वन्द्व होकर अपने शरीरको पाल-पोसकर उसने बड़ा किया था, वह घाटी उस विशाल कुंजरको खो बैठी थी। धरती मातापर उगे पेड़ों और पौधोंको उसने खाया था। उन्हें उसने मांसके रूपमें धरती माता को भेंट कर दिया था। कुछ समय पूर्व जब उसने मेजर फोरनपर आक्रमण किया था, तब उसकी गतिसे छोटे पेड़ काँपते थे। कड़क और तड़कके साथ शाखाएँ टूटकर धराशायी हो जाती थीं। गोलियोंकी धाँय-धाँयसे उसका शरीर छिल गया था। उसके शरीरसे गोलियोंके प्रहारसे जीवात्माको बरबस निकालनेकी चेष्टा की गई थी; पर वह शक्तिपुंज हाथी अपने आखिरी दम तक लड़ा और अन्तमें शक्तिहीन होकर धड़ामसे गिर गया। मेजर फोरनने पास खड़े होकर एकटक अपने शिकारको देखा, पर घाटीका वातावरण मानों उनसे मूक भाषामें हाथीकी ओरसे कह रहा था—

तग़ाफ़ुलके आग़ोशमें सो रहे हैं,
तुम्हारे सितम और मेरी वफ़ाएँ।

वास्तवमें सितम शिकारीकी ओरसे था और अपने स्थान तथा शरीरकी रक्षा करनेका अधिकार उस घाटी के स्थायी निवासी उस कुंजरको था ही। पर शिकारमें इस दार्शनिक समीक्षाको स्थान कहाँ? इस काल्पनिक उड़ानके लिए 'मरो या मारो' की प्रवृत्तिमें कोई स्थान नहीं है।

हैमिसी बहुत जल्दी ठीक हो गया और नीरोग होकर वह मेजर फोरनके साथ शिकार-यात्राओंपर उनके साथ रहा। हैमिसी-जैसे वीर और साहसके पुतले नौकर और साथी कहाँ हैं! पर एक बार युगैन्डा में एक मस्त हाथीसे शिकारमें मेजर फोरनकी भिड़न्त हो गई। यदि हैमिसी न होता, तो मेजर फोरनकी हड्डियोंका भी पता न चलता। मेजर फोरनकी जान बचानेका श्रेय हैमिसीको फिर मिला, परन्तु इस बार वह मेजर फोरनपर निछावर हो गया। हैमिसीके बलिदानकी प्रतिक्रिया मेजर फोरनपर यह हुई कि उन्होंने जंगली हाथीका शिकार खेलना ही बन्द कर दिया।

तग़ाफ़ुल=उदासीनता; आग़ोश=गोद।



साफ़-सुथरे कपड़े पहन
सबलोग चले
खुश खुश अपने काम में
होनेको मगन।

- इनके कपड़े

ASCO

एस्को

से धुले हैं





एशियाटिक सोप कं॰ ८, रसलदौड़ी स्क्वायर ईस्ट, कलकत्ता-१

संस्कृत कवियोंका हिन्दी-काव्यपर प्रभाव

श्यामनन्दन शास्त्री

भारतकी सभी भाषाएँ संस्कृत भाषासे प्रभावित हैं। दक्षिण भारतकी भाषाओं एवं बंगलापर यह प्रभाव काफ़ी हद तक देखा जा सकता है। संस्कृत भाषाकी कुछ अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं। इसके शब्द जितने कोमल, चिक्कण, सरस, भाव-भरे और मार्मिक व्यञ्जना करनेवाले होते हैं, उतने अन्य भाषाओंके नहीं। फिर प्रत्येक शब्दके निर्माण का कुछ-न-कुछ आधार होता है। यह आधार धातुमूलक होता है। धातुओंके विभिन्न अर्थ होते हैं, अतः शब्दोंमें भिन्नार्थकी परिकल्पना स्वतः सिद्ध होती है। नई-नई विभक्तियाँ उन्हें और व्यापक बनाती हैं और प्रत्यय तथा प्रयोगसे उनका क्षेत्र बृहदतम हो जाता है। इसीलिये अन्य भाषाओंमें जहाँ कुछेक शब्द ही द्व्यर्थक होते हैं, वहाँ इसके श्लोक तो दूर समूचा महाकाव्य द्व्यर्थी एवं त्र्यर्थी होते हैं।

संस्कृत शब्दोंकी उपर्युक्त गरिमासे परिचित होकर कई एक भाषाओंने अपना शब्दकोष समृद्ध किया है, पर संस्कृत-प्रसूत होनेसे हिन्दीमें उनके समुचित उपयोगकी संभावनाएँ अधिक हैं। इसीलिए ज्यों-ज्यों इसके अन्दर संस्कृत शब्दोंका सम्यक् प्रयोग बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों इसका साहित्य अधिक प्रौढ़ एवं सशक्त होता जा रहा है। आजकी हिन्दी रचनाओंमें संस्कृत शब्दोंका जो इतना प्राधान्य दीखता है, उसका कारण यही है।

संस्कृतकी शाब्दिक गरिमासे जहाँ अन्यान्य भाषाएँ काफी प्रभावित हुई हैं, वहाँ उसकी काव्यगत महिमासे भी। पर नीचेकी पंक्तियोंमें सिर्फ हिन्दीको हम अपना विवेच्य विषय बना रहे हैं। हम यह दिखानेका यत्न करेंगे कि संस्कृत-कवियोंका हिन्दी-काव्यपर किस हद तक प्रभाव पड़ा है।

संस्कृत-कवियोंका काव्य उनकी प्रौढ़ साधनाकी उपज होता था। आजकी तरह सस्ता साहित्य-सर्जन और प्रबन्ध-रचना नहीं होता था। संस्कृत शब्दका अन्तरावगाहन करने पर तीन मौलिक खूबियाँ दीख पड़ेंगी—यथार्थकी पकड़, कल्पनाकी उड़ान और जड़-चेतनका समन्वयात्मक सामाजीकरण। यथार्थकी पकड़ उनके जीवनगत अनुभवोंकी अपेक्षा रखती थी। समष्टिके दैनंदिन जीवनका वे पूर्ण प्रकारेण उलट-पुलटकर निरीक्षण करते थे और उन विशेष क्षणोंका अपने काव्यमें निरूपण करते थे, जिनमें मनुष्यकी शाश्वत भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ अपने पूर्णावेगमें गतिशील रहती हैं। उदाहरणार्थ प्रेमी जीवनके शाश्वत भावनाओंके परिवेशमें आनेके लिये महाकवि कालिदासके मेघदूतमूका पारायण श्रेयस्कर होगा। कल्पनाकी उड़ानमें संस्कृत-कवियोंसे कोई नहीं बढ़ सकता। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए वे अलंकारोंका खुलकर प्रयोग करते हैं। उनकी काल्पनिक उड़ानें निरर्थक नहीं होतीं, बल्कि काव्यके गुणोत्कर्षमें सहायक और उसे ज्यादा प्रभावशाली बनानेवाली होती हैं। उनमें अपना निजी व्यक्तित्व भी होता है, जिनके आधारपर मुक्तक काव्य पल्लवित होता है। उनकी कल्पनाकी उड़ानें कभी-कभी सामाजिक मान्यताओंके घेरेसे बाहर जाती मालूम पड़ती हैं, पर इसका भी लक्ष्य काव्यरसकी अधिकतम परिपुष्टि ही होता है। जड़-चेतनका समन्वयात्मक सामाजीकरण उनकी तीसरी विशेषता है। प्रकृतिका जिसे सजीव रूप देखना हो; वह संस्कृत-काव्योपवनमें विहार करे। अनुभव ही नहीं होगा कि हम जड़ समाजमें आ गए हैं। संस्कृत-काव्यकी आधी मौलिकता इसी तथ्यपर निर्भर करती है।

संस्कृत-काव्यके इन गुणोंने हिन्दी-साहित्यके प्रारम्भसे ही इसके कवियोंको आकर्षित किया है और इसीलिये संस्कृत-कवियोंका व्यापक प्रभाव हिन्दी-काव्यपर दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं संस्कृत-कवियोंने मानव-जीवनके मार्मिक क्षणों की ऐसी सुन्दर काव्यात्मक अभिव्यक्तिकी है कि हिन्दी कवियोंको कोई नई अभिव्यक्ति सूझी ही नहीं है और उन्होंने उनके श्लोकोंका अविकल अनुवाद तक कर डाला है।

हिन्दी-काव्यका प्रारम्भिक विकास सही रूपमें वीरगाथा-कालसे ही शुरू होता है। इस कालके प्रमुख कवियोंमें नरपति नाल्ह उल्लेखनीय हैं। नाल्हने अपने बीसलदेव रासोमें जो ऋतु-वर्णन किया है, वह संस्कृत-साहित्यके अनलंकृत प्रकृति-वर्णनसे काफी प्रभावित है। प्रसंगानुकूल वातावरण-सृष्टिमें भी वह प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सास-बहूका एक कथन प्रसंग लीजिए—

सासू कहइ बहू घर माहे आवि।
चंदरई भोलइ गिलेसी राह।

अर्थात् सास कहती है कि ऐ बहू! घरके अन्दर चली आओ; अन्यथा चन्द्रमाके भ्रममें राहु तुम्हारे मुखको ग्रस लेगा। अब इसको महाकवि कालिदासके निम्नांकित श्लोक के भावार्थसे मिलाइये—

झटिति प्रविश गेहे मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहण समयवेला वर्तते शीत रश्मेः
तव मुख सादृश्यं वीक्ष्य नूनं स राहु-
र्ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय॥

—प्रिये! झटपट घरके अन्दर चली आओ। ग्रहणका समय है। यह तुम्हारे निष्कलंक मुखको यदि राहुने देख लिया, तो सकलंक शशिको छोड़कर निश्चय ही ग्रसने चला आएगा।

वीरगाथा-कालकी समाप्तिमें मैथिल कोकिल विद्यापति का आविर्भाव हुआ था। अपनी शृंगारी कविताओं और चुभती उक्तियोंके लिये विद्यापतिकी बड़ी ख्याति है, पर ये चुभती उक्तियाँ संस्कृत-कवियोंकी अभिव्यक्तियोंका अनुकरण भाग हैं और कहीं-कहीं तो वे पूर्णरूपेण उनके लिए ऋणी भी हैं—

तोहर वदन सम चान हो अचि नहिं,
जइओ जतन विहि देला।
कए बेरी काटि बनाओल नव कए,
तइओ तुलित नहिं भेला॥
(विद्यापति)

तस्या मुखस्यातिं मनोहरस्य,
कर्तुं न शक्तः सदृशं प्रियायाः।
अद्यापि शीतद्युति रात्मबिम्बं,
निर्माय निर्माय पुनर्भिनत्ति॥

—'उस प्रियाके अत्यन्त मनोहर मुखसे अपनी समता नहीं पा पानेके कारण ही चन्द्रमा अपने स्वरूपका बार-बार निर्माण कर भी छिन्न-भिन्न कर डालता है।' उपर्युक्त अर्थ कुछ अलग अस्तित्व भी रखता है, पर हाल कविके श्लोक 'तव मुखसादृश्यं लभते न नवेन्दुना' से उसका पूरा भाव-साम्य है।

लोचन तुलए कमल न भए सक
से जगके नहिं जाने।
से फेरि जाए नुकेलाह जल भय
पंकज निज अपमाने॥
इन्दीवरं लोचनयोस्तुलायै
निर्माय यत्नेन विधिः कदाचित्।
अतुल्यतां वीक्ष्य ततो रजांसि
निक्षिप्य चिक्षेप च पंकमध्ये॥
(महाकवि कालिदास)

—कभी ब्रह्माने उसके सुन्दर नयनोंकी तुलनाके लिये कमलका निर्माण किया, पर जब वह अत्यन्त तुच्छ साबित हुआ, तो धूलमें डाल पाँकके बीच फेंक दिया।

निर्गुण-शाखाके प्रधान-कवि संत कबीरकी साखियोंपर भी संस्कृत-साहित्यकी पूरी छाप है। कबीरदासने किसी गुरुसे शिक्षा-दीक्षा नहीं पाई थी, जैसा कि उनके कथनसे स्पष्ट है—'मसि कागद तो छुओ नहिं, कलम गही नहिं हाथ।' पर विभिन्न विद्वानोंके सत्संगके क्रममें संस्कृत-काव्यका रसानन्द उन्होंने लिया था। संस्कृत-श्लोकोंके भाव उन्हें कंठस्थ-से हो गए थे और उन्होंने अपनी साखियोंमें पूरा-का-पूरा उतार डाला। उदाहरणके लिए—

सब बन तो चन्दन नहीं,
सूरोंका दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं,
यों साधु जग माँहिं॥

—शैले-शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो नहिं सर्वत्र चन्दनं न वने-वने॥

अर्थात् न हर पर्वतमें मणि-माणिक्य मिलते हैं, न हर हाथीमें गजमुक्ता, न हर वनमें चन्दन ही। इसी प्रकार संसारमें हर जगह साधु नहीं मिलते।
(बाल्मीकि)

वृक्ष कबहुं न फल भखै,
नदी न संचै नीर।
परमारथके कारने,
साधुन धरा शरीर॥

यह साखी कविवर देवेश्वरके सुप्रसिद्ध श्लोकका भावानुवाद है, जो संस्कृत-समाजमें बहुश्रुत होनेके कारण एक सूक्ति ही बन गया है। श्लोक इस प्रकार है—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।

नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहाः,
परोपकाराय सतो विभूतयः ॥

अर्थात् नदियाँ कभी अपना स्वयं जल नहीं पीतीं, न वृक्ष अपना फल स्वयं ही खाते हैं, न मेघ निजोत्पन्न शस्यादिको। सज्जन पुरुषोंका शरीर ही परोपकारके लिए हुआ करता है।

सब धरती कागद करूँ,
सब लेखनी बनराय।
सात समुंदरकी मसि करूँ,
गुरु-गुन लिखा न जाय ॥

यह शंकराचार्यके सुप्रसिद्ध श्लोकका अनुवाद है, जिसकी भाव-छाया न केवल कबीरने ही अपितु सूर और तुलसीने भी अपनायी है। श्लोक यह है—

असित गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धु पात्रे।
सुरवरतरुशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी ॥

अर्थात् सागर ही मसिपात्र हो और उसमें ये काले-काले पहाड़ स्याहीकी नाईं घोल दिये जाएँ, कल्पवृक्षकी सारी शाखाएँ लेखनी बना दी जाए एवं स्वयं ही धरती लेखन-पत्र बन जाए, तो भी गुरु-महिमा अंकित नहीं हो सकती।

प्रेममार्गी सूफी-काव्यधाराके प्रमुख कवि जायसीपर संस्कृत श्लोकोंकी भावराशिका असर पड़ा था। 'पद्मावतका' नागमती-विरह-वर्णन विप्रलम्भ शृंगारका छलकता प्याला ही है। नागमतीके मुखसे जितनी चुभती विरदोक्तियाँ निकलती हैं, उनपर संस्कृत विरह-वर्णनकी शैलीकी छाप स्पष्टतया देखी जा सकती है। एक अति प्रसिद्ध उक्तिका दमयन्तीके विरह-वर्णनके प्रसंगमें आए श्रीहर्षके श्लोकसे भावसाम्य भी देखा जा सकता है। डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार जायसी एवं श्रीहर्ष दोनोंने उक्त भाव लोकगीतोंसे लिया होगा, पर सब यह नहीं मानते। विरह-वर्णनके अन्दर बारहमासाके प्रसंगमें कई आर्य-पर्वोंका संकेत मिलता है। उससे स्पष्ट है कि जायसीने 'पद्मावत' लिखनेके पहले जहाँ हिन्दुओंकी प्रचलित कथाओंसे तत्व लेकर अपने प्रेम-कथानक का निर्माण किया था, वहाँ उनकी सामाजिक प्रवृत्तियोंका भी अध्ययन किया था—

यह तन जारौं छार ह्वै,
कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै,
कंत धरै जिहि पाँव ॥

श्री हर्षके अन्दर यह भावना तो है ही, बल्कि कुछ और भी है। उक्त श्लोकसे श्री हर्षका कवित्व और पाण्डित्व दोनों ही स्फुरित हो रहे हैं—

न काकुवाक्यैरतिवामगर्जं,
द्विषत्सु याचे पवनं तु दक्षिणम्।
दिशाऽपि भद्रास्म किरत्वयं तया,
प्रियो यया वैरविधिर्वधावधिः ॥

—मुझे विरही जनोंके शत्रु चन्द्रमेघादिसे कुछ विशेष नहीं कहना है, बल्कि मैं तो दक्षिणी पवनसे ही याचना करूँगी कि वह मेरे भस्मको उसी दिशामें उड़ादे, जिस दिशामें मेरा प्रियतम निवास करता है। माना कि वसन्तका एक अंग होनेसे यह भी विरही जनोंका शत्रु ही है, पर शत्रुता तो शत्रुके मरने तक ही रहती है।

सूरदासके पदोंपर भी संस्कृत-कवियोंका प्रभाव स्पष्ट है। सूरने अपनी प्रतिभासे जहाँ मौलिक कल्पनाएँ पेश कीं, वहाँ संस्कृत-कवियोंकी कल्पनाका भी अपने पदोंमें झलकर प्रयोग किया। नवीन प्रमाणोंके आधारपर प्रमाणित है कि सूर जन्मान्ध नहीं थे और सूरदास होनेके पहले तक उन्होंने वैष्णव-साहित्यका अध्ययन अवश्य किया होगा। सूरदासका एक लघु पद है—

चरणकमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे अंधेको सब कुछ दरसाई ॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बंदौं तेहि पाई ॥

यहाँ सूरके करुणामय स्वामी निश्चय ही श्रीकृष्ण हैं। उक्त पदमें निम्नांकित संस्कृत श्लोककी भाव-छाया स्पष्टतया देखी जा सकती है—

मूकं करोति वाचालं,
पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे,
परमानन्द माधवम् ॥

—जो गूंगेको वाचाल बना देते हैं और जिनकी कृपासे लंगड़ा भी पर्वत पार कर जाता है, उस परमानन्द श्रीकृष्णकी मैं बार-बार वन्दना करता हूं।

सूरके बाद अष्टछापके सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि नन्ददास भी काफी प्रभावित दीखते हैं। उनका 'भ्रमरगीत' हिन्दी-साहित्यमें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसकी गोपियों

का चुभता शास्त्रीय तर्क प्रौढ़-रसिक पाठकोंको झुमाए बिना नहीं रहता। पर उनमें से कई एकके लिए वे संस्कृत-कवियोंके आभारी हैं। एक ही पद लीजिए। गोपियोंके प्रेमपरख तर्कोंसे परास्त उद्धव सोच रहे हैं—

कैसे होहुँ द्रुमलता बेलि बल्ली बन माँही।
आवत जात सुभाय परै मो पै परिछाँही॥
सोउ मेरे बस नहिं जो कछु करौं उपाय।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह बर माँगौं जाय॥
कृपाकरि देहु जू!

अब निम्नांकित संस्कृत-श्लोककी भावराशिपर दृष्टिपात कीजिए—

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्याम्,
वृन्दावनने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं हित्वा,
भेजे मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

अर्थात् मैं किसी प्रकार वृन्दावनके लता-गुल्म तरुओंमें-से कुछ भी हो जाऊँ, जिससे इन गोपियों—जिन्होंने अपने प्रियजनोंका त्यागकर और सामजिक रूढ़ियोंका तिरस्कारकर श्रुतियोंके भी चरम लक्ष्य श्रीमाधवसे अनुराग किया—के चरणोंकी धूल मुझपर पड़ सके।

तुलसीदासपर संस्कृत-कवियोंका सर्वाधिक प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। तुलसीदास संस्कृतके प्रकांड-पंडित थे। उनका अध्ययन विशाल था। संस्कृत भाषामें काव्य रचनेकी शक्ति भी उनमें पर्याप्त थी। 'रामचरितमानसके' हरेक काण्ड के प्रारम्भमें दिए गए स्तुतिपरक संस्कृत-श्लोकोंसे यह काफी स्पष्ट भी है। मानसके अन्दर संस्कृत-कवियोंके भाव-भरे श्लोकोंका उन्होंने जस-का-तस अनुवाद कर डाला है।

उदाहरणार्थः—

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि मन-अभिलाषु तुम्हार॥
(तुलसीदास)

लौकिकानां हि साधूनामर्थवागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराधानां वाचमर्थोऽनुधावति॥
(उत्तर रामचरितम्)

अर्थात् लौकिक साधु जैसा देखते हैं वैसा कहते हैं, पर प्राचीन ऋषि तो जैसा कहते थे, वैसा ही हो जाता था। उनकी वाणीका अर्थ स्वयं अनुधावन करता था।

मातु समीप कहत सकुचाहीं,
बोले समउ समुझि मनमाहीं।
राजकुमारी सिखावन सुनहू,
आन भाँति जनि कछु गुनहू॥
(रामचरितमानस)

मातुः समीपे गदितुं च क्षमः
विचार्य चित्ते भगवानुवाचह।
शिक्षां मदीयां शृणु राजकन्यके
न ज्ञान्यथा त्वं हृदये स्म मन्यथा॥
(मार्कण्ड संहिता)

—श्रीराम माँके सामने ही कुछ कहनेमें अत्यन्त सकुचा रहे हैं, फिर भी मनमें विचारकर यों बोले—राजकुमार! मैं कुछ बातें करता हूं, सुनना और उनपर विचार करना। कुछ दूसरा विचार मनमें नहीं लाना।

बनहित कोलकिरातकिसोरी,
रचि विरंचि विषयसुखभोरी।
पादनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ,
तिन्हहिं कलेसुन कानन काऊ॥
(रामचरितमानस)

विनिर्मिताः कोलकिरातकन्याः
पितामहेनैव रसैर्विहीनाः।
कठोरशीला इव वज्रकीटा,
अदुः खिताः काननवासहेतोः॥
(पुलस्त्य रामायण)

—जंगलोंमें सुख-दुखसे निर्द्वन्द्व होकर निवास करनेके लिये ब्रह्माने स्वयं पत्थर जैसे कठोर स्वभाववाली भील कन्याओंकी सृष्टिकी है, जिन्हें भोगों और कामादि विषय-सुखोंसे कोई सीधा सरोकार नहीं होता।

यह संक्षेपमें दिखलाया गया। यों तुलसीपर संस्कृत-कवियोंका प्रभाव किस हद तक पड़ा-जाननेकी दृष्टिसे अनुसंधान किया जाए, तो 'रामचरितमानस' की एक चौथाई संस्कृत श्लोकोंकी अनुवाद मात्र होगी। यह मैंने यों ही नहीं कहा है। सिर्फ अयोध्या-कांडमें ही कोई सवा सौ संस्कृत श्लोकोंका अनुवाद उन्होंने कर डाला है। अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि समूची रामायणमें कितना अंश संस्कृत-कवियोंका होगा। 'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायण निगदितुं क्वचिदन्यतोऽपि।' लिखकर उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है।

तुलसीदासकी तरह बिहारीपर भी संस्कृत-कवियोंका काफी प्रभाव पड़ा। रीतिकालीन रससिद्ध कवियोंमें 'नावक के तीर' के अधिकारीका स्थान सर्वोच्च है। 'सतसई' के एक-एक दोहेमें भावोंकी जो सुकुमारता, भाषाकी प्रांजलता एवं कल्पनाकी ऊँची उड़ान है, उससे साहित्य-रसिक परिचित हैं। पर एक छोटे-से-छोटे दोहेमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव भर देना, मार्मिक रस-व्यंजना करना एवं कल्पनाकी ऊँची उड़ानें भरना बिहारीने संस्कृत-कवियोंसे सीखा था। उनकी समास-शैलीमें उपर्युक्त चीजें कूट-कूटकर भरी होती थीं। ऐसा लगता है कि सतसइयाके दोहरोंको लिखनेके पहले कविवरने संस्कृत-काव्य का कसकर अनुशीलन किया था और उक्त गुणोंको बड़े यत्नसे अपनी कवितामें पचा डाला था। जैसे—

सखी सिखावति मान-बिधि,
सैननि बरजति बाल।
हरुए कहि मो हीय में;
सदा बिहारी लाल॥

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते,
मानं धूत्य धृतिं दधानऋजुनां दूरीकुरु प्रेयसि।
सख्येवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीताऽनना,
नीचैः शंसहृदि स्थितो हि ननुमे प्राणेश्वर श्रोष्यति॥

अर्थात्, भोली ? क्या इसी भोलेपनके साथ अपना सारा जीवन बिता दोगी ? अरी ! कुछ मान भी कर, कुछ धैर्य भी धर, अपने प्रियके प्रति झुकनेकी भावना तो दूर कर ! इसी प्रकार सखी द्वारा मान करनेके लिये सिखाई जाती प्रेयसीने भयाक्रान्त होकर कहा—चुप, धीरे बोल, नहीं तो छातीके भीतर बैठा प्राणेश्वर निश्चय ही सुन लेगा।

इसी तरहः—

तूँ रहिहौं ही सखि लखौं चढ़ि न अटाबलि बाल।
सबहु बिनु ससि ही उदै दीजतु अरघु अकाल॥

वाले दोहेकी भावनाका उपयोग किया है। इसी प्रकारः—

औंधाई सीसी सुलखि,
बिरह बरति बिललाय।
बीचहि सूखि गुलाबगो,
छींटो छुई न गात॥

बिहारीकी यह अतिशयोक्ति विरह-वर्णनकी उत्कृष्टता के कारण अस्वाभाविक होती हुई भी काफी आनन्दकर है। पर इसमें भी हर्षके निम्नांकित श्लोककी भावनाका उपयोग किया गया है।

स्मरहुताशनदीपितया तया
बहु मुहुः सरसं सरसीरुहम्।
श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम्॥

अर्थात् काम ज्वरसे संतप्त दमयन्तीकी तापशान्तिके लिये सखियाँ सरस नीलकमलोंको लाती थीं, पर जब तक वे उसके शरीरसे स्पर्श कराती थीं कि बीच ही उसकी जलती साँसोंकी हवा लगनेसे वे झुलस जाते थे।

बिहारीमें एक खूबी है। वे भावोंको अपनाते तो हैं, पर उनमें कुछ अपनी भी मिला देते हैं। इससे एक चमत्कार-सा आ जाता है। उदाहरणके लिये एक ही श्लोक पर्याप्त होगा।

नैंक उतै उठि बैठिये कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जात नह-दी छनकु महदी सूकन देहु॥

इसके भाव निम्नाङ्कित-संस्कृत श्लोकसे लिये गये हैं—

सुभग व्यजनाविचालनशिथिल भुजाभूदियं व्यस्याऽपि।
उद्वर्त्तनं न सख्याः समाप्यते किञ्चदपगच्छ॥

अर्थात् 'सुभग ! मेरी सखी पंखा झलती-झलती थक गयी है, भुजाएं भर आयी हैं पर सखीका (नायककी पत्नी का) उबटन समाप्त ही नहीं हो रहा है। जरा दूर चले जाएँ।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोहेमें बिहारीने निम्नाङ्कित संस्कृत-श्लोकके सारे भावोंको तो पचाया ही है, कुछ और भी जोड़ दिया है और अनुप्रासका योग भी दिखला दिया है। ऋतु-वर्णनोंमें बिहारी पर संस्कृत-कवियोंका प्रभाव स्पष्ट है। शिशिरका ही वर्णन देखिये—

तपन तेज तापन-तपन तूल तुलाई माँह।
सिसिर-सीत क्यों हूं न घटै बिन लपटे तिय नाह॥

अब इसी भावका निम्नाङ्कित श्लोक हैः—

कार्यासंस्कृतकूर्पासशतैरपि न शाम्यति।
शीतं शातोदरीपीनवक्षोजालिङ्गनं विना॥

अर्थात् रूईसे बनी सैकड़ों रजाइयोंके ओढ़नेपर भी शीत शांत नहीं होता, जब क्षीण कटि एवं पीन स्तनोंवाली नायिकाका आलिंगन प्राप्य न हो।

रीतिकालीन अन्यान्य कवियोंको भी बिहारीकी तरह संस्कृत-कवियों द्वारा काफी प्रभावित पाएँगे। वैसा होनेका

मूल कारण तत्कालीन हिन्दीकी काव्य-प्रवृत्तियाँ ही हैं। मम्मट, रुद्रट, भामह एवं मल्लट आदिसे संस्कृत काव्योंमें आचार्यत्व, काव्यालोचनाके सिद्धान्तोंके प्रतिपादन एवं अलंकार-ग्रन्थोंके प्रणयनकी जो परम्परा चली आ रही थी, उससे रीतिकालीन कवि काफी प्रभावित हुए और उनमें अलंकार-ग्रन्थ लिखकर आचार्यत्व लेनेके लिये होड़-सी मच गयी। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये संस्कृतके काव्याचार्योंका अनुशीलन अत्यावश्यक था। सिद्धांत ग्रन्थोंके अनुशीलनके समय जहाँ उन्होंने प्रकारका ग्रहण किया, वहाँ संस्कृत-काव्योंके भावोंका भी अपहरण किया और उनका व्यवहार विशेषकर अलंकारोंके उदाहरण देनेमें किया।

ऊपर जो कुछ दिखलाया गया, वह वीरगाथा काल, भक्तिकाल एवं रीतिकालसे सम्बन्धित था। इसके बाद आधुनिक काल शुरू होता है। खड़ी बोलीके कवियोंपर भी संस्कृत-कवियोंका पूरा प्रभाव पड़ा। भारतेन्दुसे लेकर श्रीधर पाठक तक हिन्दी-काव्यमें यत्र-तत्र जो प्रकृति-वर्णन आए हैं, उनपर संस्कृत प्रकृति-चित्रणका पूर्ण प्रभाव है। बादमें हरिऔध-काव्यमें यह प्रभाव अपनी चरमसिद्धि दिखला गया। 'प्रियप्रवास'के अधिकांश पद्य ऐसे हैं कि बस विभक्तियोंका व्यवहार नहीं दीखता, नहीं तो वे संस्कृतके श्लोक ही हो गये हैं। हरिऔधने हिन्दी-छन्दोंको छोड़कर संस्कृत-छन्दोंका जो व्यवहार किया, वह भी ध्यान देने योग्य हैं। संस्कृतके छन्दोंमें तुककी स्वतंत्रता और भावोंके संवेदनकी अपूर्व शक्ति है। उनकी संगीतमयता श्रावकोंपर जादूका काम करती है। हरिऔध-काव्यके एक हद तक प्रभावित होनेका यही कारण था। नख-शिख वर्णन यद्यपि हरिऔध ने संस्कृत-कवियोंके द्वारा सम्पादित नख-शिख-वर्णनों जैसा नहीं किया। क्रमबद्धताका उनमें अभाव है, पर प्रकार वही है, जो संस्कृत-कवियोंका है।

हरिऔधके बाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरणमें अब भी संस्कृत कवियोंका प्रभाव यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। संस्कृतकी कई सूक्तियोंका 'साकेत', 'यशोधरा' और 'कुणाल' गीत'में उन्होंने खुलकर उपयोग किया है। साकेतके प्रथम सर्गके प्रारम्भ में ही उर्मिलाके प्रति लक्ष्मण द्वारा कही गई यह उक्ति गुप्त जी की मौलिक उद्भावना मानी जाती है—

नाकका मोती अधरकी कांति से,
बीज दाडिमका समझकर भ्रांति से।
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है॥

पर कविवर गोविन्दराजके श्लोकमें कुछ ऐसी ही संश्लिष्ट कल्पना मिलती है। संभव है गुप्तजीका उस पर ध्यान न गया हो, पर प्रकाशनका प्रथम श्रेय तो गोविन्दराज को ही मिलेगा।

दन्तालिदाडिमीबीज भसणोत्कण्ठचेतसः।
मन्ये मारशुकस्येयं नासा चञ्चूर्विराजते॥

लगता है यह नासिका नहीं लोहित बिम्बाधरोंकी प्रभा से रक्तवर्ण हुए दन्तपंक्ति रूपी अनारबीजोंको खानेके लिये उत्कण्ठित कामरूपी सुग्गेकी चोंच ही है।

उनके खण्ड काव्य शकुन्तलामें प्रकारान्तरसे कालिदास की ही सारी भावनाएँ संजोई हुई हैं। प्रसंगानुकूल पात्रों के मुखसे वही कहलवाते हैं, जो कालिदासने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कहलाया है। उदाहरणके लिये शकुन्तलाको विदाईके समय कण्वके मुखसे "शुश्रूषस्व गुरुन कुरू" यह श्लोक निकलवाया है, जिसका "गुरुओंका सम्मान सहित शुश्रूषा करियो।" आदिके रूपमें गुप्तजीने अनुवाद-प्रकाशन किया है। गुप्तजी की लेखनीसे कालिदासकी भावनाएँ तो सुरक्षित रह सकीं, पर माधुर्य सुरक्षित न रह सका।

छायावादी एवं रहस्यवादी हिन्दी कवियोंपर संस्कृत शब्दोंका व्यावहारिक प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। पंतने संस्कृतके कोमल, मसृण, भाव-भेद शब्दोंका अपनी कविताओंमें खूब प्रयोग किया है। उनके प्रकृति-चित्रणमें जो तमन्वयता दीखती है, वह भी शेली, कीट्ससे न आकर कालिदाससे आया है। शेली, कीट्सने उन्हें प्रकृति-चित्रों में विभिन्न विचार संभावनाओंकी प्रेरणा भले ही दी हो। 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्ण-किरण' में वैदिक विचारधाराका प्रवाह पूर्णरूपेण दीखता है। 'द्वा सुपर्णा सयुजाः सखाया' आदि वैदिक अंगोंका स्वर्णधूलिकी कईएक कविताओंमें उन्होंने अपनी व्याख्याके साथ भावानुवाद तक कर डाला है। 'जननी-जन्मभूमि प्रिय अपनी स्वर्गादपि चिर गरीयसी' आदिमें संस्कृत सूक्तियोंका प्रभाव पूरी तरह परिलक्षित होता है। नारी-रूप वर्णनमें पंतकी मौलिकता अवश्य सराहनीय है, फिर भी संस्कृत-कवियोंके प्रभावसे वे नहीं मुक्त हो सके। 'कान तक खिंचे अजान नयन' संस्कृत-कवियों द्वारा

प्रयुक्त 'आयतदृग' एवं 'कर्ण-स्पर्शी नयन' का अनुवाद मात्र है।

रहस्यवाद एवं छायावादके विकासमें संस्कृत-काव्य किस हद तक सहायक हुआ है, यह प्रसाद-काव्यके अनुशीलन तथा 'काव्य-कला एवं अन्य निबन्ध' में उनके 'छायावाद' शीर्षक लेखके सूक्ष्मावलोक स्पष्ट होता है। संस्कृत शब्दोंका प्रसादने खूब उपयोग किया और उनके दर्शनके आधार पर अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार की। संस्कृत कवियोंकी उपमाओंसे वे भी अछूता न रह सके। एक-दो ही जगह का प्रसंग कहना हूँ। श्रद्धा सर्गमें कविने मनु द्वारा श्रद्धा के रूपावलोकनके क्रममें उनके बिम्बाधरोंका वर्णन निम्न प्रकारसे किया है। 'प्रभाकी एक किरण अम्लान-रक्त किस-लय पर ले विश्राम।' पर इसका प्रेरणा स्रोत कालिदास का वह सुप्रसिद्ध श्लोक है, जो उन्होंने 'कुमारसंभवम्' में पार्वती के अधरोंके सौन्दर्य और स्मृतिकी गरिमाके प्रकाशनमें लिखा है--'पुष्पं प्रवालोपिहितंयदिस्यात्'। यहाँ रक्त पल्लवपर श्वेत कुसुमके विक्षेपकी कल्पना की गई है, जब कि प्रसादने रक्त पल्लवपर श्वेत किरनकी कल्पना की है। इसी प्रकार अजात-शत्रु नाटकमें उदयन प्रेयसी मागन्धीका यह विरह गान। 'अलिने भला क्यों अवहेलना की' कालिदासके अभिज्ञान-शाकुन्तलमके 'अभिनव मधुलोभभावितस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् कमलवसतिमागनिर्वृत्तो मधुकर! विस्मृतोऽसि एनां कथम्?' से प्रेरणा प्राप्त है। निरालाजीके साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। 'रामकी शक्ति-पूजा' में तो संस्कृतके शब्दोंका इतना प्राधान्य है कि हद हो गयी है। 'तुलसी-दास' पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा कि प्रकृतिमें रत्नाके स्वरूप दर्शनकी तुलसीदासकी जिस प्रवृत्तिका कविने उद्घाटन किया है उसके अन्दरभी, उसके संस्कृत-ज्ञानका संस्कार ही काम कर रहा है।

इतना ही नहीं, हाल ही में प्रकाशित डा०, रामानन्द तिवारी शास्त्री 'भारती नंदन' के महाकाव्य 'पार्वती' पर भी कालिदासका पूरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कविने अपने महाकाव्यगत सौंदर्यकी रक्षाके लिए कविकुल गुरु कालिदासके कुमारसंभवमके कई एक श्लोकोंका सीधा भावा-नुवाद तक कर डाला है। दो श्लोक ही उदाहरणार्थ पूरे होंगे।

पुनर्गृहीतुं नियमस्थया तया
द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलास चेष्टितं
विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च॥
कृताभिषेकां हुतजातवेदसं
त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्
न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते॥

पुनः लेनेके लिये साधनाके पथपर अग्रसर होती पार्वतीने दोको अपनी दो चीजें सौंप दी थीं—कोमल लताओंको अपनी विलास चेष्टाएँ और हरिणियोंको अपनी तिरछी चितवन। स्नानादि करनेके पश्चात् पार्वती होमादि के लिये अग्नि प्रज्वलित करती थी। वह वल्कल ही उसका उत्तरीय था। वह मन्द-मन्द मंत्रोंका पाठ करती थीं। इस रूपमें उसके दर्शनोंके लिये बड़े-बड़े पुण्यात्मा ऋषि-महर्षि आते थे। कारण धर्मसे श्रेष्ठमें यह नहीं देखा जाता है कि वे किस उम्रके हैं।

इन्हीं दोनों श्लोकोंकी भावानुकृति 'पार्वती' की पंक्तियों में देखिये—

संयमित थे नियमशिलाके सभी व्यवहार,
वचन, दर्शन और गति सब नियमके अनुसार।
वचन सखियोंको लताओंको विलोल विलास,
हरिणियोंको चल विलोचनके दियेकर न्यास॥
तपः शीला पार्वतीके पुण्य-दर्शन हेतु,
सिद्ध ऋषि-मुनि आदि आते धर्म-सागर-सेतु।
अपेक्षा करता न नयमें वर्ण वयकी धर्म,
एक शुद्धाचार ही है धर्मका शुचि मर्म॥

हिन्दी-काव्यपर पड़े प्रभावके विषयमें यहां कुछ उदाहरण दिये गये। तथ्य यह है कि पंडितराज जगन्नाथके बाद एक दीर्घकालसे पूर्ण प्रगतिशील न रहते हुए भी यह प्रौढ़त्वकी सीमाओंको अतिक्रांत हुए हैं। संस्कृत-काव्यमें कुछ ऐसी खूबियाँ हैं, जिनका अनुकरण हमारे काव्यको सशक्त और समृद्धि बना सकता है, कुछ नई दिशा प्रदान कर सकता है।



जीवन-दीप

अजित नारायण सिंह "तोमर"

जीवन-दीपक बुझा हमारा, पर जगमे शत दीप जलाये।
छाया आँखों तले अंधेरा, कोटि नयन लख नभ मुसकाये॥

अरमानोंका महल ढहा तब,
टूटा, स्वर्णिम था जो सपना।
तिमिर-तोममय जीवन-निशिमें,
विकल हेरता पथमें अपना।

काश! जगत्के कोटि दीप बल मेरी राह बता तो जाये।
क्रूर नियतिके वक्र-लेखको मोरी मेरी मति पढ़ पाये॥

बाहर-बाहर है प्रकाश, पर
अन्तर-तटपर पर्दा डाला।

चकाचौंधमय इस दुनियाके,
दिलको देखो, कितना काला?

बाहर दीप जलाये, तब, जब अन्तरका जग दीप जला ले।
इस अंधेर नगरीकी भगवन, ज्ञान-दीप-बाती उकसा दे॥

बीती, जो मुझपर बीतीं वें,
बीतें जगपर वे न बलायें।
छायीं जो मुझपर छाया-सी,
जगपर छायें वे न घटायें।

मेरे नयन-नीरसे छनकर बहें जगतकी कटु-विपदायें।
मेरा दीपक बुझा, बुझे, पर जग नव-जीवन-दीप जलाये॥



विशुद्ध प्राकृतिक वनस्पति तेलों द्वारा प्रस्तुत तथा भारतीय इत्रों द्वारा सुवासित
—: समस्त ऋतुओंमें उपयोगी सौंदर्य प्रसाधन :—
मा ड ल सो प क म्प नी
५५, कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता-१

पुत्र-जन्मोत्सवके राजस्थानी लोकगीत

म्हारे वीरैजी रे बेटो जायो

जुगमन्दिर तायल

लोकगीत देशकी आत्माके परिचायक हैं। गीत गाना मनुष्यके लिये स्वाभाविक है, वह सुखमें भी गाता है और दुखमें भी। मनुष्यके गाये गीतोंमें लोकगीत उसके हृदयकी भावनाओंके सबसे निकट है। इसमें मनुष्य-हृदय अपने तीव्रतम और निश्छल रूपमें अभिव्यंजित होता है। कोई कलम इन्हें लेखबद्ध नहीं करती, कोई संग्रहालय इन्हें सुरक्षित नहीं रखता, फिर भी ये अमर हैं। कालका विनाशकारी प्रभाव इनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

राजस्थानी लोकगीतोंमें पुत्र-जन्मोत्सवपर गाये जानेवाले गीतोंका विशेष महत्त्व है। ये 'हालरौ' कहलाते हैं। हिन्दी-क्षेत्रमें इस अवसरपर 'सोहर' गाये जाते हैं। गृहस्थ-जीवनमें पुत्र-जन्मोत्सव कितने महत्त्वका अवसर है, कितना हर्ष उस समय होता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। बाँझ स्त्रीका कितना अपमान होता है, यह सब जानते हैं। सामाजिक जीवनमें उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रहती। उसके व्यक्तित्वमें एक प्रकारका ग्रहण लग जाता है। समाज उसकी छायासे भी दूर रहना पसन्द करता है। एक लोकगीतमें बाँझकी इस व्यथाका चित्र अंकित किया गया है—

बाग तमासे धण गयी,
मा मोरी, सूक्या अक होद तालाब, कूँजा मरवा केवड़ा।
सहर तमासे धण गयी,
मा मोरी, बैठ्या अक महाजन लोग, हाट्यौं रा ताला ढकलिया।
सुसरेजी री पोलयाँ धण गयी,
मा मोरी, बैठ्या अक डोढ़ीवान, हाथ पकड़ बाहर करी,
मारूजी री सेज्यौं धण गयी,
मा मोरी, सूत्या अक भवर सुजाण, मुखपर डुपटो रालियो।
कूण सुणेगो बीनती,
मा मोरी, कुण्यां आगे करूँ पुकार, कूखड़ली बैरण हुई।

बाँझ स्त्रीका कहीं सम्मान नहीं होता। उसका जीवन भार हो उठा है। उसके व्यक्तित्वको अशुभने ग्रस लिया है। वह बाग गयी, तो उसकी छायासे ही तालाब, कुंज और केवड़े सूख गये। वह तमाशा देखने शहर गयी, तो उसे देखकर महाजनोंने अशुभकी आशंकासे अपनी दूकानें बन्द कर ली। वह अपनी ससुराल गयी, तो दरबानने उसे बाहर निकाल दिया। और चरम सीमा यह है कि स्वयं उसके पति ने भी उसे देखकर मुँहपर दुपट्टा रख लिया। कितना अपमान है, साथ ही कितनी व्यथा भी है। उसकी प्रार्थना कौन सुनेगा? किससे वह प्रार्थना करे? उसकी कोख ही उसकी शत्रु हो गयी है।

पर एक दिन जब उसकी कोख सौभाग्यशालिनी हो जाती है, तो समस्त स्थिति परिवर्तित हो जाती है। अब उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व शुभ और मंगलमय हो उठता है। उसी लोकगीतमें अबकी स्थितिका चित्रण है—

बाग तमासे धण गयी,
मा मोरी, भरिया अक होद तलाब, पाक्या कूँजा केवड़ा।
सुसरेजी री पोलयाँ धण गयी,
मा मोरी, बैठ्या अक डोढ़ीवान, हाथ पकड़ भीतर करी।
मारूजी री सेज्यौं धण गयी,
मा मोरी, सूत्या अक भवर सुजाण, हाथ पकड़ बैठ्या लयी।
राम सुणी मोरी बीनती,
मो मोरी, वेह माता सुनी पुकार, कूखड़ली सावल हुसी।

—रामने बाँझकी विनती सुन ली है। उसकी कोख सौभाग्यशालिनी हुई है। उसने पुत्र-रत्न जन्म दिया है। अब उसके बाग जानेपर सूखे तालाब भर जाते हैं, सूखे कुंज हरे हो जाते हैं। ससुरालका दरबान उसे हाथ पकड़कर बाहर करनेके स्थानपर भीतर कर लेता है। उसका पति मुँह छुपाने के बदले उसे प्रेमसे पास बैठा लेता है। कितना अन्तर है, दोनों स्थितियों में?

इस परिस्थितिमें हम उस बाँझकी मनोव्यथाको पूर्ण रूपेण समझ सकेंगे, जो भैरूजीसे पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रार्थना कर रही है—

भैरूँजी काठे गवाँरी चाढूँ लापसी,
मार्यां तो गाँवारो देसी घीव।
कासी रा वासी एक अरज म्हाँरी हेलो साँभलो,
भैरूँजी, देराण्यौं—जेठाण्यौं मने मोसो बोलियो।
देराण्यौं—जेठाण्यौं रे हीडै पालणों,
कासी रा वासी, एक पुत्र बिना कुलमें बाँझकी।
भैरूँजी, कदेय न भीजी म्हाँरो दूधाँ काँचली,

भैरूँजी, कदेय न भीजो म्हारे काँधो लार सूँ।
कासी रा वासी, एक पुत्र विना कुलमें बाँझड़ी।

—ओ काशीके वासी भैरूँजी, एक प्रार्थना मेरी सुन लो। एक पुत्रके विना मैं कुलमें बाँझ हूं। देवरानी और जिठानी मुझे ताना देती हैं। उनके घरमें पालनें झूल रहे हैं, पर मैं विना पुत्रके बाँझ हूं। कभी मेरी कंचुकी दूधसे नहीं भींगी, कभी मेरा कंधा लारसे गीला नहीं हुआ। मैं बाँझ हूं। भैरूँजी, मैं तुम्हें गेहूंकी लपसी चढ़ाऊँगी, उसमें गायका शुद्ध देशी घी होगा। तुम मेरी एक प्रार्थना सुन लो।

एक ओर यह व्यथा है, दूसरी ओर एक उल्लासमय चित्र है। एक गर्भवतीके उल्लासको देखिये। वह पुत्रको जन्म देनेवाली है। उसमें कितना उत्साह है, कितना आह्लाद है—

ढोला, म्हाँरी दाईने बेग बुलावो,
म्हाँरे हालरियो रो जन्म करावो।
ढोला, नाईकीने बेग बुलावो,
म्हाँरे महलाँ चौमुख दिवलो चसावो।
ढोला म्हाँरी सासूजीने बेग बुलावो,
म्हाँरे महलों सोवन थाल बजावो।
ढोला, जोसीने बेग बुलावो,
म्हाँरे, गीगेको नाँव कठावो।
ढोला, म्हाँरी, देवर-जेठाणी बुलावो,
म्हाँरे महलाँ छठी जगवावो।
ढोला, बाईजीने बेग बुलावो,
म्हाँरी चत्रसालाँ सथिया दिवावो।
बाईजीने अड़-अड़ नेग चुकावो,
ढोला, दूणी रीत बधावो।

—हे प्रिय, हमारी बाईको शीघ्रतासे बुलाओ और पुत्रका जन्म कराओ। नाइनको शीघ्रतासे बुलाकर महलोंमें दीप जलवाओ। सासुजीको बुलवाकर सोनेके थाल बजवाओ (राजस्थानमें पुत्र-जन्मके अवसरपर थाल बजाये जाते हैं)। ज्योतिषीको बुलवाकर नाम निकलवाओ। देवरानी और जिठानीको बुलवाकर रात्रि जागरण कराओ। ननदको बुलवाकर चित्रशालामें शुभ स्वस्तिक बनवाओ। हे प्रिय, ननदको बढ़-बढ़कर दुगने नेग दो।

कितना आह्लाद है। जो देवरानी और जिठानी कल उसे ताना मार रही थीं, उन्हें वह बुलवाना भूली नहीं है, कि वे भी उसके सौभाग्यको आज आकर देख लें।

एक दूसरे लोकगीतमें एक बहनके उल्लासका चित्र है। वसन्त आनेपर कोकिला जैसे कूक उठती है, वैसे ही भाईके घर पुत्र-उत्पन्न होनेका शुभ समाचार सुनकर यह बहन भी कूक उठी है।

म्हाँरे वीरैजी रे बेटो जायो,
सोने रा थाल बजाओ।
सारे सहरमें नौबत बाजै,
घर-घर बँटे अे बधाई।
सखियाँ, घर-घर बँटे बधाई,
म्हाँरे वीरैजी रे बेटो जायो।
म्हाँरे बाबो सा' धूगर लपसो रँधायो,
सारो नगर जीमणें आयो।
मोरी सखियाँ, अे सारो नगर जीमणे आयो,
म्हाँरे वीरैजी रे बेटो जायो।

—सखियो! मेरे भाईके पुत्रका जन्म हुआ है। सोनेका थाल बजता है। सारे शहरमें शहनाई बज रही है। घर-घर बधाई दी जा रही है। मेरे बाबा साहब ने हलवा बनवाया है। सखियो, सारा नगर जीमनें आया है। मेरे भाईके घर पुत्रका जन्म हुआ है।

भाईके घर पुत्र-जन्मसे हर्षित बहनको सारा नगर अपने रँगमें रँगा दीखना स्वाभाविक ही है।

अन्तमें देखिये एक पुत्रवतीका वैभव। इस सम्मान और आदरकी तुलना कीजिये, उस बाँझके अपमान और निरादरसे, जिसे घरसे बाहर निकाल दिया जाता है, जिसका पति उससे मुँह मोड़ लेता है और महाजन जिसे देखकर दूकान बन्द कर लेते हैं।

हे म्हाँरे उतर-दिखण री जच्चा पीपली,
हे म्हाँरे नमी-नमी डालरे।
हे म्हाँने घणी सुवावें जच्चा पीपली,
हे थारे गीगो अे ज़िलम्यों आधी रात अे।
हे थारे गुड़ बट्यो परभात,
हे म्हाँने घणी सुवावे जच्चा पीपली।
हे जठै ने बहू सिगणारदे पोढ़िये अे,
हे बाँरे दासी ढोलै छै बाव।
हे म्हाँने घणी सुवावे जच्चा पीपली।

—पीपलीके समान कोमल जच्चा उत्तर-दक्षिणकी रहनेवाली है। पूर्वमें आकर वह फलके भारसे झुकी है। पूर्वमें पतिके घर आकर उसने पुत्र-रत्न रूपी फल दिया है। ऐसी कोमल जच्चा हमें बहुत अच्छी लगती है। आधी रातको उसने पुत्र जन्मा है, सबेरे खुशीमें गुड़ बाँटा जा रहा है। जहाँ शृंगारकी देवी बहू लेटी हुई है, वहाँ दासियाँ हवा कर

रही हैं। ऐसी कोमल जच्चा हमें बहुत अच्छी लगती है।

बाँझ रहनेपर जिसकी छाया भी अशुभ समझी जाती थी, उसे ही अब शृंगारकी देवी कहा जा रहा है, दासियाँ उसकी हवा करती हैं और वह सबको अच्छी लगती है। यही बाँझ और पुत्रवतीका अन्तर है।

राजस्थानी 'हालरौं' दो प्रकारके चित्रण अपनेमें सँजोये हैं। उनमें एक ओर अपमान और अनादरकी वेदनाके करुण चित्र हैं, दूसरी ओर हर्ष और आनन्दके उल्लासमय चित्र भी हैं। इन गीतोंमें बाँझकी वेदना और व्यथाका भी चित्रण है और पुत्रवतीके आनन्द और आह्लादका भी। अज्ञात लोकगीतकारोंने दोनोंको अपनी सहानुभूति प्रदान की है और उनके मनोभावोंको वाणी प्रदान की है।

शब्द, प्रतीक और भाषा

वीरेन्द्र सिंह

भाषा की इकाई शब्द है, जिसका विकास वर्णोंके योगसे हुआ है। अतः शब्दका महत्व भाषाके संगठनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। शब्दका मुख्य कार्य विचार और भावकी उद्भावना है। जब शब्द अधिक व्यापकक्षेत्र की व्यंजना करते हैं, तब वे प्रतीककी श्रेणीमें आते हैं। दूसरे शब्दोंमें प्रतीक परमाणुके समान है, जिसके संगठन एवं क्रमसे भाषारूपी पदार्थका विकास सम्भव होता है। परंतु जहाँ तक शब्द-प्रतीकोंके तार्किक सम्बन्धका प्रश्न है, उसका सबसे सुन्दर रूप लिखित भाषा या लिपिमें ही प्राप्त होना है।[1]

परंतु शब्द-प्रतीकोंका विकास अनायास ही नहीं हुआ। अतः भाषागत प्रतीकोंके उद्गम एवं विकासको समझनेके लिये यह आवश्यक है कि हम उन स्थितियोंका अनुशीलन करें, जो प्रतीकके उद्गम एवं विकासकी ओर संकेत करती हैं।

विकास-स्थितियाँ

(१) **शब्द-तंत्र**—आदिमानवकी आदिमानसिक स्थिति को ध्यानमें रखते हुए हम इस स्थितिका विवेचन करेंगे। यहाँपर यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि भाषागत शब्द-प्रतीकोंका विकास प्रेषणीयताकी आवश्यकतापर निर्भर था, और इन अद्भुत कल्पनात्मक विचारोंका आदितम स्त्रोत तांत्रिक क्रियाएँ ही थीं। अतः तंत्रमें अनेक प्रकारके भावात्मक उद्गारोंकी अभिव्यक्ति 'घूमिल' शब्द-ध्वनिके रूपमें ही होती थी, और इसी से, ये चिह्न क्रमशः "शब्द-तंत्र" (Ward-magic)के रूपमें प्रयुक्त होने लगे। यही कारण है कि ये चिह्न, जो वाणीके आदितम रूप हैं, उनका महत्व आदिमानवके लिये "तंत्र" के ही समान था। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रेषणीयताकी कलाने आदिमानवको चिह्न-आविष्कारककी संज्ञा दी।[1] इन तांत्रिक-शब्दोंकी सहायता से देवताओं, आत्माओं एवं भूतोंको अनुष्ठानिक-क्रियाओंमें आवाहन किया जाता है।

(२) **अंगमुद्राएँ**—अनेक विचारकोंके अनुसार, ये भावात्मक चिह्न वाणीके आदितम स्रोत हैं। ये प्रवृत्तियाँ एवं अंगमुद्राएँ विचार-विनिमयके आदितम रूप हैं और इनका स्वरूप उतना ही जटिल होता गया, जितना कि जातिका विकास होता गया।[2] इससे यह सिद्ध होता है कि आदि-मानवीय वाणी व भाषाका विकास अंगमुद्राओं एवं शब्द-ध्वनियोंके सहारे सम्पन्न हुआ होगा। इस स्थितिको आदि अंगमुद्रीय-भाषाकी संज्ञा दे सकते हैं। यह तथ्य इस बात की ओर भी संकेत करता है कि अंगमुद्राओंका आदिमानवीय ध्वनिके संकेतात्मक-विकासकी ओर कितना अधिक हाथ था? डी लेगुना प्रेसने भाषाके अर्थ-विकासमें तीन स्थितियाँ मानी हैं—संकेतात्मक, भावात्मक और प्रतीकात्मक। परंतु यह कहना अत्यन्त असंदिग्ध है कि किस सीमा तक वानरों और आदिमानवोंका ध्वनि-शब्द किसी विशिष्ट 'वस्तु' या दशा से सम्बन्धित रहते थे! इस स्थितिमें हम यह नहीं कह सकते हैं कि मानवकी वाणीका आदितम रूप यही था। परंतु यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भाषा अथवा वाणी का आरंभ उस समयसे माना जाय, जब अर्थमय ध्वनि किसी

1. Poetic Approach to Language, by V. K. Gokak. P. II. (1952)

1. The House that Frend Builst, by Joseph Jestrov. (1933). P. 71.

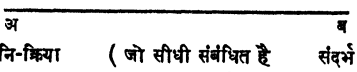
2. The Psychology of Language, by W. B. Pillsburg, P. 117 (1928).

वस्तु अथवा दशाकी द्योतक होती है और एक प्रकारसे उसकी विजय आदिप्रवृत्तियों पर भी होने लगती है।

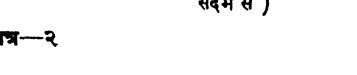
(३) ध्वनि-शब्दसे प्रतीक तक—श्री अरविंदका मत है कि शब्द ध्वनिके जीवित रूप हैं और इनका उद्गम स्रोत नाड़ियाँ (Nerves) हैं न कि बुद्धि।[1] शब्दका रूप उसी समय मुखरित होता है, जब वे उच्चारणकी परिधि के अन्दर आ जाते हैं। किसी भी प्रकारके उच्चारणका महत्व एवं उसका अर्थ स्थिति-विशेष या दशा विशेषके प्रकरणमें निहित रहता है। इसीसे कुछ विचारकों का मत है कि चिह्न एक प्रकारका बाह्य उत्तेजक है, जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक संदर्भ (जो बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर है) पर आधारित है और यह सम्बन्ध ही "चिह्न" है।[2] (चित्र--१)

ये आदितम चिह्न (ध्वनि-शब्द) क्रियाके ही माध्यम थे, उनके द्वारा किसी विचारात्मकवृत्तिके दर्शन नहीं होते हैं। जिस प्रकार शिशु के लिए शब्द क्रियाके माध्यम हैं, उसी प्रकार आदिमानवके लिए ध्वनि-शब्दका क्रिया सापेक्ष्य ही महत्व था। प्रकट रूपसे आदिमानवीय स्थितिमें ये ध्वनि-शब्द किसी पदार्थसे सम्बन्धित रहते थे। (चित्र—२) अन्तिम दशामें आकर, जब वाणीका क्रियात्मक स्वरूप हमारे सामने आता है, उस समय प्रतीक पदार्थ या वस्तुसे रहस्यात्मक-संबंधकी पुष्टि करता है। (चित्र—३) इस स्थितिमें प्रतीक या शब्द अनुष्ठान एवं तंत्रके रूपमें प्रयुक्त होते हैं, जिसकी आधारशिला परम्परागत विश्वासोंपर अवलम्बित रहती है।

चित्र—१

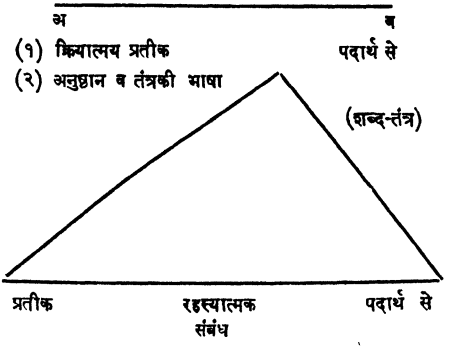


चित्र—२



1. Arya. Vol. I, by Sri Aurbindo. P. 342.
2. The Meaning of Meaning, by Odgen and Richards, P. 54.

चित्र—३



प्रतीकीकरणका चिह्न-सिद्धांत—वेनद्रीजके मतानुसार भाषा या वाणीका सबसे महत्वपूर्ण अंश चिह्नोंको प्रतीकका रूप प्रदान करना है। इसी प्रतीकात्मक रूप पर भाषाकी आधारशिला प्रस्तुत होती है, जो अन्तोगत्वा अनेक भाषागत रूपों यथा विज्ञान, धर्म, दर्शन, गणित आदिकी भाषाओंको जन्म देती है।

यह सत्य है कि हमारा आदि-ज्ञान चिह्नोंके रूपमें ही साकार हुआ था, जिसका विवेचन बाह्य-वस्तुओंके संबंधपर आधारित होता था। परन्तु यह स्थिति एक ही रूपमें नहीं रही, पर इसका विकास क्रमिक रूपसे होता रहा। परन्तु जैसे-जैसे सभ्यताका विकास होता गया, वैसे-वैसे विचारों एवं भावोंकी जटिलताके साथ इन चिह्नोंका प्रयोग अन्य रूप लेने लगा और चेतन प्रक्रियाके फलस्वरूप ये चिह्न विचार-वाहक प्रतीकके रूपमें प्रयुक्त होने लगे। इसीसे वाइटहेड और रिचर्ड्सका मत है कि प्रतीक एक प्रकारके "विशेष"-चिह्न हैं, जिनका निर्माण मानव-बुद्धि एवं तर्ककी उच्च दशा पर आधारित है। यह स्थिति शब्द और प्रतीकके सचेतन अर्थबोध एवं वाक्यगत प्रयोगकी स्थिति है। अतः प्रतीक का प्रयोग विचार-प्रणालीके अन्तर्गत होता है, और नवीन परिस्थितियों और प्रयोगके संदर्भमें, रूढ़िगत बन्धनोंको तोड़ कर, उनका क्रमागत विकास सम्पन्न होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कि रूढ़िगत प्रतीकोंका मूल्य मानव-दशा सापेक्ष्य है। अनेक रूढ़िगत प्रतीत जो शताब्दियोंसे (यथा आकाश, समय, ईश्वर) एक ही मान्यता एवं विचारकी व्यंजना करते थे, नवीन ज्ञानके प्रकाशमें उन प्रतीकोंकी धारणामें नवीन मान्यताओं एवं विचारोंका समन्वय किया गया। प्रतीकका जीवन इसी प्राचीन-नवीन मान्यताओंके समन्वय पर आधारित है।



जाड़े का मौसम...

शक्ति और स्फूर्ति के लिए

बैद्यनाथ रस-रसायन

सेवन करें और पूरे वर्ष तक
बलवीर्य से परिपूर्ण रहें।

जाड़े में सेवन योग्य

बैद्यनाथ बसन्त कुसुमाकर रस,
बैद्यनाथ मकरध्वज गुटिका
बैद्यनाथ पूर्ण चन्द्ररस वृहत्,
बैद्यनाथ च्यवनप्राश आदि आदि...

वेशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

ब्रज चौरासी कोसमें परमदरा का स्थान

चतुर्भुजदास चतुर्वेदी,

महाकवि सोमनाथ चतुर्वेदीने ब्रजका विस्तार बतलाते हुए अपनी कवितामें एक स्थान पर लिखा है—"पुर दिल्ली और ग्वालपुर बीच ब्रजादिक देश", जो आज ग्वालियर कहलाता है, वह कभी ग्वालपुरके नामसे पुकारा जाता था। पहले यहां ग्वाला अधिक रहते थे। इससे इसका नाम ग्वालपुर रखा गया होगा, फिर वह 'यर' में बदल गया, भाव वही है। इसमें एक तहसील गोहद है, जिससे यह भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि इस स्थान तक गौओंके चरनेकी हद थी। अतः गोहद नाम पड़ा। यानी ब्रजप्रदेश दिल्लीसे लेकर ग्वालियर तक था। किन्तु अब ग्वालियर को ब्रजमें नहीं मानते। इसी प्रकार दिल्ली भी दूर हो गई। कुछ भी हो, है तो ब्रजके पड़ोसमें।

अपनी शोधके सिलसिलेमें मुझे ग्राम परमदरा जाना पड़ा। यह ग्राम परमदरा ब्रजचौरासी कोसकी परिक्रमामें आता है और इसे एक पवित्र तीर्थ मानते आये हैं। यह ग्राम कामा और डीगके मध्य यानी डीगसे सात मील पूर्व और कामासे सात मील पश्चिममें डीग कामा रोड पर बसा हुआ है। इसमें घरोंकी घनी आबादी है तथा मालगुजारी के हिसाबसे अच्छा गांव है।

इस ग्राममें ऐतिहासिक वस्तुओंके साथ-साथ पौराणिक कालकी वस्तुएँ पाई जाती हैं। मैंने वहांके कुलकरनी (पटवारी) से भी इस ग्रामके बारेमें पूछ-ताछकी, तो उसके पास जो पुराने-से-पुराने कागजात पाये गये, वे ८५० वर्ष पूर्वके हैं, जिनमें परमदरा यानी सुदामाका जन्मभूमि लिखा हुआ है। इससे यह सिद्ध हो गया कि ग्राम परमदरा और भी प्राचीन रहा होगा।

मेरी उत्कण्ठा इस गांवके नामका शुद्ध रूप प्राप्त करनेकी हुई। मुझे किसीने बताया कि कामामें एक हस्तलिखित पुस्तक है, उसमें इस ग्रामका भी उल्लेख किया गया है। अतः मैं कामा गया और श्री गोकुल चन्द्रमाजीके मन्दिरके पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित ग्रन्थ देखा, जो सम्भव है कि ब्रज चौरासी कोसमें आए हुए विशेष तीर्थोंपर लिखा गया होगा। उस पुस्तकमें इस गांवका नाम-परिमाद्र लिखा हुआ है, और उसे सुदामाकी जन्मभूमि माना है, अस्तु परिमाद्र का अपभ्रंश शब्द परमदरा होना स्वाभाविक है।

इस गाँवके समीप एक परिमाद्री नामका भी स्थान है, जहाँ एक प्राचीन शिवालय अपनी भग्नावस्थामें खड़ा अतीत की याद दिलाता है। इसमें जो ईंटें लगाई गयी हैं, वे महाभारत कालकी हैं। जैसा कि हमें डीगसे ९ मील दूर जनूथर गाँवमें मिलती हैं। (रामायणमें जनूथरको जनथर नामसे लिखा है), इस ग्राममें एक सुदामाजीका मन्दिर भी है। इसमें सुदामाजीकी प्रस्तर-प्रतिमा है। इसमें वे भग्न-वाम श्रीकृष्णके हाथ जोड़े विनीत भावसे खड़े दिखाए गए हैं। इसके समीप ही एक शिलालेख जो बंगलामें है, लगा हुआ है, जिसका स्टामपेज (Estampage) इस लेखके साथ भेज रहा हूं। संभव है, किसी बंगाली भक्तने इस मन्दिर की मरम्मत कराई हो, तब यह लगाया गया होगा।

इसके पास एक कुण्ड भी है, जो सुदामा कुण्डके नामसे बोला जाता है। ब्रज चौरासी कोसकी यात्रामें आये हुए यात्री यहाँ भी आते हैं, और भक्तिभावसे इस कुण्डका आचमन कर मार्जन करते हैं।

इस गाँवके वयोवृद्ध लोगोंसे पता चला कि यह गर्ग मुनिका भी निवास स्थान था, जिन्होंने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके जन्मोत्सवपर उनकी जन्म-कुण्डलीका फलादेश बाबा नन्द मेहरको सुनाया था। जिसे भक्त कवि सूरदासने पदके रूपमें लिखा है। इस गाँवमें भगवान श्रीकृष्णके प्रति बड़ी भक्ति है। यहांपर जो लोकगीत गाये जाते हैं, वे भी बड़े भावपूर्ण तथा हृदयग्राही हैं। फिर जब यहांके ग्राम-वासी भावसहित उन गीतोंको गाते हैं, तो एक लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है। ये लोग अपना-अपना गोल बनाकर खड़े हो जाते हैं और हाव-भावसे ब्रजके रसिया, चरकला आदि गीतोंमें उन भावोंको व्यक्त करते हैं। उन गीतोंका रूपक प्रत्यक्ष-सा मालूम देता है। उदाहरणके लिये एक रसिया यहाँ दिया जाता है। एक पार्टीका मुखिया दूसरी पार्टी के मुखियासे भाव-पूर्ण कहता है—

ऐ दधि पीजा श्याम सलोने।

इसपर दूसरी पार्टीका मुखिया कहता है—

काहेकी तेरी बनी मथनियां, काहेके तेरे दोने।

फिर सब मिलकर गाते हैं। इसपर उत्तर मिलता है—

ब्रज रजकी मेरी बनी मथनियां, कदमपातके दोना,
ऐ दधि पीजा श्याम सलोना।

इस प्रकार ग्राम परमदरा, जो सुदामाकी जन्मभूमि है, बड़ी रोचक एवं पवित्र है। यहाँ प्रतिवर्ष अनेक यात्री भक्त भावसे आकर आनन्दविभोर हो अपना जीवन सफल मानते हैं।

Phone: 22-3911

उत्तम तथा स्वादिष्ट भोजन के लिये

विटामिन ए तथा डी संयुक्त

Gram : VEGEPRO

प्रताप वनस्पति

व्यवहार करें:-

बिस्कुट तथा बेकरी के लिए

विटामिन संयुक्त स्पेशल

बेबी वनस्पति व्यवहार करें ।

जिनुटोल दो बार साफ किया हुआ बादाम तेल

* सुपाच्य तथा जायकेदार भोजन के लिए अतुलनीय

* सुगन्धित केश तेल बनाने के लिए अति उत्तम

प्रस्तुत कारक—वेजिटेबल प्रोडक्ट्स लिमिटेड ।

१।२, ओल्ड कोर्ट हाउस कार्नर, नार्टन बिल्डिंग, कलकत्ता-१

नसकरपाड़ा जूट मिल्स कं० लि०

८, डलहौजी स्क्वायर ईस्ट

कलकत्ता—इण्डिया

जूट द्वारा निर्मित समस्त वस्तुओं

के

—: निर्माता :—

टेलीग्राम और केबेल

"सूराट्रेड"

कलकत्ता (इण्डिया)

टेलीफोन :—

आफिस—२२-६८५१-५८

मिल्स-शिबपुर-६६-२३०३

मैनेजिंग एजेण्ट :—

हवड़ा ट्रेडिंग कं० प्राइवेट लि०

मैकेनिकल और स्ट्रक्चुअल इञ्जीनियर्स

तथा

लैण्ड ओनर्स

स्वर्गीय प्रा० आर० डी० रानडेजीके संस्मरण

श्री प० कृ० गोडे

वृतेन हि भवेत्यार्य न धनेन विद्यया।
—महाभारत ५ ९०, ५३

जिसमें वृत है, वही आर्य है। केवल धनसे या विद्यासे कोई आर्य नहीं बन सकता। डा० रानडेजीके साथ १९१० से १९५७ तक ४७ वर्षके संसर्गने मुझे महाभारतवाली इस आर्यकी परिभाषाकी सत्यता हृदयंगम करा दी है।

१९१० में मैट्रिकुलेशन करनेके पश्चात मैं फरग्यूसन महाविद्यालयकी प्रीवियस कक्षामें प्रविष्ट हुआ, जिसे डा० रानडे अंग्रेजी निबंध पढ़ाते थे। विधिवत् अध्ययन करनेकी प्रथम प्रेरणा मुझे डा० रानडेसे उसी समय मिली। उन्होंने गहन अध्ययन करनेके लिये बैन रचित 'रिहटोरिक' (Rhetoric) सुझाई और मैंने उनके परामर्शको माना। बैनकी पुस्तक से बताये संतुलित वाक्यका उदाहरण मुझे आज भी स्मरण है। 'मित्र जब सहायता नहीं करते तब पुस्तकें करती हैं, जब पुस्तकें भी नहीं करतीं, तब ध्यान सहायता करता है'।

मुझे मित्रोंकी अपेक्षा पुस्तकोंने बड़ी सहायता दी है, पर डा० रानडे अपने चौथे दशकमें, यदि इससे पूर्व नहीं, ध्यानवाली आयुमें पहुंच गये थे। २९ मई १९५५ को उन्होंने मेरे पूनाके दकन जिमखाना उपनिवेश वाले घर पर आनेकी कृपा की। बड़ा सुन्दर ग्रीष्म प्रभात था। डा० रानडे, प्रा० दामले तथा अन्य मित्रोंका सत्कार करनेके पश्चात मैंने "भारतीय साहित्यिक इतिहासमें अध्ययन" के प्रथम और द्वितीय खण्ड उनको अर्पित किये और प्रणाम किया। भावपूर्ण हृदय और संतोषसे उन्होंने आशीर्वाद दिया। तब मैंने उन्हें बेनकी 'रिहटोरिक' का "मित्र जब सहायता नहीं करते, पुस्तकें करती हैं, जब पुस्तकें भी नहीं करतीं, ध्यान सहायता करता है" वाक्य स्मरण कराया और कहा कि अब आप मित्रों और पुस्तकोंसे परे, ध्यानवाली अवस्थामें हैं। डा० रानडे मेरे कथनको मानते हुए मुस्कराए। फिर मैंने चीनी यात्री इत्सिंगकी "भारत यात्रा" से उसके गुरुकी कथा सुनाई, जिसने सभी पुस्तकोंको फाड़कर, ब्रजकी प्रतिमाके लिये बननेवाले चूनेमें डलवा दिया था। उसके शिष्योंने कहा, "यदि कायज़ ही प्रयोग करने हैं, तो इनके स्थान पर कोरे कायज़ डाल दें। गुरुने कहा कि चूनेमें डले वाङ्मय ने उसे पथभ्रष्ट कर दिया है।"

डा० रानडेने इसकी बड़ी आशंसा की, क्योंकि व्यक्तियों तथा पुस्तकों सम्बन्धी अपने अनुभवसे वह इसके रहस्यात्मक रहस्यको समझते थे।

१९१५ में फरग्यूसन महाविद्यालयकी बी० ए० कक्षामें डा० रानडे कार्लाइल लिखित 'ही रोज और हीरो वर्शिप" (वीर और वीर पूजा) पढ़ाते थे। तब मैं उनका विद्यार्थी था, और उनके निकट सम्पर्कमें आया। कक्षामें डा० रानडे को मैंने कार्लाइलके विचारों और भारतीय दर्शनकी निकट प्रीतिसे भरा पाया। आजकल महाविद्यालयमें जोर जोरसे बोलनेवाला अच्छा व्याख्याता वही समझा जाता है, चाहे उसे पाठ्य विषयका गहन ज्ञान न हो। अपने समयके कुछ विश्वविद्यालयोंको कार्लाइलने 'चौकोर घिरा प्रदेश और ज़ोर-ज़ोरसे किया प्रचार' कहा है। आजकल कुछ महाविद्यालयोंके सम्बन्धमें यह वचन सत्य है। डा० रानडेकी शिक्षण-पद्धति फरग्यूसन महाविद्यालयकी प्रचलित पद्धतिसे भिन्न थी। वे हमें पढ़ाये जानेवाले अंशको पहले ही पढ़कर आनेको कहते। उन्होंने हमें प्रत्येक अनुच्छेदका सारांश लेखकके ही शब्दोंमें लिखना सिखाया। फिर सारे कठिन अंशोंका पूर्ण विवेचन कार्लाइल के अन्य ग्रन्थोंसे तुलनात्मक अंश लेकर समझाते'। वास्तवमें उन्होंने हमें पुस्तकको पढ़ने और विषयमें रुचि उत्पन्न करना सिखाया। मुझे उनकी रीति इतनी अच्छी लगी कि १९१४-१८ के बीच बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओंके लिए पाठ्य पचास पुस्तकोंके सारांश मैंने इस प्रकार तैयार कर लिये। इसी रीति को पिछले ४० वर्षोंमें अनुसंधान करते समय काममें ला रहा हूं। पढ़ना मेरे लिये लिखना उत्पन्न करता है और यद्यपि मेरे कमरेमें दो आराम कुर्सियां हैं, मैंने कभी उनका उपयोग नहीं किया। कार्लाइलको पढ़ानेसे पूर्व डा० रानडे पूनाकी दकन शिक्षा परिषदके आजीवन सदस्य बन गये थे। (१९१५) कार्लाइलकी रचनाओंने उनके मस्तिष्कपर स्थायी छाप लगा दिया था। और इसी समय उन्होंने विद्यार्थियोंके लिए

आलोचनात्मक भूमिका और टिप्पणियों सहित "कार्लाइलके "समयकी विशेषताएँ और चिह्न' (कैरेक्टरिस्टिक्स ऐंड साइन्स आव दि टाइम्स) का संस्करण प्रकाशित किया। इसी समय फरग्यूसन महाविद्यालयके प्रांगणमें उन्होंने एक छोटा-सा मकान बनवाया और इसका नाम "कार्लाइल कुटी" रखा, जहाँ मैं प्रायः जाता था। डा० रानडेसे मेरा प्रथम साहित्यिक संपर्क उस समय हुआ, जब फरग्यूसन महाविद्यालय पत्रिकामें, (१९१५) जिसके वह तब सम्पादक थे। उन्होंने "भारतीय जाति व्यवस्था" नामक मेरा निबंध प्रकाशित किया। १९१६ में डा० पी० डी० गुणेकी अध्यक्षतामें, जो भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थानके संस्थापकोंमेंसे हैं तथा मैट्रिकसे एम० ए० तक मेरे संस्कृत अध्यापक रहे, मैंने प्रथम शोध निबंध महाभारतकी कला; और शैली श्लोक रचना तैयार किया। मैंने यह डा० रानडेको दिखाया, उन्होंने वह डा० कुर्तकोटि (नासिकके वर्तमान परमपूज्य शंकराचार्य) को दिखाया। दोनों इससे बड़े प्रसन्न हुए और मुझे ५०) पुरस्कार दिया और उसे अपनी पत्रिका 'संस्कृत शोध' (संस्कृत रिसर्च) में प्रकाशित किया। (खंड १, पृ० ३६५-८६)। भारत विद्या अनुसंधान करनेमें वह मेरा आरम्भ विन्दु है, और मैं आदरपूर्वक अपने गुरुओं, डा० रानडे और डा० गुणेको प्रणाम करता हूं, जिन्होंने भारत विद्याके पथ पर मुझे अग्रसर किया। जिसपर बिना किसी व्यवधानके, मैं अब तक चल रहा हूं। इन गुरुओंके प्रति मैं अक्षय ऋणी हूं, जिसे अंशतः पूरा करनेकी चेष्टा अपने भारतीय साहित्यिक इतिहासमें अध्ययनके तीसरे खंडको डा० रानडेको तथा प्रथम खण्डको डा० गुणेको समर्पित मैंने किया है। त्रैवार्षिक "डा० गुणे स्मारक व्याख्यान माला" पूना विश्वविद्यालयके अधीन गठित तथा स्थापित करनेमें भी मैं सफल हुआ हूं। इस व्याख्यान मालाके अन्तर्गत पहला व्याख्यान कुलक १९५८ में दिया जायगा।

डा० रानडे विचार व आदर्शोंके व्यक्ति थे। पिछले ५० वर्षोंमें अन्य प्रांतोंकी भांति महाराष्ट्रमें भी कितने ही शिक्षण संस्थान बन गए हैं, जो अच्छा कार्य कर रहे हैं। ये संस्थान इनके संस्थापकोंके विचारोंके मूर्त रूप हैं। कार्लाइलने संतपालके गिरजेको "स्थापत्य विचार" कहा है। महाराष्ट्रमें भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना भी, जो अब तीनों महाद्वीपोंमें प्रसिद्ध है, सर्वप्रथम संस्थापकोंके विचारोंमें ही आरम्भ हुआ। भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थानकी प्रबन्ध समितिके विवरणानुसार (६ जुलाई, १९१५ से १० सितम्बर, १९१८ तक) जो "वार्षिकी" के प्रथम खंड (परिशिष्ट पृ० ५) में प्रकाशित हुआ, इसे स्थापित करनेका विचार सबसे पहले डा० कुर्तकोटि, डा० रानडे, डा० पी० डी० गुणेने सोचा, और इसपर उन्होंने विचार-विमर्श किया। उस समय डा० रानडे फरग्यूसन महाविद्यालय, पूनामें दर्शनके प्राध्यापक पदपर कार्य कर रहे थे। वे पहली प्रबन्ध समितिके सदस्य थे एवं ८ सितम्बर, १९१८ की संचालन परिषद् द्वारा संस्थानके प्रबन्ध मंडलके सदस्य भी निर्वाचित हुए। भंडारकर प्राच्य शोध संस्थानके निर्माण कालके समय विद्यार्थी होनेसे ही मेरा डा० रानडे और डा० गुणेसे निकट संपर्क था। और ६ जुलाई, १९१७ को संस्थानके स्थापना समारोहमें भी अप्रैल, १९१९ को जब विद्वानोंके सामने डा० रा० गो० भंडारकरने संस्थान द्वारा महाभारतका समालोचित संस्करण निकालनेका कार्य महाभारतका प्रथम श्लोक (नारायणं नमस्कृत्य आदि) संतुलन पत्रपर लिखकर (जो महाभारत विभागमें सुरक्षित है) आरम्भ किया, मैं उपस्थित था।

एम० ए० परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर मैं भारतीय स्त्री विश्वविद्यालयमें जून, १९१८ को अंग्रेजी व संस्कृतका प्राध्यापक नियुक्त हुआ। डा० रानडे और डा० गुणेसे मैं प्रायः मिला करता था। यद्यपि मैं पूनाके निकट हिंगणेमें रहता था। २० मार्च, १९१९ को मुझे संस्थानके मन्त्री डा० गुणेके हस्ताक्षरसे सहायक संग्रहाध्यक्ष पदके लिए नियुक्ति पत्र मिल गया। अपने प्राध्यापक पदसे त्यागपत्र देकर २६ अप्रैल, १९१९ को मैं संस्थानमें आ गया और सेवा अनुबंधोंके अनुसार संस्थानके निकट संग्रहाध्यक्ष बँगलेमें रहने लगा।

"कार्लाइल कुटी" से हम "अध्यात्म" भवनमें आते हैं, जो भंडारकर संस्थानके निकटकी भूमिपर डा० रानडे द्वारा बनवाए छोटेसे निवासको उनका दिया सार्थक नाम है। डा० रानडेका यह नया निवास संग्रहाध्यक्षवाले बँगलेके, जहाँ मैं रहता था, बहुत निकट था। दर्शन और संबंधित विषयोंकी चुनी हुई पुस्तकोंके छोटे संग्रहसे ही उन्होंने "अध्यात्म भवन" में ही अपना सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ "औपनिषिदिक दर्शनका रचनात्मक सर्वेक्षण" (दि कन्स्ट्रक्टिव सर्वे आव उपनिषिदिक फिलासफी) लिखा। पुस्तकालयमें "पुस्तकें उधार मत माँगिए" यह स्पष्टतया लगाकर रखनेपर भी अपने मित्रों और विद्यार्थियों द्वारा पुस्तकालयका उपयोग करने देनेमें

इतने उदार थे कि कितनी ही पुस्तकें खो गई हैं, क्योंकि मांगनेवालोंने उन्हें लौटाया ही नहीं। उसके बादके जीवन की आधारशिला उपनिषद् अध्ययन ही था, जिसे वह अन्य बौद्धिक सफलताओंसे अधिक मानते थे। उपनिषद् अध्ययन के साथ-साथ ही डा० रानडेने महाराष्ट्रीय संतों—तुकाराम, ज्ञानदेव, रामदास आदिका भी गहन अध्ययन आरम्भ किया। इस ग्रंथके आधार-साहित्यको पहले उन्होंने "अध्यात्म ग्रंथमाला" के चार भागोंमें प्रकाशित किया। फिर १९३३ में ग्रंथ ही प्रकाशित हुआ। अध्यात्म भवनमें ही डा० रानडे ने दर्शन-धर्म परिषद्को आरम्भ किया, जिसका उद्देश्य भगवानकी समस्याके दार्शनिक अन्वेषणमें रुचि लेनेवालोंको एक स्थानपर लाना था। परिषद्का प्रथम संचालक होनेके नाते डा० रानडेने मुझे और प्रा० एन० जी० दामलेको मन्त्री नियुक्त किया। परिषद्के जल्दीवाले कार्योंमें उन्होंने विशेष संपादन मंडलकी सहायतासे पूर्ण करनेको १६ खंडोंमें 'भारतीय दर्शनका विश्वकोषीय इतिहास' निकालनेकी योजना रखी। धर्म और दर्शनमें रुचि लेनेवालों तथा विद्वानोंने इस योजनाका बड़ा स्वागत किया। बम्बईके गवर्नर हिज़ एक्सेलेंसी सर लेज़ली विलसनने शिक्षा-मन्त्री और वित्त सदस्यपर योजनाके महत्वपर ज़ोर देकर अपनी रुचि दिखाई। प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षामें विरोध दिखानेके कारण शिक्षा-मंत्रीके लिए आय-व्ययक (बजट) में धन रखकर इस योजनाको प्रोत्साहन देना सम्भव नहीं हुआ।

डा० रानडेको भगवानकी समस्याकी चिन्ता अधिक थी, पर शिक्षा-मंत्रीको मानवकी समस्या की। वित्त सदस्यको धनकी चिन्ता अधिक थी। वित्तीय सहायता प्राप्त करनेके लिए डा० रानडेके पिछले प्रयत्न असफल ही रहे, और फल-स्वरूप केवल डा० रानडे और डा० आर० नागराज शर्मा ही अपने खंडोंपर काम करते रहे। डा० रानडेको स्वयंपर और भगवानपर विश्वास था। अपनी मृत्युके दिन ६ जून, १९५७ तक वे इस कार्यमें अकेले ही जुटे रहे।

१९२९ में डा० रानडेने मुझे परिषद्की मुख पत्रिका 'धर्म-दर्शन समीक्षा' (रिवीव आफ फिलासफी एंड रिलीज़न) को निकालनेका प्रबन्ध करनेको कहा। मैंने और मित्र प्रा० एन० जी० दामलेने आयोजन करके इसे आरम्भ कर दिया। मैंने सफलतापूर्वक इसका सम्पादन किया और १९३०-३५ तक इसके छः खंड प्रकाशित किए।

इस पत्रिकाके परिवर्तनमें हमारे पास विश्वके देशोंसे कितनी ही शोध पत्रिकाएँ प्राप्त हुईं, पर शुल्क धन इसे स्वावलंबी बनानेके लिये अपर्याप्त रहा। वास्तवमें एक-एक खंडके लिए प्रतिवर्ष ५०० रु० घाटा डा० रानडेने स्वयं भरा। स्पष्ट ही भगवानकी समस्या उन्हें बड़ी महँगी पड़ी और मैंने उन्हें पत्रिका बंद करनेका परामर्श दिया। रानडेजीके मित्र डा० जैमिनी तथा अन्य मित्रोंने इलाहाबादसे पत्रिका के छः खंड १९३६-४२ में और निकाले।

इलाहाबाद विश्वविद्यालयके उप-कुलपति, डा० गंगानाथ झा एम० ए०, डी० लिट्० के निमंत्रणपर डा० रानडेने दिसम्बर १९२७ में उस विश्वविद्यालयके दर्शन प्राध्यापकका कार्य भार संभाला। पीछे कुछ समय तक उन्होंने उप-कुलपति पद पर भी काम किया, और १९४६ में सेवा-निवृत हुए। तदुपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें उनके पाठन, अन्वेषण और प्रकाशनों तथा भारतीयदर्शनकी सेवाओंकी आशंसा करते हुए, उनको सम्मानित करनेके लिए डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की गई। सेवा-निवृतिके पश्चात् उन्हें विश्वविद्यालयका दर्शन विभागका इमेरिटस प्राध्यापक भी बनाया गया।

दिसम्बर, १९२८ में नागपुर विश्वविद्यालयमें डा० रानडे ने "भगवद्गीता" पर किंग्सले व्याख्यान दिए। इनका प्रकाशन नागपुर विश्वविद्यालयसे जल्दी ही होनेवाला है। मार्च १९२९ में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यायलमें 'वेदान्त और पाश्चात्य विचारधारा' पर वसुमल्लिक व्याख्यान भी दिए।

यद्यपि डा० रानडे दिसम्बर १९२७ में पूना छोड़कर इलाहाबाद चले गए थे, फिर भी परिषद्के अध्यात्म भवन स्थित पूना शाखाका प्रचार १९३६ तक मेरे ऊपर ही रहा, और इसी कार्यालयसे १९३०-३६ के मध्य 'धर्म-दर्शन समीक्षा' प्रकाशित होती रही। भगवान मार्गी जीवन बिताने के लिए डा० रानडेको एकान्तकी आवश्यकता थी। १९२५ से कुछ समय पूर्व बीजापुरके निकट निंबलमें उन्होंने छोटा-सा आश्रम बनवाया। अपना प्रीष्मावकाश वे इसी आश्रममें बिताते थे, जो उनके अध्ययन और ध्यानके लिए बड़ा उपयुक्त था। १९३० में इस आश्रममें जानेका मुझे आज भी स्मरण है, विशेषकर उनका प्रवातसह ध्यान-कक्ष, जहाँ उन्होंने मुझे गरम चाय पिलाई, जिससे मुझे पसीना आ गया और मुझे हवाके झोंकोंसे, जो आश्रमवाले चट्टानी मैदानमें प्रायः चलते रहते थे, ठंडा होनेके लिए, कुछ समयके लिये बाहर आना पड़ा। १९२७ से १९४१ तक डा० रानडे किराएके मकानमें इलाहाबाद रहे, जो स्पष्ट ही उनके जीवन

की ध्यानी प्रकृतिके लिए उपयुक्त नहीं था। अतः इन्होंने इलाहाबादमें गंगातटपर द्रौपदी-घाटके निकट भीड़-भाड़से बहुत दूर एक मकान बनवाया। इसी मकानमें उन्होंने हिन्दी-सन्त कवियोंकी रचनाओंका अपने आध्यात्मिक अनुभवोंके प्रकाशमें गहन अध्ययन किया और अपने दो महाकाव्य ग्रंथ 'हिन्दी साहित्यमें भगवत्मार्ग" लिखे।

यद्यपि डा० रानडे लगभग १८ वर्ष (१९२७-४६) इलाहाबाद रहे, वे प्रायः निंबल आते रहते, जहाँ वे अपने गुरु, बन्धुओं और शिष्योंसे मिलते, जो साधनाके लिए एकत्र होकर डा० रानडेके आध्यात्मिक प्रवचन सुनते थे। वास्तवमें निंबल उनके बहुसंख्य आध्यात्मिक अनुपथियों और मित्रोंके लिए तीर्थ-स्थल ही बन गया। ३ जुलाई, १९५६ को डा० रानडेकी सतरहवीं वर्षगांठपर उनके जन्मस्थान जामखंडी में वहांके नागरिकों तथा भारतके सभी भागोंसे आए डा० रानडेके अनुपथियों और मित्रोंने मिलकर अमृतोत्सव मनाया। इस अपूर्व अवसरपर 'गुरुदेव रानडे सत्कार समिति' द्वारा सम्पादित ग्रन्थ "दार्शनिक तथा अन्य निबन्ध" उन्हें भेंट किया गया। आज इस ग्रन्थकी प्रति रानडेजीके सभी मित्रों, अनुपथियों और प्रशंसकोंके पास होनी चाहिए। इस कारणसे नहीं कि इसमें बड़े दार्शनिक तत्व लिखे है, परन्तु निम्न विशेषताओंके कारण, जो डा० रानडेके बाल्यकाल और उनके साहित्यिक और आध्यात्मिक विकासकी झलक भी दिखाते हैं।

१. डा० रानडेके आध्यात्मिक गुरु श्री सद्गुरु भाऊ साहब महाराजका मानचित्र (फोटो)।
२. बैठे हुए डा० रानडेजीका मानचित्र।
३. उनके जन्मवाले जामखंडीवाले गृहका मानचित्र।
४. परशुराम भाऊ हाई स्कूल जामखंडीका मानचित्र, जहांसे डा० रानडेने १९०२ में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और संस्कृतकी जगन्नाथ शंकर सेठ छात्रवृत्ति प्राप्त की।
५. तीन संकृत श्लोकोंमें लोकनायक एम० एस० अणे, भूतपूर्व गवर्नर (राज्यपाल) बिहार, लिखित प्रशस्ति।
६. प्रा० एन० जी० दामले लिखित विस्तृत भूमिका, जिसमें उन्होंने डा० रानडेजीके जीवन दर्शन, आध्यात्मिक शिक्षण और साहित्यिक कृतियोंके सम्बन्धमें सर्व प्राप्य सामग्री दी है।

डा० रानडे प्रति वर्ष कम-से-कम एक बार पूना अवश्य जाते थे और सदा ही उनसे भेंट करनेका अवसर मिलता था। दुर्भाग्यवश इस वर्ष वह सम्भव न हो सका, क्योंकि पूना आनेपर उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, और आते ही वे निंबल चले गए, जहां कुछ दिनोंकी बीमारीके पश्चात् ६ जून, १९५७ को वे चुपचाप चल बसे। हम सभी इसका शोक करते हैं। वे केवल मेरे लिए ही नहीं, सैकड़ों मित्रों और शिष्योंके लिए पथ-प्रदर्शक, मित्र और दार्शनिक थे। सत्य ही जिसने युवा और वृद्ध सैकड़ों लोगोंको निंबलके क्षुपहीन मैदानमें अपनी शवयात्रामें आकर्षित किया, अपना जीवन व्यर्थ ही व्यतीत नहीं किया था।

उस महान व्यक्तिके प्रति अपने इस लेखको समाप्त करनेसे पूर्व मैं डा० रानडेकी निम्न कृतियोंका भी उल्लेख करना चाहता हूं, जिनका दर्शन और धर्ममें रुचि लेनेवाले सभी लोग अध्ययन करेंगे।

१. रानडे सत्कार समिति द्वारा सम्पादित 'दार्शनिक तथा अन्य निबंध' खंड १ में निम्न निबंध हैं :—
१. हेराक्लिट्स (पृष्ठ १-२३)
२. अरस्तुकी इलयेटिक्स (Eleatics) समीक्षा (पृ० २४-७१)
३. थैलिस (पृ० ७२-९१)
४. अरस्तूकी प्रोटोगैरियनिज्म व्याख्या (Critique) (पृ० ९२-१११)
५. आत्मा दर्शन (पृ० ११२-१२०)। १९३७ के भारतीय दर्शन-सम्मेलनमें नागपुर अधिवेशनमें दिए गए सभापति के अभिभाषणका सार।
६. याज्ञवल्क्य और फिकर्शसका दर्शन (फिलास्फी आव फिकर्शस)।
७. जुगनूको देखकर कुछ विचार (पृ० १३४-१३९)।
८. विश्व-केन्द्र (पृ० १४०-१४३)।
९. भारतीय आस्तिकवाद। डॉ० मैवनीकोलकी समीक्षा (पृ० १४४-१५२)।
१०. राज्यका आदर्श। (डा० दे० स० भंडारकर लिखित 'अशोक' १९३५ की समीक्षा), (पृ० १५३-१६४)।
११. भारतीय दमनका पक्ष-समर्थन (पृ० १६५-१८४)।

२. औपनिषिदिक दर्शनका रचनात्मक सर्वेक्षण (पृ० ४७२, १९२६)।

३. 'रचनात्मक काल', ले० आर० डी० रानडे और एस० के० बेल्वलकर (पृ० २९-५१४, १९२७)।

४. अध्यात्म ग्रंथमाला (५ भाग)।

१. ज्ञानेश्वर वचनामृत।
२. तुकाराम वचनामृत।
३. संत वचनामृत।
४. एकनाथ वचनामृत।
५ रामदास वचनामृत (दूसरा संस्करण छप रहा है)।

५. महाराष्ट्रमें रहस्यवाद (१९३३) (पृ० ५४०)।

६. भारतीय विचारधाराका शीर्षबिंदु-वेदान्त (कलकत्ता विश्वविद्यालय, वसुमल्लिक व्याख्यान) प्रकाशित होना शेष है।

७. हिन्दी साहित्यमें भगवान मार्ग (पृ० ४५०,१९५४)।

८. परमार्थ सोपान (१९५४)।

९. महात्मागांधी और हिन्दी-संतोंमें आध्यात्मिक जीवनका विचार (गुजरात विद्यासभा, अहमदाबादके समक्ष दिया व्याख्यान, १९५६)।

१०. कर्नाटकमें रहस्यवाद (स्रोतों सहित)-कर्नाटक विश्वविद्यालय-व्याख्यान।

११. भगवत्प्राप्ति-दर्शनके रूपमें भगवद्गीता (नागपुर विश्वविद्यालय-किलेदे व्याख्यान) शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

१२. कौशिक-व्याख्यान (एस० पी० महाविद्यालय, पूनामें दिए गए।

डा० रानडेका शिक्षा काल बड़ा अच्छा रहा, और इसका शीर्ष बिन्दु एम० ए० परीक्षामें कुलपति स्वर्णपदक प्राप्त करना था, पर १९०९ के पश्चात् उनका स्वास्थ्य कठिन रोगसे बहुत गिर गया था, जिससे १९१२ में वे कुछ-कुछ ठीक हो गए। पर तबसे जीवनभर वे "हड्डियोंके पिंजर" रहे। हमारे लिए यह रहस्यवाद ही है कि किस प्रकार इन हड्डियोंके पिंजरने इतने उच्च स्तरकी विलक्षण साहित्य कृतियाँ लिखीं। "मस्तिष्ककी बात, मिट्टीकी नहीं होती" ऐसा किसी अंग्रेजी कविने कहा है, और डा० रानडेकी साहित्यिक कृतियाँ पहले ही अमर बन चुकी हैं, क्योंकि उनपर आध्यात्मिक जीवनकी छाप है। ४५ वर्ष पूर्व जब अरविंदने यवन-दर्शनपर डा० रानडेके निबंध पढ़े, उन्होंने लेखकको "पूर्ण लेखक और विद्वान" कहा। डा० रानडेकी पिछली कृतियोंसे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया, पांडिचेरीके दार्शनिक संत की आंशा सत्य प्रमाणित होती है। कोई भी संक्षिप्त प्रशस्ति डा० रानडेको इससे अच्छी नहीं दी जा सकती, जैसी कि बिहारके भूतपूर्व राज्यपाल लोकनायक बापूजी अणेने सत्तरवीं वर्षगांठपर ३ जुलाई, १९५८ को निम्न प्रशस्ति रचकर उन्हें दी थी।

ओ३म्

रामचन्द्र प्रशस्ति

यो रानडेवंशललामभूत :
विद्वद्वरै पूजितपादपीठः।
आचारवानुच्चविचारदर्शी
तं रामचन्द्रं शिरसा नमामि ॥१॥

संजातो जमखण्डिनाम्नि नगरे विद्यावतामग्रणीः,
विद्यादानतपोरतोऽतिविमले गंगासितासंगमे।
वेदग्रंथशिरः स्थितोपनिषदाम् कृत्वाय यो मंथनम्,
तप्तेभ्योऽमृतमाददासि सततं संसारदावानलै ॥२॥
भक्ति ज्ञान विरक्तिबोधसरिता यस्यामनास्तिः सुता,
शिष्यान्तः करणं करोति विमलं चाध्यात्मतत्त्वास्पदम्।
योगारूढमतिः समस्तजगतो बंधुर्विलुप्तैषणः,
तत्वज्ञानपरायणाय गुरवे रामाय तस्मै नमः ॥३॥

अनु०—बाबूराम वर्मा

हिन्दी भाषा और विदेशी : पृष्ठ ४१४ का शेषांश

संघर्षी घोष ध्वनि भी अंगरेजीके बहुत कम शब्दोंमें प्रयुक्त होती है, क्योंकि यह तो फ्रेंच भाषासे गृहीत शब्दोंमें ही यत्र-तत्र है।[६]

लेखकने आगे चलकर एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसमें उनके कथनानुसार तालव्य और मूर्धन्य 'य' दोनों ध्वनियाँ हैं, जैसे Usual—यूजुअलमें प्रथम [य] तालव्य है और द्वितीय [य] मूर्धन्य। पहले 'य' में उच्चारण करते समय हम जिह्वाको तालुसे सटा भर देते हैं, परन्तु दूसरे 'य' को बोलनेके लिए हमें जिह्वाको मोड़कर मूर्धाकी ओर ले जाना पड़ता है। लेखकका यह कथन सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। तालव्य घोष संघर्षी ध्वनिके उच्चारणके हेतु जिह्वा मुड़ती कदापि नहीं है।

वस्तुतः ध्वनिके सम्यक विवेचनके लिए उच्चारण-विधि तथा उच्चारण-स्थल दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। इस ध्वनिपर ही विवेचन करते हुए पं० केशवराम भट्ट[७] अपने व्याकरणमें लिखते हैं कि फ़ारसीके अज़्हा, मुज्मा आदि शब्दोंमें ज़-का वैसा ही उच्चारण होता है, जैसा अंगरेजीके 'Pleasure' में। यह उच्चारण 'ज़्ह' से दिखाया जायेगा। इस प्रकार भट्टजी द्वारा दिया गया सुझाव भी हमारे सुझाव के ही अधिक निकट है।

मैं आशा करता हूं कि उपर्युक्त विवेचनसे "हिन्दी भाषा और विदेशी ध्वनियाँ" लेखसे उत्पन्न भ्रान्तियाँ दूर होंगी।

६. प्रो० धल—वही, पृष्ठ १७८।

७. पं० केशवराम भट्ट, संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण, बिहार बन्धु छापाखाना, बांकीपुर, सं० १९६०, पृष्ठ २

हिन्दी भाषा और विदेशी ध्वनि

कैलाशचन्द्र भाटिया

भाषाका विकासशील रूप उदार तथा सहिष्णु होता है। उसमें अन्य भाषाओंके शब्दों, रूपों तथा ध्वनियोंका आगम होता रहता है, जिनमेंसे अधिकांश तो कालान्तरमें उस भाषाके अंग बन जाते हैं। ध्वनियोंके आगमका अध्ययन इस दिशामें कठिन तथा प्रयत्नसाध्य कहा जायगा। इस प्रकारका अध्ययन भाषाके विश्लेषणके साथ भाषाकी प्रगति तथा अन्य भाषाओंके सौजन्यका भी प्रकटीकरण करता है। इस विषयपर एक लेख "हिन्दी भाषा और विदेशी ध्वनियाँ"[1] शीर्षकसे 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भमें लेखकने हिन्दी भाषामें गृहीत विदेशी ध्वनियोंकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला, फारसीसे आई नवीन ध्वनियोंका विवेचन किया तथा संक्षेपमें उन ध्वनियोंकी ओर भी निर्देश मात्र किया है, जो संस्कृतमें नहीं हैं। आगे चलकर पृष्ठ २९१ पर लेखकने एक नवीन ध्वनिकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया, परन्तु इतना होनेपर भी आज तक हमारा ध्यान फ़ारसी तथा अंगरेजीकी एक ध्वनिकी ओर नहीं गया। आज हमारी भाषामें बहुतसे ऐसे अंगरेजी शब्दोंका प्रयोग होता है, जिसमें उपर्युक्त ध्वनि विद्यमान होती है—Divisional, Supdt. Certificate, Treasury, Casual Leave. यहां लेखकके कथनसे यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि आखिर वह चाहता क्या है? मैंने सप्रयत्न जाननेकी चेष्टा की और फल यह निकला कि उक्त पाँच शब्दोंमेंसे केवल तीनमें एक-सी ध्वनि है, जो तालव्य [श] ध्वनिका घोष रूप है, पर शेष दोमें वह ध्वनि भी नहीं, फिर इससे पूर्व लेखकने तालव्य [श] ध्वनिके लिए कुछ अंगरेजीके उदाहरण दिए हैं, Sion, Sure इनमेंसे प्रथम शब्दके परिनिष्ठित उच्चारणमें तालव्य [श] को उच्चरित नहीं किया जाता, इसमें तात्पर्य [स] मात्र है।

अस्तु। आगे चलकर हमारी धारणा निश्चित हो गई कि लेखक तालव्य [श] के घोष रूपकी ओर ले जानेके लिए ही यह सब भूमिका बांध रहा था। इस ध्वनिके लिए उन्होंने इस प्रकार विचार प्रकट किये हैं। आजतक इस ध्वनि के लिए 'ज' का प्रयोग करते रहे और फ़ारसीके अज़हदा, ज़ाला आदि शब्दको इसीसे लिखते रहे, किन्तु इस ध्वनिका उच्चारण 'ज' की भाँति कदापि नहीं, जैसा कि हमें ऊपर लिखित अंगरेजी शब्दोंसे ज्ञात होता है, वरन् इसका उच्चारण कुछ मूर्धन्य 'य' के समान है। देवनागरी लिपिमें केवल एक ही तालव्य 'य' है। मेरे क्षुद्र विचारोंमें इसके नीचे बिन्दु लगाकर मूर्धन्य बनाया जा सकता है—'य'से शुद्ध रूपमें लिखे जा सकते हैं—Treasury ट्रेयूरी, Measure मेयूर, Provisional प्रोवीयूनल, Division डिवीयून, Casual कैजुअल।" इस प्रकार विद्वान लेखकने न मालूम किस विचार-मुद्रामें बैठकर यह क्लुकाव अंगरेजीके शब्दोंका शुद्ध रूपान्तर करनेके लिए प्रस्तुत किया है। इस ध्वनिके उच्चारणमें तालव्य 'य' का तो कुछ भी अंश मात्र नहीं। यह तो अंगरेजीकी ताल्व-वर्त्स्य घोष संघर्षी व्यंजन ध्वनि है, जिसमें उच्चारणके लिए जिह्वानोक तथा जिह्वाग्र वर्त्स्यके पीछे के भागके साथ सटकर इस प्रकार चपटे रन्ध्रकी सृष्टि करती है कि वायु संघर्षके साथ बाहर आती है[2], जिह्वाका पीछेका भाग भी उठा हुआ रहता है। इस ध्वनिके उच्चारणमें वर्त्स्य के समीपका रन्ध्र अपेक्षाकृत बड़ा होते हुए भी जिह्वामध्यसे जिह्वापश्च तक अपेक्षाकृत अधिक संकीर्ण रहता है।

इस ध्वनिके लिए अन्तर्राष्ट्रिय ध्वनि-लिपिमें [ʒ] चिह्नका प्रयोग होता है। भाषा-विज्ञानके सभी गण्यमान व्यक्ति इस ध्वनिको नागरीमें रूपान्तरित करनेके हेतु [ऋ] का क्लुकाव देते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा[3], प्रो० धल[4] तथा भारतीय परिषद् द्वारा नियुक्त समिति[5]ने भी इसी चिह्नका प्रयोग किया है। इस ध्वनिमें मूर्धन्यता कहाँ? मूर्धन्य रूप तो फिर मूर्धन्य (ष) का घोष रूप होगा, जिसके लिए अन्तर्राष्ट्रिय ध्वनि-लिपिमें [ɖ] चिह्न है। निश्चित रूपसे यह मूर्धन्य ध्वनि अंगरेजीके इन शब्दोंमें नहीं है। ताल्व-वर्त्स्य

[शेषांश पृष्ठ ४१३ पर देखिए]

१. श्री विनय कुमार 'चन्द'-हिन्दी भाषा और विदेशी ध्वनियाँ, विशाल भारत, अप्रैल १९४९, पृष्ठ २८९-९१।

२. डेनियल जोन्स, एन आउटलाइन आव् इंगलिश फ़ोनिटिक्स, १९५६, पृष्ठ १९०-१९३।

३. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषाका इतिहास, १९४९, पृष्ठ २४।

४. प्रो० गोलोक बिहारी धल, ध्वनि-विज्ञान, १९५८, प्रारम्भमें चार्ट।

५. इस समितिमें डॉ० बाबूराम सक्सेना तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी आदि भाषाविद् थे, लेखक भी विशेष निमंत्रणपर उपस्थित था।

भारत की औद्योगिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण

का ग ज

जिसके बिना आपका तथा
आपके उद्योग का स्रोत
कभी भी अग्रसर नहीं होगा!

का ग ज

जो आज मनुष्य के जीवन में
अत्यन्त आवश्यक अंगके रूपमें
प्रवेश कर गया है।

का ग ज

प्रिंटिंग और पेंगिंक के लिए
हमारे यहां पर्याप्त मात्रा में
हर समय सुविधा-पूर्वक दर में
प्राप्त होता है।

भारत कमर्शियल एन्ड ट्रेडिंग कं०

५, क्लाईव रो, कलकत्ता-१

डिस्ट्रीब्यूटर्स आफ—ओरियण्ट पेपर मिल्स लि०

The Ideal Food, Drink & Diet



FOR YOUR CHILDREN



LILY *Brand* **BARLEY**

Absolutely Fresh & Pure

Always prepared under Hygienic Condition

• LILY BARLEY MILLS PRIVATE LTD. CALCUTTA-4 •

[मानसिंहका डाकूदल—पृष्ठ ३४४ का शेषांश]

उसमें हमें बोलना तो नहीं था, पर ऐसा फँसाव पड़ा कि इन पंक्तियोंके लेखक तथा रावतजी दोनोंको बोलना पड़ा और विस्तृत रूपसे बोलना पड़ा और एक घंटा बोलना पड़ा। रावतजीको भी पैंतालीस मिनट बोलना पड़ा। रातके साढ़े दस बजने आये। जैसे ही मीटिंगसे हमलोग निकले तो पता चला कि आगरे जिलेके देहाती क्षेत्रके पुलिस कप्तान ठाकुर बहादुरसिंह (शायद यही नाम है) सायंकालके ठीक सात बजे रावतजी और लेखकके लिए निश्चित जैसी-ही पिकअपमें मय बाल-बच्चोंके बटेश्वरसे शिकोहाबाद-फिरोजाबाद मार्गसे आगरेको चले। जमुना पारकरके जैसे ही पिकअप जमुनाघाट और परिहर गाँवके बीच पहुंची, वैसे ही दनादन कई फायर पिकअपपर हुए। खैर यह हुई कि टायरमें कोई गोली नहीं लगी, पर एक गोली श्रीमती बहादुरसिंहके सिर को खरोंचती हुई निकल गयी। बिना घबराये उनके पतिने साड़ी उनके सिरसे बाँध दी और शिकोहाबाद जाकर प्रारंभिक चिकित्सा करायी। वे बालबाल बच गयीं। हमलोग रातके ग्यारह बजे चलकर पुलिसकी गाड़ीकी संरक्षता में शिकोहाबादतक आये।

अगले दिन इन पंक्तियोंके लेखकने तत्कालीन जिलाधीश ठाकुर रामनगीनासिंहसे जाकर श्रीमती बहादुरसिंहको उनके बचनेपर बधाई दी और बताया कि मानसिंहके निशाना तो हमलोग थे, न कि श्री बहादुरसिंह और उनकी पत्नी। पर विधिका विधान कौन टाल सकता है।

ग्वालियर और आगरेकी स्थिति बिगड़ती गयी। पुलिस और मानसिंहकी मुठभेड़ें होती ही रहतीं और उनमें पुलिसके दो-एक व्यक्ति मारे जाते। उधर मध्यप्रदेशकी पुलिसने भी उतनी ही कड़ाई शुरू की, जितनी उत्तरप्रदेशकी पुलिस आगरेमें सक्रिय थी। एक लम्बी मुठभेड़में अनायास ही मानसिंहके लड़के तहसीलदारसिंहको गिरफ्तार कर लिया गया। पकड़नेवाला यह नहीं जानता था कि वह डाकू तहसीलदारसिंह है। तहसीलदारसिंहका घाव ठीक कराया गया, मुकदमा चलाया गया और जिन दो-एक व्यक्तियोंने गवाही बड़ी कठिनाईसे दी, उनके घरपर अबतक पुलिसका संरक्षण रहता है। कई मुकदमोंमें तहसीलदारसिंह बरी हो गये, दो-एक मामलोंमें दंडित। अपील शायद अब सुप्रीम कोर्टमें होनेवाली है या हो गयी है, इस बातका पता पिछले दिनों रूपलाल द्वारा डाली गयी डकैतीके समाचारोंके साथ ही मिला। कहते हैं, जहाँ रूपलालने खुले तौरसे कहा कि तहसीलदारसिंहको अपीलके लिए उसे पचास हजार रुपया चाहिए। बड़े मजेकी बात यह है कि तहसीलदारसिंहके पास हिसाब-किताबकी एक डायरी मिली थी, जिसमें एक लाख पचहत्तर हजार रुपयेका हिसाब है और यह रकम आगरेवालों पर ही अधिक है। जिनपर रुपया चाहिए, उनके नाम डायरीमें लिखे हैं। आगरेके तत्कालीन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट श्री जगतमोहन रैना जानते हैं। इसी बातको लेखकने जब उत्तरप्रदेशके मालमंत्री चौधरी चरनसिंहको बताया, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, पर इस बातकी ताईद जिलाधीश आगरा, तत्कालीन पुलिसके बड़े कप्तान—अब स्वर्गीय—श्री त्यागजी ने की। त्यागीजीने अकेलेमें यह भी कहा, "पंडितजी, आप नौकरी करने देंगे या नहीं।" हमारा खयाल है कि वह डायरी अब भी होगी। यह हमें अच्छी तरह मालूम है कि मानसिंह रुपया कर्जपर भी देते थे और विश्वासपात्र लोगोंके पास रकम जमा करते थे। रूपलालने वह रकम वसूल करनेकी भी कोशिश की, पर शहरमें रहनेवालोंसे वह रकम कैसे वसूल हो।

नई दिल्लीतक लोग दौड़ लगाने लगे और पुलिसको अपना अभियान और कठोर करना पड़ा। हमें यह लिखने में तनिक भी संकोच नहीं कि डाकुओंके विरुद्ध उत्तरप्रदेशमें जितनी कड़ाई बरती गयी, उतनी मध्यप्रदेशमें नहीं। यह भी हम निःसंकोच लिखते हैं कि मानसिंहके मारनेमें उत्तर-प्रदेशकी पुलिसके लिए यही कहा जा सकता है कि 'नाच-कूच बंदटटू मरे और नाज लै गए जुगटटू।' उत्तरप्रदेश और विशेषकर आगरेकी सशस्त्र पुलिस तथा अन्य पुलिसने इतना परिश्रम किया कि जिस ढंगसे मानसिंहका अंत हुआ, वह मध्यप्रदेश पुलिसपर कलंक ही है। कलंक इसलिए कि अपने अंतिम समयसे ४८ घंटे पहलेसे पुलिसने मानसिंहको इतना खदेड़ा था कि एक मिनटको भी बैठना, झपकी लेना, असंभव कर दिया था। अगले २४ घंटोंमें वे सब-के-सब गिरफ्तार हो जाते। पर यहाँ मानसिंहके मारनेके ढंगके औचित्य अथवा अनौचित्यपर बहस नहीं करनी। वह तो एक ऐसी बहस होगी, जैसे भीमद्वारा विधान-विरुद्ध गदा प्रहारपर दुर्योधनने की थी। असलमें मानसिंहके विषयमें कुछ बातें तो ऐसी हैं, जो केवल जुबानी ही कही जा सकती हैं और मानसिंहका अंत उन बिरादरीवालोंके लिए सबक है, जो स्वार्थ-सिद्धिके लिए साम्प्रदायिक सर्पिणीको सजग करते

हैं। डाकू-जीवनमें जहाँ मानसिंह जैसे व्यक्ति अपनी जान हथेलीपर लिए फिरते हों, वहाँ किसी-न-किसीपर विश्वास किया ही जाता है। इन पंक्तियोंके लिखते समय श्रीमती विद्यावती राठौर एम० एल० सी० हमसे मिलने आयीं और जब हमने उनसे पूछा तो उन्होंने बताया, "उत्तरप्रदेशके तत्कालीन आई० जी० पुलिस श्री लाहिड़ीने उनसे कहा था कि अगर मानसिंह आत्म-समर्पण कर दें और मुकदमेमें कोई गवाही न मिले, तो छोड़ दिया जायगा। मानसिंह आत्म-समर्पण करनेको तैयार थे, पर उनके पुत्र तहसीलदारसिंह और सूबेदारसिंह आत्म-समर्पणको तैयार न थे। मानसिंह ने एक बात यह रखी थी कि उनके आत्म-समर्पण करनेके बाद या तो श्रीमती राठौर या कुँवर बैजनाथसिंह मानसिंहके मकानपर तबतक रहें, जबतक कि मानसिंह अदालतसे छूट न आएँ।" श्रीमती विद्यावतीजीसे यह बात हमने इसलिए पूछी, क्योंकि वे मानसिंहसे मिला करती थीं। इस बातको लिखनेकी आज्ञा उन्होंने हमें दे दी है, इसीलिए हम लिख रहे हैं।

मानसिंह-जीवन-नाटकका पटाक्षेप बड़ा ही रोमांचकारी और करुणापूर्ण है। चारों ओरसे घेरे जानेपर दिन-रात आँख-मिचौनी खेलनेके कारण मानसिंहका पैंसठवर्षीय शरीर साथ नहीं दे रहा था। पं० रूपालाल (रूपा) तो शक्तिपुंज है। हमने कभी न मानसिंहको देखा, न पं० रूपलालको। पर जिन्होंने पं० रूपलालको देखा है, वे बताते हैं, तीन-चार आदमियोंको एक साथ हाथ-पैरसे मारनेके योग्य, बघेरेका सजग, कंजी आँखें, सुन्दर शरीर, दिमागसे चतुर रूपा एक सजीव व्यक्ति है। उसके दो-एक भाई पुलिस मुठभेड़में मारे जा चुके हैं। अखीरतक वह कक्का मानसिंह, सूबेदार सिंह, तहसीलदारसिंहके लिए लड़नेको तैयार है। वैसे मानसिंहकी ही भाँति रूपलाल भी अपने वर्तमान जीवनसे खुश नहीं है। मानसिंह-नाटकका अन्तिम दृश्य भिंडके निकट (मध्यप्रदेश) मुरैनामें हुआ। मध्यप्रदेश सरकारने केन्द्रके प्रभावसे काफी कड़ाई की। वहाँके गृहसचिवने भी कड़ा कदम उठाया। जनताने भी श्री नरसिंहराम दीक्षित (गृहसचिव) के विरुद्ध कड़ी बातें कहीं। तथ्यातथ्यपर हमें नहीं जाना। पर मानसिंहके मध्यप्रदेशके एक पुलिस अधिकारी बड़े विश्वासपात्र थे। उनपर बड़ा जोर पड़ा। भिंडके ही निकट मानसिंहके एक साढ़ू रहते थे। पुलिस और गुरखे उनके पीछे पड़े रहते थे। मानसिंह, सूबेदारसिंह और रूपलाल लुक-छिपकर भागे फिर रहे थे। दो दिनसे नींद हराम थी, नाकेबंदी बड़े जोरों की, सुअर और शेरके शिकारमें जैसे निकासके स्थानकी नाकेबंदी की जाती है, वैसे ही। घबराये हुए मानसिंह अपने साढ़ूके पास पहुंचे। वे साढ़ू पुलिसके खास आदमी थे और मानसिंहके तो रिश्तेदार तथापि वर्षोंसे खास विश्वासपात्र आदमी थे। पर इस देशको राष्ट्रिय प्रतिष्ठातकको रुपया और दबावसे अनेक बार क्षति पहुंची है। मानसिंहका तो कोई राष्ट्रिय प्रश्न था ही नहीं। भूखे, प्यासे, थके मानसिंह और रूपलाल अपने साढ़ूके घर पहुंचे। पेटकी ज्वाला शांत करनेके लिए दूध तीनों गिलासोंमें लाया गया। चतुर रूपलाल कुछ भाँप गया और मानसिंहको सचेत करते हुए कहा, "कक्का, दूध मत पियो, मुझे विश्वासघातका खतरा है।' गम्भीर मुद्रामें मानसिंहने उत्तर दिया, "रूपलाल! अगर यहाँ ही विश्वासघात होगा, तो मैं मरना ही पसंद करूँगा।" ऐसा कहते हुए मानसिंहने दूध पी लिया। सूबेदारसिंहने भी पी लिया, पर रूपलालने नहीं पिया। रुकना खतरनाक था। वहाँसे कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि सूबेदारसिंहको कुछ गड़बड़ी मालूम हुई तो गलेमें अँगुली डालकर सूबेदारसिंहने उल्टी कर दी। वहाँसे वे कुछ ही आगे गए होंगे कि सशस्त्र गुरखोंका दल आता दिखायी दिया। गुरखे बाँके लड़ाके हैं—पर जिनको तलाशमें थे, वे भाग भी नहीं सकते थे। दो दिनके थके, जगे, भूखे, जहरके असर होनेके समयमें ही तीनोंने पोजीशन ले ली। दोनों ओरसे गोलियाँ बरसने लगीं। कुछ करनेसे पहले ही विषके प्रभावसे मानसिंह तो गिर पड़े और प्राण खो बैठे। मानसिंहको मारनेकी जो बात है, वह इतनी ही सच है कि मानसिंहके शवमें ही गोलियाँ लगी। सूबेदार भी लड़खड़ाकर गिर पड़ा। रूपलाल एक गुरखेको मौतके घाट उतारकर वहाँसे रफू-चक्कर हो गया। रूपलाल अब भी सक्रिय है और उसने कक्का मानसिंहका बदला उनके साढ़ू तथा उनके परिवारके कई व्यक्तियोंको मारकर ले लिया। मानसिंहके बाद रूपलाल पहलेसे भी अधिक सक्रिय है। यह नाटक अभी कब तक चलेगा और कितने नर-मुंडोंकी आहुति अभी दी जायगी, इसका पता विधाताको ही होगा। आखिर इसका पटाक्षेप तो होना ही है।

रही मानसिंहकी बात सो उनके लिए तुलसीदासकी यही युक्ति ठीक रही :—

'होइहै वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावे शाखा।'

रही उनके मृतक शरीरकी बात सो उन्होंने अपने साढ़ू के यहाँ चुपचाप रूपलालसे कह ही दिया था कि अगर परम स्नेही ही विश्वासघात करे तो मरना ही ठीक है। जहरसे शरीरमें भूचाल-सा आया था। उस भूचालके कारण आत्मा-रूपी हंस अपने निवास-शरीरको छोड़कर भाग गया और अनीसके शब्दोंमें :—

यों रुहके ताइर तनोसर छोड़के भागे,
जैसे कोई भूचालमें घर छोड़के चले।

ताइर=पक्षी, रुह=आत्मा।

कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

'शलभ'

दीप बातीं लक्ष मृतिका देह-दीपक जल रही हों,
दर्द दरबारी यहाँ गाने लगे जब जाग फिर वो,
तो समझ लेना प्रिये ! उस रोज निश्चय ही धरापर—
एक मेरी कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

-१-

सुआपंखी साँझ निज डैने पसारे,
छा गई हो सृष्टिपर दो क्षण ठहरकर !
थम गई हो गति सिहर—
विश्रामके श्रम-विन्दु सी गिर !
वक्षके नीचे धड़कती
साँसको बरबस दबाये !
प्राण—बिछुड़े प्राणके उस
प्यारको दिलमें छिपाये !
कारखानों, स्कूल, हाटों—राह तकनी सी रही जो,—
स्नेहका संकेत पाती स्वप्न-सृष्टि जी रही हो !
तो समझ लेना प्रिये ! उस रोज निश्चय ही धरापर—
रूप-कारामें कसा वह दीप्त यौवन भी विवश है !
आज मेरी कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

-२-

चूनरी ओढ़े कजरिया रात रुनझुन
गगन - शिखरोंसे उतरती !
झिलमिला सलमा सितारोंसे सजी सी—
देह मेरे हृदय-मंदिरसे विहँसनी !
सड़क, गलियाँ, हाट, चौराहे—सभी कुछ,
कौन जादूके बने से !
इस अँधेरी रातके आँचल तलेसे
झाँकते हैं वे परस्पर, सब ठगे-से !
गटर, सड़ती नालियाँ, वे म्युनिसिपलकी गाड़ियाँ जो—
मेदिनी भी निविड़तममें सुन्दरी सी सज रही हो !
तो समझ लेना प्रिये ! उस रोज निश्चय ही धरापर—
लौह दोषी-देहको यह प्रेमका पारस-परस है !
आज मेरी कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

-३-

फुलझड़ी उल्लासकी छूटे निरन्तर,
झर सितारोंसे चमकते स्वप्नके कण !
भर रहे हों रात आधी में यहाँ—
गिर-गिर निराशासे लिया एकांत आँगन !
स्वप्नकी गलियाँ रहे हों खेल शिशु वे चाहनाके,
चमक चेहरेपर गुलाली छा रही हो !
उन घने आनंदके आलोक क्षणमें—
चित्र-छाया सी नयन भरमा रही हो !
जलपरीकी कल्पना सी कांतदर्शी चेतना वो,
कमलकी कोमल पँखुरियोंमें लिपटकर जागती हो !
तो समझ लेना प्रिये ! उस रोज निश्चय ही धरापर—
प्राप्त करनेकी पिपासामें यहाँ कितनी तरस है !
आज मेरी कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

-४-

रातका रंगीन-गीतोंसे भरा मन,
मुरलिकाकी साँस सा कुछ सिहर जाये !
शरबती आँखें सुहागन लाज आँजे—
आस्थाका दीप जब आकर जलाये !
स्वर्गकी सौ लक्ष्मियाँ रूठे भले तब,
यूँ मुझे चिन्ता नहीं है !
और मेरी छाँहतकका साथ भी छूटे भले तब,
आदमी मरता नहीं है !
हासकी छूटे भले ही लहर आतिश बाजियाँ वो,
पर, तिमिरके कफन लिपटी ज़िन्दगी लेटी हुई हो—
तो समझ लेना प्रिये ! उस रोज निश्चय ही धरापर—
दीपको जलना यहाँ अब भी अनेकों ही बरस है !
आज मेरी कामनाके रूपका पूजा-दिवस है !

McLEOD & CO., LTD.

JUTE MILLS
RAILWAYS
INSURANCE

TEA GARDENS
SHIPPING
ENGINEERING

Telegrams : "OUTLINE"

Phone : 23-5321/8 (8 Lines)

3, Netaji Subhas Road, Calcutta.

Managing Agents :

BRITANNIA ENGINEERING CO., LTD.

Manufacturers of :

Jute Machinery : Tea Machinery : Railway Engineering Components : 'Colfix' Bitumen Emulsion for Road Dressing.

Importers and Agents :

Anti-Malarial and Anti-Blight Spraying Equipment ; Automatic Counting and Measuring Instruments for Industrial Purposes ; Ball Bearing Jute Spindles ; Ball, Roller and Taper Roller Bearings ; Bucket Elevators ; Concrete Mixers ; Concrete vibrators ; Cranes ; Crushing Plants ; Deflector Tea Fanners ; Digging Buckets ; Dumpers ; Excavators ; Hoists ; Hot Asphalt Road Dressing ; Jaw Crushers ; Jute Sizing Machines ; Loaders ; Locomotives ; Mobile Cranes ; Mortar Grinders ; Oil Engines ; Pruning Knives ; Shunting Tractors ; Stackers.

कालिदासका नारी-वर्णन

आर० श्री निवासाचार्य

विश्वके साहित्यकाश पर अनेक दीप्तिमान् नक्षत्रोंने उदित होकर अपने प्रकाश-पुंजकी किरणें दिक्-दिगन्त तक विकीर्णकी हैं। इनमेंसे अनेक नक्षत्र लुप्त हो गये हैं; कालके अनन्त गर्भमें ऐक्य हो गये हैं। परन्तु उनका अमल-आलोक अद्यावधि जनताके जीवन-मार्गको सदैव प्रकाशसे प्रभाशित कर रहा है तथा उनकी अमर कृतियोंका आलोक युग-युगान्तरसे विश्व-साहित्य को। ऐसे ही जाज्वल्यमान नक्षत्रोंमें से वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास भारतीय संस्कृतिके प्रतिनिधित्रय हैं तथा संस्कृति साहित्यके ज्योतिर्मय पिण्डत्रय। इन महाकवियोंकी वाणीसे जो काव्य-सुधा निस्सृत हुई है, उसने न केवल जनताके मानसको शीतल कर दिया है, अपितु "चिरंतन सत्य" को "शिव एवं सुन्दर" के रूपमें दर्शाया है।

जो प्रेम अपनी उद्दाम-गतिसे स्त्री-पुरुषोंको सैकड़ों बंधनों से मुक्त कर देता है, जो प्रेम सांसारिक जीवनसे हटाकर परार्थ-जीवनकी ओर ले जाकर उन्हें पूर्णतया प्रदान करता है, वही प्रम कालिदासके काव्यत्रय—कुमारसंभव, रघुवंश, एवं मेघदूत-तथा नाटकत्रय-मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय एवं अभिज्ञान शाकुन्तला—के प्राण-पखेरू है। इसी प्रेमकी नाना अवस्थाओंका दिग्दर्शन बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंगसे करनेमें कालिदासने अपनी प्रखर प्रौढ़ प्रतिभाका परिचय दिया है। अतः कालिदासकी नारियाँ पुरुषसे अधिक आकर्षणीय बनकर विश्वव्यापी प्रकृतिकी दिव्य-मूर्तियाँ बन गई हैं।

कालिदास एक ओर शृंगार एवं प्रेमके भावुक कवि हैं तो दूसरी ओर सौंदर्य एवं सौकुमार्गके उपासक। अतः नारी-सौंदर्यकी भावनाको पहचानने तथा प्रकट करनेमें सिद्ध-हस्त हैं, कालिदास। उनकी दृष्टिमें बाह्य प्रकृतिका सौंदर्य, जो मनोहरता, अभिरामता प्रस्तुत करता है, वही अभिरामता, मनोहरता अन्तः प्रकृतिका सौंदर्य भी प्रस्तुत करता है। नारी-सौंदर्यके, जो अभिराम वर्णन कृतियोंमें मिलते हैं, वे कालिदासके रसमय हृदयका परिचय देते हैं।

शकुन्तलाके रूप-सौंदर्यका वर्णन :—

अधरः किसलय रागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहूः।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥

"शकुन्तलाके होंठ नव पल्लवकी लालिमा लिए हुए हैं; बाहें कोमल शाखाओंका अनुशरण करती हुई झुकी हुई है; कुसुमका-सा लुभावना यौवन अंगोंमें प्रस्फुटित हो रहा है।"

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः
अनाविद्धं रत्नं मधुवनमना स्वादित रसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थासयति विधिः॥

"यह (शकुन्तला) वह कमनीय कुसुम है, जो अभी तक सूंघा नहीं गया है; यह वह सुकुमार नूतन किसलय है, जिस पर किसीके नखकी खरोंच नहीं लगी; यह वह रत्न है, जो अभी तक चखा नहीं गया; न जाने विधाता किसे पूर्व-जन्म-कृत समस्त पुण्योंके सारभूत इस निष्कलंक सौंदर्यका भोक्ता बनायेगा।"

उर्वशीका पूरूरवासे वर्णन :—

आभरण्या भरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधन विशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुः तस्याः॥
—विक्र० २-३

"हे प्रिय मित्र! उसका शरीर आभरणोंका आभरण है, सर्व विध अलंकारोंका अलंकार है, तथा सर्व प्रकारके उपमानों का प्रत्युपमान है।"

पार्वतीकी मुस्कराहटकी शोभाका वर्णन :—

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यात् मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य॥
कुमार० १-४४

"यदि उजला पुष्प अरुण वर्णके नव पल्लवपर रखा जाय और यदि मोती लाल-लाल मूँगोंपर निहित हो जाय, तभी ये दोनों पार्वतीके अरुणाधरोंपर प्रसरित मुस्कराहटकी समता प्राप्त कर सकते हैं।"

कालिदासने जिस नारी-मंडलीको उपस्थित कर दिया है, उसमें नाना कोटिकी नारियाँ हैं। उनमेंसे धीरताकी मूर्ति-धारिणी, ईर्ष्या एवं उपसहनशीलताकी प्रतिनिधि इरावती, चपल-प्रेमकी प्रतिमा मालविका, उन्मत्त-प्रेमकी अधिकारिणी उर्वशी, तपस्या एवं पातिव्रत्यकी प्रतिमूर्ति पर्वतराज-पुत्री पार्वती, ममतामयी माता एवं प्रेममयी पत्नीकी प्रतिस्वरूपा जगज्जननी

जनकनन्दिनी जानकी, प्रकृतिकी कन्या एवं आश्रमकी निसर्ग-बालिका शकुन्तला, सौजन्य तथा पातिव्रत्यकी दिव्य-मूर्ति औशिनरी, गाढ़-स्नेहकी परिचायिका चित्रलेखा अविस्मरणीय स्त्रियाँ हैं। इन्हें एक ओर कल्पना-शक्तिका वरदान मिल गया तो दूसरी ओर चिन्तन-शक्तिका भी। इसीलिए ही इनमें सामाजिक नियमोंके विरुद्ध हाव-भाव एवं आचार-व्यवहार तथा अविश्वास एवं अनिश्चयताने घर कर लिया है।

कालिदास रमणीके स्निग्ध-सौंदर्यकी उत्तरोत्तर वृद्धिके चित्रणमें, जिस प्रकार सफल हुए, उसी प्रकार नारीके मधुमय प्रेमके क्रमिक विकास-विश्लेषणमें भी। प्रथम कृति मालविकाग्नि-मित्रमें राजसी वातावरणमें पनपनेवाले यौवन सुलभ चपल-प्रेमका चित्र है, तो द्वितीय कृति विक्रमोर्वशीयमें उद्दाम कामवासना-पूरित प्रेमका चित्र है। "कालिदासस्य सर्वस्वम् अभिज्ञान शाकुन्तल" में इन दोनोंकी वियोगके कठोरानलमें तप-तपकर विशुद्ध प्रेममें परिणतिका चित्ताहारी चित्रण है। कालिदासके शब्दोंमें प्रेमका प्रवाह एक नदीकी भाँति बहता रहता है—

नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासंकटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणी भवति॥
विक्र० ३-८

"विषम शिलाखंडोंकी विघ्न-बाधाओंसे स्खलित वेग-युक्त नदीका प्रवाह, जिस प्रकार एक सौ उपधाराओंमें विभक्त हो जाता है, उसी प्रकार समागम सुखका विघ्न होजानेपर प्रेम सौगुना गुणित हो जाता है।"

यौवनोन्माद-मत्त कामुक और कामुकीका पुनस्समागम व संभोगानुभव ही प्रेमकी चरमसीमा नहीं है। रूप-यौवन-ऐश्वर्यसे क्षणभंगुर सुखका अनुभव किया जा सकता है। पर वियोगमें अनुभवित कष्टों तथा विरहवेदनाएँ परस्परानुरागकी वृद्धिकर प्रेमको गाढ़ बनाती हैं। प्रेमरूपी सोना विरहकी कठोराग्निमें घुल-घुलकर ही अपने स्वार्थरूपी कलंकको जलाकर जाज्वल्यमान बन जाता है; पवित्र बन जाता है; स्त्री-पुरुषके समागमके योग्य बन जाता है। तप्तेन तप्तमय-सा घटनाय योग्यम्—(विक्र० २-१६)—यही भाव कालिदासकी सर्वकृतियोंका आधार स्तंभ है।

नव-वर्ष मंगलमय हो!

पूजन तथा आराधना

के लिये

विशुद्ध एवं पूर्ण पवित्र सामग्रियों की आवश्यकता है!

हमारे यहां शुद्ध घी द्वारा प्रस्तुत

मिष्टान्न तथा नमकीन

उत्तम वस्तुओं द्वारा पूर्ण शुद्धता से बनाया जाता है।

जिसे आप

मां लक्ष्मी के पूजन तथा प्रियजनोंको उपहार दे, स्वर्गीय आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

हिन्द-जल पान

प्रधान केन्द्र
१६१।१ हरिशन रोड, बांगड़ बिल्डिंग
कलकत्ता-७

फोन :
३३-६६४५

शाखाः—
१।१ जगमोहन मल्लिक लेन,
[सत्यनारायण पार्क] कलकत्ता।

मालविकाग्निमित्रमें कविका जो मनोधर्म नवयौवनको प्रमत्तताके कामांधकारके गर्तमें पड़ा है, वह विक्रमोर्वशीमें कुछ उच्च स्तरपर उठा है। प्रेम-संसार ही दोनों काव्योंकी कथावस्तु है। एक मानव-संसारसे सम्बन्धित है और दूसरा दिव्य-मानव-संसारसे। दोनोंमें संभोग-शृंगारकी प्रधानता है; परंतु विक्रमोर्वशीयमें शृंगार विप्रलंभकी सुस्पष्ट-छायासे शुद्ध बना है। दाम्पत्य-जीवनसे पूर्ण होनेपर भी अन्तपुरकी नटी मालविकापर मोहित हो जानेवाला कामलोलुप अग्निमित्र कहाँ है और कहाँ अपने भुजप्राक्रमसे ही दिव्य-स्त्रीको अपनी ओर आकृष्ट करके उसपर मोहित हो जानेवाला सत्त्वशाली प्रजानुरागी पुरूरवा? यह कहना अनुचित न होगा कि मालविकाग्निमित्रमें, जो प्रेम चित्रित किया गया है, वही प्रेम विक्रमोर्वशीयमें शुद्धताकी सीढ़ीपर अपने पाँव रख शांति संयमको अपना चुका है तथा शाकुन्तलमें विरहाग्नि द्वारा अपनी कामवासनाको जलाकर पवित्रता, शुद्धता एवं अमरत्वका वरदान प्राप्त कर चुका है। इसी प्रकार कालिदासकी प्रतिभा-तरुलता मालविकाग्निमित्रमें नये-नये पल्लवोंको प्रसरितकर विक्रमोर्वशीयमें कली होती हुई शाकुंतल में पूर्णरूपेण विकसित कुसुम बन जाती है।

नारी-स्वभावोंका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेमें कालिदासने अपनी पैनी दृष्टि दिखाई है। उन्होंने नारीको तीन रूपमें चित्रित किया है—१. कन्या, २. पत्नी, ३. माता। कन्याके रूपमें पार्वती एवं शकुन्तलाका चित्र तथा पत्नी एवं माताके रूपमें वैदेही एवं शकुन्तलाके चित्र सारे साहित्य-संसारमें अद्वितीय हैं।

कुमार-संभवमें आदर्श आर्य-कन्याके रूपमें पार्वतीका चित्र खींचा गया है। इसके द्वारा कालिदासने यह दर्शाया है कि केवल रूप-लावण्य, देह-सौष्ठव आदि बाह्य सौंदर्य ही स्त्रियोंके लिए आभूषण नहीं हैं। बाह्य सौंदर्यपर निर्भर होकर प्रेम सम्बन्धकी स्थापना करना दुस्साध्य है। मन अपने मन्त्र-बलसे, जिस सौंदर्यका सर्जन करता है, उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सौंदर्यकी परिपूर्णता शांतिमें है, न कि क्रान्तिमें।

उग्र तपस्साधनामें लीन शिवको अपनानेके लिए पार्वती नाना रूपोंमें उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लग गईं। तथापि भगवान् शिव अविचलित थे—

प्रत्यर्थिभूतामपि तां तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने।
विकारहेतौ सति विक्रियन्ते एषां न चेतांसितेन धीरः॥

दीपमालिका पर उपहार देनेके लिये

सिल्क—बनारसी साड़ी, बेंगलोर, काश्मीर सिल्क साड़ियाँ
एवं शान्तिपुर, कटक, मुर्शिदाबाद, हैदराबाद, शान्तिनिकेतन।

ताँत— फरासडाँगा, रामजीवनपुरकी ताँत साड़ियाँ।

गरम कपड़ा—काश्मीरी शाल, मलिदा, तुस, लेडिस शाल, काफ
गुलूबन्द, बच्चोंका शाल एवं मलिदा, कंबल इत्यादि के बेचनेवाले।

शाल रेशमों फोन : ३३-५०२६

प्रो० किशोरीलाल मेहरा

२८, जमनालाल बजाज स्ट्रीट (क्रौस स्ट्रीट), कलकत्ता-७

शिवकी इस एकाग्रचित्तताको भंग करनेके लिए कामदेव के पहुंचते वक्त भी वर्षाहीन घटाकी भाँति, तरंगहीन समुद्रकी भाँति, निष्कंप प्रदीप-शिखाकी भाँति बद्धनेत्र त्रिमिग शिव तपमें ही तल्लीन होकर आसनारूढ़ थे—

अवृष्टिसंरंभम् स्वांबुवाहं अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निराधानिर्वातं निष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥
(३-६८)

पर मदनशरके प्रभावसे जब मन विचलित होने लगा, तो शिवने अपने त्रिनेत्रोंको खोला, जब कि कामदेव भस्मीभूत हो गये। तभी अपने अंग-सौंदर्य तथा देह-सौष्ठवकी व्यर्थता पार्वतीको ज्ञात हुई—व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च। तथापि भग्नमनोरथा पार्वतीने अपने रूपकी निंदाकर—'निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती'—अपने रूपको तपस्साधनाद्वारा सफल बनानेका निश्चय किया—

श्येष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥
(५-२)

सारे आभूषणोंको छोड़, मन्मथका त्यागकर पार्वतीने केवल दुख एवं सहनशीलताको ही अपने प्रेमका आधारभूत समझा। उनमें आत्मसमर्पण द्वारा शिवको जीतनेकी प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गयी, न कि बाह्य सौंदर्य द्वारा। काम एवं अर्थपर उनका विश्वास घट गया और धर्मपर अत्यंत बलवान होने लगा—"अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्ग सारः।" (५-३८)।

वसन्तपुष्पाभरण भूषिता उमाका त्याग जिस शिवने कर छोड़ा था, उन्होंने ही अब उसका वरण मनसा कर दिया। अब निराभरण पार्वतीकी मनोकांति लावण्यपूरित यौवनकांतिका तिरस्कार करके ज्योतिर्लेखाकी भाँति उदित हो गयी।

शिवके विलक्षण सौंदर्य तथा स्वभावोंका वर्णन करते-करते जब पार्वतीके दृढ़ मनकी परीक्षा छद्मवेषधारी ब्रह्मचारी करने लगा तो पार्वतीने कहा—"वास्तवमें तुम तत्त्वतः शिव को नहीं जानते हो? अतः इस प्रकार तुम कह रहे हो। मूर्ख लोग महात्माओंके अचिन्त्य हेतुक तथा इहलोक भिन्न चरितकी निन्दा करते हैं।"—

"...परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्
(५-७५)

ऊनी वस्त्र-जगत में सुप्रतिष्ठित

और

सुपरिचित

"लाल इमली"

परिचम बङ्गाल, बिहार और आसाम के

एकमात्र प्रतिनिधि

महादयाल प्रेमचन्द्र

१८७, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता—७

इससे प्रीत होकर छद्मवेषधारीने साक्षात् शिवके रूपमें प्रकट होकर कहा--"अबसे मैं तेरी तपस्याधनासे क्रीतदास हूं--अद्यप्रभृति अनवताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिः (५-८६)।"

यहाँ, कामवासनोत्पन्न प्रेम संयमित पवित्रीकृत प्रेमके रूपमें परिवर्तित हो गया है। प्रेमका लक्ष्य कामवासनाकी तृप्तिमें नहीं, अपितु स्त्री और पुरुषके सुखप्रद समझौतेमें एवं पारस्परिक महान् त्यागमें है।

सप्तर्षिके बीच पतिव्रता अरुंधतीके दर्शन पाते ही शिव को विवाह-कार्यमें आदर उत्पन्न हुआ तथा यह भी ज्ञात हुआ कि समस्त धर्मकार्योंका मूलकारण पत्नी ही है।

तद्दर्शनात् अभूत् शंभोः भूयात् दारार्थम् आदरः।
क्रियाणां खलुधर्म्याणां सपत्न्यौ मूलकारणम्॥

इतना ही नहीं, शिवके कल्पना-नेत्रमें उमाका सौंदर्य अरुंधतीकी सौम्यमूर्ति द्वारा प्रतिफलित हुआ तथा पर्वतराज-पुत्री पार्वतीका अपूर्व लावण्य भास होने लगा। विवाह के मंगलमय अवसरपर शिवको उमा भूदेवीकी भाँति दीख पड़ीं--

सा मंगलस्नान-विशुद्धगात्रा गृहीत-प्रत्युद्गमनीय-वस्त्रा।
निर्वृत्तयर्जन्य-जलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे॥

इस मंगल कांतिकी निर्मल शोभामें कितनी शांति है, कितनी छटा है, कितनी सम्पूर्णता है!

कालिदासके यशः स्तंभ रघुवंशमें आदर्शमयी पत्नी तथा माताके रूपमें नारीका हृदयहारी चित्रण प्राप्त हो जाता है। यज्ञकी संगिनी दक्षिणाकी भाँति रानी सुदक्षिणा भी दिलीप के साथ अटूट संबंधसे बँधी हुई हैं। उन दोनोंके प्रेमकी पूर्णता माता-पितृत्वमें पूर्णरूपेण प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार शिव और पार्वती कुमारके जननसे तथा इन्द्र और शची जयंतके जन्मसे प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार दिलीप और सुदक्षिणा भी रघुके जननसे प्रसन्न हुए। उन दोनोंका चकवा-चकवीका-सा प्रेम पहले ही गाढ़ था; पर अब पुत्रमें एकत्र होकर और भी अधिक गाढ़ बन जाता है--

उमामृषाङ्कौ शरजन्मना यथायथा जयन्तेन शची पुरंदरौ।
तथा नृपः साच सुतेन मागधी ननन्दतुः तत्सदृशेन तत्समौ॥
(३-२३)

फूलमार्का घी

शुद्धता का प्रतीक

आप अपने घरेलू उपयोग के लिये घी खरीदते समय ७६ वर्षों से लोकप्रिय "फूलमार्का घी" को स्मरण रखें।

प्राप्ति-स्थान :—

मुन्नालाल द्वारका दास

७६, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७

फोन नं० ३२-२७३६

M.D.S.
मुन्नालालद्वारकादास

उन दोनोंके हार्दिक प्रेमकी वृद्धि तब भी हो जाती है। जब कि पुत्र भी उस प्रेमका भागी बन जाता है—

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबंधनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥
(३-२४)

पतिके सब कार्योंमें सहयोग देनेवाली देवी रही आजके लिए इन्दुमती। वह पतिके लिए गृहिणी थी; पत्नी थी; अंतरंग सहेली थी; एवं संगीतादि ललित कलाओंमें प्रिय शिष्या थी—"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।"

आदर्शमयी एवं त्यागमयी पत्नीके रूपमें सीताका जो पुनीत चरित्र कालिदासने अपनी वैदग्धमयी वाणीद्वारा अभिव्यक्त कर दिया है, उसमें अपने आप सर्वत्र प्रसरित हो जानेवाली सुगंध है; मानवचित्तको विकसित तथा विस्मय-विमुग्ध कर देनेवाली एक अपूर्व शक्ति है।

राम और सीता—इस युगल जोड़ीके जिस अनुपम अलौकिक उत्कट प्रेमका चित्र कालिदासने खींचा है, वह प्रेम सारी जनताको मंत्रमुग्ध करता है। सीताके नेत्रोंमें मधुरता एवं मुखपर आवरित सफेदीको देख रामने समझ लिया कि सीता गर्भिणी हैं। अत्यन्त अतुल आनन्दका अनुभव करते हुए रामने पत्नीके मनोरथोंकी पूर्ति कर देनेका वचन दिया। तब सात्विक भावोंकी दिव्यमूर्ति सीताने अपनी अभिलाषा प्रकट की—"मेरा मन गंगा-तटपर बने हुए उन कुशाओंवाले तपोवनोंमें निवास करनेका आग्रह करता है, जहाँ हिंसक जन्तु भी वनस्पति खाकर आनन्दित हो जाते हैं और तपस्वियोंकी कन्याओंसे प्रेम संबंध स्थापित होता है।"

सा दृष्टनोवारबलीनि हिंस्रैः संबद्ध वैखानस कन्यकानि।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथी तीर तपोवनानि ॥
१४-२८

पर रामने अपनी प्राणवल्लभा पत्नीके कारण होनेवाली अपने वंशकी अपकीर्तिको मिटानेके लिये प्रजा-पालनकी वेदी पर पत्नीका त्याग कर देनेका निश्चय किया। आज्ञाकारी लक्ष्मणको 'सौम्य' के रूपमें संबोधितकर उन्होंने आज्ञा दी—"तुम्हारी भाभी गर्भवती होनेके पश्चात् तपोवनमें पर्यटन करनेकी इच्छा प्रकट कर चुकी हैं; सो, इसी निमित्त उसे वाल्मीकि आश्रममें ले जाकर छोड़ आओ।"

सर्वोत्तम और ताजी
मिठाइयों का समावेश
प्रसिद्ध केशरभोग विक्रेता
नैपाल चन्द्र हलवाई
१६, विवेकानन्द रोड, कलकत्ता
फोनः ३४-४३७८

प्रजावती दोह दशांसिनी तं तपोवनेषु स्पृहयालुरेषे।
सत्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकि पदं लजैनाम् ॥
१४-४५

सीता-लक्ष्मणके साथ तपोवनके मनोहर प्रदेशोंमें जा रही थीं। तब वहाँकी आह्लादमयी प्रकृतिकी निसर्गचारुता को देख सीताने अपने मनमें ही पतिके प्रति जो भाव "मेरा पति कितना अच्छा है कि मेरी प्रिय-अभिलाषाकी इतनी जल्दी पूर्ति कर दी"—प्रकट किया, वह प्रेमकी गाढ़ताका परिचायक है। हाय! उस बेचारीको क्या मालूम था कि दूसरोंके लिए जो कल्पवृक्ष था, वही अब उसके लिये असि-वृक्ष बन गया है?

सा नीयामाना रुचिरान् प्रदेशान् प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
ना बुद्ध कल्पद्रुमतां विहत्य जातं तमान्मन्यसि पत्रवृक्षम् ॥
१४-४८

गंगाके तटपर पहुंचनेके पश्चात जब महाराजाकी कठोर आज्ञा सुनाई गई तो पराजय और अपमानकी आंधीसे विता-डित लताकी तरह आभूषण रूपी पुष्पोंको बिखेरती हुई सीता बेहोश होकर अपनी जननी पृथ्वीकी गोदमें लेट गईं।

ततोऽभिषङ्गानिल विप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरण प्रसूना।
स्वमूर्ति लाभ प्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ॥
१४-५७

सुमित्रा-नन्दनके यत्नसे प्राप्त हुई चेतना उसे सुखदायक की अपेक्षा अधिक कष्टदायक जान पड़ी। इतनी विषम परिस्थितिमें पड़ने पर भी अपने पतिके लिए एक कुःशब्दका प्रयोग भी न करके सीताने अपनी उदारता एवं सहनशीलता का परिचय दिया। वह निरंतर दुःखी रहनेके लिए खोटे कर्मोंको कारण मानकर अपने आपको कोसने लगीं।

न चावय् भर्तुःखर्णमयीं निराकरिष्णीर्जिनाहतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाज पुनः पुनः दुष्कृतिनं निनिन्द ॥

वाल्मीकि मुनिका आश्रम-मार्ग दिखाकर जब लक्ष्मण जाने लगे, तब की सीता नारी-गौरव, मर्यादा एवं त्यागकी ज्वलंत प्रतिमाके रूपमें चित्रित की गई हैं। अब की सीता रामकी प्रेममयी पत्नी नहीं थीं, अपितु गर्भभारसे आक्रान्त परित्यक्ता हैं। चरणों पर पड़े हुए लक्ष्मणको उठाकर कहने लगीं—"तू चिरंजीवि हो! तू घर लौटकर माताओंसे क्रमशः मेरा प्रणाम कहना, और मेरी ओरसे निवेदन करना

दीपावली के शुभ—अवसर पर

हम अपने ग्राहकों और शुभेच्छुकों को सादर
अभिवादन करते हैं।

*

कलकत्ता ऊलेन एन्ड सिल्क मिल्स लि०

१९१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता।

*

मिल :: कुमारपारा, लिलुआ।

प्रधान कार्यालय, ३३-३९१६ मिल:—हवड़ा ३१६३

कि शरीरमें आपके पुत्रकी जो संतान गर्भरूपसे विद्यमान है, उसे आशिर्वाद दीजिये।"

प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।
श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापित मत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयी वर्तमान सूनोरनुध्यायत चेतसेति॥

आदर्श गृहिणीकी भाँति माता होनेवाली ममतामयी जानकी सास-ससुरालके प्रति अपने कर्तव्यको समझ रही हैं तथा अपने पतिके इस कार्यके औचित्यको भी। तथापि उन्हें उलाहना देनेमें वह नहीं चूकतीं क्योंकि उनकी आत्माके अतल गर्भमें जो नारीके स्वाभिमान एवं गौरव समाधिस्थ थे, वे एक दम जाग उठे। वह कहने लगीं—"अग्नि परीक्षा द्वारा मेरे चरित्रकी शुद्धताको वे जान चुके थे। तथापि झूठे लोकापवादको सुन मेरा परित्याग करना शास्त्रके अनुकूल है कि इक्ष्वाकु कुलकी मर्यादाके अनुरूप?"

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा बह्वौ विशुद्धमपि यत् समक्षम्
मां लोकापवाद श्रवणाद हासीः श्रुतस्य कि तत्सदृशं कुलस्य॥
१४-६२

पर वह शीघ्र ही चेत गईं और पत्नी-कर्तव्यको समझकर लक्ष्मणसे कहने लगीं—"मेरी ओरसे राजासे निवेदन करना कि मेरे साथ तुमने जो कुछ किया, उसमें अकल्याणकी आशंका मैं क्यों करूं? यह असह्य वज्राघात मेरे ही जन्मान्तर पातकोंका जागरूक फल है।"

कल्याण बुद्धेरथ वा तवार्य न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥

धन्य है सीताकी पति-भक्ति! पतिकी अवहेलना तो दूर रही, स्वयं कर्मवादी बनकर आत्म-संतुष्टि प्राप्त कर रही हैं।

"मैं तो तुम्हारे द्वारा परित्यक्ता होने पर इस अपमानित जीवन को ही समाप्त कर देती। पर क्या करूं? मेरे गर्भ में तुम्हारा जो तेज विद्यमान है, वह मुझे आत्मघातसे रोकता है। सो, मैं संतानके होने तक सूर्यमें ध्यान लगाकर तपस्या करनेका यत्न करूंगी, जिसके फलस्वरूप दूसरे जन्ममें मैं भी तुम्हीं मेरे पति बनों और तब इस जीवनकी भाँति वियोग भी न रहे। राम राजा रहें। मैं रहती हूँ, एक एकाकी तपस्विनी। कृपया एक सामान्य प्रजाकी दृष्टिसे ही वे मेरा ध्यान रक्खें।

यदि आप किसी प्रकारके शारीरिक दर्दोंसे पीड़ित हैं, औषधि-उपचार करते-करते हताश हो गये हैं तो हम सिफारिश करते हैं कि एक बार सहस्रपाक तेल जरूर व्यवहार करके देखें इससे नीचे लिखी व्याधियोंसे निश्चित ही छुटकारा मिलेगा।



जैसे वायु, चोट, सर्दी से उत्पन्न शारीरिक दर्द, गठिया, लकवा, सर्दी, छातीका दर्द, निमोनिया, बुखार, हरारत, वृद्ध अवस्था की शिथिलता, छोटे बच्चोंकी दुर्बलता, प्रसूति माताओं के लिये अद्भुत गुणकारी है।

निर्माता

सुप्रसिद्ध घृत कुमारी तेलवाला

सूर्य्य केमिकल वर्कस

१४०, ओल्ड चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता-१ फोन-२२-७१६७

किंवा तवाख्यन्त वियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्यादक्षणीयं यदि मे न तेजः त्वदीयमन्तर्गत मन्तरायः ॥
साहं तपः सूर्य निविष्ट दृष्टि रूर्ध्व प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥
६५-६६

निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्वि सामान्यमवेक्षणीया ।
-६७

परित्यक्ता जनक नन्दिनीके इस आत्म निवेदनमें कितना ओज भरा है, मातामयी सीतामें कितनी ममता एवं करुणा भरी है, प्रेममयी पत्नी वैदेहीमें कितना आत्म-समर्पण का भाव भरा है तथा एकाकी तपस्विनी जानकीमें कितना आत्म-त्याग झलक रहा है !

मेघदूत कालिदासकी कीर्तिका मेरुदण्ड है । इसमें निर्वासित एक विरही यक्ष तथा उसकी प्रेयसीकी विरहावस्थाका एक मार्मिक मोहक चित्र है । विरहावस्थाका वर्णन करते वक्त कालिदासने अपने स्निग्ध करुण तथा मधुर रस-हृदयका परिचय दिया है । नर-नारीके उन्मत्त प्रेमका वर्णन व चित्रण करनेमें अपना पूर्ण अधिकार चलाकर उन्होंने यह दर्शाया है कि माता-पुत्र, भाई-भगिनीके बीच ललित वात्सल्य व स्नेह का जो भाव विद्यमान रहता है, वही भाव प्रेमिक-प्रेमिकाके मधुर प्रणयमें भी पाया जा सकता है । मेघदूतमें संयत तथा निर्लिप्त प्रकृति एवं नर-नारीका जो मर्मगत अनुभूतिका चित्र प्राप्त हो जाता है, वह हमें कालिदासके सौंदर्य पिपासु हृदयका ज्ञान देता है एवं सौन्दर्य और कामजन्य अमृतमय रसका पान कराता है । इस अमृतमय रसका पान अलका-पुरीकी नर-नारियाँ कर चुकी थीं ।

मालविकाग्निमित्र कालिदासकी नाटक कृतियोंमें सर्व-प्रथम नाटक है । इसमें अन्तःपुरमें पनपनेवाली यौवन सुलभ कामवासनाका अभिराम चित्रण मिलता है । रानी का नाम था धारिणी, जो अपने नामके अनुरूप सबके-सबको धारण करती रही । वह एक ओर मानिनी थी और दूसरी ओर शहनशीलता की प्रतिमा । अपने पतिकी दृष्टि नाच-कूदनेवाली मालविका पर खिंच जाने पर, उन्हें ठीक करनेके उद्देश्यसे वह उपहास करने लगी—"यदि वही दृष्टि राज्यके शासन पर पड़ी तो अच्छा होगा—यदि राजकार्येष्वपि ईदृशी उपायनिपुणतार्य पुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्" ।

अग्निमित्रका मन पहले-पहल इरावतीकी ओर खींचा गया और पश्चात् मालविका की उपासनामें लग गया । तथापि धारिणीकी श्रद्धा और भक्ति पतिके ऊपर एक समान रही । इसलिये धारिणीके प्रति परिव्राजिकाकी धारणा थी—प्रति कूलेनापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्वयः ।"

कामवासनाकी कठपुतली थी इरावती । पति जब अपनेको छोड़ मालविकापर मोह-मुग्ध हो गया तो वह उसकी खिल्ली उड़ाने लगी—"पुरुष अविश्वसनीय हैं, व्याधजन की गीतिका से आकर्षित चित्तवाली हरिणीकी भाँति हम भी उनके वंचना-पूरित वचनोंके जालमें फँस जाती हैं ।"

"अविश्वसनीयाः पुरुषाः । आत्मनो वंचनावचनं प्रमाणी-कृत्याक्षिप्तया व्याध जन गीत गृहीत चित्तया हरिण्येवैतत विज्ञातम् ।"

विक्रमोर्वशीयमें मर्त्य और अमर्त्यका संगम हुआ है । रानी औशिनरी भारतीय आदर्श पत्नीके रूपमें चित्रितकी गई है । वह पतिके सुखके लिये अपने सुखको ही त्याग कर देने वाली त्यागमयी पत्नी थी । विदूषकसे जब पूछा गया कि "अभावे विरक्तिः" तब उसने झट उत्तर दिया—"अहं खलु आत्मनः सुखावसानेनार्यं पुत्रम् निर्वृतशरीरं कर्तुम इच्छामि ।"



दद्रु-विनाश

दाद, खाज, खुजली, एक्जीमा आदि समस्त चर्म-रोगों की दवा ।

प्रतापमल गोविन्दराम

११६, खेड़ूरापट्टी, कलकत्ता ।

फोन:२२-२५५७

जे० अगरवाला एण्ड सन्स (प्राइवेट) लि०

बैंकर, मिलमालिक, आयात एवं निर्यातकर्त्ता

श्री हनुमान फाउण्ड्रीज लि०

हल्के और भारी हर किस्मके ढलाईकर्त्ता, इंजीनियर, निर्माता और गवर्नमेण्ट तथा रेलवेके कण्ट्राक्टर।

विक्टोरिया काटन मिल्स लि०

ऊंचे दरजेका सूत निर्माण करनेवाला।

श्री वैद्यनाथ आयरन एण्ड स्टील क० लि०

हमारी निर्माण योजनाके अन्तर्गत रेलवेवैगन, पिग आयरन, इस्पातकी ढलाई, रोलिंग उत्पादन जैसे छड़, पाटी, हल्के ढंगके स्ट्रक्चरलस, सी० आई० कास्टिंग्स, पाइप इत्यादि हैं।

लक्ष्मी प्रिंटिङ्ग वर्क्स लि०

कलेण्डर एवं डायरी निर्माता मुद्रक तथा प्रकाशक।

अम्बिका आयल कम्पनी

सर्व प्रकारका तेल उत्पादन करनेवाला।

अगरवाला प्रापर्टीज लि०

रियासतके मालिक।

ब्रांच—

देहली : : बम्बई

पटना : : जैसीडीह

हेड आफिस—

अगरवाला मैन्सन्स

३७०, अपर चितपुर रोड,

कलकत्ता-६

एक वेश्या—देव-वेश्या थी नायिका उर्वशी। उसमें परोक्षमें ही अपने प्रियतमका आचार-व्यवहार तथा वार्तालापोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी अमानुषिक शक्ति विराजमान थी। इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं कि मालविकाग्निमित्रके नायक-नायिकासे अधिक विक्रमोर्वशीयके नायक-नायिका पर हम आकृष्ट हो जाते हैं। तथापि वे दुष्यंत एवं शकुन्तलाके स्तर पर नहीं आते। पुरूरवाके प्रेममें गाढ़ता एवं विरहकी तीव्रता है ही। पर उसके पुनस्समागमकी आकांक्षा कामोपभोगकी परिचायिका है। उर्वशीसे प्रेममें भी गाढ़ता एवं तीव्रता है ही। पर संयम नहीं। अपनी सपत्नीसे उर्वशीका स्नेह-स्निग्ध व्यवहारमें क्या आश्चर्य है? पुरूरवा विद्याधर-कन्यापर अपनी दृष्टि फेरनेसे ही उसमें ईर्ष्याकी आग जाग उठी। उर्वशीका ध्रुव-विश्वास था कि शचीके समान औशिनरीके रहते उसके पति पुरूरवापर अपने आप मोहित हो जाना दोष नहीं। उसमें जो प्रगाढ़ ईर्ष्या अमूर्त स्वरूपमें वर्तमान थी वह धीरे-धीरे स्वार्थताका वेष धारण करने लगी। वह स्वार्थता इतनी तीव्र गतिसे पराकाष्ठाको पहुंच गई जब कि वह अपनी संतानको भी विहार-विच्छेदनके भयसे त्याग कर देनेमें न हिचकिची।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' सारे नाटक-साहित्यमें एक आदर्शात्मक बेजोड़ रचना है। यह कालिदासकी कीर्तिलता है तथा उसकी प्रखर प्रतिभाके पूर्ण-विकसित पुष्प है। इसमें कविने यह दर्शाया है कि मानव-चित्त वृत्तियोंके क्रमिक विकासके साथ-ही-साथ किस प्रकार यौवन-सुलभ सरल-प्रेम कामवासनामें परिवर्तित होकर उर्वशी-भावको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मी भावमें परिणत होता है तथा किस प्रकार लक्ष्मी-भावकी पूर्णता मातृत्वमें पूर्णरूपेण हो जाती है। इसी सत्यका तत्त्व समझकर जर्मन कवि गेटेने शकुन्तलापर लिखा—

Wouldst thou the young year's blossom
and the fruits of its decline
And all by which the soul is charmed,
enraptured, feasted, fed
Wouldst thou the earth and heaven
itself in one sole name combine?
I name thee, O 'Sakuntla', and all,
at once said.

एक नारीमें शैशव-कालसे लेकर माता बनने तक अंगोंका जो उत्तरोत्तर परिवर्तन तथा भाव-भंगियोंमें जो क्रमिक

उत्कृष्ट मुद्रण

के लिए

अच्छे ब्लाक आवश्यक हैं!

सभी प्रकारके उत्तम लाइन, हाफटोन आदि

ब्लाक बनवानेके लिए

कृपया अनुसंधान करें

शर्मा ब्लाक वर्क्स

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-७

तार : Cosmoprint फोन : ३४-२६४६

विकास पाए जाते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शाकुन्तलमें हुआ है। शकुन्तला थी एक सरल निसर्ग-बालिका। उसके माता-पिता थे मेनका एवं राजर्षि विश्वामित्र। अतः उसने अपनी मातासे अनुपम सौन्दर्य एवं सहृदयताको प्राप्त किया तथा पितासे विशाल प्रेम एवं सहनशीलताको। तपोवनवासी कण्वऋषिकी पोष्य-पुत्री बनकर वह प्रकृतिकी कन्या बनी। उसमें साथी-सहेलियोंके बीचका जो पारस्परिक स्नेह वर्तमान था, वही स्नेह-आश्रम की तरुलता एवं पशु-पक्षीके प्रति भी रहा—"अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु"।

वल्कलधारिणी शकुन्तलाका मन नवमल्लिकाकी भाँति शुभ्र एवं निष्कलंक था। वह एक प्रफुल्ला एवं दिगंत-सुगन्ध-विकीर्ण कारिणी रही। अतः उसका मातृ-स्नेह नवमल्लिकापर था; भगिनी-स्नेह सखियोंपर था; और पुत्र-स्नेह मातृहीन हिरिणी-शिशुपर। वह इतनी सरला थी कि दुष्यंतको देख अपने आप कहने लगी—'इसको देखनेसे आश्रमके विरुद्ध विकारका मेरे मनमें उदय हो रहा है।'

किं नु खलु इमं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।

उसमें सरलताके साथ-ही-साथ नारी-सहज लज्जा वर्तमान थी; आत्मविश्वास अत्यंत बलवान था। लज्जाशीला सत्कुल-प्रसूता क्या जानती थी मदनशरके प्रभावको? दुष्यंतके प्रथम दर्शनसे ही उसके बालिका-चांचल्य, सौहार्द, सभी कामके रूपमें परिवर्तित हो गए। इस काम-जन्य वेदनासे पीड़ित होकर शकुन्तला अनुदिन कृश होती जा रही थी। इस असह्य पीड़ाको शांत करनेका अवसर प्राप्त हो जानेपर भी वह हिचकिचाने लगी, क्योंकि वह पितृ-राधीना थी। वह इसलिए दुष्यंतसे कहने लगी—"पौरव, रक्ष विनयम्। मदनसंतापापि न खलु आत्मनः प्रभवामि।

पर राजाका यह आश्वासन—"हे भीरु! गुरुजनोंका भय मत कर। तेरी अवस्था देख धर्मज्ञ कुलपति तुम्हें दोष न देंगे। बहुत कुछ ऋषि-कन्याओंका विवाह गंधर्व रीतिसे हो चुका है। इस तरहके विवाहसे माता-पिता भी आनंदित हो जाते हैं।"

भीरु, अलं गुरुजन भयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्र-भवान् न अत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। पश्य—

गन्धर्वेण विवाहेन बह्वयो राजऋषिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः॥

(३-२१)

सभी तरहके सुन्दरसे सुन्दर और मजबूत
टाइपके लिए तथा विभिन्न डिजाइनके
बोर्डरोंके लिए हमारे पास आर्डर भेजें।

❀

युगोंके अनुभव और कार्य-क्षमताने हमारी कम्पनीको इतनी ख्याति दी है कि 'स्वदेशी' आज मजबूती और सुन्दरताका द्योतक बन गया है।

❀

स्वदेशी टाइप फौन्ड्री

२६, झामापुकुर लेन, कलकत्ता।

—पाकर उसने अपनी सरलता एवं आत्मविश्वासपर निर्भर होकर आत्मसमर्पण कर दिया।

परंतु शकुन्तलाका प्रेम कलंकित हो उठा, जब कि उसने दुर्व्यंतकी उपासनामें तल्लीन होकर दुर्वासा मुनिका आतिथ्य-सत्कार नहीं किया। कण्व ऋषिने तो पोष्यपुत्रीके गन्धर्व विवाहकी बात सुन उसे पतिके घर पहुंचानेकी व्यवस्था की। शकुन्तला मंगलस्नान आदि कर्मोंसे निवृत्त होकर खड़ी हुई। 'तुम पतिकी प्यारी हो', 'तुम शूर-वीरकी माता हो'—इस प्रकार तापसि-स्त्रियाँ आशीर्वाद देने लगीं। शकुन्तलाने कण्व ऋषिके चरण-कमलोंपर मस्तक नमा दिया तो पिताने उसे उठाकर आशीर्वाद दिया—"हे वत्से! जिस प्रकार शर्मिष्ठा राजा ययातिको प्यारी रही, उसी प्रकार तुम अपने पतिको रहेगी तथा जिस प्रकार चक्रवर्ति-पुत्र-पुरू पाया शर्मिष्ठा-ययातिने, उसी प्रकारका पुत्र पाओगी तुम भी।"

वसे!

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥ (४-७)

शकुन्तलाके प्रस्थानके समय सारी वन-तरु-लताएँ अपनी सहृदय-वेदना प्रकट कर रही थीं; पिता कण्वके नेत्रोंमेंसे अश्रुधारा बह रही थी। तथापि वे अपनी पुत्रीके मंगल-कामनार्थ तपोवनके सभी प्राणियोंसे—चेतन हो या अचेतन—शकुन्तलाके पतिके घर जानेकी आज्ञा माँगने लगे—

भो भोः! संनिहिताः तपोवन-तरवः,
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुम-प्रसूति-समये यस्या भवति उत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैः अनुज्ञायताम्॥
(४-९)

पश्चात्, कण्वमुनिने गृहिणी धर्मका उपदेश—"गुरुजनों की सेवा-सुश्रूषा करो; सपत्नीमें सखीका-सा व्यवहार करो; कोपवशात् या पतिसे तिरस्कृत हो जानेपर भी तुम उसके विरुद्ध मत जाओ; परिजनोंसे अति करुणाशाली रहो; भाग्य हँसते वक्त स्वार्थी न बनो; जो कुलवधू इस धर्मका पालन करती है, वह गृहिणी-पदको प्राप्त करती है और जो नहीं करती है, वह कुल-कलंकिनी बन जाती है।"

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येषु अनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥
(४-२८)

—देकर उसे विदा किया।

दुरदृष्टवशात् राज-सभामें दुर्व्यंतने इसे अस्वीकार किया तो शकुन्तलामें नारी-सहज अभिमान, गौरव, मर्यादा आदि सब-के-सब गुण एकाएक जाग उठे। इनके प्रभावके वशीभूत होकर वह अपनी लज्जाको ही त्यागकर राजाको धिक्कारने लगी—"अनार्य! आत्मनो हृदयानुभावेन न प्रेक्षसे। क इदानीमन्यो धर्मकंचुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते?

पर, यह धिक्कार केवल प्रेमकी चंचलताका लक्षण है। वास्तवमें शकुन्तलाके हृदयमें दुर्व्यंतके प्रति जो निष्कलंक शुद्ध प्रेम था, वह अब भी शांत और स्थिर है। अब, शकुन्तला आश्रमकी सरल-बालिका नहीं थी, अपितु रमणी है, माता होनेवाली है। एक गर्भिणी स्त्री इतनी गहरी चोट कैसे सह सकती है? वह अब परित्यक्ता है, अवमानिता है तथा एक अवर्णनीय असह्य वेदनाकी अग्निमें झुलसी जा रही है। उसका मन तो भयके भूतसे शून्यप्राय बन गया है।

फिर, दुर्व्यंत और शकुन्तलाका द्वितीय समागम होता है हेमकूट वनमें; वहाँके मारीचाश्रममें। इस दिव्य-तपोवन का वातावरण कण्वमुनिके भव्य-तपोवनसे एकदम उल्टा है। प्रथम तपोवनमें चंचलता थी, पर द्वितीयमें स्थिरता है। प्रथम समागममें शकुन्तला अनाघ्रात पुष्प थी; अब वह अपनी पवित्रमय सुरभिसे सारे पर्वतको ही परिवृत करनेवाली विकसित कुसुम है। कण्वऋषिके भव्य-तपोवनमें वह प्रकृति की कन्या थी; एक अबोध निसर्ग-बालिका थी; पर मारीच ऋषिके दिव्य-तपोवनमें वह जननोत्वका गौरव तथा स्त्री-जन्म के परम लक्ष्यको समझनेवाली प्रौढ़ा है। कण्वाश्रमका दुर्व्यंत कामुक था, पर यहाँका दुर्व्यंत क्षमायार्थी है। कण्वाश्रमकी नवयौवना शकुन्तलाका रूप-लावण्य दुर्व्यंतको मोह-मुग्ध कराया था; अब उसी रूप-लावण्यकी प्रतिमूर्ति भरत तथा प्रथम मिलनकी मलिनताके क्षालनद्वारा पवित्रीभूत मलिन-धूसरवसना, शुष्कमुखी, जटाधारिणी, विरहव्रताचारिणी, शुद्धशीला शकुन्तला दुर्व्यंतके हृदयांतस्तलको आर्द्र करते हैं। दुर्व्यंतको धिक्कारते वक्त शकुन्तलामें जो गर्व और अभिमान रहे, उन सबको अपनी तपस्साधनाद्वारा जला दिया है, अब की शकुन्तलाने। इसलिए ही, दुर्वासामुनिके शापकी जानकारीके पहले ही, विरहसे कृशप्राय दुर्व्यंतके प्रति करुणा उमड़ आयी। मिलनके अवसर, राजा दुर्व्यंत जब गिर पड़ा तो उसे उठाकर शकुन्तला सान्त्वना देने लगी—"अलंतु

आर्यपुत्रः। नूनं मे सुचरित-प्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखम् आसीत् एन सानुक्रोशोऽपि आर्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।"

इस प्रकार आश्रमके वातावरणमें अंकुरित लालसामय प्रेम आश्रममें ही प्रस्फुटित होकर आश्रमके वातावरणमें ही पूर्णताको प्राप्त करता है। आश्रमकी वेदिका ही दोनों बार दुष्यंत एवं शकुन्तलाकी समागम-भूमि बन जाती है।

भारतवर्षके धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री-पुरुषोंके लिए जिन संयत विधि-विधानोंका प्रणयन किया है, उन्हींका प्रतिपादन कालिदासने अपने काव्योंमें सौंदर्य द्वारा किया है। जिस प्रेम की प्रोज्वलतामें शांतिकी प्रशांतता रहती है, वही सौंदर्यका कल्याण-रूप है। यह त्यागद्वारा परिपूर्णताको, दुःखद्वारा चरितार्थताको, धर्मद्वारा स्थिरताको प्राप्त करता है।

कालिदासकी कृतियाँ भारतीय धर्म, मत, कला आचार-व्यवहार, सभ्यता, गुण-शील एवं संस्कृतिका अक्षय भाण्डागार हैं। इन कृतियोंको पुंखानुपुंखसे अध्ययन करनेवालोंको बृहद्भारत की अन्तरात्माकी अमरवाणी सुनाई पड़ती है तथा भारतीय अन्तस्त्वका परिचय प्राप्त हो जाता है। 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का अंग्रेजी अनुवाद करते समय, भूमिकामें Oxford विश्वविद्यालयके संस्कृत-प्राध्यापक Monier Williams ने कालिदासको 'भारतका शेक्सपीयर' कहा है; और कुछ समालोचकोंने तो कालिदासको अत्युत्तुंग शृंगपर प्रतिष्ठित कर दिया है, जैसे A.W. Ryder ने लिखा है—

"I have already hinted at the wondrful balance in Kalidasa's character by virtue of which he found himself equally at home in a palace and in a wilderness I know not with whom to compare him in this; even Sakespeare, for all his magical in sight into natural beauty, is primarily a poet of the human heart. That can be hardly said of Kalidasa, nor can it be said that he is primarily a poet of natural beauty. The two characters unite in him, it might almost be said, chemically."

जो भी हो, कालिदासके नाटकत्रय एवं काव्यत्रय जीवकी अंतमुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्तियोंका दर्पण हैं तथा प्रेमामृतका अमर-चित्रकल्प हैं। प्रेमकी आगमें जलनेवाली, उत्फुल्ल होनेवाली, अश्रुओंमें मुस्कुरानेवाली कालिदासकी तरुण-तरुणियाँ हमारे नेत्रोंके सामने सजीव व्यक्तिकी भाँति चलते-फिरते दिखाई देती हैं।

व्यंग-कथा

दर्पका सर्प : करुणाकी बाँबी

गुलाबके रंग और माखनकी कोमलतामें सूखा अस्थि-मंजर छिपाये मदहोश जवानी द्रुतगतिसे वसन्त पर वसन्त पार करती चली जा रही थी।

जमीन गाल है कदाचित् इसी कारण; वह एक दिन··· फिरसे उसी काली चट्टान पर लौट आई....जहाँ झुर्रियोंमें जिन्दगीके अनुभव संजोए सफेद बुढ़ापा तहेदिलसे उसका इन्तजार कर रहा था।

कठिनाईसे उठकर... बुढ़ापेने उसका स्वागत करना चाहा।

"हुश"! "जवानीके मुँहसे निकला और वह दो-कदम पीछे हटगई।

बुढ़ापेने अपनी काँपती हुई कमजोर अगुंलियां उसकी-ओर बढ़ाते हुए कहा—"तुम्हें गुलाब व नवनीत ही चाहिए न! ·····यह देखो, मेरे बाल नवनीतसे श्वेत और आँखें बरसोंसे तुम्हारे इन्तजारमें उनींदी रहनेकी वजहसे गुलाब-सी लाल हैं न!"

"थू!" जवानीने उसके मुखपर थूकते हुए कहा—"बेहूदा, भला कहाँ माखन और गुलाब और कहाँ सन-से सफेद रूखे बाल व चिताके शोलों-सी लाल-लाल आँखें!"

बुढ़ापेने अपने हृदयकी सम्पूर्ण करुणा आँखोंमें उड़ेलते हुए अनुनयकी—"प्रिये, कुछ भी कहो? आखिर, तुम मेरी हो!"

जवानी उसके फैले हुए काँपते-हाथकी उपेक्षाकर लौट पड़ी।

भयंकर बर्फ पड़ने लगी थी। उसका रोम-रोम सफेद हो गया, उसे कहीं ठौर न-मिला। किसीने उसका साथ न निभाया! उसने बाल नोच लिये—'मुझे जवानोंने छल लिया!'—वह फुफकार उठी।

चाँद बता रहा था—"हिमपातसे···उसके गुलाबकी पंखड़ियाँ छितरा कर तहस-नहस हो गईं एवं मक्खन जमकर पत्थरमें बदल गया। खौफनाक काली-रातने उसे डंस लिया और वह चीखकर बेसुध-हो गिर पड़ी।"

"उसे दर्पका सर्प सूंघ गया था।" सितारोंने दबी जुबान में कहा, – अगली सुबह–

भोरके झुटपुटेमें.....विदा होते हुए चाँदने हैरानीसे देखा कि जवानीकी लाश बुढ़ापेके आगोशमें थी·····जिसे वह अपने गर्म आंसुओंसे जिन्दगी बख्शनेकी कोशिश कर रहा था।

—आचार्य सर्वे

कुलीन मिसरानी

श्रीराम शर्मा

१. हरदोई (उत्तर-प्रदेश) में एक कुलीन वाजपेयी परिवारको खाना बनानेके लिए एक मिसरानीकी आवश्यकता थी।

२. वाजपेयी परिवारकी ओरसे शर्त थी कि मिसरानी कुलीन ब्राह्मणी हो। बढ़िया खाना बनाना जानती हो और साफ-सुथरी चौके-चूल्हेके छुआछूतको मानती हो।

३. बड़ी खोजके बाद एक पड़ौसी मित्रकी सहायतासे एक मिसरानी मिली।

४. मिसरानी अपने कार्यमें बड़ी कुशल थी, मानो पाकशास्त्रकी आचार्या हो।

५. रहन-सहन और व्यवहारमें भी वह बहुत साफ थी।

६. ऐसी मिसरानी पाकर वाजपेयी परिवार बड़ा प्रसन्न था।

७. होते-होते वाजपेयी परिवारमें एक लड़केका विवाह हुआ।

८. जब लड़केकी बारात चली गई, तब घरमें स्त्रियोंका बोलबाला था। पर्दा भी ढीला हो गया था।

९. दोपहर बाद एक विवाहके गीत हो रहे थे और मिसरानी चौकेमें चायपानीके प्रबन्धमें लगी थी।

१०. ठीक उसी समय महतरानी विवाह सम्बन्धी त्यौहारी लेने आई।

११. पहले वह घरके अन्दर इतना नहीं आ सकती थी।

१२. मिसरानीसे घरकी मालकिनने कहा कि महतरानीको मिष्टान्न, पूरी तथा कचौरियाँ दे दी जायँ।

१३. मिसरानी पत्तलपर रखकर सब सामान लेकर दरवाजेकी ओर बढ़ी, तो मिसरानी और महतरानीका आमना-सामना हो गया।

१४. महतरानीको देखकर मिसरानी एकदम पीछे मुड़ी और चौकेमें जा बैठी।

१५. महतरानीने शिकायत की कि उसे इतनी देरसे बैठे रहनेपर भी पकवान नहीं मिले।

१६. मिसरानीसे जब आग्रह किया गया कि वह महतरानीको पत्तल दे दे, तब मिसरानीने चौकेमें व्यस्त होनेका बहाना किया।

१७. तब घरकी मालकिनने लड़कियोंको आदेश दिया कि महतरानीको फौरन पत्तल लगाकर दे दी जाय।

१८. महतरानीने नया आदेश सुनकर कहा, "मैं महतरानी हूँ तो क्या ? टट्टी कमाने नहीं आई हूँ। नहा-धोकर भोजन लेने आई हूं। पत्तल मिसरानीके हाथसे ही लूँगी।"

१९. मिसरानीके फिर मना करनेपर, घरकी मालकिन उठीं और पत्तल सजाकर महतरानी को देने चलीं।

२०. घरकी मालकिन जैसे ही महतरानीके निकट पहुँचीं, वैसे ही महतरानीने कहा, "मालकिन, कलसे मुझे ही रोटी बनानेपर रख

चयन

शेखुल हिन्द मौ० हुसैन अहमद मदनी

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

शेखुल हिन्द मौलाना हुसैन अहमद मदनी एक ऐतिहासिक पुरुष थे, तारीखी इन्सान थे, हदीस (इस्लामी धर्मशास्त्र) के विश्वविख्यात विद्वान थे, देशकी सबसे महान मुस्लिम शिक्षा-संस्था दारुल उलूम, देवबन्दके प्रिन्सिपल थे। वह जीते-जी शहीद थे, आचार्य संत थे। संक्षेपमें एक महान व्यक्तित्व, एक ऊँची शख्सियत थे; पर उनकी जिन्दगीके इन्सानी पहलू इतने मुलायम और मनोरम थे कि उनके पास बैठकर लगता था, मैं उनकी चटाईपर नहीं, उनकी गोदमें बैठा हुआ हूँ। ओह, कितने मीठे, कितने प्यारे, कितने भले और कितने भोले इन्सान थे वह!

ताँगा जा रहा है और उसमें बैठे हैं एक बुजुर्ग। ताँगा दूकानके सामनेसे गुजरता है और दूकानदार अपनी गद्दीपर खड़ा होकर उन्हें सलाम करता है। यों ही ताँगा चलता रहता है, लोग उठ-उठकर सलाम करते रहते हैं। जवाबमें सबको बड़प्पनसे ऐंठता गर्दनका झटका नहीं, प्यार-मुहब्बत भरा सलाम मिलता रहता है। यह कौन है, जिसके सामने झुककर इतने लोग सुख पाते हैं? यही हैं मौलाना मदनी—हरएकके लिए अपने।

बल्कि कहूं, यही थे मौलाना मदनी, जो अब नहीं हैं। यह अपनी जगह एक इन्सान थे और इन्सानोंसे यह दुनिया भरी है; पर यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि उनकी जगह आज खाली है और सदा-सदा तक खाली ही रहेगी, उसे भरनेवाला कोई नहीं है।

× × ×

१९३० का आन्दोलन पूरी तेजीपर आने लग रहा था और जगह-जगह विदेशी दूकानोंपर पिकेटिंग शुरू हो रही थी। स्वर्गीय भाई आनन्दप्रकाश बेचैन थे कि देवबन्दमें भी विदेशी कपड़ेपर पिकेटिंग शुरू हो; पर शराबकी तो एक दूकान थी, कपड़ेका तो पूरा-का-पूरा बाजार था। उसके लिए ८० स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता थी। उन्हें जुटानेका जिम्मा मैंने लिया और देहातोंमें जलसोंकी झड़ी बाँध दी। कुछ ही दिनोंमें ८० स्वयंसेवक इकट्ठे हो गये। सत्याग्रह आश्रममें रखकर उन्हें शिक्षित किया गया।

तय हुआ कि पहले दिन स्वयंसेवक गश्त लगायें। दूकान पर खड़े न होकर बाजारमें घूमते और विदेशी वस्त्र-विरोधी नारे लगाते रहे; दूसरे दिनसे बाकायदा पिकेटिंग शुरू हो। इसलिये मैंने एक जलूसके साथ स्वयंसेवकोंको बाजारमें घुमाया और उन्हें टोलियोंमें बाँटकर चला आया। वे नारे लगे कि वातावरण जोशसे भर गया और बजाजोंके दिल हिल गए, पर शामको नक्शा एकदम बदला हुआ था।

"पंडितजी, मैं मुसलमान बजाजकी दूकानपर पिकेटिंग नहीं करूँगा।" यह मैं नहीं असलमें 'हम' था, क्योंकि हर एक का यही जवाब था।

"क्यों क्या बात है?"

"पण्डित जो, हम मरनेके लिए तैयार नहीं हैं।"

एक मुसलमान बजाज थे। नाम—पता नहीं क्या था उनका, उन्हें सब चिड़िया कहते थे। उन्होंने सब स्वयं-सेवकों को प्यारसे अपनी दूकानमें बुलाकर नम्बरवार एक छुरा दिखाया और कहा कि सब मुसलमान दूकानोंमें ऐसे छुरे हैं। जो भी स्वयंसेवक हमारी दूकानोंपर आयेगा, उसे हम

लो। मैं भी साफ़-सुथरी रहा करूँगी। गोरी-चिट्टी भी हूँ। आपको शायद यह नहीं मालूम कि आपकी मिसरानी मेरी लड़कीकी जिठानीकी बहन है। पिछले दस वर्षों से भागी हुई थी, आज मैं आपके यहाँ इसे देख रही हूं।"

२१. महतरानीकी बात सुनकर बाजपेयी परिवार

की स्त्रियोको साँप सूँघ गया। थू-थू और हाय-हायके बाद मिसरानीको निकाल दिया। तुलसी, गंगाजल मुँहमें डाले।

२२. जब बारात लौटकर आई, तब लोगोंमें कुहराम मच गया। बारातके लौटनेके दूसरे या तीसरे दिन पूरा बाजपेयी परिवार प्रयागराज गंगास्नान करनेको गया।

मार देंगे। अंग्रेज कलक्टरने कह दिया है कि न हमारी गिरफ्तारी होगी, न मुकदमा चलेगा।

मैंने बाजारोंमें दहाड़-दहाड़कर ऐलान किया कि कलसे पिकेटिंग होगा और किसी तरहका कपड़ा नहीं बिकने दिया जायगा, पर इस स्थितिमें पिकेटिंग कैसे हो? बड़ी गहरी गाँठ है, पर यह खुले कैसे?

रातके १० बजे मैं मौलाना मदनीके घर पहुंचा। वह कुछ लोगोंके साथ बैठे बातें कर रहे थे। मैंने अपनी बातें कहीं। वह गम्भीर हो गए। मौलवी जौरगुल भी वहाँ बैठे थे। बोले—"मुसलमानोंकी दूकानोंपर पिकेटिंग मत करो। मैं आज ही दिल्लीसे आया हूं। वहाँ भी यही हो रहा है।"

मौलानाने मेरी तरफ देखा, तो मैंने कहा—"मैं तो ऐसा कर नहीं सकता, पर आप इसे मुनासिब समझते हों तो मैं कल यह ऐलान करा दूंगा कि पिकेटिंग-इन्चार्ज मौलाना मदनी बनाए गए हैं। इसके बाद भी काम मैं करता रहूंगा, पर नाम और हुक्म आपका रहेगा।" इसके लिए कोई तैयार नहीं हुआ और गाँठ ज्यों-की-त्यों रही। ऊबकर मैंने कहा—"तो फिर राह कहाँ है हज़रत?"

मौलाना बोले—"आप ही बताइए राह, मैं तो आपका वालंटियर हूं।"

जाने मुझे क्या हुआ कि मेरे फूटे मुँहसे निकला—"मुश्किल तो यही है कि आप खुले आम झूठ बोलते हैं।"

कहनेको कह तो गया, पर बोझ इतना पड़ा कि आँखें उठाए न उठीं। तभी मौ० जौरगुलके सरहदी पंजेने मेरा गला दबाया और नरसिंह जैसी आवाजमें कहा—"ओः शाला, हम तुम्हें ठीक करेगा।"

मौलानाकी आँखोंमें गरमी आई कि जौरगुल हटे। मैंने सकुचाकर मौलानाकी तरफ देखा, तो वह हाथ जोड़े हुए थे। एक सपाकेमें मेरे हाथ उनके पैरोंसे जा लगे। बोले—"जौरगुल साहबकी बातके लिए आप मुझे माफ करें और इसे सच मानें कि मैं आपका वालंटियर हूं।"

उठते-उठते मैंने जौरगुलसे बदला-सा लेते हुए हज़रतसे कहा—"देखिए, जो मैं कहूंगा वह आपको करना पड़ेगा, क्योंकि आप वालंटियर हैं।"

बोले—"बेशक, लेकिन वालंटियरका बदन देखकर वजन रखिएगा।"

हम सभी हंस पड़े। मैं चला आया। मेरी सफलता अब मेरी कल्पनाकी मुट्ठीमें थी। दूसरे दिन अपने ८० वालंटियरोंके साथ मैंने एक जलूस निकाला और कड़ककर खुद ऐलान किया—"कुछ बजाज भाइयोंने हमारे वालंटियरों को छुरे दिखाए हैं और कत्ल करनेकी धमकियाँ दी हैं। इसलिए कांग्रेसने पिकेटिंगपर अपनी पूरी ताकत लगानेका फैसला किया है। अब कल या परसोंसे पिकेटिंग होगा और उसमें शेखुलहिन्द मौलाना हुसेन अहमद मदनी और उनके साथ दूसरे चुने हुए लोग भी हिस्सा लेंगे। मैं अपने छुरेबाज दोस्तोंसे दरखास्त करता हूं कि वे अपने छुरोंकी धारें तेज रखें और तैयार रहें।"

ऐलानकी गर्वीली गरजमें नारोंकी गहरी गूंजसे मिलकर शहीद कवि ओमप्रकाशकी कविता तड़प उठी—"देखना है ज़ोर कितना बाजुए कातिलमें है।" लोगोंके रोंगटे खड़े हो गए और शहर भरमें एक सनसनी-सी फैल गई। हमारे स्वयंसेवकोंकी छातियाँ चौड़ी हो गईं, जनताकी सहानुभूति हमारे साथ आ गई, बजाजोंका बल हिल गया और 'चिड़िया साहब' पर चारों ओरसे ताने बरसने लगे। यह हमारी आंदोलनात्मक सफलता थी, पर असलमें यह मेरा आंदोलन नहीं, दाव था और उसकी बैठ तब पूरी हुई, जब दो-ढाई घंटे बाद ही खानबहादुर शेख जियाउलहक साहब चेयरमैन म्यूनिसिपल बोर्ड बौखलाये हुए-से मेरे मकानपर आये और बोले—"आप हमें इस कस्बेमें रहने देंगे या नहीं?"

मैंने बनकर जवाब दिया—"कस्बेके राजा आप हैं। मैं तो एक गरीब आदमी हूँ। फिर आप ऐसी बात क्यों कहते हैं?"

तनाकर बोले—"शेखुलहिन्दको आप बाजारमें खड़ा करेंगे, तो हमारी इज्जत तीन कौड़ीकी रह जायगी।"

मैंने और भी बनकर कहा—"तो पिकेटिंगके लिए आप अपना नाम दे दीजिए, मैं हज़रतका नाम काट दूँगा।"

अन्तमें निश्चय हुआ कि मैं ३ दिनतक पिकेटिंग आरंभ न करूँ और वह बजाजोंको कांग्रेसकी बात स्वेच्छासे मान लेनेको तैयार करें। रातमें उन्होंने मुसलमान बजाजोंकी मीटिंग की। शेखुलहिन्दके बाजारमें आकर खड़े होनेकी कल्पनासे वे घबराये हुए तो थे ही, खानबहादुरकी बात झट मान गये और दूसरे दिन १२ बजेतक ही हमारे स्वयंसेवकों ने उनके विदेशी कपड़ोंकी गठरियाँ बाँधकर उनपर कांग्रेसकी मुहर लगा दी। तब हम हिन्दू बजाजोंकी ओर झुके और शामतक वे भी मान गये।

अब हम फिर एक जलूस थे। कलके जलूसमें जोश था, आजके जलूसमें खुशी लहरा रही थी। कल दसियों नारे थे, आज एक ही नारा था—शेखुलहिन्द मौलाना हुसेन अहमद साहब मदनी जिंदाबाद! जलूस उनके घरपर पहुंचा, तो वह बाहर आ गये। स्वयंसेवकोंने उन्हें मालाएँ पहनाईं और मैंने उनके पैर छुए, तो बोले—"मैंने क्या किया है?" मैंने कहा—"तो फिर किसने किया है।" और हम सब जोरसे हँस पड़े।

× × ×

जितने बड़े वह थे और जितना छोटा मैं था, उतने किन्हीं दूसरे बड़े-छोटोंके बीच यह घटना हुई होती, तो संबंध निश्चय ही खट्टे हो गये होते, पर वह तो इसके बाद और भी मीठे हो गये थे। सचाई यह है कि वह बाहरसे भीतरतक इतने मीठे थे, मीठे-ही-मीठे थे कि उन्हें मीठा होने के लिए किसी प्रयत्नकी आवश्यकता न थी।

हाँ, वह मीठे-मुलायम थे, पर इतने सख्त कि पहाड़ शरमाएँ। तभी तो वह अपने राजनैतिक जीवनमें शहीद की जिंदगी जी सके, पर मैं उसकी बात नहीं कहता। मैं तो उनकी रोजाना जिंदगीकी ही बात कह रहा हूं। एक दिन उनसे बातें कर रहा था। झुककर धीरेसे कानमें कुछ कहने की जरूरत पड़ी, तो मेरी दोनों कुहनियाँ उनके तकियेपर टिक गयीं। यही कोई दो-तीन मिनट मैं इस तरह रहा, पर हटा तो कुहनियाँ सुन्न। यह उस तकियेकी करामात थी। मोटे चमड़ेसे मढ़ा वह तकिया कि पत्थर भी मात। अंगुली दबाओ या अँगूठेसे, कहीं साँस नहीं—पत्थरमें साँस कहाँ?

बेवकूफी देखिए मेरी, कहा—"हज़रत, आप इसपर किस तरह सिर रखते हैं। मैं कल एक मुलायम तकियां लाऊँगा आपके लिए।"

जरा गम्भीर हो गये। तब बोले—"आप तकलीफ न करें। यहाँ यही ठीक है।"

मैं पीछे पड़ा रहा, तो धीरेसे बोले—"जिंदगी ऐसी है कि जाने कब फिरंगी बुला ले। फिर वह अपने घर तो रखता नहीं, जेलमें रखता है। वहाँ तकिया मिले, न मिले। सिर ऊँचा रखनेको ईंट तो मिल ही जाती है।" और धीरेसे उठकर अपना बिस्तर दिखाया। गद्दे-चादरके ऊपर एक मोटा खुरदरा काला कम्बल बिछा था। बोले—"इसपर सोता हूं, क्योंकि यह जेलमें भी मिलता है।"

सुनकर मेरा खून जम गया। १९३२ की जेल-यात्रा में २-३ दिन मैं भी कम्बलपर सोया था और सिरके नीचे ईंट रखी थी। कितनी मुश्किलसे, कटे थे वे दिन, पर कितनी गहरी फकीरी है, इस आदमीकी कि शरीरसे घरमें रहकर भी मनसे हमेशा जेलमें ही रहता है। बाहरे देशके फकीर!

× × ×

उनका घर मेहमानोंकी धर्मशाला था। उनके दस्तरखान पर मैंने एक बार ३५ आदमियों तकको चाय पीते देखा है। ऐसा दिन तो उनकी जिन्दगीमें शायद आया ही नहीं, जब उनके घर कोई मेहमान न हो। शुरूमें मैं उनके घर चाय नहीं पीता था और माथेपर चन्दनकी बिन्दी लगाया करता था। उनके सम्बन्धी क़ारी साहब इसे छूत-छातकी बात समझते थे और मुझे चिढ़ाया करते थे—"पंडितजी, चाय पीजिए!" एक दिन उन्होंने मौलाना साहबके सामने ही टंकोर दिया—"पंडितजी, पीजिए भी!"

मौलानाने कड़ी आँखोंसे उनकी तरफ देखा, तो मैंने कहा—"हज़रत, यह मेरा चन्दन देखकर समझते हैं कि मैं इनकी चाय पी लूँगा तो मेरा जनेऊ टूट जायगा, पर मेरा जनेऊ इतना मजबूत है कि मैं इन्हें चूरनकी गोली बना लूँ तब भी न हिले। असल बात यह है कि मैं गोश्त नहीं खाता और यहाँ गोश्त पकता है।"

कुछ नहीं बोले, पर दूसरे दिन मैं गया तो मेरी चाय गिलासमें आई। मालूम हुआ कि मेरे लिए २-३ बर्तन अलग मंगाए गए हैं और खास हिदायतें हुई हैं। कितना ध्यान रखते थे वह दूसरोंका! पर अपना?

× × ×

वह शिमला-सम्मेलनमें गाँधीजीके बुलावेपर क्रिप्ससे मिलने गए—सुलह-समझौतेकी बातें हो रही थीं वहाँ। स्टेशनपर किसी पत्रकारने बिना उन्हें बताए उनका फोटो खींच लिया और "वह हिन्दुस्तान टाइम्स" में छपा। मैंने उसे काटकर एक लिफाफेमें रख लिया और उनके पास पहुंचा—"हज़रत, आपका एक फोटो खिंचवाना है। जब आप कहें, मैं फोटोग्राफरको बुला लूँ!"

वह टालते रहे, तैयार न हुए, तो मैंने लिफाफा खोलकर उनका फोटो-प्रिंट उन्हें दिखाया—"मत खिंचवाइए आप, मेरे पास तो है आपका फोटो।" उसे देखकर मुस्कराए। तब गम्भीर होकर बोले—'इसे फाड़ दीजिए। आदमीकी सूरत नापाएदार है। उसे क्या रखना।"

मौलाना महमूदुलहसन साहब भी उन दिनों मक्कामें थे और मौलाना मदनी भी। दोनों भारतमें एक जबर्दस्त क्रान्ति करनेकी धुनमें लगे हुए थे, पर तब तक मौलाना मदनी अंग्रेजोंकी आँखका काँटा नहीं बने थे। मक्केका शासक शरीफ हुसैन कमजोर तो था ही, अंग्रेजोंकी कठपुतली भी था। वह मौलाना महमूदुलहसन साहबको गिरफ्तार करके अंग्रेजोंको सौंप देनेके लिए तैयार हो गया, पर इसकी खबर मौलानाके साथियोंको मिल गई और उन्होंने उन्हें एक गुप्त स्थानमें छिपा दिया। यह उन दिनोंकी बात है, जब पहला विश्व-युद्ध अपनी पूरी गरमीपर था और अंग्रेज घबराये हुए थे।

पता पानेके लिए मौलाना मदनी गिरफ्तार कर लिए गए और उनपर तरह-तरहके अत्याचार किए गए; पर न उनकी जबान खुली, न उनके चेहरेकी सरलतापर कोई बल पड़ा। बड़े मौलानाके दो और साथी पकड़ लिए गए और उनका पता न बतानेपर गोली मार देनेका हुक्म दिया गया। वे दोनों गोली खानेको तैयार थे, पता बतानेको नहीं, पर बड़े मौलानाने इसे नहीं माना और वे बाहर आ गए—गिरफ्तार हो गए। उनके गिरफ्तार होते ही ये छोड़ दिए गए, क्योंकि इनके खिलाफ फाइलमें कुछ था नहीं।

बड़े मौलाना और उनके दोनों साथियोंको जद्दा जेल भेज दिया गया। वाह रे मौलाना मदनी; उन्होंने अपने साथियोंसे कहा कि यदि बड़े मौलानाको हिन्दुस्तान भेजा जा रहा है तो मैं जेलसे बाहर रहनेको तैयार हूं, क्योंकि वहाँ उनकी सेवा करनेवाले बहुत हैं, लेकिन उन्हें कहीं और रखा जा रहा हो तो फिर मैं भी उनके साथ ही रहूंगा, ताकि उनकी उचित सेवा होती रहे।

जब यह खबर मिली कि उन्हें हिन्दुस्तान नहीं ले जाया जा रहा है, तो उनकी गुरुभक्ति गुरुके चरणोंमें पहुंचनेके लिए बेचैन हो उठी और उन्होंने अपने कुछ साथियोंसे, जिनकी पहुंच सरकार तक थी, यह प्रचार कराया कि मौलाना मदनीका मक्केमें रहना खतरनाक है—यह जरूर यहाँ कुछ-न-कुछ गड़बड़ करेंगे, इसलिए इन्हें भी मौलाना महमूदुलहसन साहबके पास ही भेज दिया जाय। यह सूझ सफल हुई और मौलाना मदनी भी जद्दा भेज दिए गए। बादमें सब लोगोंको माल्टा ले जाया गया, जहाँ वह बरसों नजरबंद रहे और अपने गुरुकी सेवा करते रहे; यानी वह अपने लिए नहीं, अपने गुरुके लिए भरी जवानीमें नजरबंद रहे।

बहुत लोगोंके तकाजेपर उन्होंने एक किताब लिखी, जिसमें उनके गुरू मौलाना महमूदुलहसन साहब स्वर्गीयके राजनीतिक कारनामोंका इतिहास है। इन कारनामोंमें मौलाना मदनीका पूरा हाथ रहा है, पर उस किताबमें उन्होंने अपनी चर्चा न आने देनेकी पूरी कोशिश की। उस दिन स्टेशनपर मिले, तो मैंने इसकी शिकायत की। बोले—"मैं अपनी बात क्या कहता?" और जरा रुककर बोले "मुझे तो आप जानते ही हैं।" मैंने उनकी तरफ देखा और देखता ही रह गया। किसी बालकने भी इतनी सरलतासे शायद ही कभी बात की हो। उन जैसी आत्मनिस्पृहता बस मैंने प्रेमचन्दमें ही देखी थी और किसीमें नहीं। इस आत्मनिस्पृहताने ही उन्हें नेतागिरीके रोगसे बचाए रखा। सचाई यह है कि वह राजनीतिज्ञ नहीं सन्त थे—हाँ, युगदर्शी सन्त। वह जब-तब जिस-किसीका विश्वास कर लेते थे, यह आधी-आधी सचाई है। पूरी सचाई तो यह है कि धोखे और कपटकी भाषामें वह कुछ सोच ही न सकते थे, उनका मानस जीवनकी तामसिक दिशासे परिचित ही न था।

× × ×

साम्प्रदायिक दंगोंका युग था और उनकी पृष्ठभूमि थी, मसजिदोंके सामने बाजा। मुसलमान आग्रही थे कि मसजिदोंके सामने बाजा न बजे, क्योंकि इससे हमारे धर्मका अपमान होता है। एक दिन मैंने पूछा—"आपकी इस बारेमें क्या राय है?"

बोले—"मैं तो मौलवी हूं, धर्मकी बातोंपर ही राय दे सकता हूँ।"

मैंने कहा—"हाँ, धर्मकी दृष्टिसे ही राय दीजिए।"

बोले—"पर यह धर्मकी बात कहाँ है, यह तो जहालत (मूर्खता) है।"

मुझे मालूम है कि जिन्नाने उन्हें खरीदनेकी कोशिश की थी और एक सर साहबने देशबन्धुके कई चक्कर काटे थे, पर वह उधर मुँह तो क्या करते, उन्होंने कभी पैर भी नहीं किया। उनके बोल थे—"जिन्ना अंग्रेज है और मैं पैदायशी तौरपर अंग्रेजका दुश्मन हूँ।"

उनसे कहा गया था—"आप एक बार उनसे मिले तो सही, वह अपने ही आदमी हैं और मुसलमानोंकी बहबूदी चाहते हैं।" और उन्होंने जवाब दिया था—"मैं काले और गोरे दोनों तरहके अंग्रेजोंसे नफरत करता हूँ। जिन्ना काला अंग्रेज है और अंग्रेज सिर्फ अपनी ही बहबूदी चाहता है।"

उनकी गम्भीर आवाजमें स्त्रीत्वका माधुर्य और पौरुषका गाम्भीर्य रसके साथ आ मिले थे।

वह महान थे, पर अपनी महानताका उन्हें आभास तक न था। वह अपने लिये कुछ न चाहते थे। उनकी जिन्दगीके दो चाँद-सूरज थे, भारत और ईश्वर। उनका जीवन इन्हें ही समर्पित था। वह समर्पित जीवनके उत्तम उदाहरण थे। १५ अगस्त १९४७ को उन्होंने कहा था—"मेरा काम पूरा हो गया। खुदा अब इज्जतके साथ जब चाहे अपने कदमोंमें बुला ले।"

१५-११-१९५७ को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद दारुल उलूममें पधारे। उनके साथ मौलानाको बैठे देखकर सोचा था—यह इतिहास-पुरुषके प्रति राष्ट्रपुरुषकी भाववन्दना है और बस ५ दिसम्बर १९५७ को मौलाना इस संसारसे चले गए, जैसे भगवानने उनकी प्रार्थना सुन ली—"खुदा जब चाहे इज्जतके साथ अपने कदमोंमें बुला ले।"

उनकी प्यारी यादमें मेरे लाखों-लाख सलाम।

(नया जीवन)

मीटर प्रणाली देशमें एकरूपता उत्पन्न करेगी

अलगूराय शास्त्री,

यह तो सर्वविदित है कि भारतवर्षके प्रत्येक प्रदेश और जिलेमें बाटोंकी बहुत अधिक विविधता है। भारतमें निवास करनेवाले जितने देवी-देवता हैं, शायद उतने ही बाट हैं। और हर देवी-देवता इन बाटोंकी सहायतासे माप-तोलको अपने अनुकूल बनाये हुए है और इन अनुकूल बाटोंसे ही ये तोलते हैं। मेरे जिले आजमगढ़के गाँवमें द्रव्यके स्थानपर वस्तुओंमें मजदूरी देनेकी प्रथा है। इन वस्तुओंमें अधिकतर अनाजका प्रयोग किया जाता है। किसानोंको मजदूरी देते समय अनाज तोलनेके लिए जिन बाटोंका प्रयोग किया जाता है, वे पत्थरोंको घिसकर बनाये जाते हैं। इन पत्थरोंमें विभिन्नता हो जानेके कारण किसानों और मजदूरोंको विशेषकर हानि उठानी पड़ती है। किसान भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी अब भी रीढ़ है। इसलिए इन किसानोंकी हानिसे सम्पूर्ण भारतकी उन्नतिमें बाधा पड़नी स्वभाविक है।

देहातोंमें खटकिनें फल-खरबूज-तरबूज आदि बेचती हैं। वे भी अपने ही बाटोंको व्यवहारमें लाती हैं। हँसीकी बात तो यह है कि वे किसी भी ईंटके टुकड़ेको पाव तथा आध-सेर बना लेती हैं और तौलनेमें उसीका प्रयोग करती हैं। निरन्तर प्रयोगमें आनेके कारण यह बराबर घिसता रहता है और इसका भार घटता रहता है, परन्तु कोई भी पूछनेवाला नहीं होता। यदि आप तौलके भारपर कोई संदेह प्रकट करें तो अपने आपको भाग्यशाली समझियेगा, यदि खटकिन आपके सिरपर कोई चीज न दे मारे। वह अपने कहनेपर अडिग रहती है। इस प्रकारके झगड़ोंको निपटानेके समय पंच लोग और भी रोचकता उत्पन्न कर देते हैं। खटकिनसे होनेवाले विवादमें मध्यस्थता करते हुए वे कह उठते हैं, 'बाबूजी, वह ठीक ही कहती है। तौल कम है तो न लीजिए। इसे पुलिसमें देनेकी धमकी क्यों देते हो? हम सब भी इसी बाटसे प्रतिदिन खरीदते हैं।' ऐसे रोचक वार्तालाप हमारे छोटे-छोटे बाजारोंमें प्रायः नित्य ही देखे और सुने जाते हैं।

आपकी दुसेरी कम है

हमारे जिलेमें खेतोंमें कटिया, दौरी और ओसावन करनेवाली मजदूरिनोंको पारिश्रमिक रूपमें अनाज दिया जाता है। ये प्रायः ही इस बातपर हठ करती हैं और कभी-कभी तो दुराग्रहके साथ शोर भी मचाती हैं कि वे तो अमुक बाबूकी दुसेरीसे तौलवाकर ही मजदूरीका अनाज लेंगी। आपकी दुसेरी कम है। मजदूरीके इस मामलेको लेकर झगड़ा कभी-कभी काफी गहरा रंग पकड़ लेता है। मेरी माताजीके बाटोंपर मजदूरिनोंका अधिक विश्वास था। वस्तुतः वे उनको न्यायपूर्वक तौलकर देती थीं। तौलके सम्बन्धमें होनेवाली ये घटनाएँ बाल्य-कालसे ही मेरे हृदयपर अंकित हैं।

ओखलीमें धान कूटकर चावल बनानेका जो ढंग हमारे गाँवमें प्रचलित है, उसके लिए भी मजदूरीके रूपमें धान दिया जाता है। इस धानको तौलनेमें भी अनेक ऊटपटांग बाटोंका प्रयोग किया जाता है और ऐसे ही व्यर्थके झगड़े हुआ करते हैं। अनेक प्रकारके बाट चलनेके कारण मजदूरियोंमें एकरूपता नहीं आ पाती, परन्तु बाटोंकी विविधता तो इतनी बुरी दशामें है कि जिले-जिले, तहसील-तहसील, परगने-परगने, टप्पे-टप्पे और गाँव-गाँवमें अलग-अलग प्रकारके बाट चलते हैं। इन सबमें एकरूपता उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। मीटर-प्रणालीके द्वारा यह एकरूपता उत्पन्न हो सकेगी और तब बाटोंकी विविधताके कारण जो कठिनाइयां और झगड़े हो रहे हैं, वे सब दूर हो जायेंगे।

शेषांश पृ० ४४१ पर

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

प्रकाशकों तथा लेखकोंसे निवेदन—समालोचनाके लिए पुस्तकें, अन्य प्रकाशन सामग्री तथा संबंधित पत्र-व्यवहार, सम्पादक-'विशाल भारत', बल्का बस्ती आगरा के पतेपर भेजा करें।

उद्योग-व्यापार पत्रिका

(आर्थिक प्रगति विशेषांक) इस अंकका मूल्य एक रुपया। वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय भारत सरकार (नई दिल्ली) की ओरसे प्रकाशित। उद्योग-व्यापार पत्रिकाका अक्टूबर '५८का अंक आर्थिक प्रगति-विशेषांक है। भारत सरकारकी ओरसे जितने भी पत्र निकलते हैं, उनमें हम 'उद्योग-व्यापार पत्रिका' को ही सबसे अधिक उपयोगी पाते हैं। अन्य सरकारी पत्रोंकी अपेक्षा तो गैर सरकारी अधिक अच्छे निकलते हैं। प्रस्तुत अंकमें जितने भी लेख हैं, उनसे पाठकोंके ज्ञानकी वृद्धि होती है। हम 'विशाल भारत' के अगले अंकमें एक लेख 'खाद्य और खेती' चयनमें, दूसरा लेख इसी अंकसे 'देश विदेशमें भारतीय चायकी खपत' शीर्षक स्वतंत्र रूपसे देंगे। इन्हीं लेखोंकी बानगीसे पाठक समझ सकेंगे कि उपर्युक्त पत्रिका कितनी उपयोगी है। यह विशेषांक पांच भागोंमें विभाजित है। पहलेमें लेख हैं, दूसरे भाग 'जानकारी' में 'विशाल उद्योग' 'लघु उद्योग' इत्यादि परम उपयोगी लेख हैं। ग्राफ-विभागमें आद्योगिक उत्पादन तथा मशीनोंको मरम्मत संबंधी आवश्यक ग्राफ हैं। सांख्या-का विभाग तथा परिशिष्ट विभागमें भी ऐसे ही उपयोगी लेख हैं। आद्योगिक विकास तथा सरकारी नीति और 'साठ लाख टन इस्पातके उत्पादनका लक्ष्य' आदि महत्वपूर्ण लेख पठनीय हैं। जो देशकी सर्वांगीन उन्नतिके विषयमें जानकारी रखना चाहते हैं, उनके लिए प्रस्तुत अंक तो बड़ा ही आवश्यक है। पत्रकारों और देशकी उन्नति चाहने वालोंको तो इस अंकका गहन अध्ययन करना चाहिए। हम भारत सरकारके वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालयको ऐसे उत्तम प्रकाशनके लिए बधाई देते हैं। --श्रीराम शर्मा

जीवन दर्शन—मूल लेखक—खलील ज़िब्रान, अनुवादक—सत्यकाम विद्यालंकार, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, मूल्य--डेढ़ रुपया (जेकिट युक्त जिल्द सहित)।

ज़िब्रानके 'दी प्रोफेट' नामक ग्रन्थका यह श्रेष्ठ अनुवाद है। यह पुस्तक संसारकी लगभग समस्त भाषाओंमें अनुदित हो चुकी है। अपने विशेष कथन-कौशलके लिये प्रसिद्ध ज़िब्रान की संक्षिप्त-सी जीवनी भी दी गई है, जो दो के स्थान पर कमसे कम चार या पाँच पृष्ठोंकी होनी चाहिये थी। ज़िब्रान की शैलीकी प्रतीकात्मकता तथा उसके द्वारा संवेद्य सूक्ष्म

[पृष्ठ ४४० का शेषांश]

विद्यार्थियोंकी कठिनाई

माप-तौलके बाट और पैमानोंका विद्यार्थी जीवनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्कूलोंमें बाट और पैमानोंका हिसाब-किताबमें प्रयोग होता है। बचपनमें ये बाट और पैमाने कंठगत करने पड़े थे और उनकी दुरुहतापर जो चपत अध्यापकोंसे खाने पड़ते थे, वह अब तक नहीं भूले हैं। बड़े होनेपर बारह इंचका एक फीट, ३ फीटका एक गज और १७६० गजका एक मील, यह असंगत प्रणाली हमको वैसी ही निरंकुश दिखाई दी जैसे अंग्रेजी वर्णमालाका क्रम, उसकी अक्षर-ध्वनि और उन अक्षरोंसे बननेवाले अनिश्चित उच्चारण के शब्द।

स्वराज्य पानेके साथ ही हम दशमिक प्रणालीके सिक्के और माप-तौल आदिके बाट तथा पैमानोंके नये रूप भी पाने लगे हैं। इनसे प्राचीन भारतकी गौरवमयी संस्कृतिका हमें परिचय मिलता है। वस्तुतः यह दशमिक प्रणाली आजकी सूझ नहीं है। इसका आविष्कार हमारे देशमें बहुत पहले हो चुका था। कई विद्वानोंने इसको लगभग दो हजार वर्ष पूर्वके किसी गणितज्ञकी सूझ बताया है; परन्तु इतना ही नहीं दशमिक प्रणालीका उल्लेख तो वेदोंमें भी हुआ है:-

एकंचते दशंचते शतंचते सहस्रंचते कल्पयामि।

अर्थात् एक, दस, सौ, हजार तेरे लिए कल्पित करता हूँ। निरुक्तके वचनके अनुसार सहस्र शब्द असंख्यार्थ है। दससे गुणा करते जाओ और अन्य संख्याओंको प्राप्त करते जाओ। इस प्रकार स्वराज्य प्राप्त करनेके पश्चात अब हम अपने सत्य-स्वरूपको भी प्राप्त करते जा रहे हैं। यह हमारे लिए सौभाग्यकी बात है। हमारे देशमें स्थान-स्थानपर अलग-अलग जो बाट चलते हैं, उनसे पता चलता है कि देश अनेक टुकड़ोंमें बँटा हुआ है। समस्त देशमें मीटर प्रणालीके नये बाट और पैमाने चलनेसे एकरूपता और एकता उत्पन्न होगी, देशको सुदृढ़ और संगठित करनेमें इससे बहुत सहायता मिलेगी।

भावनाकी रक्षाका सफल प्रयत्न इस अनुवादमें पाया जाता है। हाँ, भाषामें कहीं-कहीं पंजाबीपन-सा पाया जाता है, जो कि बुरा लगता है। 'असौंज' का प्रयोग हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें 'सर्व प्रचलित' नहीं हैं। (पृ० ९)

'मृत्यु' 'प्रार्थना' 'अपराध और दंड' विशेषरूपसे पठनीय हैं। देखिए:—"तुम्हारा मृत्यु-भय उस चरवाहेके भयके समान है जो राज-सम्मान पानेके लिए दरबारमें उपस्थित किया गया है और जो हर्षसे प्रफुल्लित होनेके स्थान पर राजभयसे थर-थर काँप रहा हैं।"

छपाई, कागज तथा गेट-अप परम सुन्दर हैं। आवरण चित्र विशेषरूपसे भावात्मक तथा ज़िन्नानकी पुस्तकके अनुरूप है। आशा है, प्रकाशक ज़िन्नान जैसे अन्तर्राष्ट्रिय प्रसिद्धिके लेखकके अन्य ग्रन्थोंको भी इसी प्रकार अनुदित करवाकर छपवाएँगे।

पत्रकार वृहत्त्रयी—ले०—गौरीशंकर गुप्त, प्रकाशक-संचालक हिन्दी-संसद गायघाट, वाराणसी (उ० प्र०) मूल्य-एक रुपया पचीस न० पै०।

विदेशोंमें, लेखकोंका निर्माण तथा पथ-प्रदर्शन करने वाले सम्पादकोंको उनका देश विशेष सम्मान प्रदान करता है। हमारे यहाँ भी चिन्तामणि महाराज (अंग्रेजी के होनेके कारण-संभवतः) को प्रर्याप्त मात्रामें गौरव प्रदान किया गया था। हिन्दीके पत्रकारोंमें मूर्धन्य स्थान प्राप्त करने वाले विद्वत्प्रवर—श्रीमान अ० प्र० वाजपेयी, स्व० पराडकरजी तथा श्रीमान गर्दे जीको लेकर यह छोटा-सा ग्रन्थ लिखा गया है, जो हमारी रायमें हिन्दी वालोंके लिए लज्जाकी बात है। गौरीशंकर गुप्तका यह कार्य हिन्दीवालों की आँखें यदि खोल सका तब तो कोई बात नहीं, अन्यथा यह कितनी लज्जाकी बात होगी कि इन पत्रकार महारथियों के सम्मानमें, उनकी जीवनीका लेखन करनेकी ओरसे हिन्दी-वाले उदासीन बने रहें। एक समिति बनाकर, धन सचय-करके एक वृहत ग्रन्थ (हिन्दी पत्रकारिताके इतिहासके साथ) इन विद्वानोंके विषयमें निकलना चाहिए। लेखकने यह पुस्तक लिखकर मानों उन लोगोंकी आँखें खोलनेका प्रयत्न किया है, जो आज गद्दीनशीन हैं। लेखकके साहस तथा परिश्रमकी हम प्रशंसा करते हैं—शायद अब भी लोगोंकी आखें खुले। इस पुस्तकमें जो मसाला है, वह कामका है किन्तु जितना होना चाहिये उतना इसमें आ ही नहीं सकता था। छपाई गेटअप मामूली है।

ममता (सामाजिक नाटक)—ले०—श्री हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, मूल्य—दो रुपया पचास नये पैसे (सजिल्द, जैकिटयुक्त) पृ० ११६

इस नाटकमें प्रेमी जी ने एक प्रयोग किया है, जिसे उनसे पूर्व (विदेशोंमें और हमारे यहाँ भी) अनेक नाटककार सफलता पूर्वक कर चुके हैं। वह है कि—"सारा नाटक एक ही स्थान पर समाप्त हो जाता है। इसलिए केवल एक सेटका निर्माण करना पड़ेगा"।

अमरीकी-स्टेज पर इस प्रकारके नाटक विशेषरूपसे प्रदर्शित किये जाते हैं ('आर्सनिक एन्ड ओल्ड होस आदि') और इसकी सफलताके लिए कथा तत्वका सुन्दर बुनाव आवश्यक हो जाता है। इस नाटकमें इस प्रयोगके कारण दोष आ गये हैं। नाटककी कथा, बहुत सुन्दर है किन्तु इस प्रयोगके कारण गुड़ गोबरमें परिवर्तित हो गया है। एक वकील (रजनीकांत) का कला नामक युवतीसे प्रेम है, किन्तु विवाह उसे एक रईस-पुत्री लतासे करना पड़ता है, जिसके पिताका मैनेजर विनोद उसे तथा उसकी सम्पत्तिको हथियाना चाहता है। बिनोद जब लताको उड़ा ले जाता है और एक मकानमें कैद कर देता है, उस समयकी कथा तथा लताके छुटकारेकी कथा, कथोपकथनोंके माध्यमसे सूक्ष्म है, जो नाटकीय तत्वोंकी हत्या ही नहीं करता वरन् कथोपकथनोंमें भी दोष उत्पन्न कर देता है। अन्तमें लता छूट तो आती है, किन्तु वकील साहब अपनी पूर्व प्रेमिकाको प्राप्त करते हैं और लता जल मरती है—बच्चेकी रक्षा करनेके प्रयत्न में।

चरित्र-चित्रण तथा वातावरणके संकेत सुन्दर हैं; हाँ, आरम्भमें मुंशीजीके कुछ संवाद वृथा (भरती के) हैं।

हमारा यह दृढ़ मत है कि यदि प्रेमी जी ने यह प्रयोग न किया होता तो यह नाटक उच्च कोटिका हो जाता, क्यों कि कथामें परम श्रेष्ठ नाटकीय तत्व हैं और प्रेमी जी मँजे हुए नाटककार हैं। केवल दो सादा 'सेट' चाहिए। एक वकीलके घरका दूसरा एक बन्द कमरेका (जिसमें विनोद लताको बन्दी बनाता है)। इन दो स्थानोंपर घटनाके चित्रण करनेसे अस्वाभाविक शिथिलताका मार्जन हो जाता।

ईमानदारीकी बात है कि 'नये प्रयोग' की दृष्टिसे इस बार माननीय प्रेमी जी असफल रहे हैं। प्रेमी जी अपने स्वरूपमें जितने सुन्दर हैं—वही होता तो नाटक 'फस्ट क्लास' हो जाता।

छपाई गेटअप, जिल्द, टाइप तथा कागज बहुत बढ़िया हैं। —रमेशकुमार शर्मा

कालिदास (सजिल्द--जेकिट सहित); लेखक : महामहोपाध्याय वासुदेव विष्णु मिराशी ; प्रकाशक : हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर लिमिटेड, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई-४ ; मूल्य : चार रुपए ;

महामहोपाध्य मिराशीजीके कालिदास संबंधी सभी विषयोंपर व्यापक रूपसे सर्वाङ्गीण विवेचन करनेवाले ग्रंथका यह हिन्दी रूपान्तर है, जो कि मूल पुस्तकका-सा आनन्द देता है। अनुवादकी पूर्ण सफलता इसीसे परिलक्षित होती है। इस ग्रंथकी सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कालिदास संबंधी पिछले दस-पंद्रह वर्षतकके शोधका विवेचन भी किया गया है ; इसके निष्कर्ष इसीलिए लगभग सर्वमान्य होंगे। प्रत्येक मतको लेकर उसके पक्ष-विपक्षके तर्कोंकी परख तथा विद्वतापूर्ण निष्कर्ष इस पुस्तकके विशेष गुण हैं।

पुस्तकमें १० परिच्छेद हैं :—काल निर्णय ; कालिदास-कालीन परिस्थिति ; जन्म-स्थानकी समस्या ; चरित्र-विषयक अनुमान ; कालिदासके काव्य ; कालिदासके नाटक ; कालिदास के ग्रंथोंकी विशेषताएँ ; कालिदास के विचार ; कालिदास और उत्तरकालीन ग्रंथकार। वैसे तो प्रत्येक परिच्छेद विद्वता-पूर्ण तथा गहन विवेचनसे युक्त है, किन्तु 'काल निर्णय', 'कालिदासके काव्य' तथा 'कालिदासके नाटक' नामक परि-च्छेद विशेषरूपसे अध्ययनके योग्य हैं।

विद्वान लेखकने विभिन्न ऐतिहासिक तथ्योंका परीक्षण करके यह माना है कि कालिदासको हम अश्वघोषसे पहलेका अर्थात् ईसापूर्व पहली शताब्दीका नहीं मान सकते एवं तत्कालीन साहित्य तथा इतिहासका मंथन करनेके बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि कालिदास चौथी शताब्दी के अन्तमें अथवा पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें हुए होंगे। पुष्ठ प्रमाणोंसे युक्त यह निष्कर्ष युक्तियुक्त ही है।

इसके बाद लेखकने कालिदासकालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियोंका पूर्ण विवेचन किया है ; और माना है कि इतनी उत्कृष्ठ ग्रंथ-रचना करनेके लिए कालिदासको तत्कालीन परिस्थिति अवश्य ही अनुकूल पड़ी होगी। इस परिच्छेद (तथा संपूर्ण ग्रंथ) की एक विशेषता यह भी है कि अध्ययनमें न केवल बौद्ध तथा अन्य भारतीय साहित्योंकी तुलनात्मक अध्ययनकी सहायता ली गयी है, अपितु पाश्चात्य साहित्य तथा इतिहाससे भी सहायता ली गयी है, (पृ० ४७) इस कारण यह पुस्तक अन्तर्राष्ट्रिय कवि कालिदासके अध्ययनके लिए अन्तर्राष्ट्रिय स्तरपर विवे-चन करती है। हमारी समझमें तो यदि इसका सफल अंग्रेजी अनुवाद कर दिया जाय तो बहुत ही उत्तम रहेगा। कालिदासके जन्मके विषयमें अनेक मतों (उसमें भावुकता-प्रधान बंगाली भाइयोंका यह मत भी है कि कालिदास बंगाली थे) का विवेचन करके लेखकने केवल इतना कहा है कि कालिदासके बचपनके दिन उज्जयिनीमें ही बीते होंगे। ऐसे सतर्क एवं तर्कयुक्त कथनोंके कारण ग्रंथको तटस्थ वैज्ञा-निक विवेचनकी गम्भीरता मिल गयी है।

कालिदासने ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया था, (पृ० ७७) यह मानते हुए लेखकका मत है कि कालिदासकी मनोवृत्ति कर्मकाण्डकी अपेक्षा अध्यात्मकी तरफ रही होगी, (पृ० ७९) और कवि विलासी तथा विनोदी स्वभावका रहा होगा (पृ० ८९)। इन कथनोंसे सहमत होते हुए भी हम विद्वान लेखकके इस मतसे सहमत नहीं हैं कि, "मनुष्य···का जीवन जबतक विशुद्ध नहीं होगा, तबतक उसके द्वारा उच्चकोटिका साहित्य-सृजन नहीं हो सकता।" इसके ठीक विपरीत मत को अधिक मान्यता न देते हुए भी हम उपर्युक्त मतसे पूर्ण-रूपेण सहमत नहीं है।

इतने विवेचनके बाद विद्वान लेखकने कालिदासके काव्यों और नाटकोंका सर्वाङ्गीण विवेचन किया है, जो कि किसी भी साहित्यके विद्यार्थीके लिए पठनीय है। इस विवेचनसे सामान्य साहित्यप्रेमी ही नहीं, संस्कृतके विद्यार्थी भी अपरिमित लाभ उठा सकते हैं। इस विवेचनका एक गुण यह है कि इसमें तात्विक विश्लेषणके अतिरिक्त कालि-दासके अपने ग्रंथोंका (तथा अन्य साहित्यका भी) तुलना-त्मक अध्ययन है, जो कि कालिदास-साहित्यमें अन्तर्दृष्टि प्रदान करनेवाला है। पृ० १६८ पर जो 'खब्बू' शब्दका प्रयोग किया गया है, वह भला नहीं लगता। हिन्दीमें 'खाऊ', 'पेटू' तथा 'खड़ूस' शब्द अधिक चलते हैं। 'हकीकत' (पृ० २०२) प्रयोग भी हमें जँचा नहीं। इस विवेचनमें सबसे सुन्दर विश्लेषण 'शकुन्तला' का है। हमने तो अभी-तक इतना सुन्दर विश्लेषण हिन्दीमें पढ़ा नहीं है। 'शकुंतला' की कथाके मूलसूत्र तथा उनका 'पद्मपुराण' एवं 'महाभारत' के माध्यमसे विकास पूर्णरूपसे प्रदर्शित किया गया है।

कालिदासके साहित्यका सम्यक् परीक्षण उसके भावपक्ष

कहानियोंका अपूर्व संग्रह

हिन्दी-संसारमें बिल्कुल नई चीज

स्त्री-पुरुष सभीके लिये उपयोगी

बोलती-प्रतिमा

लेखक—श्रीराम शर्मा

जुल्मोंकी आगमें रात-दिन जलते और भूखकी लपटोंसे तिल-तिल करके झुलसते हुए ग़रीब किसानोंकी व्यथाका सजीव और स्वाभाविक चित्र देखकर दिल दर्दसे तड़प उठता है, और पीड़ित मनुष्यताके प्रति मनमें स्वभावतः सहानुभूतिकी भावना उमड़ने लगती है। आज ही एक प्रति मँगाकर पढ़िए। मूल्य २।), डा० म० अलग।

—*—

प्रसिद्ध शिकारीके संस्मरण

साहस और वीरताके कारनामोंसे भरी हुई

हिन्दीमें अपने विषयकी सिर्फ एक ही पुस्तक

लेखक—श्रीराम शर्मा **'शिकार'** मूल्य-तीन रुपया

...एक मिनट तक हम दोनों डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था। उसकी आँखोंसे ज्वाला-सी निकल रही थी। यह एक मिनट एक युगके समान था। अन्तमें बाघ मुड़कर भागा। मैंने समझा कि बस मेरे ऊपर आया। धाँय! जंगल गूंज गया। बन्दूक छोड़कर मैं नीचे दौड़ा; पर लुढ़कने लगा।—नीचे भयानक खड्ड और सिरसे चालीस-पचास गज ऊपर हृदय दहलानेवाली बाघकी गरजन। तब...

'शिकार'

जीवन और मृत्युके साथ लड़ते हुए एक-एक क्षण!

आज तक आपने इतनी सुन्दर पुस्तक न पढ़ी होगी!!

सजिल्द! सचित्र! चित्रित्र!!

मिलने का पता—

विशाल-भारत बुक-डिपो, १६५।१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

तथा कलापक्ष दोनोंको लेकर किया गया है, उसमें 'ध्वनि', 'रीति', 'अलंकार' आदिका जो स्थान तथा महत्व है, उसका अध्ययन "कालिदासके ग्रंथोंको विशेषताएँ" नामक परिच्छेद में पूर्णरूपसे किया गया है।

पृ० २५० पर 'अश्लीलता' का जो परीक्षण है, उसमें निकाले गये निष्कर्षोंसे हम सहमत नहीं हैं। तत्कालीन परिस्थितियों तथा उस कालकी संस्कृतिके स्वरूपको देखते हुए "ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः" जैसे कथनों में अश्लीलताका जघन्य आरोप कविपर लगानेसे हम सहमत नहीं हैं। यहीं मेघदूतका ४३ वाँ छंद न होकर (पृ० २५०) ४१ वाँ होना चाहिए।

पृ० २७२ पर 'लीगल फिक्शन' का सुन्दर विवेचन है, जो कि ग्रंथके अध्ययनकी पूर्णताका उदाहरण है। ग्रंथके अंतमें कालिदासके विभिन्न विषयोंपर, जो मत अथवा विचार रहे होंगे, उनका अन्तर्संश्यके आधारपर विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत 'शिक्षा' विषयक विवेचन है (जो कि पहले भी किया जा चुका है), इसमें शिक्षक शिष्य, स्त्री-पुरुष, सह-शिक्षा आदिपर प्रकाश डाला गया है।

अन्तमें नामानुक्रमणिका दी गयी है, जो कि अत्यन्त लाभदायक है तथा इसके साथ-ही-साथ संदर्भ ग्रंथोंकी सूची भी उपस्थित की गयी है।

इस ग्रंथकी अपनी एक विशेषता है लेखकका वृहत ऐतिहासिक दृष्टिकोण और उसने कालिदास संबंधी अध्ययनमें विशेष सहायता प्रदान की है, विशेषकर 'वाकाटक सम्राटों' के अन्तरंग सम्बन्ध तथा विभिन्न स्थानोंपर पाये गये शिलालेखों एवं प्राचीन ग्रंथोंने इस अध्ययनको बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा पूर्ण बना दिया है।

हाँ, यदि संस्कृतके जितने श्लोकादि उद्धरित किये गये हैं, उन सबका अर्थ भी दे दिया गया होता, तो और भी अच्छा रहता।

सम्पूर्ण पुस्तकके पढ़ जानेपर हमें कहीं भी छापेकी कोई गलती नहीं मिली, यह प्रकाशक महोदयके अमूल्य अथक परिश्रमका परिचायक है, जो कि उनकी प्रतिष्ठाके अनुकूल ही है। छपाई गेट-अप परम सुन्दर हैं।

हमारे मतसे तो यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालयमें रहनी चाहिए तथा प्रत्येक संस्कृतके विद्यार्थीको पढ़नी चाहिए।

'मेघदूत'—एक पुरानी कहानी (सुन्दर चित्रित जेकिट तथा जिल्द सहित); लेखक : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक : हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर लिमिटेड, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई-४; मूल्य : तीन रुपया।

मेघदूतकी पुरानी कहानी द्विवेदीजीकी कलमके झरनेके समान द्रुतगतिसे ('रेसी स्टाइल') चलनेवाली मनोहारी शैलीमें नई-सी लगती है। मूल श्लोकोंके साथ कही गयी यह कहानी कुछ अपनी विशेषताएँ भी लिये हुए है। यह अनुवाद नहीं है, अपितु 'मेघदूत' को 'कहानी' के रूपमें (उसकी अन्तर्कथाओंके साथ) उसके भावसौंदर्यके निखारके लिए कहा गया है। यक्षके मनकी खोज करके उसके विरह-व्याकुल मनकी व्यथाओंका संदर्भ तथा पूर्वापर सम्बन्ध सहित पाठकोंसे मधुर रूपमें परिचय कराया गया है। कालिदासकी इस अमर कथाको समझनेके लिए, जिन साहित्यिक, ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक तथ्योंकी आवश्यकता पड़ती है, उनको द्विवेदीजीने अपने 'कहानीकरण' में बड़े कौशलसे सम्मिलित कर दिया है।

भाषा प्रवाहपूर्ण तथा 'आम-फहम' है, जिसमें उर्दू, अंग्रेजी आदि विभाषी शब्दोंका सुन्दर प्रयोग है :—

"मैं तुम्हारे वंशको जानता हूं और तुम्हें भी जानता हूं, तुम इन्द्रके प्रकृति पुरुष हो—पब्लिक-रिलेशंस-आफिसर! तुम प्रजा—प्रकृति-से उसका संबंध स्थापित करते हो।" (पृ० ६४)

इस प्रकारके कथनोंके माध्यमसे 'मेघदूत' की मूलभावना का पाठकोंको आत्मीकरण कराया गया है, जो कि पाठकको रसमें भिगो देता है।

कथा ही कथामें कठिन शब्दों तथा संदर्भोंको पाठकपर स्पष्ट कर दिया गया है (पृ० १६)। 'ज्ञातास्वादो विवृत-जघनां···" जैसी उक्तियोंको, जिनको कि कुछ लोग अश्लील कहते हैं, द्विवेदीजीने बड़ी सुरुचिपूर्ण भाषामें साफ-साफ समझा दिया है, न भाव-चित्र धुँधला पड़ा है और न 'कथा' में कहीं भी व्यवधान आया है। (पृ० ७८)।

अन्तर्कथाओंको (पृ० ८३ तथा १५० आदि) बड़ी कोमलतासे कहानी-सूत्रमें गूँथ दिया गया है और इस प्रकार बिना किसी अन्य संदर्भ ग्रंथकी सहायताके पाठक 'मेघदूत' का पूरा-पूरा मजा ले सकता है। पृ० १३५ पर 'घुमन्तू' के स्थानपर 'घुमक्कड़' का प्रयोग अधिक रुचिकर लगता, ऐसा हमारा नम्र निवेदन है।

मशीनकी खराबीके कारण (जैसा कि प्रकाशक महोदय का कथन है) कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं और उनके लिए

दिवालीके शुभ अवसरपर हम अपने ग्राहकों, अनुग्राहकों
तथा शुभेच्छुओंके मंगलमय नववर्षकी कामना
करते हुए अभिनन्दन करते हैं।

*

शुद्ध सरसों के तेल

तथा

हर किस्म के चावलों के उपलब्धकर्ता

*

फारविसगंज जगदीश मिल्स लि०
फारविसगंज, पूर्णिया (बिहार)

जो शुद्धिपत्र उपस्थित किया गया है, उसमें भी वे अशुद्धियाँ रह ही गयी हैं। या तो शुद्धिपत्र ही न होता या फिर उसे अन्य मशीनसे छपवाया जाना चाहिए था।

आवरणका चित्र परम भावपूर्ण तथा सुन्दर है। गेट-अप अच्छा है। पुस्तक प्रत्येक साहित्य-रसिकके लिए पठनीय है।

शरत्-प्रतिभा (सुलभ साहित्यमालाके 'शरत् साहित्य' का ३७वाँ तथा ३८वाँ पुष्प, एक पुस्तकके रूपमें)—मूल लेखक—डॉ० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त; अनुवादकर्ता—पं० रूपनरायण पाण्डे। प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर लिमिटेड, हीराबाग, बम्बई-४। मूल्य—तीन रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थमें विद्वान लेखकने सम्पूर्ण शरत्-साहित्यकी सम्यक समालोचना उपस्थित की है। ग्रन्थके आरम्भमें कम-से-कम तीन या चार पृष्ठकी शरत् बाबूकी जीवनी होनी चाहिए थी, जो नहीं दी गई है।

प्रकाशकके यहाँसे शरत्का लगभग सम्पूर्ण साहित्य हिन्दीमें प्रकाशित किया जा चुका है, यह समालोचनात्मक ग्रन्थ उसी पुस्तक-मालाका एक महत्वपूर्ण गुरिया है—जो कि शरत्-साहित्यको समझनेमें सामान्य हिन्दी पाठकोंकी बड़ी सहायता करेगा। ग्रन्थमें १५ परिच्छेद हैं :—बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द; शरत्साहित्यकी भूमिका; शरत्साहित्य में नारी—रमणीका प्रेम; जननीका स्नेह; शरत्साहित्यमें शिशु; समस्याकी खोजमें; छोटी कहानियाँ; नाटक; शरत्साहित्यमें नीति; हास्य; गठन-कौशल; रचना-रीति या शैली; साहित्यिक विचार और शेष परिचय।

प्रगट ही है कि जितने भी संभव दृष्टिकोणोंसे शरत्-साहित्यका अध्ययन किया जा सकता था—लेखकने किया है। आरम्भमें बँगला-साहित्य और शरत्-साहित्यकी पृष्ठ-भूमि तथा तीन महान बंगाली साहित्यिकोंका तुलनात्मक अध्ययन है। इस विवेचनमें बँगाली साहित्यकी आत्माके दर्शन पाठकको हो जाते हैं। अँग्रेजी-साहित्य (हिन्दी आदि देशी भाषाओंसे नहीं) से इतनी सहायता तथा उससे इतनी तुलनाएँ की गई हैं कि प्रतीत होता है, जैसे बंगला-साहित्य और अंग्रेजी-साहित्यके अतिरिक्त संसारमें अन्य भाषाओंके साहित्य हैं ही नहीं—हाँ, लेखकके अंग्रेजी-साहित्य के गहन अध्ययनका परिचय इससे अवश्य मिल जाता है। 'अबच' का प्रयोग इतना अधिक है कि कानोंमें खटकने लगता है। "इसे बाद देनेपर" (पृ० ५) इस प्रकारके प्रयोग अहिन्दी हैं और अनुवादको इनसे बचाना चाहिए था।

ग्रन्थकी एक विशेषता है, विभिन्न लेखकोंके विभिन्न उपन्यासोंके पात्रोंकी तुलनाके द्वारा अन्तर्साक्ष्यपर आधारित जो निष्कर्ष हैं, वे बड़े ही विद्वतापूर्ण हैं तथा उपन्यासकारों एवं उपन्यासोंके तुलनात्मक अध्ययनमें बड़े ही सहायक सिद्ध होंगे।

जिस सर्वांगीण दृष्टिकोणको इस ग्रन्थमें अपनाया गया है, यदि उसीको लेकर हिन्दीके साहित्यका विवेचन किया जाता तो कितना लाभप्रद होता—समझनेकी ही बात है। हिन्दीके टुच्चे समालोचनात्मक ग्रन्थ (यह कहिए नोट्स) लिखनेवालोंको यह पुस्तक 'शास्त्र' के समान पढ़नी चाहिए। शरत-साहित्यमें रुचि रखनेवालोंके लिए तो यह परमावश्यक ('मस्ट') है।

अनुवाद वैसे तो परम श्रेष्ठ है, किन्तु—जैसा कि ऊपर कहा गया है—कहीं-कहीं बंगाली प्रयोगोंका समावेश उसी रूपमें कर लिया गया है—जो कि एक दोष है। छपाई, गेट-अप सुन्दर है।

राह न रुकी (उपन्यास) ले०—डॉ० रांगेय राघव; प्रकाशक—राजपाल एन्ड सन्ज़, दिल्ली। मूल्य—तीन रुपया (जेकिट तथा जिल्द सहित)

अनवरत रूपसे लिखनेवाले डॉ० रांगेय राघवने यह दावा किया है कि उन्होंने इस उपन्यासमें बुद्ध-महावीर-युगके पुनर्जागरणको उपस्थित किया है—और यह कि इस उपन्यासके पात्र अपने युगके दृष्टिकोणसे देखते हैं। इसी धुनमें उपन्यासकारने औपन्यासिक तत्वोंकी अवहेलना करके कमरटूटे कुत्तेके समान खिचड़नेवाली कथासे युक्त यह रही उपन्यास पाठकोंपर थोप दिया है, जिसमें तो न रोचकता है और न सुष्ठ तत्कालीन जीवनका चित्रण।

कथाका आरम्भ एक राजकुमारीकी ग्राम-यात्रासे होता है और उस यात्रामें अनेक अनावश्यक चित्र उपस्थित किए गए हैं—जो कि संभवतः तत्कालीन समाजके चित्रणके हेतु हैं—और वे वस्तु-तत्वका—खिचड़नेका मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। यही शिथिलता आदिसे अन्त तक पाई जाती है।

चरित्र-चित्रणमें उपन्यासकारको मध्य-भागमें कुछ सफलता अवश्य मिली है—किन्तु उपन्यासके सब तत्व 'तत्कालीन चित्रण" नामक घटोत्कचके राक्षसी आकारके नीचे दबुचकर रह गये हैं।

उपन्यासमें केवल एक गुण है, और वह सुन्दर छपाई, बढ़िया गेट-अप तथा अच्छी मजबूत जिल्द—प्रकाशकको बधाई है।

फ्रायड—मनोविश्लेषण; अनुवादक देवेन्द्रकुमार वेदालंकार; प्रकाशक—राजपाल ऐन्ड सन्ज़, दिल्ली। मूल्य—दस रुपये। (परमोत्कृष्ट छपाई, कागज, तथा जिल्द एवं जेकिटके साथ—संग्रहणीय रूपमें)

फ्रायडके 'ए जनरल इन्ट्रोडक्शन टू साइकोएनेलिसिस' का यह प्रामाणिक एवं अविकल अनुवाद हिन्दीमें इस उत्तम रूपमें प्रथम बार निकला है। 'गलतियोंका मनोविज्ञान' 'स्वप्न' तथा 'स्नायुरोगोंका सामान्य सिद्धान्त' इन तीन भागोंमें विभाजित यह ग्रन्थ आधुनिक साहित्य एवं दर्शन तथा मनोविज्ञानके प्रत्येक विद्यार्थीके लिए आवश्यक-रूपसे पठनीय है।

गान्धी-मार्क्स तथा फ्रायड ये तीन ऐसी विभूतियाँ हैं, जिन्होंने आधुनिक—विशेषकर भारतीय—साहित्यको सबसे अधिक प्रभावित किया है। इस कारण साहित्यके प्रत्येक विद्यार्थी के लिए फ्रायडका 'स्वप्न सिद्धान्त' तथा फ्रायडद्वारा प्रतिपादित 'सेक्स-विवेचन' पढ़ना परमावश्यक है। इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका प्रकाशन एक बड़ी भारी कमीको पूरा करता है। 'फ्रायड' के सिद्धान्तों तथा उनके विवेचनकी चर्चा यहाँ व्यर्थ है, क्योंकि वे सर्वविदित हैं।

यहाँ हमें केवल यह कहना है कि ग्रन्थके अन्तमें यदि अंग्रेजी और हिन्दीके शब्दोंकी अनुक्रमणिका होती तो ग्रन्थपूर्ण एवं निष्कलंक हो जाता। आशा है अगले संस्करणमें यह कर दिया जायगा। वैसे फुटनोटोंमें कठिन शब्दों तथा शास्त्रीय शब्दोंके अंग्रेजी-रूप दिए गए हैं, किन्तु केवल वे ही पर्याप्त नहीं हैं। एक बात और है। 'ओ' तथा 'ई' के डिपथोंगसे बने शब्दका उच्चारण 'ईडीपस कॉम्प्लेक्स' होता है—'ओडीपस' नहीं।

इस परम उपयोगी ग्रन्थके इतने नयनाभिराम तथा सुन्दर प्रकाशनके लिए हम प्रकाशकको बधाई देते हैं तथा अनुवादकके परिश्रमकी दाद देते हैं। —रमेशकुमार शर्मा

राष्ट्रभाषाका प्रथम व्याकरण—ले० पं० किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक—जनवाणी प्रकाशन, ३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-७। मूल्य—चार रु० (सादा जेकिट तथा पट्टेके कवरके साथ) संवर्द्धित संस्करण।

आज जब हम हिन्दीको भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं, हिन्दीको अहिन्दी भाषियोंके लिए सुग्राह्य बनानेका पर्याप्त प्रयत्न हम नहीं कर रहे। हिन्दीके पाणिनी, वाजपेयीजीने अपने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थमें हिन्दीका वैज्ञानिक व्याकरण उपस्थित किया है। इसका सबसे अधिक लाभ अहिन्दी-भाषियोंको होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हिन्दीमें लड़की कहती है कि "मैंने फल खाया" और लड़का भी यही कहता है—जब कि लड़की 'खाती' है और लड़का 'खाता' है। एक स्थानपर कर्त्ताके अनुसार क्रियाके लिंगमें भेद होता है, और एकमें नहीं। इसी प्रकारकी आपाततः गड़बड़ोंकी व्याख्या करनेके लिए लिखा गया यह व्याकरण वास्तवमें 'राष्ट्रभाषा' हिन्दीका प्रथम व्याकरण है।

इस संवर्द्धित संस्करणमें 'के' 'ते' 'ने' विभक्तियोंकी नई खोज दी गई है—तथा दो परिशिष्ट भी जोड़ दिये गए हैं। आजसे आठ-नौ वर्ष पूर्व निकले इस व्याकरणके इस दूसरे संस्करणका स्वागत है।

वृन्दावनलाल वर्मा—व्यक्तित्व और कृतित्व—ले० डॉ० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश"; प्रकाशक—सर्वोदय प्रकाशन मन्दिर, नई सड़क, दिल्ली।

कमलेशजी हिन्दीमें अन्य बातोंके लिए तो प्रसिद्ध हैं ही, किन्तु इन्टरव्यूकारके रूपमें अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी इसी शक्तिको इस पुस्तकमें लगाया है। वर्माजीके साहित्यका प्रशंसनीय विवेचन इस पुस्तकमें हमें मिलता है। कहानी, उपन्यास, नाटक साहसिक साहित्य कुछ भी तो अछूता नहीं रहा है। इस पुस्तकको पढ़कर विद्यार्थियोंको वर्माजीके साहित्यको समझनेमें पूर्ण सहायता मिलेगी। पुस्तक विद्यार्थियों, परीक्षार्थियोंके लिये ही लिखी गई प्रतीत होती है। व्यक्तित्ववाला भाग तो परम सुन्दर है—वर्माजीका 'क्लोज-अप' (उन्हींके शब्दोंमें)-सा देखनेको मिल जाता है, किन्तु कृतित्ववाले भागमें प्रशंसाका दृष्टिकोण अधिक है, समालोचकका कम। एक बात मार्केकी है। छपाई, गेटअप, कागज आदि नयनाभिराम हैं तथा सुन्दर हैं। प्रकाशकको बधाई है। —रामनिधि शास्त्री

टेढ़ा लकीर (उपन्यास) : इस्मत चुगताई, प्रकाशक, अदबी पब्लिशर्स, ८, शेफर्ड रोड, बम्बई-८, मूल्य ६·५० रु०।

इस्मत चुगताई अपनी रचनाओंके द्वारा समाजकी जब दुखती हुई रगोंको छूते हैं, जो कि पिछले सैकड़ों वर्षोंके संस्कार बनकर न केवल वर्तमान सामाजिक जीवनको विषैला

ही बनाती हैं, बल्कि आगेकी प्रगतिका मार्ग भी अवरुद्ध कर देती हैं। जागरूक कलाकारका कर्तव्य इन्हीं बेड़ियोंको काटकर समाजकी भावी प्रगतिका मार्ग प्रशस्त करना है और जो कलाकार जिस सीमा तक इस कार्यमें सफल होता है, उसी हद तक उसकी कला प्रगतिशील है, वैसे 'प्रगतिशीलता' का रूढ़ अर्थ साहित्यशास्त्री चाहे जिस रूपमें लें।

'टेढ़ी लकीर' की प्रगतिशीलता उसके इसी कार्यसे मापी जा सकती है। उपन्यासका केन्द्रबिन्दु शम्मन है। एक उच्च मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवारमें उत्पन्न शम्मन सदैवसे ही परित्यक्ता रही है। लगभग एक दर्जन भाई-बहनोंके मध्य उसका स्थान अत्यन्त नगण्य रहा है और ऐसी परिस्थितिमें कोमल मनको वह बालिका जिन मनोवैज्ञानिक अंधगुहाओंमें स्नेहकी एक किरण खोजती है, उसका मार्मिक चित्रण इस्मत चुगताईने किया है। परिवारका सारा कार्य यन्त्रवत् चलता है, एक विचित्र किन्तु चिर-परिचित समरसताके साथ, किन्तु उसका प्रत्येक पुर्ज़ा अपने-आपमें कितने अदृश्य तूफ़ानोंका सामना अपने-अपने ढंगसे करता है; घरकी बालिकाएँ जिस घुटनभरे वातावरणमें बढ़ती हैं, बड़े विचित्र आधारोंपर अपने निजी सामाजिक सम्बन्ध बनाती हैं, क्षणिक आकर्षणोंके तूफ़ानमें पत्तेकी तरह तिलमिला उठती हैं, वयवृद्धिके साथ प्राकृतिक, किन्तु चौंका देनेवाले, शारीरिक परिवर्त्तनोंको भय-मिश्रित आह्लाद एवं आशंकाके साथ स्वीकार करती हैं, जीवनके यौन रहस्योंकी पर्त्तपर पर्त्त उठती चली जाती हैं, जिनके उद्घाटनसे प्राचीन संस्कारोंसे जकड़ा हुआ मन विद्रोह तो करता है, किन्तु अनायास ही उनकी लपेटमें भी आ जाता है। विभिन्न वर्गोंके विश्वासोंमें पली लड़कियाँ उपेक्षाकृत स्वतन्त्रता पाकर किस प्रकार अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाती हैं, यौन आकर्षणोंकी विकृतियोंसे ग्रस्त होकर किस तरह खतबाज़ी करती हैं, एक दूसरीपर 'मरती' हैं, मान-मनुहार करती हैं और वियोगमें आँसू बहाती हैं, इसका वर्णन इस्मत चुगताईको शायद 'अश्लील' कथाकार तो घोषित कर दे, मगर उसकी सचाईसे इन्कार नहीं किया जा सकता। रशीद, अब्बास, इफ्तिखार, नरेन्द्र, रायसाहब, टेलर, बिल्क़ीस, जिलीस, सआदत, नजमा आदि दर्जनों पात्रोंकी भीड़ तो 'टेढ़ी लकीर' में है, किन्तु वे सब अपना स्वतन्त्र अस्तित्व इन पृष्ठोंमें रखते हैं, और इतने सजीव हैं कि चाहे जिस स्कूल-कालेज, सभा-सोसाइटीमें उनके दर्शन हो सकते हैं। वे सब अपने-अपने तरीक़ेसे समाजका प्रतिनिधित्व करते हैं।

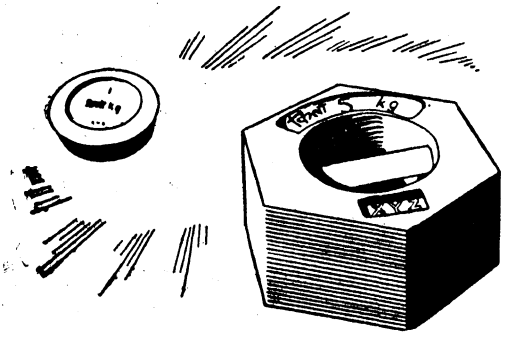
'अदबी' पब्लिशर्सको 'टेढ़ी लकीर' हिन्दीमें प्रकाशित करने पर बधाई, क्योंकि खोखले संस्कारों और गलत मान्यताओंके मलेरियासे अकेला वही समाजग्रस्त नहीं है, जिसका चित्रण इस्मत चुगताईने इस उपन्यासमें किया है, बल्कि उस समाजको भी इस 'कुनीन' की ज़रूरत है, जिस तक हिन्दीके माध्यमसे यह उपन्यास पहुँचेगा। अच्छा होता कि हिन्दी रूपान्तरमें उर्दूके कुछ क्लिष्ट शब्दोंको बदल दिया जाता और कुछ वाक्योंकी हिन्दी 'इडियम' के अनुसार रचना कर दी जाती। प्रूफकी अशुद्धियाँ भी काफी हैं। गेट-अप सादा किन्तु सुन्दर है। 'टेढ़ी लकीर' का स्वागत।

—घनश्याम अस्थाना

शिक्षाकी कुछ समस्याएँ (सजिल्द, जेकिटके साथ)—मूल लेखक, सर रिचर्ड लिविंग्स्टन, अनुवादक—श्री रामप्रसाद तथा सुरेशचन्द्र माथुर, प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग, बम्बई-४, मूल्य दो रुपया।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके (१९४४-४७) उपकुलपति लिविंग्स्टन महोदयका यह परम विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ आजके युगमें शिक्षाका क्या उद्देश्य होना चाहिये, इस विषयपर गम्भीर विवेचन करता है। ग्रीक-साहित्यके प्रसिद्ध विद्वान लेखकने उस साहित्यके अनेक हवाले दिये हैं; और वर्तमान कालके शिक्षाविदोंको जगानेका प्रयत्न किया है, कि वे अपने मानोंका पुनर्मूल्यांकन करें। "यद्यपि आजकल प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक विषयका पूर्ण-ज्ञानी-सा प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि किसी भी व्यक्तिको किसी भी विषयका प्रारंभिक ज्ञान तक नहीं होता।" बर्नार्ड शा के इस कथनसे लेखक शिक्षाकी समस्याओंका विवेचन आरम्भ करता है। प्रथम परिच्छेद (वास्तवमें लेखकके विभिन्न अवसरों पर दिये गये भाषणोंको परिच्छेदगत कर दिया गया है) "आधुनिक विश्वके लिए शिक्षा" में सबसे महत्वपूर्ण कथन है—"आधुनिकताका सम्बन्ध दृष्टिकोणसे है, न कि समयसे" (पृ० ४)। इस कथनमें पुस्तकका दृष्टिकोण निहित है। आजकी शिक्षा भावनात्मक विचारकी ओर ले जानेवाली नहीं है और उसमें विज्ञानको अनावश्यक महत्व दिया गया है। लेखक जब "मानवकी भावात्मक तथा अनुभावात्मक सृष्टिके बारेमें उससे (विज्ञान से) प्रश्न करता है तो वह गूँगा बन जाता है" (पृ०-१०) विज्ञान स्वयं अपना स्वामी नहीं है, बोतलके भूतके समान इस दासका सदुपयोग तथा दुरुपयोग किया जा सकता है। अन्तमें लेखकने बताया है

प्रथम चरण



माप तौल की मेट्रिक प्रणाली लागू होने का प्रथम चरण १ अक्तूबर, १९५८ से आरंभ हो चुका है। इस तारीख से राज्यों के कुछ क्षेत्रों में मेट्रिक बाटों का प्रयोग कानूनी हो गया है।

मेट्रिक प्रणाली सरकारी विभागों और सूती वस्त्र, लौह व इस्पात, इंजीनियरी, भारी रसायन, कागज, सीमेंट और जूट के उद्योगों में भी शुरू कर दी गई है।

यह परिवर्तन क्रमशः समस्त देश में लाया जाएगा।

मेट्रिक प्रणाली

सरलता व एकरूपता के लिए

वर्तमान तौल के बराबर मेट्रिक तौल जान लीजिए

भारत सरकार द्वारा प्रसारित

मेट्रिक बाट : परिवर्तन तालिका

इसे काट कर पास रख लें—काम आयेगी

छटांक (१ छटांक= ५ तोले	ग्राम (निकटतम ग्राम तक)	सेर (१ सेर= ८० तोले)	किलोग्राम	ग्राम (निकटतम १० ग्राम तक)
१	५८	१	—	९३०
२	११७	२	१	८७०
३	१७५	३	२	८००
४	२३३	४	३	७३०
५	२९२	५	४	६७०
६	३५०	६	५	६००
७	४०८	७	६	५३०
८	४६७	८	७	४६०
९	५२५	९	८	४००
१०	५८३	१०	९	३३०
११	६४२	११	१०	२६०
१२	७००	१२	११	२००
१३	७५८	१३	१२	१३०
१४	८१६	१४	१३	६०
१५	८७५	१५	१४	—
		१६	१४	९३०
मन (१ मन= ४० सेर)	किलोग्राम (निकटतम किलो-ग्राम तक)	१७	१५	८६०
		१८	१६	८००
		१९	१७	७३०
१	३७	२०	१८	६६०
२	७५	२१	१९	६००
३	११२	२२	२०	५३०
४	१४९	२३	२१	४६०
५	१८७	२४	२२	३९०
६	२२४	२५	२३	३३०
७	२६१	२६	२४	२९०
८	२९९	२७	२५	१९०
९	३३६	२८	२६	१३०
१०	३७३	२९	२७	६०
११	४११	३०	२७	९९०
१२	४४८	३१	२८	९३०
१३	४८५	३२	२९	८६०
१४	५२३	३३	३०	७९०
१५	५६०	३४	३१	७३०
१६	५९७	३५	३२	६६०
१७	६३५	३६	३३	५९०
१८	६७२	३७	३४	५२०
१९	७०९	३८	३५	४६०
२०	७४६	३९	३६	३९०

१ किलोग्राम=१,००० ग्राम

कि वह शिक्षा जो कि मितव्यता और एकाग्रता नहीं सिखाती, उन्नतिशील नहीं हो सकती (पृ०-१७)। इस प्रकार लेखकने आधुनिक विश्वके लिए प्राचीन मानदण्डोंके अनुसार शिक्षाके आधुनिक रूपको प्रस्तुत किया है। 'शिक्षा और चरित्र-निर्माण' नामक दूसरे परिच्छेद (या भाषणमें) में लेखकने बताया है कि 'विश्वास' और 'प्रेम' करना मानव का स्वभाव है, यदि उसके समक्ष उचित 'अवलम्बन' न होगा तो वह अनुचितका सहारा लेगा—शिक्षाका यह कार्य है कि वह इस क्षेत्रमें विवेक-दृष्टि विद्यार्थीको प्रदान करे। (पृ०-३३) आगे चलकर लेखक कठोर अनुशासनका समर्थन करता है—जो कि युक्तियुक्त है। (पृ०-४३ पर 'स्टेज़' गलत छपा है) 'सभ्य प्रजातंत्रमें शिक्षा' तथा 'सत्य भाषण' नामक परिच्छेदों में आजके राजनैतिक वातावरणमें शिक्षाके स्वाभाविक तथा सुगम विकासके उपाय बताये हैं।

आजके युगमें इस पुस्तकमें दी गई कुछ बातें पुरानी-सी लगेंगी—(कुछ लोगोंको) किन्तु हम, व्यक्तिगत रूपमें इस पुस्तकमें दिये गये प्रत्येक तर्कसे सहमत हैं। पुस्तक प्रत्येक शिक्षकके पढ़ने योग्य है, विशेषकर उनके लिए जो कि शिक्षक बननेकी तैयारीमें हैं।

छपाई सादा है—किन्तु त्रुटिहीन है। प्रकाशक महोदयको बधाई है।

गीतोंका हमला (जेकिट तथा जिल्दके साथ) : कवि—उदयभान मिश्र, प्रकाशक—शारदा प्रकाशन, ३८।१, रामतनु बोस लेन, कलकत्ता-६, मूल्य दो रुपया।

कहा गया है कि 'गीतोंका हमला' कविके ऊपर हुआ है, वास्तवमें इन 'हठीले' नीले, पीले, सूखे, गीले (यह बात क्या हुई) गीतोंका हमला पाठकों पर है, और हमें आशंका है कि अधिकांश पाठक तिलमिला उठेंगे। सम्पूर्ण संग्रहमें पांच-सात गीत ही गीत कहलाने योग्य हैं—'आह्वान' (पृ०-३) ऐसे ही कुछ गीतोंमें से है:—

गयीं सूख कलियां झरे पात बनके,
रहा नाचता नाशका प्रेत हँसकर,
तुम्हारी विभाकी चिता जल रही थी -.
मगर था विवश मैं उठे थे नयन पर।

इसमें यद्यपि पुराने उपमानों तथा प्रतीकोंका प्रयोग है, किन्तु यही इस संग्रहका सर्वश्रेष्ठ गीत है। मिश्रजी क्षमा करें --उनकी कविताएँ हमें तो जंची नहीं। छपाई आदि ठीक-ठाक है।

कणिका—(चित्रित जिल्दके साथ) : कवि—शंकरलाल माहेश्वरी; प्रकाशक—जुहीकुंज, ४२, गणेशचन्द्र एवेन्यू, कलकत्ता-१३। मूल्य—२-५० रु०।

जुहीकुंज इस संग्रहसे अपना प्रकाशन आरम्भ कर रहा है—यह आरम्भमें ही कह दिया गया है। प्रथम प्रासे मक्षिकापातःवाली बात हो गई है।

सुरभि पंथपर चलते अलि दल
गुंजनसे मधु-गीत सुनाते
कलियोंके दलके दल खुल-खुल
अन्तरतमका रस छलकाते।

पुराने घिसे-पिटे उपमानोंके फार्मूलासे कविता बनानेका प्रयत्न न करके यदि कविने अपनी अनुभूतिकी सरल अभिव्यक्ति कर दी होती तो संभवतः कविता अच्छी बन पड़ती। इस प्रकारके वर्णनोंकी आवृत्ति अनेक स्थानोंपर पाई जाती है। (पृ० १६) पृ० ७९ परकी कविता अभिव्यक्ति तथा अनुभूतिकी दृष्टिसे कुछ अच्छी है—अन्यथा अधिकांश कविताएँ मध्यम कोटिकी हैं। हाँ छपाई—गेट-अप—परम सुन्दर हैं। प्रकाशकको बधाई है और हमारी सहानुभूति भी।

लेखक :
श्रीराम शर्मा

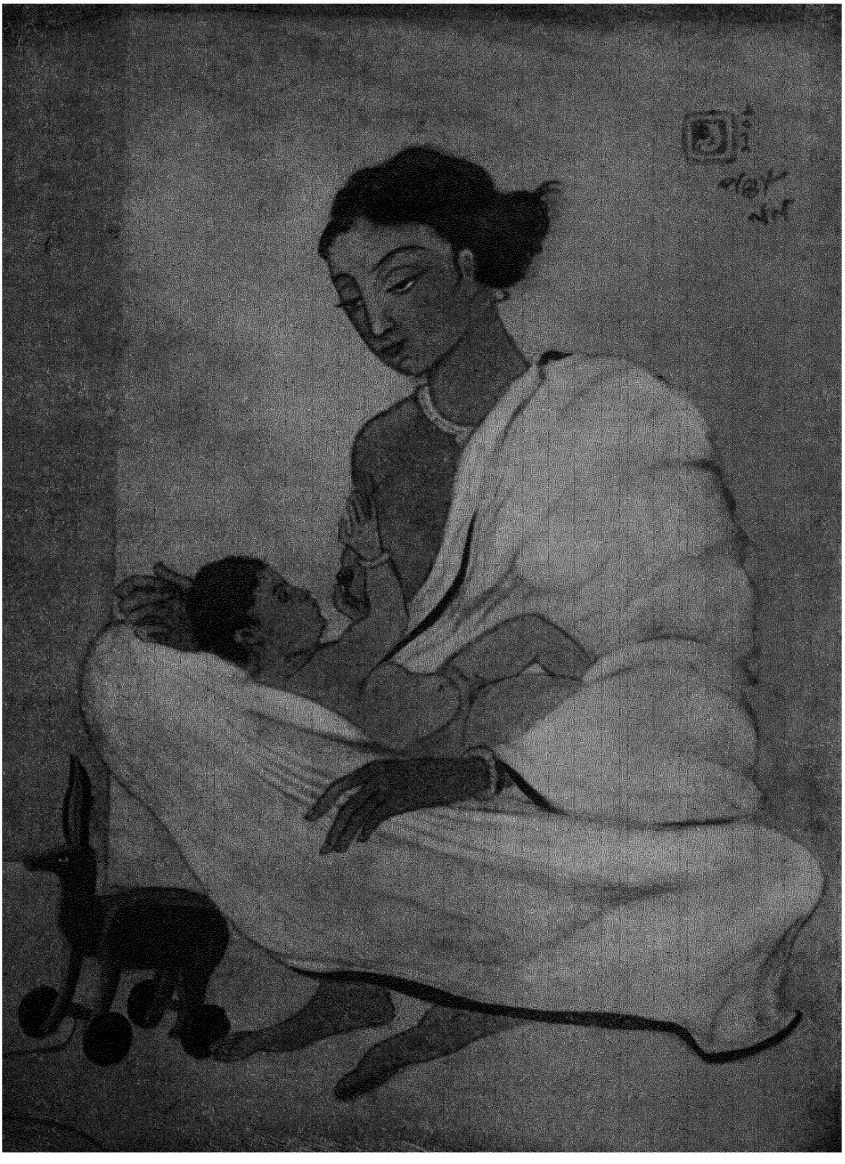
जंगलके जीव

चित्रकार :
आर० एस० पंडित

जंगली जानवरोंके जीवन-स्केच, प्रकृतिका सजीव वर्णन, जीवन और मौतके सौदे, जन्मसे लेकर मरण तकका आकर्षक शब्द-चित्र। इस प्रकारकी पुस्तक भारतकी किसी अन्य भाषामें नहीं है। बढ़िया छपाई और सुन्दर जिल्द। चित्र संख्या ४०। मूल्य ५)

पता—विशाल भारत बुक-डिपो, १९५।१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अयोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।



प्रवासी प्रेस, कलकत्ता

माँकी गोदमें

श्री पंचाननराय



भाग ६२, अंक ६] कलकत्ता, दिसम्बर १९५८ [पूर्णांक ३७२

सम्पादकीय विचार

विशाल भारतके ग्राहकों और पाठकोंसे

गत फरवरी सन् १९५७ में हमने 'विशाल भारत' का सम्पादन-भार तीसरी बार सँभाला था। इन २३ महीनोंकी अवधिमें 'विशाल भारत' ने जो प्रगति की है, उससे 'विशाल भारत' के ग्राहक और पाठक अवगत ही हैं। अपनी ओरसे हमें केवल यही कहना है कि अनेक असुविधाओंके होनेपर भी बिना किसी सहायकके हमने 'विशाल भारत' को सजीव बनानेकी चेष्टा की है। हम निःसंकोच कह सकते हैं कि 'विशाल भारत' अपनी पुरानी प्रतिष्ठा प्राप्त करने और नवीनतम उपयोगितामें सफल हुआ है। इस अवधिमें 'विशाल भारत'के अनेक पुराने ग्राहक 'विशाल भारत' परिवारमें शामिल हो गए हैं और अनेक नए ग्राहक भी उस परिवारमें आ गए हैं। लेखकों और कई हमारे निकटतम साहित्य-सेवियोंने 'विशाल भारत' की सेवामें जो योग हमें दिया है, उसके लिए हम उनके चिर ऋणी रहेंगे।

'विशाल भारत' के ग्राहकों और पाठकोंसे हम अपने हृदयकी दो-एक बातें कहना चाहते हैं, व्यक्तिगत रूपसे प्रत्येकको पत्र लिखना हमारे लिए संभव नहीं है। 'विशाल भारत' का वार्षिक मूल्य केवल ९) मात्र है। वर्षमें कम-से-कम दो बढ़िया विशेषांक निकालते हैं और प्रति मास पाठ्य सामग्री ९ फार्मसे बढ़कर १०-११ फार्म हो जाती है। देशमें मँहगाईकी बाढ़से लोग परेशान हैं। मनुष्यके जीवनको छोड़कर सब कुछ मँहगा है। कागज, स्याही, छपाई और बाईंडिंग इत्यादि सब बहुत मँहगे हो गए हैं। ऐसी दशामें हमारा विचार आगामी जनवरी १९५९ से 'विशाल भारत' का वार्षिक मूल्य नौ रुपयेसे दस रुपया करनेका है। हमें पूरी आशा है कि इस एक रुपयेकी वृद्धि पाठकोंको अखरेगी नहीं। इसके अतिरिक्त नए वर्षमें हम 'विशाल भारत' में कुछ नवीन स्तंभ और कुछ नई ऐसी पाठ्य-सामग्री देना चाहते हैं, जो पाठकोंको शायद अन्यत्र न मिल सके। राष्ट्रिय और अंतर्राष्ट्रिय विषम समस्याओंपर निष्पक्ष और निर्भीक विश्लेषण तो रहा ही करेगा, पर साथ ही खाद्यान्न, हिन्दी साहित्यकी समस्यायें, जीवन-स्तरको नैतिक स्तरपर ले जानेके प्रयत्न तथा आर्थिक उन्नतिके लिए सहज उपाय और मनोरंजन आदि विषयोंपर अधिकारी लेखकोंके लेख होंगे। संस्मरण, मोटे अक्षरकी कहानियाँ तथा अन्य अति उपयोगी लेखमाला भी प्रारम्भ करेंगे। यदि पाठकों और ग्राहकोंने सहयोग दिया और लेखक बन्धुओंकी कृपा बनी रही, तो हम 'विशाल भारत' को और भी अधिक उपयोगी बना सकेंगे। पाठकों और ग्राहकोंसे एक विनम्र प्रार्थना और है। यदि वे 'विशाल भारत' के एक-एक ग्राहक और दे सकें तो वह विशालतम हो जाय। वी० पी० भेजनेमें एक तो वैसे ही अड़चन होती है और उसके वापस होनेपर व्यर्थ ही खर्च उठाना पड़ता है, अतः हमारा यह भी आग्रह है कि 'विशाल भारत' के ग्राहक पहले ही उसका मूल्य भेज दें। कूपनमें ग्राहक-संख्या लिख दें। यदि कोई ग्राहक वी० पी० ही मँगाना चाहें या वैसे ही मँगाकर बिल द्वारा अदायगी करना चाहें, तो उसकी सूचना भी 'विशाल भारत' मैनेजरके पास १२०।२, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता-९, पर भेज देनी चाहिए।

सैनिक तानाशाहीके दोष

पाकिस्तानमें जिस ढंगसे तानाशाही हुई, उसका उल्लेख गत मास हम 'विशाल भारत' में कर चुके हैं। दैनिक पत्रोंमें उसकी गतिविधिका अवलोकन पाठकोंने किया होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि पाकिस्तानकी राजनीतिकी अधोगतिका मूल कारण पाकिस्तानके राजनीतिज्ञोंकी भ्रष्टाचारकी नीति थी। होटलों और रेस्टराओंके सामने तहमद पहने गुंडे आवाजें कसते थे। सरकारी दफ्तरोंमें इतनी अव्यवस्था थी कि सरकारी कर्मचारी मनमाने ढंगसे दफ्तरोंमें जाते थे। साधारण जनता अपनी अर्जियोंके उत्तर महीनोंमें पाती थी। तस्कर व्यापार, चोरबाज़ारी और गुंडागीरीका बोलबाला था। मार्शल लाके लगते ही ये सब कुप्रवृत्तियाँ ऐसे दूर हो गईं, जैसे सूर्योदयसे अंधकार दूर हो जाता है। अब सवाल यह है कि क्या मार्शल ला और तानाशाही किसी देशकी समस्याओंका उचित इलाज है? यह हम मानते हैं कि भारतवर्षमें भी संसदीय शासनके गीत गानेपर भी साधारण जनता बहुत परेशान है। राजनीतिज्ञोंने यहाँ भी ऊधम मचा रखा है और यदि सुदृढ़ शासनकी यहाँ स्थापना न हुई और खाद्यान्न संकट दूर नहीं हुआ, तो जनताकी क्या हालत होगी, कह नहीं सकते। हमारी यह भी आशंका है कि मार्शल ला वर्त्तमान परिस्थितिका स्थायी इलाज नहीं है। जब मार्शल ला नागरिक शासनका स्थान ले लेता है, तो उसकी भयंकर प्रतिक्रिया भी हो सकती है। प्रत्येक देशकी सेना नागरिक शासन और पुलिसके कार्योंसे दूर रहकर देशकी रक्षाके लिए एक सुव्यवस्थित अंग बनी रहती है। सेना एक प्रकारसे जनतासे अलग ही रहती है, पर जब थानेदारों, तहसीलदारों तथा अन्य प्रशासकोंका काम कप्तान, कर्नल और मेजर करने लगें, तब सैनिकोंमें उन दोषोंका आना स्वाभाविक है, जो पुलिसवालों और मालविभागके अफसरोंमें आ जाते हैं। सेनामें भ्रष्टाचार नाम मात्रको होता है। सेनाका काम देशकी रक्षा करना और विदेशी आक्रमणको सुसंगठित रूपसे नष्ट-भ्रष्ट करना होता है। आवश्यकता पड़नेपर किसी राष्ट्रिय उपद्रवको दबाना भी होता है। नागरिक शासनमें रत होकर सैनिकोंमें यदि भ्रष्टाचार आ जाय तो देशकी सेनाका भी ढेर हो जाता है और निकम्मी सेना बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षा नहीं कर सकती। मिस्रकी सेनाके निकम्मेपनका एक कारण यह भी है। इसलिए पाकिस्तानमें यदि मार्शल ला और सैनिक शासन अधिक चला तो पाकिस्तानी सेनाकी स्थायी क्षति हो जायगी। इसलिए हम सेनाकी कार्यक्षमताको अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं। अतः स्थायी रूपसे मार्शल लाके हम घोर विरोधी हैं। तानाशाहीका एक दूसरा दोष यह है कि एक बार तानाशाही स्थापित होनेपर उसका हटाना बड़ा कठिन होता है। तानाशाही युद्धोंके आतंक और युद्धोंसे ही पनपती है। तानाशाही कहीं भी हो, युद्ध उसके लिए अनिवार्य होता है। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, ख्रुश्चेव इत्यादि युद्धकी धकमियों और सामरिक तैयारियोंपर ही अपना अस्तित्व क़ायम रख सकते हैं। इसलिए हम स्थायी रूपसे तानाशाहीके विरोधी हैं।

राष्ट्रपति अयूबखाँकी नीतिकी शव-परीक्षा

पाठकोंको मालूम है कि पाकिस्तानके वर्त्तमान राष्ट्रपति जनरल अयूबखाँने जनरल इस्कन्दर मिर्जाको पिस्तौल दिखा कर पदच्युत किया और एक-दो दिन बाद अपनी प्रेस कान्फ्रेन्समें स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि यदि कश्मीर समस्याका हल उनके अनुकूल न हुआ तो वे भारतवर्षसे युद्ध भी करेंगे। मियाँ सोहरवर्दी, मियाँ नून तथा अन्य पाकिस्तानी राजनीतिज्ञोंकी भाँति राष्ट्रपति अयूबखाँको किसी दल विशेषको प्रसन्न तो करना नहीं है। भारतका डर दिखाकर जनरल अयूबखाँसे पहलेके पाकिस्तानके राजनीतिज्ञ पाकिस्तानके विभिन्न दलोंको एक सूत्रमें बाँधनेकी चेष्टा करते थे। उनके विभिन्न स्वार्थ थे और विभिन्न प्रवृत्तियाँ। पर जनरल अयूबखाँ पूरे तानाशाह हैं, उन्हें न अविश्वासके प्रस्तावका डर है और न किसी दल-विशेषसे चिंता। साथ ही वे एक सैनिक भी हैं। ऐसी दशामें जब वे भारतसे युद्धकी बातें करते हैं, तो उसमें कोई धोखाधड़ीकी बात नहीं है। वे यह भी समझते हैं कि भारतसे युद्ध करनेमें पाकिस्तान जीत नहीं सकता। इस बातको जेनरल अयूबखाँ खूब समझते हैं, इसीलिए उन्होंने कहा कि युद्धसे दोनों देशोंका नाश हो जायगा, पर मरता क्या न करता। इसके अलावा यह कौन नहीं जानता कि पाकिस्तानकी आंतरिक स्थिति भारतकी आंतरिक स्थितिसे कितनी खराब है। पाकिस्तानी सेनाके उच्च कर्मचारी नागरिक शासनमें लिप्त हैं और भारतीय सेनाके उच्च कर्मचारी केवल सैनिक संगठनमें ही रत हैं। भारतका नागरिक शासन कितना ही बुरा हो, पर अभी वह सैनिक प्रभावसे मुक्त है। ऐसी दशामें यदि युद्ध छिड़ भी जाय तो पाकिस्तानकी हालत क्या होगी, इसका पाठक अनुमान लगा लें। यह हम मानते हैं कि आधुनिक

युद्धके लिए न भारत ही क्षमता रखता है और न गप्पें हाँकने वाला पाकिस्तान जैसा देश ही। जनरल अयूबखाँके बारेमें हम बताना चाहते हैं कि यदि हम ग़लती नहीं करते तो भारत विभाजनसे पूर्व अयूबखाँ मथुरा सब-एरियाके या तो ब्रिगेडियर थे या कमांडर या इसी प्रकारके कोई अधिकारी। इन्हीं हज़रत अयूबखाँने भरतपुर, मथुरा और गुड़गाँवके मेवों (मुसलमानोंकी एक जाति) को हथियार देकर हिन्दुओंके विरुद्ध लड़ाईके लिए प्रोत्साहित किया था। मेवोंके इस आक्रमणकी असलियतको जो जानते हैं, उन्हें मालूम है कि स्व० रफी अहमद साहब किदवईने अयूबखाँ द्वारा प्रेरित मेवोंके आक्रमणका किस प्रकार प्रत्याक्रमण कराया था। यदि स्व० रफी साहब लोगोंको अपने बचावके लिए हथियार न देते, तो मेवोंने मथुरा तक धावा बोल दिया होता। तत्कालीन भारत सरकार को अयूबखाँने एक बड़ा ही कड़ा पत्र स्व० रफी अहमद साहब के बारेमें लिखा था। स्व० रफी अहमद साहबकी ऐसी सेवाओंके बारेमें बहुत कम लोग जानते हैं। तात्पर्य यह कि जनरल अयूबखाँ षड्यंत्र और धोखाधड़ीमें अद्वितीय हैं। जनरल इस्कन्दर मिर्जाके प्रति जो उनका व्यवहार है, वह इसका प्रमाण है। हमें पाकिस्तानकी आंतरिक बातों अथवा उसके शासनसे कोई मतलब नहीं, पर इस बातकी ओर हम इसलिए संकेत कर रहे हैं कि पूर्वी पाकिस्तान और भारतीय बंगालकी सीमापर जो घटनाएँ घट रही हैं, वे काफ़ी चिन्ताजनक हैं। जनरल अयूबखाँने पाकिस्तानमें सींक खड़ी कर दी है। जहाँ कहीं टस-से-मस हुई कि मार्शल लाकी मारके आतंकसे सब स्थिति ठीक हो जाती है। मार्शल लाके कारण पाकिस्तानके एक स्थानमें विद्यार्थियोंको सैनिक आज्ञासे प्रातःकालके चार बजे परीक्षा देनी पड़ी। हाईकोर्टके जजको मोअत्तिलीका आर्डर फौरन दिया गया। जब सैनिक शासन इतना कारगर है, तब पूर्वी पाकिस्तान और भारतीय बंगालकी सीमापर पाकिस्तानी पुलिस द्वारा क्यों गोलाबारी होती है? भारतीय गाँवोंपर क्यों आक्रमण किया जाता है? स्पष्ट है कि ये सब हरकतें सैनिक शासनके इशारोंसे ही होती हैं। ऐसी दशामें हमारा यह अनुमान है कि जनरल अयूबखाँ पाकिस्तानके पिछले किसी शासकसे कम बुरे नहीं हैं। इस तरहकी छेड़छाड़से वे दिखाना चाहते हैं कि वे भारतीयोंको आतंकित कर सकते हैं और आतंकका वातावरण पैदा करके वे अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।

भारत और पाकिस्तानका युद्ध!

यह हम मानते हैं कि जनरल अयूबखाँने भारतके विरुद्ध युद्धकी जो धमकी दी है, वह बानर विभीषिका होनेपर भी काफी चिन्ताजनक है। भारत-सरकारकी ओरसे जनरल अयूबखाँकी धमकीके कारण काफी कड़ा रुख है। चिन्ताका एक विशेष कारण यह है कि पाकिस्तानको अमरीकी आयुधोंका एक विपुल राशि मिल रही है। अमरीकी आयुधोंके मिलनेपर ही भारतके विरुद्ध आक्रमणकी बात कही जाती है, तब स्पष्ट है कि पाकिस्तान अमरीकी सैनिक सहायताके बूतेपर ही युद्धकी धमकी देता है। भारत और अमरीकाके संबंध बहुत अच्छे हैं और हमें पूर्ण विश्वास है कि अमरीका यह कभी नहीं चाहेगा कि पाकिस्तान भारतपर आक्रमण करे। पर अमरीका अपनी इस नैतिक जिम्मेदारीसे नहीं बच सकता कि पाकिस्तानका युद्ध सम्बन्धी रवैया भारतके प्रति ऐसा क्यों है। अमरीका यह नहीं चाहेगा कि पाकिस्तान भारतपर आक्रमण करे; पर अमरीकाकी इस युद्धकी धमकीकी नैतिक जिम्मेदारी अवश्य है। गत २४ नवम्बरको प्रधान मंत्री नेहरूजीने संसदकी विदेश मंत्रालय सलाहकार समितिको बताया कि उन्हें आशा है कि पाकिस्तान भारतपर आक्रमण न करेगा। नेहरूजीने कहा, "मेरी इस धारणाके दो कारण हैं—(१) पाक सेनाके सीनियर अफसर इस समय प्रशासनिक कार्योंमें व्यस्त हैं और (२) पाकिस्तानमें एक बड़ी संख्यामें अमरीकी सैनिक अफसर हैं, जो भारतसे युद्धके किसी भी पाक प्रयत्नोंके लिए राज़ी नहीं होंगे।" यह पूछे जानेपर कि यदि भारतपर पाक-आक्रमण हुआ तो क्या भारत सरकार उसका सामना करनेकी क्षमता रखती है, तो नेहरूजीने कहा, "संसारमें किसी भी देशके सैनिक अधिकारी रक्षा तैयारियोंसे संतुष्ट नहीं होते। हाँ, भारत सरकार अपनी सामर्थ्यके अनुसार सब कुछ कर रही है।"

यह ठीक है कि भारत-सरकार रक्षा-व्यवस्था मज़बूत बनानेके लिए प्रत्येक सम्भावित क़दम उठा रही है; पर दुःख इस बातका है कि जो रक़म रचनात्मक कार्योंमें आसानीसे लगाई जा सकती थी, वह मजबूरन सैनिक तैयारियोंमें लगानी पड़ रही है। पाकिस्तानको तो सैनिक सहायता मुफ्तमें ही मिल रही है; पर हमें अपने प्रत्येक कार्यके लिए खर्च करना पड़ रहा है। भारतको अपने आदर्श और सिद्धांत के लिए कुछ त्याग करना ही पड़ेगा। अमरीकी या रूसी गुटमें शामिल होनेसे भारतको अपार सैनिक सहायता मिल

सकती है ; पर इससे न केवल भारतकी आत्मा ही दूषित होगी, वरन् विश्व-शान्तिको भी खतरा बढ़ जायगा। वर्तमान परिस्थितिमें नेहरूजीको चाहिए और हमारा भी कर्तव्य है कि राजनीतिज्ञोंकी तिकड़मोंको खतम करें, राजनीतिक और व्यापारिक गुण्डागर्दीको दूर करें। कांग्रेसमें जो दलबन्दी है, उसको तो बड़ी कड़ाईके साथ खतम करना चाहिए और कहीं-कहीं तो राष्ट्रपतिका शासन भी लागू करना चाहिए, ताकि एम० एल० ए० और एम० पी० लोगोंकी धमाचौकड़ी समाप्त हो और अराजक तत्वोंपर कठोर नियन्त्रण हो सके।

उत्तर-प्रदेशकी लज्जास्पद राजनैतिक स्थिति

पाठकोंको मालूम होगा कि कांग्रेस अनुशासन और कांग्रेस संगठनकी दृष्टिसे उत्तर-प्रदेश भारतके सब राज्योंमें अग्रणी था। राज्य पुनर्संगठनसे पूर्व क्षेत्रफल तथा आबादी की दृष्टिसे वह सर्वप्रथम था। पर आबादी और क्षेत्रफल इतने महत्वके नहीं हैं, जितनी कर्तव्यपरायणता। इस दृष्टिसे उत्तर-प्रदेशकी देश भरमें धाक थी। पर सत्तामद और स्वार्थ-परताके कारण उत्तर-प्रदेशके कांग्रेसजनोंमें फूटका वह विषाक्त वातावरण फैला, जिसे देखकर देशके अन्य राज्य स्तम्भित रह गये। दलबन्दीका बवण्डर ज़िलों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् उसके स्फुलिंग उत्तर-प्रदेशके मन्त्रिमण्डल तक पहुंचे। राज्य कांग्रेस कमेटी और मन्त्रिमण्डलमें कुछ मतभेद हुआ। हमें यह लिखनेमें संकोच नहीं कि मन्त्रिमण्डलमें कुछ ऐसे व्यक्ति थे, जो एक हारे हुए मन्त्रीके पिट्ठू थे। हम यह स्पष्ट लिख दें कि हम कांग्रेसके किसी भी दलके न तो पक्षपाती हैं, न विरोधी। हाँ, इस बातके हम अवश्य विरोधी हैं। ऐसे मनोमालिन्यसे उत्तर-प्रदेशका ढेर हो रहा है। राज्य कांग्रेस कमेटीमें मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्दके समर्थकों और भूतपूर्व मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्तके अनुयाइयोंमें मतभेद था। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि यू० पी० के तथाकथित लौह पुरुष श्री गुप्त सत्ताकी दृष्टिसे फूंस पुरुष हो रहे हैं। पर उनके पट्ठोंका खयाल है कि राज्य कांग्रेसमें उनका इतना बहुमत है कि वे डॉ० सम्पूर्णानंदके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव पास करा सकते हैं। इस लज्जास्पद परिस्थितिको समझनेके लिए हम विस्तृत रूपसे गत ४ नवम्बरके लखनऊके समाचार उद्धृत करते हैं :—

उत्तर-प्रदेश कांग्रेस कमेटीकी गत बैठकमें मुख्य मंत्रीसे श्री जुगलकिशोरका इस बातपर मतभेद हो गया था कि क्या मंत्रियोंको कांग्रेसके संगठनात्मक मामलोंपर स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अधिकार है।

तीन राज्य मंत्रियों, चार उप-मंत्रियों तथा एक संसदीय सचिवने भी, जिनका उस समय इसी प्रश्नपर मुख्य मंत्रीसे मतभेद था, इस्तीफे दे दिए थे। ये सब भूतपूर्व स्वास्थ्य एवं नियोजन-मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्तके असंतुष्ट कांग्रेसी गुटके हैं। जिस समय श्री युगलकिशोरने २३ अक्टूबरको अपना इस्तीफा मुख्य मंत्रीको पेश किया, तब राज्यपाल श्री गिरि लखनऊसे बाहर गए हुए थे। वह नई दिल्लीसे राज्यपाल सम्मेलनमें भाग लेकर कल ही यहां लौटे थे।

मुख्य मंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्दने कल तथा आज राज्यपाल से भेंट की। पता चला है कि उन्होंने आचार्य जुगलकिशोर का इस्तीफा स्वीकार किए जानेपर राज्यकी राजनीतिमें होनेवाली सम्भावित प्रतिक्रियापर भी विचार-विमर्श किया।

हाल ही में आचार्य जुगलकिशोर अपने एक सम्बन्धीकी मृत्युके कारण शोकग्रस्त रहे हैं। वह रुड़कीसे आज ही लौटे हैं, जहां वह अपने मृत सम्बंधीकी अन्त्येष्टिमें शामिल हुए थे।

स्वतंत्र अभिव्यक्तिका प्रश्न गत मास उ० प्र० कांग्रेस समितिकी बैठकमें उपस्थित हुआ था, जब कि श्री चन्दभानु गुप्तके नेतृत्ववाले असंतुष्ट गुटने एक प्रस्ताव पेश किया था तथा उसने बादमें एक अधिकृत प्रस्तावमें एक संशोधनके रूपमें अपना सुझाव रखा, जिसमें प्रदेश कांग्रेसकी वर्तमान नामजद कार्यकारिणीके स्थानपर निर्वाचित कार्यकारिणी स्थापित करनेकी मांग की। वर्तमान कार्यकारिणीको इसी वर्षके आरम्भमें केन्द्रीय गृह-मंत्री पंडित पन्त तथा मुख्य मंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्दने नामजद किया था। इससे पूर्व उ० प्र० कांग्रेस समितिने उन्हें ऐसा करनेका अधिकार दिया था।

डॉ० सम्पूर्णानन्दने असन्तुष्ट गुटके इस प्रयासको अपने तथा अपनी सरकारके विरुद्ध एक निन्दाका प्रस्ताव माना तथा उन्होंने अपेक्षा की कि उनके मंत्रिमंडलके सदस्य इस कार्रवाई का विरोध करेंगे। परन्तु मंत्रिमंडलमें आचार्य जुगलकिशोर के नेतृत्वमें असन्तुष्ट कांग्रेसजनोंका कथन था कि यह कांग्रेस का एक संगठन सम्बंधी मामला है, अतः उन्हें विचारोंकी स्वतंत्र अभिव्यक्तिका अधिकार है। उन्होंने यह भी कहा कि अकेले मुख्य मंत्री यह तय नहीं कर सकता कि प्रदेश कांग्रेसमें कौन-से संगठन सम्बंधी प्रश्नमें सरकार निहित होती है, किसमें नहीं।

पता चला है कि कांग्रेस उच्च सत्ताको यह मामला

भेजकर उससे यह फैसला देनेकी प्रार्थना की गई थी कि क्या मुख्य मंत्री स्वयं यह निर्णय कर सकता है कि कांग्रेसके किसी मामलेमें सरकार भी निहित होती या नहीं ?

प्रदेश कांग्रेस संसदीय बोर्ड तथा कार्यकारिणीके एक सदस्य श्री अलगूराय शास्त्रीने अपने एक वक्तव्यमें कांग्रेस उच्च सत्तासे समय रहते उत्तर-प्रदेशके मामलेमें हस्तक्षेप करनेकी अपील की थी। मुख्य मंत्रीके कहनेपर आचार्य जुगलकिशोरके इस्तीफेको स्वीकार करनेके ऐसे परिणाम हो सकते हैं, जिनसे दल कमजोर हो जायगा।

पता चला है कि आज असन्तुष्ट दलके उप-मंत्रियोंकी एक अनौपचारिक बैठक आचार्य जुगलकिशोरके निवास-स्थान पर हुई तथा उन्होंने आचार्य जुगलकिशोरका इस्तीफा स्वीकार किए जानेसे उत्पन्न स्थितिपर विचार किया। इस बैठकमें श्री अलगूराय शास्त्री, श्री बनारसी दास, श्री चन्द्रभानु गुप्त तथा श्री हरगोविन्द सिंह (भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री) भी उपस्थित थे।

श्री जुगुलकिशोरजीके इस्तीफाको मंजूरीके बाद मंत्रि-मंडलके कई उप-मंत्रियों और एक संसदीय सचिवके इस्तीफे पेश किए गए। इस प्रकार उ० प्र० मंत्रिमंडलसे कुल नौ व्यक्ति अलग हुए। इन इस्तीफोंकी स्वीकृतिके बाद कोई नया आदमी नहीं लिया गया, वरन् शेष मंत्रिमंडलके सभासचिवों और उप-मंत्रियोंकी पद-वृद्धि कर दी गई। उनपर 'बिल्लीके भाग्यसे छीका टूटा' वाली बात सिद्ध हो गई। नए मंत्री न बनाकर डॉ० सम्पूर्णानंदने बड़ी समझदारी से काम लिया, क्योंकि मंत्री, उप-मंत्री बननेको दर्जनों ही उम्मेदवार थे, यदि उनमेंसे किसीको ले लिया जाता तो असंतोषकी आग भड़क उठती। जिन लोगोंने इस्तीफे दिए हैं, उनमेंसे अधिकांशके कार्योंसे हम अवगत हैं। श्रम-मंत्री श्री जुगुलकिशोरजी सन् ३७-३८ में श्रीमान् डॉक्टर काटजूके सभासचिव थे। हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि डॉक्टर काटजू उनके पास फाइलें बहुत कम भेजते थे। इससे श्री जुगुलकिशोरजीको बड़ा असंतोष था। मंत्री-पदके लिए आचार्यत्व या डिग्रीकी ज़रूरत नहीं है। डिग्री तो रट्टू भी पा जाते हैं। श्री जुगुलकिशोरजी लखनऊ-विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे हैं और उस अवधिमें लखनऊ विश्वविद्यालयकी जो दुर्दशा हुई, वह सबको मालूम है। 'गुप्ता, मुंशी, जुगुलकिशोर' के जो नारे लगते थे, उससे आँखें नीची होती थीं। विद्यार्थियोंकी उद्दंडताके साथ-साथ श्री जुगुलकिशोरजीकी अकर्मण्यता भी कम न थी। मंत्रि-मंडलमें ऐसे व्यक्तियोंको लेना जो राज्यहितकी अपेक्षा अपने पदोंपर चिपके रहना अधिक पसंद करें, हानिकारक है। उत्तर-प्रदेशके लिए यह सौभाग्यकी बात हुई कि इस प्रकारके सत्तामदसे चूर इस्तीफा देनेवाले घटनाचक्रके कारण ही हट गए। हम डॉ० सम्पूर्णानंदको बधाई देते हैं। इस्तीफा देनेवालोंको पदसे हटनेका बड़ा क्षोभ होगा, पर मंत्रिमंडल में दरार डालनेवालोंके हट जानेसे राज्यके शासनमें दृढ़ता आएगी। उत्तर-प्रदेशके मंत्रिमंडलकी कमजोरी और कई मंत्रियोंकी अयोग्यताके कारण दो-एक विशिष्ट सरकारी कर्मचारी नौकरीसे दूसरी जगह चले गए हैं और दो-एक जानेकी सोच रहे हैं। उत्तर-प्रदेशके लिए यह लज्जाकी बात है; पर हमें आशा है कि अब राज्यका काम कुछ व्यवस्थित ढंगसे चल सकेगा।

खाद्यान्न-संकट और सत्याग्रह

यह बड़े दुखकी बात है कि उ० प्रदेशमें खाद्यान्न संकट को लेकर कुछ दिनों सत्याग्रह चला। हमारी धारणा है कि खाद्यान्न संकटको लेकर राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंने अपना उल्लू सीधा करनेकी बात सोची थी। हम यह मानते हैं कि उत्तर-प्रदेश सरकारकी ओरसे भी गलतियाँ हुईं। श्री त्रिलोकी सिंहकी गिरफ्तारी न करके बात करनेमें ही क्या हर्ज था। किसान बाढ़से परेशान थे। मँहगाई बढ़ रही थी, एक अंधकार छाया हुआ था और राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंको भावी चुनावकी तैयारीका मौका मिला था। हम जानते हैं कि बाढ़-पीड़ितोंको भड़काया गया और कहा गया कि लोग उनकी पार्टीके झंडेके नीचे आ जाएँ। मानों किसीके घर मौत हो गई हो और मौतसे लाभ उठाकर लोग भावी चुनावकी तैयारी करें! चाहिए तो यह था कि राजनीतिक मतभेदोंको भूलकर लोग लोकसेवामें रत हो जाते। कांग्रेस विरोधियोंकी चारो ओरसे माँग यह थी कि कांग्रेस सरकार लोगोंके कष्ट दूर करे, जादूसे गल्ला पैदा कर दे और आसमानसे कपड़े टपका दे और नेता लोग अपनी ही स्थिति मजबूत कर लें। पर अधिकांश देहातवालोंको पता चल गया कि राज्योंकी विधान-सभाओं और लोक-सभामें उनका प्रतिनिधित्व नहीं है। हम स्वयं समझते हैं कि किसानोंका प्रतिनिधित्व न तो विधान सभाओंमें है और न लोक सभामें।

कृषि-विभाग या गेहूँ की मंडी

उत्तर-प्रदेशमें रबीकी फसल बोते समय बीजके लिए जो आंदोलन चला, वह बड़ा ही हास्यास्पद और लज्जाजनक था। अनेक राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंने—विशेषकर कांग्रेस-विरोधी—परिस्थितिसे लाभ उठाकर बीज वितरणके लिए वह आपाधापी मचाई, जिससे कृषि-विभागको लाभकी अपेक्षा हानि हुई होगी। एक दूसरी बात यह भी हुई कि इस आपाधापीके कारण अनेक भले काश्तकार बीज पानेसे वंचित रह गए। कृषि-मंत्रीके पास जाकर लोगोंने बावेला मचाया कि बीजकी बड़ी कमी है। बीजकी कमी थी भी, पर हमारा निजी अनुभव है कि बीज लेनेमें काफी गड़बड़ी हुई। पंजाबसे लाया गया बीजका गेहूं एक बोरी ५१) में मिलता था। सरकारी स्थानसे सौ-दो-सौ गजकी दूरीपर बाजारमें बेचनेपर वह बोरी ६४) की पड़ती थी। इस प्रकार एक बोरी गेहूंपर बड़ी आसानीसे मुनाफा हो जाता था। एक-दो स्थानोंपर एम० एल० ए० लोगोंने पर्चियाँ बाँटनी शुरू कर दीं कि वे काश्तकारकी ज़रूरतकी ताईद करते हैं। बीज लेकर अनेक काश्तकारोंने ऊँचे दामपर बाज़ारमें खानेको बेच दिया। कृषि-विभाग किसी ज़िलेकी आवश्यकता विशेषको जिलाधीशके आदेश से ही पूरा करता है। यह ठीक भी है। क्या उत्तर-प्रदेशका कृषि-विभाग बतलायेगा कि १५-१६ नवम्बरके क़रीब देवरिया और गोरखपुर जिलेमें गेहूंकी कितनी माँग थी? उस माँग की पूर्ति किसी एम० एल० ए० की चेष्टापर पूरी की गई या जिलाधीशकी आज्ञासे? समझमें नहीं आता कि उत्तर-प्रदेशका कृषि-विभाग गेहूँकी मंडी है या बढ़िया बीज उत्पन्न करने और वितरणका एक साधन है। यदि कृषि-विभाग अंधाधुंध दूसरे राज्योंसे साधारण गेहूँ खरीदकर बिक्री करने लगेगा तो उसे बड़ा धक्का लगेगा।

'भारतमें तानाशाही संभव नहीं'

गत नवम्बरको बड़ौदाकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरूने कहा, "आपने देख लिया कि गत दो या तीन सप्ताहोंमें पाकिस्तानमें क्या हुआ है। पाकिस्तानकी आलोचना करनेका मुझे तथा आपको कोई अधिकार नहीं है। वह वहाँकी जनताका देश है तथा जैसा वे उपयुक्त समझें वैसा कर सकते हैं। परन्तु आपने अब देख लिया है कि ११ वर्षकी स्वतंत्रताके बाद भी पाकिस्तानमें स्थायित्व नहीं आ सका।

उसके विपरीत भारतने भारी प्रगति की है। भारतमें दो आम चुनाव हो चुके हैं, हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना पूरी हो चुकी है तथा अब हम अपनी दूसरी योजनाको क्रियान्वित कर रहे हैं। भारतमें हजारों नई चीजें हो रही हैं। देशमें जहाँ-तहाँ उद्योग इत्यादि स्थापित हो रहे हैं। विशेष 'भारत दर्शन' रेल गाड़ियाँ देश भरमें घूम रही हैं, जिससे जनता जान सके कि कितनी प्रगति हो रही है।

इस प्रकार आप तुलना करके देखते हैं कि पाकिस्तानमें क्या हो रहा है। वहाँ ११ वर्षसे वही पुराना ढर्रा चल रहा है और अन्ततः वह सब कुछ भी अलग हटा दिया गया है, और एक सैनिक तानाशाह उस देशका मालिक बन बैठा है। मैं इसे पसन्द नहीं करता, परन्तु हो सकता है, पाकिस्तानमें सभी पसन्द करें।

पाकिस्तानकी घटनाओंके समान हमारे यहां घटनाएँ होना असंभव है। हम बहुत मजबूत तथा दृढ़ हैं। ऐसी सैनिक तानाशाही हमारे यहाँ नहीं हो सकती। परन्तु ऐसी अन्य अनेक चीजें हैं, जो हमारे कार्यमें बाधा डाल सकती हैं। ये बाधाएं फूट, जातीयता, प्रांतीय विवाद जैसी हमारी पुरानी कमजोरियाँ हैं, जो समय-समयपर सिर उठाती रहती हैं। हमें इन चीजोंसे सतर्क रहना है।"

हम नेहरूजीकी बातसे पूर्णतया सहमत हैं, पर सवाल यह है कि तानाशाह अयूबखाँकी युद्ध सम्बन्धी धमकीका मुकाबला कैसे किया जाय। हम मानते हैं कि धमकियाँ तो कमजोर आदमी वैसे ही दिया करते हैं, पर सीमापर जो घटनाएं हो रही हैं, उनका इलाज तो कुछ होना ही चाहिए। पिछले मास भारतीय बंगाल और पूर्वी पाकिस्तानकी सीमा पर ढाका-स्थित भारतीय हाई कमिश्नरके कार्यालयके एक उच्च पदाधिकारी और उनकी पत्नीको पाकिस्तानी कर्मचारियों ने अपमानित किया। सीमा पर अन्य भारतीय स्त्रियोंके पाकिस्तानी कर्मचारियोंने गहने छीने। मार्शल ला होनेपर भी पाकिस्तानकी ओरसे ऐसी हरकतें क्यों होती हैं। साफ है कि पाकिस्तानके वर्तमान राष्ट्रपति जनरल अयूबखाँ अपनी कमजोरियोंको छिपाने और अपनी स्थितिको स्थायी बनानेके लिए इस प्रकारकी आतंकपूर्ण कार्रवाही कराते रहेंगे। युद्ध वे लड़ नहीं सकते, पर आतंकका वातावरण वे कायम रख सकते हैं और हमारा विश्वास है कि आतंकका वातावरण वास्तविक खतरेसे कहीं अधिक बुरा होता है।

कांग्रेसमें कौन रहे ?

गत २५ अक्टूबरको प्रकाशनगर (हैदराबाद) में कांग्रेस महासमितिके अधिवेशनमें कांग्रेस संगठन सम्बन्धी प्रस्तावपर बोलते हुए नेहरूजीने कांग्रेसमें वैयक्तिक दलबंदीकी कटु शब्दों में निन्दा की। उन्होंने कहा, "कांग्रेसियोंको सदैव समाजवादी ढंगसे समाजकी स्थापनाका लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए, जो अवाडी अधिवेशनमें हमने स्वीकार किया था।" नेहरूजीने उन कांग्रेसियोंको आड़े हाथों लिया, जिन्होंने आज सबेरेके अनौपचारिक बन्द अधिवेशनमें तीसरी योजना आनेके बाद विश्राम करनेकी बात कही थी। नेहरूजी बोले—"मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि कुछ लोग इस तरहकी बातें करते हैं। मैं समझता हूं कि उन्हें कांग्रेसमें नहीं रहना चाहिए, क्योंकि कांग्रेस आराम नहीं करेगी और न किसीको करने देगी। कांग्रेसके सामने आज काम एक नए वीर भारतका निर्माण करना और औद्योगिक युगमें प्रविष्टमान लोगोंके जीवनमें हो रहे परिवर्तनोंको समझकर उन्हें अपनी तमन्नाओंके अनुकूल ढालना है।"

श्री नेहरूजीने अपने हृदयोद्गारको एक प्रकारसे कांग्रेसजनोंके सामने उड़ेल दिया। उनकी बात तो सोलह आना ठीक है। पर ठीक बातको सुनकर मानता कौन है ? स्वार्थपरता और पदलिप्सा कांग्रेसजनोंमें इतना घर कर गई है कि उसका निकलना कठिन है। जब तक दलबंदीके दलदलमें फँसे लोगोंको कांग्रेससे निकाला ही नहीं जायगा, तब तक वे स्वयं तो निकलनेवाले हैं नहीं। द्वापरके यादवोंकी भाँति वे आपसमें लड़-मर रहे हैं। वे लड़ें-मरें, पर देशकी गरीब जनता पिसती है और मरती है तथा देशकी अपार क्षति हो रही है।

खाद्यान्न सम्बन्धी सत्याग्रहका भाष्य

हमने ऊपर एक टिप्पणीमें चर्चा की है कि कांग्रेसविरोधी तत्व बाढ़ और मँहगीका फायदा उठाकर अपने दल और अपनी स्थितिको मजबूत करनेकी कोशिश करते हैं। हम किसी दलके सदस्य नहीं हैं, पर खाद्यान्न संकटको हम राजनैतिक दलबंदीसे परेकी बात मानते हैं। भारतकी रक्षा और भारतकी खाद्यान्न समस्याको सुलझानेमें सबको एक होना चाहिए। ऐसी समस्याओंमें वादका प्रश्न नहीं होता। रूस कम्यूनिस्ट है, पर घोर परिश्रम और सुसंगठनसे उसने कितनी उन्नति की है कि अमरिकाका मुकाबला करनेको तयार है। अमरिका और इंगलैंड पूंजीवादके हामी हैं, उनकी उन्नतिका भी पाठक अनुमान लगा लें। समाजवाद, साम्यवाद तथा अन्य ऐसे ही वाद औद्योगिक क्रांतिके बच्चे हैं और उन वादोंको माननेवाले देश कोरे नारोंसे ही उन्नति नहीं कर रहे, वरन् घोर परिश्रम और सुसंगठनसे। हमारे देशमें ऐसी बात नहीं है। खाद्यान्न-संकटको लेकर हमारे देशमें जिन लोगोंने सत्याग्रह चलाया अथवा घेरा डालो' आन्दोलन चलाया, उनकी प्रवृत्तिके विषयमें हमारा भाष्य यह है कि वे लोग नहीं चाहते कि देशको खाद्यान्न स्थिति सँभले। खाद्यान्न स्थितिके सँभलने और आर्थिक स्थितिके सुधरनेसे स्वार्थी और लोगोंके संकटसे लाभ उठानेवाले नेताओंका अंत अपने-आप हो जायगा। संभव है, हमारा भाष्य गलत हो, पर पाठक स्वयं इस बातकी विवेचना करें कि यदि देशकी आर्थिक स्थिति सँभल जाय, तब फिर इन स्वयंभू नेताओं और कैन्सर की भाँति पनपनेवाले ऐसे लोगोंको कौन पूछेगा ? इसलिए हम कहते हैं कि खाद्यान्न-संकटपर सत्याग्रह करनेवाले लोग चाहे स्वयं स्पष्ट न कहें, पर वे चाहते यही हैं कि स्थिति खराब बनी रहे। विधान सभाओंको छोड़कर वे जरा गाँवों में जाकर रहें। पर गाँवोंमें उन्हें उतनी आमदनी कब होगी, जो उन्हें विधान सभाओंकी सदस्यतासे होती है। बात कड़ी है, पर पाठकोंको इस दिशामें विचार करना चाहिए।

राजस्थानमें अधिकतम कृषि-भूमि सीमा

गत २३ नवम्बरको राजस्थान सरकारने 'राजस्थान काश्तकारी विधेयक' प्रकाशित किया, इसके अनुसार कृषि-भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गई है। प्रत्येक तहसीलमें यह सीमा अलग-अलग होगी। बारानी इलाकों (जहाँ सिंचाई न होती हो) में अधिकतम सीमा दो सौ पचास एकड़ होगी। जैसलमेरकी रेतीली तहसीलोंमें यह १५.६ एकड़ और गंगानगर जिलेकी कुछ तहसीलोंमें सात सदस्योंके एक परिवारके लिए एक मुरब्बा होगी। इस विषय में जयपुरका निम्नांकित समाचार प्रकाशित हुआ है :—

जहाँ एक परिवारकी सदस्य-संख्या ७ से ज्यादा होगी, वहाँ ऐसे परिवारके लिए अधिकतम सीमा बढ़ा दी जायगी। लेकिन यह सीमा दुगनी न हो सकेगी, यदि सदस्य-संख्या १४ से ज्यादा न हो जाय। यदि परिवारकी सदस्य-संख्या १४ से ज्यादा हो जाय तो अधिकतम सीमा तिगुनी हो जायगी। यदि किसी व्यक्तिके पास ऐसी जमीन है, जो आंशिक रूपमें असिंचित है अथवा आंशिक रूपमें नहर, बांध, तालाब

अथवा कुएँसे सिंचित हैं, तो उस व्यक्तिके लिए जमीनकी अधिकतम सीमा निर्धारित करनेके लिए एक एकड़ चाही व नहरी जमीनको ३ एकड़ बारानी जमीनके बराबर समझा जायगा।

हम प्रायः इस बातको दुहराया करते हैं कि राजस्थानकी उन्नतिकी सम्भावनायें इतनी अधिक हैं कि यदि हमारे राजस्थानी भाई अथवा किसी अन्य राज्यके रचनात्मक कार्यकर्त्ता राजस्थानके विकासमें लग जायँ तो खाद्यान्न-उत्पादन और पशु-पालनमें राजस्थानको कोई अन्य राज्य नहीं पा सकता। राजस्थानकी मरुभूमि होने पर भी वीरभूमि है और घोर परिश्रम तथा क्रियात्मक कल्पना-शक्तिसे दूधका इतना उत्पादन हो सकता है कि राजस्थान अमरीकाका मुकाबला कर सकता है। यह भर्त्सना नहीं है और न अतिशयोक्ति है। हम राजस्थानकी भूमिकी शक्तिको समझते हैं। इस समय भी राजस्थानी किसानकी क्षमता उत्तर-प्रदेश और पंजाबके किसानोंसे अधिक है। राजस्थान और केन्द्रीय सरकारको ऊधम करनेवाले राजनैतिक कार्यकर्त्ताओंपर कड़ा अंकुश रखना चाहिए और लोगोंको कृषि, गो-पालन और ग्रामोद्योग तथा कुटीरधंधोंकी ओर प्रोत्साहित करना चाहिए। भूमि-सुधार के हम पक्षपाती हैं, पर कोरे कानूनसे काम नहीं चलेगा। क्षेत्र-विशेषके अनुसार भूमि-सुधार होना चाहिए। उसकी सीमा भी निर्धारित होनी चाहिए। हाँ, उद्देश्य राष्ट्रकी उन्नति ही हो। हमें आशा है कि राजस्थानी भाई दलबंदी छोड़कर राजस्थानकी उन्नतिके लिए प्राणप्रणसे कोशिश करेंगे।

पंतजीकी मुख्य मंत्रियोंको सलाह

गत ८ नवम्बरको नई दिल्लीमें केन्द्रीय गृहमंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंत और कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाईने कांग्रेसी मुख्य मंत्रियोंकी एक बैठकमें प्रशासनमें से भ्रष्टाचार दूर करनेके लिए कड़े कदम उठानेके लिए जोर दिया। इस विषयमें नई दिल्लीका निम्नांकित समाचार है :—

बताया जाता है कि पन्तजीने हालमें सम्पन्न राज्यपालों के सम्मेलनोंमें राज्यपालोंके कार्यके विषयमें हुई बातचीतकी चर्चा करते हुए मुख्य मंत्रियोंसे कहा कि वे राज्यपालोंके कार्यके विषयमें विशेष ध्यान देवें। उन्होंने बताया कि इस विषयमें स्वर्गीय सरदार पटेलने जो नमूनेके रूपमें नियमावली प्रसारित की थी, उसपर मद्रास राज्यने विशेष रूपसे कार्य किया है तथा मद्रासने राज्यपालके कार्य-क्षेत्रमें और भी वृद्धि की है। अब मद्रासके ये नियम सभी राज्योंको भेजे जायँगे और उसपर राज्य सरकारोंको आचरण करना चाहिए। राज्यपालोंके कार्यके विषयमें राज्यमें इस समय समान नियम नहीं है। इस कारण भविष्यमें इन नियमोंमें समानता लानेकी दिशामें कार्य करना आवश्यक हो गया है। मुख्य मंत्रियोंसे कहा कि वे इस ओर सचेष्ट हों।

गृहमंत्रीने यह भी कहा बताते हैं कि राज्यपालोंके लिए विशेष दिखावट आदिको अधिक व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। मुख्य मंत्रियोंने इसपर कहा कि पहलेसे ही इन बातोंमें कमी की जा रही है और राज्यपालोंकी रायसे इसमें आगे भी कमी की जायगी। पन्तजीने मुख्य मंत्रियोंको बताया कि राज्यपाल विधानकी व्यवस्थाके अनुसार किसी भी विषय पर मुख्य मंत्रीसे कोई भी फाइल माँग सकता है। किन्तु उनकी रायका स्वयं भी उन्हें ध्यान रखना चाहिए।

मुख्य मंत्रीने कहा कि राज्योंके मुख्य न्यायालयोंमें मुकदमे अधिक दिनों तक न पड़े रहे हों, इस दिशामें आवश्यक कदम उठाना जरूरी है और विशेषकर फौजदारीके मुकदमे दो वर्षसे अधिक दिनों तक निर्णयके लिए नहीं रोके जाने चाहिए। साथ ही न्यायालयोंकी कार्यकी अवधि भी बढ़ाई जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि राज्यों'को अपने क्षेत्रसे उन व्यक्तियोंके नाम भेजने चाहिए, जो न्यायाधीश नियुक्त करनेके योग्य हों और नये जजोंकी आवश्यकता होने पर इस पैनेलसे ही नियुक्ति की जानी चाहिए।

पन्तजीने मुख्य मंत्रियोंसे अखिल भारतीय इंजीनियर सेवाकी स्थापनाके प्रस्तावको भी स्वीकार करनेको कहा। इस पर आज कोई निर्णय नहीं हुआ। गृहमंत्रीने आगे कहा कि राज्योंसे अनुसूचित जातियों व हरिजनोंके कल्याणके विषयमें किए जानेवाले कार्यके बारे में समय पर रिपोर्ट नहीं आती है, साथ ही इस कार्यके लिए स्वीकृत धनका भी पूरा उपयोग नहीं होता। इस ओर विशेष ध्यान देना जरूरी है।

पंतजीकी सलाह बहुत नेक है। हमें न तो भारत सरकारकी ओरसे, न मुख्य मन्त्रीकी ओरसे कुछ कहनेका अधिकार है। हम तो केवल इस बातपर जोर देते हैं कि जो सलाह दी जाय, वह कार्यान्वित होनी चाहिए, ताकि गरीब देशका भला हो। खर्चमें कमी करनेके लिए राज्यपालोंके पदोंको हमारे ख्यालसे तोड़ देना चाहिए और प्रत्येक राज्यमें एक ही विधान सभा होनी चाहिए। यह हम मानते हैं कि आतिथ्य सत्कारके लिए राज्यपालके स्थान

पर कोई व्यक्ति होना चाहिए; पर यह उत्तरदायित्व मुख्य-मंत्री पर भी हो सकता है। हाँ, मुख्य मंत्रीकी सहायताके लिए कोई विशेष अधिकारी नियुक्त हो जाय। भ्रष्टाचारका जो बोलबाला है, उसके लिए जहाँ सरकारी कर्मचारियोंको कड़ा दण्ड देना चाहिए, वहाँ राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंको भी दण्डित करनेका विधान कांग्रेसके पास होना चाहिए। शासनमें निकम्मेपनका एक कारण यह भी है कि नौकरियों में योग्यताके स्तरपर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। पर स्वयं पंतजीने हरिजनोंको नौकरी दिलानेके लिए योग्यताके स्तरको नीचा करनेकी बात कही थी। रेल, डाक-तार विभागमें जो अयोग्य व्यक्ति भर लिए गये हैं, उससे साधारण जनता बहुत परेशान है। भारतका डाक-विभाग विश्व भरमें कार्यक्षमताकी दृष्टिसे तीसरे नम्बरपर था, पर अन्धाधुन्ध अयोग्य हरिजनोंके भरनेसे उसकी क्या दुर्गति हो गई है! हावड़ा स्टेशनके वाच एण्ड वार्डमें कुछ स्थान इसीलिए खाली पड़े हैं, क्योंकि वहाँकी नियुक्तिके लिए हरिजन नहीं मिल रहे। श्री जगजीवन राम हरिजन-कल्याणकी बातें बहुत करते हैं; पर देशका कल्याण किसी बिरादरीके कल्याण से बहुत ऊपर है।

विश्वका मानचित्र और जम्मू तथा कश्मीर

पाठकोंको शायद यह मालूम हो कि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा विश्वके मानचित्र तैयार किये जाते हैं। उसके एक ऐसे ही मानचित्रमें जम्मू और कश्मीर भारतमें नहीं दिखाये गये हैं, बल्कि उन्हें एक विवादग्रस्त क्षेत्र अंकित किया गया है। पर एक दूसरे मानचित्रमें, जो सन् १९५७ में तैयार किया गया था, जम्मू और कश्मीरको पाकिस्तानमें दिखाया गया है। इस विषयमें जब भारतकी ओरसे सेक्रेटरी जनरलका ध्यान आकर्षित किया गया, तो राष्ट्रसंघके महामन्त्रीके कार्य-सहायक एंड्रू कोर्डियरने इस संबंधमें अपने हालके पत्रमें लिखा है कि जम्मू-कश्मीरके नक्शोंमें हेरफेर करना उस समय तक ठीक नहीं होगा, जब तक सुरक्षा परिषदका और कोई कार्य अथवा निर्णय नक्शोंमें हेरफेर आवश्यक न बना दे। ऐसे किसी मामलेमें, जिसमें राष्ट्रसंघके दो सदस्योंमें विवाद हो, सचिवालय निष्पक्ष रहना ही कर्तव्य मानता है। चूँकि ग़लतीसे जम्मू और कश्मीरको पाकिस्तानमें दिखाया गया है, इसपर राष्ट्रसंघकी ओरसे खेद प्रगट किया गया। उपर्युक्त बातें भारतीय संसदके प्रश्नोत्तरोंके सिलसिलेमें मालूम हुईं; पर यह पता नहीं चला कि राष्ट्रसंघ अपनी भूल मानकर जम्मू और कश्मीरको नए मानचित्रमें विवादग्रस्त दिखायेगा नहीं। ईमानदारीका तकाजा तो यह था कि जम्मू और कश्मीरको भारतके मानचित्रमें दिखाया जाता। यदि रूस अलास्कापर दावा करे या इंग्लैंड स्कोडनके किसी क्षेत्रपर दावा करे, तो क्या उन क्षेत्रोंको विवादग्रस्त इलाकोंमें दिखाया जायगा? ऐसा लगता है कि भारतके विदेशी सूचना विभागकी कार्यक्षमतामें बड़ी कमी है।

'प्रशासनमें भ्रष्टाचार'

गत २५ नवम्बरका इलाहाबादका समाचार है :—

इलाहाबाद, २५ नवम्बर। उत्तर-प्रदेशके भूतपूर्व मंत्री श्री मंगलाप्रसादने कल यहाँपर बताया कि उन्होंने मंत्रिमंडलसे कांग्रेस सिद्धान्तोंके प्रतिपालनके लिए ही इस्तीफा दिया है, न कि प्रादेशिक कांग्रेसकी गुटबन्दीके कारण।

श्री मंगलाप्रसादने कहा कि वह मंत्री-पदकी अपेक्षा उससे अलग रहकर जनता व कांग्रेसकी अधिक सेवा कर सकेंगे। वह तो कांग्रेसके एक स्वयंसेवक हैं। मंत्री-पद प्राप्त करना उनके जीवनका अन्तिम ध्येय नहीं।

शासनमें भ्रष्टाचारकी चर्चा करते हुए श्री मंगलाप्रसादने कहा कि प्रशासनमें इतना भारी भ्रष्टाचार है कि यदि किसी विकास-कार्यके लिए ४० करोड़का खर्च रखा जाय तो उसका आधा ही खर्च होगा। शेष या तो नौकरशाहीकी जेबमें जायगा या नष्ट हो जायगा। यदि कार्य करनेमें सेवा भावना हो तो इसी ४० करोड़से ८० करोड़का काम हो सकता है।

श्री मुजफ्फर हसनने बताया कि कांग्रेस पार्टीने हमेशा मुख्य मंत्री डॉक्टर सम्पूर्णानन्दका साथ दिया। जब उन्होंने यह चाहा कि विरोधी दलमेंसे कोई विधान-सभाका उपाध्यक्ष चुना जाय तो पार्टी इसके पक्षमें न थी, लेकिन हमने सदस्यों को उसके लिए राजी किया। श्री हसनने चेतावनी दी कि भारतके चारों ओर सैनिक तानाशाही कायम है। यदि कांग्रेस यहाँपर कमजोर हो गई तो भारतका भी यही हाल होनेकी आशंका है। हमें चाहिए कि हम कांग्रेसको मजबूत बनावें।

श्री मंगलाप्रसाद और श्री मुजफ्फर हसन साहबके बयान पढ़कर बड़ी हँसी आई। दोनों सज्जन तथा उनके साथियोंने मंत्रिमंडलसे क्यों इस्तीफा दिया है, इसपर हम ऊपर लिख

चुके हैं ; पर श्री मंगलाप्रसादने प्रशासनमें फैले भ्रष्टाचारकी जो चर्चा की, उसका हमें स्पष्टीकरण करना है। क्या श्री मंगलाप्रसादको प्रशासनमें प्रविष्ट भ्रष्टाचारका पता मंत्री-पदसे अलग होनेपर चला ? मंत्री-पदपर चिपके रहनेपर उनकी आँखोंपर कौन-सा चश्मा चढ़ा था, जो भ्रष्टाचार नहीं देख पाता था ? यदि उस समय उन्हें भ्रष्टाचारका पता था, तो क्या ही अच्छा होता, यदि वे पहले ही उस भ्रष्टाचारकी चर्चा श्री नेहरूजीसे करते। यदि उनसे चर्चा न भी करते, तो अपना नैतिक मेरुदंड कायम रखनेको इस्तीफा दे देते। यदि डॉ० सम्पूर्णानन्दसे उनका और उनके मित्रोंका मतभेद न हुआ होता, तो उस भ्रष्ट प्रशासनमें वे सहयोग देते रहते और भ्रष्टाचारके नैतिक रूपसे जिम्मेदार भी होते। हम तो मानते हैं कि देशकी सेवा केवल मंत्री बननेसे ही नहीं होती। पर श्री मंगलाप्रसादजीको ऐसी बातें तो मंत्री-पदसे छूटनेपर सूझ रही हैं। निरंकुशता और अहमन्यता क्या मंगलाप्रसादजीमें कम थी ! उत्तर-प्रदेशका अभिशाप यह है कि पार्टीबाजीकी सीढ़ीसे श्री मंगलाप्रसाद जैसे अयोग्य व्यक्ति मंत्रिमंडलमें पद प्राप्त कर सकते हैं। बड़ी खुशीकी बात है कि वे अब जनताकी उचित सेवा करेंगे। देर आए दुरुस्त आए। पर उनके बयानसे प्रतीत होता है कि नजर तो उनकी जनताकी सेवा-रूपी तीलियोंपर है, पर दिल है उनका मंत्री-पदरूपी चमनमें। रही श्री मुजफ्फर हसनके बयानकी बात कि तानाशाहीसे बचनेकी बात वे कहते हैं, पर भारतमें तानाशाही स्थापित होनेका मार्ग तो श्री चंद्रभानु गुप्त तथा उनके दलके लोग बना रहे हैं। अन्य अनेक कांग्रेस जनोंसे भी जनता त्रस्त है। जिस प्रकार बुलंदशहरके चुनाव में पराजित श्री बनारसीदास और शाहजहाँपुरसे पराजित श्री खन्ना जनतापर छाये हुए थे, उनमें तानाशाहीको प्रोत्साहन नहीं मिलता ? क्या इस समय भीतर-ही-भीतर यह कोशिश नहीं हो रही कि डॉ० सम्पूर्णानंदको हटानेके लिए केवल ६-७ और वोटोंकी ही आवश्यकता है ? हम डॉ० सम्पूर्णानंद अथवा किसी और दलके व्यक्ति नहीं हैं, पर दलबंदीमें गरदन तक फँसे व्यक्ति जब दलबंदीके विरोधमें कहते हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रताके नामपर लोकतंत्रकी बुनियादी बातोंका हनन करते हैं, तब हमें क्लेश होता है। ऐसे राजनीतिक कार्यकर्ताओंको हमारी चेतावनी है कि वह दिन भी दूर नहीं है, जब छद्मवेशी कार्यकर्ताओंका पर्दाफाश होगा। कांग्रेस केवल मंत्री बननेसे ही मजबूत नहीं होगी। वह तो रचनात्मक कार्य करने और निष्काम सेवासे मजबूत हो सकती है।

मथुराका सहस्रकुण्डी महायज्ञ

गत नवम्बरके अंतिम सप्ताहमें सहस्रकुंडी गायत्रीका आयोजन किया गया था। गत २४-२५-२६ नवम्बरको यज्ञ हुआ। इस यज्ञके आयोजनकर्त्ता और प्रेरक श्री श्रीराम शर्मा आचार्य थे। हमसे कई व्यक्तियोंने पूछा कि क्या हमी उस महायज्ञके आयोजक हैं ? हमारे पड़ोसमें एक पत्र आया और उसमें पूछा गया कि क्या 'विशाल भारत' सम्पादक श्री श्रीराम शर्मा उस यज्ञके प्रेरक हैं ? यह टिप्पणी लिखनेका कारण यह नहीं है कि 'विशाल भारत' का बहुमूल्य स्थान घेरकर हम अपने विषयमें कोई भ्रम-निवारण करना चाहते हैं। मूल उद्देश्य इस टिप्पणीका यह है कि मथुरामें जो सहस्रकुंडी महायज्ञ हुआ, उसे हम अनैतिक और अधार्मिक समझते हैं। सम्भव है हम गलत हों और ऋत्वज ठीक हों, पर हम अपना दृष्टिकोण पाठकोंके विचार-विमर्शके लिए रख रहे हैं। भ्रम-निवारणार्थ हम इतना कहते हैं कि 'अखण्ड ज्योति' से हमारा किसी प्रकारका कोई सम्बंध नहीं है और 'अखंड ज्योति' के सम्पादक तथा इस यज्ञके प्रेरक श्री श्रीराम शर्मा आचार्य शायद स्वयंभू आचार्य हैं। वे आगरे जिलेके गाँव बरहन या उसके समीपस्थ गाँवके निवासी हैं। पहले वे आगरेके 'सैनिक' में काम करते थे और अपना नाम श्रीराम 'मत्त' लिखा करते थे। मथुरा पहुँचकर वे श्रीराम 'मत्त' से श्रीराम शर्मा बन गए और फिर अपने नामके आगे या पीछे 'आचार्य' शब्दका प्रयोग भी करने लगे। मथुरा जाकर उनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी हो गई। भगवान् कृष्णकी जन्मभूमिमें भक्तोंको प्रसाद मिलना भी चाहिए। एक बार आपसदारीके नाते उन्हें हमने नोटिस भी दिया था कि वे अपने नामके आगे अब 'मत्त' नहीं लिखते, तो कुछ और लिख लिया करें। उसमें वे हमसे काफी छोटे हैं, अतः उन्हें ही नाम आगे बदलना चाहिए था। मथुराके सहस्रकुंडी गायत्री यज्ञके बारेमें आगरेके 'अमर उजाला' में जो समाचार छपा है, उसका एक भाग हम यहाँ दे रहे हैं :—

"मथुरा, २६ नवम्बर। मथुराके इतिहासमें अपने ढंगका अनूठा और विशाल धार्मिक आयोजन "सहस्रकुण्डी गायत्री-महायज्ञ" आज समाप्त हो गया। यज्ञकी पूर्ण आहुतिका

दर्शन करने, यज्ञस्थलकी परिक्रमा देने और गायत्री-मंदिरमें दर्शन करनेके लिए देशके प्रायः प्रत्येक भागसे आए हुए लगभग एक लाख व्यक्ति गायत्री-तपोभूमिपर गए। इनमें कई समुद्र पारके देशोंमें रहनेवाले भारतीय भी थे, जो इसी उद्देश्यसे यहाँ आए हैं। मथुराके लोगोंका कथन है कि ऐसा विराट धार्मिक आयोजन उनकी स्मृतिमें पहले कभी नहीं हुआ, जिसमें भाग लेनेके लिए एक ही दिन इतने लोग मथुरा आए हों।

यज्ञके आयोजनकर्त्ता और उसकी प्रेरणाके स्रोत श्री श्रीराम शर्मा आचार्य हैं। वर्षोंसे अपनी "अखण्ड ज्योति" नामक मासिक पत्रिका और गायत्री-यज्ञ सम्बन्धी पुस्तकोंके द्वारा उन्होंने देशके विविध भागोंमें गायत्री-परिवारका संगठन किया है। इसी आधारपर इतनी बड़ी संख्यामें उनके भक्त और अन्य लोग यहां खिंचे चले आये। यज्ञशालामें १०२४ यज्ञकुंडियाँ बनाई गई थीं, जिनके निकट बैठकर कई हजार याज्ञिकोंने पिछले चार दिन तक आहुतियां दीं। हजारों ही स्त्री-पुरुषोंने यज्ञशालाकी भक्ति-भावसे परिक्रमा की। श्री श्रीराम शर्मा आचार्यने यज्ञशालाकी २४ परिक्रमायें देनेका माहात्म्य बताया और बहुतोंने इतनी ही परिक्रमायें दीं। श्री शर्माने भक्तोंसे कहा—"सादा जीवन और परोपकारका आदर्श अपनाना ही गायत्री और यज्ञका वास्तविक मर्म है।" यज्ञमें भाग लेनेवालोंसे उन्होंने तीन व्रत धारण करनेको कहा—(१) व्यक्तिगत जीवनमें नैतिकता, मानवता, कर्त्तव्यनिष्ठा, सेवा, सचाई, संयम, उदारता, आस्तिकता आदि आदर्शोंको जीवनमें ओत-प्रोत करना, (२) सामाजिक जीवनमें नागरिकता, सामूहिकता, समानता, एकता, सहिष्णुता, ईमानदारी, सज्जनता आदि सद्प्रवृत्तियोंकी वृद्धि करना, (३) देशमें फैली बुराइयों—जैसे स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, संकीर्णता, विलासिता, आलस्य, मांसाहार, नशा, जुआ, दहेज, मृत्युभोज आदि दुष्प्रवृत्तियोंके विरुद्ध संघर्ष करना।

यज्ञकी महिमाके सम्बन्धमें श्रीराम शर्माने कहा—"इस हवनमें प्राणी मात्रकी शुभकामना, आत्मीयता और स्नेहका घृत होमा जाना चाहिए। ऐसा परमार्थिक हवन गायत्री माताको अधिक प्रसन्न करता है और प्रसन्न हुई गायत्री माता सत्पात्रको दीर्घायु, सुयश, संतान, साधन, धर्म आत्मबल और ब्रह्मलोक प्रदान करती है।"

अपने ढंगके इस अनूठे आयोजनका सनातन धर्मावलम्बियों द्वारा विरोध किया गया है। उन्होंने अपना विरोध-पत्र और अपने तर्कके छपे हुए पर्चे वितरित कर प्रचारित किया है। निस्सन्देह सैकड़ों व्यक्ति इन तर्कोंसे प्रभावित होकर मथुरा आने पर भी यज्ञमें भाग लेने नहीं गये, लेकिन इन सैकड़ोंकी अपेक्षा महस्रों ऐसे थे, जिनपर इन पर्चोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ब्रजमण्डल सनातन धर्म-सभाकी ओरसे वितरित किए गए एक पैम्फलेटमें श्री श्रीराम शर्माको शास्त्रार्थके लिये चुनौती देते हुए आयोजित यज्ञको शास्त्र-विरुद्ध कहा गया। उनका तर्क यह था कि शास्त्रोंके अनुसार यज्ञादि कार्य शुक्लपक्षमें नहीं करने चाहिए, लेकिन यह शुक्लपक्षमें किया जा रहा है। शास्त्रोंमें जिस प्रकारके मण्डप व कुण्डोंका विधान है, वैसे मण्डप और कुण्ड नहीं बनाये गये हैं। वेद माता गायत्रीका अधिकार उपनीत द्विजाति मात्रको ही है, जब कि यहाँ अनुपनीतोंका भी प्रवेश है। गायत्री-मंत्र उच्च स्वरसे नहीं बोलना चाहिए, जो कि यहाँ बोला जा रहा है। इससे धर्म-लाभके बजाय अनिष्ट हो सकता है।

अब ज्ञात हुआ है कि जगद्गुरु श्री शंकराचार्यने, जो कि उन दिनों आगरा जिलेमें एक स्थानपर ठहरे हुए थे, इस यज्ञमें भाग लेनेसे अस्वीकार कर दिया, यद्यपि पहले वे आनेकी स्वीकृति दे चुके थे। लेकिन एक प्रख्यात सनातनी संत श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी गायत्री-यज्ञके मंचसे प्रवचन कर गये हैं। इस प्रकार यह इतना बड़ा आयोजन सम्पन्न होने के साथ ही आगेके लिए एक विवाद छोड़ गया है।

आज यज्ञके अन्तिम दिन सारे नगरकी कन्याओंको भोजन करानेका आयोजन था, लेकिन देखा यह गया कि बहुत बड़ी संख्यामें कन्याएं वहां नहीं पहुंचीं। सायंकाल शोभा-यात्रा निकली, जो कि समारोहका अंतिम कार्यक्रम था। इसमें गायत्रीके आदर्शोंके सम्बन्धमें कुछ प्रतीकात्मक झांकियां थीं। यज्ञमें सैकड़ों ही मन घृत और मेवाएं स्वाहा हुईं। भक्त लोग भस्मको बड़े जतनके साथ अपने साथ ले गये। दो लाखसे अधिक व्यक्तियोंने पिछले चार दिनमें मुफ्त भोजन गायत्री-तपोभूमिमें प्राप्त किया। श्री श्रीराम शर्मा द्वारा रचित और प्रकाशित गायत्री-साहित्य की हजारों रुपयेकी बिक्री हुई है। भेट स्वरूप भी बहुत बड़ी धनराशि (शायद कई लाख रुपया) एकत्र हुआ बताया जाता है। श्री श्रीराम शर्माका कथन है कि सारी सम्पत्ति लोक-कल्याणके लिए समर्पित है।"

उपर्युक्त यज्ञमें देशके विभिन्न राज्योंसे लोग आए बताये जाते हैं, प्रवाससे भी कुछ लोग आए, इसलिए मथुराका उपर्युक्त यज्ञ एक प्रकारसे भारतवर्षका एक यज्ञ हुआ। हम स्वयं आस्तिक हैं। गायत्री और वेदोंमें हमारा विश्वास है और उसी विश्वासके कारण हम मथुराके सहस्रकुंडी गायत्री-यज्ञको अवांछनीय, असामयिक और अनतिक मानते हैं। इस यज्ञके आयोजनकर्त्ताको अपनी पुस्तकें बिकनेसे हजारोंका लाभ हो, इससे हमें ईर्ष्या नहीं, वह तो दुकानदारी है। देशभक्ति और धर्मके नामपर अनेक लोग ठगी करते हैं, पर आपत्ति हमें इस बातकी है कि देशमें भुखमरी है। गेहूँ २६-२७ रुपये मन बिक रहा है। मथुरा, आगराके कई जिलोंमें हजारों आदमियोंने घासको थोड़े अन्नमें मिलाकर उदरपूर्त्ति की है। पश्चिमी यू० पी० के बाढ़के इलाकोंमें सबसे खराब हालत मथुराकी रही है। मथुरा शहरसे थोड़ी दूर गिरि गोवर्धनके निकट किसानोंमें त्राहि-त्राहि मची रही। बीमारोंको दूध तक नहीं मिला, घी तो स्वप्नकी-सी बात हो गई और मथुरामें सहस्रकुंडी गायत्री-यज्ञ होता है, जिसमें सैकड़ों मन घी फूँका जाता है! ऐसा मालूम होता है, मानो जारके धार्मिक परामर्शदाता रास्पुटिनकी आत्मा यह सब स्वांग रचा रही हो। भूखे बच्चों और बूढ़ोंको जहाँ भोजन न मिलता हो, दवाके लिए जहाँ लोग तरसते हों, वहाँ सैकड़ों मन मेवा ऐसे फूँकी जाय, यह हमारी नैतिक कमजोरी नहीं तो क्या है? क़ानूनन आपको सैकड़ों मन घी और मेवे फेंकने अथवा आगमें फूँकनेका अधिकार है, पर कानूनसे परे नैतिकता और मानवताका प्रश्न है। पड़ोसमें ही लोग अभावके कारण सिसक रहे हों और वहींपर ढोंग तथा आडम्बरकी आड़में खाद्यान्न नष्ट किया जाय, यह ढोंग नहीं तो क्या है। जो चढ़ावा कई लाखका आया है, उसको लोक-कल्याणके लिए बताया जाता है, पर उसे खर्च करनेके लिए कौन-सी समिति है? लोक-कल्याणके नामपर गरीब देशके धनका अपव्यय और अनाचार होता है। मथुराकी जनता तथा सरकारी प्रशासन इतना क्यों ढीला है और इस बातकी जानकारी क्यों नहीं करता कि इस रुपयेका उपयोग कैसे होगा। लोक-कल्याणकी रूपरेखा क्या है? हमें दुःख है कि हमने इस यज्ञकी कटु आलोचना की है, पर हमारा व्यक्तिगत किसीसे द्वेष नहीं है। जिन लोगोंने इसका विरोध किया, उनको हम बधाई देते हैं, विशेषकर श्री शंकराचर्यजी को। यज्ञमें डॉ० राधाकृष्ण और गृह-मंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पंतके पधारनेकी भी बात थी। क्या कोई बतायेगा कि उन्होंने आनेकी अनुमति भी दी थी? हर हालतमें इस यज्ञकी जाँच तो होनी ही चाहिए।

श्री डेफिन बेकरकी भारत-यात्रा

कनाडाके प्रधान मंत्री श्री डेफिन बेकर गत मास भारत आये और गत २४ नवम्बरको वे सीलोनके लिए रवाना हो गए। वे राष्ट्रमंडलीय कई देशोंकी यात्रापर आए थे। इंग्लैंड, पाकिस्तान होकर भारत आए और कराँचीमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कहा कि बदलती हुई परिस्थितिमें कश्मीरकी समस्याका हल जनमतसे नहीं, भारत और पाकिस्तानके बीच पारस्परिक बातसे तय होनी चाहिए। उनकी सद्भावना यात्रासे कनाडा और भारतके सम्बंध और घनिष्ट हो गए। दिल्ली स्थित १९५८ प्रदर्शनीको देखकर वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने कहा कि यदि विश्वमें शांति बनी रहो, तो कुछ ही वर्षोंमें भारत महान आर्थिक प्रगति कर लेगा।

भारतमें वैज्ञानिक प्रगति

बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि भारत अपनी कठिनाइयोंके होनेपर भी विज्ञानमें संतोषजनक प्रगति कर रहा है। राकेटरी में रूस और अमरीकाने आश्चर्यजनक प्रगति की है। दोनों देशोंने भू-उपग्रह छोड़े हैं और अमरीकाने तो च-द्रलोक तकके लिए एक राकेट छोड़ा। वह पूर्णतया सफल तो नहीं हुआ, पर लगभग दो-तिहाई दूरी तक वह जा सका। बंगलोरकी भौतिक शालासे हमारे वैज्ञानिकोंने भी एक बहुत छोटा राकेट छोड़ा, जो सात मील तक जा सका। पर सबसे ज्यादा खुशीकी बात यह है कि भारतमें अणु-भट्ठी बन रही है, जिससे निकट भविष्यमें बिजलीका उत्पादन हो सकेगा। तृतीय पंचवर्षीय योजनामें ये भट्ठियाँ काफी किलोवाट बिजली उत्पादन कर सकेंगी। भारतमें थोरियम और यूरेनियम खनिज पदार्थ भी यथेष्ट मात्रामें हैं, यह भी देशके लिए बड़े उपयोगी साबित होंगे। पर इनका सदुपयोग तब हो, जब हमारी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्त्तन कर दिए जायँ और इंजीनियरिंगकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय। हाई स्कूल परीक्षा तक अब विज्ञानको अनिवार्य कर देना चाहिए, ताकि खेती, बागवानी और जीवनोपयोगी अन्य बातोंमें सहायता मिल सके। विज्ञानके साथ साहित्यिक प्रवृत्ति हो ही जाती है। साहित्य-साधनामें विज्ञान कोई रुकावट नहीं है और दोनों का सुन्दर समन्वय परमावश्यक है।

सूडानमें सैनिक क्रांति

गत मास हमने लिखा था कि भारत एक प्रकारसे संसदीय शासनका सैनिक तानाशाही रूपी सागरमें एक टापू है। पाकिस्तान, इराक, मिस्र, बरमा और थाईलैंडमें सैनिक शासन लागू होनेके बाद गत मास सूडानमें भी सैनिक क्रांति हो गई और वहाँके शासनकी बागडोर वहाँके सेनापति जेनरल अब्बूदने सँभाल ली। वहाँके कानूनी, न्यायिक एवं शासनाधिकार सेनापतिके हाथोंमें आ गए। सूडानके मंत्रियों को पहले जेनरल अब्बूदने कैद किया, पर बादमें मुक्त कर दिया। सूडानकी राजक्रांतिका कारण यही बताया जाता है कि वहाँपर राजनीतिज्ञोंने स्थितिको बहुत खराब कर रखा था। अनुमान यह लगाया जाता है कि अब अरब गणतंत्रके साथ सूडानका सम्बंध अच्छा हो जायगा और सूडान पश्चिमी रष्ट्रोंके चक्करमें नहीं फँसेगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रताके प्रारम्भिक जोशमें दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशों और अफ्रिकाके देशोंने वहाँकी आर्थिक और कृषि-सम्बंधी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। एकदम सत्ताके आनेसे भ्रष्टाचारका बोलबाला हो गया। जनता परेशान हो गई और उसकी प्रतिक्रिया तानाशाहीके रूपमें लोगोंके सामने आई। भारतमें भ्रष्टाचार कम नहीं है, पर भारतकी एक राजनीतिक परम्परा कांग्रेसने बनाई तथा महात्मा गांधीने बुनियादी तरीकेसे देशको नैतिकता, स्वावलम्बन तथा सेवाभावका पाठ पढ़ाया। इसीलिए भारतमें तानाशाहीका उद्भव इतनी जल्दी नहीं हो सकता, पर संसदीय शासनको कायम रखनेकी कठिनाइयाँ तो बढ़ ही रही हैं। यदि खाद्य-स्थिति ठीक न हुई, तो देशकी स्थिति बड़ी गंभीर हो जायगी।

सूती वस्त्रके निर्यातकी स्थिति

गत २० नवम्बरको लोकसभामें एक प्रश्नका उत्तर देते हुए व्यापार-मंत्री श्री नन्दानंद कानूनगोने बताया कि इस वर्ष जनवरीसे अगस्त तक भारतका निर्यात ५९ करोड़ रुपयेका घट गया। सूती वस्त्र, जूट, हेसियन, मैंगनीज और अंडीका तेल, पकाया हुआ चमड़ा तथा कच्चे ऊनके निर्यातमें ह्रास हुआ है। सूती वस्त्रका निर्यात घटनेका मुख्य कारण चीन और जापानकी प्रतियोगिताका बढ़ना है। निर्यातमें ह्रास सर्वाधिक सूती वस्त्रोंमें हुआ है। बात यह है कि दक्षिण-पूर्व एशियाके बाजारोंमें चीन और जापानके कपड़ोंकी भरमार है, उन कपड़ोंके मुकाबले भारतीय कपड़ोंके ग्राहक नहीं मिलते। जब तक भारत अपने कपड़ोंकी दरें न घटायेगा, तब तक वह चीन और जापानकी प्रतियोगितामें टिक नहीं सकता। सरकारकी ओरसे लोकसभामें बताया गया कि सरकार परिस्थितिको सुधारनेकी कोशिश कर रही है। हमारे खयालसे जब तक व्यवस्थित रूपसे निर्यात-नीतिका निर्णय न होगा, तब तक विदेशी मुद्रा और हमारे निर्यात व्यापारकी हालत खराब ही रहेगी। हमारी सरकारकी ओरसे कार्यक्षमतामें कमी है, हमारे व्यापारी अपने ही मुनाफेकी फिक्रमें हैं और हमारे मजदूर भाई हड़ताल करने और वेतन बढ़ानेपर ही अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देते हैं। चीन, जर्मनी और जापानमें जिस लगनसे काम होता है, उसी तरह काम होनेसे हमारा काम चल सकता है।

अंतर्राष्ट्रिय परिस्थिति

अंतर्राष्ट्रिय परिस्थितिकी गुत्थियाँ सुलझनेकी अपेक्षा और जटिल होती जाती हैं। मध्य-पूर्व और सुदूर-पूर्वकी समस्याओंके विषयमें पाठक अवगत हैं, अब बर्लिनके विषय में रूसने एक नया शोशा छोड़ा है। रूसने पश्चिमी राष्ट्रोंको बताया है कि रूस पूर्वी बर्लिनसे हट जायगा और उसे पूर्वी जर्मन सरकारको सौंप देगा, अतः पश्चिमी राष्ट्र भी बर्लिनसे अपनी सेनाएँ हटा लें। वास्तवमें रूसके लिए बर्लिनमें अपनी सेनाएँ रखना सैनिक दृष्टिसे कोई महत्व नहीं रखता। आणविक तथा उदजन आयुधोंके युगमें बर्लिनमें सेना रखना अथवा रूसकी सीमापर या पोलैंडमें सेना रखना एक-सा ही है। पश्चिमी राष्ट्रोंकी ओरसे स्पष्ट कह दिया गया है कि वे बर्लिनको नहीं छोड़ेंगे। रूसकी ओरसे प० जर्मनीको धमकी दी गई है कि यदि पश्चिमी जर्मनीकी ओरसे, पश्चिमी राष्ट्रोंसे उकसाये जानेपर, पूर्वी जर्मनीके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही की गई, तो पश्चिमी जर्मनी अपनी आत्महत्याको निमन्त्रण देगा। असलमें लोकतन्त्रकी कसम खानेवाला रूस पूर्वी जर्मनीसे बिल्कुल क्यों नहीं हट जाता और पश्चिमी राष्ट्रोंको जर्मनीका एकीकरण करनेमें प्रोत्साहन क्यों नहीं देता? रूसका यह अन्याय है कि वह जर्मनीके विभाजनको दृढ़ कर रहा है। अगर पश्चिमी राष्ट्र जर्मनीके विभाजनको कायम रखनेमें योग देंगे, तो यूरोपीय इतिहासमें रूस और पश्चिमी राष्ट्र दोनों ही कलंकके भागी होंगे। जर्मनीके दो टुकड़े स्वयं जर्मन लोग बरदाश्त नहीं करेंगे। पूर्वी जर्मनीसे प्रतिदिन हजारों व्यक्ति

पश्चिमी जर्मनी जा रहे हैं। निकट भविष्यमें बर्लिनको लेकर एक गम्भीर स्थिति पैदा हो जायगी। इराक़में सैनिक क्रान्तिके बाद भी वहाँकी स्थिति सुधरी नहीं है। इराक़के तानाशाह जनरल कासिम अपनी स्थिति दृढ़ करनेमें जुटे हैं। उन्होंने क्रान्तिके अपने सगे साथी जनरल आरिफ़को अपना प्रतिद्वन्द्वी बताकर पश्चिमी जर्मनीका दूत बनाकर भेजा था; पर श्री आरिफ़ बिना सूचनाके ही बग़दाद आ गये और वहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। श्री नूरीके समयके अनेक मन्त्रियोंपर मुक़दमे चलाये गये, कइयोंको प्राणदण्ड दिया गया है। विचित्र बात यह है कि लोगोंको खुश करनेको फेल विद्यार्थियोंको पास कर दिया गया है और भूमि-सुधारके वचन दिये गये हैं। इराक़ और मिस्रकी तनातनी चल ही रही है और धीरे-धीरे इराक़में कम्यूनिस्टोंका प्रभाव बढ़ता जाता है। अरब देशोंमें भी कोई स्थायी एकताके लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहे। ट्यूनिसियामें श्री बुरगीबाने अनेक ऐसे जासूसोंको गिरफ्तार कराया है, जो उनके वधका षड्यन्त्र रच रहे थे। विदेशी पत्रोंके अनुसार वे सब मिस्रसे भेजे गये थे। साइप्रसमें अंग्रेजी शासक और साइप्रसोंमें मारकाट चल रही है और ग्रीसकी ओरसे संयुक्त परिषदको राजनीतिक कमेटीमें साइप्रसकी स्वतन्त्रताका मामला रख लिया गया। तुर्कीकी ओरसे कहा गया है कि यदि साइप्रसमें यूनानियोंको स्वतन्त्रता दी जाय तो वहाँके तुर्कोंको भी स्वतन्त्रता दी जाय। अमरीकामें राष्ट्रपति आइजनहावरका रिपब्लिकन दल सीनेट और कांग्रेसमें अल्पमतमें रह गया है और डेमोक्रेटिक दलने काफ़ी संख्यामें बहुमत प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार राष्ट्रपति आइजनहावरको अपने शेष प्रशासनकालमें अड़चनें ही पड़ेंगी।

बोली और भाषा

गत मास एक विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके अध्यक्षने ब्रजभाषाके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए एक विद्यापीठमें कहा कि ब्रजभाषाको अधिक-से-अधिक उपभाषा कह सकते हैं। हमें यह भी मालूम है कि कई महानुभाव ब्रजभाषाको एक बोली कहते हैं, भाषा नहीं। इस विषयमें हमें सबसे पहले इस बातपर विचार करना है कि बोली और भाषामें भेद क्या है? यदि पाठक बोली और भाषाके विषय में तात्विक दृष्टिसे विचार करें, तो यह कहना पड़ेगा कि बोली उसे कहते हैं, जिसका कोई लिखित अथवा स्थायी साहित्य न हो। बोलचाल ही के लिए जो माध्यम हो, उसे बोली कहते हैं; पर जिसका गम्भीर और स्थायी साहित्य हो, वह भाषा हुई। हिन्दी-साहित्यसे यदि ब्रजभाषाको निकाल दिया जाय, तो हिन्दी-साहित्य कंगाल हो जायगा? सूर, मीरा, रसखान, देव, बिहारी तथा मतिराम आदिके निकल जानेसे कितनी महत्वपूर्ण चीजें हमारे पास रह जायेंगी। हम उन कठमुल्लोंमें से नहीं हैं, जो ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, मैथिली अथवा भोजपुरीमें पाठ्य-पुस्तकें लिखवानेके पक्षपाती हों। यह काम तो अब राष्ट्रभाषाके खड़ीबोलीके रूपमें ही होना चाहिए। हम यह भी स्पष्ट कर दें कि ब्रजभाषाके भक्त और ब्रजवासी होते हुए भी हमें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि न तो वर्तमान ब्रज रहेगा और न बोलीकी ब्रजभाषा। रेगिस्तान की लपलपाती जिह्वा बचे-खुचे ब्रजको चाट जायेगी। ब्रज-भाषा बोलनेवालोंकी संख्या प्रतिदिन कम होती जा रही है, वैसे हिन्दी-साहित्यसे ब्रजभाषाको कोई मेट नहीं सकता। ब्रजभाषा तो केवल गवेषणा, शोधकार्य और आध्यात्मिक विकासके लिए ही रह जायगी। समयके प्रवाहमें बड़े उलट-फेर होते हैं; पर हम यह माननेको तैयार नहीं कि ब्रजभाषा एक बोली है। इस समय तक वह एक सजीव और मँजी हुई भाषा है, कोरी बोली या उपभाषा नहीं।

श्री वृन्दावनलालजीको डी० लिट्० की उपाधि

गत २२ नवम्बरको आगरा-विश्वविद्यालयने अपने दीक्षान्त समारोहमें हिन्दी-साहित्यके प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्री वृन्दावन-लाल वर्माको ऑनरेरी डी० लिट्० की उपाधिसे विभूषित किया। वर्माजीसे हमारा गत ३८ वर्षोंसे घनिष्ट सम्बन्ध है। आगरा-विश्वविद्यालयने वर्माजीको डी० लिट्० की उपाधि देकर अपने-आपको गौरवान्वित किया है। आगरा-विश्वविद्यालयके उपकुलपतिने एक सार्वजनिक समारोहमें बताया कि वर्माजीको डी० लिट्० देनेमें यूनिवर्सिटीके किसी अधिकारीका कोई मतभेद न था। यह हम मानते हैं कि भारतीय विश्वविद्यालय और विशेषकर आगरा-विश्वविद्यालय अपनी स्थिति और आवश्यकताके अनुसार ऐसी उपाधियोंका वितरण करते हैं; पर वर्माजीको उपाधि देकर आगरा-विश्व-विद्यालयने बड़ी समझदारीका काम किया है। वर्माजीने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं; पर डी० लिट्० देने अथवा हिन्दी-साहित्यमें उन्हें अमर करनेके लिए 'गढ़कुण्डेश्वर' और 'झाँसी की रानी' ही काफ़ी हैं। वर्माजीने हिन्दी-साहित्यके भंडारको नाटकों और कहानियोंसे भरा है। वर्माजीका व्यक्तित्व बड़ा

सजीव है और हमें आशा है कि वे हिन्दी-साहित्यको कुछ ऐसी बढ़िया पुस्तकें देंगे, जिनको देकर हम अन्य भाषाभाषियों से सगर्व कह सकें कि क्या उनके साहित्यमें उस कोटिकी कोई पुस्तक है ?

बोरिस पास्तेर्नाकको नोबल पुरस्कार

पाठक जानते हैं कि स्वीडनकी साहित्यिक कमेटी द्वारा प्रतिवर्ष विज्ञान, औषधि, शान्ति और साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तकपर लगभग सवा लाख रुपयेका पुरस्कार दिया जाता है। पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरको साहित्यका नोबल प्राइज़ मिला था। पर्ल बककी 'गुड अर्थ' पुस्तकपर भी नोबल पुरस्कार मिला था। इसी प्रकार प्रतिवर्ष विश्वकी किसी उच्च कृतिपर यह पुरस्कार दिया जाता है। सन् १९५८ का साहित्य-सम्बन्धी नोबल पुरस्कार स्वीडनकी अकाडमी द्वारा रूसके वयोवृद्ध कवि और उपन्यास-कार श्री बोरिस पास्तेर्नाकको उनकी पुस्तक 'डा० जिगावो' पर दिया गया। अपनी पुस्तकके पुरस्कृत होनेका समाचार पाकर श्री बोरिस पास्तेर्नाकको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उसे लेनेके लिए उन्होंने कृतज्ञता प्रगट की। पर कुछ ही दिन बाद रूसी कम्यूनिस्ट लेखकों और वहांके पत्रोंने श्री बोरिस पास्तेर्नाकके विरुद्ध आग उगलनी शुरू की और उनको रूसी लेखक-संघसे निष्कासित कर दिया गया। एक तहलका मचा कि बोरिस पास्तेर्नाकका पुरस्कार पश्चिमी राष्ट्रोंकी एक राजनीतिक चाल है, क्योंकि 'डा० जिगावो' में रूसकी राज्यक्रांति तथा सोवियत जीवनके विरुद्ध प्रोपैगैंडा है। परेशान होकर वृद्ध पास्तेर्नाकने रूसी प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेवको पत्र लिखकर क्षमा-याचना की कि उनसे गलती हो गई है, वे रूस छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकते, अतः नोबल पुरस्कार वे नहीं लेंगे। बूढ़े साहित्यिकने स्वीडनको तार भी दे दिया कि पुरस्कार लेनेमें वे असमर्थ हैं; पर उनका विचार एकाडमी का निरादर करना नहीं है। असलमें पास्तेर्नाक शुद्ध साहित्यिककी दृष्टिसे किसी वादसे बँधे हुए नहीं हैं। हमने उस पुरस्कृत पुस्तकके सारको समाचारपत्रोंमें पढ़ा, जिससे प्रतीत होता है कि पास्तेर्नाक साधु स्वभावके ईसाई हैं। मानवताके प्रति उनका अगाध अनुराग है। हाँ, रूसी राज्यक्रांतिकी उसमें शिष्ट आलोचना है। यह ठीक है कि श्री पास्तेर्नाकने पुरस्कार लेनेसे इनकार कर दिया है; पर अपनी पुस्तकमें वर्णित भावनाका कोई विरोध नहीं किया। इस प्रकार उनकी आत्माने कम्यूनिस्ट प्रोपैगैंडाके विरुद्ध आत्म-समर्पण नहीं किया। इस विषयमें हमने २५ नवम्बर १९५८ की 'सोवियत भूमि' पत्रिकामें 'बोरिस पास्तेर्नाकको नोबल पुरस्कार देनेके सम्बन्धमें' शीर्षक लेख पढ़ा। स्थाना-भावके कारण उसे हम यहाँ उद्धृत नहीं कर रहे; पर स्पष्ट रूपसे कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त लेखमें पुरस्कार-सम्बन्धी अर्थात् पुरस्कारके विरोधमें जो दलीलें दी गई हैं, वे बड़ी लचर हैं। हम न तो पाश्चात्य राष्ट्रोंके हिमायती हैं, न रूसके विरोधी; पर हम देखते हैं कि यदि साहित्यको राजनीतिके हंटरसे हाँका जायगा, तो मानसिक दासताका प्रोपैगैण्डा ही हो सकेगा। हम मानते हैं कि नोबल पुरस्कार देनेमें राज-नैतिक रूप आ जाता है, उदाहरणके लिए 'गीतांजलि' पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरको १९०२ के करीब ही पुरस्कार मिल जाना चाहिए था। लार्ड कर्जनने यह बात पसन्द न की कि गुलाम भारतके एक विश्वविख्यात कविको नोबल पुरस्कार दिया जाय। यह बात हमें श्रद्धेय आचार्य क्षिति-मोहन सेनने बताई थी; पर आखिर वह कब तक टाली जाती। साथ ही कई विदेशियोंने यह प्रयत्न किया कि शांतिका नोबल पुरस्कार महात्मा गांधीको दिया जाय; पर स्वीडन एकाडमी ऐसा न कर सकी। फिर भी इसमें लड़ाई की क्या बात है। पुरस्कार न मिलनेसे महात्मा गांधीका महत्व तो घटा नहीं। पुरस्कार मिलनेपर उनकी शांति-सेवायें रुपयोंमें आँकी जातीं और यदि वे उस पुरस्कारको पाते भी, तो क्या एक पैसा भी उसमें से लेते।

बोरिस पास्तेर्नाकने पुरस्कार लेनेसे जो बादमें इनकार किया, वह रूसी सरकारकी संकीर्ण मनोवृत्तिकी द्योतक है, जो मुस्लिम लीगकी महात्मा गांधीके प्रति थी। स्व० मौलाना शौकत अलीने एक बार कहा था कि खराबसे खराब मुसलमान महात्मा गांधीसे इसलिए अच्छा है, क्योंकि वह मुसलमान है। आखिर रूसके सह-अस्तित्वके सिद्धांतको पुष्टि श्री पास्तेर्नाकके विरुद्ध प्रोपैगैंडासे तो नहीं होती। रूसमें इतना कठोर नियन्त्रण है कि उससे नैसर्गिक मानसिक विकास कुण्ठित हो जाता है। हमें खुशी है कि बोरिस पास्तेर्नाक पीछे तो हटे; पर आत्म-समर्पण नहीं किया। पर जिस प्रकार नोबल पुरस्कारको राजनीतिक रूप रूसकी ओरसे दिया गया है, वह कोई श्रेयस्कर नहीं है और रूसके विदेशी साहित्यिक मित्रोंको भी उससे क्षोभ ही होता है।

कूर्मांचलके यक्षोंसे

(हिमाचल अभिनन्दन ग्रन्थ)

स्वर्गीय शोभाचन्द्र जोशी

[हमारे अनुरोधपर बन्धुवर स्वर्गीय शोभाचन्द्रजी जोशी ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने एक उपयोगी प्रस्ताव पार्वत्य प्रदेशोंके साहित्यिक महानुभावोंके सम्मुख रखा था। खेद है कि जोशीजीकी अकालमृत्युके कारण यह प्रस्ताव जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह गया।

—बनारसीदास चतुर्वेदी]

कहानीका आरम्भ

हम कदापि नहीं मानते, तो भी लोग कहते ही आते हैं कि कालिदास पहले मूर्ख थे। उनकी स्त्रीने रुष्ट होकर उन्हें बाहर निकाल दिया था। सुहागरातकी कोमल पुष्प-शय्यासे हठात् उठकर वह वाणीकी साधना करनेके लिए रात्रिके अन्धकारमें जाकर खो गया। कई वर्षों बाद लौटा तो शृंगारकी, कविताके अखण्ड यौवन और रोमान्सकी वह कहानी प्रारम्भ हुई, जो कालकी सर्वग्रासिनी शक्तियोंको चुनौती देकर, भागीरथी धाराओंके समान संसारमें आज तक अजस्र गतिसे बहती जा रही है।

घर लौटते ही कविने मान-गर्वितासे किवाड़ खटखटाए। अन्दरसे प्रश्न हुआ—

अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः ?

तो, उत्तरमें कालिदासने प्रश्नके तीनों शब्दोंको उठाकर तीन काव्य बना डाले। सौभाग्य-रात्रिके फूल मुरझाकर सूख चुके थे। पर्य्यंकपर उस दिनकी बिछाई हुई चादर धूलि-धूसरित हो गई थी। नवोढ़ाके शरीरपर विवाहके दिन पहनी हुई साड़ी आज तक मैली और तारतार हो चुकी थी। कोनेमें रखा हुआ दीपक उसी रात्रिसे आज तक अखण्ड जल रहा था। उसे उकसाकर, चिर-पोषिता पत्नीसे कविने अपनी कहानी कहना प्रारम्भ कर दी :—

अस्त्युत्तरस्यां दिसि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः,
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य
स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्डः।

व्यक्तिकी नहीं जन्मभूमिकी

कविको और कुछ नहीं सूझा कि किसका प्रियालाप करे। उमड़ते हृदयके साथ उसने अपनी जन्मभूमिका ही स्तवगान प्रारम्भ कर दिया। हिमालयके ही एक जनपदमें वह उत्पन्न हुआ था। वहाँसे वह क्यों चला आया, इस प्रश्नपर इतिहासज्ञ अपनी खोपड़ियाँ लड़ा-लड़ाकर थक चुके हैं। 'कुमारसम्भव' में जन्मभूमिका वर्णन करके ही उसे सन्तोष नहीं हुआ। 'मेघदूत' के रूपमें उसने हिमालय-अभिनन्दन-ग्रन्थ ही लिख डाला। 'रघुवंश' में भी उसने दिलीपको नन्दिनीके पीछे-पीछे 'गौरीगुरु पर्वतराजकी उपत्यकाओंमें भटकाया। लगता है मानों सोते-जागते, चलते-फिरते कवि-हृदयमें सम्राटके जन्मभूमिकी ममता विस्मृत नहीं होती थी।

अधूरी कहानी

कालिदास कदाचित् फिर हिमालय नहीं जा सके। उस दिन शयनकक्षकी देहलीपर उनकी जो कहानी प्रारम्भ हुई थी, वह आज भी अधूरी है। वह मानों महाकालकी तरंगों पर निरन्तर प्रतिध्वनित होती हुई, पहाड़के उन सैकड़ों-हजारों कलमधारी कवियों और लेखकोंको आज चुनौती दे रही है, जो जन्मभूमिसे विमुक्त होकर लखनऊ, इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ताकी ग्रीष्म-संतप्त धूलि-धूसरित गलियोंमें उदर-पोषणके लिए अपने आपको भूले हुए-से जीवन-यापन कर रहे हैं।

कूर्मांचल-जनपदने भारतवर्षको बड़ी-बड़ी भेंटें दी हैं। हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमेंसे एक वहाँ उत्पन्न हुआ। आधुनिक राष्ट्रनीतिका माननीय पण्डित उसी जनपदकी सन्तान है। आनेवाले युगका एक चमचमाता रत्न कूर्मांचलकी ही खानोंसे निकला है। उस जनपदका कोई विद्वान प्रयागके 'संगम' पर बैठकर सरस्वतीकी साधना कर रहा है कोई लखनऊमें हिन्दीका अध्यक्ष बना हुआ है, और कोई देहरादूनमें 'विद्यापीठ' की स्थापना करके ज्ञानका प्रसार कर रहा है। कूर्मांचलकी ये शक्तियाँ मूलच्छिन्न-सी होकर बिखरी हुई हैं। ये उस देशके ध्वनिवाहक यन्त्र हैं और सुषुप्त-से पड़े हुए हैं। पहाड़से प्रतिवर्ष सैकड़ोंकी संख्यामें जो लोग जीविकोपार्जनके लिए बाहर निकल पड़ते हैं, जन्मभूमिके प्रति उनकी मूक ममताको यदि कोई शब्द प्रदान कर सकता है तो ये ही लोग।

बड़े-बड़े प्रश्न

कूर्मांचल जनपदमें पद-पदपर बिखरी हुई सौंदर्य राशिको मूर्तिरूप कौन देगा ? वहाँकी अपढ़ असंस्कृत जनताके कण्ठसे प्रामगीतोंसे रूपमें नित्यप्रति जो कविता फूट-फूट पड़ती है, उसे आधुनिकताके नाशकारी प्रभावसे कौन बचाएगा ? उस जनपदके दिवंगत कलाकारोंका श्राद्ध आखिर कब होगा और कौन उनका तर्पण करेगा ? कविवर गुमानी पन्त, चित्रकार मोलाराम, विद्वान आलोचक पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, अकाल मृत्युग्रस्त कवि चन्द्रकुंवर बर्त्वाल इत्यादिकी उपेक्षा कब तक होती रहेगी ? बापूने जहाँ जाकर अपने जीवनके सिद्धांतों को 'अनासक्ति योग' का मूर्तरूप दिया, उस भूमिका अभिनन्दन कैसे होगा ? इन बड़े-बड़े प्रश्नोंकी अब तो उपेक्षा की ही नहीं जा सकती।

जनपदीय अभिनन्दन

हिन्दीमें पिछले दिनों अभिनन्दन-ग्रन्थोंकी एक प्रकार से बाढ़-सी आ गई है। बड़े-बड़े नामी नश्वर मनुष्योंको लेकर लोगोंने समय और कलमका दुरुपयोग किया है। कौन-सी अमरता उन्हें मिल गई ? ईमिल सुडविगने नील नदीकी कहानी लिखी। जब तक मनुष्य-जाति रहेगी, उसका नाम मर नहीं सकता। भारतवर्षमें आज तक किसीने गंगा, यमुना अथवा वेत्रवतीकी जीवनी लिखनेका प्रयास किया ? लोग असंख्यों राजनीतिक प्रान्त बनाकर मातृभूमिको नोंच खाना चाहते हैं। किन्तु जिसने उन्हें जन्म दिया, स्वर्गादपि गरीयसी उस जन्मभूमिका अभिनन्दन करनेकी सन्मति किसीको नहीं उपजती। आन्ध्रवाले निलगिरि, मलय और सह्याद्रिकी कहानी लिखें, विन्ध्य-प्रान्तके लोग हिमालयके भी अग्रज विन्ध्याचलकी स्तवगाथा लिख डालें और कूर्मांचल के पुत्र अखण्ड सौंदर्यशाली अपने जनपदका अभिनन्दन ग्रन्थ बना डालें।

हृदयकी बात

हमारी यह अपील कूर्मांचलके राजनीतिज्ञोंसे नहीं है। उनके कानों तक हमारा यह आमन्त्रण पहुंचेगा ही नहीं। यह हृदयकी वाणी है, जिसे हृदय ही समझ सकता है। आज कूर्मांचलके वे शताधिक यक्ष—बीसवीं सदीमें उन्हें चाहे जो उपनाम प्राप्त हो गये हों, जोशी, पन्त, पाण्डे, चन्देला, बहुगुणा इत्यादि—जिन्हें कालिदासकी कलमवाली परम्परा प्राप्त हुई है, जिन्हें उस कवि-कुल-शिरोमणिके गीतोंमें अपनी जन्मभूमिका अमर स्तोत्र पढ़नेको मिला है, वे सहृदय व्यक्ति इस अपीलको समझ सकते हैं :—

यत्रोन्मत्तभ्रमर मुखरा पादपा नित्यपुष्पाः
हंस श्रेणी रचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो—
नित्य भास्वत्कलापा,
नित्यज्योत्स्ना प्रतिहत तमो
वृत्तिरम्या प्रदोषाः।

जिनके कान हैं—संवेदनशील हृदय हैं—जिन्हें अपनी जन्मभूमिसे प्रेम है और पृथ्वीसे नियुक्त पृथ्वीपुत्रकी पीड़ा समझनेकी क्षमता है, वे उस कविके मर्म तक पहुंच पाते हैं। वियोगी यक्षोंकी परम्परा अभी नष्ट नहीं हो सकी है, बल्कि कालके परिवर्तनके साथ-ही-साथ उनकी संख्या में वृद्धि होती जा रही है। कालिदासका यक्ष आज भी चिरंतन विरहकी यन्त्रणामें रामगिरिकी शिलाओंपर सिर पटक-पटककर रो रहा है। भावनारूपिणी यक्षिणी आज भी हिमालयकी उपत्यकाओंमें भटकती हुई उपालम्भके गीत गुनगुनाती रहती है।

आशीर्वाद-याचना

कूर्मांचलका एक निम्नातिनिम्न पुत्र होनेके नाते इन पंक्तियोंका लेखक आज, कदाचित तीसरी बार यह अपील कर रहा है। वह चाहता है कि अपने जीवनमें जन्मभूमि को एक 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' समर्पित करे। उसे इस कार्यमें कूर्मांचलके प्रातःस्मरणीय कवियों, साहित्यिकों और कलाकारों के आशीर्वादकी आवश्यकता है। रुपया-पैसा वह नहीं चाहता। वह सक्रिय सहायता चाहता है, लेखों, ग्राम-गीतों के संकलनों, प्राकृतिक दृश्योंके विचित्र विवरणों, दिवंगत कलाकारोंकी रचनाओं और संस्मरणोंके रूपमें।

इसके अतिरिक्त शिकार खेलनेके लिए गढ़वाल जानेवाले पत्रकारों, 'कौसानी' के रूपमें 'यह नई धरा, आकाश नया वह क्या स्वर्ग ? प्राप्त करनेवाले और मेरी जननीके हिम-किरीट' कहकर उसे जगानेवाले कवियोंसे भी यह प्रार्थना है कि वे अपनी पिछली रचनाओंका उपयोग हमें करने दें और नई कृतियों द्वारा हमारा उत्साह बढ़ायें।

निश्चय है कि इस तीसरी बार यह प्रयत्न यों ही नहीं छोड़ दिया जायगा। फिर भी अपनी असहायताका पुनः स्मरण करते हुए, जिसका पवित्र नाम लेकर इस अपीलका प्रारम्भ किया गया था, उसी कविके शब्दोंमें इसका लेखक प्रत्येक पाठकसे याचना करता है :—

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

पतित पावन ईसा मसीह

फूल कुमारी

युग बीत गये, आजसे प्रायः दो हजार वर्ष पूर्वकी बात है कि यरूसलमके निकट बेथलहम ग्राममें एक बढ़ईके घर एक बालकका जन्म हुआ। जिस प्रकार हमारे यहाँ सीता जमीनसे निकली मानी जाती हैं अथवा हनुमानजीका जन्म पवन देवकी कृपासे माना जाता है, उसी प्रकार ईसाइयोंमें भी मान्यता है कि बढ़ईकी पत्नी मेरीकी कोखसे उत्पन्न पुत्र भी प्रत्यक्ष परमेश्वरका प्रसाद है, यद्यपि ईसाके समकालीन उसे जोसफ और मेरीका ही पुत्र मानते रहे हैं। बालकका नाम रखा गया जीसस, जो बादमें ईसा कहलाए। इस बालकने अपने जीवनमें जो चमत्कार कर दिखाये, जिस भाँति वह विश्वके एक बड़े भागपर शांति, अहिंसा तथा प्रेम का बादल बनकर छा गया, जिसने उस धर्मकी स्थापना की, जिसके अनुयायियोंकी संख्या और विचार दो हजार वर्ष बाद भी सबसे अधिक हैं, उसे यदि अवतारी पुरुष माननेका मोह हो तो स्वाभाविक ही है।

ईसाके जीवनका ठीक-ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता। बाइबल और 'न्यू टैस्टामेंट' (नवसंहिता) के आधारपर जिज्ञासुओंको इतना अवश्य ज्ञात होता है कि उनके पिताका नाम जोसेफ और माताका नाम मेरी था। जन्मसे ही जीससकी रुचि धार्मिक ग्रन्थोंकी टीकाएं एवं भाष्य पढ़नेकी ओर थी। धर्म-शास्त्रके अध्ययनमें भी वह विशेष दिलचस्पी लेते थे। किन्हीं राजनीतिक कारणोंसे उन्हें अपना देश छोड़कर किसी अन्य देशमें एक लम्बे समय तक अज्ञातवासमें रहना पड़ा था। ऐसे किसी देशमें पहुंचनेके बाद वहाँके लोगोंके सम्पर्कमें आकर उन्होंने उनसे धर्म सम्बन्धी विचार-विनिमय किया, जिसके परिणामस्वरूप उनके पूर्व विचारों एवं आचार-व्यवहार में ही नहीं, अपितु उनके संपूर्ण जीवनमें महान परिवर्तन हो गया। तीस वर्षकी अवस्थाके बाद वह मानवको क्षुद्रतासे उठाकर महानकी कोटिमें पहुंचानेवाले सद्गुणों—क्षमा, शान्ति, दया, अहिंसा आदि—से युक्त आचरणका प्रतिपादन एवं प्रचार करने लगे और तत्पश्चात् जैसा कि बाइबिलके आदि भागसे ज्ञात होता है—ईसा "विश्व-त्राता, शांति-दूत, क्षमामूर्ति, महात्मा" पुकारे जाने लगे। किन्तु उनकी यह ख्याति तत्कालीन राजसत्ताकी आंखोंमें बुरी तरहसे खटकी और उनके धर्म प्रचार तथा सिद्धांतोंसे अप्रसन्न होकर सत्ताधारियोंने उन्हें क्रूसपर चढ़ाकर मार डाला।

ईसाके जीवनकी प्रधान घटना यहुन्नासे भेंट थी। यहुन्ना उन इने-गिने यहूदियोंमेंसे थे, जो रोमेन साम्राज्यके नष्ट होने और ईश्वरीय साम्राज्यकी स्थापनाके स्वप्न देखा करते थे। वह जार्डन नदीके तटपर रहते थे और जो भी उनके दर्शनार्थ आते, उनकी ज्ञान-पिपासा बुझाते थे तथा उनको अपने विचारानुकूल बनानेके लिए जार्डन नदीके जलसे दीक्षित करते थे—"प्रायश्चित्त करो, क्योंकि स्वर्गका राज्य निकट है, ईश्वर अपना क्रोध प्रकट करनेवाले हैं।" इसका अर्थ यह था कि बड़ी कठिन परीक्षा होनेवाली है।

यहुन्नाके कैद होनेके बहुत पीछे तक ईसा मृत सागर और जार्डन नदीके निकटवर्ती प्रदेशोंमें उपदेश देते रहे, चालीस दिनों तक वह जूड़ियाके रेगिस्तानमें रहे और वहाँ उन्होंने कठोर अनशन किया। यह जनश्रुति थी कि रेगिस्तानमें भूतों और राक्षसोंका डेरा था। जब ईसा वहाँ रहे तब जनताने नाना प्रकारकी बातें कहनी प्रारम्भ कीं। शैतान के साथ ईसाका घोर संग्राम रहा। अनेक प्रलोभनोंपर ईसाने विजय प्राप्त की और अपनेको मानवताके उद्धारके योग्य बनाया।

यहुन्नासे भेंट होने और रेगिस्तानमें चालीस दिनकी कठोर तपस्याके पश्चात् ईसाने अपनेको पहचाना। उनका व्यक्तित्व निखर आया। वह पूरे क्रान्तिकारी बन गये। उन्होंने संसारका आमूल सुधार करनेका बीड़ा उठाया और जिस आदर्श राज्यकी वह कल्पना किया करते थे, उसको स्थापित करनेका निश्चय किया। वैसे तो यहूदियोंके लिए स्वर्गके राज्यकी कल्पना पूर्व-परिचित थी,परन्तु ईसाने कहा—"संसार में पापका राज्य हो रहा है। शैतान यहाँका राजा है और सब उसीके आज्ञापालनमें रहते हैं। राजा ऋषियोंको मरवा डालते हैं। विद्वान और पुरोहित जैसा कहते हैं, वैसा आचरण नहीं करते। भले लोगोंके लिए रोने-धोनेके अतिरिक्त इस संसारमें कुछ नहीं है। इसलिए यह समाज, यह संसार, भगवान और उसके भक्तोंका शत्रु है। पापका घट भर गया है और वह फूटने ही वाला है। इसके बाद ही ईश्वरके राज्यकी बारी है। यह राज्य एक आकस्मिक घटना की तरह प्रादुर्भूत होगा। दुनिया उलट जायगी। मानवता को पुनर्जीवन प्राप्त होगा।"

ईसाका विश्वास था कि समाज, शासन और व्यक्तिका

पतन ज्ञानके प्रति अरुचि और अविश्वासके कारण होता है। इसलिए उन्होंने अपने शिष्योंमें नियमोंके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनेकी चेष्टा की और उनमें यह चेतना जगानेका प्रयत्न किया कि आगे प्रगति करनेके लिए ज्ञानका होना अति आवश्यक है।

ईसाके चारों ओर पाखण्डका बोलबाला था। धर्मके बाह्यानुष्ठानोंके प्रति लोगोंमें प्रगाढ़ अनुरक्ति थी। व्रतों और उत्सवोंके प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी। तीस वर्षकी आयु तक ईसा पाखण्डियोंके अत्याचारोंको सहते रहे। नरपति हिरोद के अत्याचारोंसे जनता दुखी थी। ईसाने पैदल घूम-घूम कर गरीब जनताके दुःखोंका अनुभव किया। उसमें (जनता में) रोमेनके साम्राज्यसे छुटकारा पानेकी उत्कट अभिलाषा उठ रही थी। अनेक ऋषि प्रकट हो रहे थे और स्वप्न देख रहे थे उन स्वर्ण दिनोंका, जब यरूसलम यहूदी साम्राज्यकी राजधानी बनेगी और उनके राजाकी तूती बोलेगी। ईसासे पहले ही यहुन्नाने जार्डन नदीके किनारे कहना आरम्भ कर दिया था कि स्वर्गका राज्य निकट है।

ईसाने विचार-दृष्टिसे देखा अपने चारों ओरके जीवनके खोखलेपनको, उसकी कालिमाको। उन्होंने अपनेको एकाकी अनुभव किया। उन्हें इच्छा हुई अपने सूने जीवनको प्रचलित धर्मका सहारा देखकर कुछ सांत्वना पानेकी, पर उनकी जीवनी-शक्ति उनसे बोली—"मूर्ख! सहारा मत टटोल, जीवन टटोल। जीवनसे विमुख मत हो, अपने पैरोंपर खड़ा होना सीख, किसीके सहारे नहीं। सहारा टटोलेगा तो जीवन पर्यन्त भयाक्रान्त रहेगा और तेरा सारा जीवन उस भयसे युद्ध करते ही बीतेगा। इस प्रकार तुझे सुख कैसे प्राप्त होगा।" ईसाने सहारों और सांत्वनाओंको ठुकरा दिया और दृढ़ निश्चय किया मानव-गौरवकी रक्षा करनेका। उन्होंने इसी कारण अपनेको मानव-पुत्र कहा।

प्रेमके प्रचारक ईसाकी इच्छा सदैव विचारोंमें क्रांति करनेकी रही। इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर वह छोटे-छोटे कथानकोंका (जिसको अपढ़ लोग बहुत आसानीसे समझ सकते थे) प्रयोग करते थे। वह सदैव व्यक्तिसे अपील करते थे। उन्होंने सदा यही कहा कि मानवकी सच्ची स्वाधीनता आत्मनिर्भरता है। उन्होंने ईश्वरको पिता कह कर सम्बोधित किया। उन्होंने यह भी कहा—"लिखी बात घातक होती है। जितने धार्मिक ग्रंथ हैं, वे सब मानवके लिए अहितकर सिद्ध हो रहे हैं। इन पुस्तकोंने मानवसे स्वतन्त्र विचार करनेके अधिकारको छीन लिया है, मानो वे मानवसे कहती हैं—जो कुछ विचार करना था, वह हममें भरा है। तुम अपना विचार करना छोड़कर हमारे अनुभवको मानो, इसीमें कल्याण है।" ईसाने यह भी कहा—"तुझे केवल प्रेम करनेका अधिकार है, पड़ोसीको अपने समान ही चाहो, स्वार्थ-भावनाका त्याग करो।"

ईसाको फैरिसी वर्गसे चिढ़ थी। वह सदैव छोटी जातिके विनयशील लोगोंमें उपदेश देते थे और फैरिसी जाति इसमें अपना अपमान समझती थी। इसका फल यह हुआ कि फैरिसी ईसाके खूनके प्यासे हो गये। ईसाकी बातें उनके दिलोंपर करारी चोट करती थीं। यदि ईसा गैलिली में ही रहते, तो उनको आंच न आती। परन्तु उन्होंने सोचा, यदि मेरा कार्यक्षेत्र गैलिली तक सीमित रहा, तो मैंने कुछ न किया। इसलिए उन्होंने जूड़िया जाकर काम करनेका निश्चय किया। यह इच्छा ही उनकी मौतका कारण हुई। एक दिन उनके शिष्योंने उनका ध्यान मन्दिरकी भव्य इमारतों और उनकी दीवारोंपर टँगी हुई सुन्दर वस्तुओंकी ओर आकृष्ट किया। ईसाने कहा—"तुम इन इमारतोंकी ओर देखते हो, इनकी एक ईंटका भी पता न रहेगा। देखना ही चाहते हो तो इस गरीब विधवाकी ओर देखो। इसने दानके सन्दूकमें जो पाई डाली है, वही इसका सर्वस्व था। धनिकोंके दानसे इसके दानका अधिक महत्व है।"

यह बात पुरोहितोंको बुरी लगी। एक दिन ईसाने कहा—"हाथोंसे बनाये इस मन्दिरको नष्ट कर दूँगा और बिना हाथोंके तीन दिनके अन्दर दूसरा मन्दिर बना दूँगा।" पुरोहितोंने उनके इस कथनको बुरा बताया और उनपर पत्थर बरसाये।

यरूसलममें कुछ दिन रहकर ईसाने जैरीकोमें जाकियसके यहाँ आतिथ्य स्वीकार किया। जाकियस पापी था। जाकियस ईसाके उपदेश सुनकर उनका अनुयायी बन गया और अपना सारा धन उसने अपाहिजोंको बाँट दिया। यहूदियोंको यह बात खटकी। इसके बाद ही ईसाने एक मृतकको जीवनदान दिया। इन कार्योंसे काई आफा, यरूसलम का प्रधान पुरोहितने भयभीत होकर ईसाको मारनेका अपना आदेश सुना दिया। ईसाको बन्दी करनेका आज्ञापत्र निकला। पासोवरका उत्सव निकट था। सोचा गया कि ईसा इस उत्सवपर अवश्य यरूसलम आएँगे, तभी बन्दी बना लिए जाएँगे। उत्सवके छः दिन पूर्व ईसाने बैथनीमें प्रवेश

किया। वहां लाजेरसके यहां एक दावतका आयोजन किया गया, जहां मेरी मैग्डलोनने ईसाके चरणोंको अपने लम्बे बालोंसे पोंछा। दूसरे दिन ईसा बैथनीसे यरूसलमके लिए रवाना हो गये। वहां उनकी भक्त जनताने उनके लिए विजय प्रवेशका आयोजन किया। सुन्दर वस्त्र सड़कपर बिछा दिए गए। वृक्षोंके हरे पत्तोंसे बन्दनवार द्वारा सड़कोंको सजाया गया। जनताने उन्हें यहूदियोंका राजा कहकर जयजयकार किया। इसपर यहूदी पुरोहितोंको बुरा लगा और उन्होंने ईसासे कहा कि वे अपने अनुयायियोंको ऐसा कहनेसे मना करें। ईसाने उत्तर दिया—"यदि ये चुप हो जायँगे, तो सड़कके रोड़े पुकार उठेंगे।" इस उत्सवपर यरूसलममें बड़ी भारी भीड़ थी। इस विजय प्रवेशसे यहूदी पुरोहितोंमें बहुत जोश फैला। वे क्रोधसे अधीर हो उठे। कई आफाके घर सभा हुई और निश्चय हुआ कि ईसाको बन्दी बनाया जाए। पुरोहितोंके गुमाश्तोंने ईसाके शिष्य जुडास को अपनी ओर रुपयोंका लालच देकर मिला लिया। बन्दी बनाए जानेसे पूर्व ईसाने शिष्योंके साथ व्याल किया। उस समय उन्होंने शिष्योंसे कहा—"तुममें से एक मेरे साथ दगा करेगा।" इसपर जुडासने कहा—"प्रभु, क्या आपका सन्देह मुझपर है?"

जुडासको वह स्थान मालूम था, जहां ईसा प्रार्थना करते थे। उसने पुरोहितोंसे कह दिया—"जिसका मैं चुम्बन करूँ उसीको बन्दी समझना।" रुपयोंके लालचमें जुडासने अपने को सदैवके लिए घृणाका पात्र बना लिया। जब पुरोहित प्रार्थना-स्थलपर पहुंचे तो ईसाके शिष्य भाग खड़े हुए। ईसा बन्दी बना लिए गए और क्रूसपर चढ़ा दिए गए। क्रूसपरसे ईसाने कहा—"परमपिता, इनको क्षमा करना। ये नादान नहीं समझते कि क्या कर रहे हैं!"

दफनानेके तीसरे दिन ईसाकी कब्र खाली मिली। ईसा भी मनुष्य ही थे, पर मनुष्योंमें महान् थे।

उपरोक्त वर्णित घटनाओंसे पता चलता है कि ईसा काफी समय पर्यटनमें रहे और इसी बीच उनका आगमन भारतमें भी हुआ। निकोलस नामक एक रूसी यात्रीने १८९४ ईस्वी में लिखा कि तिब्बतके लामा पश्चिमसे आए और ईसा नामक सन्तसे बहुत प्रभावित थे और भाटे राज्यांतर्गत "हिरिस" नामक बौद्ध मठमें ईसाकी जीवनी विद्यमान थी, जिसका उन्होंने बहुत कष्ट सहन कर अध्ययन किया। इसी प्रकार और भी यत्र-तत्र ग्रंथोंसे यह बात पुष्ट होती है कि ईसा ६३ वर्षकी आयुमें सौदागरोंके काफिलेके साथ सिंध आए और वहांसे जगन्नाथ, राजगृह और बनारसकी ओर बढ़े थे। इन नगरोंके विद्यापीठोंमें उन्होंने भारतीय धर्म-शास्त्रके साथ-साथ बौद्ध धर्मका ज्ञान भी प्राप्त किया था। बौद्ध-भिक्षुओंसे उन्होंने पाली भाषाका सामान्य ज्ञान भी प्राप्त किया था। इसके पश्चात् फ़ारस होते हुए वह जूडिया पहुंचे। उनके उपदेश और धर्म प्रचारसे अप्रसन्न हो वहांके पाइलेट नामक गवर्नरने अपनी आज्ञासे उन्हें प्रथम कारावासका दण्ड दिया और बादमें क्रूसपर चढ़ाकर मरवा डाला। जिस जगह ईसाका मृत शरीर दफनाया गया था, वह तीन दिन बाद खुली पाई गई। ईसाका शव वहांसे गायब हो चुका था।

प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतारहस्य' का हवाला देते हुए श्री केतकर ने लिखा है कि 'गीतारहस्य' के गीता और बाइबिल अध्याय के विवेचनके अन्तर्गत स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने भी नोटेविशको ज्ञात और प्राप्त हुए ईसाके जीवन-चरित्रका और फ्रेंच भाषामें उसका अनुवाद होनेका उल्लेख किया है।

ईसाके दो बार भारत जाने और कश्मीरमें उनकी कब्र होनेकी बातको अपने लेख द्वारा प्रमाणित करनेके उद्देश्यसे श्री केतकरने जिन अन्यान्य ग्रन्थोंको साधन और आधार-स्वरूप अपनाया है, उनमें प्रसिद्ध रूसी चित्रकार निकोलस रोरिककी सन् १९२९ ई० में प्रकाशित पुस्तक 'हार्ट आफ एशिया'का नाम भी उल्लेखनीय है। इस पुस्तकमें लेखकने अपनी यात्राका वर्णन करते हुए कश्मीर, तिब्बत और मध्य एशियामें प्रचलित ईसा सम्बन्धी दन्तकथाओं एवं लोककथाओंका कई जगह उल्लेख किया है। इनके द्वारा रोरिक महोदय भी नवसंहितामें उल्लिखित ईसाके अज्ञातवासका भारतसे सम्बन्ध स्थापित करते दिखाई देते हैं। प्रचलित लोककथाओंको आधार मानकर उन्होंने लिखा है कि ईसाके अज्ञातवासका कुछ भाग श्रीनगर, लेह, काशगर आदि नगरों में व्यतीत हुआ था। उनका कहना है कि ये लोककथाएं भारत, तिब्बत और मध्य-एशियाके प्रायः सभी स्थानोंमें समान रूपसे प्रचलित हैं और उनसे पता चलता है कि सामान्य मृत्युके पश्चात् ईसाको श्रीनगर-स्थित कब्रमें दफनाया गया था, और लेहके बाजारके निकट जो तलैया है, उसके किनारे फिलस्तीन वापस जानेके पूर्व ईसाने अपना प्रवचन सुनाया था। काशगरसे लगभग छः मीलकी दूरीपर ईसाकी माता मेरीकी मिरियम मक्कर नामकी जो कब्र

है, वह भी ईसाके भारत-आगमनका एक प्रमाण प्रस्तुत करती है।

रोरिकके ग्रंथसे केवल यही सिद्ध नहीं होता कि प्रथम बार धर्माभ्यासके लिए और दूसरी बार फिलस्तीनमें रहना कठिन हो जानेके कारण ईसा भारत आए थे, अपितु यह भी भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है कि मार डालनेकी गरजसे ईसाको सूलीपर चढ़ाया तो जरूर गया, पर उसपर उनकी मृत्यु न होनेपर भी उन्हें मृत समझ कर दफना दिया गया था। उनके कुछ शिष्य, जो यह सब रहस्य जानते थे, उन्हें साथ ले गये तथा इलाज और सेवासे उन्हें पुनः अपनी लक्ष्य-सिद्धि एवं उद्देश्य-पूर्तिके लिए ठीक किया।

सन् १९२९ई०में डा० स्पेन्सर लुईकी पुस्तक 'मिस्टिकल लाइफ आफ जीसस' प्रकाशित हुई, जिसमें उपर्युक्त सभी घटनाओंका उल्लेख मिलता है। सत्रहवीं शताब्दीमें फ्रांसिस बर्नियरकी पुस्तक 'मेरी मुगल साम्राज्यकी यात्रा' में भी इन घटनाओंका उल्लेख मिलता है। इसलिए यह तो निर्विवाद है कि ईसा भारतमें आये और यहाँ महात्मा ईसाका पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे स्वागत किया गया।

खुशामद

जयनाथ 'नलिन'

शायद ऐसे भी आत्मतुष्ट और निजमें परिपुष्ट अनेक पुरुष हों, जिन्हें आत्म-प्रशंसाकी दरकार न हो। पर, ऐसे हैं कितने लोग, जो निजमें रस-संचयकी साधनाकर आनन्द-लीन रहनेकी सिद्धि पा चुके हों? आत्म-प्रशंसाकी भूख अधिकतर लोगोंको सताती है। यह भूख चाहे इतनी तिलमिलानी और बौखलानी न हो, जो उसके लिए भोजन न जुटाए, उसे ही वह पागलकी तरह ईंट-पत्थर मारने दौड़े। आत्म-प्रशंसाकी कामना शायद होती सबमें है। थोड़ा-सा अन्तर यह हो भी कि विवेकी आदमीको अपने लोकहितकर कामों या मानसिक और भावात्मक उपलब्धियोंके लिए प्रशंसा सुनकर आत्मतोष हो। कोई अपने अनुदानके बदलेमें प्रशंसा पाकर संकुचित भी होता है या उसे नापसंद करता है; लेकिन ऐसा कोई भी आदमी नहीं, जिसे इन स्थितियोंमें आत्मक्लेश या ग्लानि होती हो। भीतर ही भीतर एक परितोष और सुखानुभूति होती आवश्य है। अनेक आदमी संसारके अभाव-क्षेत्रमें समृद्धिका चाहे एक दाना भी न दें, तो भी वे श्रेय-लाभकी कामना करते हैं। मनुष्यके अहंकी इस भूखको जौहरी पहचानते भी खूब हैं। खुशामद अहंकी इसी भूखके लिए अत्यन्त चटपटा भोजन है।

खुशामद और प्रशंसामें बाहरी रूप-साम्यके कारण, अंतर की लकीर खींचना सरल नहीं। आलम्बन और आश्रय ही इस अन्तरकी सही कसौटी हैं। यदि आलम्बन या जिसकी प्रशंसा मुक्तवाणीसे की जा रही है, उन गुणोंसे सम्पन्न नहीं, वे जनोपकारी कार्य उसने नहीं किये, या इतना प्रतिभाशाली प्रशासक वह नहीं, जितना उसे बताया जा रहा है, तब यह खुशामद या मटियाई कहलायगी। यदि वे गुण आलम्बन में हैं, जिनका बखान हो रहा है, तब उसे प्रशंसा, गुणगानकना, श्रद्धा-प्रकाशन या श्रेय-दान कहा जायगा। आश्रय का प्रयोजन भी इन दोनोंकी सही कसौटी है। यदि उस प्रशंसाके द्वारा आश्रयका स्वार्थ-साधन होता है, तब भी वह खुशामद है। खुशामदका नशा तभी पिलाया जाता है, जब परोक्ष या प्रत्यक्षमें खुशामदी अपना निजी लाभ सिद्ध करना चाहता है।

यथार्थ अभिनन्दन आत्माकी निर्मलता, निश्छलता और हृदयकी पवित्रता और उदार भावुकता है। ऐसी प्रशंसामें आत्माका उल्लास बोलता है। अभिनन्दन और किसीके अलौकिक गुणोंकी स्वीकृतिके पावन भावोच्छ्वास रसमग्न अनुभूतिशील हृदयकी, उस रागात्मक आनन्दवृत्तिका प्रकाशन है, जिसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा स्वार्थ-साधनका नहीं और न ही वह लेन-देनका विनिमय-बैंक है। वह तो निजमें ही एक दिव्य आनन्दानुभूति है।

खुशामदका स्वरूप रागात्मक नहीं, केवल वाचिक है। खुशामद किसी राग या अनुरागसे प्रेरित नहीं। इससे खुशामदीको कोई आत्मतोष या सुख मिलता हो, या किसी वृत्ति का विकास या संकोच होता हो—यह बात नहीं। यह आनन्द-उल्लासका अभिनय अवश्य है। अभिनय-कला-निपुणता ही इसकी सफलता है। ऐसे अनेक चाटुकार देखे जाते हैं, जो अदम्य उत्साह, बेधड़क निर्लज्जता, आदर्श

दीनता, कलापूर्ण वाकचातुरी, अचल श्रद्धा, गद्‌गद भावमग्नता और उच्छलित उल्लासके साथ खुशामद करते नहीं अघाते। और थोड़ी देर बाद ही अपने मित्रोंसे तपाकसे कहते हैं, क्या उल्लू बनाया बेटाको! वीरताका इससे बड़ा आदर्श नहीं मिल सकता।

बात सोलहो आने ठीक। खुशामद करने और उल्लू बनानेमें अन्तर केवल है आन्तरिक भावना, उद्देश्य और अभिव्यंजनाका—अनुभावोंका। उल्लू बनानेमें स्वार्थ-साधन नहीं होता। शुद्ध मनोरंजन, व्यंग्याघात, शैतान प्रतिभा-प्रकाशन, प्रतिशोध या कष्ट पहुंचानेके लिए उल्लू बनाया जाता है। उल्लू बनानेमें अभिमानी अहं भी शायद संतुष्ट होता है। प्रशस्तिकी समान शब्दावली खुशामद, व्यंग और श्रद्धा-प्रकाशनमें प्रयोग की जा सकती है। आलम्बनका व्यक्तित्व और आश्रयकी अन्तःप्रेरणा, भावानुभूति, भावाभिव्यंजना, अनुभाव और उद्देश्यकी भिन्नता एक ही शब्द-समूह को पृथक वर्गमें रख देती है।

खुशामदके ठीक विपरीत मनोवृत्ति है निन्दा। खुशामदमें आलम्बनके अवगुण भी गुणका चोला पहनकर आते हैं, और निन्दामें गुण भी अवगुण बना दिये जाते हैं। आलम्बन के उन गुणोंका प्रशस्ति-गान, जो उसमें हैं नहीं, खुशामद है और आलम्बनके उन अवगुणोंकी भर्त्सना, जो उनमें हैं नहीं निंदा दोनों ही मनोवृत्तियोंकी आत्मा है असत्य और प्रयोजन है स्वार्थ। जब इनमें सत्यका प्रवेश हुआ, ये दोनों ही अपने शुद्ध रूपसे गिरीं। लेकिन निन्दा या चाटुकारिता-रसका आश्रय इतना वाक-चतुर और कला-मर्मज्ञ हो कि सफेद झूठ भी मधुर और प्रिय सत्य बनकर सामने आवे, तभी सफलता। ऐसा न हुआ तो सारा परिश्रम निष्फल।

खुशामद शायद निन्दासे अधिक शुद्ध (अमिश्रित) प्रवृत्ति है। खुशामदीका एक मात्र उद्देश्य है—स्वार्थ। एक व्यक्ति इसलिए किसी प्रशासक, पूँजीपति या अपने अफसरकी खुशामद नहीं करता कि वह अन्य सहकर्मीसे ईर्ष्या करता है या उसे उसकी जगहसे हटवाना चाहता है। उसका उद्देश्य यही होता है कि उसकी सुरक्षा रहे। उसके लड़के या दामादको नौकरी मिल जाय। निन्दा मिश्र प्रवृत्ति है। आलम्बनसे ईर्ष्या-द्वेष या उसे हानि पहुंचानेके विचारसे निंदा अधिक की जाती है, आत्मलाभके लिए बहुत कम। खुशामद अधिक बेधड़क और निर्लज्ज वृत्ति है। आलम्बन तो सामने रहता है। नहीं तो खुशामद स्वरूप ही कैसे पा सकती है—आलम्बनको प्रसन्न करने और उसकी अनुकम्पा पानेके लिए ही तो खुशामद की जाती है। लेकिन निन्दा आलम्बनकी अनुपस्थितिमें अपना कार्य करती है। इसलिए यह चौर-वृत्ति है। खुशामदमें केवल आश्रय और आलम्बनका संबंध है, सामाजिकका नहीं। निन्दामें सामाजिक उपस्थित रहता है, निन्दा-पात्र नहीं। खुशामदीका यह प्रयोजन नहीं होता कि अन्य भी उसके आलम्बनकी खुशामद करें या उसके गुणोंकी चर्चा हो; लेकिन निन्दा यह अवश्य चाहती है कि उसके आलम्बनको समाजसे घृणा, अपमान और भर्त्सना मिले।

कभी-कभी खुशामद निन्दाको सहायताके लिए साथ रखती है, जब उसे मालूम हो कि खुशामदभोगी इससे प्रसन्न होगा या निन्दापात्रसे वह रुष्ट है या जलता है। पर ऐसी निन्दामें उद्देश्य खुशामदका ही होता है, वह शुद्ध निन्दा नहीं। इसी प्रकार निन्दा भी कभी खुशामदसे सहायता लेती है। यदि उसे यह मालूम हो कि सामाजिक अपना कमीशन पाकर ही उसकी मदद करेगा।

खुशामदका जन्म अनेक परिस्थितियोंमें होता है। आलम्बनमें खुशामदकी भूख बहुत बढ़ गई हो और वह भूख उसकी निर्बलता बन चुकी हो, साथ ही आश्रय स्वाभिमान-हीन, निर्बल मन, डरपोक, अयोग्य, चालाक हो, तब खुशामद के लिए खुला रास्ता निकलता है। आलम्बन चाहे जितना चाहे, लेकिन खुशामदको आश्रय न मिले, तो खुशामद न जनम सकती है, न पनप ही सकती है। खुशामद या आत्म-प्रशंसाकी मांग सामाजिक रूपमें बुरी ही मानी जाती है। तब कितना ही भूखा अफसर हो, अपने लिये खुलकर भोजनकी माँग नहीं कर सकता। खुशामद क्योंकि अपनी सुरक्षाके लिए आश्वासन पानेका प्रार्थनापत्र है, इसलिए अधीन, अयोग्य अधिकारियोंके द्वारा खुशामदका जन्म होता है। अनेक चालाक नौकर मालिकके मर्मपर खुशामदका ऐसा शीतल और नशीला अनुलेप करते हैं कि उनकी अयोग्यता और निकम्मेपनका उसे आभास तक नहीं होने पाता।

आत्म-प्रशंसाकी कामना जब रोगका रूप धारण कर लेती है, तब अनेक सामाजिक अपराधों और अनैतिकताओं की जड़ें जमने लगती हैं। नालायक अधिकृत अफसर उच्चाधिकारीकी यह भूख इतनी बढ़ा देते हैं कि वह सभीसे खुशामदकी आशा बाँधने लगता है। स्वाभिमानी सुयोग्य अधिकृतोंका सम्मान तो खतरेमें पड़ता ही है, विभाग या

संस्थाका कार्य भी गड़बड़में पड़ जाता है। खुशामदी काम इसलिये नहीं करता कि उसका मालिक उससे प्रसन्न है—उसका बालबाँका नहीं हो सकता। अन्य लोगोंके कार्यमें इसलिए शिथिलता आती है कि कर्मचारियोंमें पारस्परिक ईर्ष्या, वैर और संघर्ष आरम्भ हो जाता है। योग्यता और दक्षताके लिए जहाँ मान्यता और श्रेय नहीं, अयोग्यता और कामचोरपनके लिए दण्ड नहीं, तब काम कौन करे।

निन्दा-मिश्रित खुशामदकी एक और स्थिति है, जब इसका उद्देश्य निजी लाभ नहीं, परकी हानि होता है। खुशामदी अपनी वाक-चातुरी, मालिककी प्रशंसा और आत्मदीनता दिखाकर उसे मुग्ध कर लेता है। सत्यासत्यके विवेकहीन अवसरपर अपनी शहदीली वाणीसे वह अपना अर्थ सिद्ध करता है। वैसे अनेक लोग परनिन्दाकी चाटके बड़े शौकीन होते हैं। अनेक व्यक्ति अपने साथियों, पड़ोसियों, उच्चपदाधिकारियोंकी निन्दाकी क्यारीमें अपनी महानता का पौधा पनपता हुआ पाते हैं। लेकिन अकेली निन्दाका वार इतना अचूक नहीं, जितना खुशामद-मिश्रित निन्दाका। इसलिए सहकर्मीको हानि पहुंचानेके लिए भी खुशामद-मिश्रित निन्दासे काम लिया जाता है।

खुशामद और निन्दा दोनों प्रवृत्तियाँ या आदतें आत्मा के पतनकी भूमिका है। इष्टके अयथार्थ महत्वकी स्वीकृति नहीं, केवल बखान ही इसमें रहता है। आलम्बन या इष्टके महत्वके महलको खुशामदी आत्मदैन्य और स्वाभिमानहीनता की नीवोंपर खड़ा करता है, जिससे उसकी ऊँचाई और भी बढ़ जाय। अहंकी खुरेच भी उसपर नहीं लगने देता। सत्यासत्य विवेक, न्यायनिर्पेक्षता, जीहुजूरीका ऐसा मसाला वह उस महलमें लगाता है कि एक इंट भी जुम्बिश न खाए। उस सबल दुर्गमें बैठ स्वामिभक्त चाटुकार परहितसे उदासीन रहकर स्वार्थपर सजग पहरा देता है। स्वार्थ-साधन या स्वामीकी प्रसन्नताके लिए वह पर-अनहित भी बड़े उत्साह और एकनिष्ठतासे करता है। कच्चे खुशामदी भले हो समाज के सामने संकुचित हों, सच्चे खुशामदी कभी लोकलाजकी चिन्ता नहीं करते—वे तो निरन्तर साधनालीन रहते हैं। वे परम भक्त हैं—पक्के बेशर्म हैं।

कुशल दुकानदारके समान खुशामद-फरोश अपने गाहक चटपट तलाश कर लेते हैं। वे इस ताकमें रहते हैं कि किस नेता या पूँजीपतिके तलुए चाटने या सहलानेसे काम बन सकता है। किस गाहकसे चम्पी मालिशके अच्छे दाम उठ सकते हैं। ये खुशामदी वह शानदार और गुदगुदी भरी मक्खन-मालिश करते हैं कि खुशामदभोगीकी चाँद ठण्डी-सुन्न हो जाय और उनकी बुद्धि सत-असतकी पहचान भूल जाय। किसीके दिव्य स्वरूपका अभिनन्दन करना और बात है, किसी भौंडी-कुरूप शक्लपर सुषमाके विविध चमकीले रंग पोतना और बात। यह न समझिए, आजकल जिन अभिनन्दन-ग्रंथों और पत्रोंकी भरमार है, सबमें अभिनन्दित के प्रति अभिनन्दकोंके हृदयकी सच्ची श्रद्धा अभिव्यक्त है या इनमें अभिनन्दकके सही चरित्रकी झाँकी है। हाँ, इनसे यह पता अवश्य चलता है कि वर्तमान जीवनमें खुशामदका महत्व, माँग और वितरण कितना अधिक बढ़ रहा है। ९० प्रतिशत अभिनन्दन-ग्रंथ और पत्र राजनीतिक शक्ति-सम्पन्न या सरकारी अधिकारियोंको भेंट किए जाते हैं। कठिनतासे दस प्रतिशतमें कलाकार, साहित्य-मनिषी, विद्वान, संत सभी आ जाते हैं। जहाँ किसीने राजनीतिक अधिकार पाया, पेशेवर श्रद्धालुओंने अभिनन्दन-ग्रंथ-समिति स्थापित की। फटाफट चंदा होने लगा और दफ्तर खुल गया। बनिये-व्यापारी चंदा न दें तो भी मुश्किल। अभिनन्दनबाजी की ऐसी तलाबेली मचती है, जैसे कहीं बाढ़ आ गई, भूकम्प हो गया, दुर्भिक्ष पड़ गया या महामारी फैल गई हो—रोकथाम चटपट होनी चाहिए। क्या पता, इस ताकमें भी अनेक महाबीर रहते हों; पहले मारे, सो मीर। और यह लज्जानक गौरव शायद हिन्दी-लेखकोंको सबसे अधिक प्राप्त है। सबसे अधिक अभिनन्दन-ग्रंथ हिन्दी-साहित्यकी निधि हैं। राष्ट्र-भाषा सब दिशाओंमें समृद्ध होनी चाहिए न!



फरेबे-आजादी

हफीज जालन्धरी

शेरों को आजादी है आजादी के पाबंद रहें,
जिसको चाहें चीरें फाड़ें खायें पीयें आनन्द रहें।

साँपों को आज़ादी है हर बसते घर में बसने की,
इनके सिरमें ज़हर भी है और आदत भी है डसनेकी।

शाहों[1] को आजादी है आजादी से परवाज[2] करें,
नन्ही मुन्नी चिड़ियों पर जब चाहें मश्के-नाज[3] करें।

पानी में आजादी है घड़ियालों और नहंगों को[4],
जैसे चाहें पालें पोसें अपनी तुन्द[5] उमंगों को।

इन्सान ने भी शोखी सीखी वहशत के इन रंगों से,
शेरों, साँपों, शाहीनों, घड़ियालों और नहंगों से।

इन्साँ भी कुछ शेर हैं बाकी भेड़ों की आबादी है,
भेड़ें सब पाबंद हैं लेकिन शेरों को आजादी है।

शेर के आगे भेड़ें क्या हैं इक मन-भाता खाजा है,
बाकी सारी दुनिया परजा शेर अकेला राजा है।

भेड़ें लातादाद[6] हैं लेकिन सबको जान के लाले हैं,
इनको ये तालीम[7] मिली है भेड़िये ताकत वाले हैं।

मास भी खायें खाल भी नोचें हर दम लागू जानों के,
भेड़ें काटें दौरे-गुलामी[8] बल पर गल्लाबानों के[9]।

शेर हैं दावेदार कि हम से अम्न है इस आबादी का,
भेड़ें जब तक शेर न बन लें नाम न लें आजादीका।

इन्सानों में साँप बहुत हैं कातिल भी जहरीले भी,
इनसे बचना मुश्किल है आजाद भी हैं फुर्तीले भी।

साँप तो बनना मुश्किल है इस खसलत[10] से माजूर[11] हैं हम,
मनतर जानने वालोंकी मोहताजी पर मजबूर हैं हम

शाही भी हैं चिड़ियाँ भी हैं इन्सानोंकी बस्ती में,
उनको नाज बुलंदी पर ये नालाँ[12] अपनी पस्ती[13] में।

शाही को तादीब करो[14] या चिड़ियों की शाहीन करो,
यूं इस बागे-आलम में[15] आजादी की तल्कीन[16] करो।

बहरे-जहाँमें[17] जाहिर-ओ-पिनहाँ[18] इंसानी घड़ियाल भी हैं,
तालिबे-जानो-जिस्म[19] भी हैं शैदा-ए-जाहो माल[20] भी हैं।

पेट फटे पड़ते हैं इनके ये मुंह फाड़े बैठे हैं,
हर बाजार में हर मंडी में झंडे गाड़े बैठे हैं।

इनकी हस्ती से बस्ती है बस्ती कब्रिस्तानों की,
इनकी तोंदें कब्रें हैं इन्सानों के अरमानों की।

ये इन्सानी हस्ती को सोने की मछली जानते हैं,
मछली में भी जान है लेकिन जालिम कब गरदानते हैं[21]

मजदूरी का तजकरा[22] छोड़ो समाये का जिक्र करो,
खून को एक-एक बूंद निचोड़ो इनके पेटकी फिक्र करो।

जायें कहां हर सिम्त[23] खुले हैं मुँह समायादारों के,
इनके मुँह में दाँत नहीं फल हैं खूनी तलवारों के।

खा जाने का कौन-सा गुर है जो इन सबको याद नहीं,
जब तक इनको आजादी है कोई भी आजाद नहीं।

जर का[24] बंदा अक्लो-खिरद[25] पर जितना चाहे नाज करे,
मिट्टी में धंस जाये या बाला-ए-फलक परवाज करे[26]।

इसकी आजादी की बातें सारी झूठी बातें हैं,
खा जाने की तरकीबें हैं पी जाने की घातें हैं।

जब तक ऐसे जानवरों का डर दुनिया पर गालिब है[27],
पहले मुझ से बात करे जो आजादी का तालिब[28] है।

---

(१) बाज पक्षी (२) उड़ान (३) झपटें (४) मगरों को (५) प्रचण्ड (६) असंख्य (७) शिक्षा (८) परतंत्रता-काल (९) भेड़ों के झुंडों के स्वामियों के (१०) आदत, स्वभाव (११) विवश (१२) खिन्न (१३) निचाई, हीनता (१४) शिष्टाचार सिखाओ (१५) संसार में (१६) उपदेश (१७) संसार-रूपी सागर में (१८) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष (१९) जीवन तथा शरीर के इच्छुक (२०) शानशौकत और धन-दौलतके आसक्त या पुजारी (२१) महत्व नहीं देते (२२) चर्चा (२३) ओर (२४) धन का (२५) बुद्धि पर (२६) आकाश में उड़ानें भरे (२७) छाया हुआ है (२८) इच्छुक।

यह कविता हफीज साहबके एक संग्रहसे ली गई है। —सम्पादक

भगवती मीराका सत्याग्रही जीवन

चन्द्रकला मित्तल, एम० ए०

विचार और विश्वासकी गहराइयोंमें अनुभूत एवं उद्घाटित सत्यको व्यावहारिक जीवनमें प्रतिपालित करनेके लिये अहिंसा अर्थात् शेष जगत्के प्रति करुणा एवं मैत्रीका दृष्टिकोण अनिवार्य है। यह तथ्य विश्वविख्यात सत्याग्रही शिव, दधीची, प्रह्लाद, सुकरात, ईसा, मन्सूर, मुहम्मद और गांधीकी जीवन-घटनाओंपरसे सिद्ध होता है। भगवती मीराकी जीवनगाथा इसी कोटिकी है। अपने सत्यरूपी परमेश्वरकी साधनाके लिये उन्होंने जीवन भर बाह्य प्रतिरोध और हिंसाका सामना किया। वे लेश मात्र भी अपने मार्गसे विचलित नहीं हुई और उनका हृदय सदा-सर्वदा विपक्षियोंके लिये दया और करुणासे परिपूर्ण रहा।

भगवती मीरा एक राजपूत नारी थी, जिसकी धमनियों में प्रतिकार, प्रतिशोध और उग्रताका खून बहता था। जिन परिस्थितियोंमें मीराने शांतिपूर्वक कष्ट सहन किया, उन परिस्थितियोंमें राजमहलोंका एक कुटिल षड्यन्त्र रचा जा सकता था एवं एक भयंकर युद्ध लड़ा जा सकता था। तपस्विनी मीराके लिये यह एक अद्वितीय महत्ताकी बात है कि वह वीर क्षत्राणी सारे अन्याय, उत्पीड़न, हिंसा और षड्यन्त्रके बीच वज्रवत् अहिंसापर अडिग रही। उसके मनमें कभी भी उत्पीड़कोंके प्रति रोष या हिंसाका भाव जाग्रत नहीं हुआ और उसने हमेशा उन्हें समझाने-बुझानेकी वृत्ति ही रखी। मीरा हिंसा कर सकती थी, उनसे उसकी अपेक्षा थी, इतिहास उस हिंसाका यशोज्ञान संभवतः आजकी अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रतासे करता। परंतु वैसा हुआ नहीं। यह मीराकी साधनाका सत्याग्रही पक्ष है। यदि हम इस खोजमें उतरें कि श्री मीरा हिंसासे कैसे विरत रहीं, तो हमें सुगमतासे इस रहस्यका पता लग जायगा। मीरा नारी थी और वह भी भक्ति-रसमें बालपनसे डूबी हुई और जन्मसे ही भाव-रस भीनी। उनकी नसोंमें रजोगुण कम और उनके भक्त दादाका सतोगुण अधिक प्रवाहमान था।

नारी-धात्री, धरित्री होती है। वह प्रचंड चंडी भी बन सकती है। लेकिन तब उसमें पुरुषत्व अधिक और नारीत्व कम होता है। नारी तो वही है, जो जगत्को अपनी ओरसे अभयका वरदान दे सके, जिसके हाथोंका स्पर्श आर्त विश्वकी वेदनाका हरण कर सके, जिसके होंठोंकी मुस्कान सिंहोंको नत सिर कर सके और जिसके स्तनोंसे सृष्टिके चैतन्यको रस प्रदान करनेवाले अमृतकी धारा अजस्र बहती हो। श्री मीरा ऐसी नारी थीं, न उनकी आँखोंसे अग्निकी वर्षा हुई, न अश्रुपात। कष्ट आए तो सहज भावसे झेल लिये, न रोष जगा, न असहायताका हीन भाव मनमें आया। उनके वीर हाथोंने कभी खड्ग नहीं उठाया। वे तो सदा आशीर्वादमें ही उठे।

मीरादेवी क्षत्राणी थी। क्षत्राणी धीर होती है, वीर होती है। जो दूसरोंके प्राण ले सके क्षत्रिय वह नहीं। क्षत्रिय तो वह है जो प्राण दे सके। मीराके जीवनकी कहानी उत्सर्ग और बलिदान की गाथा है। वे जीवन भर सहती रहीं, धीरता और वीरतासे। उनके पाँव कभी भी डगमगाये नहीं और वे निरंतर अपनी धारणओं और विश्वासोंमें आगे ही बढ़ीं। इतनी आगे कि वे उसमें समा गईं जिसके लिये उन्होंने सब कुछ सहा।

भगवती मीराके पदोंमें उनके सत्याग्रही जीवनकी झाँकियाँ यत्र-तत्र मिलती हैं। उन्होंने अनेक संवादोंको पद्यबद्ध किया है, उनसे हमें वास्तविक स्थितिका ज्ञान होता है।

भगवती मीरा और माँकी सीख

श्री मीरा अपनी माँको कहती है—"माई म्हांने सुपनेमें परण गया जगदीश"—हे माँ, स्वप्नमें कृष्ण मुझे ब्याह कर ले गया है। माँ अपनी बच्चीको इस भोली बातको सुनकर कहती है—"गैली दीखे मीरां बावली, सुपनो आल जंजाल"—मीरा, तू पगली हो गई दीखती है, अरी स्वप्न तो झूठ जंजाल होता है। इसपर भगवती मीरा अपनी आँखोंसे देखे अपने विवाहका वर्णन करती है :—

म्हाई म्हांने सपनेमें परण गया गोपाल।
राती पीली चुनडो ओढ़ी, मेंहदो हाथ रसाल।
कोई औरको वरूं भांवरी, म्हांके जग जंजाल॥
अंग-अंग हल्दीमें करी जी, सूधे भीज्यां गात।
माई म्हांने सुपनेमें परण गया दीनानाथ॥
छप्पन करोड़ जहाँ जान पधारे, दुलहो श्री भगवान।
सुपनेमें तोरण बांधियो जी, सुपनेमें आई जान॥

मीरांने गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनमके भाग।
सुपनेमें म्हांने परण गया जी, हो गयो अचल सुहाग॥

मीरा देवीके लिये यह संसार जंजाल हो गया है, उनके विवाहमें छप्पन करोड़ बराती पधारे, अब वे और किसीको कैसे वर सकती है?

माँ मीराको साधुओंके पास जानेसे रोकती है। इसपर भगवती माँसे प्रार्थना करती हैं—"तू मत बरजै माइडी, साधां दरसन जाती।" —हे माँ, तू मुझे साधुओंके दर्शनके लिये जानेसे मत रोक। माँको मीराकी स्थितिसे बड़ी बेचैनी हो रही है और वह पूछती है—

माई कहै सुन धीहड़ी, कहै गुण फूली।
लोक सोवै सुख नींदड़ी, यूं क्यूं रैणज मूली॥

माता कहती है—हे बेटी, सुन, तू किस गुणपर रीझ रही है? दुनिया सुखकी नींद सो रही है, तू क्यों रातमें जाग रही है।

बेटी उत्तर देती है—

गैली दुनियाँ बावली, ज्यूं कूं राम न भावै।
ज्यां के हिरदे हरि बसै, त्यां कूं नींद न आवै॥

दुनिया तो पागल हो गयी जिसको राम नहीं सुहाता है। जिसके हृदयमें हरि बसता है, उसको नींद नहीं आती।

भगवान कृष्णने गीतामें कहा ही है—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

ज्ञानी भक्त उस रातमें जगता ही है, जिसमें सारा जगत बेखबर होकर सोता है।

मीराकी श्वसुराल

भगवती मीराको अपने पिताके घर कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा। उनका सारा परिवार भक्ति-रसमें ओत-प्रोत था और फिर बच्ची समझकर कोई उनकी उपासनाकी ओर अधिक ध्यान भी नहीं देता था। उनके जीवनका संघर्ष उस समय प्रारंभ हुआ, जब वे महाराणा संग्राम सिंहके ज्येष्ठ पुत्र और युवराज श्री भोजराजके साथ परिणीत होकर अपनी श्वसुरालमें आईं। कुंवर भोजराज अपने यशस्वी पिताके जीवनकालमें ही स्वर्गवासी हो गये और भगवतीको लौकिक वैधव्यकी प्राप्ति हुई। महाराणा संग्राम सिंह अपनी ज्येष्ठ पुत्र-वधूपर बहुत स्नेह रखते थे और उसकी कृष्ण-भक्तिसे बहुत संतुष्ट थे। महाराणा संग्राम सिंहके चार पुत्र थे—(१) श्री भोजराज, (२) श्री रत्नसिंह, (३) श्री विक्रमादित्य, (४) श्री उदयसिंह। महाराणा संग्रामसिंहजीकी मृत्युके पश्चात् रत्नसिंहने चार वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद विक्रमादित्यको महाराणा पद प्राप्त हुआ। इसकी आयु इस समय लगभग १९ वर्षकी थी। उदयसिंह इनसे छोटे थे, जिनके पुत्र महाराणा प्रताप भारतीय इतिहासके वीर शिरोमणि हुए। इन चारों भाइयोंकी एक बहिन ऊदाबाई थी, जो अपने विवाहके पश्चात् भी उनके पास ही रहती थी।

श्री मीराका जीवन-संघर्ष महाराणा रत्नसिंहकी मृत्युके पश्चात् महाराणा विक्रमके राजतिलकके समयसे आरंभ होता है। उनकी ननद ऊदाबाईको उनसे बहुत द्वेष था, उसका एक मुख्य कारण यह भी था कि श्री मीरा अनन्य रूप और लावण्यसम्पन्ना युवती थी। ऊदाबाई ही राणा विक्रमको मीरादेवीके विरुद्ध भड़काया करती थी। भगवतीके पदोंमें राणा शब्दका उल्लेख इसी राणा विक्रमादित्यके लिए हुआ है। उनके पति श्री भोजराजको कभी वह पद प्राप्त ही नहीं हुआ। उनके साथ कभी भी श्री मीराके जीवनमें कोई अप्रिय प्रसंग नहीं उपस्थित हुआ। वैधव्यकी प्राप्तिके पश्चात् हिन्दू नारीका सम्बन्ध ईश्वरसे ही माना गया है और इस मान्यता के आधारपर श्री मीराको किसी प्रकारका दोष नहीं दिया जा सकता। उनके लिये भगवद्-भक्ति ही एकमात्र जीवन-अवलंबन थी और परिवारके लिए भी उनका भक्तिमय जीवन एक वरदान था। परंतु भक्तिका मार्ग इतना सरल नहीं होता। भगवान भक्तोंको कठिन परिस्थितियोंमें डालकर उन्हें दृढ़ बनाते हैं।

ननद ऊदाबाई और राणा विक्रम

हमारा विचार है कि ऊदाबाईको भी मीराके साथ द्वेष इतना नहीं था, वह वास्तवमें राणा विक्रमकी दूतीका काम करती थी। भगवतीके अनेक पदोंमें ननद भावजका वार्तालाप हुआ है।

छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारों।
रतन जड़ित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारो।
मीराजी थे चलो महलमें, थाने सोगन म्हारी।
—ऊदाबाई

भाव भगत भूषण तजे शील सन्तोष सिणगार।
ओढ़ी चूनर प्रेमकी, गिरधरजी भरतार॥
ऊदाबाई मन समझ, जाओ अपने धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम॥
—मीराबाई

एक दूसरे स्थानपर ऊदाबाई मीराबाईको समझाती है—

(१) थाने बरज-बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राजे रीस किया थां ऊपर, साधांमें मत जारी॥

(२) भाभी मीरा राणाजी कियो छै थां पर कोप
रतन कचोल विष घोलियो।

—ऊदाबाई

बाई ऊदां घोल्या तो घोलण दो,
कर चरणामृत वाहो म्हे पीवस्यां॥

—मीराबाई

भाभी मीरा देखतडी ही मर जाय,
यो विष कहिये वासिक नागको।

—ऊदाबाई

बाई ऊदां नहीं म्हारे माय न बाप,
अमर डाली धरती झेलिया।

—मीराबाई

भाभी मीरा राणाजो उभाछे थोर द्वार,
पोथी मांगे छे थारे ज्ञान की।

—ऊदाबाई

बाई ऊदां पोथी म्हारे खांडाकी धार,
ज्ञान निभावन राणो है नाहीं।

—मीराबाई

भाभी मीरा राणाजी रो वचन न लोप,
उन रुठ्यां भीड़ी कोउ नाहीं॥

—ऊदाबाई

बाई ऊदां रमापति आवे म्हारे भीड़,
अरज करूं छूँ तासूं बीनती॥

—मीराबाई

जनम-जनम रो पति परमेश्वर,
राणाजी कौन बिचारो

समूचा साहित्य-जगत और इतिहासकार जिस बातको कहनेमें झिझकते रहे, वह यह है कि राणा विक्रम भगवती मीराके रूप-लावण्यपर मोहित था और वह उन्हें रणवासमें रखकर उनके साथ अपनी हीन वासनाओंकी पूर्ति करना चाहता था। भगवतीने अनेक पदोंमें स्पष्ट इसी बातकी ओर संकेत किया है। ऊपर हमने श्री मीराबाईको ऊदाबाईकी सीखका वर्णन किया है:—

रतन जटित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी।
मीराजी थे चलो महलमें, थाने सौगन् म्हारी॥

मीरा तुम राणाके महलमें चलकर गहने पहनो और अपार भोग भोगो, तुम्हें मेरी सौगन्ध है।

श्री मीरा एक पदमें कहती है—

राणाजी कागद भेजियो कोई दियो मीरा ने जाय।
साधांकी संगत छोड़ दो मीरा, बैठो राण्या रैमाय॥

इस पदमें स्पष्ट ही मीरादेवी कहती है कि राणाजीने पत्र भेजकर कहा है कि यह पत्र मीराको ले आकर दे दो और उसमें लिखा है कि मीरा साधुओंकी संगत छोड़कर रणवास (राण्यां) में जाकर बैठो। परन्तु भगवती यह कब स्वीकार कर सकती है ?

कह्यो न मानूँ राणाजीको, देश पति पच हारयो॥

राणा विक्रम मीरा देवीको पत्नी बनाना चाहता है, उसके उत्तरमें भगवती कहती है—

जनम-जनम रो पति परमेश्वर, राणाजी कौन बिचारो।

एक दूसरे पदमें श्री मीरा राणाको कहती है—

तेरा मेरा जियणा, एक कैसे होय राम॥
इसने कहा सुरझावन राणा, तुम जाते उरझाय राम।

यहां मीराबाई राणाको निर्मोहित रहनेकी शिक्षा देती है। इसी प्रकार एक अन्य पदमें श्री मीरा कहती है—

गिरधर म्हारे मन भाया मोरी माँय।
राणूँ जी म्हारे दाय न आवै॥

मेरे मनको तो कृष्ण पसंद आया है, मुझे राणाजी बिल्कुल ही पसंद नहीं आते।

अब नहीं मानूँ राणा थांरी, मैं बर पायो गिरधारी।

राणाके प्रस्तावका मीराबाई क्या उत्तर दें, वे तो कृष्णके प्रेममें मस्त हो रही है।

राणाजी बतलाइया, कछू देणो जवाब।
पण लागो हरि नाम सूं, म्हारे दिन दूनो लाभ॥

राणा स्पष्ट रूपसे मीरा देवीके सामने प्रस्ताव और प्रलोभन देखता है—

काठकी कंठी छोड़ दो मीरो, पहिरो मोतीडारो हारो।
साधां री संगत छोड़ दो, मीरा आधो राज तुमारो॥

इस पद्यमें यह अर्थ स्पष्ट है कि राणा मीराबाईको पटरानी बनाना चाहता है। श्री मीरा इस प्रस्तावका कितना कड़ा उत्तर देती है—

(१) काठकी कंठी नहीं छोहूँ राणा नहीं पहरूं मोतीडारो हारो।
साधांकी संगत नहीं छोहूँ राणा जल जावो राज तुम्हारो॥

(२) म्हारी भोली भाली रो भरतार नहीं कर छांडसी॥
ऊंचा महलां राणा जी सूतां म्हाने हरदम पास बुलावे।
म्हूं मदमाती थांका रंगराती म्हने ई बातां नी भावे॥

इस पदमें मीरा देवीने सारी बात साफ़ कर दी है—ऊंचे महलमें राणाजी सोता है और वह हरदम मुझे पास बुलाता है। मैं तो हे कृष्ण, तेरे रंगमें मस्त हो रही हूं, मुझे ये बातें अर्थात भोग-विलासकी बातें अच्छी नहीं लगती हैं।

सत्याग्रही मीरा

राणाने ऊदाबाईको दूती बनाकर श्री मीराका मन अपनी ओर मोड़ना चाहा। वह इसमें असफल रहा तो उसने स्वयं श्री मीराके सामने प्रेमका प्रस्ताव रखा। भगवतीने उसे ठुकरा दिया, तब विफल होकर राणाने श्री मीरा पर अत्याचार शुरू किये परन्तु मीरा अडिग रहकर प्रह्लादकी भाँति सब कुछ झेलती रहीं। इतना ही नहीं, उनके मनमें राणा के प्रति करुणाका भाव रहा। स्वयं मीरा देवीके पदोंमें अत्याचारका चित्र मिलता है—

(१) विषका प्याला भेजिया राणाजो, पीती जो मर जाती।
कर चरणामृत बाई मीरा पी गई, हो गई चन्द्रकला-सी॥

राणाने ऐसा विषका प्याला भेजा, जिसे जो पीता मर जाता। मीरा उस विषको कृष्णका चरणामृत मानकर पी गई और वह और भी उज्ज्वल चन्द्रमाकी ज्योत्सना-सी निर्मल हो गई।

(२) सांप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय॥

मीराबाई जब नहा-धोकर राणाके भेजे हुए सांपके पिटारेको देखने लगी तो उन्हें शालिग्रामके दर्शन हुए। सर्प को सम्बोधित करके सत्याग्रही मीरा कहती है—

डब्बामें सालगराम बोलत क्यों नहिं यां।
हम बोलत तुम बोलत नहीं, काहेको मौन धरैया॥
यह भवसागर अगम भरो है, काढ़ लेहु गहि बैयाँ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, तुम ही मारे सैयाँ॥

सत्याग्रहीकी निष्ठा ऐसी ही प्रबल होनी चाहिए कि वह सर्वत्र अपने परमेश्वरका दर्शन करे। उसके मनमेंसे शत्रु भावका सम्पूर्ण निरसन हो गया है, इसकी कसौटी ही यह है कि वह निर्भय हो गया है, उसे सर्वत्र मित्र-दर्शन ही होता है।

(३) राणाजी बासो आपियो भूत महलके माय।
भूत पिसाच भाग गये प्रगट भये यदुराय॥

श्री मीराको राणाजीने भूत महलमें निवास दिया है। वहाँसे भूत-पिशाच भाग गये हैं और कृष्ण प्रगट हो गये हैं।

(४) सूली सेज राणाने भेजी, दीज्यो मीरा सुवाय।
सांझ गई मीरा सोवण लागी, मानों फूल बिछाय॥

सत्याग्रही कभी भी दंडसे भयभीत होकर उससे बचनेकी चेष्टा नहीं करता। सुकरात विषका प्याला स्वेच्छासे पी गये, मन्सूर सूलीपर चढ़ गये। उसी प्रकार भगवती मीरा भी राणा की भेजी शूल-सेज (कांटोंकी शैया) पर सो गई, परन्तु वह तो भक्तिमती मीराके लिए पुष्प-शय्या बन गई।

(५) लेई खड्ग राणो कोपियो मीरां अब तेरो राम संभालो।
एक मीरांकी सहस मीरां हुईं कुणी-कुणीने मारो॥

भक्तिका चमत्कार अन्तिम सीमापर ही प्रगट होता है। अग्नि-खंभमेंसे नरसिंहने प्रगट होकर भक्त प्रह्लादकी रक्षा की। इसी प्रकार राणाने जब क्रुद्ध होकर मीरा देवीपर तलवारका वार किया, तो एक मीराके स्थानपर सहस्रों मीरा दीखने लगीं। अब किसे-किसे मारा जाय, इस असमंजसमें पड़कर राणा हैरान हो गया।

स्वयं भगवती मीराके लिये कसौटीकी बेला उपस्थित हो गई और उन्होंने निर्णय कर लिया कि वे स्वदेश त्यागकर चली जायँगी।

इन राणाजीकी मुख नहीं देखूँ, सीसोद्या पसतासी।

इस राणाजीका मुख नहीं देखूँगी, यह सीसोदिया राजा पछतायेगा।

राणाजी रुठ्यो बाँरो देस राख सी।
हरि रुठ्यां किठे जास्यां हो माई॥

सत्याग्रही मीरा सोचती है कि राणा रूठेगा तो अपना देश लेगा, हरि रूठेगा तो कहाँ जाऊंगी।

गढ़ चित्तौड़े ना रहां नहीं रहणका कोग।
बसस्यां रुडी द्वारिका, जहां हरि भगतांको भोग॥

भगवती मीरा चित्तौड़ छोड़कर द्वारिका जानेको उद्यत हो गई है।

कर सूरापण नीसरी म्हारे कुण राणे कुण राव।

और शूरता दिखाकर निकल पड़े, उनके लिए कौन राणा और कौन राव है ?

अत्याचारीकी हितकामना

थांरी मारी ना मरूं, म्हांरो राखण हारो और ॥
राणाजी भी पर कोप्योरे, रती न राख्यो मोर।
ले जासी बैकुंठमें ये तो समझ्यो नहीं सिसोर ॥

श्री मीरा कहती है कि राणा मैं तेरी मारी नहीं मरूंगी, मेरा रक्षक दूसरा ही है। राणाजीको तो मुझपर क्रोध आ गया, तनिक भी दया नहीं रखी। सिसोदिया राणा यह तो समझा नहीं कि मैं उसे बैकुंठ ले जाती।

राठौडारी धीयडी जी, सीसों द्यारे साथ।
ले जासी बैकुंठमें, म्हारी नेक न मानी बात ॥

उनके मनमें राणाके लिए हित-चिंता ही है। इतना सब कुछ अत्याचार सहनेके बाद भी अत्याचारी राणाको बैकुंठ ले जानेकी कामना ही वे करती हैं।

शारदीय सुषमा

रामइक़बालसिंह 'राकेश'

जन-जीवनके क्षितिजांगनमें, दिवस-प्रहरके क्षणमें,
खञ्जरीटके चपल गमनमें, शीतल चन्द्र-किरणमें,
असन-बाणके पुष्प-वसनमें और कमलके वनमें,
वितरण कर लावण्य शरद-ऋतु आई भू-प्रांगणमें।

दिगदिगंतको श्याम बनाकर, गगन-पटलको ढँककर,
सरिता, सर, वापी, तड़ागको नेह-नीरसे भरकर,
तड़ित नाद कर, वृक्ष और पर्वतके ऊपर चलकर,
शिथिल हो गये मद-विहीन गजके समान घन सुन्दर।

अभिषेकित कर दिया इन्द्रने भूको हर्षित होकर,
पका दिया शस्योंको उसने स्वर्ग-सुधा बरसाकर;
हुआ गगनका वर्ण शान पर के कृपाण-सा निर्मल,
बन्द हुआ सरिताओं और प्रपातोंका कोलाहल।

चक्रवाक, कारण्डवको निज गर्जनसे विस्मितकर,
पीते सरिताओंका निर्मल जल हिलोरकर कुंजर;
हतचेतन, मृतप्राय, क्षुधासे विकल भयंकर फणिधर,
निकल रहे अब, बहुत दिनों तक बिलमें रहकर, बाहर।

अलस शिथिल हो गया गयंदोंका इस समय गमन है,
मन्द-मन्द बह रहा पवन है, मुक्त प्रफुल्ल गगन है;
निखिल भुवनके अंतर्मनमें परिवर्तन नूतन है,
क्षण-क्षणमें नव अभिव्यंजन है, अणु-अणुमें जीवन है।

शुभ्र चन्द्र जिसका आनन है, तारागण हैं लोचन,
ज्योतिन है वह शरद यामिनी ज्योत्स्नांशुकसे शोभन।
लाल रंगवाली संध्या है नक्षत्रोंसे शोभित,
इन्द्रनीलमणिके समान अकलुष प्रकाशसे पूरित।

मौन-करधनीको दिखलाया कटिमें जिसने अंकित,
ऐसी सरिता-तरुणीकी गति मन्द हो गई सीमित।
पति-द्वारा उपभुक्त वधू जैसे रति-श्रमसे थककर,
चलती उषःकालमें धीरे-धीरे अलस चरण धर।

स्मर-शरसे पीड़ित, अपने घर आये हुए प्रवासी,
क्रीड़ा करते चक्रवाकके संग हंस कलभाषी।
शरद-सरी करती धीरे-धीरे, निज पुलिन अनावृत,
नव संगमके समय वधू करती ज्यों जघन प्रकाशित।

क्रौंच, कोक, नीवार, सुपुष्पित काश-वसनसे भूषित,
पुष्करिणीका मुख प्रमदाके मुख-सा है अकलंकित।
श्वेत, कृष्ण, गोधूम वर्ण, मेघोंके जलसे शीतल,
लिये हुए दुर्लंघ्य शिखर पर्वतके लगते निर्मल।

पके धानकी बालोंको खाकर सारसकी पाँती,
गहन नील अम्बरके पथमें बड़े वेगसे जाती।
अंतरिक्षमें जैसे प्रबल प्रभंजनसे आन्दोलित,
गया उड़ाया हो प्रसूनका हार यत्नसे गुम्फित।

कितने रूप, वर्ण कितने मकरन्द, रागसे रंजित,
क्रीड़ा करती शरद प्रकृति कितने भंगोंमें व्यंजित।
पर क्या उसकी अन्तरंग छविको रंगोंसे दीपित,
अवलोका भू-मानवने निज मनश्चक्षुसे ज्योतित ?

भार-रूप हो वर्त्तमानके लिए अतीत न किंचित्,
भू-उपवनके सप्तपर्ण हों नव भावोंसे पुष्पित।
करें आत्म-चैतन्य प्राप्त नर कर्म-सत्यसे वंचित,
भूति और श्रीसे जीवनका स्वर्ण-कलश हो मंडित।

(वाल्मीकिके शरद्-वर्णनके भावोंसे)

समस्याका समाधान

श्री चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

इस समय हमारे देशमें अनेक कल्याणकारी योजनायें चल रही हैं और आए दिन नई-नई योजनायें बनती जा रही हैं। सारा देश नई-नई योजनाओंसे आच्छादित-सा हो गया है। देशके सर्वतोमुखी विकाससे ही जनताको खुशहाल बनाया जा सकता है और इसलिए आर्थिक मामलोंमें पिछड़े भारतको योजनाओं द्वारा समुन्नत बनानेकी बात सोचना स्वाभाविक ही है। कृषि-विकास, उद्योग-विकास, ग्रामोद्योग-विकास, अंचल-विकास—कहाँ तक गिनाया जाय, नगर-नगर, गाँव-गाँव, यहाँ तक कि खेत-खेतमें विकास-योजनाओंका जाल बिछाया जा रहा है। कुछ बड़ी-बड़ी योजनायें कार्यान्वित हो चुकी हैं, कुछ हो रही हैं और कुछ होनेको हैं। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन योजनाओंके फलस्वरूप देशकी काया पलट रही है और देश औद्योगिक विकासकी ओर तेजीसे बढ़ रहा है। खेतीकी पैदावार बढ़ रही है और आँकड़ोंसे पता चलता है कि व्यक्तिकी औसत आमदनी भी बढ़ी है और रहन-सहनका स्तर भी ऊँचा उठा है।

जीवन-विकासके दो पहलू हैं—आध्यात्मिक और भौतिक। ये दोनों पहलू एक दूसरेके पृष्ठपोषक हैं। एकके बिना दूसरेका अस्तित्व व्यर्थ ही है। जीवनमें इन दोनोंका सामंजस्य आवश्यक है—नितान्त आवश्यक, अन्यथा जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं। विविध योजनाओंके फलस्वरूप हम भौतिक विकासकी ओर अवश्य डग भर रहे हैं, परन्तु साथ ही आध्यात्मिक विकाससे हम दूर भी होते जा रहे हैं। किसी देशके समाजके लिए और खास तौरपर भारत जैसे देशके लोगोंके लिए यह शुभ लक्षण नहीं हैं। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि संसारमें हमारी चर्चा आध्यात्मिक उन्नतिके कारण थी और साथ ही भौतिक उन्नतिमें भी हम किसीसे पीछे न थे। परन्तु समयने पल्टा खाया और हमारा वह उत्कर्ष सामंजस्य-हीन बन गया और हम बहुत पिछड़ गए। आज समय हमारे अनुकूल है, हमें आगे बढ़नेका मौका मिला है। हमें ध्यान रखना है कि हम जीवन विकासके दोनों पहलुओंमें सामंजस्य रखते हुए प्रगति-पथपर अग्रसर हों, अन्यथा हमारा विकास एकांगी होगा और वह स्थायी न बन सकेगा।

यह तो सभी जानते हैं कि आजादी हासिल करनेके बादसे हमारा बहुत नैतिक पतन हुआ है और होता जा रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थ और अधिकार हमें अन्धा बना रहे हैं। एक ओर हमारा भौतिक विकास और दूसरी ओर यह नैतिक पतन, हमें रुककर कुछ विचार करनेकी चेतावनी दे रहे हैं।

आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या आ खड़ी हुई है इस नैतिक पतनको रोककर आध्यात्मिक और भौतिक विकासमें यथोचित सामंजस्य स्थापित करनेकी। आज देशमें जब इतनी योजनाएँ बन रही हैं, तब क्यों न एक ऐसी योजना भी बनाई जाए, जिससे हमारे विकासमें सन्तुलन स्थापित हो सके, स्थायित्व आ सके और मनुष्यको समाजमें रहनेका पूरा-पूरा लाभ मिल सके।

आजकल देशमें 'ग्रामदान' की बात चल रही है और यह बात चलाई थी श्री विनोबा भावेने। मैसूरके पास यलबलमें एक ग्रामदान-परिषद् हुई थी, जिसमें हमारे राष्ट्रपति, प्रधान-मन्त्री, केन्द्रिय सरकारके प्रमुख मन्त्री, विभिन्न राजनीतिक दलोंके नेता तथा प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता शामिल हुए थे। सबने आचार्य विनोबाजीके ग्रामदान-आन्दोलनका समर्थन किया। ग्रामदान-आन्दोलनका सिर्फ आर्थिक पहलू ही नहीं है, इसका एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक पहलू भी है और वह यह है कि गाँवके सभी लोग अहंकार छोड़कर अपनेको ग्राम-समाजका अंग समझने लगें, व्यक्तिगत स्वार्थ सामूहिक स्वार्थमें बदल जाएं। गाँवका हरेक आदमी गाँवके सुखको अपना सुख, गाँवके दुःखको अपना दुःख, गाँवके लाभको अपना लाभ, गाँवकी खेती और गाँवकी समस्याको अपनी समस्या समझने लगे। ग्रामदानमें ये सब बातें निहित हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थको सामूहिक स्वार्थमें बदलनेकी विशाल योजना है। इसी तरहका विकास हमें सही राह दिखा सकता है।

जब देशके प्रमुख नेताओं, कार्यकर्ताओं और विचारकोंने इस योजनाको कल्याणकारी समझकर स्वीकार कर ही लिया है और भारत-सरकारने भी ग्रामदान अंचलोंमें सामूहिक विकास योजनाओंको कार्यान्वित करनेका निश्चय कर लिया

है, तब क्यों न इसे सही और पूरे तौरपर देशके विकासके लिए कार्यान्वित किया जाय।

ग्रामदानका मूलमन्त्र है व्यक्तिगत सम्पत्तिकी तिलांजली और सामूहिक स्वार्थमें अपने स्वार्थका विलीनीकरण। इस मूलमन्त्रका अनुसरण करते हुए ग्राम-दानके बाद शहर-दान, कारखाना-दान, प्रान्त-दान, सम्पत्ति-दान, बुद्धि-दान, स्वार्थ-दान अर्थात् समाजके लिए सब कुछ दानकी बात आती है और स्थिति यह बन जाती है कि काम करना समाज तथा देशके कल्याणके लिए और सबके साथ दुःख-सुखमें हिस्सा बँटाना। व्यावहारिक रूपमें इसका अर्थ हुआ—व्यक्तिगत सम्पत्तिका खात्मा। व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिए जब होड़ न रहेगी, तब क्यों होगी चोरी, बदमाशी, शरारत, ब्लैक मार्केटिंग, डकैती और तरह-तरहके अनगिनत अपराध। दूधमें पानी मिलाना, घीमें अखाद्य वस्तुएं मिश्रित करना, नकली दवाओंका व्यापारकर समाजका जीवन बर्बाद करना, चोरी-चोरी देशका अहित करना, रिश्वत लेना, रिश्वत देना और दुनिया भरके जो अनगिनत दुष्कर्म हैं, वे सब व्यक्तिगत सम्पत्तिके अर्जनके लिए ही तो किए जाते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्तिकी रक्षाके लिए लाखों व्यक्ति देशकी अदालतों, आफिसों, सचिवालयोंमें नियुक्त हैं। न्याय पाने, न्याय देने, न्याय दिलाने, न्याय पानेमें मदद करने, रेकर्ड आदि तैयार करने और रखनेमें हजारों-लाखोंका श्रम बेकार जाता है—वह श्रम जो देशकी अमूल्य सम्पत्ति है और देशमें सुखकी गंगा बहा सकता है। इतना सब होनेपर भी हम सुखी नहीं हैं। कोई सुखी नहीं है। मैं नकली घी देता हूं, वह नकली दवा देता है। मैं भी मरा और वह भी। इसी तरह हर व्यक्ति एक दूसरेकी व्यक्तिगत सम्पत्तिके प्रलोभनकी कमजोरीका शिकार बन रहा है और फलतः नैतिक स्तर गिरता जा रहा है।

स्पष्ट है कि आज हम जिन सब बुराइयों, दुराचारोंका शिकार बने हुए हैं, उनका मूल है व्यक्तिगत सम्पत्तिका प्रलोभन। हमने देखा कि ग्रामदान-आन्दोलनकी चरम परिणति व्यक्तिगत सम्पत्तिकी समाप्तिमें ही होगी। फिर क्यों न मूलपर ही आघात किया जाए और इसे काट डाला जाए। बुराइयोंके विशाल वृक्षकी एक-एक टहनी काटनेसे क्या यह कहीं अधिक अच्छा और कल्याणकर न होगा। जड़ कटते ही यह विशाल वृक्ष ढह जायगा। फिर कहाँ रहेंगी बुराइयाँ, अनैतिकता और दुराचार-भ्रष्टाचार।

शंका की जा सकती है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति खतम कर देनेसे उत्पादन कम हो जायगा, विशिष्टता नष्ट हो जायगी, जीवनमें विविधता न रह जायगी। परन्तु यह शंका निर्मूल है। आज ग्रामदानकी स्थितिमें ये सब बातें विद्यमान हैं, व्यक्तिगत सम्पत्ति खतम होनेमें भी ये सब ऐसे ही बनी रहेंगी। इतना ही नहीं, तब हमारा भौतिक विकास तो होगा ही, आध्यात्मिक स्तर भी ऊँचा उठ जायगा।

व्यक्तिगत सम्पत्ति न रही तो साथ ही सोनेका मूल्य भी खतम हो जायगा और तब तिजोरियोंमें बन्द हजारों मन सोना देशके विकासके लिए प्राप्त हो जायगा, जिससे बीसियों पंचवर्षीय योजनाएं एकके बाद एक चलाई जा सकेंगी। तब हमारे अर्थ-मंत्रीको कर्ज लेनेके लिए विदेशोंकी दौड़ न लगानी पड़ेगी। दूसरे देशोंको सोना देकर हम अपने कामकी चीजें संग्रह कर लेंगे और वैज्ञानिक साधनोंके सहारे अधिकतम भौतिक उन्नति कर सकेंगे। इसके साथ-साथ इस नई व्यवस्थामें हमारा आध्यात्मिक बल भी बढ़ता जायगा। सोना हमारी किसी मौलिक आवश्यकताकी पूर्ति नहीं करता। सिर्फ देखा-देखी हममें सोना जुटानेकी होड़ लग गई है और हम कमजोर बनते जा रहे हैं। व्यक्तिगत लाभकी बात खत्म होते ही हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्यसे भी छुटकारा पा जायेंगे, जिससे बचनेके लिए हमारे सभी शास्त्र पुकार-पुकारकर आदेश देते हैं, परन्तु व्यक्तिगत-सम्पत्तिके प्रलोभनमें पड़कर हम इन आदेशोंपर चल नहीं पाते। लाभकी बात न हो तो लोभका शिकार हम क्यों बनें?

रहीं जीवन-यापनकी बातें, तो देशके शासनने जिस प्रकार आज हमें व्यक्तिगत सम्पत्तिकी रक्षाका आश्वासन दिया है, हमारे व्यक्तिगत स्वार्थोंको अक्षुण्ण बनाए रखनेका वचन दिया है, इसी प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त होनेकी स्थितिमें इन आश्वासनों वचनोंके स्थानपर हमारी आवश्यकताओं और उपलब्धियोंके अनुसार हमारे भोजन, वस्त्र, मकान, चिकित्सा, आमोद-प्रमोद, शिक्षा-दीक्षा और बुढ़ापेमें परवरिश आदिका भी प्रबन्ध यह कर सकता है। इस नई व्यवस्थामें अनुत्पादक श्रम तो देशमें रहेगा ही नहीं, व्यर्थको तोड़-फोड़ भी मिट जायगी। गलत तरीकोंसे कमजोर बनानेकी बातें भी खतम हो जायेंगी और देशका उत्पादन तेजीसे बढ़ जायगा। सभी काममें लगे होंगे, अपनी-अपनी रुचिके अनुसार विभिन्न दिशाओंमें सभी स्वेच्छासे डटकर प्रयत्न करेंगे, तब देश कैसे खुशहाल न होगा।

यह कोई जटिल व्यवस्था नहीं है। सीधी-सादी बात है। मान लीजिये, एक हजार व्यक्तियोंके पीछे एक भण्डारघर है, जिसमें आवश्यकताकी सभी चीजोंका संग्रह है। सभी काम करनेवाले हैं और सभीको देशके सामूहिक स्तरके अनुसार आवश्यकताकी चीजें मिल जाती हैं, शिक्षालय हैं, शिक्षक हैं, अस्पताल और डाक्टर हैं, व्यायामशालायें और व्यापार-निर्देशक हैं, पुस्तकालय हैं, आमोदगृह हैं—सभी कुछ सभीके लिए। सभी अपना-अपना काम करते हैं और अपने श्रम-कार्डपर जरूरतकी चीजें—खाना-पीना, वस्त्र, मकान, दवाइयाँ आदि पा जाते हैं।

हमारे यहाँ साधनोंकी कमी नहीं है। बस आवश्यकता है एक ठोस योजनाकी—ऐसी योजना जो बुराइयोंके मूलपर अघात करे, ऐसी योजना जिसमें रुपये-पैसे का चलन न हो, व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहे और सोनेका मूल्य न हो, मूल्य हो केवल श्रमका। सबको उनके काम और आवश्यकताओंके अनुसार रहन-सहनको चीजोंका वितरण किया जाये। तब न होगी दुकानें और न बाजार, न रहेंगी अदालतें और न बड़े-बड़े दफ्तर, न होगी इतनी पुलिस और न रक्षक-दल, क्योंकि तब इनकी आवश्यकता न रह जायेगी।

आजका विज्ञान-युग हमें चुनौती दे रहा है। स्वीकार करना ही होगा, ऐटम-बम और स्पुटनिक युग-युगकी अर्जित सभ्यताको मिटा देने पर तुले हैं। आजके विज्ञानने हमें विनाशके कगारेपर ला खड़ा किया है। संसारके सभ्य कह लानेवाले राष्ट्र आज सशंकित और भयग्रस्त हैं। उनका वैज्ञानिक उत्कर्ष ही उनके भय, दुःख और शोकका कारण बन गया है। क्यों, इसलिये कि उनका यह विकास केवल भौतिक आधारपर टिका है। निजी स्वार्थोंसे ऊपर उठकर सोचनेका माद्दा उनमें नहीं है। जगतके कल्याणमें वे अपना कल्याण नहीं मानते। उनका सिद्धान्त है—'जिन्दा रहो और जिन्दा रहने दो'। परन्तु होना तो यह चाहिए कि 'जिन्दा रहने दो और जिन्दा रहो'। 'Live and let live' के बजाय 'Let live and live' कितना कल्याणकर आदर्श होता है। दूसरोंके कल्याणमें अपना कल्याण समझना, यही है वह आध्यात्मिक आधारशिल्प, जिसपर हम मानवके सामंजस्यपूर्ण विकासकी आशा और कामना करते हैं।

इसीलिए आज एक नई योजनाकी आवश्यकताको लोग अनुभव करने लगे हैं, जो मानव-विकासको सही रास्तेपर ला सके। इसमें फितरतकी कोई बात नहीं, जैसी कोई चीज नहीं। फितरत कहकर हम धोखा खाते हैं या देते हैं। यह तो आदतकी बात है और आदत बदली जा सकती है। हमारे यहाँ राज्य-सुख तककी छोड़ जंगलोंमें रहने और दुःख सहनेकी बात कही गई है और लोगोंने इसका अनुसरण कर सुखकी अनुभूति भी की है। आज हमें अपनी जीवन-धारा को, पुनः आध्यात्मिकताकी इस पुनीत गंगामें अवगाहन कराना होगा, तभी मानव-जीवनमें शान्तिका संचार होगा।

इस नई व्यवस्थाका प्रारम्भ जनताकी वर्तमान आदतोंको ध्यानमें रखकर ही किया जा सकता है। तभी यह सर्वग्राह्य हो सकेगी और तब धीरे-धीरे आदतोंमें सुधार होकर समाज इस नई व्यवस्थाके अनुकूल बनेगा। पहले प्रारम्भिक आवश्यकताकी चीजोंका उत्पादन करना होगा, आमोद-प्रमोद की वस्तुएँ बादमें। जो चीजें हमारे देशमें कम पड़ेंगी, उन्हें बाहरके देशोंसे प्राप्त किया जा सकता है। रही बात विदेशियों तथा हमारे देशमें विद्यमान उनके स्वार्थोंकी, तो वह सम्मानपूर्ण समझौते द्वारा तय की जा सकती है।

यह तो निश्चित है कि जिस राहपर हम आज बढ़ रहे हैं, वह हमें वहीं पहुंचाएगी, जहाँ इसपर चलनेवाले पहुंचे हैं। जब इन्हीं लोगोंकी समस्याओंका समाधान न हो सका, तो इस राहपर चलनेपर हमारी समस्याएँ कैसे निपट सकती हैं। वे तो और विकराल रूप ही धारण करेंगी। इसीलिए हमें अपनी भौतिक उन्नतिके साथ आध्यात्मिक पहलू भी रखना है। तभी हम उन बुराइयोंसे बच सकते हैं, जो आज हमें खाए जा रही हैं। आज हमारे देशके किसान, मजदूर, उद्योगपति, व्यवसायी सभी तो परेशान हैं। कोई भी तो सुखी नहीं दीखता। सभीके सामने उनकी विविध आवश्यकताएँ मुँह बाए खड़ी हैं। कोशिशोंके बावजूद भी समस्याएँ ज्यों-की-त्यों बनी हैं। इन सबका समाधान है। यह नई योजना जो हमें बनानी है।

दान देना और दान लेना, सहायता करना और सहायता लेना, यह तरीका बहुत पुराना हो गया और दीर्घ अनुभवने सिद्ध कर दिया है कि समाजके दुःख दूर करनेमें यह समर्थ नहीं है। दान देनेवाला अहंका शिकार हो जाता है और लेनेवाला हीनताका। इससे दोनोंको नुकसान पहुंचता है। समाजके सन्तुलित विकासकी नई योजनामें दान-सहायता या लेन-देनको ये गाँठ न होनी चाहिए। इस योजनाको तो पारिवारिक आदर्शके रूपमें ग्रहण करना होगा; इसमें सभी देशवासी एक विशाल परिवारके सदस्य होंगे, क्षमता के अनुसार काम करेंगे और आवश्यकताके अनुसार ग्रहण करेंगे।

स्वर्गीय आचार्य श्री वामदेव

त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री

वसंतपंचमीका पुण्य-पर्व था। हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना होने जा रही थी। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिञ्जके द्वारा शिलान्यास सम्पन्न होनेवाला था।

अभूतपूर्व महोत्सव था। देश भरके शिक्षा-विशारद एवं लोकनायक उस समारोहमें सम्मिलित हुए। गंगातटपर सहस्रों शिविर तने हुए थे। वह सभा-मंडप क्या था, मानो आकाशका अंशावतार था। उस पार काशिराजका दिव्य-दुर्ग था और इस पार देव-दुर्लभ यह दृश्य!

उस रंग-भूमिमें बिना आज्ञा-पत्रके ही एक अर्द्धनग्न ब्राह्मण प्रविष्ट होनेका असफल प्रयत्न कर रहा था। उसे देखकर एक थानेदारने पूछा—"आपका कार्ड?"

"सरकार, मेरे पास कार्ड नहीं है। मैं आजमगढ़के एक गाँवसे यह उत्सव देखने आया हूं, कृपया मुझे भी अन्दर जाने दीजिए, मैं संस्कृतका पण्डित हूं।" ब्राह्मणने दीन-भाव से कहा।

थानेदारने उसकी एक न सुनी और अर्द्धचन्द्र देकर अन्य सिपाहियोंकी सहायतासे प्रवेश-द्वारके बाहर कर दिया। वह ब्राह्मण भी ऐसा-वैसा ब्राह्मण नहीं था, वह आधुनिक चाणक्य ही था। उसने कहा—'ओ नौकरशाहीके मदमें चूर अंधे गधे! तू आज मुझे दुलत्ती दे ले, किन्तु एक दिन आयेगा, जब मैं इसी शिक्षण-संस्थामें आचार्य बनूंगा और उस दिन तुझसे कोई बात भी नहीं करेगा।'

महामना मालवीयजीकी कीर्ति-क्यारी लहलहाने लगी। उसके सौरभसे दिग्दिगन्त सुरभित हो उठे। देशके कोने-कोने से छात्रोंका समुदाय अध्ययनार्थ हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आने लगा। वह तिरस्कृत ब्राह्मण पुनः काशी आया और इस नवोदित शिक्षण-केन्द्रमें गीताका प्रवचन करते समय उसने ऐसा रंग जमाया कि पूज्य मालवीयजी मंत्र-मुग्ध हो गये। आश्चर्य है, उसे केवल मध्यमा तक शिक्षा मिली थी, किन्तु वह उक्त संस्था के "संस्कृत महाविद्यालय" के साहित्य-विभाग का अध्यक्ष बन गया और चतुर्थ छात्रावासके "सी ब्लाक" का संरक्षक भी। आप ही हमारे चरितनायक स्वर्गीय श्री वामदेव आचार्य हैं।

वे ऋषि-कल्प थे, अध्ययन, अध्यापनके अतिरिक्त त्रिकाल स्नान, संध्या-वंदन एवं अनवरत गायत्री-मंत्रका जप उनका दैनिक व्यवसाय था। मुँहमें एक भी दाँत नहीं था, किन्तु वृद्धावस्थामें भी मध्यम श्रेणीका उनका शरीर अत्यन्त गठीला था। गेहुंवे रंगके इस आचार्यके रोम-रोमसे पवित्रता झलकती थी। काठकी चट्टीको छोड़कर मैंने चर्मरहित पद-त्राणों को भी उन्हें पहनते नहीं देखा था। उनकी चेष्टा अत्यन्त ओज-पूर्ण थी। अपने हाथ की धुली हुई धोती पहनते थे, जो घुटनेसे कुछ ही नीची, लम्बाईमें तीन गज और प्रायः मलमल अथवा मारकीनकी होती थी। विद्यालय जाते समय बगलबन्दीके ऊपर चादर ओढ़ लेते थे। शीतकालमें मोटे कपड़ेका पाजामा भी पहनते थे और उनकी बगलबन्दी के ऊपर बहुमूल्य कश्मीरी शाल ओढ़ लेते थे। प्रातःकाल एवं सायंकाल कन्टोप भी पहनते थे। तात्पर्य यह है कि उनका वेश-विन्यास अत्यन्त सौम्य था और आचरण अत्यन्त सात्विक।

मैंने उनके समान विलक्षण व्यक्ति कहीं नहीं देखा। वे तीन लोकसे न्यारे थे और थे अद्भुत अवधूत। वे सच्चे अर्थमें वामदेव थे। संध्यादिकसे निश्चिन्त होकर नीमके पत्तोंका ही जलपान करते, गाँजेकी भरी हुई चिलमसे चिमनीकी भाँति धुआँ उड़ेलते, कुचलेको भी कुचलकर जठराग्निमें झोंक देते, धतूरे और अफीमको उदरस्थ कर लेना उनका दैनिक कर्म था, भोले शंकरकी भाँति भंगके गोले वे गलेसे नीचे उतार लेते थे। शरीरमें फुर्ती रखनेके लिये सुर्तीका सेवन उनको अनिवार्य था ही। सचमुच ही वे विषपायी चन्द्रचूड़ थे। दोपहरको बस एक बार भोजन करते थे। गर्म दूधमें कड़ाहीकी तत्काल निकली हुई पूड़ियाँ छोड़ दी जातीं और ऊपरसे चीनी डाल दी जाती। इन्हीं स्निग्ध पदार्थोंसे वे तृप्त हो जाते थे।

'अकबर-बीरबल-विनोद' की भाँति 'मालवीय-वामदेव-विनोद' भी विख्यात है। पंडित रामानुग्रह शर्मा दशाश्वमेध घाट पर सायंकाल कथा कहते थे। पूज्य मालवीयजी भी उसमें भाग लेते थे। एक दिन मालवीयजीसे वामदेवजीने कहा कि "आपके विश्वविद्यालयमें ही धुरन्धर विद्वान पड़े हैं और आप एक कथावाचकका प्रवचन सुनने जाते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती।" मालवीयजीने उस समय उत्तर नहीं दिया, किन्तु शामको उन्हें भी वहाँ ले गये।

शर्माजीकी कथा हो रही थी, जनता पर्याप्त मात्रामें शांत होकर उनका प्रवचन सुन रही थी। महामनाने शर्माजीसे अनुरोध किया—'आज हमारे आचार्य वामदेवजीको भी

कृपया बोलनेका अवसर प्रदानकर मुझे अनुगृहीत कीजिए। शर्माजीने नम्रता-पूर्वक कहा—'आइये आचार्यजी ! व्यासगद्दी को सुशोभित कीजिये।' वामदेवजीने प्रवचन आरम्भ किया और कुछ समयमें मैदान खाली हो गया गिने-चुने लोग उनका प्रवचन सुनते रहे। तत्पश्चात मालवीयजीने शर्माजी से प्रवचन करनेके लिए पुनः अनुरोध किया। शर्माजीके व्यासगद्दीपर बैठते ही लोग धीरे-धीरे आने लगे और कुछ समयमें ही जनता उस घाट पर पूर्ववत आसन लगाकर जम गई। विश्वविद्यालय लौटकर मालवीयजीने कहा—'समझे पंडितजी ! मैं वहाँ क्यों जाता हूं।' बस अपने जीवनमें एक बार यहीं वे पराजित हुए थे।

आचार्य वामदेवजी प्रशंसाका पुल भी खूब बाँधते थे, उनके इस प्रकारके प्रशंसापूर्ण भाषणोंको सुनकर कभी-कभी महामना कहते थे—'आचार्य वामदेवजी तो पुए पर चीनी ही डाल देते हैं।' सचमुच उनकी वाणीमें मिसरी घुली रहती थी। "वाराणसेय-संस्कृत-छात्र-संघ" की "बिरला-संस्कृत-कालेज" के प्रधानाचार्य पंडित सभापति उपाध्याय अध्यक्षता कर रहे थे। उत्तर-प्रदेशके उस समयके शिक्षा-सचिव माननीय डाक्टर सम्पूर्णानन्द भी वहाँ उपस्थित थे। कई वक्ताओंके भाषण हुए, किन्तु पंडित वामदेवजी जैसी उनमें सरलता कहाँ ? आपने अपने भाषणकी भूमिकामें ही श्रोताओं को रस-सिक्त कर दिया। आप बोले—"सज्जनो ! संस्कृत-भाषाका भविष्य भास्वर प्रतीत होता है, क्योंकि सभापति के पदपर स्वयं सभापतिजी सुशोभित हैं और यहाँ सम्··· पूर्ण···आनन्द भी विराजमान् हैं।" इतना कहकर शिक्षा मंत्रीकी पीठको हाथसे थपथपाते हुए आजमगढ़ी देहाती भोजपुरीमें बोले—"जब हई हनुमनवाँ साथ बा, त काहें ना उद्धार होई हो।" अब क्या था, लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

सच बात तो यह है कि वे विश्वविद्यालयकी विभूति थे। नारदकी भाँति उनकी सर्वत्र गति थी। कूटनीतिज्ञ भी वे कम नहीं थे, अपनी वाक्-चातुरी एवं व्यवहार-कुशलताके कारण ही उन्हें काशी-नरेशके पूज्य गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्हें किसी प्रकार गंध मिल गई थी कि महाराज एक संस्कृत-शिक्षककी खोजमें हैं, जिससे संस्कृत-साहित्यका अनुशीलन करना चाहते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि मालवीयजी किन्हीं अन्य महानुभावको अमुक समय भेजना चाहते हैं। वामदेवजी ऐसे स्वर्ण-सुअवसरको हाथसे जाने देना ही कब चाहते थे। अतः महामनाके द्वारा मनोनीत महानुभावके रामनगर पहुंचनेके पहले ही राजभवन में उपस्थित हो गये और अपनी वाग्वीरताके कारण उनके गुरु भी बन गये। महाराजने जब उनसे वेतनके विषयमें पूछा, तब निर्भीक होकर बोले—'राजन्, यदि वेतनका नाम लेंगे तो वामदेवका वाम चरण भी यहाँ नहीं आ सकता। हाँ, वृद्ध हूँ, पैदल यहाँ तक आनेमें कठिनाई होगी। अतः मेरे लिए कभी हवा-गाड़ी (मोटर) भेज दीजियेगा और कभी बग्घी।' महाराजने उनकी बात मान ली। अभी वामदेवजी दीक्षा देकर प्रस्थान करने ही वाले थे, तब तक तथाकथित महानुभाव मालवीयजीका पत्र लेकर आ पहुंचे, किन्तु अब हो ही क्या सकता था। बेचारे हतप्रभ होकर बेरंग लौट आये। काशिराजकी अनुकम्पासे विज्ञवर वामदेवजी विश्वविद्यालयमें भी अपने पदपर पूर्ववत् बने रहे।

जो हो, वे थे तपोधन। उस कोलाहलपूर्ण वातावरणमें भी एक वन्य-विहारिणी हिरनी उनसे अत्यन्त हिलमिल गई थी। जब संध्या करते समय आचमनके लिए चुल्लूमें जल लेकर मंत्रोच्चारण करते थे, तब वह उस पवित्र जलको पीनेका प्रयास करती थी। वे उसे अञ्जलिमें धान्य खिलाते थे। उस असंख्य जन-समूहमें मानो वह भी उस महामानवको पहचानती थी।

आश्विनका महीना था। ऊष्मासे विकल होकर रात्रिको छात्रालयके समीपस्थ शिवालयके पीछे चबूतरेपर मैं सो गया। न जाने कब वहीं आकर मेरे पास ही एक कुशका आसन बिछाकर वे संध्या करने लगे। सहसा जब मेरे नेत्र खुले, तब मैंने उनकी ओर देखा, वे रात्रिके पिछले पहरमें अपनी तपश्चर्यामें लीन थे। मुझे जागृत देखकर बोले—"बेटा, सो जा, सो जा, अभी प्रभात नहीं हुआ है।" आह, उन शब्दोंमें कितना स्नेह और ममत्व भरा हुआ था। प्रातः जब मैं कालेज गया, तब पहली बार मुझे विश्वविद्यालयीय छात्रवृत्ति मिलने का शुभ संदेश मिला। यह था उनके प्रातःकालीन दिव्य-दर्शनका सुफल।

वे कुपित होनेपर अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लेते थे और जो लोग पकड़ लेते थे, उसे कदापि नहीं छोड़ते थे। उनका जामाता काशी विश्वविद्यालयमें ही किसी उच्च कक्षा में अध्ययन करता था, वहीं किसी छात्रासे उसका प्रणय हो गया। फलतः वह उससे विधि-पूर्वक विवाह करनेके लिए

उद्यत हो गया। उन्होंने उसे बुलाया और कहा—"तुम अन्य विवाह मत करो, अन्यथा तुम्हारे जीवित रहते हुए ही मेरी बेटी विधवा हो जायेगी, मुझे जो वेतन मिलता है, उसे भी केवल चतुर्थांशको छोड़कर तुम ले लो।" जब उसने उनकी एक भी न मानी, तब वे उसे पीटनेके लिये उद्यत हो गये, किन्तु वह भाग खड़ा हुआ और उनके आक्रमणसे बाल-बाल बच गया। नव-परिणीता वधूको लाकर वह विश्व-विद्यालयके पास ही लंका मोहल्लेमें मकान लेकर रहने लगा। किन्तु उन दोनोंका प्रेम चिरस्थायी नहीं रह सका। शनैः शनैः विरसता बढ़ती गई और एक दिन वह चरम सीमा तक पहुंच गई। उस नव-विवाहित युवकने आत्म-हत्या कर ली। वामदेवजीको उसकी शव-यात्रामें सम्मिलित होनेको कहा गया, किन्तु वे नहीं गए। कुछ समयके उपरान्त अकेले गए और दूर बैठकर उसका शव-दाह देखते रहे। लोगोंके चले जानेके अनन्तर चिताके पास जाकर दिवंगत जामाताको शतशः दुर्वचन सुनाकर अपने अन्तर्दाहको शान्त किया। वहाँसे लौटकर प्राणाधिका पुत्रीको माताकी भाँति कण्ठ लगाकर विलाप किया और उसे अनेक प्रकारसे धैर्य बँधाया। दो-तीन माहके बाद वह भी वैकुण्ठ-वासिनी हो गई। इन पंक्तियोंके लेखकने इस दारुण प्रसंगको स्वयं उनके मुखसे सुना था।

शीतकाल था, मेजके ऊपर बिछे हुए मोटे गद्देपर मसनद के सहारे बैठकर आप हमलोगोंको 'नैषधीय चरितम्' पढ़ा रहे थे। आँखोंपर अर्द्धचन्द्राकार चश्मा चढ़ा हुआ था। सहसा राजा ज्वाला प्रसादके साथ वाइसचांसलर डॉक्टर राधाकृष्णन् कक्षामें पधारे, आप उन्हें देखकर सम्मानार्थ मेजपर ही खड़े हो गए। वाइसचांसलर महोदय हँस पड़े। संकेत पाकर आप बैठे और हमलोगोंको पढ़ाने लगे। आगन्तुक दोनों महानुभाव हमलोगोंके पास बैठे। डॉक्टर राधाकृष्णने पूछा—"छात्रोंकी उपस्थिति हो गई?" हमारे आचार्यजी बोले—"ये जब यहाँसे पढ़कर जायेंगे, तब अपनी उपस्थिति भी करते जायेंगे।' नवागन्तुक दोनों महानुभाव पुनः हँसे। स्मरण रहे, डॉक्टर राधाकृष्णन् अंग्रेजीमें प्रश्न करते थे, आचार्य वामदेवजी हिन्दीमें उत्तर देते थे एवं राजा साहब दुभाषियेका काम कर रहे थे। उन लोगोंके चले जानेके पश्चात् आप हमलोगोंसे बोले—"बेटम्! यह 'नैषधीयचरितम्' है। इसे पढ़ानेवाला वरुणा और अस्सी (वाराणसी) के बीच कोई नहीं है। इस विश्वविद्यालयमें भी एक ही है और (अपनी छातीको हाथसे ठोककर) वह यही वामदेव है।"

हमारे गुरुदेव परिस्थितिको अपने अनुकूल बनानेमें बड़े दक्ष थे। कहते हैं, काशिराज[1] नापित जातिकी किसी षोडशी प्रमदाके प्रणय-पाशमें आबद्ध थे। महाराजको सत्पथपर लानेके लिए उन्होंने उपाय सोच लिया और एक वृद्ध सभासद्से कह दिया कि महाराज जब विद्वन्मण्डलीमें आसीन हों, तब आप मुझसे पूछियेगा कि—"न खलु परतंत्रा प्रभुधियः" का क्या अर्थ होना है? तथोक्त महाशयने अवसर पाकर जब अर्थ पूछा, तब आप बोले "नखैं लुनातीति नखलुः अर्थात् जो नखको काटता है, उसे नखलु (नाई) कहते हैं, पूरे चरणका अर्थ हुआ कि प्रभु (राजा) की बुद्धि नाईके अधीन है।" महाराज इस विचित्र अर्थको सुनकर बड़े मर्माहत हुए और उन्होंने सन्मार्ग ग्रहण कर लिया।

वस्तुतः वे एक मनमौजी फक्कड़ थे। बड़ों-बड़ोंको भी उलटी-सीधी खरी-खोटी सुनानेमें नहीं चूकते थे। एक बार बुध-समाजमें महामना मालवीयजीसे बोल उठे—"इस विश्व-विद्यालयमें तीन मूर्ख रहते हैं।" दो सज्जनों[2]का नाम तो निर्भीकता-पूर्वक ले लिया, किन्तु तीसरे सज्जनका नाम नहीं लिया। जब मालवीयजीके बहुत पूछनेपर भी नहीं कहा, तब एक प्रोफेसरने हँसकर कह दिया, "वामदेवजी उन दोनों से भी बढ़कर प्रथम श्रेणीका मूर्ख आपको ही कहते हैं।" इस बातको सुनकर महामनाके अधरोंपर भी मुस्कान दौड़ गई।

अन्ततः इस जीवन्मुक्त योगीने भी लगभग ६० वर्षकी अवस्थामें अपनी लौकिक-लीला समाप्त की। मृत्युके तीन दिन पूर्व तक अध्यापन-कार्य किया। दिवंगत होनेके एक दिन पूर्व अपने लड़कोंको बुलाकर कहा—"मेरे सामने दीवारपर गीता-गायक श्रीकृष्णचन्द्रका चित्र लगा दो। मेरी मृत्युको आसन्न देखकर मुझे गंगातटपर तुलसीघाटपर ले जाना। देहावसानके पश्चात् किसी ब्रह्मणेतरसे मेरे शवका स्पर्श मत कराना। ब्रह्मभोजनके दिन छात्रालयके आगे शामियाना लगवाना, पंडितोंकी सभा कराना तथा उन्हें दक्षिणा देकर सम्मानित करना। छात्रालयके सम्पूर्ण छात्रोंको भोजन कराना। अब मैं मौन धारण कर रहा हूँ। पिंडमें जब तक प्राण अवशेष रहेंगे, गायत्रीका मंत्र जपूँगा। कोई व्यक्ति अब मुझसे बोलनेका प्रयास न करे।" 'हरिः ओम्' कहकर मौन धारण किया और भगवानका चित्र देखकर फिर किसी को नहीं देखा। आज कितने हैं ऐसे व्यक्ति?

१. शायद काशिराजका नाम प्रभुनारायणसिंहजी था।—सं०
२. वामदेवजीने राजा ज्वालाप्रसाद और सर राधाकृष्णनका नाम लिया।

संस्मरण

जयप्रकाश नारायण

सोहनलाल पचीसिया

सन् १९३० के करीबकी बात है। देशमें असहयोग आन्दोलन चल रहा था। हजारोंकी संख्यामें रोज व्यक्ति पकड़े जाते थे, जिनमें स्त्रियां और छोटे-छोटे बच्चे भी होते थे। लाठी और गोलीका प्रहार तो रोज ही जनता पर होता था। गांधीजीका ब्रिटिश सरकारसे अहिंसात्मक युद्ध था, जिसे सारी दुनिया दिलचस्पीके साथ देख रही थी। फ्रांटियर मेलके इन्टर क्लासके एक डब्बेमें बैठा हुआ मैं दिल्ली से मथुरा जा रहा था। उसी डब्बेमें एक गौर-वर्ण सफेद खद्दरकी पोशाक पहने हुए युवक भी था, जो सब यात्रियोंका ध्यान अपनी तरफ खींच रहा था। उसके चेहरेपर न सिर्फ असाधारण सौजन्य ही था, वरन् बौद्धिक आभिजात्यपन भी था। 'मार्क्सवादकी मूल समस्याएँ' नामकी पुस्तक वह पढ़ रहा था। स्वतः ही मेरा ध्यान उसकी तरफ खिंच गया और मैंने उसके साथ बात करनेकी कोशिश शुरू की, तो उसे मक्खनकी तरह मुलायम पाया। काफी बातें हुईं। वह अमेरिकासे अध्ययन करके वापस आया था और अब अपना पूरा समय कांग्रेसके कार्यकों दे रहा था। बम्बईमें कांग्रेस कार्यकारिणीकी बैठक होनेवाली थी और उसी सिलसिलेमें वह बम्बई जा रहा था।

× × ×

उपरोक्त घटनाको कई वर्ष बीत गये। गांधीजीने कांग्रेस छोड़ दी और हरिजन आन्दोलन चला दिया। इधर कांग्रेस में भी एक नया दल बन गया, जो कांग्रेस-सोशलिस्ट-पार्टीके नामसे प्रसिद्ध हो रहा था। इस दलके बारेमें बहुत-सी बातें अखबारोंमें छपती थीं और लोग भी उन्हें बड़े चावसे पढ़ते थे। आचार्य नरेन्द्रदेव तथा जयप्रकाश नारायण इस दलके मुख्य नेता थे। एक दिन श्री सीतारामजी सेकसरियाने मुझे अपने घर यह कहकर बुलाया कि श्री जयप्रकाश नारायण आ रहे हैं और मैं उनसे मिलूँ। उनके मकान पर पहुंचा। मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही, जब मैंने देखा कि श्री जयप्रकाश नारायण वही युवक हैं, जिनसे मेरी मुलाकात फ्रांटियर मेलमें हुई थी। उसके बाद जयप्रकाशजीकी प्रसिद्धि बढ़ती गई और मैं भी उनसे कई बार मिला। एक बार मेरे मकान पर भी आये। परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण मुलाकात सन् १९४३ में कलकत्तेमें हुई, जिसे मैं जिन्दगी पर्यन्त नहीं भूल सकता।

उन दिनों कलकत्ता रातके समय काला कम्बल ओढ़े रहता था, जिसमें मकानोंकी बत्तियाँ तारोंकी तरह टिमटिमाया करती थीं। इस महानगरीमें 'ब्लैक आउट' था और बिलकुल अन्धार रहता था। बंगालका भयंकर अकाल भी इसी समय नर-कंकालोंके रूपमें सड़कोंपर चलता-फिरता नजर आता था। फुट-पाथों पर चलते समय कभी-कभी मृत और जीवित शरीरोंपरसे भी गुजरना पड़ता था। "मां, भीक्षा देवो मां" की हृदय-बेधी पुकार रात भर कानोंको चीरती रहती थी। एक-एक दाने चावलके लिए स्त्रियां और बच्चे तड़प रहे थे। यह सब साठ लाखकी आबादी-वाले ब्रिटिश साम्राज्यके द्वितीय शहर कलकत्तेमें हो रहा था। राजनैतिक हलचल ऊपरसे तो मृत जैसी मालूम पड़ती थी, पर भीतर सुलग रही थी। कांग्रेस गैरकानूनी थी एवं उसके नेता और कार्यकर्त्ता सब जेलोंमें थे। सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टी बाहर थी और अपनी ताकतको दृढ़ कर रही थी। श्री जयप्रकाश नारायण हजारीबाग जेलसे फरार हो गये थे और कलकत्तेमें छिपे तौरपर काम कर रहे थे। उनके साथ डा० राममनोहर लोहिया, श्रीमती अरुणा आसफ अली एवं कई दूसरे साथी भी थे। विवेकानन्द रोडमें श्री बालकृष्ण गुप्ता रहते थे, जहाँ डा० लोहिया एक लम्बे अरसेसे टिके हुए थे। उन्होंने अपनी मूँछें बढ़ा रखी थीं। इसी स्थानपर मैं श्री जयप्रकाशजीसे मिला। उन्होंने अपना नाम प्रोफेसर सिन्हा रख लिया था और मूँछें बढ़ा ली थीं। अपनी क्षीण काया को कोट-पतलून एवं टाईसे ढके रहते थे। स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया था। मैंने उनसे प्रार्थना की और पूछा कि मैं उनकी क्या सेवा कर सकता हूं। उन्होंने जवाब दिया कि सबसे पहले तो रहनेका स्थान चाहिए। मैंने उन्हें अपने घर रहनेका निमंत्रण दे दिया और उन्होंने भी सहर्ष उसे मंजूर कर लिया।

श्री जयप्रकाशजीको अपने मकानपर रहनेके लिए निमं-

त्रण तो दे दिया, परन्तु इस कामको पूरा करना टेढ़ी खीर थी। क्योंकि उन दिनों जयप्रकाशजी फरार थे और उन्हें पकड़ानेवालेको सरकारकी तरफसे दस हजार रुपया इनामकी घोषणा थी। इसलिए यह जरूरी था कि इस काममें सबसे पहले श्रीमती पचीसिया मेरा साथ दें। इतना बड़ा जोखिम का काम उनको बिना जानकारीके करना उचित भी नहीं जँचा। इसलिए एक दिन मैंने बात शुरू की।

"कैदसे भगा हुआ एक आदमी है, जो अपने मकानमें रहना चाहता है। उसका स्वास्थ्य भी ऐसा है कि उसे कुछ आराम एवं इलाजकी जरूरत है। क्या उसे अपने मकानमें रख लें?"

उन दिनों हम लोगोंमें राजनीतिकी चर्चा तो अकसर होती ही रहती थी, परन्तु कैदसे फरार व्यक्तिको शरण देनेकी बात किसीने नहीं सोची थी। यदि वह व्यक्ति अपने मकानमें पकड़ा जाय तो? ये ही सब बातें थीं, जिनपर विचार करना जरूरी था।

"कौन है वह व्यक्ति?"

"नाम तो मैं बतला ही दूँगा, परन्तु क्या उसे रखनेकी हिम्मत है? साथ ही एक बात यह भी है कि उसे गिरफ्तार करवानेवालेको सरकार दस हजारका इनाम भी देगी।"

मेरे आखिरी वाक्यने सारी बात खुलासा कर दी। श्रीमती पचीसिया समझ गईं कि वह व्यक्ति जयप्रकाशजीके सिवाय दूसरा कोई नहीं है और बोलीं—

"तो जयप्रकाशजी ही हैं! लेकिन हिम्मत तो है न?"

"हिम्मत तो तुममें होनी चाहिए। मुझे यदि कैदकी कोठरीमें बन्द कर दिया गया तो घबड़ा जाऊँगा। लेकिन उन्हें लाना भी बहुत जरूरी है। उनका स्वास्थ्य बहुत खराब है। हम लोग साधारण आदमी हैं, लेकिन भगवान हमारी रक्षा करेगा।" इस तरह विचारकर और सारी बात भगवान के भरोसे छोड़कर हम लोगोंने जयप्रकाशजीको बुला ही लिया और एक दिन रातके समय वे हमारे मकानपर आ गये।

श्रीमती पचीसियासे तो यह जयप्रकाशजीकी पहली ही मुलाकात थी। जिस व्यक्तिकी अखबारोंमें इतनी चर्चा थी और जो इतना भयंकर क्रांतिकारी समझा जाता था, वह इतना सरल और सीधा है, यह उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। सबसे पहले हमें उनके स्वास्थ्यकी चिंता हुई। डा० विधानचन्द्र रायको बुलाया गया। एक मारवाड़ीके घरपर फरार जयप्रकाशको देखकर डा० रायको भी आश्चर्य हुआ होगा। परन्तु खैर? हम लोग जरूर निश्चिन्त हो गये। शीघ्र ही उन्हें फायदा भी हुआ। परन्तु जयप्रकाशजीका लक्ष्य तो शारीरिक इलाज या आराम नहीं था। उनके दिलमें तो देशकी स्वतंत्रताकी आग धधक रही थी। दिन भर कार्यकर्ताओंसे परामर्श होता रहता था और रातमें ब्लैक आउटके समय कम्बल ओढ़कर वे बाहर निकलते थे। इसी तरह पन्द्रह दिन बीत गये। एक दिन एक परिचित महिला हमारे मकान पर आईं। श्री जयप्रकाशजी उनसे साधारण ढंगसे मिले, मानो कोई खास बात न हो। परंतु इस मुलाकातसे हम लोगोंका माथा ठनक गया। स्त्रियोंमें जिस बातकी चर्चा शुरू हो जाती है, उसे छिपाना बड़ा मुश्किल काम है। जयप्रकाशजीके साथियोंने निश्चय किया कि उन्हें दूसरे स्थानपर ले जाना चाहिए। बाबूलाल सेठिया, जो आजकल लन्दनमें ही बस गये हैं, जयप्रकाशजीके एक मुखिया थे। उनकी भी यही राय हुई। अन्तमें सत्रह दिनके निवासके बाद उन्हें हमारा मकान छोड़ना पड़ा।

× × ×

"भारत छोड़ो" आन्दोलनमें पकड़े जानेके बाद जब गांधीजी जेलसे रिहा हुए तो वे कलकत्ते आये और सोदपुरमें खादी-प्रतिष्ठानमें ठहरे। उनके साथ श्रीमती प्रभावती देवी भी थीं। जयप्रकाशजी अभी तक जेलमें ही थे। हमलोगों को इच्छा हुई कि श्रीमती प्रभावतीसे मिलें। मजदूर नेता श्री देवेन सेनके साथ हम लोग सोदपुर पहुंचे और गांधीजी की कुटिया तक पहुंच गये। बापूजी उस समय घूम रहे थे और प्रभावती उनके साथ थीं। परन्तु श्रीमती पचीसिया का उन्होंने प्रेमसे स्वागत किया। घूमना समाप्त होनेके बाद हमारे छोटे लड़के सिद्धार्थको प्रभावतीजी गांधीजीके पास ले गईं। प्यारसे उसके सिरपर हाथ रखते हुए बापूजीने पूछा, "इतना सुन्दर बच्चा किसका ले आई?" बादमें प्रभावतीने सब बातें गांधीजीको बतलाईं तो उन्होंने कहा, "उनको (जयप्रकाशजीके ठहरानेवालेको) एक बार बुलाओ।" प्रभावतीजीने हम लोगोंको सन्देशा भी भेजा, जो हमारे पास पहुंचा ही नहीं। कुछ दिन बाद जयप्रकाशजी जेलसे छूटकर कलकत्ते आये, तब प्रभावतीजीने सारी बातें हमें बतलाईं। ऐसा लगा कि भगवान बुद्धने हमें बुलाया और हम जा नहीं सके!

किसान

एक अंग्रेज

कृषकों की जीवन-चर्या के, भीषण तथ्य बताने आज।
पहले के दुर्भिक्ष-कमीशन, ने साजा था थोथा साज॥
उससे दशा नहीं कुछ सुधरी, बनी रही वैसी दयनीय।
कर्मठ हो इंगलैंड उठे जो, हो जावे वह अति कमनीय॥

दिल्लीके सन् १८७७ के समारोह[1]में मुझे दो (प्रकारके व्यक्तियों) को अनुपस्थिति बहुत खटकी-खली। पौष्टिक भोजनोंपर पालित सेक्रेटरी (राज्य सचिव) और शराबी राजा तो वहाँ बहुत अधिक संख्यामें थे, परन्तु अकालके मारे हुए किसान और घूर्णित मस्तिष्क तथा जर्जर देह-यष्टिवाले अफीमची चीनी, जिनको उसका खर्च चुकाना पड़ा था, वहाँ न थे।

वायसराय (भारतके बड़े लाट) और अंग्रेजी समाचार-पत्र किसानोंको 'रायट[2]' कहकर क्यों पुकारते हैं, मैं नहीं समझ पाता। रायट या बलवा करने जैसी कोई बात उनमें नहीं पायी जाती, अव्यस्थित जन-समूह सरीखे तो वह कभी-कभी हो जाते हैं, परन्तु वैसा तब ही होता है जब कि वह पुलिस दलके अंग अथवा अश्वारोही सैन्यमें परिवर्तित कर दिये जाते हैं। परमाणु सदृश देह-विहीन-सा बेचारा किसान तो बलवेकी या फ्रांसकी क्रांतिके रोषोत्पादक गीतों सरीखे गायन व हुरदंग (हडबोंग) की कल्पना तक नहीं करता है। समय बितानेके यह शौक आलसी वा निठल्लों के हैं। भारतीय किसानका किसी राजनैतिक समस्या वा विचारकी अनुभूति करते ही दुर्भिक्षमें प्राणान्त हो जाता है। इस कथनमें गांभीर्यका कुछ पुट अवश्य है, कारण कि जबतक लगन न हो किसीके भी दुर्भिक्षमें प्राण न निकलेंगे।

लार्ड बेकन[3]की सूक्तोक्ति है कि "भोजनसे मनुष्य पूर्णता प्राप्त करता है", परन्तु जिसने बेकनकी इस दूसरी मान्यतापर कि "लिखनेसे मनुष्य पूर्णता प्राप्त करता है", अपना कार्य आरम्भ किया था और यह समझा था कि किसी विस्तार विशेषके कागजोंको लिखकर भर देनेसे ही भारतके किसानों की पीठसे लगे पेटोंकी पिचकी चमड़ियाँ भर जायंगी, जिस सनका नाम लेते हुए हमारी आंखोंमें आंसू भर आते हैं और मुखमें हँसी भी उसी कमीशनको रिपोर्टकी अपेक्षा भूखों मरते किसानोंको बेकन[1] (शाब्दिका अर्थ शूकर-मांस) अर्थात् पौष्टिक भोजन देना कहीं अधिक अच्छा होगा।

सर रिचार्ड टैम्पिल[2]ने जब दुर्भिक्ष होनेकी बात सर्वप्रथम चलाई तो मैंने यह सुझाव दिया कि इस योजनाके व्यावहारिक रूप देनेके लिए चाहिए कि वे भारत गवर्नमेंटके वेतन और भत्ते एक महीनेके लिए रोक दें, परन्तु उन्होंने मेरे कथन पर ध्यान न दिया। कठिनाईसे ही लोग मेरे प्रस्तावोंको सुनते हैं और कभी-कभी मुझे भी ऐसा लगता है कि मेरी स्वाभाविक खिन्नताका कारण यही है।

आप प्रश्न करेंगे कि भोजन तथा दुर्भिक्षकी इन बातोंका किसानसे क्या सम्बन्ध है? अथवा ये बातें किसानसे क्यों कर (किस प्रकार) सम्बन्धित हैं? मेरा उत्तर है, सब प्रकार से।

दुर्भिक्ष ही भारतीय किसानका क्षितिज है और अपर्याप्त अन्न उसकी अग्रभूमि है। यह बात और अधिक अद्भुत इसलिये भी लगती है कि किसान बहुतायतके स्वप्नालोकसे घिरा रहता है। गेहूं और ज्वार (प्रिपंगु) से लदे खेतकी घनी उपज आपको गाँवमें सर्वत्र दिखाई देगी। अत्यन्त सुन्दर पोस्त और सुस्वादु ईखसे मानो अपने पैरोंको अछूता रखनेके लिए ही गाँव (को आबादी) तथा वहाँके पुराने वृक्षोंको ऊँचे टीलेपर चढ़नेकी आवश्यकता होती है। मलाई सरीखे रंगके धौले मोटे और स्वस्थ बैल ऐश्वर्यमयी अलसताके भावसे इठलाते हुए उनींदे-से चलते हैं। चिकनी देह-यष्टिवाले अनुद्योगी ब्राह्मण चमचमाती धूपमें सुखसे तालाबमें स्नान करते और मंथर गतिसे मन्त्रोच्चार करते हैं। भैंसोंको भी पटेरीमें दिनभर पड़े रहनेके सिवाय कुछ काम नहीं करना पड़ता। प्रत्येक वस्तु सुखमें डूबी हुई है। मधुमक्खियाँ फूलोंमें गीतोंको गुनगुनाती हैं, पंडुकियां पीपलके छायादार पत्तोंमें ढँकी हुई प्रेममयी भर्त्सनाओंसे विलाप करती

---

१. इंग्लैंडकी रानी विक्टोरियाके भारत-साम्राज्ञीकी उपाधि ग्रहण करनेपर दिल्लीमें हुआ दरबार।

२. अंग्रेजीमें 'रय्यत' शब्दको 'रायट' कहकर उच्चारण करते हैं, जिसका अर्थ 'बलवा' भी हैं। इस शब्द पर श्लेष है।

३ इंग्लैंडके एक महापण्डित, जो मध्ययुगमें हुए हैं।

१. यह बेकन शब्द पर श्लेष है। बेकन शब्द प्रसिद्ध महापण्डितका नाम भी है और शूकर-मांसको भी कहते हैं।

२. तत्कालीन गवर्नरकी कौंसिलमें अर्थ-सदस्य।

हैं, कूपोंके शीतल खोखड़ोंसे निकलता हुआ कबूतरोंका निरर्थक कूजन ग्रीष्म भारसे दबी हुई वायुमें ऊपरको चढ़ता है। इन्द्रधनुषके रंगोंसे रंजित गिरगट सुखसे शाखामें सो रहा है और कुंदन की गई जैसी कायवाले गुबरीले पत्तों पर पड़े हैं। जलको चमचमाती गहराईमें नीचेकी ओर यदि छोटी-छोटी मछलियाँ विश्राम करती हैं तो मौन देवनाओंके मंदिर-शिखरपर अपने सौंदर्यको समेटे हुए मोर सुखसे आसीन हैं। इस समग्र सुखदायी और कमनीय मान्यताके बीच बेचारा किसान परिश्रम करता है और भूखसे प्राण गँवाता है (भूखों मरता है)।

दफ्तरके शिष्ट बाबुओं और संसारके कृषि-पण्डितों द्वारा लिखे गवर्नमेंटके गृह कार्यालयके कबूतरोंकी काबल सरीखे खानोंमें रखे हुए, दमनोड़-इचिकीके समान निरंतर चलते रहनेवाले विस्तृत लेखों और निबंधोंके भारी पोथे इस परिस्थितिको नहीं सुधार सकते, इसमें रद्दो-बदल करनेमें असमर्थ रहेंगे। साम्राज्यीय नीतिके दीप्त मायाजालका भरण पोषण भारती किसानके कंधोंपर जब तक आश्रित रहेगा, जब तक रक्तवर्ण (सिदूरिये)सैन्य-समूह सुनहरे चोबदार, धूमल राजनीतिज्ञ और अपक्व अधकचरे) कमीशन (आयोगों) को उसको उदर-पूर्ति करनी पड़ेगी, तब तक वह भूखका मारा ककालवत् जैसा अब है, वैसा ही सदैव बना रहेगा।

भेदन करता गरुड़ कल्पनाका, जब समर तुच्छ तूफान।
कौन सोचता खड़ी फसलका, बिज्जु कर रही नाश महान॥

बूढ़ा अनुभवी इंगलैंड, यदि अपने दर्प और सिंहासनको विशाल पूर्वमें सुरक्षित रखना चाहता है तो मेरा कहना है कि उसका मूल्य भी उसको मर्दकी भाँति चुकाना चाहिए। संस्कृतकी प्राचीन लोकोक्तिके अनुसार कुछ न देनेपर कुछ भी नहीं मिलता और अधलेसे अत्यन्त तुच्छ नगण्य लाभ होता है। बिना कुछ दिये प्राप्त ऐसे थोथे गौरवसे लज्जाके अतिरिक्त और क्या हाथ आ सकता है?

परन्तु रेवेन्यू बोर्ड और दुर्भिक्ष कमीशनके घने अंधकारमें भी बेचारा भारतीय किसान अपनी प्रसन्नता नहीं छोड़ता। ध्यानपूर्वक देखनेपर, हमको उसके जीवनमें फिर भी एक मृदुल प्रभा दिखाई देती है। मैं न तो कायर्ड हूँ और न कृषि सम्बन्धी जटिलता ही में पड़ना चाहता हूं। एक लैटिन उक्तिके अनुसार 'पुरीष सम्बन्धी वार्तालाप करनेसे क्या होगा?' परन्तु मैं उस मिठासके सम्बन्धमें अवश्य कहूँगा, जो धरती और आकाशका घनिष्ट संसर्ग एकाकी परिश्रमके सन्नाहमें खेतोंपर बरसता है। अपने सिरजे संसारके विविध दृश्यों और ध्वनियोंके बीच (मध्य) ईश्वर सदैव खेतिहरके साथ रहता है। किसान उषादेवीके रहस्यमय मंदिरका पुजारी है। जहाँ शोरगुलसे परे भोजनालयोंका उष्ण वातावरणीय न्यायालयों वा धूल-धूसरित आफिसोंमें अपना समय बिताने वाले हम-से व्यक्तियोंको शायद ही कठिनतासे अर्चना करनेका अवसर मिलता है, वहीं वह वर्षा और घामके प्रति आशा और आशंका भरी अंजुलियाँ भेंट करता है, वहीं वह उन चिड़ियोंके राग सुनता है, जो शायद ही कभी हमारे कानमें पड़े हों और ऐसे शकुनोंके अर्थ लगाता है, जो हमारे लिए सर्वथा निरर्थक हैं।

क्रोधमें भरा अपनी मांदको लौटा जा रहा हिंसक पशु घने वनोंमें विश्राम करनेसे पहले अपनी प्यास बुझाता हुआ बारहसिंहा, सुदूर सरकी ओर मेरी-सा स्वर देती उड़ती जा रही पक्षियोंकी पांत (पंक्ति), रात्रि द्वारा पूर्व संयुजित सड़े शवकी ओर भारी उड़ानसे लपकता जानेवाला गिद्ध, उथले जलोंकी ओर पंखोंको फड़फड़ाता जा रहा सारस और इधर-उधर, दायें-बायें कतराता हुआ-सा गतिशील सियार, यह सब, और इनमेंसे प्रत्येक जानने-समझनेवाली आँखोंके लिए अशुभका अग्र सूचक है। तत्पश्चात् दिवस (अपने प्रचंड गौरवके साथ) उग्र जीवनकी फड़कती हुई निश्शब्दताको लौटा लाता है — फिर वापस ले आता है और कंपित छायाके नीचे प्रकृतिके मृदुल स्पंदनोंके बीच किसान अपने दिवास्वप्नमें लीन हो जाता है और तब क्रीत दासों जैसा हृदयहीन परिश्रम यत्किंचित तथा जीवनको घुला देनेवाली चिंताएं और सब कुछ ही यत्किंचित क्षणिक विस्मृतिके गर्भमें वाष्पवत् विलीन हो जाती है, उस समय वह अपने भगवानके सम्मुख होता है और प्रकृतिकी पवित्र निश्शब्दता उसे सेती है। फिर जब लम्बी परछाइयाँ पड़ने लगती हैं तो पुनः जागने और परिश्रम करनेका समय आ जाता है, वायुमंडल पुनः एक बार सुनील एवं गहरे आकाशमें पूर्ण प्रभुत्वसे उतराती चीलोंकी तीखी सीटियों, फुदकती छोटी चिड़ियोंका कानोंमें गूँजनेवाली ध्वनियों और घास तथा पत्तियोंसे निकल रही झींगुरकी झनकारोंसे पूरित हो जाता है। बड़े बगुले तालाबोंमें जहाँ-तहाँ पोस्त और ईखके लिए जल संजित है. मछलियोंका शिकार प्रारम्भ कर देते हैं। सैण्डपाइपर चमकते जलाशयोंके किनारोंपर शोर मचाते वा उसके ऊपर आकाशमें रुपहले बादलोंकी भाँति छोटे-छोटे गोल-गोल चक्कर लगा रहे हैं।

दुखित डुबकैलिया (जलकौआ) सूखे ताड़के ठूठपर चौकन्ना-सा बैठा है।

वानवर (ब्लैक डिवज) खर-पतवारके भीतर शीघ्रतासे आ-जा रहे हैं और जब-तब किसी छोटी मछलीका पीछाकर पानीमें तीरकी भांति डुबकी मारते हैं। जहाँ जीवन और मृत्युकी मशीन ही पूरी शक्तिसे चल रही है, वहाँ हमारा किसान अपने शांत बैलोंको हाँका देता हुआ अपना जीवन बीताता है। फिर धीरे-धीरे अन्धकार छा जाता है, चारों ओर फैलने लगता है और तदुपरांत व्यालुके साथ घरेलू बात, कुछ गप-शप तथा तम्बाकू और कभी-कभी दुखांत गीतके पश्चात् दयालु निद्रा उसे अपनी गोदमें लिटा देती है।

गाँव स्मरणातीत कालसे हैं। उनके नाम, उनकी परम्परा, उनके वंशानुगत पद धुँधले पुरातनसे असंख्य पीढ़ियों द्वारा चले आ रहे हैं। इतिहास अपने रौंदते सैन्य समूहों, विजेताओं, अपनी परिवर्तित हो रही राज-वंशावलियों और अपने अस्थिर कानूनों द्वारा उनपर अतिक्रमण करता है, उन्हें प्लावित करता है—परंतु बिना परिवर्तन किए जैसा का तैसा छोड़ जाता है।

गाँव आत्म-निर्भर है। वह एक पूर्ण रचना है, युगरूपी पर्ण शाद (पर्णहरित अर्थात् वृक्षके पत्तोंको हरित वर्ण प्रदान करनेवाले तत्व) से रंजित, संस्थाएँ रखते हुए भी उसका परसीम (अर्थात् कोशस्थित जीवनतत्वयुक्त) होना शक्य है। परंतु इससे क्या, वह तो अब भी एक पूर्ण जीवित सत्य है। उसके अस्तित्वके लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु वहाँ मौजूद है। हविसका वहाँ नाम नहीं है। नैराश्य और घर्षणकी मर्मान्तक पीड़ाओंसे गाँव सर्वथा अपरिचित है। सदैव अपनी भविष्योन्नतिको विस्तृत करने तथा आफिसकी पेटियोंको लदवाकर शिमला शैलपर चढ़ाकर ले जानेवाले हम जैसे व्यक्ति इनसे कुछ शिक्षा ले सकते हैं।

है समक्ष सिसिफस नरेशके क्रूर कर्मका यह दृष्टांत।
सतत् प्रजासे शक्ति छीनना, उनको ही करने आक्रांत ॥१॥
किया कुठाराघात उसीसे फलवश वह संतप्त हुआ।
अंत हुआ उसका अति दुखमय, नरक मिला अभिशप्त हुआ ॥२॥
मिथ्या गर्व बड़ा है केवल नहीं प्राप्त प्रभुता होती।
पर उसकी आकांक्षा ऐसी, भीम परिश्रम ले लेती ॥
शैल शिखर तक बार-बार वह शिलाखंड ढो ले जाता।
जो गुरुत ही खिसक वहांसे अवनीतलपर फिर आता ॥

(अत्यंत प्राचीन लैटिन कविता : अनुः श्रीकृष्ण प्रकाश)

इस कवित्वमय परिस्थितिमें जहां मैंने अभी कहा है कि हविसका नाम नहीं है, अन्य बहुत-सी बुराइयोंका भी अभाव है, मिसालके तौरपर गांवमें समाचार नहीं आते। वह समाचार क्षेत्रके बाहर है। वास्तवमें यह भी एक वरदान है। प्यारे मिथ्याभिमानी तनिक ऐसे अस्तित्वकी तो कल्पना कीजिये कि जहाँ न राजनीति है, न यात्राएँ और न सट्टेबाजी। न गारनैट[1] कुलजी सरीखे वीर सेनानी हैं, न ग्लैडस्टन[2] सरीखे राजनीतिज्ञ, न कैपटिन कैरी[3] सरीखे अन्वेषक हैं, न साराबर्न हार्डस[4] सरीखी प्रसिद्ध नटी। संसारमें यदि कहीं स्वर्ग है तो यहाँ है। पर्वतके पार्श्व भागमें अवस्थित सैंट पीटर्सबर्गके नीरस समाचारपत्रोंके अपने शुष्क अनुवादकों टर्रटर्र करनेवाले प्रेस कमिश्नरका यहाँ दूर तक पता नहीं है और न पायोनियर पत्र द्वारा गाये हुए—बड़े लाटकी कौन्सिलमें हुई सर जान स्टैंचीकी जबरदस्त चोटोंकी सराहनाके गीत ही सुनाई देते हैं। वरन् यहाँ तो ऊपर स्वर्ग आकाशमें भरन (चंडूल) अपना राग निरंतर अभिवृद्धिसे अलापता है और नीचेका धरातल मीठे अनाजकी उपजसे भरा पड़ा है और इस शांत प्रसन्नताके बीच कि जिससे धरती-माताकी गोद भर रही है, किसान अपने निम्न जीवनका स्वप्न देखता है। अनु०—मदनगोपाल तिवारी

१. एक महान फौजी अफसर, जिन्होंने जनरल गार्डनकी अधीनतामें खारतूम विजय किया।
२. इंगलैंडके प्रसिद्ध लिबरल नेता व महामंत्री, महारानी विक्टोरियाके समय।
३. प्रसिद्ध अन्वेषक व यात्री।
४ प्रसिद्ध फ्रेंच अभिनेत्री (१८४४-१९२३)

[यह लेख अस्सी वर्ष पूर्व अंग्रेजीमें लिखा गया था।]

रामगिरिका रंगमंच

विनयमोहन शर्मा

भारतमें नाटकोंका उदय ईसा शतीसे कितने वर्ष पूर्व हुआ, इसका अनुमान करना कठिन है। वेदोंमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। उसमें यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी-संवाद आदिको देखकर अनुसंधानकर्ताओंने ऋग्वेद-कालसे ही नाटकोंकी सृष्टि प्रतिपादित करनेका प्रयत्न किया है। विनोदमें प्रायः यह कहा जाता है कि शोधकी यह परम्परा आर्य-समाजी विद्वत्ता है, जो संसारकी हर विद्याका स्रोत वेद मानती है। यदि वैदिक कालमें मानव-समाज सुसंस्कृत हो चुका था तो अभिनय, नृत्य आदि कलाएँ उस समय अवश्य आविष्कृत हो चुकी होंगी। यजुर्वेदसंहिताके मंत्रोंमें 'नृत्य' गीत शैलूष (नट) आदिका स्पष्ट उल्लेख है। नाटकोंका प्रारम्भ 'नृत्य' से ही माना जाता है। 'नृत्य' के साथ अंग-चेष्टाके संयोगसे मूक अभिनयकी सृष्टि हुई होगी, इसमें संदेह नहीं। केरलका कथाकली 'नृत्य' मूक अभिनयपूर्ण नाटक है और यह हमारी प्राचीन नाट्य-परम्पराके इतिहासकी एक शृंखला ही है। पाणिनिके 'पाराशर्य्य शिलालिभ्यां भिक्षु-नट सूत्रयो' में 'नट' या अभिनेताका संकेत है। रामायण[1] और महाभारत-कालमें नाटकोंके अभिनीत होनेके वर्णन हैं। पुराण, जैन और बौद्ध साहित्यमें अभिनय-कलाके प्रचलित होनेके उल्लेख प्राप्त होते हैं।

भारतमें सबसे प्राचीन नाट्यशास्त्रका प्राप्त ग्रंथ भरत मुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' है। भरतके समयके सम्बन्धमें विद्वानों में मतभेद है। कोई उनका ईसा शतीके कुछ पश्चात् और कोई ईसा शतीके हजारों वर्ष पूर्व प्रादुर्भाव मानते हैं।

जर्मन प्राच्य-विद्यापंडित ब्लॉखने छत्तीसगढ़ (मध्यप्रदेश) के सरगुजा जिलेके अन्तर्गत अम्बिकापुरसे २५ मील दूर स्थित रामगढ़ पहाड़ीकी सीताबेंगा गुफामें प्राचीन रंगमंचकी खोज की है। रामगढ़ या रामगिरिके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंका कहना है कि कालिदासके मेघदूतमें वर्णित रामगिरि यही है। यहीं स्निग्ध छाया विपटोंके बीच अभिशापित यक्षने आश्रय लिया था।[1] और यहींसे अपनी विरह-विदग्धा पत्नीको आषाढ़के प्रथम दिवस उत्तरकी ओर उड़नेवाले मेघके द्वारा प्रेषित किया था।

इस प्रकृतिकी रम्यथलीके मध्य खड़ी पहाड़ीमें सीताबेंगा (सीताके निवास-स्थान) के पास ही "जोगीमारा" गुफा है। सीताबेंगामें भरतके नाट्यशास्त्रमें निर्दिष्ट रंगमंचकी रचना है और जोगीमारा गुफाकी छतपर सबसे प्राचीन चित्रकलाके अवशेष हैं। नाट्यशास्त्रमें रंगमंचको गुफाके सदृश होनेका निर्देश है।[2] सीताबेंगा गुफाका द्वार हाथीके सदृश है, जिसे ग्रामवासी "हाथीपोल" कहते हैं। पोलका अर्थ द्वार है। यह गुफा प्राकृतिक "टनेल" (सुरंग) सी दीख पड़ती है, जो लगभग १८० फुट लम्बी और लगभग २० फुट ऊँची है। इस गुफामें नाट्यशास्त्रके अनुसार सामाजिकों (दर्शकों) के बैठने तथा रंगमंचका प्रबन्ध है। यह गुफा ४,२०० वर्ष प्राचीन है। यद्यपि जल-वृष्टिके कारण रंगशाला यथावत् नहीं है, परन्तु आज भी जो अवशेष विद्यमान हैं, वे उसकी अवस्थितिका प्रमाण देते हैं। जब तक बीहड़ वनकी इस गुफाको ब्लाखने छानबीन नहीं की थी, जनता इसे बौद्ध भिक्षुओं या साधुओंकी तपस्या-स्थली मात्र मानती रही है। एक गुफाका 'जोगी-मारा' नाम इसीसे पड़ा है। गुफाके द्वारपर प्राकृतमें दो पंक्तियोंका शिलालेख है।

१–अदिपर्यंति हृदयं। सभावगरू ए रातयं…

२–दुले वसंतिया। हासावन्भूते। कुंदस्फतं एव अलंगत…

इनका भावार्थ यह है—(१) स्वभावसे सभ्य कवि हृदयको प्रज्वलित करते हैं, (२) वसन्तऋतुके दोलोत्सवपर जब पूर्णिमाका हास फैल जाता है तब प्रसन्न जनता कुंद-फूल के हारको धारण करती है।

---

१. नटनर्तक संघानां गायकानां च गायताम्
यतः कर्ण सुखावाचः सुश्राव जनता ततः। (अयोध्याकाण्ड)

१. काश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्ष भोग्येण भर्तुः
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु। (मेघदूत-१)

२. कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिनाट्यमंडपः। (नाट्य-शास्त्र)

'सीता-गुफा' के कुछ ही अन्तरपर 'जोगीमारा' गुफा है। इस गुफाके प्राकृत शिलालेखमें सुतनुका और रूपदक्ष (चित्रकार) का उल्लेख है। दोनों गुफाओंके लेख काव्य-रससे ओतप्रोत हैं। 'सुतनुका' तो कोई देवदासी या रूपदक्ष देवदीनकी प्रेयसी हो सकती है, जिसकी प्रणय-कथा गुफामें चित्रित है। श्री के० देवका अनुमान है कि जोगीमाराकी चित्रकारी अजन्ताके भीत्ति-चित्रोंसे लगभग सौ वर्ष प्राचीन है। उनका यह भी अनुमान है कि सुतनुका सीताबेंगाकी नाट्यशालाकी अभिनेत्री होगी। ब्लाखका यह मत कि सीताबेंगाकी रंगशाला यूनानी रंगशालासे प्रभावित है, ठीक नहीं है। वह भरतके नाट्य-शास्त्रके निर्देशोंके अनुरूप होनेसे सर्वथा भारतीय है। सीताबेंगाकी गुफाके सम्बन्धमें हिन्दी-जगत्में पर्याप्त जानकारी नहीं है। पं० सीताराम चतुर्वेदी अपने 'अभिनव नाट्य-शास्त्र' में लिखते हैं—"मध्यभारतके रींवा राज्यान्तर्गत सरगुजा नामक उपराज्यकी दो पहाड़ियोंमेंसे एककी सीता-बेंगरा नामक गुहामें कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ किसी समय प्रेक्षागृह रहा होगा। जिसका समय विक्रमाब्दसे कम-से-कम दो सौ वर्ष पहलेका बताया जाता है। उसमें जो चित्रकारी है, उसके विषयमें कुछ विद्वान बतलाते हैं कि भरत मुनिने नाट्यशालामें जिस प्रकारकी चित्रकारी करनेका विधान किया है, वैसी ही चित्रकारी इसमें मिलती है। किन्तु यह मत नितांत भ्रामक है। उसके पासवाली गुफामें जो अशोक-कालीन ब्राह्मीमें खुदा हुआ शिलालेख है, उससे केवल इतना पता चल जाता है कि सुतनुका नामकी किसी देवदासीने नर्तकियोंके लिए यह गुफा बनवाई थी। अतः उसे नाट्यशाला न कहकर नृत्यशाला कहना चाहिए।" (पृ० १०)

सीताबेंगा गुहाकी भौगोलिक स्थितिसे लेखक सर्वथा अपरिचित है। रींवा राज्य कभी मध्य-भारतके अन्तर्गत नहीं रहा और सरगुजा राज्य कभी रींवा राज्यका उपराज्य नहीं रहा। रींवा पहले स्वतंत्र रियासत थी। बादमें विन्ध्य-प्रदेशकी राजधानी थी। अब मध्य-प्रदेशकी कमिश्नरीका प्रमुख स्थान है, जो जबलपुर-इलाहाबाद रेलवे लाइनपर सतना स्टेशनके सन्निकट है। सरगुजा मध्य-प्रदेशकी उड़ीसा से संलग्न छत्तीसगढ़ कमिश्नरीका राज्य रहा है। अब वह मध्य-प्रदेशका एक जिला है, जिसका जिला-केन्द्र अम्बिकापुर है। सीताबेंगा, अम्बिकापुरके पास है। सीताबेंगा गुफामें चित्रकारी नहीं है, उसीके पास दूसरी जोगीमारा गुफा है, जिसमें चित्रकारी है और उसीमें रूपदक्ष चित्रकार देवदीनकी कलाका विलास है। सीताबेंगाके रंगमंचपर सुतनुकाका नृत्य ही हो सकता है, नाटकका अभिनय नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है? अवशेषोंसे तो नाट्य-शास्त्रके अनुरूप वहाँ प्रेक्षागृह होनेके प्रमाण ही अधिक मिलते हैं। यह छत्तीस-गढ़ (मध्य-प्रदेश) का सौभाग्य है कि उसकी घने वन-उपवनोंसे आवृत रमणीय पहाड़ियोंमें आज भारतीय कलाका प्राचीनतम रूप कुछ अंशमें सुरक्षित रह सका।

जनतंत्रका अभिशाप !

देशके प्रतिनिधित्वका बीड़ा लेकर जब मैं निकला, तो फूला न समाया। सेवाका अनूठा अवसर पाकर प्रसन्नतासे मैं उछल पड़ा और संसद्-भवनमें प्रवेश कर गया।

किन्तु वहाँपर पक्ष-विपक्षके झंझावातने मुझे बुरी तरह झकझोर डाला। राष्ट्रके कल्याणमें मतैक्यकी संभावना जनतंत्रका दूषण हो गई। संकुचित सीमाओंमें आबद्ध होकर माताके हितकी अवहेलना हृदय-विदारक है।

—किशनसिंह

कहानी

तमाचा

'बनफूल'

जिस मरीजको फीस दे जानेकी बात थी, वह शाम तक नहीं आया। मैं कुछ उदास-सा हो गया—मैं यह खूब जानता था कि अगर दवाका दाम या फीस बाकी रहे तो वह शायद ही चुकाया जाता है, फिर ज्यादा तगादा करनेसे लोग नीच, ओछा कहकर पुकारते हैं। इसलिए वैसा करना भी बेजा नहीं है। जो दवाके दाम या फीस बाकी रखते हैं, वे भी शर्मिन्दा ही रहते हैं और हमेशा छिप-छापके भागना चाहते हैं। अगर रास्तेमें कहीं मिल गये तो इस तरहका ढोंग रचते हैं, जैसे उनके लिए मैं एक नया आदमी हूं या झटसे बगलवाली गलीमें ओझल हो जाते हैं। फिर जब कभी दवा या इलाजको जरूरत हुई तो दूसरे किसी डा० के पास पहुंच जाते हैं। इन्सानकी ऐसी अक्लमन्दी देख कर मेरा मन उचट गया था। मित्र महाशयके घरपर लगातार चार दिन दोनों बेर मैं गया, लेकिन अभी तक एक पैसा न मिला। आज भी उन्होंने कहा था कि अभी दे जाऊंगा, मगर उनकी सूरत अब तक नजर नहीं आई। रातके नौ बजे हैं, महाशयने एक खबर तक नहीं भेजी। कैसे अजीब देशमें मेरा जन्म हुआ है! मैं उठने ही वाला था कि इतनेमें दरवाजेपर गणेश दा खड़े दीख पड़े। गणेश दा बिल्कुल बेकार हैं। बहुत दिन हुए नौकरीसे पेन्शन ले ली है। घरवालीका भी काफी दिन पहले स्वर्गवास हो गया है और लड़की-लड़कों को कोई-न-कोई सहारा मिल गया है। इसलिए अब उनका अपना कोई काम नहीं है। दूसरोंके घरकी बातें जानना, नीची आवाजसे एककी बात दूसरेसे कहना, अफवाहोंका संग्रह कर उनका प्रचार करना, किस मन्त्रीने क्या किया है, इसपर सिर मारना आदि बातोंके चक्करमें ही वह पड़े रहते हैं। बवासीर, गठिया, खुजली आदि उनकी पालतू बीमारियां हैं। इनमेंसे जब जिसका असर होता है, उसकी दवा करने मेरे पास आ जाते हैं। पैसा-वैसा देनेका नाम तक भी नहीं लेते।

गणेश दा भीतर आते-आते बोले—"डाक्टरी करना छोड़ दो, बीमारीको ही नहीं पकड़ सकते, अप-टु-डेट दवाइयोंके नाम भी नहीं जानते—इस प्रकार डाक्टरी करनेसे क्या लाभ है" बोलकर वे हँस दिये।

"क्यों—बात क्या है?"

"मित्र बाबूके बेटेका क्या तुमने इलाज किया था?"

"हाँ, पिछले चार दिनोंसे कर रहा हूँ। अभी तो उनके घरसे फीस देनेको किसी व्यक्तिके आनेकी बात थी, लेकिन अभी तक नहीं पहुंचा।"

"कोई नहीं आवेगा। उन्होंने सिविलसार्जनको बुलाया है। सभीसे कहते हैं कि तुम बीमारीको नहीं पकड़ सके।"

"क्या सच बोल रहे हो?"

"अपने कानों सुन आया हूँ।"

गुस्सेके मारे सारा बदन जलने लगा। मगर चेहरेपर उसकी छाप तक नहीं आने दी। सिर्फ मुस्कुराकर बोला—"अच्छी बात है।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर गणेश दा बोले—"कलसे फिर बवासीरकी तकलीफ हो रही है—क्या कुछ दवाई दोगे या नहीं?"

मैं कुछ क्षण चुप रहा, फिर बोला—"देखिये गणेश दा, दे सकता हूं, अगर दवाका दाम आप नकद दे सकें। इस देश में भलाई करनेकी और इच्छा नहीं है।"

"बाप रे—आज तो एकदम बिगड़े हुए हो—अच्छा मैं चला—सेंक-बेंक कर लूंगा, कल फिर आऊंगा—मुमकिन है कल तक सब ठीक हो जायगा।"

गणेश दा जरा मुस्कुराये और चल दिये।

कुछ देर तक मैं चुप बैठा रहा।

"कम्पाउण्डर बाबू, दवाइयोंका कुल कितना दाम बाकी है? देखिये तो—"

"दो सौ पचास रुपयेके करीब होंगे।"

'कल तगादा किया था न?"

"जी हाँ, किया था।"

"कुछ वसूल कर सके क्या?"

"जी नहीं।"

"इन सब बदतमीजोंके नाम पर केस चला दूंगा। सब के सब जुआचोर, अहसान-फरामोश हैं---" कम्पाउण्डर बिल्कुल चुप था।

'सुनिये, कल आप खुद मित्र बाबूके यहाँ जाकर बिल देते आइयेगा। चार दिनोंकी फीस बत्तीस रुपये हैं और साथ ही दवाका दाम भी।"

"जी, अच्छा—"

"अजीब देशमें पैदा हुआ हूं! एक भी सज्जन आदमी नहीं है। सब-के-सब जुआचोर धोखेबाज और नमक-हराम हैं---"

इसी समय किसीने मेरे मुँह पर जोरसे एक तमाचा जड़ दिया।

दरवाजेपर एक युवक खड़ा था—स्मरण नहीं कर सका कि कभी उसे देखा है या नहीं।

"क्या यही डा० सामंतका दवाखाना है?"

"हाँ।"

"डा० सामंत कहाँ हैं?"

"मैं ही डा० सामंत हूं—क्या काम है, बोलिये?"

युवक कुछ हिचकिचाने लगा, मानों कुछ शर्मिन्दा हो गया हो—फिर कमरेमें आकर मुझे प्रणाम किया—"मैं रतनदीघिसे आ रहा हूं।"

डाक्टरी पास करके मुझे पहले रतनदीघि ग्राममें प्रैक्टिस करनेको सूझी थी—वहाँ एक साल मक्खी मारकर तीस साल पहले यहाँ चला आया था—इतने दिन बाद वहाँसे फिर कौन आया!

"आपको तो मैं ठीक पहचान नहीं सका—"

हल्की-सी मुस्कानके साथ युवक बोला—"पहचानेंगे कैसे, मेरी माँको शायद आप पहचान लेंगे। मेरी माँका नाम है राजमणि। मैं जब पैदा हुआ तो माँको बहुत कष्ट उठाना पड़ा था—अगर आप न होते, तो माँ बच नहीं सकती।"

सारा किस्सा याद आ गया—सोलह-सत्रह वर्षकी एक प्रसव-वेदना-पीड़ित नववधूका करुण चेहरा मनके पटपर उतर आया।

राजमणिने भी एक पैसा नहीं दिया था, सिर्फ बोली थी—"आपका यह ऋण नहीं चुकाया जा सकता, डाक्टर बाबू! फिर भी किसी सूरतसे प्रणामीके रूपमें कुछ रुपये जरूर भिजवा दूंगी। यकीन रखिये मेरी बात पर।"

थोड़ा हिचकिचाकर युवक बोला—"दस साल हुए माँ चल बसी हैं, मरनेके वक्त कह गई थीं कि मैं अपनी रोजगारीसे कम-से-कम सौ रुपये आपको देता आऊं। आपके आशीर्वादसे मेरी कुछ आमदनी हो रही है, इसलिए यह थोड़ा-सा रुपया ले आया हूं।"

हजार रुपयेका एक नोट मेरे हाथमें धर दिया और मुँह नीचा करके खड़ा हो गया।

"आपका पता मालूम नहीं था, इसलिए देर हो गई, नहीं तो बहुत पहले ही आ जाता।"

अनु०—श्री अमल सरकार

खुली हाटमें

खुली हाटमें यदि मेरा कोई मूल्य न लगायगा, तो काले बाजारमें जाकर मैं अपना अधिक मूल्य भी न लगवाऊँगा। दिनभर मुक्त वातावरणमें रहकर संध्या तक प्रतीक्षा करूँगा। उसके उपरान्त यदि खाली हाथ ही घर लौटना पड़ेगा, तो चिन्ता भी न करूँगा। मस्तीसे गीत गाता हुआ अपने घर चला आऊँगा और इस प्रकार मैं तब तक पेंठ करता रहूँगा, जब तक कि खुले बाजारमें ही मेरा मूल्यांकन न हो जायगा।

—किशनसिंह

जन्तु-जगत्की विचित्रता

शशिकान्त नागर

प्राकृतिक शक्तिके दृष्टिकोणसे समस्त प्राणी-वर्गमें मनुष्य ही अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक निर्बल है। बंदरकी घुड़की, साँपकी फुंकार, कुत्तेकी भौं-भौंसे कौन भयभीत नहीं हो जाता? अन्य वनैले तथा जंगली जानवरोंको छोड़िये, गाय और बकरीके समान सीधे पशुओंके सामने आनेके लिये मनुष्यको साहस बटोरना पड़ता है।

प्रकृतिने मनुष्यकी इस शारीरिक निर्बलताके बदले उसको विचारने तथा तर्क करनेकी शक्ति दी है, जिसके फलस्वरूप वह स्वयं ही अपनी रक्षार्थ अस्त्र-शस्त्रोंका आविष्कार करता है, अन्य जीवधारियोंपर शासन करता है और प्रकृति के नियम-उपनियमोंपर भी अधिकार करनेकी चेष्टा करता है। अणु-शक्ति, द्रुतगामी वायुयान, रेडियो तथा अन्य और भी अनेक इसी प्रकारके आविष्कार उसकी इस अनधिकार चेष्टाके प्रमाण हैं।

सर्वप्रथम मनुष्यने अपने उपयोगमें लानेके लिए पत्थरों के अस्त्रों और शस्त्रोंकी रचना की। तत्पश्चात् जैसे उसकी तार्किक बुद्धि विकसित होती गई, वैसे ही उसने अपने द्वारा आविष्कृत अस्त्र-शस्त्रोंको नित्य प्रति सुडौल तथा अधिक उपयोगी बनाना आरम्भ कर दिया और उनकी संख्या भी बुद्धिके अनुसार बढ़ती गई। फिर जब उसकी दृष्टि पत्थरसे अधिक उपयोगी धातुओंको देखने लगी, तब तीर, भाले, चाकू तथा और भी अन्य प्रकारके शस्त्रोंसे उसने अपने-आप को सुसज्जित किया। किन्तु प्रगति रुकी नहीं। उसने बारूद का आविष्कार किया और नानाविध बम बनाये। साथ ही आजके अणु-शक्ति-युगमें उनके द्वारा वह दैवी अथवा अमानवीय कृत्योंके करनेमें भी सामर्थ्य रखता है।

यह प्राकृतिक नियम है कि प्रत्येक जीवको जीवित रहनेके लिए दूसरे जीवपर आश्रित होना पड़ता है। अतएव प्रत्येक जीवके पास—पेड़ हो या पौधा, पक्षी हो या पशु, थलचर हो या जलचर—अपनी रक्षाके साधन होते ही हैं। उदाहरणार्थ गुलाब तथा थूहरके काँटे, बैल या गायके सींग, साँप एवं बिच्छूके विष और डंक, शेर तथा बाजके पंजे, हाथीके दाँत और मछलियोंमें विद्युत-प्रवाह आदि तथा और भी अन्य प्रकारके ऐसे ही अंग भाँति-भाँतिकी रक्षाके साधन हैं।

"रक्षा"से अभिप्राय प्रत्येक प्रकारकी शारीरिक तथा प्राकृतिक रक्षासे है, अर्थात् क्षुधासे रक्षा, मौसमसे रक्षा और शत्रुओंसे रक्षा इत्यादि। इसलिए वे समस्त अवयव या अंग जिनके द्वारा पशु-पक्षी, पेड़-पौधे अथवा अन्य प्राणी अपनी रक्षा करते हैं, "रक्षात्मक अंग" कहे जा सकते हैं। किन्तु इन अवयवोंका बल एवं कार्य केवल रक्षात्मक ही नहीं, अपितु आक्रमणात्मक भी होता है।

यह धारणा है कि अस्त्र-शस्त्र-धारी ये पेड़-पौधे या पशु-पक्षी अजेय हैं, भ्रमपूर्ण है; क्योंकि यदि ऐसा हो तो दूसरे जीव भूखे मर जाते। इसलिए इन अस्त्र-शस्त्रोंसे जीवकी केवल रक्षा होती है तथा इस प्रकार ये चेतन-जगत्के द्रुतगामी विनाशको रोकते हैं। इस प्रकार ये अस्त्र-शस्त्र जीवधारियोंको भोजनके लिए शिकार करनेमें, रहनेके लिए स्थान या घर-घोंसले बनानेमें, लड़ने एवं रक्षा करनेमें, आक्रमण करनेमें, भोजन-सामग्री एकत्र करनेमें तथा अपनी संततिकी रक्षा व पालनमें सहायता करते हैं।

इस लेखका उद्देश्य केवल ऐसे "अस्त्र-शस्त्र"-मूलक अंगों पर प्रकाश डालना है, जो प्राकृतिक रूपमें जीवोंमें पाये जाते हैं और जिनका रक्षात्मक तथा आक्रमणात्मक उपयोग है। मछली-समुदायके सभी प्राणी एक दूसरेको खाकर अथवा पानीमें रहनेवाले अन्य जीवोंका भक्षण करके जीवित रहते हैं। इनमेंसे कई तो ऐसे भी होते हैं जो अपने ही अण्डों तथा बच्चोंको खा जाते हैं। किन्तु इतनी भीषण "भक्षा-भक्षी" के पश्चात् भी प्रकृति-संतुलन भंग नहीं होता तथा जलचरोंकी संख्यामें भी किसी प्रकारका अन्तर दिखाई नहीं देता। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रकृतिने इन जलचरों को अगणित संख्यामें अंडे उत्पन्न करनेकी शक्ति दी है। करोड़ोंकी संख्यामें मछलियां अंडे देती हैं। यदि प्रत्येक अण्डा जीवनके पूर्ण-विकासको प्राप्त कर ले, तो कदाचित् समुद्रमें उनके रहनेके लिये स्थान भी न रहे। एक काड मछली सात लाख अण्डे देती है, पर अनुमानतः उनमेंसे लगभग एक दर्जन अण्डे ही सुरक्षित रहकर मछलीका रूप धारण करते हैं। सात लाख अण्डोंमेंसे अधिकांशको तो मछलियाँ ही अंडोंके रूपमें खा जाती हैं और कुछ जन्म लेने

के पश्चात् मछली रूपमें अन्य मछलियोंके भोजनका शिकार हो जाती हैं। जो इस चंगुलसे भी बच निकलती हैं और उसके बाद भी बची मछलियां प्रायः बड़ी जातिकी मछलियों की भोजन-सामग्री बन जाती हैं। कुछ ही मछलियां अपनी जीवन-रक्षा कर पाती हैं और जो पूर्ण समर्थ होती हैं, वे प्रायः मृत्युके इस आकस्मिक शिकंजेसे बच निकलती हैं, किन्तु इस सामर्थ्यका कारण तथा उनके बचावका साधन उनके निजी आंगिक शस्त्र हैं।

ब्लो या सेई मछली एक विचित्र जीव है। यह देखने में गोल होती है और इसके चारों ओर काँटे होते हैं, जिनमें एक प्रकारका विष भरा होता है। साधारणतः इसके काँटे पीछेकी ओर मुड़े रहते हैं और शरीर पिचका होता है; किन्तु संकट आनेपर यह अपने-आपको हवा भरके अथवा पानी पीकर फुला लेती है, जिससे काँटे सीधे खड़े हो जाते हैं। इस दशामें कोई जीव यदि इसके निकट पहुंच जाय तो समुद्रकी यह शूल-गद्दी उसे इस प्रकार छेद देती है, जिस प्रकार हलवाई पेठेको। यही नहीं, इसके अतिरिक्त इसके दाँत इतने तेज व नुकीले होते हैं कि वह बिना किसी कठिनाईके आदमीकी उँगलीको काट डालती है।

"विद्युत-प्रवाहका उपयोग और उसकी उत्पादन-विधि केवल मनुष्यका विधान है", यह भावना भ्रान्तिपूर्ण है। ईल तथा रे नामक मछलियाँ अपनी रक्षाके लिए इस विद्युत-प्रवाह (शक्ति) का उपयोग मनुष्योंके उपयोगसे सहस्रों वर्ष पूर्वसे करती आ रही हैं। विद्युत-शक्तिका अपने ही अंगोंसे उत्पादन कर इन्होंने मनुष्य-वर्गको चकित कर दिया है, क्योंकि मनुष्य अपनी उपयोगी विद्युत-शक्ति मशीनों द्वारा उत्पन्न करता है।

अमेजन नदीकी ईल मछली अपनी मांसल-शक्ति द्वारा ५०० वोल्ट तक बिजली पैदा करनेकी क्षमता रखती है। यदि किसी प्रकार इसका बल्बोंसे सम्बन्ध जोड़ दिया जाय तो इसकी शक्ति द्वारा एक साथ एक दर्जन बल्ब जलाये जा सकते हैं। घोड़े, मनुष्य तथा अन्य पशु इस शक्तिके छूने मात्रसे ही आहत हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ मछलियां ऐसी भी हैं, जिनकी थूथन तलवारके समान तेज होती है और अन्यमें भाले या आरेकी भाँति। इस प्रकार मछलियाँ भी बहुत शक्तिशालिनी और भयंकर होती हैं। मनुष्यकी तो शक्ति ही क्या यह अन्य जलचरोंको भी अपने इन नुकीले तथा तीक्ष्ण अंगों द्वारा ठीक उसी प्रकार काट देती है, जिस प्रकार बढ़ई आरेसे लकड़ीको काट देता है।

इनकी शक्ति और आक्रमणकी तीक्ष्णताका अनुमान ब्रिटिश तथा अमेरिकन अजायब-घरोंमें प्रदर्शित वस्तुओंको देखनेसे होता है। लन्दनके एक अजायब-घरमें एक जहाज का हिस्सा रखा हुआ है, जिसमें मछलीकी तलवारनुमा थूथन २२ इंच तक अन्दर घुसी हुई है। इसी प्रकार न्यूयार्कमें नावके एक भागमें यही तलवारनुमा थूथनी १८ इंच तक घुसी हुई है।

हमारे विचारसे जलमें रहनेवाले जीवोंमें जो सबसे सुन्दर और विभिन्न रंगोंसे युक्त सीलन-ड्रेट समुदाय है, वही सबसे भयंकर, पैचाशिक, रक्षात्मक तथा आक्रमणत्मक अवयवोंसे सुसज्जित है। ये समुद्रके स्वच्छ और नीले पानी में तैरते हुए अथवा स्थिर जीव फूलों अथवा छोटे-छोटे फैले हुए पौधोंके समान मनमोहक लगते हैं। इनके कई प्रकार हैं। समुद्रमें स्थित बहुतसे द्वीपनुमा स्थान इन्हींके अवशेषों से बने हुए हैं। समुद्रका पंखा, सामुद्रिक कलम इसी जीव-समुदायके प्राण हैं। हाइड्रा नामक एक जीव, जो बहुत ही अद्भुत है, इसी समुदायका है।

ग्रीक कथाओंके प्रसंगानुसार हरक्युलिसने, जिसको यूनान का भीम कहा जाता है, हाइड्रा नामक अनेक फनधारी सर्पों का हनन किया था। रावणके समान ही हाइड्राके फन बार-बार काटनेपर भी उग आते थे, किन्तु शक्तिशाली हरक्युलिसके आघातोंके सामने वह न टिक सका। पर प्रकृतिवादियोंका हाइड्रा एक बहुत छोटा-सा जीव है, क्योंकि पौराणिक कथाके हाइड्राके समान कटे हुए अंगोंको फिरसे पैदा करनेकी शक्ति इसमें भी विद्यमान है। इसलिए वैज्ञानिकोंने इसका नाम भी उसीके अनुरूप हाइड्रा रख दिया।

पुर्तगाली युद्धपोतके नामसे विख्यात, जो देखनेमें सबसे सुन्दर किन्तु बड़ा भयानक होता हैं, एक और सीलन-ड्रेट समुदायका जीव है। यह पानीमें इधरसे उधर तैरता रहता है। तैराकोंके तूंबोंके समान ही इसका तूंबा भी इसको पानीकी सतहपर तैरनेमें सहायता देता है। यदि यह सतहसे नीचे जाना या गोता लगाना चाहता है तो अपने तूंबेसे हवा निकाल कर नीचे पहुंच जाता है। इस कथनमें कितनी सचाई है, कहना कठिन है, क्योंकि ऊपर आनेके लिए फिर इसे अपने तंबेको हवासे भरना होगा, जिसका पानीमें मिलना

असम्भव है। तूँबेके नीचे पतले-पतले और लम्बे डोरोंके समान इसके अगणित रेशे होते हैं। किसी-किसी जीवमें इनकी लम्बाई पचास फुट तक होती है। इन रेशोंमें छिपे हुए इनके रक्षात्मक तथा आक्रमणात्मक अंग, जिनको निमैटौ सिस्ट (डंक) कहते हैं, होते हैं, जो बड़े भयंकर होते हैं। बिच्छू तथा बर्रके डंकसे हजार गुना तेज इनके डंकोंमें विष होता है। ये डंक कोष्ठोंमें स्थित होते हैं। जिस प्रकार बन्दूकमेंसे गोली निकलती है, उसी गतिसे इन कोष्ठोंमेंसे पतला और नुकीला डंक निकलता है। यह डंक ठोस न होकर भीतरसे पोला होता है और उसमें एक प्रकार का विष भरा होता है। जब यह प्रतिस्पर्धी या शत्रुके शरीरमें घुसता है, तब यह एक विषैले तीरके समान काम करता है।

मद्रासके निकट महाबलीपुरम नामक एक स्थान है। संयोगवश उसे देखनेका अवसर हमें प्राप्त हुआ। एक दिन हम सब मित्रोंने मिलकर समुद्रमें तैरनेकी ठानी। जैसे ही हम तट पर पहुंचे, हमने देखा, बहुत-से "पुर्तगाली युद्धपोत" लहरोंके बहावके साथ किनारेपर आ गए हैं। हमें मालूम था कि इन तुँबोंको छूनेसे बुलबुलोंकी तरह आवाज होती है और वे फूट जाते हैं। जब यह बात बताई गई, तब साथी परीक्षणके लिए उद्यत हो गए। पर जब हममेंसे एकने झिझकते हुए उंगली लगाई, तो कदाचित् वह गलत स्थानको छू गये, क्योंकि उन्होंने अचकचाकर एकदम हाथ खींच लिया और जोरसे झटकने लगे तथा कहने लगे कि उस स्थानपर बड़ी जलन हो रही है।

थलचरों और नभचरोंमें दाँतों, सींगों और पंजोंका विशेष महत्व होता है। वे केवल रक्षात्मक और आक्रमणात्मक ही नहीं, वरन् बहु उपयोगी होते हैं। शेरके दाँत, हिरन और बैलके सींग तथा बाजके पंजोंसे कौन परिचित नहीं।

दाँतोंका उपयोग एक स्वाभाविक प्रकृति है। प्रागैतिहासिक कालमें जब मानव अन्य पशुओंके समान ही अपने निजी जीवन-साधनोंको एकत्र करनेमें शिकारकी खोजमें दिन भर घूमता-फिरता था, तब वह दाँतोंका सर्वाधिक उपयोग करता था। इस प्रवृत्तिका अंश आज भी मानव जातिमें देखा जा सकता है। आपसकी हाथा-पाईमें जब प्रतिद्वन्द्वी अधिक बलशाली होता है और वश नहीं चलता, तब खसोटना, नोचना, काटना, पेट या नाकपर सिर मारना अथवा किचकिचाकर परवशता प्रगट करना आदि बच्चोंसे लेकर बड़ों तकमें देखा जाता है। यह प्रवृत्ति बच्चोंमें विशेष रूपसे विकसित रहती है।

यद्यपि बच्चोंके दाँत भोजनको चबानेके अतिरिक्त अन्य कामोंके करनेमें असमर्थ हैं, तब भी उस स्वाभाविक प्रवृत्तिके अधीन होनेके कारण वे उनका उपयोग अखरोट, बादाम इत्यादि तोड़नेमें करते हैं, जो उनके दाँतोंके लिये अत्यन्त हानिकारक है। बहुत-से पशु उनका प्रयोग चाकू, चिमटी, छेनी, कुदाली, बर्मा और अन्य प्रकारके औजारोंके समान करते हैं।

स्तनधारियोंमें दाँतोंका विकास बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। वैसे तो पक्षी-समुदायके अतिरिक्त रीढ़की हड्डीवाले सभी जानवरोंमें दाँत पाये जाते हैं, किन्तु वे सब एक प्रकारके नोकीले और पीछेकी ओर मुड़े होते हैं। मत्स्य-समुदायसे लेकर पक्षी-वर्ग तकके समस्त जीव अपना आहार समूचा ही निगल जाते हैं, इसलिये उनके दाँत चबाने या कुतरनेके कार्यमें कोई सहायता नहीं करते। पर स्तनधारी अपने आहारको कुचलके अथवा काटकर कुतरकर खाते हैं, इसलिए इनके दाँत कई प्रकारके होते हैं। दाँतोंकी संख्या भी स्तनधारी समुदायके प्राणियोंमें एक-सी नहीं होती। दाँतोंको देखकर किसी जीवकी खान-पानकी आदतका अनुमान किया जा सकता है। स्तनधारियोंके मुखमें प्रायः चार प्रकारके दाँत विभिन्न रूपोंमें पाये जाते हैं—१. कर्तक, २. कीले, ३. अनुचर्वक, ४. चर्वक।

कर्तक—ये छेनीनुमा तेज फलदार दाँत मुखके अग्रभागोंमें पाये जाते हैं। इनके द्वारा खरगोश, चूहे, गिलहरी इत्यादि अपने भोजनको कुतरकर और काटकर खाते हैं। इन्हींके द्वारा बीवर नामका एक जानवर बड़े-बड़े पेड़ोंको काट देनेकी क्षमता रखता है। छछूँदरवंशी जीवोंमें यह कर्तक आगेकी ओर निकले रहते हैं। ये लम्बे होते हैं और इनका प्रयोग चिमटीकी भाँति करते हैं, जिससे कीड़ोंको पकड़नेमें इन्हें बहुत सहायता मिलती है। ये एक प्रकारके चिमगादड़में जिसे वैम्पायर कहते हैं, बहुत तेज होते हैं। इनका प्रयोग यह चिमगादड़ एक अनुभवी शल्य-चिकित्सकके चाकूकी भाँति करते हैं। खालको चीरकर घाव बनानेके पश्चात् यह चिमगादड़ खून पीकर अपना-अपना पेट भरते हैं। ग्रीक गाथाओंके अनुसार वैम्पायर एक रक्त-पिपासु दैत्य है। इसी प्रकार जन्तु-जगतके प्राणियोंमें इन कर्तक

दाँतोंका भाँति-भाँतिका उपयोग और इनके इसी प्रकार अनेकों उदाहरण पाये जाते हैं।

कीले—इन दाँतोंमें प्रायः कीले ही रक्षा व आक्रमणके लिए प्रयोगमें लाये जाते हैं। कीलेनुमा ये दाँत मांसको चीरने अथवा फाड़नेमें बहुत ही उपयोगी होते हैं। शेर, सूअर, भालू, बिल्ली, कुत्ते, भेड़िये इत्यादि मांसाहारियों में यह विशेषतः विकसित होते हैं, जिनके भरोसेपर ये जीव प्रतिद्वन्द्वीकी चुनौती स्वीकार करते हैं। किन्तु कुछ अन्य जीवोंमें भी, जो मांसाहारी नहीं हैं, इनका रक्षात्मक उपयोग है। एशियाई हिरनोंमें ये कीले काफी लम्बे, नुकीले और मुखसे बाहर निकले रहते हैं, जिनको ये लड़ाईके अवसरपर बचावके और शान्तिके समय जड़ें खोदकर खानेके काममें लाते हैं। हाथी और वालरसके दाँत, जो साधारणतः भोजनकी खोजमें जमीन खोदनेके काम आते हैं, आवश्यकता पड़नेपर भालों और तलवारोंकी तरह प्रयोगमें लाये जाते हैं। बारबीरुसा नामक सूअरमें और अफ्रीकी वार्टहॉगमें ये कीले अजीब तरहसे मुखके बाहर निकले हुए और पीछेकी ओर इतने मुड़े रहते हैं कि इनका युद्धके समय किसी भी प्रकारका उपयोग कदाचित् ही होता हो।

अनुचर्वक तथा चर्वक—ये भोजनको कुचलने और चबानेके लिए प्रयोगमें लाये जाते हैं। कर्तक और कीलेके समान ये भी कई प्रकारके होते हैं। रक्षात्मक अथवा आक्रमणात्मक उपयोग न होनेके कारण इनका वर्णन अप्रासंगिक है।

महाभारतकी एक कथामें एक प्रसंगानुसार गरुड़ अपनी माताको दासत्वसे मुक्त करानेके लिये जब अमृत लेने जा रहे थे, तब रास्तेमें भूखसे व्याकुल हो अपने पिता कश्यपकी आज्ञानुसार एक पंजेमें हाथी और दूसरेमें एक कछुएको पकड़ कर ले गये और उनका आहार किया। इसके पश्चात् देव-लोकमें अपने पंखोंसे अनेक देवताओंको धराशायी कर अमृत की प्राप्ति की। आधुनिक कालमें इतने विशाल पक्षीकी कल्पना करना तो असम्भव है, किन्तु इस प्रसंगसे पक्षियोंके पंजों तथा उनके पंखोंकी शक्तिका अनुमान किया जा सकता है। चील, बाज, उल्लू, उकाब एवं आधुनिक गरुड़के पंजे यदि हाथी और कछुओंको पकड़नेमें असमर्थ हैं, तो खूबे और दूसरे छोटे पक्षियोंको अपने पंजोंसे सहज ही वशमें कर लेते हैं। शिकारी पक्षी इन पंजोंसे, जो लम्बे सुईके समान नखदार होते हैं, अपनी रक्षा और दूसरोंपर आक्रमण करते हैं। उल्लू और उकाबके पंजे बहुत ही भयावह होते हैं और इनमें शिकारको जकड़ लेनेकी असाधारण शक्ति होती है। खंजर के समान इनके नख जकड़े हुए जीवके शरीरको जर्जरित कर देते हैं।

साँप और नेवलेकी लड़ाई जगत्-प्रसिद्ध है, जिसमें साँप अपने विषसे और नेवला अपने दाँतों और पंजोंसे एक दूसरेको मारनेकी घातमें तरह-तरहके पैंतरे बदलते हैं; किन्तु महान विषधर साँप, जिसके काटनेके कुछ समय बाद ही हाथी जैसे विशालकाय जीव भी मर जाते हैं, सेक्रेटरी बर्डके पंजों तथा पंखोंकी मारके सामने अपना साहस खो बैठता है। सेक्रेटरी बर्डको अपने भोजनके लिए सर्प बहुत प्रिय हैं, जिसको वह खोजता फिरता है और मुठभेड़ होनेपर एक रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हो जाता है। साँपके वारोंको यह शिकारी-पक्षी अपने पंखों तथा पंजोंसे व्यर्थकर तथा इन्हींकी मारसे धराशायी कर अपनी चोंचसे उसे खा जाता है।

स्कंक नामक एक स्तनधारी अपने बचावके लिए एक ऐसा ही उपाय करता है। यद्यपि साँप, लोमड़ी, मिंक, नेवले तथा अन्य जानवर अपनी गन्ध-ग्रंथियोंका प्रयोग करते हैं, किन्तु केवल स्कंकमें ही इसका सर्वोत्तम उपयोग पाया जाता है। स्कंककी जगत्-प्रसिद्ध तीखी दुर्गन्धका कारण एक प्रकारका द्रव्य है, जो गुदाके दोनों ओर स्थित गंध-ग्रंथियोंमें भरा रहता है। इस द्रव्यका रंग कुछ पीलापन लिए होता है और विद्वानोंके मतानुसार रातको चमकता है। इसमें एक प्रकारका तेजाब पाया जाता है। रक्षाके समय यह विचित्र जीव विपक्षीसे मुँह मोड़ लेता है और फिर पूंछको उठाकर दुर्गन्ध भरी पिचकारियोंको शत्रुपर छोड़ देता है। पिचकारीसे निकलता हुआ तरल पदार्थ यदि आंखमें गिर जाय तो अत्यधिक पीड़ा पहुंचाता है और नाक या मुखसे स्पर्श होनेपर वमनका कारण बन जाता है। आठ या दस फीट तककी मार यह आसानीसे करता है, पर इसकी दुर्गन्ध मीलों तक फैल जाता है। थैलियोंको दुबारा भरनेमें इसे एक सप्ताहका समय लग जाता है।

अभागिनी

राजेन्द्र कुशवाहा

"बोटी-बोटी काट दूँगी।"

"काटकर तो देख।"

"जबान बन्द नहीं करेगी?"

'नहीं करूंगी।"

"नहीं करेगी?"

"नहीं करूंगी, नहीं करूंगी, नहीं करूंगी।"

"तो तू सीधी तरहसे नहीं मानेगी।"

"नहीं मानूंगी।"

साड़···साड़···साड़···। डंडा बरसने लगा।

'इससे क्या होता है। इकट्ठा जो मार डाल। कसम है तुझे अपने जनोंकी, जो तू आज कोई कसर बाकी रखे। ले मार डाल मुझे, ले मार।"

"....सुरी, कतरनी-सी जुबान चलाती ही जायगी?"

"हाँ, जब तक साँस है, तब तक तो जुबान बन्द नहीं होगी। अपनी जाइयोंसे कुछ नहीं कहती, जो इधर-उधर घूमती रहती हैं।"

"देख चुप रह, नहीं तो बुरा होगा।"

"वैसे ही कौन-सा भला करती है मेरे साथ। तू मुझे मार डाल, सब किस्सा खतम हो जाय।"

"नहीं मानेगी?"

साड़···साड़···साड़···। फिर डंडे पड़ने लगा।

छतकी मुंडेरसे पड़ोसकी औरतोंके सिर उझकने लगे।

"अरी गोविंदी, क्यों बेशर्म औरतपर हाथ छोड़कर अपने हाथ खराब कर रही है।"

"रोज-रोज मैं तरह देती रहती हूँ। सिंगार करके जब देखो, तब खिड़कीमें बैठी रहेगी। आज या तो मैं नहीं या यह नहीं।"

साड़···साड़···साड़···।

"ले, आज तू मुझे मार ही डाल। जरा भी तू असल की हो, तो कसर मत छोड़ना।"

"अरी बिन्दो, तू ही क्यों चुप नहीं हो जाती।"

साड़...साड़...साड़.... ।

आखिर कुछ औरतें नीचे आँगनमें उतर आईं और गोबिन्दीको पकड़कर एक ओर ले गईं।

बिन्दोको गोबिन्दीके घरमें आये अभी दो साल भी पूरे नहीं हुए थे कि पहले ही दिनसे उसके चाल-चलनको संदेह की दृष्टिसे देखा जाने लगा था। आए दिन ऐसी ही घटनाएँ घटती रहतीं। पड़ोसियोंके लिए इसमें कोई आकर्षण नहीं रहा था, फिर भी तमाशा देखनेके लिए इकट्ठे हो जाया करते थे।

दूसरे दिन फिर बिन्दो रोटी-पानीसे निबटकर वहीं अपने कमरेकी खिड़कीमें जा बैठी। यह बिन्दोका रोजका नियम था, नहा-धोकर साफ कपड़े पहनकर वह अपनी खिड़कीमें आ बैठती और सड़ककी ओर देखा करती। न जाने उसके कुंठित हृदयको इससे क्या सांत्वना मिलती। जब वह खोई हुई सी खिड़कीमें बैठी रहती, तब उसे सामनेवाले घर का विष्णु कभी-कभी एकटक देखा करता। मुहल्लेवालोंने इसीका दूसरा रूप दे दिया था। मुहल्लेकी औरतें जब-तब गोबिन्दीके कान भरती रहतीं। बिन्दो पर भी व्यंग कसतीं। चाचा-चाची द्वारा पोषित अनाथ बिन्दोको बचपन ही से व्यंग सुननेकी आदत थी और उनको वह तरह देना भी जानती थी। इस कान सुनती और उस कान निकाल देती।

× × ×

विष्णु बिन्दोको भाभी कहता। इस रिश्तेसे आपसमें कभी-कभी कुछ बातचीत भी हो जाती। इधर कुछ दिनों से वह बिन्दोके घर रोज आता। आनेके लिए उसके पास कोई-न-कोई बहाना भी होता।

जेठकी दुपहरी थी। सब सो रहे थे। घरमें सन्नाटा था। सड़क भी कम चल रही थी। बिन्दो अपनी रोजकी आदतके अनुसार खिड़कीमें बैठी शून्य आँखोंसे सामनेकी खिड़कीकी ओर टकटकी लगाये न जाने क्या सोच रही थी। तभी कमरेके किवाड़ भिड़नेकी आहट हुई। बिन्दोने चौंक कर देखा कि विष्णु मुस्कराता हुआ किवाड़ोंके पास खड़ा है। बिन्दोकी भौंहें तन गईं।

"कैसे आये लालाजी ?" बिन्दोने खिड़कीसे उतरते हुए जरा कठोर स्वरमें पूछा।

विष्णु पहले तो सकपका गया, पर फिर कुछ मुस्कराता हुआ बोला—"बस यों ही तुम्हारे दर्शनोंके लिए चला आया था भाभी।"

"देखो लालाजी, मैं सब समझती हूं। अगर तुमसे कभी-कभी कुछ हँस-बोल लेती हूं, तो इसका और कोई मतलब न समझना।" बिन्दोके स्वरमें असाधारण दृढ़ता थी।

विष्णु स्तब्ध-सा रह गया। थोड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा, पर फिर दबे पैरों किवाड़ोंको खोलकर बाहर चला गया।

बिन्दोने दरवाजेके बाहर जो देखा, तो उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई। रघ्घो उसका पति, गोबिन्दी उसकी सास, गुलाबो तथा चम्पो दोनों ननदें खड़ी हुई थीं। रघ्घो की आँखें जल रही थीं। वह भूखे भेड़िये-सा झपटा और बिन्दोके मुँह पर दनादन घूसे मारने लगा। बिन्दो कराहती हुई गिर पड़ी। अब घूसोंकी जगह लातोंने ले ली। पेटमें जोरकी एक लात पड़ी। एक हाथसे अपने पेटको पकड़कर वह लेट गई। बिन्दो बचपन ही से मार खानेकी अभ्यस्त थी। वह न तो चीख रही थी, न किसी प्रकारकी चिल्ल-पुकार मचा रही थी। बस जब-तब वह कराह उठती। बिन्दो ने अपने घुटनोंको समेट लिया था। एक हाथसे उसने अपने पेटको पकड़ लिया था और दूसरे हाथसे अपने मुँहको ढककर उसे अपने पेटसे सटा लिया था। बिन्दो गठरी-सी बन गई थी। हर लात पड़ने पर उसके मुँहसे केवल एक "ऊँह" निकलती।

गोबिन्दी बराबर कहे जा रही थी—"आज तो देख ली न अपनी आँखोंसे इस कुतियाकी करतूत। नहीं तो समझे था कि हम वैसे ही बकवास करती हैं। अरे इसने तो हमें कहीं मुँह दिखलाने लायक भी नहीं छोड़ा। अब तो हुआ यकीन कि नहीं ? मैं तो पहले ही से कहती थी...।"

और उधर रघ्घो कराहती बिन्दोके ठोकरों पर ठोकरें मार रहा था। बिन्दो संज्ञाहीन हो गई। रघ्घोकी हँफनी छूट रही थी। पसीनेसे वह लथपथ हो गया था। उसने बिन्दोको बालोंसे पकड़कर घसीटना शुरू किया। अश्लीलतम गालियाँ देते हुए उसे घसीट कर वह कमरेके एक कोनेमें ले गया और फिर दहाड़ता हुआ बोला—"गुलाबो! रस्सी ला, आज मैं इसे काटकर फेंक दूँगा। समझा क्या है मुझे।"

गुलाबो और चम्पो दौड़-दौड़कर गईं और रस्सी ले आईं। रघ्घोने बिन्दोके दोनों हाथोंको पीठके पीछे बाँध दिया और फिर दोनों पैरोंको बाँध दिया।

गुलाबो और चम्पोको जैसे सुलेमानका खजाना हाथ लग गया था। दोनों बिन्दोपर खार खाये बैठी थीं। बिन्दो गुलाबोको गश्तके दीवानसे इशारे करते पकड़ चुकी थी। और चम्पोको भी एक बार वह ऐसे ही एक मामले में रंगे हाथों पकड़ चुकी थी।

बिन्दोको अच्छी तरह रस्सोंसे कसनेके बाद रघ्घोने कमरेमें बाहरसे ताला लगा दिया।

बिन्दोको जब होश आया, तब कमरेमें बिल्कुल अंधेरा हो चुका था। उसके जोड़-जोड़में दर्द हो रहा था। रस्सी से कसे हाथ-पैर सुन्न-से हो चले थे। प्यासके मारे गला चटखा जा रहा था। होंठों पर जीभ फेरनेके लिए उसने मुंह खोलना चाहा तो मुंह न खुल सका। बहुत रोकने पर भी एक कराहनेकी आवाज और आँखसे आँसू निकल ही पड़े। उसे रह-रहकर पिछली बातें याद आने लगीं। बहुत याद करने पर भी उसे याद नहीं आया कि कभी वह दिल खोलकर हँसी हो। सदैव उसकी जिन्दगी एक ही सी गुजरी, वही मार-पीट, आधा पेट खाना और ताने। अपने पिता की तो उसे याद नहीं, मां की कुछ याद है, पर वह याद भी ऐसी नहीं, जो उसे कुछ सुख दे सके। मां उसे कोसती ही रहती—"डायन पैदा होते ही अपने बापको खा गई, आगे न जाने क्या करेगी।" उसे याद न पड़ता कि कभी उसकी मांने उसके सरपर दुलारसे हाथ फेरा हो, बिना मारे-पीटे उसे कभी पेट भर खाना दिया हो। जब मां मरी, तब वह छः-सात सालकी रही होगी। पास-पड़ोस के लोग रो रहे थे। पर उसे तनिक भी दुःख नहीं हुआ। उसे उसके चाचा शहरमें ले आए। वहाँ वह दिन भर नौकरीकी तरह काम करती। चाची अपने हाथसे कभी पानीका गिलास भी नहीं उठाती। जब खानेकी बारी आती, तब उसे बासी और सूखी रोटियाँ, बुसी हुई दाल और सब्जी मिलती। फिर भी उसका शरीर सुडौल होता ही गया। गोरा रंग निखरता ही गया। नाक-नक्शा भी ऐसा था कि आसपास उस जैसी लड़की मिलना मुश्किल था। मुहल्लेके कई लड़के उसके घरके इर्द-गिर्द घूमते रहते।

मकान-मालिककी भी निगाहमें अन्तर आने लगा था। और तो और जिस गद्दीपर उसके चाचा काम करते, उसके मालिक को भी नियत खराब हो गई थी। चाचा और चाचीके लिए वह एक परेशानी बन गई थी और वे अपनी इस परेशानीको उसपर मार-पीटकर अभिव्यक्त करते। वह अब उनके लिए गलेमें अटकी हुई हड्डी थी, जिसे बिना निकाले चैन नहीं मिल सकता था। आखिर उन्होंने उसके लिए एक लड़का तलाश कर लिया—जुआरी, शराबी और गिरहकट। हल्दीकी गाँठमें शादी कर दो। शादी ही की रातको रघ्घू एक चोरीके मामलेमें पकड़ लिया गया और अभी दो महीने पहले ही छूटा था। न जाने क्यों शुरू ही से सब उसके चरित्रपर संदेहकी दृष्टिसे देखते थे। उनके विचारसे—"बिन्दो जैसी लड़की कैसे बच सकती है।"

गोबिंदी उसपर कड़ा नियंत्रण रखती। रोज-रोजकी मार-पीट उसी नियंत्रणका एक अंग थी। उसकी भी जीभ खुल गई थी। वह पिटती जाती और बोलती जाती।

बिन्दोने करवट बदली, अपने पैरोंको सीधा करनेका प्रयत्न किया और कराह उठी। ऐसी जिन्दगीसे तो मौत आ जाय तो अच्छा। मार ही क्यों नहीं डालते मुझे, ऐसी भी जिन्दगी क्या जिन्दगी!" और फिर वह सोचने लगी—"क्या वास्तवमें उसे आज जानसे मार देंगे ये लोग?" चाचा ही के पड़ोसमें एक औरतको उसकी सास और ननदोंने मिलकर गड़ाँससे काट डाला था। कटी हुई लाश उसने भी देखी थी—"हे भगवन्!" उसका बदन सिहर उठा। उसे लगा कि अँधेरेमें जैसे वही खड़ी उसे बुला रही हो। दरवाजा खुलनेकी आवाज आई। कोई काली-काली आकृति उसकी ओर आ रही थी। उसे लगा, जैसे यमदूत काले भैंसेपर बैठे आ रहे हैं। भैंसेकी आँखोंमें आग जल रही है और वह आज उसके पास आ रही है, पास और पास। और वह जोरसे चीख उठी। खटसे बटन दबा और कमरेमें रोशनी हो गई। उसके पास रघ्घो अपने हाथमें जलती हुई अंगीठी लिए खड़ा था और उससे दो कदम हटकर गोबिंदी गुलाबो और चम्पो। गोबिंदी उसकी ओर झपटी और उसका टेटुआ दबाने लगी। गुलाबोने उसके मुँहमें कपड़ा ठूसना आरम्भ कर दिया। चम्पोने एक बोतल उसके ऊपर उड़ेल दी। बेबस बिन्दोको समझमें सब आ गया। धीरे-धीरे फिर वह संज्ञाहीन-सी होने लगी और जीवनमें पहली बार उसे अपनी माँकी याद आई—"अगर वह होती, तो .."

और तभी रघ्घोने उसके ऊपर जलती हुई अंगीठी डाल दी। वह जोरसे तड़प उठी। गोबिंदी, गुलाबो और चम्पोने उसे कसकर दबा रखा था। एक कोयला गोबिंदीके हाथपर गिरा, वह चीख उठी और उसने कसकर एक लात बिंदोके मारी। थोड़ी देर पूर्व अपनी मौतका आह्वान करनेवाली बिंदो अब जिन्दगीके लिए संघर्ष कर रही थी। उसने अपने बदनको इतनी जोरसे झटका दिया कि गोबिंदी, गुलाबो और चम्पो तीनोंके सर आपसमें टकरा गए और गुलाबो फर्शपर औंधे मुँह गिर पड़ी। बिंदोमें अपारशक्ति आ गई थी। उसके पैरकी रस्सियाँ ढीली पड़ गई थीं। उसने जोर-जोरसे पैर चलाने शुरू कर दिये। रघ्घोने उसके पैरोंको कसकर दबा लिया। गुलाबो और चंपोने फिर उसे रस्सीसे बाँध दिया। सबने मिलकर उसे उठाया। बार-बार वह अपने बदनको झटका देती और धम्मसे नीचे गिर जाती; पर अंतमें सबने मिलकर उसे पास ही पड़ी खाटपर लिटा दिया और फिर उसे खाटसे कसकर बाँध दिया। रघ्घो देहलीजपर रखी दूसरी अंगीठी उठा लाया और उसे भी बिंदोपर उड़ेल दिया। बिंदो फिर जोरसे तड़फी, खाट पलटने-सी लगी, पर गुलाबो, चम्पो, गोबिंदी और रघ्घो सबने मिलकर उसे दबा लिया। धीरे-धीरे बिंदोका तड़फना बंद हो गया। सब चुपचाप बाहर निकल आए और उन्होंने बाहरसे साँकल बन्द कर दी।

दूसरे दिन जिसको देखो उसके मुँहसे यही सुननेको मिल रहा था कि बिंदोके ऊपर दूध गरम करते समय अंगीठी पलट गई और वह बुरी तरह जल गई।

लाला राधारमण मुंकदीलालको समझा रहे थे—"च्च... च्च... च्च बिंदो इतनी बुरी तरह जली है कि देखा नहीं जाता। वह सुघड़ चेहरा कैसा भयंकर हो गया है! माथा फूल गया है और बीचसे हड्डी बाहर चमक रही है। दोनों आँखोंकी जगह दो लाल-लाल मांसके लोथड़े लटक रहे हैं। गालोंसे चर्बी-सी बह रही है। दोनों होंठ गायब हो चुके हैं, सफेद-सफेद दाँत-ही-दाँत बाहर चमक रहे हैं। हे भगवान, न जाने कौन-सी करनीका दंड मिला है! हे शंकर, ऐसी किसीकी दुर्दशा न हो! ओह हो.. हो.. लाला रोंगटे खड़े हो जाते हैं देखकर।"

मुकंदीलाल बड़े सहमे-से बोले—"हमने सुना है कि उसे रघ्घो, गोबिंदी और सबने मिलकर जलाया है। सुनते हैं, बदचलन थी।"

राधारमणको जैसे आ गया, अपने स्वरको जरा ऊँचा

करते हुए बोले—"बदचलन नहीं, महा-बदचलन होती ; पर ऐसी भी कोई बात है कि जिंदा जला दो। बदचलन थी तो छोड़ देते उसे, और फिर वह अपना और अपनी लड़कियोंका भी तो मुँह देखे। किसीको जिंदा जला देना कोई मजाक है। देखना क्या नतीजा निकलता है, पुलिस बाँधे-बाँधे फिरेगी। सबको फाँसी होगी, सबको…"

मुकन्दीलाल नकारात्मक सर हिलाते हुए बोले—"यह कुछ नहीं होगा लाला। देख लेना। चौकीके दीवानकी रग्घोकी बहनसे दोस्ती है, और फिर टुकड़े भी मिल चुके हैं।"

'न करे कोई कुछ, ऊपरवाला तो सब देख रहा है। देखना, सब इससे भी बुरी मौत मरेंगे, इससे भी बुरी।" राधारमण उसी तैशमें बोले।

"मर गई क्या ?" मुकंदीलालने बड़ी जिज्ञासासे पूछा।

"अभी भी सिसक रही है। हे भगवान्! अब तो मर जाय तो अच्छा। कैसा कष्ट हो रहा होगा, हरे-हरे! अब तो कोई उसे मरनेकी दवा दे दे।" फिर राधारमणजी अपने घरके अन्दर चले गये।

बिन्दोका शव आँगनमें पड़ा था। लाल कफनसे उसकी काया ढकी हुई थी। बिन्दोके कष्टोंका अन्त हो चुका था। सरिता सागरमें पहुंच जैसे समाधिस्थ हो जाती है, उसी भाँति बिन्दोकी आत्मा ब्रह्ममें लीन होकर शरीर-रूपी सरिताको शांत छोड़ गई। पड़ोसियोंको आशंका थी कि रग्घो और गोबिन्दोको हथकड़ियाँ पड़ेंगी, उनपर हत्याका मुकदमा चलेगा और फाँसी होगी ; पर रग्घो एक छटा हुआ गुण्डा था, दीवानसे दोस्ती थी और फिर नोटोंकी महिमासे पुलिस भी पसीज गई थी। आखिर रग्घो पुलिसका दलाल था। अपने मुँहलगे दलालकी उपेक्षा पुलिस कैसे करती ? पड़ौसी साफ बात कैसे कहते ? फलस्वरूप बिन्दोके बारेमें रिपोर्ट लग गई कि उसने आत्महत्या की है।

धू-धू करके बिन्दोका शव यमुना तटपर जल रहा था और अंतरिक्षमें बैठा विधाता चिताके स्फुलिंगोंके रूपमें नर-दानवोंकी करनीका उपहास कर रहा था और श्मशानका वातावरण मानों अप्रत्यक्ष रूपसे कह रहा था कि पाप कृत्योंका दंड तीन पीढ़ियों तक मिलता है।

अभी तो मैं जवान हूँ

'हफ़ीज़' जालंधरी

(१)

अभी तो मैं जवान हूं !
हवा भी ख़ुशगवार है गुलों पे भी निखार है,
तरन्नुम हज़ार है बहार पुरबहार है,
कहाँ चला है साक़िया ?
इधर तो लौट इधर तो आ,
अरे ये देखता है क्या ?
उठा सबू, सबू उठा,
सबू उठा, प्याला भर प्याला भरके दे इधर,
चमनकी सिम्त कर नज़र समाँ तो देख, बेख़बर,
वो काली-काली बदलियाँ,
उफ़क़ पे हो गईं अयाँ,
वो इक हुजूमे-मैकशां,
है सू-ए-मैकदा रवाँ,
ये क्या गुमाँ है बदगुमाँ समझ न मुझको नातवाँ,
ख़याले-ज़ुहद अभी कहाँ ?
अभी तो मैं जवान हूँ।

(२)

इबादतोंका ज़िक्र है निजातकी भी फ़िक्र है,
जनून है सवाबका ख़याल है अज़ाबका,
मगर सुनो तो शैख़जी !
अजीब शै हैं आप भी !
भला सवाबो-आशिक़ी,
अलग हुए भी हैं कभी ?
हसीन जलवारेज़ हों, अदायें फ़ितनाख़ेज़ हों,
हवायें इत्रबेज़ हों तो शौक़ क्यों न तेज़ हों,
निगार हाये फ़ितनागर,
कोई इधर कोई उधर,

उभारते हैं ऐश पर,
तो क्या करे कोई बशर ?
चलो क़िस्सा मुख़्तसर तुम्हारा नुक़्ता-ए-नज़र,
दुरुस्त है तो हो, मगर,
अभी तो मैं जवान हूँ !

(३)

ये गश्त कोहसारकी ये सैर जूएबारकी,
ये बुलबुलोंके चहचहे ये गुलरुख़ोंके कहकहे,
किसी से मेल हो गया,
तो रंजो-फ़िक्र खो गया,
कभी तो वक़्त सो गया,
ये हँस गया वो रो गया,
ये इश्क़की कहानियाँ ये रसभरी जवानियाँ,
उधरसे मेहरबानियाँ इधरसे लनतरानियाँ,
ये आस्मान ये ज़मीं,
नज़्ज़राहाये दिलनशीं,
इन्हें हयात - आफ़रीं,
भला मैं छोड़ दूँ यहीं !
है मौत इस क़दर क़रीं मुझे न आयेगा यक़ीं,
नहीं - नहीं, अभी नहीं,
अभी तो मैं जवान हूँ !

(४)

न ग़म कशूदो-बस्तका बुलंदका न पस्तका,
न बूदका न हस्तका न वादा-ए-अलस्तका,
उमीद और यास गुम,
हवास गुम क़यास गुम,
नज़रसे आसपास गुम,
हमा, बजुज़ गिलास गुम,
न मैं में कुछ कमी रहे क़दहसे हमदमी रहे,
नशिस्त पे ज़मी रहे यही हमाहमी रहे,
वो राग छेड़ मुतरिबा,
तरबफ़ज़ा अलमरुबा,
असर सदा-ए-साज़का,
जिगर में आग दे लगा,
हर एक लब पे हो सदा न हाथ रोक साक़िया,
पिलाये जा पिलाये जा,
अभी तो मैं जवान हूँ !

तरन्नुप=संगीत, सबू=सुराही, सिम्त=ओर, समाँ=समय, उफ़क़=क्षितिज, अयाँ=प्रकट, हुजूमे-मैकशाँ=मद्यपोंका समूह, सू-ए-मैकदा रवाँ=मधुशालाकी ओर जा रहा है, नातवाँ=दुर्बल, खयाले-ज़ुहद=उपासनाका विचार, निजात=मुक्ति, सवाब=पुण्य, अज़ाब=पापोंका दण्ड, जलवारेज़ हों=जलवे दिखा रहे हों, फ़ितनाखेज़=फ़ितने खड़े करनेवाली, इत्रबेज़=सुगन्धियाँ बिखेर रही हों, फ़ितनागर=फितने उठानेवालों (माशूकों) के मुखड़े, बशर=प्राणी, नुक्ता-ए-नज़र=दृष्टिकोण (विचार), गश्त=सैर, कोहसार=पहाड़ी स्थान, जुएबार=नदी किनारा, गुलरुखों=फूलों जैसे चेहरेवालोंके, बख़्त=भाग्य, लनतरानियाँ=डींगें, दिलनशीं=सुन्दर दृश्य, आफ़रीं=जीवन-वर्धक, क़रीं=निकट, कशूदो-बस्त=खोलने-बाँधनेका, बूद=अतीत, हस्त=वर्तमान, वादा-ए-अलस्त=आदिकालका प्रण (क़ुरानमें एक स्थानपर आता है कि जब ख़ुदा इन्सान को बना चुका तो उसने उससे पूछा कि मैं तेरा ख़ुदा हूं ? इन्सानने उत्तर दिया कि हाँ, तू मेरा ख़ुदा है। उसीकी ओर संकेत है), हमा=सभी कुछ, बजुज़=सिवाय, क़दह=प्याला, नशिस्त=महफ़िल, मुतरिबा=गायिका, तरबफ़ज़ा=आनन्दवर्धक, अलम-रुबा=शोकको उड़ा देनेवाला, सदा-ए-साज़=साज़की आवाज़ का असर, लब=होंठ।

भाषागत प्रतीकवादी दर्शन

वीरेन्द्र सिंह

शब्द-प्रतीक

भाषागत प्रतीक-दर्शनका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उसके द्वारा सत्य एवं यथार्थके समिष्ट-रूपका दिग्दर्शन है। मानव मनका उच्चतम अभियान भाषाके प्रतीकों एवं शब्दोंका निर्माण है, जिसकी आधारशिलापर ही समस्त ज्ञान-क्षेत्रोंका प्रासाद निर्मित होता है।

भारतीय मनीषाने 'शब्द' को ब्रह्मका पर्याय माना है। इस धारणामें शब्दका, जो भाषाकी इकाई है, वह रूप हमारे सामने आता है, जो अरस्तूके शब्दोंमें "शाब्दिक तर्क" (Logic of word) भी कहा जा सकता है। इन्हीं शब्दोंमेंसे अनेक शब्द प्रतीकका रूप धारण कर लेते हैं और इस प्रकार शब्द एक अत्यंत व्यापक क्षेत्रकी व्यंजना करता है—एक धारणा और विश्वासका प्रतिरूप बन जाता है। इस दृष्टिसे शब्दमें विश्वास, दर्शन या तत्त्वज्ञानमें विश्वास है।[1] ईश्वर, आत्मा, चेतना, समय आदि ऐसे ही शब्द-प्रतीक हैं, जिनकी धारणामें केवल भावनाका ही अंश नहीं है, प्रत्युत बुद्धि एवं अनुभूतिका समन्वित रूप भी है।

ज्ञान और प्रतीक

अनुभवकी आधारशिलापर ही ज्ञानकी रूपरेखा स्पष्ट होती है और इस अनुभवकी क्रियाको हम "भाषा" के द्वारा एक आकार या रूप देते आये हैं। भाषाका प्रत्येक शब्द-प्रतीक अनुभव और साथ-साथ अनुभूतिके द्वारा ज्ञानके विविध क्षेत्रोंका निर्माण करता है।

ज्ञानका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। ज्ञानकी नित नूतनता पर ही 'सत्य' और 'यथार्थ' का प्रासाद निर्मित होता है। आधुनिक दार्शनिक विचार-धाराकी सबसे मुख्य प्रवृत्ति ज्ञानके विकास एवं संगठनको, उनके शब्द-प्रतीकोंके प्रयोग एवं विवेचनके प्रकाशमें अवलोकन करना है। भौतिक दार्शनिक विचारधाराका केंद्रविंदु यही तथ्य है। यदि हम लॉक (Lock) से लेकर अति आधुनिक दार्शनिकों रसल, बेरी आदिका अध्ययन करें और तार्किक-भौतिक शास्त्र (Positivism) का अनुशीलन करें, तो हमें यह तथ्य ज्ञात होता है कि समस्त शब्द-प्रतीकोंका उद्गम-स्रोत भौतिक पदार्थोंका एंद्रिय अनुभव ही हैं जो अंतमें अभौतिक और तात्विक क्षेत्रोंकी भी व्यंजना करते हैं। इसीसे प्रो० वाइटहेडका मत है कि प्रतीकात्मक संदर्भ या प्रकरण मानव अनुभवमें विवेचनात्मक अंश है।[2] अतः भाषागत प्रतीकोंका निर्माण और उनका एक संगठित सूत्रमें अनुस्यूत करना, आधुनिक तर्क-शास्त्रकी दार्शनिक आधारशिला है। बरट्रेण्ड रसल, बेरी, वाइटहेड आदि दार्शनिकोंने प्रतीकात्मक अभिव्यक्तिको एक अत्यंत व्यापक क्षेत्र प्रदान किया है और प्रतीकोंके प्रकरण प्रयोग एवं विवेचनको ज्ञानकी आधारभूमि माना है।

दार्शनिक दृष्टिसे, हम भाषागत प्रतीकोंको दो विभागों में बाँट सकते हैं, जिनके द्वारा मानव ज्ञान-क्षेत्रोंका एक संगठित रूप प्राप्त होता है। दर्शनका क्षेत्र भौतिक और तात्विक दोनों क्षेत्रोंको अपने अंदर समेटनेमें समर्थ है। दार्शनिक प्रश्न दो प्रकारके होते हैं, एक तो वे जो तार्किक होते हैं और दूसरे वे जो तर्क एवं अनुभूतिसे समन्वित होते हैं। इन दो प्रकारके प्रश्नोंपर ही दो प्रकारके प्रतीकोंका निर्माण भी होता है। तार्किक प्रश्नोंका सुंदरतम रूप उन ज्ञान-क्षेत्रोंमें प्राप्त होता है जो भौतिक जगत्से सम्बंधित होते हैं, जैसे तर्क-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, इतिहास आदि। अतः इनमें प्रयुक्त प्रतीकोंका रूप भौतिक जगत् सापेक्ष होता है, जिनका निर्माण बुद्धि, तर्क एवं विवेचनाके द्वारा सम्भव होता है। दूसरे प्रकारके प्रतीक आदिभौतिक ज्ञान-क्षेत्रोंमें प्रयुक्त होते हैं, यथा तत्त्वज्ञान-शास्त्र, गणित, भौतिक-शास्त्र (समय, आकाश आदिका दार्शनिक पक्ष), धर्म आदि। इन प्रतीकोंकी आधारशिला भौतिक-क्षेत्र ही नहीं है, वरन् अनुभूति एवं संवेदनासे समन्वित होनेके कारण उनका क्षेत्र अभौतिक 'सत्य' की भी व्यंजना करता है। इन समस्त प्रतीकोंकी सहायतासे भाषा 'यथार्थ' के सूत्रको एकमें बाँधने का प्रयत्न करती है। इसी कारण, कारनपका यह मत कि दर्शनकी भाषा अवैज्ञानिक अंशोंका शुद्धतम रूप है और साथ ही

१. Language and Reality by Urban, P. 25.

२. Process and Reality by Whitehead, P. 263.

वैज्ञानिक तर्क (Logic of Science) का प्रतिरूप है,[1] समीचीन है।

प्रतीक और प्रस्थापना (Proposition)

ऐसे भी अनेक प्रतीक होते हैं, जो अन्योन्य स्थानन्तरित होते रहते हैं, पर वे मूलतः एक ही संदर्भकी व्यंजना करते हैं। ऐसे प्रतीक एक दूसरेकी 'परिभाषा' एवं 'विस्तार' में सहायक होते हैं और साथ ही एक ही संदर्भका प्रतीकीकरण करते हैं।[2] ऐसे जटिल प्रतीकोंका प्रयोग 'प्रस्थापना' या वाक्यमें होता है, जो कभी एक ही अर्थ या अनेक अर्थोंकी व्यंजना करते हैं। प्रस्थापनाका संगठन इन्हीं प्रतीकोंका संगठन होता है, और उसका अर्थ इन्हीं प्रतीकोंके प्रयोग और उनकी अर्थ-शक्ति (व्यंजना) पर निर्भर करता है। अतः प्रस्थापना एक प्रकारसे किसी-न-किसी संदर्भका प्रतीकीकरण है। इसी प्रतीकीकरणकी प्रवृत्तिमें ज्ञान-क्षेत्रोंका रूप मुखरित होता है, जिसके द्वारा हम उस विशिष्ट ज्ञान-क्षेत्रके द्वारा 'सत्य' तक पहुंचनेका प्रयत्न करते हैं।

यहांपर इस बातका ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि कोई भी प्रस्थापना न्यायसंगत नहीं हो सकती, जो केवल प्रतीकोंके संगठनपर आधारित हो। परंतु संसार एवं विश्वके लिये सत्य-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जहाँ प्रतीक-विधियोंकी आवश्यकता है, वहाँ उन प्रतीकोंका विवेचनात्मक रूप और साथ ही उनके अंतर्दृष्टि सापेक्ष्य 'मूल्य' की भी आवश्यकता है। जब तक यह अंतर्दृष्टि नहीं आती, तब तक हम विश्वके सत्यकी अनुभूति नहीं कर सकते। यदि हम 'ईश्वर' की धारणाको ही प्रतीक मानें, तो उसका महत्त्व एक संदर्भ तक ही सीमित रहेगा, पर ईश्वरके व्यापक अर्थ—उसके प्रतीकत्वमें मानव-अंतर्दृष्टिका भी समावेश है, जिसकी धारणामें भौतिक एवं तात्त्विक, यथार्थ एवं आदर्श, नैतिकता और आध्यात्मिकता, असीमता और ससीमता—जैसे विपरीत विचारोंका समन्वय ईश्वरके प्रतीकत्वमें प्राप्त करना, सत्य रूपमें भाषागत प्रतीकवादका सबसे उच्च दार्शनिक पक्ष है।

अर्थ-विज्ञान और प्रतीक

भाषाके प्रतीकात्मक दर्शनकी आधारशिला अर्थ-विज्ञान पर ही अवलम्बित है। इसी तथ्यकी प्रतिध्वनि हमें भारतीय दर्शनमें भी प्राप्त होती है। इसके अनुसार शब्द निरुक्ति, अर्थ अनुवृत्ति है। शब्द वह है जो कहनेमें आ गया, परंतु अर्थ कथनसे परे अनुभव या दर्शन चाहता है। परंतु जहाँ तक शब्द-प्रतीकका सम्बंध है, उसकी आत्मा उसी समय पूर्ण मुखरित होती है, जब वह किसी अर्थ या 'मूल्य' का विवेचन करे। कार्ल ब्रिटनने एक स्थानपर कहा है कि प्रकृतिका रूप एवं अर्थ उन्हींके लिये स्पष्ट होता है, जिनके पास विचारात्मक मनकी धरोहर होती है।[1] अतः अर्थ-विज्ञानका सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम यही 'मन' है। प्रतीकोंकी नित नवीनताका प्रयोग एवं सृजन इसी विस्तृत अर्थ-विज्ञान की रूपरेखाके अन्दर आ जाता है। अतः अर्थका यह क्रमिक धारणात्मक विकास, जो प्रतीकोंके नित नूतन प्रयोगपर आधारित है, दर्शनका वृहत क्षेत्र है।[2]

अधिकांशतः जो 'अर्थ' विस्तृत विकास-क्षेत्रकी व्यंजना करते हैं, वे प्रतीकात्मक अर्थ ही होते हैं। किसी भी जीवित भाषाका शब्द प्रायः रूढ़िगत नहीं होता है, पर सदैव उसका रूप तात्त्विक ही होता है। यथार्थ स्वयं ही अर्थगर्भित होता है और उसकी अर्थगर्भिता प्रतीकके अर्थपर ही अवलम्बित रहती है। इस दृष्टिसे पुराण, धर्म, कला, विज्ञान और दर्शनके प्रतीक किसी विशिष्ट अर्थ-व्यंजनाके द्वारा 'सत्य' के तंतुओंका निर्माण करते हैं।

अनेक विचारकोंने अर्थका अर्थ करनेका प्रयत्न किया है। कुछके अनुसार अर्थ इच्छा-शक्तिकका रूप है (शापेनहावर) अथवा कुछके अनुसार अर्थका सम्बन्ध व्यावहारिक निष्कर्षोंका फल है (जेम्स) या अर्थ एक भावात्मक उद्रेक है जो किसी विशिष्ट पदार्थ या वस्तुके द्वारा उद्वेलित होता है, अथवा अर्थ वह है, जो किसी प्रतीकके विवेचनपर आधारित हो, जैसे स्वप्न-प्रतीक, शब्द-प्रतीक आदि। उपर्युक्त सभी धरणायें मूलतः ज्ञानकी पूरक हैं, प्रत्येकका स्थान मानव-ज्ञानकी वृद्धिके लिये आवश्यक है। परंतु फिर भी जहाँ तक भाषागत प्रतीकोंका सम्बंध है और उनके द्वारा अर्थ-व्यंजनाका प्रश्न है, उस सीमा तक हमें प्रतीकीकरणकी प्रक्रियाको अर्थ-विज्ञानका पथ-प्रदर्शक मानना पड़ेगा।

---

१. The Logical syntax of language by R. Carnap, P. 279 (1949)

२. The Meaning of Meaning by Richards and Odgen, P. 92 (1946)

१. Communication—A Study of Language by Carl Britton, P. 89.

२. Philosophy in a new Key by S. K. Langer, P. 239.

अपने विचार–अपनी भाषा

सेवाराम यात्री

सब प्रकारके साधनोंसे सम्पन्न, विशाल और स्वतंत्र महादेशके सामने एक सर्वांङ्गीण और सुगम भाषाका प्रश्न लम्बे-लम्बे दस वर्षों तक पहेली ही बना रहे, इससे अधिक व्यथा और आश्चर्यकी बात क्या होगी? अपनी बात कहनेके लिए हमें सुदूर सात समुद्र पारके माध्यमकी ओर दृष्टि निबद्ध करनी पड़े, एक भाषा उधार लेनी पड़े, क्या यही हमारी क्रियमाण और कर्तृत्व शक्तिकी सार्थकता है?

नित्य प्रति समाचारपत्रोंमें भारतवर्षकी सर्वमान्य और सुलभ भाषापर विचार व्यक्त करते समय कालमके कालम और पृष्ठके पृष्ठ रंगे दीख पड़ते हैं। देशके विचारक और द्रष्टा कहे जानेवाले लोगोंका रुख भी इस दिशामें अत्यन्त विचित्र है और उनके वक्तव्य एकदम विस्मयजनक। हिन्दी पर जब उनकी ठंडी और उपेक्षापूर्ण दृष्टि जाती है, तो वह अपना सीधा-सा अभिमत पेश कर देते हैं—'हिन्दीमें प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्तिकी क्षमता नहीं' अथवा 'हिन्दी एक ऐसी अक्षम भाषा है जिसमें पश्चिमीय साहित्यके समकक्ष रखे जाने वाले साहित्यकी कमी ही नहीं, वरन घोर दुष्काल है।' इसी प्रकारके विचारोंको लेकर अंग्रेजी भाषाकी आवश्यकता द्रौपदी के चीरकी भाँति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

इस विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि आज जिस तथाकथित अपदार्थ भाषाको उसके साहित्यके माध्यम से विदेशी भाषाएँ आत्मसात् करनेपर तुली हैं, उसके आँकड़े नितान्त उपेक्षणीय नहीं हैं। बीस वर्षोंके अथक परिश्रमसे रामायणका रूसी भाषामें अनुवाद करनेवाले महाभाग बरान्निकोवको शायद हमारे भाषा-विशारद भी व्यर्थ प्रयास न कह सकेंगे। इस स्थलपर हिन्दी भाषाका गुरु-गाम्भीर्य दिखाना अथवा उसके साहित्यकी उच्छ्वसित कंठसे प्रशंसा करना हमारा अभीष्ट नहीं है, बल्कि हम तो उन सर्वमान्य सत्योंको सन्मुख रखना चाहते हैं, जिनकी ओरसे बरबस आँखें मूँद लेनेका कोई कारण नहीं दीख पड़ता।

अंग्रेजी भाषाका स्तर जो दिनों-दिन गिरता जा रहा है और वह बैसाखी लेकर खड़ी होनेमें भी विफल-मनोरथ हो रही है, उसका आखिर क्या कारण है? हमें तो सहज रूपमें इसका कारण यही दीख पड़ता है कि स्वतंत्र देशमें अभिव्यक्तिके उधार लिए हुए माध्यम स्वतः ही लोप होने लगते हैं। अंग्रेजी भाषाके देशी विद्वानोंको लगता है कि अब प्रलयकाल निकट आ गया है, इसी कारण इस अतिरिक्त सम्भ्रान्त भाषाका ह्रास हो रहा है। आज दिन विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयोंमें ऐसे उदाहरणोंकी कोई कमी नहीं, जब उच्च श्रेणी तककी दीक्षा-प्राप्त विद्यार्थी भी एकदम अशुद्ध अंग्रेजीका प्रयोग करते हैं। श्रोताओंका उस अश्राव्य अंग्रेजीको सुनकर लज्जासे सिर नीचा हो जाता है, उनके मुखका स्वाभाविक हास्य लुप्त हो जाता है, मानो कहीं भीषण वज्रपात हुआ हो। वह इस त्रुटिको क्षम्य समझ ही नहीं सकते। इसके विपरीत ऐसे उदाहरणोंकी भी कमी नहीं, जब विदेशी सुधी और पंडित तक हमारे बीचमें आकर नितांत फूहड़ और टूटी-फूटी हिन्दी बोलते हैं। हम कानों में समस्त शक्तिको केन्द्रित करके उन्हें सुनते हैं, साधुवाद देनेको हमारा कृतज्ञ मन प्रशंसासे भर उठता है और ऐसे क्षण हमें एक बार भी उस लज्जाका बोध नहीं होता, जो हमें अपने स्वदेशी भाइयोंको विदेशी भाषाका गलत प्रयोग करते देखकर होता है। भारतके स्वातंत्र्यका इतनी बार उल्लेख होता है कि अब यह समझनेको बाकी नहीं है कि हम किसी भी प्रकारकी दासता माननेको बाध्य हैं, किन्तु आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि अब भी कुछ विश्वविद्यालयोंमें उच्चतम परीक्षाओंका माध्यम अनिवार्यतः अंग्रेजी ही है। इससे अधिक दुःसह दुःखकी बात और क्या हो सकती है कि हम विदेशी भाषाके चाबुकसे मार-मारकर अपने तरुणों से शिक्षाकी ड्योढ़ी पार करवाते हैं और वे बीचमें हाँफ-हाँफ कर बैठ जाते हैं, जहाँसे उन्हें उठा सकनेका कोई उपाय ही नहीं है।

हमारे विधायक अंग्रेजी भाषाके पौधेको पूर्ववत पनपाये रखना चाहते हैं, इससे हमारा कोई विरोध नहीं; किन्तु हम उनसे यह पूछना चाहते हैं कि साधारणतः विद्यार्थियोंको जिन सुयोग्य और अंग्रेजी भाषाके अधिकारी शिक्षकोंकी आवश्यकता है, वे उनके पास थोड़ी-सी भी संख्यामें हैं? ऐसी अवस्थामें कैसे भी तो शिक्षाकी वैतरणी पार करनेके

लिए समग्र पुस्तकें कंठगत करके उदरस्थ कर लेनेका ही एक मात्र मार्ग शेष है। पुस्तकें पढ़ लेना मात्र तो किसी भी देशमें शिक्षाकी परिभाषा नहीं है। जब तक मनोगत विचारोंको व्यक्त करनेका कौशल प्राप्त न हो, शिक्षा एकदम अधूरी है। बहिन्तरका सामंजस्य अभिव्यक्तिकी हीनतासे सम्भव ही नहीं है। क्या अपने अन्तर्हित उद्‌गारोंको विदेशी भाषामें रखना सहज है? क्या प्रायः यह अपने मुखपर नकली चेहरेके भीतरसे भाव प्रकाशनके समान नहीं है?

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दीके सम्बन्धमें अनोखे तर्क और धारणाएँ सुनना अब अधैर्यकी बात नहीं रह गई है। पिछले दिनों एक पत्रमें किसी पंडितने तर्क उपस्थित किया कि हिन्दी एक उपयोगी भाषा तो है, परन्तु चालीसके पार के लोगोंके लिए उसे सीखना संभव नहीं। इसके उत्तरमें इतना ही अलम होगा कि चालीससे ऊपर हिन्दीको सुगमता से सीखनेवालोंकी कमी नहीं है (यों ४० से नीचेकी उमर-वाले भी भारतवर्षमें कम नहीं बसते)। हमने प्रौढ़ शिक्षा का कार्य हाथमें लेकर अपने अल्प अनुभवसे स्वयं देखा है कि दो-तीन माहमें ५० वर्षकी आयुके लोग भी छोटी-मोटी पुस्तकोंको बाचना सीख जाते हैं। यही नहीं, इस तथ्यकी विकृति तब स्पष्ट होती है जब यह देखा जाता है कि बड़ी उम्रके लोग अपनी सामान्य जानकारीके बलपर हिन्दीको और भी त्वरित गतिसे सीखते हैं।

इस देशपर विदेशी शासकोंका प्रभुत्व भाषा प्रसारकी दृष्टिसे भी पर्याप्त समय तक रहा। उन्होंने हर सम्भव-अस-म्भव उपायसे हमारे मस्तिष्कमें अंग्रेजीका पौधा पल्लवित करनेका भगीरथ प्रयास किया, किन्तु ईसाई धर्मका प्रचार करनेका माध्यम मुख्यतः हिन्दी ही रही। इसका सीधा-सा कारण क्या यही नहीं है कि वह भलीभाँति जानते थे कि अंग्रेजी भाषाका पौधा भारतीय जन-जीवनकी भूमिमें किसी भी प्रकार नहीं पनप सकता। अंग्रेजी भाषापर अन्यतम अधिकार रखनेवाले बल्कि यहाँ तक कि साहित्य सर्जन करने वाले महानुभावभी आज भारतमें देखनेको मिलते हैं, परन्तु इतने दिनों तक अंग्रेजीका बोलबाला रहनेपर भी वे संख्या में कितने हैं? इस अवसरपर हमें विश्व-साहित्यके महारथी और आंग्ल भाषाके अद्वितीय अधिकारी कवि ठाकुरके इस अभिमतपर एक बार दृष्टि डाल लेनी चाहिए—"एक दिन माइकेल मधुसूदन दत्त सरीखे अंग्रेजी विद्याके असाधारण विद्वान और बंकिमचन्द्र सरीखे विजातीय विद्यालयके सुयोग्य विद्यार्थीने इस 'नकली चेहरे' के भीतरसे भाव बतानेकी कोशिश की थी, किन्तु अन्तमें हताश होकर उन्हें भी वह फाड़ फेंकना पड़ा।"

अन्य प्रान्तीय साहित्योंका हिन्दी समादर ही करती है। दिन-प्रतिदिन अन्तर्प्रांतीय साहित्योंका हिन्दीमें अनुवाद हो रहा है और अब तक तो हिन्दी एक प्रकारसे यह विस्मृत ही कर चुकी है कि शरत् और गुरुदेव उसके अपने नहीं हैं। वह उनसे अलग रहनेकी बात सोचनी ही नहीं हैं। भाषा कोई भी हो, उससे कोई वैर-भाव नहीं हो सकता। परन्तु यहाँ एक ऐसा प्रश्न उठता है जो अपने आपमें निर्मूल होकर भी विग्रह-पूर्ण है? अहिन्दी प्रान्तवाले कई लोग आज यह कहते सुने जाते हैं कि हिन्दी उनपर बलपूर्वक लादी जा रही है। यह कितना लज्जाजनक आक्षेप है? प्रत्येक प्रान्तपर बलपूर्वक लदी हुई अंग्रेजी भाषाके विषयमें रत्ती भर असन्तोष नहीं, उसे खुशी-खुशी सहन कर लिया जाता है और जिस भाषाका साहित्य जन-जीवनमें समस्त भारतवर्षमें अनायास पैठा हुआ है, उसे लादी हुई भाषा कहा जाता है! यही नहीं, कई अहिन्दी प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंने हिन्दीमें उत्कृष्ट साहित्यका प्रणयन किया है और अब निरन्तर अहिन्दी प्रान्तके निवासी उसे सीखकर उसका मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। आज भी सुदूर दक्षिण और बंगालमें संस्कृतके साथ-साथ हिन्दीके समर्थ विद्वानोंका अभाव नहीं है। जिस बंग-देश और दक्षिणने विजातीय भाषाके ऐसे विचक्षण विद्वान उत्पन्न किए हैं, जिनका स्तुति गानकर पाश्चात्य जगत भी गौरव अनुभव करता है—जब वही हिन्दीके प्रति ऐसा उपेक्षणीय रुख अपनाते हैं, तो गहरा अनुताप होता है। प्रश्न होता है कि हिन्दी जैसी गत्यात्मक और सरल भाषा क्या वास्तवमें अहिन्दी भाषियोंके लिए अशक्य है?

हिन्दी गुरु-गम्भीर विचारोंको वहन करनेमें असमर्थ है, यह कहनेवाले कौन लोग हैं? वे सब उस श्रेणीके लोग हैं, जिनका हिन्दीसे दूरका भी नाता नहीं। इनमें से ऐसे हैं, जिन्होंने हिन्दीकी एक भी आँखें खोल देनेवाली कृति नहीं देखी है। वे तो उद्‌ग्रीव होकर उसकी त्रुटियोंका ही उद्‌घोष कर सकते हैं। स्वभाषाके विषयमें आज बीस वर्ष उपरान्त भी श्रद्धेय रवीन्द्रके कथनको देख लेना अप्रासंगिक न होगा—"करनेकी साधना इतनी सहज नहीं होती। उस साधनाको पराई भाषाके बोझसे दबा देनेसे

उसके पंगु हो जानेकी आशंका रहती है। विदेशी भाषाके बोझसे वामन हुए मन हमारे देशमें अवश्य ही काफीसे ज्यादा हैं। पहलेसे ही यदि वे मातृभाषाके स्वाभाविक प्रयोगसे पनपे होते तो वे मन क्या हो सकते थे, इस बातका अन्दाज न कर सकनेके कारण, मैं उसकी तुलना भी नहीं कर सकता।"

अंग्रेजी भाषामें महान साधकों और दार्शनिकोंके विचार वैभवकी अक्षय निधि है। उसे ग्रहण करनेमें हमें किंचित् भी संकोच नहीं करना चाहिए; क्योंकि किसी भाषाके प्रति हमारे मनमें कोई दुर्भाव नहीं है। दूसरेकी माँके सन्मुख भी हमें अवश्य ही प्रणत होना चाहिए, किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि अपनी माँको अनादृत एवं आसनच्युतकर जिस किसीको भी वहाँ प्रतिष्ठित कर दें। इस विषयमें अपना कोई मत न देकर मैं पुनः कवि गुरुदेवके भाषा-सम्बन्धी एक उद्धरणसे अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं—"अपनी भाषामें विचारोंको प्रस्फुटित करने और ठीक ढंगसे सजानेका आनन्द मुझे प्रारम्भसे ही मिला है। इसीसे मैंने समझा है कि मातृभाषामें रचनाका अभ्यास सहज स्वाभाविक हो जानेके बाद, यथासमय किसी भी भाषापर अधिकार करके, साहस-पूर्वक व्यवहार करनेमें कलम रुकती नहीं। फिर अंग्रेजीकी अप्रचलित पुरानी वाक्यावलीको सावधानीके साथ सी-सीकर गुदड़ी नहीं बनानी पड़ती। स्कूलसे भागकर जो अवकाश मिला, उसमें जितनी अंग्रेजी मैंने राह चलते संग्रह की, उतनी ही अंग्रेजीको मैं खुशीसे इस्तेमाल किया करता हूं, इसका मुख्य कारण यही है कि शिशुकालसे मैं बँगला भाषामें रचना करनेमें अभ्यस्त रहा। कम-से-कम ग्यारह वर्षकी उम्र तक तो बंगलामें मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था, और उसके बाद अंग्रेजी स्कूलमें भरती होनेके बाद ही तुरन्त मैं स्कूल मास्टरके शासनका पगहा तोड़कर भाग खड़ा हुआ; और अब तक लापता हूं।..... मैं निश्चित जानता हूं कि इसका कारण (बँगला रचनाका) यही है कि बचपनसे ही मेरे मनकी परिणति हुई है बिना किसी तरहकी मिलावटके, खालिस मातृ-भाषामें। उस भोजनमें खाद्य-वस्तुके साथ-साथ यथेष्ठ खाद्य-प्राण थे, जिस खाद्य-प्राणमें सृष्टिकर्त्ताने अपना जादू-मन्त्र भर दिया था।"

मगरमच्छका शिकार

ए. एण्ड्यूज़

"हलो, फैक्टरी नं० ५का सहायक कप्तान घायल···दायां हाथ कट गया ...खोपड़ी घायल ... स्टाप। नं० ५··· फैक्टरी बोलती है, सार-संभालके लिए आओ। स्टाप।

हलो, फैक्टरी···चारके घंटेमें आ जाना चाहिए। फेन्डर तैयार रखना। स्टाप।"

दिन-रात एन्टार्कटिक महासागरके गरजते हुए जल और कँपा देनेवाली ध्वनिमें रेडियो ट्रांसमीटर बोला ही करता। न उसे आराम मिलता और न विश्राम। प्रत्येक क्षण किसी-न-किसीको कुछ-न-कुछ होता ही रहता।

ओफ़, कितनी ठंड, उसमें भी यह शिकार-बोट लो एक आइस बर्ग हिमगिरिके पास पहुंची हुई थी। वहाँसे उसे तुरन्त लौटाया और लगभग पौनेक घण्टेमें घायलको लेकर फैक्टरीमें आई।

फैक्टरीसे पहले शिकार-बोटका परिचय करा दूँ। ५०० टनकी स्टीम लांच जैसी बड़ी पूरी-की-पूरी खुली हुई एक बड़ी केबिन, जिसमें साधारणतः ५-६ आदमी रह सकें। उसीमें उनका सारा घर-द्वार। इसके सिवाय एक ओर कप्तान और उसका डांड और दूसरी ओर तोपवाला और जहाजकी पीट। कप्तान बड़ा ही होशियार होता है। स्टिअरिंग व्हील पर तो उसका गजबका अधिकार होता है, क्योंकि मगरमच्छका पीछा करनेमें उसे शिकारीपनका बहुत ही शीघ्रतामें और सावधानीपूर्वक व्यवहार करना पड़ता है। उसकी बोट एक क्षणमें १५-१७ मीलकी तेजीसे बहती होती है तो दूसरे ही क्षण बिल्कुल स्थिर होकर खड़ी हो जाती है। यह सब नाव पर रहनेवाले शिकारीकी इच्छानुसार होता है। शिकारी बोटपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जहाँ चाहे वहाँ जा सके, ऐसा एक पुल होता है, जिसके ऊपर खड़े होकर लोग दूर क्षितिज तक मगरमच्छकी हलचल पर नजर रख सकें।

हमारी बोटका शिकारी बड़ा योग्य था। उसने करीब साठ वसन्त देखे होंगे, फिर भी उसके मुँहपर एक भी झुर्री न थी। उसका ललाई लिए चेहरा, कनपटीमें गहराई लिए

आँखें, कठोर ठुड्डी और ऊंचा पूरा कद इस धन्धेकी अभिज्ञता बतानेके लिए पर्याप्त था।

यह उसका पैतृक धंधा था, जैसा कि सभी नार्वेजियन लोगोंका होता है। अपनी एवजीके लिए पहलेसे ही अपने सबसे छोटे लड़केको वह सिखा रहा था। उसकी गहरी आँखोंमें बाज जैसी बेचैनी, उसके प्रत्येक काममें चील जैसी झड़प और अंग-प्रत्यंगसे टपकनेवाली चपलता आज भी मुझे याद है।

उस बुड्ढेने दूर मगरमच्छका उड़ता हुआ फव्वारा देखा। उसकी साठ सालकी उम्र पता नहीं कहाँ गायब हो गई। वह सोलह वर्ष-सा जवान बन गया। उसमें अद्भुत चपलता और जोम आ गई। वर्षोंका अनुभव उसकी गहरी आँखों के कोनेसे झाँकने लगा। उसने तोपमें गोला-बारूद भर छह फीट लम्बा २०० पौंडका भाला चढ़ा दिया। इस भाले के पास ही छेदमें छह इंच मोटी रस्सी बँधी हुई थी, जिसकी १५० से २०० फीटकी कुण्डली नावकी पीठ पर इस प्रकार व्यवस्थित रूपसे रखी हुई थी कि आसानीसे खुल जाय। भालेकी अनीके ऊपर एक छोटा-सा टाइम बम बँधा हुआ था, जो मगरमच्छके भाला लगनेके तीन सेकण्ड बाद फटे। अब उसने अपने दाहिने हाथसे तोप संभाली। बाँये हाथके सहारे कप्तानकी तरफ पीठ करके खड़े होते हुए भी बातें कर रहा हो, इस तरह इशारा करना शुरू किया—हाँ, फुल स्पीड। आधा···फिर हाथ हिलाया, जरा बाँयीं ओर अरे स्पीड बढ़ाओ...बस, बस, ..ठहरो—बाँयें हाथके इशारेसे वह बातें करता जा रहा था।

यहाँ उसकी मौन भाषा सजीव हो उठी थी, किन्तु उससे भी सजीव थी गड्ढेमें धँसी हुई आँखोंकी भूरी पुतली। फिर हाथ फुल स्पीडके लिए हिला और दूसरे ही क्षण झटसे नीचे हो गया। अर्थात् सब बन्द कर दो। बोटपरके सभी लोग आतुरतासे क्या होता है, इसकी राह देख रहे थे। इतनेमें ही अचानक तोपकी आवाज हुई और कुछ दिखाई दे उसके पहले ही नाव पर पड़ी हुई रस्सी हवामें तैरती हुई दिखाई दी और दूसरे ही क्षण पचास फीट दूर पानीमें भाला घुसा हुआ दिखाई दिया। अभी कुछ सोचें कि इतने में ही वह टाइम बम फूटा, जिसकी भयंकर आवाजसे क्षितिज तक गूँज गया।

कितनी ही बार मगरमच्छ तुरंत ही मर जाता है, परन्तु कभी-कभी इस नये हमलेसे घबराकर अथवा उसके पेटमें यह कैसा धड़ाका हुआ, इसकी जानकारीके लिए तड़फता हुआ आगे बढ़ जाता है। हर समय शिकार बोट और इस महाकाय प्राणीके बीच गजग्राहकी-सी लड़ाई मच जाती है, फिर भी उस बेचारेको आत्म-समर्पण करना ही पड़ता है।

एक बार मगरमच्छ मरा, तभी इंजीनियरने मोटर चला कर रस्सी लपेटना शुरू किया।

मगरमच्छकी अनेक जातियाँ होती हैं। उनमें ब्लू जातिका मच्छ बहुत भारी होता है। मरनेके बाद वह पानी की तलीमें चला तो अवश्य जाता है, किन्तु इंजीनियरोंने उसके लिए एक युक्ति खोज निकाली है। वे मृत देहके पेट में छेद करके 'कम्प्रेसर पम्प' से उसके विशाल पेटमें हजारों घनफुट हवा भर देते हैं। बस फिर काम बन जाता है। मगरमच्छको लहराते हुए पानी पर ज्यों-का-त्यों छोड़कर आगे बढ़ें, उससे पूर्व 'यह शिकार नं० ५ का है' ऐसे निशानवाली ध्वजा उसमें लगा देते हैं। साथ-ही-साथ एक छोटा-सा रेडियो ट्रांसमीटर भी उसमें लगा देते हैं, जो अकेला पड़े रहनेपर भी 'मैं यहाँ हूँ, मैं यहाँ हूं' का संदेशा वातावरण में फैलाता रहता है।

शिकार-बोटका काम पूरा हो जानेपर दूसरे ही क्षण वह बहाँसे चल देता है। वह रेडियो दूसरी बोटको बुलाता है, जिसकी जिम्मेदारी ऐसी मृत देहोंको इकट्ठा करनेकी होती है। ऐसे बोटोंको बाय बोट (Buoy Boat) कहते हैं। बाय बोट मृत देहकी इस पूंजीको कोरवेटस (Corvettes) को देता है, जो सभी शिकारोंको फैक्टरी तक पहुंचाता है।

हमने दूसरी एक ब्लू मारी और तीसरी स्पर्म। चौथी राइटके पीछे पड़े। दूसरी तो बहुत दीखती है।···स्टाप। इस तरह हमने ५-६ शिकार किये होंगे कि इतनेमें ही इंजनके पंखेमें सहायक कप्तानका दाहिना हाथ आ गया। उसकी खोपड़ीमें भी चोट लगी। हमें डाक्टरी सहायताके लिए फैक्टरीकी ओर जाना पड़ा। हम फैक्टरीके पास पहुंचे। मल्लाहके शिकार-बोटकी इंजिनके बिल्कुल बंद कर देनेपर भी पानीकी हिलोरोंसे शिकार-बोट हिलने-डुलने लगा और फैक्टरीके साथ टकरा जानेका डर आ खड़ा हुआ। किन्तु फैक्टरीने साधवानी दिखाकर एक महाकाय मगरमच्छका फेन्डर (Fender) के रूपमें प्रयोग किया।

लोहेकी तोतिंगसे शिकार-बोट टकरा न जाय, इसलिए बीचमें अवरोधक रूपसे किसी चीजकी आवश्यकता होती है। फैक्टरीवाले ऐसी क्या दूसरी चीज लाते। उन्होंने वहाँ

एक ब्लू मगरमच्छका उपयोग किया। शिकारी बोट पानी उछालोंके साथ हिल-डुल रही थी, मानों अभी ही उलटी-तिरछी हो जायगी। परन्तु वैसा हो उसके पहले ही फैक्टरी के अन्दरसे तारकी रस्सी आई और हमारी बोट फैक्टरीका एक अंग बन गई।

बीमारकी हालत नाजुक हो गई थी। देर करना ठीक नहीं था। हमने सूचना दी। फैक्टरीका बंदर झड़पसे कूदा। उसके साथ एक रस्सी बँधी हुई थी। उसके सिर पर बाँसकी एक मोटी टोकरीमें बैठे हुए डाक्टरको हमने देखा। हमारी बोट नीचे थी। डाक्टरकी वह टोकनी ऊपरसे इस प्रकार आई कि हिलोल मारती शिकार-बोट और फैक्टरीके बीच डाक्टर न फँस जाय। दूसरे ही क्षण डाक्टर नीचे आ गया। उसे तुरन्त बीमारके पास ले गये। सार-संभाल आरम्भ हुई।

शिकारसे सम्बन्ध रखनेवाली एक अन्तर्राष्ट्रिय शिकार संस्था है, जो प्रति वर्ष कितने मगरमच्छ मारना चाहिए, इसका निश्चय करती है। साधारणतः यह संख्या १५ से ७० हजार तककी होती है। प्रत्येक शिकारी कंपनीको कितना मगरमच्छ मारना चाहिए, यह नहीं बताया जाता, परन्तु इस वर्ष कुल इतना शिकार होना चाहिए, इसीकी सूचना दी जाती है। इसके बाद कंपनीवाले अपना दल लेकर निश्चित तारीखसे शिकारकी शुरूआत कर देते हैं। प्रत्येक शिकारके बाद उसकी जात और समयकी सूचना कम्पनी अन्तर्राष्ट्रिय संस्थाके कार्यालयको भेज देती है। वार्षिक कोटा पूरा होनेके एक सप्ताह पहले संस्थाकी ओरसे निश्चित तिथिकी सूचो कंपनियोंको दे दी जातो है, जिससे फिर कोई नया शिकार न कर सके।

यह सप्ताह अर्थात् शिकारकी पराकाष्ठा। चारों ओर भीड़ ही भीड़। जिस कंपनीने अपने निश्चयसे अधिक शिकार किया हो तो वह अधिक नफा पाने और शिकार-बोट वाले अधिक बोनस पानेके लालचसे काममें पूरी शक्ति लगा देते हैं। यदि कमी हो तो उसे पूरा करने और बोनसके हाथसे न चले जानेके डरसे जैसे बने तैसे अधिक मगरमच्छ मारनेकी कोशिश होती है। अन्तिम दिवस जब सब वापस लौटते हैं, तब शायद ही कोई ऐसी बोट होती है, जो 'बन्द करो' के अन्तिम आदेशके बाद एक या दो शिकार अपने नामसे न लिखाए।

ये कंपनीवाले शिकारके पीछे खूब खर्च करते हैं, किन्तु खर्चसे कई गुना अधिक कमाते भी हैं। साधारणतः ७००से १००० आदमियोंका दल लेकर २-३ मास तक समुद्रके बीच में रहना होता है। एक फैक्टरीको ही २०,००० पीपा तो तेल चाहिए। जो फैक्टरी हमारे साथ थी, उसके पास रस्सियां ही तीन लाख रुपयेकी थीं। इसके अतिरिक्त इतने ही दामोंकी मशीनरी, उससे दूना वेतन खर्च। किन्तु नित्य के ८-१० मगरमच्छ गिनिये तो भी फैक्टरीको प्रत्येक दिन ३०,००० रुपयेका लाभ होता है। अर्थात् दो से ढाई लाख रुपयेका काम प्रतिदिन होता है। करोड़ों रुपयेके खर्चके बाद उन्हें अच्छा खासा नफा मिलता है। प्रत्येक मगरमच्छ साधारणतः अपनी जातिके अनुसार छोटा-बड़ा १०० से २०० टन तकका माल दे जाता है।

मान लीजिए कि ८५ फीट लम्बा ब्लू है, तो उसकी परिधि लगभग ४२ से ४५ फीट तथा ऊंचाई ८ से १० फीट। अकेली उसकी हड्डियां ही २० से २२ टन और २५ से ३० टन तक चरबी मिलेगी। ६० टन मांस और २००० गैलन तेल। अकेली उसकी जीभ ही ३ टनकी होगी। उसकी खोपड़ी अपनी बैलगाड़ी ही समझिये।

मगरमच्छोंकी अनेक जातियाँ होती हैं। कितने तो २-३ फीट ही लम्बे होते हैं। बड़े-से-बड़ा मगरमच्छ ९० फुट या उससे कुछ और बड़ा होता है। ये सभी सस्तन वर्गके प्राणी हैं, जो कि अपने बच्चोंको दूध पिलाते हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि मेरुदण्डवाला इतना बड़ा विशालकाय प्राणी इसी एक जातिका इस पृथ्वीपर जीवित है। नष्ट हुई दूसरी जातियोंमें इतने बड़े विशाल प्राणीका प्रमाण नहीं मिला। इस वर्गको वैज्ञानिक भाषामें CETACCA कहते हैं।

मगरमच्छ अर्थात् अपने थूथनसे फुव्वारा छोड़नेवाला जानवर। ज्यादातर लोग ऐसा मानते हैं कि मगरमच्छ मुँहसे पानी लेकर मछलीकी तरह ही उसमेंसे प्राणवायु लेता है और बाकीका पानी फव्वाराकी तरह बाहर निकाल देता है। ऐसी लोकवार्त्ताओंमें कुछ भी सत्य नहीं है। मगर-मच्छके मनुष्य जैसा ही फेफड़ा होता है। बेचारेको सांस लेनेके लिए पानीके बाहर बराबर आना पड़ता है। इसी अवसरका लाभ उठाकर तो शिकारी उसका शिकार करते हैं। श्वासकी क्रिया एक प्रकारकी गर्मी उत्पन्न करती है। गर्म श्वास जब मगरमच्छ बाहर निकालता है, तब उसमें रहनेवाली ठंड एन्टार्कटिककी कलेजेको कँपा देनेवाली ठंडमें ठिठुर जाती है। उसका बूंदे जम जाती हैं और उसका

फव्वारा बन उड़ना नजर आता है। इसलिए वह फव्वारा तो होता है, पर वह वायुमें बदला हुआ होता है। इसलिए यह बात समझमें आ जाती है कि जो फव्वारा निकला होता है, वह मुँहमेंसे नहीं, नाकमेंसे निकला हुआ होता है। उसकी नाक अपनी तथा दूसरे समस्त प्राणियोंकी तरह कपाल और आँखके नीचे मुँहके पास नहीं होती। बल्कि माथेके ऊपर होती है। नसकोरा कभी-कभी दो भी होते हैं। सामान्यतः तो चौरा लगा हुआ एक ही लगता है।

अनेक लोगोंकी धारणा है कि मगरमच्छ बड़ा शिकार करके बादमें किनारेपर एकान्तमें जाकर जुगाली करता है, किन्तु इसमें कोई तथ्य नहीं है। मालूम होता है, यह कल्पना गाय-भैंसोंके जुगाली करनेपर ले ली गई है। गाय-भैंसकी जुगालीके साथ दो बातोंका सम्बन्ध है। एक तो जल्दी खाकर फुरसतमें चबाना, जिसमें दांतोंकी जरूरत होती है, दूसरे एककी अपेक्षा कई पेट होना। गायके पेटमें चार भाग होते हैं, जिनमेंसे तीनमें खाई हुई खुराक पड़ी रहती है और चौथेमें पाचन-क्रिया होती है। पहले तीनमें खुराक सम्पूर्ण रूपसे चबाई हुई नहीं होती। इसलिए फुरसतके समय उसमें से थोड़ा-थोड़ा मुँहमें लाकर गाय जुगाली करती है। जब कि अधिकांश मगरमच्छोंके दांत नहीं होते। जिनके होते हैं, उनके भी दाँत मजबूत नहीं होते कि जुगाली कर सकें।

अदन्त मगरमच्छोंके दाँतकी जगह कांसकी तरह दाँता होते हैं, जो पानीके साथ मुँहमें गए हुए केंकड़ा, मेढ़क जैसे जंतुओंको मुँहसे पानी बाहर निकलते समय रोकनेमें उपयोगी होते हैं। यों पेट तो मगरमच्छके भी ३ से १२ तक होते हैं, किन्तु उसमें गई हुई खुराक आगे ही बढ़ती जाती है। जुगालीके लिए पीछे नहीं फिरती। अब रही फुरसतकी बात। सो इतना मोटा विशाल और बेचारेको जीना केंकड़े तथा अनेक जलचरोंपर। कहाँसे फुरसत मिले? फिर किनारेपर आकर बैठे तो अपनी चरबीके भारसे ही उसकी पसलियाँ दबें और फेंफड़ोंपर इतना वजन डाल दें कि सांस लेनेमें कठिनाई आ जाय। आरामकी अपेक्षा पूरा ही आराम मिल जाय और इस दुनियको भी छोड़कर चल देना पड़े।

मगरमच्छ पानीमें रहता है और मछली जैसा लगता है, फिर भी वह मछलीसे बिलकुल भिन्न होता है। एक तो FINS पार्श्वमें मगरमच्छके हड्डियां होती हैं, अकेली हड्डियां ही नहीं, अपने पंजोंकी तरह अंगुलियां और पोरुए भी होते हैं। सिर्फ खूब चरबीके कारण वह बाहरसे व्यवहार नहीं कर सकता। मछलीकी पूँछ खड़ी होती है, जब कि मगरमच्छकी पूँछ आड़ी होती है, इसीसे तैरते समय मछली छिछले पानी में भी बड़ी तेजीसे सीधी आगे निकल सकती है। मगरमच्छको तैरनेके लिए कम-से-कम गलाडूब पानी तो होना ही चाहिए, क्योंकि उसकी पूँछ आड़ी होनेके पश्चात् स्क्रूकी तरह गोल चक्राकार गतिमें घूमती है, जिससे मगरमच्छको सीधी गतिके बदले ऊपर होकर नीचे डुबकी मारना पड़ता है। मगरमच्छको सांस लेनेके लिए बारम्बार बाहर आना पड़ता है, इसमें उसकी आड़ी पूँछ ही महत्त्वका भाग रखती है। बाहर आनेके कारण ही मगरमच्छ शिकारियों के चक्करमें आ जाता है।

मादा मगरमच्छके दो स्तन होते हैं। नरको जननेन्द्रिय की गोलियाँ हाथीकी तरह पेटमें ही होती हैं। उसका सिर बडा, किन्तु आड़ा विकसित हुआ रहता है। उसकी आँखें छोटी और कान नहींके बराबर होते हैं। दो रेलगाड़ी पूरी-की-पूरी उसके मुँहमें आसानीसे समा सकती हैं। यों इस महाकाय प्राणीके कानकी जगह दो छोटे-छोटे छेद होते हैं, जिनमें टेनिसकी गेंद सरलतासे घुस सकती है।

शिकारी फैक्टरियाँ दूरसे देखनेपर लम्बी-चौड़ी लौह-पंजर-सी दिखाई देती हैं। शिकारी नावोंको रखनेके लिए ऊँची-ऊँची नालियाँ ओर कुछ खम्भे काफी होते हैं। नावकी पीठपर छोटी-छोटी नौकाएँ पड़ी होनेसे उसे जहाज माना जा सकता है। एक बड़ा दरवाजा होता है, जिसमें होकर ९० फीट लम्बा मगरमच्छ अन्दर आ सके। मगरमच्छको नावपर ले जानेके लिए एक बड़ा ५ टनका क्रेन होता है। मानो काल-दूतका हाथ ही हो। जब मगरमच्छका शव अन्दर ले जाना हो, तब क्रेन सजीव हो जाते हैं। मगरमच्छको तलाशता हो, इस तरह इनका स्पर्श करते हैं और फिर एकदम 'फड़ाक' शब्द करते हुए बन्द हो जाते हैं। यह आवाज बड़ी भयंकर होती है। उनका भयंकर शब्द बारम्बार कानके ऊपर गूंजता ही रहता है। इस आवाजसे फैक्टरीके सभी आदमियोंको मगरमच्छके आनेकी खबर लग जाती है। धीरे-धीरे खिंचकर वह नावपर आता है। यहीं उनका स्वागत करनेके लिए एक सेना-सी खड़ी रहती है। इसमें चमड़ी उतारनेवाले, चरबी निकालनेवाले, हड्डियाँ साफ करनेवाले आदि अनेक कारीगर होते हैं। मानो किसीकी मृतदेहकी प्रतीक्षा करनेवाली गीधोंकी टोली

हो। जगह-जगह पड़े हुए मांसके लोथड़े, खून भरे हुए गड्ढे तथा हड्डीके इधर-उधर पड़े हुए टुकड़े ही उसका पता देते हैं। इस पार्श्वभूमिमें जब मगरमच्छ प्रवेश करता है, तब तुरन्त ही सबसे पहले एक कारीगर अपना लम्बा हथ्थावाला चमकता हुआ खांडर उसके पार्श्वमें इस प्रकार मारता हुआ खड़ा रहता है कि जैसे-जैसे मगरमच्छ यंत्रसे आगे खिंचता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसकी चमड़ीकी ढाई इंच गहरी और एक-आध फुट चौड़ी पट्टी उतरती जाती है। यह हुआ उसका श्रीगणेश। इसी तरह दूसरी ओर भी होता है। फिर तो सभी टूट पड़ते हैं। चमड़ी उतरनेके बाद उसमें चरबी दिखाई देने लगती है। ऐसी चिकनी और लसदार कि लम्बी कीलोंवाले मजबूत बूट पहननेवाले अनुभवहीन होनेपर कितनी ही बार गुलाटें खा जाएँ। एक बार चमड़ी उतर जानेके बाद पगडंडी बनाकर उस महाकाय पशुके ऊपर सब चढ़ जाते हैं। मुरदा पशु जिस प्रकार गीधसे खाया जाता है, उसी प्रकार मगरमच्छ इन लोगोंका शिकार बन जाता है। १८ इंचसे १० फीट तकके उसकी चरबीके टुकड़े जहाजके फर्शपर बने हुए गड्ढोंमें डाल दिये जाते हैं। वहाँ होकर वह नीचेके कारखानेमें चला जाता है। यहीं उसमेंसे अनेक वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

फैक्टरीमें वैज्ञानिक भी रहते हैं। दो-चार वैज्ञानिक कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं। चरबी, तैल और हड्डियोंका अधिक-से-अधिक कैसे कस निकाला जाय, यही सोचते हैं। इस प्रकार फैक्टरीमें सब तरहके लोग मिलते हैं। रात-दिन पालियाँ बदलती रहती है। फैक्टरी चौबीसों घंटे चलती रहती है। किन्तु पराकाष्ठापर सारे शिकार-कालमें सिर्फ एक ही बार पहुंचती है अर्थात् पूर्णाहुतिके समय। रेडियो ट्रान्समीटर अन्तमें कह देता है—समाप्ति। और सभी कारीगर नावपर आ इकट्ठे होते हैं। ७०० से १००० हजार तकका दल। मानो युद्धकी तैयारियाँ चल रही हैं। हर एकके हाथमें जुदे-जुदे हथियार होते हैं। कुल्हाड़ी, फरसा, घन लेकर सब नावकी पीठपर इकट्ठे हो जाते हैं, मानों संहार-मूर्ति हों। हुक्म मिलते ही सब टूट पड़ते हैं। फर्शको तोड़ डालते हैं और उसे समुद्रमें बहा देते हैं। एक-एक टुकड़ा जिसपर कि मगरमच्छका खून, चरबी, मांस, तेल या और किसीका अंश बचा रहता है, उस सबको जल-समाधि दे देते हैं। फिर रोगके कीटाणुओंका नाश करने तथा फैक्टरी की दुर्गन्धको दूर करनेके लिए आग उगलनेवाला कास्टिक सोड़ा सारी फैक्टरीपर डाल देते हैं। सारी फैक्टरी तेजाबसे भर जाती है। फिर वह धोई-पोंछी जाती है। सफाई हो जानेके बाद उसमें रंग-रोगन किया जाता है और उसे नई बना दिया जाता है। चारों ओर छान-बीन करनेके बाद हिमसागरकी लहराती जलराशिको दो-तीन मासके लिए अन्तिम प्रणामकर सब अपने-अपने घरको चल देते हैं।

फैक्टरीकी असह्य बदबूके साथ जब शिकार बोटका मगरमच्छके साथका मृत्यु-संघर्ष याद आता है, तब इसके आनन्दका एक विचित्र ही अनुभव होता है। मुझे याद है कि एक बार हमारी शिकार-बोट फँस गई थी। हम बिलकुल दक्षिण ध्रुवके पास पहुंच गए थे। चारों ओर तैरती बरफके छोटे-छोटे टुकड़ोंमें होकर निकलते हुए मुश्किल नहीं आई, परन्तु वातावरण प्रतिकूल था, ठंड-ठंडी पवन-तरंगें उठ रही थीं, उसमें भी सब कुछ कुहासे ढँका हुआ था। हमारा कप्तान योग्य था। उसकी अनुभवी आँखोंने उस कुहरेमें एक गगनचुम्बी बरफके पहाड़को सिर्फ एक हजार गजके फासलेपर देखा। यदि उसके साथ हमारी बोट टकरा जाय तो हममेंसे किसीकी हड्डी भी न बचे। कप्तानकी चपलताने उसकी मदद की। उसने अपना डांड उठाया और उस हिमालय जैसे आइसबर्गसे हमलोगोंकी रक्षा की। किन्तु आगे चलकर हम बरफमें फँस गए।

उस समयकी ठंड, कलेजा कँपा देनेवाली हवा और घने कुहरेकी याद आज भी मुझे कँपा देती है। अगर दूसरी शिकार-बोटका सहारा न मिला होता, तो क्या हम बचे होते। प्रत्येक दलकी एक-दो बोट हर साल इस तरह गायब हो ही जाती है।

अनु०—वि० श० चतुर्वेदी



देश-विदेशमें भारतीय चायकी खपत

बी० आर० बोहरा, सचिवालय बोर्ड

चाय-उद्योगकी गणना भारतके अत्यधिक महत्वपूर्ण उद्योगोंमें की जाती है। इसके द्वारा १० लाखसे अधिक व्यक्तियोंकी जीविका चलती है। इतने अधिक व्यक्ति किसी भी अन्य उद्योगमें काम नहीं करते। सबसे अधिक चाय आसाममें पैदा होती है और राज्यके कुल निवासियोंकी एक-तिहाई संख्या इसमें लगी हुई है। परन्तु केवल जीविका चलानेकी दृष्टिसे ही चाय-उद्योगका हमारी अर्थ-व्यवस्थामें महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। चाय-उद्योगसे अन्य दूसरे उद्योगों को बहुत अच्छा समर्थन मिलता है। इन उद्योगोंमें लोहा और इस्पात, चीनीके बर्त्तनों, सीमेंट, उर्वरक और प्लाइवुड उद्योग प्रमुख हैं। प्लाइवुड उद्योग तो एक प्रकारसे पूर्णतः चाय-उद्योगपर ही निर्भर है।

विभिन्न करोंके रूपमें चाय-उद्योगसे केन्द्र तथा राज्योंको भी काफी आय होती है। यह प्रतिवर्ष ३५ से ४० करोड़ रु० तक होती है। पर आजकल हमारे लिए चाय-उद्योगसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके द्वारा हमें प्रतिवर्ष १ अरब २५ करोड़ रु० मूल्यका विदेशी विनिमय प्राप्त होता है। विदेशी विनिमयके सम्पूर्ण उपार्जनका यह लगभग चौथाई होता है।

चायका उत्पादन

चाय भारतके कई क्षेत्रोंमें पैदा की जाती है। प्रतिवर्ष लगभग ६८०० लाख पौंड पैदा होनेवाली चायमें से अकेले आसाममें ही लगभग ३७०० लाख पौंड पैदा होती है। इसके बाद पश्चिमी बंगालका स्थान है, जहाँ लगभग १६७० लाख पौंड होती है। दक्षिण भारतमें मद्रास और केरल राज्य मुख्य चाय उत्पादक राज्य हैं। इनमें १४०० लाख पौंड चाय प्रतिवर्ष पैदा होती है। इनके सिवा बिहार, त्रिपुरा, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और मैसूरमें भी चाय पैदा होती है। परन्तु ये सब मिलकर लगभग १३० लाख पौंड ही पैदा करते हैं।

भारतके चाय-उत्पादक क्षेत्र एक-दूसरेसे दूर-दूर हैं। उनकी मिट्टी तथा जलवायु भी एक-दूसरेसे बहुत विभिन्न हैं। इसलिए विभिन्न क्षेत्रोंमें पैदा होनेवाली चायकी किस्मोंमें भी अन्तर होता है। प्रत्येक क्षेत्रकी चायकी अपनी विशेषता होती है। आसामकी चाय अपनी तेज सुगन्ध और रंगके लिए प्रसिद्ध है। परन्तु पश्चिमी बंगालके दारजिलिंग क्षेत्रमें पैदा होनेवाली चाय बहुत सुस्वादु होती है। दक्षिण भारत, विशेषतः नीलगिरि क्षेत्रमें पैदा होनेवाली कुछ चाय भी अपनी सुगन्ध और रंगके लिए प्रसिद्ध है। परन्तु दारजिलिंग की चाय न केवल भारतमें ही, वरन् विश्व भरमें श्रेष्ठ मानी जाती है। दारजिलिंगकी थोड़ी-सी चाय भी आसाम अथवा दक्षिण भारतकी चायमें मिला देनेसे उनका स्वाद और सुगंध भी दारजिलिंगकी चायके समान हो जाती है। भारतमें अनेक किस्मकी चाय पैदा होनेके कारण खरीदारोंको अपनी मन-माफिक चाय चुन लेनेमें बड़ी आसानी रहती है।

चायका निर्यात

विदेशी बाजारोंमें भारतीय चायकी अच्छी माँग है। वास्तवमें भारतमें पैदा होनेवाले चायका दो-तिहाई भाग विदेशोंको भेज दिया जाता है। भारतीय चाय खरीदनेवाले देशोंमें ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, आयर, कनाडा, जर्मनी, नीदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, मिस्र, सूडान, तुर्की और पश्चिमी एशियाके अन्य प्रमुख देश हैं। ब्रिटेन सदासे ही भारतीय चायका सबसे बड़ा खरीददार रहा है। विदेशोंको निर्यात होनेवाली समस्त भारतीय चायका लगभग ७० प्रतिशत भाग ब्रिटेन ही खरीदता है। गत तीन वर्षोंमें भारतसे संसारके प्रमुख देशोंको चायका जो निर्यात हुआ है, उसके आंकड़े नीचे दिए गए हैं :—

१९५५ से १९५७ तक हुआ निर्यात

(दस लाख पौंडोंमें)

देश	१९५५	१९५६	१९५७
१. ब्रिटेन	२५१	३६५	३०२
२. अमेरिका	२४	२८	२३
३ आयर	१८	१७	१९
४. कनाडा	१६	२३	१७
५. मिस्र	१३	२३	१७
६. रूस	—	१४	१६
७. ईरान	११	८	१०
८. आस्ट्रेलिया	६	९	८
९. तुर्की	३	६	७
१०. सूडान	३	७	४
११. पश्चिमी जर्मनी	३	६	४
१२. कुवैत	४	३	३
१३ अन्य देश	१५	१४	१२
योग	३६७	५२३	४४२

अन्य चाय उत्पादक देश

संसारमें केवल भारत ही ऐसा देश नहीं है, जहाँ चाय पैदा होती हो। लंका, इण्डोनेशिया, चीन, जापान और फारमोसामें भी बहुत दिनोंसे चाय होती आई है। उनके सिवा इधर कुछ अन्य देशोंने अपने यहाँ चाय पैदा करनेके प्रयत्न आरम्भ किए हैं। इनमें ब्रिटिश, पूर्वी-अफ्रीका, न्यासालैन्ड, अर्जेन्टाइना और ईरान उल्लेखनीय हैं। लंकाका उत्पादन गत वर्ष बढ़कर ४००० लाख पौंड प्रतिवर्ष तक पहुंच गया। गत महायुद्धमें इण्डोनेशियाका उत्पादन तथा निर्यात घट गया था। अब वह फिर युद्धसे पूर्व तककी सीमा तक अपना निर्यात बढ़ा लेनेका यत्न कर रहा है। परन्तु अफ्रीकाके क्षेत्रोंने चाय उत्पादनमें विशेष उन्नति की है। यहाँ अब लगभग ७०० लाख पौंड चाय प्रतिवर्ष उत्पन्न होने लगी है। अनुमान है कि यहाँके उत्पादनमें प्रतिवर्ष १०० लाख पौंडकी वृद्धि होती जायगी। जापान, चीन, अर्जेण्टाइना और ईरानमें भी चायका उत्पादन बढ़ानेके यत्न किए जा रहे हैं।

चाय उत्पादनमें जो वृद्धि होती जा रही है, वह हमारे लिए चिन्ताका विषय बन सकती है। समस्त संसारमें चाय की जितनी मांग है, उससे कहीं अधिक वह उत्पन्न की जा रही है। नीचेके आँकड़ोंसे यह स्पष्ट हो जाता है :—

(दस लाख पौंड)

	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७
समस्त संसारमें पैदा हुई चाय जिसमें गत वर्ष की शेष चाय भी शामिल है	१,२९२	१,३८४	१,४२३	१,५२५
	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७
समस्त संसारमें हुई खपत	१,२८६	१,३४६	१,३२०	१,४३६
शेष	+६	+३९	+१०६	+८९

यदि इसी प्रकार उत्पादनसे खतप कम होती रही तो निश्चित है कि संसारमें कहीं-न-कहीं पैदा हुई कुछ चाय बिना बिकी शेष पड़ी रहेगी। इसलिए यह स्थिति चायकी खपतमें वृद्धि करके ही सुधारी जा सकती है।

प्रचारकी आवश्यकता

ऊपर बताई गई स्थितिको ध्यानमें रखकर ही भारत सरकार अन्य चाय उत्पादक देशों और स्थानीय व्यापारियोंके साथ सहयोग करके चायका प्रयोग बढ़ानेके लिए प्रचार कर रही है। इसीके फलस्वरूप अमेरिका, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड्स और आयरलैण्डमें चाय परिषदें बनाई गई हैं। इनके प्रयत्न धीरे-धीरे अपने फल प्रकट कर रहे हैं। परन्तु अभी अमेरिका और कनाडामें चायकी खपत बढ़ानेके लिए काफी गुंजाइश है। उदाहरणके लिए अमेरिकामें इस समय लगभग १००० लाख पौण्ड चाय खपती है। इसके अनुसार प्रति व्यक्ति पीछे १० औंस प्रतिवर्ष चायकी खपतका औसत पड़ता है, जब कि काफीकी खपतका यह औसत १६ पौण्ड पड़ता है। चायकी खपतकी दृष्टिसे ब्रिटेनका स्थान मुख्य है। यहाँ अब प्रति व्यक्ति पीछे १० पौंड प्रतिवर्ष चाय खपती है।

चाय उत्पन्न करनेवाले देशोंमें भी उसकी खपतमें वृद्धि हो रही है। भारतमें गत ४ वर्षोंमें चायकी खपतमें २० प्रतिशतकी वृद्ध हो गई है और अब २१०० लाख पौण्डसे अधिक चाय प्रतिवर्ष खपती है। इसे देखते हुए चायकी खपतमें जो वृद्धि हो रही है, उसका एक कारण लोगोंके रहन-सहनका प्रतिमान ऊँचा हो जाना है। परन्तु देश भरमें चाय-बोर्ड द्वारा चायके पक्षमें जो जोरदार प्रचार किया जा रहा है, उसके कारण भी खपतमें अच्छी वृद्धि हुई है। भारतीयोंके रहन-सहनका प्रतिमान ज्यों-ज्यों ऊँचा होता जायगा, त्यों-त्यों देशमें चायकी खपत बढ़ती जायगी और फिर हमारे चाय उद्योगको विदेशोंकी माँगके भरोसे नहीं रहना होगा।

वैज्ञानिक गवेषणा

चाय-जगतमें भारतकी बहुत ही प्रमुख स्थिति है। गहन वैज्ञानिक गवेषणाके सहारे से ही यह स्थिति प्राप्त हुई है। आसामके होकलाई स्थानका चाय गवेषणा केन्द्र संसार भरमें अपने ढंगका सर्वश्रेष्ठ केन्द्र है। इस केन्द्रमें पैदा होनेवाली चायकी किस्म तथा परिमाणपर पड़नेवाले मिट्टी और जलवायु के प्रभाव सम्बन्धी गवेषणा की जाती है। इसके सिवा उर्वरकों, पौध लगानेकी विभिन्न प्रणालियों, पौधोंकी छटाई और पत्तियोंके तोड़ने आदिके विषयमें भली प्रकार गवेषणा की जाती है। इन गवेषणाओंकी सहायतासे भारतीय

चायकी किस्म सुधारनेके निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं। कारखानोंमें पत्तियोंसे सूखी चाय तैयार करनेकी विधियोंमें सुधार करनेके उपाय भी बराबर किये जाते हैं। दक्षिण भारतके दावरशीला स्थानपर भी ऐसी ही गवेषणा करनेका प्रबन्ध किया गया है। इस केन्द्रका विस्तार किया जा रहा है। इनके अलावा चाय-बोर्ड पश्चिमी बंगालके द्वार स्थानमें भी एक और गवेषणाशाला खोलने जा रहा है, जहाँ चायके विषयमें मूलभूत गवेषणा की जाया करेगी। इन गवेषणाओंके कारण भारतीय चायकी किस्म सुधरती जा रही है तथा भविष्यमें और भी सुधर जानेकी आशा है। इस प्रकार भविष्यमें भारतीय चायकी माँग बढ़नेकी अच्छी आशा है। एक दिन ऐसा भी हो सकता है, जब चाय पान करनेवाले सभी देशोंके प्रत्येक घरमें भारतीय चायके लिए अवश्य स्थान होगा।

हिन्दीकी कठिनाइयाँ

अनन्त रामय्या

जब हिन्दी राजभाषा घोषित की गई, तभी उसकी जिम्मेदारी भी बढ़ गई। अब तो वह किसी एक प्रांत की भाषा न होकर समस्त भारतीयोंकी भाषा बन गई है। सभी भारतीयोंको आज हिन्दीका ज्ञान होना अनिवार्य है। अतः हिन्दीको यथासाध्य सरल, सुन्दर एवं सर्वजन-सुलभ बनाना नितान्त आवश्यक है। हिन्दी सीखनेवालोंके सामने कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। इस समस्याको सुलझाना हिन्दीवालोंका पहला कर्तव्य है। मेरा निजी मत यह है कि ऐसे विषयोंमें उत्तरवालोंकी अपेक्षा दक्षिणवालोंको ज्यादा अग्रसर होना चाहिये। क्योंकि आज उन्हींको नये सिरेसे हिन्दी सीखनी पड़ती है। उनको भारी दिक्कत पैदा हो रही है। हिन्दीके उद्धारके लिए औत्तरात्य और दाक्षिणात्य दोनों को मिलकर काम करना पड़ता है। इस काममें दक्षिणवाले भी साझेदार बनें।

हिन्दीकी पहली और बड़ी कठिनाई लिंग विषयकी है। भारतकी लगभग सभी भाषाओंमें तीनों लिंगोंकी रूढ़ि है। लेकिन हिन्दीमें पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दो ही हैं। कौन-सा शब्द स्त्रीलिंग है और कौन-सा शब्द पुल्लिंग, इसकी पहचान के लिए कोई खास नियम नहीं है। भाषामें जितने शब्द हैं, उन सबोंके लिंग याद रखना मुमकिन नहीं है। एक तरह से दिमागको यह भार भी होता है। कोई-कोई ऐसा भी शब्द है, जो दोनों लिंगोंमें प्रयोग किया जाता है, जैसे याद, गंध वगैरह। कोई ठीक व्यवस्था न होनेके कारण बड़े-से-बड़े विद्वान भी ठोकर खाते हैं, तो साधारण जनताका क्या पूछना। अतः विज्ञ तथा अनुभवी लोग मिलकर कुछ सुधार करेंगे तो हिन्दी और हिन्दी सीखनेवाले, दोनोंका हित होगा।

आम तौरपर यह बात सभी मानते हैं कि हिन्दी संस्कृत की बेटी है। लिपि, व्याकरण, अलंकार, छंदशास्त्र आदि सभी विषयोंमें संस्कृतका ही मार्ग अपनाती आई है। फिर भी न जानें लिंगके बारेमें क्यों अपना ही एक अलग रास्ता पकड़ लिया। संस्कृतमें तीन लिंगोंकी रूढ़ि है, तो हिन्दीमें दोकी ही। संस्कृतमें लिंग समझनेके लिए व्याकरण और कोशसे ठीक मदद मिलती है, लेकिन हिन्दीमें ऐसी बात नहीं है। "लिंग" का अर्थ चिन्ह व निमित्त है। अर्थात् जिस चिन्हसे या अवयव-विशेषसे यह जाना जाता है कि अमुक शब्द स्त्रीवाचक और अमुक पुरुषवाचक है, उसी चिन्हको लिंग कहते हैं। मनुष्योंका लिंग समझना आसान है। उनका चिन्ह कहीं यों कहा गया है "स्तन केशवती नारी लोमशः पुरुषः स्मृतः"। यहाँ लोमका मतलब मुँहके बाल अर्थात् दाढ़ी और मूँछसे है। श्मश्रु तत्सम है और मूँछ तद्भव है। संस्कृतमें श्मश्रु शब्द नपुंसक लिंग है। हिन्दीमें तो दाढ़ी और मूँछ दोनों ही स्त्रीलिंग हैं। यहीं कुछ विलक्षणता दीख पड़ती है कि जिस चिन्हसे पुरुषत्वका बोध होता है, वही स्त्रीलिंगमें इस्तेमाल किया जाता है।

संस्कृतमें लिंग-निर्णय अलग-अलग तरीकोंसे किया जाता है। कहीं-कहीं सामर्थ्य और स्वावलंबनकी शक्तिके अनुसार भी लिंगका निर्णय किया जाता है, जैसे लता, नदी, अबला वगैरह। पेड़के आश्रयके बिना लता पनप नहीं सकती। नदी समुद्रमें पहुंचाकर ही शांतिकी साँस लेती है। अबला भी पुरुषका आश्रय चाहती है। अतः ये शब्द स्त्रीलिंगमें व्यवहृत हैं। समुद्र, पेठ, पर्वत, सूरज, चाँद, पक्षी, आग, वायु, आत्मा वगैरह स्वतंत्र और स्वावलम्बी होनेके कारण पुल्लिंगमें

व्यवहृत हैं। लेकिन हिन्दीमें इसका उल्टा माना जाता है। पवन शब्दको स्त्रीलिंग माननेका आधार क्या है, पता नहीं। इसको स्त्रीलिंग मानकर ही हरिऔधजीने पवनदूत नामक काव्य लिखा है। संस्कृतमें पवनका दूसरा पर्याय शब्द अतिबल है। अतिबलको अबलाकी संज्ञा देना सर्वथा अशोभनीय है। संस्कृतमें उसका नायकके रूपमें व्यवहार किया जाता है। इसी तरह आग, आत्मा वगैरह भी पुल्लिंग ही हो सकते हैं। इसी तरह सरकार शब्दको भी स्त्रीलिंगमें इस्तेमाल करते हैं। इसका भी कोई आधार नहीं होगा। मेरा अनुमान है कि सरकार शब्द संस्कृतके सर्वकार शब्दसे पैदा हुआ होगा। सर्वकारका अर्थ—सर्वं करोतीति सर्वकारः, अर्थात् सब कुछ करनेकी क्षमता रखनेवाला होता है। इस दृष्टिसे जरूर पुल्लिंगमें इसका प्रयोग होना चाहिए। इसी तरह रामायण भी स्त्रीलिंगमें व्यवहृत है। इसका भी कोई आधार नहीं होगा। इस दृष्टिसे भागवत और भारतको भी स्त्रीलिंगमें इस्तेमाल करना चाहिए था। इस तरह हिन्दी भाषामें लिंग-निर्णयके लिए कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है। इस समस्याको हल करनेके लिए दो मार्ग हैं। एक तो नपुंसक लिंगको अपनाना है। दूसरा, कई शब्दोंको पुल्लिंगमें हो अंतर्भाव करना है, जैसे किताब, रोटी, चिट्ठी, संतान, आत्मा, सरकार, आग, पवन, रामायण वगैरह। स्पष्ट रूपसे जिनके लिंगका बोध होता है, उन्हींको स्त्रीलिंगमें इस्तेमाल करना चाहिए, जैसे गाय, भैंस, बकरी वगैरह। इस उपायसे "ने" प्रत्ययकी समस्या भी कुछ हद तक हल हो जाती है, जैसे रामने रोटी खाया, रामने चिट्ठी लिखा। एक दृष्टिसे "ने" प्रत्ययको भी हटाना चाहिए। मगर यह दूसरा कदम है। इसे हम नहीं करेंगे, तो आगे हमारी संतान करेगी।

हिन्दीकी लिखावटमें भी एकरूपताका कुछ अभाव है। उत्तर और दक्षिणकी लिखावटमें कुछ अंतर पड़ता है। कई लोग एक ही शब्दको अपनी-अपनी मर्जीके अनुसार लिखते हैं। उदाहरणके लिये "आया" शब्द है। यहाँ तो अंतिम वर्ण व्यंजनके बदले स्वर ही लिख डालते हैं। इसी तरह गया, गई, नया, नई ही लिखना चाहिए। "नई दिल्ली" इस शब्दमें स्वर लिखना कहाँ तक ठीक है, विज्ञ लोग इसका निर्णय करें। इन कारणोंसे हिन्दी-लिखावटमें एकरूपता को लाना भी आवश्यक है।

लिंगके बारेमें जो सुझाव मैंने पेश किये हैं, उनमें भी विद्वान लोग कई अपत्तियाँ कर सकते हैं। लेकिन आपत्ति करनेसे ही कोई समस्या हल नहीं हो सकती। इसे हल करनेके लिए विद्वानोंको एकत्र मिलकर कुछ उदारता और दूरदर्शितासे काम करना पड़ता है। ऐसा करनेसे ही कठिनाइयाँ दूर होकर हिन्दी सर्वप्रिय और सुलभ हो सकती है।

हमारे नये बाट और उनके प्रयोगकी समस्या

के० श्रीनिवास राघ, विकास अफसर (मैट्रिक)

मीटर प्रणाली अपना कर भारत-सरकारने एक ऐसा सुधार शुरू किया है, जिसका बहुत व्यापक और अच्छा फल होगा। यह सुधार जब पूरी तौरपर अमलमें आ जायगा तो सारे देशमें पहली बार एक-से बाट और पैमाने चलने लगेंगे, जिससे हमारे सभी तरहके कामोंमें बड़ी आसानी हो जायगी। आजकलके युगमें इतना बड़ा सुधार एक रूसको छोड़कर और किसी देशमें नहीं हुआ है। रूसने १९१९ में अपने यहाँ मीटर प्रणाली चलानेका निश्चय किया और उसे पूरी तौरपर अमलमें लानेमें लगभग १५ वर्ष लगाये। हमने भारतमें इसे केवल १० वर्षमें ही पूरी तौरपर चालू कर देने का निश्चय किया है। रूसकी तुलनामें हमारे आगे यह कठिनाई भी है कि १९१९ में रूस उद्योगोंकी दृष्टिसे जितना आगे था, उससे कहीं अधिक आगे आज भारत है। इसलिये नये बाट चलानेकी समस्या हमारे आगे रूसकी अपेक्षा अधिक टेढ़ी है। इतनेपर भी हमें अपना काम १९६६ से पहले कर डालना है। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि यदि हमारे उद्योगोंके आगे नई प्रणाली चलानेसे जो समस्याएँ उठ खड़ी होंगी, उनका शीघ्र और सन्तोषजनक हल हो गया तथा देशकी जनताने हृदयसे सहयोग दिया, तो यह परिवर्तन कर लेना हमारे लिए कोई कठिन काम न होगा। किसी भी पुरानी प्रणालीको बदलनेके समय कुछ-न-कुछ विरोध होता ही है। इस विरोधको दूर अथवा कम करनेके लिए जनताको अपने साथ ले लेना आवश्यक है। इसलिए इस परिवर्तनको धीरे-धीरे और क्रमशः करना उचित

होगा। सरकार यही करनेकी कोशिश कर रही है और उसने इस परिवर्तनको क्रमशः करनेके लिए सभी सम्बद्ध लोगोंसे परामर्श किया है।

मीटर प्रणालीके बाट तथा पैमानोंका लोगोंके नित्य-प्रति के सौदोंपर सीधा असर पड़ेगा। इसलिए इस बारेमें विचार कर लेना भी उचित ही होगा। चूँकि १ अक्टूबर, १९५८ से केवल मीटर प्रणालीके बाट ही चलने आरम्भ होंगे और पैमाने बादको चलाये जायेंगे, इसलिए इस लेखमें केवल बाटोंकी समस्यापर ही विचार किया जायगा।

बाटोंकी जाँचका प्रबन्ध

बाटोंको ठीक तौरपे चालू रखनेके लिए किसी प्रतिमानित बाटसे मिलाकर जाँच करते रहना आवश्यक होता है। इस प्रतिमानित बाटकी भी किसी अन्य और भी शुद्ध बाटसे भी जाँच की जाती है। अन्तमें जाकर उस बाटसे मिला करके जाँच कर ली जाती है, जिसे अन्तर्राष्ट्रिय दृष्टिसे शुद्ध और प्रतिमानित माना जाता है। मीटर प्रणालीके बाटों और पैमानोंके अन्तर्राष्ट्रिय प्रतिमान मीटर और किलोग्रामके वे आद्यरूप हैं, जो फ्रान्सके सेवरे नामक स्थानपर बाट और पैमानोंके ब्यूरोमें रखे हुए हैं। भारतके लिए इनके जो राष्ट्रिय आद्यरूप बनाये जायेंगे, वे इन्हीं अन्तर्राष्ट्रिय रूपोंसे बिलकुल मिलते-जुलते होंगे। इन्हें नई दिल्लीकी राष्ट्रिय भौतिक प्रयोगशालामें रखा जायगा। इस प्रकार राष्ट्रिय आद्यरूपोंका प्रयोग केवल कभी-कभी ही किया जाया करेगा। हमारे राष्ट्रिय आद्यरूपोंकी जाँच हर दसवें वर्ष अन्तर्राष्ट्रिय आद्यरूपोंसे मिलान करके कर ली जाया करेगी।

बाटोंके निर्देश प्रतिमान राज्योंमें रखे जायेंगे और उनसे मिलाकर गौण प्रतिमानोंकी जाँच की जाया करेगी। निर्देश प्रतिमानके बाटोंका सेट अत्यन्त शुद्ध बनाया जायगा और इसकी जाँच राष्ट्रिय भौतिक प्रयोगशालामें रखे जानेवाले केन्द्रीय राष्ट्रिय प्रतिमानसे मिलान करके की जाया करेगी। निर्देश प्रतिमान प्रत्येक राज्यको दिए जायेंगे और उनमें त्रुटियोंकी प्रामाणिक सूची भी साथमें बनाकर दे दी जायगी। इन्हें प्रत्येक राज्यके बाट और पैमाना विभागमें रखा जायगा। केन्द्रीय प्रतिमानोंके साथ मिलान करके इनकी जांच हर पाँचवें साल ही की जाया करेगी।

गौण प्रतिमानोंका प्रयोग

गौण प्रतिमानोंका प्रयोग कामकाजी प्रतिमानोंकी जाँच करनेके लिए किया जाया करेगा। इन्हें बाट और पैमाना विभागकी जिला प्रयोगशालाओंमें रखा जायगा। राज्योंकी राजधानियोंमें रखे जानेवाले निर्देश प्रतिमानोंसे मिलान करके हर पाँचवें वर्ष इनकी जाँच की जाया करेगी।

अब हम कामकाजी प्रतिमानके बारेमें विचार करते हैं। बाजारोंमें चलनेवाले बाटोंकी जाँच इसी कामकाजी प्रतिमान से मिलान करके की जाया करेगी। व्यापारियों द्वारा काममें लाये जानेवाले प्रत्येक बाटको शुद्धिको प्रमाणित किया जायगा। उसके शुद्ध सिद्ध हो जानेपर अधिकारीगण उसपर अपनी मोहर लगा दिया करेंगे। इसलिए प्रत्येक इन्सपेक्टरके पास कामकाजी प्रतिमानके बाटोंका एक सेट रहा करेगा। कामकाजी प्रतिमानोंका बहुत अधिक प्रयोग हुआ करेगा। इसलिए गौण प्रतिमानोंसे मिलाकर इनकी शुद्धताकी जाँच जल्दी-जल्दी होना चाहिए। इस जाँचके लिए १२ महीने अथवा उससे भी कमकी अवधि रखी गई है। ये कामकाजी प्रतिमान क्षम्य अशुद्धियोंको ध्यानमें रखते हुए टकसालोंमें तैयार किए जा रहे हैं और प्रत्येक राज्यको दिये जा रहे हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रतिमानोंकी स्थिति इस प्रकार रहेगी:—

अन्तर्राष्ट्रिय आद्यरूप (बाट तथा पैमानोंका अन्तर्राष्ट्रिय ब्यूरो, सेवरे, फ्रांस)

राष्ट्रिय आद्यरूप (राष्ट्रिय भौतिक प्रयोगशाला, नई-दिल्ली)

केन्द्रीय प्रतिमान (राष्ट्रिय भौतिक प्रयोगशाला, नई-दिल्ली)

निर्देश प्रतिमान (राज्योंकी राजधानियोंमें। हर पाँचवें वर्ष जाँच)

गौण प्रतिमान (जिलोंके प्रधान केन्द्रमें। हर पाँचवें वर्ष जाँच)

कामकाजी प्रतिमान (प्रत्येक इन्सपेक्टरके पास एक सेट। १२ महीनोंमें एक बार जाँच)

व्यापारियों द्वारा काममें लाये जानेवाले बाट (बननेके बाद जाँच और मोहर। इसके बाद हर दूसरे वर्ष फिर जाँच)

प्रतिमानित बाटोंकी प्राप्ति

बाटोंके अन्तर्राष्ट्रिय आद्यरूप उनके अन्तर्राष्ट्रिय ब्यूरोमें सुरक्षित हैं। इनके बाद भारतीय आद्यरूपोंका स्थान है। अन्तर्राष्ट्रिय ब्यूरोसे इन्हें प्राप्त करना है और इसके लिए कार्यवाही आरम्भ कर दी गई है। परंतु भारत भेजे जानेसे पहले इनको अन्तर्राष्ट्रिय आद्यरूपोंसे भली प्रकार मिलान करके परीक्षा कर ली जायगी। यह काम इस समय हो रहा है

और आशा है कि हमारे बाटोंके राष्ट्रिय आशयरूप हमें यह वर्ष समाप्त होने तक मिल जायेंगे।

अब निर्देश, गौण और कामकाजी प्रतिमानोंको लीजिये। इन प्रतिमानोंके बाटोंको भी शुद्ध बनानेकी आवश्यकता है। भारत-सरकारकी टकसालें ही ऐसे शुद्ध बाट तैयार कर सकती हैं। इसलिए उन तीन प्रकारके प्रतिमानित बाटोंका निर्माण-कार्य सरकारी टकसालोंको सौंपना पड़ा है। टकसालें जितनी जल्दी बाट तैयार करके दे देंगी, उतनी ही जल्दी देशमें मीटर प्रणालीके बाट चालू किये जा सकेंगे। यही कारण है कि १ अक्तूबर, १९५८ से केवल कुछ क्षेत्रोंमें नये बाट चालू किये जानेसे जनताको इनसे परिचित होनेमें भी सुविधा रहेगी। इसके साथ ही यह भी पता चल सकेगा कि जनता का इनके विषयमें क्या मत रहता है।

अनुमान है कि समस्त राज्योंमें बाट और पैमानोंके जो विभाग खोले जा रहे हैं, उन्हें पूर्णतः सुसज्जित करनेके लिए निर्देश प्रतिमानोंके १९ सेट, गौण प्रतिमानोंके ३०० सेट और कामकाजी प्रतिमानोंके १००० से अधिक सेटोंकी आवश्यकता होगी। इनमेंसे १९ निर्देश प्रतिमान तैयार हो चुके हैं। जहाँ तक गौण प्रतिमानोंका सम्बन्ध है, आरम्भ में राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशोंको इनका केवल एक सेट दिया जा सकेगा। यह सेट किसी केन्द्रीय स्थानमें रखा जायगा, जिससे इन्सपेक्टर उनके साथ मिलान करके कामकाजी प्रतिमानोंकी जाँच कर सकें। इससे शुरूमें इन्सपेक्टरोंको कुछ असुविधा अवश्य होगी, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय भी नहीं है।

कामकाजी प्रतिमानोंका प्रतिदिन प्रयोग होगा। इसलिए इन्हें अधिकसे अधिक इन्सपेक्टरोंको दिया जायगा। सरकारी टकसालें कामकाजी प्रतिमानोंके बाट तैयार करनेका ही प्रयत्न कर रही हैं। आशा है कि अप्रैल १९५९ तक कामकाजी प्रतिमानके लगभग २०० सेट उपलब्ध हो जायंगे और अप्रैल १९६०तक इनकी आधी आवश्यकता पूरी हो जायगी। शेष आधी आवश्यकता १९६०के कुछ दिन बाद ही पूरी हो जायगी। १ अक्तूबर, १९५८ को जितने सेट उपलब्ध होंगे, उन्हें राज्योंकी प्रारम्भिक आवश्यकताओंके अनुसार उनमें बाँट दिया जायगा।

प्रतिमानित तराजुएँ

बाँटोंकी जाँच करनेके लिये कुछ तराजुओंकी आवश्यकता होती है और इन्हीं तराजुओंकी कमीके कारण मीटर प्रणाली के बाटोंको चालू करनेमें कुछ विलम्ब हो सकता है। हमारे पास समय कम है और इतने कम समयमें तराजुएं आवश्यक संख्यामें तैयार नहीं की जा सकतीं, क्योंकि देशमें इन्हें तैयार करनेवाले निर्माताओंकी भी बहुत कमी है। कामकाजी प्रतिमानोंसे मिलान करके व्यापारियोंके बाटोंकी जांच करने के लिए भी बहुत-सी तराजुओंकी आवश्यकता होगी। सौभाग्यसे बम्बई, बिहार, पंजाब, मैसूर, आंध्र और दिल्लीमें पहलेसे ही बाट और पैमाना विभाग मौजूद हैं। इनके पास जांच करने योग्य तराजुएं हैं, परन्तु ये मीटर प्रणालीकी नहीं हैं। परन्तु इनसे शुरूमें काम चलाया जा सकता है। नयी तरहकी तराजुएं उन राज्योंको दी जा सकती हैं, जहाँ अभी तक बाट और पैमाना विभाग नहीं हैं। इन राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशोंमें आसाम, केरल, मद्रास, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, पश्चिमी बंगाल आदि सम्मिलित हैं। जब तराजुएं अधिक संख्यामें बनने लगेंगी तो इन्हें सभी राज्य अपनी आवश्यकतानुसार ले सकेंगे। अनुमान है कि अगले ३ या ४ वर्षोंमें तराजुओंके कुल १०० सेटोंकी आवश्यकता होगी। प्रत्येक सेटमें विभिन्न प्रकारकी ४ तराजुएं होंगी। आशा है कि तराजुओंके निर्माता निर्माण-कार्यको तेजीसे करके यह आवश्यकता शीघ्र पूरी कर देंगे।

ऊपर बताया जा चुका है कि नये बाट १ अक्तूबर १९५८ से केवल चुने हुए जिलों और क्षेत्रों में ही चालू किये जायंगे। दो वर्ष तक उनके साथ पुराने बाट भी चलते रहेंगे। अन्य देशोंमें अनुभवसे सिद्ध हो चुका है कि व्यापारी लोग पुराने बाटोंसे ही तब तक काम चलाते रहते हैं, जब तक कि उनके हट जानेका अन्तिम समय नहीं आ पहुँचता। वे यह नहीं सोचते कि अन्तमें ऐसा करनेसे बड़ी असुविधाएं होती हैं। इसलिए हमें यह समस्या या तो जनताको समझा-बुझाकर उसकी सद्भावनाके साथ सुलझानी होगी अथवा ऐसी दशा उत्पन्न करके जबकि पुराने बाट धीरे-धीरे अपने-आप कम होते चले जायँ। उचित तो यह होगा कि ये दोनों ही उपाय काममें लाये जायँ।

जहाँ कानून लागू है

कुछ राज्योंमें बाट तथा पैमाने सम्बन्धी कानून पहलेसे ही मौजूद हैं। इनके द्वारा बाटोंकी जांच करके उनपर मोहर लगानेका प्रबन्ध है। इन राज्योंमें व्यापारियोंको नये बाट यथासंभव जल्दी-से-जल्दी काममें लानेके लिए तैयार कर लेना चाहिए। जनतासे भी अनुरोध करना

चाहिए कि वह नये बाटोंसे तौलवाकर ही सामान खरीदा करे। व्यापारियोंको भी उचित है कि जब उनके पुराने बाटोंकी जाँचका समय आये तो वे नये बाट खरीदकर उनका प्रयोग करने लगें। बाट बनानेवालोंको चाहिए कि वे पुराने बाटोंका बनाना बन्द करके नये बाटोंका निर्माण आरंभ कर दें, क्योंकि एक समयके बाद जब उन्हें पुराने बाट बेचने को अनुमति नहीं दी जायगी तो उनके पुराने बाटोंका स्टाक बेकार पड़ा रहेगा और इस तरह उन्हें हानि उठानी पड़ेगी। इस प्रकार ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिसमें पुराने बाट गायब हो जायँ और उनके स्थानपर नये बाट चलने लगें।

जिन राज्योंमें बाट और पैमाना सम्बन्धी कोई कानून अभी नहीं हैं, उनमें नए बाटोंको चलाना अपेक्षाकृत आसान होगा। उन राज्योंमें अभी बाटोंकी जाँच करके मोहर नहीं लगायी जाती। इनमें १ अक्तूबर, १९५८ से ६ महीने अथवा एक वर्षकी ऐसी अवधि निश्चित की जा सकती है, जिसके अन्दर-अन्दर सब लोग अपने पुराने बाटोंको हटाकर नये बाट चलाने लगें। जिन क्षेत्रोंमें नये बाट चलाये जायँ, उनमें इस अवधिके बाद किसीको पुराने बाद काममें लाने की अनुमति नही देनी चाहिए। ऐसा करनेसे बाटोंके निर्माता भी अपने आप पुराने बाट बनाना बन्द करके नये बाट बनाने लगेंगे। बिना मोहरवाले और अधिकृत बाटों का उपयोग भी इन क्षेत्रोंमें रोकना चाहिए। दिल्लीमें १९५२ में जब उड़ीसा बाट और पैमाना अधिनियम लागू किया गया था तो यही उपाय किया गया था और इसका फल भी अच्छा हुआ था। परन्तु यह सब कुछ करनेसे काफी पहले नये बाटोंके बारेमें सुधार होना चाहिए और इनकी सूचना अक्तूबर १९५८ से पहले दे दी जानी चाहिए, जिससे जनता अकस्मात नये बाट आ जानेसे कष्ट अनुभव न करे।

तौलने की मशीनें

बाटोंके साथ ही तौलनेकी मशीनोंका भी प्रश्न है, जिनमें प्लेटफार्म मशीनें, वे-ब्रिज, स्टीलयार्ड, काउण्टर मशीनें आदि उल्लेखनीय हैं। ये एक नई श्रेणीमें आती हैं और एक बार खरीद लेनेके बाद बहुत वर्षों तक काम देती हैं। इसलिये उन सबको हटा देना उचित नहीं होगा। परन्तु इनमें मीटर प्रणालीके बाटोंके चिन्ह अंकित किये जा सकते हैं और इस प्रकार ये नयी प्रणालीकी बन जायंगी। इसका उपाय भारतीय मानक संस्था कर रही है। जो व्यक्ति ऐसी नयी मशीनें लगाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे अब मीटर प्रणालीवाली मशीनें खरीदें। जब तक पुरानी मशीनोंको बदलकर मीटर-प्रणालीका नहीं कर लिया जाता, तब तक परिवर्तन-तालिकाएँ काममें लानी चाहिए।

परिवर्तन-कालमें

नए सिक्कोंके बारेमें प्रायः ही कहा जाता है कि पुराने सिक्कोंको एकदम हटाकर उनके स्थानपर नए सिक्के चला देने चाहिए। परन्तु यह टकसालोंको नए सिक्के बनानेकी क्षमतापर निर्भर है। नए सिक्के एकदम इतने परिमाणमें नहीं ढाले जा सकते कि पुराने सिक्कोंके बिना काम चल जाय। यही बात बाटोंपर भी लागू होती है। नए बाट चालू हो जानेपर जनता पुराने बाट छोड़कर जल्दी-से-जल्दी नए बाट ले लेनेको उत्सुक हो सकती है और इस प्रकार दो तरहकी प्रणालियोंकी गड़बड़ीसे मुक्त हो जाना चाह सकती है। इस प्रकार उसे परिवर्तन तालिकाओंका प्रयोग भी नहीं करना पड़ेगा। सौभाग्यसे देशमें बाट बनानेकी काफी क्षमता मौजूद हैं। इसलिए नए बाट अपेक्षाकृत कम समयमें ही बनाये जा सकेंगे। इसलिए नए बाटोंके क्षेत्र भी यथासम्भव शीघ्र बनाये जा सकेंगे। इस प्रकार नए और पुराने बाटोंके बीचका अन्तर-काल न्यूनतम किया जा सकेगा। जनता भी जब यह देखेगी कि दशमिक सिक्कोंके साथ मीटर प्रणाली के बाट भी प्रयोग करनेसे हिसाब लगानेमें कितनी सुविधा होती है, तो वह नए बाटोंका स्वागत करने लगेगी और उनका बड़े उत्साहसे प्रयोग करेगी।



देवर्षि नारद क्यों हँसे ?

श्रीराम शर्मा

१. एक दिन देवर्षि नारद ऋषि अंगिरा के साथ वायुमार्गसे एक शहरके ऊपरसे निकले।

२. आकाशसे शहरकी ओर जब नजर डाली, तो देवर्षि हँस पड़े।

३. ऋषि अंगिराने कहा, "देवर्षि! आप क्यों हँसे? आप अकारण हँसते नहीं हैं। कृपाकर इसका रहस्य बताइये।"

४. नारदने कहा, "अंगिरा! तुमने नीचे कोई दृश्य देखा?"

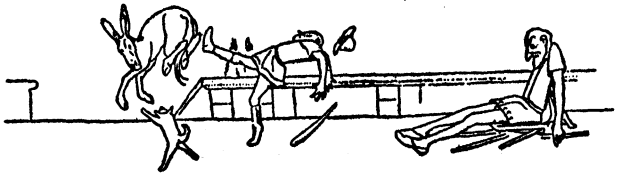
५. अंगिरा ऋषिने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "हाँ महाराज! मैंने देखा कि अन्नके एक व्यापारीने एक बकरेके तीन-चार लाठियाँ जमाईं और बकरा घबराकर मिमियाता हुआ भाग गया।"

६. नारद बोले, "बस, उसी दृश्यको देखकर मुझे हँसी आ गई।"

७. अंगिराने कौतूहलसे पूछा, "महाराज! इसमें हँसीकी कौन-सी बात है? इसके पीछे जो रहस्य है, वह मुझे बताइये।"

८. नारदने मुस्कराते हुए कहा, "जो बकरा तुमने पिटते हुए देखा, वह अपने पूर्व जन्ममें उस बड़े अन्नके व्यापारीका पिता था। अपने पराक्रम और परिश्रमसे उसने अपना व्यापार जमाया और ख्याति प्राप्त की। उसके पुत्रने, जो आज मालिक बना बैठा है, व्यापार को कायम रखा; पर वैभव उसके पिताका ही है, जो अब बकरेकी योनिमें है। बार-बार वह अन्न खाने आता था, दुत्कारे जानेपर भी नहीं जाता था, तब दूकानदारको क्रोध आ गया और उसने बकरेको पीट दिया। बकरा पिटकर भाग गया; पर दूकानदारको क्या मालूम कि वह अपने बापको ही पीट रहा है!"

९. देवर्षि नारद तथा ऋषि अंगिरा आकाश मार्गमें बहुत आगे बढ़ गए। अंगिरा ऋषिने मन-ही-मन कहा, "मनुष्यकी भली करनी ही साथ रहती है। करनीके अनुसार ही जन्म मिलता है।"



चिट्ठी - पत्री

(१)

कलकत्ता, १९-११-'५८

'विशाल भारत' का दीपावली अंक मिला। मानसिंहपर आपका लेख रहस्योद्घाटन करनेवाला है। सम्पादकीय विचारोंमें आपने लिखा है, "विधान सभाओं और लोक-सभाको देखिए। देशके वक्षपर अधिकांश सदस्य खून पीनेवाले कीटाणुओंके समान हैं।" राजस्थानसे कांग्रेसी टिकटपर चुने हुए लोक-सभाके एक सदस्यको मैं जानता हूं और उसे आप भी अच्छी तरह जानते हैं। कलकत्तेमें वे दलाली करते थे और अब दिल्लीमें दूसरे प्रकारकी दलाली करते हैं और मंत्रियोंकी चिरौरी करते हैं। एक दिन वे स्वयं बड़े गर्वसे कह रहे थे कि "अमुक सज्जनका आयात (इम्पोर्ट) लाइसेंस कैंसल हो गया, मैंने रिन्यू करवा दिया, डेढ़ लाख रुपये खर्च लगे।"

आगे आप अपने नोटमें लिखते हैं, "तुर्कीमें कमाल पाशा ने अपनी तानाशाहीके बाद प्रजातंत्रकी स्थापना की। हमें तनिक भी बुरा न लगे, यदि पं० नेहरू स्पष्ट रूपसे राष्ट्रपति बन जायँ और देशके दस-बीस चुने व्यक्तियोंको अपना परामर्शदाता बना लें। पाँच-छः वर्षोंके लिए ही विधान सभाएँ भंग हो जायँ तो अनेक निकम्मोंकी अकल ठीक हो जाय।"

तानाशाही स्थापित होनेके बाद उसे बदलना आपके या नेहरूजीके हाथकी बात नहीं है। वह किधर जायगी, क्या करेगी, कोई नहीं कह सकता। संसदीय शासनकी गति मंद है, पर है स्थिर। तानाशाही इस जमानेकी चीज़ नहीं है। या यों कहिए, अपना देश तुर्की जैसा छोटा नहीं है, इसे इस तरह नहीं सँभाला जा सकता।

—एक कलकतिया राजस्थानी

[हम कलकतिया राजस्थानी महाशयसे उनके तानाशाही और संसदीय शासन सम्बंधी विचारोंसे सिद्धांत-रूपसे सहमत हैं। पर हम कठमुल्ले नहीं हैं और न किसी शासन-व्यवस्था के किसी झांडके कायल हैं। हम तानाशाहीके विरोधी हैं ठीक उस प्रकार, जिस प्रकार दवाईको भोजनका स्थान देनेके विरोधी हैं। संसदीय शासनमें जनताकी नैसर्गिक वृत्तियोंका विकास होता है। पर संसदीय शासन वहींपर सम्भव है, जहाँ उज्ज्वल चरित्र हो और अधिकांश देशवासियोंका नैतिक स्तर ऊँचा हो। हमारे देशमें किसी ईमानदार, योग्य और गरीब व्यक्तिको चुनावमें सफलता मिलना आसान काम नहीं है। गरीब आदमी १०-१५ हजार रुपया कहाँसे लावे। कर्ज लेकर इतना खर्च करे तो फिर उसे किसी-न-किसी प्रकारकी दलाली करनी ही पड़ेगी, वह चाहे इम्पोर्ट लाइसेंसकी हो चाहे नौकरी दिलानेकी। कौन नहीं जानता कि संसदके चुनावके लिए अमीर लोग एक-एक लाख रुपया खर्च कर देते हैं। जो शासन-सूत्र चल रहा है, उसका व्यावहारिक रूप क्या है, सब जानते हैं। हमने जवाहरलालजीको राष्ट्रपति बनने और परामर्शदाताओं की सम्मति बनानेकी बात इसलिए लिखी थी कि कुछ वर्षोंके लिए दबाके तौरपर अच्छा नुस्खा प्राप्त हो जाय और राजनीतिक जीवनमें व्याघ्र-चर्म-प्रच्छन्न रासभोंके विचरनेका मौका न रहेगा। एक देहाती कहावत है—'बरि जाय वह सोनों जासें नाक छन जाय' अर्थात् ऐसे सोनेपर लानत है जो नाक झाड़ दे। वह संसदीय शासन निकम्मा है, जो खाद्यान्नकी कमीको भी पूरा न कर सके और नैतिक स्तर भी ऊँचा न उठा सके। संसदीय शासन लोगोंके हितके लिए है, न कि लोग संसदीय शासनके लिए। अतंक, मँहगाई, अराजकता और राजनीतिज्ञों के हाथकंडोंसे देश परेशान है। यदि खाद्यान्न-संकट दूर नहीं हुआ, शासनमें सुव्यवस्था नहीं आई, तो जनता संसदीय शासनके तिलक-छापको नहीं मानेगी। हम स्वयं संसदीय शासनके कायल हैं। व्यक्तिगत रूपसे हम घोर परिश्रम भी करते हैं। पर देशमें जो गुंडागीरीका वातावरण है, वह असह्य हो रहा है। अकेले पं० नेहरू क्या कर लेंगे। यह ठीक है कि हमारे देशमें तानाशाहीके लिए वातावरण अभी अनुकूल नहीं है, हम चाहते भी नहीं। पर हमारे चाहने और न चाहनेकी बात है ही नहीं, अगर स्थिति न सुधरी तो हालत बहुत खराब होगी। अंग्रेज जब आए थे, तब भारतकी जनताने अराजकतासे परेशान होकर अंग्रेजी शासनका सुव्यवस्थाके कारण स्वागत किया था। हम आशावादी हैं। हमारा विचार है कि वर्तमान स्थिति बहुत

दिनों तक ऐसी ही नहीं रहेगी। या तो सुधरेगी या क्रांतिकारी परिवर्त्तन शासनमें होंगे। इस समय भी एक-दो प्रांतोंमें स्थिति ऐसी है, जहां राष्ट्रपतिका शासन लागू हो सकता है।

—सम्पादक 'विशाल भारत']

(२)

जबलपुर, २०-११-'५८

'विशाल भारत' का दीपावली विशेषांक मिला। हिन्दी मासिक पत्रोंके जो दीपावली विशेषांक निकले हैं, उनमें 'विशाल भारत' सबसे बढ़िया है। विभिन्न रुचिके लोगोंके लिए उच्च कोटिकी सामग्री है। मानसिंहपर इतना बढ़िया लेख मेरे ख्यालसे सम्भव नहीं था। उससे अच्छा अध्ययन होता है। मध्यप्रदेशके अन्य डाकू-दलोंके विषयमें भी निकले तो अच्छा रहे। डॉ० लप्पड़-झप्पड़ कौन हैं? चाय-चक्रम प्रति मास क्यों नहीं रहता? 'पुर्तगाली युद्धपोत' लेख भी ज्ञान-वर्धक और रोचक है, उसके लेखकका असली नाम क्या है?"

—एक साहित्यसेवी

[हम 'विशाल भारत' की स्वयं आलोचना क्या करें। यह तो पाठकों और समालोचकोंका काम है कि वे किसी पत्रके विषयमें राय क़ायम करें। मानसिंहपर हमारे विचारसे तो पुलिसवाले और भी अच्छा लिख सकते हैं, यदि वे निष्पक्ष और लेखनकलाके जानकार हों। सम्भवतः हम मानसिंहपर एक उपन्यास भी लिखें। अपने जबलपुरके मित्रसे हमें यही कहना है कि वे स्वयं ही क्यों नहीं लिखते, बस यह ख्याल रखें कि लोगोंमें डकैती और कत्लके विरुद्ध भावना पैदा हो। देवीसिंह, लाखनसिंह, अमृतलालके गिरोहोंकी हमें थोड़ी जानकारी है। हम आगामी फरवरी या मार्चके अंकमें बीरेके विषयमें अवश्य लिखेंगे। बीरेसे हमने जेलमें भेंट की थी। बीरे और गिरेन्द्रसिंह मानसिंहके गिरोहमें भी आ जाते थे।

चाय-चक्रमकी बैठक प्रति मास हो सकती है। आशंका यही है कि चायमें तेज टेनिन न उतर आए। डा० लप्पड़-झप्पड़ बहुत व्यस्त व्यक्ति हैं और गुमनाम ही रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि उनका मत है—

मुझ-सा कोई गुमनाम जमानेमें न होगा;
गुम हो वह नगीं जिस पै खुदै नाम हमारा।

पुर्तगाली युद्धपोतके लेखक भी गुमनाम रहना पसन्द करते हैं। आप आम खाइये, पेड़ गिननेके चक्करमें न पड़िये। लेख पसन्द है, बड़ी प्रसन्नता हुई।

—सम्पादक 'विशाल भारत']

बुद्धिका व्यंग

श्रीअरविन्दका एक पत्र

[श्री दिलीपकुमार रायने अनातोल फ्रांसकी निम्न-लिखित उक्ति श्री अरविन्दके पास भेजते हुए लिखा, "अनातोल फ्रांसकी 'तृषार्त देवता' नामक पुस्तकमें विद्रूपकारी बोतो (Botteaux) ने साधुपुजारी लोंजमारके मुँहपर ईश्वरको लक्ष्यकर यह ठहाका कसा है:—

या तो बात यह है कि यदि भगवानमें पाप-निवारणकी क्षमता होती तो वे निवारण करते किन्तु कर नहीं पाते हैं, या यह कि वे कर तो सकते हैं किन्तु करते नहीं है, या यह कि न तो वे कर ही सकते हैं और न करेंगे ही, या यह कि वे कर भी सकते हैं और करना चाहते भी हैं। यदि बात यह है कि वे करते तो सही किन्तु कर नहीं पाते, तो वे अशक्त हैं, यदि वे कर तो सकते हैं किन्तु करते नहीं, तो वे दुष्ट हैं, यदि वे न तो कर ही सकते हैं और न करते ही हैं, तो वे अशक्त और दुष्ट दोनों ही हैं, और यदि वे कर भी सकते हैं और करना चाहते भी हैं तो फिर पिता, यह तो बताइये कि पृथ्वीपर भला उन्होंने किया क्यों नहीं?

आपको यह उक्ति मैं भेज रहा हूँ, क्योंकि इसके ठठ्ठेका मैंने बहुत मजा लिया और मुझे विश्वास है कि आपको भी मजा आयगा और आशा करता हूं कि इसका समुचित उत्तर देकर आप इसकी निष्पत्ति करेंगे।

उसीका उत्तर श्री अरविन्दका यह पत्र है।]

अनातोल फ्रांस सदैव ही रसके फौवारा हैं, चाहे वे भगवान् और ईसाई धर्मके बारेमें या बुद्धिशील जन्तु मनुष्य के बारेमें या विश्व-मानव और उसकी बुद्धि और उसके आचरणके बारेमें व्यंग कस रहे हों। किन्तु मैं समझता हूं कि अनातोलसे मिलनेपर (मेरे ख्यालसे मिलनेका स्थान व्यंगका स्वर्ग रहा होगा, मृत्युके पहले अनातोलके धर्मान्तर होनेके बावजूद भी कार्ल मार्क्सका स्वर्ग नहीं रहा होगा) भगवान्ने हस्तक्षेप न करनेका जो कारण अनातोलको बताया, वह तुमने अभी तक नहीं सुना।

सुना जाता है कि घूमते-फिरते भगवान् उनके पास जा पहुंचे और बोले, "देखो अनातोल, तुम्हारा वह मजाक बहुत अच्छा था, किन्तु मेरे हस्तक्षेप न करनेका भी एक अच्छा कारण था। मेरे पास युक्ति-बुद्धि आयी और बोली—"अरे तुम्हारा अस्तित्व ही है, ऐसा तुम क्यों मान करते हो। तुम

जानते हो कि तुम हो नहीं और न कभी भी थे, या अगर तुम हो भी तो तुमने अपनी सृष्टिमें इतना गड़बड़झाला कर रखा है कि हम तुम्हें अब और बर्दाश्त नहीं कर सकते। बस, एक बार तुम्हें राहसे निकाल फेंका नहीं कि पृथ्वीपर सब कुछ ठीक हो जायेगा, बिल्कुल ठीक, शुरूसे आखिर तक; मैंने और मेरी कन्या विज्ञानने मिलकर यह सब ठीक कर लिया है। सृष्टिका ताज मनुष्य अपना सर ऊँचा कर खड़ा होगा, महान्, मुक्त, समता और बंधुत्वसे भरा, गणतंत्रको माननेवाला, अपने आपको छोड़ और किसीपर निर्भर नहीं करनेवाला। विश्वचराचरमें उसको छोड़ उससे बड़ा और कोई नहीं होगा। कहींपर भी भगवान नामकी कोई चीज नहीं होगी, कोई देवता नहीं होंगे, कोई मन्दिर नहीं होंगे, कोई पुरोहितगीरी नहीं होगी, कोई धर्म नहीं होगा, कोई राजा नहीं होगा, न कहीं कोई उत्पीड़न, दारिद्र्य, युद्ध या अशान्ति। यंत्र-व्यवसाय पृथ्वीको बहुलतासे भर देगा, वाणिज्य अपनी मैत्रीके स्वर्णपद सब जगह फैला देगा। जन-शिक्षा अज्ञानको उखाड़ फेंकेगी और किसी मानव-मस्तिष्कमें मूर्खता या अयुक्तिके लिये कोई स्थान नहीं रहेगा। मनुष्य होगा सुसंस्कृत, अनुशासनपालक, युक्तिवादी, विज्ञानी, बहुत सारे तथ्योंको जाननेवाला, पूर्ण और पर्याप्त तथ्योंपर निर्भर कर हमेशा ठीक नतीजे पर पहुंचनेवाला। वैज्ञानिकों और विशेषज्ञोंकी आवाजसे धरती गूँज उठेगी और वह आवाज मानव-जातिके लिए पृथ्वीपर स्वर्ग लायगी। समाज होगा निर्दोष; उन्नत चिकित्सा-विज्ञान और परिपूर्णांग स्वास्थ्यतत्व सबको देंगे स्वस्थ शरीर; सब कुछ युक्तिपर प्रतिष्ठित होगा; जड़ विज्ञान विकसित होगा, वह होगा अचूक, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान; जगत्की समस्या सुलझ जायगी; सारे मनुष्योंकी महासभाका जन्म होगा, विश्वके संयुक्त संघका; विकास-क्रम—जिसमें मनुष्य, भव्य मनुष्य है विकासकी अन्तिम सीमा—उसका चरमोत्कर्ष होगा; सफेद जातियोंमें हमारे पिछड़े हुए बादामी, पीले और काले भाइयोंके लिए होगी सर्वमानविक सहृदयता और होगा उनका उत्थान; शान्ति, शान्ति, शान्ति, युक्ति, शृंखला, ऐक्य, सर्वत्र।" अनातोल, इस तरहकी और कितनी ही बातें वह कहती गयी और मैं उस चित्रकी सुन्दरता और सुविधासे इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मैं उसी समय कार्यसे अवकाश ग्रहण कर बैठ गया, क्योंकि अब न तो मुझे कुछ देखना था और न करना था, और तुम जानते ही हो, मैं शान्तिप्रिय स्वभावका रहा हूं, अति गौरव के समय पृष्ठभूमिमें या पर्देके पीछे रहना पसन्द करता रहा हूं। किन्तु मैं यह क्या सुन रहा हूं? मेरे पास जो खबरें आ रही हैं, उनसे ऐसा नहीं लगता कि युक्ति-बुद्धि, विज्ञानकी सहायतासे भी, अपना वादा पूरा कर रही हो। और यदि नहीं, तो क्यों नहीं? क्या इसलिए कि वह करना नहीं चाहती या इसलिये कि कर नहीं सकती? या इसलिए कि वह करना भी नहीं चाहती और कर भी नहीं पाती? या इसलिए कि वह करना चाहती भी है और कर भी सकती है, किन्तु किसी कारणसे करती नहीं है? देखो, अनातोल, उनकी इन सन्तानोंका, राष्ट्र, यंत्र व्यवसाय, पूंजीपतिवाद, साम्यवाद और बाकी जो कुछ भी हैं, उन सबका चेहरा विचित्र हो रहा है, वे तो बहुत कुछ मानव-राक्षस जैसे दीख रहे हैं, बुद्धिकी सारी क्षमता और जड़-विज्ञानके सारे अस्त्रोंसे सुसज्जित! और ऐसा दीखता है कि राजाओं और मन्दिरोंके राज्यकालसे कोई अधिक स्वतन्त्र अबकी मानव-जाति नहीं है! अरे हुआ क्या? कहीं ऐसा तो सम्भव नहीं कि युक्ति-बुद्धि परम और अचूक न हो और स्वयं मैं जो गड़बड़झाला कर सकता था, कहीं उससे अधिक उसने न कर दिया हो!"

इस बातचीतकी रिपोर्ट यहीं खत्म होती है। इसका जो कुछ भी मूल्य हो, उसके लिए तुम्हारे पास भेज रहा हूं, क्योंकि इन भगवानसे मेरा परिचय नहीं है और इस विषयमें अनातोल फ्रांसकी बातपर ही हमें विश्वास करना है।

अनुवादक—श्यामसुन्दर झुनझुनवाला

[हमें आशा है, पाठक उपर्युक्त पत्रसे लाभ उठायेंगे और पत्रमें निहित उच्च दार्शनिक वृत्तिसे मानसिक विकासका लाभ होगा। —सम्पादक]

(४)

श्रीयुक्त सम्पादक 'विशाल भारत',

'विशाल भारत' के नवम्बर '५८ के अंकमें 'आचार्य तुलसीका दैनन्दिन जीवन-प्रसंग' नामक लेखको पढ़ा। इस लेखमें मेरे संबंधमें भी चर्चा की गई है। यों तो मुझे कई बार आचार्यश्रीके चरण-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किंतु मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीको लेकर हुई बातों में ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकको कुछ भ्रम हो गया है, जिसे मैं इस पत्र द्वारा दूर कर देना चाहता हूं।

मैं मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीसे अवश्य ही सम्बंधित हूं, किन्तु रसायनशालाको लेकर जो बातें लेखकने लिखी हैं, वे पूर्ण भ्रमप्रद और गलत हैं। मैं न तो कभी रसायनशालाका मंत्री रहा हूं और न रसायनशाला सम्बंधी इन बातोंमें कुछ सत्यता ही है।

अतः उक्त लेखके द्वारा जनतामें काफी भ्रम पैदा हो सकता है। कृपया आप आगामी अंकमें इसका भ्रम-निवारण कर दें। सोसाइटी द्वारा जनताकी काफी सेवा होती है तथा उसके द्वारा जो चीजें प्रस्तुत की जाती हैं, उनपर बराबर ही ध्यान दिया जाता है कि वे प्रामाणिक हों। —मातादीन खेतान

चयन

खाद्य और खेती

अनाजकी कमी दूर करनेके उपाय

देशको बाहरसे कमसे कम अनाज मंगाना पड़े, इसके लिए सरकार तत्काल जो काम कर रही है, उसे दो भागोंमें बांटा जा सकता है—(१) पैदावार बढ़ानेके लिए काम और (२) देशमें पैदा होनेवाले अनाजका उपयोग इस तरह करना जिससे देशकी अधिकसे अधिक मांग पूरी हो सके। यह सूचना लोकसभामें खाद्य और कृषि मंत्रीने एक विवरण में दी।

विवरणमें बताया गया है कि पैदावार बढ़ानेके लिए ये काम किए जा रहे हैं—(१) कुएं खोदने और उनकी मरम्मत करने, तालाब, जलाशय, छोटे बांध, नलकूप, कूलें आदि बनानेकी छोटी योजनाएं ; (२) किसानोंको रासायनिक खाद तथा अन्य खादका वितरण ; (३) अच्छे बीजका वितरण; (४) मछली पालन योजनाएं; (५) मेंड़ बांधने, बेकार जमीनको साफ करने और उसे खेती योग्य बनानेकी योजनाएं, (६) पौधोंकी रक्षा और उन्हें रोगसे बचानेकी योजनाएं; (७) प्रति एकड़ पैदावार बढ़ानेके लिए अन्य अधिक अन्न उगाओ योजनाएं, तथा (८) रबीकी फसल—गेहूँ, जौ, चना और ज्वार—बढ़ानेके लिए विशेष काम किये जा रहे हैं। किसानोंको खेतीके अच्छे तरीके बताये जा रहे हैं; उन्हें समय पर अच्छे बीज, खाद, उर्वरक आदि दिया जा रहा है; गांवोंके कार्यकर्ताओं और किसानोंमें सहयोग पैदा करके उनमें प्रति एकड़ उपज बढ़ानेके लिए उत्साह भरा जा रहा है।

देशमें पैदा होनेवाले अनाजका अधिकसे अधिक उपयोग करनेके लिये काम किये जा रहे हैं; (१) उन क्षेत्रोंको ध्यान में रखना जहाँ काफी अनाज होता है, ताकि सरकार वहाँसे अनाज लेकर उन स्थानोंको भेज सके, जहां बहुत कम अनाज होता है; (२) जिन क्षेत्रोंमें बहुत कम अनाज होता है और जहां अनाजकी काफी खपत है, उन्हें ध्यानमें रखना, ताकि सरकार अपने गोदामोंसे वहाँ अनाज भेज सके और (३) अधिक और कम अनाज पैदा करनेवाले क्षेत्रोंको मिलाकर एक क्षेत्र बनाना, ताकि वे मिलकर आत्मनिर्भर हो सकें।

सरकारने अनाजके ठीक-ठीक वितरणके लिए अनाजकी सस्ती दुकानें खोली हैं, ताकि सरकारके पास जो अनाज आता है, वह देशके विभिन्न स्थानोंमें जरूरतमन्दोंको मिल सके। इस समय देशमें ऐसी ४५,००० दूकानें हैं, जहाँ गेहूं, चावल और अन्य अनाज निर्धारित मूल्यपर मिलता है।

लोग अनावश्यक रूपसे अनाज जमा न करें और बनावटी ढंगसे अनाजकी कमी पैदा न करें, इसके लिए भी सरकार अनेक काम कर रही है।

देशमें सहकारी खेतीकी प्रगति

लोकसभामें खाद्य तथा कृषि मंत्रीने विभिन्न राज्योंमें सहकारी खेतीकी प्रगतिके सम्बन्धमें एक विवरण संसदकी मेजपर रखा। इसमें बताया गया है कि इस साल देशभर में कुल २५८ समितियां बनायी गयीं। उनका राज्यवार ब्योरा इस प्रकार है:—

आंध्र प्रदेश—राज्य सरकारने जमीन साफ करके बस्ती बसानेवाली एक समिति स्थापित करनेकी स्वीकृति दी है। इसके लिए सरकारने १४,५००० रु० ऋण, १०,२०० रु०की आर्थिक सहायता तथा सूखी खेतीके लिए ३०० एकड़ सरकारी बेकार भूमि दी है। इस समितिने १९ मार्च १९५८ से काम शुरू कर दिया है। इसमें सिवाय जमींदार तथा भूमिहीनोंके ६० सदस्य होंगे।

आसाम—यहां ३८ समितियां खोली गयीं। इन्हें राज्य सरकारने कोई प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता नहीं दी। हालांकि ऋण देनेवाली स्थानीय सहकारी संस्थाओंने इन्हें थोड़ी अवधि तथा मध्य अवधिके ऋण दिये। यहाँ इस दिशामें अधिक प्रगति नहीं हुई। किन्तु चीनीके कारखानों के क्षेत्रमें किसानोंने छोटे-छोटे तथा कम लाभवाले खेतोंको मिलाकर खेतीकी उपज बढ़ानेका भरपूर प्रयास किया है।

बिहार—यहाँ सहकारी खेतीके प्रमुख अधिकारी, संयुक्त रजिस्ट्रारने सहकारी खेती समिति स्थापित करनेके लिए सारे राज्यका दौरा किया। इस सम्बन्धमें प्रचार भी काफी किया गया। इन सब प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप इस साल १५ समितियां खोली गयीं। इन समितियोंको राज्य सरकारकी ओरसे कोई आर्थिक सहायता नहीं दी गयी।

बम्बई—इस साल सहकारी खेतीकी १५ समितियोंकी रजिस्ट्री की गयी। इन समितियोंको राज्य-सरकारकी ओर से भूमि-सुधार करने, कुएं खोदने, बीज और खाद आदि खरीदनेके लिए ऋण दिया गया तथा व्यवस्था आदिके खर्च के लिए सरकारने आर्थिक सहायता दी।

केरल—यहां चार समितियाँ खोली गयीं।

मध्य प्रदेश—इस साल एक समिति खोली गयी।

मद्रास—१९५७ से पहले यहाँ काश्तकारोंसे खेती करने के लिए भूमि साफ करके बस्ती बसानेवाली संस्थाएं ही सहकारी संस्थाएं बनाती थीं। १९५७-५८ में राज्य सरकारने उन्हें उदारतासे आर्थिक सहायता देनेकी भी व्यवस्था की है।

मैसूर—इस साल सहकारी खेतीकी १० समितियां बनायी गयीं। राज्य-सरकारने उन्हें ५४,००० रु० का ऋण और १९,००० रु० की सहायता दी।

उड़ीसा—सहकारी खेतोंकी १० समितियाँ बनायी गयीं।

पंजाब—इस साल यहां ६५ संयुक्त समितियां बनायी गयीं। राज्य-सरकारने दूसरी आयोजनाके अन्तर्गत ३१ मार्च १९५८ तक सहकारी खेतीकी १९७ समितियोंको ४,३९,००० रु० की आर्थिक सहायता दी।

राजस्थान—इस साल दो समितियाँ बनायी गयीं।

उत्तर प्रदेश—इस साल २१ समितियां रजिस्टर की गयीं।

पं० बंगाल—इस साल राज्य सरकारने ५८ समितियां खोलीं। इन समितियोंने सहकारी खेतीके प्रबंधकोंको ट्रेनिंग देनेका भी प्रबन्ध किया है।

जम्मू-काश्मीर—राज्य-सरकारने एक समिति बनायी।

दिल्ली—यहाँ इस साल एक समिति खोली गई।

त्रिपुरा—यहाँ भी इस अवधिमें एक समिति स्थापित की गई।

उपज बढ़ानेके लिए किसानोंको प्रोत्साहन

भारत सरकारने किसानोंको खेतीकी उपज बढ़ानेको प्रोत्साहन देनेके लिए फिरसे अखिल भारतीय उपज प्रतियोगिता योजना चालू करनेका निर्णय किया है। यह प्रतियोगिता १९५५ में बन्द कर दी गई थी। राज्य-सरकारोंसे कहा गया है कि वे अपने यहाँ रबी फसलसे ही इस प्रतियोगिताको शुरू करनेके लिए उचित कार्रवाई करना शुरू कर दें।

यद्यपि सभी राज्योंमें विभिन्न स्तरपर इस प्रकारकी प्रतियोगिताएं की जाती हैं और इसके लिए भिन्न-भिन्न नियम हैं, उपज बढ़ानेके लिए यह बहुत जरूरी है कि ये प्रतियोगिताएं बड़े पैमानोंपर की जाएं। सरकारने यह प्रस्ताव रखा है कि ये प्रतियोगिताएं गांवों, खण्डों, जिलों और राज्योंमें हों, इसके अलावा अखिल भारतीय प्रतियोगिता भी होनी चाहिए।

ये प्रतियोगिताएं करनेका सरकारका मुख्य उद्देश्य किसानोंमें उपजकी किस्म सुधारने तथा प्रति एकड़ पैदावार बढ़ानेके बारेमें परस्पर होड़की भावना पैदा करना है।

अखिल भारतीय फसल प्रतियोगितामें ९ प्रकारकी फसलोंकी प्रतियोगिता होगी, जैसे—धान, ज्वार, बाजरा, रागी, मक्का, गेहूं, चना, ज्वार (रबी की) और आलू।

प्रारम्भिक प्रतियोगिता उन सभी गांवोंमें होगी, जहाँ भी किसान प्रतियोगितामें भाग ले सकें। यह प्रतियोगिता ग्रामपंचायतके सरपंचकी अध्यक्षतामें समिति करवायेगी और यही प्रतियोगितामें निर्णायक भी होगी। जीतनेवाले किसान को २५ रु० का पुरस्कार दिया जायगा। पहले १० रु० का पुरस्कार दिया जाता था। यह चाँदीके पदक, तलवार आदिके रूपमें दिया जायगा।

तम्बाकूकी किस्म सुधारनेकी योजनाएँ

दूसरी आयोजनामें तम्बाकूकी किस्म सुधारने आदिकी योजनाओंपर १९५६-५७ में ४०,१२५ रु० और १९५७-५८ में ४७,६७३ रु० खर्च किया गया। किसानोंको तम्बाकूकी खेती करने, उसे सिझाने आदिके अच्छे तरीके बताकर तम्बाकूकी किस्म सुधारना ही इन योजनाओंका ध्येय है। इसलिए तम्बाकूकी पैदावारका लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया। किसानोंको कहा जाता है कि वे उसी किस्मका तम्बाकू बोएँ, जिस किस्मका उस जमीनमें होता है; उतने ही क्षेत्रमें तम्बाकूकी खेती करें, जितने क्षेत्रकी वे ठीक तरह देखभाल कर सकते हों; अच्छे बीज बोएँ, अच्छी खाद इस्तेमाल करें आदि।

मूँगफलीकी खेतीके क्षेत्रफलमें वृद्धि

खाद्य तथा कृषि मन्त्रालयके अर्थ और अंक विभागकी एक विज्ञप्तिमें कहा गया है कि पहले अखिल भारतीय प्राक्कलनके अनुसार, चालू वर्ष, १९५८-५९ में मूँगफलीकी खेतीका क्षेत्रफल १ करोड़ ३ लाख ६४ हजार एकड़ होनेका

अनुमान है। १९५७-५८ में मूँगफलीकी खेतीका क्षेत्रफल १ करोड़ १ लाख ३२ हजार एकड़ था। इस प्रकार इस साल इसके क्षेत्रफलमें २ लाख ३२ हजार एकड़ या २·३ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है।

मूँगफलीकी खेतीका क्षेत्रफल मुख्यतः बम्बई, मध्यप्रदेश और उत्तर-प्रदेशमें बढ़ा है। इसका कारण बुवाईके समय, पिछले सालकी अपेक्षा, मौसमका अच्छा होना था। मैसूर और आंध्र प्रदेशमें मूँगफली पिछले सालसे कम क्षेत्रमें बोई गई है।

यह जानकारी जुलाई १९५८ के अन्त तककी है और उस समय तक मूँगफलीकी फसल प्रायः सब जगह अच्छी थी।

१९५७-'५८ में आलूकी खेती

केन्द्रीय खाद्य और कृषि मन्त्रालयके अर्थ और अंक निर्देशालयकी एक विज्ञप्तिमें बताया गया है कि १९५७-५८ में पूरे भारतमें लगभग ७ लाख ६६ हजार एकड़ भूमिमें आलू बोया गया था। यह इस प्रकारका दूसरा अनुमान था। १९५६-५७ में लगभग ७ लाख एकड़में आलू बोनेका अनुमान किया गया था। इस तरह १९५७-५८ में १९५६-५७ से ६६ हजार एकड़ अधिक भूमिमें अर्थात् ९·४ प्रतिशत अधिक भूमिमें आलू बोया गया।

आलू पैदा करनेवाले सभी राज्योंमें पहलेसे अधिक भूमिपर आलू बोया गया। बिहार और उत्तर-प्रदेशमें यह वृद्धि उल्लेखनीय थी, क्योंकि इस साल आलू बोते समय जलवायु १९५६-५७ की अपेक्षा अधिक अनुकूल थी।

दूसरे अनुमानके ये आँकड़े मई १९५८ तकके हैं। पुराने अनुभवके आधारपर कहा जा सकता कि अन्तिम अनुमानके आँकड़े दूसरे अनुमानके आँकड़ोंसे कुछ अधिक ही होते हैं।

(उद्योग-व्यापार पत्रिका)

भोजपुरी-क्षेत्रका मिर्चका अचार

कुमारी उषा माथुर

भोजपुरी इलाकेका मिर्चका अचार बड़ा स्वादिष्ट होता है। 'विशाल भारत' सम्पादक उसे कारतूसी मिर्च का अचार कहते हैं। ये मिर्च लाल चौड़ी और लम्बी होती हैं। अचारके लिए आवश्यक सामग्रीः—

लाल मिर्च दो सेर, खटाई तीन छटाँक, पीली सरसों आधी छटाँक, धनियां एक छटाँक, हल्दी एक छटाँक, सौफ एक छटाँक, मैथी एक छटाँक, कलौंज (मगरैल) आधी छटाँक, नमक दो छटाँक, सरसोंका तेल डेढ़ पाव। सब मसाले बारिक कुटे हुए होने चाहिए।

विधि—बड़ी चौड़ी और लम्बी मिर्चे लेकर पहले धो लीजिए, फिर उन्हें एक दिन सूखने दीजिए। दूसरे दिन डण्ठलको हाथ अथवा चाकूकी नोकसे गोल काटकर अलग कर दीजिए। मिर्चोंका पेट नहीं चीरना चाहिए, उनको डण्ठलकी ओरसे ही भरना चाहिए। सब कुटे हुए मसालों को मिलाकर उसमें इतना तेल डालिए कि सब मसाले मिल जावें, पर गीले न होने पावें। यह मसाला मिर्चोंमें भरा जायेगा। इसको भरनेकी सरल विधि यह है कि बांसकी पतली गोल तीली बना लें, फिर मिर्चको मुट्ठीमें लेकर ऊपर से मसाला रखकर तीलीसे इस प्रकार भरिये कि मिर्च गोल और चौड़ी हो जाए। भरनेके बाद उनको दो दिन धूपमें फैलाकर रखिए। इसके बाद बचे हुए तेलमें मिर्चोंको डुबा-डुबाकर साफ जार (मर्तबान) में रखते जाइए। इसके बाद तीन-चार दिन और धूपमें रखनेपर आपका अचार तैयार हो जायगा। इसके अलावा तेल छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह अचार जब तक चाहे रखा जा सकता है।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

प्रकाशकों तथा लेखकोंसे निवेदन—समालोचनाके लिए पुस्तकें, अन्य प्रकाशन सामग्री तथा संबंधित पत्र-व्यवहार, सम्पादक 'विशाल भारत', बलका बस्ती, आगरा के पतेपर भेजा करें।

दास्तान-ए-नसरुद्दीन : मूल-लेखक, नियोनिद सोलोव्येव; अनुवादक, कृष्णकुमार; प्रकाशक पीपुल्स पब्लिशिंग (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली; मूल्य पाँच रुपया (सुन्दर चित्रित जिल्द तथा कढ़िया गेट-अपके साथ)

श्री अमृतलाल नागरके 'नवाबी मसनद' तथा प्रेमचन्दजी द्वारा अनूदित 'आजाद कथा' के समान परम रोचक शैली तथा कथातत्वसे युक्त यह दास्तान सोद्देश्य व्यंगसे पूर्ण होनेके कारण और भी उपादेय तथा मार्मिक हो गया है। धर्म तथा समाजकी रूढ़िपर आघात करनेवाला खोजा नसरुद्दीन अनायास ही सबका प्रिय बन जाता है। बुखाराका चित्रण इतना सुन्दर है कि उससे मध्यपूर्वके जीवन तथा वहाँकी तत्कालीन परिस्थितियोंका चित्र-सा पाठकके सामने उपस्थित हो जाता है। यद्यपि घटनाक्रम 'मेलोड्रेमेटिक' है, किन्तु बीच-बीचमें जो स्वाभाविक वर्णन है तथा मध्यपूर्वकी सांस्कृतिक मान्यताओंके जो चित्र हैं, वे सम्पूर्ण दास्तानको भँड़ैती की कोटिसे उठाकर सुन्दर सोद्देश्य व्यंगके क्षेत्रमें रख आते हैं। अनुवादकने अपने कार्यको बड़े कौशलसे निभाया है। 'भभ्भड़' जैसे बोलचालके—किन्तु महाप्राण—शब्दोंका प्रयोग शैलीको अनुप्राणित कर देता है (पृ० २०)। 'बाजार खुला—' (पृ० ४८-४९) और फिर लीजिये बाजारोंकी यह चहल-पहलका परम सुन्दर सामूहिक (शब्द तथा दृश्य दोनोंकी दृष्टिसे) चित्र एक विशाल भित्तिचित्रके रूपमें खुलता-सा चला जाता है। सोलोवयेवकी वर्णन-कला में कमाल हासिल है—और अनुवादकने उर्दूकी चटपटी शैली—और शब्दों—का समुचित प्रयोग करके वातावरणमें जान डाल दी है। नसरुद्दीनका कुम्हारकी लड़कीसे प्रेम, अमीरके यहाँ छद्मवेशमें 'हुसेन' के रूपमें रहना तो रोचक है ही, परन्तु सबसे अधिक रोचक है नसरुद्दीनके 'बधिया' किये जाने की आशंका। अमीर उसे अपना 'खोजा सरा' बनाना चाहता है और उसके लिए नसरुद्दीनके शरीरमें जरूरी तरमीम करने के लिए 'नश्तर' के साथ जर्राहको बुलाता है। बमुश्किल तमाम खोजा बेचारा बच पाता है। सूदखोरका इलाज तथा उसका डूबना यद्यपि अस्वाभाविक-सा लगता है, किन्तु कथाके प्रवाह तथा तत्कालीन वातावरणमें 'फिट' हो जाता है। दरवेशोंका चित्रण (पृ० ५१), गुलबानका प्रथम दर्शन (पृ० ६३), मुल्लोंके पाखण्डका चित्रण (पृ० ९२) (और उनकी अमीर-परस्तीमें निहित पाखण्ड तथा सरकारसे उनका गठबन्धन); ज्योतिषके भ्रामक प्रभावकी ओर संकेत (पृ० १३३ तथा आगे) प्रभातका परम मार्मिक एवं काव्य-पूर्ण चित्रण (पृ० १६९); कहाँ तक गिनाये जायँ, अनेक जीते-जागते वर्णनोंसे दास्तान भरी पड़ी है। शोषक तथा शोषितके आपसी संबंध तथा शोषकोंकी धर्मधुरीणताकी वास्तविकतापर सुन्दर छींटे कसे गये हैं। पृ० ८१ पर इसका वर्णन दर्शनीय है। ६१वें पृष्ठपर शायद भूलसे अनुवादक 'रुपये' का प्रयोग कर गये हैं, अन्यथा अनुवादक महोदयने अपना काम बखूबी निभाया है।

प्रकाशक इस परम रोचक पैने व्यंगसे युक्त ग्रन्थको इतने सुन्दर गेट-अप तथा छपाईके साथ निकालनेके लिये धन्यवादके पात्र हैं। दाम अधिक है।

जनगीता : प्रतिध्वनिकार—बच्चन, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली; मूल्य—तीन रु० (सजिल्द)

बच्चनजीका यह गीताका अनुवाद 'मानस'की शैलीमें, अवधी भाषामें है। भूमिकामें किन्हीं स्वामीजी महाराजकी प्रशंसा है। दोहा, चौपाई, सोरठा छन्दोंमें गीताका अनुवाद है। हमारे मतसे तो अनुवाद अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटिका है। गीताके सन्देशको जनमन तक पहुँचानेमें यह ग्रन्थ समर्थ होगा, ऐसी आशा है। लोकप्रियताके लिए 'मानस'की शैली इसमें योग देगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सही मानियोंमें यह 'जनगीता' है। 'लरंता' (पराक्रमीके लिये) का प्रयोग हमें बहुत ही पसन्द आया। इसी प्रकारके सरल तथा मार्मिक प्रयोगोंसे अनुवाद भरा पड़ा है। अनुवादमें गीताके श्लोकोंका लगभग अविकल अनुसरण किया गया है। 'आत्मा' के लिए दूसरे अध्यायमें 'जीव' का प्रयोग (पृ० ८) उचित नहीं है। 'आत्मा' शब्द सर्वविदित है, उसीका प्रयोग होना चाहिए था। ग्यारहवें अध्यायमें 'विश्वरूप' वर्णनमें गीत पद्धति (प्रार्थनाके रूपमें) को लेकर छन्द परिवर्तन होता तो बड़ा सुन्दर रहता।

हम तो समझते हैं कि हालमें इतनी सुन्दर अनुवादकी पुस्तक नहीं छपी है, जिसमें मूलका-सा आनन्द आता हो। सम्पूर्ण 'जनगीता' बच्चनजीकी प्रतिभासे 'बच्चनित' है। प्रकाशकको बधाई है। गाँवोंमें, प्रत्येक पुस्तकालयमें इसकी एक-एक प्रति रखनी चाहिए।

'मृत्युञ्जय' (नाटक) : नाटककार—लक्ष्मीनारायण मिश्र; प्रकाशक—शिक्षाभारती, १, रामकिशोर रोड, दिल्ली-६ ; मूल्य—तीन रु० (सजिल्द, जेकिट सहित)

मिश्रजीका यह नाटक पूर्णरूपेण असफल है, यह कहनेमें हमें तनिक भी संकोच नहीं होता। बापूके जीवनपर आधारित इस नाटकके पात्र हैं—गांधी, पटेल, मीरा बहन, सरोजिनी नायडू, आचार्य नरेन्द्रदेव, मौलाना आज़ाद, देवदास गांधी आदि। कथातत्व, चरित्र-चित्रण आदिकी दृष्टिसे तो नाटक असफल है ही, एक बात बड़ी विचित्र है—क्या बापूकी जीवनी नेहरूके बिना पूर्ण होगी ? क्या नेहरूजीके जीवित रहते उनसे एक नाटकके पात्रके रूपमें कही-अनकही बातें कहलवाई जा सकती हैं ? नहीं कहलवाई जा सकतीं। फिर भी इस नाटकको लिखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? नेहरूजीकी अनुपस्थिति सम्पूर्ण अस्वाभाविक कथातत्वको हास्यास्पद बना देती है। कुछेक स्थलोंपर नेहरूजीके विषयमें 'बापू' (पात्र) से संकेत कराये हैं (पृ० १५)। जो संकेत कराये हैं, वे भी सर्वमान्य नहीं हैं।

बापूके चरित्रका चित्रण भी अस्वाभाविक तथा अधकचरा है। केवल बड़े-बड़े नामोंके प्रयोगसे नाटक बड़ा नहीं बन जाता। बड़े नामोंका प्रयोग भी हमें सँभलकर करना चाहिए। ईमानदारीसे देशके नेताओंका सच्चा चित्र उपस्थित नहीं किया जा सका है। सत्याग्रहका चित्रण, बापूके शहीद होनेका दृश्य प्रभावपूर्ण नहीं है। नाटक प्रकाशित न किया गया होता तो अच्छा था। छपाई, गेट-अप तो उत्तम है ही।

ज्ञान-विज्ञान पुस्तकमालाकी पुस्तकें (बालोपयोगी साहित्य) : प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

(ये सब पुस्तकें अंग्रेजीमें प्रकाशित पुस्तकोंके हिन्दी रूपान्तर हैं ; प्रत्येकका मूल्य—दो रुपये है।)

१. **कोलम्बस** (अनुवादक, महावीर अधिकारी); २. **वायुयानकी कहानी** (अनु० धर्मपाल शास्त्री), ३. **उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवकी कहानी** (अनु० हंसराज रहबर), ४ **ज्वालामुखी और भूचालकी कहानी** (अनु० रमेशचन्द्र वर्मा), ५. **टेलीफोनकी कहानी** (अनु० केशव सागर), ६. **एटमकी कहानी** (अनु० विराज एम० ए०), ७. **समुद्रकी कहानी** (अनु० रमेशचन्द्र वर्मा), ८. **रसायन की कहानी** (अनु० रमेशचन्द्र वर्मा), ९. **मौसमकी कहानी** (अनु० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार)।

प्रत्येक पुस्तक अनेक चित्रों तथा सुन्दर रंग-बिरंगे कवर से युक्त है। लगभग सभी अनुवाद अच्छे हैं। विशेषकर महावीर अधिकारी तथा रमेशचन्द्र वर्माके अनुवाद बच्चोंके लिए बड़े ही सुगम हैं। इन बालोपयोगी पुस्तकोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अनेक पढ़े-लिखे बड़े-बूढ़ोंकी भी ज्ञानवृद्धि कर सकती है।

विज्ञानके गूढ़ रहस्योंकी सरस, सरल शैलीमें कहानीके रूपमें समझाकर कहा गया है, इसीलिए प्रत्येक पुस्तक 'कहानी' नामसे पुकारी गई है। साथमें दिए गए चित्र प्रत्येक कहानीको हृदयंगम करा देते हैं।

एक कमी रह गई है। पुस्तकें अनूदित हैं, यह प्रभाव कुछ पन्ने पढ़ते ही उत्पन्न हो जाता है। विषय तथा चित्रों का भारतीयकरण नहीं किया गया है। मामूलीसे प्रयत्न तथा किसी वैज्ञानिककी सहायतासे इन पुस्तकोंको (जो कि अमरीकी बालकोंके लिए मूलरूपमें लिखी हुई थीं) भारतीय पोशाक पहनाई जा सकती थी। मौसमकी कहानीमें कहावतें तक (अमरीकी) ज्यों-की-त्यों हैं। और नहीं तो कम-से-कम 'घाघ' आदिकी कहावतें फुटनोटमें दी जा सकती थीं (पृ० ११)। कहीं-कहीं चित्रोंका सम्बन्ध पाठसे मिलता ही नहीं, (इसी पुस्तकमें) पृ० १९ पर 'कुमेरू' 'सुमेरू' स्पष्ट नहीं किए गए हैं। 'डायग्राम्स' तथा मित्रोंमें अमरीकाके स्थानपर भारत तथा उसके उदाहरणोंका प्रयोग आवश्यक था। बच्चोंके मनमें कहानी उतारनेके लिए उनके अपने देशके (आसपासके) उदाहरण तथा चित्र होने चाहिए। मूलका अन्धानुकरण न करके उसे यदि 'भारतीय' बना दिया जाय तो पुस्तकें बच्चोंके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगी। आशा है अगले संस्करणमें यह संशोधन कर लिया जायगा।

प्रकाशकको बालोपयोगी साहित्यके प्रकाशनके क्षेत्रमें एक और कदम उठानेके लिए बधाई है। प्रत्येक पुस्तक लगभग सवा सौ पृष्ठोंकी है और प्रत्येक पृष्ठपठनीय है।

—रमेशकुमार शर्मा

भारतीय संस्कृतिके आधार : ले० श्री अरविन्द ; प्रकाशक—अदिति कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी मूल्य रु० १०-५० (सादा जिल्दके साथ)

योगिराज अरविन्दके ग्रन्थ 'दी फाउन्डेशन्स आफ इण्डियन कलचर' का यह अनुवाद, हिन्दी-भाषा-भाषियोंको अरविन्दके वचनामृतका स्वाद करानेवाला है।

पुस्तक चार भागोंमें विभक्त है। (१) प्रश्न : क्या भारत

सभ्य है, (२) भारतीय संस्कृतिपर एक युक्तिवादी आलोचक, (३) भारतीय संस्कृतिका समर्थन—धर्म और आध्यात्मिकता, भारतीय कला, भारतीय साहित्य, भारतीय शासन-प्रणाली। चौथे भागमें परिशिष्ट है। उसमें 'भारतीय संस्कृति और बाह्य प्रभाव' का विवेचन किया गया है।

'आत्माके सत्य' को माननेवाले भारतको कुछ लोग सभ्य नहीं मानते। योरोपीय देशोंके इस आरोपका उत्तर 'आत्मा के सत्य'के ऐतिहासिक विवेचनके माध्यमसे योगिराजने किया है। चारों भागोंके अन्तर्गत अनेक अध्याय हैं और उनमें अपने विषयका पूर्ण-पूर्ण विवेचन है। योगिराजका जीवन-वादी दृष्टिकोण प्रत्येक रहस्यको प्रकाशमें लानेमें पूर्ण समर्थ रहा है।

श्री अरविन्दके दृष्टिकोणका यहाँ विवेचन नहीं करना है, क्योंकि वह सर्वविदित है। यह अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया है और दार्शनिक विषयोंके अनुरूप तत्समबहुला गवेषणात्मक शैलीमें है। कठिन शब्दोंके अंग्रेजी रूप कोष्ठकों में दिये गये हैं। भाषा प्रांजल है; हां कहीं-कहीं कठिन हो गई है। छपाई साफ सादा तथा आश्रमकी प्रतिष्ठाके अनुरूप है। पुस्तक पठनीय ही नहीं, संग्रहनीय भी है।

—रामनिधि शास्त्री

'हिन्दीका प्रचार और विकास'—एक समीक्षा : प्रकाशक—शिक्षा मंत्रालय, भारत-सरकार, नई दिल्ली।

इस पुस्तिकामें भारत सरकारकी ओरसे जो कुछ हिन्दी के लिए किया गया है, उसका लेखा-जोखा है। देखने योग्य है।

दसवां वर्ष : प्रकाशक—पब्लिकेशन्स डिवीजन सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली। मूल्य १-५० रु०

इस पुस्तकमें कश्मीरको छोड़कर भारतके सब प्रदेशों (केन्द्र द्वारा शासितोंमें भी) में १९५६-५७ में प्राप्त की गई सरकारी सफलताओंका विवरण है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकारोंने किस-किस क्षेत्रमें किन-किन उद्देश्योंकी प्राप्ति की, इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। राज्योंका पुन-र्गठन तथा द्वितीय योजनाका आरम्भ विशेष बातें हैं। सब तथ्योंको 'सामाजिक', 'आर्थिक', 'आन्तरिक' तथा 'वैदेशिक' शीर्षकोंमें विभाजित करके वर्णित किया गया है। सरकारी दृष्टिकोण है। अर्थशास्त्रके अध्यापकों तथा विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी है।

पश्चिम भारतकी लोककथाएँ : सम्पादिका, सावित्री देवी वर्मा; प्रकाशक—पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत सरकार दिल्ली-८; मूल्य ७५ न० पै०

पुस्तकमें विभिन्न लेखकों द्वारा संकलित नौ कहानियाँ हैं। 'भीमा गड़रिया', 'नागपंचमी' और 'सोनेकी बांसरी' अच्छी हैं। हर्षकी बात है कि इस पुस्तकके चित्र सुन्दर हैं तथा भावात्मक हैं। दाम भी कम है। बच्चोंके बस्तेकी निधि बन सकेगी—ऐसी आशा है।

एनुअल रिपोर्ट आफ दी रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स फार इण्डिया : प्रकाशक—सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

इसमें भारतसे निकलनेवाले विभिन्न भाषाओंके विभिन्न प्रकारके (दैनिक-पाक्षिक आदि) समाचारपत्रों, पत्रिकाओं आदिकी सूची उनके अनुपातके साथ दी गई है। शोध-कार्यकर्त्ताओंके हवालेके लिए सुन्दर है।

ए स्टैण्डर्ड सिस्टम आफ रोमन ट्रान्सलेशन—प्रकाशक, शिक्षा मन्त्रालय, भारत-सरकार, नई दिल्ली।

अनुवादकोंके लिए उपयोगी इस छोटी-सी पुस्तिकामें मान्य नियमों एवं चिन्होंका संग्रह है।

हिन्दी—द नेशनल लेंग्वेज—लेखक, कन्हैयालाल मेरू-लाल मालवीय, एम० पी०, प्रकाशक, मालवीय प्रकाशन, ६८, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली।

सरकारके भाषा-कमीशनकी रिपोर्टका यह युक्तिपूर्ण विवेचन हिन्दीके प्रति किये गये आक्षेपों तथा छीटाकशीका उत्तर देता है। तर्कसंगत तथ्योंका उद्घाटन किया गया है। अंग्रेजीमें छपी इस पुस्तकमें जितने संगत तर्क हैं, उतनी ही छापेकी अशुद्धियाँ हैं। पुस्तक पठनीय है।

भारतके नृत्य—कथकली : लेखक, जगदीश चन्द्र; प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो० ब० ७०, ज्ञान-वापी, वाराणसी-१; चित्रकार, कांजिलाल; मूल्य १ रु० २५ न० पै० (सम्पूर्ण पुस्तक आर्ट पेपरपर छपी तथा रंगीन चित्रोंसे युक्त है। कवर बहुरंगा तथा सुन्दर है।)

सरस शैलीमें कथकलीकी परम्पराका विवेचन तथा चित्रोंके माध्यमसे उसकी मुद्राओंके विश्लेषण तथा व्याख्यासे युक्त यह पुस्तक नयनाभिराम तथा ज्ञानवर्धक बन गई है। बालकोंको अपने देशकी संस्कृतिसे परिचित करानेके लिए

बहुत उपयोगी है। बालकोंमें कलाके प्रति स्नेह उत्पन्न करने के लिए अच्छी है। प्रकाशककी बधाई है। गेट-अप बड़ा ही नयनाभिराम तथा आकर्षक है। छपाई सुन्दर है।

भारतकी शिल्प-कथाएँ—भरहुत : लेखक, जगदीश चन्द्र; प्रकाशक, हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, पो० ब० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी-१; मूल्य १ रु० २५ न० पै० (सुन्दर बहुरंगा कवर तथा रंगीन चित्रोंसे युक्त सम्पूर्ण पुस्तक आर्ट पेपरपर छपी है।)

प्रकाशककी 'कथकली' वाली पुस्तकके सब गुणोंसे युक्त यह पुस्तक भरहुतकी कथाओंको सरस शैली तथा मार्मिक चित्रोंके माध्यमसे कहनेवाली है। दो-एक फोटोस्टेट भी हैं। भारतीय संस्कृतिमें उसके मन्दिरों तथा शिल्पका बड़ा महत्व है, उनमें निहित कथाओं तथा सन्देशोंको समझना कभी-कभी कठिन हो जाता है। यह पुस्तक उनकी सरस व्याख्या करती है। भाषा सुबोध तथा प्रवाहमय है। लेखक तथा प्रकाशकको बधाई है। गेट-अप उत्कृष्ट है।

जिगर मुरादाबादी—जीवनी और संकलन : सम्पादक, प्रकाश पण्डित ; प्रकाशक—राजपाल एण्ड संन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली ; मूल्य—डेढ़ रुपया (जेकिट तथा जिल्दके साथ)

यह ग्रन्थ 'उर्दूके लोकप्रिय शायर' नामक लोकप्रिय तथा सुन्दर पुस्तकमालाका एक गुरिया है, जो कि जिगरके मन तथा उनके कृतित्वसे पाठकको पूर्णरूपेण परिचित करानेमें समर्थ है।

"क्या हुस्नने समझा है, क्या इश्कने जाना है।
हम खाकनशीनोंकी ठोकरमें जमाना है॥"

इन पंक्तियोंमें हजरत जिगरका व्यक्तित्व झिलमिला रहा है। अत्यधिक शराबनोशीके कारण टूट जानेवाला दाम्पत्य जीवन और तदोपरांत हढ़चेता जिगर साहबकी भीष्म 'तोबा' से फलित होनेवाला पुनर्मिलन एक भावुक कथाका स्वरूप लिए हुए है। जिगर साहबका जीवन तूफानी भावनाओंकी जैसी उथल-पुथलसे युक्त है, उसका सफल चित्रण सम्पादकने उनकी जीवनीमें किया है। प्राणोंके मोहको छोड़ कर भी जिगर साहबने जो अपनी 'तोबा' की रक्षा की, वह अलौकिक घटना-सी है।

जो कविताएं इस संकलनमें रखी गई हैं, वे जिगर साहब ककोलका प्रतिनिधित्व करती हैं, इसमें संदेह नहीं है :—

साकीकी हर निगाह पे बल खाके पी गया।
लहरोंसे खेलता हुआ लहराके पी गया॥

* * *

पीता बगैर इज्न ये कब थी मेरी मजाल।
दर पर्दा चश्मे यारकी शह पाके पी गया॥

से लेकर "अक्ल बारीक हुई जाती है।
रूह तारीक हुई जाती है॥"

तक जिगर साहबकी प्रतिनिधि कविताएं, फुटनोटोंमें अर्थके साथ दी गई हैं। कागज, छपाई, गेट-अप उत्कृष्टकोटिका है।

—रमेशकुमार शर्मा

लेखक : श्रीराम शर्मा

जंगलके जीव

चित्रकार : आर० एस० पंडित

जंगली जानवरोंके जीवन-स्केच, प्रकृतिका सजीव वर्णन, जीवन और मौतके सौदे, जन्मसे लेकर मरण तकका आकर्षक शब्द-चित्र। इस प्रकारकी पुस्तक भारतकी किसी अन्य भाषामें नहीं है। बढ़िया छपाई और सुन्दर जिल्द। चित्र-संख्या ४०। मूल्य ५)

पता—विशाल भारत बुक-डिपो, १९५।१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

मुद्रक और प्रकाशक : श्री अयोध्यासिंह, प्रवासी प्रेस (प्राइवेट लिमि०), १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

कहानियोंका अपूर्व संग्रह

हिन्दी-संसारमें बिल्कुल नई चीज

स्त्री-पुरुष सभीके लिये उपयोगी

बोलती-प्रतिमा

लेखक—श्रीराम शर्मा

जुल्मोंकी आगमें रात-दिन जलते और भूखकी लपटोंसे तिल-तिल करके झुलसते हुए गरीब किसानोंकी व्यथाका सजीव और स्वाभाविक चित्र देखकर दिल दर्दसे तड़प उठता है, और पीड़ित मनुष्यताके प्रति मनमें स्वभावतः सहानुभूतिकी भावना उमड़ने लगती है। आज ही एक प्रति मँगाकर पढ़िए। मूल्य २।), डा० म० अलग।

—*—

प्रसिद्ध शिकारीके संस्मरण

साहस और वीरताके कारनामोंसे भरी हुई
हिन्दीमें अपने विषयकी मिर्फ एक ही पुस्तक

लेखक—श्रीराम शर्मा **'शिकार'** मूल्य-तीन रुपया

…एक मिनट तक हम दोनों डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था। उसकी आँखोंसे ज्वाला-सी निकल रही थी। यह एक मिनट एक युगके समान था। अन्तमें बाघ मुड़कर भागा। मैंने समझा कि बस मेरे ऊपर आया। धाँय! जंगल गूंज गया। बन्दूक छोड़कर मैं नीचे दौड़ा; पर लुढ़कने लगा।—नीचे भयानक खड्ड और सिरसे चालीस-पचास गज ऊपर हृदय दहलानेवाली बाघकी गरजन। तब...

'शिकार'

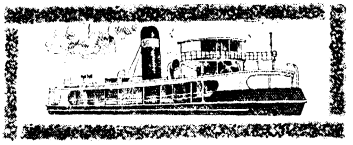
जीवन और मृत्युके साथ लड़ते हुए एक-एक क्षण!
आज तक आपने इतनी सुन्दर पुस्तक न पढ़ी होगी!!

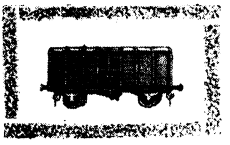
सजिल्द! सचित्र! विचित्र!!

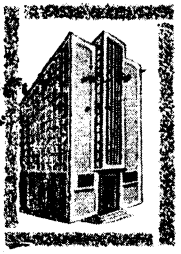
मिलने का पता—

विशाल-भारत बुक-डिपो, १९५।१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

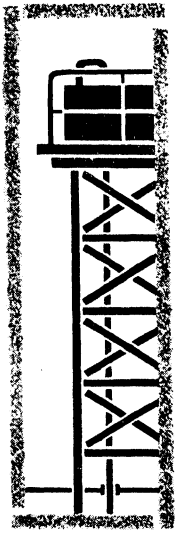
AIDING INDIA'S PROGRESS

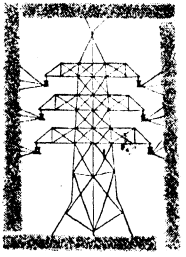












IN COMMERCE AND INDUSTRY

IRON · STEEL · ENGINEERING · SHIPBUILDING
ELECTRICITY · RAILWAY WAGONS · BUILDING · MERCHANTING

MARTIN BURN LIMITED

Head Office: 12 MISSION ROW, CALCUTTA
Branches at NEW DELHI BOMBAY KANPUR

MBGC-10